कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२५२
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

गरुडमहापुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

अनुवादक
ज्योतिर्विद राधिकारमण
मन्त्रशास्त्री, एडवोकेट

भूमिका लेखक
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

आमुख :

गरुडपुराण : महापुराणों की माला का मोती

—डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', फैलो इण्डोलॉजी

पुराण हमारी संस्कृति के चटख रंगों को आत्मस्थ किए हैं। पुराणों का महत्व उनके लिखित रूप से ही नहीं, बल्कि उनके कण्ठकोश पर विद्यमान होने से भी है। कण्ठकोश पर होने से आशय है कि से चिर-स्मृतियों के स्थायी अंश हैं। उनका रूप उनकी प्राचीनता में है। ब्रह्माण्डपुराण ने स्वीकारा है कि प्राचीनकाल में जो हुआ, वह पुराण है : यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम्। *(ब्रह्माण्ड 1, 1, 173 एवं —यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन स्मृतम्॥ वायु. 1, 203)* पुराणकार यह भी कहता है पुराणों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। अंगों समेत उपनिषदों के साथ जो वेदों का जानकार है, वह तब तक विचक्षण नहीं हो सकता जब तक कि उसे पुराण वांगमय का बोध न हो। ऋग्वेद में पुराने के अर्थ में ही पुराण शब्द लगभग चौदह प्रयोग में लाया गया है किन्तु परवर्तीकाल में यह प्राचीन गाथा या कथानक के सन्दर्भ में रूढ़ होता चला गया था। यह स्वीकारा गया है कि इतिहास-पुराण से वेदों को आत्मस्थ किया जाना अपेक्षित है। यह उक्ति अनुभव की पराकाष्ठा की सूचक है क्योंकि पुराण से ही प्राचीन परम्पराओं को जाना जा सकता है। पुराण अपने संक्षिप्त रूप में संस्कृति के कौतुकी कोश हैं। भव्यतम भाण्डागार हैं और सुविचारित संचित सम्पदा स्वरूप हैं।

पुराणों में गरुडपुराण का महत्व भारतीय समाज में अनेक कारणों से हैं। गारुडीविद्या की भी हमारे यहाँ परम्परा रही है जिसमें आस्तिक मुनि और सर्पभय के निवारण के मंत्र-तन्त्र के प्रयोग होते है। इस पुराण में इस विद्या का संकेत अवश्य है मगर यह पुराणगत पंच लक्षणात्मक ग्रन्थ है। यह पुराण भारतीयों की श्रवण परम्परा में रहा है। इसके अंशों का वाचन समाज को सुशिक्षित करता है। इहलोक में चरित्र निर्माण के पथ पर अग्रसर करता है और परलोक की स्थितियों-परिस्थितियों को परिभाषित करते हुए विचारों का परिमार्जन करता है। इसका महत्व इसकी महत्वपूर्ण सामग्री के कारण भी है जो न केवल धर्म, काम और मोक्ष की बुनियाद पर संजोयी गई है बल्कि अर्थ के आधार पर भी अत्यधिक सुदृढ़ की गई है। इसी कारण हरप्रसाद शास्त्री ने अपने एक वर्गीकरण में अग्नि और बृहन्नारदीय पुराणों की तरह ही गरुडपुराण को प्रथम श्रेणी में रखते हुए सिद्ध किया है कि इनमें पौराणिक सामान्य विषयों के अतिरिक्त मानव समाज की समस्त उपयोगी विद्याओं, आध्यात्मिक एवं भौतिक अनुशासनों यथा— व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, ज्योतिष, संगीत, आयुर्वेद आदि का सार अंश इन पुराणों में एकत्र कर दिया है। वर्तमानकालीन विश्वकोष के समान इन पुराणों का संग्रहात्मक वैशिष्ट्य है। प्रो. पाण्डुरंग वामन काण ने इसी कारण अग्नि, नारदीय के साथ-साथ गरुडपुराण को ज्ञानकोशीय पुराणों के रूप में स्वीकारा है।

महापुराणों में गरुडपुराण :

गरुडपुराण को अठारह महापुराणों की कोटि के अन्तर्गत स्वीकारा गया है। अठारह पुराणों के नाम हैं— 1. ब्रह्मपुराण, 2. पद्मपुराण, 3. विष्णुपुराण, 4. शैवपुराण, 5. भागवतपुराण, 6. नारदपुराण, 7. मार्कण्डेयपुराण, 8. अग्निपुराण, 9. भविष्यपुराण, 10. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 11. लिङ्गपुराण, 12. वराहपुराण, 13. स्कन्दपुराण, 14. वामनपुराण, 15. कूर्मपुराण, 16. मत्स्यपुराण, 17. गरुडपुराण और 18. ब्रह्माण्डपुराण। *(विष्णुपुराण 3, 6, 20-24, नारदपुराण पूर्वखण्ड, 92-109, मत्स्यपुराण अ. 53, अग्निपुराण अ. 272, भागवत 12, 13, 3-8)*

इस प्रकार विष्णुपुराणकार इन पुराणों को प्रथमतः एक विशिष्ट क्रम से नियमित करता है। इस क्रम में सत्रहवें

स्थान पर आलोच्य पुराण को प्रतिष्ठित किया गया है। इस क्रम के निर्धारण के पीछे क्या धारणा रही होगी, यह स्पष्ट नहीं है किन्तु यह प्रतीत होता है कि प्रथमतः ब्रह्म से गणना करते हुए ब्रह्माण्ड तक ले जाने के मूल में गरुड की अपनी सर्वलोक-विहारी-सत्ता हो सकती है क्योंकि गरुड को अमृत के संचारी स्वीकारा गया है और वे सोलहवें मत्स्य के उपरान्त नभचारी-विकास के सूचक हों। गरुड के प्रति जो मान्यताएँ भारतीय जनजीवन में रही है, वे ही सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में रही है। यूनान, मिस्र तक भी गरुड की देवरूप सत्ता प्राचीनकाल से रही है। वहाँ भी अनेक रूप में गरुड प्रतिमाओं की प्राप्ति होती आई है। मिथकीय कथाओं में गरुड के आख्यान मिलते हैं।

महाभारत में गरुड सम्बन्धी जो कथाएँ हैं, वे पर्याप्त पुरानी है और मिथकीय रूपों का शास्त्रीय संस्करण लिए हैं। भारतीय अभिलेखों में गरुड के सम्बन्ध में कदाचित पहला प्रमाण हेलियोडोरस के बेसनगर विदिशा (मध्यप्रदेश) स्थित स्तम्भाभिलेख में मिलता है। संस्कृत प्रभावित प्राकृत का यह अभिलेख ब्राह्मीलिपि में है और राजा भागभद्र के शासन के 14वें वर्ष, लगभग द्वितीय शती ईसापूर्व का है। तक्षशिला से आकर यवनदूत हेलियोडोरस ने विदिशा में यह स्तम्भ बनाया था। इसके स्वयं उसने गरुडध्वज कहा है— [दे]व देवस वा[सुदेव]स गरुडध्वजे अयं कारिते इ[अ]हेलिओदोरेण भागवतेन दियस पुत्रेण तखखसिलाकेन योन दूतेन [आ]गतेन महाराजस अंतलिकितस उपन्ता सकासं रञो कासी पु[त्र]स [भा]गसद्र त्रातारस वसेन च[तु]दसेन राजेन वधमानस। इसके द्वितीय भाग में लिखा है — त्रिनि अमुत पदानि [इअ] [सु] अनुठितानि नेयंति [स्वर्ग] दम चाग अप्रमाद। *(भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का वार्षिक प्रतिवेदन 1908-09, पृष्ठ 126)*

इस पाठ का सामान्य अर्थ है कि देवताओं में श्रेष्ठतम वासुदेव के लिए यह गरुडध्वज स्थापित किया गया हेलियोडोरस द्वारा, जो दियस का पुत्र और भागवत धर्मानुयायी था और तक्षशिला का यवनदूत था, ने आकर महाराज अन्तलिकितस के समीप से राजा काशीपुत्र के भागभद्र के चौदहवें वर्धमान राज्यकाल में यह कार्य सम्पादित किया। तीन अमृत के पद ये सुअनुष्ठान के द्वारा स्वर्ग में ले जाते हैं— दम, त्याग और अप्रमाद। इस अभिलेख में अमृत के तीन पद भारतीय आस्थाओं के परिचायक है जो महाभारत *(दमत्यागोऽप्रमादय एतेष्वमृतमाहित्तम्। महा. 5, 43, 22)*, धम्मपद *(अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं, अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता॥ 2, 1, उट्ठानेनप्पमादेन संयमेन दमेन च। 2, 5)* और श्रीमद्भगवद्गीता *(दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता। भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ 16, 1 व 3)* में मिलते हैं।

उक्त स्तम्भ पर गरुडचिह्न अंकित है और यह उस काल में भागवत धर्म के विदेशियों पर प्रभाव का परिचायक है। गरुड को विष्णुवाहन कहा गया है। इसी कारण विष्णु का पर्याय गरुडध्वज भी है। पाणिनि के अनुसार वह वासुदेवकों के उपास्य देवता थे। *(अष्टाध्यायी सूत्र 4, 3, 98)* यह रोचक है कि गरुड स्तम्भ बेसनगर में एक नहीं बल्कि दो बनाए गए है। यह गरुड के विष्णु के साथ सम्बन्ध के पुष्ट प्रमाण है। देवगढ़ के गुप्तकालीन मन्दिर में गजेन्द्रमोक्ष की जो मूर्ति है, वह गरुडारूढ़ त्रैलोक्य विष्णु का स्वरूप है और इस काल तक गरुड का विष्णु के साथ अटूट सम्बन्ध स्वीकारा जा चुका था। विष्णु के लिए इस प्रकार के स्तम्भ निर्माण की परम्परा पुराणों में वह्निपुराण या आग्नेय पुराण ने स्वीकार की है। वहाँ कहा गया है कि वैष्णवायतन के सामने धातु निर्मित, काष्ठ अथवा मृण्मय हो। वहाँ सुन्दर ध्वज हो जो गरुडाधिष्ठित हो। वह 14 हाथ ऊँची चौकोर या वृत्ताकार पीठिका पर अष्टचक्रीय अबेकस आधार पर सौ हाथ ऊँचा हो। उसको आगे से मानरहित कदापि नहीं बनाया जाए। जहाँ पर इस प्रकार का समुन्नत वैष्णवध्वज होता है, उस देश में सदैव आरोग्य, सुकाल, क्षेम और सम्पदा रहती है— ब्रह्मविष्ण्वीश संयुक्तमथवा यज्ञशालिनम्। विश्वरूपयुतं वाथ त्रैलोक्योन्मादकारिणा॥ कारयित्वातु हरेर्द्धाम धाम्नां पतिरिवाचरेत्। कारयित्वा तु वाराहं तत्पुरः स्थापयेत् ध्वजाम्॥ धातुनामकृतं

वापि दारुजं मृन्मयध्वजम्। गरुडाधिष्ठितं चारु चतुरस्त्रमवर्तुलम्॥ अष्टचक्रोपरिस्थं च चतुर्दशकरं परम्। यावद्धस्तशतं साग्रं मानहीनं न कारयेत्॥ यत्र नित्यं विभात्युच्चै समन्ताद्वैष्णवो ध्वजः। तत्रदेशे सदारोग्यं सुभिक्षूं क्षेमसम्पदः॥ *(वह्निपुराण 23, 137-141 व 146-149)*

इसके साथ ही विष्णु मन्दिरों में गरुड की प्रतिमा की प्रतिष्ठा मुख्य प्रासाद के सामने मण्डप में की जाने लगी। प्रासाद और मूर्तिकला विषयक शास्त्रों में इस प्रतिमा का निर्देश मिलता है। गरुड की प्रतिमा पक्षी और मानवीय आकार दोनों में मिलती है किन्तु उनके पंख अवश्य उत्कीर्ण किए जाते हैं। गरुड की प्रतिमाएँ पाषाण से लेकर अष्टधातु तक से बनाई जाती रही है।

गरुड अथवा गारुडपुराण

विष्णुपुराण के काल तक इसको 'गारुडपुराण' के नाम से जाना जाता था। पुराणकार ने इसका नाम सविशेष्य 'गारुड' के रूप में दिया है— मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्। महापुराणान्येतानि अष्टादश महामुने॥ *(विष्णु. 3, 6, 24)* इसी प्रकार पद्मपुराणकार ने भी गारुड नाम ही दिया है— गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभ दर्शने। *(उत्तरखण्ड 263, 83)* इसी प्रकार कहीं-कहीं तार्क्ष्य अथवा वैनेतेय पुराण नाम भी मिलता है। तार्क्ष्य भी गरुड का ही पर्याय है। अग्निपुराण में आया है— गारुडं चाष्ट साहस्त्रं विष्णूक्तं तार्क्ष्यकल्पेकम्। *(अग्नि. 272, 21)*

देवीभागवतकार ने एक श्लोक में प्रत्येक पुराण के प्रथमाक्षर से पुराणों के नाम दिए हैं, उसमें 'अनापलिंगकूस्कानि' के अन्तर्गत यह पुराण को 'गरुड' के नाम से ही ज्ञेय है : मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं व चतुष्टयम्। अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक्॥ *(देवीभागवत 1, 3, 2)* इस सूची में मकरादि दो पुराण— मत्स्यपुराण और मार्कण्डेय; भकरादि दो पुराण— भागवतपुराण और भविष्य; बत्रय पुराण— ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त और ब्रह्माण्ड; वचतुष्टय पुराण— वामनपुराण विष्णु, वायु एवं वराहपुराण तथा अनापत्लिङ्गकूस्क के अन्तर्गत अग्निपुराण, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड, कूर्म एवं स्कन्द के रूप में पुराणों के नामों को समझा जा सकता है।

आलोच्य पुराण स्वयं अपने को गरुड ही नाम देता है किन्तु प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में गारुड कहता है, ऐसे में दोनों नाम एक ही अर्थ में व्यवहृत प्रतीत होते हैं। गारुड नाम होने से यह अर्थ होगा कि गरुड के द्वारा प्रोक्त या कहा गया। इसके प्रवक्ता भगवान् विष्णु हैं और प्रश्नकर्ता गरुड हैं जिनके प्रत्येक प्रश्न पर विष्णु ने उत्तर देकर इस पुराण के कलेवर में निरन्तर अभिवृद्धि की है— पुराणं गारुडं वक्ष्ये सारं विष्णु कथाश्रयम्। गरुडोक्तं काश्यपाय पुरा व्यासाच्छ्रुतं मया॥ *(गरुड. 1, 11)* इस श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ पूर्वकालीन किसी कथा परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है और व्यास ने इसको पुनः कहा था।

गरुडपुराणकार अपने को सात्विक पुराण स्वीकारता है। पुराणकार अठारहों महापुराणों को मत्स्यपुराण की तरह त्रिगुणात्मक अवधारणा के साथ सिद्ध करता है। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि विषय वस्तु के आधार पर पुराणों की तीन कोटियाँ हैं—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक पुराणों के अन्तर्गत भगवान् विष्णु का माहात्म्य वर्णित है, राजस में सृष्टिकर्ता पितामह ब्रह्मा और तामम पुराणों में संहार के देवता शिव का महत्व पाया जाता है : राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः। तद्वदग्रेर्माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च। सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निताद्यते॥ *(मत्स्यपुराण अ. 53)*

इस सम्बन्ध में पद्मपुराण नामों के उल्लेख के साथ उनके गुणानुसार विभाजन को पुष्ट करता है। छः मत्स्यपुराण, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द एवं अग्नि पुराण तामस कोटिगत है; ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन एवं ब्राह्म नामक छह पुराण राजस और विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म और वाराह ये छह पुराण सात्विक वर्ग के अन्तर्गत

स्वीकारे गए हैं। यह देव के प्रकृत-स्वरूप के अनुसार किया गया है। गरुडपुराण उक्त सात्विक पुराणों को भी अधमादि तीन प्रकार की कोटियों में स्वीकारता है— सत्वाधम, सात्विक मध्यम और सात्विक उत्तम। प्रथम कोटि में मत्स्य व कूर्म पुराणों को लिया गया है, द्वितीय कोटि में वायु और तृतीय सात्विकोत्तम कोटि के अन्तर्गत विष्णु, भागवत और गरुडपुराण को रखा है : सत्वाधमे मात्स्य कौर्मं तदाहुर्वायं चाहु: सात्विकं मध्यमं च। विष्णो पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गरुडं प्राहुरार्या: ॥

श्लोकों की संख्या और स्वरूप :

वर्तमान में गरुडपुराण दो खण्डों में उपलब्ध है—पूर्वखण्ड और उत्तरराध। दोनों खण्डों में मिलाकर कुल 264 अध्याय हैं, पूर्वार्द्ध में 229 एवं उत्तरार्द्ध में 35 अध्याय। इसके विपरीत डॉ. कपाडिया ने माना है कि इसमें तीन काण्ड हैं : आचार या कर्मकाण्ड जिसमें 240 अध्याय स्वीकारे गए हैं, प्रेतकाण्ड जिसमें 49 अध्याय हैं और ब्रह्मकाण्ड जिसमें 129 अध्याय हैं। इसमें द्वितीय प्रेतकाण्ड ही वास्तविक गरुडपुराण है। ये तीनों काण्ड स्वतन्त्र हैं और प्रेतकाण्ड ही गरुडपुराण का प्रधान एवं आरम्भिक भाग है। सम्भवत: आचार काण्ड नवीं शताब्दी ईस्वी में में जोड़ा गया और ब्रह्मकाण्ड इसके भी बाद का है तथा इस पर भागवत पुराण की छाया प्रतीत होती है तथापि यह दसवीं सदी के बाद का नहीं हो सकता। किन्तु, कपाड़िया यह कहकर अपने पूर्वमत को भूल जाते हैं कि गरुडपुराण में पूर्व और उत्तरखण्ड हैं। *(पुराणम्, काशी, भाग 8 अंक 1, पृष्ठ 105)* डॉ. अवधेशबिहारीलाल अवस्थी का इस क्रम में स्पष्टीकरण है कि विद्वान लेखक ने यह नहीं बताया है कि वह किस संस्करण के आधार पर अपना मत दे रहा है। हाँ, एक स्थल पर वह जीवानन्द संस्करण, कोलकाता का उल्लेख करते हैं किन्तु उक्त संस्करण में या पण्डित पुस्तकालय काशी के संस्करण या फिर अंग्रेजी अनुवाद में कहीं भी इतने खण्ड और 418 अध्याय नहीं मिलते हैं। प्रेतकाण्ड को मूल गरुडपुराण मानना उचित नहीं जँचता है। डॉ. हाजरा का विचार ही सत्य सिद्ध है कि निस्सन्देह रूप से उत्तर खण्ड बाद में जोड़ा हुआ अंश है। *(गरुडपुराण : एक अध्ययन, चौखम्बा, 1995 ई., भूमिका, पृष्ठ 4-5)*

निस्सन्देह वर्तमान पाठ में दो ही खण्ड है : पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। इस पुराण के श्लोकों की संख्या को लेकर पुराणों के भिन्न-भिन्न मत हैं। प्राचीन सन्दर्भ जो मत्स्यपुराण और वायुपुराण में उपलब्ध होते हैं, बताते हैं कि इसमें 18 हजार श्लोक रहे हैं। यही मत अग्निपुराणकार (272, 71) का भी है जबकि भागवतपुराण (द्वादश स्कन्ध 13, 8) और देवीभागवत (1, 3) से ज्ञात होता है कि इसका प्रमाण 19 हजार श्लोकों का रहा है। नारदीयपुराण भी इसमें 19 हजार श्लोक होने की पुष्टि करता है— मरीचे शृणु वच्म्यद्य पुराणं गारुडं शुभम्। गरुडाया ब्रवीत् पृष्टो भगवान् गरुडासनम्। एकोनविंश साहस्रं तार्क्ष्यकत्व कथानिवतम्॥ *(नारदीय. 1, 108, 1-2)*

इस प्रकार श्लोकों की संख्या को लेकर अन्यान्य पुराणों की तरह ही इस पुराण के स्वरूप पर भी एकमत नहीं है किन्तु यह विश्वास होता है कि इसका पाठ समय-समय पर भिन्न भी रहा होगा अथवा अतिशयोक्ति रूप में भी लिखा गया हो। कई बार संख्याएँ रूढ़ रूप में भी स्वीकारी जाती रही है।

यह पुराण नवीं सदी के आसपास अपने वर्तमान रूप में आ गया होगा। प्रो. काणे ने इसे छठी शताब्दी के पूर्व एवं 850 के उपरान्त नहीं स्वीकारे जाने का मत दिया है। उन्होंने प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा (एनाल्स ऑफ भाण्डारकर ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, पूना, जिल्द 19, पृष्ठ 69-79 एवं स्टडीज इन द पुराणिक रेकर्ड्स आव हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका, 1940, पृष्ठ 141-145), ए. पी. करमारकर (सिद्धभारती, जिल्द 1, पृष्ठ 239-240) और डॉ. एल. एस.स्टर्नवाच (एनाल्स ऑफ भाण्डारकर ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, पूना, जिल्द 37, पृष्ठ 63-110) द्वारा प्रतिपादित विचारों आधार पर इसके कुछ विषयों का सन्दर्भ दिया है और उक्त विद्वानों के बृहस्पतिनीतिसार, चाणक्यराजनीतिशास्त्र

एवं बृहस्पतिसंहिता के सम्बन्ध में ध्यानाकर्षण को बहुत सूक्ष्मता से स्वीकारते हुए इसके उपस्कारक स्रोतों की ओर ध्यान दिलाया है। वह मानते हैं वर्तमान गरुडपुराण ने पराशरस्मृति का संक्षेप 39 श्लोकों में प्रस्तुत किया है। बल्लाल सेन ने इस पुराण के मतों को ग्रहण नहीं किया है। *(धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 414)*

कतिपय विशिष्ट जनोपयोगी स्थल :

अपने स्वरूप के अन्तर्गत इस पुराण के पूर्वार्द्ध के अध्यायों में क्रमशः सर्ग, सूर्यादि देवताओं की पूजनोपासना की विधि, दीक्षाविधि, नवव्यूहों की अर्चना, विष्णुध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युंजय अर्चन, शिव अर्चन, गोपाल पूजन, विष्णु अर्चन, पंचतत्वार्चा, चक्रार्चा, देवपूजन, दुर्गा देवी अर्चन, माहेश्वरी पूजा के साथ ही अन्य अनेक देवताओं की पूजा की विधि है। यह विवरण अनेक पूर्व-पर पुराणों के आधार पर द्रष्टव्य है। इनमें अग्निपुराण की तरह कई स्थलों पर मन्त्र भी आए हैं जिनमें बीजाक्षरों का प्रयोग भी किया गया है, जैसा कि आचारखण्ड के नाना विद्या अध्याय में द्रष्टव्य है। लगता है कि इस पुराण के सम्पादनकाल तक वैष्णवादि मतों में तान्त्रिक प्रभाव व्यावहारिक हो चुका था। आगमों की तरह इसमें मूलमन्त्र की धारणा भी देखने में आती है। स्त्रीलाभ के लिए कालरात्रि में मन्त्र भी दिए गए हैं। वैष्णवागमों की तरह इसमें पवित्रारोपण की विधि भी दी गई है। इसमें पवित्रा बनाने की कला उस काल की लोकाश्रित कला की परिचायक है— अङ्गुष्ठेन चतुःषष्टिः श्रेष्ठं मध्यं तदर्द्धतः॥ तदर्द्धा तु कनिष्ठा स्यात् सूत्रमष्टोत्तरं शतम्। उत्तमं मध्यमञ्चैव कन्यसं पूर्ववत् क्रमात्॥ उत्तमोऽङ्गुष्ठमानेन मध्यमो मध्यमेन तु। कन्यसे च कनिष्ठे अङ्गुल्या ग्रन्थयः स्मृताः॥ *(43, 11-12)*

शालग्राम की पूजा सहित उनके लक्षण इस पुराण में परम्परानुमत है। वैष्णव समुदाय में बहुत काल से शालग्रामों का पूजन किया जाता रहा है। ये अकृत्रिम होते हैं, इनका निर्माण किया नहीं जाता बल्कि स्वयंभू शिवलिङ्ग की तरह शालग्राम भी पवित्र नदियों में प्राप्त होने वाली प्राकृतिक स्वरूप प्राप्त शिलाएँ हैं। विभिन्न लक्षणों के अनुसार उनको ग्रहण करने और पूजने की परम्परा रही है। चक्रादि के आधार पर उनके स्वरूप को जाना जाता है। प्रत्येक वर्ण-वर्ग को शालग्राम शिला की पूजा का अधिकार रहा है, जैसा कि स्कन्दपुराण में कहा गया है— स्त्रियो वा यदि वा शूद्रा ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः। पूजयित्वा शिलाचक्र लभन्ते शाश्वतं पदम्॥ *(हरिभक्तिविलास 5, 452)* पद्मपुराण के माघस्नान माहात्म्य, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त सहित स्कन्दपुराणोक्त कार्तिक माहात्म्य आदि में शालग्राम शिलाओं को लेकर पर्याप्त विवरण मिलता है। वायुपुराण में कहा गया है कि जो याचक नहीं हो, प्रदाता हो या कृषि से अपनी वृत्ति का निर्वाह करते हों, वे भी पुराण श्रवण और नित्य शालग्राम सेवा के अधिकारी होते हैं। *(हरिभक्तिविलास टीकायां उद्धृत)*

पाञ्चरात्रोक्त प्रह्लादसंहिता में इन शिलाओं पर चक्रों के लक्षणों पर विचार करते हुए कहा गया है कि एक चक्रांकित शिला का नाम सुदर्शन है, दो चक्र वाली शिला का नाम लक्ष्मीनारायण, तीन चक्र वाली त्रिविक्रम, चार चक्र वाली जनार्दन, पांच चक्र वाली वासुदेव, छह चक्र वाली प्रद्युम्न, सात चक्र वाली बलदेव, आठ चक्र वाली पुरुषोत्तम, नौ चक्र वाली नवव्यूह, दस चक्र वाली दशमूर्ति, ग्यारह चक्र वाली अनिरुद्ध, बारह चक्र वाली शिला का नाम द्वादशात्मक और इससे अधिक चक्र वाली शिला को अनन्त कहा जाता है— एकः सुदर्शनो द्वाभ्यां लक्ष्मीनारायणः स्मृतः। त्रिभिस्त्रिविक्रमो नाम चतुर्भिश्च जनार्द्दनः॥ पञ्चभिश्च नवव्यूहो दशभिर्दशमूर्तिकः। एकादशैश्चानिरुद्धो द्वादशैर्द्वादशात्मकः॥ अन्येषु बहुचक्रेशु अनन्तः परिकीर्तितः॥ *(तत्रैवोद्धृत 460-462)* गरुडपुराणकार ने शालग्राम की अर्चना विधि को भी दिया है।

इसके बाद पुराणकार वास्तु जैसे जनोपयोगी विषय को ग्रहण करता है और नाट्यशास्त्र में आए विश्वकर्मामत, विश्वकर्मसंहिता, बृहत्संहिता और लिङ्ग और सौर पुराण की तरह ही वास्तुपद विन्यास, मण्डलोक्त देवता न्यास की विधि को कहता है। वह विधिपूर्वक वास्तु के आचरण से विघ्नों का विनाश होना स्वीकारता है। प्रथमतः वास्तु के 81 और

फिर 64 पद विन्यास की विधि को ईशान कोण के क्रम से कहता है— वास्तुं संक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्। ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे यजेत्॥ ईशाने च शिर:पादौ नैर्ऋत्येऽग्न्यनिले करौ। आवासवासवेश्मादौ पुरे ग्रामे वणिक्पथे। प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च। द्वाविंशत्तु सुरान्बाह्ये तदन्तश्च त्रयोदश॥ *(46, 1-3)*

पुराणकार वास्तु में आयतत्त्व और द्वारन्यास पर विचार करता है। आयतत्त्व पुराणकाल में लगभग सभी वास्तु ग्रन्थों में मिलता है। भवन और भवनोपयोगी वस्तुएँ सर्वथा समृद्धिकारक हो, इसी कारण इस सम्बन्ध में विचार हुआ है। इस सम्बन्ध में मयमतं, मानसार, समरांगण सूत्रधार, अपराजितपृच्छा, राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम् में विस्तार से कहा गया है। पुराणकार इस सम्बन्ध में किसी देवल के मत को ग्रहण करता है— शेषमंश विजानीयाद्देवलस्य मतं यथा। *(46, 26)* यह मत अद्यावधि अप्राप्य है। वास्तु ग्रन्थों के अनुसार कहाँ कौनसी आय दी जाए, इस तालिका से स्पष्ट होता है—

क्रम	*आय*	*मुख*	*दिशा*	*शुभ वर्ण, कर्म हेतु प्रशस्त*
1.	ध्वज	मनुष्य	पूर्व	छत्र, देवालय, विप्रगृह, वेदी, जलाशय, वस्त्राभरण, यज्ञशाला का प्रकल्पन
2.	धूम	मार्जार	आग्नेय	अग्निजीवी, आवास, कुण्ड, होमस्थल का प्रकल्प
3.	सिंह	सिंह	दक्षिण	सिंहद्वार, राजगृह, अस्त्र संग्रहकक्ष, सिंहासन का प्रकल्पन
4.	श्वान	श्वान	नैर्ऋत्य	चाण्डालगृह का प्रकल्पन
5.	वृष	वृष	पश्चिम	वैश्य के आवास का प्रकल्पन
6.	खर	खर	वायव्य	दुकान, वाणिज्यिक प्रतिष्ठान, धनालय, भोजनशाला, वाद्यागार का प्रकल्पन
7.	गज	हस्ति	उत्तर	वादित्र-गन्धर्वगृह, शूद्रगृह, यान, स्त्रीकक्ष, वाहन व शयनागार का प्रकल्पन
8.	ध्वाङ्क्ष	काक	ईशान	शिल्पीगृह, तपस्वीगृह, मठ, यन्त्रशाला का प्रकल्पन

इसके बाद वह द्वार की रचना, द्वार की दिशा के फल पर विचार करता हुआ अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, उदुम्बर और शाल्मलि जैसे वृक्षों को पूर्वादि क्रम से लगाने पर होने वाले फलों को कहता है। भवन में वृक्षों के लगाने के फलाफल पर मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर, सौर आदि पुराणों में विचार हुआ है किन्तु सर्वाधिक विस्तृत विचार ब्रह्मवैवर्तपुराण में मिलता है जहाँ आवासीय, नगरीय और अरण्यगत वृक्षों का वास्तुसम्मत विश्लेषण किया गया है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में वृक्षों की मङ्गलमयता व वर्जनीयता का वर्णन भी आया है जिसमें कहा गया है कि गृहस्थों के आश्रम में नारियल का वृक्ष धन प्रदायक होता है। वह यदि शिविर के ईशानकोण या पूर्व दिशा में हो तो पुत्रप्रद होता है। पूर्व में आम का वृक्ष हो तो वह सम्पत्ति देने वाला होता है। बेल, कटहल, जम्बीर, नीम्बू तथा बेर के वृक्ष पूर्व में होने पर सन्तानदायक, दक्षिण में धनदाता तथा सर्वत्र सम्पत्ति प्रदाने करने वाले होते हैं। इनसे गृहस्थ की उन्नति होती है। जामुन, केला और आँवला के वृक्ष पूर्व में बन्धुप्रद तथा दक्षिण में मित्रता को बढ़ाने वाले होते हैं और सर्वत्र शुभप्रद माने जाते हैं। नगर में ऐसे वृक्ष निषिद्ध हैं जो कि जंगली प्रजाति हों। वट वृक्ष रहना अनुचित है क्योंकि उससे चोरी की आशङ्का रहती है। सेमल का पेड़ भी नगर में उचित नहीं है। इमली का वृक्ष भी उचित नहीं है। वह बुद्धि एवं विद्या का विनाशक है। खर्जूर व अन्य काँटेदार वृक्ष अनुचित है। अन्नों में चना, शाकों में लौकी, कुम्हड़ा, अलाम्बु, पलाश, कर्कटी, हल्दी, अदरक, हरितकी,

आमलकी व ईख तथा वृक्षों में अशोक, सिरिस, कदम्ब को हमेशा शुभ माना गया है। *(ब्रह्मवैवर्त. श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय 103)*

प्रासाद निर्माण की विधि गुप्तकाल से ही जनोपयोगी निर्देश के रूप में पुराणादि ग्रन्थों में प्राप्त होती है। बृहत्संहिता से लेकर विष्णुधर्मोत्तर, लिङ्गपुराण और बाद के प्रासाद स्थापत्य से सम्बद्ध ग्रन्थों में मेरु, मन्दर, कैलास, वैराज आदि प्रासादों का विवरण मिलता है। स्कन्दपुराण भी विश्वकर्मीय वास्तुविद्या के अन्तर्गत प्रासादराज मेरु और अन्य चौदह प्रकार के प्रासादों का सन्दर्भ जुटाता है। ये हैं— मेरु, केसरी, सर्वतोभद्र, नन्दन, नन्दिशालक, नन्दीशो, मन्दर, श्रीवृक्ष, अमृतोद्भव, हिमवान, हेमकूट, कैलास, पृथ्वीजय, इन्द्रनील। इनमें मेरु को महाप्रासाद कहा गया है और जिसमें आरम्भ में पाँच अण्डक हों, उसको केसरी कहा गया है। इसमें चार-चार अंश बढ़ाते जाएँ तो मेरु बनता है। इसी प्रकार भूधर, रत्नकूट, वैडूर्य, पद्मराग, वज्रक, मुकुटोज्ज्वल, ऐरावत, राजहंस, गरुड़ और वृषभ ये दस अन्य प्रासाद होते हैं। *(प्रभास. 24, 57-64)*

गरुडपुराण में योनि के मानानुसार बनाए जाने वाले अनेक प्रासादों के सम्बन्ध में कहा गया है, सर्वयोनिक पाँच प्रासादों को क्रमशः चतुरस्र, आयताकार, वृत्त, वृत्तायत और अष्टास्र बनाने का निर्देश है— प्रासादानाञ्च वक्ष्यामि मानं योनिञ्च मानतः। वैराजः पुष्पकाख्यश्च कैलासो मालिकह्वयः॥ त्रिविष्टपश्च पञ्चैते प्रासादा सर्वयोनयः॥ प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु तदायतः। वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टास्रश्चेह च पञ्चम॥ एतेभ्य एव सम्भूताः प्रासादाः सुमनोहराः। *(47, 19-21)*

अन्य प्रासादों के लिए 'सर्वप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिंशच्च एव च' कहा गया है जो मेरु, मन्दर, विमान, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, नन्दिवर्धन, श्रीवत्स, वैराज, वलभी, गृहराज, शालागृह, विमान, ब्रह्ममन्दिर, शिविकावेश्म, पुष्पकोद्भव, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, कैलास, गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय. पृथ्वीधर आदि नामों से उनकी संक्षिप्त विशेषताओं के साथ वर्णित हैं। यह विवरण भारतीय प्रासाद स्थापत्य के अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्व का है। ऐसा लगता है कि पुराणकार को स्थापत्य में पर्याप्त रुचि थी और मन्दिरों को मण्डप, चन्द्रशाला, भेरि, शिखर, वाहनयोग्य लघु मण्डप, नाट्यशाला, द्वारपाल स्थान, मठ, प्रावृत्त-परकोटा आदि सहित बनाए जाने के विधान को सम्यक् स्वीकारता था। वह देवताओं की प्रतिष्ठा को भी विधिसम्मत करने पर जोर देता है। इसके लिए पूरा अध्याय सृजित किया गया है। इसमें अग्निमीलेति, ईषेत्वेति, अग्न्य आयाहि, शन्नोदेवीति, इमा रुद्रेति आदि वैदिक मन्त्रों के उपयोग को पूर्ववर्ती परम्परानुसार ही अनुमोदित किया गया है। इसमें प्रासाद से जुड़े विधान-अनुष्ठानों को पूरी तरह वैदिक मन्त्रों के साथ व्यावहारिक रूप में स्वीकारा गया है। इसी प्रकार वास्तुदोषों के निवारण के लिए वाष्पोष्पति मन्त्र के जाप का निर्देश है।

इसके उपरान्त अष्टांग योग में पुराणकार का स्पष्ट मत है— क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्यास एव च। आर्जवञ्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा॥ सत्यं सन्तोष आस्तिक्यं तथा चेन्द्रियनिग्रहः। देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानं विशेषतः॥ *(गरुड़ 49, 21-22)* दान धर्म, प्रायश्चित, विधि क्रिया, नरक, सूर्यव्यूह आदि केउपरान्त भूगोल, खगोल और ज्योतिष का विवरण पूरे छह अध्यायों में आया है। यह विवरण पुराण के सम्पादन काल में समाज में बढ़ते ज्योतिष के प्रभाव का द्योतक है। इसमें कृतिका नक्षत्र का प्रथमतः उल्लेख है और नक्षत्रों के देवताओं की सूची है किन्तु अश्विनी से गणना भी द्रष्टव्य है। नक्षत्रों के अनुसार मुहूर्त साधना और योगायोग भी आए हैं। ग्रहों के अनुसार दशाओं के फलाफल भी लिखे गए हैं। यात्रा वर्णन भी मिलता है जिन पर वराहमिहिर के यात्रा सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रभाव है। रविचक्र, चन्द्रमा की बारह अवस्थाओं, षडष्टक आदि योगों व लग्नों में करणीय कार्यों का विवरण भी पुराणकार देता है। ज्योतिष का विशेष विवरण विष्णुधर्मोत्तर आदि में भी मिलता है किन्तु गरुडपुराणकार का अष्टोत्तरी दशा विवरण इसके पश्चिम भारत में लोकप्रिय रही गणना के निकट ले जाता है।

स्त्री-पुरुष लक्षण आलोच्य पुराण में गर्गसंहिता, बार्हस्पत्यसंहिता, समाससंहिता, बृहत्संहिता, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण आदि की तरह ही प्राप्त होते हैं। अङ्गविद्या निमित्तशास्त्र के अन्तर्गत बहुत प्राचीनकाल से स्वीकारी गई है। अंगविज्जा नामक कुषाणकालीन ग्रन्थ में यह विस्तार से वर्णित है और फिर यह विवरण अनेक हस्तसंजीवन जैसे जैन ग्रन्थों और सामुद्रिक शास्त्रों यथा समुद्रतिलक, हस्तरेखादर्श, लक्षणप्रकाश, जगन्मोहन, विवेकविलास, करलक्षणादि में उद्धृत मिलता है। पुराणकार ने समुद्रोक्त प्राचीन शास्त्र का ऋण स्वीकार किया है— समुद्रोक्तं प्रवक्ष्यामि नरस्त्रीलक्षणं शुभम्। येन विज्ञातमात्रेण अतीतानागताश्रमाः॥ इसी प्रकार 'स्वरोदयविद्या' इस पुराण का विशिष्ट विषय है। इसमें नाक से निकलने वाले सांस के आधार पर करणीय कार्यों के फलाफल पर विचार किया गया है। यह अध्याय शिवस्वरोदय, पवनविजयस्वरोदय जैसे स्वल्प ग्रन्थों का आधार है और जैन ग्रन्थ विवेकविलास (1, 23-43) आदि में भी उद्धृत किया गया है।

रत्नपरीक्षा सम्बन्धी अध्याय गरुडपुराण के आर्थिक महत्व को परिभाषित करते हैं। इसमें वज्र, मोती, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, करकतेन, भीष्मरत्न, पुलक, मूँगा, स्फटिक आदि रत्नों का विवरण बृहत्संहिता में आए रत्न सम्बन्धी अध्यायों से तुलनीय है। हमारे यहाँ शौनकीय परम्परा में रत्नों की परीक्षा का उल्लेख प्राचीनकाल से ही रहा है किन्तु ज्ञात ग्रन्थों में प्राचीनतम ग्रन्थ 'अगस्तीमत' है जिसका प्रकाशन पेरिस से हुआ है। रत्नप्रदीपिका में रत्नशास्त्र के तीन आचार्यों व तेरह ग्रन्थों का उल्लेख है— शौनकसूत्रम्, माणिभद्रकारिका, मार्थिव निघण्टु, शिलार्णव निघण्टु, वज्रानुशासन, कल्पानुशासन, पदसंग्रहदीपिका, क्षारकल्प, निर्यासकल्प, मृद्विज्ञानचन्द्रिका, गुणरत्नाकर, अभ्रकाभरण आदि। नाट्यशास्त्रोक्त विश्वकर्मीय सन्दर्भ, हालास्यमाहात्म्य, ठक्कर फेरुकृत रयणपरीक्खा, मानसोल्लास, रसरत्नसमुच्चय, भावप्रकाश निघण्टु आदि के विवरण भी इस विद्या के प्रामाणिक साक्ष्य है किन्तु, बुधगुप्त कृत 'रत्नपरीक्षा' ग्रन्थ प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थ है और उपलब्ध होता है। संयोगवश गरुडपुराणकार ने इस ग्रन्थ को 'बुधः प्रोक्तं' की अपेक्षा 'हरि प्रोक्तं' कहकर यथारूप उद्धृत किया है। विद्रुमरत्न परीक्षा में पुराणकार 'रत्नज्ञानाय शौनक' कहकर शौनकीय परम्परा को स्वीकारता है।

इन अध्यायों में विभिन्न देशों में मिलने वाले रत्नों का विवरण भूगोल की दृष्टि से उपयोगी है। रत्नों के उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहानियाँ मिथकीय रूपों का प्रतिनिधित्व करने वाली है। मोती के सन्दर्भ में यह कथा आई है : दैत्यराज बलासुर के मुख से विशीर्ण हुई दन्तपंक्ति आकाश में फैली हुई नक्षत्रमाला के समान प्रतीत होती थी। विचित्र वर्णों में भी अपना विशुद्ध स्थान रखने वाली वह दन्तावलि आकाश से उस समुद्र की जलराशि में गिरी, जो कि पूर्णिमा के चन्द्रमा की समस्त षोडशकलाओं को तिरस्कृत करने में समर्थ महागुण सम्पन्न मणिरत्न का निधान है। समुद्र के जल में उसे शुक्ति में स्थान प्राप्त हुआ। अतः वह सामुद्रिक मुक्ता का प्राचीन बीज बन गया, जिससे अन्य मुक्ताओं का उद्भव सम्भव हुआ। समुद्र के जिस जल-प्रदेश में सुन्दर रत्न मुक्तामण्यादि के बीज गिरे, उसी प्रदेश में वे बीज फैलकर शुक्तियों में अवस्थित होने के कारण मुक्तामणि (मोती) हो गए। ऐसे में सिंहल, परलोक, सौराष्ट्र, ताम्रवर्ण, पारशव, कुबेर, पाण्ड्य, हाटक और हेमक प्रदेशों को मुक्ताओं का आकर माना गया।

इसी प्रकार माणिक्य के प्रसंग में रावणगंगा का विवरण कथा सहित आया है। भगवान सूर्यदेव जब महामहिम दैत्यराज बलासुर के श्रेष्ठ रत्नबीजरूप शरीर के रक्त को ले स्वच्छ नीले आकाशमार्ग से देवलोक जा रहे थे, उस समय निरन्तर देवों पर विजय प्राप्त करने से अहंकार में भरे हुए रावण ने आकर बलात उनको शत्रु के समान आधे मार्ग में ही रोक लिया। भयवश सूर्य ने बलासुर के रत्नबीजरूपी रक्त को लङ्का देश की एक श्रेष्ठ नदी के जल में छोड़ दिया, जो उस देश की सुन्दर रमणियों के कान्तिमय नितम्बों की प्रतिच्छाया से झिलमिलाते हुए अगाधजल से लबालब तथा सुपारी जैसी वृक्षावलियों से आच्छादित अपने दोनों तटों से सुशोभित हो रही थी। गंगा के समान पवित्र एवं उत्तम फलों को प्रदान

करने में सक्षम उस नदी का नाम रावणगङ्गा प्रसिद्ध हो गया। बलासुर के रत्नबीजरूपी रक्त के गिरने से नदी के तट पर उसी समय से रात में रत्नराशियाँ स्वयमेव एकत्र होने लगीं। अतएव नदी का अन्तर्भाग एवं बाह्य भाग सैकड़ों स्वर्ण-बाणों के समान अपनी प्रभा को बिखेरने में समर्थ रत्नों से प्रतिभासित होने लगा। उस रावणगंगा के दोनों तट सदैव रत्नों की उज्ज्वल प्रभा से सुशोभित रहते हैं। उसके जल में उत्पन्न पद्मराग नामक रत्न सौगन्धिक (शापमाल-विकसित होने वाला श्वेतमाल), कुरुविन्दज (रत्नविशेष) व स्फटिक रत्नों के प्रधान गुणों को धारण करते हैं। उनका स्वरूप बन्धूक पुष्प, गुञ्जाफल, इन्द्रगोप तथा जपाकुसुम और अष्टक (कुङ्कुम) के वर्णों की कान्तियों से सुशोभित रहता है। कुछ पद्मराग दाडिम-बीज की आभा से युक्त और कुछ किंशुक-पुष्प के समान रक्त वर्ण की कान्ति से समान रहते हैं। सिन्दूर, रक्तकमल, नीलोत्पल, कुङ्कुम और लाख के रस के समान रङ्ग वाले भी पद्मराग होते हैं। गहरा वर्ण होने पर भी उन पद्मराग रत्नों में स्फुरित शोभा सम्पन्न कान्तियाँ सुन्दर आभा को प्रस्फुटित करती रहती है।

मोती इत्यादि रत्नों का सुवर्णमाषक, पल, सुवर्ण, धरण, कृष्णल, रौप्यमाषक जैसी मुद्राओं के प्रमाण से क्रय-विक्रय होता था। इनके मानों के लिए दार्विक व भवक जैसे धरण, गुंजा, शिक्य आदि का सन्दर्भ आया है जो वर्तमान तक भी प्रचलन में रहे हैं। पुराणकार ने मानों को मनु के मत से स्वीकार किया है— सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्तः षोडश माषकः। तस्य सप्तमो भागः संज्ञा रूपं करिष्यति। शाणश्चतुर्माषमानो माषकः पञ्च कृष्णलः। पलस्य दशमो भागो धरणः परिकीर्तितः॥ *(73, 17-18)* परीक्षकों या पारखियों को जब 'मणिशास्त्रविद्' कहा जाता था— मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुणं रूपलक्षणमग्रमूल्यम्॥ *(68, 34)*

गरुडपुराण में रत्नाध्यायों के बाद गंगादि तीर्थों का माहात्म्य है जो पुराणोचित विशेषताएँ लिए हैं। पुराणकार याज्ञवल्क्य के मतानुसार धर्मशास्त्र के मतों को उद्धृत करता है और मिथिला की सभा का उल्लेख करता है। इसी में मनु, विष्णु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, ओशनस, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंखलिखित, हारीत, अत्रि जैसे पूर्ववर्ती अठारह स्मृतिकारों की सूची देता है जो तब तक विद्यमान रही स्मृतियों के अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी है। इस क्रम में स्मृत्योचित विवरण याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय पर आधारित है।

यही नहीं, विनायकोपसृष्टलक्षण नामक अध्याय का उत्स भी यही स्मृति (आचाराध्याय, प्रकरण 11) है जिसमें विनायक से पीड़ित स्त्री-पुरुष की बुरी दशा का वर्णन है। जिस तरह शनि आदि ग्रहों से पीड़ित व्यक्ति की दशा का वर्णन ज्योतिष सहित हमारे समाज में सूचित है, वैसे ही याज्ञवल्क्य के काल में विनायक दोष से पीड़ित व्यक्ति की स्थितियों पर विचार किया जाता था। याज्ञवल्क्य का मत है कि कर्मों में विघ्न और सिद्धि के प्रयोजन से रुद्र और ब्रह्मण ने विनायक को पुष्पदन्त आदि गणों का अधिपति बनाकर नियुक्त किया है। उस विनायक से जो ग्रस्त होते हैं, उसके लक्षणों में मुख्य हैं— जल में बहुत स्नान करने हुए देखना, सिर मुण्डित लोगों को देखना, गेरुआ वस्त्र धारण किए लोगों का दिखाई देना, मांसभक्षी पशुओं की सवारी, अन्त्यज, गधे व ऊंटों के साथ निवास होना और चलते समय शत्रुओं को पीछा करते हुए देखना— विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थः विनियोजितः। गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मण तथा। तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत। स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति॥ काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति। अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते। वज्रन्नपि तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः॥ विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः॥ *(याज्ञवल्क्य. 1, 271-274)*

गरुडपुराणकार के श्लोक यथारूप हैं— विनायकोपसृष्टस्य लक्षणानि निबोधत। स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति॥ विमनो विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः। *(100, 1-2)* इसके बाद, इस दोष के निवारण के लिए याज्ञवल्क्य वर्णित स्नान की विधि उद्धृत है। यह रोचक प्रसंग है कि यह प्राचीन विधान, जो लगभग द्वितीय शताब्दी में प्रचलित था,

9वीं सदी के उपरान्त विनायक को मंगलमूर्ति और प्रथम स्मरणीय स्वीकारते जाने के साथ-साथ विलुप्त होता चला गया। पुराणकार ने ग्रहदोष निवारण योग्य स्नान का वर्णन भी किया है। इसके साथ ही वानप्रस्थधर्म, भिक्षुकधर्म के साथ-साथ नारकीय पापों का उल्लेख है जो याज्ञवल्क्यस्मृति का ही साररूप है। *(याज्ञवल्क्य. प्रायश्चित. 5; गरुड. अ. 101-104)* यह वर्णन शिवधर्मोत्तरपुराण की विशेषता भी है।

इसी प्रकार पराशरस्मृति का सार भी पुराणकार ने उद्धृत किया है, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है— पराशरोऽब्रवीद्व्यासं धर्म वर्णाश्रमादिकम्। कल्पे-कल्पे क्षयोत्पत्तिः क्षीयन्ते न ह्यजादयः॥ *(107, 1-38)* पूर्वमध्यकालीन ग्रन्थों में पराशर के अनेक मतों को उद्धृत किया गया है। एकलिंगपुराण में भी इस स्मृति के श्लोक हैं। इसमें विभिन्न पुत्रों का वर्णन, चान्द्रायण आदि व्रत का विवरण द्रष्टव्य है। इसी प्रकार नीतिसार अध्याय है जो अर्थशास्त्र पर आधारित है और यह शास्त्र बृहस्पति-इन्द्र संवाद वाला रहा है— नीतिसारं सुरेन्द्राय इममूचे बृहस्पति। *(108, 10)* हालांकि कौटलीय अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिसार आदि में भी इस प्रकार के संकेत हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ डॉ. लुडविक स्टर्नबाख द्वारा इस सम्बन्ध में अध्ययन किया गया है।

इसी अध्याय में मर्यादा और आचरणों का जो विवरण है, उसे गरुडपुराण के उत्तरार्द्ध की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जा सकता है। इसके बाद राजधर्म का विवरण तत्कालीन राजतन्त्रमूलक व्यवस्था की दृष्टि से आवश्यक समझा जाना चाहिए। यह विवरण मत्स्यपुराण, अग्निपुराण और विष्णुधर्मोत्तर आदि में भी आया है किन्तु यह नीति का अंग है। इसी में आया यह श्लोक भारतीयों के कण्ठकोश पर अंकित है— मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डितः॥ *(111, 12)* आगे अनेक ऐसे सुभाषित है जो बड़े महत्व के हैं और पठनीय ही नहीं, जीवन में धारण करने योग्य हैं। पूर्वमध्यकाल में सुभाषितपठन-पाठन की महत्ता के रूप में शिवधर्मोत्तरपुराण में भी संकेत मिलता है। इसके बाद व्रतों पर संक्षिप्त अध्याय सम्पादित किए गए हैं।

इस पुराण का महत्वपूर्ण भाग आयुर्वेद विषयक सामग्री है। यह 150-181 अध्यायों तक मिलता है और इसमें शास्त्रीय आयुर्विज्ञान और रोग लक्षण सहित उपचारों का विस्तार से वर्णन है। औषधि कोश इस पुराण की अपनी विशेषता है और परवर्ती काल में निघण्टुओं की रचना में इस कोश ने सहयोग किया है। पुराणकार ने स्वीकार किया है कि पूर्व में धन्वन्तरि ने महर्षि सुश्रुत को वैद्यकशास्त्र कहा था और यहाँ उक्त शास्त्र में वर्णित औषधियों के पर्यायवाची नामों को संक्षिप्त रूप से कहा गया है। *(202, 1)* वैसे वाग्भट्ट कृत आयुर्वेदिक 'अष्टाङ्गहृदय' ग्रन्थ के सात अध्याय इस पुराण में 152 से 159 वें अध्याय तक समानतः मिलते हैं। पुराण में आगे अश्वायुर्वेद व गजायुर्वेद के अन्तर्गत में घोड़े व हाथी जैसे पशुओं की चिकित्सा का विवरण है जो अग्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तर आदि में भी मिलता है— हयायुर्वेदमाख्यास्ये हयसर्वार्थलक्षणम्। गजायुर्वेदमाख्यास्ये उक्ताः कल्पा गजे हिताः॥ *(201, 1 एवं 33)*

कहना न होगा कि इस पुराण में पचास अध्यायों में आयुर्वेद का विवरण है जो पूर्वकालीन पुराणों की अपेक्षा सर्वाधिक है और किसी पुराण को आयुर्वेदिक महत्व के ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से पर्याप्त है। पुराण जैसे ग्रन्थ को सर्वाधिक जनोपयोगी बनाने की दृष्टि से यह प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है। इसी सामग्री ने गरुडपुराण के प्रेतखण्ड-स्वरूप की मान्यता को दूर किया है। इनमें अनेक स्थलों पर मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग भी दिया गया है।

इसी के अन्तर्गत पिचुक, विडालपद आदि मान प्रमाणों का भी विवरण दिया गया है, जो कभी ओषधियों के निर्माण और सेवन के लिए प्रयोग में लाया जाता था। पिचुक, पित्तल, अक्ष एवं विडालपदक— इन शब्दों को तौल परिमाण में एक कर्ष (16 मासा) के बराबर बताया गया है। सुवर्ण और कवलग्रह तौल प्रमाणों का बराबर मान कहा गया

है। पलार्ध या आधा पल, एक शुक्ति और आठ माषक का भार बराबर होता है। पल, बिल्व और मुट्ठी का परिमाण बराबर होता है। दो पल की मात्रा प्रसृति (एक पसर) पर्याय वाली होती है। अञ्जलि एवं कुडव का मान चार पल के समान होता है। आठ पल को अष्टमान कहा जाता है, इसी की संज्ञा मान भी है। चार कुडव का एक प्रस्थ (सेर) एवं चार प्रस्थ का प्रमाण एक आढ़क (एक अढ़ैया) होता है। उक्त आढ़क को एक काशपात्र भी कहा जाता है। चार आढ़क एक द्रोण के बराबर होता है। एक सौ पल का एक तुला और बीस पल का एक भाग कहा गया है। पुराणकार ने पण्डितों के मतानुसार कहा है कि प्रस्थ आदि की मात्रा में सुलभ होने वाले द्रव्यों (धातु, धान्यादि) का मान तो इस उक्त प्रकार से ही स्वीकारा है परन्तु द्रव पदार्थों की मात्रा को उसका दोगुना स्वीकृत किया है। *(202, 71-76)*

गरुडपुराणकार अध्याय 203 से संस्कृत पठन-पाठन के महत्व को स्वीकारता हुआ व्याकरण शास्त्र को प्रस्तुत करता है और फिर छह शास्त्रों में छन्दशास्त्र को उद्धृत करता है। यह उस काल की आवश्यकता भी थी और गुरुकुलों, मठों, शालाओं में पुराणों के शास्त्रीय रूपों के महत्व का परिचायक भी है क्योंकि चौहान और परमारों के शासनकाल में तब पाठशालाओं में इस तरह का प्रचलन हो चुका था और ग्रन्थों को पाषाणों पर भी उत्कीर्ण करवाया जाने लगा था। स्तोत्र इस पुराण की एक विशेषता है। इसी क्रम में आनुष्ठानिक विधानों को सिखाया जाता था। पुराणकार ने इसी प्रयोजन ने सदाचार, स्नान विधि, तर्पण, वैश्वदेव, सन्ध्या उपासना, पार्वण कर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डीकरण, धर्मसार और प्रायश्चित आदि का विवरण 214 अध्यायों तक प्रस्तुत किया है, यह उक्त दृष्टि से अति महत्व का है और अनेक ग्रन्थों के सार के रूप में निरूपित है। आगे सांख्ययोग 230 से 243वें अध्याय तक आया है। सांख्यदर्शन भारतीय ज्ञान मनीषा का सूचक है और इसके पठन-पाठन का विशेष महत्व रहा है। आस्तिकधारा के अन्तर्गत कृतान्तपञ्चक के रूप में इस दर्शन का महत्व गुप्तकाल से ही भारतीय जनजीवन में रहा है, जैसा कि स्वीकारा गया है— सांख्या योगाः पञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा। कृतान्तपञ्चकं ह्येतच्छास्त्राणि विविधानि च॥ *(विष्णुधर्मोत्तर 2, 22, 133-134)*

पुनः गीता जैसे ग्रन्थ का सार-संक्षेप है— गीतासार प्रवक्ष्यामि अर्जुनायोदितं पुरा। अष्टाङ्गयोगयुक्तात्मा सर्ववेदान्तपारगः॥ आत्मलाभः परो नान्य आत्मदेहादि वर्जितः। रूपादिहीनदेहान्तःकरणत्वादिलोचनम्॥ *(229, 1-2)* ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत ने जहां श्रीमद्भगवद्गीता सहित अनेक गीताओं को प्रारम्भिक रूप में दिया तो विष्णु, विष्णुधर्मोत्तर आदि पुराणों ने भी यह परम्परा बढ़ाई। पद्मपुराण ने गीता के प्रत्येक अध्याय का माहात्म्य प्रस्तुत किया तो गरुडपुराण ने अपने स्तर पर गीतासार देने का प्रयास किया। इसमें योग की महत्ता प्रधानता से द्रष्टव्य है।

उत्तरार्द्ध की विषय वस्तु :

गीतासार के अन्त में पुराणकार की स्वीकारोक्ति है कि यह पुराण यहीं पर समाप्त हो जाता है— पुराणं गारुडं प्रोक्तं विधिनापि मया तव। यः पठेत् शृणुयाद्वापि सोऽपि मोक्षमवाप्नुयात्॥ किन्तु, उत्तरार्द्ध के रूप में पुनः 'नारायण नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्' स्मरणीय श्लोक से पुराण का द्वितीय खण्ड आरम्भ मिलता है। इस खण्ड में मनुष्य जीवन के कर्मों के अनुसार परलोक में होने वाले गतियों का विवरण है जो गरुड के प्रश्न पर श्रीकृष्ण द्वारा कहा गया है। इसके सम्पादक के ध्यान में विष्णुपुराण का यह श्लोक भी रहा है— गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात्॥ *(विष्णु. 2, 3, 24; भागवत. 5, 19, 21; गरुड. उत्तरार्द्ध 1, 6)*

शिवपुराण में भी यह किंचित् भेद के साथ आया है और ब्रह्मपुराण में यह पाठ है— धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः। धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम्॥ प्राप्यते यत्र तपसः फलं परम दुर्लभम्। सर्वदानफलं चैव सर्वयज्ञफलं

तथा॥ *(ब्रह्म. 27, 72-73)* मार्कण्डेयपुराण में कहा गया है— भारतं नाम यद्देशं दक्षिणेन मयोदितम्। तत्कर्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः॥ *(मार्कण्डेय. 55, 21-22)* यही विचार भागवतपुराणकार का है— तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रम्, अन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति। *(भागवत 5, 17, 11)*

उत्तरार्द्ध में प्रेतमुक्ति, मानुषत्व, जातिभेद, धर्मदेश, धर्मसखा, अप्रेतत्वकर्म, वृषोत्सर्ग, दान, पिण्डपातन, दान व धर्मोचित कार्य के बाद यमलोक का वर्णन है। यह वर्णन शिवपुराण, शिवधर्मोत्तरपुराण से तुलनीय है। पुराणकाल में यमपट्ट का वाचन करने की परम्परा थी। बाणभट्ट ने भी यमपट्ट वाचन की परम्परा पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार धर्ममार्ग, अर्थ, काम और मोक्षमार्ग, दीपदान सहित अन्य दानों की महत्ता के साथ प्रेतमार्ग व नरक का वर्णन है। चित्रगुप्तपुर व पापपुण्य को देखने वाले कायस्थ का वर्णन, नरक और नरकगामी कर्म, प्रेतमुक्ति, विष्णुबलि, प्रेतत्व व उससे छुटकारा, धर्माचरण व स्वधर्मपालन, व्रतदान के प्रभाव, संस्कार की क्रियाएँ और देहदान सहित षोडश प्रकार के श्राद्ध, सपिण्डीकरण, ऊर्ध्व देहादिक विधि, और्ध्वदेहिक कर्म, दान, दशावतार, गोदान व अन्यान्य दानकर्म, मनुष्य जन्म की महत्ता व मानव स्वरूप, भौगोलिक विवरण के साथ ही यमलोक की यन्त्रणादि विवरण, धर्माधर्म के लक्षण, दानधर्म, तीर्थ, श्राद्ध, नारायण बलि, अनशन, उदकुम्भ दान, तेरह जातियाँ व सप्तमोक्षपुरियाँ का विवरण देते हुए पुराणकार ने अग्न्यारोहण की परम्परा के फलों को लिखा है जो वर्तमान में अप्रासंगिक है किन्तु पूर्व में इसकी मान्यता कई कुल परिवारों में रही है। सूतक विधि, अपमृत्यु मार्ग, तीर्थ, दान, धेनुदान, भूमिदान का वर्णन भी इसी खण्ड में मिलता है। भूमिदान सम्बन्धी अनेक श्लोक ताम्रानुशासनों पर अंकित किए जाते रहे हैं जो महाभारत और स्कन्दपुराण में भी मिलते हैं। इसी प्रकार धेनुदान, वृषदान, वार्षिक श्राद्ध, नित्यश्राद्ध, पुण्यकर्म और धर्म का महत्व, वैतरणी विवरण भी इस खण्ड के 35 अध्यायों में वर्णित है। अन्त में आनन्द रामायण के 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' श्लोक की तरह यह कामना की गई है— सर्वेषां मङ्गलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥ इसके अनेक अध्यायों के विषय वस्तु की तुलना शिवपुराण, भविष्यपुराण और स्मृतियों के विवरण से की जा सकती है। इस खण्ड का इतना महत्व रहा है कि इसका जर्मन भाषा में भी अनुवाद हुआ है। पुराणोक्त नरक सम्बन्धी त्रासदियों का मूर्त्यांकन कम्बोडिया के मन्दिरों में देखने को मिलता है।

इस प्रकार गरुडपुराण मूलतः वैष्णवीय सत्वगुण प्रधान पुराण है किन्तु उसमें अनेकानेक जनोपयोगी विषयों का समावेश होने से उसका स्वरूप विश्वकोशात्मक है और मानवमात्र के जीवन में सदाचार, चरित्र, मर्यादा, संस्कार, मूल्यों की स्थापना उसका मुख्य ध्येय है। भारतीय पुराणों की यह बड़ी विशेषता है कि वे सामाजिक संस्कृति के अतीत का प्रतिनिधित्व ही नहीं करते बल्कि भविष्य की सुखापेक्षा भी करते हैं। उनकी महत्ता उनके सार्वकालिक स्वरूप होने से भी है। चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी ने पुराण वाङ्मय को सर्वगम्य एवं सर्वोपयोगी बनाने के उद्देश्य से प्रकाशन के लिए जो दीपदान का क्रम आरम्भ किया है, यह सानुवाद पुराण-प्रदीप उसी शृंखला का सुपरिणाम है। हमें प्रकाशक महानुभाव सहित सम्पादक-अनुवादक महोदय का आभार स्वीकारना चाहिए। कहना न होगा— इति सूखमुखोद्गीर्णां सर्वशास्त्रार्थ मण्डनीम्। वैष्णवीं वाक्सुधां पीत्वा ऋषयस्तुष्टिमाप्नुयुः॥ प्रशशंसुस्तथान्योन्यं सूतं सर्वार्थदर्शिनम्। प्रहर्षमतुलञ्चापुः शौनकाद्या महर्षयः॥

उदयपुर-मेवाड़,
शारदीय नवरात्र प्रतिपदा, 2072
13 अक्टूबर, 2015 ईस्वी.

भूमिका

'मृत्योर्मा अमृतं गमय' की प्रार्थना के साथ ही प्राचीन ऋषियों और योगियों ने पाञ्चभौतिक शरीर में अमरत्व की प्राप्ति के जो प्रयास किये थे और आधुनिक वैज्ञानिकों ने वृद्धावस्था को प्राप्त कराने वाले कारणों के निराकरण पूर्वक दीर्घजीवी होने के जो विचार चरितार्थ करने चाहे वे यथेष्ट सफल नहीं हो पाये हैं। मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेने की बात तो दूर रही, अमरत्व अथवा सुदीर्घजीवी होने का मिथ्या आश्वासन मिलने पर सामान्य मनुष्य भी स्वयं को अवध्य मानने वाले हिरण्यकशिपु, रावण आदि अनेक राक्षसों के समान निरङ्कुश, अधर्मी और दुराचारी होने लगेगा। सम्भवतः ऐसा आत्मघाती अमरत्व मनुष्य कभी भी नहीं प्राप्त कर सकेगा। मनुष्य मरणधर्मा है। प्रति दिन लोग मरते हैं, यह देखते हुए भी शेष मनुष्यों की जिजीविषा समाप्त नहीं होती, यह एक आश्चर्य माना गया है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्। शेषाः जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।।

जहाँ जीवन है, वहाँ मृत्यु भी अवश्यम्भावी है। मृत्यु और जीवन परस्पर अनुस्यूत हैं। जो भी प्राणी जन्म ग्रहण करता है, वह कालानुसार मृत्यु को भी प्राप्त होता है और जो मरता है, उसका पुनर्जन्म भी निश्चित है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

जीवन की परिसमाप्ति मृत्यु से होती है—इस ध्रुव सत्य को आदि-कवि वाल्मीकि और व्यास आदि महर्षियों ने भी स्वीकार किया है—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।

रामा० २।१०५।१६।

ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिसकी मृत्यु न होती हो। एक न एक दिन सभी को इस संसार से प्रस्थान करना ही है—

न तेऽत्र प्राणिनः सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम्। पद्म २।६८।३।

गर्भस्थ जीव, जन्म ग्रहण करने वाले शिशु, बालक, युवा, मध्यम वय वाले एवं वृद्ध सभी पुरुषों और स्त्रियों को संसार से जाना ही है—

गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः। पुंस्त्रीनपुंसकैर्वृद्धैर्यातव्यं जन्तुभिस्ततः।।

पद्म २।६८।३

पाञ्चभौतिक देह से जीवात्मा के बाहर निकलते ही प्राणी का शरीर निस्पन्द, निश्चेष्ट और निष्प्राण हो जाता है। इसी स्थिति को मृत्यु कहते हैं। मृत्यु मनुष्य के लिए सर्वाधिक भय[1] और पीड़ा[2] एवं शोक[3] का कारण है—

---

१. यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम्। एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम् ।। रामा २।१०५।१७।

२. यथाऽऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति। तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः।। रामा।२।१०५।१८। दधीचि ने देवताओं से कहा था कि मनुष्यों को मृत्यु के समय असह्य पीडा का अनुभव होता है और अन्ततः वे पीडा के मारे मूर्च्छित (गतसंज्ञ) हो जाते हैं। भाग०६।१०।३

३. स्वजनों की मृत्यु से जनित विकलता को ही शोक कहा जाता है— इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं शोकशब्दभाक्। साहित्यदर्पण ३।१७७।; पुत्रादिवियोग-मरणादिजन्मा वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेषः शोकः। रसगङ्गाधरः प्रथमाननम्।

नास्ति मृत्युसमं दुःखं नास्ति मृत्युसमं भयम्। नास्ति मृत्युसमं त्रासः सर्वेषामपि देहिनाम्।।

स्कन्द १।२।४२।।१०६-७।।

संसार के समस्त कष्टों से बड़ा कष्ट है मृत्यु। इस कष्ट की कोई उपमा ही नहीं है—

यद् दुःखं मरणे जन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित्। पद्म २।६६।१३१।

मनुष्य के जीवन में अनेक अवसरों पर मृत्युतुल्य कष्ट आ सकते हैं। उसकी अल्पमृत्यु के एक सौ योग आ सकते हैं। पुराणों में कहा गया है कि मनुष्य के शरीर में एक सौ एक मृत्युएँ सन्निविष्ट हैं, जिनमें से एक तो काल-मृत्यु है और शेष एक सौ आगन्तुक मृत्यु कहलाती हैं। आगन्तुक मृत्युओं का प्रतीकार भेषज (औषध), जप, होम और दान से हो सकता है, किन्तु जो काल-मृत्यु है, उसका कोई प्रतीकार सम्भव नहीं है—

एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन् देहे प्रतिष्ठितम्। तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः।।
ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः। जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति।।

पद्म २।६६।१२२-३; स्कन्द १।२।४२।१००-१०२; भविष्य ४।४।८४-८५;
द्र० वाग्भट कृत अष्टाङ्गसंग्रह सूत्रस्थान ६।११३-४।

जिस मनुष्य की काल-मृत्यु आ चुकी हो उसकी रक्षा करने में औषध, जप, तप, होम, दान और माता-पिता एवं बान्धव आदि कोई भी समर्थ नहीं हैं —

नौषधं न तपो दानं न मन्त्रा न च बान्धवाः। शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्।।

पद्म २।६६।१२७,भविष्य ४।४।८६।

नौषधानि च मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः। त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया वापि मानवम्।।

विष्णुस्मृति २०।४५।

रसायनतपो जप्यैर्योगसिद्धैर्महात्मभिः। कालमृत्युरपि प्राज्ञैस्तीर्यते नालसैर्नरैः।।

भविष्य ४।४।९०

ऐसे काल-मृत्यु को प्राप्त मनुष्य को स्वयं धन्वन्तरि भी स्वस्थ नहीं कर सकते—

पीडितं सर्परोगाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम्। स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति प्राप्तमृत्युं च देहिनम्।।

स्कन्द १।२।४२।१०३-४, तु० पद्म २।६६।१२६;भविष्य ४।४।८८

इस जगत् में जन्म ग्रहण करने के पूर्व माता के गर्भ में ही मनुष्य की आयु, कर्म, धर्म, विद्या और मृत्यु निश्चित हो जाती है—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च। पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।।

स्कन्द ६।६१।१६; तु० पद्म २।८१।४७।

आयु पूर्ण हो जाने पर मनुष्य के न चाहने पर भी उसके प्राण निकल ही जाते हैं—

आयुषोऽन्ते नरः प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते। अग्नि २०३।१

अग्निपुराण (१५६/११-१२) में कहा गया है कि काल न आया हो, तो सैकड़ों बाणों से विद्ध होने पर भी मनुष्य की मृत्यु नहीं होती और काल आ जाने पर कुश की नोक का स्पर्श होने मात्र से भी मनुष्य मर जाता है।

यद्यपि बौद्धों ने आयु-क्षय होने, कर्म-क्षय होने, आयु और कर्म दोनों के क्षय होने तथा उपच्छेदक कर्मों

(आयुष्यनाशक कर्मों) से भी मृत्यु होने की बात स्वीकार की है (द्र० वाग्भट कृत अष्टाङ्गसंग्रह-सूत्रस्थान ६।११६), किन्तु पुराणों में कर्मक्षय से ही मृत्यु बतलायी गयी है। जैसे दीपक का तेल समाप्त हो जाने पर उसकी बाती बुझ जाती है, उसी प्रकार सञ्चित कर्मों का भोग पूर्ण हो जाने पर जीवधारी की मृत्यु हो जाती है —

तैलक्षयाद् यथा दीपो निर्वाणमधिगच्छति। कर्मक्षयात् तथा मृत्युस्तत्त्वविद्भिरुदाहृतः।।

पदम्२।८१।६४-५; तु० स्कन्द ६।६१।२७।

भारतीय मनीषियों की यह मान्यता रही है कि विवाह, जन्म और मृत्यु ये तीनों पूर्वतः निश्चित हैं और जब, जहाँ एवं जिससे होने वाले हैं, तब वहाँ और उसी से होते हैं। इन्हें कोई टाल नहीं सकता —

त्रयः कालकृताः पाशाः शक्यन्ते नातिवर्तितुम्। विवाहो जन्ममरणं यदा यत्र तु येन तु।।

पद्म२।८१।४०।

काल महाबली है। वह सबको निगल जाता है (कालः कलयते सर्वम्)। काल का न तो कोई मनुष्य प्रेमपात्र है और न द्वेषपात्र। जिसकी आयु पूर्ण हो जाती है और पूर्वार्जित कर्मों का भोग पूरा हो जाता है, उसे वह काल बलात् उठा ले जाता है—

न कालस्य प्रियः कश्चिद द्वेष्यो वाऽस्य न विद्यते। आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम्।।

विष्णुस्मृति २०।४३; विष्णुधर्मोत्तर १।११७।१०; अग्नि १५६।१०-११।

महाभारत में कहा गया है कि जरा और मृत्यु ये दोनों ही दो भेड़ियों के समान हैं, जो कि बलवान् और दुर्बल तथा छोटे और बड़े सभी को ग्रस्त करते हैं—

जरामृत्यू हि भूतानां खादितारौ वृकाविव। बलिनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि।।

शान्तिपर्व ३१६।१२।

कोई मनुष्य चाहे वह दुर्बल हो या बलवान्, चाहे शूर-वीर हो या मूर्ख अथवा विद्वान् भी क्यों न हो वह जब तक अपनी यथेष्ट मनोकामनाओं और आर्थिक लक्ष्यों को पूरा नहीं कर लेता उसके पूर्व ही मृत्यु उसे उठा ले जाती है —

दुर्बलं बलवन्तं च प्राज्ञं शूरं जडं कविम्। अप्राप्तसर्वकामार्थं मृत्युरादाय गच्छति।।

शान्तिपर्व २७७।२१-२।

मनुष्य जब तक सांसारिक सुख के नाना साधनों और धन-सम्पत्ति के सञ्चय में ही लगा रहता है और जब तक उसकी मनोकामनाओं की तृप्ति भी नहीं हुई रहती, उसके पूर्व ही मृत्यु उसे उसी प्रकार उठा ले जाती है, जैसे-भेड़िया भेड़ को उठा ले जाता है—

संचिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम्। वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति।।

शन्तिपर्व २७७।१८-६।

मनुष्य जब तक अपने द्वारा किये गये कर्मों और अपने द्वारा सञ्चित सुख-साधनों का फल भी नहीं भोगता और जब तक वह खेत, आपण (दुकान) और घर की आसक्ति में डूबा ही रहता है, तभी उसे मृत्यु उठा ले जाती है —

कृतानां फलमप्राप्तं कार्याणां कर्मसङ्गिनाम्। क्षेत्रापणगृहासक्तं मृत्युरादाय गच्छति।।

शान्तिपर्व २७७।२०-२१, तु० विष्णुस्मृति २०।४२, विष्णुधर्मोत्तर १।११७।६।

मनुष्य यह विचार करता रहता है कि मैंने यह कार्य कर लिया है, यह करना है और यह कार्य कुछ हो चुका है और कुछ करना शेष है। इस प्रकार अभिलाषा करते रहने वाले मनुष्य को मृत्यु उठा ले जाती है —

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत् कृताकृतम्। एवमीहासमायुक्तं मृत्युरादाय गच्छति।।

शान्तिपर्व २७७।१६-२०।

मृत्यु के कारणों की चर्चा में मनुष्य की अव्यवस्थित दिनचर्या और दूषित खान-पान आदि को गिनाया गया है—

द्र.-आश्वमेधिक पर्व अध्याय १७। गरुडपुराण उत्तरखण्ड १३/५ में बतलाया गया है कि वेद के अनुसार मनुष्य शतायु होता है, किन्तु अपने दुष्कर्मों के कारण वह उससे पहले ही काल-कवलित हो जाता है।

विविध प्रकार के रोग, शस्त्र, सर्प आदि प्राणी, विष और अभिचार आदि ही मनुष्य की मृत्यु के कारण बनते हैं —

विविधा व्याधयः शस्त्रं सर्पाद्याः प्राणिनस्तथा।
विषाणि चाभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम्।।

भविष्य ४।४।८७; द्र०- व्याधिराधिर्विषं शस्त्रं क्षुत् सर्पः पशवो मृगाः। मरणं येन निर्दिष्टं तेन गच्छन्ति जन्तवः।।

कुलार्णवतन्त्र १/४६, पद्म २।६६।१५५।

मनुष्य की मृत्यु जल में डूबने, अग्नि से जलने, विष-भषण, शस्त्र के आघात, क्षुधा, रोग और पर्वत से गिरने आदि में से किसी भी निमित्त से हो सकती है —

जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुत्व्याधिः पतनं गिरेः। निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते।।

अग्नि २०३।२, ब्रह्म २१४।२८-९।

द्र०-सर्प चौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड् व्याध्यादिभिर्नृप। पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्आरब्धकर्म तत्।।

भाग० १२।६/२६

सन्तों, सिद्ध पुरुषों और योगियों की मृत्यु स्वेच्छानुसार होती है (द्र०शान्तिपर्व २९७।२६)। प्राकृत (अधम) कोटि के मनुष्यों की मृत्यु विष-भषण, उद्बन्धन (फाँसी लगाने), अग्नि में जलने अथवा दस्युओं (लुटेरों), दाढ़ वाले पशुओं (सिंह आदि) या सींग वाले पशुओं के द्वारा मारे जाने आदि कारणों से होती है—

विषमुद्बन्धनं दाहो दस्युहस्तात् तथा वधः। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च प्राकृतो वध उच्यते।। शान्तिपर्व २९७।२५।

पुराणों में स्पष्टतः कहा गया है कि पापियों की मृत्यु चाण्डाल के हाथों से हो सकती है अथवा जल में डूबने या बहने से, सर्प के काटने से, ब्राह्मण के शाप से, विद्युत से, दाड़ वाले पशुओं या सींग वाले पशुओं के द्वारा मारे जाने से होती है—

चाण्डालादुदकात् सर्पाद् ब्राह्मणाद् वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम्।।

गरुड़(ध.का.प्रे.ख.) ४०।८-९; गरुड़(काशी संस्करण) उ.ख. १२। ७; ४०।८-९, स्कन्द ७।१।२०६।५४

मनुष्य के आयुष्य और कर्म-भोग के पूरा हो जाने पर जब मृत्यु काल आ जाता है, तो उस समय देह में आसक्ति रखने वाले जीवात्मा को यमदूत खींच कर बाहर निकालते हैं—

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे संप्राप्ते मरणे नृणाम्। स्वकर्मवशगो देही कृष्यते यमकिंकरैः।।

स्कन्द १।२।५०।५६।

मनुष्य के शरीर से प्राण कैसे निकलता है इस विषय में ब्रह्मपुराण (२१४।३२-३) में कहा गया है कि शरीर में तीव्र वायु द्वारा उद्दीप्त अग्नि की उष्मा बढ़ जाती है और तब वह शरीर के मर्म-स्थलों का भेदन कर देती है। तब खाये हुए अन्न और जल के अधोगमन को रोक कर उदान नामक पवन ऊपर को चढ़ने लगता है।[1] यद्यपि आगे की स्थिति इस पुराण में स्पष्ट नहीं कही गयी है और केवल इतना बतलाया गया है कि तब भीषण आकृति वाले और हाथ में मुद्गर लिए हुए एवं दुर्गन्ध फैलाने वाले यमदूत उसके पास आ जाते हैं, जिन्हें देखकर वह कम्पायमान हो उठता है और अपने भाईयों और माता-पिता को पुकारने लगता है, किन्तु उसके कण्ठ से स्पष्ट स्वर नहीं निकलता। उस समय अतिशय त्रास के कारण उसकी आँखें घूमने लगती हैं और उसके मुख से कफ निकलने लगता है। तब अतिशय वेदना का अनुभव करता हुआ उसका प्राण[2] या जीवात्मा उसके शरीर से बाहर निकल जाता है (ब्रह्मपुराण २१४।४२-४५)।

मृत्युकाल में असीम कष्ट का अनुभव उन्हीं मनुष्यों को होता है, जो अधर्मी, दुराचारी, पापी, क्रूर और तमोगुणी प्रकृति के होते हैं। जो मनुष्य धार्मिक, सदाचारी और सात्त्विक स्वभाव वाले होते हैं, उन्हें मृत्यु के समय कोई कष्ट नहीं भोगना पड़ता। उनकी मृत्यु सुख-पूर्वक होती है। उदाहरणार्थ- यह कहा गया है कि जो मनुष्य काम या क्रोध या द्वेष की भावना से ग्रस्त हो बैठने पर भी धर्म का त्याग नहीं करता और शास्त्र-विहित आचरण करता है तथा सौम्य स्वभाव वाला है, उसकी मृत्यु सुखपूर्वक होती है—

यः कामान्नापि संरभान्न द्वेषाद् धर्ममुत्सृजेत्। यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति।।

ब्रह्म २१४।३८। मार्क१०।५५

जिसने कभी अनृत वचन न बोले हों और किसी के प्रेम-सम्बन्ध को न तोड़ा हो तथा जो आस्तिक अर्थात् वेदवचनों को प्रमाण मानने वाला हो और श्रद्धालु हो वह सुख से मरता है— **येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च। आस्तिकः श्रद्दधानश्च स सुखं मृत्युमृच्छति।।**

ब्रह्म २१४।३६; मार्क १०।५३

जो मनुष्य प्यासे लोगों को पानी और भूखों को भोजन देते हैं, वे यथाकाल सुखपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करते हैं—

वारिदास्तृषितानां ये क्षुधितान्नप्रदायिनः। प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम्।।

ब्रह्म २१४।३६।।

जो मनुष्य देवों और ब्राह्मणों की पूजा में निरत रहते हैं, दूसरों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष से रहित हैं, शुचि (निष्कलुष और शुद्ध) और वदान्य (अर्थात् दानशील) तथा लज्जालु प्रकृति के हैं, वे सखेन मृत्यु को प्राप्त करते हैं—

---

१. ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः।।
उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुक्तानामम्बुपानामधोगतिनिरोधकृत्।। ब्रह्म २१४।३२-३।।

२. नारदपुराण में प्राणों की स्थिति नाभि के मूल में बतलायी गयी है— नाभिमूले शरीरस्य सर्वे प्राणाश्च संस्थिताः। नारदपुराण पू० ४२।११०

देवब्राह्मणपूजायां निरताश्चानसूयकाः। शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः।।

ब्रह्म २१४।३७;मार्क १०।५४

इस प्रकार के वचनों का यही आशय है कि इस संसार में जितने मनुष्य धार्मिक, सौम्य, दयालु, दानी, और शीलसम्पन्न एवं सद्गुणों से सम्पन्न हैं, उनको मृत्यु के समय कोई कष्ट नहीं होता और मृत्यु के पश्चात् परलोक में भी वे सुखी रहते हैं। किन्तु अधर्मी और दुराचारी मनुष्य मृत्यु के समय भी कष्ट भोगते हैं और परलोक में भी उन्हें यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

मृत्यु के समय मनुष्य के प्राण कहाँ से निकलते हैं— इस विषय में भी पर्याप्त विचार किया गया है। महाभारत में बतलाया गया है कि पुण्यात्माओं के प्राण उनके शिरोभाग में स्थित ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके निकलते हैं। जिनका पुण्य मध्यम कोटि का है, उनके प्राण शरीर के मध्योपरि भाग अर्थात् आँख, कान, नाक या मुख से निकलते हैं और पापी तथा अधम कोटि के मनुष्यों के प्राण शरीर के अधोवर्ती छिद्रों (यथा-गुदामार्ग) से निकलते हैं—

ऊर्ध्वं भित्त्वा प्रतिष्ठन्ते प्राणाः पुण्यवतां नृप। मध्यतो मध्यपुण्यानामधो दुष्कृतकर्मणाम्।।

शान्तिपर्व २९७।२७।

स्कन्दपुराण के अनुसार भी पुण्य कर्म करने वाले मनुष्यों के प्राण शिर के ऊपर से अथवा सात छिद्रों (दो आखें, दो नासारन्ध्र, दो कानों के छिद्र और एक मुख) में से किसी एक छिद्र से निकलते हैं। पापियों के प्राण अधो द्वार (गुदा) से निकलते हैं और योगियों के प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलते हैं—

शीर्ष्णश्च सप्तभिश्छिद्रैर्निर्गच्छेत् पुण्यकर्मणाम्। अधश्च पापिनां यान्ति योगिनां ब्रह्मरन्ध्रतः।।

स्कन्द १।२।५०।६१।

शरीर के नौ छिद्रों को गिनाते हुए अग्निपुराण में कहा गया है कि दो आँखें, दो कान, दो नासिका-रन्ध्र, शिर के ऊपर का ब्रह्मरन्ध्र और मुख-इन आठ छिद्रों में से किसी एक से शुभ कर्म करने वाले सत्पुरुषों के प्राण निकलते हैं। पापकर्म करने वाले मनुष्यों के प्राण अधश्छिद्र जैसे कि गुदा एवं लिङ्ग या योनि के छिद्र से निकलते हैं। जब कि योगियों के प्राण उनकी इच्छानुसार मूर्धा या ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके निकलते हैं—

द्वे नेत्रे द्वौ तथा कर्णौ द्वौ तु नासापुटौ तथा।।३।।
ऊर्ध्वन्तु सप्तछिद्राणि अष्टमं वदनं तथा। एतैः प्राणा विनिर्यान्ति प्रायशः शुभकर्मणाम्।।
अधः पायुरुपस्थश्च अनेनाशुभकारिणाम्। मूर्धानं योगिनो भित्त्वा जीवो यात्यथ चेच्छया।

अग्निपुराण ३७१। ३-५

गरुडपुराण में बतलाया गया है कि प्राणवायु अतिसूक्ष्म होकर शरीर के नौ छिद्रों एवं रोम-कूपों से निकलता है। इन छिद्रों में से अन्तिम छिद्र-गुदामार्ग से ही पापियों का प्राण निकलता है—

नवद्वारै रोमभिश्च जनानां तालुरन्ध्रके [?]। पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्।

ग०पु०ध०का०प्रे०ख० ३१।२७)।

जीवात्मा इतना सूक्ष्म होता है कि जब वह शरीर से निकलता है, उस समय कोई भी मनुष्य उसे अपने चर्मचक्षुओं से देख ही नहीं सकता। जो वस्तु अत्यन्त सूक्ष्म होती है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन सम्भन नहीं है — ''अति सौक्ष्म्याच्च प्रप्यक्षानुपलब्धिः'' चरक संहिता सूत्रस्थान ११/८ द्र०- सांख्यकारिका ७। जीवात्मा की

सूक्ष्मता और अलक्ष्यता का संकेत करते हुए शंखस्मृति में कहा गया है कि यदि एक केश (बाल) के अग्र भाग के सौ भाग करके सौवें भाग को सहस्रधा विभाजित किया जाय और पुनः उस (सहस्रधा विभाजित) बाल के हजारवें भाग के भी सौ भाग करने पर जो सौवाँ भाग बनेगा उससे भी सूक्ष्मतर स्वरूप जीवात्मा का होता है—

बालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा। तस्यापि शतशो भागाज्जीवः सूक्ष्म अदाहृतः।।

शङ्खस्मृति ७।३१-३२ (स्मृतिसन्दर्भ भाग ३ पृ० १४२७)

शङ्खस्मृति के इस वचन में जीवात्मा की सूक्ष्मता का जो वर्णन है, वह श्वेताश्वतर उपनिषत् ५। ६ के नीचे उद्धृत वचन से भी अधिक युक्तिसंगत है—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।

जीवात्मा पाञ्चभौतिक शरीर से जब बाहर निकलता है, तो तब भी उसकी जो सूक्ष्म आकृति होती है, वह पञ्च तन्मात्राओं एवं मन, बुद्धि और अहङ्कार तथा अपने पुण्यकर्मों एवं पापकर्मों के पाश-बन्धनों से युक्त रहती है, जैसा कि स्कन्दपुराण के अधोलिखित वचन में भी कहा गया है—

पञ्चतन्मात्रसहितः समनोबुद्ध्यहंकृतिः। पुण्यपापमयैः पाशैर्बद्धो जीवस्त्यजेद् वपुः।।

स्कन्द १।२।५०।६०।।

पाञ्चभौतिक शरीर से बाहर निकल कर वायु (अर्थात् प्राणवायु) के साथ अग्रसर होने वाला जीवात्मा अपने कर्मों के भोग के लिए अन्य सूक्ष्म शरीर धारण करता है। यह सूक्ष्म शरीर माता-पिता के शुक्रशोणित से बनने वाले शरीर से भिन्न होता है—

वाय्वग्रसारी तद्रूपं देहमन्यत् प्रपद्यते। तत्कर्म-यातातनार्थे च न मातृपितृसम्भवम्।।

ब्रह्म २१४।४६।।

मनु के अनुसार पाञ्चभौतिक देह से निकल कर जीवात्मा जिस सूक्ष्म शरीर को धारण करता है, वह पञ्चतन्मात्राओं (अर्थात् पञ्चमहाभूतों के अतिसूक्ष्म तत्त्वों) से निर्मित होता है। इसी शरीर से वह याम्ययातनाएँ भोगता है—

पञ्चभ्य एव भूतेभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम्। शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम्।। १६

तेनानुभूय ताः यामीः शरीरेणेह यातनाः।

मनु १२।१६-१७।

ब्रह्मपुराण में भी प्रायः उक्त तथ्य को ही निम्नलिखित श्लोकों में व्यक्त किया गया है—

विहाय सुमहत् कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम्। २९

अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्।। दृढं शरीरमादत्ते सुखदुःखोपभुक्तये।।

ब्रह्म २१४। २९-३०

जीवात्मा का यह पञ्चतन्मात्रात्मक सूक्ष्म शरीर संकल्प और अहंकार से युक्त, ज्योतिः स्वरूप और अङ्गुष्ठ-परिमित आकार का होता है—

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः। श्वेताश्वतरोपनिषत् ५। ८।

स्कन्दपुराण के एक उद्धरण के अनुसार शरीर से निकलते ही जीवात्मा इस अङ्गुष्ठ-पर्व-परिमित 'आतिवाहिक' शरीर को ग्रहण कर लेता है और इस शरीर के निर्माण में उसके प्राणों को ही उपादान बतलाया गया है—

तत्क्षणात् सोऽथ गृह्णाति शरीरं चातिवाहिकम्। अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु स्वप्राणैरेव निर्मितम्।।

स्कन्द १।२।५०।६२।

इस अतीन्द्रिय शरीर से ही जीवात्मा अपने द्वारा किये गये धर्म और अधर्म के परिणाम-स्वरूप प्राप्त होने वाले सुख या दु:ख को भोगता है—

धर्माधर्मोपभोगाय तत् तृतीयमतीन्द्रियम्। तत् त्रिभेदं शरीरं हि धर्मविद्भिरिहोच्यते।।

पद्म ५।१००।२३।

जीवात्मा के द्वारा अपने पाप-कर्मानुसार यातना को भोगने के लिए ग्रहण किये गये इस सूक्ष्म शरीर को ही यमदूत यम की सभा में ले जाते है—

यत्तच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्। तदस्य नीयते जन्तोर्यमस्य सदनं प्रति।।

ब्रह्म २१४। ७०।

इस सूक्ष्म शरीर से ही पापकर्म करने वाला मनुष्य याम्य मार्ग की यातनाएँ भोगते हुए यमराज के पास पहुँचता है, जब कि धार्मिक जन प्रसन्नता पूर्वक और सुख-भोग करते हुए धर्मराज के पास जाते हैं—

तेन भुङ्क्ते स कृच्छ्राणि पापकर्ता नरो भृशम्। सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो यमक्षये।।

ब्रह्म २१४।३१।

यह तथ्य उल्लेखनीय और ध्यान में रखने योग्य है कि केवल मनुष्य ही मृत्यु के पश्चात् एक 'आतिवाहिक' सूक्ष्म (अतीन्द्रिय) शरीर धारण करते हैं और उन्हीं के इस शरीर को यम-पुरुषों के द्वारा याम्यपथ से यमराज के पास ले जाया जाता है। अन्य प्राणियों के शरीर को नहीं, क्योंकि अन्य प्राणी तत्काल दूसरी योनि में जन्म पा जाते हैं—

केवलं तु मनुष्याणां मृत्युकाल उपस्थिते।। २
याम्यैर्नरैर्मनुष्याणां तच्छरीरं भृगूत्तम। नीयते याम्यमार्गेण नान्येषां प्राणिनां द्विज।।

विष्णुधर्मोत्तर २।११३।२-३; अग्नि ३६६/४-५

सामान्य मनुष्य यह नहीं देख सकता कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा कहाँ जाता है और उसकी क्या गति होती है? मनुष्य तो क्या महान् तपस्वी सन्त जन भी सरलतया इसका उत्तर नहीं दे सकते। अतएव पुराणों में यह कहा भी गया है कि जीवात्मा मृत्यु के अनन्तर कहाँ प्रस्थान करता है और कहाँ से पुनरागमन (पुनर्जन्म प्राप्त) करता है यह तथ्य तप: सिद्ध ज्ञानी व्यक्ति भी ज्ञात करने में सक्षम नहीं है, तो चर्मचक्षु सामान्य जन कैसे जान सकता है —

न मृतानां गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः। तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा।।

ब्रह्माण्ड २।२८।६८-६; वायु पु० ५६।६०; मत्स्य१४१।५८

तथापि इस प्रश्न का उत्तर प्राचीन ऋषियों ने दियां है और हम अपने पूर्वज ऋषियों के आप्त वचनों को प्रमाण मानते हैं। अपने पूर्वजों के आप्त वचनों को संकर या वर्णसंकर सन्तान ही संदेह की दृष्टि से देखेंगे, अन्य नहीं। शास्त्रीय वचनों में अनास्था की भावना नास्तिकों और अधार्मिकों में देखी जा सकती है और आधर्मिकों की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में सन्देह व्यक्त किया गया है। ऐसे अधार्मिक हमारी दृष्टि में जातिबहिष्कृत और जातिच्युत हैं और उनको इस विषय में कोई उपदेश हम नहीं दे सकते। ऐसे लोगों को उपदेश देने से उपाध्याय (उपदेशक) को ही दोष लगता है—

उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित्। उपदेशे महान् दोष उपाध्यायस्य विद्यते।।

स्कन्द २।१।१६।२६।

अतः यहाँ पर हम जो कुछ भी लिख रहे हैं, वह जिज्ञासु आस्तिकों के लिए ही है। अचिन्त्य (गूढ) विषयों के विषय में तर्क नहीं करना चाहिए- अचिन्त्य खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्। भीष्मपर्व ५/१२। भारतीय संस्कृति के विद्वान् प्राचीन काल से ही ऋषियों के वचनों को प्रमाण मानते आये हैं। भर्तृहरि ने अपने व्याकरण ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' के ब्रह्मकाण्ड में कहा है कि जो ऋषि अतीन्द्रिय और असंवेद्य भावों या विषयों को भी अपने आर्षचक्षु (ज्ञानचक्षु) से देख कर उसका यथार्थ वर्णन कर डालते हैं उनके वचनों को अनुमान से बाधित नहीं किया जा सकता अर्थात् उनके वचनों का तर्क के द्वारा खण्डन नहीं किया जाना चाहिए—

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा। ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते।।

पातञ्जल योगदर्शन (योगसूत्र ३।३३) के अनुसार योगी अपने प्रातिभ ज्ञान से सब-कुछ ज्ञात कर लेता है तथा इसके आगे ३।३६ वें सूत्र के व्यासभाष्य में स्पष्ट कहा गया है कि योगी अपने प्रातिभ ज्ञान से सूक्ष्म, व्यवहित (गूढ, किसी दीवार आदि के अवरोध के कारण अदृश्य), दूरवर्ती तथा अतीत और अनागत (भूत और भविष्य) के विषयों (घटनाओं और दृश्यों) को देख सकता है—

प्रातिभात् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टातीतानागतज्ञानम्।

पातञ्जल योगसूत्र ३/३६ पर व्यास भाष्य।

इसी तथ्य को श्रीमद्भागवत पुराण में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम्। विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः।।

भाग० १०/६१/२१

भूतं भव्यं वर्तमान त्रिकालज्ञा मुनीश्वराः। गतासूया महात्मानः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।।

नारद पुराण ७।४८

अतः प्राचीन आचार्यों के वचन पूर्णतः सत्य हैं। मनुष्य के शरीर से बाहर निकल कर जीवात्मा की क्या स्थिति होती है, वह कहाँ जाता है और किस योनि में उत्पन्न होता है, यह सब योगी अपने दिव्य चक्षुओं से देख सकते हैं—

च्यवन्तं जायमानं वा प्रविशन्तं च योनिषु। पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा।।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण २। ११६। १०; तु० अग्नि ३७१। ८।

उपर्युक्त विचारों का समर्थन महाभारत और श्रीमद् भगवद्गीता के अधोलिखित वचनों से भी होता है।

पश्यन्त्येवं विधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुणा। च्यवन्तं जायमानं च योनिं चानुप्रवेशितम्।। ३३

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्। विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।

आश्वमेधिक पर्व १७।३३-३४

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्। विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।

गीता १५/१०

इस विषय में महाभारत शान्तिपर्व २५३/१-१५में वर्णित विचार भी देखे जा सकते हैं। ऐसे वचनों से यह स्पष्ट होता है कि योगी अपने योगबल से और तपःसिद्ध ज्ञानी ऋषि-मुनि अपने दिव्य ज्ञानचक्षुओं से जीवात्मा की गतिविधियों को जानते हैं। मनु ने भी कहा है कि इस शरीरान्तर्गत आत्मा की गति को ध्यान-योग से देखना चाहिए—

ध्यानायोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः।। मनु ६। ७३

प्राचीन भारतीय मनीषियों में सनत्कुमार को भी मृतात्माओं के परलोक में आवागमन तथा उनको श्राद्ध से तृप्ति प्राप्त होने आदि विषयक ज्ञान था—

सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा। गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि।।

ब्रह्माण्ड २।२८।६२; वायु पूर्वार्द्ध ५६।८३; मत्स्य १४१।७६-७।

अतः पुराणों में प्राचीनकाल के सनत्कुमार जैसे अतीन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न मनीषियों तथा योगियों के द्वारा प्रत्यक्ष देखकर बतलाये गये तथ्यों के आधार पर ही जीवात्मा के विषय में यथार्थ निरूपण किया गया है।

मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा एक सूक्ष्म शरीर धारण करता है। इस तथ्य की पुष्टि पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा की गयी शोध से भी हो चुकी है। यथा—अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक खोखले पारदर्शी सिलण्डर की हवा निकाल कर उसको मन्द प्रकाश वाले एवं कोहरे की तरह व्याप्त हो जाने वाले एक रासायनिक घोल से पूरित करके जब उसमें रखे गये चूहे और मेंढक को विद्युत के स्पर्शाघात से निष्प्राण किया तो उसकी तद्वत् आकृति कुहरे में तैरने लगी थी। ऐसे वैज्ञानिक प्रयोग से मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर धारण की पुष्टि होती है। पुनश्च, जो मनुष्य मृत्यु के कुछ ही क्षणों के पश्चात् उसी शरीर में पुनर्जीवित हुए हैं, उनके अनुभवों के आधार पर तथा प्लेञ्चेट आदि के माध्यम से आहूत प्रेतात्माओं से परलोक के विषय में पूछे गये प्रश्नों के कुछ उत्तरों से भी यह विदित होता है कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का जीवात्मा अनेकत्र विचरण करता है तथा अपने मृत पूर्वजों सहित नाना दृश्यों का अवलोकन करता है । स्मृतियों और पुराणों में भी यह बतलाया गया है कि नित्य वेदाध्ययन करने, शौचाचार परायण एवं तपश्चर्या निरत रहने तथा प्राणियों के प्रति द्रोह (हिंसा, द्वेष)नहीं करने वाले मनुष्य को अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है—

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च। अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम्।।

मनु ४।१४८

अहर्निशं श्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात्। अद्रोहवत्या बुद्ध्या च पूर्वजन्म स्मरेद् द्विजः।।

स्कन्द ३।२।६६।६१

सम्पूर्ण विश्व में अनेकत्र कतिपय जातिस्मर अर्थात् पूर्वजन्म की स्मृति रखने वाले मनुष्यों के द्वारा

अपने पूर्वजन्म के पारिवारिक जनों तथा अपने साथ घटित घटनाओं का जैसा यथार्थ विवरण दिया जाता है, उसके आधार पर अब अनेक पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा का पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आधुनिक युग के मनोविदों और वैज्ञानिकों की शोध से प्राप्त निष्कर्ष से प्राचीन भारतीय मनीषियों के इस दर्शन की पुष्टि होती है कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा अपने कर्मानुसार सूक्ष्म शरीर धारण करके स्वर्ग या नरक भोगता है और तत्पश्चात् उसका पुनर्जन्म होता है या उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। मृत्यु के पश्चात् पापी मनुष्यों के जीवात्मा को यमदूत अति कष्टप्रद याम्यमार्ग से ले जाकर यमराज की सभा में उपस्थित करते हैं। वराहपुराण के अनुसार यमराज की सभा में मनु, प्रजापति, पराशर, अत्रि, औद्दालकि, आपस्तम्ब, बृहस्पति, इन्द्र, गौतम, शङ्खलिखित, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह आदि दिवङ्गत धर्मशास्त्रज्ञ मुनिगण यम के साथ मिल कर पापियों के लिए दण्ड निश्चित करते हैं।[1] गरुडपुराण के अनुसार भी पापियों के लिए दण्ड (यातना) निश्चित करने में अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, दक्ष, क्रतु, अङ्गिरा, जमदग्नि, भृगु, पुलस्त्य, अगस्त्य, नारद आदि ऋषिगण यमराज को परामर्श देते हैं। (द्र0 गरुड सारोद्धार १४/३६-४१) उस सभा में इस संसार से दिवङ्गत होने के पश्चात् गये हुए अनेक राजा जैसे उशीनर, सुधन्वा, वृषपर्वा, जयद्रथ, रजि, सहस्रजित्, कुक्षि, दृढधन्वा, रिपुञ्जय, युवनाश्व, दन्तवक्त्र, नाभाग, रिपुमङ्गल, करन्धम, धर्मसेन, परमर्द, परान्तक आदि भी धर्माधर्म विषयक विचार में यम का सहयोग करते हैं।[2] उस सभा के सभासदों में धार्मिक, सदाचारी और प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले न्यायप्रिय राजाओं के अतिरिक्त स्वधर्म का सम्यक् पालन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भी पहुँचते हैं।[3] वहाँ पापियों के लिए उनके पापकर्म के अनुरूप यातना निश्चित की जाती है। तत्पश्चात् उन्हें उन्हीं यमदूतों के साथ तत्काल भूलोक में भेज दिया जाता है, जहाँ अन्त्येष्टिकर्ताओं के द्वारा दशाह पर्यन्त किये गये पिण्डदान से उनके सूक्ष्म शरीर के दशगात्र (दश अङ्ग-प्रत्यङ्ग) बनते हैं। गरुडपुराण (वैङ्कटश्वर प्रेस संस्करण) के धर्मकाण्ड (प्रेतखड) ६।६६-७१ में कहा गया है कि प्रथम दिन के पिण्डदान से प्रेतात्मा की भोगदेह का मूर्धा (शिर) बनता है, दूसरे दिन के पिण्डदान से ग्रीवा (गरदन) और स्कन्ध (कन्धे) बनते हैं, तीसरे दिन के पिण्ड से हृदय बनता है, चौथे दिन के पिण्ड से पीठ बनती है, पाँचवें दिन के पिण्ड से नाभि, छठें दिन के पिण्ड से कटि-प्रदेश, सातवें दिन के पिण्ड से गुप्ताङ्ग, आठवें दिन के पिण्ड से ऊरू (जाँघें) और नौवें दिन के पिण्ड ते तालू और पैर बनते हैं तथा दशवें दिन के पिण्डदान से उसकी क्षुधा उत्पन्न होती है—

प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते।।
ग्रीवास्कन्धौ दिव्तीये च तृतीये हृदयं भवेत्।। चतुर्थेऽह्नि भवेत् पृष्ठं पञ्चमे नाभिरेव च।
षट्सप्तमे कटीगुह्यमूरू चाप्यष्टमे तथा। जानू पादौ च नवमे दशमेऽह्नि क्षुधा भवेत्।।

गरुड उ० ५/६६-६८; गरुड,धर्मकाण्ड प्रे० ख० ६।६६-७१।

एकादशाह और द्वादशाह के दिन दिये जाने वाले पिण्डों को प्रेत आहार रूप में ग्रहण करता है—

एकादशाहे द्वादशाहे प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम।

गरुडपुराण (धर्मकाण्ड, प्रे० ख०) ६।७४।

---

१. द्रष्टव्य—वराहपुराण १६७।१६-१६

२. स्कन्द ४।८।६५-६७; गरुड सारोद्धार१४/४२-४५

३. द्रष्टव्य — स्कन्द ४।८।६१-६४।

तेरहवें दिन यमदूत उसको यमलोक की महायात्रा के लिए ले चलते हैं—

त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते च महापथे।

गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रे० ख० ६।७६।।

मृत व्यक्ति के निमित्त दश दिन तक प्रदत्त श्राद्ध-पिण्ड से दशगात्र पूर्ण हो जाने पर पापी व्यक्ति तो यमलोक में जाकर यातना भोगता है, किन्तु धार्मिक व्यक्ति स्वर्ग में सुख प्राप्त करता है—

अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मभिः। भुङ्क्तेऽथ पापकृद् दुःखं सुखं धर्माय संगतः।।

अग्नि २०३/३।

यह स्मरणीय है कि मृत्यु के पश्चात् केवल मनुष्यों को ही प्रेत रूप में कुछ काल तक रहना पड़ता है और मात्र उन्हीं के प्रेतावस्था वाले जीवात्मा को यमदूतों के द्वारा यमलोक में ले जाया जाता है। अन्य प्राणी मृत्यु के पश्चात् न तो प्रेत होते हैं और न उन्हें यमलोक में ले जाया जाता है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी योनियों के प्राणी मृत्यु के पश्चात् पुनः किसी योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। केवल मनुष्य के ही प्रेत होने की बात सुनी जाती है, अन्य जन्तुओं के विषय में ऐसी कोई बात नहीं सुनी गयी है—

मनुष्या एव गच्छन्ति यमलोकं न चापरे। ७२ मरणानन्तरं तेषां जन्तूनां योनिपूरणम्।

तथा हि प्रेता मनुजाः श्रूयन्ते नान्यजन्तवः।।

स्कन्द १।२।५०।७२-३

पशु-पक्षी आदि नाना तिर्यक् योनियों के प्राणी मृत्यु के पश्चात् वायु रूप में विचरण करते हुए पुनः किसी योनि-विशेष में जन्म ग्रहण हेतु उस योनि के गर्भ में आ जाते हैं। केवल मनुष्यों को ही मृत्यु के अनन्तर यमलोक में ले जाया जाता है—

मरणानन्तरं प्रोक्तं तिरश्चां गर्भसंभवम्। वायुभूताश्च ते गर्भं प्रपद्यन्ते न संशयः।

मनुष्यस्तु मृतो राम नीयते यममन्दिरम्।।

विष्णुधर्मोत्तर २।११३।८-६।

अपने शुभ और अशुभ कर्म का अच्छा-बुरा परिणाम भी केवल मनुष्य को ही इहलोक में और परलोक में भी भोगना पड़ता है। अपने शुभ अथवा अशुभ कर्मों के फलस्वरूप केवल मनुष्य को ही स्वर्ग या नरक भोगना पड़ता है, अन्य प्राणियों को नहीं। शुभ अथवा अशुभ कर्मों का सञ्चय भी केवल मनुष्य ही करते हैं अर्थात् केवल मनुष्यों के ही शुभाशुभ कर्मों का पाप-पुण्य सञ्चित होता रहता है। अतः मात्र मनुष्य ही अपने कर्मों के फलभोग हेतु यमलोक में जाते हैं अन्य योनियों के प्राणी वहाँ नहीं जाते, क्योंकि वे तो मनुष्य योनि में किये गये अपने कर्मों का फल ही तत्तत् योनियों में जन्म लेकर भोगते हैं—

मनुष्याः प्रतिपद्यन्ते स्वर्गं नरकमेव वा। नैवान्ये प्राणिनः केचित् सर्वं ते फलभोगिनः।।

शुभानामशुभानां वा कर्मणां भृगुनन्दन। सञ्चयः क्रियते लोके मनुष्यैरेव केवलम्।।

तस्मान् मनुष्यस्तु मृतो यमलोकं प्रपद्यते। नान्यः प्राणी महाभाग फलयोनौ व्यवस्थितः।।

विष्णुधर्मोत्तर २।११३।४-६

किन्तु मृत्यु के पश्चात् सभी मनुष्यों के लिए यमलोक में जाना अनिवार्य नहीं है। केवल पापात्मा ही वहाँ ले जाये जाते हैं। पुण्यात्माओं को भगवान् विष्णु के पार्षद स्वयं आकर अपने साथ ले जाते हैं और वे मार्ग

में धर्मराज की सभा में होते हुए उनके द्वारा सम्मानित होकर स्वर्ग-लोक अथवा वैकुण्ठ लोक को जाते हैं। यमलोक में कौन-कौन नहीं जाते-इसकी चर्चा अनेकत्र की गयी है। उदाहणार्थ — जो मनुष्य धर्म और अधर्म विषयक शास्त्रोक्त विधानों(आदेशों) का पालन करते हैं, वे यमलोक में नहीं जाते—

ये नियोगांश्च शास्त्रोक्तान् धर्माधर्मविमिश्रितान्। पालयन्तीह ये वैश्य! न ते यान्ति यमालयम्।।

पद्म ३।३१।३६।।

जो मनुष्य मन, वचन और कर्म से किसी भी स्थिति में दूसरों को पीडा नहीं पहुँचाते वे भी यमलोक में नहीं जाते—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। परपीडां न कुर्वन्ति न ते यान्ति यमालयम्।।

पद्म ३।३१।२५

जो मनुष्य इष्ट धर्मों (यज्ञ, देवोपासना, अतिथि सत्कार आदि) तथा पूर्त धर्मों (कूप, वापी, तालाब, धर्मशाला, देवालय आदि का निर्माण और वृक्षारोपण आदि धर्मों) को करते हैं, नित्य पञ्चयज्ञों को करते हैं और स्वभावतः दयालु हैं, वे यमलोक में नहीं जाते—

इष्टापूर्तरता ये च पञ्चयज्ञरताश्च ये। दयान्विताश्च ये नित्यं नेक्षन्ते ते यमालयम्।।

पद्म ३।३१।४२।।।

मृत्यु के पश्चात् सत्पुरुष अपने कर्मानुसार स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि आत्मज्ञ, शौचाचार के नियमों का पालन करने वाला, दान्त (आत्मसंयम वाला), तपस्वी, जितेन्द्रिय, धर्म-कर्म करने वाला, वेदविद्या का ज्ञाता और सात्त्विक-प्रवृत्ति का मनुष्य देवयोनि को प्राप्त करता है—

आत्मज्ञः शौचवान् दान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः।
धर्मकृद् वेदविद्यावित् सात्त्विको देवयोनिताम्।।

याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१३७।

महाभारत में कहा गया है कि योगयुक्त होकर प्राणत्याग करने वाला संन्यासी और शत्रु को पीठ दिखाये विना निर्भीक होकर युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त करने वाला योद्धा- केवल ये ही दो ऐसे मनुष्य हैं, जो कि सूर्यमण्डल का भी भेदन करके आगे निकल जाते हैं—

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः।।

उद्योगपर्व ३३।६१।

उपर्युक्त पुण्यत्माओं को अपने-अपने सत्कर्मानुरूप दिव्य-लोकों की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य पापी, अधर्मी, दुराचारी, निर्दय, क्रूर और दुष्ट होते हैं, वे अपने दुष्कर्मों का दुष्परिणाम याम्य मार्ग में तो भोगते ही हैं तत्पश्चात् वे नरक में यातना पाते हैं और तदनन्तर नाना कुत्सित योनियों में जन्म प्राप्त करते हैं। सत्कर्म करने वाला सदाचारी मनुष्य अपने धर्माचरण के प्रभाव से इस संसार में तो सुखी और यशस्वी रहता ही है और साथ ही परलोक में भी और अगले जन्म में भी वह सुखी रहता है। दुष्कर्म करने वाले पापी और अधर्मी मनुष्य इस लोक में भी निन्दित और दुःखी रहते हैं और मृत्यु के पश्चात् यमलोक की महायात्रा में भी वे दुःख पाते हैं तथा तदनन्तर विभिन्न नरकों में कठोर यातनाएँ भोगने के पश्चात् नाना कष्टप्रद योनियों में पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं। प्रत्येक मनुष्य को शुभाशुभ कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। कर्म उसका साथ नहीं छोड़ता।कर्म-फल की

अपरिहार्यता को अनेक प्रकार से व्यक्त किया गया है। मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म सदा उसके साथ रहता है और उसके पीछे-पीछे चलता है—

शेते सह शयानेन पुरा कर्म यथाकृतम्। उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति।।

पद्म २।८१।५६।

जिसने पूर्वकाल में जोभी शुभाशुभ कर्म किया हो वह उसका फल भी उसी प्रकार भोगता है—

येनैव यद् यथा पूर्वं कृतं कर्म शुभाशुभम्। स एव तत्तथा भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मनः।।

स्कन्द ६।६१।१८

जिसने जिस काल में, जिस देश में, जिस वय (अवस्था) में जैसा शुभाशुभ कर्म किया हो वह उसी प्रकार की स्थिति में तदनुरूप फल भोगता है—

यस्मिन् काले च देशे च वयसा यादृशेन च। कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते।।

स्कन्द १।२।५०।५५।

जिस मनुष्य को अपने कर्मानुसार सुख या दुःख का भोग जहाँ पर करना है, उसको दैव मानो बलात् रज्जु से वष्टित (रस्सी से बाँध) कर वहाँ पहुँचा ही देता है—

येन यत्रोपभोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेव वा। स तत्र बद्ध्वा रज्ज्वेव बलात् तत्रैव नीयते।।

पद्म २।८१।५६-६०; स्कन्द ६।६१।२५

कर्मों का फल मनुष्य की भावना के अनुसार ही मिलता है। उसको कुछ कर्मों का फल इसी लोक में मिल जाता है, कुछ का परलोक में और शेष कुछ ऐसे भी कर्म हैं, जिनका फल इहलोक और परलोक में भी भोगना ही पड़ता है—

विपाकः कर्मणां प्रेत्य केषाञ्चिदिह जायते। इव वामुत्र वैकेषां भावस्तत्र प्रयोजनम्।।

याज्ञवल्क्य स्मृति ३।१३३

उपर्युक्त वचनों में जो तथ्य है, वह त्रिकालिक सत्य है। दुष्कर्म करने वाले दुष्ट मनुष्य अपने जीवन काल में नाना आधि-व्याधियों से पीडित होते हैं, समाज में निन्दित जीवन व्यतीत करते हैं और यदा-कदा राजदण्ड भी भोगते रहते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें परलोक में यमराज के द्वारा दण्डित किया जाता है और नाना नारकीय यातनाएँ भोगने के पश्चात् वे अपने शेष पाप का दुष्परिणाम अगले जन्मों में भी भोगते हैं।

जो मनुष्य आत्मज्ञानी हैं, किन्तु प्रमादवश पाप कर बैठते हैं, उनको उनका गुरु प्रायश्चित्त करवा कर अनुशासित करता है। जो दुष्ट मनुष्य अपने पापों का स्वयं प्रायश्चित्त नहीं करते उन्हें राजा दण्डित करता है। किन्तु जो प्रच्छन्न पापी हैं, जिनके पाप का ज्ञान न तो गुरु को हो पाता है और न राजा को, उनके पापों की सूचना चित्रगुप्त के आलेखों में दिव्य व्यवस्था से अङ्कित हो जाती है और परिणामतः उन्हें यमराज के द्वारा दण्डित किया जाता है—

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्। इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।।

उद्योगपर्व ३५/७१; गरुड उ० ३४/८; स्कन्द १/१/१८/१०४; ५/३/८५, ५/३/१५६; वसिष्ठस्मृति २०/३; आङ्गिरसस्मृति उ.६/७, नारद स्मृति प्रकीर्णविवादपद १०८; ब्र० पद्म २/६७/१०८-६; शिव ५/६/५६; भविष्य १/१६१/२६; ४/५/८१

जिस प्रकार विभिन्न धातुओं को धमन भट्टियों में तब तक तपाया जाता है, जब तक कि उनका मल पिघल कर छूट नहीं जाता, उसी प्रकार पापियों को नरकों में तब तक यातना दी जाती है, जब तक कि तीव्र सन्ताप के कारण उनके दुष्कर्म-जनित दुष्प्रभाव दूर नहीं होते— **स्वमलप्रक्षयाद् यद्वदग्नौ धाम्यन्ति धातवः। तथैव जीविनः सर्वे आकर्म प्रक्षयाद् भृशम्।।**

नारदपुराण पूर्वार्द्ध ३२।३८, तु० शिवपुराण ५।६।२

नारकीय यातनाओं का जो भयावह वर्णन पुराणों में किया गया है, उसे हृदयङ्गम करके जन सामान्य की पापकर्म में प्रवृत्ति बहुत कुछ नियन्त्रित हो जाती है। भारतीय मनीषियों का यह दृढ विश्वास रहा है कि मनुष्य के द्वारा इहलोक में किये गये कर्मों का फल उसके जीवात्मा को परलोक में और बहुधा अगले जन्मों में भी भोगना पड़ता है—

इह चैव कृतं यत्तु तत्परत्रोपभुज्यते। वराहपुराण १६२।२२।

पापकर्म का जो फल मनुष्य को अगले जन्म में भोगना पड़ता है, उसके विषय में नास्तिकों, पापियों और मूर्खों के मन में सन्देह रहता है। अतः उनके सन्देह को दूर करने के लिए धर्मग्रन्थों में कर्मविपाक के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।[1]

मनुष्य के पाप कर्मों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है-मानसिक, वाचिक और कायिक। मानसिक पापकर्म में पराये धन को पाने की इच्छा करना, दूसरे के अनिष्ट की कामना और वितथाभिनिभेश (किसी वस्तु के विषय में निरर्थक उत्सुकता या आग्रह की भावना) ये तीन मानस पाप हैं। कठोर वचन बोलना, अनृत बोलना, चुगली करना और अप्रासंगिक एवं असम्बद्ध बातें करना— ये चार प्रकार के मानस पाप हैं। परकीय धन का चोरी से या बलात् अपहरण, विधि-विधान रहित हिंसा और परस्त्री का सेवन-ये तीन कायिक (शारीरिक) पापकर्म हैं —

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ।।५
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः। असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्।।६
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्।।

-मनु १२/५-७; नारद उ० ४३/६१-६३; द्र० अनु० पर्व १३/१-६; स्कन्द १/२/४१/१६-२१;

शारीरिक पापकर्म के प्रभाव से मनुष्य नरक भोगने के पश्चात् पुनर्जन्म में स्थावर (वृक्ष-लता आदि) की योनि में जन्म पाता है, वाचिक पापकर्म के फलस्वरूप पशु-पक्षियों की योनि में जाता है और मानसिक पापकर्म के फलस्वरूप अगले जन्म में अन्त्यज योनियों में जन्म पाता है—

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः। वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्। मनु १२/९
अन्त्य-पक्षि-स्थावरतां मनोवाक्कायकर्मजैः। दोषैः प्रयाति जीवोऽयं भवं योनिशतेषु च।।

याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१३१

इस विषय में विशेष विवरण याज्ञवल्क्य स्मृति ६/१३४-१३६ तथा पुराणों में देखा जा सकता है।

किस पाप के परिणाम स्वरूप किस योनि में जन्म हो सकता है, इस विषय में मनुस्मृति १२।३९-७४, याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१३२-१४०, मार्कण्डेयपुराण १५।१-३९, ब्रह्मपुराण २१७।३२-११२ स्कन्दपुराण १।२।५१।४-३२, पद्मपुराण तथा शातातप स्मृति १-५ अध्याय आदि में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

१. किन्त्वत्र नास्तिकाः पापाः सन्दिह्यन्तेऽल्पचेतनाः। तेषां निःसंशयकृते वद कर्मफलं हि यत्।। स्कन्द १।२।५१।२।

पूर्वजन्म के पापी जब नरक भोगने के पश्चात् भूलोक में मनुष्य रूप में जन्म पाते हैं, तो वे अपने पूर्वजन्म के अतिशय पापी स्वभाव के कारण वर्तमान जन्म में भी कुछ न कुछ पापाचरण करते ही हैं। पुराणकारों ने कुछ पापियों के पापाचरण की प्रवृत्ति का विश्लेषण करके यह तथ्य प्रतिपादित किया है कि वे नरक भोगने के पश्चात् पृथिवी में मनुष्य रूप में पुनर्जन्म पाये हुए हैं। यथा— मार्कण्डेय पुराण (१५।४०-४२) में कहा गया है कि दूसरों की निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरों के मर्मों पर आघात करना, निष्ठुरता, निर्दयता, परस्त्रीसेवन, परधनहरण, अशुचिता, देवताओं की निन्दा करना, धोखा देकर दूसरों को ठगना, कृपणता, मनुष्यों की हत्या करना और अन्य जो भी आचरण निषिद्ध हैं, उन्हीं में प्रवृत्त होना और उन दुष्कर्मों की प्रशंसा करना— ये सब नरक भोग कर मनुष्य योनि में जन्म पाये हुए पापियों के लक्षण हैं—

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मोपघट्टनम्। नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम्।।४०।।

परस्वहरणाशौचं देवतानां च कुत्सनम्।

निकृत्य वञ्चना नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः।।४१।।

यानि च प्रतिषिद्धानि तद्वृत्तिं च प्रशंसताम्। उपलक्षणानि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु।।४२।।

मार्कण्डेय पुराण १५।४०-४२।

इसके विपरीत जो सद्गुण-सम्पन्न, सदाचारी जन अपने पूर्वजन्म के सत्कर्मों के फलस्वरूप पृथिवी में पुनः मनुष्य योनि में जन्म पाते हैं, उनकी पहचान उनके चारित्रिक गुणों से होती है। उदाहरणार्थ — प्राणियों के प्रति दया, सद्व्यवहार, परलोक सुधारने के लिए सत्कर्म करने की प्रवृत्ति, सत्य और हितकर वचन बोलना, वेद को प्रमाण मानना, गुरुजनों, देवों, ऋषियों और सिद्ध-साधु-सन्तों की पूजा, सत्सङ्गति, सत्कर्मों में निरन्तर संलग्न रहना, मित्रता की भावना रखना और सद्धर्मों का आचरण आदि गुण स्वर्ग भोग कर पृथिवी में मानव रूप में पुनर्जन्म पाये हुए मनुष्यों के लक्षण समझने चाहिए (द्र० मार्कण्डेय पुराण १५।४३-५)।

स्वर्ग और नरक जाने वाले मनुष्यों के अतिरिक्त कतिपय ऐसे प्रबुद्ध मनुष्य भी होते हैं, जो अपने ज्ञान, अपनी साधना अथवा अपनी भक्ति के बल पर ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं या दूसरे शब्दों में जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा जाते हैं और सदा के लिए उन्हें मुक्ति मिल जाती है। पुराणों में अनेकत्र यह कहा गया है कि जिस मनुष्य को ब्रह्मज्ञान हो जाय या मृत्यु के पश्चात् जिसके निमित्त गया में श्राद्ध कर दिया जाय या जो गोग्रह अर्थात् दस्युग्रस्त गायों को उन दस्युओं से मुक्त कराने में वीरगति को प्राप्त हो गया हो तथा जो कुरुक्षेत्र में जाकर निवास करे उसको मुक्ति सुलभ होती है—

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा।।

इसके अतिरिक्त अयोध्या, मथुरा, माया (हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जैन) और द्वारका— इन सात पुरियों में मोक्ष-साधना के उद्देश्य से निवास करने वाला मनुष्य (यदि वहाँ रह कर कोई वज्रलेप बन जाने वाला पाप नहीं करता तो वह) भी मोक्ष पा सकता है।

प्रेतयोनि – स्वर्ग या नरक में जाने वाले एवं पुनर्जन्म पाने वाले मनुष्यों के अतिरिक्त कुछ अभागे मनुष्य ऐसे भी होते हैं, जो सद्गति के अभाव में प्रेतयोनि में ही पड़े रह जाते हैं। ये प्रेतयोनि के जीव देवयोनियों

में गिनाये गये भूत, पिचाश आदि से भिन्न होते हैं[1]। जिन मनुष्यों की मृत्यु होने पर दाहसंस्कार आदि क्रियाएँ नहीं होती और जो पलंग आदि (अन्तरिक्ष) में देहत्याग करते हैं, वे निश्चयमेव प्रेत होते हैं (गरुड उ० 10/41)। प्राय: वे ही मनुष्य मृत्यु के पश्चात् प्रेत होते हैं, जिनकी अन्त्येष्टि सम्यक् रूप से नहीं हो पाती और जिनके क्रिया-कर्म करने वाले पुत्रादि के अभाव में सपिण्डीकरण श्राद्ध तक के कृत्य नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त जिन मनुष्यों का निधन अपमृत्यु के कारण होता है, वे भी प्रेत होते हैं—

अपमृत्युहतानां च सर्वेषामपि देहिनाम्। प्रेतत्वं जायते..........।। स्कन्द ६।२२२।२३

दुर्मृत्युना मृतो यश्च स प्रेतो जायते नरः। गरुड ध०का०प्रे०ख० २२/६८

अपमृत्यु से जिनका निधन होता है उनकी चर्चा करते हुए यह कहा गया है कि विष-भक्षण से, अग्नि से जलने से, आत्म-हत्या करने से, दाढ वाले पशुओं, यथा— सिंह आदि के द्वारा काटे या खाये जाने से अथवा सींग वाले पशुओं के द्वारा मारे जाने से जिन मनुष्यों की मृत्यु होती है, वे नि:सन्देह प्रेत होते हैं (स्कन्द ६।२०४।२४)। जो योद्धा युद्ध में शत्रु को पीठ दिखाने पर मारे जाते हैं, वे भी प्रेत होते हैं—

असंशयं सहस्राक्ष हता युद्धे पराङ्मुखाः। प्रेतत्वं यान्ति ते सर्वे देवा वा मानुषा यदि।।

स्कन्द ६।२०४।२३।

जो योद्धा युद्ध में पलायन करते हुए पराङ्मुख होने पर मारे जाते हैं अथवा शत्रु के सम्मुख रहते हुए भी उसके द्वारा मारे जाते समय दीनता प्रकट करते हैं अथवा शत्रु के प्रहारों से जर्जर हो जाने पर पश्चाताप करते हैं, वे भी प्रेत होते हैं—

पराङ्मुखाश्च हन्यन्ते पलायनपरायणाः। ते भवन्ति नराः प्रेता एतदाह पितामहः।।१९
सम्मुखा अपि ये दैन्यं हन्यमाना वहन्ति च। पश्चात्तापं च वा कुर्युः प्रहारैर्जर्जरीकृताः।।२०
तेऽपि प्रेता भवन्तीह मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।

स्कन्द ६।२२२।१९-२१

अन्य मनुष्यों में से भी कुछ ऐसे पापी हैं, जो मृत्यु के पश्चात् प्रेत हो सकते हैं। जो मनुष्य स्वधर्म में स्थित नहीं रहते, जो विभिन्न प्रकार के पाप करते हैं, जो अनैतिक और अन्यायी हैं और धर्मविरुद्ध आचरण करते हैं, वे भी मृत्यु के पश्चात् प्रेत होते हैं[2]। जो मनुष्य कामचारी या स्वेच्छाचारी होकर या लोभवश अपने कुलधर्म अथवा देशधर्म को त्याग कर अन्यथा आचरण करता है या अन्य कुल का अथवा अन्य देश का धर्म अपना लेता है, वह मृत्यु के पश्चात् प्रेत होता है—

कुलदेशोचितं धर्मं यस्त्यक्त्वान्यत् समाचरेत्।
कामाद् वा यदि वा लोभाद् स प्रेतो जायते नरः।।

स्कन्द ६।१८।३६।

---

१. देवयोनियों में विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष(राक्षस), गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूत—ये दश गिनाये गये हैं -द्र.अमरकोश 1/1/11)

प्रेतयोनि को इससे भिन्न समझना चाहिए।

२. विकर्मणा भवेत् प्रेतो विधिहीनक्रियस्तथा। गरुड उ० १०/३६

जो मनुष्य अपने हितैषी गुरु तथा धर्मोपदेश करने वाले आचार्य के हितावह वचनों का पालन नहीं करता वह मृत्यु के पश्चात् प्रेत होता है—

गुरोर्धर्मोपदेष्टुश्च नित्यं हितमभीप्सतः। न करोति वचस्तस्य स प्रतो जायते नरः।।

वराह १७२।४६।

जो मनुष्य सनातन धर्म को त्याग कर पाषण्डाश्रम अर्थात् बौद्धमठादि में चला जाता है, जो मद्यपान, परस्त्रीगमन अथवा वृथा मांसभक्षण (देवों एवं पितरों को अर्पित मांस के अतिरिक्त जिह्वा-लौल्य से मांसभक्षण) करता है, वह भी प्रेत होता है—

पाषण्डाश्रमसंस्थश्च मद्यपः पारदारिकः। वृथा मांसरतो नित्यं स च प्रेतोऽभिजायते।।

वराह १७२।४४।

पतित व्यक्ति का अन्न खाने पर उस अन्न के उदर में रहते हुए जो मनुष्य मर जाता है, वह प्रेत होता है—

पतितान्नेन भुक्तेन जठरस्थेन यो मृतः। पापमृत्युवशाद् यो वै स प्रेतो जायते नरः।

गरुड उ० १२/६४

द्र०- शूद्रान्नेनोदरस्थेन ब्राह्मणो म्रियते यदि। स प्रेतो जायते राजन् यद्यपि स्यात् षडङ्गवित्।।

स्कन्द ६।१८।३८ तु० पद्म १।३२।४७; वराह १७४।४२-४३।

जो ब्राह्मण उनका यज्ञ कराता है, जिनका नहीं कराना चाहिए और जिनका यज्ञ कराना चाहिए उनका नहीं कराता और शूद्र की सेवा में संलग्न रहता है, वह प्रेत होता है—

अयाज्ययाजनाच्चैव याज्यानां च विवर्जनात्। रतो वै शूद्रसेवायां स प्रेतो जायते नरः।।

वराह १७२।४८; तु० पद्म १।३२।४६।

जो मनुष्य देवपूजन एवं पितृतर्पण आदि किये विना तथा भृत्यों (भरण-पोषण योग्य आश्रितों और सेवकों) को भोजन दिये विना स्वयं भोजन करता है, वह भी प्रेत होता है—

अकृत्वा देवकार्यं च तथा च पितृतर्पणम्। योऽश्नात्यदत्त्वा भृत्येभ्यः स प्रेतो जायते नरः।।

स्कन्द ६।१८।३।

जो ब्राह्मण असत्पुरुषों से प्रतिग्रह करता है (दान लेता है), जो मनुष्य नास्तिक प्रवृत्ति वाला है और जो शास्त्रों एवं गुरुजनों के आदेश के विरुद्ध आचरण करता है, वह प्रेत होता है—

असद्भ्यः प्रतिगृह्णाति नास्तिकाभिरतः सदा। विरुद्धकारी सततं स प्रेतो जायते नरः।।

वराह १७२।५०।

ब्रह्महत्यादि पञ्च महापातकों और गोहत्यादि उपपातकों से लिप्त पापियों को भी प्रेतयोनि में जाना पड़ता है। यह कहा गया है कि ब्रह्महत्या करने वाला, गोहत्या करने वाला, स्तेन (चोर), सुरापान करने वाला, गुरुपत्नीगामी, भूमिहर्ता और कन्या का अपहरण करने वाला मनुष्य प्रेत होता है—

ब्रह्महा गोघ्नकः स्तेनः सुरापो गुरुतल्पगः। भूमिकन्यापहर्ता च स प्रेतो जायते नरः।

पद्मपुराण १।३२।५१ ; तु० वराह १७२।४८।

देवता, ब्राह्मण एवं गुरु के धन का अपहरण करने वाला भी प्रेत होता है। (वराहपुराण १७२।४५)।

न्यास (धरोहर) के रूप में रखे गये धन को हड़पने वाला, मित्र से द्रोह करने वाला, शूद्र के द्वारा बनाया हुआ भोजन खाने वाला, विश्वासघाती ओर कूट-कपट करने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है—

न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् शूद्रपाकरतः सदा। विस्रम्भघाती कूटस्थः स प्रेतो जायते नरः।।

पद्म १।३२।५०।

देवता, स्त्री, गुरु तथा विशेषतः ब्राह्मण से धन उधार लेकर भी जो मनुष्य उनको नहीं लौटाता वह भी प्रेत होता है—

देवस्त्रीगुरुवित्तानि यो गृहीत्वा न यच्छति। विशेषाद् ब्राह्मणस्वं च स प्रेतो जायते नरः।।

स्कन्द ६।१८।३५।

परस्त्री में आसक्त, परधनहर्ता, परनिन्दा से सन्तुष्ट होने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है—

परदाररतश्चैव परवित्तापहारकः। परापवादसन्तुष्टः स प्रेतो जायते नरः।।

स्कन्द ६।१८।३२

दूसरों को विपत्ति-ग्रस्त देख कर सन्तुष्ट होने वाला, कृतघ्न, गुरुतल्पी, एवं देवों और विप्रों को दोष लगाने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है (स्कन्द ६।१८।३६)।

ब्राह्मणों को धन का दान दिये जाते समय विघ्न उपस्थित करने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है—

दीयमानस्य वित्तस्य ब्राह्मणेभ्यः सुपापकृत्। विघ्नमाचरते यस्तु स प्रेतो जायते नरः।।

स्कन्द ६।१८।३७

अनेक ब्राह्मणों में विभक्त करने के लिये प्राप्त साझी दक्षिणा को जो नास्तिक भाव वाला प्रमुख ब्राह्मण स्वयं अपने पास गुप्त रख लेता है, वह प्रेत होता है—

सामान्यां दक्षिणां लब्ध्वा एक एव निगूहति। नास्तिकीभावनिरतः स वै प्रेतोऽभिजायते।।

पद्म १।३२।५२

जो मनुष्य अपने माता-पिता, भाईयों, बहिन और पुत्र को किसी दोष के विना भी त्याग देता है, वह प्रेत होता है—

मातरं पितरं भ्रातृन् भगिनीं सुतमेव च। अदृष्टदोषांस्त्यजति स प्रेतो जायते नरः।।

गरुड ध०का०प्रे०ख० २२/७२; गरुड उ० १२/६७; पद्म १।३२।४६; तु० वराह १७२।४७।

जो मनुष्य अपनी कुलीन, विनीत और सुख देने वाली निर्दोष पत्नी को त्याग देता है, वह भी प्रेत होता है—

कुले जातां विनीतां च धर्मपत्नीं सुखोच्छ्रिताम्। यस्त्यजेद् दोषनिर्मुक्तां से प्रेतो जायते नरः।।

स्कन्द ६।१८।३४

जो मनुष्य धन की लालसा से कन्या-शुल्क लेकर अपनी कन्या का विवाह वृद्ध, नीच, कुरूप और शीलरहित पुरुष के साथ कर देता है, वह भी प्रेत होता है—

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः।।

स्कन्द ६।१८।३३; तु० वराह १७४।४६।

नग्नों (वेद प्रामाण्य का तथा वैदिक धर्म का विरोध करने वालों) कापालिकों (कपालधारी शैवों)

तथा पाषण्डियों (बौद्धों) के साथ उठने-बैठने तथा भोजन करने वाला और पाषण्डी, मद्यप, परदारगामी एवं जो मांस देवादि को अर्पित नहीं किया गया हो उसका भक्षण करने वाला तथा देवद्रव्य और ब्राह्मण-द्रव्य का हरण करने वाला मनुष्य भी प्रेत होता है— (वराह १७४।४३-४६)।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि पुराणकारों की दृष्टि में प्रायः सभी प्रकार के अधर्मी, चरित्रहीन, अनैतिक और अन्यायी मनुष्य प्रेत हो सकते हैं। यह उल्लेखनीय है कि धर्मकृत्यों को करने वाले, क्षमाशील, दयालु और सद्गुणी धर्मात्मा जन प्रेत नहीं होते। इस प्रकार के विचार वराह पुराण आदि में विस्तार से प्रतिपादित हैं[1]।

मृतात्मा के प्रेत होने के प्रमाण – यदि कोई मृतात्मा अपने पारिवारिक जनों, सम्बन्धियों या परिचितों को स्वप्न में दिखलायी पड़े तो यह समझना चाहिए कि उसकी न तो मुक्ति हुई है, न स्वर्ग या नरक में गमन और न सद्गति और न अन्य किसी योनि में उसका जन्म हुआ है। उसके स्वप्न में दिखलायी देने का तात्पर्य यही है कि वह मृतात्मा अभी प्रेत रूप में ही पड़ा हुआ है (द्र० स्कन्द ६।२२६।४-६)।

प्रेत-पीडा–

जो मृतात्मा सद्गति के अभाव में प्रेत ही रह जाता है, वह स्वतः तो कष्ट (क्षुधा-पिपासादि रूप कष्ट) भोगता ही है, साथ ही वह पारिवारिक जनों को भी अनेकविध पीडा देता है। प्रेत के द्वारा दी जाने वाली कुछ पीडाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। जिस परिवार में स्त्रियों का ऋतुकाल निष्फल बीते और सन्तान उत्पन्न न होने के फलस्वरूप वंशवृद्धि न हो पाय, जहाँ अल्प आयु में ही लोगों की मृत्यु हो जाय, अकस्मात् जीविका के साधन का उच्छेद (वृत्ति हरण) हो जाय, पारिवारिक सदस्यों की समाज में कोई प्रतिष्ठा न रहे, अकस्मात् घर में आग लग जाय, घर में नित्य कलह हो, पारिवारिक जनों को मिथ्या कलङ्क लगे या उन पर मिथ्यादोषारोपण हो, राजयक्ष्मा (क्षयरोग) आदि रोग उत्पन्न होते हों, प्रत्यत्न-पूर्वक अर्जित धन को व्यापार या कुसीद (ब्याज) आदि में लगाने पर वह समूल नष्ट हो जाय, सुवृष्टि होने पर भी कृषि नष्ट हो जाय, वाणिज्य से वृत्ति (आजीविका) ही नष्ट हो जाय और घर में पत्नी सदा प्रतिकूल आचरण करे तो यह मानना चाहिए कि वह परिवार प्रेतपीडा से ग्रस्त है।[2] प्रेतपीडा के कतिपय अन्य लक्षण गरुडपुराण उ० (काशी सं०) १०/१३-३८

१. एकरात्रत्रिरात्रेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।। ३४
व्रतैरभ्युदितः पूतो न प्रेतो जायते नरः। मिष्टान्नपानदाता च सततं श्रद्धयान्वितः ।। ३५
यतीनां पूजको नित्यं न प्रेतो जायते नरः। त्रिरग्निः पंच चैकं वा प्रति नित्यं तु पोषयेत्।।३६
सर्वभूतदयालुश्च न प्रेतो जायते नरः। देवातिथिषु पूजासु गुरुपूजासु नित्यशः।। ३७
रतौ वै पितृपूजायां न प्रेतो जायते नरः। जितक्रोधो ह्यमात्सर्यस्तृष्णासङ्गविवर्जितः।। ३८
क्षमायुक्तो दानशीलो न प्रेतो जायते नरः। एकादशीं सितां कृष्णां सप्तमीं वा चतुर्दशीम्।। ३९
उपवासपरो नित्यं न स प्रेतोऽभिजायते। गां ब्राह्मणं च तीर्थानि पर्वतांश्च नदीस्तथा।। ४०
देवांश्च वन्दते नित्यं न प्रेतो जायते हि सः। वराह १७४/३४-४१

२. लिङ्गेन पीडया प्रेतोऽनुमन्तव्यो नरैः सदा। ५६ वक्ष्यामि पीडास्ता राजन्! या वै प्रेतकृता भुवि। ऋतुः स्यादफलः स्त्रीणां यदा वंशो न वर्द्धते।। ५७ म्रियन्ते चाल्पवयसः सा पीडा प्रेतसम्भवा। अकस्मात् वृत्तिहरणमप्रतिष्ठा जनेषु वै।।५८।। अकस्माद् गृहदाहः स्यात् सा पीडा प्रेतसम्भवा। स्वगेहे कलहो नित्यं स्याच्च मिथ्याभिशंसनम्।। ५९ राजयक्ष्मादिसंभूतिः सा पीडा प्रेतसम्भवा। अपि स्वयं धनं मुक्तं प्रयत्नादनवे पथि।। ६० नैव लभ्येत नश्येत सा पीडा प्रेतसम्भवा। सुवृष्टौ कृषिनाशः स्याद् वाणिज्याद् वृत्तिनाशनम्।। ६१ कलत्रं प्रतिकूलं स्यात् सा पीडा प्रेतसम्भवा। गरुडपुराण, धर्मकाण्ड प्रे० ख० ९।५६-६२।

तथा गरुड ध०का०प्रे०ख० २२/१५-४१ में गिनाये गये है। हीनजाति से सम्बन्ध करने तथा हीनकर्म और अधर्म में प्रवृत्ति प्रेतपीडा के कारण बतलायी गयी है (गरुड ध०का० प्रे० ख० २०/२८; गरुड उ० १०/२८)।

कुछ परिवारों का स्तर इतना निम्न और दूषित होता है कि उनके सदस्यों के दुराचरण से तथा उनके घरों के दूषित वातावरण से आकर्षित होकर प्रेत वहाँ अपना डेरा डाल देते हैं और उन घरों की सारी श्री-सम्पदा को अदृश्य रूप से निगल डालते हैं। उदाहरणार्थ— यह कहा गया है कि जिस घर में मार्जन (सफाई) और उपलेपन (लिपाई-पोताई अथवा पक्के फर्श वाले घर में झाडू-पोछा) नहीं होता तथा जहाँ कोई माङ्गलिक कृत्य नहीं होते तथा अतिथि-सत्कार आदि नहीं होता वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

यस्मिन्नो मार्जनं हर्म्ये क्रियते नोपलेपनम्। न माङ्गल्यं न सत्कारः प्रेता भुञ्जन्ति तत्र हि।।

स्कन्द ६।१८।२२।

जिन घरों में कफ और मल-मूत्र पड़ा रहता है और शौच (स्वच्छता) का ध्यान नहीं दिया जाता वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

श्लेष्ममूत्रपुरीषेण योजितानि समन्ततः। गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै।।

वराह १७२।२८; द्र0 पद्म १।३२।३३।

जिन घरों में भाण्ड-पात्र आदि बिखरे पड़े रहते हैं, जूठा-मीठा बिखरा रहता है और जिन घरों में नित्य कलह होता है, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

यानि प्रकीर्णभाण्डानि प्रकीर्णोच्छेषणानि च। नित्यं च कलहो यत्र प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै।।

वराह १७२।३०; द्र0 पद्म १।३२।३४।

जिन घरों में टूटे-फूटे पात्रों का परित्याग नहीं किया जाता (अर्थात् जहाँ टूटे बरतनों को घर से बाहर दूर नहीं फेंका जाता) और वेद मन्त्रों की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

भिन्नभाण्डपरित्यागो यत्र न क्रियते गृहे। न च वेदध्वनिर्यत्र प्रेता भुञ्जन्ति तत्र हि।।

स्कन्द ६।१८।२३।

इस प्रकार के वचनों के विशेष विवरण गरुड उ० १२/५२-५८; गरुड ध०का० प्रे० ख० २२/५५-६२ में देखे जा सकते हैं।

जिन घरों के लोग गुरुजनों को सम्मान नहीं देते, स्त्रीजित हैं एवं क्रोध और लोभ के वशीभूत हैं, वहाँ प्रेत अपना भोजन पाते हैं—

गुरवो नैव पूज्यन्ते स्त्रीजितानि गृहाणि च। क्रोधलोभगृहीतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै।।

पद्म १। ३२। ३६।

जिन घरों के लोग जिर्लज्ज हैं और जिन घरों में रहने वाले लोग होम और व्रत-उपवास आदि नहीं करते वहाँ प्रेत भोजन करते हैं—

चित्तलज्जाविहीनानि होमहीनानि यानि च। व्रतैश्चैव विहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै।।

पद्म १। ३२। ३५।

बलि-वैश्वदेव, हवन-पूजन आदि निमित्तक मन्त्रोच्चार एवं दान आदि धर्मों तथा गुरुजनों के पूजन से

रहित घरों और स्त्रीजित अर्थात् स्त्री के वशीभूत (जोरू के गुलाम) पुरुषों वाले घरों में प्रेत भोजन करते ही हैं (वराह १७२। २६)।

जिन घरों में लोग वैश्वदेव किये विना और भोजन का 'अग्र' (चार ग्रास) भिक्षुक आदि को प्रदान किये विना भोजन करते हैं, वहाँ प्रेत अपना भोजन पाते हैं—

भुज्यते यत्र भूपाल वैश्वदेवं विना नरैः। पाकस्याग्रमदत्त्वा च प्रेता भुञ्जन्ति तत्र च।।

स्कन्द ६। १८। २०।

जिस घर में भोजन के समय स्त्रियाँ कलह करती हैं, वहाँ भोजन भले ही मन्त्रों से अभिमन्त्रित और औषध तुल्य ही क्यों न हो उस भोजन के तत्त्व को तो प्रेत ही ग्रहण करते हैं—

भोज्यकाले गृहे यत्र स्त्रीणां युद्धं प्रवर्तते। अपि मन्त्रौषधीप्रायं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र हि।।

स्कन्द ६।१८।१६।

जो अन्न केश, मूत्र, श्लेष्मा (कफ) आदि से युक्त हो और (द्विजातियों का) जो भोजन हीनजाति के मनुष्य के द्वारा संस्पृष्ट (छूया गया) हो वह अन्न प्रेतों का आहार हो जाता है—

यदन्नं केश-मूत्रादिश्लेष्मादिभिरुपप्लुतम्। हीनजात्यैश्च संस्पृष्टं तदस्माकं प्रजायते।।

स्कन्द ३।१८।२८।

पर्वकाल के अतिरिक्त अन्य कालों में यदि रात्रि में श्राद्ध या दान किया जाता है, तो वह भी प्रेतों का ही भोजन बनता है—

रात्रौ यत्क्रियते श्राद्धं दानं वा पर्ववर्जितम्। तत्सर्वं नृपशार्दूल प्रेतानां भोजनं भवेत्।।

स्कन्द ३।१८।२१।

जिस श्राद्ध की दक्षिणा न दी गयी हो, जिसके पूरे कृत्य सम्पादित न किये गये हों और जिस श्राद्ध को रजस्वला स्त्री देख ले वह श्राद्ध प्रेतों को प्राप्त होता है—

यच्छ्राद्धं दक्षिणाहीनं क्रियाहीनं च वा नृप। तथा रजस्वला-दृष्टं तदस्माकं प्रजायते।।

स्कन्द ६।१८।२४।

जिस श्राद्ध में हीनाङ्ग या अधिकाङ्ग ब्राह्मण अथवा वृषलीपति ब्राह्मण भोजन करते हैं, वह श्राद्ध भी प्रेतों को प्राप्त होता है—

हीनाङ्गा ह्यधिकाङ्गा वा यस्मिञ्छ्राद्धे द्विजातयः। भुञ्जते वृषलीनाथास्तदस्माकं प्रजायते।।

स्कन्द ६।१८।२५

जिस घर में श्राद्ध काल में आया हुआ अतिथि यथोचित सत्कार पाये विना चला जाता है, वहाँ किये गये उस श्राद्ध से एकमात्र प्रेतों को ही तृप्ति प्राप्त होती है—

अतिथिर्यत्र संप्राप्तः श्राद्धकाल उपस्थिते। अपूजितो गृहाद् याति तच्छ्राद्धं प्रेततृप्तिदम्।।

स्कन्द ६।१८।२६।

गरुडपुराण में यह स्पष्ट कहा गया है कि जिस कुल में प्रेत-दोष होता है, उस कुल में कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता। उस कुल में मनुष्यों की मति, प्रीति, रति, बुद्धि और लक्ष्मी (धन-सम्पदा) नष्ट हो जाती है और तीसरी से लेकर पाँचवी पीढी तक आते-आते उनके वंश का ही नाश हो जाता है। प्रेत-पीडा से ग्रस्त व्यक्ति प्रत्येक जन्म में दरिद्र और निर्धन रहता है।

प्रेतदोषः कुल यस्य सुखं तत्र न विद्यते। मतिः प्रीती, रतिर्बुद्धिर्लक्ष्मीः पञ्चविनाशनम्।।
तृतीये पञ्चमे पुंसि वंशच्छेदोऽभिजायते। दरिद्रो निर्धनश्चैव पापकर्मा भवे भवे।।

गरुड उ० १०/४३-४४ गरुड ध०का०प्रे०ख० २०/४५-४६।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेतत्व किसी भी स्थिति में और किसी के लिए भी हितावह नहीं होता। प्रेतात्माएँ स्वयं भी कितनी उत्पीडित और पिपासाकुल रहती हैं, इसकी चर्चा पुराणों में अनेकत्र प्राप्त होती है। प्रेत अपने पारिवारिक जनों के सुख, स्वास्थ्य, समृद्धि और प्रगति के शोषक होते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य के शरीर-त्याग के पश्चात् उसको प्रेतत्व से मुक्त करने के लिए शास्त्र-विहित अन्त्येष्टि क्रिया से लेकर सपिण्डीकरण पर्यन्त सभी कृतों को विधि-विधानों के अनुसार अवश्य सम्पादित करना चाहिए।

शरीर त्याग के पश्चात् सिद्ध-योगी, वीतराग संन्यासी और धर्मात्मा ईश्वर-भक्तों को भले ही तत्काल मोक्षलाभ हो जाय, किन्तु जन-सामान्य तो प्रेतत्व की ही स्थिति को प्राप्त करता है। अतः निधनोपरान्त जन सामान्य को प्रेतत्व से मुक्ति दिलाने के लिए उसकी अन्त्येष्टि आदि करना परम आवश्यक है। ब्रह्मदण्ड आदि नाना कारणों से निधन को प्राप्त होने वाले मनुष्य तथा जिन मनुष्यों के दाह-संस्कार आदि कृत्य न हुए हों वे श्राद्धादि सत्क्रियाओं के पात्र नहीं होते अर्थात् उनके निमित्त यदि श्राद्धादि कृत्य किये भी जायें, तो वे उन्हें प्राप्त नहीं हो सकते—

ब्रह्मदण्डादियुक्तानां येषां नास्त्यग्निसत्क्रिया।
श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित्।।

कात्यायनस्मृति २४।२६।

अतः जिसकी मृत्यु कहीं दूर विदेश में होती है या जिसकी मृत्यु के पश्चात् उसका शव उपलब्ध नहीं हो पाता उसका पुतला बनाकर उसी का दाहसंस्कार किया जाता है। प्रचीन ऋषि-मुनियों का मत है कि प्रेतलोक का एक दिन मनुष्यलोक के एक दिन के समान ही होता है। अतः प्रेतात्मा के भोजन के निमित्त एक वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन अन्न प्रदान करना चाहिए—

मानुषेण दिनेनैव प्रेतलोके दिनं स्मृतम्। तस्माद् दिने दिने देयं प्रेतायान्नं च वत्सरम्।।

स्कन्द १/२/५०/८६

अन्त्येष्टि प्रभृति उत्तम-षोडशी पर्यन्त सभी कृत्यों की परिसमाप्ति सपिण्डीकरण श्राद्ध में होती है। मृत व्यक्ति अपने जीवन काल में भले ही महान् धर्मात्मा और तपस्वी ही क्यों न रहा हो, किन्तु जब तक उसका सपिण्डीकरण नहीं हो जाता तब तक वह प्रेतत्व से मुक्त नहीं हो सकता —

यावत् सपिण्डता नैव तावत् प्रेतः स तिष्ठति। अपि धर्मसमोपेतस्तपसापि समन्वितः।
एतस्मात् कारणात् प्रोक्ता मुनिभिस्तु सपिण्डता।।

स्कन्द ६।२२६।१-२।

यह सपिण्डीकरण मृत्यु तिथि से एक वर्ष पश्चात् ही होता है। द्वादशाह को सपिण्डीकरण करने की स्थिति में भी प्रेत का प्रेतत्व एक वर्ष तक बना ही रहता है। इस विषय में स्मृतियों और पुराणों में सम्यक्तया विचार किया जा चुका है[1]। सपण्डिकरण हो जाने पर एक वर्ष पश्चात् मृतात्मा प्रेतदेह को त्याग कर भोगदेह को प्राप्त करता है—

१. अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य वर्षाच्च वा कृतम्। प्रेतत्वमपि तस्यापि प्रोक्तं संवत्सरं ध्रुवम्।। स्कन्दपुराण १।२।५०।६४।
अर्वाक्संवत्सराद् यस्य सपिण्डीकरणं भवेत। प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सरं नृप।। निर्णयसिन्धु पृ०४२४ में अग्निपुराण के वचन रूप में उद्धृत।

कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात् परम्।। १२
प्रेतदेहं समुत्सृज्य भोगदेहं प्रपद्यते। भोगदेहावुभौ प्रोक्तावशुभाशुभसंज्ञितौ।।

अग्नि ३६६/१२-१३

अतः यह स्पष्ट है कि दाह-संस्कार से लेकर सपण्डिकरण श्राद्ध पर्यन्त समस्त कृत्यों के सम्पन्न हो जाने पर ही मृतक को प्रेतत्व से मुक्ति मिलती है। प्रेतात्मा को प्रेतत्व से मुक्ति दिलाने हेतु शास्त्रविहित विधानानुसार समस्त पारलौकिक कृत्यों को यथाविधि और श्रद्धापूर्वक करना आवश्यक है। पारलौकिक कृत्यों को यदि श्रद्धापूर्वक नहीं किया जाता तो वे निरर्थक और व्यर्थ हो जाते हैं, उनका कोई फल मृतक को नहीं मिलता—

अश्रद्धया हतं सर्वं यत्कृतं पारलौकिम्। पद्म ३।२६।३४।

हमारे धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि मृतात्मा भले ही देवलोक में हो अथवा यातना-स्थान (नरक) में हो (अथवा किसी योनि विशेष में जन्म ग्रहण चुका हो)श्रद्धापूर्वक किया गया श्राद्ध उसे अवश्य प्राप्त होता है—

देवत्वे यातनास्थाने प्रेतः श्राद्धं कृतं लभेत्। अग्नि १५७।३१

जो श्राद्ध आदि कर्म शुचि (शुद्ध) रहकर तथा एकचित्त (अर्थात् तन्मय) होकर श्रद्धापूर्वक और विधि-विधान से किया जाता है, वही अनन्त फलदायी होता है—

श्रद्धाविधिसमायुक्तं यत् कर्म क्रियते नृभिः। शुचिभिरेकचित्तैश्च तदनन्त्याय कल्पते।।

बृहत्पराशरस्मृति २।१५१।

जो कृत्य अश्रद्धा से और विधि-विधान का की उपेक्षा करते हुए और अन्यमनस्क होकर किया जाता है, उसका फल असुरों को प्राप्त होता है—

विधिहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धयापि च। तद्धरन्त्यसुरास्तस्य मूढत्वादकृतात्मनः।।

बृहत्पराशरस्मृति २।१५०।

धन, यौवन और विद्या के मद से मदान्ध एवं अति मूढ और नास्तिक मनुष्य धार्मिक कृत्यों और विशेषतः पारलौकिक कृत्यों में आस्था नहीं रखते और ऐसे कृत्यों की आलोचना भी करते हैं। ऐसे अभागे मनुष्यों को लक्ष्य करके ही स्कन्दपुराण में यह कहा गया है कि मूर्खों, नास्तिकों, कृतघ्नों और हतबुद्धि पापात्माओं के द्वारा ही धार्मिक कृत्यों के विषय में अविश्वास उत्पन्न करने वाले कुतर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

मूढानां नास्तिकानां च कृतघ्नानां हतात्मनाम्। धर्मकृत्येषु जायन्ते अविश्वासस्य युक्तयः।।

स्कन्द २।२।३६।३७

ऐसे लोग स्वयं को आवश्यकता से अधिक चतुर समझ बैठते हैं और शास्त्रीय मर्यादाओं एवं धार्मिक विधि-विधानों की आलोचना तो करते ही हैं साथ ही उनका अतिक्रमण भी करते हैं। ऐसे लोगों को आङ्गिरस् स्मृति के इन वचनों का मनन कर लेना चाहिए कि कलियुग में भी मनुष्य को अति अन्याय, अतिद्रोह, अतिक्रूरता, सामाजिक मर्यादाओं और सदाचार का अति उल्लंघन और शास्त्रीय विधानों का अति अनादर नहीं करना चाहिए और न किसी को करने देना चाहिए। अन्यथा वैसा करने वाला, करवाने वाला, वैसा करने की प्रेरणा देने वाला और उसमें नियोजित करने वाला तथा उसके सहायक सहित वे सभी पापी शीघ्र नष्ट हो जाते

हैं—

अत्यन्यायमतिद्रोहमतिक्रौर्यं कलावपि। अत्यक्रमं चात्यशास्त्रं न कुर्यान्नापि कारयेत्।।१८
यदि कुर्वीत मोहेन सद्यो विलयमेष्यति। कर्ता कारयिता चापि प्रेरकश्च नियोजकः।।१९
तत्सहायश्च सर्वे ते लयमेष्यन्ति सत्वरम्।

आङ्गिरसस्मृति, पूर्वाङ्गिरसम् १८-१९ (स्मृतिसन्दर्भ भाग ५ पृ० २९५९)।

अशास्त्रविहित आचरण करने वाले अनाचारी और अधर्मी मनुष्य निश्चित रूप से आत्मपतन की दिशा में अग्रसर होते हैं। यह कहा गया है कि अधर्माचरण में संलग्न और धर्ममार्ग से विचलित मनुष्य की आयु नष्ट हो जाती है, उसका अपयश फैलता है, उसका सौभाग्य क्षीण हो जाता है, उसकी दुर्गति होती है तथा उसके स्वर्गस्थ पितरों का भी पतन हो जाता है—

आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यति दुर्गतिं व्रजेत्।
स्वर्गाच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम्।।

स्कन्द ३।३।१५।३५

मनुष्य का हृदय स्वजनों के निधन के समय अति संवेदनशील हो जाता है। उस समय वह जीवन की क्षणभङ्गुरता से प्रभावित रहता है। ऐसे समय में वह धर्म, ज्ञान और वैराग्य की बातें तथा जीवात्मा के जन्म-मरण, स्वर्ग-नरक और पुनर्जन्म की बातों को सहजतया सुन और समझ सकता है और ऐसे अवसर पर जो बातें उसके हृदय में बैठ जवेंगी उनका प्रभाव उसके मन में चिरकाल तक स्थित रह सकेगा। अतः तत्कालोचित उपदेशों का सार-संग्रह विशेषतः प्रकृतिस्थ मनुष्य द्वारा आचरणीय धर्म का उपदेश, आतुर द्वारा करणीय कृत्यों का निर्देश, अन्त्येष्टि-विधान, अशौचकाल-निर्णय, जीवात्मा के गर्भ में प्रवेश और पाञ्चभौतिक एवं पारमार्थिक-शरीर विषयक ज्ञान, स्वर्ग-नरक एवं पुनर्जन्म आदि विषयक ज्ञान तथा अन्य भी अनेक प्रासंगिक एवं आनुषंगिक विषयों का एकत्र संकलन गरुडपुराण के सारोद्धार में परम बुद्धिचातुर्य से किया गया है। मृत्युजनित अशौचकाल में इस पुराण का श्रवण सनातन धर्म के अनुयायी हिन्दू समाज में प्रायः सर्वत्र होता है। जहाँ इसको सुनाने की परम्परा उच्छिन्न है, वहाँ के विद्वान् पण्डितों से भी मेरा यह आग्रह है कि वे इसके श्रवण की व्यवस्था वहाँ अवश्य करावें। इस गरुडपुराण के श्रवण-मनन मात्र से भी भारत के सुदूर अञ्चलों तक के गाँवों की जनता को भी अनेक दार्शनिक, आयुर्वेदिक, योगशास्त्रीय और धर्मशास्त्रीय तथ्यों का ज्ञान सहजमेव हो जाता है। इस पुराण के श्रवण के अनेक दृष्टादृष्ट लाभ हैं। अतः इसे अवश्यमेव सुनना सुनाना चाहिए।

डॉ0 महेश चन्द्र जोशी
सत्यलोक-5, निकट सैण्ट लारेन्स
स्कूल
हल्द्वानी-263139

विषयानुक्रमणिका

❖❖❖

गरुड़महापुराणम्

पूर्व खण्डम्

॥ श्रीः॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

गरुड़पुराणम्

पूर्व खण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

शौनकादि ऋषिगण के प्रश्नोत्तर में सूत का गरुड़पुराण विषयक कथा का प्रारम्भ करना

अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम्।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिमिमलममायं सर्वगं वन्द एकम्॥१॥

नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा॥२॥

सूतं पौराणिकं शान्तं सर्वशास्त्रविशारदम्। विष्णुभक्तं महात्मानं नैमिषारण्यमागतम्॥३॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन उपविष्टं शुभासने। ध्यायन्तं विष्णुमनघं तमभ्यर्च्यास्तुवन् कविम्॥४॥

शौनकाद्या महाभागा नैमिषीयास्तपोधनाः। मुनयो रविसङ्काशाःशान्ता यज्ञपरायणाः॥५॥

जो प्रभु जन्म तथा जरा से रहित, अनन्त, ज्ञानरूप, महान्, निर्मल, अनादि, पाञ्चभौतिक देहरहित, इन्द्रियरहित, सर्वभूतव्यापक, मायारहित हैं, उन सर्वत्रगामी एकमात्र हरि तथा प्रभु हर की वन्दना मैं करता हूं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, गणाधिपति गणेश, देवी सरस्वती को मैं मनसा-वाचा-कर्मणा सतत् प्रणाम करता हूं! एक दिन की घटना है—पुराणज्ञ, शान्त, सर्वशास्त्रज्ञ, विष्णु के परम भक्त, महात्मा सूत तीर्थयात्रा करते हुये नैमिषारण्य आये। वे उत्तम आसन पर आसीन होकर विष्णुचिन्तन में मग्न थे। तभी वहां तपस्वी, यज्ञतत्पर, शान्त, सूर्यसमप्रभ तेजयुक्त, महाभाग शौनकादि ऋषिगण ने कवि सूत ऋषि की अर्चना तथा उनका स्तव किया॥१-५॥

ऋषय ऊचुः

सूत जनासि सर्वं त्वं पृच्छामस्त्वामतो वयम्। देवतानां हि को देव ईश्वरः पूज्य एव कः॥६॥

को ध्येयः को जगत्स्त्रष्टा जगत्पाति च हन्ति कः।
कस्मात् प्रवर्त्तते धर्मो दुष्टहन्ता च कः स्मृतः॥७॥

तस्य देवस्य किं रूपं जगत्सर्गः कथं मतः। कैर्व्रतैः स तु तुष्टः स्यात् केन योगेन वाप्यते॥८॥
अवताराश्च के तस्य कथं वंशादि सम्भवः। वर्णाश्रमादिधर्माणां कः पाता कः प्रवर्त्तकः॥९॥
एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते। नारायणकथाः सर्वाः कथयास्माकमुत्तमाः॥१०॥

ऋषिगण ने कहा—हे सूत! आपको सर्वतत्त्व विदित है। इस निमित्त हमने आपसे जिज्ञासा किया है कि देवताओं का देवता कौन है? ईश्वर कौन है? किनकी पूजा की जाये? ध्यान का वास्तविक अधिकारी कौन है? कौन इस समग्र दृश्यमान रूप जगत् की सृष्टि-स्थिति-प्रलय का नियामक है? किसके द्वारा सनातन धर्म का प्रवर्त्तन किया गया है? कौन दुष्टदलन करते हैं? इन प्रभु का रूप क्या है? इस जगत् की सृष्टि किस प्रकार से हो सकी? वे प्रभु किस प्रकार के व्रतानुष्ठान द्वारा प्रसन्न होते हैं? किस प्रकार के योग के द्वारा इन देवता को प्राप्त किया जा सकता है? वे जगत्कर्त्ता अपने किन रूपों द्वारा अवतार ग्रहण करते हैं? उनकी वंश परम्परा किस प्रकार से संभव हो पाती है? आप इस उत्तम नारायण कथा का विस्तार से वर्णन करिये॥६-१०॥

सूत उवाच

पुराणं गारुडं वक्ष्ये सारं विष्णुकथाश्रयम्।
गरुडोक्तं कश्यपाय पुरा व्यासाच्छ्रुतं मया॥११॥
एको नारायणो देवो देवानामीश्वरेश्वरः। परमात्मा परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतो भवेत्॥१२॥
जगतो रक्षणार्थाय वासुदेवोऽजरोऽमरः। स कुमारादिरूपेण अवतारान् करोत्यजः॥१३॥
हरिः स प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः। चचार दुश्चरं ब्रह्मन् ब्रह्मचर्यमखण्डितम्॥१४॥

सूतजी कहते हैं—अब मैं गरुड़पुराण का विस्तार से वर्णन करता हूं। यह पुराण समस्त पुराणों में शीर्ष स्वरूप (प्रधान) तथा विष्णुकथा से ओतप्रोत है। पूर्वकाल में इस पुराण को गरुड़ ने कश्यप से कहा था। इसे मैंने व्यासदेव से सुना था। एकमात्र नारायण ही इन समस्त देवगण के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। वे ही परमात्मा परम ब्रह्म हैं। उनके द्वारा ही जगत् की सृष्टि-स्थिति तथा लय किया जाता है। ये वासुदेव अजर-अमर हैं। वे ही जगत् की रक्षा हेतु कुमार प्रभृति अनेक रूपों में अवतरित हो जाते हैं। हरि ने सर्वाग्र में कुमार का अवतार ग्रहण किया था। इस अवतार के समय उन प्रभु वासुदेव ने कौमार अवस्था में रहकर अत्यन्त दुश्चर अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत को सम्पन्न किया था॥११-१४॥

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम्। उद्धरिष्यन्नुपादत्ते यज्ञेशः शौकरं वपुः॥१५॥
तृतीयमृषिसर्गं तु देवर्षित्यमुपेत्य सः। तन्त्रं सात्वतमाचष्टे नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥१६॥
नरनारायणो भूत्वा तुर्ये तेपे तपो हरिः। धर्मसंरक्षणार्थाय पूजितः स सुरासुरैः॥१७॥
पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
प्रोवाच सूरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम्॥१८॥
षष्ठमत्रेरपत्यत्वं दत्तः प्राप्तोऽनसूयया। आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान्॥१९॥

द्वितीय अवतार में भूतभावन हरि ने जगत् रक्षार्थ रसातलगता पृथिवी का उद्धार करने के मन्तव्य से वराह शरीर वरण किया था। तृतीय अवतार में देवर्षि का रूप लेकर सात्वत तन्त्र का विस्तार किया था। इस तन्त्र में निष्काम तन्त्र का प्रतिपादन किया गया है। भगवान् का चतुर्थ अवतार है नर-नारायण अवतार। यह अवतार लेकर इन्होंने धर्म की रक्षा हेतु कठोर तपःश्चरण किया था। उनकी अर्चना सुर-असुर दोनों द्वारा की गयी थी। पांचवां अवतार है भगवान् कपिल रूप से। इस अवतार में कपिल देव ने कलि द्वारा किये गये धर्म विप्लव को समाप्त करने हेतु अपने शिष्य आसुरि को सभी तत्वों के निर्णय रूप सांख्य का उपदेश प्रदान किया था। छठा है दत्तात्रेय का अवतार। इस अवतार हेतु देवदेव ने अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के गर्भ से जन्म लिया था। उनका नाम दत्तात्रेय प्रसिद्ध है। इन दत्तात्रेय ऋषि ने प्रह्लाद आदि को तथा अलर्क को आन्वीक्षिकी विद्या का उपदेश प्रदान किया था॥१५-१९॥

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत।
सत्यामात्यैः सुरगणैर्यष्ट्वा स्वायम्भुवान्तरे॥२०॥
अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः। दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम्॥२१॥

भगवान् ने स्वायम्भुव मन्वन्तर में आकूति के गर्भ से तथा रुचि प्रजापति के औरस से यज्ञ नाम के साथ जन्म लिया था। इन्होंने सत्य आमात्य तथा सुरगण के साथ यज्ञ सम्पन्न किया था। भगवान् ने अपने अष्टम अवतार में रानी मेरु देवी के गर्भ से तथा राजा नाभि के औरस से उरुक्रम नाम से जन्म लिया था। इसमें उन्होंने सर्वाश्रम नमस्कृत जो उत्तम नियम थे, उनका प्रदर्शन किया॥२०-२१॥

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः। दुग्धैर्महौषधैर्विप्रास्तेन संजीविताः प्रजाः॥२२॥

नवम अवतार के रूप में भगवान् श्रीहरि ने ऋषियों के अनुरोध के अनुसार पृथुराज नाम से जन्म लिया था। उन्होंने पृथिवी आदि का दोहन करके महौषधि रूप दुग्ध से प्रजाजन को जीवन प्रदान किया था॥२२॥

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषान्तरसंप्लवे। नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम्॥२३॥
सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम्। दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः॥२४॥
धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च।
आप्याययत् सुरानन्यान् मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया॥२५॥

चाक्षुष मन्वन्तर में जब महाप्रलय उपस्थित हो गया था, उस समय भगवान् ने मस्त्यावतार लेकर वैवस्वत मनु को नौका पर बैठाकर उनकी रक्षा किया था। यह प्रभु का दशम अवतार था। अपने एकादश अवतार में भगवान् जनार्दन ने देव-दानव द्वारा समुद्र मन्थन के अवसर पर कूर्मरूपी होकर अपने पृष्ठ देश पर मन्दर पर्वत को धारण किया था। भगवान् ने द्वादश अवतार के रूप में भिषग् श्रेष्ठ धन्वन्तरी रूप से अवतार ग्रहण किया था। भगवान् का त्रयोदश अवतार था मोहिनी अवतार। जब धन्वन्तरी अवतार में भगवान् अमृत कलश के साथ प्रकट हुये थे, तब उनसे दानवों ने अमृतकलश का हरण कर लिया। उस समय मोहिनी अवतार द्वारा उन्होंने दानवों से अमृत कलश प्राप्त करके उससे देवताओं को आप्यायित किया था॥२३-२५॥

चतुर्दशे नारसिंहं चैत्य दैत्येन्द्रमूर्जितम्। ददार करजैरुग्रैरेरकां कटकृद्यथा॥२६॥
पञ्चदशं वामनको भूत्वाऽगादध्वरं बलेः। पादत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम्॥२७॥

चतुर्दश अवतार लेकर श्रीहरि ने नृसिंह रूप धारण किया था। जैसे कटकारी व्यक्ति (चटाई बुनने वाला) ऐरका को काटता है (ऐरका एक प्रकार का तृण जिससे चटाई बनती है) उसी प्रकार नृसिंह देव ने अपने तीक्ष्ण नखों के बल से मद से मत्त हिरण्यकशिपु दैत्य का वक्षःस्थल क्षत-विक्षत करके उसका वध कर दिया था। पंचदश अवतार में भगवान् ने वामनावतार लिया था। नारायण वामनरूपी होकर बलि के यज्ञ में गये थे, जहां उन्होंने तीन पग मात्र भूमि मांगी थी। इस प्रकार उन्होंने अपने तीन पग से त्रैलोक्य माप कर ग्रहण किया तथा इस प्रकार से बलि का दमन किया और देवताओं को उनके-उनके स्थान पर स्थापित करके उनको उनका स्वाधिकार पूर्ववत् प्रदान किया॥२६-२७॥

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान्।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम्॥२८॥

षोडश अवतार में भगवान् परशुराम रूप में अवतरित हुये थे। उन्होंने जब राजाओं को ब्राह्मणों से द्रोहरत देखा, तब वे कुपित हो गये। उन्होंने इक्कीस बार वसुन्धरा को क्षत्रियरहित कर दिया था॥२८॥

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखां दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥२९॥
नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया। समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे कार्याण्यतः परम्॥३०॥
एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम्॥३१॥
ततः कलेस्तु सन्ध्यान्ते सम्मोहाय सूरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति॥३२॥
अथ सोऽष्टमसन्ध्यायां नष्टप्रायेषु राजसु।
भविता विष्णुयशसो नाम्ना कल्की जगत्पतिः॥३३॥

नारायण सप्तदश अवतार के समय सत्यवती के गर्भ से तथा पराशर के औरस से व्यासरूपेण अवतीर्ण हुये थे। उन्होंने देखा कि कालधर्म से मनुष्य अल्पबुद्धि होते जा रहे हैं। तब उन्होंने वेदरूपी महावृक्ष की शाखायें बनाईं। अष्टादश अवतार में श्रीहरि ने देवगण के कार्य निर्वाहार्थ समुद्र निग्रहादि परम कार्य किया था। अपने उन्नीसवें तथा बीसवें अवतार में नारायण ने बलराम तथा कृष्ण नाम से अवतीर्ण होकर पृथिवी के भार को हर लिया था। अपने इक्कीसवें अवतार में नारायण कलियुग की सन्ध्या के अन्त में देवद्वेषी लोगों का सम्मोहन करने के लिये मगध देश में जिनपुत्र बुद्ध नाम से आविर्भूत होंगे। कलियुग की सन्ध्या का अवसान होने पर जब राजा लोग समाप्त हो जायेंगे, तब जगत्पति विष्णु कल्कि नाम से विष्णुयशा ब्राह्मण के यहां अवतीर्ण होंगे। यह भगवान् का बाईसवां अवतार होगा॥२९-३३॥

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
मनुवेदविदो ह्याद्याः सर्वे विष्णुकलाः स्मृताः॥३४॥

तस्मात्सर्गादयो जाताः संपूज्याश्च व्रतादिना।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च।
पुराणं गारुडं व्यासः पुराऽसौ माऽब्रवीदिदम्॥३५॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

हे ब्राह्मणों! हरि के कतिपय अवतारों को कहा। सच कहा जाये तब सत्वनिधि हरि के असंख्य अवतार होते रहते हैं। उन मनु आदि से ही जगत् की सृष्टि-स्थिति तथा संहार होता है। तभी व्रत, नियम प्रभृति से उनकी पूजा करे। यह गरुड़पुराण आठ हजार आठ सौ श्लोक समन्वित पुराण है। पूर्वकाल में व्यासदेव ने मुझसे यह पुराण कहा था॥३४-३५॥

॥प्रथम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मा-रुद्र संवाद, गरुड़ द्वारा अमृत लाना तथा माता की दासित्व से मुक्ति, गरुड़ द्वारा कश्यप से पुराण का इतिवृत्त कथन

ऋषय ऊचुः

कथं व्यासेन कथितं पुराणं गारुडं तव।
एतत्सर्वं समाख्याहि परं विष्णुकथाश्रयम्॥१॥

ऋषिगण ने कहा—हे सूत! व्यासदेव ने आपसे किस कारण से गरुड़ द्वारा कहे गये विष्णु कथा से परिपूर्ण इतिवृत्त का वर्णन किया था, उसे हम लोगों से प्रकाशित करिये॥१॥

सूत उवाच

अहं हि मुनिभिः सार्द्धं गतो बदरिकाश्रमम्। तत्र दृष्टो मया व्यासो ध्यायमानः परेश्वरम्।
तं प्रणम्योपविष्टोऽहं पृष्टवान्हि मुनीश्वरम्॥२॥

सूत उवाच

व्यास ब्रूहि हरे रूपं जगत्सर्गादिकं ततः।
मन्ये ध्यायसि तं यस्मात्तस्माज्जानासि तं विभुम्॥३॥

एवं पृष्ठो यथा प्राह तथा विप्रा निबोधत॥४॥

श्री सूत ने कहा—एक बार मैं मुनिगण के साथ बदरिकाश्रम गया। वहां जाकर मैंने देखा कि भगवान् व्यास परमेश्वर के ध्यान में तन्मय हैं। मैंने उन मुनीश्वर को सविधि प्रणति निवेदन किया तथा वहां आसनासीन होकर उनसे जिज्ञासा किया—"हे व्यासदेव! आप आज परमात्मा श्रीहरि के रूप तथा उनके द्वारा कृत सर्व जगत् सृष्टि आदि प्रकरणों का विस्तार से वर्णन करिये तथा इस प्रकार मेरी श्रवणेच्छा को पूर्ण करिये। आप इन परमपुरुष श्रीहरि का ध्यान करते रहते हैं। आपको उनका स्वरूप अनजाना नहीं है।" हे विप्रवृन्द! जब मैंने गुरु व्यासदेव से यह प्रश्न किया, तब उनका जो उत्तर था, उसे यथावत् कह रहा हूं। आप सब लोग श्रवण करिये॥२-४॥

व्यास उवाच

शृणु सूत प्रवक्ष्यामि पुराणं गारुडं तव। सह नारददक्षाद्यैर्ब्रह्मा मामुक्तवान्यथा॥५॥

वेदव्यास ने कहा—हे सूत! मैं तुमसे गरुड़पुराण कहूंगा, उसे श्रवण करो। पूर्वकाल में भगवान् ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति नारद आदि से इस पुराण को कहा था॥५॥

सूत उवाच

दक्षनारदमुख्यैस्तु युक्तं त्वां कथमुक्तवान्।
ब्रह्मा श्रीगारुडं पुण्यं पुराणं सारवाचकम्॥६॥

श्रीसूत ने कहा—हे भगवन्! आप किसलिये दक्ष, नारदादि के साथ मिले थे तथा ब्रह्मा ने पुण्यात्मक कथाओं के सार रूप गरुड़ पुराण को आपसे कहा था?॥६॥

व्यास उवाच

अहं हि नारदो दक्षो भृग्वाद्याः प्रणिपत्य तम्।
सारं ब्रूहीति पप्रच्छुर्ब्रह्माणं ब्रह्मलोकगम्॥७॥

श्रीव्यास ने कहा—एक बार मैं, नारद, दक्ष, भृगु आदि मुनिगण एकत्र होकर ब्रह्मलोक गये थे। वहां हम सब ने ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे जिज्ञासा किया था—"हे प्रभो! आप कृपापूर्वक सारतत्त्व का वर्णन करिये।"॥७॥

ब्रह्मोवाच

पुराणं गारुडं सारं पुरा रुद्रश्च मां यथा।
सुरैः सहाब्रवीद्विष्णुस्तथाऽहं व्यास वच्मि ते॥८॥

भगवान् ब्रह्मा ने कहा—गरुड़पुराण सभी पुराणों का सार है। हे व्यास! पूर्वकाल में देवदेव विष्णु ने देवताओं, रुद्रदेव को तथा मुझे इस सारतर पौराणिक कथा को सुनाया था, मैं उसी प्रकार तुमसे यह पुराण कहता हूं॥८॥

व्यास उवाच

कथं रुद्रं सुरैः सार्द्धमब्रवीद्वा हरिः पुरा।
पुराणं गारुडं सारं ब्रूहि ब्रह्मन् महार्थकम्॥९॥

श्री व्यास ने कहा—हे ब्रह्मन्! किस कारण से हरि ने देवगण के साथ रुद्रदेव से यह पुराण कहा था? आप इस विषय को मुझसे कहिये जो महान् अर्थ वाला है॥९॥

ब्रह्मोवाच

अहं गतोऽद्रिकैलासमिन्द्राद्यैर्दैवतैः सह। तत्र दृष्टो मया रुद्रो ध्यायमान परं पदम्॥१०॥
पृष्ठो नमस्कृतः कं त्वं देवं ध्यायसि शङ्कर।
त्वत्तो नान्यं परं देवं जानामि ब्रूहि मां ततः।
सारात् सारतरं तत्त्वं श्रोतुकामः सुरैः सह॥११॥

भगवान् ब्रह्मा ने कहा—मैंने एक बार इन्द्रादि देवगण के साथ कैलास जाकर देखा कि रुद्रदेव परमपद का चिन्तन कर रहे हैं। मैंने रुद्रदेव को नमस्कार करने के अनन्तर जिज्ञासा किया—"हे शंकर! आप किसका चिन्तन करते हैं? मैं तो आपके अतिरिक्त किसी भी देवता को नहीं जानता। यदि आपसे भी प्रधान कोई देव हो, वह हमसे कहिये। उस सारतत्व के सम्बन्ध में सुनने हेतु देवताओं तथा हम लोगों की भी इसे सुनने की तीव्र इच्छा हो रही है॥१०-११॥

रुद्र उवाच

अहं ध्यायामि तं विष्णुं परमात्मानमीश्वरम्। सर्वदं सर्वगं सर्वं सर्वप्राणिहृदि स्थितम्॥१२॥
भस्मोद्धूलितदेहस्तु जटामण्डलमण्डितः। विष्णोराराधनार्थं मे व्रतचर्या पितामह॥१३॥
तमेव गत्वा पृच्छामः सारं यं चिन्तयाम्यहम्।
विष्णुं जिष्णुं पद्मनाभं हरिं देहविवर्जितम्॥१४॥
शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेश्वरम्। युक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥१५॥

रुद्रदेव ने कहा—मैं सर्वफलदायक, सर्वत्र गमन सक्षम, सर्वरूपधारी, सभी प्राणीगण के हृदय में स्थित, परमात्मा, ईश्वर विष्णु का चिन्तन करता हूं। हे पितामह! मैं इन जगदाधार विष्णु की आराधना के लिये ही अंग में भस्म लिप्त करता हूं। मस्तक पर जटा धारण करता हूं तथा तपस्या करता रहता हूं। वे प्रभु सर्वव्यापी, देहरहित, पद्मनाभ हरि, सभी मल के नाशक हैं। आप लोगों ने जो पूछा है, मैं इन सार रूप प्रभु का चिन्तन करता रहता हूं। वे प्रभु विष्णु, जिष्णु, पवित्र, हंस परमेश्वर हैं। मैं उन सर्वात्मा को अपनी आत्मा से युक्त करके उनका चिन्तन करता हूं॥१२-१५॥

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठन्ति च विशन्ति च।
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव॥१६॥
सहस्राक्षं सहस्राङ्घ्रिं सहस्रोरुं वराननम्। अणीयसामणीयांसं स्थविष्ठञ्च स्थवीयसाम्।
गरीयसां गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च श्रेयसामपि॥१७॥

जिनमें समस्त भूतसमूह विद्यमान रहते हैं, प्रलयकाल में भी जिनमें ये सभी भूतसमूह लीन रहते हैं, उनमें ही प्रविष्ट होकर स्थित रहते हैं, जिन भूतेश में ये गुण उस प्रकार से युक्त रहते हैं, जैसे सूत्र में मणियां पिरोई जाती हैं, मैं उन सहस्राक्ष, सहस्रपाद, सहस्र उर वाले वरानन, अणु से भी सूक्ष्म, स्थूलतम से भी अधिक स्थूल, भारी से भी भारी, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर प्रभु का चिन्तन करता हूं॥१६-१७॥

यं वाक्येष्वनुवाक्येषु निषत्सूपनिषत्सु च।
गृणन्ति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु॥१८॥
पुराणपुरुषः प्रोक्तो ब्रह्मा प्रोक्तो द्विजातिषु। क्षये सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तमुपास्यमुपास्महे॥१९॥
यस्मिन्लोकाः स्फुरन्तीमे जलेषु शकुलो यथा।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतः परम्।
अर्चयन्ति च यं देवा यक्षराक्षसपन्नगाः॥२०॥

जो वाक्, अनुवाक्, उपनिषद्, साम में सत्यकर्मा, सत्यरूपी हरि के गुण वर्णित हैं, जो पुराणपुरुष हैं तथा जिनको द्विज लोग ब्रह्मा कहते हैं। जो क्षय (प्रलय) में संकर्षण कहे जाते हैं, मैं उनकी उपासना करता रहता हूं। जिस प्रकार से जल में शकुल मत्स्य भासमान रहता है, उसी प्रकार सर्वलोक समूह उनके ही प्रकाश से प्रकाशमान तथा उद्भासित होते रहते हैं। जो ऋत एकाक्षर ब्रह्म हैं, जिनकी अर्चना देवता, यक्ष, राक्षस, नाग सभी करते हैं, जो सद्-असत् तथा परम हैं, मैं उनकी उपासना करता रहता हूं॥१८-२०॥

यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्द्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः।
चन्द्रादित्यौ च नयने तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥२१॥
यस्य त्रिलोकी जठरे यस्य काष्ठाश्च बाहवः।
यस्योच्छ्वासश्च पवनस्तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥२२॥
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥२३॥

अग्नि जिनका मुख है, मूर्द्धा द्यौ (स्वर्ग) है, आकाश नाभि है, पृथिवी चरण है, चन्द्र-सूर्य नेत्र हैं, उन देव का मैं चिन्तन करता हूं। त्रैलोक्य जिनका उदर है, काष्ठा बाहु है, जिनका श्वासोच्छ्वास ही वायु है, मेघ जिनके केश हैं, नदियां समस्त अंगों की संन्धियां हैं, सभी चारों समुद्र कुक्षि हैं, उन देव का मैं चिन्तन करता रहता हूं॥२१-२३॥

परः कालात्परो यज्ञात्परः सदसतश्च यः। अनादिरादिर्विश्वस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥२४॥
मनसश्चन्द्रमा यस्य चक्षुषोश्च दिवाकरः। मुखादग्निश्च संजज्ञे तं चिन्तयाम्यहम्॥२५॥
पद्भ्यां यस्य क्षितिर्जाता श्रोत्राभ्याञ्च तथा दिशः।
मूर्द्धभागाद्दिवं यस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥२६॥

जो काल से भी परे हैं, यज्ञादि से जिनको पाया नहीं जा सकता, जो सद् तथा असत् हैं, जो

अनादि हैं तथा जगत् के आदि रूप हैं, उन देवदेव का मैं चिन्तन करता रहता हूं। चन्द्रमा जिनके मन से, सूर्य नेत्र से, अग्नि मुख से उत्पन्न है, जिनके चरणों से पृथिवी उत्पन्न होती है, कानों से दसों दिशाओं की उत्पत्ति होती है, मूर्द्धा से स्वर्ग उत्पन्न होता है, उन देव का मैं सदा चिन्तन करता रहता हूं॥२४-२६॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं यस्मात्तं देवं चिन्तयाम्यहम्॥२७॥
यं ध्यायाम्यहमेतस्माद् व्रजामः सारमीक्षितुम्॥२८॥

जिनसे वंश, मन्वन्तर प्रवर्त्तित होता है, वंशानुचरित वर्णित होता है, मैं उन देवता का चिन्तन करता हूं। मैं उनका सारतत्व साक्षात्कृत करता हूं॥२७-२८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तोऽहं पुरा रुद्र श्वेतद्वीपनिवासिनम्।
स्तुत्वा प्रणम्य तं विष्णुं श्रोतुकामाः किल स्थिराः॥२९॥
अस्माकं मध्यतो रुद्र उवाच परमेश्वरम्। सारात्सारतरं विष्णुं पृष्ठवांस्तं प्रणम्य वै॥३०॥

भगवान् ब्रह्मा ने कहा—रुद्रदेव के यह कहने पर श्वेत दीप निवासी विष्णु की स्तुति करके तथा उनको प्रणाम करके हममें से रुद्र ने विष्णु से सार का भी जो सारतत्व है, उसे पूछा॥२९-३०॥

ब्रह्मोवाच

यथा पृच्छसि मां व्यासस्तयासौ भगवान्भवः।
पप्रच्छ विष्णुं देवाद्यैः शृण्वतो मम वै सह॥३१॥

भगवान् ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! जो प्रश्न तुमने मुझसे पूछा है, सभी देवताओं ने भी यही प्रश्न भगवान् हरि से पूछा था। तब उन्होंने जो उत्तर दिया, वह कहता हूं। श्रवण करो॥३१॥

रुद्र उवाच

हरे कथय देवेश देवदेवः क ईश्वरः। को ध्येयः कश्च वै पूज्यः कैर्व्रतैस्तुष्यते परः॥३२॥
कैधर्मैः कैश्च नियमैः कया वा धर्मपूजया।
केनाचारेण तुष्टः स्यात्किं तद्रूपञ्च तस्य वै॥३३॥
कस्माद्देवाज्जगज्जातं जगत्पालयते च कः।
कीदृशैरवतारैश्च कस्मिन्याति लयं जगत्॥३४॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। कस्माद्देवात्प्रवर्त्तन्ते कस्मिन्नेतत्प्रतिष्ठितम्।
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि यच्चान्यदपि किञ्चन॥३५॥

रुद्र ने पूछा—हे देवदेव, देवेश हरि! सबका ईश्वर कौन है? हम सब किसका ध्यान पूजनादि करें? किस कर्म, किस नियम, किस धर्म पालन तथा पूजा का आचरण करने से, उनके किस रूप का चिन्तन करने से वे प्रसन्न होते हैं? किस देव से यह जगत् उत्पन्न है तथा इसका पालन कौन करता है?

कौन देवता ऐसा है, जिसके अन्त में (प्रलय काल में) यह सब विलीन हो जाता है? किस देवता से सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तरादि प्रवर्त्तित होते हैं तथा ये सब किसमें प्रतिष्ठित हैं? हे हरि! यह सब समस्त सारतत्व मुझसे कहिये तथा अन्य सारतत्व जो हो, वह भी मुझसे कहिये॥३२-३५॥

परमेश्वरमाहात्म्यं युक्तयोगादिकं तथा। तथाऽष्टादशविद्याश्च हरी रुद्रं ततोऽब्रवीत्॥३६॥

सूतजी ने कहा—तदनन्तर हरि ने रुद्रदेव से परमेश्वर का माहात्म्य, युक्त यागादि तथा अट्ठारह विद्याओं का वर्णन किया॥३६॥

हरिरुवाच

शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरैः सह। अहं हि देवो देवानां सर्वलोकेश्वरेश्वरः॥३७॥

अहं ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुत्योऽहं स्तुतिभिः सुरैः।
अहं हि पूजितो रुद्र ददामि परमां गतिम्॥३८॥

श्रीहरि ने कहा—हे रुद्र! आप ब्रह्मा तथा समस्त देवगण श्रवण करिये। मैं ही देवताओं का भी देव, समस्त लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर हूं। मैं देवताओं का भी ध्येय, पूज्य तथा उनके द्वारा स्तवों से स्तुत हूं। मैं रुद्र द्वारा पूजित तथा परम गति देने वाला हूं॥३७-३८॥

नियमैश्च व्रतैस्तुष्ट आचारेण च मानवैः। जगत्स्थितेरहं बीजं जगत्कर्त्ता त्वहं शिव॥३९॥
दुष्टनिग्रहकर्त्ता हि धर्मगोप्ता त्वहं हर। अवतारैश्च मत्स्याद्यैः पालयाम्यखिलं जगत्॥४०॥

अहं मन्त्राश्च मन्त्रार्थः पूजाध्यानपरो ह्यहम्।
स्वर्गादीनाञ्च कर्त्ताऽहं स्वर्गादीन्यहमेव च॥४१॥

मानवगण नियम व्रत तथा आचार से मुझे ही सन्तुष्ट करते हैं। मैं ही जगत् का स्थिति बीज तथा जगत्कर्त्ता भी हूं। हे शिव! मैं ही दुष्टों का निग्रहकर्त्ता तथा धर्मगोप्ता भी हूं। मैं ही मत्स्यादिरूपेण उत्पन्न होकर अखिल जगत् का पालन करता हूं। मैं ही मन्त्र मन्त्रार्थ हूं (मन्त्र देवता) तथा पूजा ध्यान करने वाला भी मैं ही हूं। मैं ही स्वर्गादि का कर्त्ता हूं तथा मैं ही स्वर्गादि भी हूं॥३९-४१॥

ज्ञाता श्रोता तथा मन्ता वक्ता वक्तव्यमेव च।
सर्वः सर्वात्मको देवो भुक्तिमुक्तिकरः परः॥४२॥

ध्यानं पूजोपहारोऽहं मण्डलान्यहमेव च। इतिहासान्यहं रुद्र सर्वदेवो ह्यहं शिव॥४३॥
सर्वज्ञानान्यहं शम्भो ब्रह्मात्माहमहं शिव। अहं ब्रह्मा सर्वलोकः सर्वदेवात्मको ह्यहम्॥४४॥

अहं साक्षात्सदाचारो धर्मोऽहं वैष्णवो ह्यहम्।
वर्णाश्रमास्तथा चाहं तद्धर्मोऽहं पुरातनः॥४५॥

मैं ही ज्ञाता, श्रोता, मन्ता, वक्ता तथा वक्तव्य हूं। मैं सर्व, सर्वात्मक देव तथा भुक्ति-मुक्ति देने वाला हूं। हे रुद्र! मैं ही ध्यान, पूजा, उपहार, मण्डलादि सब कुछ हूं। हे शिव! सभी वेद तथा इतिहास भी मैं ही हूं। हे शम्भु! मैं सर्वज्ञानमय तथा ब्रह्मात्मा हूं। मैं ही ब्रह्मा हूं तथा ब्रह्मा द्वारा सृष्ट सभी लोक भी

मैं ही हूं। मैं ही सर्वदेवात्मक भी हूं। मैं ही साक्षात् सदाचार, धर्म, वैष्णव हूं। मैं ही वर्णाश्रम धर्म तथा पुराणपुरुष हूं॥४२-४५॥

यमोऽहं नियमो रुद्र व्रतानि विविधानि च। अहं सूर्यस्तथा चन्द्रो मङ्गलादीन्यहं तथा॥४६॥

पुरा मां गरुडः पक्षी तपसाऽऽराधयद् भुवि। तुष्ट ऊचे वरं ब्रूहि मत्तो वव्रे वरं स च॥४७॥

हे रुद्र! मैं ही यम, नियम तथा विविध व्रत हूं। मैं ही सूर्य, चन्द्र, मंगलादि भी हूं। पूर्वकाल में पक्षीराज गरुड़ ने धरती पर तपस्या द्वारा मेरी ही आराधना किया था। तब उसके तप से प्रसन्न होकर मैंने उससे कहा था—"मुझसे वांछित वर मांगो।"॥४६-४७॥

गरुड उवाच

मम माता च विनता नागैर्दासीकृता हरे।
यथाहं दैवतान्जित्वा चामृतं ह्यानयामि तत्॥४८॥
दास्याद्विमोक्षयिष्यामि यथाहं वाहनस्तव। महाबलो महावीर्यः सर्वज्ञो नागदारणः।
पुराणसंहिताकर्त्ता यथाऽहं स्यां तथा कुरु॥४९॥

गरुड़ ने कहा—"हे हरि! मेरी माता विनता नागगण की दासी हो गयी हैं। मुझे यह वर दीजिये कि मैं देवगण को जीतकर अमृत लाऊं तथा नागों को देकर माता को दासीत्व से मुक्त करूं तथा आपका वाहन हो जाऊं। आप मुझे महाबली, महावीर्य, सर्वज्ञ तथा नागों को विदीर्ण करने वाला तथा पुराण-संहिता कर्त्ता बनायें"॥४८-४९॥

विष्णुरुवाच

यथा त्वयोक्तं गरुडं तथा सर्वं भविष्यति।
नागदास्यान्मातरं त्वं विनतां मोक्षयिष्यसि॥५०॥
देवादीन्सकलान्जित्वा चामृतं ह्यानयिष्यसि।
महाबलो वाहनस्त्वं भविष्यसि विषार्दनः॥५१॥
पुराणं मत्प्रसादाच्च मम माहात्म्यवाचकम्।
यदुक्तं मत्स्वरूपञ्च तव चाविर्भविष्यति॥५२॥
गारुडं तव नाम्ना तल्लोके ख्यातिं गमिष्यति।
यथाऽहं देवदेवानां श्रीः ख्याता विनतासुत।
तथा ख्यातिं पुराणेषु गारुडं गरुडैष्यति॥५३॥
यथाहं कीर्त्तनीयोऽथ तथा त्वं गरुडात्मना।
मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुडम्॥५४॥

इत्युक्तो गरुडो रुद्र कश्यपायाह पृच्छते। कश्यपो गारुडं श्रुत्वा वृक्षं दग्धमजीवयत्॥५५॥

स्वयञ्चान्यमना भूत्वा विद्ययाऽन्यान्यजीवयत्।
यक्षि ओं उं स्वाहा जापी विद्येयं गारुडी परा।
गरुडोक्तं गारुड़ं हि श्रृणु रुद्र महात्मकम्॥५६॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्रश्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

विष्णु ने कहा—हे गरुड़! तुमने जो कहा है, वैसा ही होगा। तुम अपनी माता विनता को नागों की दासता से मुक्त कर दोगे। तुम सभी देवगण को जीतकर अमृत ले आओगे। तुम महाबली, विषनाशक तथा मेरे वाहन होगे। मेरी कृपा से पुराण-संहिता की रचना करके उसमें मेरी महिमा का वर्णन करोगे। मेरा जो स्वरूप वर्णित है, वही तुम्हारा भी स्वरूप होगा। वह गारुड़ (पुराण) के नाम से प्रसिद्ध होगा। हे विनतानन्दन! देवगण में जिस प्रकार से मेरी श्री (ऐश्वर्य) प्रख्यात है, उसी प्रकार सभी पुराणों से गरुड़पुराण को ख्याति लाभ होगा। इस जगत् में जो जिस रूप में मेरी महिमा तथा रूप का गायन करेगा, तुम भी जगत् में तद्रूप कीर्त्तनीय रहोगे। हे पक्षीराज! तुम मेरा ध्यान करके पुराण का प्रणयन करो। इससे तुम्हारा श्रम सफलीभूत होगा। हे रुद्र! गरुड़ को यह उपदेश मैंने दिया था। तत्पश्चात् जब कश्यप ने जिज्ञासा किया था, तब पक्षिराज ने कश्यप से पुराण का इतिहास कहा। कश्यप ने तब गरुड़पुराण सुनकर मृतसंजीवनी विद्या से एक जले वृक्ष को जीवित किया था। उन्होंने स्वयं अनेक पदार्थों को बचाया था। "यक्षि ॐ ॐ स्वाहा' गरुड़ोक्त संजीवनी मन्त्र है। इसका जप करें (यहां बंगदेशीय संस्करण में यह मन्त्र है—यक्षे ॐ ॐ स्वाहा)। हे रुद्र! गरुड़ोक्त पुराण में जो-जो विषय कहे गये हैं, वह सब कहता हूं। श्रवण करें॥५०-५६॥

॥द्वितीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

गरुड़पुराण की विषय वस्तु का संक्षिप्त वर्णन

सूत उवाच

इति रुद्राब्जजौ विष्णोः शुश्राव ब्रह्मणो मुनिः।
व्यासो व्यासादहं वक्ष्येऽहं ते शौनक नैमिषे॥१॥
मुनीनां श्रृण्वतां मध्ये सर्गाद्यं देवपूजनम्। तीर्थं भुवनकोषञ्च मन्वन्तरमिहोच्यते॥२॥
वर्णाश्रमादिधर्मांश्च दानराज्यादिधर्मकाः। व्यवहारो व्रतं वंशा वैद्यकं सनिदानकम्॥३॥

अङ्गानि प्रलयो धर्मकामार्थज्ञानमुत्तमम्। सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं कृतं विष्णोर्निगद्यते।
पुराणे गारुडे सर्वं गरुडो भगवानथ॥४॥

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मा तथा रुद्र ने इस पुराण को विष्णु से उत्तम रूप से सुना था। इसे मुनिवर व्यास ने ब्रह्मा से सुना तथा हे शौनकादि मुनिगण! यह वृत्तान्त व्यासदेव से सुनकर यहां आप लोगों से नैमिषारण्य में कह रहा हूं। इसमें सर्ग का आदि, देवपूजन, तीर्थ, भुवनकोष, मन्वन्तर का वर्णन है। साथ ही वर्णाश्रमादि धर्म, दान, राज्य धर्म, व्यवहार, व्रत, वंश वर्णन, वैद्यक, निदान, षडङ्ग, प्रलय, धर्म, काम तथा अर्थ का उत्तम ज्ञान, प्रपंच के साथ तथा निष्प्रपंच विष्णु द्वारा इस पुराण में वर्णित है। यह सब भगवान् ने गरुड़पुराण में कहा है॥१-४॥

वासुदेवप्रसादेन सामर्थ्यातिशयैर्युतः। भूत्वा हरेर्वाहनञ्च सर्गादीनाञ्च कारणम्।
देवान् विजित्य गरुडो ह्यमृताहरणं तथा॥५॥
चक्रे क्षुधाहतं यस्य ब्रह्माण्डमुदरे हरेः। यं दृष्ट्वा स्मृतमात्रेण नागादीनाञ्च संक्षयम्॥६॥
कश्यपो गारुडाद् वृक्षं दग्धं चाजीवयद्यतः।
गरुडः स हरिस्तेन प्रोक्तं श्रीकश्यपाय च॥७॥
तद् श्रीमद्गारुडं पुण्यं सर्वदं पठितं तव। हरिरित्थञ्च रुद्राय शृणु शौनक तद्यथा॥८॥

॥इति गारुडे महापुराणे तृतीयोऽध्यायः॥३॥

वासुदेव की कृपा द्वारा तथा अपने अतिशय सामर्थ्य से गरुड़ विष्णु वासुदेव के वाहन हो गये। वे सृष्टि-स्थिति-प्रलयादि के कारण हो गये। उन्होंने देवों को जीतकर उनसे अमृत का हरण कर लिया। जिन प्रभु के उदर में ब्रह्माण्ड है, उनको गरुड़ ने क्षुधाहत कर दिया। गरुड़ को देखने अथवा उनका नाम स्मरण करने से सर्पभय नष्ट हो जाता है। कश्यप ने गारुड़मन्त्र के द्वारा दग्ध वृक्ष को पुनः हरित कर दिया था। हे शौनक! गरुड़ ने यह मन्त्र पहले कश्यप से कहा था। हरि ने उसे कश्यप से सुना। हे शौनक! हरि ने जिस प्रकार से महादेव से कहा था, मैं उसी प्रकार आपसे कहता हूं। श्रवण करें॥५-८॥

॥तृतीय अध्याय समाप्त॥

चतुर्थोऽध्यायः

रुद्र द्वारा प्रश्न किये जाने पर हरि द्वारा सृष्टि वर्णन

रुद्र उवाच

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव एतद् ब्रूहि जनार्दन॥१॥

रुद्रदेव ने कहा—हे जनार्दन! आप सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित का वर्णन करिये॥१॥

हरिरुवाच

शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि सर्गादीन् पापनाशनान्।
सर्गस्थितिप्रलयान्तां विष्णोः क्रीडां पुरातनीम्॥२॥
नरनारायणो देवो वासुदेवो निरञ्जनः। परमात्मा परं ब्रह्म जगज्जनिलयादिकृत्॥३॥
तदेतत् सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत्। तथा पुरुषरूपेण कालरुपेण च स्थितम्॥४॥
व्यक्तं विष्णुस्तथाऽव्यक्तंपुरुषः काल एव च।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टास्तस्य निशामय॥५॥
अनादिनिधनो धाता त्वनन्तः पुरुषोत्तमः।
तस्माद्भवति चाव्यक्तं तस्मादात्मापि जायते॥६॥
तस्माद् बुद्धिर्मनस्तस्मात्ततः खं पवनस्ततः।
तस्मात्तेजस्ततस्त्वापस्ततो भूमिस्ततोऽसृजत्॥७॥
अण्डो हिरण्मयो रुद्र तस्यान्तः स्वयमेव हि। शरीरग्रहणं पूर्वं सृष्ट्यर्थं कुरुते प्रभुः॥८॥

श्री हरि ने कहा—हे रुद्र! मैं सृष्टि आदि का वर्णन, सृष्टि-स्थिति-प्रलय रूपी पापनाशक क्रीड़ा कहता हूं। श्रवण करें। नरनारायण देव, वासुदेव, निरंजन, परमात्मा, परब्रह्म ही जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार कृत्य को करते हैं। ये परब्रह्म परमेश्वर ही समस्त व्यक्त एवं अव्यक्त जगत्स्वरूप हैं। वे ही पुरुष रूप तथा कालरूपीं होकर समग्र जगत् में व्याप्त हैं। जैसे बालक लोग खेलते समय अनेक चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार ये परमेश्वर जो कार्य करते हैं, उसे सुनिये। ये अनादि निधन (जिनका आदि अन्त नहीं है) हैं। ये समस्त जगत् का पालन करने वाले, अनन्त पुरुषोत्तम हैं। उन प्रभु से ही व्यक्त-अव्यक्त जगत् की तथा आत्मा की उत्पत्ति होती है। आत्मा से बुद्धि, बुद्धि से मन, मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेजः, तेजः से जल तथा जल से पृथिवी की उत्पत्ति हो गयी। हे रुद्रदेव! इसके पश्चात् हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हो गया। इसी अण्ड के अन्तर्गत् प्रभु ने स्वयं जगत् सृष्टि हेतु देह धारण किया था॥२-८॥

ब्रह्मा चतुर्मुखो भूत्वा रजोमात्राधिकः सदा। शरीरग्रहणं कृत्वाऽसृजदेतच्चराचरम्॥९॥

अण्डस्यान्तर्जगत् सर्वं सदेवा सुरमानुषम्।
स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यञ्च पाति च।
उपसंहरते चान्ते संहर्त्ता च स्वयं हरिः॥१०॥
ब्रह्मा भूत्वासृजद्विष्णुर्जगत् पाति हरिः स्वयम्।
रुद्ररूपी च कल्पान्ते जगत् संहरते प्रभुः॥११॥
ब्रह्मा तु सृष्टिकालेऽस्मिन् जलमध्यगतां महीम्।
दंष्ट्रयोद्धरति ज्ञात्वा वाराहीमास्थितस्तनुम्॥१२॥
देवादिसर्गाद्वक्ष्येऽहं संक्षेपाच्छृणु शङ्कर। प्रथमो महतः सर्गो विरूपो ब्रह्मणस्तु सः॥१३॥
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चेन्द्रियकः स्मृतः॥१४॥

ब्रह्मा चतुर्मुख हुये। उनमें रजोगुण की मात्रा अधिक थी। उन्होंने शरीर ग्रहण करके सचराचर जगत् का सृजन किया। ब्रह्मा होकर वे जगत् सृष्टि करते हैं। अण्ड के अन्तर्गत् समस्त जगत् का देवता, असुर तथा मनुष्य की वे सृष्टि करते हैं। अपनी आत्मा से उन्होंने विष्णु का सृजन किया। वे समस्त जगत् का पालन करते हैं। स्वयं हरि अन्त में समस्त जगत् का संहार करते हैं। वे ब्रह्मा होकर सृष्टि करते हैं। विष्णुरूपेण जगत्पालन करते हैं। वे प्रभु रुद्ररूपी होकर कल्पान्त में सबका संहार कर देते हैं। ब्रह्मा के सृष्टि काल में पृथिवी जल के अन्दर थी। उन्होंने वाराह तनु धारण करके अपनी दाढ़ से उसका उद्धार किया था। हे शंकर! अब मैं देवादि सर्ग को संक्षेप में कहता हूं। यह ब्रह्मा का महत् सर्ग है। द्वितीय सर्ग तन्मात्रा की सृष्टि रूप भूतसर्ग कहा जाता है। तृतीय सर्ग (सृष्टि) इन्द्रियों का है। इसे तृतीय तथा वैकारिक सृष्टि कहा गया है॥९-१४॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः॥१५॥
तिर्यक्स्त्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स उच्यते।
तदूर्ध्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः॥१६॥
ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसस्तु सः॥१७॥
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृतश्चापि कौमारो नवमः स्मृतः॥१८॥
स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा रुद्र चतुर्विधाः।
ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसाः सुताः॥१९॥

यह प्राकृत सर्ग बुद्धिपूर्वक हुआ था। मुख सर्ग चतुर्थ है। उसमें स्थावर मुख्य है। तदनन्तर तिर्यक्

स्रोत हैं। इसे तिर्यक् योनि कहते हैं। इसके ऊर्ध्व में (आगे) षष्ठ है देवसर्ग। सप्तम है अर्वाक् स्रोत। यह सप्तम सर्ग है, जो मनुष्य सृष्टि है। अष्टम है अनुग्रह सर्ग। इसमें सात्विक तथा तामस आते हैं। पांच वैकृत सर्ग हैं तथा तीन प्राकृत हैं। प्राकृत ३ तथा वैकृत ५ = ८ सर्ग होते हैं। नवम है कौमार। जब प्रजापति ने सृष्टि कार्य प्रारम्भ किया, उस समय उनकी संकल्परूपी इच्छा से देवता, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर यह चार प्रकार की प्रजा सृष्ट हो गयी थी। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने मानस पुत्रों की सृष्टि किया॥१५-१९॥

ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम्। सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमपूजयत्॥२०॥

मुक्तात्मनस्तु मात्रायामुद्रिक्ताऽभूत् प्रजापतेः।
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः॥२१॥
उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रत्मिकां तनूम्।
तमोमात्रा तनुस्त्यक्ता शङ्कराऽभूद्विभावरी॥२२॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने देवता, असुर, पितृगण तथा मनुष्य इन, चतुर्विध प्रजा का सृजन करने की इच्छा से अपनी आत्मा में मन को समाहित किया था। अब जब वे सृष्टिकार्य में अपने पूर्व संस्कार से लगे तव तमोगुण ने उनका आश्रय ले लिया। इस निमित्त से सबसे पहले उनके जंघा से असुरों की सृष्टि हो गई। इसके पश्चात् उन्होंने अपने तमोमय भाव देह को त्यागा। हे शंकर! यह तमोमय भाव ही जगत् में रात्रिरूपेण व्याप्त है॥२०-२२॥

सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः। सत्त्वोद्रिक्तास्तु मुखतः संभूता ब्रह्मणो हर॥२३॥

सत्त्वप्राया तनुस्तेन संत्यक्ता साप्यभूद् दिनम्।
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा॥२४॥
सत्त्वमात्रान्तरं गृह्य परतश्च ततोऽभवन्।
सा चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता॥२५॥
रजोमात्रान्तरं गृह्य मनुष्यास्त्वभवंस्ततः।
सा त्यक्ता चाभवज्ज्योत्स्ना प्राक्सन्ध्या याभिधीयते॥२६॥
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या शरीराणि तु तस्य वै।
रजोमात्रान्तरं गृह्य क्षुदभूत् कोप एव च॥२७॥

इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अन्य भाव का आश्रय लेकर प्रीतियुक्त मन से सृष्टि की इच्छा किया। इस कारण से उनके मुख से सत्वमय गुण वाले देवता उत्पन्न हो गये। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने इस सत्वमात्र देह का भी त्याग कर दिया। यही सत्व रूपी देह भाव ही दिन तथा रात्रि की मध्यगता सन्ध्या रूप से अभिव्यक्त हो गया। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने रजोगुण का आश्रय ग्रहण किया था। इसी से रजोगुणान्वित मनुष्य सृष्ट हो गये थे। इसके अनन्तर उन्होंने रजोभाव का भी त्याग कर दिया। ब्रह्मा द्वारा त्यक्त यह राजस् भाव ही पूर्व सन्ध्या रूप से ज्योत्स्ना में व्यक्त होता है। ब्रह्मा के ही शरीर के गुणों का परिणाम है ज्योत्स्ना, दिन, रात, सन्ध्या। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अन्य रजोगुण का वरण किया। वही क्षुधा तथा क्रोधरूप हो गया॥२३-२७॥

क्षुत्क्षामानसृजद् ब्रह्मा राक्षसान् रक्षणाच्च सः।
यक्षाख्या यक्षणाज्ज्ञेयाः सर्पा वै केशसर्पणात्॥२८॥
जाताः कोपेन भूताद्या गन्धर्वा जज्ञिरे ततः।
गायन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्तेन तेऽनघ॥२९॥

इसके पश्चात् ब्रह्मा ने क्षुधार्त्त राक्षसों की सृष्टि किया। रक्षण कार्य के कारण यह राक्षस कहलाये। इसके अनन्तर उन्होंने यक्षों को उत्पन्न किया। यक्षण कार्य के कारण इनको यक्ष नाम प्रदान किया गया था। ब्रह्मा ने जो अपने केश का सर्पण (सहलाया) किया। उससे सर्प उत्पन्न हो गये। सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्मा के क्रोध द्वारा भूतगण, गन्धर्वगण आदि उत्पन्न हो गये। जो प्राणी गायन प्रिय थे, वे निष्पाप गन्धर्व कहे गये॥२८-२९॥

अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजाः स सृष्टवान्।
सृष्टवानुदराद्गाश्च पार्श्वाभ्याञ्च प्रजापतिः॥३०॥
पद्भ्याञ्चाश्वान् स मातङ्गान् गर्दभोष्ट्रादिकंस्तथा।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥३१॥
गौरजः पुरुषो मेषः अश्वाश्वतरगर्दभाः एतान्।
ग्राम्यान् पशून् प्राहुरारण्यांश्च निबोध मे॥३२॥
श्वापदं द्विखुरं हस्तिवानराः पक्षिपञ्चमाः।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमाश्च सरीसृपाः॥३३॥
पूर्वादिभ्यो मुखेभ्यस्तु ऋग्वेदाद्याः प्रजज्ञिरे।
आस्याद्वै ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियाः स्मृताः।
ऊरुभ्यां तु विशः सृष्टाः शूद्रः पद्भ्यामजायत॥३४॥

ब्रह्मा ने अपने वक्ष से मेष का, मूत्र से बकरी का, पार्श्व से गौ का, पदद्वय से अश्व, मातंग (हाथी), गर्दभ, ऊंट आदि जीवगण की रचना किया। उनके रोमों से औषधियां उत्पन्न हो गयीं। जीवगण में से गौ, अज (बकरी आदि), मनुष्य, मेष, अश्व, खच्चर तथा गर्दभ ग्राम्य जन्तु कहे गये। श्वापद (मांसभक्षी)[१], व्याघ्र प्रभृति हिंस्र जन्तु आरण्य जन्तु हैं। साथ ही[२] दो खुर वाले, [३]हस्ति, [४]वानर, [५]पक्षी ये पांच हैं। छठें हैं कच्छप आदि जलचर प्राणी। सप्तम हैं सरीसृप आदि। ये सातों वन्य जन्तु हैं। उन सृष्टिकर्त्ता प्रभु के पूर्व आदि चार मुखों से ऋग्वेदादि चारों वेदों की उत्पत्ति कही गयी है। मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, दोनों ऊरु से वैश्य तथा पदद्वय से शूद्रों का जन्म हुआ॥३०-३४॥

ब्राह्मो लोको ब्राह्मणानां शाक्रः क्षत्रियजन्मनाम्।
मारुतञ्च दिशां स्थानं गान्धर्वं शूद्रजन्मनाम्॥३५॥

ब्रह्मचारिव्रतस्थानां ब्रह्मलोकः प्रजायते। प्राजापत्यं गृहस्थानां यथाविहितकारिणाम्॥३६॥

स्थानं सप्त ऋषीणाञ्च तथैव वनवासिनाम्।
यतीनामक्षयं स्थानं यदृच्छागामिनां सदा॥३७॥

॥इति गारुडे महापुराणे चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

ब्राह्मणों के लिये ब्राह्मलोक, क्षत्रियों हेतु इन्द्रलोक, वैश्यों हेतु वायुलोक तथा शूद्रों हेतु गन्धर्वलोक की सृष्टि उन प्रभु ने किया। ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचर्य व्रतस्थ लोग ब्रह्मलोक में, स्वधर्म तत्पर गृहस्थों हेतु प्राजापत्य लोक तथा सप्तर्षि, वनवासी तपस्वी तथा संन्यासी यतियों के लिये उनके लिये उपयुक्त लोक की सृष्टि उन प्रजापति ने किया। यहां इन अक्षय लोकों में ये लोग अपनी इच्छा से सदा गमन कर सकते हैं॥३५-३७॥

॥चतुर्थ अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

ब्रह्मा के मानस पुत्रों का वर्णन तथा दक्षकन्या सती का देहत्याग

हरिरुवाच

कृत्वेहामुत्र संस्थानं प्रजासर्गं तु मानसम्।
अथासृजत् प्रजाकर्तॄन् मानसांस्तनयान् प्रभुः॥१॥
धर्मं रुद्रं मनुञ्चैव सनकं ससनातनम्। भृगुं सनत्कुमारञ्च रुचिं शुद्धं तथैव च॥२॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। वशिष्ठं नारदञ्चैव पितॄन् बर्हिषदस्तथा॥३॥
अग्निष्वात्तांश्च क्रव्यादानाज्यपांश्च सुकालिनः।
उपहूतांस्तथा दीप्यांस्त्रींश्च मूर्तिविवर्जितान्॥४॥
चतुरो मूर्त्तियुक्तांश्च दक्षे चक्रेऽथ दक्षिणात्।
वामाङ्गुष्ठात्तस्य भार्य्यामसृजत् पद्मसम्भवः॥५॥

श्रीहरि ने कहा—प्रभु ब्रह्मा ने जब संस्थानों की तथा इस विधि से प्रजा सृष्टि किया, तब उन्होंने मानस प्रजा की सृष्टि का निश्चय किया। इस समय उन्होंने मानस पुत्र रूप से धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार, रुचि, शुद्ध, मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, नारद की तथा पितृगण [१]बर्हिषद, [२]अग्निष्वात्त, [३]क्रव्याद, [४]आजाप, [५]सुकालिन, [६]उपहूत एवं [७]दीप्य की सृष्टि

किया। ये पितृगण सात हैं। इनमें से तीन मूर्त्ति (आकृति) रहित तथा शेष चार मूर्त्तियुक्त हैं। कमलयोनि ब्रह्मा ने दाहिने अंगूठे से दक्ष को तथा अपने बायें अंगूठे से उनकी पत्नी को उत्पन्न किया॥१-५॥

तस्यां तु जनयामास दक्षो दुहितरः शुभाः। ददौ ता ब्रह्मपुत्रेभ्यः सतीं रुद्राय दत्तवान्।
रुद्रपुत्रा बभूबुर्हि असंख्याता महाबलाः॥६॥
भृगवे च ददौ ख्यातिं रूपेणाप्रतिमां शुभाम्।
भृगोर्धाताविधातारौ जनयामास सा शुभा॥७॥
श्रियञ्च जनयामास पत्नी नारायणस्य या।
तस्यां वै जनयामास बलोल्मादौ हरिः स्वयम्॥८॥

इसके अनन्तर दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी के गर्भ द्वारा शुभा कन्याओं को उत्पन्न किया। उन ब्रह्मपुत्र ने इन कन्यागण को ब्रह्मा के मानस पुत्रों को प्रदान किया, जिनमें से सती को रुद्रदेव को प्रदान किया। इनसे रुद्र ने असंख्य महाबली पुत्रों को उत्पन्न किया। दक्ष ने अपनी अप्रतिम रूप वाली शुभा कन्या ख्याति को भृगु को प्रदान किया। इनसे धाता तथा विधाता नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ। इनसे ही नारायण पत्नी लक्ष्मी का जन्म हुआ था। नारायण ने लक्ष्मी से बल तथा उन्माद नाम वाले दो पुत्रों को उत्पन्न किया॥६-८॥

आयातिर्नियतिश्चैव मनोः कन्ये महात्मनः।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तेजोर्जातौ सुतावुभौ।
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः॥९॥
पत्नी मरीचेः सम्भूतिः, पौर्णमासमसूयत। विरजः सर्वगश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः॥१०॥
स्मृतेश्चाङ्गिरसः पुत्राः प्रसूताः कन्यकास्तथा।
सिनीबाली कुहुश्चैव राका चानुमतिस्तथा॥११॥
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्। सोमं दुर्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्च योगिनम्॥१२॥

भृगुपुत्र धाता ने आयाति से तथा विधाता ने नियति से विवाह किया था, जो दोनों ही मनु की पुत्रियां थीं। कालान्तर में आयाति के गर्भ से प्राण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। प्राणसे मृकण्डु जन्मे। मृकण्डु के पुत्र थे महर्षि मार्कण्डेय। दक्ष पुत्री सम्भूति का विवाह मरीचि ऋषि से हुआ था। सम्भूति के पुत्र थे पौर्णमास। इनके दो महात्मा पुत्र थे विरज, सर्वग। महर्षि अंगिरा का परिणय दक्षपुत्री स्मृति के साथ हुआ। इनके अनेक पुत्र तथा सिनिवाली, कुहु, राका, अनुमति नामक चार कन्यायें थीं। दक्षपुत्री अनुसूया का पाणिग्रहण महामुनि अत्रि से हुआ। उनके तीन पुत्र थे—चन्द्र, दुर्वासा तथा दत्तात्रेय। ये सभी पुत्र निष्कल्मष थे। दत्तात्रेय तो महायोगी कहे गये हैं॥९-१२॥

प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत्। कर्म्मणश्चार्थवीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम्।
क्षमा तु सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापतेः॥१३॥

क्रतोश्च सुमतिर्भार्य्या बालिखिल्यानसूयत।
षष्टिं बालिसहस्त्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करवर्चसाम्॥१४॥
ऊर्ज्जायां तु वशिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः।
रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च शरणश्चानघस्तथा।
सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयो मताः॥१५॥
स्वाहां प्रादात् स दक्षोऽपि सशरीराय वह्नये।
तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारौजसो हर।
पावकं पवमानञ्च शुचिञ्चापि जलाशिनः॥१६॥

दक्षकन्या प्रीति का विवाह पुलस्त्य से हुआ। उनका पुत्र था दत्तोलि। दक्षकन्या क्षमा पुलह की पत्नी थी। पुलह के पुत्रत्रय का नाम था कर्मण, अर्थवीर तथा सहिष्णु। प्रजापति क्रतु का विवाह दक्षकन्या सुमति से हुआ था, जिनके पुत्र थे साठ हजार बालखिल्य मुनिगण, जिनका आकार मनुष्य के अंगुष्ठ के बराबर था। ये सभी ऊर्ध्वरेत: तथा तेज में मध्याह्न सूर्य के समान थे। वसिष्ठ का परिणय दक्षकन्या ऊर्जा से हुआ था। इनके पुत्र थे रज:, गात्र, ऊर्ध्ववाहु, शरण, अनघ, सुतपा एवं शुक्र। ये सभी सप्तर्षि रूप में प्रसिद्ध हैं। दक्ष ने देहधारी अग्नि को अपनी कन्या स्वाहा अर्पित किया था। इनके पुत्र थे उदारकीर्त्ति पावक, पवमान एवं शुचि॥१३-१६॥

पितृभ्यश्च स्वधा जज्ञे मेनां वैतरणीं तथा।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ मेनाऽगात्त हिमाचलम्॥१७॥

दक्षकन्या स्वधा का पाणिग्रहण पितृगण ने किया था। इनकी दो कन्या थीं, मेना तथा वैतरणी। ये दोनों ब्रह्मवादिनी थीं। मेना का विवाह हिमाचल से सम्पन्न हुआ था॥१७॥

ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं हर॥१८॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिहतकल्मषाम्। स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे ततः॥१९॥
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत। प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसंज्ञिते॥२०॥
देवहूतिं मनुस्तासु आकूतिं रुचये ददौ। प्रसूतिञ्चैव दक्षाय देवहूतिश्च कर्दमे॥२१॥
रुचेर्यज्ञो दक्षिणाऽभूद्दक्षिणायाञ्च यज्ञतः। अभवन् द्वादश सुता यमो नाम महाबलः॥२२॥

इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अपने देह से पहले उत्पन्न आत्मस्वरूप पुत्र मनु को प्रजापालन हेतु नियुक्त किया था। तप: से निष्कल्मष हो गयी शतरूपा उनकी पत्नी थीं। तदनन्तर मनु से शतरूपा ने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक पुत्रद्वय तथा प्रसूति, आकूति एवं देवहूति नामक तीन पुत्रियों को उत्पन्न किया। ऋषि रुचि ने आकूति का पाणिग्रहण किया। इससे पुत्र यज्ञ एवं दक्षिणा नामक पुत्री की उत्पत्ति हुई थी।

यज्ञ ने दक्षिणा का पाणिग्रहण किया। इससे बारह पुत्र जन्मे। ये सभी महाबली यम नाम से प्रसिद्ध हो गये॥१८-२२॥

चतुर्विंशतिकन्याश्च सृष्टवान् दक्ष उत्तमः।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिःपुष्टिर्मेधा क्रिया तथा॥२३॥
बुद्धिर्लज्जा वपुःशान्तिर्ऋद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणः प्रभुः॥२४॥

तदनन्तर दक्ष की चौबीस कन्यायें उत्पन्न हुई थीं। इनमें से तेरह नाम हैं—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपुः, शान्ति, ऋद्धि तथा कीर्ति जिनसे भगवान् धर्म ने विवाह किया। ये तेरह कन्यायें धर्म पत्नी हैं॥२३-२४॥

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥२५॥
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः। पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्चर्षिवरस्तथा॥२६॥
अत्रिर्वशिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्।
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः॥२७॥

अन्य एकादश कन्यायें हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनुसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा। भृगु ने ख्याति से, महादेव ने सती से, मरीचि ने सम्भूति से, अंगिरा ने स्मृति से, पुलस्त्य ने प्रीति से, पुलह ने क्षमा से, क्रतु ने सन्नति से, अत्रि ने अनुसूया से, वसिष्ठ ने ऊर्जा से, अग्नि ने स्वाहा से तथा पितरों ने स्वधा का पाणिग्रहण किया था॥२५-२७॥

श्रद्धा कामं चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम्। सन्तोषश्च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरसूयत॥२८॥
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं लयं विनयमेव च।
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम्॥२९॥
व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत। सुखमृद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः।
कामस्य च रतिर्भार्य्या तत्पुत्रो हर्ष उच्यते॥३०॥
ईजे कदाचिद् यज्ञेन हयमेधेन दक्षकः। तस्य जामातरः सर्वे यज्ञं जग्मुर्निमन्त्रिताः॥३१॥
भार्य्याभिः सहिताःसर्वे रुद्रं देवीं सतीं विना।
अनाहूता सती प्राप्ता दक्षेणैवावमानिता॥३२॥

श्रद्धा ने काम को, लक्ष्मी ने दर्प को, धृति ने नियम को, तुष्टि ने सन्तोष को, पुष्टि ने लोभ को, मेधा ने श्रुत को, क्रिया ने दण्ड, लय तथा विनय को पुत्ररूपेण जन्म दिया। बुद्धि का पुत्र था बोध। इसी प्रकार कीर्ति का पुत्र था यश। धर्म की तेरहों पत्नियों से इस प्रकार से सोलह पुत्र उत्पन्न हुये। धर्मपुत्र काम की पत्नी थी रति। काम का पुत्र था हर्ष। इसके पश्चात् दक्ष प्रजापति ने अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ

किया, जिसमें पुत्री सती तथा जामाता महादेव को छोड़कर सभी पुत्रियों तथा जामातागण को आमन्त्रित किया था। ये जामाता निमन्त्रित होने के कारण अपनी पत्नियों के साथ यज्ञ में आये। यद्यपि सती को निमन्त्रण प्राप्त नहीं था, तथापि ये उसकी अपेक्षा किये बिना यज्ञ देखने आईं। इससे दक्ष ने उनका अपमान किया॥२८-३२॥

त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता मेनायान्तु हिमाह्वयात्।
शम्भोर्भार्य्याऽभवद् गौरी तस्या जज्ञे विनायकः॥३३॥
कुमारश्चैव भृङ्गीशः क्रुद्धो रुद्रः प्रतापवान्।
विध्वंस्य यज्ञं दक्षं तु तं शशाप पिनाकधृक्।
ध्रुवस्यान्वयसम्भूतो मनुष्यस्त्वं भविष्यसि॥३४॥

॥इति गारुडे महापुराणे पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

इस अपमान के कारण सती ने देह त्याग कर दिया तथा वे पुनः हिमालय पत्नी मेना के गर्भ से जन्मीं। सती हिमालय के यहां जन्म लेकर शम्भुपत्नी बनी थीं। उनके गर्भ से गणेश, कार्त्तिकेय तथा भृंगीश नामक तीन पुत्र जन्में। सती के निधन के कारण महान् तेजस्वी शिव पिनाकपाणी महेश्वर क्रोधित हो गये। उन्होंने दक्षयज्ञ विध्वंस करके दक्ष को शाप दिया कि "तुम ध्रुव के वंश में मनुष्य रूप में जन्म लोगे"॥३३-३४॥

॥पञ्चम अध्याय समाप्त॥

षष्ठोऽध्यायः

राजा उत्तानपाद के यहां ध्रुव जन्म का वर्णन तथा प्रचेतसों के वंश का वर्णन

हरिरुवाच

उत्तानपादादभवत् सुरुच्यामुत्तमः सुतः। सुनीत्यां तु ध्रुवः पुत्रः स लेभे स्थानमुत्तमम्॥१॥
मुनिप्रसादादाराध्य देवदेवं जनार्दनम्। ध्रुवस्य तनयः श्लिष्टिर्महाबलपराक्रमः॥२॥
तस्य प्राचीनबर्हिस्तु पुत्रस्तस्याप्युदारधीः। दिवञ्जयस्तस्य सुतस्तस्य पुत्रो रिपुः स्मृतः॥३॥
रिपोः पुत्रस्ततः श्रीमांश्चाक्षुषः कीर्तितो मनुः।
रुरुस्तस्य सुतः श्रीमानङ्गस्तस्य तथात्मजः॥४॥

अङ्गस्य वेणः पुत्रस्तु नास्तिको धर्मवर्जितः। अधर्मकारी वेणश्च मुनिभिश्च कुशैर्हतः॥५॥

श्रीहरि ने कहा—उत्तानपाद की स्त्री सुरुचि के गर्भ से उत्तम का तथा अन्य पत्नी सुनीति के गर्भ से ध्रुव का जन्म हुआ। ध्रुव ने सप्तर्षियों के उपदेशानुसार देवाधिदेव जनार्दन की उपासना किया, जिससे उनको उत्तम स्थानलाभ हो गया। ध्रुव का महाबली पराक्रमी पुत्र था शिष्टि। इसका पुत्र था प्राचीनबर्हि। उसका पुत्र था उदारधी। उसके पुत्र का नाम था दिवञ्जय। इसका पुत्र था रिपु, जिसका पुत्र था चाक्षुष। यही चाक्षुष मनु कहे गये। चाक्षुष का पुत्र था रुरु। उसका पुत्र था अंग। अंग का पुत्र था वेण। यह नास्तिक, धर्मरहित एवं अधर्मी था। मुनियों ने इसका विनाश कुश प्रहार से किया था॥१-५॥

ऊरुं ममन्थुः पुत्रार्थे ततोऽस्य तनयोऽभवत्।
ह्रस्वोऽतिमात्रः कृष्णाङ्गो निषीदेति ततोऽब्रुवन्।
निषादस्तेन वै जातो विन्ध्यशैलनिवासकः॥६॥
ततोऽस्य दक्षिणं पाणिं ममन्थुःसहसा द्विजाः।
तस्मात्तस्य सुतो जातो विष्णोर्मानसरूपधृक्॥७॥

पृथुरित्येव नामा स वेणः पुत्राद्दिवं ययौ। दुदोह पृथिवीं राजा प्रजानां जीवनाय हि॥८॥

अन्तर्धानः पृथोः पुत्रो हविर्धानस्तदात्मजः।
प्राचीनबर्हिस्तत्पुत्रः पृथिव्यामेकराड् बभौ॥९॥

उपयेमे समुद्रस्य लवणस्य स वै सुताम्। तस्मात् सुषाव सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः॥१०॥

ऋषि ने पुत्रोत्पत्ति हेतु वेण के शव का वाम ऊरु मंथन किया, इससे एक काला नाटा पुत्र जन्मा। उससे मुनियों ने कहा—"निषीद" (बैठो), तभी वह निषाद नाम से प्रसिद्ध हुआ था। यह विन्ध्य पर्वत पर रहने लगा। अब ऋषियों ने वेण के दाहिने बाहु को मथा। उससे विष्णुरूपधारी पुत्र पृथु जन्मा। वेण ने पुत्र जन्म के कारण पुन्नाम नरक से छुटकारा पाया तथा स्वर्ग चला गया। प्रजाओं की रक्षा हेतु पृथुराज ने पृथिवी का दोहन किया था। पृथुराज का पुत्र था अन्तर्धान। उसका पुत्र था हविर्धान। उसका पुत्र था प्राचीनबर्हि। इस प्राचीनबर्हि ने लवण सागर की पुत्री सामुद्री से विवाह किया, जिससे दस पुत्र उत्पन्न हुये॥६-१०॥

सर्वे प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः। अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः॥११॥

दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः। प्रजापतित्वं संप्राप्ता भार्य्या तेषाञ्च मारिषा॥१२॥

अभवद् भवशापेन तस्यां दक्षोऽभवत्ततः।
असृजन्मनसा दक्षः प्रजाः पूर्वं चतुर्विधाः॥१३॥
नावर्द्धन्त च तास्तस्य अपध्याता हरेण तु।
मैथुनेन ततः सृष्टिं कर्त्तुमैच्छत् प्रजापतिः॥१४॥

असिक्नीमावहद्भार्यां वीरणस्य प्रजापतेः। तस्य पुत्रसहस्रं तु वैरण्यां समपद्यत॥१५॥

इन प्राचीनबर्हि के दसों पुत्र प्रचेतस कहलाये। ये धनुर्विद्या में पूर्ण निष्णात थे। इन्होंने एक साथ एक ही धर्म का (लक्ष्य का) अवलम्बन लेकर तप:श्चरण किया। ये दस हजार वर्षों तक सागर जल में तप करते रहे। यह तप सागर में शयन (लेटे हुये) इन्होंने किया। इससे इनको प्रजापति का पद मिला। इन्होंने मारिषा से परिणय किया था। शिव के शाप से ग्रस्त दक्ष का मनुष्य जन्म मारिषा के ही गर्भ से हुआ। इन्होंने सर्वाग्र में चतुर्विध मानस प्रजा की सृष्टि की थी, परन्तु जब उन्होंने यह देखा कि शिव के शाप के कारण मानस प्रजा वर्द्धित नहीं हो पा रही है, तब उन्होंने विचार किया कि स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सहयोग से प्रजा वृद्धि की जाये। इस पर उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी से परिणय किया। इससे दक्ष के एक हजार पुत्रों का जन्म हुआ॥११-१५॥

नारदोक्ता भुवश्चान्तं गता ज्ञातुञ्च नागताः। दक्षः पुत्रसहस्रञ्च तेषु नष्टेषु सृष्टवान्॥१६॥

शबलास्वास्तेऽपि गता भ्रातॄणां पदवीं हर।
दक्षः क्रुद्धः शशापाथ नारदं जन्म चाप्स्यसि॥१७॥
नारदो ह्यभवत् पुत्रः कश्यपस्य मुनेः पुनः।
यज्ञे ध्वस्तेऽथ दक्षोऽपि शशापोग्रं महेश्वरम्॥१८॥
यष्ट्वा त्वामुपचारैश्च अपस्त्रक्ष्यन्ति हि द्विजाः।
जन्मान्तरेऽपि वैराणि न विनश्यन्ति शङ्कर॥१९॥

लेकिन वे एक हजार पुत्र नारद का उपदेश पाकर पृथिवी का आदि-अन्त देखने चले गये। वे लौटकर नहीं आये। इन एक हजार पुत्रों का अन्त हो जाने के कारण दक्ष ने पुन: एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया था। नारद के उपदेश के कारण वे भी अपने पूर्व भाईयों के मार्ग पर जाकर नष्ट हो गये। इससे दक्ष ने क्रोधपूर्वक नारद को शाप दिया कि "तुम मनुष्य लोक में उत्पन्न होगे।" दक्षशाप से प्रभावित होने के कारण नारद ने कश्यप ऋषि के पुत्र के रूप में जन्म लिया था। उधर दक्ष ने अपना यज्ञ नष्ट होने के कारण महादेव को शाप दिया था—"हे महादेव! जो ब्राह्मण उपचारों से तुम्हारी आराधना करें, वह जगत् में अप्रतिष्ठा पायें तथा उसका सभी से वैर रहे। जन्मान्तर में भी तुम्हारे आराधकों का वैरभाव नष्ट न हो!॥१६-१९॥

असिक्न्यां जनयामास दक्षो दुहितरं ह्यथ। षष्टिं कन्यां रूपयुतां द्वे चैवाङ्गिरसे ददौ॥२०॥
द्वे प्रादात् स कृशाश्वाय दश धर्माय चाप्यथ। त्रयोदश कश्यपाय सप्तविंश तथेन्दवे॥२१॥
प्रददौ बहुपुत्राय सुप्रभां भामिनीं तथा। मनोरमां भानुमतीं विशालां बहुदामथ॥२२॥

दक्षः प्रादान्महादेव चतस्रोऽरिष्टनेमिने।
स कृशाश्वाय च प्रादात् सुप्रजाञ्च तथा जयाम्॥२३॥
अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुद्वती।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च ता दश॥२४॥

धर्मपत्न्यः समाख्याताःकश्यपस्य वदाम्यहम्।
अदितिर्दितिर्दनुः काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः।
कद्रुः प्राधा इरा क्रोधा विनता सुरभिः खगा॥२५॥
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत।
मरुद्वत्यां मरुद्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा॥२६॥
भानोस्तु भानवो रुद्र मुहूर्त्ताच्च मुहूर्त्तजाः।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथिस्तु यामितः॥२७॥
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत। सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि॥२८॥
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः॥२९॥

इसके पश्चात् दक्ष ने असिक्नी से ६० कन्याओं को उत्पन्न किया जो स्वरूपवान् तथा तप:शील थीं। दक्ष ने दो कन्या अंगिरा को, दो कृशाश्व को, दस धर्म को, तेरह कश्यप को तथा सत्ताईस कन्या चन्द्रमा को प्रदान किया। उन्होंने सुप्रभा तथा भामिनी नामक अपनी कन्या बहुपुत्र को तथा मनोरमा, भानुमती, विशाला तथा बहुला को अरिष्टनेमि को प्रदान किया। कृशाश्व को सुप्रभा तथा जया प्रदान किया। अरुन्धती, वसु, दामी, लम्बा, भानु, मरुद्वती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या तथा विश्वा का विवाह धर्म से किया था। ये धर्म की पत्नी कही जाती हैं। कश्यप की पत्नियां हैं अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, कद्रु, प्राधा, इरा, क्रोधा, विनता, सुरभि तथा खगा। धर्म की पत्नियों से उत्पन्न सन्तानों का नाम यह है—विश्वा के गर्भ से विश्वेदेव गण, साध्या के गर्भ से साध्यगण, मरुद्वती के गर्भ से मरुद्गण, वसु से वसुगण, भानु से भानुगण, मुहूर्त्ता से मुहूर्त्तगण, लम्बा से घोष, दामी से नागवीथि की उत्पत्ति कही गयी है। इस पृथिवी का सब कुछ अरुन्धती से उत्पन्न है। संकल्पा धर्म की पत्नी थीं। इनके गर्भ से सर्वात्मा संकल्प का जन्म हुआ। आठ वसुगण के नाम हैं—आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष एवं प्रभास। ये अपने इन नामों से जाने जाते हैं॥२०-२९॥

आपस्य पुत्रो वैतुण्ड्यः श्रमः श्रान्तो ध्वनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकस्य कालनः।
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते॥३०॥
धवस्य पुत्रो द्रुहिणो हुतहव्यवहस्तथा। मनोहरायां शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा॥३१॥
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रः पुलोमजः।
अविज्ञातगतिस्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु॥३२॥
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत। तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः।
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेय इति स्मृतः॥३३॥

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना तु देवलम्।
विश्वकर्मा प्रभासस्य विख्यातो देववर्द्धकिः॥३४॥
अजैकपादहिर्बुध्नस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान्।
त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः॥३५॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा। मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च महामुने।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः॥३६॥

वसुआप के पुत्र हैं—वैतुण्ड्य, श्रम, श्रान्त, ध्वनि। ध्रुववसु के पुत्र हैं लोकसंहर्त्ता काल। सोमवसु के पुत्र हैं भगवान् वर्चा। ये ही मनुष्य को वर्चस्वी अर्थात् कान्तिमान करते हैं। मनोहरा के गर्भ से धववसु के पुत्रों का नाम है रुहिण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण, रमण। अनिल वसु की भार्या शिवा से उत्पन्न पुत्र हैं पुलोमज तथा अविज्ञात गति। अनल वसु के पुत्र हैं कुमार, जिनका जन्म शरस्तम्ब में हुआ। कुमार के तीन छोटे भ्राता हैं शाख, विशाख तथा नैगमेय। कुमार को कृत्तिकाओं ने पुत्ररूपेण पालित किया था। तभी उनको कार्त्तिकेय कहा गया। प्रत्यूष वसु की सन्तान हैं महर्षि देवल। प्रभास वसु के पुत्र हैं विख्यात देवशिल्पी विश्वकर्मा। विश्वकर्मा के चार पुत्रों का नाम है अजैकपाद, अहिर्बुध्न, त्वष्टा तथा रुद्र। रुद्र महा वीर्यवान् हैं। त्वष्टा के महातपस्वी पुत्र का नाम है विश्वरूप। एकादश रुद्रों का नाम है हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, दैवत, मृगव्याध, शर्व तथा कपाली। ये सभी त्रिभुवनेश्वर हैं॥३०-३६॥

सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो नक्षत्रसंज्ञिताः।
अदित्यां कश्यपाच्चैव सूर्या द्वादश जज्ञिरे।
विष्णुः शक्रोऽर्यमा धाता त्वष्टा पूषा तथैव च॥३७॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशुमांश्च भगश्चैव आदित्या द्वादश स्मृताः॥३८॥

प्रजापति दक्ष द्वारा चन्द्रमा को जो सत्ताईस कन्यायें प्रदान की गयी थीं, उनका नक्षत्र वाला नाम प्रसिद्ध है। कश्यप ने अदिति से बारह सूर्य को उत्पन्न किया। इन द्वादश सूर्य (आदित्यों) का नाम है—विष्णु, शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशुमान तथा भग। ये ही द्वादशादित्य हैं॥३७-३८॥

हिरण्यकशिपुर्दित्यां हिरण्याक्षोऽभवत्तदा।
सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तिपरिग्रहा॥३९॥
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः पृथुलौजसः। अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान्।
संह्लादश्चाभवत्तेषां प्रह्लादो विष्णुतत्परः॥४०॥

संह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्बाष्कल एव च।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्।
बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं वृषध्वज॥४१॥
हिरण्याक्षसुताश्चासन सर्व एव महाबलाः। उत्कुरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा।
महानाभो महाबाहुः कालनाभस्तथापरः॥४२॥

दिति के गर्भ से तथा कश्यप के औरस से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष, ये दो पुत्र जन्मे। एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। उसका नाम था सिंहिका। सिंहिका का परिणय विप्रचित्ति के साथ हुआ। हिरण्यकशिपु को चार पुत्र थे। ये सभी महाबली तथा पराक्रमी थे। इनके नाम हैं अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद तथा संह्लाद। इनमें से प्रह्लाद विष्णुभक्त कहे गये हैं। संह्लाद के तीन पुत्र थे आयुष्मान्, शिवि तथा वास्कल। प्रह्लाद का एक ही पुत्र था विरोचन। उससे बलि उत्पन्न हुआ। बलि के एक सौ पुत्रों में विरोचन सबसे बड़ा था। हिरण्याक्ष के सभी पुत्र महाबली थे। उनके नाम हैं—उत्कुर, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाभ, महाबाहु तथा कालनाभ। ये सभी दैत्य थे॥३९-४२॥

अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्धा शङ्करस्तथा। अयोमुखः शङ्कुशिराः कपिलः शम्बरस्तथा॥४३॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः। स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमा च महासुरः।
एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्॥४४॥
स्वर्भानोःसुप्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी।
औपदानवी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः॥४५॥
वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा। उभे ते तु महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः॥४६॥
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमाः।
पौलोमाः कालकञ्जाश्च मारीचतनयाः स्मृताः॥४७॥
सिंहिकायां समुत्पन्ना विप्रचित्तिसुतास्तथा।
व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः॥४८॥
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा। अञ्जको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च।
निवातकवचा दैत्याः प्रह्लादस्य कुलेऽभवन्॥४९॥

कश्यप पत्नी दनु ने अनेक पुत्रों को जन्म दिया। यथा—द्विमूर्द्धा, संकर, अयोमुख, शंकुशिरा, कपिल, संवर, एकचक्र, महाबाहु, महाबल, तारक, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महासुर पुलोमा तथा विप्रचित्ति। ये दानव कहे गये। इन सबमें विप्रचित्ति सबसे अधिक महाबली था। स्वर्भानु की कन्या थी सुप्रभा। वृषपर्वा की कन्या थी शर्मिष्ठा। इसके अतिरिक्त वृषपर्वा की अन्य दो पुत्रियां थीं। वे रूपलावण्य सम्पन्ना औपदानवी तथा हय:शिरा नाम वाली थीं। वैश्वानर की दो कन्यायें थीं। उनका नाम था पुलोमा तथा कालका। ये सभी महासौभाग्य सम्पन्ना थीं। मरीचि पुत्र कश्यप ने इनसे परिणय किया था। इनके गर्भ से साठ हजार असुरों

की उत्पत्ति कही गयी है। ये मारीचनन्दन असुरगण पौलोम तथा कालकेय कहलाये। विप्रचित्ति ने सिंहिका से जो पुत्र उत्पन्न किये, उनके नाम हैं—व्यंश, शल्य, बलवान, नभ, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृम, अंजक, नरक, कालनाभ। निवातकवच प्रभृति दैत्य प्रह्लाद के कुल के हैं॥४३-४९॥

षट्सुताश्च महासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः।
शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचि-गृध्रिका॥५०॥
शुकी शुकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान्।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्र्यपि॥५१॥
शुच्यौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः॥५२॥

ताम्रा की छः कन्यायें थीं। वे आश्चर्यजनक प्रभाव वाली थीं। ये थीं—शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवा, शुचि, गृध्रिका। शुकी से तोते, उलूक तथा काक जन्मे। श्येनी से बाज, भासी से भासगण (भास का अर्थ मुर्गा जैसे पक्षी—देखें आप्टे शब्दकोष), गृध्री से गृध्रगण, शुचि से जलचर पक्षी, सुग्रीवा से अश्व, उष्ट्र तथा गर्दभ जन्मे। इसे ताम्रा का वंश कहा गया॥५०-५२॥

विनतायास्तु पुत्रौ द्वौ विख्यातौ गरुडारुणौ।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम्॥५३॥
काद्रवेयाश्च फणिनः सहस्रममितौजसः। तेषां प्रधानो भूतेश शेषवासुकितक्षकाः॥५४॥
शङ्खः श्वेतो महापद्मः कम्बलाश्वतरौ तथा। एलापत्रस्तथा नागः कर्कोटकधनञ्जयौ।
गणं क्रोधवशं विद्धि ते च सर्वे च द्रंष्ट्रिणः॥५५॥
क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्च महाबलान्।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा॥५६॥
इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः। खगा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा।
अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वान्समजीजनत्॥५७॥
देवा एकोनपञ्चाशन्मरुतो ह्यभवन्निति। एकज्योतिर्द्विज्योतिश्च त्रिचतुर्ज्योतिरेव च॥५८॥
एकशुक्रो द्विशुक्रश्च त्रिशुक्रश्च महाबलः। ईदृक्च्यान्यादृक्सदृक्च ततः प्रतिसदृक्तथा॥५९॥
मितश्च समितश्चैव सुमितश्च महाबलः। ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा॥६०॥
अतिमित्रोऽप्यमित्रश्च दूरमित्रोऽजितस्तथा। ऋतश्च ऋतधर्म्मा च विहर्त्ता वरुणो ध्रुवः॥६१॥
विधारणश्चतुर्थोऽयं गृहमेकगणः स्मृतः। ईदृक्षश्च सदृक्षश्च एतादृक्षो मिताशनः॥६२॥
एतनः प्रसदृक्षश्च सुरतश्च महातपाः। तादृगुग्रो ध्वनिर्भासो विमुक्तो विक्षिपः सहः॥६३॥
द्युतिर्वसुर्बलाधृष्यो लाभः कामो जयी विराट्।
उद्वेषणो गणो नाम वायुस्कन्धे तु सप्तमे॥६४॥

एतत्सर्वं हरे रूपं राजानो दानवाः सुराः। सूर्यादिपरिवारेण मन्वाद्या ईजिरे हरिम्॥६५॥

॥इति गारुडे महापुराणे षष्ठोऽध्यायः॥६॥

कश्यप पत्नी विनता के दो पुत्र प्रसिद्ध हैं। इनके नाम हैं अरुण, गरुड़। सुरसा के एक हजार पुत्र अमित तेजस्वी थे। सुरसा के गर्भ से अत्यन्त वेगवान् एक सहस्र सर्पों की उत्पत्ति हुई। इनमें शेष, वासुकि, तक्षक, शंख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, कर्कोटक तथा धनंजय प्रधान हैं। ये सभी सर्प क्रोधी तथा डसने वाले हैं। कश्यप पत्नी क्रोधा ने यक्ष एवं राक्षसों को जन्म दिया। कश्यप की मुनि नामक पत्नी से अप्सराओं की उत्पत्ति हुई। कश्यप पत्नी अरिष्टा ने महान् यशपूर्ण गन्धर्वों को जन्म दिया। दिति ने मरुत् नामक ४९ देवताओं का प्रसव किया। इनके नाम हैं एकज्योतिः, द्विज्योतिः, त्रिज्योतिः, चतुर्ज्योति, एकशुक्र, द्विशुक्र, त्रिशुक्र, ईदृक्, अन्यदृक्, प्रतिसदृक्, मित, समित, सुमित, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अमित्र, दुरमित्र, अजित्, ऋत्, ऋतधर्मा, विहर्त्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण, ईदृक्ष, सदृक्ष, एतादृक्ष, एतना, प्रसदृक्ष, ऋषभ, तादृक्, उग्र, ध्वनि, भास, विमुक्त, विक्षिप, सह, द्युति, वसु, अन्याघृश्य, लाभ, काम, जयी, विराट तथा उद्वेषण। ये सभी ४९ वायुहरि के अंश हैं। राजा, दानव, देव, सूर्य, मनु प्रभृति जितने भी हैं, वे सभी सपरिवार हरि की अर्चना करते हैं॥५३-६५॥

॥छठा अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
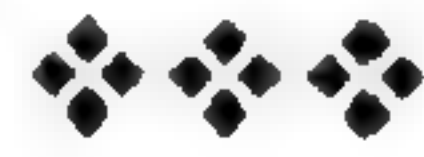
सप्तमोऽध्यायः

सूर्यपूजा विधि वर्णन

रुद्र उवाच

सूर्य्यादिपूजनं ब्रूहि स्वायम्भुवादिभिः कृतम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सारं व्यास संक्षेपतः शृणु॥१॥

रुद्र ने कहा—हे व्यास! तुम स्वायम्भुव आदि द्वारा की गई भुक्ति-मुक्तिप्रदा समस्त पूजनों की साररूप सूर्य पूजा को सुनो (जैसा श्री हरि ने कहा था)॥१॥

हरिरुवाच

सूर्य्यादिपूजां वक्ष्यामि धर्म्मकामादिकारिकाम्॥२॥

ओं सूर्य्यासनाय नमः ओं नमः सूर्य्यमूर्त्तये। ओं ह्रां ह्रीं सः सूर्य्याय नमः। ओं सोमाय नमः। ओं मङ्गलाय नमः। ओं बुधाय नमः। ओं बृहस्पतये नमः। ओं शुक्राय नमः।

ओं शनैश्चराय नमः। ओं राहवे नमः। ओं केतवे नमः। ओं तेजश्चण्डाय नमः॥३॥
आसनावाहनं पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा। स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्धपुष्पञ्च धूपकम्॥४॥
दीपकञ्च नमस्कारं प्रदक्षिणविसर्ज्जने। सूर्य्यादीनां सदा कुर्य्यादितिमन्त्रैर्वृषध्वज॥५॥

श्रीहरि ने कहा—मैं सूर्यादि की पूजन विधि को कहता हूं। जो धर्म तथा कामादि प्रदायक है। (इसमें आदि कहा गया है अर्थात् धर्म, काम तथा अर्थ प्रदायक भी है)।

पूजा—ॐ सूर्यासनाय नमः, ॐ सूर्यमूर्त्तये नमः, ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ मंगलाय नमः, ॐ बुधाय नमः, ॐ वृहस्पतये नमः, ॐ शुक्राय नमः, ॐ शनैश्चराय नमः, ॐ राहवे नमः, ॐ केतवे नमः, ॐ तेजश्चण्डाय नमः। इन मन्त्रों से आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत् प्रदान करे तथा गन्ध, पुष्प तथा दीप से अर्चना, नमस्कार तथा प्रदक्षिणा के उपरान्त विसर्जन करे। हे वृषध्वज! इस प्रकार इन मन्त्रों से सर्वदा सूर्यादि देवता की पूजा की जाये॥२-५॥

ओं हां शिवासनाय नमः। ओं हां शिवमूर्त्तये नमः। ओं हां हृदयाय नमः। ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा। ओं हूं शिखायै वषट्। ओं हैं कवचाय हुं। ओं हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं हः अस्त्राय फट्। ओं हां सद्योजाताय नमः। ओं ह्रीं वामदेवाय नमः। ओं हूं अघोराय नमः। ओं हैं तत्पुरुषाय नमः। ओं हौं ईशानाय नमः। ओं हां गौर्य्यै नमः। ओं हां गुरुभ्यो नमः। ओं हां इन्द्राय नमः। ओं हां चण्डाय नमः। ओं हां अघोराय नमः। ओं वासुदेवासनाय नमः। ओं वासुदेवमूर्त्तये नमः। ओं अं ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमः। ओं आं ओं नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः। ओं अं ओं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः। ओं अं ओं नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः। ओं नारायणाय नमः। ओं तत्सद्ब्रह्मणे नमः। ओं हूं विष्णवे नमः। ओं क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः। ओं भूः ओं नमो भगवते वराहाय नमः। ओं कं टं पं शं वैनतेयाय नमः। ओं जं खं वं सुदर्शनाय नमः। ओं खं ठं फं पं गदायै नमः। ओं वं लं मं क्षं पाञ्चजन्याय नमः। ओं घं ढं भं हं श्रियै नमः। ओं गं डं वं सं पुष्टयै नमः। ओं धं षं वं सं वनमालायै नमः। ओं सं दं लं श्रीवत्साय नमः। ओं ठं चं भं यं कौस्तुभाय नमः। ओं गुरुभ्यो नमः। ओं इन्द्रादिभ्यो नमः। ओं विष्वक्सेनाय नमः॥६॥

ओं हां शिवासनाय नमः से आसन, ओं हां शिवमूर्त्तये नमः से आवाहन करके हरि की अर्चना करे। यथा—ओं हां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं हूं शिखायै वौषट्, ओं हैं कवचाय हुं, ओं हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं हः अस्त्राय फट्। यहां पर मूल में जो मन्त्र लिखे हैं उनसे शिव, विष्णुशक्ति सरस्वती की तथा सरस्वती प्रभृति की अर्चना करे। यहां श्लोकांकित ६ में सभी मन्त्र हैं। उनका अनुवाद संभव नहीं है। अतएव यथावत् मूल में लिखे अनुसार ही उनका प्रयोग करें॥६॥

आसनादीन् हरेरेतैर्मन्त्रैर्दद्याद् वृषध्वज।
विष्णुशक्त्याः सरस्वत्याःपूजां शृणु शुभप्रदाम्॥७॥

ओं ह्रीं सरस्वत्यै नमः। ओं ह्रां हृदयाय नमः। ओं ह्रीं शिरसे नमः। ओं ह्रूं शिखायै नमः। ओं ह्रैं कवचाय नमः। ओं ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः। ओं ह्रः अस्त्राय नमः॥८॥

श्रद्धाः ऋद्धिः कला मेधा तुष्टिः पुष्टिः प्रभा मतिः।
ओंकाराद्या नमोऽन्ताश्च सरस्वत्याश्च शक्तयः॥९॥

ओं क्षेत्रपालाय नमः। ओं गुरुभ्यो नमः। ओं परमगुरुभ्यो नमः॥१०॥

हे वृषध्वज! हर के मन्त्र से ही हरि को आसनादि देना चाहिये। तत्पश्चात् विष्णुशक्ति सरस्वती की पूजाविधि सुनो। यह शुभ होती है। "ओं ह्रीं सरस्वत्यै" इत्यादि मूल में लिखे मन्त्रों से सरस्वती की अर्चना करनी चाहिये। इनकी अष्टशक्तियां हैं—श्रद्धा, कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा एवं मति। इनमें से प्रत्येक के आदि में ओंकार तथा अन्त में नमः लगाकर पूजा करे। ओं क्षेत्रपालाय नमः से क्षेत्रपाल की, ओं गुरुभ्यो नमः से गुरु की, ओं परमगुरुभ्यो नमः से परम गुरु की पूजा करनी चाहिये॥७-१०॥

पद्मस्थायाः सरस्वत्या आसनाद्यं प्रकल्पयेत्।
सूर्य्यादीनां स्वकैर्मन्त्रैः पवित्रारोहणं तथा॥११॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

तदनन्तर श्वेत रूपधारिणी सरस्वती को आसन आदि उपहार प्रदान करे। सूर्य आदि देवता का अपने-अपने मन्त्र से अर्चन तथा पवित्रारोहण करे॥११॥

॥सातवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

विष्णु की अर्चना हेतु मण्डल अंकन प्रणाली

हरिरुवाच

भूमिष्ठे मण्डपे स्नात्वा मण्डले विष्णुमर्चयेत्। पञ्चरङ्गिकचूर्णेन वज्रनाभं तु मण्डलम्॥१॥
षोडशैः कौष्ठकैस्तत्र सम्मितं रुद्र कारयेत्। चतुर्थपञ्चकोणेषु सूत्रपातं तु कारयेत्॥२॥
कोणसूत्रादुभयतः कोणा ये तत्र संस्थिताः। तेषु चैव प्रकुर्वीत सूत्रपातं विचक्षणः॥३॥
तदनन्तरकोणेषु एवमेव हि कारयेत्। प्रथमा नाभिरुद्दिष्टा मध्ये रेखाप्रसङ्गमे॥४॥
अन्तरेषु च सर्वेषु अष्टौ चैव तु नाभयः। पूर्वमध्यमनाभिभ्यामथ सूत्रं तु भ्रामयेत्॥५॥

अन्तरेषु द्विजश्रेष्ठः पादोनं भ्रामयेद्धर। अनेन नाभिसूत्रस्य कर्णिकां भ्रामयेच्छिव॥६॥
कर्णिकाया द्विभागेन केशराणि विचक्षणः। तदग्रेण सदा विद्वान्दलान्येव समालिखेत्॥७॥

श्रीहरि ने कहा—इसके पश्चात् साधक स्नान कृत्य सम्पन्न करके भूमिस्थित मण्डप का निर्माण करे। उसमें भगवान् विष्णु की अर्चना करनी चाहिये। पांच रंग के चूर्ण से वज्रनाभ मण्डल तैयार करे। हे रुद्र! मण्डल को इस प्रकार से चूर्णों द्वारा बनाये—एक हाथ का चतुरस्र बनाकर उसे सोलह कोष्टकों में बांटे। चतुर्थ तथा पांचवें कोण में सूत्रपात करके रेखा का अंकन करना चाहिये। कोणसूत्र के दोनों पार्श्व में जो सब कोण हैं, उनमें भी सूत्रपात करके रेखा देनी चाहिये। इस प्रकार से कोण तथा सूत्र—दोनों के नाभिस्थल में सूत्रपात से रेखांकन करे। अब यह देखना चाहिये कि मध्य नाभि (जहां कोण एवं सूत्र, ये दोनों मिलते हैं, वह मिलन की जगह ही नाभि कही जाती है) के चारों ओर ऐसी पांच नाभि बनी हैं। अब मध्यनाभि से लेकर पूर्वनाभि तक सूत्रपात करे। अब इस सूत्र को भ्रामित करने पर वृत्ताकृति रेखा बनेगी। हे हर! पूजक ब्राह्मणश्रेष्ठ व्यक्ति इस वृत्त का एक चौथाई छोड़ कर सूत्र को भ्रामित करे। इससे वृत्ताकृति कर्णिकाक्षेत्र बन जायेगा। कर्णिका के दो भाग तक केशर क्षेत्र रहेगा। केशर के आगे दल बनाये॥१-७॥

सर्वेषु नाभिक्षेत्रेषु मानेनानेन सुव्रत। पद्मानि तानि कुर्वीत देशिकः परमार्थवित्॥८॥
आदिसूत्रविभागेन द्वाराणि परिकल्पयेत्। द्वारशोभां तथा तत्र तदर्द्धेन तु कल्पयेत्॥९॥

हे सुव्रत! जो व्यक्ति परमतत्व को जानने वाले हैं, ऐसे साधक लोग आठ नाभि स्थान में उक्त परिमाण में आठ पद्मक्षेत्र बनाकर पद्म रचें। इसके पश्चात् चतुरस्र रेखा का विभाग करके द्वारों को अंकित करे। उसके आधे में शोभा तथा उपशोभा रचे। चतुरस्र के चारों ओर द्वार, शोभा तथा उपशोभा बनाये॥८-९॥

कर्णिकां पीतवर्णेन सितरक्तादिकेशरान्। अन्तरं नीलवर्णेन दलानि असितेन च॥१०॥
कृष्णवर्णेन रजसा चतुरस्रं प्रपूरयेत्। द्वाराणि शुक्लवर्णेन रेखाः पञ्च च मण्डले॥११॥

सिता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम्।
कृत्वैव मण्डलञ्चादौ न्यासं तत्रार्चयेद्धरिम्॥१२॥
हृन्मध्ये तु न्यसेद्विष्णुं मध्ये सङ्कर्षणं तथा।
प्रद्युम्नं शिरसि न्यस्य शिखायामनिरुद्धकम्॥१३॥
ब्रह्माणं सर्वगात्रेषु करयोः श्रीधरं तथा।
अहं विष्णुरिति ध्यात्वा कर्णिकायां न्यसेद्धरिम्॥१४॥

न्यस्येत्सङ्कर्षणं पूर्वे प्रद्युम्नञ्चैव दक्षिणे। अनिरुद्धं पश्चिमे च ब्रह्माणञ्चोत्तरे न्यसेत्॥१५॥

श्रीधरं रुद्रकोणेषु इन्द्रादीन्दिक्षु विन्यसेत्।
ततोऽभ्यर्च्य च गन्धाद्यैः प्राप्नुयात्परमं पदम्॥१६॥

॥इति गारुडे महापुराणे अष्टमोऽध्यायः॥८॥

(पीले चूर्ण से) पीतवर्ण से कर्णिका, केशर को श्वेत अथवा रक्तचूर्ण से बनाकर सभी सन्धियों को नीलवर्ण चूर्ण से रंजित करे। पद्मपत्रों को कृष्णवर्ण चूर्ण से सजाये। चतुरस्र का जो बीच का स्थान है, उसे कृष्णवर्ण चूर्ण द्वारा तथा द्वारों को श्वेत वर्ण चूर्ण से बनाये। मण्डल के बाहरी भाग में पांच रेखायें बनानी चाहियें। एक रेखा शुक्ल चूर्ण से, दूसरी रक्त चूर्ण से, तीसरी पीत चूर्ण से, चतुर्थ कृष्ण चूर्ण से, पंचम रेखा श्याम चूर्ण से बनाये। इस मण्डल के मध्य में हरि की पूजा की जानी चाहिये। पहले न्यास करे। यथा—

ॐ विष्णवे नमः - हृदि,
ॐ संकर्षणाय नमः - कण्ठ,
ॐ प्रद्युम्नाय नमः - मस्तक,
ॐ अनिरुद्धाय नमः - शिखा,
ॐ ब्रह्मणे नमः - सभी अंग,
ॐ श्रीधराय नमः - हस्तद्वय

इस प्रकार से अपने देह का न्यास करके अपनी आत्मा में सूर्य के स्वरूप का ध्यान करके कर्णिका में श्रीहरि की स्थापना करनी चाहिये। मण्डल के पूर्व द्वार में संकर्षण, दक्षिण द्वार में प्रद्युम्न, पश्चिम द्वार में अनिरुद्ध, उत्तर द्वार में ब्रह्मा, ईशान कोण में श्रीधर की स्थापना करके पूर्वदिक् में इन्द्र, अग्निकोण में अग्नि, दक्षिणदिक् में यम, नैर्ऋत्कोण में निर्ऋति, पश्चिमदिक् में वरुण, वायुकोण में वायु, उत्तरदिक् में कुबेर, ईशान कोण में ईशान की स्थापना करे। यह आठ दिक्पाल स्थापना है। इनकी गंध आदि उपहार से पूजा की जानी चाहिये। मानव इस अर्चना द्वारा परमपद लाभ करता है॥१०-१६॥

॥आठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

दीक्षा पद्धति

हरिरुवाच

समये दीक्षितः शिष्यो बद्धनेत्रस्तु वाससा। अष्टाहुतिशतं तस्य मूलमन्त्रेण होमयेत्॥१॥
द्विगुणं पुत्रके होमं त्रिगुणं साधके मतम्। निर्वाणदेशिके रुद्र चतुर्गुणमुदाहृतम्।
गुरुविष्णुद्विजस्त्रीणां हन्ता बध्यस्त्वदीक्षितैः॥२॥

श्रीहरि ने कहा—नियम का जो पालन करे वह समयी साधक पहले दीक्षित किया जाये। वस्त्र से उसके नेत्रों को बांधे तथा मूलमन्त्र द्वारा ८०० आहुति से होम करे। हे रुद्र! जो पुत्र चाहता है, वह १६००

आहुति प्रदान करे। जो साधन में सफलता चाहता है, वह २४०० आहुति तथा जो निर्वाण चाहता है, उसके लिये ३२०० आहुति देने का विधान है। गुरु, विष्णु, ब्राह्मण तथा स्त्री लोगों से द्वेष तथा हिंसा करने वाला दीक्षा के लिये अयोग्य कहा गया है॥१-२॥

अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि धर्माधर्मक्षयङ्करीम्। उपवेश्य बहिः शिष्यान्धारणां तेषु कारयेत्॥३॥

वायव्या कलया रुद्र शोच्यमानान्विचिन्तयेत्।
आग्नेय्या दह्यमानांश्च प्लावितानम्भसा पुनः॥४॥
तेजस्तेजसि तं जीवमेकीकृत्य समाक्षिपेत्।
प्रणवं चिन्तयेद् व्योम्नि शरीरेऽन्यत्तु कारणम्॥५॥

एकैकं योजयेत्तत्र क्षेत्रज्ञं देहकारणात्। उत्पाद्य योजयेत्पश्चादेकैकं वृषभध्वज॥६॥

मण्डलादिष्वशक्तस्तु कल्पयित्वाऽर्चयेद्धरिम्।
चतुर्द्वारं भवेत्तच्च ब्रह्मतीर्थादनुक्रमात्॥७॥

अब मैं धर्माधर्म क्षयकारी दीक्षा कहता हूं। हे रुद्र! शिष्यों को बाहर बैठाकर उनमें यह धारणा गुरु करे। यथा—वायवीय कला से अर्थात् वायुबीज 'यं' से शिष्य का शरीर शुष्क किया जा रहा है। आग्नेय कला अर्थात् 'रं' बीज द्वारा वह दह्यमान हो रहा है। (अब इस भावना द्वारा दह्यमान होने से उसके देह का भस्म जो है) वह वारुणमला रूप 'वं' बीज द्वारा आप्लावित हो गया (बह गया)। अब इस देहबोध के शुद्ध हो जाने के पश्चात् शिष्य पर गुरु तेज: का निक्षेप करके जीवात्मा तथा परमात्मा में भेदज्ञान को नष्ट करके ऐक्यज्ञान का उसमें समावेश करें। इसके पश्चात् प्रणव का चिन्तन करते हुये आकाश तत्व का आकर्षण करें। इसी प्रकार से एक-एक महाभूत का आकर्षण करते हुये शिष्य के नवीन देह का (भावना द्वारा) निर्माण करना चाहिये। अब उस नूतन देह में गुरु आत्मा की स्थापना करें। हे वृषध्वज! जो व्यक्ति किसी कारण से मण्डल आदि न बना सके, वह इसी प्रकार पूर्वोक्त क्रमेण मानसिक मण्डल निर्माण करे। उसी में प्रभु श्रीहरि की अर्चना करनी चाहिये। यह मानस मण्डल भी चार द्वारों वाला तथा ब्रह्मस्वरूप तीर्थरूप कहा गया है॥३-७॥

हस्तं पद्मं समाख्यातं पत्राण्यङ्गुलयः स्मृताः।
कर्णिकातलहस्तं तु नखान्यस्य तु केसराः॥८॥
तत्रार्चयेद्धरिं ध्यात्वा सूर्य्येन्द्वग्न्यन्तरेव च।
तं हस्तं पातयेन्मूर्ध्नि शिष्यस्य तु समाहितः॥९॥

अब गुरु को चाहिये कि हाथ (हथेली) को पद्मरूप, अंगुलियों को उसके पत्ते के समान, हस्ततल को कर्णिका के समान तथा सभी नखों को केसररूप जानकर इस करकमल पर हरि का ध्यान तथा उनकी आराधना (मानसरूपेण) करे। तदनन्तर सूर्य, अग्नि तथा चन्द्र का ध्यान करके अपना यह हाथ समाहित होकर शिष्य के शिर पर रखे॥८-९॥

हस्ते विष्णुःस्थितोः यस्माद्विष्णुहस्तस्ततस्त्वयम्।
नश्यन्ति स्पर्शनात्तस्य पातकान्यखिलानि च॥१०॥

गुरुः शिष्यं समभ्यर्च्य नेत्रे बद्धे तु वाससा।
देवस्य प्रमुखं कृत्वा पुष्पाणि मोचयेत्ततः।
पुष्पं निपतितं यत्र मूर्धा देवस्य शार्ङ्गिणः॥११॥
तन्नाम कारयेत्तस्य स्त्रीणां नामाङ्कितं स्वकम्।
शूद्राणां दाससंयुक्तं कारयेत्तु विचक्षणः॥१२॥

॥इति गारुडे महापुराणे नवमोऽध्यायः॥९॥
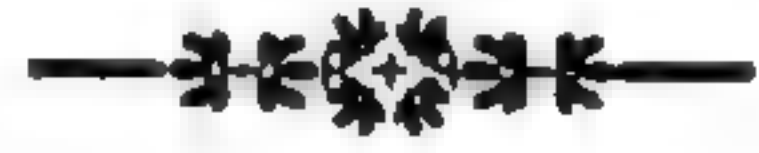
हाथों में स्वयं विष्णु अवस्थान करते हैं, अतः यह गुरु का हाथ वास्तव में पूर्णतः विष्णु का ही रूप है। इस हाथ के द्वारा शिष्य का शिरस्पर्श जब गुरु करता है, तब शिष्य के सभी पातक नष्टप्रायः हो जाते हैं। गुरु को चाहिये कि वह शिष्य को इस प्रकार अर्चित करके उसके नेत्रों को वस्त्र से बांधे। तत्पश्चात् देवता को पुष्पों से भरी पुष्पांजलि अर्पित करे। जहां अंजलि का पुष्प अर्पित किया जायेगा, वही स्थान विष्णु का मस्तक है। इसके पश्चात् गुरु को चाहिये कि वह शिष्य का नामकरण करे। ब्राह्मणों आदि के नाम के आगे तदनुरूप शर्मा आदि लगाये। स्त्री के नाम के आगे उसके पति की उपाधि लगाये। तथापि शूद्र को दीक्षा दी गयी हो तब उसके नाम के आगे 'दास' उपाधि लगाये॥१०-१२॥

॥नौवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
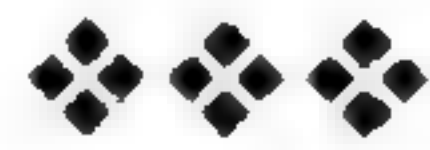
दशमोऽध्यायः

देवी पूजा

हरिरुवाच

देवीपूजां प्रवक्ष्यामि स्थण्डिलादिषु सिद्धये। ओं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः। श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः क्रमाद्धृदयञ्च शिरः शिखाम्। कवचं नेत्रमस्त्रञ्च आसनं मूर्त्तिमर्चयेत्॥१॥

**मण्डले पद्मगर्भे च चतुर्द्वारि रजोऽन्विते।
चतुःषष्ट्यन्तमष्टादि खाक्षेखान्यादि मण्डलम्।
खीक्षीन्दुसूर्य्यगं सर्वं खादिवेदेन्दुवर्त्तनात्॥२॥
लक्ष्मीमङ्गानि चैकस्मिन्कोणे दुर्गां गणं गुरुम्।
क्षेत्रपालमथाग्न्यादौ होमाज्जुहाव कामभाक्।**

ओं घं टं डं हं महालक्ष्म्यै नमः। अनेन पूजयेल्लक्ष्मीं पूर्वोक्तपरिवारकैः॥३॥

ओं सौं सरस्वत्यै नमः। ओं ह्रीं सौं सरस्वत्यै नमः।
ओं ह्रीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा। ओं ह्रीं सरस्वत्यै नमः॥४॥

।इति गारुडे महापुराणे दशमोऽध्यायः॥१०॥

श्रीहरि ने कहा—अब देवीपूजा कहता हूं। मन्त्रसिद्धि के लिये यह पूजा स्थण्डिल आदि पर की जाये। इसका मन्त्र यह है—

श्री हृदयाय नमः, श्री शिरसे स्वाहा, श्रूं शिखायै वषट्, श्रैं कवचाय हुं, श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, श्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट्। इस करांगन्यास को सविधि करने के अनन्तर पूजामन्त्र से पूजा करे। यथा—"ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै नमः।" पद्मगर्भ वाला चार द्वार युक्त मण्डल निर्माण करके इसे पांच रंगों के चूर्णों से पूर्वोक्त प्रकार से रंग कर सजाये। तब पूजा करनी चाहिये। मण्डल के मध्य में लक्ष्मी एवं उनके अंगदेवताओं की पूजा करने के उपरान्त उसके कोणों में दुर्गा एवं गणदेवताओं की पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् अग्नि आदि चारों कोणों में गुरु तथा क्षेत्रपाल की पूजा करे। अन्त में होम करे। इससे सभी अभीष्टों की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात्—

"ॐ घं टं डं हं महालक्ष्म्यै नमः" से लक्ष्मीपूजा उनके परिवार के साथ करे। सर्वान्त में सरस्वती पूजा करे।

यथा—ओं सौं सरस्वत्यै नमः, ओं ह्रीं सौं सरस्वत्यै नमः, ओं ह्रीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा, ओं ह्रीं सरस्वत्यै नमः॥१-४॥

॥दसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
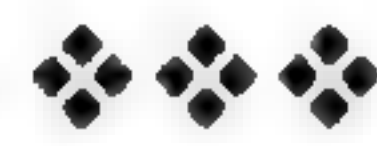
एकादशोऽध्यायः

नव व्यूहार्चन

हरिरुवाच

नवव्यूहार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं कश्यपाय हि।
जीवमुत्क्षिप्य मूर्द्धन्या नाभ्यां व्योम्नि निवेशयेत्॥१॥
ततो रमिति बीजेन दहेद्भूतात्मकं वपुः। यमित्यनेन बीजेन तच्च सर्वं विनाशयेत्॥२॥
लमित्यनेन बीजेन प्लावयेत् सचराचरम्। वमित्यनेन बीजेन चिन्तयेदमृतं ततः॥३॥
ततो बुद्बुदमध्ये तु पीतवासाश्चतुर्भुजः। अहं मतस्तथात्मानं ध्यानेन परिचिन्तयेत्॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—गरुड़ ने कश्यप से जिस नवव्यूह की अर्चना का प्रसंग कहा था, उसे सुनिये। सर्वप्रथम जीवात्मा को मस्तक में स्थापित करके उसे वहां से आकाश में ले जाये। तब 'रं' बीज से अपनी पंचभौतिक देह को (जीवात्मा रहित देह को) भावना द्वारा दग्ध करे। 'यं' बीज से (वायु बीज से) समस्त देहभस्म को उड़ाकर विनष्ट करे। (यह भी भावना साध्य है) तत्पश्चात् 'लं' बीज से समस्त नव देह को स्थापित एवं अमृत प्लावित होता चिन्तन करके 'वं' बीज से पुनः स्वयं को जीवन से युक्त होने की भावना करे। तदनन्तर हृदय में आत्मा को पीताम्बर युक्त तथा चतुर्भुज चिन्तन करे। यह ध्यान है॥१-४॥

मन्त्रन्यासं ततः कुर्य्यात् त्रिविधं करदेहयोः। द्वादशाक्षरबीजेन उक्तबीजैरनन्तरम्।
षडङ्गेन ततः कुर्य्यात्साक्षाद्येन हरिर्भवेत्॥५॥
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य मध्याङ्गुष्ठं दले न्यसेत्। मध्ये बीजद्वयं न्यस्य न्यसेदङ्गे ततः पुनः॥६॥
हृच्छिरसि शिखावर्म्मवक्त्राक्ष्युदरपृष्ठतः।
बाह्वोश्च करयोर्जान्वोः पादयोश्चापि विन्यसेत्॥७॥
पद्माकारौ करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठं निवेशयेत्। चिन्तयेत्तत्र सर्वेशं परं तत्त्वमनामयम्॥८॥

इसके पश्चात् मन्त्रन्यास, करन्यास तथा अंगन्यास करना चाहिये। द्वादशाक्षर मन्त्र के प्रत्येक वर्ण द्वारा मन्त्र न्यास करके षडङ्गन्यास करे। इससे साधक नारायणतुल्य हो जाता है। यह न्यास दाहिने हाथ के अंगूठे से लगाकर मध्य वाली उंगली तक करना चाहिये। तदनन्तर मध्य में दो बीज का न्यास करके इन बीजों द्वारा पुनः अभ्यास करना होगा। इसके पश्चात् साधक हृदय, मस्तक, शिखा, दोनों कवच, मुख, नेत्र, उदर, पृष्ठ, बाहु द्वय, करद्वय, जानुद्वय तथा दोनों पैरों में न्यास करे। अब दोनों हथेली को कमल की आकृति का बनाकर मध्य में अंगूठे को लगाये। इस मुद्रा से परमतत्वरूप अनामय सर्वेश्वर नारायण का चिन्तन करना चाहिये॥५-८॥

क्रमाच्चैतामि बीजानि तर्जन्यादिषु विन्यसेत्।
ततो मूर्द्धाक्षिवक्त्रेषु कण्ठेषु हृदये तथा।
नाभौ गुह्ये तथा जान्वोः पादयोर्विन्यसेत् क्रमात्॥९॥
पाण्योः षडङ्गबीजानि न्यस्य काये ततो न्यसेत्।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं विन्यसेद् बीजपञ्चकम्॥१०॥
करमध्ये नेत्रबीजमङ्गन्यासेऽप्ययं क्रमः। हृदये हृदयं न्यस्य शिरः शिरसि विन्यसेत्॥११॥
शिखायां तु शिखां न्यस्य कवचं सर्वतस्तनौ।
नेत्रे नेत्रे विधातव्ये अस्त्रञ्च करयोर्द्वयोः॥१२॥

इन बीजों का न्यास क्रमेण तर्जनी आदि उंगलियों में करना चाहिये। तदनन्तर मस्तक, चक्षु, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, जानुद्वय तथा पादद्वय में इन बीजों का न्यास करे। अब हस्तद्वय में करन्यास तथा षडङ्गन्यास सम्पन्न करके अपने शरीर में इन बीजों का न्यास आवश्यक है। अंगूठे से लगाकर कनिष्ठा उंगली पर्यन्त पञ्चबीज न्यास करके हथेली में नेत्रबीज का न्यास करे। यही अंगन्यास का विधि-विधान है।

इन बीजों द्वारा उन-उन स्थानों का न्यास करे। यथा—हृदयाय नमः से हृदय का, इसी प्रकार शिरसे से शिर का, शिखायै से शिखा का, कवचाय से कवच का, नेत्रत्रयाय से नेत्रों का, करतलपृष्ठाभ्यां इत्यादि से दोनों हथेली का न्यास करना चाहिये॥९-१२॥

तेनैव च दिशो बद्ध्वा पूजाविधिमथारभेत्।
हृदये चिन्तयेत् पूर्वं योगपीठं समाहितः॥१३॥
धर्मंज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यञ्च यथाक्रमम्। आग्नेयादौ च पूर्वादावधर्मादींश्च विन्यसेत्॥१४॥
एभिः परिच्छन्नतनूं पीठभूतं तदात्मकम्।
अनन्तं विन्यसेत् पश्चात् पूर्वकायोन्नतं स्थितम्॥१५॥

'फट्' से दिशाबन्धन करके तब पूजाविधि का आचरण प्रारम्भ करना होता है। सर्वाग्र में समाहित होकर हृदयस्थल में योगपीठ का चिन्तन करना चाहिये। अग्नि आदि कोण से प्रारम्भ करके धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य को एक-एक कोण में स्थापित करे। इसी प्रकार पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके इस प्रकार न्यास करे। यथा—

अग्नि कोण—ॐ धर्माय नमः, नैर्ऋत्कोण—ॐ ज्ञानाय नमः, वायु कोण—ॐ वैराग्याय नमः, ईशान कोण—ॐ ऐश्वर्याय नमः।

पूर्व दिशा—ॐ अधर्माय नमः, दक्षिण—ॐ अज्ञानाय नमः, पश्चिम—ॐ अवैराग्याय नमः, उत्तर—ॐ अनैश्वर्याय नमः।

इस न्यास से साधक पूजक शुद्ध देह वाला हो जाता है। वह स्वयं की पीठरूपेण भावना करके अपने हृदय में अनन्त देव का चिन्तन करके शरीर को उन्नत करके बैठ जाये॥१३-१५॥

ततो विद्यासरोजातं दलाष्टसमदिग्दलम्। सिताब्जं शतपादाढ्यं विप्रकीर्णोर्ध्वकर्णिकम्॥१६॥
ध्यात्वा वेदादिना पश्चात् सूर्य्यसोमानलात्मनाम्।
मण्डलानि क्रमादेवमुपर्य्युपरि चिन्तयेत्॥१७॥
ततः पूर्वादिदिक्संस्थाः शक्तीः केशरगोचराः।
विमलाद्या न्यसेदष्टौ नवमीं कर्णिकागताम्॥१८॥
एवं ध्यात्वा समभ्यर्च्य योगपीठमनन्तरम्।
मनसाऽऽवाह्य तत्रेशं हरिं शार्ङ्गं न्यसेत् पुनः॥१९॥
हृदयादीनि पूर्वादिचतुर्दिग्दलयोगतः। मध्ये नेत्रं तु कोणेषु अस्त्रमन्त्रं न्यसेत्ततः॥२०॥

इसके पश्चात् विद्यारूपी सरोवर से उत्पन्न, अष्टदिक् दल वाले, चारों ओर समान परिमाण वाले, ऊर्ध्व कर्णिका युक्त, शतपत्र श्वेतपद्म खिला है, यह चिन्तन करना चाहिये। इसके पश्चात् एक के ऊपर एक चन्द्र-सूर्य-अग्निमय तीन मण्डल का ध्यान क्रमशः करना होगा। इसके अनन्तर पूर्वादि आठों दिशाओं में आठ शक्तियों का न्यास करके कर्णिका में नवम शक्ति का न्यास किया जाये। योग पीठ में इस प्रकार से ध्यान तथा पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् मन से ईश्वर शार्ङ्गधनुषधारी श्रीहरि का आवाहन करने के अनन्तर

उनको इसी पीठ में न्यस्त करे। अब पूर्वदल में हृदयाय नमः का, दक्षिण दल में शिरसे स्वाहा का, पश्चिम दल में शिखायै वषट् का, उत्तर दिशा के दल में कवचाय हुं का तथा मध्य में नेत्रत्रयाय वौषट् का, कोणों में अस्त्राय फट् का न्यास करना आवश्यक है॥१६-२०॥

सङ्कर्षणादिबीजानि पूर्वादिक्रमयोगतः। द्वारि पूर्वे परे चैव वैनतेयं तु विन्यसेत्॥२१॥
सुदर्शनं सहस्त्रारं दक्षिणे द्वारि विन्यसेत्। श्रियं दक्षिणतो न्यस्य लक्ष्मीमुत्तरतस्तथा॥२२॥
द्वार्य्युत्तरे गदां न्यस्य शङ्खं कोणेषु विन्यसेत्।
देवदक्षिणतः शार्ङ्गं वामे चैव सुधीर्न्यसेत्॥२३॥
तद्वत् खड्गं तथा चक्रं न्यसेत् पार्श्वद्वयोर्द्वयम्।
ततोऽन्तर्लोकपालांश्च स्वदिग्भेदेन विन्यसेत्॥२४॥
वज्रादीन्यायुधांश्चैव तथैव विनिवेशयेत्। ऊर्ध्वं ब्रह्म तथाऽनन्तमधश्च परिचिन्तयेत्॥२५॥
सर्वं धात्वेति संपूज्य मुद्राः सन्दर्शयेत्ततः। अञ्जलिः प्रथमा मुद्रा क्षिप्रं देवप्रसादनी॥२६॥

पूर्व द्वार में ॐ वैनतेयाय नमः का, पश्चिम द्वार में ॐ सुदर्शनाय नमः का, दक्षिण द्वार में ॐ सहस्राराय नमः का तथा ॐ श्रियै नमः का, उत्तर द्वार में ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ गदायै नमः का, कोणों में ॐ शंखाय नमः का, देवता के दाहिने तथा बायें भाग में ॐ शार्ङ्गाय नमः का, पुनः दक्षिण पार्श्व में ॐ खड्गाय नमः का, वाम पार्श्व में ॐ चर्माय नमः का, मण्डल मध्य में पूर्वादिदिक् से लगाकर उत्तर दिशा तक इन्द्रादि अष्ट द्वारपालों की पूजा करे। इसी प्रकार से इसके अनन्तर वज्रादि अस्त्रों की पूजा करके 'ॐ ब्रह्मणे नमः' से ऊर्ध्व में तथा 'ॐ अनन्ताय नमः' से अधः में पूजा सम्पन्न करे। इन देवता लोगों का ध्यान-पूजन समापन करके मुद्रा प्रदर्शन करना चाहिये। अंजलि बंधन पहली मुद्रा है। इसके प्रदर्शन द्वारा देवता शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं॥२१-२६॥

वन्दनी हृदयासक्ता सार्धं दक्षिण उन्नता। ऊर्ध्वाङ्गुष्ठा वाममुष्टिर्दक्षिणाङ्गुष्ठबन्धनः॥२७॥
सव्यस्य तस्य चाङ्गुष्ठो यः स ऊर्ध्वः प्रकीर्त्तितः।
तिस्त्रः साधारणा ह्येता मूर्त्तिभेदेन कल्पिताः॥२८॥
कनिष्ठादिप्रयोगेण अष्टौ मुद्रा यथाक्रमम्। अष्टानां पूर्वबीजानां क्रमशस्त्ववधारयेत्॥२९॥

यही मुद्रा जब हृदय से स्पर्श करके होती है, (अर्थात् हृदय से अंजलि सटाये) तब वह वन्दनी मुद्रा हो जाती है। इस मुद्रा (अंजलि मुद्रा) का दाहिना भाग जरा ऊंचा करके बायें हाथ की मुट्ठी बांधे तथा अंगूठों को ऊर्ध्व में रखे। दाहिने हाथ को अंगूठे से बांधे। पूर्ववत् मुद्रा करके दाहिना अंगूठा ऊंचा रखना चाहिये। ये तीन मुद्रायें करते समय मन में देवता की मूर्त्ति की भी भावना करनी चाहिये। कनिष्ठा आदि उंगलियों के बंधन से ये आठ प्रकार की मुद्रायें क्रमशः गठित हो जाती हैं। इन मुद्राओं के साथ पहले कहे आठ बीज युक्त करें॥२७-२९॥

अङ्गुष्ठेन कनिष्ठान्तं नामयित्वाऽङ्गुलित्रयम्।
मुद्रेयं नरसिंहस्य न्युब्जं कृत्वा करद्वयम्॥३०॥

सव्यहस्तं तथोत्तानं कृत्वोर्ध्वं भ्रामयेत् शनैः।
नवमीयं स्मृता मुद्रा वराहाभिमता सदा॥३१॥
मुष्टिद्वयमथोत्तानमृज्वेकैकेन मोचयेत्। कुञ्चयेत् सर्वमुद्राश्च अङ्गमुद्रेयमुच्यते॥३२॥
मुष्टिद्वयमथो बद्ध्वा एवमेवानुपूर्वशः। दशानां लोकपालानां मुद्राश्च क्रमयोगतः॥३३॥
स्वरमाद्यं द्वितीयञ्च उपान्त्यञ्चान्तमेव च।
वासुदेवो बलः कामो ह्यनिरुद्धो यथाक्रमम्॥३४॥
प्रणवस्तत्सदित्येतत् हुं क्ष्रौं भूरिति मन्त्रकाः।
नारायणस्तथा ब्रह्मा विष्णुः सिंहो वराहराट्॥३५॥
सितारुणहरिद्राभा नीलश्यामललोहिताः। मेघाग्निमधुपिङ्गाभा वर्णतो नवनामकाः॥३६॥

दोनों हथेली अधोमुख करके अंगूठे से मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा को सटाये। यह नरसिंह मुद्रा है। दाहिनी हथेली उत्तान करके ऊपर की ओर पुनः-पुनः घुमाये। यह वराह देव की प्रिय मुद्रा है। यह नवीं मुद्रा है। दोनों हथेली की मुट्ठी उत्तान रख कर यथाक्रमेण एक उंगली सीधी करके दोनों मुट्ठी खोले। पुनः सभी उंगलियों को सिकोड़ ले। यह अंगमुद्रा है। पूर्वक्रम से दोनों मुट्ठी बांधे। क्रमशः क्रमानुसार दस दिक्पालों की दस-दस मुद्रा होगी (अर्थात् पहले की नौ तथा यह दशम)। इस प्रकार से मुद्रा दिखला कर "अं वासदेवाय नमः, आं बलाय नमः, अं कामाय नमः, अः अनिरुद्धाय नमः, ॐ नारायणाय नमः" कहकर "अं तत् सत् ब्रह्मणे नमः, हुं विष्णवे नमः, क्ष्रौं नरसिंहाय नमः, भूः वराहाय नमः" मन्त्र से इन-इन देवगण की पूजा करनी चाहिये। इन नौ देवताओं का देहवर्ण यह है—श्वेत वर्ण—वासुदेव, अरुण वर्ण—बलदेव, हरिद्रा वर्ण—कामदेव, नील वर्ण—अनिरुद्ध, श्यामल वर्ण—नारायण, रक्तवर्ण—ब्रह्मा, मेघ वर्ण—विष्णु, अग्निवर्ण—नरसिंह, पिंगल वर्ण—वराह। इन नौ का वर्ण यही है॥३०-३६॥

कं टं जं पं शं गरुत्मान् स्यात् जं खं वं सुदर्शनम्।
खं चं फं षं गदा देवी वं लं मं क्षं च शङ्खकम्॥३७॥
घं ढं वं भं हं भवेत् श्रीश्च गं जं डं वं शं च पुष्टिका।
धं वं च वनमाला स्यात् श्रीवत्सं दं सं भवेत्॥३८॥
छं डं पं यं कौस्तुभः प्रोक्तश्चानन्तो ह्यहमेव च।
इत्यङ्गानि यथायोगं देवदेवस्य वै दश॥३९॥
गरुडोऽम्बुजसङ्काशो गदा चैवासिताकृतिः।
पुष्टिः शिरीषपुष्पाभा लक्ष्मीः काञ्चनसन्निभा॥४०॥
पूर्णचन्द्रनिभः शङ्खः कौस्तुभस्त्वरुणद्युतिः।
चक्रं सूर्य्यसहस्राभं श्रीवत्सः कुन्दसन्निभः।
पञ्चवर्णनिभा माला ह्यनन्तो मेघसन्निभः॥४१॥

विद्युद्रूपाणि चास्त्राणि यानि नोक्तानि वर्णतः।
अर्घ्यपाद्यादि वै दद्यात् पुण्डरीकाक्षविद्यया॥४२॥

।।इति गारुडे महापुराणे एकादशोऽध्यायः।।११।।

गरुड़ का मन्त्र है—"कं टं जं पं शं।" सुदर्शन मन्त्र है—"जं खं वं।" गदामन्त्र है—"खं चं फं षं।" शंख मन्त्र है—"वं लं मं क्षं।" लक्ष्मी मन्त्र है—"घं ढं वं भं हं।" पुष्टिका मन्त्र है—"गं जं डं वं शं।" वनमाला मन्त्र है—" धं वं।" श्रीवत्स का मन्त्र है—"दं सं।" कौस्तुभ मणि का मन्त्र है—"छं डं पं यं।" ये नौ देवता तथा अनन्त, सब मिला कर ये दस देवदेव के अंगदेवता हैं। अनन्त तो मेरा ही (हरि का) नामान्तर समझो। गरुड़ पद्मकान्ति हैं। गदा है कृष्णवर्ण, पुष्टि है शिरीष पुष्प के समान, लक्ष्मी हैं स्वर्णवर्णा, शंख है पूर्ण चन्द्रवत्, कौस्तुभ का वर्ण नये उदीयमान सूर्य की तरह है। चक्र हजारों सूर्यों की कान्ति वाला है। श्रीवत्स कुन्दवर्ण, वनमाला पंचवर्ण, अनन्त मेघवर्ण हैं। जिन अस्त्रों के वर्ण को नहीं कहा गया है, वे विद्युत्वत् हैं। इनकी पूजा पाद्य, अर्घ्य तथा पुण्डरीकाक्ष मन्त्र से करे॥३७-४२॥

॥ग्यारहवां अध्याय समाप्त॥

द्वादशोऽध्यायः

देहशुद्धि आदि का वर्णन

हरिरुवाच

पूजानुक्रमसिद्ध्यर्थं पूजानुक्रम उच्यते। ओं नम इत्यादौ परमात्मनः संस्मृतिः॥१॥
यं वं लं रमिति कायशुद्धिः। ओं नम इति चतुर्भुजात्मनिर्माणम्॥२॥
ततस्त्रिविधाकारविन्यासः। ततो हृदिस्थयोगपीठपूजा॥३॥

ओं अनन्ताय नमः, ओं धर्माय नमः, ओं ज्ञानाय नमः, ओं वैराग्याय नमः, ओं ऐश्वर्य्याय नमः, ओं अधर्म्माय नमः, ओं अज्ञानाय नमः, ओं अवैराग्याय नमः, ओं अनैश्वर्य्याय नमः, ओं पद्माय नमः, ओं आदित्यमण्डलाय नमः, ओं चन्द्रमण्डलाय नमः, ओं वह्निमण्डलाय नमः, ओं विमलायै नमः, ओं उत्कर्षिण्यै नमः, ओं ज्ञानाय नमः, ओं क्रियायै नमः, ओं अज्ञानाय नमः, ओं अक्रियायै नमः, ओं योगायै नमः, ओं प्रह्वयै नमः, ओं सत्यायै नमः, ओं ईशानायै नमः, ओं सर्वतोमुख्यै नमः, ओं साङ्गोपाङ्गाय हरेरासनाय नमः। ततः कर्णिकायां अं वासुदेवाय नमः, आं हृदयाय नमः, ईं शिरसे नमः, ऊं शिखायै

नमः, ऐं कवचाय नमः, औं नेत्रत्रयाय नमः, अः फट् अस्त्राय नमः। आं सङ्कर्षणाय नमः, अं प्रद्युम्नाय नमः, अः अनिरुद्धाय नमः, ओं अः नारायणाय नमः। ओं तत्सद् ब्रह्मणे नमः, ओं हुं विष्णवे नमः, क्ष्रौं नरसिंहाय भूर्वराहाय कं टं जं शं वैनतेयाय जं खं वं सुदर्शनाय खं चं फं पं गदायै वं लं मं क्षं पाञ्चजन्याय घं ढं भं हं श्रियै गं डं वं शं पुष्टयै धं वं वनमालायै दं शं श्रीवत्साय छं डं यं कौस्तुभाय शं शार्ङ्गाय इं इषुधिभ्यां चं चर्मणे खं खड्गाय सुराधिपतये धां धनदाय धनाधिपतये हां ईशानाय विद्याधिपतये ओं वज्राय ओं शच्यै ओं दण्डाय ओं खड्गाय ओं पाशाय ध्वजाय गदायै त्रिशूलाय लं अनन्ताय पातालाधिपतये खं ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमः। ओं नमः ओं नं नमः ओं मों नमः ओं भं नमः ओं गं नमः ओं वं नमः ओं तें नमः ओं वां नमः ओं सुं नमः ओं दें नमः ओं वां नमः ओं यं नमः। ओं ओं नमः ओं नं नमः ओं मों नमः ओं नां नमः ओं रां नमः ओं यं नमः ओं णां नमः ओं यं नमः। ओं नमो नारायणाय ओं नमः पुरुषोत्तमाय नमः॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—पूजा के अनुक्रम में सिद्धि के लिये मैं पूजा का क्रम कहता हूं। "ॐ नमः" मन्त्र से परमात्मा का स्मरण करे। "यं वं लं रं" से देहशुद्धि करके साधक पुनः "ॐ नमः" मन्त्र पढ़े। इससे पूजनोपरान्तत स्वयं को चतुर्भुजात्मक समझे। तत्पश्चात् अपने शरीर में तीन प्रकार का न्यास करके हृदयस्थ योगपीठ पर पूजा करनी चाहिये। पूजा का मन्त्र मूल में "ओं अनन्ताय नमः" से लगाकर "ओं नमो नारायणाय, ओं नमः पुरुषोत्तमाय नमः तक लिखा है। (इन मन्त्रों का अनुवाद संभव नहीं है, अतः मूल में देखें)॥१-४॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन। सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूवज॥५॥
होमकर्मणि चैतेषां स्वाहान्तमुपकल्पयेत्। एवं जप्त्वा विधानेन शतमष्टोत्तरं तथा।
अर्घं दत्त्वा जितं तेन प्रणामञ्च पुनः पुनः॥६॥
ततोऽग्नावपि सम्पूज्य तं यजेत् यथाविधि। देवदेवं स्वबीजेन अङ्गादिभिरथाच्युतम्॥७॥

इस विधि से पूजनोपरान्त प्रणाम करके यह स्तव पढ़े। स्तव का अर्थ है—हे पुण्डरीकाक्ष! तुम जगत्कारण हो। हे ब्रह्मण्य देव! हे महापुरुष! तुम सबके आदि हो। तुमको प्रणाम! होम के लिये उपरोक्त सभी देवताओं के नाम के अन्त में जो नमः लगा है, उसके स्थान पर स्वाहा लगाकर आहुति देनी चाहिये। होमान्त में १०८ मन्त्र जप करके अर्घ्य देकर पुनः-पुनः देवता को नमस्कार करे। तदनन्तर सविधि स्थापना करे (अग्नि स्थापना) इस स्थापित अग्नि में ही उपरोक्त पूजा के पश्चात् जो होम कहा गया तदनुरूप होम करे। उन-उन देवता के बीज का उच्चारण करके उन अंगदेवताओं के नाम के आगे स्वाहा लगाकर देवाधिदेव अच्युत हेतु होम करे॥५-७॥

पूर्वमुद्दीप्य चाभ्युक्ष्य प्रणवेन तु मन्त्रवित्।
भ्रामयित्वाऽनलं कुण्डे पूजयेच्च शुभैः फलैः॥८॥

पूर्वं तत्सकलं ध्यात्वा मण्डले मनसा न्यसेत्।
वासुदेवाख्यतत्त्वेन हुत्वा चाष्टोत्तरं शतम्॥९॥

सङ्कर्षणादिबीजेन यजेत्षट्कं तथैव च। त्रयं त्रयं तथाङ्गानामेकैकां दिक्पतींस्तथा॥१०॥
पूर्णाहुतिं तथैवान्ते दद्यात्सम्यगुपस्थितः। वागतीते परे तत्त्वे आत्मानञ्च लयं नयेत्॥११॥

पहले देवता के उद्देश्य से 'ॐ' कहते हुये अग्नि लाये। उसका अभ्युक्षण करके परिभ्रामित करे। तब कुण्ड में अग्निस्थापना करके उत्तम फलों से अग्नि की पूजा करना आवश्यक है। पहले उस मण्डल में समस्त देवगण की मूर्ति मन से स्थापित करके उनका ध्यान तथा वासुदेव मन्त्र से १०८ होम करे। संकर्षणादि बीज से छः आहुति उन्हें देकर अंगदेवता तथा दिक्पालों हेतु प्रत्येक को तीन-तीन आहुति देनी चाहिये। होमान्त में खड़े होकर पूर्णाहुति देकर वाणी से परे स्थित परमात्मा में भावना द्वारा जीवात्मा का लय कर देना चाहिये॥८-११॥

उपविश्य पुनर्मुद्रां दर्शयित्वा नमेत्पुनः।
नित्यमेवंविधं होमं नैमित्तं द्विगुणं भवेत्॥१२॥
गच्छ गच्छ परं स्थानं यत्र देवो निरञ्जनः।
गच्छन्तु देवताः सर्वाः स्वस्थानस्थितिहेतवे॥१३॥

सुदर्शनः श्रीहरिश्च अच्युतः स त्रिविक्रमः। चतुर्भुजो वासुदेवः षष्ठः प्रद्युम्न एव च॥१४॥
सङ्कर्षणः पुरुषोऽथ नवव्यूहो दशात्मकः। अनिरुद्धो द्वादशात्मा अत ऊर्ध्वमनन्तकः॥१५॥

एते एकादिभिश्चक्रैर्विज्ञेया लक्षिताः सुराः।
चक्राङ्कितैः पूजितैः स्याद् गृहे राक्षसदानवैः॥१६॥

ओं चक्राय स्वाहा। ओं विचक्राय स्वाहा। ओं सुचक्राय स्वाहा। ओं महाचक्राय स्वाहा। ओं असुरान्तहृत् हुं फट्। ओं हुं सहस्त्रार हुं फट्। द्वारकाचक्रपूजेयं गृहे रक्षाकरी शुभा॥१७॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

पुनः साधक बैठकर पुनः मुद्रा प्रदर्शन करने के पश्चात् नमस्कार करे। यह होमविधि कह दिया। यह नित्य होम है। काम्य होम में नित्य होम से दूनी आहुति प्रदान करे। "हे देव! जहां निर्विकार परमात्मा विराजित रहते हैं, उस परम धाम में आप जायें तथा सभी देवता अपने-अपने स्थान पर जाकर वहां विराजित हो जायें।" यह विसर्जन मन्त्र है। देवता के नवव्यूह में ये देवता हैं। यथा—[१]सुदर्शन, [२]श्रीहरि, [३]अच्युत, [४]त्रिविक्रम, [५]चतुर्भुज, [६]वासुदेव, [७]प्रद्युम्न, [८]संकर्षण, [९]पुरुष तथा [१०]अनिरुद्ध। ये दस देवता ही नव व्यूह हैं। तदनन्तर सूर्य तथा अनन्त देव की पूजा करे। एक चक्र में इन सबकी अर्चना करे। चक्र अंकित करके जो अर्चना करता है, उसे राक्षस तथा दानवों का भय नहीं रहता। यहां "ॐ चक्राय स्वाहा"

आदि से पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। इससे गृहरक्षा भी होती है। मन्त्र इस प्रकार से है—ॐ चक्राय स्वाहा, ॐ विचक्राय स्वाहा, ॐ सुचक्राय स्वाहा, ॐ महाचक्राय स्वाहा, ॐ असुरान्तहृत् हुं फट्, ॐ हुं सहस्राय हुं फट्।" यही है द्वार की चक्र पूजा। इससे गृहरक्षा भी होती है॥१२-१७॥

॥बारहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

विष्णुपञ्जर स्तोत्र

हरिरुवाच

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम्। नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम्।
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥१॥
गदां कौमोदकीं गृह्ण पद्मनाभ नमोऽस्तु ते।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥२॥
हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम। प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥३॥

श्री हरि ने कहा—अब मैं विष्णुपञ्जर स्तोत्र कहूंगा। यह शुभ स्तोत्र है। हे गोविन्द! आपको नमस्कार! आप सुदर्शन चक्र से मेरी रक्षा पूर्व दिशा में करिये। मैं शरण में हूं। हे पद्मनाभ! आपको नमस्कार! आप कौमोदकी गदा लेकर दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें। मैं शरणागत हूं। हे पुरुषोत्तम! आप सौनन्द हल लेकर पश्चिम की ओर मेरी रक्षा करिये। मैं शरणागत हूं॥१-३॥

मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्। उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः॥४॥
खड्गमादाय चर्म्माथ अस्त्रशस्त्रादिकं हरे। नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः॥५॥
पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुद्बोधञ्च पङ्कजम्। प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां रक्ष शूकर॥६॥

हे पुण्डरीकाक्ष! आप शातन मूसल लेकर उत्तर की ओर मेरी रक्षा करें। हे जगन्नाथ! मैं शरणागत हूं। हे हरि! आपको नमस्कार! आप खड्ग, ढाल आदि अस्त्र-शस्त्र लिये हुये ईशान कोण में मेरी रक्षा करिये। हे राक्षसहन्ता! मैं आपकी शरण में हूं। हे शूकर रूपधारी विष्णुदेव! आप पाञ्चजन्य शंख तथा अनुद्बोध कमल लेकर मेरी अग्निकोण में रक्षा करें॥४-६॥

चन्द्रसूर्य्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा। नैर्ऋत्यां माञ्च रक्षस्व दिव्यमूर्त्ते नृकेशरिन्॥७॥
वैजयन्तीं सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम्। वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते॥८॥
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरीक्षे जनार्दन। माञ्च रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित॥९॥

विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले। अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते॥१०॥
करशीर्षाद्यङ्गुलेषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम्। कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम॥११॥
एवमुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पञ्जरं महत्। पुरा रक्षार्थमीशान्याः कात्यायन्या वृषध्वज॥१२॥
नाशयामास सा येन चामरं महिषासुरम्। दानवं रक्तबीजञ्च अन्याँश्च सुरकण्टकान्।
एतज्जपन्नरो भक्त्या शत्रून्विजयते सदा॥१३॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

हे दिव्य वपुधारी नृसिंहदेव! आप चन्द्रमा तथा सूर्य के समान लगने वाले चान्द्रमस खङ्ग से नैर्ऋत्कोण में मेरी रक्षा करें। हे हयग्रीव! आपको नमस्कार! आप पताका तथा श्रीवत्स नामक गले का आभूषण धारण करके मेरी रक्षा वायुकोण में करें। हे जनार्दन! आप विनतापुत्र गरुड़ पर सवार होकर मेरी रक्षा शून्यपथ पर करिये। हे अजित! आप मेरी रक्षा करिये। हे अपराजित प्रभु! मैं आपको नमस्कार करता हूं! हे अकुपार महामत्स्यरूपधारी! आपको नमस्कार! आप विशालाक्ष पर आरोहण करके मेरी रसातल में रक्षा करें। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार! आप इस हाथ, मस्तक, उंगली, बाहु, पंजर आदि अंग-प्रत्यंग वाले मेरे देह की तत्काल रक्षा करें। हे वृषकेतु! यह विष्णुपञ्जर स्तव महादेव के पास भगवती कात्यायनी की रक्षा के लिये कथित हुआ था। देवी कात्यायनी ने महिष, रक्तबीज, चामर तथा अन्यान्य देवशत्रु दानवों का विनाश इसी स्तव के प्रभाव से सम्पन्न किया था। इसका जो पाठ करता है, उसके शत्रु परास्त हो जाते हैं॥७-१३॥

॥तेरहवां अध्याय समाप्त॥

चतुर्दशोऽध्यायः

योग का वर्णन

हरिरुवाच

अथ योगं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम्।
ध्यायिभिः प्रोच्यते ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वरः॥१॥
तच्छृणुष्व महेशान सर्वपापविनाशनः। विष्णुः सर्वेश्वरोऽनन्तः पद्भूमिपरिवर्जितः॥२॥
वासुदेवो जगन्नाथो ब्रह्मात्माऽस्म्यहमेव हि। देहिदेहस्थितो नित्यः सर्वदेहविवर्जितः॥३॥
देहधर्म्मविहीनश्च क्षराक्षरविवर्जितः। षड्विधेषु स्थितो द्रष्टा श्रोता घ्राता ह्यतीन्द्रियः॥४॥

तद्धर्म्मरहितः स्त्रष्टा नामगोत्रविवर्जितः। मन्ता मनःस्थितो देवो मनसा परिविर्जितः॥५॥
मनोधर्म्मविहीनश्च विज्ञानं ज्ञानमेव च। बोद्धा बुद्धिस्थितः साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जितः॥६॥

श्रीहरि कहते हैं—अब भुक्ति तथा मुक्ति देने वाला परम योग कह रहा हूं। इन परम ध्येय श्री हरि को योगीगण अपने ध्यान द्वारा ईश्वर कहते हैं। हे महेश्वर! इस योग का श्रवण करिये, जिससे सभी पातकों का नाश हो जाता है। मैं विष्णु ही सबका ईश्वर, अनन्त पद तथा स्थान रहित हूं। मैं ही वासुदेव, जगन्नाथ तथा ब्रह्मात्मा हूं। मैं देहीगण के देह में स्थित होकर ही सभी देह से रहित रहता हूं। मैं देहधर्मविहीन तथा क्षर-अक्षर विवर्जित हूं। मैं षड्विध प्रत्यक्ष में द्रष्टा, श्रोता, घ्राता आदि प्रकार से स्थित रहता हूं। मैं अतीन्द्रिय हूं। मैं इन्द्रिधर्मरहित तथा जगत्सृष्टि करने वाला हूं। मेरा न तो कोई नाम है, न गोत्र ही है। मैं ज्ञानाश्रय तथा मन का विषयी भूत देवता होकर भी मनः से रहित हूं। मेरा कोई मानसिक धर्म ही नहीं है। मैं ही विज्ञाता एवं ज्ञानस्वरूप कहा गया हूं। मैं सर्वबोध कर्त्ता, बोध का विषय, सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ तथा बुद्धिरहित भी हूं॥१-६॥

बुद्धिधर्म्मविहीनश्च सर्वः सर्वगतो मतः। सर्वप्राणिविनिर्मुक्तः प्राणधर्म्मविवर्जितः॥७॥
प्राणिप्राणो महाशान्तो भयेन परिवर्जितः। अहङ्कारादिहीनश्च तद्धर्म्मपरिवर्जितः॥८॥

मैं बुद्धिधर्म रहित, सर्व, सर्वगत हूं। मैं सर्वप्राणी विनिर्मुक्त तथा प्राणधर्म से भी रहित हूं। मैं प्राणीगण का प्राणस्वरूप हूं। मैं महाशान्त, भयरहित, अहंकार आदि से विहीन, उनके धर्मों से भी रहित हूं॥७-८॥

तत्साक्षी तन्नियन्ता च परमानन्दरूपकः। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिस्थस्तत्साक्षी तद्विवर्जितः॥९॥
तुरीयः परमो धाता दृग्रूपो गुणवर्जितः। मुक्तो बुद्धोऽजरो व्यापी सत्य आत्मास्म्यहं शिवः॥१०॥

एवं ये मानवा विज्ञा ध्यायन्तीशं परं पदम्।
प्राप्नुयुस्ते च तद्रूपं नात्र कार्य्या विचारणा॥११॥

इति ध्यानं समाख्यातं तव शङ्कर सुव्रत। पठेद् य एतत् सततं विष्णुलोकं स गच्छति॥१२॥

॥इति गारुडे महापुराणे चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

मैं ही जगत् का साक्षी, नियन्ता तथा परमानन्द रूप हूं। मैं जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्था में भी जगत् का साक्षी रहता हूं, तथापि मेरी जाग्रदादि कोई अवस्था ही नहीं है। मैं ही तुरीय ब्रह्म तथा विधाता भी हूं। मैं संसार का नेत्ररूप, निर्गुण हूं। मैं मुक्त तथा संसार से अतीत हूं। मैं बुद्ध, जराहीन, सर्वव्यापक, सत्य, परमात्मा तथा मंगलमय हूं। एवंविध जो कोई बुद्धिमान मानव परमपद परमेश्वर का ध्यान करते हैं, उनको निश्चित रूप से ईश्वर सायुज्य लाभ होता है। हे सुव्रत शंकर! यह ध्यानयोग मैंने कह दिया। जो व्यक्ति सदा इस श्लोक (स्तव) का पाठ करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है॥९-१२॥

॥चौदहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
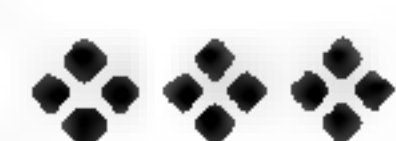
पञ्चदशोऽध्यायः

विष्णु का सहस्रनाम स्तोत्र

रुद्र उवाच

संसारसागराद् घोरान्मुच्यते किं जपन् प्रभो।
नरस्तन्मे परं जप्यं कथय त्वं जनार्दन॥१॥

रुद्रदेव कहते हैं—हे प्रभो! जनार्दन! मनुष्य किस जप को सम्पन्न करके संसार सागर से छुटकारा पा लेता है? आप कृपया उस जपने योग्य मन्त्र को कहिये॥१॥

हरिरुवाच

ईश्वरं परमं ब्रह्म परमात्मानमव्ययम्। विष्णुं नामसहस्रेण स्तुवन् मुक्तो भवेन्नरः॥२॥
यत् पवित्रं परं जप्यं कथयामि वृषध्वज। शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वपापविनाशनम्॥३॥
वासुदेवो महाविष्णुर्वामनो वासवो वसुः। बालचन्द्रनिभो बालो बलभद्रो बलाधिपः॥४॥
बलिबन्धनकृद्वेधा वरेण्यो वेदवित् कविः। वेदकर्त्ता वेदरूपो वेद्यो वेदपरिप्लुतः॥५॥
वेदाङ्गवेत्ता वेदेशो बलधारो बलार्दनः। अविकारो वरेशश्च वरदो वरुणाधिपः॥६॥
वीरहा च बृहद्वीरो वन्दितः परमेश्वरः। आत्मा च परमात्मा च प्रत्यगात्मा वियत्परः॥७॥

श्रीहरि कहते हैं—मनुष्यगण परब्रह्म, परमात्मा, अव्यय, विष्णुदेव के सहस्र नाम का स्तवन करके मुक्त हो जाता है। हे वृषध्वज! जो परम पवित्र जप है, मैं उसे कहता हूं। इसे एकाग्र होकर सुनने वाले के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वे नाम यह हैं—वासुदेव, महाविष्णु, वामन, वासव, वसु, बालचन्द्रवत्, बाल, बलभद्र, बलाधिप, बलिबन्धनकर्त्ता, वेधा, वरेण्य, वेदवित्, कवि, वेदकर्त्ता, वेदरूप, वेद्य, वेदपरिप्लुत, वेदाङ्गवेत्ता, वेदेश, बलधार, बलार्दन, अविकार, वरेश, वरद, वरुणाधिप, वीरहा, बृहद्वीर, वन्दित, परमेश्वर, आत्मा, परमात्मा, प्रत्यगात्मा, वियत्पर॥२-७॥

पद्मनाभः पद्मनिधिः पद्महस्तो गदाधरः। परमः परभूतश्च पुरुषोत्तम ईश्वरः॥८॥
पद्मजङ्घः पुण्डरीकः पद्ममालाधरः प्रियः। पद्माक्षः पद्मगर्भश्च पर्जन्यः पद्मसंस्थितः॥९॥
अपारः परमार्थश्च पराणाञ्च परः प्रभुः। पण्डितः पण्डितेभ्यश्च पवित्रः पापमर्दकः॥१०॥
शुद्धः प्रकाशरूपश्च पवित्रः परिरक्षकः। पिपासावर्जितः पाद्यः पुरुषः प्रकृतिस्तथा॥११॥
प्रधानं पृथिवीपद्मं पद्मनाभः प्रियप्रदः। सर्वेशः सर्वगः सर्वः सर्ववित्सर्वदः परः॥१२॥
सर्वश्च जगतो धाम सर्वदर्शी च सर्वभृत्। सर्वानुग्रहकृद्देवः सर्वभूतहृदि स्थितः॥१३॥
सर्वपः सर्वपूज्यश्च सर्वदेवनमस्कृतः। सर्वस्य जगतो मूलं सकलो निष्कलोऽनलः॥१४॥
सर्वगोप्ता सर्वनिष्ठः सर्वकारणकारणम्। सर्वध्येयः सर्वमित्रः सर्वदेवस्वरूपधृक्॥१५॥

सर्वाध्यायः सुराध्यक्षः सुरासुरनमस्कृतः।
दुष्टानाञ्चासुराणाञ्च सर्वदा घातकोऽन्तकः॥१६॥
सत्यपालश्च सन्नाभः सिद्धेशः सिद्धवन्दितः।
सिद्धसाध्यः सिद्धसिद्धःसाध्यसिद्धोहृदीश्वरः॥१७॥

पद्मनाभ, पद्मनिधि, पद्महस्त, गदाधर, परम, परभूत, पुरुषोत्तम, ईश्वर, पद्मजंघ, पुण्डरीक, पद्ममालाधारी, प्रिय, पद्माक्ष, पद्मगर्भ, पर्जन्य, पद्मसंस्थित, अपार, परमार्थ, पराणा, परः, प्रभु, पण्डित, पण्डितपवित्र, पापमर्दक, शुद्ध, प्रकाशरूप, पवित्र, परिरक्षक, पिपासारहित, पाद्य, पुरुष, प्रकृति, प्रधान, पृथिवीपद्म, पद्मनाभ, प्रियप्रद, सर्वेश, सर्वग, सर्व, सर्वविद्, सर्वद, पर, सर्वजगद्धाम, सर्वदर्शी, सर्वभृत्, सर्वानुग्रहकृत्, देव, सर्वभूत हृदिस्थित, सर्वय, सर्वपूज्य, सर्वदेवनमस्कृत, सर्वजगन्मूल, सकल, निष्कल, अनल, सर्वगोप्ता, सर्वनिष्ठ, सर्वकारण कारण, सर्वध्येय, सर्वमित्र, सर्वदेवस्वरूपयुक्त, सर्वाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सुरासुर नमस्कृत्, दुष्टघातक, असुरान्तक, सत्यपाल, सन्नाभ, सिद्धेश, सिद्धवन्दित, सिद्धसाध्य, सिद्धसिद्ध, सिद्धसिद्धहृदीश्वर॥८-१७॥

शरणं जगतश्चैव श्रेयः क्षेमस्तथैव च। शुभकृच्छोभनः सौम्यः सत्यः सत्यपराक्रमः॥१८॥
सत्यस्थः सत्यसङ्कल्पः सत्यवित्सत्यदस्तथा।
धर्मो धर्म्मी च कर्म्मी च सर्व कर्म्मविवर्जितः॥१९॥
कर्म्मकर्त्ता च कर्मैव क्रियाकार्य्यं तथैव च।
श्रीपतिर्नृपतिः श्रीमान्सर्वस्य पतिरूर्जितः॥२०॥
स देवानां पतिश्चैव वृष्णीनां पतिरीरितः। पतिर्हिरण्यगर्भस्य त्रिपुरान्तपतिस्तथा॥२१॥
पशूनाञ्च पतिः प्रायो वसूनां पतिरेव च। पतिराखण्डलस्यैव वरुणस्य पतिस्तथा॥२२॥
वनस्पतीनाञ्च पतिरनिलस्य पतिस्तथा। अनलस्य पतिश्चैव यमस्य पतिरेव च॥२३॥
कुबेरस्य पतिश्चैव नक्षत्राणां पतिस्तथा। ओषधीनां पतिश्चैव वृक्षाणाञ्च पतिस्तथा॥२४॥
नागानां पतिरर्कस्य दक्षस्य पतिरेव च। सुहृदाञ्च पतिश्चैव नृपाणाञ्च पतिस्तथा॥२५॥
गन्धर्वाणां पतिश्चैव असूनां पतिरुत्तमः। पर्वतानां पतिश्चैव निम्नगानां पतिस्तथा॥२६॥
सुराणाञ्च पतिः श्रेष्ठः कपिलस्य पतिस्तथा।
लतानाञ्च पतिश्चैव वीरुधाञ्च पतिस्तथा॥२७॥

जगत्शरण्य, श्रेय, क्षेम, शुभकृत्, शोभन, सौम्य, सत्य, सत्यपराक्रम, सत्यस्थ, सत्यसंकल्प, सत्यविद्, सत्यद, धर्म, धर्मी, कर्मी, सर्वकर्मवर्जित, कर्मकर्त्ता, कर्म, क्रिया, कार्य, श्रीपति, नृपति, श्रीमान्, सर्वपतिवर्जित, देवपति, वृष्णिपति, हिरण्यगर्भपति, त्रिपुरान्तपति, पशुपति, वसुपति, इन्द्रपति, वरुणपति, वनस्पतिपति, अनिलपति, अनलपति, यमपति, कुबेरपति, नक्षत्रपति, औषधिपति, वृक्षपति, नागपति, अर्कपति, दक्षपति, सुकृतपति, नृपपति, गन्धर्वपति, असुपति, उत्तम, पर्वतपति, नदीपति, देवपति, श्रेष्ठ, कपिलपति, लतापति, वीरुधपति॥१८-२७॥

मुनीनाञ्च पतिश्चैव सूर्य्यस्य पतिरुत्तमः। पतिश्चन्द्रमसः श्रेष्ठः शुक्रस्य पतिरेव च॥२८॥
ग्रहाणाञ्च पतिश्चैव राक्षसानां पतिस्तथा। किन्नराणां पतिश्चैव द्विजानां पतिरुत्तमः॥२९॥
सरिताञ्च पतिश्चैव समुद्राणां पतिस्तथा। सरसाञ्च पतिश्चैव भूतानाञ्च पतिस्तथा॥३०॥

वेतालानां पतिश्चैव कूष्माण्डानां पतिस्तथा।
पक्षिणाञ्च पतिः श्रेष्ठः पशूनां पतिरेव च॥३१॥

महात्मा मङ्गलो मेयो मन्दरो मन्दरेश्वरः। मेरुर्माता प्रमाणञ्च माधवो मनोवर्जितः॥३२॥
मालाधरो महादेवो महादेवेन पूजितः। महाशान्तो महाभागो मधुसूदन एव च॥३३॥

महावीर्य्यो महाप्राणो मार्कण्डेयप्रवन्दितः।
मायात्मा मायया बद्धो मायया तु विवर्जितः॥३४॥

मुनिस्तुतो मुनिर्मैत्रो महानासो महाहनुः। महाबाहुर्महादन्तो मरणेन विवर्जितः॥३५॥
महावक्त्रो महात्मा च महाकारो महोदरः। महापादो महाग्रीवो महामानी महामनाः॥३६॥
महामतिर्महाकीर्त्तिर्महारूपो महासुरः। मधुश्च माधवश्चैव महादेवो महेश्वरः॥३७॥
मखेष्टो मखरूपी च माननीयो महेश्वरः। महावातो महाभागो महेशोऽतीतमानुषः॥३८॥

मुनिपति, सूर्यपति, चन्द्रपति, शुक्रपति, ग्रहपति, राक्षसपति, किन्नरपति, द्विजपति, सरित्पति, समुद्रपति, सरोवरपति, भूतपति, वेतालपति, कूष्माण्डपति, पक्षीपति, पशुपति, महात्मा, मंगल, मेरु, मन्दर, मन्दरेश्वर, मेरुमाता, प्रमाण, माधव, मनोवर्जित, मालाधर, महादेव, महादेवपूजित, महाशांत, महाभाग, मधुसूदन, महावीर्य, महाप्राण, मार्कण्डेयप्रवन्दित, मायात्मा, मायाबद्ध, मायावर्जित, मुनिस्तुत, मुनीर्मैत्री, महानास, महाहनु, महाबाहु, महादन्त, मरणवर्जित, महावक्त्र, महात्मा, महाकार, महोदर, महापाद, महाग्रीव, महामानी, महामना, महामति, महाकीर्त्ति, महारूप, महासुर, मधु, माधव, महादेव, महेश्वर, मखेष्ट, मखरूपी, माननीय, महेश्वर, महावात, महाभाग, महेशातीत, मानुष॥२८-३८॥

मानवश्च मनुश्चैव मानवानां प्रियङ्करः। मृगश्च मृगपूज्यश्च मृगणाञ्च पतिस्तथा॥३९॥
बुधस्य तु पतिश्चैव पतिश्चैव बृहस्पतेः। पतिः शनैश्चरस्यैव राहोः केतोः पतिस्तथा॥४०॥

लक्ष्मणो लक्ष्मणश्चैव लम्बौष्ठो ललितस्तथा।
नानालङ्कारसंयुक्तो नानाचन्दनचर्च्चितः॥४१॥

नानारसोज्ज्वलद्वक्त्रो नानापुष्पोपशोभितः। रामो रमापतिश्चैव सभार्य्यः परमेश्वरः॥४२॥
रत्नदो रत्नहर्त्ता च रूपी रूपविवर्जितः। महारूपोग्ररूपश्च सौम्यरूपस्तथैव च॥४३॥
नीलमेघनिभः शुद्धः कालमेघनिभस्तथा। धूमवर्णः पीतवर्णो नानारूपो ह्यवर्णकः॥४४॥
विरूपो रूपदश्चैव शुक्लवर्णस्तथैव च। सर्ववर्णो महायोगी यज्ञो यज्ञकृदेव च॥४५॥
सुवर्णो वर्णवांश्चैव सुवर्णाख्यस्तथैव च। सुवर्णावयवश्चैव सुवर्णः स्वर्णमेखलः॥४६॥
सुवर्णस्य प्रदाता च सुवर्णांशस्तथैव च। सुवर्णस्य प्रियश्चैव सुवर्णाढ्यस्तथैव च॥४७॥

सुपर्णी च महापर्णः सुपर्णस्य च कारणम्। वैनतेयस्तथादित्य आदिरादिकरः शिवः॥४८॥
कारणं महतश्चैव पुराणस्य च कारणम्। बुद्धीनां कारणञ्चैव कारणं मनसस्तथा॥४९॥
कारणं चेतसश्चैव अहङ्कारस्य कारणम्। भूतानां कारणं तद्वत् कारणञ्च विभावसोः॥५०॥
आकाशकारणं तद्वत् पृथिव्याः कारणं परम्।
अण्डस्य कारणञ्चैव प्रकृतेः कारणं तथा॥५१॥
देहस्य कारणञ्चैव चक्षुषश्चैव कारणम्। श्रोत्रस्य कारणं तद्वत् कारणञ्च त्वचस्तथा॥५२॥
जिह्वायाः कारणञ्चैव प्राणस्यैव च कारणम्।
हस्तयोः कारणं तद्वत् पादयोः कारणं तथा॥५३॥
वाचश्च कारणं तद्वत्पायोश्चैव तु कारणम्। इन्द्रस्य कारणञ्चैव कुबेरस्य च कारणम्॥५४॥
यमस्य कारणञ्चैव ईशानस्य च कारणम्। यक्षाणां कारणञ्चैव रक्षसां कारणं परम्॥५५॥
भूषाणां कारणं श्रेष्ठं धर्मस्यैव तु कारणम्। जन्तूनां कारणञ्चैव वसूनां कारणं परम्॥५६॥
मनूनां कारणञ्चैव पक्षिणां कारणं परम्। मुनीनां कारणं श्रेष्ठं योगिनां कारणं परम्॥५७॥
सिद्धानां कारणञ्चैव यक्षाणां कारणं परम्।
कारणं किन्नराणाञ्च गन्धर्वाणाञ्च कारणम्॥५८॥
नदानां कारणञ्चैव नदीनां कारणं परम्। कारणञ्च समुद्राणां वृक्षाणां कारणं तथा॥५९॥
कारणं वीरुधाञ्चैव लोकानां कारणं तथा। पातालकारणञ्चैव देवानां कारणं तथा॥६०॥
सर्पाणां कारणञ्चैव श्रेयसां कारणं तथा। पशूनां कारणञ्चैव सर्वेषां कारणं तथा॥६१॥

मानव, मनु, मानवप्रियंकर, मृग, मृगपूज्य, मृगपति, बुधपति, बृहस्पतिपति, शनैश्चरपति, राहुपति, केतुपति, लक्ष्मण, लक्षण, लम्बोष्ठ, ललित, नाना अलंकारयुक्त, नाना चन्दन चर्चित, नाना रसोज्वलवक्त्र, नाना पुष्प से उपशोभित, राम, रमापति, सभार्य, परमेश्वर, रत्नद, रत्नहर्त्ता, रूपी, रूपविवर्जित, महारूप, उग्ररूप, सौम्यरूप, नीलमेघनिभ, शुद्ध, कालमेघनिभ, धूम्रवर्ण, पीतवर्ण, नाना रूप, अवर्णक, विरूप, रूपद, शुक्लवर्ण, सर्ववर्ण, महायोगी, यज्ञ, यज्ञकृत्, सुवर्ण, वर्णवान्, सुवर्णास्य, सुवर्णावयव, सर्ववर्ण, सुवर्ण, स्वर्णमेखल, सुवर्णप्रदाता, सुवर्णांश, सुवर्णप्रिय, सुवर्णाड्य, सुपर्णी, महापर्ण, सुपर्णकारण, बुद्धिकारण, मनःकारण, चित्तकारण, अहंकारकारण, भूतकारण, विभावसुकारण, आकाशकारण, पृथिवीकारण, अणुकारण, प्रकृतिकारण, देहकारण, चक्षुःकारण, श्रोत्रकारण, त्वक्कारण, जिह्वाकारण, प्राणकारण, हस्तद्वयकारण, पादद्वयकारण, वाक्यकारण, पायुकारण, इन्द्रकारण, कुबेरकारण, यमकारण, ईशान कारण, यक्षकारण, राक्षसकारण, भूषणकारण, धर्मकारण, जन्तुकारण, धनुकारण, परमकारण, मनुकारण, पक्षीकारण, मुनिकारण, श्रेष्ठकारण, योगीकारण, सिद्धगणकारण, यक्षगणकारण, किन्नरगणकारण, गन्धर्वगणकारण, नदकारण, नदीकारण, समुद्रकारण, वृक्षगणकारण, वीरुधकारण, लोककारण, मंगलकारण, पातालकारण, देवकारण, सर्पगणकारण, पशुगणकारण, सर्वकारण॥३९-६१॥

देहात्मा चेन्द्रियात्मा च आत्मा बुद्धिस्तथैव च।
मनसश्च तथैवात्मा चात्माहङ्कारचेतसः॥६२॥
जाग्रतः स्वपतश्चात्मा महदात्मा परस्तथा।
प्रधानस्य परात्मा च आकाशात्मा ह्यपां तथा॥६३॥
पृथिव्याः परमात्मा च वयस्यात्मा तथैव च।
गन्धस्य परमात्मा च रूपस्यात्मा परस्तथा॥६४॥
शब्दात्मा चैव वागात्मा स्पर्शात्मा पुरुषस्तथा।
श्रोत्रात्मा च त्वगात्मा च जिह्वायाः परमस्तथा॥६५॥
घ्राणात्मा चैव हस्तात्मा पादात्मा परमस्तथा।
उपस्थस्य तथैवात्मा पाय्वात्मा परमस्तथा॥६६॥
इन्द्रात्मा चैव ब्रह्मात्मा रुद्रात्मा च मनोस्तथा।
दक्षप्रजापतेरात्मा सत्यात्मा परमस्तथा॥६७॥
ईशात्मा परमात्मा च रौद्रात्मा मोक्षविद्यतिः।
यत्नवांश्च तथा यत्नश्चर्म्मी खड्गयसुरान्तकः॥६८॥
ह्रीप्रवर्त्तनशीलश्च यतीचनाञ्च हिते रतः।
यतिरूपी च योगी च योगिध्येयो हरिः शितिः॥६९॥
संविन्मेधा च कालश्च उष्मा वर्षा मतिस्तथा।
संवत्सरो मोक्षकरो मोहप्रध्वंसकस्तथा॥७०॥
मोहकर्त्ता च दुष्टानां माण्डव्यो वडवामुखः।
संवर्त्तकः कालकर्त्ता गौतमो भृगुरङ्गिराः॥७१॥
अत्रिर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्यः कुत्स एव च।
याज्ञवल्क्यो देवलश्च व्यासश्चैव पराशरः॥७२॥

देहात्मा, इन्द्रियात्मा, आत्मा, बुद्धि, मनसआत्मा, अहंकारात्मा, चेतस आत्मा, जाग्रत-स्वप्नात्मा, महदात्मा, परात्मा, प्रधानात्मा, परमात्मा, आकांक्षात्मा, जलात्मा, पृथिव्यात्मा, परमात्मा, वयस्यात्मा, गन्धात्मा, परमात्मा, रूपात्मा, शब्दात्मा, वागात्मा, स्पर्शात्मा, पुरुष, श्रोतात्मा, त्वगात्मा, जिह्वात्मा (जिह्वा की आत्मा), परम आत्मा, घ्राणात्मा, हस्तात्मा, पादात्मा, उपस्थात्मा, पायु की आत्मा, उपस्थात्मा, पाय्वात्मा, इन्द्रात्मा, ब्रह्मात्मा, रुद्रात्मा तथा ब्रह्मात्मा, रुद्र की आत्मा, मनु की आत्मा, दक्ष प्रजापति की आत्मा, सत्यात्मा, ईशात्मा, परमात्मा, रौद्रात्मा, मोक्षविद्, यति, यत्नवान्, यत्न, चर्मी, खड्गी, अनुरान्तक, ह्रीप्रवर्त्तनशील, यतीहितव्रत, यतिरूपी, योगी, योगीध्येय, हरि, क्षिति, संवित्, मेधा, काल, ऊष्मा, वर्षा, मति, संवत्सर, मोक्षकर, मोहप्रध्वंसक, दुष्टमोहकर्त्ता, माण्डव्य, बड़वामुख, संवर्त्तक,

कालकर्त्ता, गौतम, भृगु, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, कुत्स, याज्ञवल्क्य, देवल, व्यास, पराशर॥६२-७२॥

शर्म्मदश्चैव गाङ्गेयो हृषीकेशो बृहच्छ्रवाः।
केशवः क्लेशहन्ता च सुकर्णः कर्णवर्जितः॥७३॥

नारायणो महाभागः प्राणस्य पतिरेव च। अपनास्य पतिश्चैव व्यानस्य पतिरेव च॥७४॥

उदानस्य पतिःश्रेष्ठः समानस्य पतिस्तथा।
शब्दस्य च पतिः श्रेष्ठः स्पर्शस्य पतिरेव च॥७५॥
रूपाणां नृपतिश्चाद्यः खड्गपाणिर्हलायुधः।
चक्रपाणिः कुण्डली च श्रीवत्साङ्कस्तथैव च॥७६॥

प्रकृतिः कौस्तुभग्रीवः पीताम्बरधरस्तथा। सुमुखो दुर्मुखश्चैव मुखेन तु विवर्जितः॥७७॥
अनन्तोऽनन्तरूपश्च सुनखः सुरसुन्दरः। सुकलापो विभुर्जिष्णुर्भ्राजिष्णुश्चेषुधीस्तथा॥७८॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता हिरण्याक्षविमर्दकः। निहन्ता पूतनायाश्च भास्करान्तविनाशनः॥७९॥

शर्मद, गाङ्गेय, हृषीकेश, बृहच्छ्रवा, केशव, क्लेशहन्ता, सुकर्ण, कर्णवर्जित, नारायण, महाभाग, प्राणपति, अपानपति, व्यानपति, उदानपति, समानपति, शब्दपति, स्पर्शपति, रूपपति, नृपति, आद्यपति, खड्गपाणि, हलायुध, चक्रपाणि, कुण्डली, श्रीवत्साङ्क, प्रकृति, कौस्तुभग्रीव, पीताम्बरधारी, सुमुख, दुर्मुख, मुखविवर्जित, अनन्त, अनन्तरूप, सुनख, सुरसुन्दर, सुकलाप, विभु, जिष्णु, भ्राजिष्णु, ईषुधि, हिरण्यकशिपुहन्ता, हिरण्याक्षविमर्दक, पूतनानिहन्ता, भास्करान्तविनाशन॥७३-७९॥

केशिनो दलनश्चैव मुष्टिकस्य विमर्दकः। कंसदानवभेत्ता च चाणूरस्य प्रमर्दकः॥८०॥
अरिष्टस्य निहन्ता च अक्रूरप्रिय एव च। अक्रूरः क्रूररूपश्च अक्रूरप्रियवन्दितः॥८१॥

भगहा भगवान् भानुस्तथा भागवतः स्वयम्।
उद्धवश्चोद्धवस्येशो ह्युद्धवेन विचिन्तितः॥८२॥

चक्रधृक् चञ्चलश्चैव चलाचलविवर्जितः। अहङ्कारो मतिश्चित्तं गगनं पृथिवी जलम्॥८३॥

वायुश्चक्षुस्तथा श्रोत्रं जिह्वा च घ्राणमेव च।
वाक्पाणिपादो जवनः पायूपस्थस्तथैव च॥८४॥
शङ्करश्चैव खर्वश्च क्षान्तिदः क्षान्तिकृन्नरः।
भक्तप्रियस्तथा भर्त्ता भक्तिमान् भक्तिवर्द्धनः॥८५॥
भक्तस्तुतो भक्तपरः कीर्त्तिदः कीर्त्तिवर्द्धनः।
कीर्त्तिर्दीप्तिः क्षमा कान्तिर्भक्तिश्चैव दया परा॥८६॥
दानं दाता च कर्त्ता च देवदेवप्रियः शुचिः।
शुचिमान सुखदो मोक्षः कामश्चार्थः सहस्त्रपात्॥८७॥

सहस्त्रशीर्षा वैद्यश्च मोक्षद्वारस्तथैव च। प्रजाद्वारं सहस्त्रान्तः सहस्त्रकर एव च॥८८॥
शुक्रश्च सुकिरीटी च सुग्रीवः कौस्तुभस्तथा। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च हयग्रीवश्च शूकरः॥८९॥
मत्स्यः परशुरामश्च प्रह्लादो बलिरेव च। शरण्यश्चैव नित्यश्च बुद्धो मुक्तः शरीरभृत्॥९०॥
खरदूषणहन्ता च रावणस्य प्रमर्दनः। सीतापतिश्च वर्द्धिष्णुर्भरतश्च तथैव च॥९१॥
कुम्भेन्द्रज्जिन्निहन्ता च कुम्भकर्णप्रमर्दनः। नरान्तकान्तकश्चैव देवान्तकविनाशनः॥९२॥
दुष्टासुरनिहन्ता च शम्बरारिस्तथैव च। नरकस्य निहन्ता च त्रिशीर्षस्य विनाशनः॥९३॥
यमलार्जुनभेत्ता च तपोहितकरस्तथा। वादित्रश्चैव वाद्यश्च बुद्धश्च वै वरप्रदः॥९४॥

केशीदलन, मुष्टिकविमर्दक, कंसदानवभेत्ता, चारुणप्रमर्दक, अरिष्टहन्ता, अक्रूरप्रिय, अक्रूर, क्रूररूप, अक्रूरप्रियवन्दित, भगहा, भगवान्, भानु, भागवत स्वयं, उद्धव, उद्धवेश, उद्धवविचिन्तित, चक्रधृक्, चञ्चल, चलाचलरहित, अहंकार, मति, चित्त, गगन, पृथिवी, जल, वायु, नेत्र, श्रोत्र, जिह्वा, प्राण, वाक्, पाणि, पाद, जघन, पायु, उपस्थ, शंकर, खर्व, क्षान्तिद्, क्षान्तिकृत्, नर, भक्तप्रिय, भर्त्ता, भक्तिमान्, भक्तिवर्द्धन, भक्तस्तुत, भक्तपर, कीर्त्तिद, कीर्त्तिवर्द्धन, कीर्त्ति, दीप्ति, क्षमा, कान्ति, भक्ति, दया, दान, दाता, कर्त्ता, देवदेवप्रिय, शुचि, शुचिमान्, सुखद, मोक्ष, काम, अर्थ, सहस्त्रपात्, सहस्त्रशीर्षा, वैद्य, मोक्षद्वार, प्रजाद्वार, सहस्त्रान्त, सहस्त्रकर, शुक्र, सुकिरीटी, सुग्रीव, कौस्तुभ, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, हयग्रीव, शूकर, मत्स्य, परशुराम, प्रह्लाद, बलि, शरण्य, नित्य, बुद्ध, मुक्त, शरीरभृत्, खरदूषणहन्ता, रावणप्रमर्दन, सीतापति, बर्द्धिष्णु, भरत, कुम्भहन्ता, इन्द्रजित् निहन्ता, कुम्भकर्ण प्रमर्दन, नरकान्तक, देवकान्त विनाशक, दुष्टासुरहन्ता, शम्बरारि, नरकनिहन्ता, त्रिशीर्षनाशन, यमलार्जुनभेत्ता, तपोहितकारी, वादित्र, वाद्य, बुद्धवरप्रद॥८०-९४॥

सारः सारप्रियः सौरः कालहन्ता निकृन्तनः। अगस्त्यो देवलश्चैव नारदो नारदप्रियः॥९५॥

प्राणोऽपानस्तथा व्यानो रजः सत्त्वं तमः शरत्।
उदानश्च समानश्च भेषजञ्च भिषक तथा॥९६॥

कूटस्थः स्वच्छरूपश्च सर्वदेहविवर्जितः। चक्षुरिन्द्रियहीनश्च वागिन्द्रियविवर्जितः॥९७॥
हस्तेन्द्रियविहीनश्च पादाभ्याञ्च दिवर्जितः। पायूपस्थविहीनश्च महातपोविवर्जितः॥९८॥
प्रबोधेन विहीनश्च बुद्धया चैव विवर्जितः। चेतसा विगतश्चैव प्राणेन च विवर्जितः॥९९॥
अपानेन विहीनश्च व्यानेन च विवर्जितः। उदानेन विहीनश्च समानेन विवर्जितः॥१००॥

आकाशेन विहीनश्च वायुना परिवर्जितः।
अग्निना च विहीनश्च उदकेन विवर्जितः॥१०१॥
पृथिव्या च विहीनश्च शब्देन च विवर्जितः।
स्पर्शेन च विहीनश्च सर्वरूपविवर्जितः॥१०२॥

रागेण विगतश्चैव अघेन परिवर्जितः। शोकेन रहितश्चैव वचसा परिवर्जितः॥१०३॥

रजोविवर्जितश्चैव विकारैः षड्भिरेव च। कामेन वर्जितश्चैव क्रोधेन परिवर्जितः॥१०४॥

लोभेन विगतश्चैव दम्भेन च विवर्जितः।
सूक्ष्मश्चैव सुसूक्ष्मश्च स्थूलात्स्थूलतरस्तथा॥१०५॥
विशारदो बलाध्यक्षः सर्वस्य क्षोभकस्तथा।
प्रकृतेः क्षोभकश्चैव महतः क्षोभकस्तथा॥१०६॥

भूतानां क्षोभकश्चैव बुद्धेश्च क्षोभकस्तथा। इन्द्रियाणां क्षोभकश्च विषयक्षोभकस्तथा॥१०७॥
ब्रह्मणः क्षोभकश्चैव रुद्रस्य क्षोभकस्तथा। अगम्यश्चक्षुरादेश्च श्रोत्रागम्यस्तथैव च॥१०८॥

त्वचा न गम्यः कूर्म्मश्च जिह्वाग्राह्यस्तथैव च।
घ्राणेन्द्रियागम्य एव वाचाऽग्राह्यस्तथैव च॥१०९॥
अगम्यस्चैव पाणिभ्यां पादागम्यस्तथैव च।
अग्राह्यो मनसश्चैव बुद्ध्या ग्राह्यो हरिस्तथा॥११०॥
अहं बुद्ध्या तथा ग्राह्यश्चेतसा ग्राह्य एव च।
शङ्खपाणिरव्ययश्च गदापाणिस्तथैव च॥१११॥
शार्ङ्गपाणिश्च कृष्णश्च ज्ञानमूर्त्तिः परन्तपः।
तपस्वी ज्ञानगम्यो हि ज्ञानी ज्ञानविदेव च॥११२॥
ज्ञेयश्च ज्ञेयहीनश्च ज्ञप्तिश्चैतन्यरूपकः।
भावो भाव्यो भवकरो भावनो भवनाशनः॥११३॥
गोविन्दो गोपतिर्गोपः सर्वगोपीसुखप्रदः।
गोपालो गोपतिश्चैव गोमतिर्गोधरस्तथा॥११४॥

उपेन्द्रश्च नृसिंहश्च शौरिश्चैव जनार्दनः। आरणेयो बृहद्भानुर्बृहद्दीप्तस्तथैव च॥११५॥

सार, सारप्रिय, सौर, कालहन्ता, निकृन्तन, अगस्त्य, देवलप्रिय, नारद, नारदप्रिय, प्राण, अपान, व्यान, रजः, सत्व, तम, शरत्, उदान, समान, भेषज, भिषक्, कूटस्थ, स्वच्छरूप, सर्वदेहरहित, चक्षु इन्द्रियरहित, वाग् इन्द्रियरहित, हस्तेन्द्रियविहीन, पादविवर्जित, पायुपस्थविहीन, महातपरहित, प्रबोधविहीन, बुद्धिविवर्जित, विगत चेतन, प्राणविवर्जित, अपानविहीन, व्यान विवर्जित, उदानविहीन, समानविवर्जित, आकाशविहीन, वायुपरिवर्जित, अग्निविहीन, उदकविवर्जित, पृथिवीविहीन, शब्दविवर्जित, स्पर्शविहीन, सर्वरूपरहित, रागरहित, अघपरिवर्जित, शोकरहित, वाणीपरिवर्जित्, षड्विकाररहित, कारणवर्जित, क्रोधपरिवर्जित, विगतलोभ, दम्भविवर्जित, सूक्ष्म, सुसूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूलतर, विशारद, बलाध्यक्ष, सर्वक्षोभक, प्रकृतिशोभक, महत् क्षोभक, भूतों के क्षोभक, बुद्धिक्षोभक, इन्द्रियक्षोभक, विषयक्षोभक, ब्रह्माक्षोभक, रुद्रक्षोभक, पाणि से अगम्य, पाद से अगम्य, मनोग्राह्य, बुध्यग्राह्य, हरि, अहंबुद्धिग्राह्य, चेतसाग्राह्य, शंखपाणि, अव्यय, गदापाणि, शार्ङ्गपाणि, कृष्ण, ज्ञानमूर्त्ति, परन्तप, तपस्वी, ज्ञानगम्य, ज्ञानी, ज्ञानविद्,

ज्ञेय, ज्ञेयहीन, ज्ञप्ति, चैतन्यरूपधृक्, भाव, भाव्य, भवकर, भावन, भवनाशन, गोविन्द, गोपति, गोप, सर्वगोपीसुखप्रद, गोपाल, गोपति, गोमति, गोधर, उपेन्द्र, नृसिंह, शौरी, जनार्दन, आरणेय, बृहद्भाण्ड, बृहद्दीप्त॥९५-११५॥

दामोदरस्त्रिकालश्च कालज्ञः कालवर्जितः।
त्रिसन्ध्यो द्वापरं त्रेता प्रजाद्वारं त्रिविक्रमः॥११६॥
विक्रमो दण्डहस्तश्च ह्येकदण्डी त्रिदण्डधृक्।
सामभेदस्तथोपायः सामरूपी च सामगः॥११७॥
सामवेदो ह्यथर्वश्च सुकृतः सुखरूपकः। अथर्ववेदविच्चैव ह्यथर्वाचार्य्य एव च॥११८॥
ऋग्रूपी चैव ऋग्वेद ऋग्वेदेषु प्रतिष्ठितः। यजुर्वेत्ता यजुर्वेदो यजुर्वेदविदेकपात्॥११९॥
बहुपाच्च सुपाच्चैव तथा चैव सहस्त्रपात्।
चतुष्पाच्च द्विपाच्चैव स्मृतिर्न्यायोपमो बली॥१२०॥
संन्यासी चैव संन्यासश्चतुराश्रम एव च।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च बाणप्रस्थश्च भिक्षुकः॥१२१॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वर्णस्तथैव च।
शीलदः शीलसम्पन्नो दुःशीलपरिवर्जितः॥१२२॥
गोक्षोऽध्यात्मसमाविष्टः स्तुतिः स्तोता च पूजकः।
पूज्यो वाक्करणश्चैव वाच्यश्चैव तु वाचकः॥१२३॥
वेत्ता व्याकरणश्चैव वाक्यश्चैव च वाक्यवित्।
वाक्यगम्यस्तीर्थवासी तीर्थस्तीर्थी च तीर्थवित्॥१२४॥
तीर्थादिभूतः साङ्ख्यश्च निरुक्तं त्वभिदैवतम्।
प्रणवः प्रणवेशश्च प्रणवेन प्रवन्दितः॥१२५॥
प्रणवेन च लक्ष्यो वै गायत्री च गदाधरः।
शालग्रामनिवासी च शालग्रामस्तथैव च॥१२६॥

दामोदर, त्रिकाल, कालज्ञ, कालवर्जित, त्रिसन्ध्या, द्वापर, त्रेता, प्रजाद्वार, त्रिविक्रम, विक्रम, दण्डहस्त, एकदन्ती, त्रिदन्तधृक्, साम, भेद, उपाय, समरूपी, सामग, सामवेद, अथर्व, सुकृत, सुखरूपधृक्, अथर्ववेदज्ञ, अथर्वाचार्य, ऋग्रूपी, ऋग्वेद, ऋग्वेदप्रतिष्ठित, यजुर्वेत्ता, यजुर्वेद, यजुर्वेदविद्, एकपात्, बहुपात्, सुपात्, सहस्त्रपात्, चतुष्पात्, त्रिपात्, स्मृति, न्याय, यम, यमी, संन्यासी, संन्यास, चतुराश्रम, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, भिक्षुक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्ण, शीलद, शीलसम्पन्न, दुःशील विवर्जित, मोक्ष, अध्यात्मसमाविष्ट, स्तुति, स्तोता, पूजक, पूज्य, वाक्कारण, वाचा, वाचक, वेत्ता, व्याकरण, वाक्य, वाक्यवित्, वाक्यगम्य, तीर्थवास, तीर्थ, तीर्थी, तीर्थविद्, तीर्थादिभूत्, सांख्य,

निरुक्त, अधिदैवत्, प्रणव, प्रणवेश, प्रणवप्रवन्दित, प्रणवलक्ष्य, गायत्री, गदाधर, शालग्राम, शालग्राम निवासी॥११६-१२६॥

जलशायी योगशायी शेषशायी कुशेशयः।
महाभर्त्ता च कार्य्यञ्च कारणं पृथिवीधरः॥१२७॥
प्रजापतिः शश्वतश्च काम्यः कामयिता विराट्।
सम्राट् पूषा तथा स्वर्गो रथस्थः सारथिर्बलम्॥१२८॥

धनी धनप्रदो धन्यो यादवानां हिते रतः। अर्जुनस्य प्रियश्चैव ह्यर्जुनो भीम एव च॥१२९॥
पराक्रमो दुर्विसहः सर्वशास्त्रविशारदः। सारस्वतो महाभीष्मः पारिजातहरस्तथा॥१३०॥
अमृतस्य प्रदाता च क्षीरोदः क्षीर एव च। इन्द्रात्मजस्तस्य गोप्ता गोवर्द्धनधरस्तथा॥१३१॥
कंसस्य नाशनस्तद्वद्धस्तिपो हस्तिनाशनः। शिपिविष्टः प्रसन्नश्च सर्वलोकार्त्तिनाशनः॥१३२॥
मुद्रो मुद्राकरश्चैव सर्वमुद्राविवर्जितः। देही देहस्थितश्चैव देहस्य च नियामकः॥१३३॥

श्रोता श्रोत्रनियन्ता च श्रोतव्यः श्रवणस्तथा।
त्वक्स्थितश्च स्पर्शयिता स्पृश्यञ्च स्पर्शनं तथा॥१३४॥
चक्षुःस्थो रूपद्रष्टा च नियन्ता चक्षुषस्तथा।
दृस्यञ्चैव तु जिह्वास्थो रसज्ञश्च नियामकः॥१३५॥
घ्राणस्थो घ्राणकृद् घ्राता घ्राणेन्द्रियनियामकः।
वाक्स्थो वक्ता च वक्तव्यो वचनं वाङ्नियामकः॥१३६॥
प्राणिस्थःशिल्पकृच्छिल्पो हस्तयोश्च नियामकः।
पदव्यश्चैव गन्ता च गन्तव्यं गमनं तथा॥१३७॥
नियन्ता पादयोश्चैव पाद्यभाक् च विसर्गकृत्।
विसर्गस्य नियन्ता च ह्युपस्थस्थः सुखस्तथा॥१३८॥

उपस्थस्य नियन्ता च तदानन्दकरश्च ह। शत्रुघ्नः कार्त्तवीर्यश्च दत्तात्रेयस्तथैव च॥१३९॥
अलर्कस्य हितश्चैव कार्त्तवीर्य्यनिकृन्तनः। कालनेमिर्महानेमिर्मेघो मेघपतिस्तथा॥१४०॥
अन्नप्रदोऽन्नरूपी च ह्यन्नादोऽन्नप्रवर्त्तकः। धूमकृद्धूमरूपश्च देवकीपुत्र उत्तमः॥१४१॥
देवक्यानन्दनो नन्दो रोहिण्याः प्रिय एव च। वसुदेवप्रियश्चैव वसुदेवसुतस्तथा॥१४२॥
दुन्दुभिर्हासरूपश्च पुष्पहासस्तथैव च। अट्टहासप्रियश्चैव सर्वाध्यक्षः क्षरोऽक्षरः॥१४३॥

जलशायी, शेषशायी, योगशायी, कुशेशय, महाभर्त्ता, कार्य, कारण, पृथिवीधर, प्रजापति, शाश्वत, कामय, कामयिता, विराट्, सम्राट्, पूषा, स्वर्ग, रथस्थ, सारथि, बल, धनी, धनप्रद, धन्य, यादवहितरत, अर्जुनप्रिय, अर्जुन, भीम, पराक्रमी, दुर्विसह, सर्वशास्त्रविशारद, सारस्वत, महाभीष्म,

पारिजातहर, अमृतप्रदाता, क्षीरसागर, क्षीर, इन्द्रात्मज, इन्द्रगोप्ता, गोवर्द्धनधारी, कंसनाशक, हस्तिन्, हस्तिनाशन, शिपिविष्ट, प्रसन्न, सर्वलोकार्त्तिनाशन, मुद्रा, मुद्राकर, सर्वमुद्राविहित, देही, देहस्थित, देहनियामक, श्रोता, श्रोत्रनियन्ता, श्रोतव्य, श्रवण, त्वकस्थ, स्पर्शयिता, स्पृश्य, स्पर्शन, चक्षुस्थ, रूपद्रष्टा, नियन्ता, चाक्षुष, दृश्य, जिह्वास्थ, रसज्ञ, रसनियामक, घ्राणस्थ, घ्राणकृद्, घ्राता, घ्राणेन्द्रिय नियामक, वाकस्थ, वक्ता, वक्तव्य, वचन, वाङ्ग नियामक, प्राणीस्थ, शिल्पकृत्, शिल्प, हस्तनियामक, पदव्य, गन्ता, गन्तव्य, गमन, पादद्वयनियन्ता, पाद्यभाक्, विसर्गकृत्, विसर्गनियन्ता, उपस्थस्थित, सुख, उपस्थनियन्ता, आनन्दकर, शत्रुघ्न, कार्त्तवीर्य, दत्तात्रेय, अलर्कहित, कार्त्तवीय निकृन्तन, कालनेमि, महानेमि, मेघ, मेघपति, अन्नप्रद, अन्नरूपी, अन्नाद, अन्नप्रवर्त्तक, धूमकृत्, धूमरूप, देवकीपुत्र, उत्तम, देवकीनन्दन, नन्द, रोहिणीप्रिय, वसुदेवप्रिय, वसुदेवसुत, दुन्दुभि, हासरूप, पुष्पहास, अट्टहासप्रिय, सर्वाध्यक्ष, क्षराक्षर॥१२७-१४३॥

अच्युतश्चैव सत्येशः सत्यायाश्च प्रियो वरः।
रुक्मिण्याश्च पतिश्चैव रुक्मिण्या वल्लभस्तथा॥१४४॥
गोपीनां वल्लभश्चैव पुण्यश्लोकश्च विश्रुतः।
वृषाकपिर्यमो गुह्यो मङ्गलश्च बुधस्तथा॥१४५॥
राहुः केतुर्ग्रहो ग्राहो गजेन्द्रमुखमेलकः।
ग्राहस्य विनिहन्ता च ग्रामणी रक्षकस्तथा॥१४६॥
किन्नरश्चैव सिद्धश्च छन्दः स्वच्छन्द एव च।
विश्वरूपो विशालाक्षो दैत्यसूदन एव च॥१४७॥
अनन्तरूपो भूतस्थो देवदानवसंस्थितः।
सुषुप्तिस्थःसुषुप्तिश्च स्थानं स्थानान्त एव च॥१४८॥
जगत्स्थश्चैव जागर्त्ता स्थानं जागरितं तथा।
स्वप्नस्थः स्वप्नवित्स्वप्नं स्थानस्थःसुस्थ एव च॥१४९॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेश्च विहीनो वै चतुर्थकः।
विज्ञानं चैत्ररूपश्च जीवो जीवयिता तथा॥१५०॥
भुवनाधिपतिश्चैव भुवनानां नियामकः। पातालवासी पातालं सर्वज्वरविनाशनः॥१५१॥
परमानन्दरूपी च धर्माणाञ्च प्रवर्त्तकः। सुलभो दुर्लभश्चैव प्राणायामपरस्तथा॥१५२॥
प्रत्याहारो धारकश्च प्रत्याहारकरस्तथा।
प्रभा कान्तिस्तथा ह्यर्चिःशुद्धः स्फटिकसन्निभः॥१५३॥
अग्राह्यश्चैव गौरश्च सर्वःशुचिरभिष्टुतः।
वषट्कारो वषड्वौषट् स्वधा स्वाहा रतिस्तथा॥१५४॥

पक्ता नन्दयिता भोक्ता बोद्धा भावयिता तथा।
ज्ञानात्मा चैव ऊहात्मा भूमा सर्वेश्वरेश्वरः॥१५५॥
नदी नन्दी च नन्दीशो भारतस्तरुनाशनः।
चक्रपः स्त्रीपतिश्चैव नृपश्च चक्रवर्त्तिनाम्॥१५६॥
ईशश्च सर्वदेवानां स्वावकाशं स्थितस्तथा।
पुष्करः पुष्कराध्यक्षः पुष्करद्वीप एव च॥१५७॥
भरतो जनको जन्यः सर्वाकारविवर्जितः।
निराकारो निर्निमित्तो निरातङ्को निराश्रयः॥१५८॥

अच्युत, सत्येश, सत्यप्रिय, वर, रुक्मिणीपति, गोपीवल्लभ, पुण्यश्लोक, विश्रुत, वृषाकपि, यम, गुह्य, मंगल, बुध, राहु, केतु, ग्रहग्राह, गजेन्द्रमुख मेलक, ग्राहविनिहन्ता, ग्रामणी, रक्षक, किन्नर, सिद्ध, छन्दः, स्वच्छन्द, विश्वरूप, विशालाक्ष, दैत्यसूदन, अनन्तरूप, भूतस्थ, देवदानवसंस्थित, सुषुप्तिस्थ, सुषुप्ति, स्थान, स्थानान्त, जगत्स्थ, जागर्त्ता, स्थान, जागरित, स्वप्नस्थ, स्वप्नविद्, स्वप्न, स्थानस्थ, सूक्ष्म, जाग्रत्स्वप्न तथा सुषुप्तिविहीन, चतुर्थक्, विज्ञान, चैत्ररूप, जीव, जीवयिता, भुवनाधिपति, भुवननियामक, पातालवासी, पाताल, सर्वज्वरनाशक, परमानन्दरूपी, धर्मप्रवर्त्तक, सुलभ, दुर्लभ, प्राणायामपर, प्रत्याहारधारक, प्रत्याहारकर, प्रभा, कान्ति, अर्चि, शुद्धस्फटिक सन्निभ, अग्राह्य, गौर, सर्व, शुचि, अभिष्टुत, वषट्कार, वषट्, वौषट्, स्वधा, स्वाहा, रति, पक्ता, नन्दयिता, भोक्ता, बोद्धा, भावयिता, ज्ञानात्मा, ऊहात्मा, भूमा, सर्वेश्वरेश्वर, नदी, नन्दी, नन्दीश, भारत, तरुनाशन, चिद्रूप, श्रीपति, चक्रवर्त्ती राजा, सर्वदेवेश, द्वारकासंस्थित, पुष्कर, पुष्कराध्यक्ष, पुष्करद्वीप, भरत, जनक, जन्य, सर्वाकाररहित, निराकार, निर्निमित्त, निरातङ्क, निराश्रय॥१४४-१५८॥

इति नामसहस्रं ते वृषभध्वज कीर्त्तितम्।
देवस्य विष्णोरीशस्य सर्वपापविनाशनम्॥१५९॥
पठन् द्विजश्च विष्णुत्वं क्षत्रियो जयमाप्नुयात्।
वैश्यो धनं सुखं शूद्रो विष्णुभक्तिसमन्वितः॥१६०॥

॥इति गारुडे महापुराणे श्रीविष्णोः सहस्रनामस्तोत्रं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

हे वृषध्वज! मैंने आपसे देवदेव विष्णु का सर्वपापनाशक सहस्र नाम कहा। इसे पाठ करने से ब्राह्मण को विष्णुत्व, क्षत्रिय को जय, वैश्य को धन तथा शूद्र को सुख एवं विष्णुभक्ति प्राप्त होती है॥१५९-१६०॥

॥पन्द्रहवां अध्याय समाप्त॥

षोडशोऽध्यायः

विष्णु ध्यान वर्णन

रुद्र उवाच

पुनर्ध्यानं समाचक्ष्व शङ्खचक्रगदाधर। विष्णोरीशस्य देवस्य शुद्धस्य परमात्मनः॥१॥

रुद्रदेव ने कहा—हे शंख-चक्र-गदाधारी! पुनः परमात्मा जगदीश्वर देवाधिदेव विष्णु का ध्यान कहिये॥१॥

हरिरुवाच

शृणु रुद्र हरेर्ध्यानं संसारतरुनाशनम्। अदृष्टरूपञ्चान्तञ्च सर्वव्याप्यजगमव्ययम्॥२॥
अक्षयं सर्वगं नित्यं महद् ब्रह्मास्ति केवलम्। सर्वस्य जगतो मूलं सर्वेशं परमेश्वरम्॥३॥

हरि कहते हैं—हे रुद्र! हरि का ध्यान सुनिये। इससे संसार के प्रति मोह नष्ट हो जाता है। हरि तो दृश्यरूपी होने पर भी अनन्तरूपी हैं। वे सर्वत्र व्याप्त, सभी स्थानों पर विराजमान रहते हैं। वे जन्म-विनाश से पूर्णतः रहित हैं। वे अक्षर (अविनश्वर), सर्वत्र गमन करने वाले, नित्य विराजित, महान् तथा मात्र ब्रह्मरूप हैं। वे परमेश-सर्वेश हैं। वे सर्वजगत् मूल हैं॥२-३॥

सर्वभूतहृदिस्थं वै सर्वभूतमहेश्वरम्। सर्वाधारं निराधारं सर्वकारणकारणम्॥४॥
अलेपकं तथा मुक्तं मुक्तयोगिविचिन्तितम्। स्थूलदेहविहीनञ्च चक्षुषा परिवर्जितम्॥५॥
प्राणेन्द्रियविहीनञ्च प्राणिधर्मविवर्जितम्। पायूपस्थविहीनञ्च सर्वेन्द्रियविवर्जितम्॥६॥
मनोविरहितं तद्वन्मनोधर्म्मविवर्जितम्। बुद्ध्या विहीनं देवेशं चेतसा परिवर्जितम्॥७॥
अहङ्कारविहीनं वै बुद्धिधर्म्मविवर्जितम्। प्राणेन रहितञ्चैव ह्यपानेन विवर्जितम्।
प्राणाख्यवायुहीनं वै प्राणधर्मविवर्जितम्॥८॥

वे परमेश्वर सभी प्राणियों के हृदय में स्थित तथा सर्वभूत महेश्वर, सर्वाधार, निराधार, सर्व कारण के भी कारण, अलेपक, मुक्त एवं मुक्त योगीगण द्वारा विचिन्तित हैं। वे स्थूल देह, चक्षु, प्राण, इन्द्रिय तथा प्राणीधर्म से विवर्जित हैं। वे पायुः, उपस्थ, सर्वेन्द्रिय रहित, मनःमनःधर्म विवर्जित प्रभु हैं। वे देवेश, बुद्धिरहित, चेतसरहित, अहंकारविहीन, बुद्धिधर्म विवर्जित, प्राणों से रहित, अपान विवर्जित, प्राण नामक वायु से भी रहित एवं प्राणधर्म विवर्जित प्रभु हैं॥४-८॥

हरिरुवाच

पुनः सूर्य्यार्च्चनं वक्ष्ये यदुक्तं भृगवे पुरा। ओं खखोल्काय नमः। सूर्य्यस्य मूलमन्त्रोऽयं भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥९॥

हरि कहते हैं—मैंने पूर्वकाल में भृगु से जो सूर्यार्चन कहा था, वह पुनः आपसे कहता हूं। "ओं खखोल्काय नमः" यह सूर्य का भुक्ति-मुक्तिप्रद मन्त्र है॥९॥

ओं खखोल्काय त्रिदशाय नमः। ओं विचि ठठ शिरसे नमः। ओं ज्ञानिने ठठ शिखायै नमः। ओं सहस्त्ररश्मये ठठ कवचाय नमः॥१०॥
ओं सर्वतेजोऽधिपतये ठठ अस्त्रायः नमः। ओं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ठठ नमः॥
अग्निप्रकारमन्त्रोऽयं सूर्य्यस्याघविनाशनः॥११॥
ओं आदित्याय विद्महे विश्वभावाय धीमहि तन्नः सूर्य्यः प्रचोदयात्॥१२॥

"ओं खखोल्काय त्रिदशाय नमः" से आवाहन करके न्यास करे। यथा—

ओं विचि ठ ठ शिरसे नमः।

ओं ज्ञानिने ठ ठ शिखायै नमः।

ओं सहस्त्ररश्मये ठ ठ कवचाय नमः।

ओं सर्वतेजोऽधिपतये ठ ठ अस्त्राय नमः।

ओं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ठ ठ नमः।

अब सूर्य गायत्री से सकलीकरण करना चाहिये—

यथा—ओं आदित्याय विद्महे विश्वभावाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्॥१०-१२॥

सकलीकरणं कुर्य्याद् गायत्र्या भास्करस्य च।
धर्म्मात्मने च पूर्वस्मिन् यमायेति च दक्षिणे॥१३॥
दण्डनायकाय ततो वैवर्णायेति चोत्तरे।
श्यामपिङ्गलमैशान्यामाग्नेय्यां दीक्षितं यजेत्॥१४॥
वज्रपाणिश्च नैर्ऋत्यां भूर्भुवः स्वश्च वायवे॥१५॥

ओं चन्द्राय नक्षत्राधिपतये नमः। ओं अङ्गारकाय क्षितिसुताय नमः। ओं बुधाय सोमपुत्राय नमः। ओं वागीश्वराय सर्वविद्याधिपतये नमः। ओं शुक्राय महर्षये भृगुसुताय नमः। ओं शनैश्चराय सूर्यात्मजाय नमः। ओं राहवे नमः। ओं केतवे नमः। पूर्वादीशानपर्यन्ता एते पूज्या वृषध्वज॥१६॥

ओं अनूरुकाय नमः। ओं प्रमथनाथाय नमः। ओं बुद्धाय नमः॥१७॥

अब ॐ धर्मात्मने नमः - पूर्व में,
ॐ यमाय नमः - दक्षिण में,
ॐ दण्डनायकाय नमः - पश्चिम में,
ॐ विवर्णाय नमः - उत्तर में,
ॐ श्यामपिंगलाय नमः - ईशान कोण में,
ॐ दीक्षिताय नमः - अग्निकोण में,

ॐ वज्रपाणये नमः - नैर्ऋत्कोण में,
ॐ भूर्भुवः स्वर्नमः - वायुकोण में

से पूजा करनी चाहिये।

अब ग्रहपूजन पूर्व दिशा से प्रारम्भ करे। यथा—

पूर्व में - ॐ चन्द्राय नक्षत्राधिपतये नमः।

अग्निकोण में - ॐ अंगारकाय क्षितिसुताय नमः।

दक्षिण में - ॐ बुधाय सोमपुत्राय नमः।

नैर्ऋत्कोण में - ॐ वागीश्वराय सर्वविद्याधिपतये नमः।

पश्चिम में - ॐ शुक्राय महर्षये भृगुसुताय नमः।

वायुकोण में - ॐ शनैश्चराय सूर्यात्मजाय नमः।

उत्तर में - ॐ राहवे नमः।

ईशान कोण में - ॐ केतवे नमः। इस मन्त्र से पूजा करे।

ॐ अनुरुकाय नमः से अनुरु (अरुण) की पूजा करे। इसी प्रकार चतुर्थ्यन्त नाम के आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर प्रमथनाथ तथा बुद्ध की पूजा करे। यथा—ॐ प्रमथनाथाय नमः, ॐ बुद्धाय नमः॥१३-१७॥

ओं भगवन्! परिमितमयूखमालिन्! सकलजगत्पते! सप्ताश्ववाहन! चतुर्भुज! परमसिद्धिप्रद! विस्फुलिङ्गपिङ्गल! भद्र! एह्येहि इदमर्घ्यं नमः शिरसि गतं गृह्ण गृह्ण तेज उग्ररूपम् अनग्न! ज्वल ज्वल ठठ नमः॥१८॥

अब श्लोक १८ में लिखे मूलोक्त मन्त्र से सूर्यदेव का आवाहन तथा अर्घ्यदान सम्पन्न करना चाहिये। (मन्त्र का अनुवाद संभव नहीं है। मूल से देखें)॥१८॥

अनेनावाह्य मन्त्रेण ततः सूर्यं विसर्जयेत्।
ओं नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय गच्छ सुखं पुनरागमनायेति॥१९॥

॥इति गारुडे महापुराणे षोडशोऽध्यायः॥१६॥

—❋❋❋—

इस मन्त्र से पूजा करके इस मन्त्र द्वारा उनका विसर्जन करे।

"ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय गच्छ सुखं पुनरागमनायेति॥१९॥

॥सोलहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

पुनः सूर्यध्यान अर्चन वर्णन

हरिरुवाच

पुनः सूर्यार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं धनदाय हि।
अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं शुचौ देशे सकर्णिकम्॥१॥
आवाहनीं ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्धरिम्।
खखोल्कं स्थापयेन्मध्ये स्नापयेद् यन्त्ररूपिणम्॥२॥
आग्नेय्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेच्छिव।
ऐशान्यां तु शिरः स्थाप्यं नैर्ऋत्यां विन्यसेच्छिखाम्॥३॥
पौरन्दर्यां न्यसेद्धर्ममेकाग्रस्थितमानसः। वायव्याञ्चैव नेत्रन्तु वारुण्यामस्त्रमेव च॥४॥
ऐशान्यां स्थापयेत् सोमं पौरन्दर्यान्तु लोहितम्।
आग्नेय्यां सोमतनयं याम्याञ्चैव बृहस्पतिम्॥५॥
नैर्ऋत्यां दानवगुरुं वारुण्यां तु शनैश्चरम्। वायव्याञ्च तथा केतुं कौबेर्यां राहुमेव च॥६॥

श्रीहरि ने कहा— अब मैं पुनः सूर्यार्चन कहता हूं। मैंने कुबेर से यह अर्चन कहा था। पवित्र स्थान में कर्णिका समन्वित अष्टदल पद्म बनाये। तदनन्तर आवाहनी मुद्रा बन्धन द्वारा सूर्यदेव का आवाहन करना चाहिये। उनको पद्ममध्य में यन्त्ररूपेण न्यस्त करे। हे शिव! अग्निकोण में सूर्यदेव के हृदय का, ईशान कोण में उनके शिर का तथा नैर्ऋत्कोण में उनकी शिखा की स्थापना करे। पूर्वदिक् में उनके वर्म का, वायुकोण में नेत्र का तथा पश्चिम में अस्त्रमन्त्र का न्यास करे। उनके ईशान कोण में सोम को, पूर्वदिक् में मंगल को, अग्निकोण में बुध को, दक्षिण में बृहस्पति को, नैर्ऋत में शुक्र को, पश्चिम में शनि को, वायुकोण में केतु को तथा उत्तर में राहु की अर्चना करनी चाहिये॥१-६॥

द्वितीयायान्तु कक्षायां सूर्यान् द्वादश पूजयेत्।
भगः सूर्योऽर्यमा चैव मित्रो वै वरुणस्तथा॥७॥
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः।
त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते॥८॥
पूर्वादावर्चयेद्देवानिन्द्रादीन् श्रद्धया नरः। जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता।
शेषश्च वासुकिश्चैव नागानित्यादि पूजयेत्॥९॥

।।इति गारुडे महापुराणे सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

द्वितीय कक्षा में द्वादश सूर्य की पूजा करे। वे हैं भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र, विष्णु। इनके चतुर्थ्यन्त नाम के आदि में ॐ तथा अन्त में नमः लगाकर पूजा करे। साधक सश्रद्धभाव से पूर्वदिक् से प्रारम्भ करके इन्द्र आदि दसों दिक्पालों की पूजा करके जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता की तथा शेष, वासुकि आदि नागों की पूजा करे।।७-९।।

।।सत्रहवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

मृत्युञ्जय की अर्चना विधि

सूत उवाच

गरुडोक्तं कश्यपाय वक्ष्ये मृत्युञ्जयार्चनम्। उद्धारपूर्वकं पुण्यं सर्वदेवमयं मतम्।।१।।
ओङ्कारं पूर्वमुद्धृत्य जूङ्कारं तदनन्तरम्। सविसर्गं तृतीयं स्यान्मृत्युदारिद्र्यमर्दनम्।।२।।
अमृतेशं महामन्त्रं त्र्यक्षरं पूजनं समम्। जपनाद् मृत्युहीनाः स्युः सर्वपापविवर्जिताः।।३।।

श्रीहरि ने कहा—गरुड़ ने कश्यप से जो मृत्युंजयार्चन कहा था (ये कश्यप कश्यपप्रजापति नहीं हैं। यह वह कश्यप ब्राह्मण हैं, जो परीक्षित को तक्षकविष से बचाने गया था, परन्तु मार्ग में तक्षक से धन लेकर वापस चला गया था) वही मैं कहता हूं। यह अर्चना पुण्यदायक है। यह सर्वदेवमय पूजन है। यह प्रसिद्ध है। यह पूजा जो सविधि सम्पन्न करता है, वह सर्वदेवार्चन फललाभ करता है। अब मन्त्रोद्धार कहते हैं। इनका मन्त्र है "ॐ जूं सः"। जो साधक इसे जपता है, उसे मृत्युभय नहीं रह जाता। उसे दरिद्रता भी नहीं रह जाती। जो फल व्यक्ति विष्णु, महेश्वर, सूर्य तथा अन्य देवताओं के कवच के धारण से प्राप्त करता है, इस मन्त्र जप से वही फल मिलने लगता है। इसे सर्वार्थसाधक मन्त्र भी कहा जाता है। यह मन्त्र जपने वाला सर्वपापरहित हो जाता है। यह अमृतेश नामक त्र्यक्षर महामन्त्र है। यह महाफलदायक भी है।।१-३।।

शतजप्याद् वेदफलं यज्ञतीर्थफलं लभेत्। अष्टोत्तरशतं जप्यं त्रिसन्ध्यं मृत्युशत्रुजित्।।४।।
ध्यायेच्च सितपद्मस्थं वरदञ्चाभयं करे। द्वाभ्याञ्चामृतकुम्भं तु चिन्तयेद मृतेश्वरम्।।५।।
तस्यैवाङ्कगतां देवीममृतामृतभाषिणीम्। कलशं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते सरोरुहम्।।६।।
जपेदष्टसहस्रं वै त्रिसन्ध्यं माममेकतः। जरामृत्युमहाव्याधिशत्रुजिज्जीवशान्तिदः।।७।।

इस मन्त्र का सौ बार जप करने से चारों वेदों के पाठ का फल, सर्व यज्ञानुष्ठान का फल तथा सर्वतीर्थ दर्शन का फल मिलता है। तीनों सन्ध्या में जो इसका १०८ जप प्रति सन्ध्या में करता है, वह मृत्यु तथा शत्रु को जीत लेता है। इस मन्त्रजप काल में देवाधिदेव पद्मासनासीन हैं, यह ध्यान करना

चाहिये। वे श्वेत कमल पर बैठे हैं। उनके दोनों दाहिने हाथों में वर तथा अभय मुद्रा है। दोनों दाहिने हाथों में अमृतकुंभ है। इस प्रकार से इन अमृतेश्वर का ध्यान करना चाहिये। उनके अंक में (बायें अंक में) अमृत के समान बोलने वाली देवी विराजमान हैं। देवी के दाहिने हाथ में कलश तथा वाम हाथ में कमल है। हे शिव! जो साधक इस प्रकार ध्यानयुक्त होकर एक मास तक प्रति संध्या काल में एक हजार आठ मन्त्र जप (त्र्यक्षर मन्त्र) करता है, उसकी जरा, मृत्यु, महाव्याधि नष्ट होती है। शत्रु पराजित हो जाते हैं। यह मन्त्र सभी प्राणियों हेतु शान्तिदायक है॥४-७॥

आस्थानं स्थापनं रोधं सन्निधानं निवेशनम्। पाद्यमाचमनं स्नानमर्घ्यमगुरुलेपनम्।
दीपाम्बरं भूषणञ्च नैवेद्यं पानजीवनम्॥८॥
मात्रा मुद्रा जपं ध्यानं द्दक्षिणाञ्चाहुतिः स्तुतिः।
वाद्यं गीतञ्च नृत्यञ्च न्यासं योगं प्रदक्षिणम्।
प्रणतिर्मन्त्र इज्या च वन्दनञ्च विसर्जनम्॥९॥
षडङ्गादिप्रकारेण पूजनन्तु क्रमोदितम्। परमेशमुखोदीर्णं यो जानाति स पूजकः॥१०॥

आवाहनीय, स्थापनी, रोधनी, सन्निधापन तथा निवेशन इन पंचमुद्राओं से इनका आवाहनादि सम्पन्न करके पाद्य-आचमनीय-स्नानीय-अर्घ्य, अगुरुधूप, दीप, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य तथा पानीय जल प्रदान करके इन उपचारों से प्रभु की पूजा करनी चाहिये। मात्रा, मुद्रा प्रदर्शन, मन्त्र का जप, मृत्युंजय देव का उपरोक्त ध्यान, दक्षिणा, होम, स्तुति, वाद्य-नृत्य-गायन, न्यास, योग, प्रदक्षिणा, प्रणाम, मन्त्र जप, अर्चन, वन्दन, विसर्जनरूपी पूजा के अंग से पूजा करे। षडंग आदि विधान से क्रमशः पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। जो परमेश्वर के मुख से कहे गये इस पूजन विधि के ज्ञाता हैं, वे ही यथार्थ पूजक होते हैं॥८-१०॥

अर्घ्यपाद्यार्चनञ्चादौ वस्त्रेणैव तु ताडनम्। शोधनं कवचेनैव अमृतीकरणं ततः॥११॥
पूजा चाधारशक्त्यादेः प्राणायामं तथासने।
पिण्डशुद्धिं ततः कुर्य्याच्छोषणाद्यैस्ततः स्मरेत्॥१२॥
आत्मानं देवरूपञ्च कराङ्गन्यासकञ्चरेत्।
आत्मानं पूजयेत्पश्चाज्ज्योतीरूपं हृदब्जतः॥१३॥

प्रथमतः अर्घ्य तथा पाद्यादि से अर्चना सम्पन्न करके 'फट्' मन्त्र से ताड़न कार्य करे। तदनन्तर कूर्च मन्त्र (हुं) से शोधन तथा अमृतीकरण कार्य करने के अनन्तर आधारशक्ति आदि की पूजा करनी चाहिये। तब प्राणायाम, आसनोपवेशन, देहशुद्धि करे। देहशुद्धि कार्य में शोषण, दहन, आप्लावन (शोषण 'यं' बीज से, दहन 'रं' बीज से, आप्लावन 'वं' बीज से होगा) करे। तत्पश्चात् अंगन्यास-करन्यास सविधि करे। इसके अनन्तर आत्मा की ज्योति रूप में हृदयकमल पर पूजा (भावना द्वारा) करे॥११-१३॥

मूर्त्तौ वा स्थण्डिले वापि क्षिपेत्पुष्पं तु भास्वरम्।
आत्मानं द्वारपूजार्थं पूजा चाधारशक्तिजा॥१४॥

सान्निध्यकरणं देवे परिवारस्य पूजनम्।
अङ्गषट्कस्य पूजार्थं कर्त्तव्या दिग्विभागतः॥१५॥
धर्मादयश्च शक्राद्याः सायुधाः परिवारकाः। युगवेदमुहूर्त्ताश्च पूजेयं भुक्तिमुक्तिकृत्॥१६॥
मातृकाया गणश्चादौ नन्दिगङ्गे च पूजयेत्। महाकालञ्च यमुनां देहल्यां पूजयेत् पुरा॥१७॥
ओं अमृतेश्वरभैरवाय नमः। एवं ओं जूं सः सूर्य्याय नमः।
एवं शिवाय कृष्णाय ब्रह्मणे च गणाय च।
चण्डिकायै सरस्वत्यै महालक्ष्म्यादि पूजयेत्॥१८॥

।।इति गारुडे महापुराणे अमृतेशपूजनं नाम अष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

तदनन्तर देवता प्रतिमा किंवा स्थण्डिल पर उज्ज्वल वर्ण पुष्पों को छोड़े तथा द्वारपूजार्थ आत्मा की और आधारशक्ति की पूजा सविधि सम्पन्न करनी चाहिये। इसके अनन्तर इन देवता की सान्निध्यकरण विधि सम्पन्न करके परिवार पूजा तथा दिक् विभागतः षडङ्ग पूजन भी करना होगा। तब धर्मादि तथा इन्द्रादि की पूजा इनके परिवार तथा अस्त्रों के साथ सम्पन्न करे। इस पूजा के उपरान्त युग, वेद, मुहूर्त्त की भी पूजा करने से यह पूजा भुक्ति-मुक्ति दोनों प्रदान करती है। पहले मातृकाओं, नन्दी तथा गंगा की पूजा करने के उपरान्त देहली पर महाकाल तथा यमुना पूजा करे। इसके पश्चात् "ॐ अमृतेश्वर भैरवाय नमः" से अमृतेश्वर पूजन के अनन्तर "ॐ जूं सः सूर्याय नमः" से सूर्य की तथा शिव, कृष्ण, ब्रह्मा तथा गणों की और चण्डिका, सरस्वती, महालक्ष्मी की पूजा सम्पन्न करे॥१४-१८॥

॥अट्ठारहवां अध्याय समाप्त॥

ऊनविंशोऽध्यायः

प्राणेश्वर मन्त्र, सर्प विषहारी मन्त्र

श्रीहरि उवाच

प्राणेश्वरं गारुडञ्च शिवोक्तं प्रवदाम्यहम्। स्थानान्यादौ प्रवक्ष्यामि नागदष्टो न जीवति॥१॥

श्रीहरि कहते हैं—हे रुद्र! अब मैं शिव द्वारा गरुड़ को बतलाये गये प्राणेश्वर मन्त्र को कहता हूं। पहले मैं स्थान का वर्णन करता हूं, जहां पर यदि सांप डसता है, तब वह व्यक्ति जीवित नहीं बचता। नदी पर डसा किसी भी प्रकार से नहीं बचता॥१॥

चितावल्मीकशैलादौ कूपे च विवरे तरोः। दंशे रेखात्रयं यस्य प्रच्छन्नं स न जीवति॥२॥

षष्ठ्याञ्च कर्कटे मेषे मूलाश्लेषामघादिषु। कक्षाश्रोणिगले सन्धौ शङ्खकर्णोदरादिषु॥३॥

दण्डी शस्त्रधरो भिक्षुर्नग्नादिः कालदूतकः।

वक्त्रे बाहौ च ग्रीवायां पृष्ठे च न हि जीवति॥४॥

(श्मशान) चिता, दीमक की बांबी, पर्वत, कूप तथा पेड़ के कोटर में डसा व्यक्ति तथा जहां डसे गये अंग पर तीन रेखा दृष्ट हो, उस दंशन वाला कोई मानव जीवित नहीं रहता। षष्ठी के दिन, कर्क तथा मेष राशि के दिन, मूला आश्लेषा तथा मघा आदि क्रूर नक्षत्रों में, कांख में, कमर में, अंगों की सन्धि में, ललाटास्थि में, कान, उदर, मुख, बाहु, गले, पीठ पर सांप डसे तब कोई जीवित नहीं बचता। दण्डी, शस्त्रधारी, भिक्षुक, नग्न व्यक्ति तो कालरूप होते हैं। यदि सर्पदंश काल में इनका दर्शन हो, तब वह डसा गया व्यक्ति अवश्य मृत हो जाता है॥२-४॥

पूर्वं दिनपतिर्भुङ्क्ते अर्द्धयामं ततोऽपरे। शेषा ग्रहाः प्रतिदिनं षट्संख्यापरिवर्त्तनैः॥५॥

नागभोगः क्रमाज्ज्ञेयो रात्रौ बाणविवर्त्तनैः।

शेषोऽर्कः फणिपश्चन्द्रस्तक्षको भौम ईरितः॥६॥

कर्कोटो ज्ञो गुरुः पद्मो महापद्मश्च भार्गवः। शङ्खः शनैश्चरो राहुः कुलिकश्चाहयो ग्रहाः॥७॥

दिन के प्रथम यामार्द्धकाल में रवि अधिपति होता है। शेष ग्रह प्रतिदिन षष्ठ स्थान में बदलते रहते हैं। उस छठें स्थान में जो ग्रह होगा, वह द्वितीय आधे याम का स्वामी होगा। द्वितीय यामार्द्ध के अधिपति से छठें स्थान पर गणना में जो ग्रह आयेगा, वही तृतीय यामार्द्ध का अधिपति होगा। इसी प्रकार से पहले यामार्द्ध के अधिपति से छठें स्थानस्थ ग्रहानुसार प्रत्येक यामार्द्ध के अधिपति का निश्चय करे। उदाहरणार्थ रविवार को प्रथम यामार्द्धपति सूर्य होगा। द्वितीय यामार्द्ध का अधिपति शुक्र होगा। तब तृतीय यामार्द्धपति होगा बुध, चतुर्थ का पति होगा चन्द्र। यामार्द्ध पंचम का अधिपति होगा शनि। इस प्रकार जाने। रात्रिकाल के भी प्रथम यामार्द्ध का अधिपति होगा रवि। प्रथम यामार्द्धाधिपति से पञ्चावृत्ति की गणना में जो ग्रह होता है, वही होता है द्वितीय यामार्द्ध का अधिपति। रविवार के रात्रिकाल में प्रथम यामार्द्ध का अधिपति सूर्य होगा। द्वितीय यामार्द्ध का स्वामी होगा बृहस्पति। इसी प्रकार तृतीय का चन्द्र, चतुर्थ का शुक्र, पञ्चम का मंगल इत्यादि। अष्टनाग भी अष्टग्रह के ही रूप कहे गये हैं। जैसे शेषनाग ही रवि ग्रह हैं। वासुकि नाग चन्द्र हैं। तक्षक मंगल, कर्कोटक बुध, पद्मनाग बृहस्पति, महापद्मनाग शुक्र तथा शंखनाग हैं शनि तथा कुलिकनाग ही राहु कहे गये हैं॥५-७॥

रात्रौ दिवा सुरगुरोर्भागे स्यादमरान्तकः।

पङ्गोः कालो दिवा राहुः कुलिकेन सह स्थितः।

यामार्द्धार्द्धसन्धिसंस्थो वेलां कलवतीञ्चरेत्॥८॥

बाणद्विषड्वह्निवाजियुगभूरेकभागतः। दिवा षड्वेदनेत्राद्रिपञ्चत्रिमानुषांशकैः॥९॥

यदि बृहस्पति के यामार्द्ध भाग में रात किंवा दिन में सांप डसता है, तब देवता भी नहीं बचा सकते। शनि किंवा राहु यामार्द्धकाल में डसा व्यक्ति निश्चित रूप से कालकवलित होगा। रविवासरी रात में

प्रथम यामार्द्धपति रवि होते हैं, द्वितीय यामार्द्धपति हैं बृहस्पति, तृतीय यामार्द्धपति चन्द्र कहे गये हैं। चतुर्थ के अधिपति हैं शुक्र, पंचम के अधिपति हैं मंगल। षष्ठ के हैं शनि, सप्तम के हैं बुध तथा अष्टम यामार्द्धपति सूर्य हैं। इसी प्रकार दिवा में यामार्द्धों के अधिपति क्रमिकरूपेण हैं। रवि, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, बृहस्पति, मंगल तथा पुनः रवि॥८-९॥

पादाङ्गुष्ठे पादपृष्ठे गुल्फे जानुनि लिङ्गके। नाभौ हृदि स्तनपुटे कण्ठे नासापुटेऽक्षिणि।
कर्णयोश्च भ्रुवोः शङ्खे मस्तके प्रतिपत्क्रमात्॥१०॥
तिष्ठेच्चन्द्रश्च जीवेन्न पुंसो दक्षिणभागके।
कायस्य वामभागे तु स्त्रिया वायुवहात्करात्।
अमवत्त्वत्कृतो मोहो निवर्त्तेत च मर्दनात्॥११॥

चन्द्रदेव प्रतिपदा में मनुष्य पैरों के अंगूठे में, द्वितीया के दिन पादपृष्ठ में, तृतीया पर गुल्फ में, चतुर्थी पर जानु में, पंचमी पर लिंग में, षष्ठी पर नाभि में, सप्तमी पर हृदय में, अष्टमी पर स्तनों में, नवमी पर कण्ठ में, दशमी पर नासिका में, एकादशी पर नेत्रों पर, द्वादशी को कानों में, त्रयोदशी पर भ्रूद्वय में, चतुर्दशी पर ललाट की अस्थि पर, पंचदशी पर (शुक्ल पूर्णिमा अथवा कृष्णा अमावस्या) मस्तक पर रहते हैं। इन तिथियों पर उक्त सन्दर्भित अंगों पर अर्थात् पुरुष के इन दक्षिणांग पर तथा स्त्री के इन वामांगों पर सर्पदंश होने से मृत्यु अवश्यम्भावी है। इन सब स्थानों पर सर्पदंश होने से मृत्यु निश्चित है। इन स्थानों पर दंश से मोह जन्म होता है। इन स्थानों को मलने से मोह निवृत्त हो जाता है॥१०-११।

आत्मनःपरमं बीजं हंसाख्यं स्फटिकामलम्।
ज्ञातव्यं विषपापघ्नं बीजं तस्य चतुर्विधम्॥१२॥
बिन्दुपञ्चस्वरयुतमाद्यमुक्तं द्वितीयकम्। षष्ठारूढं तृतीयं स्यात्सविसर्गं चतुर्थकम्॥१३॥
ओं कुरु कुन्दे स्वाहा। विद्या त्रैलोक्यरक्षार्थं गरुडेन धृता पुरा॥१४॥
वधेप्सुर्नागनागानां मुखेऽथ प्रणवं न्यसेत्।
गले कुरु न्यसेद्धीमान् कुन्दे च गुल्फयोः स्मृतः।
स्वाहा पादयुगे चैव युगहा न्यास ईरितः॥१५॥
गृहेऽपि लिखितो यत्र तन्नागाः सन्त्यजन्ति च।
सहस्त्रमन्त्रं जप्त्वा तु कर्णे सूत्रं धृतं तथा॥१६॥

आत्मा का परम बीज है स्फटिकवत् निर्मल हंसबीज। इस बीज के प्रभाव से विष विकार का नाश होना अवश्यम्भावी है। यह चार प्रकार का बीज है। प्रथम है बिन्दुयुक्त, द्वितीय है पंचम स्वरयुक्त, तृतीय है षष्ठ स्वरयुक्त, चतुर्थ है विसर्गयुक्त। पूर्वकाल में त्रैलोक्य रक्षणार्थ गरुड़ ने "ॐ कुरुकुन्दे स्वाहा" महामन्त्र प्रचलित किया था। नागवध करने वाला व्यक्ति 'ॐ' मन्त्र का मुख में विन्यास करे। गले में 'कुरु' का न्यास करे। 'कुन्दे' का न्यास गुल्फ में करे। पादयुगल में 'स्वाहा' का न्यास करे। जो मानव अपने देह में एवंविध मन्त्रन्यास सम्पन्न कर लेता है, उसे सर्पों का भय नहीं रह जाता। जिस गृह में इसे लिखा जाता

है, उसे सर्प त्याग देते हैं। जो मनुष्य इस मन्त्र से एक हजार बार अभिमन्त्रित सूत्र को कानों में लपेट लेता है, उसे सर्पभय नहीं रहता॥१२-१६॥

यद्गृहे शर्करा जप्ता क्षिप्ता नागास्त्यजन्ति तम्।
जप्तलक्षस्य जप्याद्धि सिद्धिः प्राप्ता सुरासुरैः॥१७॥
ओं सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा।
एवञ्चाष्टदले पद्मे दले वर्णयुगं लिखेत्।
नामैतद्वारिधाराभिः स्नातो दष्टो विषं त्यजेत्॥१८॥
ओं पक्षि स्वाहा।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं करे न्यस्याथ देहके। केवक्त्रे हृदि लिङ्गे च पादयोर्गरुडः स हि॥१९॥
नाक्रामन्ति च तच्छायां स्वप्नेऽपि विषपन्नगाः।
यस्तु लक्षं जपेच्चास्याःस दृष्ट्वा नाशयेद्विषम्॥२०॥
ओं ह्रीं ह्रौं ह्रीं भिरुण्डायै स्वाहा। कर्णे जप्ता त्वियं विद्या दष्टकस्य विषं हरेत्॥२१॥

जिस गृह में शर्करा पर यह मन्त्र जप कर छिड़क दिया जाता है, उसे नाग त्याग देते हैं। सुर-असुरगण इसका सात लाख जप करके सिद्धिलाभ करते हैं। अष्टदल वाला कमल बनाकर उसके एक-एक पत्र पर नीचे लिखे मन्त्र का दो-दो अक्षर लिखे। मन्त्र यह है— "ॐ सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणी स्वाहा" इसके पश्चात् सर्प डसे व्यक्ति को जलधारा में स्नान कराये। इससे उस व्यक्ति का शारीरिक विष नष्ट हो जाता है। "ॐ पक्षि स्वाहा" अंगूठे से कनिष्ठा पर्यन्त अंगन्यास करे। इस मन्त्र से जिस व्यक्ति के मस्तक, मुख, हृदय, लिंग तथा पदद्वय का न्यास होता है, वह साक्षात् गरुड़ ही है। उस व्यक्ति का स्पर्श तक विषधर सर्प स्वप्न तक में करने में असमर्थ हैं। जो व्यक्ति उक्त मन्त्र का एक लाख जप करता है, उसे देखते ही विष का विनाश हो जाता है। "ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रीं भिरुण्डायै स्वाहा" मन्त्र का सांप से डसे व्यक्ति के कान में सात बार जप करने से उस पर जो विष का प्रभाव है,वह नष्ट हो जाता है॥१७-२१॥

अ आ न्यसेत्तु पादाग्रे इ ई गुल्फेऽथ जानुनि।
उ ऊ ए ऐ कटितटे ओ नाभौ हृदि औ न्यसेत्॥२२॥
वक्त्रे अमुत्तमाङ्गे अः न्यसेच्च हंससंयुताः।
हंसो विषादि च हरेज्जप्तो ध्यातोऽथ पूजितः॥२३॥
गरुडोऽहमिति ध्यात्वा कुर्य्याद्विषहरीं क्रियाम्।
हं मन्त्रं गात्रविन्यस्तं विषादिहरमीरितम्॥२४॥
न्यस्य हंसं वामकरे नासामुखनिरोधकृत्।
मन्त्रो हरेद्दष्टकस्य त्वङ्मांसादिगतं विषम्॥२५॥

'अ आ' का न्यास पादाग्र में, 'इ ई' का गुल्फ में, 'उ ऊ' का जानुद्वय में, 'ए' का कटि में, 'ओ'

का नाभि में, 'औ' का हृदय में, 'ॐ' का मुख में, 'अः' का वर्ण विन्यास मस्तक में करे। विन्यास काल में हंस मन्त्र युक्त करे अर्थात् उस वर्ण से हंस मन्त्र का योग करके न्यास करे। जो व्यक्ति हंस मन्त्र से ध्यान-पूजन-जप करता है, उसका विष नाश हो जाता है। यह क्रिया करते समय व्यक्ति स्वयं में 'गरुड़' की भावना करे अर्थात् वह स्वयं गरुड़ भावयुक्त होकर गरुड़रूपी बोध स्वयं में करता हुआ यह क्रिया करे। यह विष निवारक क्रिया है। 'हं' बीज का देह में न्यास करने से विषाद नष्ट होता है। 'हंसः' मन्त्र का बायें हाथ में न्यास करने से सर्प की नाक तथा मुख का रोध हो जाता है। इससे सर्प काटे व्यक्ति के चर्म में तथा मांस में गया विष विनष्ट हो जाता है॥२२-२५॥

स वायुना समाकृष्य दष्टानां गरलं हरेत्। तनौ न्यसेद्दष्टकस्य नीलकण्ठादि संस्मरेत्॥२६॥
पीतं प्रत्यङ्गिरामूलं तण्डुलाद्भिर्विषापहम्। पुनर्नवाफलिनीनां मूलं चक्रजमीदृशम्॥२७॥
मूलं शुकबृहत्यास्तु कर्कोट्या गैरिकर्णिकम्।
अद्भिर्घृष्टं घृतोपेतं लेपोऽयं विषमर्दनः॥२८॥

वह साधक वायु द्वारा डसे गये व्यक्ति के शरीर से विष का हरण कर लेता है। वह व्यक्ति के शरीर पर नीलकंठ आदि मन्त्रों का प्रयोग करके विष नाश कर देता है। प्रत्यंगिरा लता की जड़ को चावल की माड़ के साथ पीने से विष नष्ट हो जाता है। पुनर्नवा, प्रियंगु, तगर वृक्ष, शुक्लबृहती, कोहड़ा तथा अपराजिता की जड़ को जल के साथ पीस कर घृत मिलाये। इसे विषपीड़ित व्यक्ति के शरीर में लेप करे। यह देहगत विष का नाशक है॥२६-२८॥

विषवृद्धिं न व्रजेच्च उष्णं पिबति यो घृतम्।
पञ्चाङ्गन्तु शिरीषस्य मूलं गृञ्जनजं तथा॥२९॥
सर्वाङ्गलेपतश्चापि पानाद्वा विषहृद्भवेत्। ओं ह्रीं गोनसादिविषहृत्॥३०॥
हृल्ललाटविसर्गान्तं ध्यातं वश्यादिकृद्भवेत्।
न्यस्तं योनौ वशेत् कन्यां कुर्य्यान्मदजलाविलाम्॥३१॥

जो कुछ गरम घृत पान करता है, उसकी देह में विष की वृद्धि नहीं होती। सर्प का डसा व्यक्ति शिरीष वृक्ष का फल, मूल, पत्र, पुष्प तथा छाल लेकर उसे गृञ्जन वृक्ष की जड़ के साथ पीसे तथा सर्वाङ्ग पर लेप करे। इससे विषदोष निवारित होता है। 'ह्रीं' मन्त्र गोनस आदि सांपों का विष हर लेता है। इनके विष निवारणार्थ इस मन्त्र का प्रयोग करे। 'नमः अः' मन्त्र के ध्यान मात्र से वशीकरण हो जायेगा। उस नारी के हृदय, ललाट तथा शिर पर इस मन्त्र का ध्यान करे। इसे किसी पत्ते पर लिखे तथा नारी की योनि में स्थापित करे। वह नारी वशीभूत हो जाती है। उसकी योनि काम जल से भर जाती है॥२९-३१॥

जप्त्वा सप्ताष्टसाहस्रं गरुत्मानिव सर्वगः।
कविः स्याच्छ्रुतिधारी च वश्यां स्त्रीं च समाप्नुयात्।
विषहृत्स्यात् कथातत्त्वं मुनेर्व्यासस्य ते ध्रुवम्॥३२॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्राणेश्वरं समाप्तमूनविंशोऽध्यायः॥१९॥

'नमः अः' इस मन्त्र का जो सात हजार अथवा आठ हजार जप करता है, वह गरुड़ के समान सर्वत्र आने-जाने का सामर्थ्य लाभ करता है। वह कवि तथा श्रुतिधर हो जाता है। इस मन्त्र का ऐसा प्रभाव है कि मन्त्र जपने वाले साधक के प्रति स्त्रियां वश में हो जाती हैं तथा स्वयमेव उसके पास पहुंच जाती हैं। इस अध्याय में जो कुछ कहा गया वह व्यास जी द्वारा कहा गया विष पीड़ा निवारक प्रयोग है॥३२॥

॥उन्नीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
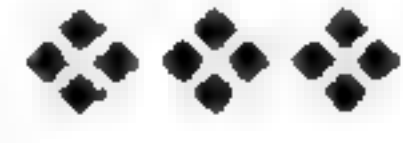
विंशोऽध्यायः

शिव कथित अति गुप्त मन्त्र

हरि उवाच

वक्ष्ये तत्परमं गुह्यं शिवोक्तं मन्त्रवृन्दकम्। पाशं धनुश्च चक्रञ्च मुद्गरं शूलपट्टिशम्।
एतैरेवायुधैर्युद्धे मन्त्रैः शत्रुं जयेन्नृपः॥१॥

मन्त्रोद्धारं पद्मपत्रे आदि पूर्वादिके लिखेत्। अष्टवर्गञ्चाष्टमञ्च ख्यातमीशानपत्रके॥२॥

ओङ्कारो ब्रह्मबीजं स्यात् ह्रीङ्कारो विष्णुरेव च ह्रीङ्कारञ्च शिरःशूलिन्त्रिलिखेत्तत्क्रमान्न्यसेत्। ॐ ह्रीं ह्रीं॥३॥

शूलं गृहीत्वा हस्तेन भ्राम्य च्चाकाशसम्मुखम्।
तद्दर्शनाद् ग्रहा नागा दृष्ट्वा वा नाशमाप्नुयुः॥४॥
धूम्रं धनुः करमध्ये धृत्वा खे चिन्तयेन्नरः।
दुष्टा नागा ग्रहा मेघा विनश्यन्ति च राक्षसाः।
त्रिलोकान् रक्षयेन्मन्त्रो मर्त्यलोकस्य का कथा॥५॥

ओं जूं सूं हुं फट्। खादिरान् कीलकानष्टौ क्षेत्रे संमन्त्र्य विन्यसेत्। न तत्र वज्रपातस्य स्फूर्जथ्वादेरुपद्रवः॥६॥

गरुडोक्तं महामन्त्रं कीलकानष्ट मन्त्रयेत्। एकविंशतिवाराणि क्षेत्रे तु निखनेन्निशि। विद्युन्मूषिकवज्रादिसमुपद्रव एव च॥७॥

श्रीहरि[1] कहते हैं—अब मैं शिव द्वारा बतलाये गये अत्यन्त गुप्त विविध मन्त्रों का वर्णन करता हूं। इन सभी मन्त्रों के प्रभाव से पाश, धनुष, चक्र, मुद्गर, शूल, पट्टिश आदि अस्त्रों से राजा युद्ध में

१. यहां रमाशंकर भट्टाचार्य द्वारा संशोधित प्रति में सूत उवाच लिखा है।

विजयलाभ करते हैं। मन्त्रोद्धार करके एक आठ दलयुक्त कमल बनाये। उसके आठ पत्र में पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके अकारादि आठ वर्ण लिखे। इसका उदाहरण दिया जाता है। पूर्व दिशा वाले पत्र में अ से अः तक के सोलह स्वरों को, अग्निकोण वाले पत्र में च छ ज झ ञ को, नैर्ऋत्कोण वालेपत्र में ट ठ ड ढ ण को, पश्चिमदिक् वाले पत्र में त थ द ध न को, वायव्य कोण वाले पत्र में प फ ब भ म को, उत्तर वाले पत्र में य र ल व को, ईशान कोण वाले पत्र में श ष स ह ल क्ष को लिखे (यहां यह ज्ञातव्य है कि संस्कृत में दो बार 'ल' का प्रयोग मिलता है)। 'ॐ' ब्रह्मबीज है। 'ह्रीं' विष्णु स्वरूप है। 'हुं' शिवस्वरूप है। "ॐ ह्रीं हुं" इन बीजत्रय से अंगन्यास करना विहित है। अब साधक त्रिशूल ले कर उसे आकाश में घुमाये। इस शूल को देखने मात्र से ग्रहों तथा नागों का विनाश होना निश्चित है, अथवा धूम्रवर्ण का धनुष उठा कर आकाश की ओर ऊपर करे। तब इसी मन्त्र "ॐ ह्रीं हुं" का ध्यान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप दुष्ट प्रवृत्ति वाले नाग, ग्रह, मेघ तथा राक्षसों का विनाश हो जाता है। यह मन्त्र तीनों लोकों में रक्षा करता है। मनुष्यों की तो बात ही क्या? खदिर वृक्ष की आठ कील बनाये। उसे "ॐ जूं सूं हुं फट्" से अभिमन्त्रित करके क्षेत्र की आठ दिशा के कोणों में इसी मन्त्र को गाड़े। वहां वज्रपात, विद्युत्पात का भय नहीं रहता। [२]गरुड़देव द्वारा कहे मन्त्र से इन आठ कीलकों में से प्रत्येक को २१-२१ बार अभिमन्त्रित करे। इनको रात में क्षेत्र के आठों कोनों पर (अष्टदिक् में) गाड़ना चाहिये। मूषिक, विद्युत्, वज्रपातादि प्राकृतिक भय वहां कदापि नहीं होता॥१-७॥

हरक्षरमलवषड् बिन्दुयुक्तः सदाशिवः। ओं ह्रां सदाशिवाय नमः। तर्जन्या विन्यसेत् पिण्डं दाडिमीकुसुमप्रभम्॥८॥

तस्यैव दर्शनाद्दुष्टा मेघविद्युद्विषादयः। राक्षसा भूतडाकिन्यः प्रद्रवन्ति दिशो दश॥९॥

"ॐ ह्रां सदाशिवाय नमः" मन्त्र द्वारा अनार के पुष्प की तरह प्रभाव वाला एक पिण्ड निर्मित कराये। तर्जनी उंगली से इस पिण्ड को दिखलाने से ही मेघ, विद्युत, विष, दुष्ट राक्षस, भूत तथा डाकिनी दसों दिशाओं में तत्काल भाग जाते हैं॥८-९॥

ओं ह्रीं गणेशाय नमः। ओं ह्रीं स्तम्भनादिचक्राय नमः। ओं ऐं यौं त्रैलोक्यडामराय नमः। भैरवं पिण्डमाख्यातं विषपापग्रहापहम्। क्षेत्रस्य रक्षणं भूतराक्षसादेः प्रमर्दनम्॥१०॥

भैरव पिण्ड मन्त्र कहते हैं—ये विष, पाप तथा ग्रह नष्ट करते हैं। ये क्षेत्र रक्षक मन्त्र हैं तथा भूत एवं राक्षसों का मर्दन करने वाले हैं। यथा—ॐ ह्रीं गणेशाय नमः, ॐ ह्रीं स्तम्भनादि चक्राय नमः, ॐ ऐं यौं त्रैलोक्यडामराय नमः॥१०॥

ओं नमः। इन्द्रवज्रं करे ध्यात्वाः दुष्टमेघादिवारणम्।
विषशत्रुगणा भूता नश्यन्ति वज्रमुद्रया॥११॥

"ॐ नमः" पढ़ते हुये मनुष्य वज्रमुद्राबद्ध हथेली में इन्द्र वज्र की भावना करते ध्यान करे। इससे दुष्ट मेघों का निवारण हो जाता है। विष, शत्रु, भूत नष्ट होते हैं॥११॥

२. यहां बंगभाषा प्रति में अन्य मन्त्र इस मन्त्र की जगह अंकित है। वह है "ॐ हूं सूं हुं फट्।"

ओं क्षुं नमः। स्मरेत्पाशं वामहस्ते विषभूतादि नश्यति॥१२॥

"ॐ क्षुं नमः" से बायीं हथेली में पाश की भावना करे। इससे विष भूतादि का नाश निश्चित है॥१२॥

ओं ह्रां नमः।
हरेदुच्चारणान्मन्त्रो विषमेघग्रहादिकान्।
ध्यात्वा कृतान्तञ्च दहेच्छेदकास्त्रेण वै जगत्॥१३॥

'हरि' मन्त्र का उच्चारण विष-मेघादि महान् उत्पात को तथा कृतान्त (यम) को भी दग्ध कर देता है। इस छेदकास्त्र से जगत् का भी छेदन हो जाता है॥१३॥

ओं क्ष्णं नमः। ध्यात्वा तु भैरवं कुर्य्याद् ग्रहभूतविषापहम्॥१४॥

"ॐ क्ष्णं नमः" यह भैरव मन्त्र है। इसका ध्यान करने से ग्रह-भूत-विष का नाश होता है॥१४॥

ओं लसद्विजिह्याक्ष स्वाहा। क्षेत्रादिग्रहभूतादिविषपक्षिनिवारणम्॥१५॥

"ॐ लसद्विजिघ्नाक्ष स्वाहा" यह क्षेत्रादि के भूतादि-विष-पक्षी का निवारक है॥१५॥

ओं क्षां नमः। रक्तेन पटहे लिख्य शब्दस्तेषु ग्रहादयः॥१६॥

"ॐ क्षां नमः" इसे रक्त से पटह के पार्श्व में लिखे। यह शब्दोत्पादन करेगा। इससे ग्रहादि निवृत्त हो जाते हैं॥१६॥

ओं मर मर मारय मारय स्वाहा। ओं हुं फट् स्वाहा।
शूलञ्चाष्टशतैर्मन्त्र्य मनसा शत्रुवृन्दहृत्॥१७॥
ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन अधःशक्ति निकुञ्चयेत्।
पूरके पूरिता मन्त्राः कुम्भकेन सुमन्त्रिताः॥१८॥
प्रणवेनाप्यायितस्ते अनेन तत्तदीरितः। एवमाप्यायिता मन्त्रा भृत्यवत् फलदायकाः॥१९॥

॥इति गारुडे महापुराणे विंशोऽध्यायः॥२०॥

अपने शूल को १०८ बार इस मन्त्र से अभिमंत्रित करे—"ॐ मर मर मारय मारय स्वाहा, ॐ हुं फट् स्वाहा। अब इस शूल को घुमायें। इससे शत्रु नष्ट हो जाते हैं। इससे ऊर्ध्वशक्ति निपातन द्वारा अधः शक्ति आकुंचित हो जाती है। सभी मन्त्रों को पूरक प्राणायाम द्वारा स्थापित करके कुंभकावस्था में शूल अभिमन्त्रित करे (ऐसा १०८ बार करे)। तदनन्तर इसे प्रणव से आप्यायित करने के अनन्तर उन-उन कार्य को करना चाहिये। ऐसे आप्यायन प्राप्त मन्त्र दासवत् फल देते हैं॥१७-१९॥

॥बीसवां अध्याय समाप्त॥

एकविंशोऽध्यायः

पञ्चवक्त्र पूजन विधि

हरि उवाच

पञ्चवक्त्राच्चर्नं वक्ष्ये पृथग्यद्भुतिमुक्तिदम्।
ओंभूविष्णवे आदिभूताय सर्वाधाराय मूर्त्तये स्वाहा।
सद्योजातस्य चाह्वानमनेन प्रथमञ्चरेत्॥१॥
ओं हां सद्योजातायैव कला ह्यष्टौ प्रकीर्त्तिताः।
सिद्धिर्ऋद्धिर्धृतिर्लक्ष्मीर्मेधा कान्तिः स्वधास्थितिः॥२॥
ओं हां वामदेवायैव कला ह्यस्य त्रयोदश।
राजा रक्षा रतिः पाल्या कान्तिस्तृष्णा मतिः क्रिया।
कामा बुद्धिश्च रात्रिश्च चासनी मोहिनी तथा॥३॥
मनोन्मनी अघोरा च तथा मोहा क्षुधा कला।
निद्रा मृत्युश्च माया च अष्टसंख्या भयङ्करा॥४॥
ओं हैं तत्पुरुषायैव। निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिर्न केवला॥५॥
ओं ह्रौं ईशानाय तमो निश्चला च निरञ्जना।
शशिनी चाङ्गना चैव मरीचिर्ज्वालिनी तथा॥६॥

॥इति गारुडे महापुराणे पञ्चवक्त्रपूजनं नाम एकविंशोऽध्यायः॥२१॥
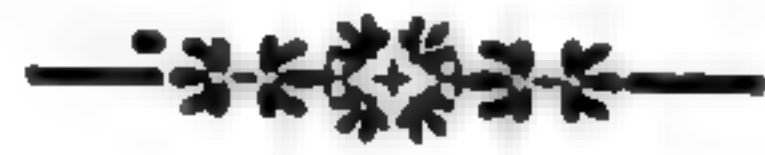
श्रीहरि कहते हैं—अब मैं पञ्चवक्त्र का विवरण कहता हूं। यह भोगेच्छु को भोग तथा मोक्षकामी को मोक्ष प्रदाता पूजन है। "ॐ भूर्विष्णवे आदिभूताय सर्वाधाराय मूर्त्तये स्वाहा" इस मन्त्र से सद्योजात का आवाहन करे। इसके अनन्तर "ॐ ह्रां सद्योजाताय नमः" से पूजा की जाये। इन देवता की आठ संख्यक शक्तियां हैं। यथा—सिद्धि, ऋद्धि, धृति, लक्ष्मी, मेधा, कान्ति, स्वधा, स्थिति। "ॐ सिध्यै नमः" इस प्रकार से चतुर्थ्यन्त नाम के पूर्व 'ॐ' तथा अन्त में नमः लगाकर इन आठों शक्तियों की पूजा करे। अब "ॐ ह्रां वामदेवाय नमः" से वामदेव की पूजा करनी चाहिये। इनकी तेरह कलायें इस प्रकार हैं—रक्षा, रति, पाल्या, कान्ति, तृष्णा, मति, क्रिया, कामा, बुद्धि, रात्रि, त्रासिनी, मोहिनी। इनकी पूजा इनके चतुर्थ्यन्त नाम के पूर्व में 'ॐ' तथा अन्त में नमः लगाकर करे। जैसे—"ॐ रक्षायै नमः"। अघोर की आठ कलायें हैं—मनोन्मनी, अघोरा, मोरा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया, भयंकरा।

अब तत्पुरुष की पूजा "ॐ तत्पुरुषाय नमः" से करे। इनकी कलायें हैं—निवृत्ति, प्रतिष्ठा,

विद्या, शान्ता। इनकी पूजा भी (शक्तियों की) "ॐ निवृत्यायै नमः" इत्यादि रूप से होगी। अब ईशान पूजा "ॐ ह्रौं ईशानाय नमः" से करे। इनकी शक्तियां हैं—तमा, निश्चला, निरंजना, शशिनि, अंगना, मरीचि, ज्वालिनी॥१-६॥

टिप्पणी—यह पञ्चवक्त्र पूजन विधि का उल्लेख है, परन्तु श्लोक ३ तथा ४ के बीच की एक दो पंक्तियां लुप्त लग रही हैं, क्योंकि अघोर मुख का मूल में उल्लेख ही नहीं है। मन्त्र भी पांचों मुखों का "षड्दीर्घ" नियम से ठीक नहीं लग रहा है। "हां" का प्रयोग सद्योजात-वामदेव दोनों हेतु है। जबकि तत्पुरुष हेतु "ह्रां" कहा गया। अतः विद्वान् विचार करें।

॥एक्कीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
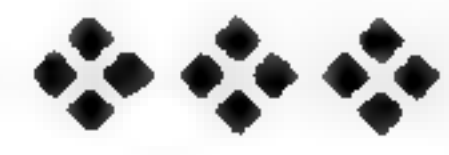
द्वाविंशोऽध्यायः

शिवार्चन विधि वर्णन

हरि उवाच

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम्।
शान्तं सर्वगतं शून्यं मात्रा द्वादशके स्थितम्।
पञ्चवक्त्राणि ह्रस्वानि दीर्घाण्यङ्गानि बिन्दुना॥१॥
सविसर्गं वदेदस्त्रं शिव ऊर्ध्वं तथा पुनः। षष्ठेनाधो महामन्त्रो हौमित्येवाखिलार्थदः॥२॥
हस्ताभ्यां संस्पृशेत् पादावूर्ध्वं पादान्तमस्तकम्।
महामुद्रा हि सर्वेषां कराङ्गन्यासमाचरेत्॥३॥

श्रीहरि कहते हैं—अब मैं शिवार्चन कहूंगा। इस अर्चना द्वारा भोग तथा मोक्षलाभ हो जाता है। इस महामन्त्र को जो जपता है, उसे सभी प्रकार की कामनाओं की प्राप्ति होती है। भगवान् शिव शान्त, सर्वगत, शून्य, द्वादश मात्रा में स्थित हैं। इनका मन्त्र है 'हौं'। इसी से इनकी अर्चना करनी चाहिये। साधक को चाहिये कि दोनों हाथों से पैर का स्पर्श करके पैर से लगाकर मस्तक तक सभी स्थान का स्पर्श समन्त्रक करे। यही महामुद्रा कही जाती है। इसके पश्चात् कराङ्गन्यास का आचरण करे॥१-३॥

तालहस्तेन पृष्ठञ्च अस्त्रमन्त्रेण शोधयेत्।
कनिष्ठामादितः कृत्वा तर्जन्यङ्गानि विन्यसेत्॥४॥
पूजनं संप्रवक्ष्यामि कर्णिकायां हृदम्बुजे। धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्याद्वि हृदाऽर्चयेत्॥५॥
आवाहनं स्थापनञ्च पाद्यमर्घ्यं हृदार्पयेत्। आचामं स्नपनं पूजामेकाधारणतुल्यकाम्॥६॥

अग्निकार्यविधिं वक्ष्ये शस्त्रेणोल्लेखनं चरेत्।
वर्मणाभ्युक्षणं कार्यं शक्तिन्यासं हृदा चरेत्॥७॥
हृदि वा शक्तिगर्त्ते च प्रक्षिपेज्जातवेदसम्।
गर्भाधानादिकं कृत्वा निष्कृतिञ्चास्य पश्चिमाम्॥८॥

'ॐ फट्' मन्त्र से हाथ के तल से पृष्ठ शोधन करे। कनिष्ठा से लगाकर तर्जनी पर्यन्त अंगन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् पूजाविधि का वर्णन करता हूं। हृदयकमल की कर्णिका में ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः इत्यादि प्रकार से पूजा करे। तदनन्तर आवाहन एवं स्थापन करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा स्नानीय आदि उपचार से पूजन करे। अब होमविधि कही जाती है। 'फट्' मन्त्र से स्थण्डिल बनाकर 'हुं' मन्त्र से स्थण्डिल पर जल छिड़के। इसके अनन्तर हृदय में शक्ति न्यास करके स्थण्डिल अथवा कुण्ड में अग्नि का निःक्षेप करे। इसके पश्चात् अग्नि का गर्भाधान आदि संस्कार सम्पन्न करके कुशकुण्डिकोक्त सर्व कार्य को सम्पन्न करना चाहिये॥४-८॥

हृदा कृत्वा सर्वकर्म शिवं साङ्गं तु होमयेत्। पूजयेन्मण्डले शम्भुं पद्मगर्भे गवाङ्कितम्॥९॥
चतुःषष्ट्यन्तमष्टादि स्वाक्षिस्वाध्यादिमण्डलम्। खाक्षीन्द्रसूर्यगं सर्वखादिवेदेन्दुवर्त्तनात्॥१०॥
आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डमर्द्धचन्द्रनिभं शुभम्।
अग्निशास्त्रपरा शस्त्रहृदादिगणोच्यते।
अस्त्रं दिशामुपान्तेषु कर्णिकायां सदाशिवम्॥११॥

सभी कार्य में 'नमः' प्रयुक्त करना चाहिये तथा अंग देवताओं तथा शंभु हेतु होम करे। इस होम के उपरान्त पद्मगर्भ मण्डल में वृषांकित शंभु का पूजन करे। ६४ पदयुक्त मण्डल बनाकर उसमें पूजा की जानी चाहिये। अग्निकोण में जो सुशोभन कुण्ड बनाये, वह अर्द्धचन्द्राकृति रहे। इसमें अग्नि-ईश आदि देवगण की पूजा करने के उपरान्त मण्डल की सभी दिशाओं में अस्त्र पूजा करे। तत्पश्चात् कर्णिका में सदाशिव पूजन करे॥९-११॥

दीक्षां वक्ष्ये पञ्चतत्त्वे स्थितां भूम्यादिकां परे।
निवृत्तिर्भूःप्रतिष्ठा च विद्याग्निः शान्तिरश्मिनः॥१२॥
शान्त्यतीतं भवेद्धोमे तत्परं शान्तमव्ययम्। एकैकस्य शतं होममित्येवं पञ्च होमयेत्।
पश्चात् पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रसादेन शिवं स्मरेत्॥१३॥
प्रायश्चित्तविशुद्ध्यर्थमेकैकमाहुतिं क्रमात्। होमयेदस्त्रबीजेन एवं दीक्षा समाप्यते॥१४॥
यजनव्यतिरेकेण गोप्यं संस्कारमुत्तमम्। एवं संस्कारशुद्धस्य शिवत्वं जायते ध्रुवम्॥१५॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

इसके पश्चात् की जाने वाली पञ्चतत्वात्मक दीक्षा का वर्णन करता हूं। सर्वप्रथम भूमि आदि

पञ्चतत्व (भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश) दीक्षा के उपरान्त निवृत्ति आदि देवताओं की पूजा करे। इनमें से प्रत्येक हेतु एक-एक सौ होम करे। इस प्रकार निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या आदि पांचों के लिये उक्त पांच सौ होम के उपरान्त पूर्णाहुति देकर हर्षित चित्त से शिवमन्त्र (प्रासाद मन्त्र 'हौं') का जप करे। तदनन्तर प्रायश्चित्त हेतु एक-एक घृताहुति देनी चाहिये। 'फट्' मन्त्र से होम सम्पन्न करके यह दीक्षा सम्पन्न होगी। इसमें यजन आदि कार्य को छोड़कर बाकी सब गुप्त रखे। (दीक्षामन्त्र आदि)। दीक्षा से शुद्ध हो गया मानव शिवत्व लाभ करता है॥१२-१५॥

॥बाईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

शिवादि पूजन प्रसंग

हरि उवाच

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि धर्मकामादिसाधनम्। त्रिभिर्मन्त्रैराचामेत्स्वाहान्तैः प्रणवादिकैः॥१॥
ओं हां आत्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय हीं तथा।
ओं हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा हृदास्यात् श्रोत्रवन्दनम्॥२॥
भस्मस्नानं तर्पणञ्च ओं हां यां स्वाहा सर्वमन्त्रकाः।
सर्वे देवाः सर्वमुनिर्नमोऽन्तो वौषडन्तकः।
स्वधान्ताः सर्वपितरः स्वधान्ताश्च पितामहाः॥३॥

अब मैं धर्म-अर्थ-काम साधक शिवार्चन कहता हूं। इसमें आत्मतत्व, विद्यातत्व तथा शिवतत्व के मन्त्र के प्रारम्भ में प्रणव लगाये। अन्त में स्वाहा लगाये। यथा—ॐ हां आत्मतत्वाय स्वाहा, ॐ हीं विद्यातत्वाय स्वाहा, ॐ हूं शिवतत्वाय स्वाहा। अब इन मन्त्रों से आचमनोपरान्त 'नमः' से कर्ण स्पर्श करना होगा। इसको करने के उपरान्त भस्मस्नान तथा तर्पण करना चाहिये। 'ॐ हां यां स्वाहा' इनका मन्त्र है। देवता तथा मुनि का तर्पण अन्त में नमः तथा वौषट् लगाकर करे। सभी पितर तथा पितामहगण के तर्पण में अन्त में स्वधा लगाये॥१-३॥

ओं हां प्रपितामहेभ्यस्तथा मातामहादयः। हां नमः सर्वमातृभ्यस्ततः स्यात्प्राणसंयमः॥४॥
आचामं मार्जनञ्चाथो गायत्रीञ्च जपेत्ततः।
ओं हां तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥५॥
सूर्य्योपस्थापनं कृत्वा सूर्य्यमन्त्रैः प्रपूजयेत्।

ओं हां हीं हूं हैं हौं हः शिवसूर्य्याय नमः। ओं हं खखोल्काय सूर्य्यमूर्त्तये नमः।
ओं ह्रां ह्रीं सः सूर्य्याय नमः।

दण्डिने पिङ्गले त्वतिभूतानि नियमं स्मरेत्। अग्न्यादौ विमलेशानमाराध्य परमं सुखम्॥६॥

य जेत्पद्माञ्च रां दीप्तां रींसूक्ष्मां रूं जयाञ्च रें।
भद्राञ्च रैं विभूतिं रों विमलां रौममोघिकाम्॥७॥
रं विद्युताञ्च पूर्वादौ रो मध्ये रं सर्वतोमुखीम्।
अर्कासनं सूर्य्यमूर्त्तिं ह्रां ह्रूं सः सूर्य्यमर्च्चयेत्॥८॥
ओं आं हृदयार्काय च शिरःशिखाय च भुर्भूवः स्वरोम्॥९॥
ज्वालिनीं हुं कवचस्य चास्त्रं राज्ञीञ्च दीक्षिताम्।
यजेत्सूर्य्यहृदा सर्वान्सों सोमञ्च मं मङ्गलम्॥१०॥
बं बुधं बृं बृहस्पतिं भं भार्गवं शं शनैश्चरम्।
रं राहुं कं यजेत् केतुं ओं तेजश्चण्डमर्च्चयेत्॥११॥

यथा ॐ हां प्रपितामहेभ्य: स्वधा, ॐ हां मातामहेभ्य: स्वधा, ॐ हां सर्वमातृभ्यां वौषट्। इस प्रकार से तर्पण करे। तदनन्तर प्राणायाम करना चाहिये। इसके पश्चात् आचमन एवं आपोमार्जन करे। इसके पश्चात् साधक सूर्योपस्थान करे। साथ ही वह सूर्यदेव के मन्त्र से इन मन्त्रों से सूर्यदेव की पूजा करे। यथा—

ॐ हां हीं हूं हैं हौं ह: शिवसूर्याय नम:।
ॐ हं खखोल्काय सूर्यमूर्त्तये नम:।
ॐ ह्रां ह्रीं स: सूर्य्याय नम:।
ॐ दण्डिने नम:, ॐ पिङ्गलाय नम:।
ॐ अतिभूतेभ्यो नम:॥

तदनन्तर अग्नि आदि कोण में (चारों कोणों में) ॐ विमलाय नम:, ॐ ईशानाय नम: इत्यादि से पूजन करे।

यह परम सुखप्रद पूजा कथित है। इसके पश्चात् रां पद्मायै नम:, रीं दीप्तायै नम:, सं सूक्ष्मायै नम:, रें अव्यायै नम:, रैं भद्रायै नम:, रों विभूत्यै नम:, रौं विमलायै नम:, रं अमोघिकायै नम:, र: विद्युतायै नम:। अब पूर्वादिदिक् से प्रारम्भ करके सभी दिशाओं में तथा मध्य में इस प्रकार से पूजन करना चाहिये। यथा—रं सर्वतोमुख्यै नम:, ॐ अर्कासनाय नम:, ॐ सूर्यमूर्तये नम:, ॐ ह्रां ह्रूं स: सूर्य्याय नम:, ॐ आं हृदयार्काय नम:, ॐ भूर्भुव: स्व रों शिरसे नम:, ॐ भूर्भुव: स्व: शिखायै नम:, ॐ हुं ज्वालिन्वै नम:, ॐ हुं फट् राज्यै नम:, ॐ हुं फट् दीक्षितायै नम:। ॐ सूर्य्याय नम:, सों सोमाय नम:, ॐ मं मंगलाय नम:, ॐ बुं बुधाय नम:, ॐ बृं बृहस्पतये नम:, ॐ भं भार्गवाय नम:, ॐ शं शनैश्चराय नम:, रां राहवे नम:, कं केतवे नम;, ॐ तेजश्चण्डाय नम:॥४-११॥

सूर्य्यमभ्यर्च्य चाचम्य कनिष्ठातोऽङ्गकान्यसेत्।
हां हीं शिरो हुं शिखा हैं वर्म्म हौं च नेत्रकम्।
होऽस्त्रं शक्तिस्थितिं कृत्वा भूतशुद्धिं पुनर्न्यसेत्॥१२॥
अर्घ्यपात्रं ततः कृत्वा तदद्भिः प्रोक्षयेद् यजेत्।
आत्मानं पद्मसंस्थञ्च हौं शिवाय ततो बहिः॥१३॥
द्वारे नन्दिमहाकालौ गङ्गा च यमुनाऽथ गीः।
श्रीवत्सं वास्त्वधिपतिं ब्रह्माणञ्च गणं गुरुम्॥१४॥
ज्ञक्त्यनन्तौ यजेन्मध्ये पूर्वादौ धर्मकादिकम्।
अधर्माद्यञ्च वह्न्यादौ मध्ये पद्मस्य कर्णिके।
वामा ज्येष्ठा च पूर्वादौ रौद्री काली शिवा सिता॥१५॥

ओं हौं कलविकरिण्यै बलविकरिणी ततः। बलप्रमथिनी सर्वभूतानां दमनी ततः॥१६॥
मनोन्मनी यजेदेताः पीठमध्ये शिवाग्रतः। शिवासनमहामूर्तिं मूर्तिमध्ये शिवाय च॥१७॥

इस प्रकार से साधक-पूजक सूर्यदेवता की पूजा करके आचमन सम्पन्न करे। तदनन्तर कनिष्ठा अंगुली से लगाकर उन-उन उंगली से अंगन्यास करे। यथा—

हां हृदयाय नमः, हीं शिरसे स्वाहा, हूं शिखायै वषट्, हैं कवचाय हुं, हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, हः अस्त्राय फट्। अब शक्ति स्थापना करने के पश्चात् भूतशुद्धि करनी चाहिये। यह करने के अनन्तर अर्घ्य जल से अपने शरीर को तथा पूजा के सामान को प्रोक्षित करे। इसके पश्चात्—

पद्ममध्य में—हौं शिवाय नमः,

बहिर्भाग में—ॐ नन्दिने नमः, ॐ महाकालाय नमः, ॐ गंगायै नमः, ॐ यमुनायै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ वास्तुपुरुषाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ गणेशाय नमः, ॐ गुरुवे नमः इन मन्त्रों से इन विभूतियों की पूजा करे।

इस पूजनोपरान्त पद्ममध्य में ॐ शक्त्यै नमः, ॐ अनन्ताय नमः से पूजा करके पूर्वदिक् में ॐ धर्माय नमः, दक्षिण में ॐ ज्ञानाय नमः, पश्चिम में ॐ वैराग्याय नमः, उत्तर में ॐ ऐश्वर्याय नमः, अग्निकोण में ॐ अधर्माय नमः, नैर्ऋत्कोण में ॐ अज्ञानाय नमः, वायुकोण में ॐ अवैराग्याय नमः, ईशान कोण में ॐ अनैश्वर्याय नमः, पद्मकर्णिका में ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, चारों पूर्वादिदिक् में ॐ रौद्रयै नमः, ॐ काल्यै नमः, ॐ शिवायै नमः, ॐ असितायै नमः से पूजा करनी चाहिये। इस पूजन के अनन्तर ॐ हौं कलविकरिण्यै नमः, ॐ बलविकरिण्यै नमः, ॐ बलप्रमथिन्यै नमः, ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः, ॐ मनोन्मन्यै नमः। इन देवगण की पूजा पीठमध्य में की जाये। तब शिव के अग्रभाग में इन मन्त्रों से पूजा करे। यथा—ॐ शिवासन महामूर्तियै नमः, अब मूर्त्ति में—ॐ शिवाय नमः से पूजा करनी चाहिये॥१२-१७॥

आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानं निरोधनम्। सकलीकरणं मुद्रादर्शनं चार्घ्यपाद्यकम्॥१८॥

आचामाभ्यङ्गमुद्वर्त्तं स्नानं निर्मञ्छनं चरेत्। वस्त्रं विलेपनं पुष्पं धूपं दीपं चरुं ददेत्॥१९॥
आचामं मुखवासञ्च ताम्बूलं हस्तशोधनम्। छत्रचामरोपवीतं परमीकरणं चरेत्॥२०॥
रूपकल्पनकैकत्वे जपो जपसमर्पणम्। स्तुतिर्नतिर्हृदाद्यैश्च ज्ञेयं नामाङ्गपूजनम्॥२१॥

अग्नीशं रक्षो वायव्ये मध्ये पूर्वादितन्त्रकम्।
इन्द्राद्यांश्च यजेच्चण्डं तस्मैर्निमर्माल्यमर्पयेत्॥२२॥

इस पूजनोपरान्त आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी, सन्निरोधिनी तथा पंचम सकलीकरणी मुद्राओं को दिखला कर अर्घ्य जल एवं पाद्य अर्पित करे। इसको करने के उपरान्त आचमनीय जल, अभ्यङ्ग, उबटन, स्नानीय जल भी देकर निर्मन्थन करना आवश्यक है। वस्त्र, गंधादि, अनुलेपन, धूप, पुष्प, दीप एवं चरु भी देना चाहिये। इसके अनन्तर आचमनीय, सुखोपवेशन, ताम्बूल, हस्तशोधित करने वाले द्रव्य, छाता (छत्र), चामर और यज्ञोपवीत अर्पित करके साधक परमीकरण सम्पन्न करे। इसके पश्चात् आत्मा एवं देवता का ऐक्य भावना द्वारा सम्पन्न करके मूलमन्त्र का यथाशक्ति जप करे। जपान्त में देवता को जप अर्पित करे। तदनन्तर साधक स्तव आदि का पाठ एवं प्रणाम करके हृदय आदि षडङ्गपूजा भी करे। आग्नेय आदि चारों विदिक् में, मध्य में एवं पूर्वादि चारों दिशाओं में इन्द्रादि देवगण का पूजन सविधि करने के उपरान्त चण्डेश्वर का पूजन 'ॐ चण्डेश्वराय नम;' से करना चाहिये। उनको निर्माल्यार्पण करे॥१८-२२॥

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव तत्प्रसादात्त्वयि स्थिते॥२३॥
यत्किञ्चित् कर्म हे देव· सदा सुकृतदुष्कृतम्।
तन्मे शिवपदस्थस्य क्षयं कुरु यशस्कर॥२४॥
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत्।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च॥२५॥
यत् कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृतं तव।
त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव॥२६॥

इसके पश्चात् 'ॐ गुह्याति गुह्यगोप्तात्वं' से लेकर 'मे शिव' पर्यन्त का पाठ करके जप अर्पित करे।

अर्थ—आप गुह्यातिगुह्य गोप्ता हैं। आप मेरे द्वारा कृत जप को ग्रहण करें। आपमें स्थित होकर हे देव! यह जप मेरे लिये सिद्धिदायक हो जाये। हे देव! मैंने जो कुछ सुकृत-दुष्कृत कर्म किया हो, वह शिवपदस्थ होकर क्षयीभूत हो जाये तथा मेरे लिये यशस्कर हो जाये। शिव ही दाता, भोक्ता तथा समस्त जगत् हैं। उन शिव की सर्वत्र जय हो। जो शिव हैं, वह मैं ही हूं। मैं जो कुछ करता हूं, जो कर चुका, वह सब आपका ही कार्य है। हे शिव! आप ही त्राता तथा विश्वनेता हैं। आपके अतिरिक्त मेरा कोई नाथ ही नहीं है॥२३-२६॥

अथान्येन प्रकारेण शिवपूजां वदाम्यहम्।
गणः सरस्वती नन्दी महाकालोऽथ गङ्गया॥२७॥

यमुना ते वास्त्वधिपो द्वारि पूर्वादितस्त्विमे।
इन्द्राद्याः पूजनीयाश्च तत्त्वानि पृथिवी जलम्॥२८॥
तेजो वायुर्व्योम गन्धो रसरूपे च शब्दकः।
स्पर्शो वाक् पाणिपादौ च पायूपस्थं श्रुतित्वचौ॥२९॥
चक्षुर्जिह्वा घ्राणमनोबुद्धिश्चाहं प्रकृत्यपि।
पुमान् रागो द्वेषविद्ये कालाकालो नियत्यपि॥३०॥
माया च शुद्धविद्या च ईश्वरश्च सदाशिवः।
शक्तिः शिवश्च तान् ज्ञात्वा मुक्तो ज्ञानी शिवो भवेत्॥३१॥
यः शिवः स हरिर्ब्रह्मा सोऽहं ब्रह्मास्ति मुक्तितः॥३२॥
भूतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि यथा शुद्धः शिवो भवेत्।
हृत्पद्म सद्यो मन्त्रः स्यान्निवृत्तिश्च कला इडा॥३३॥
पिङ्गला द्वे च नाड्यौ च प्राणोऽपानश्च मारुतौ। इन्द्रदेहो ब्रह्मदेहश्चतुरस्त्रञ्च मण्डलम्॥३४॥
वज्रेण लाञ्छितं दीप्तमेकोद्घातगुणाः शराः। हृत्स्थानसातूणहनं शतकोष्ठप्रविस्तरम्॥३५॥
ओं ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ओं ह्रं विद्यायै ह्रं हः फट्।
चतुरशीतिकोटीनामुच्छ्रयं भूमितन्त्रकम्।
तन्मध्ये भववृक्षञ्च आत्मानञ्च विचिन्तयेत्॥३६॥

इसके पश्चात् अन्य प्रकार से की जाने वाली शिव की पूजा कहता हूं। गणेश, सरस्वती, नंदी, महाकाल, गंगा, यमुना, अस्त्र तथा वास्तुपुरुष देवगण की पूजा पूर्व-दक्षिण-उत्तर-पश्चिम द्वारों पर करे। इसके बाद इन्द्रादि देवताओं की पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। तत्पश्चात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शव्द, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, श्रुति, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, घ्राण, मनः, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, राग, द्वेष, विद्या, काल, अकाल, नियति, माया, शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति, शिव की पूजा करे। जो मानव यह सव जानता है, उसे ही मुक्त, ज्ञानी तथा शिवस्वरूप जाने। शिव ही हरि हैं, वे ही व्रह्मा तथा वे ही मैं (हरि) हूं। यही हरिहर व्रह्मात्मक (एकीभूत) स्वरूप है। अव भूतशुद्धि कहा जाता है। भूतशुद्धि के प्रभाव से साधक शुद्ध चित्त वाले तथा शिवरूप हो जाते हैं। हृदयकमल, सद्योजात रुद्रमन्त्र, निवृत्ति, कला, इड़ा-पिंगला आदि नाड़ियां, प्राण-अपान, इन्द्रदेह, व्रह्मदेह, चतुरस्त्र मण्डल, वज्रांकित प्रदीप्त एकोद्घात गुण वाले शर, इन सवका ध्यान शत कोष्ठ वाले हृदय में करे। "ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट्, ॐ ह्रं विद्यायै ह्रं हः फट्" मन्त्र द्वारा इसमें ही चौरासी कोटि उच्छ्रययुक्त भूमितन्त्रमय संसारवृक्ष रूप आत्मा का चिन्तन करे॥२७-३६॥

अधोमुखीं ततः पृथ्वीं तत्तत् शुद्धं भवेद् ध्रुवम्।
वामादेवी प्रतिष्ठा च सुषुम्ना धारिका तथा॥३७॥

समानोदानवरुणौ देवता विष्णुकारणम्।
उद्घाताश्च गुणं वेदाः श्वेता ध्यानं तथैव च॥३८॥
एवं कुर्यात्कण्ठपद्ममर्द्धचन्द्राख्यमण्डलम्। पद्माङ्कितं द्विशतकं कोटिविस्तीर्णवान्स्मरेत्॥३९॥
चतुर्नवत्युच्छ्रयञ्च आत्मानञ्च अधोमुखम्।
तासु स्थानञ्च पद्मञ्च अघोरो विद्ययान्वितः॥४०॥

इस चिन्तन के उपरान्त अधोमुख स्थित पृथिवी, वामदेवी, प्रतिष्ठा, सुषुम्ना, धारिका, समान-उदानवायु, वरुण इत्यादि तथा अर्द्धचन्द्रमण्डलरूपी पद्मांकित दो सौ कोटि विस्तार वाले कण्ठपद्म की भावना करनी चाहिये। तदनन्तर चतुर्नवति (९४ कोटि) कोटि ऊँचाई वाली तथा अधोमुखी आत्मा की तथा वहां के पद्म की तथा अपनी विद्या के साथ विराजमान अघोर का ध्यान करे॥३७-४०॥

नाभ्योष्ठया हस्तिजिह्वा ध्यानो नागोऽग्निदेवता।
रुद्रहेतुस्त्रिरुद्घातास्त्रिगुणा रक्तवर्णकम्॥४१॥
ज्वालाकृते त्रिकोणञ्च चतुःकोटिशतानि च।
विस्तीर्णञ्च समुत्सेधं रुद्रतत्त्वं विचिन्तयेत्॥४२॥
ललाटे तु तत्पुरुषः शक्तिर्यः शाद्बलं बुधाः। कूर्मश्च कृकरो वायुर्देव ईश्वरकारणम्॥४३॥
द्विरुद्घातगुणौ द्वौ च वृषं षट्कोणमण्डलम्।
विन्द्वङ्कितञ्चाष्टकोटिविस्तीर्णञ्चोच्छ्रयस्तथा।
चतुर्दशाधिकं कोटि वायुतत्त्वं विचिन्तयेत्॥४४॥
द्वादशान्ते सरसिजे शान्त्यतीतास्तथेश्वराः।
कुहुश्च शङ्खिनी नाड्यो देवदत्तो धनञ्जयः॥४५॥
शिखेशानकारणञ्च सदाशिव इति स्मृतः।
गुणे एकस्तथोद्घातं शुद्धस्फटिकवत् स्मरेत्॥४६॥
षोडशं कोटिविस्तीर्णं पञ्चविंशति चोच्छ्रयम्।
वर्त्तुलं चिन्तयेद्धाम भूतशुद्धिरुदाहृता॥४७॥

इस ध्यान के उपरान्त नाभि, होंठ, हस्तिजिह्वा, नाग, अग्निदेव, रुद्रदेव प्रभृति, तीन उपघात, सत्व-रजः-तमः गुणत्रय रक्तवर्ण त्रिकोण मण्डल एवं चतुःकोटिशत विस्तार वाले रुद्रतत्व की भावना करनी चाहिये। इस भावना के पश्चात् ललाट तथा ललाटास्थि में लिंगरूपी शिव शक्ति के साथ, कूर्म-कृकर वायु, ईश्वर कारण, सत्व-रजः गुण रूपी द्विरुघात, विन्दु चिह्नांकित आठ कोटि विस्तार वाले तथा आठ कोटि ऊंचाई वाले षट्कोणात्मक चतुर्दशाधिक कोटि वायुतत्व का चिन्तन करना चाहिये। यह करने के अनन्तर द्वादश दल वाले कमल में शान्तातीता शक्ति, ईश्वर नामक शिव, कुहू तथा शंखिनी नाड़ी, देवदत्त-धनंजय वायु का चिन्तन करे। शिखा प्रदेश में ईशान कारण सदाशिव नामक शिव, एकोद्घात, शुद्ध स्फटिक के

समान, सोलह कोटि विस्तार वाले, पच्चीस ऊंचाई वाले वर्तुल धाम का चिन्तन करे। यही भूतशुद्धि कही गयी॥४१-४७॥

गणगुरुर्बीजगुरुः शक्त्यनन्तौ च धर्मकः। ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यैस्ततः पूर्वादिपत्रके॥४८॥
अधोर्ध्ववदने द्वे च पद्मकर्णिककेशरम्।
वामाद्या आत्मविद्या च सदा ध्यायेत् शिवाख्यकम्।
तत्त्वं शिवासने मूर्तिर्हों हौं विद्यादेहाय नमः॥४९॥
बद्धपद्मासनासीनः सित षोडशवर्षकः। पञ्चवक्त्रः कराग्रैः स्वैर्दशभिश्चैव धारयन्॥५०॥
अभयप्रसादशक्तिं शूलं खट्वाङ्गमीश्वरः। दक्षैः करैर्वामकैश्च भुजगञ्चाक्षसूत्रकम्।
डमरुकं नीलोत्पलं बीजपूरकमुत्तमम्॥५१॥

इस भूतशुद्धि कार्य को सम्पन्न करने के उपरान्त पूर्वादि पत्रों पर क्रमशः गणगुरु, राजगुरु, शक्ति, अनन्त, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य की पूजा करनी चाहिये। अधः तथा ऊर्ध्वमुख में पद्मकर्णिका, पद्मकेशर, वामादि शक्ति, आत्मविद्या, शिव नामक लिंग का ध्यान करके शिवासन पर स्थित तत्व की एवं मूर्त्ति की पूजा करे। "हों हौं विद्यादेहाय नमः" मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् पद्मासन से आसीन होकर शुक्लवर्ण, सोलह वर्ष वाले शिव का इस प्रकार ध्यान करे। "वे पञ्चानन, दस हाथों वाले हैं। इन्होंने कराग्र में दस चीज धारण किया है। यथा—अभय, वरमुद्रा, शक्ति, शूल, खट्वाङ्ग, यह दाहिने पांच हाथों में धारण किया है। वाम पांच हाथों में सर्प, जपमाला, डमरू, नीलकमल तथा उत्तम बीजपूर धारण किया है॥४८-५१॥

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिस्त्रिनेत्रो हि सदाशिवः।
एवं शिवार्च्चनध्यानी सर्वदा कालवर्जितः॥५२॥
इहाहोरात्रिचारेण त्रीणि वर्षाणि जीवति। दिनद्वयस्य चारेण जीवेद्वर्षद्वयं नरः॥५३॥
दिनत्रयस्य चारेण वर्षमेकं स जीवति। नाकाले शीतले मृत्युरुष्णे चैव तु कारके॥५४॥

॥इति गारुडे महापुराणे शिवादिपूजा नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

"उनके तीन नेत्र हैं—इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया।" इस विधान से जो शिवार्चन करता है, वह व्यक्ति कालभयरहित हो जाता है। एक दिन तथा रात में इस प्रकार से जो शिवाराधन करता है, उसे तीन वर्ष की आयु मिलती है। दो दिन पूजा करने वाला दो वर्ष प्राण धारण करता है। तीन दिन यह पूजा करने वाला निश्चित आयु से एक वर्ष अधिक जीवित रहता है। वह अकाल मृत्युग्रस्त नहीं होता। उसका देहान्त अत्युष्ण अथवा अतिशीत स्थानों पर नहीं होता॥५२-५४॥

॥तेईसवां अध्याय समाप्त॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

गणों की पूजाविधि

हरि उवाच

वक्ष्ये गणादिकाः पूजाः सर्वदाः स्वर्गदाः पराः।
गणासनं गणमूर्तिं गणाधिपतिमर्च्चयेत्॥१॥

गामादिहृदयाद्यङ्गं दुर्गाया गुरुपादुकाः। दुर्गासनञ्च तन्मूर्त्तिं ह्रीं दुर्गे रक्षणीति च॥२॥

हृदादिकमष्टशक्त्यो रुद्रचण्डा प्रचण्डया।
चण्डोग्रा चण्डनायिका चण्डा चण्डवती क्रमात्।
चण्डरूपा चण्डिकाख्या दुर्गे दुर्गेऽथ रक्षिणी॥३॥

वज्रखड्गादिका मुद्रा शिवाद्या वह्निदेशतः। सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनमथापि वा॥४॥

ऐं क्लीं सौस्त्रिपुरायै नमः। ओं ह्रां ह्रीं क्षें क्षैं स्त्रीं स्कों रों स्फें स्फों शां पद्मासनञ्च त्रिपुराहृदयादिकम्॥५॥

पीठाम्बुजे तु ब्राह्मयादीर्ब्रह्माणी च महेश्वरी।
कौमारी वौष्णवी पूज्या वाराही चेन्द्रदेवता।
चामुण्डा चण्डिका पूज्या भैरवाख्यांस्ततो यजेत्॥६॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तभैरवः। कपाली भीषणश्चैव संहाराश्चाष्टभैरवाः॥७॥

रतिः प्रीतिः कामदेवः पञ्चबाणश्च योगिनी। वटुकं दुर्गया विघ्नराजो गुरुश्च क्षेत्रपः॥८॥

पद्मगर्भे मण्डले च त्रिकोणे चिन्तयेद्धृदि। शुक्लां वराक्षसूत्रपुस्तकाभयसमन्विताम्।
लक्षजप्याच्च होमाच्च त्रिपुरा सिद्धिदा भवेत्॥९॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्रिपुरादिपूजा नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥
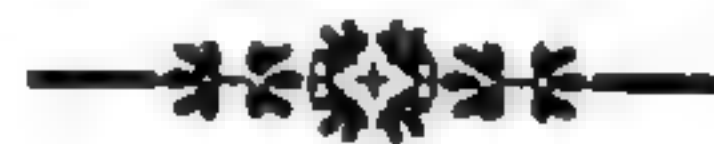
श्रीहरि कहते हैं—अब गणों की पूजा सुनिये। इससे साधक को सर्ववस्तुलाभ तथा स्वर्गलाभ होता है। पहले गणों की मांगलिक मूर्त्ति निर्माण करे। तब गणाधिपति की सबसे पूर्व में अर्चना करे। पूजाविधि यह है—

"गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुं, गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः करतलपृष्ठाभ्यां फट्।" इन अंगन्यासों को सम्पन्न करे। तब "ॐ दुर्गाया गुरुपादुकायै नमः, ॐ दुर्गासनाय नमः, ॐ दुर्गामूर्त्तये नमः। इससे पूजा करे। तत्पश्चात् "ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा हृदयाय नमः" इस क्रम से कराङ्गन्यास को सविधि करे। तदनन्तर "दुर्गे-दुर्गे रक्षिणि स्वाहा" से रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा,

चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, अतिचण्डिका नाम्नी आठों शक्तियों की पूजा करनी चाहिये। इसके अनन्तर वज्र-खड्ग आदि मुद्रा दिखलाये। अग्नि कोण में अब शिवादि की पूजा सम्पन्न करे। तदनन्तर "सदाशिवमहाप्रेत पद्मासनाय नमः, ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः" इन मन्त्रों से पूजनोपरान्त अंगन्यास एवं ध्यान करके पूजा करने के पश्चात् पद्मासन पूजन करें।

यथा—ॐ ह्रां ह्रीं क्षें क्षैं स्त्रीं स्क्रों रों स्फें स्फों शां पद्मासनाय नमः इत्यादि। इसके अनन्तर पीठपद्म में ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, चण्डिका की पूजा करे। तब अष्टभैरव पूजन इन मन्त्र से करे।

यथा—

ॐ असिताङ्ग भैरवाय नमः।
ॐ रुरु भैरवाय नमः।
ॐ चण्ड भैरवाय नमः।
ॐ क्रोध भैरवाय नमः।
ॐ उन्मत्त भैरवाय नमः।
ॐ कपालि भैरवाय नमः।
ॐ भीषण भैरवाय नमः।
ॐ संहार भैरवाय नमः।

इन भैरवों का पूजन करने के पश्चात् रति, प्रीति, कामदेव, पञ्चबाण, योगिनी, बटुक, दुर्गा, विघ्नराज, गुरु, क्षेत्रपाल की अर्चना करे। इनके पूजनोपरान्त हृदय में पद्मगर्भ मण्डल में त्रिकोण का चिन्तन करके उसमें वरमुद्रा, जपमाला, अभयमुद्रा धारण करने वाली शुक्लवर्ण, त्रिपुरा की चिन्तना करे। साथ ही मन्त्रजप भी करता रहे। इस स्थिति में एक लाख जप करके होम करने वाले को देवी त्रिपुरा सिद्धि देती हैं॥१-९॥

॥चौबीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चविंशोऽध्यायः

आसन पूजा वर्णन

श्रीहरि उवाच

ऐं क्लीं श्रीं स्फें क्षौं अनन्तशक्तिपादुकां पूजयामि नमः॥१॥
ऐं ह्रीं श्रीं फ्रौं क्षौं आधारशक्तिपादुकां पूजयामि नमः॥२॥
ओं हूं कालाग्निरुद्रपादुकां पूजयामि नमः॥३॥

ओं ह्रीं हुं हाटकेश्वरदेवपादुकां पूजयामि नमः॥४॥

ओं ह्रीं शेषभट्टारकपादुकां पूजयामि नमः॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—अब आसन पूजा कहता हूं—

ऐं क्रीं श्रीं स्फें क्षौं अनन्त शक्तिपादुकां पूजयामि नमः।

ऐं ह्रीं श्रीं फ्रौं क्षौं आधारशक्तिपादुकां पूजयामि नमः।

ओं हूं कालाग्निरुद्रपादुकां पूजयामि नमः।

ओं ह्रीं हुं हाटकेश्वर देव पादुकां पूजयामि नमः।

ओं ह्रीं शेष भट्टारकपादुकां पूजयामि नमः।

इस प्रकार अनन्तशक्ति पादुका, आधारशक्ति पादुका, कालाग्निरुद्र पादुका, हाटकेश्वर देव पादुका, शेष भट्टारक पादुका की पूजा करे॥१-५॥

ओं ह्रीं श्रीं पृथिवी तद्वर्णभुवनद्वीपसमुद्रदिशामनन्ताख्यमासनं पूजयामि नमः॥६॥

तत्पश्चात् मूल में लिखे मन्त्रों से पृथिवी, भुवन, द्वीप, समुद्र, दिशा, अनन्तासन की पूजा मूल श्लोक ६ में मन्त्र से करे॥६॥

ह्रीं श्रीं निवृत्त्यादिकला पृथिव्यादितत्त्वमनन्तादिभुवनमोङ्कारादिवर्णं हकारादिन वात्मकः पदः सद्योजातादिमन्त्रः॥७॥

तत्पश्चात् श्लोक ७ में लिखे अनुसार निवृत्यादि कला की पूजा, अन्तादि भुवन, ओंकारादि वर्ण, हकारादि नवात्मक पद की सद्योजातादि मन्त्र की पूजा करे॥७॥

हां हृदयाद्यङ्गः।

एवं माहेश्वरो मन्त्रः सिद्धविद्यात्मकः परामृतार्णवः॥८॥

सर्वतो दिक्समस्तेषु षडङ्गं सदाशिवार्णवपयःपूर्णोदधिपक्षं श्रीमानास्पदात्मकः॥९॥

विद्योमा पूर्णज्ञत्वकर्तृकत्वलक्षणज्येष्ठारूपचक्ररुद्रशक्त्यात्मककर्णिको नवशक्तिशिवादित्रिशूलमण्डलत्रयः॥१०॥

पङ्कजात्मकौ न्यस्तपद्मासनपादुकां पूजयामि नमः॥११॥

॥इति गारुडे महापुराणे आसनपूजा नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

तदनन्तर "हां हृदयादि" अंगन्यास करे। तदनन्तर सद्योजातादि मन्त्र से पूजन करे। माहेश्वर मन्त्र सिद्धि विद्यात्मक परामृतार्णव कहा गया है। तत्पश्चात् चारों दिशाओं में षडङ्ग पूजा करनी चाहिये। उपरोक्त मन्त्रों से पद्मासन पादुका पूजन करे॥८-११॥

॥पच्चीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
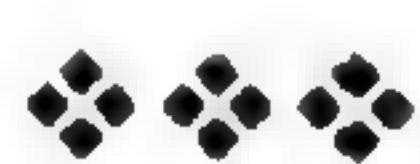
षड्विंशोऽध्यायः

कुब्जिका पूजा वर्णन

श्रीहरि उवाच

अनन्तरं करन्यासः विद्याकरी शुद्धिः कार्य्या पद्ममुद्रां बद्ध्वा मन्त्रन्यासं कुर्य्यात्। कौं कनिष्ठायै नमः। नौं अनामिकायै नमः। मौं मध्यमायै नमः। तौं तर्जन्यै नमः। अं अङ्गुष्ठायै नमः। लां करतलायै नमः। वां करपृष्ठायै नमः॥१॥

श्रीहरि कहते हैं—इसके पश्चात् करन्यास एवं विद्याकरी शुद्धिकार्य (भूतशुद्धि) करके पद्ममुद्रा बन्धन करके मन्त्रन्यास कार्य करना चाहिये। यह इस प्रकार करे—

कौं कनिष्ठायै नमः, नौं अनामिकायै नमः, मौं मध्यमायै नमः, तौं तर्जन्यै नमः, अं अंगुष्ठायै नमः, लां करतलायै नमः, वां करपृष्ठायै नमः॥१॥

अथ देहन्यासः। कं मणिबन्धाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं कारस्कराय नमः। महातेजोरूपं हुंहुंकारेण करक्षालनं कुर्य्यात्॥२॥

ऐं ह्रीं ह्रीं श्रीं हैं स्फैं नमो भगवते स्फैं कुब्जिकायै नमः। हूं ह्रीं क्रौं ङञणनमे अघोरामुखि हां हीं किलि किलि विद्येस्थौ व्यङ्गस्थौ ह्रीं ह्रीं श्रीं ऐं नमो भगवते ऊर्ध्ववक्त्राय नमः। स्फौं कुब्जिकायै पूर्ववक्त्राय नमः। ह्रीं श्रीं ह्रीं ङञणनमेति दक्षिणवक्त्राय नमः। ओं ह्री श्रीं किलि किलि पश्चिमवक्त्राय नमः। ओं अघोरामुखि उत्तरवक्त्राय नमः। ओं नमो भगवते हृदयाय नमः। क्षें ऐं कुब्जिकायै शिरसे स्वाहा। ह्रीं क्रीं ह्रीं प्रां ङ ञ ण न मे शिखायै अघोरमुखि कवचाय हुं। हैं हैं ईं नेत्रत्रयाय वौषट्। किलि किलि विव्वे अस्त्राय फट्॥३॥

ऐं ह्रीं श्रीं अखण्डमण्डलाकारमहाशूलमण्डलाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं वायुमण्डलाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं सोममण्डलाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं महाकुलबोधावलिमण्डलाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं कौलमण्डलाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं गुरुमण्डलाय नमः। ऐं ह्रीं ह्रीं साममण्डलाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं समग्रसिद्धयोगिनीपीठोपपीठक्षेत्रोपक्षेत्रसन्तानमण्डलाय नमः। एवं मण्डलानां द्वादशकं क्रमेण पूज्यम्॥४॥

॥इति गारुडे महापुराणे कुब्जिकापूजा नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

—⁂—

देहन्यास इस विधि से करे—

कं मणिबन्धनाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं कारस्कराय नमः। इसके पश्चात् महातेजमय हुं हुं कार से करक्षालन कृत्य को सम्पन्न करना चाहिये।

अब पुनः देहन्यास इन मन्त्रों से करे—

"ऐं ह्रीं ह्रीं श्रीं ह्रैं नमो भगवते स्फैं कुब्जिकायै नमः।" से लेकर "अस्त्राय फट्" पर्यन्त यह न्यास है। यह सब मूल में अंकित है। तदनुसार करे। (इन मन्त्रों का अर्थ नहीं होता। अतः यथावत् मूल में लिखे अनुसार प्रयोग करना चाहिये)।

तदनन्तर महाशूल मण्डल, सोममण्डल, वायुमण्डल, सोममण्डल, महाकुलबोधावलिमण्डल, कौलमण्डल, गुरुमण्डल, साममण्डल, सन्तानमण्डल आदि द्वादश मण्डलों का पूजन मूल में लिखे मन्त्र के अनुसार करे॥२-४॥

॥छब्बीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तविंशोऽध्यायः

सर्पविष हरण वर्णन

श्रीहरि उवाच

ओं कालविकालकङ्कालि! चर्विणि! भूतहारिणि! फणिविषिणि! विरथनारायणि! उने! दहदह हस्ते! चण्डे! रौद्रि! माहेश्वरि! महामुखि! ज्वालामुखि! शङ्कुकर्णि! शकमुण्डे! शत्रुं हन हन सर्वनाशिनि! खख सर्वाङ्गशोणितं नन्निरीक्षसि! मनसादेवि! सम्मोहय सम्मोहय रुद्रस्य हृदये जाता रुद्रस्य हृदये स्थिता रुद्रो रौद्रेण रूपेण त्वं देवि! रक्षरक्ष मां हूं मां फफ ठठ स्कन्दमेखलावान् ग्रहशत्रुविषहारि! शाले! माले! हर हर विशोक! हां हां शवरि! हुं शवरि! प्रकोणविशरे! सर्वे! विञ्चमेघ मिले! सर्वनागादिविषहरणम्॥१॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

—❖—

श्रीहरि कहते हैं—यह मन्त्र सर्पादि विष का नाश करने वाला कहा गया है। मन्त्र मूल में "ओं काल विकालकङ्काली" से लेकर "विञ्चमेघ मिले" तक कहा गया है॥१॥

॥सत्ताईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण पूजा वर्णन

श्रीहरि उवाच

गोपालपूजां वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
द्वारे धाता विधाता च गङ्गा यमुनया सह॥१॥
शङ्खपद्मनिधी चैव शारङ्गः शरभः श्रिया। पूर्वे भद्रः सुभद्रो द्वौ दक्षौ चण्डप्रचण्डकौ॥२॥
पश्चिमे बलप्रबलौ जयश्च विजयो यजेत्। उत्तरे श्रीश्चतुर्द्वारि गणो दुर्गा सरस्वती॥३॥

श्रीहरि कहते हैं—अब गोपाल पूजा का वर्णन सुनिये। यह भुक्ति तथा मुक्तिप्रदा पूजा है। अब द्वार पर इस प्रकार पूजा करे—

ॐ धात्रे नमः, ॐ विधात्रे नमः, ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनायै नमः। तत्पश्चात् ॐ पद्मनिधये नमः, ॐ शारङ्गाय नमः, ॐ शरभाय नमः, ॐ श्रियै नमः। तदनन्तर पूर्व द्वार में इन मन्त्रों से पूजा करे—ॐ भद्राय नमः, ॐ सुभद्राय नमः, दक्षिण द्वार में ॐ चण्डाय नमः, ॐ प्रचण्डाय नमः, पश्चिम द्वार में—ॐ बलाय नमः, ॐ प्रबलाय नमः, ॐ जयाय नमः, ॐ विजयाय नमः, उत्तर द्वार में—ॐ श्रियै नमः, चारों द्वार में—ॐ गणेशाय नमः, ॐ दुर्गायै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः से पूजा करे॥१-३॥

क्षेत्रस्याग्न्यादिकोणेषु दिक्षु नारदपूर्वकम्। सिद्धो गुरुर्नलकूबरं कोणे भागवतं यजेत्॥४॥
पूर्वे विष्णुं विष्णुतपो विष्णुशक्तिं समर्चयेत्।
ततो विष्णुपरीवारं मध्ये शक्तिञ्च कूर्मकम्॥५॥
अनन्तं पृथिवीधर्मं ज्ञानं वैराग्यमग्नितः। ऐश्वर्य्यं वायुपूर्वञ्च प्रकाशात्मानमुत्तरे॥६॥
सत्त्वाय प्रकृतात्मने रजसे मोहरूपिणे। तमसे पद्माय यजेदहङ्कारकतत्त्वकम्॥७॥
विद्यातत्त्वं परं तत्त्वं सूर्य्येन्दुवह्निमण्डलम्।
विमलाद्या आसनञ्च प्राच्यां श्रीं ह्रीं संपूजयेत्।
गोपीजनवल्लभाय स्वाहान्तो मनुरुच्यते॥८॥

पूजन स्थान के अग्निकोण में तथा अन्य तीन कोणों में एवं चारों दिशाओं में नारद, सिद्ध लोगों, गुरु, नलकूबर तथा भगवद्भक्त भागवतों की पूजा करनी होगी। पूर्व दिशा में विष्णु की, विष्णुतप की तथा विष्णु शक्ति की पूजा सम्पन्न करने के अनन्तर विष्णु के परिवारजन की पूजा करनी होगी। मध्य स्थल में—ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः से पूजा करने के अनन्तर अग्निकोण में 'ॐ धर्माय नमः' से पूजा करे। नैर्ऋत्कोण में ॐ धर्माय नमः से, नैर्ऋत्कोण में ॐ ज्ञानाय नमः, वायुकोण में ॐ वैराग्याय नमः, ईशान कोण में ॐ ऐश्वर्याय नमः से पूजा करे। उत्तर दिशा की ओर ॐ प्रकाशात्मने नमः से पूजा करे। तदनन्तर ॐ सत्वाय प्रकृतात्मने नमः, ॐ रजसे मोहरूपिणे

नमः, ॐ तमसे नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अहंकाराय नमः, ॐ विद्या तत्त्वाय नमः, ॐ परतत्वाय नमः, ॐ सूर्यमण्डलाय नमः, ॐ चन्द्रमण्डलाय नमः, ॐ अग्निमण्डलाय नमः, ॐ विमलादिभ्यो नमः, ॐ आसनाय नमः इन सब मन्त्रों से पूजा करें। तदनन्तर पूर्वदिक् में "ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा" से भगवान् गोपाल की पूजा करे॥४-८॥

अङ्गानि यथा–

आचक्रञ्च सुचक्रञ्च विचक्रञ्च तथैव च। त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरारिसुदर्शनम्॥९॥

हृदादिपूर्वकोणेषु अस्त्रं शक्तिञ्च पूर्वतः।
रुक्मिणी सत्यभामा च सुनन्दा नाग्नजित्थपि॥१०॥
लक्ष्मणा मित्रवृन्दा च जाम्बवत्या सुशीलया।
शङ्खचक्रगदापद्मं मुसलं शार्ङ्गमर्चयेत्॥११॥
खड्गं पाशाङ्कुशं प्राच्यां श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत्।
मुकुटं वनमालाञ्च इन्द्राद्यान् ध्वजमुख्यकान्॥१२॥
कुमुदाद्यान्विष्वक्सेनं कृष्णं श्रिया सहार्चयेत्।
जप्याद्ध्यानात्पूजनाय सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१३॥

।इति गारुडे महापुराणे श्रीकृष्णपूजनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

अब कराङ्गन्यास कहते हैं—

ॐ आचक्राय हृदये नमः,

ॐ सुचक्राय शिरसे स्वाहा,

ॐ विचक्राय शिखायै वषट्,

ॐ त्रैलोक्यरक्षणचक्राय कवचाय हुं,

ॐ असुरारि चक्राय नेत्रत्रयाय वौषट्,

ॐ सुदर्शनचक्राय अस्त्राय फट्।

तदनन्तर "ॐ आचक्राय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः" इस प्रकार से अंगन्यास करके पूर्वादिदिक् से करन्यास करे। तदनन्तर पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके अस्त्र तथा शक्तियों की पूजा करनी चाहिये—

पहले शक्ति पूजा करे।

ॐ रुक्मिण्यै नमः, ॐ सत्यभामायै नमः, ॐ सुनन्दाय नमः, ॐ नाग्नजित्यै नमः, ॐ लक्ष्मणायै नमः, ॐ मित्रवृन्दायै नमः, ॐ जाम्बवत्यै नमः, ॐ सुशीलायै नमः।

अब अस्त्र पूजा करे। यथा—

ॐ शंखाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ मूषलाय नमः, ॐ शार्ङ्गाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ कौस्तुभाय नमः, ॐ मुकुटाय नमः, ॐ वनमालायै नमः।

अब दिक्पालादि की पूजा करे। यथा—ॐ इन्द्रादि दिक्पालेभ्यो नमः, ॐ ध्वजमुख्यकेभ्यो नमः, ॐ कुमुदादिभ्यो नमः, ॐ विष्वक्सेनाय नमः, ॐ कृष्णाय नमः, ॐ श्रियै नमः से पूजा करे। ध्यान, पूजन तथा जप करने से व्यक्ति समस्त कामना लाभ करते हैं॥९-१३॥

॥अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहिनी पूजा वर्णन

हरिरुवाच

त्रैलोक्यमोहिनीं वक्ष्ये पुरुषोत्तममुख्यकाम्। पूजामन्त्रान्श्रीधराद्यान्धर्मकामादिदायकान्॥१॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्लं ओं नमः। पुरुषोत्तम! अप्रतिरूप! लक्ष्मीनिवास! सकलजगत्क्षोभन! सर्वस्त्रीहृदयविदारण! त्रिभुवनमदोन्मादनकर! सुरासुरसुन्दरी-जनमनांसि तापय तापय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय द्रावय द्रावय आकर्षय आकर्षय। परमसुभग! सौभाग्यकर! सर्वकामप्रद! अमुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैर्भिन्धि भिन्धि पाशेन कट्ट कट्ट अङ्कुशेन ताडय ताडय तुरु तुरु किं तिष्ठसि? तारय तारय यावत् समीहितं मे सिद्धं भवति ह्रूं फट् नमः॥२॥

श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः। क्लीं पुरुषोत्तमाय त्रैलोक्यमोहनाय नमः॥३॥
ह्रूं विष्णवे त्रैलोक्यमोहनाय नमः। ओं श्रीं ह्रीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः॥४॥

त्रैलोक्यमोहना मन्त्राः सर्वे सर्वार्थसाधकाः।
सर्वे चिन्त्याः पृथग्वापि व्यास संक्षेपतोऽथ वा॥५॥

आसनं मूर्त्तिमस्त्रञ्च होमाद्यङ्गषडङ्गकम्। चक्रं गदाञ्च खड्गञ्च मुसलं शङ्खशार्ङ्गकम्॥६॥
शरं पाशमङ्कुशञ्च लक्ष्मीगरुडसंयुतम्। विष्वक्सेनं विस्तराद्वा नरः सर्वमवाप्नुयात्॥७॥

॥इति गारुडे महापुराणे मोहिनीपूजनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

श्रीहरि कहते हैं—अब मैं पुरुषोत्तम मुख्या त्रैलोक्यमोहिनी पूजा कहता हूं। धर्म, अर्थ, कामादिप्रद श्रीधर आदि का पूजा मन्त्र सुनें। मूलोक्त मन्त्र से इनकी पूजा होती है। यह मूल में श्लोक २ में लिखा है। तदनन्तर श्रीधर, पुरुषोत्तम, विष्णु की पूजा इस प्रकार करे—

श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्य मोहनाय नमः। क्लीं पुरुषोत्तमाय त्रैलोक्य मोहनाय नमः। हूं विष्णवे त्रैलोक्य मोहनाय नमः। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः।

ये त्रैलोक्यमोहन मन्त्र सर्वार्थ साधक हैं। सभी का पृथक् चिन्तन करे अथवा एक साथ करे। यह व्यास ने संक्षेप में कहा है। इन मन्त्रों से पूजनोपरान्त आसन, मूर्त्ति, अस्त्रादि की पूजा करके होम तथा षडङ्ग होम करना चाहिये। तदनन्तर अस्त्रादि पूजा करे। चक्र, गदा, खड्ग, मूषल, शार्ङ्ग धनुष, बाण, पाश तथा अंकुश पूजा करके लक्ष्मी, गरुड़ तथा विष्वक्सेन देव की पूजा करे। साधक को सभी वांछित की प्राप्ति होती है॥१-७॥

॥उन्तीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिंशोऽध्यायः

श्रीधर अर्चना वर्णन

श्रीहरि उवाच

विस्तरेण प्रवक्ष्यामि श्रीधरस्यार्चनं शुभम्। परिवारश्च सर्वेषां समो ज्ञेयो हि पण्डितैः॥१॥

ओं श्रां हृदयाय नमः। ओं श्रीं शिरसे स्वाहा। ओं श्रं शिखायै वषट्। ओं श्रैं कवचाय हुं। ओं श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं श्रः अस्त्राय फट्॥२॥

इति दर्शयेदात्मनो मुद्रां शङ्खचक्रगदादिकाम्।
ध्यात्वात्मानं श्रीधराख्यं शङ्खचक्रगदाधरम्॥३॥

ततस्तं पूजयेद्देवं मण्डले स्वस्तिकादिके। आसनं पूजयेदादौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।
एभिर्मन्त्रैर्महादेव तान् मन्त्रान् शृणु शङ्कर॥४॥

ओं श्रीधरासनदेवता आगच्छत। ओं समस्तपरिवारायाच्युतासनाय नमः॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—अब श्रीधर का पूजा क्रम विस्तार से कहा जाता है। सभी देवगण के परिवार की पूजा का एक ही विधान है। परिवार का पूजन पहले कहे विधान से करे।

ॐ श्रां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रं शिखायै वषट्, ॐ श्रैं कवचाय हुं, ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रः अस्त्राय फट्। इन मन्त्रों से अंगन्यास तथा करन्यास करके शंख, चक्र, गदा मुद्रा का प्रदर्शन करे। तब अपनी आत्मा का ही शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीधर रूपेण ध्यान करना

चाहिये। इन श्रीधर देव की पूजा स्वस्तिक अथवा सर्वतोभद्र मण्डल में ही करे। हे शंकर! अब आसनपूजादि मन्त्रों को सुनो। "ॐ श्री धरासन देवता आगच्छत" "ॐ समस्त परिवारायाच्युतासनाय नमः" से पूजा करे॥१-५॥

ओं धात्रे नमः। ओं विधात्रे नमः। ओं गङ्गायै नमः। ओं यमुनायै नमः। ओं आधारशक्त्यै नमः। ओं कूर्माय नमः। ओं अनन्ताय नमः। ओं पृथिव्यै नमः। ओं धर्माय नमः। ओं ज्ञानाय नमः। ओं वैराग्याय नमः। ओं ऐश्वर्याय नमः। ओं अधर्माय नमः। ओं अज्ञानाय नमः। ओं अवैराग्याय नमः। ओं अनैश्वर्याय नमः। ओं स्कन्दाय नमः। ओं नीलाय नमः। ओं पद्माय नमः। ओं विमलायै नमः। ओं उत्कर्षिण्यै नमः। ओं ज्ञानायै नमः। ओं क्रियायै नमः। ओं योगायै नमः। ओं पुत्र्यै नमः। ओं प्रह्व्यै नमः। ओं सत्यायै नमः। ओं ईशानायै नमः। ओं अनुग्रहायै नमः॥६॥

तत्पश्चात् ॐ धात्रे नमः, ॐ विधात्रे नमः, ॐ गंगायै नमः, ॐ यमुनायै नमः, ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ॐ स्कन्दाय नमः, ॐ नीलाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ विमलायै नमः, ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ पुत्र्यै नमः, ॐ प्रह्व्यै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशानायै नमः, ॐ अनुग्रहायै नमः॥६॥

अर्चयित्वा समं रुद्र हरिमावाह्य संयजेत्। मन्त्रैरेभिर्महाप्राज्ञः सर्वपापप्रणाशनैः।
ओं ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः॥७॥

पूर्वोक्त देवगण की अर्चना करके हरि की आराधना करनी चाहिये। "ॐ ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः" से श्रीधर की पूजा करे॥७॥

ओं श्रियै नमः। ओं श्रां हृदयाय नमः। ओं श्रीं शिरसे नमः। ओं श्रूं शिखायै नमः। ओं श्रैं कवचाय नमः। ओं श्रौं नेत्रत्रयाय नमः। ओं श्रः अस्त्राय नमः। ओं शङ्खाय नमः। ओं पद्माय नमः। ओं चक्राय नमः। ओं गदायै नमः। ओं श्रीवत्साय नमः। ओं कौस्तुभाय नमः। ओं वनमालायै नमः। ओं पीताम्बराय नमः। ओं ब्रह्मणे नमः। ओं नारदाय नमः। ओं गुरुभ्यो नमः। ओं इन्द्राय नमः। ओं अग्नये नमः। ओं यमाय नमः। ओं निर्ऋतये नमः। ओं वरुणाय नमः। ओं वायवे नमः। ओं सोमाय नमः। ओं ईशानाय नमः। ओं अनन्ताय नमः। ओं ब्रह्मणे नमः। ओं सत्त्वाय नमः। ओं रजसे नमः। ओं तमसे नमः। ओं विष्वक्सेनाय नमः॥८॥

ॐ श्रियै नमः, ॐ श्रां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रूं शिखायै नमः, ॐ श्रैं कवचाय नमः, ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय नमः, ॐ श्रः अस्त्राय नमः। इनसे खड्ग पूजा करके अस्त्र पूजा करे। यथा—

ॐ शङ्खाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ कौस्तुभाय नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ पीताम्बराय नमः। तत्पश्चात् परिवार पूजा करे। ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ नारदाय नमः, ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ इन्द्राय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ सत्वाय नमः, ॐ रजसे नमः, ॐ तमसे नमः, ॐ विष्वक्सेनाय नमः॥८॥

अभिषेकं तथा वस्त्रं ततो यज्ञोपवीतकम्। गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नं प्रदक्षिणम्॥९॥
दद्यादेभिर्महामन्त्रैः समर्प्याथ जपेन्मनुम्। शतमष्टोत्तरञ्चापि जप्त्वा ह्यथ समर्पयेत्॥१०॥
ततो मुहूर्तमेकं तु ध्यायेद्देवं हृदिस्थितम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥११॥
प्रसन्नवदनं सौम्यं स्फुरन्मकरकुण्डलम्। किरीटिनमुदाराङ्गं वनमालासमन्वितम्।
परब्रह्मस्वरूपञ्च श्रीधरं चिन्तयेत् सुधीः॥१२॥

तदनन्तर श्रीधर देवता का अभिषेक सम्पन्न करके वस्त्र, यज्ञोपवीत, सुगन्धि द्रव्य, उत्तम पुष्प, धूप, दीप तथा अन्न अर्पित करके भगवान् की प्रदक्षिणा करने का विधान है। पहले वर्णित मन्त्र से सभी द्रव्य अर्पित करके तब साधक को मूल मन्त्र का जप एकाग्रता से करना चाहिये। इसका १०८ बार जप करने के पश्चात् साधक उस जप को अर्पित करे। अब ध्यान करे। अपने हृदय में स्वच्छ निर्मल स्फटिक की तरह कान्ति से मण्डित, करोड़ों सूर्यों के समान भास्वर तेज वाले, प्रसन्नमुख, शान्त मुद्रा वाले, उज्वल मकर के आकार के कुण्डल से शोभित, शिर पर मुकुटधारी, उदार अंग वाले, वनमालाधारी परब्रह्मरूपी श्रीघर का चिन्तन बुद्धिमान् व्यक्ति को करना चाहिये॥९-१२॥

अनेन चैव स्तोत्रेण स्तुवीत परमेश्वरम्। श्रीनिवासाय देवाय नमः श्रीपतये नमः॥१३॥
श्रीधराय सशार्ङ्गाय श्रीप्रदाय नमो नमः।
श्रीवल्लभाय शान्ताय श्रीमते च नमो नमः॥१४॥

अव यहां लिखे स्तोत्र द्वारा परमेश्वर की स्तुति करें—हे श्रीनिवास देव! आप श्रीपति हैं। आपको नमस्कार! आप श्रीधर, शार्ङ्गधनुषधारी, श्री प्रदाता हैं। आपको नमस्कार! आप श्री के वल्लभ, शान्त तथा श्रीमते हैं। आपको नमस्कार!॥१३-१४॥

श्रीपर्वतनिवासाय नमः श्रेयस्कराय च। श्रेयसाम्पतये चैव ह्याश्रमाय नमो नमः॥१५॥
नमः श्रेयःस्वरूपाय श्रीकराय नमो नमः।
शरण्याय वरेण्याय नमो भूयो नमो नमः॥१६॥

आप श्रीपर्वत निवासी तथा श्रेय प्रदाता हैं। आपको नमस्कार! आप सर्वमंगलाधिपति, सर्व प्रकार के मंगलों के आश्रय स्वरूप भी हैं। आपको नमस्कार! आप श्रीप्रदाता, शरण्य, वरेण्य हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार!॥१५-१६॥

स्तोत्रं कृत्वा नमस्कृत्य देवदेवं विसर्जयेत्।
इति रुद्र समाख्याता पूजा विष्णुर्महात्मनः॥१७॥

यः करोति महाभक्त्या स याति परमं पदम्।
इमं यः पठतेऽध्यायं विष्णुपूजाप्रकाशकम्।
स विधूयेत पापानि याति विष्णोः परं पदम्॥१८॥

।।इति गारुडे महापुराणे त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

हे शिव! यह नमस्कार तथा स्तोत्र करने के पश्चात् देवाधिदेव का विसर्जन करे। इस प्रकार रुद्र से महात्मा विष्णु ने पूजा विधि कहा। जो परम भक्तिभाव से यह पूजा करता है, उसे परमपदलाभ होता है। जो इस विष्णुपूजा प्रकाशक अध्याय का पाठ करता है, वह सभी पापों से छूटकर विष्णु का परमपदलाभ करता है॥१७-१८॥

॥तीसवां अध्याय समाप्त॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

श्री विष्णु अर्चना

रुद्र उवाच

भूय -एव जगन्नाथ पूजां कथय मे प्रभो।
यया तरेयं संसारसागरं ह्यतिदुष्करम्॥१॥

श्रीरुद्र कहते हैं—हे प्रभो! जगन्नाथ की पूजा विधि कहिये, जिससे लोग अति दुस्तर संसार सागर पार कर सकें॥१॥

हरिरुवाच

अर्चनं विष्णुदेवस्य वक्ष्यामि वृषभध्वज। तच्छृणुष्व महाभाग भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥२॥
कृत्वा स्नानं ततः सन्ध्यां ततो यागगृहं व्रजेत्।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च आचम्य च विशेषतः॥३॥
मूलमन्त्रं समस्तं तु हस्तयोर्व्यापकं न्यसेत्। मूलमन्त्रश्च देवस्य शृणु रुद्र वदामि ते॥४॥
ओं श्रीं ह्रीं श्रीधराय विष्णवे नमः। अयं मन्त्रः सुरेशस्य विष्णोरीशस्य वाचकः॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—हे वृषभध्वज! मैं विष्णुदेव की अर्चना विधि कहता हूं। हे महाभाग! इस भुक्ति-मुक्तिप्रद शुभ प्रसंग का श्रवण करें। स्नान तथा सन्ध्या करके यागगृह में जाये। अपना हाथ-पैर धोकर विशेष

रूप से साधक आचमन करे। तब मूलमन्त्र से वह व्यक्ति दोनों हाथों द्वारा व्यापक न्यास सम्पन्न करे। अब मैं आपसे मूलमन्त्र का वर्णन करता हूं। एकाग्रता पूर्वक सुनिये। वह इस प्रकार है—"ॐ श्रीं ह्रीं श्रीधराय विष्णवे नमः" देवेश्वर विष्णु का यह मन्त्र उनकी ईश्वरता का वाचक है॥२-५॥

सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वग्रहहरस्तथा। सर्वपापहरश्चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥६॥
अङ्गन्यासं ततः कुर्य्यादेभिर्मन्त्रैर्विचक्षण।

ओं हां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं हूं शिखायै वषट्, ओं हैं कवचाय हुम्, ओं हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं हः अस्त्राय फट्॥७॥

यह मन्त्र सर्वव्याधिविनाशक, सभी ग्रहपीडा निवारक, सर्वपापनाशक एवं भुक्ति और मुक्ति देने वाला है। अब विद्वान् साधक इन मन्त्र से अंगन्यास करे। यथा—ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वषट्, ॐ हैं कवचाय हुं, ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हः अस्त्राय फट्॥६-७॥

इति मन्त्रः समाख्यातो मया ते प्रभविष्णुना।
न्यासं कृत्वात्मनो मुद्रां दर्शयेद्विजितात्मवान्॥८॥

मैंने यह मन्त्र आपसे कहा। अब विजितात्मा साधक इस प्रकार न्यास आदि को करने के उपरान्त मुद्राओं को प्रदर्शित करे॥८॥

ततो ध्यायेत् परं विष्णुं हृत्कोटरसमाश्रितम्। शङ्खचक्रसमायुक्तं कुन्देन्दुधवलं हरिम्॥९॥
श्रीवत्सकौस्तुभयुतं वनमालासमन्वितम्। रत्नहारकिरीटेन संयुक्तं परमेश्वरम्।
अहं विष्णुरिति ध्यात्वा कृत्वा वै शोधनादिकम्॥१०॥

अब हृदय कोटर में स्थित परमदेव विष्णु का ध्यान करे। ये देव शंखचक्रादिधारी, कुन्द तथा इन्दु के समान धवल वर्ण हरि हैं। ये श्रीवत्स एवं कौस्तुभ मणिधारी तथा वनमाला पहने हैं। इन्होंने रत्नहार तथा किरीट धारण किया है। साधक इन परमेश्वर का ध्यान करके यह भावना करे कि मैं ही विष्णु हूं। तदनन्तर वह साधक शोधनादि कार्य (द्रव्यों का शोधन) सम्पन्न करे॥९-१०॥

यं क्षं रमिति बीजैश्च कठिनीकृत्य नामभिः।
अण्डमुत्पाद्य च ततः प्रणवेनैव भेदयेत्॥११॥
तत्र पूर्वोक्तरूपं तु भावयित्वा वृषध्वज।
आत्मपूजां ततः कुर्य्याद् गन्धपुष्पादिभिः शुभैः॥१२॥
आवाह्य पूजयेत् सर्वा देवता आसनस्य याः। मन्त्रैरेभिर्महादेव तन्मन्त्रं शृणु शङ्कर॥१३॥

अब "यं क्षं रं" इन बीजों से नाम को कठिनी कृत् करके अण्ड उत्पत्ति की भावना करके "ॐ" मन्त्र से पिण्डभेदन करना चाहिये। हे वृषध्वज! इस पिण्ड में पहले कहे विधानानुसार देवता की भावना करके शुभ गन्ध-पुष्पादि द्वारा आत्मपूजा करना चाहिये। इसके पश्चात् साधक आवाहन एवं सभी आसन देवगण की पूजा करे। हे शंकर! इनके पूजा मन्त्रों को कहता हूं, श्रवण करिये॥११-१३॥

विष्ण्वासनदेवता आगच्छत। ओं समस्तपरिवारायाच्युताय नमः। ओं धात्रे नमः। ओं विधात्रे नमः। ओं गङ्गायै नमः। ओं यमुनायै नमः। ओं शङ्खनिधये नमः। ओं पद्मनिधये नमः। ओं चण्डाय नमः। ओं प्रचण्डाय नमः। ओं द्वारश्रियै नमः। ओं आधारशक्त्यै नमः। ओं कूर्म्माय नमः। ओं अनन्ताय नमः। ओं श्रियै नमः। ओं धर्म्माय नमः। ओं ज्ञानाय नमः। ओं वैराग्याय नमः। ओं ऐश्वर्य्याय नमः। ओं अधर्म्माय नमः। ओं अज्ञानाय नमः। ओं अवैराग्याय नमः। ओं अनैश्वर्य्याय नमः। ओं सं सत्त्वाय नमः। ओं रं रजसे नमः। ओं तं तमसे नमः। ओं कं स्कन्दाय नमः। ओं नं नीलाय नमः। ओं लं पद्माय नमः। ओं अं अकर्मण्डलाय नमः। ओं सं सोममण्डलाय नमः। ओं वं वह्निमण्डलाय नमः। ओं विमलायै नमः। ओं उत्कर्षिण्यै नमः। ओं ज्ञानायै नमः। ओं क्रियायै नमः। ओं रोगायै नमः। ओं प्रह्वयै नमः। ओं सत्यै नमः। ओं ईशानायै नमः। ओं अनुग्रहायै नमः॥१४॥

ये मन्त्र मूल में श्लोक १४ में लिखे हैं। उनका अनुवाद व्यर्थ है। वहीं से पाठक पढ़ें, जो "विष्ण्वासन देवता आगच्छत" से लगाकर "ओं अनुग्रहायै नमः" तक है॥१४॥

गन्धपुष्पादिभिस्त्वेतैर्मन्त्रैरेतास्तु पूजयेत्। पूजयित्वा ततो विष्णुं सृष्टिसंहारकारिणम्॥१५॥
आवाह्य मण्डले रुद्र पूजयेत् परमेश्वरम्। अनेन विधिना रुद्र सर्वपापहरं हरिम्॥१६॥

गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यरूपी पांच उपचारों से इन सभी आसनदेवताओं का पूजन करने के पश्चात् सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करने वाले प्रभु विष्णु की अर्चना करनी चाहिये। इस पूजा से उस साधक के सभी पाप निर्मूल हो जाते हैं। हरि सब पाप हर लेते हैं॥१५-१६॥

यथात्मनि तथा देवे न्यासं कुर्वीत चादितः। मुद्रां प्रदर्शयेत् पश्चादर्घ्यादि दर्शयेत्ततः॥१७॥
स्नानं कुर्य्यात्ततो वस्त्रं दद्यादाचमनं ततः। गन्धपुष्पं तथा धूपं दीपं दद्याच्चरुं ततः॥१८॥

प्रदक्षिणं ततो जप्यं ततस्तस्मिन् समर्पयेत्।
अङ्गादीनां स्वमन्त्रैश्च पूजां कुर्वीत साधकः॥१९॥
देवस्य मूलमन्त्रेण हीति विद्धि वृषध्वज।
मन्त्रान् शृणु त्रिनेत्र त्वं कथ्यमानान मयाऽधुना॥२०॥

ओं हां हृदयाय नमः। ओं हीं शिरसे नमः। ओं हूं शिखायै नमः। ओं हैं कवचाय नमः। ओं हौं नेत्रत्रयाय नमः। ओं हः अस्त्राय नमः। ओं श्रियै नमः। ओं शङ्खाय नमः। ओं पद्माय नमः। ओं चक्राय नमः। ओं गदायै नमः। ओं श्रीवत्साय नमः। ओं कौस्तुभाय नमः। ओं वनमालायै नमः। ओं पीताम्बराय नमः। ओं खड्गाय नमः। ओं मुशलाय नमः। ओं पाशाय नमः। ओं अङ्कुशाय नमः। ओं शार्ङ्गाय नमः। ओं शराय नमः। ओं ब्रह्मणे नमः। ओं नारदाय नमः। ओं सर्वसिद्धेभ्यो नमः। ओं भागवतेभ्यो नमः। ओं गुरुभ्यो नमः। ओं

परमगुरुभ्यो नमः। ओं इन्द्राय सुराधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं अग्नये तेजोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं यमाय प्रेताधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं वरुणाय जलाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं वायवे प्राणाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं सोमाय नक्षत्राधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं ईशानाय विद्याधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं अनन्ताय नागाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः। ओं वज्राय हुं फट् नमः। ओं शक्त्यै हुं फट् नमः। ओं दण्डाय हुं फट् नमः। ओं खड्गाय हुं फट् नमः। ओं पाशाय हुं फट् नमः। ओं ध्वजाय हुं फट् नमः। ओं गदायै हुं फट् नमः। ओं त्रिशूलाय हुं फट् नमः। ओं चक्राय हुं फट् नमः। ओं पद्माय हुं फट् नमः। ओं वौं विश्वक्सेनाय नमः॥२१॥

इससे पूर्व में जिस विधि से स्वशरीर में न्यास किया था, उसी विधि से देवता की देह में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मुद्रा प्रदर्शन करके अर्घ्य आदि प्रस्तुत करे। तदनन्तर स्नान जल, वस्त्र, आचमनीय, गन्ध, पुष्प-धूप-दीप-चरु प्रदान करके मूलमन्त्र जप कर देवता को अर्पित करे। तब अंगादि का पूजन उनके-उनके मन्त्र से करे। हे वृषध्वज! इन देव की पूजा उनके मूलमन्त्र से करनी चाहिये। यह मूलमन्त्र कहा जा चुका है। अब और मन्त्रों का श्रवण करिये। यथा—ये सभी मन्त्र मूल में श्लोक २१ में अंकित हैं (मन्त्र होने के कारण उनका अनुवाद नहीं होगा)॥१७-२१॥

एभिर्मन्त्रैर्महादेव पूज्या अङ्गादयो नरैः। पूजयित्वा महात्मानं विष्णुं ब्रह्मस्वरूपिणम्।
स्तुवीत चानया स्तुत्या परमात्मानमव्ययम्॥२२॥
विष्णवे देवदेवाय नमो वै प्रभविष्णवे। विष्णवे वासुदेवाय नमः स्थितिकराय च॥२३॥
ग्रसिष्णवे नमश्चैव नमः प्रलयशायिने। देवानां प्रभवे चैव यज्ञानां प्रभवे नमः॥२४॥
मुनीनां प्रभवे नित्यं यक्षाणां प्रभविष्णवे। जिष्णवे सर्वदेवानां सर्वगाय महात्मने॥२५॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवन्द्याय सर्वेशाय नमो नमः। सर्वलोकहितार्थाय लोकाध्यक्षाय वै नमः॥२६॥
सर्वगोप्त्रे सर्वकर्त्रे सर्वदुष्टविनाशिने। वरप्रदाय शान्ताय वरेण्याय नमो नमः।
शरण्याय स्वरूपाय धर्मकामार्थदायिने॥२७॥

साधक व्यक्ति इन मन्त्रों से अंगों की पूजा करके अब ब्रह्मस्वरूप अव्यय परमात्मा की स्तुति इस स्तव से करे। यथा—हे विष्णु! आप स्वतः विष्णु, देवदेव, प्रभविष्णु हैं। आपको नमस्कार! आप विष्णु ही वासुदेव तथा स्थिति करने वाले हैं, आप ही वसुदेव के पुत्र हैं। आपको प्रणाम! आप ही प्रलय में जगत् का ग्रास करते हैं। आप प्रलय काल में शयन करते हैं। आप ही देवगण तथा यज्ञों के कारण हैं। आप ही मुनिगण तथा यक्षों के कारण, उत्पत्तिकर्त्ता हैं, सर्वदेव जयी तथा सर्वत्र गमन करने वाले महात्मा हैं। आपको नमस्कार! आप तो ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र द्वारा वन्दनीय तथा सबके ईश्वर हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम!

आप सभी लोकों के हितकारी तथा लोकों के स्वामी हैं। आपको नमस्कार! आप सबकी रक्षा करने वाले, सब कुछ के कर्ता, सर्वदुष्ट नाशक, वरदायक, शान्त, सर्वप्रधान हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार! आप सबको शरण देने वाले, सबके आत्मस्वरूप, धर्म-काम-अर्थ प्रदाता हैं। आपको नमस्कार!॥२२-२७॥

स्तुत्वा ध्यायेत्स्वहृदये ब्रह्मरूपिणमव्ययम्। एवं तु पूजयेद्विष्णुं मूलमन्त्रेण शङ्करः॥२८॥
मूलमन्त्रं जपेद्वापि यः स याति नरो हरिम्। एतते कथितं रुद्रं विष्णोरर्चनमुत्तमम्॥२९॥
रहस्यं परमं गुह्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम्। एतद्यश्च पठेद्विद्वान्विष्णुभक्तः पुमान्हर।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि विष्णुलोकं स गच्छति॥३०॥

॥इति गारुडे महापुराणे एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

इस प्रकार से हे शंकर! अपने हृदय में ब्रह्मरूपी अव्यय विष्णु की स्तुति तथा ध्यान करे। उनकी पूजा मूलमन्त्र से करनी चाहिये। हरि का मूलमन्त्र जपने वाला अन्त में हरिपद लाभ करता है। हे रुद्र! मैंने आपसे इस विष्णुपूजा का वर्णन कर दिया। यह गोपनीय एवं भुक्ति तथा मुक्ति देने वाली पूजा है। हे शंकर! इस विष्णुस्तव का पाठ जो कोई विष्णुभक्त करेगा किंवा श्रवण करेगा, उसे अन्ततः मृत्यु के पश्चात् विष्णुलोक में गति प्राप्त होगी॥२८-३०॥

॥इक्तीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वात्रिंशोऽध्यायः

पञ्चतत्त्वार्चन वर्णन

महेश्वर उवाच

पञ्चतत्त्वार्चनं ब्रूहि शङ्खचक्रगदाधर।
येन विज्ञानमात्रेण नरो याति परं पदम्॥१॥

महेश्वर कहते हैं—हे शंख-चक्र-गदाधारी प्रभु! आप पञ्चतत्त्वार्चन कहें। इसे जानने वाला परमपद प्राप्त करता है॥१॥

हरिरुवाच

पञ्चतत्त्वार्चनं वक्ष्ये तव शङ्कर सुव्रत। मङ्गल्यं मङ्गलं दिव्यं रहस्यं कामदं परम्।
तच्छृणुष्व महादेव पवित्रं कलिनाशनम्॥२॥
एक एवाव्ययः शान्तः परमात्मा सनातनः। वासुदेवो ध्रुवः शुद्धः सर्वव्यापी निरञ्जनः॥३॥

स एव मायया देव पञ्चधा संस्थितो हरिः। लोकानुग्रहकृद्विष्णुः सर्वदुष्टविनाशनः॥४॥
वासुदेवस्वरूपेण तथा सङ्कर्षणेन च। तथा प्रद्युम्नरूपेणानिरुद्धाख्येन च स्थितः।
नारायणस्वरूपेण पञ्चधा च ह्ययं स्थितः॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—हे सुव्रत शंकर! मैं पञ्चतत्त्वार्चन कहता हूं। आप श्रवण करिये। यह मंगलप्रद, परम मंगलरूप, दिव्य रहस्य है। यह सभी कामना पूरक भी है। हे महादेव! इस पवित्र कलिनाशक प्रसंग को सुनिये। एकमात्र, अव्यय, शान्त, परमात्मरूप, सनातन, वसुदेवनन्दन प्रभु विष्णुदेव ध्रुव (अटल), शुद्ध, सर्वव्यापक, निरंजन हैं। वे अपनी ही माया से पांच रूपों में विराजमान हैं। लोक पर अनुग्रह करने वाले विष्णु सभी दुष्टों के नाशक भी हैं। वे एक विष्णु ने ही अपनी माया द्वारा अपने वसुदेव स्वरूप से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण रूप से पञ्चरूपी हो गये हैं॥२-५॥

एतेषां वाचका मन्त्रा एताञ्शृणु वृषध्वज। ओं अं वासुदेवाय नमः। ओं आं सङ्कर्षणाय नमः। ओं अं प्रद्युम्नाय नमः। ओं अः अनिरुद्धाय नमः। ओं-ओं नारायणाय नमः॥६॥

हे वृषध्वज! इनके वाचक मन्त्रों का श्रवण करिये। यथा—ॐ अं वासुदेवाय नमः, ॐ आं संकर्षणाय नमः, ॐ अं प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अः अनिरुद्धाय नमः, ॐ ॐ नारायणाय नमः॥६॥

पञ्चमन्त्राः समाख्याता देवानां वाचकास्तव। सर्वपापहराः पुण्याः सर्वरोगविनाशनाः॥७॥
अधुना संप्रवक्ष्यामि पञ्चतत्त्वार्चनं शुभम्। विधिना येन कर्त्तव्यं यैर्वा मन्त्रैश्च शङ्कर॥८॥
आदौ स्नानं प्रकुर्वीत स्नात्वा सन्ध्यां समाचरेत्।
अर्चनागारमासाद्य प्रक्षाल्याङ्घ्रषादिकंतथा॥९॥

इन देवताओं का यह वाचक मन्त्र कहा गया। यह सभी पापों का हरण करने वाला, पुण्यप्रद तथा सभी रोगों का नाशक है। अब मैं शुभ पंचतत्वार्चन कह रहा हूं। हे शंकर! अब मैं वह विधान तथा तत्सम्बन्धित मन्त्रों का वर्णन कर रहा हूं, जिनके अनुसार पञ्चतत्वार्चन करना होता है। पहले साधक स्नान एवं सन्ध्याकृत्य सम्पन्न करे। तदनन्तर वह अर्चना करने वाले स्थान में जाकर हाथ-पैर धोयें॥७-९॥

आचम्योपविशेत्प्राज्ञो बद्धासनमभीप्सितम्।
शोषणादिः ततः कुर्य्यादं क्षौं रमिति मन्त्रकैः॥१०॥
सामान्यकठिनीकृत्य चाण्डमुत्पादयेत्ततः।
विभिद्याण्डं ततो ह्यण्डे भावयेत्परमेश्वरम्॥११॥

वह प्राज्ञ साधक आचमन करके तब अभीप्सित आसन के अनुसार बैठ जाये। वह पद्मासन पर भी बैठ सकता है। तदनन्तर वह "अं क्षौं, ॐ रं" मन्त्र से शोषणादि विधान द्वारा भूतशुद्धि करके इन प्रक्रिया द्वारा (भावना से) शरीर नाश करे। तत्पश्चात् दृढ़ अंडाकृति देह को (भावना द्वारा) उत्पन्न करके इस अण्ड का भेदन करे तथा वहां परम ईश्वर स्वरूप की धारणा करे। यह ध्यान इस प्रकार का करना चाहिये॥१०-११॥

वासुदेवं जगन्नाथं पीतकौशेयवाससम्। सहस्रादित्यसङ्काशं स्फुरन्मकरकुण्डलम्॥१२॥
आत्मनो हृदि पद्मे तु ध्यायेत्तु परमेश्वरम्। ततः सङ्कर्षणं देवमात्मानं चिन्तयेत्प्रभुम्।
प्रद्युम्नमनिरुद्धञ्च श्रीमन्नारायणं ततः॥१३॥

ध्यान—जगन्नाथ वासुदेव ने पीतवर्ण कौषेय वस्त्र धारण किया है। वे हजारों सूर्य के समान उनके शरीर की प्रभा है। कानों में मकर की आकृति का अत्यन्त चमकदार कुण्डल शोभायमान हो रहा है। साधक अपने हृदय कमल पर वासुदेवरूपी स्वात्मा का चिन्तन करे। इसी प्रकार स्वात्मरूप में ही संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा श्रीनारायण का भी ध्यान करे॥१२-१३॥

इन्द्रादींश्च सुरांस्तस्माद्देवदेवात्समुत्थितान्।
चिन्तयेच्च ततो न्यासं कुर्य्याद्वै करयोर्द्वयोः॥१४॥
व्यापकं मूलमन्त्रेण चाङ्गन्यासं ततः परम्। अङ्गमन्त्रैर्महादेव तन्मन्त्रान् शृणु सुव्रत॥१५॥

इसके पश्चात् इनसे ही उत्पन्न इन्द्रादि देवगण का चिन्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् दोनों हाथों से करन्यास करे। व्यापक न्यास मूल मन्त्र से करने का विधान है। इसके पश्चात् अंगन्यास को अंगमन्त्र से सम्पन्न करना होगा। हे शंकर! अब मैं अंगमन्त्रों को कहता हूं। श्रवण करिये॥१४-१५॥

ओं आं हृदयाय नमः। ओं ईं शिरसे नमः। ओं ऊं शिखायै नमः। ओं ऐं कवचाय नमः। ओं औं नेत्रत्रयाय नमः। ओं अः अस्त्राय फट्॥१६॥

यथा—ॐ आं हृदयाय नमः, आं ईं शिरसे नमः, ॐ ऊं शिखायै नमः, ॐ ऐं कवचाय नमः, ॐ औं नेत्रत्रयाय नमः, ॐ अः अस्त्राय फट्॥१६॥

ओं समस्तपरिवारायाच्युताय नमः। ओं धात्रे नमः। ओं विधात्रे नमः। ओं आधारशक्त्यै नमः। ओं कूर्माय नमः। ओं अनन्ताय नमः। ओं पृथिव्यै नमः। ओं धर्माय नमः। ओं ज्ञानाय नमः। ओं वैराग्याय नमः। ओं ऐश्वर्य्याय नमः। ओं अधर्माय नमः। ओं अज्ञानाय नमः। ओं अनैश्वर्य्याय नमः। ओं अर्कमण्डलाय नमः। ओं सोममण्डलाय नमः। ओं मं वह्निमण्डलाय नमः। ओं वं वासुदेवाय परब्रह्मणे शिवाय तेजोरूपाय व्यापिने सर्वदेवाधिदेवाय नमः। ओं पाञ्चजन्याय नमः। ओं सुदर्शनाय नमः। ओं गदायै नमः। ओं पद्माय नमः। ओं श्रियै नमः। ओं क्रियायै नमः। ओं पुष्ट्यै नमः। ओं शक्त्यै नमः। ओं प्रीत्यै नमः। ओं इन्द्राय नमः। ओं अग्नये नमः। ओं यमाय नमः। ओं नैर्ऋताय नमः। ओं वरुणाय नमः। ओं वायवे नमः। ओं सोमाय नमः। ओं ईशानाय नमः। ओं अनन्ताय नमः। ओं ब्रह्मणे नमः। ओं विष्वक्सेनाय नमः। ओं पद्माय नमः॥१७॥

अब मूल श्लोक १७ में लिखे अनुसार मन्त्रों से पूजनादि करे। (ये सभी मन्त्र हैं। अनुवाद नहीं होता)॥१७॥

एते मन्त्राः समाख्यातास्तव रुद्र समासतः।
पूजा चैव प्रकर्त्तव्या मण्डले स्वस्तिकादिके॥१८॥

अङ्गन्यासञ्च कृत्वा तु मुद्राः सर्वाः प्रदर्शयेत्।
आत्मानं वासुदेवञ्च ध्यात्वा च परेश्वरम्॥१९॥

हे रुद्र! मैंने आपसे यह सब संक्षेप में कहा है। स्वस्तिक मण्डल अथवा सर्वतोभद्रादि मण्डलों में पूजा करनी चाहिये। अंगन्यास के पश्चात् मुद्रा-प्रदर्शन करे। आत्मा में आत्मरूपेण वासुदेव परमेश्वर का ध्यान करे॥१८-१९॥

आसनं पूजयेत्पश्चादावाह्य विधिवन्नरः। द्वारे धातुर्विधातुश्च पूजा कार्य्या वृषध्वज॥२०॥
गरुडं पूजयेदग्रे वासुदेवस्य शङ्कर। शङ्खादिपद्मपर्य्यन्तं मध्यदेशे प्रपूजयेत्॥२१॥
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यं पूर्वदेशतः। आग्नेयादिष्वर्चयेद्वै अधर्मादि चतुष्टयम्॥२२॥

अब आसन-पूजा सविधि करके, हे वृषध्वज! तब यथाविधि आवाहन के साथ मण्डल द्वार पर ॐ धात्रे नमः, ॐ विधात्रे नमः से पूजा करे। हे शंकर! तदनन्तर वासुदेव के अग्रभाग में ॐ गरुडाय नमः से पूजा करके मण्डल के मध्य में ॐ शंखाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ पद्माय नमः से अर्चना करनी चाहिये। मण्डल के पूर्व में ॐ धर्माय नमः से, दक्षिण में ॐ ज्ञानाय नमः से, पश्चिम में ॐ वैराग्याय नमः से, उत्तर में ॐ ऐश्वर्याय नमः से, अग्निकोण में ॐ अधर्माय नमः से, नैर्ऋत् कोण में ॐ अज्ञानाय नमः से, वायुकोण में ॐ अवैराग्याय नमः से, ईशान कोण में अनैश्वर्याय नमः से पूजा करे॥२०-२२॥

मण्डलद्वयमध्ये तु कीर्त्तिता ह्यासनस्थितिः। पूर्वादिपद्मपत्रेषु पूज्याः सङ्कर्षणादयः॥२३॥
कर्णिकायां वासुदेवं पूजयेत्परमेश्वरम्।
पाञ्चजन्यादयः पूज्याः ऐशान्यादिषु संस्थिताः॥२४॥
शक्तयश्चैव पूर्वादौ देवदेवस्य शङ्करः।
इन्द्रादयो लोकपालाः पूज्याः पूर्वादिषु स्थिताः॥२५॥
अधोनागं तदूर्ध्वन्तु ब्रह्माणं पूजयेत्सुधीः।
इति स्थानक्रमो ज्ञेयो मण्डले शङ्कर त्वया॥२६॥
आवाह्य मण्डले देवं कृत्वा न्यासं तु तस्य च।
मुद्रां प्रदर्श्य पाद्यादीन्दद्यान्मूलेन शङ्कर॥२७॥
स्नानं वस्त्रं तथाचामं नमस्कारं प्रदक्षिणम्। कुर्य्याच्छङ्कर मूलेन जपञ्चापि समर्पयेत्॥२८॥

अब दोनों मण्डलों में देवासन स्थापना के पश्चात् पद्म के पूर्व आदि सभी पत्रों में संकर्षण प्रभृति देवों की पूजा करे। (लेकिन) पद्मकर्णिका में वासुदेव का ही पूजन हो। ईशानादि कोण में पाञ्चजन्य आदि की पूजा करनी चाहिये। हे शंकर! पूर्वादि दिशाओं में वासुदेव प्रभु की शक्तियों की पूजा होगी। तब इन्द्रादि लोकपालगण की पूजा की जाये। साधक को चाहिये कि मण्डल के ऊर्ध्व में ब्रह्मा की तथा अधः भाग में अनन्त पूजा करे। हे शंकर! ये सभी मण्डल के पूजास्थल निश्चित हैं। मण्डल में पहले वासुदेव का आवाहन करना चाहिये। ऊपर कहे विधान से न्यास, मुद्रा प्रदर्शन, मूल मन्त्र से पाद्य आदि अर्पण,

स्नानीय, वस्त्र, आचमनीय, गंध, पुष्प, दीप, धूप, नैवेद्य, पुनः आचमनीय अर्पित करे। तब प्रदक्षिणा करने तथा प्रणाम करने का विधान है। हे शंकर! सब मूल मन्त्र का यथाशक्ति जप करके समस्त पूजा समर्पित करे॥२३-२८॥

इदं स्तोत्रं जपेत्पश्चाद्वासुदेवमनुस्मरन्। ओं नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च॥२९॥
प्रद्युम्नायादि देवायानिरुद्धाय नमो नमः। नमो नारायणायैव नराणां पतये नमः॥३०॥

नरपूज्याय कीर्त्याय स्तुत्याय वरदाय च।
अनादिनिधनायैव पुराणाय नमो नमः॥३१॥

सृष्टिसंहारकर्त्रे च ब्रह्मणः पतये नमः। नमो वै वेदवेद्याय शङ्खचक्रगदाधराय च॥३२॥
कलिकल्मषनाशाय सुरेशाय नमो नमः। संसारवृक्षच्छेत्रे च मायाभेत्रे नमो नमः॥३३॥
बहुरूपाय तीर्थाय त्रिगुणाय नमो नमः। ब्रह्मविष्णवीशरूपाय मोक्षदाय नमो नमः॥३४॥

अब वासुदेव का स्मरण करते-करते यह स्तोत्र पाठ करे। यथा—ॐ वासुदेव को नमस्कार, संकर्षण को नमस्कार! हे प्रद्युम्न! हे आदिदेव अनिरुद्ध! आपको नमस्कार! हे नरों के पति नारायण! आपको नमस्कार! आप मनुष्यों के पूज्य, त्रिभुवन में कीर्त्तित, स्तुत तथा वरप्रद हैं। आप अनादिनिधन तथा पुरातन हैं। आपको प्रणाम! आप सृष्टि-संहारकारक, आप ब्रह्मा के भी स्वामी हैं। आप वेदवेद्य, शंख-चक्रधारी हैं। आपको नमस्कार! आप कलिकल्मष नाशक देवेश्वर को प्रणाम! आप संसार वृक्ष को काटने वाले तथा मायाभेदक हैं। आपको नमस्कार! आप बहुरूपी, तीर्थस्वरूप, त्रिगुणरूप भी हैं। आपको नमस्कार! आप ब्रह्मा-विष्णु-ईशरूपी तथा मोक्षप्रद हैं। आपको नमस्कार!॥२९-३४॥

मोक्षद्वाराय धर्माय निर्वाणाय नमो नमः। सर्वकामप्रदायैव परब्रह्मस्वरूपिणे॥३५॥
संसारसागरे घोरे निमग्नं मां समुद्धर। त्वदन्यो नास्ति देवेश नस्ति त्राता जगत्प्रभो॥३६॥
त्वामेव सर्वगं विष्णुं गतोऽहं शरणं ततः। ज्ञानदीपप्रदानेन तमोमुक्तं प्रकाशय॥३७॥

आप मोक्षद्वार, धर्म तथा निर्वाण के भी द्वाररूपी हैं। आप सभी कामनादायक तथा परब्रह्मरूपी हैं। आपको नमस्कार! मैं घोर संसार सागर में डूब रहा हूं। मेरा उद्धार करिये। हे जगत्प्रभु! देवेश! आपके सिवाय कोई मेरा रक्षक ही नहीं है। मैं आप सर्वगामी विष्णु की शरण ले रहा हूं। आप ज्ञानप्रदीप देकर मुझे तमः से रहित करके प्रकाशमान करिये॥३५-३७॥

एवं स्तुवीत देवेशं सर्वक्लेशविनाशनम्।
अन्यैश्च वैदिकैः स्तोत्रैः स्तुत्वा च नीललोहित॥३८॥
पञ्चतत्त्वसमायुक्तं ध्यायेद्विष्णुं नरो हृदि।
विसर्जयेत्ततो देवमिति पूजा प्रकीर्त्तिता॥३९॥

इस प्रकार से सर्वक्लेशनिवारक देवेश की स्तुति करे। हे नीललोहित! अन्य वैदिक स्तोत्र से भी स्तुति करनी चाहिये। इन पंचतत्वात्मक विष्णु का चिन्तन हृदय में करे। तब उनका विसर्जन करे। यही पूजा कही गई है॥३८-३९॥

सर्वकामप्रदा श्रेष्ठा वासुदेवस्य शङ्कर। एतत्पूजनमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः॥४०॥
इदञ्च यः पठेद्रुद्र पञ्चतत्त्वार्चनं नरः। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि विष्णुलोकं स गच्छति॥४१॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

हे शंकर! सर्वकामप्रदा तथा श्रेष्ठा यह वासुदेव अर्चना है। इस पूजन मात्र से मानव कृतार्थ हो जाता है। हे रुद्र! इसे पढ़ कर पञ्चतत्वार्चन करे। पंचतत्वार्चन करके जो इस स्तवराज को सुनता अथवा पढ़ता है अथवा श्रोतागण को श्रवण कराता है, उसे अन्ततः विष्णुलोक की प्राप्ति होती है॥४०-४१॥

॥बत्तीसवां अध्याय समाप्त॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

सुदर्शन पूजा विधि वर्णन

रुद्र उवाच

सुदर्शनस्य पूजां मे वद शङ्खगदाधर। ग्रहरोगादिकं सर्वं यत्कृत्वा नाशमेति वै॥१॥

रुद्रदेव कहते हैं—हे शंख-चक्र-गदाधारी! कृपया सुदर्शन की पूजा कहिये, जिससे ग्रहदोषबाधादि नष्ट हो जाते हैं॥१॥

हरिरुवाच

सुदर्शनस्य चक्रस्य शृणु पूजां वृषध्वज। स्नानमादौ प्रकुर्वीत पूजयेच्च हरिं ततः॥२॥
मूलमन्त्रेण वै न्यासं मूलमन्त्रं शृणुष्व च। सहस्रारं हुं फट् नमो मन्त्रः प्रणवपूर्वकः।
कथितः सर्वदुष्टानां नाशको मन्त्रभेदकः॥३॥
ध्यायेत् सुदर्शनं देवं हृदि पद्मेऽमले शुभे। शङ्खचक्रगदापद्मधरं सौम्यं किरीटिनम्॥४॥
आवाह्य मण्डले देवं पूर्वोक्तविधिना हर। पूजयेत् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारैर्महेश्वर॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—हे वृषध्वज! सुदर्शन चक्र पूजन श्रवण करिये। पहले स्नानादि करके हरिपूजन करना चाहिये। मूल मन्त्र से न्यास करना चाहिये। मूलमन्त्र है—"ॐ सहस्रार हुं फट्" यह सर्वदुष्टनाशक तथा (मतान्तर से यह मन्त्र है "ॐ अं हुं फट्") परमन्त्र भेदक है। साधक को चाहिये कि वह अपने विमल हृदयकमल पर शंख-चक्र-गदा-पद्म लिये हुये सौम्यमूर्त्ति, मुकुटधार, देवदेव सुदर्शन का ध्यान करे। हे महेश्वर! इसके पश्चात् मण्डल में इनका आवाहन करके पहले कही विधि के अनुसार अनेक प्रकार से गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादि से इनकी पूजा करे॥२-५॥

पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं नरः। एवं, यः कुरुते रुद्र चक्रस्यार्चनमुत्तमम्॥६॥
सर्वरोगविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं समाप्नुयात्।
एतत् स्तोत्रं जपेत्पश्चात् सर्वव्याधिविनाशनम्॥७॥

पूजा करने के अनन्तर साधक को १०८ बार मूलमन्त्र का जप करना आवश्यक है। हे रुद्र! इस प्रकार से चक्र सुदर्शन की पूजा करने वाला धरतीलोक पर सभी प्रकार के उत्तम भोगों को भोगता तथा सर्व रोगों से मुक्त जीवन व्यतीत करता है। मृत्यु के उपरान्त उसे विष्णुलोक प्राप्त होता है। पूजा करने के पश्चात् साधक स्तव पाठ करे। इस स्तव पाठ से साधक की सभी व्याधियां समाप्त हो जाती हैं॥६-७॥

नमः सुदर्शनोयैव सहस्त्रादित्यवर्चसे। ज्वालमालाप्रदीप्ताय सहस्त्राराय चक्षुषे॥८॥
सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने। सुचक्राय विचक्राय सर्वमन्त्रविभेदिने॥९॥

स्तोत्र यह है—हे सुदर्शन! आपका तेज सहस्त्रों सूर्य के समान है। आपकी ज्वालामाला से समस्त दिशायें व्याप्त हो रही हैं। आप सहस्त्र अर वाले नेत्ररूपी हैं। आपको नमस्कार! हे सुदर्शन चक्र! आप सभी दुष्टों का वध करके समस्त पापों का नाश करते हैं। आप ही सुचक्र तथा विचक्र हैं। आपके द्वारा ही समस्त मन्त्र अभिव्यक्त होते हैं (अथवा आप ही सर्वमन्त्र विभेदक हैं)॥८-९॥

प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नमः। पालनार्थाय लोकानां दुष्टासुरविनाशिने॥१०॥
उग्राय चैव सौम्याय चण्डाय च नमः नमः। नमश्चक्षुःस्वरूपाय संसारभयभेदिने॥११॥

आप ही जगत् की सृष्टि-स्थिति-प्रलय के कर्त्ता हैं। आपको नमस्कार! आप ही लोक रक्षणार्थ सभी असुरों का नाश करते रहते हैं। आप दुष्ट दैत्यगण हेतु उग्रमूर्त्ति हो जाते हैं। आप ही शान्त सौम्य लोगों के लिये सौम्यरूप हो जाते हैं। हे संसारभयभेदक! आप चक्षुरूप हैं। आपको नमस्कार!॥१०-११॥

मायापञ्जरभेत्रे च शिवाय च नमो नमः। ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणां पतये नमः॥१२॥
कालाय मृत्यवे चैव भीमाय च नमो नमः। भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नमः॥१३॥

आप माया के पञ्चाट का भेदन करने वाले कल्याणरूप हैं। आपको नमस्कार! आप भक्तों पर कृपालु तथा उनके रक्षक हैं। आपको प्रणाम! आप ग्रहगण के भी ग्रह तथा ग्रहाधिपति हैं। आप ही काल, मृत्यु तथा भीमरूप हैं॥१२-१३॥

विष्णुरूपाय शान्ताय चायुधानां धराय च।
विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नमः॥१४॥
इति स्तोत्रं महापुण्यं चक्रस्य तव कीर्तितम्।
यः पठेत्परया भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति॥१५॥
चक्रपूजाविधिं यश्च पठेद्रुद्र जितेन्द्रियः।
स पापं भस्मसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते॥१६॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

आप विष्णुरूप शान्त तथा आयुधधारी हैं। आप भगवान् विष्णु के शस्त्र चक्र हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार! यह चक्र का महापुण्यमय महास्तोत्र मैंने कह दिया। इसे जो परम भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह विष्णुलोक प्रयाण करता है। हे रुद्र! जो जितेन्द्रिय होकर चक्र पूजाविधि का पाठ करता है, उसके पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। वह विष्णुलोक जाता है॥१४-१६॥

॥तैंतीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

हयग्रीव पूजाविधि वर्णन

रुद्र उवाच

पुनर्देवार्चनं ब्रूहि हृषीकेश गदाधर। श्रृण्वतो नास्ति तृप्तिर्मे गदतस्तव पूजनम्॥१॥

रुद्र कहते हैं—हे हृषीकेश, गदाधारी! आप पुनः देवार्चन का वर्णन करिये। आपसे पूजनविधि सुनकर तृप्ति नहीं हो रही है॥१॥

हरिरुवाच

हयग्रीवस्य देवस्य पूजनं कथयामि ते। तच्छृणुष्व जगन्नाथो येन विष्णुः प्रतुष्यति॥२॥
मूलमन्त्रं महादेव हयग्रीवस्य वाचकम्। प्रवक्ष्यामि परं पुण्यं तदादौ श्रृणु शङ्कर॥३॥
ओं हौं क्ष्रौं शिरसे नमः इति प्रणवसंयुतः। अयं नवाक्षरो मन्त्रः सर्वविद्याप्रदायकः॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—मैं आपसे हयग्रीव पूजाविधि कहता हूं। हे जगन्नाथ! उसे सुनिये। जिससे विष्णु सन्तुष्ट होते हैं। हे शंकर! मैं अब हयग्रीव का वाचक उनका मूलमन्त्र कहता हूं, जो अत्यन्त पुण्यरूप है। इनका दो प्रणव से युक्त नव अक्षरों वाला मन्त्र सर्वविद्या सिद्धिप्रद है। वह है—"ॐ ॐ हौं क्ष्रौं शिरसे नमः"॥२-४॥

अस्याङ्गानि महादेव ताञ् श्रृणुष्व वृषध्वज।
ओं क्ष्रां हृदयाय नमः । ओं क्ष्रीं शिरसे स्वाहायुक्तं। शिरः प्रोक्तं क्ष्रूं वषट् तथा॥५॥
ओंकारयुक्ता देवस्य शिखा ज्ञेया वृषध्वज।
ओं क्ष्रैं कवचाय हुं वै कवच परिकीर्त्तितम्॥६॥
ओं क्ष्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रं देवस्य कीर्त्तितम्।
ओं क्ष्रः अस्त्राय फट् अस्त्र देवस्य कीर्त्तितम्॥७॥

हे वृषध्वज! अब इसका अंगन्यास मन्त्र सुनिये। यथा—ॐ क्षां हृदयाय नमः, ॐ क्षीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्षूं शिखायै वषट्, ॐ क्षैं कवचाय हुं, ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्षः अस्त्राय फट्। इन मन्त्रों से अंगन्यास, करन्यास किया जायेगा॥५-७॥

पूजाविधिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु।
आदौ स्नात्वा तथाचम्य ततो यागगृहं व्रजेत्॥८॥
ततः प्रविश्य विधिवत् कुर्याद्वै शोषणादिकम्।
यं क्ष्रौं रमिति बीजैश्च कठिनीकृत्य लमिति॥९॥

अब मैं पूजाविधि कहता हूं, उसे सुनिये। पहले स्नान तथा आचमन करके तब यागगृह में जाये। वहां प्रवेश करके विधिवत् शोषणादि भूतशुद्धि कार्य करना चाहिये। यं, क्ष्रौं तथा रं—इन बीजत्रय से शोषणादि विधान द्वारा भूतशुद्धि करके 'लं' पृथिवी बीज से शरीर को दृढ़ीकृत करे॥८-९॥

अण्डमुत्पाद्य च ततः ओंकारेणैव भेदयेत्।
अण्डमध्ये हयग्रीवमात्मानं परिचिन्तयेत्॥१०॥
शङ्खकुन्देन्दुधवलं मृणालरजतप्रभम्। शङ्खं चक्रं गदां पद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम्॥११॥
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालासमन्वितम्। सुरक्तं सुकपोलञ्च पीताम्बरधरं विभुम्॥१२॥

तब भावना से (पूर्व अध्याय की तरह) अणु उत्पन्न करके प्रणव (ॐ) द्वारा उसका भेदन करके उसमें स्वात्मा का चिन्तन हयग्रीव रूप से करे। इन देव का ध्यान इस प्रकार से है "हयग्रीव देवता शंख, चक्र तथा कुन्द पुष्प के समान धवल और मृणाल एवं चांदी के समान प्रभा वाले हैं। वे चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी हैं। उन्होंने किरीट शिखर तथा कानों में कुण्डल धारण किया है। वे वनमालाधारी हैं। उनका कपोल रक्तवर्ण है। उन विभु ने पीताम्बर धारण किया है॥१०-१२॥

भावयित्वा महात्मानं सर्वदेवैः समन्वितम्।
अङ्गमन्त्रैस्ततो न्यासं मूलमन्त्रेण वै तथा॥१३॥
ततश्च दर्शयेन्मुद्रां शङ्खपद्मादिकां शुभाम्।
ध्यायेद् ध्यात्वाऽर्चयेद्विष्णुं मूलमन्त्रेण शङ्कर॥१४॥
ततश्चावाहयेद्रुद्र देवता आसनस्य याः। ओं हयग्रीवासनस्य आगच्छत च देवताः॥१५॥
आवाह्य मण्डले तास्तु पूजयेत्स्वस्तिकादिके।
द्वारे धातुर्विधातुश्च पूजा कार्या वृषध्वज॥१६॥

इन सर्वदेव समन्वित महात्मा की इस प्रकार भावना करके पहले कहे गये अंगमन्त्र द्वारा अंगन्यास करके मूलमन्त्र जपते-जपते शंख पद्मादि मुद्रा प्रदर्शित करे। हे शंकर! तदनन्तर ध्यान द्वारा हयग्रीवार्चना मूलमन्त्र से करे। तत्पश्चात् हयग्रीव देव के आसनदेवताओं का आवाहन करना चाहिये। मन्त्र है—"ॐ हयग्रीवासनस्य आसन देवता आगच्छत" इस मन्त्र से स्वस्तिक मण्डल में अथवा सर्वतोभद्रमण्डल में

आसनदेवगण का आवाहन पूजन करे। हे वृषध्वज! मण्डल के द्वार पर ॐ धात्रे नमः, ॐ विधात्रे नमः से धाता-विधाता की पूजा करनी चाहिये। यह विधान है॥१३-१६॥

समस्तपरिवाराय अच्युताय नम इति। अस्य मध्येऽर्चनं कार्यं द्वारे गङ्गाञ्च पूजयेत्॥१७॥
यमुनाञ्च महादेवीं शङ्खपद्मनिधी तथा। गरुडं पूजयेदग्रे मध्ये शक्तिञ्च पूजयेत्॥१८॥

आधाराख्यां महादेव ततः कूर्मं समर्चयेत्।
अनन्तं पृथिवीं पश्चाद् धर्मज्ञानौ ततोऽर्चयेत्।
वैराग्यमथ चैश्वर्यमाग्नेयादिषु पूजयेत्॥१९॥

अधर्माज्ञाना वैराग्यानैश्वर्यादींस्तु पूर्वतः। सत्त्वं रजस्तमश्चैव मध्यदेशेऽथ पूजयेत्॥२०॥

इसके पश्चात् मण्डल के बीच में इस मन्त्र से परिवार की अर्चना करे "सपरिवाराय अच्युताय नमः" तदनन्तर मण्डल के द्वार पर "ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनायै नमः, ॐ महादेव्यै नमः, ॐ शंखनिधये नमः, ॐ पद्मनिधये नमः" से पूजा करके मण्डल के अग्रभाग में "ॐ गरुड़ाय नमः" से पूजा करके मण्डल मध्य में आधार शक्ति की पूजा का विधान है। यह करने के बाद "ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः" से पूजा करके अग्निकोण में ॐ धर्माय नमः से, नैर्ऋत्कोण में ॐ ज्ञानाय नमः से, वायुकोण में ॐ वैराग्याय नमः से, ईशान कोण में ॐ ऐश्वर्याय नमः से, पूर्व दिशा में ॐ अधर्माय नमः से, दक्षिण में ॐ अज्ञानाय नमः से, पश्चिम में ॐ अवैराग्याय नमः से, उत्तर में ॐ अनैश्वर्याय नमः से पूजा करनी चाहिये। मध्यदेश में सत्व, रजः, तमः की पूजा करे (ॐ सत्वाय नमः, ॐ रजसे नमः, ॐ तमसे नमः)॥१७-२०॥

नन्दं नालञ्च पद्मञ्च मध्ये चैव प्रपूजयेत्।
अर्कसोमाग्निसंज्ञानां मण्डलानां हि पूजनम्।
मध्यदेशे प्रकर्त्तव्यमिति रुद्र प्रकीर्त्तितम्॥२१॥

इसी मध्य में ॐ नन्दाय नमः, ॐ नालाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अर्थमण्डलाय नमः, ॐ सोममण्डलाय नमः, ॐ अग्निमण्डलाय नमः से पूजा करके मध्यदेश की पूजा सम्पन्न करे॥२१॥

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगे वृषध्वज।
प्रह्वी सत्या तथैशानानुग्रहाः शक्तयो ह्यमूः॥२२॥
पूर्वादिषु च पत्रेषु पूज्याश्च विमलादयः।
अनुग्रहा कर्णिकायां पूज्या श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः॥२३॥

प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च चतुर्थ्यन्तैश्च नामभिः। मन्त्रैरेतैर्महादेव आसनं परिपूजयेत्॥२४॥
स्नानगन्धप्रदानेन पुष्पधूपप्रदानतः। दीपनैवेद्यदानेन आसनस्यार्चनं शुभम्॥२५॥
कर्त्तव्यं विधिनानेन इति हर प्रकीर्त्तितम्। ततश्चावाहयेद् देवं हयग्रीवं सुरेश्वरम्॥२६॥

हे वृषध्वज! तदनन्तर साधक पूर्वादि दिशाक्रमेण ॐ विमलायै नमः, ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ

ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रह्वै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशानायै नमः तथा पद्मकर्णिका में ॐ अनुग्रहायै नमः से पूजा सम्पन्न करे। देवता के नाम के पहले ओंकार लगाये। अन्त में नमः लगाये, उनके नाम का चतुर्थी विभक्ति योग करके इस मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। स्नानीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य प्रदान करके ही आसन देवताओं की पूजा की जाये। हे शंकर! तदनन्तर यथोक्त विधान से देवेश्वर हयग्रीव देव का आवाहन करे॥२२-२६॥

वामनासापुटेनैव आगच्छन्तं विचिन्तयेत्। आगच्छतः प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर॥२७॥
आवाहनं प्रकर्त्तव्यं देवदेवस्य शङ्खिनः। आवाह्य मण्डले तस्य न्यासं कुर्यादतन्द्रितः॥२८॥
न्यासं कृत्वा च तत्रस्थं चिन्तयेत्परमेश्वरम्। हयग्रीवं महादेवं सुरासुरनमस्कृतम्॥२९॥
इन्द्रादिलोकपालैश्च संयुतं विष्णुमव्ययम्।
ध्यात्वा प्रदर्शयेन्मुद्राः शङ्खचक्रादिकाः शुभाः॥३०॥

उस समय साधक अपनी बायीं नासिका से श्वास भीतर खींच कर हयग्रीव देवता के आगमन की भावना करे। हे रुद्रदेव! आवाहनोपरान्त सावधानी से न्यास करना चाहिये। न्यास करने के उपरान्त हे महादेव! उन हयग्रीव देवता का चिन्तन करे, जो परमेश्वर हैं तथा सुर-असुर द्वारा नमस्कृत हैं! वे इन्द्रादि लोकपाल से युक्त अव्यय विष्णु हैं। यह ध्यान करके उनको शुभा शंख-चक्रादि, शुभ मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये॥२७-३०॥

पाद्यार्घाचमनीयानि ततो दद्याच्च विष्णवे। स्नापयेच्च ततो देवं पद्मनाभमनामयम्॥३१॥
देवं संस्थाप्य विधिवद्वस्त्रं दद्याद् वृषध्वज। ततो ह्याचमनं दद्यादुपवीतं ततः शुभम्॥३२॥
ततश्च मण्डले रुद्रं ध्यायेद्देवं परमेश्वरम्। ध्यात्वा पाद्यादिकं भूयो दद्याद्देवाय शङ्करः॥३३॥

उन विष्णु देव को पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय प्रदान करे। तब अनामय पद्मनाभ देव को स्नान कराये। हे वृषध्वज! उन देवता को विधिपूर्वक स्थापित करके विविध वस्त्र अर्पित करे। तब आचमनीय एवं शुभ यज्ञोपवीत प्रदान कर उस मण्डल में परमेश्वर रुद्र का ध्यान करे। हे शंकर! यह ध्यान करके मूलमन्त्र से उनको पाद्यादि प्रदान करना चाहिये॥३१-३३॥

दद्याद् भैरवदेवाय मूलमन्त्रेण शङ्कर। ओं क्षां हृदयाय नमः अनेन हृदयं यजेत्॥३४॥
ओं क्षीं शिरसे नमश्च शिरसः पूजनं भवेत्।
ओं क्षूं शिखायै नमश्च शिखामनेन पूजयेत्॥३५॥
ओं क्षैं कवचाय नमः कवचं परिपूजयेत्। ओं क्षौं नेत्राय नमश्च नेत्रञ्चानेन पूजयेत्॥३६॥
ओं क्षः अस्त्राय नमः इति अस्त्रञ्चानेन पूजयेत्।
हृदयञ्च शिरश्चैव शिखाञ्च कवचं तथा॥३७॥
पूर्वादिषु प्रदेशेषु ह्येतास्तु परिपूजयेत्। कोणेष्वस्त्रं यजेद्रुद्र नेत्रं मध्ये प्रपूजयेत्॥३८॥

उपरोक्त कार्य करके षडङ्ग पूजा करनी चाहिये। यथा पूर्वदिक्—ॐ क्षां हृदयाय नमः—हृदय,

दक्षिणदिक्—ॐ क्षीं शिरसे नमः—शिर, पश्चिमदिक्—ॐ क्षूं शिखायै नमः—शिखा, उत्तरदिक्—ॐ क्षैं कवचाय नमः—कवच, मध्य में—ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय नमः—नेत्र, कोण में—ॐ क्षः अस्त्राय नमः। यह पूजा क्रम है॥३४-३८॥

पूजयेत्परमां देवीं लक्ष्मीं लक्ष्मीप्रदां शुभाम्।
शङ्खं पद्मं तथा चक्रं गदां पूर्वादितोऽर्चयेत्॥३९॥

खड्गञ्च मुशलं पाशमङ्कुशं सशरं धनुः। पूजयेत् पूर्वतो रुद्र एभिर्मन्त्रैः स्वनामकैः॥४०॥

श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां तथा पीताम्बरं शुभम्। पूजयेत्पूर्वतो रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम्॥४१॥

इसके पश्चात् लक्ष्मीप्रदा, शुभा, परमादेवी की पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। तदनन्तर पूर्व में—ॐ शंखाय नमः, दक्षिण में ॐ पद्माय नमः, पश्चिम में ॐ चक्राय नमः, उत्तर में ॐ गदायै नमः। इस प्रकार पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पूर्व में ॐ खड्गाय नमः, दक्षिण में ॐ मूषलाय नमः, पश्चिम में ॐ पाशाय नमः, उत्तर में ॐ अंकुशाय नमः, मध्य में ॐ स शराय धनुषे नमः से पूजा करनी चाहिये। हे रुद्र! इस प्रकार इनकी पूजा इनके नाम से करें। हे शंकर! पुनः पूर्व में ॐ श्रीवत्साय नमः, दक्षिण में ॐ कौस्तुभाय नमः, पश्चिम में ॐ वनमाला, उत्तर में ॐ पीताम्बराय नमः से पूजा करके शंख-चक्र-गदाधारी हयग्रीव देव की पूजा करें॥३९-४१॥

ब्रह्माणं नारदं सिद्धं गुरुं परगुरुं तथा। गुरोश्च पादुके तद्वत्परमस्य गुरोस्तवा॥४२॥

इन्द्रं सवाहनं वाथ परिवारयुतं तथा। अग्निं यमं निर्ऋतिञ्च वरुणं वायुमेव च॥४३॥

सोममीशाननागञ्च ब्रह्माणं परिपूजयेत्। पूर्वादि चोर्ध्वपर्य्यन्तं पूजयेद् वृषभध्वज॥४४॥

तत्पश्चात् ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ नारदाय नमः, ॐ सिद्धाय नमः, ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परम गुरुभ्यो नमः से उक्त सबकी पूजा करके ॐ गुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः से पादुका की पूजा करे। तब—

ॐ सवाहन परिवाराय इन्द्राय नमः, ॐ सवाहन परिवाराय अग्नये नमः, ॐ सवाहन परिवाराय नैर्ऋत्याय नमः, ॐ सवाहन परिवाराय वरुणाय नमः, ॐ सवाहन परिवाराय वायवे नमः, ॐ सवाहन परिवाराय सोमाय नमः, ॐ सवाहन परिवाराय ईशानाय नमः, ॐ सवाहन परिवाराय अनन्ताय नमः, ॐ सवाहन परिवाराय ब्रह्मणे नमः से इनकी पूजा करे। पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके ऊर्ध्व पर्यन्त इनकी पूजा की जाये॥४२-४४॥

वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्गं पाशं ध्वजं गदाम्।
त्रिशुलञ्चक्रपद्मे च आयुधान्यथ पूजयेत्॥४५॥
विष्वक्सेनं ततो देवमैशान्यां दिशि पूजयेत्।
एभिर्मन्त्रैर्नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यैर्वृषध्वज॥४६॥

पूजा कार्या महादेव ह्यनन्तस्य वृषध्वज। देवस्य मूलमन्त्रेण पूजा कार्या वृषध्वज।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च॥४७॥

तत्पश्चात् अस्त्र पूजा सुनिये। ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ ध्वजाय नमः, ॐ गजायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः से अस्त्रपूजा की जाये। इसके अनन्तर ईशान कोण में ॐ विष्वक्सेनाय नमः से पूजा करके आरम्भ में प्रवण तथा अन्त में नमः लगाकर उस मन्त्र से आवरण देवता की पूजा करे। अनन्त की पूजा होगी। "ॐ अनन्ताय नमः" देवता के मूलमन्त्र से हे वृषध्वज! गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से अनन्त देव का पूजन होगा॥४५-४७॥

प्रदक्षिणं नमस्कारं जप्यं तस्मै समर्पयेत्।
स्तुवीत चानया स्तुत्या प्रणवाद्यैर्वृषध्वज॥४८॥

इसके अनन्तर देवदेव हयग्रीव की प्रदक्षिणा करे। उनको प्रणामोपरान्त यथाशक्ति जप करके तब जप का समर्पण करना चाहिये। अब आगे अंकित की जा रही स्तुति का पाठ करके हयग्रीव देवता को प्रसन्न करे। हे वृषध्वज! आदि में प्रणव लगाकर स्तुति करे॥४८॥

ओं नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नमः।
नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्रे नमो नमः॥४९॥
नमः शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्मने नमः। सुरासुरनिहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने॥५०॥
सर्वलोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नमः। नमश्चेश्वरवन्द्याय शङ्खचक्रधराय च॥५१॥
नम आद्याय दान्ताय सर्वसत्त्वहिताय च। त्रिगुणायागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे।
कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नमः॥५२॥

ॐ हयशिर विद्याध्यक्ष! आपको नमस्कार! आप विद्यारूप तथा विद्याप्रदाता हैं। आपको नमस्कार! आप शान्त तथा त्रिगुणात्मा हैं। आप देवता तथा असुर दोनों का नियन्त्रण करने वाले तथा सभी दुष्टों के विनाशक हैं। आप सर्वलोकाधिपति, ब्रह्मरूप हैं। आपको प्रणाम! आप महादेव ईश्वरवन्दित तथा शंख-चक्रधारी हैं। आपको नमस्कार! आप आदिदेव, दान्त, सभी प्राणियों का हित करने वाले हैं। आप हयग्रीव को नमस्कार! जगत्कर्त्ता, सर्वहर्त्ता, सुरेश्वर, सर्वगामी, हयग्रीव देवता को नमस्कार! आप ही सृष्टिकर्त्ता, सृष्टिहर्त्ता सुरेश्वर हैं। आप त्रिगुणमय तथा निर्गुण, दोनों हैं। आपको नमस्कार!॥४९-५२॥

इत्येवं संस्तवं कृत्वा देवदेवं विचिन्तयेत्।
हृत्पद्मे विमले रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम्॥५३॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं सर्वावयवसुन्दरम्। हयग्रीवं महेशेश परमात्मानमव्ययम्॥५४॥
इति ते कथिता पूजा हयग्रीवस्य शङ्कर।
यः पठेत् परया भक्त्या स गच्छेत् परमं पदम्॥५५॥

॥इति गारुडे महापुराणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

इस प्रकार से स्तव करके उन देवाधिदेव का चिन्तन करे। हे रुद्र! विमल हृदय कमल में शंख-चक्र-गदाधारी, करोड़ों सूर्यों के समान, सभी सुन्दर शरीर वाले, महेश के ईश, परमात्मा, अव्यय, हयग्रीव का ध्यान करना चाहिये। हे शंकर! यह मैंने हयग्रीव की पूजा का वर्णन कर दिया। जो इसे परमा भक्ति के साथ पढ़ता है, उसे परमपद की प्राप्ति होती है॥५३-५५॥

॥चौंतीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

गायत्री छन्दः तथा न्यासादि वर्णन

हरिरुवाच

न्यासादिकं प्रवक्ष्यामि गायत्र्याश्छन्द एव।
विश्वामित्र ऋषिश्चैव सविता चाथ देवता॥१॥
ब्रह्मशीर्षा रुद्रशिखा विष्णोर्हृदयसंश्रिता। विनियोगैकनयना कात्यायनसगोत्रजा॥२॥
त्रैलोक्य चरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसंस्थिता।
एवं ज्ञात्वा तु गायत्रीं जपेद् द्वादशलक्षकम्॥३॥
त्रिपदाऽष्टाऽक्षरा ज्ञेया चतुष्पादा षडक्षरा। जपेच्च त्रिपदा प्रोक्ता अर्चने च चतुष्पदा॥४॥
न्यासे जपे तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने।
गायत्रीं विन्यसेन्नित्यं सर्वपापप्रणाशिनीम्॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—अब मैं गायत्री छन्दः तथा उसके न्यास आदि को कहता हूं। इसके ऋषि विश्वामित्र हैं। देवता सविता हैं। गायत्री ब्रह्मा के शीर्ष (शिर) पर, विष्णु के हृदय पर तथा रुद्र के शिखास्थान में संस्थित हैं। इनका विनियोग होता है (ब्रह्मरूप एक भाव में) ब्रह्मज्ञान में। ये एकनयना कात्यायन गोत्र में जन्मी हैं। इनके तीन पाद हैं तीनों लोक। पृथिवी उदर है। इस प्रकार गायत्री के ऋषि आदि का ज्ञान करके इसका बारह लाख जप करे। जब गायत्री त्रिपदा हैं, तब यह प्रत्येक पाद में अष्ट अक्षर वाली होती है। जब इसे चतुष्पादा करते हैं, तब इसे प्रत्येक पाद में चार अक्षर वाली जाने। जपकाल में इसका प्रयोग त्रिपादा तथा अर्चना पूजा के समय इसे चतुष्पादा करे। स्नान, जप, ध्यान, होम तथा पूजनार्थ सदा सर्वपापनाशिनी गायत्री का न्यास करे॥१-५॥

पादाङ्गुष्ठे गुल्फमध्ये जङ्घयोर्विद्धि जानुनोः। ऊर्वोर्गुह्ये च वृषणे नाड्यां नाभौ तनूदरे॥६॥

स्तनयोर्हृदि कण्ठौष्ठमुखे तालुनि वांसयोः। नेत्रे भ्रुवोर्ललाटे च पूर्वस्यां दक्षिणोत्तरे।
पश्चिमे मूर्ध्नि चाकारं न्यसेद्वर्णान् वदाम्यहम्॥७॥
इन्द्रनीलञ्च वह्निञ्च पीतं श्यामञ्च कापिलम्।
श्वेतं विद्युत्प्रभं तारं कृष्णं रक्तं क्रमेण तत्॥८॥
श्यामं शुक्लं तथा पीतं श्वेतं वै पद्मरागवत्। शङ्खवर्णं पाण्डरञ्च रक्तञ्चासवसन्निभम्।
अर्कवर्णं समं सौम्यं शङ्खभं श्वेतमेव च॥९॥
यद्यत्स्पृश्यति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
पूतं भवति तत् सर्वं गायत्रया न परं विदुः॥१०॥

॥इति गारुडे महापुराणे आचारखण्डे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

गायत्री के वर्णों का न्यास पादाङ्गुष्ठ, गुल्फ, दोनों जांघ, दोनों जानु, दोनों उरु, गुह्य, कोष, नाड़ी, नाभि, सर्वाङ्ग, उदर, स्तनद्वय, कण्ठ, ओठ, मुख, तालु, दोनों कन्धे, दोनों नेत्र, दोनों भौंहें, ललाट, चारों दिशाओं तथा मस्तक पर करना चाहिये। गायत्री के वर्ण क्रमशः इन्द्रनील, अग्निवर्ण, पीत, श्यामल, कपिल, श्वेत, विद्युत् के समान, तारे के समान, कृष्ण, रक्त, श्याम, शुक्ल, पीत, शुभ्र, पद्मराग के समान, शंख के समान, पाण्डुर, रक्त, आसवतुल्य, सूर्यवर्णवत्, सौम्य, शंखवत् तथा श्वेत हैं। (यहां रक्त-श्याम इत्यादि वर्ण का दो-दो बार प्रयोग है)। गायत्री के पाठ के साथ जिन-जिन वस्तुओं का स्पर्श तथा नेत्रों से अवलोकित किया जायेगा, वे सभी वस्तुयें परम पावन हो जायेंगी। यह गायत्री की कृपा से होता है॥६-१०॥

॥पैंतीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षट्त्रिंशोऽध्यायः

सन्ध्याविधि वर्णन

हरिरुवाच

सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि शृणु रुद्राघनाशनम्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा सन्ध्यास्नानमुपक्रमेत्॥१॥
सप्रणवां सव्याहृतिं गायत्रीं शिरसा सह। त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥२॥
मनोवाक्कायजं दोषं प्राणायामैर्दहेद् द्विजः। तस्मात् सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत्॥३॥

श्रीहरि ने कहा—हे रुद्र! अब मैं सन्ध्याविधि कहूंगा। उसे सुनिये। पहले तीन प्राणायाम करके सन्ध्यास्नान करना चाहिये। प्रणव युक्त व्याहृति को गायत्री शिर: के साथ गायत्री का पाठ तीन बार प्राणवायु सहित करना प्राणायाम कहा जाता है (अर्थात् १ बार गायत्री पढ़ते हुये पूरक, १ बार पढ़ते कुंभक तथा एक बार गायत्री पढ़ते रेचक करना ही प्राणायाम है। मन, वाणी तथा शरीर से किया दोष प्राणायाम हरण कर लेता है। तभी सर्वकाल में साधक प्राणायाम तत्पर रहे॥१-३॥

सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्येत्यपः पिबेत्।
आपः पुनन्तु मध्याह्ने उपस्पृश्य यथाविधि॥४॥
आपोहिष्ठेत्यृचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकैः। प्रणवेन तुं संयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे॥५॥
रजस्तमःस्वमोहोत्थान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान्।
वाङ्मनःकर्मजान् दोषान् नवैतान्नवभिर्दहेत्॥६॥

सायंकाल "अग्निश्च मे" इत्यादि कहकर, प्रात:काल "सूर्यश्च" इत्यादि कहकर, मध्याह्न में "आप: पुनन्तु" इत्यादि कहकर जलपान करके यथा नियम आचमन करे। तत्पश्चात् "आपोहिष्ठा" इत्यादि तीन मन्त्र पढ़ते हुये कुशजल से आपोमार्जन करना चाहिये। उस समय पूर्वोक्त मन्त्रों के साथ 'ॐ' जोड़कर पढ़ते हुये द्वार पर पग-पग पर जल छिड़के। तब तीन बार प्राणायाम, तीन बार आचमन तथा तीन आपोमार्जन को करना चाहिये। इन ३ + ३ + ३ = ९ कार्य को करने से रजोगुण-तमोगुण से जनित, मोह से जनित, जाग्रतावस्था (ज्ञानपूर्वक) में कृत, निद्रावस्था (अज्ञानपूर्वक कृत) में कृत, सुषुप्ति में उत्पन्न शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक, इन ९ प्रकार के पापों का नाश हो जाता है॥४-६॥

समुद्धृत्योदकं पाणौ जप्त्वा च द्रुपदां क्षिपेत्। त्रिषडष्टौ द्वादशधा वर्त्तयेदघमर्षणम्॥७॥
उदुत्य चित्रमित्याभ्यामुपतिष्ठेद् दिवाकरम्।
दिवारात्रौ च यत् पापं सर्वं नश्यति तत्क्षणात्॥८॥
पूर्वसन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् पश्चिमामुपविश्य च।
महाव्याहृतिसंयुक्तां गायत्रीं प्रणवान्विताम्॥९॥
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम्। त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम्॥१०॥

साधक स्वयं हाथ में जल लेकर "द्रुपदादिव" इत्यादि मन्त्र से जल छिड़के। यह जलक्षेप ३, ६, ८ किंवा १२ बार किया जाये। यही अघमर्षण है। तब "उदुत्य" इत्यादि अथवा 'चित्रं देवानां' इत्यादि मन्त्र से साधक सूर्योपस्थान सम्पन्न करे। इस सन्ध्या कृत्य द्वारा दिन में तथा रात्रि में किये सभी पापों का नाश हो जायेगा। रात्रि में किया पाप प्रात:-सन्ध्या करने से तथा दिन में किये पाप सायं सन्ध्या करने से निर्मूल हो जाते हैं। प्रात:-सन्ध्या खड़े होकर करनी चाहिये, परन्तु सायं-सन्ध्या आसनासीन होकर करे। ॐ युक्त महाव्याहृति अर्थात् इन गायत्री का जप जो सौ बार करेगा, उसके पूर्व के दस जन्मों के पापों का नाश होगा। जो यह जप एक हजार बार करेगा, उसके तीन युग के किये पाप नष्टीभूत हो जाते हैं॥७-१०॥

रक्ता भवति गायत्री सावित्री शुक्लवर्णिका।
कृष्णा सरस्वती ज्ञेया सन्ध्यात्रयमुदाहृतम्॥११॥

ओं भूर्विन्यस्य हृदये ओं भुवः शिरसि न्यसेत्।
ओं स्वरिति शिखायाञ्च गायत्र्याः प्रथमं पदम्॥१२॥
विन्यसेत्कवचे विद्वान् द्वितीयं नेत्रयोर्न्यसेत्।
तृतीयेनाङ्गविन्यासं चतुर्थं सर्वतो न्यसेत्॥१३॥

प्रात:काल में गायत्री का ध्यान रक्तवर्ण, मध्याह्न काल में गायत्री का वर्ण शुक्लवर्ण तथा सन्ध्याकाल में कृष्णवर्ण होता है। यह तीनों सन्ध्या के वर्ण कह दिये गये। गायत्री का षडङ्गन्यास यह होगा—

ॐ भू: हृदयाय नम:, ॐ भुव: शिरसे स्वाहा, ॐ स्व: शिखायै वषट्, ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं कवचाय हुं, ॐ भर्गोदेवस्य धीमहि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धीयो यो नम: प्रचोदयात् करतलपृष्ठाभ्यां फट्। तदनन्तर गायत्री का सर्वाङ्गन्यास करे॥११-१३॥

सन्ध्याकाले तु विन्यस्य जपेद्वै वेदमातरम्।
शिवस्तस्यास्तु सर्वाङ्गे प्राणायामपरं न्यसेत्॥१४॥
त्रिपदा या तु गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी। विनियोगमृषिच्छन्दो ज्ञात्वा तु जपमारभेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥१५॥
परोरजसि सारं तं तुरीयपदमीरितम्।
तं हन्ति सूर्य्यः सन्ध्यायां नोपास्तिं कुरुते तु यः॥१६॥
तुरीयस्य पदस्यापि ऋषिर्निर्मल एव च।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता॥१७॥

॥इति गारुडे महापुराणे सन्ध्याविधिर्नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

जो साधक सन्ध्याकाल में यह न्यास तथा प्राणायाम करके वेदमाता गायत्री का मन्त्रजप करते हैं, उनकी सर्वाङ्गीण कुशलता होती है। यह त्रिपाद गायत्री ब्रह्मा-विष्णु-शिव रूप हैं। इस गायत्री के ऋषि, छन्द:-विनियोग का उचित ज्ञान पाकर इसका जप करने वाला सभी पापों से रहित होकर ब्रह्मलोक में स्थानलाभ कर लेता है। जो मानव सन्ध्योपासना नहीं करते उनका नाश रजोगुण से परे जो तुरीय ब्रह्म सूर्य हैं, वे कर देते हैं। इस तुरीय ब्रह्ममन्त्र के ऋषि हैं निर्मल, छन्द हैं देवी गायत्री तथा इनके देवता साक्षात् परमात्मा हैं॥१४-१७॥

॥छतीसवां अध्याय समाप्त॥
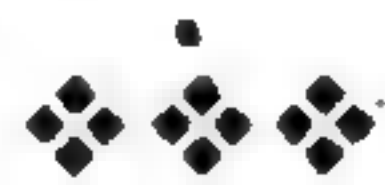
सप्तत्रिंशोऽध्यायः

गायत्री माहात्म्य वर्णन

हरिरुवाच

गायत्री परमा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदा च ताम्।
यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि॥१॥
गायत्रीकल्पमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदञ्च तत्।
अष्टोत्तरं सहस्रं वा अथवाऽष्टशतं जपेत्।
त्रिसन्ध्यं ब्रह्मलोकी स्याच्छतजप्तं जलं पिबेत्॥२॥
सन्ध्यायां सर्वपापघ्नी देवीमावाह्य पूजयेत्।
भूर्भुवः स्वः स्वमन्त्रेण युतां द्वादशनामभिः॥३॥

श्रीहरि ने कहा—गायत्री परमादेवी हैं। वे भोग-मोक्ष दोनों प्रदान करती हैं। जो इसका जप करता है, उसका ये गायत्री देवी महान् पाप भी नष्ट कर देती हैं। इस गायत्री कल्प में कहे गये प्रकार से गायत्री जप करने वाले साधक को इस लोक में विविध भोग प्राप्त होते हैं। उसे मृत्यु होने पर मुक्ति मिलती है। इसे एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार जपे। तदनन्तर तीनों सन्ध्याकाल में १०० गायत्री जप से अभिमन्त्रित जल को पीये। वह साधक ब्रह्मलोक में स्थानलाभ करता है। साधक सन्ध्या के समय इन पापनाशिनी गायत्री का आवाहन करे। तदनन्तर "भुर्भूवः स्वः" के साथ बारह नामों को जोड़ कर पूजा करे॥१-३॥

गायत्र्यै नमः सावित्र्यै सरस्वत्यै नमो नमः।
वेदमात्रे च सांकृत्यै ब्रह्माणी कौशिकी क्रमात्॥४॥
साध्व्यै सर्वार्थसाधिन्यै सहस्राक्ष्यै च भूर्भुवः।
स्वरेव जुहुयादग्नौ समिधाऽऽज्यं हविष्यकम्॥५॥
अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यथवाष्टशतं घृतम्। धर्मकामादिसिद्ध्यिर्थं जुहुयात् सर्वकर्मसु॥६॥
प्रतिमां चन्दनस्वर्णनिर्मितां प्रतिपूज्य च। यथा लक्षं तु जप्तव्यं पयोमूलफलाशनैः।
अयुतद्वयहोमेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥७॥

ॐ सावित्र्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ वेदमात्रे नमः, ॐ सांकृत्यै नमः, ॐ ब्रह्माण्यै नमः, ॐ कौशिक्यै नमः, ॐ साध्व्यै नमः, ॐ सर्वार्थसाधिन्यै नमः, ॐ सहस्राक्ष्यै नमः, इन मन्त्रों से पूजा करके "ॐ भूर्भुवः स्वः" मन्त्र से घृतयुक्त समिध् द्वारा होम करे। साधक को चाहिये कि वह धर्म-कामादि की सिद्धि हेतु १००८ किंवा १०८ घृतयुक्त समिध् से होम करे। वह चन्दन अथवा स्वर्ण की

प्रतिमा की पूजा करे। दुग्ध, मूल-फल, आहार पर निर्भर रहकर एक लाख गायत्री जपे। तब बीस हजार होम करने से उसकी सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं॥४-७॥

उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनि। ब्रह्मा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥८॥

।।इति गारुडे महापुराणे गायत्रीमाहात्म्यं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।३७।।

अब विसर्जन मन्त्र कहते हैं—"हे देवी! आपने उत्तर दिशा में जन्म लिया था। अब आप पर्वत तथा भूमि पर रहती हैं। अब आप ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार इच्छित स्थान पर जाईये। इस मन्त्र से गायत्री का विसर्जन करे॥८॥

॥सैंतीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दुर्गापूजा तथा आचार विधान का वर्णन

हरिरुवाच

नवम्यादौ यजेद् दुर्गां ह्रीं दुर्गे रक्षिणीति च। मातर्मातर्वरे दुर्गे सर्वकामार्थसाधने।
अनेन बलिदानेन सर्वान् कामान् प्रयच्छ मे॥१॥
गौरी काली उमा दुर्गा भद्रा कान्तिः सरस्वती।
मङ्गला विजया लक्ष्मीःशिवा नारायणी क्रमात्।
मार्गे तृतीयामारभ्य पूजयेन्न वियोगभाक्॥२॥
अष्टादशभुजां खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीम्। धनुर्ध्वजं डमरुकं परशुं पाशमेव च॥३॥
शक्तिमुशलशूलानि कपालवज्रकाङ्कशान्। शरं चक्रं शलाकाञ्च अष्टादशभुजां स्मरेत्॥४॥

श्रीहरि ने कहा—नवमी आदि तिथि के समय दुर्गा का पूजन "ह्रीं दुर्गे रक्षिणि स्वाहा" मन्त्र से करना चाहिये। हे माता दुर्गा! आप सभी कामना तथा अर्थ की सिद्धि दीजिये। आप इस बलिदान से प्रसन्न होकर सभी कामनाओं को दीजिये। यह स्तुति करनी चाहिये। मार्गशीर्ष मास की तृतीया के दिन इन मन्त्रों से पूजा करे। यथा—ॐ गौर्यै नमः, ॐ काल्यै नमः, ॐ उमायै नमः, ॐ दुर्गायै नमः, ॐ भद्रायै नमः, ॐ कान्त्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ मङ्गलायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ शिवायै नमः, ॐ नारायण्यै नमः। इस प्रकार से पूजा करने वाला कभी भी स्वजन वियोग से पीड़ित

नहीं होता। देवी के अट्ठारह हाथ हैं। उनमें देवी ने खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी मुद्रा, धनुष, ध्वज, डमरू, परशु, पाश, शक्ति, मूषल, त्रिशूल, नरकपाल, वज्र, अंकुश, बाण, चक्र तथा शलाका धारण किया है। इन सभी अस्त्रों को धारण करने वाली दुर्गा का चिन्तन करके पूजा करे॥१-४॥

मन्त्रैः श्रीभगवत्याश्च प्रवक्ष्यामि जपादिकम्।

ओं नमो भगवति चामुण्डे श्मशानवासिनि कपालहस्ते महाप्रेतसमारूढे महाविमानमालाकुले कालरात्रि बहुगणपरिवृते महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणीके अट्टाट्टहासे किलि किलि हुं सर्वनादशब्दबहुले गजचर्मप्रावृतशरीरे रुधिरमांसदिग्धे लोलोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टहासे स्फुरितविद्युत्समप्रभे चल चल करालनेत्रे हिलि हिलि नलं प्रवेशय हुं जिह्वे त्रिं भृकुटिमुखि ओंकारभद्रासने कपालमालावेष्टिते जटामुकुटशशाङ्कधारिणि अट्टाट्टहासे किलि किलि हुं हुं दंष्ट्राघोरान्धकारिणि सर्वविघ्नविनाशिनि इदं कर्म साधय साधय शीघ्रं कुरु कुरु कह कह अङ्कुशेन समनुप्रवेशय वङ्ग वङ्ग कम्पय कम्पय चल चल चालय चालय रुधिरमांसमद्यप्रिये हन हन कुट्ट कुट्ट छिन्द छिन्द मारय मारय अनुब्रूम वज्रशरीरं साधय साधय त्रैलोक्यगतमपि दुष्टं वा गृहीतमगृहीतमावेशय आवेशय क्रामय क्रामय नृत्य नृत्य बन्ध बन्ध वल्ग वल्ग कोटराक्षि ऊर्ध्वकेशि उलूकवदने करकिङ्किणि करङ्कमालाधारिणि दह दह पच पच गृह्ण गृह्ण मण्डलमध्ये प्रवेशय प्रवेशय किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन ऋषिसत्येन रुद्रसत्येन आवेशय आवेशय किलि किलि खिलि खिलि मिलि मिलि चिलि चिलि विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजङ्गवेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशिनि प्रलम्बोष्ठि भ्रूभग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज भञ्ज ज्वल ज्वल कालमुखि खल खल पातय पातय रक्ताक्षि घूर्णय घूर्णापय भूमिं पातय पातय शिरो गृह्ण गृह्ण चक्षुर्मीलय मीलय भञ्ज भञ्ज पादौ गृह्ण गृह्ण मुद्रां स्फोटय स्फोटय हुं हुं फट् विदारय विदारय त्रिशूलेन भेदय भेदय वज्रेण हन हन दण्डेन ताडय ताडय चक्रेण छेदय छेदय शक्तिना भेदय भेदय दंष्ट्रया दष्टय दष्टय कीलकेन कीलय कीलय कर्त्तकया पाटय पाटय अङ्कुशेन गृह्ण गृह्ण शिरोर्त्तिज्वरमैकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं डाकिनीस्कन्दग्रहान् मुञ्चापथ मुञ्चापय लन लन उत्थापय उत्थापय भूमिं पातय पातय गृह्ण गृह्ण ब्रह्माणि एहि एहि माहेश्वरि एहि एहि कौमारि एहि एहि वाराहि एहि एहि ऐन्द्रि एहि एहि चामुण्डे एहि एहि वैष्णावि एहि एहि नारसिंहि एहि एहि शिवदूति एहि एहि कपालिनि एहि एहि महाकालि एहि एहि रेवति एहि एहि शुष्करेवति एहि एहि आकाशरेवति एहि एहि हिमवन्तचारिणि एहि एहि कैलासचारिणि एहि एहि परमन्त्रं छिन्धि छिन्धि किलि किलि विम्बे अघोरे

घोररूपिणि चामुण्डे रुरुक्रोधान्धविनिःसृते असुरक्षयंकरि आकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध समयं तिष्ठ तिष्ठ मण्डलं प्रवेशय प्रवेशय पातय पातय गृह्ण गृह्ण मुखं बन्ध बन्ध चक्षुर्बन्धय बन्धय हृदयं बन्ध बन्ध हस्तपादौ बन्ध बन्ध दुष्टग्रहान् सर्वान् बन्ध बन्ध दिशां बन्ध बन्ध विदिशां बन्ध बन्ध ऊर्ध्वं बन्ध बन्ध अधस्ताद् बन्ध बन्ध भस्मना पानीयेन मृत्तिकया सर्षपैर्वा आवेशय आवेशय पातय पातय चामुण्डे किलि किलि विच्छे हुं फट् स्वाहा।

अष्टोत्तरपदानां हि मालामन्त्रमही जपा॥५॥

अब जपादि हेतु देवी का मन्त्र कहा जा रहा है। (यह मन्त्र मूल में श्लोक ५ में अंकित है। इसका अनुवाद मन्त्र होने के कारण संभव नहीं है। पाठक मूल से ही पढ़ें)। इसका जप १०८ बार करे॥५॥

एकैकपदमष्टसहस्रधा त्रिमधुराक्ततिलाष्टसहस्रहोमः। महामांसेन त्रिमधुराक्तेन अष्टोत्तरसहस्रञ्च एकैकञ्च पदं जपेत्। तिलांस्त्रिमधुराक्तांश्च सहस्राष्टञ्च होमयेत्। महामांसं त्रिमधुरादथवा सर्वकर्मकृत्। वारिसर्षपभस्मादिक्षेपाद् युद्धादिके जयः॥६॥

इसके एक-एक पद की १००८ संख्या से अभिमन्त्रित घृत-शर्करा तथा मधुयुक्त तिल से १००८ बार होम करना चाहिये अथवा त्रिमधुरयुक्त महामांस से होम करे तथा उक्त एक-एक पद का १००८ जप करे। इस मन्त्र से जल अथवा सरसों अथवा भस्म को अभिमन्त्रित करके विपक्षी के बीच छिड़के। युद्ध में जय मिलेगी॥६॥

अष्टाविंशभुजा ध्येया अष्टादशभुजाऽथवा।
द्वादशाष्टभुजा वापि ध्येया वापि चतुर्भुजा॥७॥

असिखेटान्वितौ हस्तौ गदादण्डयुतौ परौ। शरचापयुतौ चान्यौ खड्गमुद्गरसंयुतौ॥८॥
शङ्खघण्टान्वितौ चान्यौ ध्वजदण्डयुतौ परौ। अन्यौ परशुचक्राढ्यौ डमरुदर्पणान्वितौ॥९॥

शक्तिहस्ताश्रितौ नटन्ती चान्यौ मूषलान्वितौ।
पाशतोमरसंयुक्तौ ढक्कापणवसंयुतौ॥१०॥
तर्जयन्ती परेणैव ह्यन्यत् कलकलध्वनिम्।
अभयस्वस्तिकाद्यौ च महिषघ्नी च सिंहगा॥११॥

जय त्वं कलभूतेशे सर्वभूतसमावृते। रक्ष मां निजभूतेभ्यो बलिं गृह्ण नमोऽस्तु ते॥१२॥

।।इति गारुडे महापुराणे आचारखण्डे अष्टत्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

—⁂—

अट्ठाइस भुजा वाली अथवा अट्ठारह भुजा वाली अथवा बारह भुजा वाली अथवा आठ भुजा अथवा चार भुजा वाली देवी का ध्यान करना चाहिये। साथ ही पहले कहे गये (श्लोक ५) के मन्त्र से पूजा

करे। अट्ठाईस भुजा वाली देवी के हाथ में तलवार, खेटक, गदा, दण्ड, बाण, धनुष, खड्ग, मुद्गर, घण्टा, ध्वज, परशु, चक्र, डमरू, दर्पण, शक्ति, मूषल, पाश, तोमर, ढक्का, पणव आदि रहता है। देवी शत्रु के प्रति एक हाथ से तर्जन तथा एक हाथ से कलकल ध्वनि करती हैं। उनके बाकी हाथों में अभय, स्वस्तिकादि मुद्रा विराजमान रहती है। मूल में लिखे श्लोक से सिंह पर आसीना महिषमर्दिनी देवी को बलि दे॥७-१२॥

॥अड़तीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्णु रूपी सूर्यार्चन विधि वर्णन

रुद्र उवाच

पुनर्देवार्चनं ब्रूहि संक्षेपेण जनार्दन।
सूर्य्यस्य विष्णुरूपस्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥१॥

रुद्रदेव ने कहा—हे हरि! संक्षेप में देवार्चन कहिये। जो विष्णुरूपी सूर्यार्चन करता है, उसे इहलोक में भोगलाभ होता है। मृत्यु के पश्चात् वह मुक्त हो जाता है। कृपया सूर्यपूजा का वर्णन करिये॥१॥

वासुदेव उवाच

श्रृणु सूर्य्यस्य रुद्र त्वं पुनर्वक्ष्यामि पूजनम्।
ओं उच्चैःश्रवसे नमः ओं अरुणाय नमः ओं दण्डिने नमः ओं पिङ्गलाय नमः।
एते द्वारे प्रपूज्या वै एभिर्मन्त्रैर्वृषध्वज॥२॥

ओं अं भूताय नमः। इमं तु पूजयेन्मध्येप्रभूतामलसंज्ञकम्। ओं अं विमलाय नमः। ओं अं साराय नमः। ओं अं आधाराय नमः। ओं अं परमसुखायै नमः।

इत्याग्नेयादिकोणेषु पूज्या वै विमलादयः॥३॥
ओं पद्माय नमः। ओं कर्णिकायै नमः।
मध्ये तु पूजयेद्रुद्र पूर्वादिषु तथैव च।
दीप्ताद्याः पूजयेन्मध्ये पूजयेत्सर्वतोमुखीम्।

ओं वां दीप्तायै नमः। ओं वीं सूक्ष्मायै नमः। ओं वूं भद्रायै नमः। ओं वैं जयायै नमः। ओं वौं विभूत्यै नमः। ओं वं अघोरायै नमः। ओं वं विद्युतायै नमः। ओं वः विजयायै नमः। ओं सर्वतोमुख्यै नमः॥४॥

ओं अर्कासनाय नमः। ओं ह्रां सूर्य्यमूर्त्तये नमः। एतास्तु पूजयेन्मध्ये ह्रन्मन्त्राऽश्शृणु शङ्कर। ओं हं सं खं खखोल्काय क्रां क्रीं सः स्वाहा। सूर्य्यमूर्त्तये नमः। अनेनावाहनं कुर्य्यात्स्थापनं सन्निधानकम्। सन्निरोधनमन्त्रेण सकलीकरणं तथा॥५॥
मुद्राया दर्शनं रुद्र मूलमन्त्रेण पूजयेत। तेजोरूपं रक्तवर्णं सितपद्मोपरि स्थितम्।
एकचक्ररथारूढं द्विबाहुं धृतपङ्कजम्॥६॥
एवं ध्यायेत्सदा सूर्य्यं मूलमन्त्रं शृणुष्व च। ओं ह्रां ह्रीं सः सूर्य्याय नमः।
वारत्रयं पद्ममुद्रां बिम्बमुद्राञ्च दर्शयेत्॥७॥

वासुदेव ने कहा—हे रुद्र! मैं पुनः सूर्यपूजन कहता हूं। (मण्डल के) पूर्व द्वार पर ॐ उच्चैश्रवसे नमः, दक्षिण द्वार पर ॐ अरुणाय नमः, पश्चिम द्वार पर ॐ दण्डिने नमः, उत्तर द्वार पर ॐ पिङ्गलाय नमः से पूजा करनी चाहिये। हे वृषध्वज! द्वार के देवगण की पूजा करने के अनन्तर मध्य में "ॐ अं भूताय नमः" से पूजा करके अग्निकोण में "अं विमलाय नमः", नैर्ऋत्कोण में "ॐ अं साराय नमः", वायुकोण में ॐ अं आकाशाय नमः", ईशान कोण में ॐ अं परमसुखायै नमः, मध्य में ॐ पद्माय नमः, कर्णिका में ॐ कर्णिकायै नमः से पूजा करनी चाहिये। अब पूर्वादिदिक् क्रम से दीप्ता प्रभृति की तथा मध्य में सर्वतोमुखी देवता की पूजा करे। यथा—पूर्व में ॐ वां दीप्तायै नमः, अग्निकोण में ॐ वीं सूक्ष्मायै नमः, दक्षिण में ॐ वूं भद्रायै नमः, नैर्ऋत्कोण में ॐ वैं जयायै नमः, पश्चिम में ॐ वौं विभूत्यै नमः, वायुकोण में ॐ वै अघोरायै नमः, उत्तर में ॐ वं विद्युतायै नमः, ईशान कोण में ॐ वः विजयायै नमः, मध्य में ॐ सर्वतोमुख्यै नमः से पूजा करके मध्य में ॐ अर्कासनाय नमः तथा ॐ ह्रां सूर्यमूर्त्तये नमः से पूजा करे। हे शंकर! अब आवाहन मन्त्र को सुनिये। यथा—"ॐ हं सं खं खखोल्काय क्रां क्रीं सः स्वाहा। सूर्यमूर्त्तये नमः, इसी मन्त्र से आवाहन करके स्थापन, सन्निधान, सन्निरोधन तथा सकलीकरण करे। हे रुद्र! तब सूर्य को मुद्रा दिखलाकर उनकी पूजा मूलमन्त्र से करनी चाहिये। वे सूर्यदेव तेजरूप, रक्तवर्ण तथा श्वेत कमलासीन हैं। वे एकचक्र वाले रथ पर बैठे हैं। उनकी दो बाहु है, जिनमें कमल है। इस प्रकार सूर्यदेव का सदा ध्यान करे। अब उनका मूलमन्त्र सुनिये। यथा—ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः। अब तीन बार पद्ममुद्रा तथा बिम्बमुद्रा प्रदर्शित करे॥२-७॥

ओं आं हृदयाय नमः। ओं अर्काय शिरसे स्वाहा। ओं अः भुर्भुवः स्वः ज्वालिनि शिखायै वषट्। ओं हुं कवचाय हुं। ओं भां नेत्राभ्यां वौषट्। ओं वः अस्त्राय फट् इति॥८॥
आग्नेय्यामथवैशान्यां नैर्ऋत्यामर्चयेद्धर। हृदयादि हि वायव्यान्नेत्रञ्चान्तः प्रपूजयेत्॥९॥
दिक्ष्वस्त्रं पूजयेद्रुद्र सोमं तु श्वेतवर्णकम्। दले पूर्वेऽर्चयेद्रुद्र बुधं चामीकरप्रभम्॥१०॥
दक्षिणे पूजयेद्रुद्र पीतवर्णं गुरुं यजेत्। पश्चिमे चैव भूतेशमुत्तरे भार्गवं सितम्॥११॥
रक्तमङ्गारकञ्चैव आग्नेये पूजयेद्धर। शनैश्चरं कृष्णवर्णं नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत्॥१२॥
राहुं वायव्यदेशे तु नन्द्यावर्त्तनिभं हर। ऐशान्यां धूमवर्णन्तु केतुं संपरिपूजयेत्॥१३॥

अब षडङ्ग पूजा करनी चाहिये। यथा—अग्निकोण—ॐ आं हृदयाय नमः, ईशान कोण—ॐ

अर्काय शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्कोण—ॐ अः भूर्भुवः स्वः ज्वालिनि शिखायै वषट्, वायुकोण—ॐ हुं कवचाय हुं, मध्य में—ॐ भां नेत्रत्रयाय वौषट्, चारों दिशाओं में—ॐ वः अस्त्राय फट्। हे रुद्र! यह सब पूजा करके पूर्व वाले दल में श्वेतवर्ण सोम, दक्षिण दल में हेमवर्ण बुध, पश्चिम दल में पीतवर्ण बृहस्पति, उत्तर दल में श्वेतवर्ण शुक्र, अग्निकोण में रक्तवर्ण मंगल, नैर्ऋत्कोण में कृष्णवर्ण शनैश्चर, वायुकोण में तगर पुष्पवर्ण वाले शुक्लवर्ण राहु तथा ईशान कोण में धूम्रवर्ण केतु की पूजा करे॥८-१३॥

एभिर्मन्त्रैर्महादेव तच्छृणुष्व च शङ्कर।

ओं सों सोमाय नमः। ओं बुं बुधाय नमः। ओं बृं बृहस्पतये नमः। ओं भं भार्गवाय नमः। ओं अं अङ्गारकाय नमः। ओं शं शनैश्चराय नमः। ओं रं राहवे नमः। ओं कं केतवे नमः। इति॥१४॥

हे रुद्र! इन (ग्रह) देवगण के मन्त्रों का श्रवण करिये। ॐ सों सोमाय नमः (सोम), ॐ बुं बुधाय नमः, ॐ बृं बृहस्पतये नमः, ॐ भं भार्गवाय नमः, ॐ अं अंगारकाय नमः, ॐ शं शनैश्चराय नमः, ॐ रं राहवे नमः, ॐ कं केतवे नमः॥१४॥

पाद्यादीन् मूलमन्त्रेण दत्त्वा सूर्य्याय शङ्कर। नैवेद्यान्ते धेनुमुद्रां दर्शयेत्साधकोत्तमः॥१५॥

जप्त्वा चाष्टसहस्त्रन्तु तच्च तस्मै समर्पयेत्।
ऐशान्यादिषु भूतेश तेजश्चण्डन्तु पूजयेत्॥१६॥
ओं तेजश्चण्डाय हुं फट् स्वधा स्वाहा वौषट्।
निर्माल्यञ्चार्पयेत्तस्मै ह्यर्घ्यं दद्यात्ततो हर॥१७॥

तिलतण्डुलसंयुक्तं रक्तचन्दनचर्चितम्। गन्धोदकेन संमिश्रं पुष्पधूपसमन्वितम्॥१८॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यामवलिङ्गितः। दद्यादर्घ्यन्तु सूर्य्याय ह्रन्मन्त्रेण वृषध्वज॥१९॥

साधक को चाहिये कि वह मूलमन्त्र उच्चारण करते हुये सूर्य को पाद्य, आदि तथा नैवेद्य आदि भक्ति के साथ प्रदान करे। तदनन्तर उनको धेनुमुद्रा दिखाये। तब १००८ मूलमन्त्र का जप करके उस जप को सूर्य को अर्पित करे। तत्पश्चात् साधक ईशान कोण में यह मन्त्र पढ़ कर भूतेश चण्डदेव की पूजा करे। यथा—

"ॐ तेजश्चण्डाय हुं फट् स्वधा स्वाहा वौषट्" इस मन्त्र से चण्ड का पूजन करके उनको निर्माल्य अर्पित करे। तब अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्यपात्र में तिल, तण्डुल, समन्वित, लाल चन्दनयुक्त गन्ध, जल, पुष्प, धूप समाविष्ट करके मस्तक पर रखकर जानु टेककर भूमि पर बैठे। तब ॐ सूर्याय नमः कहकर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये॥१५-१९॥

गणं गुरून्प्रपूज्याथ सर्वान्देवान्प्रपूजयेत्। ओं गं गणपतये नमः। ओं अं गुरुभ्यो नमः।
सूर्य्यस्य कथिता पूजा कृत्वैतां विष्णुलोकभाक्॥२०॥

॥इति गारुडे महापुराणे आचारखण्डे ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

हे वृषध्वज! अब गणपति, गुरुगण तथा समस्त देवगण की पूजा करके पूजा सम्पन्न करे। गणपति का मन्त्र है ॐ गं गणपतये नमः, गुरुमन्त्र है ॐ अं गुरुभ्यो नमः। यही सूर्यपूजा है। जो इस पूजा को करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है॥२०॥

॥उन्तालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
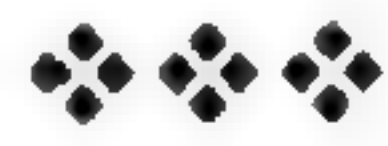
चत्वारिंशोऽध्यायः

माहेश्वरी पूजा वर्णन

शङ्कर उवाच

माहेश्वरीञ्च मे पूजां वद शङ्खगदाधरः। ज्ञात्वा मानवाः सिद्धिं गच्छन्ति परमेश्वर॥१॥

शंकर कहते हैं—हे शंख-चक्र-गदाधारी! माहेश्वरी पूजा का वर्णन करिये। हे परमेश्वर! उसे जान कर मानव सिद्धिलाभ करते हैं॥१॥

हरिरुवाच

शृणु माहेश्वरीं पूजां कथ्यमानां वृषध्वज।
आदौ स्नात्वा तथाचम्य ह्यासने चोपविश्य च।
न्यासं कृत्वा मण्डले वै पूजयेच्च महेश्वरम्॥२॥
मन्त्रैरेतैर्महेशान् परिवारयुतं हरम्। ओं हां शिवासनदेवता आगच्छत इति।
अनेनावाहयेद्रुद्र देवता आसनस्य याः॥३॥

ओं हां गणपतये नमः। ओं हां सरस्वत्यै नमः। ओं हां नन्दिने नमः। ओं हां महाकालाय नमः। ओं हां गङ्गायै नमः। ओं हां लक्ष्म्यै नमः। ओं हां अस्त्राय नमः इति।
एते द्वारे प्रपूज्या वै स्नानगन्धादिभिर्हर॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—हे वृषध्वज! मैं माहेश्वरी पूजा कहता हूं। श्रवण करें। पहले स्नान तथा आचमन करके आसनासीन हो जाये। न्यास करके मण्डल में महेश्वर की पूजा करनी चाहिये। परिवार सहित महेश्वर का यह मन्त्र है—

"ॐ हां शिवासनदेवता आगच्छत"।

हे रुद्र! इस मन्त्र से आसनदेवगण का आवाहन किया जाता है। हे हर! अब इन मन्त्रों से द्वार पर (मण्डल द्वार पर) स्नानीय एवं गन्धादि से इनका पूजन इन मन्त्रों से करे।

यथा—ॐ हां गणपतये नमः, ॐ हां सरस्वत्यै नमः, ॐ हां नन्दिने नमः, ॐ हां महाकालाय नमः, ॐ हां गङ्गायै नमः, ॐ हां लक्ष्म्यै नमः, ॐ हां अस्त्राय नमः।।२-४।।

ओं हां ब्रह्मणे वास्त्वधिपतये नमः। ओं हां गुरुभ्यो नमः। ओं हां आधारशक्त्यै नमः। ओं हां अनन्ताय नमः। ओं हां जनाय नमः। ओं हां वैराग्याय नमः। ओं हां ऐश्वर्य्याय नमः। ओं हां अधर्माय नमः। ओं हां अज्ञानाय नमः। ओं हां अवैराग्याय नमः। ओं हां अनैश्वर्य्याय नमः। ओं हां ऊर्ध्वच्छन्दाय नमः। ओं हां अधश्छन्दाय नमः। ओं हां पद्माय नमः। ओं हां कर्णिकायै नमः। ओं हां वामायै नमः। ओं हां ज्येष्ठायै नमः। ओं हां रौद्र्यै नमः। ओं हां काल्यै नमः। ओं हां कलविकरिण्यै नमः। ओं हां बलप्रमथिन्यै नमः। ओं हां सर्वभूतदमन्यै नमः। ओं हां मनोन्मन्यै नमः। ओं हां मण्डलत्रितयाय नमः। ओं हां हौं हं शिवमूर्त्तये नमः। ओं हां विद्याधिपतये नमः। ओं हां हीं हौं शिवाय नमः। ओं हां हृदयाय नमः। ओं हीं शिरसे नमः। ओं हूं शिखायै नमः। ओं हैं कवचाय नमः। ओं हौं नेत्रद्वयाय नमः। ओं हः अस्त्राय नमः। ओं सद्योजाताय नमः।।५।।

अब मूलोक्त श्लोक ५ के अनुसार "ब्रह्मणे वास्त्वधिपतयै" से लगाकर "ॐ सद्योजाताय नमः" तक पूजन करे। मन्त्र मूल श्लोक ५ में अंकित हैं (इनका अनुवाद नहीं होता, मन्त्र हैं)।।५।।

ओं हां सिद्ध्यै नमः। ओं हां ऋद्ध्यै नमः। ओं हां द्यूतायै नमः। ओं हां लक्ष्म्यै नमः। ओं हां बोधायै नमः। ओं हां काल्यै नमः। ओं हां स्वधायै नमः। ओं हां प्रभायै नमः।

सत्यस्याष्टौ कला ज्ञेयाः पूर्वपूर्वादिषु स्थिताः।।६।।

सिद्धि आदि आठ देवता सत्य की आठ शक्तियां हैं। ये पूर्व आदि आठ दिशाओं में स्थित हैं। इनका मन्त्र मूल में अंकित है (इसका अनुवाद नहीं होता, मन्त्र है)।।६।।

ओं हां वामदेवाय नमः। ओं हां रजसे नमः। ओं हां रक्षायै नमः। ओं हां रत्यै नमः। ओं हां कन्यायै नमः। ओं हां कामायै नमः। ओं हां सजन्यै नमः। ओं हां क्रियायै नमः। ओं हां वृद्ध्यै नमः। ओं हां कार्य्यायै नमः। ओं हां रात्र्यै नमः। ओं हां भ्राम्यै नमः। ओं हां मोहिन्यै नमः। ओं हां त्वरायै नमः।

वामदेवकला ज्ञेयास्त्रयोदश वृषध्वज।।७।।

हे वृषध्वज! अब वामदेव की तेरह कलायें होती हैं, जिनका पूजन करना चाहिये। ये तेरह कलायें तथा उनका मन्त्र मूल श्लोक ७ में अंकित है।।७।।

ओं हां तत्पुरुषाय नमः। ओं हां वृत्त्यै नमः। ओं हां प्रतिष्ठायै नमः। ओं हां विद्यायै नमः। ओं शान्त्यै नमः।

ज्ञेयास्तत्पुरुषस्यैव चतस्रो वृषभध्वज।।८।।

हे वृषध्वज! तत्पुरुष की चार कलायें हैं। उनकी पूजा करे। मन्त्र सहित वे श्लोक ८ में मूल में अंकित हैं॥८॥

ओं हां अघोराय नमः। ओं हां उमायै नमः। ओं हां क्षमायै नमः। ओं हां निद्रायै नमः। ओं हां व्याध्यै नमः। ओं हां क्षुधायै नमः। ओं हां तृष्णायै नमः।

कलाषट्कं ह्यघोरस्य विज्ञेयं भैरवं हर॥९॥

हे वृषध्वज! अघोर देव की छः कलायें हैं। इससे अघोर का पूजन करे। वे कलायें मूल के श्लोक ९ में अंकित हैं॥९॥

ओं हां ईशानाय नमः। ओं हां समित्यै नमः। ओं हां अङ्गदायै नमः। ओं हां कृष्णायै नमः। ओं हां मरीच्यै नमः। ओं हां ज्वालायै नमः।

ईशानस्य कलाः पञ्च जानीहि वृषभध्वज॥१०॥

हे वृषध्वज! ईशान की ५ कलायें हैं। उनकी पूजा मूल के श्लोक १० में लिखे मन्त्रों से करे॥१०॥

ओं हां शिवपरिवारेभ्यो नमः। ओं हां इन्द्राय सुराधिपतये नमः। ओं हां अग्नये तेजोऽधिपतये नमः। ओं हां यमाय प्रेताधिपतये नमः। ओं हां नैर्ऋताय रक्षोऽधिपतये नमः। ओं हां वरुणाय जलाधिपतये नमः। ओं हां वायवे प्राणाधिपतये नमः। ओं हां सोमाय नेत्राधिपतये नमः। ओं हां ईशानाय सर्वविद्याधिपतये नमः। ओं हां अनन्ताय नागाधिपतये नमः। ओं हां ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नमः॥११॥

ओं हां धूलिचण्डेश्वराय नमः। इति।

आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानञ्च शङ्कर। सन्निरोधं तथा कुर्यात्सकलीकरणं तथा।

तत्त्वन्यासञ्च मुद्राया दर्शनं ध्यानमेव च॥१२॥

अब शिवपरिवार की पूजा ॐ हां शिवपरिवारेभ्यो नमः से करके मूल में लिखे श्लोक ११ में अंकित दस दिक्पाल पूजा उन मन्त्रों से करे। तब धूलिचण्डेश्वर की पूजा इस मन्त्र से करे "ॐ हां धूलिचण्डेश्वराय नमः"। तब महेश्वर का आवाहन, स्थापन, सन्निधापन, सन्निरोधन, सकलीकरण करके तत्वन्यास तथा मुद्राप्रदर्शन एवं ध्यान भी करे॥११-१२॥

पाद्यमाचमनं ह्यर्घ्यं पुष्पाण्यभ्यङ्गदानकम्। तत उद्वर्त्तनं स्नानं सुगन्धञ्चानुलेपनम्। वस्त्रालङ्कारभोगांश्च ह्यङ्गन्यासञ्च धूपकम्। दीपं नैवेद्यदानञ्च हस्तोद्वर्त्तनमेव च।

पाद्यार्घ्याचमनं गन्धं ताम्बूलं गीतवादनम्॥१३॥

नृत्यं छत्रादिकरणं मुद्राणां दर्शनं तथा। रूपं ध्यानं जपञ्चाथ एकवद्भाव एव च। मूलमन्त्रेण वै कुर्य्याज्जपपूजासमर्पणम्। माहेशी कथिता पूजा रुद्र पापविनाशिनी॥१४॥

॥इति गारुडे महापुराणे आचारखण्डे चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

—※※※—

तब पाद्य, आचमन, अर्घ्य, पुष्प, उबटन, उद्वर्त्तन, स्नान, सुगन्धि विलेपन, वस्त्र, अलंकार आदि भोग अर्पित करके अंगन्यास करे। तदनन्तर धूप, दीप, नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। हस्तोद्वर्त्तन द्रव्य देकर पुनः पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, ताम्बूल निवेदित करके वहां गीत-वाद्यादि का आयोजन भी करना आवश्यक होता है। अब नृत्य कराये, छत्रादि अर्पित करके मुद्रा प्रदर्शित करे। साधक देवता, उनके ध्यान तथा उनके मन्त्र के साथ ऐक्य भावना करे। मूल मन्त्र से पूजा तथा जप करने के पश्चात् जपादि समर्पित कर देना चाहिये। हे रुद्र! मैंने माहेश्वरी पूजा कही, जिसके द्वारा साधक के सभी पापों का नाश हो जाता है॥१३-१४॥

॥चालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अनेक विद्याओं का वर्णन

वासुदेव उवाच

ओं विश्वावसुर्नाम गन्धर्वः कन्यानामधिपतिर्लभामि ते।
कन्यां समुत्पाद्य तस्मै विश्वावसवे स्वाहा।
स्त्रीलाभो मन्त्रजप्याच्च कालरात्रिं वदाम्यहम्॥१॥

श्रीवासुदेव ने कहा—"ॐ विश्वावसुर्नाम गन्धर्वः कन्यानामधिपतिर्नमामि ते। कन्यां समुत्पाद्य तस्मै विश्वावसवे स्वाहा।" इस मन्त्र जप से स्त्रीलाभ होता है। अब कालरात्रि मन्त्र सुनिये॥१॥

ओं नमो भगवते ऋक्षकर्णि चतुर्भुजे ऊर्ध्वकेशि त्रिनयने कालरात्रि मानुषाणां वसारुधिरभोजने अमुकस्य प्राप्तकालस्य मृत्युप्रदे हुं फट् हन हन दह दह मांसरुधिरं पच पच ऋक्षपत्नि स्वाहा।

न 'तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते॥२॥

इस मन्त्र के जपादि में तिथि तथा नक्षत्रों का विचार नहीं होता। इसे सभी समय बिना उपवासी रहे किया जाता है। मन्त्र है मूलोक्त "ॐ नमो भगवते" से लेकर "ऋक्षपत्नि स्वाहा" (इसे मूल में श्लोक २ में देखें)॥२॥

क्रुद्धो रक्तेन संमार्ज्य करौ ताभ्यां प्रगृह्य च। प्रदोषे संजपेल्लिङ्गमामपात्रञ्च मारयेत्।

ओं नमः सर्वतो यन्त्राण्येतद् यथा जम्भनि मोहनि सर्वशत्रुविदारिणि रक्ष रक्ष मामभुकं सर्वभयोपद्रवेभ्यः स्वाहा।

शुक्रे नष्टे महादेव वक्ष्येऽहं द्विजपादिह॥३॥

॥इति गारुडे महापुराणे आचारखण्डे एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥
नानाविद्या समाप्ता।
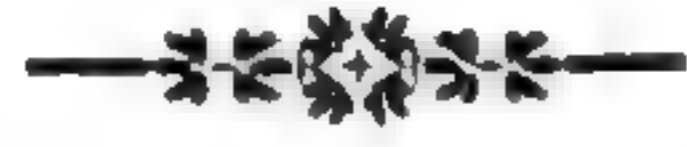
साधक प्रदोष काल में क्रोधित मुद्रा में रक्त से दोनों हाथ धोये तथा हाथ से लिंग पकड़ कर यह मन्त्र पढ़े। "ॐ नमः सर्वतो यन्त्राण्येतद् यथा जंभनि मोहनि सर्वशत्रुविदारिणि रक्ष रक्ष माममुकं सर्वभयोपद्रवेभ्यः स्वाहा" माममुकं की जगह साध्य का नाम लेना चाहिये, जिस पर प्रयोग करना है। इससे उपद्रव तथा शत्रु का नाश होगा (यहां यह अस्पष्ट है कि शिवलिंग पकड़ कर जप करना है अथवा अपना लिंग पकड़ कर जप करना है)॥३॥

॥एकतालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

शिवपवित्रारोहण विधान वर्णन

हरिरुवाच

पवित्रारोहणं वक्ष्ये शिवस्याशिवनाशनम्।
आचार्य्यः साधकः कुर्य्यात्पुत्रकः समयो हर॥१॥
संवत्सरकृतां पूजां विघ्नेशो हरतेऽन्यथा। आषाढे श्रावणे माघे कुर्य्याद्भाद्रपदेऽपि वा॥२॥
सौवर्णरौप्यताम्रञ्च सूत्रं कार्पासिकं क्रमात्।
ज्ञेयं कृतादौ संगृह्य कन्यया कर्त्तितञ्च यत्॥३॥

श्रीहरि ने कहा—अब मैं शिव के पवित्रारोहण का वर्णन करता हूं। इससे अशिव (अमंगल) का नाश होता है। आचार्य तथा साधक एक समय यह कार्य करें। पूर्ण एक वर्ष पूजा करनी पड़ेगी अन्यथा विघ्नेश्वर देवता पूजाफल को छीन लेते हैं। आषाढ़, श्रावण, माघ अथवा भाद्रपद मास में पवित्रारोहण कार्य प्रशस्त है। इसमें कन्या द्वारा काला सूत्र लेना चाहिये। सत्ययुग में स्वर्ण सूत्र, त्रेता में चांदी का सूत्र, द्वापर में ताम्र का सूत्र तथा कलि में कपास का सूत्र लेना उचित है॥१-३॥

त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ततः कुर्य्यात्पवित्रकम्। ग्रन्थयो वामदेवेन सत्येन क्षालयेच्छिव॥४॥
अघोरेण तु संशोध्य बद्धस्तत्पुरुषाद्भवेत्। धूपयेदीशमन्त्रेण तन्तुदेवा इति स्मृताः॥५॥

ओंकारश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागः शिखिध्वजः।
रविर्विष्णुः शिवः प्रोक्तः क्रमात्तन्तुषु देवताः॥६॥
अष्टोत्तरशतं कुर्य्यात्पञ्चाशत्पञ्चविंशतिम्। रुद्रोऽहन्तमादि विज्ञेयं मानञ्च ग्रन्थयो दश॥७॥
चतुरङ्गुलान्तरालाः स्युर्ग्रन्थिनामानि च क्रमात्।
प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिता॥८॥
जया च विजया रुद्रा अजिता च सदाशिव।
मनोन्मनी सर्वमुखी द्व्यङ्गुलाङ्गुलतोऽथवा॥९॥

ऐसे सूत्र को तिहरा करके पुनः तिहरा करके बटे। इसका पवित्र बनाये। वामदेव मन्त्र से पवित्र की ग्रन्थि बनाकर सत्यमन्त्र से प्रक्षालन करे। अघोर मन्त्र द्वारा पवित्र शोधन, तत्पुरुष से बन्धन करके ईशान मन्त्र द्वारा पवित्र को धूपित करना होगा। इसके तन्तुदेव हैं—ओंकार, चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, अनन्त, कार्त्तिकेय, सूर्य, विष्णु, शिव। (तन्तुदेव अर्थात् सूत्रों के देवता)। इसमें १०८ अथवा ५० अथवा २५ ग्रन्थि देनी चाहिये। शिवपवित्र दस ग्रन्थि वाला हो। शिवपवित्र में चार-चार अंगुल की दूरी पर एक-एक ग्रन्थि देनी चाहिये। दस ग्रन्थियों के नाम हैं प्रकृति, पौरुषी, धीरा, अपराजिता, जया, विजया, रुद्रा, अजिता, सदाशिव, मनोन्मनी तथा सर्वसुखी। मतान्तर से दो-दो अंगुल पर ग्रन्थि बांधने को कहा जाता है॥४-९॥

रञ्जयेत् कुङ्कुमाद्यैस्तु कुर्य्याद् गन्धैः पवित्रकम्।
सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे तथेतरे॥१०॥
क्षीरादिभिश्च संस्नाप्य लिङ्गं गन्धादिभिर्यजेत्।
दद्याद् गन्धपवित्रन्तु आत्मने ब्रह्मणे हर॥११॥
पुष्पं गन्धयुतं दद्यान्मूलेनेशानगोचरे। पूर्वे च दण्डकाष्ठ तु उत्तरे चामलकीफलम्॥१२॥
मृत्तिकां पश्चिमे दद्याद्दक्षिणे भस्मभूतयः। नैर्ऋते ह्यगुरुं दद्याच्छिखामन्त्रेण मन्त्रवित्।
वायव्यां सर्षपं दद्यात्कवचेन वृषध्वज॥१३॥
गृहं संवेष्ट्य सूत्रेण दद्याद् गन्धपवित्रकम्।
होमं कृत्वाऽग्नये दत्त्वा दद्याद्भूतबलिं तथा॥१४॥
आमन्त्रितोऽसि देवेश गणैः सार्द्धं महेश्वर।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि ह्यत्र सन्निहितो भव॥१५॥

कुंकुम, चन्दन तथा सुगन्धित द्रव्यों से पवित्र को रंजित करे। शुक्लपक्षीय सप्तमी अथवा कृष्णपक्षीय त्रयोदशी तिथि पर दुग्ध से लिंग को स्नान कराये। गन्धादि से लिंग पूजा करके गन्धमय पवित्र ब्रह्मा को प्रदान करे। ईशान कोण में मूलमन्त्र द्वारा गन्धपुष्पयुक्त, पूर्वदिक् में दन्तकाष्ठ (दतुअन), उत्तर में आमलकी का फल, पश्चिम में मिट्टी, दक्षिण में भस्म, नैर्ऋत्कोण में अगुरु, वायुकोण में सरसों रखे

(छिड़के)। तब गृह को सूत्र से लपेट कर गन्धयुक्त पवित्र प्रदान करना चाहिये। तब होम सम्पन्न करके प्राणियों को बलि अर्पित करके कहे—हे देवदेव महेश्वर! आपको आपके गणों सहित आमन्त्रित करता हूं। मैं प्रातः आपकी पूजा करूंगा। आप यहां सन्निहित रहिये॥१०-१५॥

निमन्त्र्यानेन तिष्ठेत्तु कुर्वन्गीतादिकं निशि। मन्त्रितानि पवित्राणि स्थापयेद्देवपार्श्वतः॥१६॥
स्नात्वादित्यं चतुर्दश्यां प्रागुरुद्रञ्च प्रपूजयेत्। ललाटस्थं विश्वरूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूजयेत्॥१७॥

इस प्रकार से निमन्त्रण देकर गीत-वाद्य करते हुये उस रात्रि को व्यतीत करना चाहिये। अभिमन्त्रित पवित्र को देवता के पार्श्व में स्थापित कर देना होगा। चतुर्दशी को स्नान करके (यदि कृष्णपक्ष की त्रयोदशी में रात्रि जागरण किया हो तब, अन्यथा यदि शुक्लपक्षीय सप्तमी को रात्रि जागरण किया हो, तब प्रातः अष्टमी के दिन स्नान करके) सर्वाग्र सूर्य पूजा करने के अनन्तर तब रुद्रपूजा करनी चाहिये। रुद्रदेव की भावना विश्वरूप में ललाट में करके उनका पूजन आत्मा में करे॥१६-१७॥

अस्त्रेण प्रोक्षितान्येवं हृदयेनार्चितान्यथ। संहितामन्त्रितान्येव धूपितानि समर्पयेत्॥१८॥
शिवतत्त्वात्कमं चादौ विद्यातत्त्वात्मकं ततः।
आत्मतत्त्वात्मकं पश्चाद्देवकाख्यं ततोऽर्चयेत्।
ओं हौं शिवतत्त्वाय नमः। ओं हीं विद्यातत्त्वाय नमः। ओं हां आत्मतत्त्वाय नमः॥१९॥
ओं हां हीं हूं क्षौं सर्वतत्त्वाय नमः। ओं कालात्मना त्वया देव यद् दृष्टं मामके विधौ। कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं हुतं गुप्तञ्च यत्कृतम्। सर्वात्मनाऽऽत्मना शम्भो पवित्रेण त्वदिच्छया। ओं पूरय पूरय मखव्रतं तन्नियमेश्वराय सर्वतत्त्वात्मकाय सर्वकारणपालिताय ओं हां हीं हूं हैं हौं शिवाय नमः॥२०॥

इसके पश्चात् साधक फट् मन्त्र से प्रोक्षण करे। नमः मन्त्र से अर्चना करके "फट् नमः" मन्त्र द्वारा पवित्र को धूपित करने के अनन्तर समर्पित करे। पहले शिवतत्वार्चन करके तदनन्तर क्रमशः विद्यातत्व, आत्मतत्व पूजनोपरान्त सर्वान्त में सर्वदेवतत्वार्चन करना चाहिये। तत्वपूजा की विधि मन्त्र यह है—

ॐ हौं शिवतत्वाय नमः, ॐ हीं विद्यातत्वाय नमः, ॐ हां आत्मतत्वाय नमः, ॐ हां हीं हूं क्षौं सर्वतत्वाय नमः। अब यह मन्त्र पढ़े—

"ॐ कालात्मना त्वया देव यद् दृष्टं मामके विधौ। कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं हुतं गुप्तञ्च यत्कृतम्। सर्वात्मनाऽत्मना शम्भो पवित्रेण त्वदिच्छया। ॐ पूरय पूरय मखव्रतं तन्नियमेश्वराय, सर्वतत्वात्मकाय सर्वकारणपालिताय ॐ हां हीं हूं हैं हौं शिवाय नमः"॥१८-२०॥

पूर्वैरनेन यो दद्यात्पवित्राणां चतुष्टयम्। दत्त्वा वह्नेः पवित्रञ्च गुरवे दक्षिणां दिशेत्।
बलिं दत्त्वा द्विजान्भोज्य चण्डं प्राच्र्य विसर्जयेत्॥२१॥

॥इति गारुडे महापुराणे आचारखण्डे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

अब पवित्र निवेदन कर दे। इस प्रकार से चारों पवित्र अर्पित करे। तब गुरु को दक्षिणा प्रदान करे। ब्राह्मणभोजन कराकर चण्डेश्वर की अर्चना एवं उनको निर्माल्य अर्पण करके विसर्जन करना चाहिये॥२१॥

॥बयालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिचत्वारिंशोऽध्याय:

श्रीहरि के उद्देश्य से पवित्रारोपण विधि वर्णन

हरिरुवाच

पवित्रारोपणं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं हरेः। पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्माद्याः शरणं ययुः।
विष्णुश्च तेषां देवानां ध्वजं ग्रैवेयकं ददौ॥१॥
एतौ दृष्ट्वा विलङ्घन्ति दानवानब्रवीद्धरिः। विष्णूक्ते ह्यब्रवीन्नागो वासुकेरनुजस्तदा॥२॥
वृणीत च पवित्राख्यं वरञ्चेदं वृषध्वज। ग्रैवेयं हरिदत्तं तु मन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति।
इत्युक्ते तेन देवांस्तान्नाम्ना च तद्वरं ददौ॥३॥

श्रीहरि ने कहा—अब मैं भुक्ति-मुक्ति देने वाली श्रीहरि की पवित्रारोपण विधि को कहता हूं। पूर्वकाल की बात है, देवासुर युद्धकाल में ब्रह्मा प्रभृति देवता विष्णु की शरण में गये थे, जिनको विष्णु ने गले का आभूषण तथा ध्वज दिया था। तब जब दानवों ने उस आभरण एवं ध्वज को देवगण के पास देखा, तब वे उसे छीनने के लिये तत्पर हो गये। यह देख कर हरि ने देवताओं से कहा कि तुम लोग पवित्र नामक वर मांगो। विष्णु का वचन सुनकर वासुकि के अनुज ने कहा—"जो कण्ठाभूषण हरि ने दिया है, वह मेरे नाम से प्रसिद्ध हो जाये।" भगवान् ने कहा—"ऐसा ही हो" और वर दे दिया॥१-३॥

प्रावृट्काले तु ये मर्त्या नार्चिष्यन्ति पवित्रकैः।
तेषां सांवत्सरी पूजा विफला च भविष्यति।
तस्मात् सर्वेषु देवेषु पवित्रारोहणं क्रमात्॥४॥
प्रतिपत्पौर्णमास्यान्ता यस्य या तिथिरुच्यते।
द्वादश्यां विष्णवे कार्यं शुक्ले कृष्णेऽथवा हर॥५॥

जो मनुष्य वर्षा काल में पवित्रा की पूजा नहीं करते, उनका वर्षा पर्यन्त किया गया पूजनादि कार्य नष्ट तथा फलहीन हो जाता है। तभी क्रमशः सभी देवों के लिये पवित्रारोपण करना आवश्यक कार्य है। प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक जिस-जिस तिथि पर जिस-जिस देवता को पवित्रार्पण का विधान है, उस

तिथि पर उस-उस देवता का पवित्रारोपण अवश्यमेव करे। हे रुद्रदेव! विष्णु का पवित्रारोपण शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष की द्वादशी तिथि पर करना विहित माना गया है॥४-५॥

व्यतीपातेऽयने चैव चन्द्रसूर्यग्रहे शिव। विष्णवे वृद्धिकार्ये च गुरोरागमने तथा।
नित्यं पवित्रमुद्दिष्टं प्रावृट्काले त्ववश्यकम्॥६॥
कौषेयं पट्टसूत्रं वा कार्पासं क्षौममेव वा। कुशसूत्रं द्विजानां स्याद्राज्ञां कौषेयपट्टकम्॥७॥
वैश्यानाञ्चौर्णकं क्षौमं शूद्राणां नववल्कजम्। कार्पासं पद्मजञ्चैव सर्वेषां शस्तमीश्वर॥८॥

व्यतीपात, उत्तरायण अथवा दक्षिणायन कालीन संक्रान्ति के समय चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण काल में जो व्यक्ति विष्णु का पवित्रारोहण कार्य सम्पन्न करता है, वह अत्यधिक पुण्य प्राप्त कर लेता है। विशेष करके वर्षा ऋतु में, मांगलिक कार्य, विवाह कार्य के समय, गुरु के आगमन पर पवित्रारोहण कार्य जो सम्पन्न करते हैं, उसे फल अधिक मिलता है। ब्राह्मणगण हेतु जो पवित्र बने, वह कौषेय सूत्र, पट्टसूत्र, कपास सूत्र, क्षौमसूत्र अथवा कुशसूत्र का हो। क्षत्रिय हेतु पवित्र कौषेय सूत्र का, पट्टसूत्र का ही बना हो। वैश्य हेतु पवित्र नव वल्कल सूत्र का बनाना अधिक प्रशंसित है। सभी वर्ण वाले (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) कपास सूत्र अथवा पद्मसूत्र का पवित्र बनायें॥६-८॥

ब्राह्मण्या कर्त्तितं सूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम्।
ओंकारोऽथ शिवः सोमो ह्यग्निर्ब्रह्मा फणी रविः॥९॥
विघ्नेशो विष्णुरित्येते स्थितास्तन्तुषु देवताः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिसूत्रे देवताः स्मृताः॥१०॥
सौवर्णे राजते तन्त्रे वैष्णवे मृण्मये न्यसेत्। अङ्गुष्ठेन चतुःषष्टिः श्रेष्ठं मध्यं तदर्द्धतः॥११॥
तदर्द्धां तु कनिष्ठा स्यात् सूत्रमष्टोत्तरं शतम्।
उत्तमं मध्यमञ्चैव कन्यसं पूर्ववत् क्रमात्॥१२॥
उत्तमोऽङ्गुष्ठमानेन मध्यमो मध्यमेन तु। कन्यसे च कनिष्ठेन अङ्गुल्या ग्रन्थयः स्मृताः।
विमाने स्थण्डिले चैव एतत्सामान्यलक्षणम्॥१३॥

कुमारी ब्राह्मणी द्वारा बना सूत तिगुना करे, पुनः उसे तिगुना करे। तब पवित्र बनाये। इसके तन्तु स्थित देवगण का नाम है ओंकार, शिव, चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, अनन्त, सूर्य, गणेश तथा विष्णु। ये पवित्र के तन्तुओं के देवता हैं। (त्रिगुणित सूत्र) त्रिसूत्र के देवता हैं ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र। स्वर्ण का बना, चांदी का बना, ताम्र का बना, बांस का बना अथवा मिट्टी का बना पात्र लेकर उसमें पवित्र को स्थापित करना चाहिये। अंगूठे से उत्तम पवित्र में ६४, मध्यम पवित्र में ३२ तथा कनिष्ठ पवित्र में १६ ग्रन्थि देनी चाहिये। अन्य मत यह है कि उत्तम पवित्र में १०८, मध्यम पवित्र में ५७ तथा कनिष्ठ पवित्र में २७ ग्रन्थि बनाये। उत्तम पवित्र में अंगूठे के प्रमाण से, मध्यम पवित्र मध्यमा उंगली के प्रमाण से तथा कनिष्ठ पवित्र में कनिष्ठा उंगली के प्रमाण से ग्रन्थि देनी चाहिये। यही इसका सामान्य लक्षण वर्णित है॥९-१३॥

शिरोद्गतं पवित्रन्तु प्रतिमायाञ्च कारयेत्। हन्नाभिरूरुमानेन जानुभ्यामवलम्बिनी॥१४॥

अष्टोत्तरसहस्रेण चत्वारो ग्रन्थयः स्मृताः।
षट्त्रिंशच्च चतुर्विंश द्वादश ग्रन्थयोऽथवा॥१५॥
उत्तमादिषु विज्ञेयाः पर्वभिर्वा पवित्रकम्। चर्चितं कुङ्कुमेनैव हरिद्राचन्दनेन वा॥१६॥
सोपवासः पवित्रन्तु पात्रस्थमधिवासयेत्। अश्वस्थपत्रपुटके अष्टदिक्षु निवेशितम्॥१७॥
दण्डकाष्ठं कुशाग्रञ्च पूर्वे सङ्कर्षणेन तु। रोचनाकुङ्कुमेनैव प्रद्युम्नेन तु दक्षिणे॥१८॥
युद्धार्थी फलसिद्ध्यर्थमनिरुद्धेन पश्चिमे। चन्दनं नीलयुक्तञ्च तिलभस्माक्षतं तथा।
आग्नेयादिषु कोणेषु श्रियादीनां क्रमान्न्यसेत्॥१९॥

प्रतिमा हेतु मस्तक के बराबर पवित्र करे। अन्य स्थल में हृदय, नाभि तथा जानु परिमित माप का पवित्र बनाये। १००८ मन्त्र जप करके पवित्र में ४ ग्रन्थि बांधे अथवा ३६, २४ या १२ ग्रन्थि देकर पवित्र बांधे। उत्तम प्रभृति पवित्र में विधान के अनुसार प्रति पर्व पर चार ग्रन्थि बन्धन करे तथा उसे कुंकुम, हल्दी तथा चन्दन से लिप्त करे। साधक उपवासी रहकर पहले कहे गये स्वर्ण, रजत, ताम्र, बांस अथवा मिट्टी के पात्र में पवित्र स्थापित करे। तब उसका अधिवास कार्य गन्धादि से करना ही होगा। तत्पश्चात् अश्वत्थ के पत्ते से बने सम्पुट में दन्तकाष्ठ तथा कुशाग्र को स्थापित करना चाहिये। इसे आठों दिशाओं में आठ (प्रत्येक दिशा में एक-एक) रखना चाहिये। पूर्व दिशा में संकर्षण मन्त्र द्वारा, दक्षिण में गोरोचन तथा कुंकुम लगाकर प्रद्युम्न मन्त्र द्वारा, पश्चिम में युद्ध में विजय हेतु फल तथा सरसों के साथ अनिरुद्ध मन्त्र द्वारा उपरोक्त सम्पुट स्थापित करे। आग्नेयादि कोणों में चन्दन, नील, तिल, भस्म, तण्डुल के साथ क्रमशः लक्ष्मी आदि के मन्त्रों से इन सम्पुटों को स्थापित करे॥१४-१९॥

पवित्रं वासुदेवेन अभिमन्त्र्य सकृत् सकृत्।
दृष्ट्वा पुनः प्रपूज्याथ वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः॥२०॥
देवस्य पुरतः स्थाप्य प्रतिमामण्डलस्य वा।
पश्चिमे दक्षिणे चैव उत्तरे पूर्ववत् क्रमात्॥२१॥
ब्राह्मणादींश्च संस्थाप्य कलशञ्चाथ पूजयेत्।
अस्त्रेण मण्डलं कृत्वा नैवेद्यञ्च समर्पयेत्॥२२॥

इतना करने के अनन्तर भगवान् वासुदेव के मन्त्र से पवित्र को अभिमन्त्रित करे। पुनः उसका दर्शन, पूजन करे तथा वस्त्र द्वारा ढंक कर उसे देवता की प्रतिमा की पूर्व दिशा में रखे। अब पहले की ही तरह क्रमशः पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशा में भी स्थापित करना चाहिये। अब कलश स्थापना करके ब्राह्मणों की पूजा करे। अस्त्र (फट्) मन्त्र से मण्डप बनाकर नैवेद्यार्पण करे॥२०-२२॥

अधिवास्य पवित्रन्तु त्रिसूत्रेण नवेन वा।
वेदिकां वेष्टयित्वा तु आत्मानं कलसं युतम्॥२३॥
अग्निकुण्डं विमानञ्च मण्डपं गृहमेव च। सूत्रमेकन्तु संगृह्य दद्याद्देवस्य मूर्धनि॥२४॥

पूर्व में कहे गये विधान से ही पवित्र का अधिवास करे। अब नये तीन सूत्र से वेदी को लपेटे। साधक अब अपने देह, कलश, अग्निकुण्ड, विमान, मण्डप, गृह को सूत्र से आवेष्टित करके एक गुच्छा सूत्र देवता के शिर पर अर्पित करे॥२३-२४॥

दत्त्वा पठेदिमं मन्त्रं पूजयित्वा महेश्वरम्। आवाहितोऽसि देवेश पूजार्थं परमेश्वर।
तत्प्रभातेऽर्चयिष्यामि सामग्र्याः सन्निधीभव॥२५॥
एकरात्रं त्रिरात्रं वा अधिवास्य पवित्रकम्।
रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः संपूज्य केशवम्॥२६॥
आरोपयेत्क्रमेणैव ज्येष्ठमध्यकनीयसम्। धूपयित्वा पवित्रन्तु मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत्॥२७॥
प्रजप्तग्रन्थिकञ्चैव पूजयेत्कुसुमादिभिः। गायत्र्या चार्चितं तेन देवं संपूज्य दापयेत्॥२८॥

यह सूत्र प्रदान करके इस मन्त्र से महेश्वर की पूजा करनी चाहिये—"हे परमेश्वर! मैंने पूजार्थ आपका आवाहन किया है। मैं कल प्रातःकाल आपकी पूजा करूंगा। आप पूजा के उपकरणों के पास आविर्भूत हो जायें।" इस प्रकार से पवित्र का एक बार अथवा तीन बार अधिवास करके रात्रि में जागरण वहीं करना चाहिये। इस पवित्र को धूप दिखला कर रात्रि जागरण करे। प्रातःकाल केशव पूजनोपरान्त ज्येष्ठा, मध्यमा तथा कनिष्ठक्रमेण पवित्रारोहण करना होगा। इस पवित्र को धूपित करके पहले कहे मन्त्र से अभिमन्त्रित करना होगा। तदनन्तर पवित्र ग्रन्थियों पर जप सम्पन्न करके पुष्प आदि उपचार से उनकी पूजा करे। इसके पश्चात् यह विधान है कि गायत्री मन्त्र द्वारा पवित्र की पूजा करने के पश्चात् इस पूजित पवित्र से देवता की पूजा करके उनको यह पवित्र अर्पण करने के पश्चात् विष्णुदेव के निकट यह प्रार्थना करनी चाहिये॥२५-२८॥

मम पुत्रकलत्राद्यैः सूत्रपृच्छन्तु धारयेत्। विशुद्धग्रन्थिकं रम्यं महापातकनाशनम्।
सर्वपापक्षयं देव तवाग्रे धारयाम्यहम्॥२९॥

प्रार्थना—मैं पुत्र-स्त्री आदि के साथ पवित्र धारण कर रहा हूं। हे देव! मैं विशुद्ध ग्रन्थियों वाला, रमणीय, महापातकहारी तथा सर्वपापक्षय करने में सक्षम यह पवित्र आपके सामने धारण कर रहा हूं॥२९॥

एवं धूपादिनाभ्यर्च्य मद्यमादीन् समर्पयेत्। पवित्रं वैष्णवं तेजः सर्वपातकनाशनम्।
धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकण्ठे धारयाम्यहम्॥३०॥
वनमालां समभ्यर्च्य स्वेन मन्त्रेण दापयेत्। नैवेद्यं विविधं दत्त्वा कुसुमादेर्बलिं हरेत्॥३१॥
अग्निं सन्तर्प्य तत्रापि द्वादशाङ्गुलमानतः। अष्टोत्तरशतेनैव दद्यादेकपवित्रकम्॥३२॥

पवित्र धारण करके धूपादि से अर्चना करके मध्यम आदि पवित्र विष्णु को अर्पित करे। अब यह मन्त्र पढ़े "सर्व पाप का नाश करने में सक्षम विष्णु का तेज स्वरूप पवित्र मैं कण्ठ में धर्म-अर्थ-काम सिद्धि हेतु धारण कर रहा हूं।" यह पढ़ कर भगवान् विष्णु के समीप स्तुति पाठ करे। इसके पश्चात् प्रभु की वनमाला की अर्चना करके सम्बन्धित मन्त्र से निवेदन करे और नाना नैवेद्य का उपहार भी प्रदान करने के पश्चात् पुष्पादि प्रदान करे। इसके बाद में अग्नि का सन्तर्पण करने के पश्चात् अग्नि में १२ अंगुल का पवित्र १०८ बार अभिमन्त्रित करने के अनन्तर अर्पित करना चाहिये॥३०-३२॥

आदौ दत्त्वार्घ्यमादित्ये तत्र चैकं पवित्रकम्।
विष्वक्सेनं ततः प्रार्च्य गुरुमर्घ्यादिभिर्हर।
देवस्याग्रे पठेन्मन्त्रं कृताञ्जलिपुटस्थितः॥३३॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजनादि कृतं मया। तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर॥३४॥

सर्वप्रथम सूर्यार्घ्य प्रदान करके उनको एक पवित्र अर्पित करे। इसके अनन्तर विष्वक्सेन की पूजा करके अर्घ्य से गुरु की पूजा करे। तब देवता के आगे अंजलि बांध कर (हाथ जोड़ कर) यह मन्त्र पाठ करे—"जाने-अनजाने में यदि मेरे द्वारा कृत पूजा में अपूर्णता रह गई हो तो हे सुरेश्वर! आप उसे पूर्ण कर दीजिये"॥३३-३४॥

मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः। इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वजः॥३५॥

वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि।
तद्वत्पवित्रं तन्तूनां मालां त्वं हृदये धर॥३६॥
एवं प्रार्थ्य द्विजान्भोज्य दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम्।
विसर्जयेत्तु तेनैव सायाह्ने त्वपरेऽहनि॥३७॥
सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मया।
व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः॥३८॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥
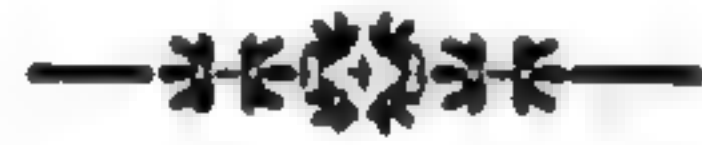
"हे गरुड़वाहन! मणि तथा विद्रुममाला से तथा मन्दार पुष्पों की माला से की गई आपकी सांवत्सरी पूजा सफला हो। हे देव! जैसे आप अपने वक्ष पर कौस्तुभ मणि तथा वनमाला सदा पहने रहते हैं, वैसे ही यह सूत्र से निर्मित पवित्र भी आप हृदय पर (वक्ष पर) धारण किये रहिये।" प्रार्थना करने के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा देनी चाहिये। अगले दिन सन्ध्या समय विसर्जन करे। मन्त्र है—"हे पवित्र! मैंने यथाविधि यह सांवत्सरी पूजा पूर्ण किया तथा आपका विसर्जन कार्य कर रहा हूं। आप विष्णुलोक जायें।" यह मन्त्र पढ़कर पूजा सम्पन्न करे॥३५-३८॥

॥तिरालिसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
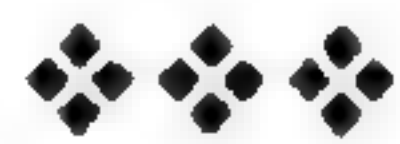
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

मूर्त्त तथा अमूर्त्त ध्यान का वर्णन

हरिरुवाच

पूजयित्वा पवित्राद्यैर्ब्रह्म ध्यात्वा हरिर्भवेत्। ब्रह्मध्यानं प्रवक्ष्यामि मायायन्त्रप्रमर्दकम्॥१॥

यच्छेद्वाङ्मनसा प्राज्ञस्तं यजेज्ज्ञानमात्मनि।

ज्ञानं महति संयच्छेद् य इच्छेज्ज्ञानमात्मनि॥२॥

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम्। वर्जितं भूततन्मात्रैर्गुणजन्माशनादिभिः॥३॥

स्वप्रकाशं निराकारं सदानन्दमनादि यत्। नित्यं शुद्धं बुद्धमृद्धं सत्यमानन्दमद्वयम्॥४॥

श्रीहरि ने कहा—जो साधक इस प्रकार से पवित्र से पूजा करते हैं तथा ब्रह्मध्यान करते हैं, वे तो साक्षात् हरि हो जाते हैं। मायारूपी यन्त्र का मर्दन करने वाला ब्रह्मध्यान मैं कह रहा हूं। इस ध्यान के प्रभाव से, मन-वाक्य से ब्रह्म की अर्चना करने से वे उस साधक को दिव्य ज्ञान देते हैं। जो ईश्वर का ज्ञान पाने की कामना करता है, उसे तत्वज्ञान प्रदान करते हैं। ब्रह्म का शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण, अहंकार कुछ भी नहीं है। वे पंचमहाभूत, तन्मात्र, तीनों गुण, जन्म, नाश आदि से रहित हैं। वे स्वप्रकाश, निराकार, सदा आनन्दमय, अनादि हैं। वे नित्य, शुद्ध, बुद्धि से परे, सत्य, आनन्द तथा अद्वय हैं॥१-४॥

तुरीयमक्षरं ब्रह्म अहमस्मि परं पदम्। अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरपि गीयते॥५॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। इन्द्रियाण हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचराः॥६॥

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः। यस्तु विज्ञानवाह्येन युक्तेन मनसा सदा।

स तु तत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते॥७॥

"मैं तुरीय अक्षर परमपद ब्रह्म हूं। मैं ब्रह्म में स्थित हूं।" यही ध्यान स्थिति ही समाधि है। आत्मा रथी है। शरीर रथ है। इन्द्रियां अश्व हैं। इन्द्रियों तथा मन युक्त पुरुष को ही मनीषीगण ने भोक्ता कहा है। इसी प्रकार की रथस्थिति से विषयों का ज्ञान प्राणी करता है। जो मानव विज्ञान युक्त तथा मन से संयुक्त होकर सतत् आत्मतत्व में निरत रहता है अर्थात् जिसका मन सदा आत्मतत्व में लगा रहता है, उसे अनायास ब्रह्मपद लाभ होता है। वह पुनः संसार में जन्म नहीं लेता॥५-७॥

विज्ञानसारथिर्यस्य मनःप्रग्रहवान्नरः। स्वर्धुन्याः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥८॥

अहिंसादि यमः प्रोक्तः शौचादि नियमः स्मृतः।

पद्माद्युक्तं आसनञ्च प्राणायामो मरुज्जयः॥९॥

प्रत्याहारो जयः प्रोक्तो ध्यानमीश्वरचिन्तनम्।

मनोर्धृतिर्धारणा स्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः॥१०॥

जिसने विज्ञान को सारथी तथा मन को लगाम बनाया है तथा इस प्रकार वह व्यक्ति स्वर्ग की नदी के पार जाकर विष्णु के परमपद को पा लेता है। अहिंसा आदि से युक्त गुणयम कहे गये हैं। शौचादि सभी नियम हैं, पद्मासन आदि आसन हैं। वायु निरोध रूप प्राणायाम है। वायु पर जय प्रत्याहार है। ईश्वर चिन्तन ध्यान है। मन के वेग को रोकना धृति है। ब्रह्म में मनःस्थापन ही समाधि है।।८-१०।।

अमूर्त्तौ चेदृणी स्यात्तु ततो मूर्त्तिं विचिन्तयेत्।
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये शङ्खचक्रगदाधरः।।११।।
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो वनमालाश्रिया युतः।
नित्यः शुद्धो बुद्धियुक्तः सत्यानन्दाह्वयः परः।।१२।।
आत्माऽहं परमं ब्रह्म परमज्योतिरेव तु। चतुर्विंशतिमूर्त्तिः स शालग्रामशिलास्थितः।।१३।।
द्वारकादि शिलासंस्थो ध्येयः पूज्योऽपि वा हरिः।
मनसोऽभीप्सितं प्राप्य देवो वैमानिको भवेत्।
निष्कामो मुक्तिमाप्नोति मूर्त्तिं ध्यायन्स्तुवञ् जपन्।।१४।।

।।इति गारुडे महापुराणे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

अमूर्त्त में मन ले जा सकना अत्यन्त दुष्कर कृत्य है। इसलिये ब्रह्म की मूर्त्ति कल्पना करके उनका चिन्तन करते हैं। हृदयकमल की कर्णिका में शंख-चक्र-गदाधारी श्रीवत्स कौस्तुभ युक्त वनमाला एवं श्री सहित, नित्य शुद्ध-बुद्ध-सत्य-आनन्दमय आत्मा परमज्योतिर्मय चौबीस मूर्त्ति वाली शालग्राम शिला में स्थित, द्वारकादि शिला में संस्थित पूज्य हरि का ध्यान तथा पूजन करे। वह साधक मनोवांछित फललाभ करके क्रमशः विमानचारी देवता तुल्य हो जाता है। निष्काम साधक मूर्त्ति का ध्यान, स्तव करके मुक्तिलाभ करता है।।११-१४।।

।।चौवालिसवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्राम लक्षण वर्णन

हरिरुवाच

प्रसङ्गात्कथयिष्यामि शालग्रामस्य लक्षणम्। शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम्।।१।।
शङ्खचक्रगदापद्मी केशवाख्यो गदाधरः। साब्जकौमोदकीचक्रशङ्खी नारायणो विभुः।।२।।

सचक्रशङ्खाब्जगदो माधवः श्रीगदाधरः। गदाब्जशङ्खचक्री वा गोविन्दोऽर्च्यो गदाधरः॥३॥
पद्मशङ्खारिगदिने विष्णुरूपाय ते नमः। सशङ्खाब्जगदाचक्रमधुसूदनमूर्त्तये॥४॥
नमो गदारिशङ्खाब्जमूर्त्तित्रैविक्रमाय च। सारिकौमोदकीपद्मशङ्खवामनमूर्त्तये॥५॥
चक्राब्जशङ्खगदिने नमः श्रीधरमूर्त्तये। हृषीकेशायाब्जगदाशङ्खिने चक्रिणे नमः॥६॥
साब्जचक्रगदाशङ्खपद्मनाभस्वरूपिणे। दामोदरशङ्खचक्रगदापद्मिन्नमो नमः॥७॥
सारिशङ्खगदाब्जाय वासुदेवाय वै नमः। शङ्खाब्जचक्रगदिने नमः सङ्कर्षणाय च॥८॥
सुशङ्खसुगदाब्जारिधृते प्रद्युम्नमूर्त्तये। नमोऽनिरुद्धाय गदाशङ्खाब्जारिविधारिणे॥९॥
साब्जशङ्खगदाचक्रपुरुषोत्तममूर्त्तये। नमोऽधोऽक्षजरूपाय गदाशङ्खारिपद्मिने॥१०॥

श्रीहरि ने कहा—मैं प्रसंगतः शालग्राम का लक्षण वर्णन करता हूं। शालग्राम शिला के स्पर्श मात्र से करोड़ों जन्म के पापों का नाश हो जाता है। शंख-चक्र-गदा-पद्म का चिह्न जिस शालग्राम शिला में हो, वह **केशव** है। जिसमें पद्म, गदा, चक्र तथा शंखाकार चिह्न हो, वह **नारायण** है। चक्र-शंख-पद्म-गदा चिह्नांकित शिला **माधव** है। गदा, पद्म, शंख तथा चक्र चिह्न वाली शालग्राम शिला **गोविन्द** है। जिसमें पद्म, शंख, चक्र, गदा चिह्न हो, वह शालग्राम शिला **विष्णु** है। शंख, पद्म, गदा तथा चक्रचिह्नयुता शालग्राम शिला **मधुसूदन** है। गदा, चक्र, शंख, पद्मांकित शिला **त्रिविक्रम** है। चक्र, गदा, पद्म, शंख चिह्न वाली शालग्राम शिला **वामन** कही जाती है। चक्र, पद्म, शंख, गदांकित शिला **श्रीधर** तथा पद्म, गदा, शंख, चक्र चिह्न वाली शालग्राम शिला **हृषीकेश** है।

पद्म, चक्र, गदा, शंख चिह्नांकित शिला **पद्मनाभ** है। शंख, चक्र, गदा, पद्मांकित शालग्राम शिला **दामोदर** है। चक्र, शंख, गदा, पद्मांकित शालग्राम शिला **वासुदेव** है। शंख, पद्म, चक्र, गदांकित शालग्राम शिला **संकर्षण** है। शंख, गदा, पद्म तथा चक्रांकित शिला **प्रद्युम्न** है। गदा, शंख, पद्म तथा चक्रांकित शिला **अनिरुद्ध** है। पद्म, शंख, गदा, चक्रांकित शालग्राम शिला **पुरुषोत्तम** है। गदा, शंख, चक्र, पद्मांकित शिला **अधोक्षज** है॥१-१०॥

नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाशङ्खारिधारिणे। पद्मारिशङ्खगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्तये॥११॥
सशङ्खचक्राब्जगदं जनार्दनमिहानये। उपेन्द्रं सगदं सारिं पद्मशङ्खिन्नमो नमः॥१२॥
सुचक्राब्जगदाशङ्खयुक्ताय हरिमूर्तये। सगदाब्जारिशङ्खाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये॥१३॥

पद्म, गदा, शंख, चक्रांकित, शालग्राम शिला **नृसिंहमूर्त्ति** कही गयी है। पद्म, चक्र, शंख, गदा चिह्नांकित शिला **अच्युतमूर्त्ति** कही गयी है। शंख, चक्र, पद्म, गदा चिह्नांकित शिला **जनार्दन** है। गदा, चक्र, पद्म, शंख चिह्न वाली शिला **उपेन्द्र** कही जाती है। चक्र, पद्म, गदा, शंख चिह्न वाली शिला **हरि** है। गदा, कमल, चक्र, शंखांकित शिला **श्रीकृष्णमूर्त्ति** है॥११-१३॥

शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृक्। शुक्लाभो वासुदेवाख्यः सोऽव्याद्वः श्रीगदाधरः॥१४॥
लग्नद्विचक्रो रक्ताभः पूर्वभागन्तु पद्मभृत्।
सङ्कर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः॥१५॥

सदीर्घः सशिरश्छिद्रो योऽनिरुद्धस्तु वर्तुलः।
नीलो द्वारि त्रिरेखश्च अथ नारायणोऽसितः॥१६॥
मध्ये गदाकृतीरेखा नाभिचक्रो महोन्नतः।
पृथुवक्षो नृसिंहो वः कपिलोऽव्यात्त्रिबिन्दुकः॥१७॥
अथवा पञ्चबिन्दुस्तत्पूजनं ब्रह्मचारिणः। वराहशक्तिलिङ्गोऽव्याद्विषमद्वयचक्रकः॥१८॥

जहां शुक्लाभ शालग्राम शिला के द्वार पर दो चक्रचिह्न हैं, वह शिला **श्रीगदाधर** है। **संकर्षण शिला** पर भी दो चक्र चिह्न रहते हैं। यह रुक्मवर्ण रहती है तथा पूर्वभाग में पद्मचिह्न बना रहता है। **प्रद्युम्न शिला** पीतवर्ण रहती है। उसमें सूक्ष्म चक्र बना रहता है। **अनिरुद्ध शिला** नीलाभ, दीर्घ होकर भी वर्त्तुलाकृति रहती है। इसके शिर पर एक छिद्र रहता है तथा चक्रद्वार पर तीन रेखा बनी रहती है। **नारायण शिला** कृष्णवर्ण है तथा उसकी नाभि उठी रहती है। उसके मध्य में गदा की तरह रेखा चिह्न बना रहता है। **नृसिंह** शालग्राम शिला का वक्ष विस्तारमय रहता है। वह कपिलवर्ण तथा तीन बिन्दु वाली रहती है। **वराहशक्तिलिंग** नाम वाली शालग्राम शिला पंचविन्दु वाली होती है। उसके विपरीत वाले भाग में दो चक्र चिह्न रहते हैं। यह ब्रह्मचारीगण द्वारा पूजनीय शिला होती है॥१४-१८॥

नीलस्त्रिरेखः स्थूलोऽथ कूर्ममूर्त्तिः स बिन्दुमान्।
कृष्णः स वर्त्तुलावर्त्तः पातु वो नतपृष्ठकः॥१९॥
श्रीधरः पञ्चरेखोऽव्याद्वनमाली गदाङ्कितः।
वामनो वर्त्तुलो ह्रस्वो वामचक्रः सुरेश्वरः॥२०॥
नानावर्णोऽनेकमूर्त्तिर्नागभोगी त्वनन्तकः।
स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्रः सुनीलकः॥२१॥
सङ्कीर्णद्वारको वाव्यादथ ब्रह्मा सुलोहितः। सदीर्घरेखः शुषिर एकचक्राम्बुजः पृथुः॥२२॥

कृष्ण नाम्नी शालिग्राम शिला नीली, तीन रेखा वाली, स्थूल, वनमालांकित,गदाचिह्नांकित होती है। **वामन** शालग्राम शिला वर्त्तुल, खर्व तथा बायीं ओर चक्र चिह्न वाली होती है। यह सबसे श्रेष्ठ शिला कही गयी है। **अनन्त** नामक शिला नाना वर्ण तथा नाना मूर्त्ति वाली होती है। **दामोदर** शिला स्थूल तथा नीली जैसी होती है। इसके मध्य में चक्र चिह्न रहेगा। **ब्रह्मा** शालग्राम शिला चक्राकृति तथा संकीर्ण है। यह लाल वर्ण, दीर्घ रेखांकित, छिद्र वाली, एक चक्र चिह्नांकित तथा कमल चिह्न वाली तथा विस्तृत होती है॥१९-२२॥

पृथुच्छिद्रः स्थूलचक्रः कृष्णो बिन्दुश्च बिन्दुमत्।
हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः॥२३॥
वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजोऽसितः।
मत्स्यो दीर्घोऽम्बुजाकारो द्वाररेखश्च पातु वः॥२४॥

रामचक्रो दक्षरेखः श्यामो वोऽव्यात्त्रिविक्रमः।
शालग्रामे द्वारकायां स्थिताय गदिने नमः॥२५॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम्। स्वर्णरेखासमायुक्तं गोष्पदेन विराजितम्।
कदम्बकुसुमाकारं लक्ष्मीनारायणोऽवतु॥२६॥

हयग्रीव शालग्राम शिला बड़े छिद्रवाली, स्थूल चक्र युक्त, कृष्णवर्ण विन्दुओं वाली अंकुशाकृति, पंचरेखा वाली तथा कौस्तुभचिह्न युक्त होती है। **वैकुण्ठनाथ शिला** मणि तथा रत्नों की आभा वाली, एक चक्र चिह्न वाली, पद्मचिह्न समन्वित, नीलवर्ण तथा मछली के आकार की रेखायुक्त होती है। चक्रद्वार पर उसमें पद्माकार रेखा बनी रहती है। **राम शालग्राम शिला** के दाहिनी ओर एक रेखा रहती है। **त्रिविक्रम शालग्राम शिला** श्यामवर्ण होती है। **द्वारका शिला** में गदाकार चिह्न होता है। जिस शालग्राम शिला के एक द्वार में चार चक्र चिह्न हों, वनमाला, स्वर्णरिखा, गाय के खुर के समान चिह्न हों, जो कदम्ब पुष्पवत् वर्त्तुल हो, वह **लक्ष्मीनारायण शिला** होती है॥२३-२६॥

एकेन लक्षितो योऽव्याद् गदाधारी सुदर्शनः।
लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्यां त्रिभिर्मूर्त्तेस्त्रिविक्रमः॥२७॥
चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्च पञ्चभिः। प्रद्युम्नः षड्भिरेव स्यात्सङ्कर्षण इतस्ततः॥२८॥
पुरुषोत्तमोऽष्टाभिः स्यान्नवव्यूहो नवाङ्कितः। दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतादथ॥२९॥
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः।
विष्णोर्मूर्त्तिमयं स्तोत्रं यः पठेत्स दिवं व्रजेत्॥३०॥

पहले कही गयी शालग्राम शिलाओं के विशेष लक्षणों को कहता हूं। जिस शालग्राम शिला में मात्र एक गदा का चिह्न हो, वह **सुदर्शन शालग्राम** है। जिसमें दो रेखा हो वह **लक्ष्मीनारायण**, त्रिरेखान्वित का **त्रिविक्रम**, चार रेखा वाले को **चतुर्व्यूह**, पंचरेखान्वित शिला को **वासुदेव**, छः रेखा वाले को **प्रद्युम्न**, सप्तरेखान्वित शालग्राम को **संकर्षण**, अष्ट रेखा वाले को **पुरुषोत्तम**, नौ रेखान्वित शिला को **नवव्यूह**, दशरेखान्वित शिला को **दशावतार**, एकादश रेखान्वित शिला को **अनिरुद्ध** तथा बारह रेखा दिखलाई दे, तव उसे **द्वादशात्मा** शालग्राम शिला कहा गया है। जिसमें १२ से अधिक रेखायें हों, वह **अनन्त** शालग्राम है। जो मानव इस मूर्त्तिमय पाठ को पढ़ता है, उसे स्वर्गपुर की प्राप्ति अवश्य होगी॥२७-३०॥

ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुयुगान्वितः। महेश्वरः पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वजः॥३१॥
यथायुधस्तथा गौरी चण्डिका च सरस्वती। महालक्ष्मीर्मातरञ्च पद्महस्तो दिवाकरः॥३२॥
गजास्यश्च गणः स्कन्दः षण्मुखोऽनेकधागुणाः।
एतेऽर्चिताः स्थापिताश्च प्रासादे वास्तुपूजिते।
धर्मार्थकाममोक्षाद्याः प्राप्यन्ते पुरुषेण च॥३३॥

॥इति गारुडे महापुराणे वासुदेवमूर्त्तयो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

चतुर्मुख, दण्ड-कमण्डलधारी ब्रह्मा, पंचमुख दशबाहु, वृषवाहन महेश्वर तथा अपने-अपने वाहन तथा अस्त्रों सहित गौरी, चण्डिका, सरस्वती तथा महालक्ष्मी, मातृगण, पद्म हाथ में लिये हुये दिवाकर, गजानन, गणपति तथा षड़ानन स्कन्ददेव की अर्चना वास्तुपूजित गृह में (मन्दिर में) करे। जो मानव यह पूजा करता है, वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षलाभ करता है॥३१-३२॥

॥पैंतालिसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
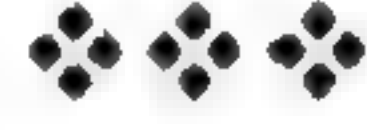
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

वास्तु पूजा विधि वर्णन

हरिरुवाच

वास्तुं संक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्। ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे यजेत्॥१॥
ईशाने च शिरः पादौ नैर्ऋतेऽग्न्यनिले करौ। आवासवासवेश्मादौ पुरे ग्रामे वणिक्पथे॥२॥
प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च। द्वाविंशत्तु सुरान्बाह्ये तदन्तश्च त्रयोदश॥३॥

श्रीहरि ने कहा—अब संक्षिप्त रूप से वास्तु पूजा कहता हूं। जो गृह का आरंभण करने के पूर्व वास्तुयाग करता है, उसके विघ्न का नाश हो जाता है। ८१ पग के वास्तुमण्डल के ईशान कोण से पूजा प्रारम्भ करे। इस मण्डल के ईशान कोण में वास्तुदेव का शिर रहेगा। नैर्ऋत्कोण में दोनों पैर तथा वायुकोण एवं अग्निकोण में वास्तुदेव की बाहु रहेगी। ऐसा वास्तुपुरुष कल्पित करके वास्तु पूजा करे। आवास गृह, निवास गृह, पुर, ग्राम, व्यवसाय का स्थान, प्रासाद, उपवन, दुर्ग, देवालय तथा मठ का प्रारम्भ करने के पहले यह कार्य करे। पहले मण्डल के बाहरी भाग में ३२ देवताओं का आवाहन-पूजन करने के अनन्तर मण्डल मध्य में १३ देवगण का आवाहन पूजन करे। (३२ देवगण का नाम यह है)॥१-३॥

ईशश्चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्य्यः सत्यो भृगुश्चैव आकाशो वायुरेव च॥४॥
पूषा च वितथश्चैव ग्रहक्षेत्रयमावुभौ। गन्धर्वो भृगुराजस्तु मृगः पितृगणस्तथा॥५॥
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो गणाधिपः।
असुरः शेषपादौ च रोगोऽहिमुख्य एव च॥६॥
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा। बहिर्द्वात्रिंशद्देवे तु तदन्तश्चतुरः शृणु॥७॥
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान्पूजयेद् बुधः। आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च॥८॥

यथा—ईशान, पर्जन्य, जयन्त, वज्रायुध, सूर्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, ग्रहक्षेत्र, यम, गन्धर्व, भृगु, राजा, मृग, पितर, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, गणाधिप, असुर, शेष, पाद, रोग, अहिमुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, दिति। ये बाहरी भाग में पूजित ३२ देवता हैं। अब मण्डल मध्य में जिन चार देवता की पूजा करनी होगी, उसे सुनिये। आप: की ईशान कोण में, सावित्र की अग्निकोण में, जय की नैर्ऋत्कोण में, रुद्र की वायुकोण में पूजा करनी चाहिये॥४-८॥

मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान्। देवानेकोत्तरानेतान्पूर्वादौ नामतः शृणु॥९॥

मध्य के नवपद में ब्रह्मा का पूजन करने के बाद उनके ही पास में मण्डलाकार अष्टदेव पूजन करे—

पूर्व दिशा से प्रारंभ करके एक-एक देवता की पूजा एक-एक दिशा तथा कोण में (४+४=८) करना होगा। इनका नाम सुनिये॥९॥

अर्यमा सविता चैव विवस्वाविन्बुधाधिपः।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्।
अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्रह्मणः स्मृताः॥१०॥

अर्यमा, सविता, विवस्वान, विवुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर तथा अपवत्स। (इस प्रकार ४ देवता पहले कहे गये + ब्रह्मा + ये आठ देवता = १३ देवता सब मिलाकर हो गये। जिनकी पूजा मध्य में करने हेतु श्लोक नम्बर ३ में कहा गया था) अब इनका पूजाक्रम कहते हैं—पूर्वदिक्—ॐ अर्यमा नमः, अग्निकोण—ॐ सवित्रे नमः, दक्षिणदिक्—ॐ विवस्वते नमः, नैर्ऋत्कोण—ॐ विवुधाधिपतये नमः, पश्चिमदिक्—ॐ मित्राय नमः, वायुकोण—ॐ राजयक्ष्मे नमः, उत्तरदिक्—ॐ पृथिवीधराय नमः, ईशानकोण—ॐ अपवत्साय नमः। ये ब्रह्मा के परिवार वाले देवता कहे गये हैं॥१०॥

ईशानकोणादारभ्य दुर्गे च वंश उच्यते। आग्नेयकोणादारभ्य वंशो भवति दुर्द्धरः॥११॥

अदितिं हिमवन्तञ्च जयन्तञ्च इदं त्रयम्।
नायिका कलिका नाम शक्राद् गन्धर्वगाः पुनः।
वास्तुदेवान्पूजयित्वा गृहप्रासादकृद्भवेत्॥१२॥

वास्तु मण्डल को ईशान कोण से लगाकर नैर्ऋत्कोण तक तथा अग्निकोण से लगाकर वायुकोण तक सूत्रपात द्वारा २ रेखांकन करना होगा। यह रेखा वंश कहलाती है। ८१ पद का जो वास्तुमण्डल बनाया गया, उसके बाहर के ३२ पद में से पंचपद में अदिति, दिति, ईश, पर्जन्य तथा जयंत नामक ५ देवता रहते हैं। यह गृह तथा प्रासाद की स्थिति है, लेकिन दुर्ग के ८१ पद के वास्तुमण्डल के पंचपद में इन उपरोक्त पांच देवता की जगह अदिति, हिमवान्, जयन्त, नायिका तथा कालिका नामक पांच देवता रहते हैं। बाकी २७ पग में गन्धर्व आदि से लगाकर सर्पराज तक के २७ देवता रहते हैं, वे अन्य किसी देवता के नाम से बदले नहीं जाते। गृह तथा प्रासाद निर्माण में इन ३२ देवों की पूजा होती है॥११-१२॥

सुरेज्यः पुरतः कार्यो दिश्याग्नेय्यां महानसम्। कपिनिर्गमने येन पूर्वतः सत्रमण्डपम्॥१३॥

गन्धपुष्पगृहं कार्यमैशान्यां पट्टसंयुतम्। भाण्डागारञ्च कौवेर्यां गोष्ठागारञ्च वायवे॥१४॥
उदगाश्रयं वारुण्यां वातायनसमन्वितम्। समित्कुशेन्धनस्थानमायुधानाञ्च नैर्ऋते॥१५॥
अभ्यागतालयं रम्यं सशय्यासनपादुकम्। तोयाग्निदीपसद्भृत्यैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत्॥१६॥

गृहान्तराणि सर्वाणि सजलैः कदलीगृहैः।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत्॥१७॥

प्राकारं तद्बहिर्दद्यात् पञ्चहस्तप्रमाणतः। एवं विष्ण्वाश्रमं कुर्याद्वनैश्चोपवनैर्युतम्॥१८॥

वास्तु के सामने भाग में देवालय, अग्नि कोण में पाकशाला, पूर्व की ओर आने-जाने का पथ तथा यागमण्डल बनाये। ईशान कोण में पट्टवस्त्रान्वित गन्ध-पुष्पालय, उत्तर की ओर गोदाम-भण्डार, वायुकोण में गोशाला, पश्चिम में रोशनदान युक्त जलागार, नैर्ऋत्कोण में समिध्, कुश, काष्ठ का गृह तथा अस्त्रशाला बनाये। दक्षिण में सुन्दर मेहमानगृह बनवाये। यहां शय्या, आसन, पादुका, जल, अग्नि, दीप (प्रकाश) तथा योग्य सेवक रखना होगा।

गृह के खाली स्थान को जलयुक्त केला का वृक्ष तथा पांच वर्ण के पुष्पों के पौधों से शोभित करे। वास्तुमण्डल के बाहर चारों ओर दीवाल उठवाये। यह पांच हाथ ऊंची हो। इसी तरह विष्णुगृह भी बनवा कर उसे चारों ओर वन-उपवन से सजाये॥१३-१८॥

चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादादौ प्रपूजितः। मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा द्विपदास्त्वर्यमादयः॥१९॥

कर्णे चैवाथ शिख्याद्यास्तथा देवाः प्रकीर्त्तिताः।
तेभ्यो ह्युभयतः सार्द्धादन्येऽपि द्विपदाः सुराः।
चतुःषष्टिपदा देवा इत्येव परिकीर्त्तिताः॥२०॥

प्रासादादि निर्माणार्थ ६४ पद का वास्तुमण्डल बना कर उसमें वास्तुदेव पूजा करे। इस मण्डल में मध्य ४ पद में ब्रह्मा की तथा उनके पास के प्रत्येक दो पग पर अर्यमा आदि देवगण की पूजा करनी चाहिये। इस वास्तुमण्डल के ईशानादि चारों कोण में चार-चार पद पर एक-एक कर्णरेखा पात करके (सूत्रपात द्वारा) उन्हें आधे-आधे भाग में बांटकर प्रत्येक कोण में दो-दो करके आठ पद बनाये। इस आठ पद में ईशानादि कोण से आरंभ करके शिखी प्रभृति देवताओं की स्थापना करे। इन शिखी आदि देवताओं की तथा इनके दोनों पार्श्व में प्रत्येक दो-दो पद पर अन्य देवताओं की पूजा करनी होगी। इन ६४ पद देवों को कहता हूं॥१९-२०॥

चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी। ईशानाद्यास्ततो बाह्ये देवाद्या हेतुकादयः॥२१॥
हेतुकस्त्रिपुरान्तश्च अग्निवेतालकौ यमः। अग्निजिह्वः कालकश्च करालो ह्येकपादकः॥२२॥

ऐशान्यां भीमरूपस्तु पाताले प्रेतनायकः।
आकाशे गन्धमाली स्यात्क्षेत्रपालांस्ततो यजेत्॥२३॥
विस्ताराभिहतं दैर्घ्यं रासिं वास्तोस्तु कारयेत्।
कृत्वा च वसुभिर्भागं शेषञ्चैवायमादिशेत्॥२४॥

पुनर्गुणितमष्टाभिर्ऋक्षभागन्तु भाजयेत्। यच्छेषं तद्भवेदृक्षं भागैर्हत्वा व्ययं भवेत्॥२५॥
ऋक्षं चतुर्गुणं कृत्वा नवभिर्भागहारितम्। शेषमंशं विजानीयाद्देवलस्य मतं यथा॥२६॥

वास्तुमण्डल के इन ईशानादि चार कोणों में चरकी, विदारी, पूतना तथा पापराक्षसी की पूजा करे। बहिर्भाग में ईशानादि कोण से आरंभ करके हेतुकादि देवों का पूजन करे। इनके नाम हैं—हेतुक, त्रिपुरान्तक, अग्नि, वेताल, यम, अग्निजिह्व, कालक, कराल, एकपाद। इनकी पूजा करके ईशानादि कोण में ही भीमरूप की, पाताल में प्रेतनायक की तथा आकाश में गन्धमाली एवं क्षेत्रपाल की पूजा करे। वास्तु के विस्तार परिमाण द्वारा दीर्घता परिमाण का गुण करे। गुणनफल जो होगा वही (वास्तुराशि) वास्तुक्षेत्रफल होगा। इसको आठ से भाग करे। भाग शेषाङ्क को 'आय' कहते हैं। पुनः इस वास्तु राशि को आठ से गुणा करे। जो गुणनफल बचे, उसे २७ से भाग करे। इसके शेषांक को वास्तुनक्षत्रराशि कहते हैं। इस भाग शेष वास्तुनक्षत्र राशि से आठ घटाये। जो शेषांक हो 'व्यय' कहायेगा। इस वास्तु नक्षत्र राशि को चार से गुणा करे। इस गुणनफल से ९ घटाये। जो शेषांक बचे, वही स्थिति होगी। इस स्थिति अंक से ही वास्तुमण्डल का अंश तय होता है। यह देवल ऋषि का मत है॥२१-२६॥

अष्टाभिर्गुणितं पिण्डं षष्टिभिर्भागहारितम्। यच्छेषं तद्भवेज्जीवं मरणं भूतहारितम्॥२७॥

उक्त वास्तुराशि में आठ का गुणा करने पर जो अंक बचता है, वही है पिण्डाङ्क। इस पिण्डाङ्क को ६४ से भाग देने पर जो अंक बचेगा, उससे गृह के मालिक के जीवन का निर्णय होगा। पिण्डाङ्क को ५ से भाग करने पर जो भाग शेष बचेगा, उससे घर के मालिक की मृत्यु का ज्ञान होगा॥२७॥

वास्तुक्रोडे गृहं कुर्यान्न पृष्ठे मानवः सदा।
वामपार्श्वेन स्वपिति नात्र कार्या विचारणा॥२८॥
सिंहकन्यातुलायाञ्च द्वारं शुद्धेदथोत्तरम्। एवञ्च वृश्चिकादौ स्यात्पूर्वदक्षिणपश्चिमम्॥२९॥
द्वारं दीर्घार्द्धविस्तारं द्वाराण्यष्टौ स्मृतानि च॥३०॥

वास्तु की गोद में गृहनिर्माण करे, तथापि पृष्ठ की ओर गृह न बनाये। वास्तुदेव वाम पार्श्व में शयन करते हैं। गृह तथा प्रासाद के द्वार बनाने का नियम यह है कि सिंह—कन्या, तुला (भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक महीना) में पूर्व की ओर मस्तक, उत्तर की ओर पीठ, दक्षिण की ओर गोद तथा पश्चिम की ओर चरण करके वास्तु सोते हैं। इन तीन महीनों में दक्षिण की ओर द्वार बनाये, जो उत्तर की ओर खुलता हो। वृश्चिक, धनु तथा मकर राशि में (अगहन, पौष तथा माघ मास में) वास्तु का शिर दक्षिण में, पीठ पूर्व में, क्रोड़ (गोद) पश्चिम तथा पैर उत्तर में रहता है। अतः इस समय पश्चिम की ओर द्वार बनाये, पूर्व की ओर खुले। कुंभ, मीन तथा मेष राशि में जब सूर्य हो (अर्थात् फाल्गुन, चैत एवं वैशाख मास में) वास्तु का मस्तक पश्चिम में, पृष्ठ दक्षिण में, गोद उत्तर में तथा पैर पूर्व में रहता है। इस समय उत्तर की ओर दक्षिण द्वारा गृह बनाये। वृष, मिथुन तथा कर्क राशि में जब सूर्य हो (ज्येष्ठ, आषाढ़ तथा श्रावण मास में) वास्तु का मस्तक उत्तर की ओर, गोद पूर्व की ओर, पृष्ठ पश्चिम की ओर और पैर दक्षिण की ओर रहता है। इस समय पूर्व में द्वार बनाये, जो पश्चिम की ओर खुलता हो। गृह का द्वार जितना दीर्घ हो (लम्बा हो) उसका विस्तार (चौड़ाई) उसकी आधी होनी चाहिये। आठ द्वार वाले घर का निर्माण करे॥२८-३०॥

स्वतल्पे प्लवनीचत्वं सर्पेण सूत्रभाजनम्। पुत्रहीनन्तु रौद्रेण वीर्यघ्नं दक्षिणे तथा॥३१॥
बह्नौ बन्धश्च वायौ च पुत्रलाभः सुतृप्तिदः। धनदे नृपपीडादं बन्धनं रोगदं जले॥३२॥
नृपभीतिर्मृतापत्यं ह्यनपत्यञ्च वैरिदम्। अर्थदे चार्थहानिश्च दोषदं पुत्रमृत्युदम्।
द्वाराण्युत्तरसंज्ञानिं पूर्वद्वाराणि वच्म्यहम्॥३३॥

वास्तुनाग जिस मास में जिस दिशा में पृष्ठ किये रहता है, उस मास में उधर ही ढाल देकर घर का आंगन वनवाये (ताकि जल उसी दिशा से बाहर निकले)। गृह के ईशान कोण में ढाल होने पर पुत्र हानि होती है, दक्षिण की ओर जल की ढाल होने पर वीर्यहीनता, अग्निकोण में ढाल होने पर बन्धन, वायुकोण में ढाल हो, तव पुत्र तथा तृप्ति की प्राप्ति होती है। उत्तर की ओर ढाल होने पर राजभय, पश्चिम की ओर होने पर पीड़ा, बन्धनादि होता है। गृह के उत्तर में द्वार करने से राजभय, सन्तान नाश, शत्रुवृद्धि, धनहानि, कलंक, पुत्रविनाशनादि नाना अशुभ पीड़ा होती है। अव पूर्वद्वारी गृह का वृत्तान्त सुनें॥३१-३३॥

अग्निभीतिर्बहुकन्या धनसम्मानकं पदम्। राजघ्नं रोगदं पूर्वे फलतो द्वारमीरितम्॥३४॥
ईशानादौ भवेत्पूर्वमाग्नेयादौ तु दक्षिणम्।
नैर्ऋत्यादौ पश्चिमं स्याद्वायव्यादौ तु चोत्तरम्।
अष्टभागे कृते भागे द्वाराणाञ्च फलाफलम्॥३५॥
अश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधाः पूर्वादौ स्यादुदुम्बरः।
गृहस्य शोभनः प्रोक्त ईशाने चैव शाल्मलिः।
पूजितो विघ्नहारी स्यात्प्रासादस्य गृहस्य च॥३६॥

॥इति गारुडे महापुराणे वास्तुमानलक्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥

गृह के पूर्व में (पूर्व दिशा में) द्वार होने से अग्निदाहभय, अनेक कन्या होना, धनलाभ, सम्मान वृद्धि, पदोन्नति, राजविनाश, रोगादि भय होता है। गृह बनाने में ईशान से लगाकर पूर्व पर्यन्त को पूर्वदिक् कहते हैं। अग्निकोण से दक्षिण तक दक्षिणदिक्, नैर्ऋत से पश्चिम तक पश्चिम दिशा तथा वायुकोण से उत्तर तक उत्तरदिक् कहते हैं। गृह के चारों ओर को आठ भाग में बांटकर द्वार बनाने से फलाफल जाने। घर के पूर्वदिक् में पीपल, दक्षिण में पाकड़, पश्चिम में वट, उत्तर में गूलर तथा ईशान कोण में शाल्मलि वृक्ष लगाये। गृह के चारों ओर ऐसी शोभा करे। इस विधान से घर तथा प्रासाद निर्माण काल में जेव वास्तुदेव अर्चित होते हैं, तव सभी विघ्नों का नाश हो जाता है॥३४-३६॥

॥छियालिसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

मन्दिर निर्माण वर्णन

सूत उवाच

प्रासादानां लक्षणञ्च वक्ष्ये शौनक तच्छृणु। चतुःषष्टिपदं कृत्वा दिग्विदिक्षूपलक्षितम्॥१॥

चतुष्कोणं चतुर्भिश्च द्वाराणि सूर्य्यसंख्यया।
चत्वारिंशाष्टभिश्चैव भित्तीनां कल्पना भवेत्॥२॥

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! देवता के प्रासाद का लक्षण तथा उसकी निर्माण प्रणाली सुनें। जहां प्रासाद निर्माण किया जाता है, उसे समचतुष्कोण बनाये तथा ६४ भाग में बांटे। ऐसे बांटना चाहिये, जिससे सभी बटा स्थान समचतुष्कोण रहे। यह क्षेत्र अब ६४ पद वाला होगा। देवमन्दिर के चारों ओर समचतुरस्र १२ द्वार हों।

६४ भाग में बंटे क्षेत्र के बाहरी विभाग में स्थित २८ पद तथा उसके अन्दर के बीस पद, दोनों मिलाकर ४८ पदों में मन्दिर की भित्ति बनाई जाये॥१-२॥

ऊर्ध्वक्षेत्रसमा जङ्घा तदूर्ध्वे द्विगुणं भवेत्।
गर्भविस्तारविस्तीर्णा शुकाङ्घ्रिश्च विधीयते॥३॥
तत्त्रिभागेन कर्त्तव्यः पञ्चभागेन वा पुनः।
निर्गमस्तु शुकाङ्घ्रेश्च उच्छ्रायः शिखरार्द्धगः॥४॥

चतुर्द्धा शिखरं कृत्वा त्रिभागे वेदिबन्धनम्। चतुर्थे पुनरस्यैव कण्ठमामूलसाधनम्॥५॥

अब मन्दिर की ऊंचाई में भूमि से गृहतल तक की जो उच्चता है, उसे जंघा कहा गया है। जंघा की जितनी उच्चता है, उससे दूनी ऊंचाई प्रासाद की हो। प्रासादगर्भ का जो माप हो, उसी माप से शिखर का मूल हो। यह एक शिखर वाले मंदिर के लिये हैं। तीन शिखर किंवा पांच शिखर हों वहां प्रासादगर्भ विस्तार का १/३ भाग माप वाला किंवा १/५ भाग माप का शिखर मूल बने। शिखर का जो द्वार होगा, वह शिखर के परिमाण का आधा ऊंचा होगा। शिखर की ऊंचाई के माप का चार भाग में बांटकर उसके ३/४ भाग में शिखर की वेदी और १/४ भाग में उसके कण्ठ का निर्माण होना चाहिये॥३-५॥

अथवापि समं वास्तु कृत्वा षोडशभागिकम्।
तस्य मध्ये चतुर्भागमादौ गर्भन्तु कारयेत्॥६॥

भागद्वादशिकां भित्तिं ततश्च परिकल्पयेत्। चतुर्थभागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः॥७॥

द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्युच्छ्रायाच्च मानतः।
शिखरार्द्धस्य चार्द्धेन विधेयास्तु प्रदक्षिणाः॥८॥

चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमस्तु तथा बुधैः। पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः॥९॥

भागमेकं गृहीत्वा तु निर्गमं कल्पयेत् पुनः। गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः।
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्य हि लक्षणम्॥१०॥

अब अन्य प्रकार से प्रासाद बनाने की विधि सुनिये। वास्तुक्षेत्र को १६ भागों में बांटे। उसके मध्य के ४ भाग में मन्दिर का गर्भ बनाये। बाहरी १६ भाग में मन्दिर की भित्ति बनाये। उस वास्तुक्षेत्र के १६ भाग में से ४ भाग का जो माप हो, भित्ति की ऊंचाई भी वही होगी। भित्ति की ऊंचाई से दूनी शिखर की ऊंचाई होगी। अब मन्दिर के चारों ओर शिखर की ऊंचाई का १/४ विस्तार वाली प्रदक्षिणा बनाये। देव प्रासाद के चारों ओर आने-जाने हेतु द्वार हों। मन्दिर मध्य का चार भाग तथा सामने का एक भाग मिलाकर जो पांच भाग होता है, उसे गर्भमान कहा गया है। बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार से क्षेत्र का भाग करके एक भाग में बार जाने का द्वार बनाये। गर्भस्थान के समसूत्र के आगे के भाग में मण्डप के सामने का स्थान होगा। यह प्रासाद लक्षण जो यहां कहा जा रहा है, यह सामान्य प्रासाद (मन्दिर) का लक्षण है॥६-१०॥

लिङ्गमानमथो वक्ष्ये पीठो लिङ्गसमो भवेत्।
द्विगुणेन भवेद् गर्भः समन्ताच्छौनक ध्रुवम्।
तद्विधा च भवेद् भित्तिर्जङ्घा तद्विस्तरार्धगा॥११॥
द्विगुणं शिखरं प्रोक्तं जङ्घायाश्चैव शौनक। पीठगर्भावरं कर्म तन्मानेन शुकाङ्घ्रिकाम्॥१२॥
निर्गमस्तु समाख्यातः शेषं पूर्ववदेव तु। लिङ्गमानः स्मृतो ह्येष द्वारमानमथोच्यते॥१३॥
कराग्रं वेदवत्कृत्वा द्वारं भागाष्टमं भवेत्।
विस्तरेण समाख्यातं द्विगुणं स्वेच्छया भवेत्॥१४॥

अब लिङ्ग का परिमाण सुनिये। लिंग के परिमाण इतना ही पीठ का परिमाण रहे। हे शौनक! पीठ के परिमाण का दूना होगा चतुर्दिक् पीठ-गर्भ। पीठ-गर्भ के परिमाण के अनुरूप भित्ति होगी तथा विस्तार का आधा जङ्घा होगा। जङ्घा का दूना शिखर बनाये। हे शौनक! पीठ तथा गर्भ के बीच का जो परिमाण होगा, उसी माप की शिखर की नींव बनाये। द्वार का माप पूर्व में कहे अनुसार रखे। लिंग परिमाण यहां मैंने कहा है। अब द्वार परिमाण सुनिये। प्रासाद की सीमा के ४ हाथ अन्तर से वास्तुक्षेत्र के १/८वें भाग में बाहरी द्वार होगा। नींव आदि के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। मन्दिर द्वार से बहिर्द्वार दूना हो॥११-१४॥

द्वारवत्पीठमध्ये तु शेषं शुषिरकं भवेत्। पादिकं शेषिकं भित्तिर्द्वाराद्धेन परिग्रहात्॥१५॥
तद्विस्तारसमा जङ्घा शिखरं द्विगुणं भवेत्।
शुकाङ्घ्रिः पूर्ववज्ज्ञेया निर्गमोच्छ्रायकं भवेत्।
उक्तं मण्डपमानन्तु स्वरूपं चापरं वद॥१६॥
त्रैवेदं कारयेत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः। इत्थं कृतेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतम्॥१७॥

इसे अपनी रुचि के अनुरूप उचित परिमाण वाला निर्मित करे। बाहरी द्वार का कपाट छिद्रयुक्त हो। द्वार परिमाण से १/२ द्वार की भित्ति बनाये। इस बाहरी द्वार का जो परिमाण होगा, उसका जङ्घा भी उसी परिमाण का होना जरूरी है। जंघा की ऊंचाई की दूनी शिखर की ऊंचाई होगी। प्रासाद शिखर की

नींव तथा द्वार की उच्चता जो बतलाई गई है, द्वार शिखर की नींव तथा उच्चता उसी के समान रहेगी। मण्डप का परिमाण प्रभृति कहने के बाद अब उसका स्वरूपान्तर सुनिये। अब प्रासाद क्षेत्र के बाहरी भाग का वर्णन सुनें। देवप्रासाद में सदा देवताओं की स्थिति बनी रहती है। पहले कही विधि के मुताबिक देव मन्दिर बनाये तथा अब कही जा रही विधि से मन्दिर के बाहरी भाग का निर्माण करे॥१५-१७॥

नेमिः पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः। गर्भन्तु द्विगुणं कुर्यान्नेम्या मानं भवेदिह।
स एव भित्तेरुत्सेधो शिखरो द्विगुणो मतः॥१८॥

अब मन्दिर का जल बाहर करने हेतु प्रासाद के चारों ओर उसके १/४ अंश विस्तीर्ण नेमि (नाली) बनाये। यह नेमि वृत्ताकार हो। नेमि का गर्भ माप उसके विस्तार का दूना हो। गर्भ परिमाण जितना हो, नेमि की भित्ति भी उतने ही परिमाण वाली हो। शिखर भाग का परिमाण उससे दूना करना चाहिये। यह नियम है॥१८॥

प्रासादानाञ्च वक्ष्यामि . मानं योनिञ्च मानतः।
वैराजः पुष्पकाख्यश्च कैलासो मालिकाह्वयः।
त्रिपिष्टपञ्च पञ्चैते प्रासादाः सर्वयोनयः॥१९॥
प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु तदायतः। वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टास्रश्चेह च पञ्चमः॥२०॥
एतेभ्य एव सम्भूताः प्रासादाः सुमनोहराः। सर्वप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिंशच्च एव च॥२१॥

अब प्रासाद का नाम तथा विभिन्न नामों के लक्षणों को कहूंगा। देवता के मन्दिर पांच प्रकार के होते हैं। यथा—वैराज, पुष्पक, कैलास, मालक, त्रिपिष्टप। इनमें सभी देवता निवास करते हैं। वैराज श्रेणी के मन्दिर समचतुरस्र तथा पुष्पक श्रेणी वाले आयत होते हैं। आयत अर्थात् जिनके विस्तार से उनकी दीर्घता अधिक हो। कैलास श्रेणी वाले मन्दिर वृत्ताकार होते हैं। मालक मन्दिर अण्डाकृति होते हैं। त्रिपिष्टप श्रेणी वाले मन्दिर अष्टकोण होते हैं। ये पांच प्रकार के प्रासाद समस्त प्रासादों के यथार्थ प्रकृति स्वरूप कहे जाते हैं। इनसे ही ४० प्रकार के मनोरम प्रासादों की आकृति बनती है॥१९-२१॥

मेरुश्च मन्दरश्चैव विमानश्च तथापरः। भद्रकः सर्वतोभद्रो रुचको नन्दनस्तथा॥२२॥
नन्दिवर्द्धनसंज्ञश्च श्रीवत्सश्च नवेत्यमी। चतुरस्राः समुद्भूता वैराजादिति गम्यताम्॥२३॥
वलभी गृहराजश्च शालागृहञ्च मन्दिरम्। विमानञ्च तथा ब्रह्ममन्दिरं भवनं तथा।
उत्तम्भं शिविकावेश्म न वैते पुष्पकोद्भवाः॥२४॥
वलयो दुन्दुभिः पद्मो महापद्मस्तथापरः।
मुकुली चास्य उष्णीषी शङ्खश्च कलसस्तथा।
गुवावृक्षस्तथान्यश्च वृक्षाः कैलाससम्भवाः॥२५॥
गजोऽथ वृषभो हंसो गरुडः सिंहनामकः। भूमुखो भूधरश्चैव श्रीजयः पृथिवीधरः।
वृत्तायताः समुद्भूता नवैते मालकाह्वयात्॥२६॥

वज्रं चक्रं तथान्यच्च मुष्टिकं बभ्रुसंज्ञितम्।
वक्रः स्वस्तिकखड्गौ च गदा श्रीवृक्ष एव च।
विजयो नामतः श्वेतस्त्रिपिष्टिपसमुद्भवाः॥२७॥

चतुरस्र **वैराज मन्दिर** से ही मेरु, मन्दर, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, नन्दिवर्द्धन, श्रीवत्स नामक नौ प्रकार के मन्दिरों की उत्पत्ति कही गयी है। पुष्पक मन्दिर से वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ, शिविका वेश्म ये नौ प्रकार के मन्दिर उद्भूत हैं। ये सभी आयताकार पुष्पक से उत्पन्न हैं। वृत्ताकृति कैलास मन्दिर से उद्भूत नौ मन्दिरों के नाम हैं—वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, मुकुली, उष्णीषा, शंख, कलस तथा गुवावृक्ष। डिम्बाकृति मालक मन्दिर से उद्भूत नौ प्रकार के मन्दिरों का नाम है—गज, वृषभ, हंस, गरुड़, सिंह, भूमुख, भूधर, श्रीजय, पृथिवीधर। अष्टकोणीय त्रिपिष्टक मन्दिर से उद्भूत नौ मन्दिर हैं—वज्र, चक्र, मुष्टिक, वभ्रु, वक्र, स्वस्तिक, खड्ग, गदा, श्रीवृक्ष, विजय तथा श्वेत॥२२-२७॥

त्रिकोणं पद्ममर्द्धेन्दुश्चतुष्कोणं द्विरष्टकम्। यत्र यत्र विधातव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु॥२८॥
राज्यञ्च विभवश्चैव ह्यायुर्वर्द्धनमेव च। पुत्रलाभः श्रियः पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद्भवेत्॥२९॥

त्रिकोण, पद्म, अर्द्धन्दु, चतुष्कोण, अष्टकोण तथा षोडशकोण मण्डप बनाये जाते हैं। ऐसे मण्डप युक्त मन्दिरों का फल यह है, उसे कहता हूं। ये मण्डप जहां स्थापित किये जाते हैं, उनमें से त्रिकोण मण्डप में देवता स्थापना द्वारा राज्यलाभ, पद्माकृति मण्डप में देवस्थापना से विजय लाभ तथा सम्पत्तिलाभ, अर्द्धचन्द्र तथा चतुष्कोण मण्डप में देवस्थापना से आयुवृद्धि, अष्टकोण मण्डप में देवस्थापना से पुत्रलाभ, षोडशकोण मण्डप में देवता स्थापना से श्रीवृद्धि होती है। पुष्टि भी प्राप्त होती है॥२८-२९॥

कुर्याद् ध्वजादिकं ख्याता द्वारि गर्भगृहं तथा।
मण्डपः समसंख्याभिर्गुणितः सूत्रतस्तथा॥३०॥
मण्डपस्य चतुर्थांशाद्भद्रः कार्यो विजानता।
सार्द्धं गवाक्षकोपेतो निर्गवाक्षोऽथवा भवेत्॥३१॥

ध्वजादियुक्त गर्भगृह का द्वार बनाये। सूत्र से यह माप करे कि मण्डप के कोण समसंख्यक हो। ऐसी सावधानी के साथ मण्डप निर्माण किया जाये। बुद्धिमान व्यक्ति मण्डप के माप का १/४ (चौथाई माप का) भद्र गृह बनाये। इसमें अधिक माप के गवाक्ष लगवाये अथवा गवाक्षरहित ही रहने दे॥३०-३१॥

सार्द्धभित्तिप्रमाणेन भित्तिमानेन वा पुनः।
भित्तेर्द्वैगुण्यतो वापि कर्त्तव्या मण्डपाः क्वचित्॥३२॥

प्रासादे मञ्जरी कार्या चित्रा विषमभूमिका। परिमाणविरोधेन रेखा वैषम्यभूषिता॥३३॥
आधारस्तु चतुर्द्वारश्चतुर्मण्डपशोभितः। शतशृङ्गसमायुक्तो मेरुः प्रासाद उत्तमः॥३४॥

मण्डपास्तस्य कर्त्तव्या भद्रैस्त्रिभिरलंकृताः।
गठनाकारमानानां भिन्नाद्भिन्ना भवन्ति ते॥३५॥

कियन्तो येषु चाधारा निराधाराश्च केचन। प्रतिच्छन्दकभेदेन प्रासादाः सम्भवन्ति ते॥३६॥

कभी भित्ति के बराबर परिमाण का मण्डप बनाये, कभी विशेष परिस्थिति में भित्ति से दूने परिमाण का मण्डप बनाये। प्रासाद में समस्थान (बराबर स्थान में जो ऊबड़-खाबड़ न हों) नाना वर्ण की लताओं का चित्रण करे। इनका कोई विशेष माप नहीं होगा। उनको विषम रेखाओं से भूषित करके ऐसे अंकित करे, जिससे वे अच्छी लगें। मण्डल के आधार में चारों ओर चार दरवाजे हों। इन चार द्वारों पर चार गृह बनाये। मेरु प्रासाद शतशृंगयुक्त हों। मेरुमण्डप के बगल में भद्रगृह से शोभित कुछ अन्य मण्डप बनाये। अपनी गठन शैली तथा माप के भेद से मन्दिर कई तरह के होते हैं। कुछ मण्डपों में आधार हों तथा कुछ आधाररहित हों। आकृति विभिन्न होने के कारण ये अनेक प्रकार के बनते हैं॥३२-३६॥

अन्यान्यसंस्कारात्तेषां गठनानामभेदतः। देवतानां विशेषाय प्रासादा बहवः स्मृताः॥३७॥
प्रासादे नियमो नास्ति देवतानां स्वयम्भुवाम्। तानेव देवतानाञ्च पूर्वमानेन कारयेत्॥३८॥
चतुरस्रायतास्तत्र चतुष्कोणसमन्विताः। चन्द्रशालान्विता कार्या भेरीशिखरसंयुता॥३९॥

देवता के प्रासाद गठन, नामभेद तथा अन्यान्य संस्कार भेद से अनेक प्रकार के बनाये जाते हैं। इसी प्रकार देवताभेद आदि कारण से मण्डप भी नाना प्रकार का होता है। विष्णु, महेश्वर तथा स्वयम्भू (ब्रह्मा) के मन्दिर का अन्य कोई नियम नहीं है। इनका मन्दिर पूर्वोक्त नियमों से ही बना देना चाहिये। सभी मण्डप अधिकतर चतुरस्र अथवा समचतुरस्र बनाये जाते हैं। वे चतुष्कोण होते हैं। सभी देवमन्दिर चन्द्र शाला तथा भेरी शिखर वाले हों॥३७-३९॥

पुरतो वाहनानाञ्च कर्त्तव्या लघुमण्डपाः।
नाट्यशाला च कर्त्तव्या द्वारदेशसमाश्रया॥४०॥
प्रासादे देवतानाञ्च कार्या दिक्षु विदिक्ष्वपि।
द्वारपालाश्च कर्त्तव्या मुख्या गत्वा पृथक् पृथक्॥४१॥
किञ्चिददूरतः कार्या मठास्तत्रोपजीविनाम्। प्रावृता जगती कार्या फलपुष्पजलान्विता॥४२॥
प्रासादेषु सुरान् स्थाप्यान् पूजाभिः पूजयेन्नरः।
वासुदेवः सर्वदेवः सर्वभाक् तद्गृहादिकृत्॥४३॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्रासादकीर्त्तनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

देवमन्दिर के सामने उन देवता के वाहन के लिये लघुमण्डप भी बनावे। द्वार देश पर नाट्यशाला भी बनवाये। इसके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में तथा ईशानादि चारों कोणों पर अलग-अलग रूप से द्वारपालों का स्थान भी होना चाहिये। इन स्थानों पर द्वारपालों की स्थापना भी आवश्यक है। देवालय के कार्य को करके जीविका चलाने वालों के निवासार्थ देवालय से कुछ दूरी पर उनके लिये भी मठ को बनवाये। देवता के मन्दिर के चारों ओर शोभा के लिये फल, फूल, लता आदि

से घेर देना चाहिये। वहां जल स्थानादि भी हो। देव प्रतिष्ठा के उपरान्त वहां नाना उपचारों, सामग्रियों से उनकी पूजा भी की जाये। भगवान् वासुदेव सर्वदेवमय हैं। जो व्यक्ति मन्दिर बनाकर वहां वासुदेव प्रतिमा की स्थापना करता है तथा उनकी पूजा करता रहता है, उसे समस्त देवगण की प्रतिष्ठा-स्थापना का फललाभ होता है॥४०-४३॥

॥सैंतालिसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

सर्वदेव प्रतिष्ठा विधि वर्णन

सूत उवाच

प्रतिष्ठां सर्वदेवानां संक्षेपेण वदाम्यहम्। सुतिथ्यादौ सुरम्याञ्च प्रतिष्ठां कारयेद् गुरुः॥१॥
ऋत्विग्भिः सह चाचार्यं वरयेन्मध्यदेशगम्। स्वशाखोक्तविधानेन अथवा प्रणवेन तु॥२॥
पञ्चभिर्बहुभिर्वाथ कुर्यात् पाद्यार्घमेव च। मुद्रिकाभिस्तथा वस्त्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः।
मन्त्रन्यासं गुरुः कृत्वा ततः कर्म समारभेत्॥३॥

सूतजी ने कहा—अब मैं सभी देवों की प्रतिष्ठा विधि संक्षेप में कहता हूं। उत्तम तिथि आदि में गुरु सुरम्य मण्डल में प्रतिष्ठा करे। यजमान को चाहिये कि वह स्वशाखोक्त विधान से ऋत्विक् एवं आचार्य का वरण मध्यदेश से करे। पांच उपचारों से अथवा अनेक उपचारों द्वारा पाद्य, अर्घ्य, यथोक्त मुद्रा प्रदर्शन, वस्त्र, गन्ध, माला, अनुलेपादि से पूजन सम्पन्न करे। तदनन्तर गुरु मन्त्रन्यास करके प्रकृत कर्म का प्रारंभ करे॥१-३॥

प्रासादस्याग्रतः कुर्यान्मण्डपं दशहस्तकम्।
कुर्याद् द्वादशहस्तं वा स्तम्भैः षोडशभिर्युतम्।
ध्वजाष्टकैश्चतुर्हस्तां मध्ये वेदिञ्च कारयेत्॥४॥
नदीसङ्गमतीरोत्थां बालुकां तत्र दापयेत्। चतुरस्रं कार्मुकाभं वर्त्तुलं कमलाकृतिः॥५॥
पूर्वादितः समारभ्य कर्त्तव्यं कुण्डपञ्चकम्। अथवा चतुरस्राणि सर्वाण्येतानि कारयेत्॥६॥
शान्तिकर्मविधानेन सर्वकामार्थसिद्धये। शिरःस्थाने तु देवस्य आचार्यो होममाचरेत्।
ऐशान्यां केचिदिच्छन्ति उपलिप्यावनिं शुभाम्॥७॥
द्वाराणि चैव चत्वारि कृत्वा वै तोरणान्तिके। न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थवैल्वपालाशखादिराः॥८॥
तोरणाः पञ्चहस्ताश्च वस्त्रपुष्पाद्यलंकृताः। निखनेद्धस्तमेकैकं चत्वारश्चतुरो दिशः॥९॥

अब देवता के मन्दिर के सामने दस हाथ वाला मण्डप बनाये। यह बारह हाथ का भी बना सकते हैं। यह सोलह खम्भे वाला हो। इसे आठ ध्वजायें सुशोभित कर रही हों। ऐसे मण्डप में चार हाथ की वेदी का निर्माण किया जाये। वेदी के ऊपर नदी संगम की बालू बिछाये। उस पर पूर्व में चतुरस्त्र बनाये। दक्षिण में धनुष की आकृति का कुण्ड, पश्चिम दिशा में वर्त्तुल कुण्ड तथा उत्तर में पद्म के आकार का कुण्ड बनाये। सभी कुण्ड पहले चतुरस्त्र बनाकर तब बनाये। आचार्य अपने यजमान की सभी कामनाओं की सिद्धि हेतु शान्तिकार्योक्त विधान से देवता के शिर वाले स्थान पर होम करना चाहिये। ईशान कोण की भूमि पर लेप करना चाहिये। कतिपय आचार्य यहीं पर होम की विधि बतलाते हैं। जो मण्डल का तोरण है, वहीं पर उसी के निकट चार द्वार बनाये। वट, उदुम्बर, पीपल, बिल्व, पलाश, खदिर के काष्ठ, तोरण का खम्भा निर्माण कराये। ये खम्भे पांच हाथ के हों। इनका एक हाथ जमीन में गाड़ा जाये तथा चार हाथ पृथिवी से ऊपर हो। इन सभी स्तम्भ को पुष्पादि से सजाये। तदनन्तर इनको मण्डप के चारों ओर स्थापित करना चाहिये॥४-९॥

पूर्वद्वारे मृगेन्द्रन्तु हयराजन्तु दक्षिणे। पश्चिमे गोपतिर्नाम सुरशार्दूलमुत्तरे॥१०॥
अग्निमीलेति मन्त्रेण प्रथमं पूर्वतो न्यसेत्। ईषेत्वेति च मन्त्रेण दक्षिणस्यां द्वितीयकम्॥११॥

अग्न आयाहि मन्त्रेण पश्चिमस्यां तृतीयकम्।
शन्नो देवीति मन्त्रेण उत्तरस्यां चतुर्थकम्॥१२॥
पूर्वे अम्बुदवत् कार्या आग्नेय्यां धूमरूपिणी।
याम्यां वै कृष्णरूपा तु नैर्ऋत्यां श्यामला भवेत्॥१३॥
वारुण्यां पाण्डरा ज्ञेया वायव्यां पीतवर्णिका।
उत्तरे रक्तवर्णा तु शुक्लैशी च पताकिका।
बहुरूपा तथा मध्ये इन्द्रविद्येति पूर्विका॥१४॥

पूर्व के तोरण (द्वार) का नाम है मृगेन्द्र, दक्षिण वाले का हयराज, पश्चिम वाले का नाम गोपति, उत्तर वाले का नाम सुरशार्दूल है। 'अग्निमीले' इत्यादि मन्त्र से पूर्वदिक् वाला प्रथम तोरण स्थापित करे। 'ईषे त्वेति' इत्यादि मन्त्र से दक्षिण वाला तोरण स्थापित करे। 'अग्ने आयाहि' इत्यादि मन्त्र से पश्चिम वाले तृतीय तोरण की स्थापना करे। 'शन्नो देवि' इत्यादि मन्त्र से उत्तर वाले चौथे तोरण की स्थापना करे। अब पताका क्रम कहते हैं। प्रतिष्ठा मण्डप के पूर्वदिक् में मेघवर्ण की, अग्निकोण में धूम्रवर्ण की, दक्षिणदिक् में कृष्णवर्ण की, नैर्ऋत्कोण में धूसरवर्ण की, पश्चिम में पाण्डुर वर्ण की, वायुकोण में पीतवर्ण की, उत्तर में रक्तवर्ण की, ईशान कोण में शुक्लवर्ण की तथा मध्य में नाना वर्ण की पताका स्थापित करनी चाहिये। ये पताकायें मण्डप के ऊर्ध्व में लगें। इन सब पताकाओं में पूर्वादि क्रमेण इन्द्रादि लोकपालों का पूजन करे॥१०-१४॥

अग्निं संसुप्तिमन्त्रेण यमोनागेति दक्षिणे। पूज्या रक्षोहनावेति पश्चिमे उत्तरेऽपि च॥१५॥
वात इत्यभिषिच्याथ आप्यायस्वेति चोत्तरे। तमीशानमतश्चैव विष्णुर्लोकेति मध्यमे॥१६॥

कलसौ तु ततो द्वौ द्वौ निवेश्यौ तोरणान्तिके।
वस्त्रयुग्मसमायुक्ताश्चन्दनाद्यैः स्वलंकृताः॥१७॥
पुष्पैर्वितानैर्बहुलैरादिवर्णाभिमन्त्रिताः। दिक्पालाश्च ततः पूज्याः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥१८॥

अब दिक्पालादि पूजन सुनें। "ॐ अग्नि सं सृप्ति" इत्यादि मन्त्र द्वारा पूर्व में इन्द्र की, दक्षिण में "ॐ यमो नाग" इत्यादि मन्त्र से यम की, पश्चिम में "ॐ रक्षोहनो" इत्यादि मन्त्र द्वारा वरुण की पूजा करे। "वात आवात" इत्यादि मन्त्र से अभिषेक करे। तब उत्तर दिशा में "ॐ विष्णुर्लोक" इत्यादि मन्त्र द्वारा विष्णु की पूजा करे। तोरण के निकट प्रत्येक द्वार पर २ वस्त्रों से ढंके, चंदन आदि से चर्चित दो-दो कलश स्थापित करे। साधक प्रतिष्ठामण्डप को पुष्प, चंदोवा, विविध आभूषण से सजा कर पद्धति ग्रन्थ में लिखित प्रणाली द्वारा इन्द्रादि दस दिक्पाल की पूजा करे॥१५-१८॥

त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अग्निमूर्द्धेति चापरे। अस्मिन् वृक्ष इतश्चैव प्रचारीति परा स्मृता॥१९॥
किञ्चेदधातु आच त्वा भिन्ना देवीति सप्तमी।
इमा रुद्रेति दिक्पालान्पूजयित्वा विचक्षणः।
होमद्रव्याणि वायव्ये कुर्य्यात्सोपस्कराणि च॥२०॥
शङ्खाञ्शास्त्रोदिताञ्श्वेतान्नेत्राभ्यां विन्यसेद् गुरुः।
आलोकनेन द्रव्याणि शुद्धिं यान्ति न संशयः॥२१॥

"ॐ त्रातारमिन्द्रं" इत्यादि मन्त्र से इन्द्र की, "ॐ अग्निन्मूर्द्धा" इत्यादि मन्त्र से अग्नि की, "ॐ अस्मिन् वृक्ष" इत्यादि मन्त्र से यम की, "ॐ प्रचारित" इत्यादि मन्त्र से निर्ऋति की, "ॐ किञ्चेदधातु" इत्यादि मन्त्र से वरुण की, "ॐ आचत्वा" इत्यादि मन्त्र से कुबेर की, "ॐ इमा रुद्र" इत्यादि मन्त्र से शिव पूजा करनी चाहिये। बुद्धिमान् आचार्य दिक्पाल पूजनोपरान्त वायुकोण में होमद्रव्य तथा प्रतिष्ठा विधान भी अन्य सब सामग्री को स्थापित करें। अब गुरु को चाहिये कि वे उत्तम लक्षण वाला श्वेत शंख स्थापित करके अपने नेत्रों से समस्त पूजा द्रव्य की ओर देखें। गुरु की दृष्टि से ये सब द्रव्य शुद्ध हो जाते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है॥१९-२१॥

हृदयादीनि चाङ्गानि व्याहृति प्रणवेन च।
अस्त्रञ्चैव समस्तानां न्यासोऽयं सार्वकामिकः॥२२॥
अक्षतान्विष्टरञ्चैव अस्त्रेणैवाभिमन्त्रितान्।
विष्टरेण स्पृशेद् द्रव्यान्यागमण्डपसंयुतान्। अक्षतान्विकिरेत्पश्चादस्त्रपूतान्समन्ततः॥२३॥
शाक्रीं दिशमथारभ्य यावदीशानगोचरम्। अवकीर्य्याक्षतान्सर्वाल्लेपयेन्मण्डपं ततः॥२४॥
गन्धाद्यैरर्घ्यपात्रे च मन्त्रग्रामं न्यसेद् गुरुः। तेनार्घ्यपात्रतोयेन प्रोक्षयेद् यागमण्डपम्॥२५॥
प्रतिष्ठा यस्य देवस्य तदाख्यं कलसं न्यसेत्।
ऐशान्यां पूजयेद् याम्ये अस्त्रेणैव च वर्द्धनीम्।
कलसं वर्द्धनीञ्चैव ग्रहान्वास्तोष्पतिं तथा॥२६॥

अब गुरुदेव को चाहिये कि वे हृदयादि तथा अंगन्यास व्याहृति एवं प्रणव से करे। अस्त्र-मन्त्र से समस्त न्यास सर्वकामिक हो जाता है। यथा—

ॐ हृदयाय नमः, ॐ भूः शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वषट्, ॐ स्वः कवचाय हुं, ॐ भूर्भुवः स्वः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ भूर्भुवः स्वः करतलपृष्ठाभ्यां फट्।

तदनन्तर 'अस्त्राय फट्' से तण्डुल एवं विष्ठर से यज्ञ द्रव्य तथा यज्ञमण्डप को स्पर्श करे। इस मन्त्र को पढ़ते हुये चारों ओर तण्डुल बिखेरे। यह कार्य पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके ईशान कोण तक की आठों दिशा-विदिशा में करना चाहिये अर्थात् तण्डुल बिखेरना चाहिये। अब याग मण्डल को लिप्त करे (लेप करे)। इसके अनन्तर गुरु को चाहिये कि वे गन्ध प्रभृति से अर्घ्यपात्र को पूजित करके अर्घ्यपात्र का मन्त्र से न्यास करके इस पात्र के जल को यागमण्डप पर छिड़के। जिन देवता की प्रतिष्ठा करनी हो, उनके नाम द्वारा ईशान कोण में घट स्थापना करके दक्षिण की ओर 'अस्त्राय फट्' मन्त्रोच्चारण करके वर्द्धनी स्थापना का विधान है। कुम्भ, वर्द्धनी, आदित्य आदि नौ ग्रह, वास्तुपुरुष की पूजा अब कर देनी चाहिये॥२२-२६॥

आसने तानि सर्वाणि प्रणवाख्यं जपेद् गुरुः। सूत्रग्रीवं रत्नगर्भं वस्त्रमुख्येन वेष्टितम्।
सर्वौषधि गन्धलिप्तं पूजयेत्कलशं गुरुः॥२७॥
देवस्तु कलसे पूज्यो वर्द्धन्या वस्त्रमुत्तमम्। वर्द्धन्या तु समायुक्तं कलसं भ्रामयेदनु॥२८॥
वर्द्धनीधारया सिञ्चन्नग्रतो धारयेत्ततः।
अभ्यर्च्य वर्द्धनीं कुम्भं स्थण्डिले देवमर्चयेत्॥२९॥
घटञ्चावाह्य वायव्यां गणानान्त्वेति सद्गणम्।
देवमीशानकोणे तु जपेद्वास्तुपतिं बुधः। वास्तोष्पतीतिमन्त्रेण वास्तुदोषोपशान्तये॥३०॥

पहले गुरु शुद्ध-पवित्र आसन पर आसीन होकर प्रणव (ॐ) का जप करें। घट के गले पर सूत लपेट कर उसके अन्दर जल में पञ्चरत्न रख कर कुम्भ पर दो वस्त्र ढकें। उस घट पर सर्वौषधि रख कर सुगन्ध से घट को लिप्त करें तथा गुरु उसकी पूजा करें। कलश पर प्रतिष्ठित होने वाले देवता की पूजा करने के अनन्तर वेष्ठनी को भी वस्त्र से ढक देना चाहिये। अब वर्द्धनी तथा कलश को घुमाये। वर्द्धनी की जलधारा से उस घट (कुम्भ) को सिंचित करके उसके आगे वर्द्धनी की स्थापना करनी चाहिये। तदनन्तर वर्द्धनी एवं कुम्भ पूजन करके स्थण्डिल के मूल स्थान पर देवता की पूजा करे। वायुकोण में भी एक घट की स्थापना करे। उस घट में गणपति देवता का आवाहन करके "ॐ गणानात्वा" प्रभृति मन्त्र द्वारा गणपति पूजन तथा ईशान कोण में उस घट की स्थापना करके वास्तुपति के मन्त्र से वास्तुदेव की अर्चना करे, जिससे वहां वास्तुदोष का शमन हो जाये॥२७-३०॥

कुम्भस्य पूर्वतो भूतं गणदेवं बलिं हरेत्। पठेदिति च विद्याश्च कुर्य्यादालम्भनं बुधः॥३१॥
योगे योगेति मन्त्रेण संस्तरञ् ज्वलनैः कुशैः।
आचार्य्यं ऋत्विजैः सार्द्धं स्नानपीठे हरस्तथा॥३२॥

विविधैर्ब्रह्मघोषैश्च पुण्याहजयमङ्गलैः। कृत्वा ब्रह्मरथे देवं प्रतिष्ठन्ति ततो द्विजाः॥३३॥

उस कुम्भ के पूर्वदिक् में भूतों एवं गणदेवों को बलि देकर वेदमन्त्रों की ध्वनि करते वेदिका लंघन करना चाहिये। इसके पश्चात् "योगायोग" प्रभृति मन्त्र पढ़ते हुये कुश को तनिक प्रज्वलित करके वहां बिछाये तथा अन्य ऋषियों के साथ स्नानपीठ पर देवता को स्थापित करके अनेक ब्रह्मघोष, पुण्याहवाचन, जयजयकार तथा मंगल ध्वनि करते हुये वहां देवता प्रतिमा की स्थापना की जाये॥३१-३३॥

ऐशान्यामानयेत्पीठं मण्डपे विन्यसेद् गुरुः। भद्रं कर्णेत्यथ स्नात्वा सूत्रबन्धनजेन तु।

संस्नाप्य लक्षणे द्वारं कुर्य्याद् दूराभिवादनैः॥३४॥

मधुसर्पिःसमायुक्तं कांस्ये वा ताम्रभाजने।

अक्षिणी चाञ्जयेच्चास्य सुवर्णस्य शलाकया॥३५॥

अग्निर्ज्योतीतिमन्त्रेण नेत्रोद्घाटन्तु कारयेत्।

लक्षणे क्रियमाणे तु नाम्नैकं स्थापको वदेत्॥३६॥

इमम्मे गाङ्गमन्त्रेण नेत्रयोः शीतलक्रिया।

अग्निमूर्द्धेति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम्॥३७॥

अब पीठसहित देवप्रतिमा को मण्डप में लाये तथा ईशान कोण में स्थापित करना चाहिये। "भद्रं कर्णेभिः" इत्यादि मन्त्र से प्रतिमा को स्नान कराकर देवता को सर्व लक्षण से सज्जित करके दूर से उनका अभिवादन करना चाहिये। अब कांसे के बर्तन अथवा तांबे के बर्तन में घृत-मधु मिलाये। तदनन्तर स्वर्ण की शलाका से इसी से देवता की दोनों आंखों को अंकित करे। "अग्निज्योतिः" इत्यादि मन्त्र से इन नेत्रों को प्रकट कराये। इस प्रकार जब प्रतिमा सर्वलक्षणलक्षित होती है, तब प्रतिष्ठा करने वाला व्यक्ति उन देवता का नामकरण करे। "इमम्मे गङ्गे" इत्यादि मन्त्र से देवता के नेत्रों को शीतल करके "अग्निमूर्द्धा" इत्यादि मन्त्र द्वारा दीमक की बांबी की मिट्टी से प्रतिमा को स्नान कराये॥३४-३७॥

बिल्वोदुम्बरमश्वत्थं वटं पालाशमेव च। यज्ञायज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायकम्॥३८॥

पञ्चगव्यैः स्नापयेच्च सहदेव्यादिभिस्ततः। सहदेवी बला चैव शतमूली शतावरी॥३९॥

कुमारी च गुडूची च सिंही व्याघ्री तथैव च।

या ओषधीतिमन्त्रेण स्नानमोषधिमज्जलैः।

याः फलिनीति मन्त्रेण फलस्नानं विधीयते॥४०॥

द्रुपदादिवेति मन्त्रेण कार्य्यमुद्वर्त्तनं बुधैः। कलसेषु च विन्यस्य उत्तरादिष्वनुक्रमात्।

रत्नानि चैव धान्यानि ओषधिं शतपुष्पिकाम्॥४१॥

समुद्रांश्चैव विन्यस्य चतुरश्चतुरो दिशः। क्षीरं दधि क्षीरोदस्य घृतोदस्येति वा पुनः॥४२॥

आप्यायस्व दधिक्राव्णो या औषधीरितीति च।

तेजोऽसीति च मन्त्रैश्च कुम्भञ्चैवाभिमन्त्रयेत्।

समुद्राख्यैश्चतुर्भिश्च स्नापयेत् कलसैः पुनः॥४३॥

बेल, गूलर, पीपल, बरगद, पलाश के काढ़े से "यज्ञायज्ञे" इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुये प्रतिमा को स्नान कराये। इसके पश्चात् पञ्चगव्य से स्नान कराये। सहदेई, बला, शतमूली, शतावर, घृतकुमारी, गुरुच, बृहती, कण्टकारी के काढ़े से स्नान कराये तथा "या औषधि" इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुये सर्वौषधि मिले जल से तथा "याः फलिनी" इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुये फलोदक से देवप्रतिमा को स्नान कराना चाहिये। इसके पश्चात् चारों ओर चार कुंभ रख कर पहले कुंभ में क्षीरसमुद्र, द्वितीय में दधिसमुद्र, तृतीय में जल समुद्र तथा चतुर्थ में घृत समुद्र की भावना करे। तदनन्तर "आप्यायस्व" इत्यादि मन्त्र से पहले कुम्भ को, "दधिक्राव्णो" इत्यादि मन्त्र से द्वितीय कुम्भ को, "या औषधि" इत्यादि मन्त्र से तृतीय कुम्भ को, "तेजोऽसि" इत्यादि मन्त्र से चतुर्थ कुम्भ को मन्त्रित करे। इन समुद्रमय चारों कलश जल से देव प्रतिमा को नहलाये॥३८-४३॥

स्नातश्चैव सुवेशश्च धूपो देयश्च गुग्गुलुः।
अभिषेकाय कुम्भेषु तत्तत्तीर्थानि विन्यसेत्॥४४॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरस्तथा।
या ओषधीति मन्त्रेण कुम्भञ्चैवाभिमन्त्रयेत्।
तेन तोयेन यः स्नायात् स मुच्येत् सर्वपातकैः॥४५॥
अभिषिच्य समुद्रैश्च चार्घ्यं दद्यात्ततः पुनः। गन्धद्वारेति गन्धञ्च न्यासं वै वेदमन्त्रकैः॥४६॥

तदनन्तर स्नान एवं वस्त्राभूषण से प्रतिमा को सजाकर उनको गुग्गुलु धूप देनी चाहिये। अब इन चारों कुम्भों में समस्त सरिता, सागर, पृथिवी के सभी तीर्थों का भावना द्वारा समावेश कराकर "या औषधि" इत्यादि मन्त्र से चारों कुम्भों को अभिमन्त्रित करे। इन चारों कुंभ जल से जो व्यक्ति स्नान करता है, वह सभी पापों से छूट जाता है। देवता की ऐसी अभिषेक पूजा सम्पन्न करके उनको अर्घ्य देना चाहिये तथा "गन्धद्वारा" इत्यादि वैदिक मन्त्र से सुगन्धित चन्दन का लेप करना आवश्यक है॥४४-४६॥

स्वशास्त्रविहितैः प्राप्तैरिमं मन्त्रेति वस्त्रकम्।
कविहाविति मन्त्रेण आनयेन्मण्डपं शुभम्॥४७॥
शम्भवायेति मन्त्रेण शय्यायां विनिवेशयेत्।
विश्वतश्चक्षुमन्त्रेण कुर्य्यात् सकलनिष्कलम्॥४८॥
स्थित्वा चैव परे तत्त्वे मन्त्रन्यासन्तु कारयेत्।
स्वशास्त्रविहितो मन्त्रो न्यासस्तस्मिंस्तथोदितः॥४९॥
वस्त्रेणाच्छादयित्वा तु पूजनीयः स्वभावतः।
यथाशास्त्रं निवेद्यानि पादमूले तु दापयेत्॥५०॥

इस प्रकार अपनी वेदशाखा के मन्त्रों द्वारा देवता को सभी द्रव्य अर्पित करे। अव देवमूर्त्ति को मण्डप में लाकर "शम्भवाय" इत्यादि मन्त्र द्वारा शय्या पर बैठाये। अब "विश्वतश्चक्षु" मन्त्र से देवमूर्त्ति का जो-जो अंग विकल लगे, उस-उस अंग की पूर्त्ति करनी चाहिये। इसके अनन्तर परमतत्व का ध्यान करके

मन्त्रन्यास करे तथा प्रतिष्ठा किये जाने वाले देवता की पूजा-पद्धति हेतु लिखे गये सभी न्यास करने चाहियें। अब देवता की प्रतिमा को ढंक कर अपनी धनशक्ति के अनुसार उनकी पूजा करे। शास्त्रोक्त विधि से सभी द्रव्य अर्पित करने के बाद उनको देवता के चरणों के पास रखे॥४७-५०॥

अथ प्रणवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम्। कलसं सहिरण्यञ्च शिरःस्थाने निवेदयेत्॥५१॥

स्थित्वा कुण्डसमीपेऽथ अग्नेः स्थापनमाचरेत्।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैर्वेदोक्तैर्वाथवा गुरुः॥५२॥

श्रीसूक्तं पावमानञ्च वासं दास्यं सहाजिनम्।
वृषाकपिञ्च मित्रञ्च बह्वृचः पूर्वतो जपेत्॥५३॥

रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायञ्च सुक्रियः।
ब्रह्माणं पितृमैत्रञ्च अध्वर्य्युर्दक्षिणे जपेत्॥५४॥

वेदव्रतं वामदेव्यं ज्येष्ठसामरथन्तम्। भेरुण्डानि च सामानि छन्दोगः पश्चिमे जपेत्॥५५॥

अथर्वशिरसश्चैव कुम्भसूक्तमथर्वणः। नीलरुद्रांश्च मैत्रञ्च अथर्वश्चोत्तरे जपेत्॥५६॥

कुण्डं चास्त्रेण संप्रोक्ष्य आचार्य्यस्य विशेषतः।
ताम्रपात्रे शरावे वा यथाविभवतोऽपि वा।
जातवेदं समानीय अग्रतस्तन्निवेशयेत्॥५७॥

कलश को अब प्रणव से मन्त्रित वस्त्र से ढांके तथा उस पर स्वर्ण रख कर देवता के शिर के पास स्थापित करे। अब गुरु कुण्ड के समीप बैठ कर अपनी वेदशाखा के मन्त्र से अग्नि की स्थापना करे। ऋग्वेद के ज्ञाता आचार्य पूर्व दिशा वाले कुण्ड के पास आसीन होकर अब श्रीसूक्त, पावमानी सूक्त, रुद्रसूक्त, विष्णुसूक्त तथा सूर्यसूक्त को पढ़ें। जो यजुर्वेद के ज्ञाता आचार्य हैं, वे दक्षिण दिशा वाले कुण्ड के पास आसन ग्रहण करके पुरुषसूक्त, श्लोकाध्याय, ब्रह्मसंहिता, पितृसंहिता एवं सूर्यसंहिता का पाठ करें। जो सामवेद के विद्वान् आचार्य हैं, वे पश्चिम वाले कुण्ड के निकट बैठ कर वेदव्रतसूक्त, वामदेव्य गान, ज्येष्ठसाम, रथन्तर संहिता, भारुण्ड मन्त्र का पाठ करें। अथर्ववेदज्ञ आचार्य उत्तर दिशा वाले कुण्ड के पास आसन ग्रहण करके अथर्ववेदोक्त कुण्डसूक्त, नीलरुद्रसंहिता तथा सूर्यसूक्त का पाठ करें। गुरु को चाहिये कि वे कुण्ड का प्रोक्षण 'फट्' मन्त्र से करें। यजमान अपनी अर्थशक्ति के अनुरूप ताम्रपात्र में, शराव (मिट्टी का कसोरा) या अन्य धातु के बने पात्र में अग्नि लाकर अपने सामने ही स्थापित करे॥५१-५७॥

अस्त्रेण ज्वालयेद्वह्निं कवचेन तु वेष्टयेत्।
अमृतीकृत्य तं पश्चान्मन्त्रैः सर्वैश्च देशिकः॥५८॥

पात्रं गृह्य कराभ्याञ्च कुण्डं भ्राम्य ततः पुनः।
वैष्णवेन तु योगेन परं तेजस्तु निक्षिपेत्॥५९॥

दक्षिणे स्थापयेद् ब्रह्म प्रणीताञ्चोत्तरेण तु। साधारणेन मन्त्रेण स्वशास्त्रविहितेन वा।
दिक्षु दिक्षु ततो दद्यात्परिधिं विष्टरैः सह॥६०॥

अव 'फट्' मन्त्रोच्चारण द्वारा अग्नि को लपट युक्त करे तया 'हुं' मन्त्र से अग्नि को आवेष्टित करे। उसका अमृतीकरण करके मन्त्र पढ़े और दोनों हाय से अग्निपात्र लेकर कुण्ड के ऊपर घुमा कर प्रज्वलित उस वैष्णवाग्नि को कुण्ड में छोड़े। अग्नि के दक्षिण की ओर ब्रह्मा रहें तया उत्तर की ओर प्रणीतापात्र रख कर चारों ओर अपनी वेद शाखा की सामान्य पद्धति के अनुसार विष्टर की परिधि बिछावें॥५८-६०॥

ब्रह्मविष्णुहरेशानाः पूज्याः साधारणेन तु। दर्भेषु स्थापयेद्वह्निं दर्भैश्च परिवेष्टितम्।
दर्भतोयेन संस्पृष्टो मन्त्रहीनोऽपि शुद्ध्यति॥६१॥
प्रागग्रैरुदगग्रैश्च प्रत्यगग्रैरखण्डितैः। विततै र्वेष्टितो वह्निः स्वयं सान्निध्यतां व्रजेत्॥६२॥
अग्नेस्तु रक्षणार्थाय यदुक्तं कर्म मन्त्रवित्। आचार्य्याः केचिदिच्छन्ति जातकर्मादनन्तरम्॥६३॥
पवित्रन्तु ततः कृत्वा कुर्य्यादाज्यस्य संस्कृतिम्।
आचार्योऽथ निरीक्ष्यापि नीराजमभिमन्त्रितम्॥६४॥
आज्यभागाभिघारान्तमवेक्षेताज्यसिद्धये। पञ्च पञ्चाहुतीर्हुत्वा आज्येन तदनन्तरम्॥६५॥

अव गुरु, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर की पूजा सम्पन्न करके कुश पर अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। इस अग्नि को दर्भ (कुश) से घेर कर कुश जल उस पर छिड़कें। इस प्रकार गुरु, अग्नि तया पूजा के उपकरण विना मन्त्र के ही शुद्ध हो जाते हैं। जिस कुश का पूर्वाग्र, उत्तराग्र, पश्चिमाग्र, दक्षिणाग्र अखण्डित हो, उससे अग्नि को आवेष्ठित करना चाहिये। इस क्रिया से वहां अग्निदेव का सान्निध्य होता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि अग्नि रक्षणार्थ जो विधि कही गयी है, अग्नि के जातकर्म के उपरान्त वह सभी करणीय है। अव आचार्य को चाहिये कि पवित्र छेदनोपरान्त घृत संस्कार कार्य करें। घृत की ओर देखते हुये मन्त्रपाठ के साथ घृत का अभिमन्त्रण करना चाहिये। तत्पश्चात् घृतशोधन के लिये आधाराहुति देकर पांच-पांच आहुति देनी चाहिये॥६१-६५॥

गर्भाधानादितस्तावद्यावद् गोदानिकं भवेत्।
स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैः प्रणवेनाथ होमयेत्॥६६॥
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा पूर्णात्पूर्णमनोरथः। एवमुत्पादितो वह्निः सर्वकर्मसु सिद्धिदः॥६७॥

इसके अनन्तर अग्नि का गर्भाधानादि लेकर विवाह तक के दस संस्कार संपन्न करे। अपनी वेदशाखा के विहित मन्त्रों के आगे प्रणव लगाकर होम करके पूर्णाहुति प्रदान करने का नियम है। इस प्रकार यजमान की कामना पूर्ण होती है। ऐसी उत्पन्न वह्नि सभी कार्यों हेतु सिद्धिदायक भी है॥६६-६७॥

पूजयित्वा ततो वह्निं कुण्डेषु विहरेत्तथा। इन्द्रादीनां स्वमन्त्रैश्च तथाहुतिशतं शतम्॥६८॥
पूर्णाहुतिं शतस्यान्ते सर्वेषाञ्चैव होमयेत्।
स्वामाहुतिमथाज्येषु होता तत्कलसे न्यसेत्॥६९॥
देवताश्चैव मन्त्रांश्च तथैव जातवेदसम्। आत्मानमेकतः कृत्वा ततः पूर्णां प्रदापयेत्॥७०॥

अब कुण्ड में जो अग्नि है, उसकी अर्चना करना चाहिये। साथ ही इन्द्रादि देवतागण को उनके-उनके मन्त्र द्वारा १००-१०० आहुति प्रदान करना होगा। इस प्रकार से आहुति देकर पूर्णाहुति देनी

चाहिये। अब अन्य देवताओं को भी एक-एक आहुति देना आवश्यक है। होता होम में मूल देवता हेतु जो आहुति अर्पित करता है, उसकी प्रत्याहुति कलश में छोड़ दिया करे। पूर्णाहुति में देवता, अग्नि तथा आत्मा का अभेद ज्ञान होना जरूरी है॥६८-७०॥

निष्कृष्य बहिराचार्य्यो दिक्पालानां बलिं हरेत्।
भूतानाञ्चैव देवानां नागानाञ्च प्रयोगतः॥७१॥
तिलाश्च समिधश्चैव होमद्रव्यं द्वयं स्मृतम्।
आज्यं तयोः सहकारि तत्प्रदानं यदङ्कयोः॥७२॥
पुरुषसूक्तं पूर्वेणैव रुद्रञ्चैव तु दक्षिणे। ज्येष्ठसाम च भीरुण्डं तन्नयामीति पश्चिमे॥७३॥
नीलरुद्रो महामन्त्रः कुम्भसूक्तमथर्वणः। हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं शिरसि कल्पयेत्॥७४॥
एवं मध्ये तथा पादे पूर्णाहुत्या तथा पुनः।
शिरःस्थानेषु जुहुयादाविशेच्च अनुक्रमात्॥७५॥

इस कर्म को सम्पन्न करने के पश्चात् आचार्य बाहर निकले तथा दिक्पालों के लिये बलि अर्पित करें। विधान का पालन करते हुये भूतगण, देवता तथा नागगण हेतु बलि अर्पित करें। इस हेतु तिल तथा समिष (मांसादि) इन दो होमद्रव्य की आवश्यकता होती है। घृत के साथ इन दोनों द्रव्य से होम करना चाहिये। यही होम प्रधान होम कहलाता है। पूर्वकुण्ड में पुरुषसूक्त से, दक्षिण कुण्ड में रुद्रसूक्त से, पश्चिम कुण्ड में ज्येष्ठ साम तथा भारुण्ड संहिता से, उत्तर कुण्ड में नीलरुद्रसूक्त एवं अथर्ववेद में कहे गये कुम्भसूक्त द्वारा होम करने का विधान है। इसी क्रम का अवलम्बन लेकर प्रत्येक कुण्ड में एक-एक हजार होम करके देवमूर्त्ति को मस्तक पर रखे। इस होम में पूर्णाहुति (मध्य में तथा पाद में) पुनः-पुनः देने का भी नियम है। तदनन्तर शिरस्थ कुण्ड में (भावना द्वारा शिर पर कुण्ड की कल्पना करके उसमें भावना से होम करना) होम करें॥७१-७५॥

देवानामादिमन्त्रैर्वा मन्त्रैर्वा अथवा पुनः।
स्वशास्त्रविहितैर्वापि गायत्र्या वाथ ते द्विजाः।
गायत्र्या वाथवाऽऽचार्य्यो व्याहृतिप्रणवेन तु॥७६॥
एवं होमविधिं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रांस्तु देशिकः।
चरणावग्निमीले तु ईषेत्वो गुल्फयोः स्थिताः॥७७॥
अग्न आयाहि जङ्घे द्वे शन्नो देवीति जानुनी। बृहद्रथन्तरे ऊरू उदरेष्वातिलो न्यसेत्॥७८॥
दीर्घायुष्ट्वाय हृदये श्रीश्च ते गलके न्यसेत्।
त्रातारमिन्द्रं वक्षे च नेत्राभ्यान्तु त्रियुग्मकम्।
मूर्द्धा भव तथा मूर्ध्नि ह्यालग्नाद्धोममाचरेत्॥७९॥

देवता के आदि मन्त्र से अथवा अपनी वेदशाखा के मन्त्र से, गायत्री मन्त्र से अथवा प्रणव

समन्वित व्याहृति मन्त्र से (ॐ भूर्भुवः स्वः) होम करना चाहिये। होम सम्पन्न करने के बाद देवता के शरीर में मन्त्रन्यास करना आवश्यक है। उदाहरणार्थ—"अग्निमीले" इत्यादि से चरणद्वय में, "ईषे त्वोर्य त्वा" इत्यादि से गुल्फद्वय में, "अग्न आयाहि" इत्यादि से जंघाद्वय में, "शन्नोदेविरभीष्टये" इत्यादि से जानुद्वय में, बृहद्रथन्तर मन्त्र से उरुद्वय में, "वातिल" इत्यादि से उदर में, "दीर्घायुष्ट्वाय" इत्यादि से हृदय में "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च" इत्यादि मन्त्र से गले में "त्रातारमिन्द्रे" इत्यादि से वक्ष में, "त्रियुग्म" मन्त्र से नेत्रद्वय में, "मूर्द्धा भव" से मूर्द्धा में न्यास करे, तदनन्तर पुनः होम करे॥७६-७९॥

उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणः पते। वेदपुण्याहशब्देन प्रासादानां प्रदक्षिणम्॥८०॥

पिण्डिकालभनं कृत्वा देवस्य त्वेति मन्त्रवित्।
दिक्पालान्सह रत्नैश्च धातूनौषधयस्तथा।
लौहबीजानि सिद्धानि पश्चाद्देवन्तु विन्यसेत्॥८१॥

न गर्भे स्थापयेद्देवं न गर्भन्तु परित्यजेत्। ईषन्मध्यं परित्यज्य ततो दोषापनं तु तत्॥८२॥

तिलस्य तु समात्रन्तु उत्तरं किञ्चिदानयेत्।
ओं स्थिरो भव शिवो भव प्रजाभ्यश्च नमो नमः॥८३॥
देवस्य त्वा सवितुर्वः षड्भ्यो विन्यसेद् गुरुः।
तत्त्ववर्णकलामात्रं प्रजानि भुवनात्मजे॥८४॥
षड्भ्यो विन्यस्य सिद्धार्थं ध्रुवार्थैरभिमन्त्रयेत्।
सम्पातकलसेनैव स्नापयेत्सुप्रतिष्ठितम्॥८५॥

इसके अनन्तर "उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते" द्वारा देवमूर्त्ति को उठा कर वेदध्वनि तथा पुण्याहवाचन के साथ मण्डप एवं प्रसाद की प्रदक्षिणा करनी चाहिये। "देवस्य त्वा" आदि मन्त्र से पिण्डी का लेपन करे। इसके पश्चात् दिक्पालों की पूजा करके लौहबीज, रत्न, धातु, औषधि को देवता के पीछे रखे। मन्दिर के गर्भभाग में देवस्थापना नहीं करनी चाहिये, तथापि गर्भभाग का त्याग भी नहीं करे। तनिक उसका मध्य भाग छोड़ कर तनिक उत्तर की ओर देवप्रतिमा ले आये। "ॐ स्थिरो भव" इत्यादि मन्त्र से तथा "देवस्व त्वा" इत्यादि छः मन्त्र पढ़ कर देवमूर्त्ति स्थापित करे। अब ध्रुवार्थ छः मन्त्रों से देवता को अभिमन्त्रित करके पूर्व में स्थापित किये गये कलशों से देवमूर्त्ति को स्नान कराकर उसकी स्थापना करे॥८०-८५॥

दीपधूपसुगन्धैश्च नैवेद्यैश्च प्रपूजयेत्। अर्घ्यं दत्त्वा नमस्कृत्य ततो देवं क्षमापयेत्॥८६॥

पात्रं वस्त्रयुगं छत्रं तथा दिव्याङ्गुरीयकम्।
ऋत्विग्भ्यश्च प्रदातव्या दक्षिणा चैव शक्तितः॥८७॥

चतुर्थीं जुहुयात्पश्चाद्यजमानः समाहितः। आहुतीनां शतं हुत्वा ततः पूर्णां प्रदापयेत्॥८८॥

निष्क्रम्य बहिराचार्य्यो दिक्पालानां बलिं हरेत्।
आचार्य्यः पुष्पहस्तस्तु क्षमस्वेति विसर्जयेत्॥८९॥

यागान्ते कपिलां दद्यादाचार्य्याय च चामरम्।
मुकुटं कुण्डलं छत्रं केयूरं कटिसूत्रकम्।
व्यजनं ग्रामवस्त्रादीन्सोपस्कारं समण्डलम्।।९०।।
भोजनञ्च महत् कुर्य्यात् कृतकृत्यश्च जायते।
यजमानो विमुक्तः स्यात्स्थापकस्य प्रसादतः।।९१।।

।।इति गारुडे महापुराणे प्रतिष्ठाप्रकरणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

तब दीप, धूप, सुगन्ध, नैवेद्य से देवता की पूजा करनी चाहिये। उनको अर्घ्य देकर नमस्कार तथा क्षमा प्रार्थना करे। पात्र, एक जोड़ी वस्त्र, छत्र, दिव्य अंगूठी, दक्षिणा ऋत्विकों को देना चाहिये। इन सबको सम्पन्न करके यजमान संयत मन से चतुर्थी होम करे। चतुर्थी होम में सौ आहुति देकर पूर्णाहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् आचार्य बहिर्देश में जाकर दिक्पालों को बलि प्रदान करे। आचार्य पुष्पांजलि लेकर क्षमा प्रार्थना करके विसर्जन करें। यज्ञ समापन होने पर आचार्य देव को कपिला गौ, चामर, मुकुट, कुण्डल, छत्र, केयूर, कटिसूत्र, पंखा तथा मण्डलयुक्त ग्राम प्रदान करे। दक्षिणा भी यथाशक्ति देनी चाहिये। इसके पश्चात् आचार्य पुरोहितों को भोजन कराये तथा स्वयं भोजन करे। यजमान एवंविध प्रतिष्ठा कार्य करके कृतकृत्य होकर मुक्तिलाभ करता है।।८६-९१।।

।।अड़तालिसवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

ऊनपञ्चाशदध्यायः

ब्राह्मण आदि वर्णों के धर्म का वर्णन

ब्रह्मोवाच

सर्गादिकृद्धरिश्चैव पूज्यः स्वायम्भुवादिभिः।
विप्राद्यैः स्वेन धर्मेण तद्धर्मं व्यास वैं शृणु।।१।।
यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः। अध्यापनञ्चाध्ययनं षट्कर्माणि द्विजोत्तमे।।२।।
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः। दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते।।३।।
शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्। कारुकर्म तथा जीवोऽपाकयज्ञोऽपि धर्मतः।।४।।
भिक्षाचर्य्याथ शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च।
संन्यासकर्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः।।५।।

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम्। ब्रह्मचार्य्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! हरि ने सृष्टि के आदि काल में पूज्य स्वायम्भुवादि मनु को उत्पन्न किया था। इन्होंने तथा विप्रों ने जिस धर्म का पालन किया था, उसे सुनो। ब्राह्मण के छः कार्य थे। यथा—यजन, याजन, दान लेना, अध्यापन, अध्ययन, प्रतिग्रह। यह ब्राह्मण का स्वधर्म है। दान देना, अध्ययन, यज्ञ, ये तीन क्षत्रिय तथा वैश्य, दोनों के साधारण धर्म हैं। क्षत्रिय का विशेष धर्म है राज्य शासन तथा वैश्य का विशेष धर्म है कृषि कार्य। शूद्र का प्रशस्त धर्म है उपरोक्त तीनों वर्णों की सुश्रूषा। शूद्रों की जीविका है शिल्पकार्य। वे धर्म हेतु अपाक यज्ञ करते हैं। भिक्षाचरण, गुरुसेवा, स्वाध्याय रूपी कर्म हैं। इन सभी आश्रमधर्म के भी प्रवर भेद हैं। कोई आश्रम धर्म दो प्रकार का तो कोई चार प्रकार का होता है। इनमें ब्रह्मचारी, उपकुर्वाण, नैष्ठिक तथा व्रततत्पर प्रधान होते हैं॥१-६॥

योऽधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत्। उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः॥७॥
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम्। गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं द्विजसत्तम॥८॥

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।
कुटुम्बभरणे युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत्॥९॥

जो व्यक्ति सविधि वेदपाठ करके (वेद पढ़ कर) गृहस्थ आश्रम में आता है, वह उपकुर्वाण है। जो आजीवन गुरुकुल में ही रहकर वेदाध्ययन करता है, वह नैष्ठिक है। अग्निकार्य, अभ्यागत सेवा, यज्ञ, दान, देवार्चन आदि गृहस्थों के सामान्य कर्म हैं। गृहस्थ दो प्रकार के होते हैं। यथा—उदासीन एवं साधक। जो केवल कुटुम्बी लोगों के भरण-पोषण मात्र में लगा रहता है, वह साधक कहलाता है॥७-९॥

ऋणानित्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्य्याधनादिकम्।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः॥१०॥
भूमौ मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च।
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनः॥११॥

जो गृहस्थ व्यक्ति पितृ ऋणि तथा देवऋण से मुक्त होकर पत्नी, धन आदि सांसारिक वस्तु का त्याग करके एकाकी धर्मचरण तत्पर हो जाता है, वही मोक्षकामी तथा उदासीन है। फलमूल खाकर जीवित रहने वाला, वेदादि अध्ययनशील, तपस्या तथा यथान्याय संविभाग, यह सब वनवासी के धर्म हैं॥१०-११॥

तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान्जुहोति च।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसोत्तमः॥१२॥
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
संन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः॥१३॥

योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः। ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः॥१४॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः।
सम्यक् च दमसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते॥१५॥

जो अरण्य में तप:तप्त होता रहता है, देवयजन करता है, होम करता है, सदा स्वाध्याय तत्पर रहता है, वह यथार्थ उत्तम वनस्थ तपस्वी है। जो तप: द्वारा अत्यन्त कष्ट सहता सदा ईश्वरध्यान में लगा रहता है, वह वानप्रस्थाश्रमी संन्यासी है। जिस भिक्षुक ने अभ्यास से प्राणादि वायु का निरोध किया है, जो इन्द्रियजित् होकर सदा योगाभ्यास रत रहता है, जो सदा ब्रह्मतत्व का अनुसन्धान करता है, वह पारमेष्ठिक है। जो व्यक्ति सदा आत्मानुसन्धान से तृप्त है तथा दमयुक्त है, वही भिक्षुक माना गया है॥१२-१५॥

भैक्ष्यं श्रुतञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः।
सम्यक्च ज्ञानवैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः॥१६॥
ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे।
कर्मसंन्यासिनः केचित्त्रिविधः पारमेष्ठिकः॥१७॥
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः मोक्ष एव च।
तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्त्तिसमाश्रितः॥१८॥
प्रथमा भावना पूर्वे मोक्षे दुष्करभावना। तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी॥१९॥

भिक्षाचरण, श्रुतिपाठ, मौनी रहना, तप-ध्यान तत्परता, सम्यक् ज्ञान-वैराग्य युक्त रहना—यह भिक्षुक का धर्म है। पारमेष्ठिक तीन प्रकार के कहे जाते हैं। यथा—कुछ ज्ञानसंन्यासी होते हैं, कुछ वेदसंन्यासी होते हैं, कुछ कर्मसंन्यासी होते हैं। योगी भी त्रिविध कहे जाते हैं। यथा—भौतिक योगी, मोक्ष योगी, वानप्रस्थाश्रमी योगी। पहले में (भौतिक योगी में) भावना होती है। मोक्ष योगी में मोक्ष की दुष्कर भावना होती है। वानप्रस्थाश्रमी योगी में अन्तिमा पारमेश्वरी भावना होती है॥१६-१९॥

धर्मात्संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम्।
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तञ्चाग्निदेवकृत्॥२०॥

धर्माचरण से मोक्षलाभ, अर्थ (धनादि) से कामनायें उत्पन्न होती हैं। वैदिक कर्म दो प्रकार का होता है। यथा—प्रवृत्तिपरक तथा निवृत्तिपरक। ज्ञानपूर्वक कार्य निवृत्तिपरक होता है। अग्निकार्य होमादि प्रवृत्तिपरक होता है॥२०॥

क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्यास एव च। आर्जवञ्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा॥२१॥
सत्यं सन्तोष आस्तिक्यं तथा चेन्द्रियनिग्रहः।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः॥२२॥
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता। एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः॥२३॥
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम्॥२४॥

वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम्।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारे च वर्त्तताम्॥२५॥

क्षमा, दम, दया, दान, लोभरहित स्थिति, वेदाभ्यास, सरलता, अहिंसा, तीर्थाटन, सत्यपालन, सन्तोष, आस्तिक्य, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा ब्राह्मण धर्म हैं। अहिंसा, प्रिय बोलना, खलता त्याग, कठोर भाव को छोड़ना, यह सभी आश्रमों के लिये नियम युक्त धर्म हैं। तदनन्तर मैं चारों वर्णों का धर्म वर्णन करता हूं। ब्राह्मण ऊपर कहे गये अपने आश्रमधर्म का पालन करके प्राजापत्य लोक पाता है। जो क्षत्रिय लोग संग्राम में भयग्रस्त नहीं होते, स्वधर्मतत्पर रहते हैं, इनको इन्द्रलोक मिलता है। वैश्य लोग स्वधर्मरत होकर अन्तकाल में वायुलोक जाते हैं। शूद्र लोग ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की परिचर्या में रहते अन्ततः गन्धर्वलोक प्राप्त करते हैं॥२१-२५॥

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम्॥२६॥

अट्ठासी हजार ऋषियों ने अपने तपःप्रभाव से जिस स्थान को पाया था, गुरुगृह में रहने वाले मनुष्य वही स्थानलाभ करते हैं॥२६॥

सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्थानं तद्वै वनौकसाम्।
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम्।
आनन्दं ब्रह्म तत् स्थानं यस्मान्नावर्त्तते मुनिः॥२७॥

मरीचि, अत्रि आदि सप्तर्षियों ने अपने तप के बल से जो स्थान पाया है, वन में रहने वाले तपस्वी भी वही स्थान पाते हैं। संयमित मतियुक्त ऊर्ध्वरेता संन्यासी लोगों को आनन्द ब्रह्म स्थान मिलता है। हे मुनि! वहां से वे वापस लौटकर कभी नहीं आते॥२७॥

योगिनाममृतस्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम्। आनन्दमैश्वरं यस्मान्मुक्तो नावर्त्तते नरः॥२८॥

जो सदैव योगरत रहते हैं, उनको व्योम नामक अक्षय परमाक्षर अमृत स्थान लाभ होता है। उस आनन्दपूर्ण ईश्वर स्थान से वे मुक्त लोग कभी वापस नहीं लौटते॥२८॥

मुक्तिरष्टाङ्गविज्ञानात् संक्षेपात्तद्वदे शृणु।
यमाः पञ्चत्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम्॥२९॥
सत्यं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वाग्रहं परम्। अमैथुनं ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रहः॥३०॥
नियमाः पञ्च सत्याद्या बाह्यमाभ्यन्तरं द्विधा। शौचं सत्यञ्च सन्तोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहः॥३१॥
स्वाध्यायः स्यान्मन्त्रजपः प्रणिधानं हरेर्यजिः। आसनं पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः॥३२॥

अष्टांग योग जानने वाले लोग संसार से मुक्त हो जाते हैं। वह अष्टांग योग सुनो। मैं संक्षेप में कहता हूं। संयम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अमैथुन, ब्रह्मचर्य, सर्वत्याग एवं अपरिग्रह ही अष्टांग योग है। संयम पंचेन्द्रिय निग्रह का नाम है। प्राणिमात्र के प्रति हिंसा की भावना न होना अहिंसा है। सभी प्राणीगण के प्रति हितकारी वाक्य कहना ही सत्य है। पराये द्रव्य की लालसा न होना अस्तेय है। मैथुन की कामना का अभाव होना ब्रह्मचर्य है। सर्वत्याग ही अपरिग्रह है। सत्य आदि पांच को नियम कहते हैं। यह भी बाह्य

एवं आभ्यन्तर रूप से दो तरह का होता है। सत्य ही शौच है। परतुष्टि करना सन्तोष है। इन्द्रियनिग्रह ही तप: है। मन्त्रजप ही स्वाध्याय है। हरि की पूजा ही प्रणिधान है। पद्मासनादि ही आसन है। वायुरोध ही प्राणायाम है॥२९-३२॥

मन्त्रध्यानयुतो गर्भो विपरीतो ह्यगर्भकः।
एवं द्विधा त्रिधाप्युक्तं पूरणात् पूरकः स च।
कुम्भको निश्चलत्वाच्च रेचनाद्रेचकस्त्रिधा॥३३॥

लघुर्द्वादशमात्रः स्याच्चतुर्विंशतिकः परः। षट्त्रिंशन्मात्रिकः श्रेष्ठः प्रत्याहारश्च रोधनम्॥३४॥

प्राणायाम भी द्विविध कहा गया है। मन्त्र तथा ध्यानमय प्राणायाम को **सगर्भ प्राणायाम** कहा गया है। मन्त्र तथा ध्यान रहित प्राणायाम **अगर्भ प्राणायाम** है। सगर्भ को श्रेष्ठ कहते हैं। प्राणायाम के भी तीन अन्य भेद हैं। यथा—पूरक-कुंभक-रेचक। वायु भीतर खींचना पूरक है। भीतर खींची वायु को रोकना ही कुंभक है। रोकी वायु को बाहर निकालना ही रेचक है। बारह बार जप से जो प्राणायाम किया जाता है, वह लघु प्राणायाम है। २४ जप से जो प्राणायाम करते हैं, वह मध्यम है। ३६ बार जपयुक्त जो प्राणायाम है, उसे श्रेष्ठ कहते हैं॥३३-३४॥

ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्याद्धारणा मनसो धृतिः।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः॥३५॥

अहमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम्। ब्रह्मविज्ञानमानन्दः स तत्त्वमसि केवलम्॥३६॥
अहं ब्रह्मास्मयहं ब्रह्म अशरीरमनिन्द्रियम्। अहं मनोबुद्धिमहदहङ्कारादिवर्जितम्॥३७॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियुक्तज्योतिस्तदीयकम्। नित्यं शुद्धं बुद्धियुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम्॥३८॥

योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्डितम्।
इति ध्यायन् विमुच्येत ब्राह्मणो भवबन्धनात्॥३९॥

॥इति गारुडे महापुराणे अष्टाङ्गयोगो नाम ऊनपञ्चाशदध्यायः॥४९॥

ब्रह्म के साथ आत्मा के अभेद का चिन्तन ही ध्यान है। मन में धैर्य धारण करना धारणा है। ब्रह्म से अभेद ज्ञान करके उसमें चित्त स्थापना ही समाधि है। "मैं ही आत्मारूप परब्रह्म सत्य तथा अनन्त ज्ञान हूं।" यह ज्ञान होने पर उस योगी का ज्ञान कभी अस्थिर नहीं होता। ब्रह्म को जानना ही परम आनन्द है। वह केवल तथा 'तत्वमसि' है। आत्मा ही ब्रह्मस्वरूप है। "मैं ब्रह्म हूं। शरीर रहित हूं। मैं इन्द्रिय रहित ब्रह्म हूं। मैं मन-वायु-बुद्धि-अहंकार से रहित हूं। मैं जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति आदि से रहित ज्योति:रूप हूं। मैं नित्य शुद्ध-बुद्ध-सत्यमय, आनन्दमय एवं अद्वय रूप हूं। तेजो रूप यह आदित्य पुरुष भी मैं हूं। जो मैं ही वह अखण्डित आदित्य पुरुष हूं।" इस ध्यान को करने वाला ब्राह्मण भवबन्धन से छूट जाता है॥३५-३९॥

॥उन्चासवां अध्याय समाप्त॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नित्यक्रिया प्रणाली वर्णन

ब्रह्मोवाच

अहन्यहनि यः कुर्यात् क्रियां स ज्ञानमाप्नुयात्।
ब्रह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत्॥१॥
चिन्तयेद्धृदि पद्मस्थमानन्दमजरं हरिम्। उषःकाले तु संप्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः।
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि॥२॥
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत्॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—जो मानव नित्य-क्रिया करता है, वह ज्ञान पा लेता है। ब्राह्ममुहूर्त्त में उठ कर धर्म, अर्थ का चिन्तन करे। द्विज लोग प्रात: उठते ही हृदयकमल में स्थित सनातन प्रभु हरि का ध्यान करें। तदनन्तर शौचादि सम्पन्न करके सविधि आचमन करके पुण्य जलमयी नदी में स्नान करके पवित्र हो जायें। इसलिये लोग प्रात: स्नान करके पापी होने पर भी पवित्र हो जाते हैं। तभी सर्वप्रयत्न पूर्वक प्रात: स्नान करना चाहिये॥१-३॥

प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत्।
सुखात् सुप्तस्य सततं लालाद्याः संस्रवन्ति हि।
अतो नैवाचरेत् कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः॥४॥
अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम्।
प्रातःस्नानेन पापानि धूयन्ते नात्र संशयः॥५॥
न च स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्म संस्मृतम्।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत्॥६॥

प्रात: स्नान दृष्ट (ऐहिक) तथा अदृष्ट (पारलौकिक) फलप्रद होता है। सभी इसकी प्रशंसा करते हैं। सुखपूर्वक शयनावस्था में जो लार आदि स्रवित होती है, उससे सभी के शरीर अपवित्र हो जाते हैं। स्नान किये बिना सन्ध्या-वन्दना आदि कुछ भी करना अविहित है। प्रात: स्नान करने से अलक्ष्मी, पिशाच आदि की दृष्टि तथा दु:स्वप्न, दुर्विचिन्ता आदि पापपूर्ण स्थिति धुल जाती है। यह नि:संदिग्ध है। स्नान किये बिना मनुष्य के द्वारा किये गये जप-होम आदि कर्म प्रशस्त नहीं माने जाते। अत: विशेषतया प्रात: स्नान करे॥४-६॥

अशक्तावशिरस्कं तु स्नानमस्य विधीयते।
आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं कायिकं स्मृतम्॥७॥

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च। वारुणं यौगिकं तद्वत्षडङ्गं स्नानमाचरेत्॥८॥

ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद् देहधूननम्॥९॥
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम्।
यत् तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते॥१०॥
वारुणञ्चावगाहञ्च मानसं त्वात्मवेदनम्।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन परिचिन्तनम्।
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः॥११॥

जो जल में डुबकी लगाकर स्नान करने में अशक्त हैं, वे बिना शिर डुबोये स्नान करें। गीले वस्त्र से शरीर पोछने से भी स्नान सिद्ध होता है। यह कायिक स्नान है। स्नान छः प्रकार के कहे गये हैं। यथा—ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वरुण, यौगिक। पात्रों के अनुसार इन छः प्रकार के स्नानों का विधान किया गया है। जो मन्त्रपाठ करते हुये कुश द्वारा अंगों पर जलविन्दु छिड़कता है, वह **ब्राह्म स्नान** है। मस्तक से लगा कर पैर तक भस्म से शरीर को मलना ही **भस्म स्नान** है। गोबर से अंगमार्जन **वायव्य स्नान** है। अपने पूरे देह में धूप लगने देना, यह **दिव्य स्नान** है। जल में डुबकी लगा कर नहाना **वारुण स्नान** है। योग चिन्तन (ध्यान) ही **यौगिक स्नान** है। ब्रह्मवादीगण आत्मा को तीर्थ मानते हैं तथा उसका ही (ध्यानादि से) सेवन करते रहते हैं॥७-११॥

क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्। अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरञ्च धारणम्॥१२॥

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कुर्य्यात्तु दन्तधावनम्।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः॥१३॥

स्नात्वा सन्तर्पयद्देवानृषीन्पितृगणांस्तथा। आचम्य विधिवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः॥१४॥

संमार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः॥१५॥
ओंकारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम्।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भस्करं प्रति तन्मनाः॥१६॥

जिस वृक्ष की शाखा अथवा पत्ती तोड़ने पर दूध निकले वह क्षीरी वृक्ष होता है। क्षीरीवृक्ष, गूलर की लकड़ी, मालती की लकड़ी, अपामार्ग की लकड़ी, कनेर की लकड़ी अथवा बिल्व की लकड़ी से उत्तरमुख किंवा पूर्वमुख होकर दन्तधावन करे। तदनन्तर समाहित मन होकर मुख धोकर स्वच्छ करना चाहिये। इसके अनन्तर शुद्ध जगह पर दतुअन फेंके। इसके बाद नहाकर देवता, ऋषि तथा पितरों के लिये तर्पण करे। संयत वाणी होकर सविधि आचमनोपरान्त पुनराचमन का नियम पालन करे। इसके पश्चात् कुशाग्र से देह पर जल के छींटे देकर अंगों का मार्जन करना चाहिये। उस समय "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्र से आपोमार्जन कार्य सम्पन्न करना चाहिये। इसके अनन्तर सविधि "ॐ भूर्भुवः स्वः" इन

वेदमाता गायत्री को जपे। तब एकाग्रता के साथ सूर्यदेव को जल अर्पित करे। इसे जलांजलि कहा गया है॥१२-१६॥

प्रातःकाले ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः।
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुतिः॥१७॥
या सन्ध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा॥१८॥
ध्यात्वा रक्तां सितां कृष्णां गायत्रीं वै जपेद्बुधः।
प्राङ्मुखः सततं विप्र सन्ध्योपासनमाचरेत्॥१९॥

स्नान के उपरान्त किनारे आकर कुशासन पर बैठे तथा संयत होकर प्राणायाम करके सावित्री का ध्यान करे। वेदों में इसे ही सन्ध्या का नाम दिया गया है। यह सन्ध्या माया से अतीत, निष्कला, जगत् की उत्पत्ति रूप, सत्व-रजःतमः रूप तीनों सत्वों से सम्भूत ईश्वरी शक्ति है। ब्राह्मण (तथा द्विजों) को चाहिये कि वे प्रातः (स्नानादि के उपरान्त) रक्तवर्णा गायत्री का ध्यान करें। मध्याह्न में श्वेतवर्णा गायत्री का तथा सायाह्न में कृष्णवर्णा गायत्री का जप करें। सदा पूर्वमुखी रहकर विप्र (तथा द्विज) सन्ध्योपासना कर्म सम्पन्न करें॥१७-१९॥

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्भवेत्॥२०॥
अनन्यचेतसः सन्तो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वपरां गतिम्॥२१॥
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्य्ये द्विजोत्तमः।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम्॥२२॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत्। उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः॥२३॥
सहस्रपरमां नित्यां शतमध्यां दशापराम्। गायत्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः॥२४॥
अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयस्थं समाहितः। मन्त्रैस्तु विविधैः सारै ऋग्यजुःसामसंज्ञितैः॥२५॥

जो द्विज सन्ध्यारहित हैं, वे सर्वदा अपवित्र हैं। उनको किसी दैव-पितृ कार्य में अधिकार नहीं होता। उसे किसी कार्य का भी फललाभ नहीं होता। पूर्वकाल में शान्तचित्त वाले वेदज्ञ ब्राह्मण एकाग्र चित्त होकर सविधि सन्ध्या-उपासना करते थे। उससे उनको उत्तम गतिलाभ होता था। जो कोई विप्र सन्ध्योपासना त्याग कर अन्य धर्मकार्य में लगता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है। उसे दस हजार नरकों में यातना भोग करना पड़ता है। इसलिये सभी प्रकार के यत्न द्वारा सन्ध्योपासना करे। इससे उस व्यक्ति के प्रति देवता प्रसन्न हो जाते हैं। बुद्धिमान ब्राह्मण को चाहिये कि वह पूर्वमुखी होकर आसन पर बैठे तथा एकाग्र होकर पवित्र मन से एक हजार, सौ अथवा दस गायत्री जपे। सहस्र जप का श्रेष्ठ फल, सौ जप का मध्यफल तथा दस बार जप का अधम फल मिलेगा। इसके पश्चात् संयत होकर ऋग्-यजुः-साम वेद के मन्त्रों द्वारा उदित हो रहे सूर्य की उपासना की जाये॥२०-२५॥

उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम्। कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्द्धानमभिमन्त्रितः॥२६॥
ओं खवोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे। निवेदयामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे॥२७॥
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम्। भूर्भुवःस्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः॥२८॥
एतद्वै सूर्य्यं हृदये जप्त्वा स्तवनमुत्तमम्। प्रातःकाले च मध्याह्ने नमस्कुर्याद्दिवाकरम्॥२९॥

महायोगमय देवदेव दिवाकर की उपासना करके मन्त्रपाठ के साथ साधक भूमि पर मस्तक रख कर उनको प्रणाम करे। तब यह प्रार्थना करनी चाहिये—"सूर्यदेव! आप शान्त मूर्त्ति हैं। तीनों कारणों के भी कारण हैं। आप ज्ञानरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करके अपने को समर्पित करता हूं। हे प्रभु! दिवाकर देव! आप ही परम ब्रह्म, आप्, ज्योतिः, रस, अमृत हैं। आप ही भूर्भुवः स्वः मन्त्ररूपी हैं। आप ओंकार रूप, एकादश रुद्र तथा सनातन हैं।" इस सूर्यहृदय स्तव का पाठ प्रातः, मध्याह्न तथा सायाह्न में करके सूर्यदेव को प्रणाम करना चाहिये॥२६-२९॥

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि। प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्॥३०॥
ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि।
विना मन्त्रेण यत्कर्म नामुत्रेह फलप्रदम्॥३१॥
दैवतानि नमस्कुर्य्यादुपहारान्निवेदयेत्। गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत्॥३२॥
वेदाभ्यासं ततः कुर्य्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः।
जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत्॥३३॥
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तम।
वैदिकांश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः॥३४॥
उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमप्रसिद्धये। साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थं ततो द्विजः॥३५॥
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत्। पुष्पाक्षतान्तिलकुशान् गोमयं शुद्धमेव च॥३६॥
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च। स्नानं समाचरेन्नैव परकीये कदाचन।
पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य स्नानं दुष्यन्ति नित्यशः॥३७॥

तदनन्तर ब्राह्मण घर आकर पुनः सविधि आचमन करे। इसके पश्चात् नियमानुरूप विधान से अग्नि प्रज्वलित करके होम करे। होम कार्य यदि स्वयं न कर सके तब अपने पुरोहित, पुत्र, पत्नी, शिष्य अथवा भाई भी उसकी आज्ञा द्वारा यह होमकार्य कर सकते हैं। नियम तथा मन्त्ररहित, विधानरहित कोई भी कार्य इस लोक में तथा परलोक में फलप्रद नहीं होता। होमान्त में देवताओं को प्रणाम करे तथा उनको नाना प्रकार का उपहार निवेदित करे। तत्पश्चात् गुरुदेव की भी पूजा करके उनकी हित साधना करनी चाहिये। इसके पश्चात् ब्राह्मणगण यत्नतः वेदपाठ तथा इष्टमन्त्र को जपें। जप के पश्चात् शिष्यों का अध्यापन कार्य करे। ब्राह्मणों को चाहिये कि वे धर्मशास्त्रों को पढ़ कर वैदिक निगम ग्रन्थ तथा वेदादि शास्त्रों का

भी अवलोकन करें। वे इस प्रकार से ईश्वर चिन्तन के उपरान्त कुटुम्ब के भरण-पोषणार्थ अर्थ का उपार्जन करे। वह व्यक्ति (साधक-पूजक) पुनः मध्याह्न काल में स्नान हेतु मिट्टी लाये। पुष्प, अक्षत, तिल, कुश, गोमय आदि द्रव्य ले आये। नदी, देवखात, तड़ाग, सरोवर में स्नान करना चाहिये। कदापि दूसरे के पोखरे में स्नान न करे। पराये पोखरे में स्नान करने पर स्नानार्थी पांच मिट्टी के पिण्ड पोखरे में से निकाल कर तब स्नान करे। पांच मिट्टी का पिण्ड पराये पोखरे से निकाले बिना जो उसमें नहाता है, वह स्नान शुद्धिदायक नहीं होता (स्नान के समय मृत्तिका से अंग शोधन का यह नियम है)॥३०-३७॥

मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि।
अधश्च तिसृभिः क्षाल्यं पादौ षड्भिस्तथैव च॥३८॥
मृत्तिका च समुद्दिष्टा वृद्धामलकमात्रिका। गोमयस्य प्रमाणन्तु तेनाङ्गं लेपयेत्ततः।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः॥३९॥
लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः।
अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैरालिङ्गैर्वारुणैः शुभैः।
स्नानकाले स्मरेद्विष्णुमापो नारायणो यतः॥४०॥

मिट्टी एक बार मस्तक पर, दो बार उसके ऊपर, नाभि के नीचे तीन बार, दोनों पैरों पर छः बार मिट्टी का लेपन करके अंगों को धोये। एक आमलकी जितनी मिट्टी एक बार में लेनी चाहिये। इसी के बराबर गोबर लेकर उसका अंगों में लेपन करे। मन्त्र का ज्ञाता ब्राह्मण स्नान के पश्चात् जल के किनारे जाये तथा मिट्टी से अंग लिप्त करके जल को वारुण मन्त्र से अभिमन्त्रित करे तथा उससे शरीर धोये। स्नान के समय जल का स्मरण विष्णुरूपेण करना चाहिये। जल तो नारायण का ही स्वरूप होता है॥३८-४०॥

प्रेक्ष्य ओंकारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये।
आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥४१॥
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम्।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम्॥४२॥
द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद् व्याहृतिप्रणवान्विताम्।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाघमर्षणम्॥४३॥
ततः संमार्जनं कुर्य्यादापोहिष्ठामयो भुवः। इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च।
ततोऽभिमन्त्रितं तोयमापोहिष्ठादिमन्त्रकैः॥४४॥
अन्तर्जलमवागग्नौ जपेत्त्रिरघमर्षणम्। द्रुपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः परमं पदम्।
आवर्त्तयेद्वा प्रणवं देवदेवं स्मरेद्धरिम्॥४५॥

इसके बाद में मन्त्र जानने वाला ब्राह्मण "ॐ" का उच्चारण करके सूर्य का दर्शन करे तथा तीन बार जलाशय में डुबकी लगाये। "अन्तश्चरसि" इत्यादि पुनः आचमन करे। मन्त्र है—"हे जल! तुम सभी

प्राणीगण के अन्तर स्थित गुहा में अवस्थान करते हो। तुम्हारी गति सर्वत्र रहती है। तुम यज्ञ हो, तुम ही वषट्काररूपी मन्त्र हो, ज्योतिर्मय तथा समस्त रसाधार हो।" इसके पश्चात् "ॐ द्रुपदादिव" इत्यादि मन्त्र का तीन पाठ करने के अनन्तर "ॐ भूर्भुवः स्वः" गायत्री का जप करे। यह करने के पश्चात् अघमर्षण जप करके "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्र द्वारा साधक को सम्मार्जन कार्य सम्पन्न करना चाहिये। "इदमापः प्रवहतः" इत्यादि तथा "भूर्भुवः स्वः" इन दो मन्त्रों से जल को मन्त्रित करके "ॐ आपोहिष्ठा" इत्यादि से तीन बार अघमर्षण जप करे। इसके पश्चात् "ॐ द्रुपदादिव" इत्यादि मन्त्र पाठ करे और गायत्री एवं "तद्विष्णो परमं पदं" इत्यादि का पाठ करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ' का उच्चारण करते हुये हरि स्मरण करे॥४१-४५॥

आपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं मुच्यते सर्वपातकैः॥४६॥

सन्ध्यामुपास्य चाचम्य संस्मरेन्नित्यमीश्वरीम्। अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वपुष्पान्विताञ्जलिः॥४७॥
प्रक्षिप्यालोकयेद्देवमुदयस्थं न शक्यते। उदुत्यं चित्रमित्येव तच्चक्षुरिति मन्त्रतः॥४८॥
हंसः शुचिः सदेतेन सावित्र्या च विशेषतः। अन्यैः सौरैर्वैदिकैश्च गायत्रीञ्च ततो जपेत्॥४९॥

इसके अनन्तर हथेली में जल लेकर उसे गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करने के पश्चात् उस जल को अपने मस्तक पर गिराये। वह ब्राह्मण सर्वपापरहित हो जाता है। द्विजगण नित्यप्रति सन्ध्योपासना सम्पन्न करने के पश्चात् आचमन करें तथा इष्टचिन्ता करें। तब शिर पर हाथ उठा कर उन्हें जोड़ कर सूर्यदेव की उपासना करनी चाहिये। इस कार्य को सूर्योपस्थान कहते हैं। इसे करते समय पूजन की दृष्टि सदैव सूर्य के प्रति रहनी चाहिये। "उदुत्यं" इत्यादि, "चित्रमित्येव" इत्यादि, "च्चक्षुरिति" इत्यादि तथा "हंसः शुचिः" इत्यादि मन्त्रों से सूर्योपस्थान कार्य सम्पन्न करना चाहिये। इनके अतिरिक्त सूर्योपस्थान के अन्य वैदिक जो मन्त्र हैं, उनसे सूर्य की उपासना करके गायत्री जप करना होगा॥४६-४९॥

मन्त्रांश्च विविधान् पश्चात् प्राक्कूले च कुशासने।
तिष्ठंश्च वीक्ष्यमाणोऽर्कं जपं कुर्यात्समाहितः॥५०॥

स्फटिकाब्जाक्षरुद्राक्षैः पुत्रञ्जीवसमुद्भवैः। कर्त्तव्या त्वक्षमाला स्यादन्तरा तत्र सा स्मृता॥५१॥
यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतश्चरेत्। अन्यथा च शुचौ भूम्यां दर्भेषु च समाहितः॥५२॥

प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कुर्य्यात्ततः क्षितौ।
आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत्॥५३॥

(विविध मन्त्रों से यह कार्य सम्पन्न करके) पूर्वमुख होकर कुशासन पर बैठे। वहां सूर्य का ध्यान करके विविध मन्त्र जप करता हुआ समाहित होकर बैठे। स्फटिक, कमलगट्टे, रुद्राक्ष, पुत्रजीवी की माला से गायत्री जप करे। यह माला कुछ-कुछ अन्तर पर एक-एक ग्रन्थि देकर बनाये। यदि जपकर्त्ता के वस्त्र गीले हों, तब वह खड़ा होकर जल में जप करे, अन्यथा कुशासन पर बैठ कर एकाग्रतापूर्वक जप करे। तब भास्कर देव हेतु प्रदक्षिणा करके उनको दण्डवत् प्रणाम करने के पश्चात् शास्त्रीय विधि से आचमन करके अपनी शक्ति जितनी हो, उतना वेदपाठ तथा स्वाध्याय कार्य करना चाहिये॥५०-५३॥

ततः सन्तर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
आदावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि च॥५४॥
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः।
पितॄन् देवान् मुनीन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः।
देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन्॥५५॥
यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे। प्राचीनावीती पित्र्ये तु तेन तीर्थेन भारत॥५६॥

इसके पश्चात् देवता, ऋषि तथा पितरों का तर्पण करे। पहले ॐकार लगाकर तथा नमः कहकर तब नाम लेकर तर्पण करे। यथा—ॐ नमः पितृन् तर्पयामि इत्यादि। अक्षत मिश्रित जल से देवता तथा ऋषि तर्पण करते हैं। पितर, देवता, मुनि को अपने वेदशाखोक्त विधान से तर्पित करे। ऋषि तथा देवतार्पण एक अंजलि जल से तथा पितृतर्पण तीन अंजलि जल से करे। देवता तर्पण में यज्ञोपवीत वाम कंधे पर हो। पितृतर्पण में यज्ञोपवीत दाहिने कंधे पर हो। ऋषितर्पण काल में यज्ञोपवीत को मालावत् लटकाये रहे॥५४-५६॥

निष्पीड्य स्नानवस्त्रं वै समाचम्य च वाग्यतः।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैस्तथाम्बुभिः॥५७॥

(अंगुली का अगला भाग देवतीर्थ कहाता है। इससे देवतर्पण करे। अंगूठा, तर्जनी का मध्यभाग पितृतीर्थ है। इससे पितरों का तर्पण किया जाये। कनिष्ठा उंगली का मूल कायतीर्थ है। इससे ऋषितर्पण होता है)

स्नानवस्त्र निचोड़ कर उस जल से तर्पण करके वाक्संयम के साथ आचमन करना चाहिये। जिन देवताओं का पूजन करना हो, उनके मन्त्रों से पुष्प, पत्र, जल से उनकी पूजा करनी चाहिये॥५७॥

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम्।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनो हरः॥५८॥
प्रदद्याद्वाथ पुष्पादि सूक्तेन पुरुषेण तु।
आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः॥५९॥

हे हर! ब्रह्मा, शंकर, सूर्य, मधुसूदन तथा अन्य देवताओं की अर्चना भक्ति भाव के साथ क्रोधरहित होकर किया जाये। इसके बाद पुरुषसूक्त के मन्त्र पढ़ते हुये पुष्पार्पण करे। जल तो सभी देवों से युक्त होता है। अतः सदैव जल का सम्मान करे। सभी देवताओं की अर्चना जल द्वारा होती है॥५८-५९॥

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै देवं परिसमाहितः।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक्॥६०॥

साधक को चाहिये कि वह देवता का ध्यान करके ओंकार से देवता नाम संयुक्त करके समाहित होकर उनका ध्यान करे। नमस्कारोपरान्त सभी देवताओं को अलग-अलग पुष्पांजलि देनी चाहिये॥६०॥

नर्ते ह्याराधनां पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम्।
तस्मात्त्रादिमध्यान्ते चेतसा धारयेद्धरिम्॥६१॥

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु। निवेदयेच्च आत्मानं विष्णवेऽमलतेजसे॥६२॥

वेदों के मतानुसार देवता की आराधना से बढ़ कर कोई भी कर्म पुण्यप्रद नहीं है। अत: आदि-मध्य-अन्त तीनों स्थिति में हरि को मन में धारण किये रहना चाहिये। साधक विष्णुध्यानयुक्त रहकर "तद्विष्णोः परमं पदम्" इत्यादि मन्त्र द्वारा तथा पुरुषसूक्त के मन्त्रों द्वारा विमल तेजवान् विष्णु के सामने अपना समर्पण करे। साधक विष्णुध्यान तत्पर तथा "तद्विष्णो परमं पदम्" इत्यादि मन्त्र द्वारा तथा पुरुष सूक्त द्वारा अपनी आत्मा विमल तेजस्वी विष्णु को अर्पित करे॥६१-६२॥

तदध्यातमनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रितः। देवयज्ञं भूतयज्ञं पितृयज्ञं तथैव च।
मानुषं ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान् समाचरेत्॥६३॥
यदि स्यात्तर्पणादर्वाग् ब्रह्मयज्ञं कुतो भवेत्।
कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाध्यायमाचरेत्॥६४॥
वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो देवयज्ञः स तु स्मृतः।
भूतयज्ञः स वै ज्ञेयो भूतेभ्यो यस्त्वयं बलिः॥६५॥
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च।
दद्याद् भूमौ बहिस्त्वन्नं पक्षिभ्यश्च द्विजोत्तमः॥६६॥

एकं तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्दिश्य सत्तमः। नित्यश्राद्धं तदुद्दिश्य पितृयज्ञो गतिप्रदः॥६७॥

साधक विष्णुध्यान परायण होकर 'तद्विष्णो परमं पदम्' इत्यादि मन्त्र से, अभिमन्त्रित होकर अथवा पुष्प को अभिमन्त्रित करके नित्य देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ नामक पंचयज्ञों का अनुष्ठान करे। यदि तर्पण के अन्त में मनुष्ययज्ञ किया जाये तब ब्रह्मयज्ञ नहीं हो सकता। अत: नियम यह है कि सर्वाग्र में ब्रह्मयज्ञ करके तब मानुषयज्ञ सम्पन्न करे और वेदपाठादि भी करे। ब्राह्मण वैश्वदेव में बलि अवश्य प्रदान करे। वैश्वदेव को देवयज्ञ कहते हैं। जिसमें प्राणियों हेतु अन्न बलि दी जाती है। वह भूतयज्ञ है। आत्मीय स्वजनों, चाण्डाल आदि पालितों को भोजनादि देकर बाहर भूमि पर पक्षीगण को भोजन देना ही भूतबलि है। पितर के उद्देश्य से एक ब्राह्मण को भोजन देना चाहिये। नित्य पितृश्राद्ध पितरों के उद्देश्य से करे। यह पितृयज्ञ है। इससे बाद में उस व्यक्ति को (जो यह करता है) उत्तम गति मिलती है॥६३-६७॥

उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः। वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत्॥६८॥

पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्चयेद् द्विजम्।
मनोवाक्कर्मभिः शान्तं स्वागतैः स्वगृहं ततः॥६९॥

भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तस्य चतुर्गुणम्। पुष्कलं हस्तमात्रन्तु तच्चतुर्गुणमुच्यते॥७०॥

अपनी शक्ति के अनुसार अन्न एकत्र करके वेद के तत्वज्ञाता ब्राह्मण को देना चाहिये। नित्य अतिथि सत्कार तथा ब्राह्मणों को नमस्कार करके उनकी अर्चना करनी चाहिये। मन-वाणी-कर्म से शान्त

मन से उनका अपने गृह में स्वागत करे। उनको एक ग्रास कम से कम अन्न देना ही चाहिये। चार ग्रास अन्न देना तो उत्तम भिक्षा है अथवा एक मुट्ठी अन्न देना भी चतुर्गुण फलप्रद है॥६८-७०॥

गोदोहमात्रकालो वै प्रतीक्षेदतिथिः स्वयम्।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं तथा॥७१॥
भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद् ब्रह्मचारिणे।
दद्यादन्नं यथाशक्ति अर्थिभ्यो लोभवर्जितः।
भुञ्जीत बन्धुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्॥७२॥
अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमः।
भुञ्जते चेत् स मूढात्मा तिर्यग्योनिञ्च गच्छति॥७३॥

किसी अतिथि के आने का इन्तजार उतनी देर करना चाहिये, जितनी देर में एक गौ को दुहा जाता है। गृहस्थ व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी धन शक्ति के अनुसार घर आये अतिथि का सत्कार करे। गृहस्थाश्रमी व्यक्ति को चाहिये कि वह ऐसे भिक्षार्थी को जो ब्रह्मचारी हो, सविधि भिक्षान्न देकर सन्तुष्ट करे। उसे लोभरहित होकर अतिथि को अन्न देना चाहिये। इसके अनन्तर गृहस्थाश्रमी मौनी स्थिति में अपने परिजनों के साथ भोजन करे। भोजन करते समय भोजन की निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। जो द्विज बिना पञ्चमहायज्ञ किये भोजन करता है, वह मूढ़ात्मा व्यक्ति पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनि में जन्म लेता है॥७१-७३॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमाः।
नाशयन्त्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा॥७४॥
यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकाञ् शुकरादेव जायते॥७५॥

जो इस महायज्ञ को सम्पन्न करने नित्य वेदाभ्यास करता है, उसके समस्त पापों का नाश होता तथा उसे देवार्चन फल मिलता है। जो मोह तथा आलस्य के कारण देवार्चनादि किये बिना भोजन करता है, वह नरकगामी होकर तत्पश्चात् शूकर योनि में जन्म लेता है॥७४-७५॥

अशौच संप्रवक्ष्यामि अशुचिः पातकी सदा। अशौचं चैव संसर्गाच्छुचिः संसर्गवर्जनात्॥७६॥
दशाहं प्राहुराशौचं सर्वे विप्रा विपश्चितः। मृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तम॥७७॥
आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम्। त्रिरात्रमौपनयनाद्दशरात्रमतः परम्॥७८॥

क्षत्रियो द्वादशाहेन दशभिः पञ्चभिर्विशः।
शुद्ध्येन्मासेन वै शूद्रो यतीनां नास्ति पातकम्।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावेषु शौचकम्॥७९॥

।इति गारुडे महापुराणे आचारखण्डे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

अब अशौच (अपवित्रता) का वर्णन करता हूं। अपवित्र सदा पातकी होता है। उसका संसर्ग अशौच का कारण है। संसर्ग रहित होना ही पवित्रता है। ब्राह्मण के जन्म-मरण में दस दिन का अशौच होता है। यही पुराने विद्वानों का कहना है। यदि बालक दांत उगने के पूर्व मृत हो जाये, तब ज्ञातृवर्ग सद्यः अशौचरहित हो जाते हैं। यदि दांत उगने से लेकर चूड़ाकरण के पूर्व कोई बालक मृत हो, तब एक रात्रि का अशौच ज्ञातृवर्ग को होगा। चूड़ाकरण से लेकर उपनयन के पूर्व बालक के मरण पर तीन रात का तथा उपनयन के पश्चात् मृत होने पर दस रात का अशौच होगा। यदि एक मास का गर्भ गिर जाये, तब एक रात, दो मास का गर्भ गिरे, तब दो रात, इस प्रकार जितने मास का गर्भ गिरे उतनी रात्रि का अशौच होगा॥७६-७९॥

॥पचासवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दानधर्म वर्णन

ब्रह्मोवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम्। अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्॥१॥
दानन्तु कथितं तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत्॥२॥
अध्यापनं याजनञ्च वृत्तमाहुः प्रतिग्रहम्। कुषीदं कृषिवाणिज्यं क्षत्रवृत्तोऽथवार्जयेत्॥३॥
यद्दीयते तु पात्रेभ्यस्तद्दानं सात्त्विकं विदुः। नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं दानमीरितम्॥४॥
अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे। अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यशः॥५॥
यत्तु पापोपशान्त्यै च दीयते विदुषां करे। नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम्॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—अब मैं दानधर्म को कह रहा हूं। यह सर्वोत्तम धर्म है। सश्रद्ध भाव से उचित व्यक्ति को धनादि देना ही दान कहा गया है। इस दानधर्म के पालन से दानदाता इस लोक में सुख भोग करके मृत्यु के पश्चात् मोक्षलाभ करता है। न्यायतः धन उपार्जित करके ही धनदान तथा धनभोग का (यथार्थ) फल मिलता है। अध्यापन, याजन तथा प्रतिग्रह, यह वृत्ति ब्राह्मण धर्मान्तर्गत् है। यदि ब्राह्मण की जीविका इससे न चले, तब ब्राह्मण युद्ध प्रभृति तथा सूद लेना, कृषिकार्य, वाणिज्यरूपी वैश्यवृत्ति अपना सकता है। सत्पात्र को जो दान दिया जाता है, वह सात्विक दान है। यह चार प्रकार का होता है। यथा—नित्य, नैमित्तिक, काम्य एवं विमल। बिना कोई आशा किये तथा बिना किसी फल की कामना किये जो कुछ दान नित्य-प्रति ब्राह्मण को दिया जाये, वही **नित्य दान** है। कोई पाप हो तथा उसे शान्त करने हेतु विद्वानों के हाथों में जो दान दिया जाता है, इसे सत् व्यक्तिगण **नैमित्तिक दान** कहते हैं॥१-६॥

अपत्यविजयैश्वर्य्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते। दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥७॥
ईश्वरप्रीणनार्थाय ब्रह्मवित्सु प्रदीयते। चेतसा सत्त्वयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम्॥८॥

पुत्रप्राप्ति, युद्ध में विजय, ऐश्वर्य, स्वर्गप्राप्ति के लिये जो दान देते हैं, उसे ऋषियों तथा धर्मचिन्ता करने वाले **काम्यदान** कहते हैं। ब्रह्मविद् व्यक्ति को सत्वयुक्त चित्त से ईश्वर की प्रसन्नता हेतु जो दान देते हैं, वह कल्याणकारी **विमल दान** है॥७-८॥

इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्। ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते।
भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति॥९॥
विद्यां दत्त्वा ब्राह्मणाय ब्रह्मलोके महीयते। दद्यादहरहस्तास्तु श्रद्धया ब्रह्मचारिणे।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मस्थानमवाप्नुयात्॥१०॥

जो दानदाता ईख, जौ, भूमि, गेहूं, खेती से लहलहाती भूमि का दान वेदतत्वज्ञ ब्राह्मण को प्रदान करता है, उसे पुनः मृत्युलोक में जन्म नहीं लेना पड़ता। सभी दान देने वालों में भूमिदाता सर्वश्रेष्ठ होता है। इससे उत्तम दान कहीं भी नहीं होता। न तो भविष्य में इससे बढ़ कर कोई दान होगा। जो ब्राह्मण को विद्या देता है, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति नित्यप्रति ब्रह्मचारी ब्राह्मण को सश्रद्ध भाव से विद्यादान करता है, वह सर्वपापरहित होकर देहत्याग के पश्चात् ब्रह्मलोक जाता है॥९-१०॥

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च च।
उपोष्याभ्यर्चयेद्विद्वान्मधुना तिलपिष्टकैः।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत्॥११॥
प्रीयतां धर्मवाचाभिस्तथा मनसि वर्त्तते। यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥१२॥
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यमधुसर्पिषा। ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्॥१३॥

वैशाख मासीय पूर्णिमा के दिन उपवासी रहकर व्यक्ति पांच अथवा सात ब्राह्मणों की सविधि पूजा करके उनको मधु तथा तिलपिष्टक का आहार प्रदान करे तथा गन्धादि से उनकी अर्चना करे और यह कहे—"इस कार्य से धर्मराज प्रसन्न हो जायें।" यह कहकर यही भावना अपने मन में दृढ़ता से करे कि वे सन्तुष्ट हो गये। इस कार्य एवं भावना से उसके जीवन पर्यन्त किये पातक समूह तत्काल नष्ट होते हैं। जो कृष्णमृग के चर्म पर मधु एवं घृतयुक्त तिल पात्र में रखकर तथा स्वर्ण रखकर विप्रों को देता है, वह समस्त दुष्कृतों से पार हो जाता है॥११-१३॥

घृतान्नमुदकञ्चैव वैशाख्याञ्च विशेषतः। निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात्॥१४॥
द्वादश्यामर्चयेद्विष्णुमुपोष्याघप्रणाशनम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो भवति निश्चितम्॥१५॥

विशेषतः वैशाख मास में घृत से बना अन्न तथा जल धर्मराज के निमित्त जो ब्राह्मण को दान करता है, वह समस्त भय से मुक्त हो जाता है। एकादशी को उपवासी रहकर जो द्वादशी के दिन विष्णु की आराधना करता है, वह सभी पापों से निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है॥१४-१५॥

यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः। ब्राह्मणान्पूजयेद्यत्नाद्भोजयेद्योषितः सुरान्॥१६॥

सन्तानकामः सततं पूजयेद् वै पुरन्दरम्। ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्राह्मणान् ब्रह्मनिश्चयात्॥१७॥
आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम्।
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद् वै विनायकम्॥१८॥
भोगकामो हि शशिनं बलकामः समीरणम्।
मुमुक्षुः सर्वसंसारात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम्।
अकामः सर्वकामो वा पूजयेत्तु गदाधरम्॥१९॥
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः। तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥२०॥
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः। गृहदोऽग्रयाणि विश्वानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥२१॥

जो कोई व्यक्ति किसी देवता की अर्चना करने को इच्छुक है, वह यत्नतः ब्राह्मण का सत्कार करके उसे भोजन कराये। इससे वे देवता उससे प्रसन्न हो जाते हैं। सन्तान चाहने वाला इन्द्र की पूजा करे, ब्रह्मज्ञान चाहने वाला ब्राह्मा मानकर ब्राह्मण की पूजा करे, आरोग्य चाहने वाला सूर्य की, धन चाहने वाला अग्नि की, कर्म में सफलता चाहने वाला गणेश की, भोग प्राप्ति की कामना से चन्द्रमा की, बल चाहने वाला वायु की तथा संसार से मुक्ति चाहने वाला मुमुक्षु यत्नतः हरि की उपासना करे। जो कामना रहित है अर्थात् सर्वकामी (सबके स्वामी प्रभु की कामना करने वाला) गदाधर नारायण की आराधना करे। जलदाता तृप्ति पाता है। अन्नदाता को अक्षय स्वर्गलाभ होता है। तिलदाता को वांछित सन्नति परम्परा प्राप्त होती है। दीपप्रदाता को उत्तम नेत्रज्योति मिलती है। भूमिदान करने वाला वांछित ऐश्वर्य भोगलाभ करता है। स्वर्णदाता को दीर्घ आयु मिलती है। जो गृहदान करता है, उसे उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। चांदी दाता परम सुन्दर रूप प्राप्त करता है॥१६-२१॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमाश्विसालोक्यमश्वदः। अंनडुहः श्रियं पुष्टां गोंदो ब्रध्नस्य पिष्टपम्॥२२॥
यानशय्याप्रदो भार्य्यामैश्वर्य्यमभयप्रदः। धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम्॥२३॥
वेदवित्सु ददज्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते। गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः॥२४॥
औषधं स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये। ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥२५॥
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारसमन्वितम्। तीक्ष्णातपञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदानतः॥२६॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे। तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥२७॥
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः। संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥२८॥
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायाञ्च विशेषतः। दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते॥२९॥

जो व्यक्ति वस्त्रदान करता है, उसे चन्द्रलोक में गति मिलती है। अश्वदाता अश्विनीकुमारों के लोक में जाती है। किसी को अभयदान देने से ऐश्वर्यलाभ होता है। धान्यदाता नित्य सुखी होता है। वेद दान करने वाला ब्रह्मलोकगामी होता है। वृषदाता विपुल संपदा, गोदाता सूर्यलोक निवास, यान एवं शय्यादाता

पत्नीलाभ करता है। जो मानव ब्राह्मणों को ज्ञान प्रदान करता है, उसे स्वर्ग मिलता है। गौओं को घास देने वाला सभी पापों से छुटकारा पाता है। लकड़ी (ईंधन हेतु) दान करने वाले की भूख बढ़ती है। रोगी को रोग शान्ति के लिये औषधि, तैल, सुपथ्य देने वाला व्यक्ति निरोग रहता है। वह सुखपूर्वक दीर्घायु पाता है। जो व्यक्ति छाता तथा पादुका दान करता है, उसे छूरे जैसी धार वाले असिपत्रवन नरक तथा तीक्ष्ण रौद्रपथ वाले नरक से छुटकारा मिलता है। जिसे जो वस्तु प्रिय है, उसे वही वस्तु ब्राह्मण को दान देनी चाहिये। गुणी ब्राह्मण को ही दान देना चाहिये। ऐसा करने वाला रोज-रोज अपनी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करता है। उत्तरायण, दक्षिणायन, महाविषुव प्रभृति संक्रान्ति, चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय दान देने से प्रभूत एवं अक्षयफल मिलता है। प्रयाग आदि श्रेष्ठ तीर्थों में दान करके धर्म द्वारा जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उससे बढ़ कर पुण्य कहीं भी जगत् में नहीं होता॥२२-२९॥

स्वर्गादच्युतिकामेन दानं पापोपशान्तये। दीयमानन्तु यो मोहाद्विप्राग्निष्वध्वरेषु च।
निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनिं व्रजेन्नरः॥३०॥
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति। म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्रह्महा स तु गर्हितः॥३१॥

॥इति गारुडे महापुराणे दानधर्मो नाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

स्वर्ग से पतन न हो तथा सभी पाप शान्त हों, इस इच्छा से यज्ञादि करे तथा गौ, अग्नि अथवा देवता के निमित्त दान करना चाहिये। इस काम को करने से रोकने वाला पापी तिर्यक् योनि में जन्म लेगा। अकाल में अन्न के न मिलने से यदि कोई ब्राह्मण मर रहा है, यह जान कर भी यदि नराधम व्यक्ति उस व्यक्ति को अन्नादि देकर नहीं बचाता, उसे ब्रह्महत्या पाप का भागी होना पड़ेगा। यह निश्चित है॥३०-३१॥

॥एक्यावनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रायश्चित्त विधि का वर्णन

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं द्विजाः। ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः॥१॥
पञ्च पातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः। उपपापानि गोहत्याप्रभृतीनि सुरा जगुः॥२॥
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत्। कुर्य्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेव च।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत्स्वयम्॥३॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक्प्राणान्परित्यजेत्।
दत्त्वा चान्नञ्च विदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—हे विप्रगण! अब मैं प्रायश्चित्त की विधि को कहता हूं। ब्रह्महत्यारा, मद्यप, चोर, गुरुपत्नीगामी लोग पातकी कहे गये हैं। यहां तक कि जो लोग इनके संसर्ग में रहते हैं, वे भी पातकी हैं। ये पांच प्रकार के पातकी प्रायश्चित्त के पात्र हैं। देवताओं का कहना है कि गोहत्या आदि उपपातक हैं। ब्रह्महत्यारा पर्णकुटिया बनाकर वन में बारह वर्ष रहे। अन्त में वह अनाहारी रहकर प्राण त्याग करे। उच्च स्थान से कूद कर प्राण त्याग करे। प्रज्वलित अग्नि में कूद जाये। जल में डूब कर मरे। ब्राह्मण वध तथा गोवध के पाप में पड़ा व्यक्ति इन उपायों के अवलम्बन से पापों से मुक्त हो सकेगा। वेदज्ञ ब्राह्मणों को अन्नदान करने वाला ब्रह्महत्या पाप से मुक्त हो जाता है॥१-४॥

अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा मुच्यते द्विजः। सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदापयेत्॥५॥
सरस्वत्यास्तरङ्गिण्याः सङ्गमे लोकविश्रुते। शुद्धे त्रिसवनस्नातस्त्रिरात्रोपोषितो द्विजः॥६॥
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया। कपालमोचने स्नात्वा वाराणस्यां तथैव च॥७॥

हे द्विजगण! ब्रह्महत्यारा अश्वमेध यज्ञ करने के बाद अवभृथ स्नान द्वारा शुद्ध हो सकेगा। वेदज्ञ ब्राह्मण को अपना सब कुछ दान कर देने वाला भी ब्रह्महत्या पाप से निवृत्त होगा। गंगा-यमुना-सरस्वती संगम पर तीन रात उपवासी रहे। इस प्रसिद्ध महापवित्र तीर्थ पर प्रतिदिन तीनों सन्ध्याकाल स्नान करे। ऐसा मानव ब्रह्महत्या पातक से निवृत्त होता है। सेतुबन्ध रामेश्वर में भी स्नान करने से ब्रह्महत्या से निवृत्ति मिलती है। कपालमोचन तीर्थ तथा वाराणसी में भी स्नान द्वारा ब्रह्महत्या पाप से छुटकारा मिल जाता है॥५-७॥

सुरापस्तु सुरां पीत्वा अग्निवर्णां द्विजोत्तमः। पयो घृतं वा गोमूत्रं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते॥८॥
सुवर्णस्तेयी मुक्तः स्यान्मुषलेन हतो नृपैः। चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महनव्रतम्॥९॥

गुरुभार्य्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः।
अवग्रहेत्स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम्॥१०॥
गुर्वङ्गनागामिनश्च चरेयुर्ब्रह्महा व्रतम्।
चान्द्रायणानि वा कुर्य्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः॥११॥

हे द्विजोत्तमों! सुरापान करने वाला व्यक्ति खौलती सुरा का पान करे। तदनन्तर दुग्ध, घृत तथा गोमूत्र का पान करके पाप से छूट जाता है। स्वर्णचोर ब्राह्मण पर राजा मूषल से प्रहार करें। वह ब्राह्मण फटा वस्त्र पहन कर ब्रह्महत्यारे की ही तरह पर्णकुटी बना कर वन में १२ वर्ष निवास करे। ऐसे कठोर व्रत द्वारा स्वर्ण चोर का प्रायश्चित्त हो जाता है। जो कामी ब्राह्मण गुरुपत्नी के साथ समागम करता है, वह लौहमयी स्त्री प्रतिमा को तपा कर उसका आलिंगन करे। तदनन्तर कठोर व्रती होकर ब्रह्महत्यारे वाले प्रायश्चित्त का पालन करे अथवा वह ४-५ बार चान्द्रायण व्रत करने से गुरुपत्नीगमन पाप से मुक्त हो जाता है॥८-११॥

पतितेन च संसर्गं कुरुते यस्तु वै द्विजः। स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्॥१२॥
तप्तकृच्छ्रं चरेद्वाथ संवत्सरमतन्द्रितः। सर्वस्वदानं विधिवत्सर्वपापविशोधनम्॥१३॥
चान्द्रायणञ्च विधिना कृतं चैवातिकृच्छ्रकम्। पुण्यक्षेत्रे गयादौ च गमनं पापनाशनम्॥१४॥
अमावस्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद्भवम्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१५॥
उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥१६॥
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्दद्यात्सप्त जलाञ्जलीन्।
स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः॥१७॥
ब्रह्मचर्य्यमधः शय्यामुपवासद्विजार्चनम्। व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत् शान्तः संयतमानसः॥१८॥
षष्ठ्यामुपोषितो देवं शुक्लपक्षे समाहितः। सप्तम्यामर्चयेद्भानुं मुच्यते सर्वपातकैः॥१९॥
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते॥२०॥

जो ब्राह्मण उपरोक्त पांच प्रकार के पापियों के संसर्ग से पापयुक्त हो गया हो, वह उन-उन पाप के लिये विहित प्रायश्चित्त से ही शुद्ध हो सकेगा अथवा संसर्ग दोष जनित पाप निवारणार्थ एक वर्ष तक तप्तकृच्छ्र व्रत करे अथवा सभी पापों से निवृत्ति हेतु अपना सब कुछ दान करके चान्द्रायण व्रत तथा अतिकृच्छ्र व्रत करे। वह इसके पश्चात् गंगा आदि पुण्यतीर्थों का सेवन करके इस दुष्कार्य से मुक्त हो सकेगा। अमावस्या के दिन महादेव का पूजन करके ब्राह्मण को भोजन कराने वाला सभी प्रकार के पपों से मुक्तिलाभ करता है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि पर उपवासी रहे। एकाग्रतापूर्वक ॐ यमाय नमः, ॐ धर्मराजाय नमः, ॐ मृत्यवे नमः, ॐ अन्तकाय नमः, ॐ वैवस्वते नमः, ॐ कालाय नमः, ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः का तिलयुक्त जल से तर्पण करके दिन के प्रथम प्रहर में नदी में नहायें। वह सभी पातकों से छुटकारा पा जाता है। इन प्रायश्चित्त वाले व्रताचरण काल में वह व्यक्ति शान्त, एकाग्र, ब्रह्मचर्यव्रततत्पर, भूमिशायी, उपवासी तथा द्विजपूजनरत रहे। वह एकाग्र चित्त से संयमित होकर शुक्लपक्षीय षष्ठी तिथि पर उपवासी रहकर सप्तमी को सूर्यार्चन करने से सर्वपापरहित हो जाता है। शुक्ला एकादशी तिथि पर उपवास करके द्वादशी के दिन भगवान् जनार्दन की पूजा-आराधना करने वाला महापातकरहित हो जाता है॥१२-२०॥

ततो जपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम्। ग्रहणादिषु कालेषु महापातकनाशनम्॥२१॥
यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः। नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकैः॥२२॥
ब्रह्मघ्नं वा कृतघ्नं वा महापातकदूषितम्। भर्त्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम्॥२३॥
पतिव्रता तु या नारी भर्तुः शुश्रूषणोत्सुका। न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च॥२४॥

यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता।
पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम्॥२५॥
फल्गुतीर्थादिषु स्नातः सर्वाचारफलं लभेत्। इत्याह भगवान्विष्णुः पुरा मम यतव्रताः!॥२६॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्रायश्चित्तं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

तीर्थसेवन, देवार्चन, ब्राह्मण पूजन तथा चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय इष्ट मन्त्र जपने से व्यक्ति महापापों से निवृत्त होता है। सभी पापों से लिप्त मानव यदि नियमपूर्वक पुण्यमय तीर्थों में देहत्याग करे, तब अन्त में उसे सभी पातकसमूह से मुक्ति मिल जाती है। यदि कोई स्त्री अपने पति की मृत देह के साथ अग्निप्रवेश करती है, तब भले ही उसका पति जीवनकाल में ब्रह्महत्यारा, कृतघ्न तथा महापातकी रहा हो, वह ऐसे पति का भी उद्धार करके स्वर्ग जाती है। जो पतिव्रता नारी सदा पति की सेवा के प्रति उत्सुक रहती है, उसे इहलोक में अथवा परलोक में कोई पापभोग नहीं करना पड़ता। दशरथ पुत्र राम की पत्नी सीता देवी ने जिस प्रकार राक्षसराज रावण का विनाश किया था, वैसे ही पतिव्रता नारी पापों का नाश कर देती है। फल्गु आदि तीर्थ में स्नान से सभी फल मिलते हैं। हे व्रततत्पर ऋषियों! भगवान् विष्णु ने पूर्वकाल में इस प्रकार व्रताचरण तथा उनके फलों का वर्णन किया था॥२१-२६॥

॥बावनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आठों निधियों के फल का वर्णन

सूत उवाच

एवं ब्रह्माऽब्रवीच्छ्रुत्वा हरेरष्टनिधींस्तथा॥१॥
तत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ। मुकुन्दनन्दौ नीलश्च शङ्खश्चैवापरो निधिः।
सत्यावृद्धौ भवन्त्येते स्वरूपं कथयाम्यहम्॥२॥

सूतजी कहते हैं—हरि से अष्टनिधियों की फलश्रुति को जानकर ब्रह्मा ने जो वर्णन किया था, वह मैंने भी (गुरु से) श्रवण किया। वही आप लोगों से वर्णन कर रहा हूं। ये आठ निधियां हैं—पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील, शंख। अब उनके स्वरूप को सुनिये॥१-२॥

पद्मेन लक्षितश्चैव सात्त्विको जायते नरः। दाक्षिण्यसारः पुरुषः सुवर्णादिकसंग्रहम्।
रूप्यादि कुर्य्याद्दद्यात्तु यतिदेवादियज्वनाम्॥३॥

महापद्माङ्कितो दद्याद्धनाद्यं धार्मिकाय च।
निधी पद्ममहापद्मौ सात्त्विकौ पुरुषौ स्मृतौ॥४॥

मकरेणाङ्कितः खड्गबाणकुन्तादिसंग्रही। दद्याच्छ्रुताय मैत्रीञ्च याति नित्यञ्च राजभिः॥५॥

द्रव्याणां शत्रूणां नाशं संग्रामे चापि संव्रजेत्।
मकरः कच्छपश्चैव तामसौ तु निधी स्मृतौ॥६॥
कच्छपी विश्वसेन्नैव न भुङ्क्ते न ददाति च।
निधानमुर्व्यां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः॥७॥

राजसेन मुकुन्देन लक्षितो राज्यसंग्रही। मुक्तभोगो गायनेभ्यो दद्याद्वेश्यादिकासु च॥८॥

रजस्तमो महानन्दी आधारः स्यात्कुलस्य च।
स्तुतः प्रीतो भवति वै बहुभार्य्या भवन्ति च।
पूर्वमित्रेषु शैथिल्यं प्रीतिमन्यैः करोति च॥९॥

पद्मनिधि से लक्षित मानव सात्विक तथा सबकी सहायता करने वाला होता है। वह स्वर्ण, चांदी एकत्र करके यति-देवता तथा याज्ञिकों को दान करता है।

महापद्मनिधि चिह्न वाला मानव धार्मिक लोगों को धनादि दान करता है। जिस किसी मानव की देह पर यदि पद्मनिधि अथवा महापद्मनिधि का चिह्न हो, वह अत्यन्त सात्विक बुद्धि वाला होता है। मकर निधि के चिह्न वाला मानव खड्ग, बाण, कुन्त आदि अस्त्रों का संग्रही होता है। वह सदा ब्राह्मणों को दान देने वाला तथा राजा का मित्र होता है। मकर तथा कच्छप तामस निधियां हैं। ऐसे चिह्नों वाला सदा तामस कार्य करता है। वह सदा युद्धरत रहता है। इससे वह शत्रु द्रव्य का तथा शत्रु का नाश करता है। कच्छपी चिह्न वाला किसी का भरोसा नहीं करता। स्वयं सम्यक् भोजन तथा दान नहीं लेता, केवल धन एकत्र करता है। वह संचित धन मिट्टी के नीचे गाड़ देता है। मुकुन्द निधि चिह्नांकित मानव रजोगुणी होता है। वह राज्य संग्रह करने वाला होता है। वह स्वयं सम्पत्ति भोग नहीं करता। वह गायकों, वेश्याओं को धन बांटता रहता है। नन्दनिधि चिह्न वाला मनुष्य राजस तथा तामस कार्य करता रहता है। वह कुल में श्रेष्ठ तथा सबसे सम्मानित होता है। अनेक कन्याओं से विवाह करने वाला प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करने वाला होता है। वह पुराने मित्रों से मित्रता कम करता रहता है तथा नये मित्रों से प्रीति करता है॥३-९॥

नीलेन चाङ्कितः सत्त्वतेजसा संयुतो भवेत्। वस्त्रधान्यादिसंग्राही तडागादि करोति च।
त्रिपौरुषे निधिश्चैव आम्रारामादि कारयेत्॥१०॥

नीलनिधि चिह्नांकित व्यक्ति सत्वतेजयुक्त होता है। वह वस्त्र-धान्य आदि का संग्रह करने वाला तथा तालाब आदि निर्माण कराता है। वह दीर्घिका जलाशय तथा आम्रकाननादि का निर्माण कराता है। उसकी निधि तीन पीढ़ी तक रहती है॥१०॥

एकस्य स्यान्निधिः शङ्खः स्वयं भुङ्क्ते धनान्तकम्।
कदन्नभुक्परिजनो न च शोभनवस्त्रधृक्॥११॥

स्वपोषणपरः शङ्खी दद्यात्परनरे वृथा। मिश्रावलोकनान्मिश्रे स्वभावफलदायिनः॥१२॥
निधीनां रूपमुक्तं तु हरिणापि हरादिके। हरिर्भुवनकोपादि यथोवाच तथा वदे॥१३॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

शंखनिधि चिह्न वाला मनुष्य स्वयं धन कमाता तथा स्वयं ही उसको भोगता है। उसके परिवार वाले निम्न श्रेणी का आहार करते तथा कुत्सित वस्त्रधारी होते हैं। इस चिह्न वाला अपने ही पोषण में तत्पर रहता है। अन्य लोगों को तनिक भी दान नहीं करता। निधियों का मिश्रित चिह्न रहने पर मिश्रित फल मिलेगा। श्रीहरि ने शिव से निधियों का जो फल कहा था, वह मैंने कह दिया। अब श्रीहरि द्वारा कहे भुवनकोष प्रभृति का वर्णन सुनिये॥११-१३॥

॥तिरपनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोष वर्णन

हरिरुवाच

अग्निध्नश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा। मेधा मेधातिथिर्भव्यः शबलः पुत्र एव च।
ज्योतिष्मान्दशमो जातः पुत्रा ह्येते प्रियव्रतात्॥१॥
मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः। जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः।
विभज्य सप्त द्वीपानि सप्तानां प्रददौ नृपः॥२॥

श्रीहरि कहते हैं—राजा प्रियव्रत के दस पुत्र थे। यथा— अग्नीध्न, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधस, मेधातिथि, भव्य, शबल, पुत्र तथा ज्योतिष्मान्। पूर्वोक्त में से मेधस, अग्निबाहु एवं पुत्र योगसाधन करने लगे। इनको अपने पूर्वजन्म का भी वृत्तान्त स्मरण था। इन महाभागों के मन में राज्य की लालसा नहीं थी। अब राजा प्रियव्रत ने अपने बाकी सात पुत्रों में सात द्वीप बांट दिये॥१-२॥

योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिराप्लुता। जलोपरि मही याता नौरिवास्ते सरिज्जले॥३॥
जम्बुप्लक्षद्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो हर।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥४॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः॥५॥

द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपः समुद्रश्च वृषध्वज। जम्बुद्वीपे स्थितो मेरुर्लक्षयोजनविस्तृतः॥६॥
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैरस्य चोच्छ्रयः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥७॥
अधः षोडशसाहस्रः कर्णिकाकारसंस्थितः। हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥८॥
प्लक्षादिषु नरा रुद्र ये वसन्ति सनातनाः। शङ्कर हि न तेष्वस्ति युगावस्था कथञ्चन॥९॥

कालक्रमेण पचास करोड़ योजन विस्तीर्ण धरती जल से घिर कर वैसी ही लग रही थी, मानों जल पर कोई नौका तैर रही हो। तत्पश्चात् जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीप बन गये। ये लवण, गन्ने के रस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध, जल के समुद्र से घिरे थे। हे वृषध्वज! जम्बू प्रभृति सात द्वीप क्रमशः एक दूसरे से द्विगुणित थे। जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन विस्तार वाला सुमेरु पर्वत था। इसकी ऊंची ८४००० योजन है। इसका १६००० योजन का अधोभाग पृथिवी में प्रविष्ट है। इसका शिखर ३२००० योजन विस्तार वाला है। सुमेरु पर्वत पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका में स्थिति है। इसके दक्षिण में हिमालय, हेमकूट तथा निषध नामक वर्णपर्वत खड़े हैं। सुमेरु से उत्तर दिशा में नील, श्वेत तथा शृंगवान् पर्वत हैं। हे शंकर! प्लक्ष आदि द्वीपों में जो लोग रहते हैं, उनके लिये सत्ययुग आदि चतुर्युग व्यवस्था मान्य नहीं है॥३-९॥

जम्बुद्वीपेश्वरात्पुत्रा ह्यग्निधादभवन्नव। नाभिः किंपुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः॥१०॥
रम्यो हिरण्वान्षष्ठश्च कुरुर्भद्राश्च एव च। केतुमालो नृपस्तेभ्यस्तत्संज्ञान्खण्डकान्ददौ॥११॥
नाभेस्तु मेरुदेव्यान्तु पुत्रोऽभूदृषभो हर। तत्पुत्रो भरतो नाम शालग्रामे स्थितो व्रती॥१२॥
सुमतिर्भरतस्याभूत्तत्पुत्रस्तेजसोऽभवत्। इन्द्रद्युम्नश्च तत्पुत्रः परमेष्ठी ततः स्मृतः॥१३॥
प्रतीहारश्च तत्पुत्रः प्रतिहर्त्ता तदात्मजः। सुतस्तस्मादथो जातः प्रस्तारस्तत्सुतो विभुः॥१४॥
पृथुश्च तत्सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः।
नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रो बुद्धिराट् ततः॥१५॥
ततो धीमान्महातेजा भौवनस्तस्य चात्मजः।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजस्तस्याप्यभूत्सुतः।
शतजिद्रजसस्तस्य विष्वग्ज्योतिः सुतः स्मृतः॥१६॥

।इति गारुडे महापुराणे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।५४।

जम्बूद्वीप के राजा अग्नीध्र के नौ पुत्र थे। उनके नाम हैं नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल। राजा ने इनको जम्बूद्वीप का एक-एक भाग दिया था। इन पुत्रों के नाम से ही उनको मिले भूखण्ड का नाम पड़ा। जैसे नाभिवर्ष, किम्पुरुष वर्ष, हरिवर्ष आदि। नाभि ने अपनी

पत्नी मरुदेवी के गर्भ से ऋषभ पुत्र उत्पन्न किया। ऋषभ के पुत्र थे भरत। ये व्रती होकर शालग्राम तीर्थ में रहने वले। इनका पुत्र था सुमति। उसका पुत्र था तेजस, उसका पुत्र था इन्द्रद्युम्न, जिसका पुत्र था परमेष्ठि। उसका पुत्र था प्रतिहार। उसका पुत्र था प्रतिहर्त्ता। उसका पुत्र था प्रस्तार, जिसके पुत्र का नाम विभु था। विभु का पुत्र था पृथु, उसका पुत्र था नक्त। नक्त का पुत्र था गय। उसके पुत्र का नाम था नर। नर का पुत्र था बुद्धिराज, जिसके पुत्र का नाम था महातेजा धीमान् भौवन। भौवन का पुत्र था त्वष्टा। त्वष्टा का पुत्र था विरजा। उसका पुत्र था रजस्। रजस् का पुत्र था शतजित्। उसका पुत्र था विश्वग् ज्योति:॥१०-१६॥

॥चौवनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इलावृत आदि वर्षों का वर्णन

हरिरुवाच

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतो भवेत्। पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरण्वान्वृषभध्वज॥१॥

ततः किम्पुरुषो वर्षो मेरोर्दक्षिणतः स्मृतः। भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे।
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे॥२॥

उत्तरे च कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः। सिद्धिः स्वाभाविकी रुद्र वर्जयित्वा तु भारतम्॥३॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्। नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा।
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—जम्बूद्वीप के मध्य में इलावृत वर्ष अवस्थित है। इसी वर्ष में सुमेरु पर्वत है। सुमेरु के पूर्वदिक् में भद्राश्ववर्ष, पूर्वदक्षिण कोण पर हिरण्वान् वर्ष, दक्षिण में किम्पुरुष वर्ष, भारतवर्ष, दक्षिण-पश्चिम कोण में हरिवर्ष, पश्चिमदिक् में केतुमाल वर्ष, पश्चिमोत्तर कोण में रम्यक वर्ष तथा उत्तरदिक् में कुरु वर्ष है। ये सभी कल्पवृक्षों से घिरे हैं। भारतवर्ष से अतिरिक्त सभी वर्षों में स्वाभाविक रूप से सिद्धिलाभ होता है। भारतवर्ष नौ भागात्मक है। यथा—इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल तथा वारुण। नवम है सागर द्वीप। यह सागर से घिरा है॥१-४॥

पूर्वे किरातास्तस्यास्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः।
आन्ध्रा दक्षिणतो रुद्र तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः॥५॥

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः॥६॥

वेदस्मृतिर्नर्मदा च वरदा सुरसा शिवा। तापी पयोष्णी सरयू कावेरी गोमती तथा॥७॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी। केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती॥८॥
ऋषिकुल्या च कावेरी मृतगङ्गा पयस्विनी। विदर्भा च शतद्रुश्च नद्यः पापहराः शुभाः।
आसां पिबन्ति सलिलं मध्यदेशादयो जनाः॥९॥

हे रुद्र! भारत के पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण में आन्ध्र, उत्तर में तुर्क रहते हैं। इनके मध्यभाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का निवास है। यहां सात कुल पर्वत हैं। जैसे—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य तथा परिभद्र। यहां सर्वविध पापहारी नदियां हैं—वेदस्मृति, नर्मदा, वरदा, सुरसरी, शिवा, तापी, पयोष्णी, सरयू, कावेरी, गोमती, गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, महानदी, केतुमाला, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, सरस्वती, ऋषिकुल्या, कावेरी (यह दोबारा अंकित है), मर्त्यगंगा, पयस्विनी, विदर्भा, शतद्रु। मध्य आदि देशों के लोग इनका जलपान करते हैं॥५-९॥

पाञ्चालाः कुरवो मत्स्या यौधेयाः सपटच्चराः।
कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेशजनाः स्मृताः॥१०॥
वृषध्वज जनाः पाद्माः सूतमागधचेदयः। काषायाश्च विदेहाश्च पूर्यस्यां कोशलास्तथा॥११॥
कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा। विन्ध्यान्तर्निलया देशाः पूर्वदक्षिणतः स्मृताः॥१२॥
पुलिन्दाश्मकजीमूतनयराष्ट्रनिवासिनः। कार्णाटाः काम्बोजा घाटा दक्षिणापथवासिनः॥१३॥
अम्बष्ठद्रविडा लाटाः कम्बोजाः स्त्रीमुखाः शकाः। आनर्त्तवासिनश्चैव ज्ञेया दक्षिणपश्चिमे॥१४॥
स्त्रैराज्याः सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा।
पश्चिमेन च विज्ञेया माथुरा नैषधैः सह॥१५॥

पाञ्चाल, कुरव, मत्स्य, यौधेय, पटच्चर, कुन्ति, शूरसेन आदि देश भारतवर्ष के मध्य में स्थित हैं। इनका एक सामान्य नाम है मध्यदेश। हे रुद्र! पद्म, सूत, मागध, चेदि, काषाय, विदेह एवं कोशल देश भारतवर्ष के पूर्वभाग में हैं। कलिंग, बंग, पुण्ड्र, अंग, विदर्भ, मूलक एतं विन्ध्यपर्वतस्थ सभी देश भारत के पूर्व दक्षिण कोण पर स्थित हैं। स्त्रीराज्य, सिन्धु, म्लेच्छ, नास्तिक तथा यवनों का देश, माथुरा, निषधों का देश भारतवर्ष के पश्चिम भाग में है॥१०-१५॥

माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलिकाश्च मूषाः खशाः। महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे॥१६॥
लम्बकास्तननागाश्च माद्रगान्धारवाह्लिकाः।
हिमाचलालया म्लेच्छा उदीचीं दिशमाश्रिताः॥१७॥
त्रिगर्त्तनीलकोलाभब्रह्मपुत्राः सटङ्कणाः। अभीषाहाः सकाश्मीरा उदक्पूर्वेण कीर्त्तिताः॥१८॥

॥इति गारुडे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

माण्डव्य, तुषार, मूलिक, मूषा, खश, महाकेश, महानाद लोगों का देश भारत से उत्तर, पश्चिम

कोण पर है। लम्बक, स्वन, नाग, मद्र, गान्धार, वाह्लीक का देश तथा हिमालय निवासी म्लेच्छों का देश भारत के उत्तर भाग में है। त्रिगर्त्त, नील, कोलाभ, ब्रह्मपुत्र के किनारे के देश, टङ्कण, अभीषाह, काश्मीर ये सभी देश भारतवर्ष के पूर्वोत्तर भागस्थ हैं॥१६-१८॥

॥पचपनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मेधातिथि के वंश का वर्णन

हरिरुवाच

सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य च। ज्येष्ठः शान्तभवो नाम शिशिरस्तदनन्तरः॥१॥
सुखादयस्तथा नन्दः शिवः क्षेमक एव च। ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते॥२॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा। सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चात्र सप्तमः॥३॥
अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्रमुः।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः॥४॥
वपुष्मान्शाल्मलस्येशस्तत्सुता वर्षनामकाः। श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सप्रभश्चापि सप्तमः॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—हे रुद्र! प्लक्षद्वीप के राजा मेधातिथि के सात पुत्र थे। यथा—शान्तभव, शिशिर, सुखोदय, नन्द, शिव, क्षेमक तथा ध्रुव। ये सभी प्लक्षद्वीप के (एक-एक भाग के) अधिपति थे। गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमन्तः, वैभ्राज पर्वत प्लक्षद्वीप पर हैं। वहां अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, क्रमु, अमृता, सुकृता नामक सात सरितायें हैं। वपुष्मान् शाल्मलि द्वीप के अधिपति थे। उनके सात पुत्रों के नाम से शाल्मलि द्वीप के सात पर्वतों के नाम हैं। इन सात पुत्रों का नाम है—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस, सप्रभा॥१-५॥

कुमुदश्चोन्नतो द्रोणो महिषोऽथ बलाहकः।
क्रौञ्चः ककुद्मान्ह्येते वै गिरयः सरितस्त्विमाः॥६॥
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्रा विमोचनी।
विधृतिः सप्तमी तासां स्मृताः पापप्रशान्तिदाः॥७॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व तान्। उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लम्बनो धृतिः।
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्षपद्धतिः॥८॥

विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा। कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः॥९॥

यहां सात वर्ष पर्वत हैं। यथा—कुमुद, उन्नत, द्रोण, महिष, बलाहक, कंक, ककुद्मान्। यहां की सात सरिताओं के नाम हैं योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी, विधृति। ये सर्वपाप नाशिनी भी हैं। यहां के राजा थे ज्योतिष्मान्। उनके सात पुत्रों का नाम यह है—उद्भिद्, वेणुमान्, द्वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर, कपिल। इनके ही नाम से कुश द्वीप के सातों वर्षों का नाम पड़ा है। वहां सात वर्षपर्वतों का नाम है—विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि तथा मन्दराचल॥६-९॥

धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा।
विद्युदम्भा मही काशा सर्वपापहरास्त्विमाः॥१०॥
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः।
कुशलो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता हर॥११॥

क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः। देवावृच्च महाशैलो दुन्दुभिः पुण्डरीकवान्॥१२॥

कुशद्वीप की सात नदियों के नाम हैं—धूतपापा, शिखा, पवित्र, सम्मति, विद्युदम्भा, मही तथा कोशा, जो सभी पापों को नष्ट कर देती हैं। हे शिव! क्रौंचद्वीप के राजा महात्मा द्युतिमान् के सात पुत्र थे। उनके नाम हैं—कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि, दुन्दुभि। इन सात पुत्रों के नाम से यहां के सात वर्षों का नाम निर्णय लिया गया। यथा—क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवावृत, महाशैल, दुन्दुभिः तथा पुण्डरीकवान्॥१०-१२॥

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः॥१३॥

शाकद्वीपेश्वराद्भव्यात्सप्त पुत्राः प्रजज्ञिरे। जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मशीवकः।

कुसुमोदः समोदार्किः सप्तमश्च महाद्रुमः॥१४॥
सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या।
इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा॥१५॥

शबलात् पुष्करेशाच्च महावीरश्च धातकिः। अभूद्वर्षद्वयश्चैव मानसोत्तरपूर्वतः॥१६॥

यहां की सात प्रधान सरिताओं के नाम हैं—गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति, पुण्डरीक। ये सभी वर्षनदी कही गयी हैं। शाकद्वीप के राजा थे भव्य। उनके सात पुत्र थे जलद, कुमार, सुकुमार, मनीचक, कुसुमोद, मोदाकि, महाद्रुम। इनके नाम से ही वहां के सात वर्षों का नाम पड़ा है। इन वर्षों में सात नदियां हैं। यथा—सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, रेणुका, गभस्ती। ये सभी यहां की वर्ष नदियां हैं। पुष्करद्वीप के राजा शबल थे। उनके दो पुत्र थे—महावीर तथा धातकि। इनके नाम से पुष्कर द्वीप के वर्षद्वय हैं महावीर वर्ष तथा धातकि वर्ष। यहां मात्र मानसोत्तर पर्वत नामक एक ही वर्ष पर्वत स्थित है॥१३-१६॥

योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः।
तावच्चैव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः॥१७॥
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः। स्वादूदकस्य पुरतो दृश्यते लोकसंस्थितिः॥१८॥
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता॥१९॥
लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः। तमसा पर्वतो व्याप्तस्तमोऽप्यण्डकटाहतः॥२०॥

॥इति गारुडे महापुराणे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

यह पर्वत पचास हजार योजन उच्च तथा इसी परिमाण में चतुर्दिक् मण्डलाकृति विस्तारपूर्ण है। यह स्वादुदक समुद्र से घिरा द्वीप है। इसका जल अतीव स्वादिष्ट है। इस सागर के पुरोभाग में लोगों की बस्ती है। इस समुद्र के किनारे समुद्र से दूनी विस्तृत स्वर्णभूमि है। इस काञ्चनी भूमि पर कोई प्राणी नहीं रहते। इस काञ्चन भूमि के प्रान्त भाग में दस हजार योजन चतुर्दिक् विस्तार वाला लोकालोक पर्वत है। इस पर्वत का दूसरा भाग चारों ओर से घोर अन्धकारमय सुविस्तृत है। यह अन्धकाराच्छन्न स्थान चारों ओर से अण्डकटाह से घिरा है॥१७-२०॥

॥छप्पनवां अध्याय समाप्त॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नरक का वर्णन

हरिरुवाच

सप्ततिस्तु सहस्राणि भूम्युच्छ्रायोऽपि कथ्यते। दशसाहस्रमेकैकं पातालं वृषभध्वज॥१॥
अतलं वितलञ्चैव नितलञ्च गभस्तिमत्। महाख्यं सुतलञ्चाग्र्यं पातालञ्चापि सप्तमम्॥२॥
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चना।
भूमयस्तत्र दैतेया वसन्ति च भुजङ्गमाः॥३॥
रौद्रे तु पुष्करद्वीपे नरकाः सन्ति ताञ् शृणु। रौरवः शूकरो बोधस्तालो विशसनस्तथा॥४॥
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विमोहितः।
रुधिरोऽथ वैतरणी कृमिशः कृमिभोजनः॥५॥
असिपत्रवनः कृष्णो नानाभक्षश्च दारुणः। तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालोद्भवोऽशिवः॥६॥

संदंशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च। श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोष्णवीचिर्नरकाः स्मृताः।
पापिनस्तेषु पच्यन्ते विषशस्त्राग्निदायिनः॥७॥

श्रीहरि कहते हैं—पृथिवी की ऊंचाई एक हजार योजन कही गयी है। हे रुद्र! पृथिवी के नीचे सात पाताल हैं। प्रत्येक पाताल का विस्तार दस हजार योजन कहा गया है। ये हैं—अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, महाख्य, सुतल तथा पाताल। अतल कृष्णवर्ण, वितल शुक्लवर्ण, नितल रक्तवर्ण, गभस्तिमत् पीतवर्ण, महाख्य शर्करामय, सुतल शैलमय तथा पाताल काञ्चनमय भूमि वाला है। यहां दैत्य तथा भुजङ्ग नाग रहते हैं। भयंकर पुष्कर द्वीपस्थ नरकों के नाम सुनो। यहां रौरव, शूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विमोहित, रुधिरान्ध्र, वैतरणी, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष्य, दारुण, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल, अध:शिरा, सन्दंश, कृष्णसूत्र, तम:, अवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ तथा उष्णवीची नरक हैं। जो पापी विष, अग्नि तथा अस्त्रों से व्यर्थ जीवों को मारते हैं, वे इन नरकों में गिराये जाते हैं॥१-७॥

उपर्य्युपरि वै लोका रुद्र भूतादयः स्थिताः॥८॥
वारिवह्न्यनिलाकाशे वृतं भूतादिना च तत्। तदण्डं महता रुद्र प्रधानेन च वेष्टितम्।
अखण्डं दशगुणं व्याप्तं व्याप्य नारायणः स्थितः॥९॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥

हे शिव! पृथिवी से ऊर्ध्व में प्राणियों के सभी लोक एक दूसरे पर अवस्थान करते हैं। यह चतुर्दश भुवनों वाला ब्रह्माण्ड ऊपर-नीचे-अगल-बगल चारों ओर अण्डकटाह से घिरा है। हे रुद्र! अण्डकटाह जल से चतुर्दिक् घिरा है। यह जल भी चारों ओर अग्नि से, अग्नि वायु से, वायु आकाश से तथा आकाश तामस अहंकार से घिरा रहता है। अहंकार महत्तत्व से घिरा है। ये सातों आवरण एक की तुलना में दूसरा दस गुना बड़े हैं। जैसे अण्डकटाह से दसगुणित जलावरण है, उससे दस गुना अग्नि आवरण है, उससे दस गुना वायु आवरण है, उससे दस गुना आकाश आवरण है, उससे दस गुना तामस अहंकार का आवरण है, उससे दस गुना महत्तत्व आवरण है। यह महत्तत्व सभी जगह प्रधान अर्थात् प्रकृति से घिरा है। प्रकृति का आवरण तो कितना है कहा नहीं जा सकता। हे रुद्र! यह प्रकृति तो नारायण द्वारा व्याप्त है॥८-९॥

॥सत्तावनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
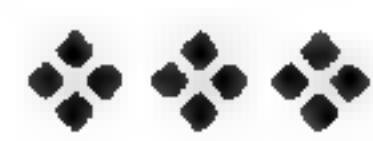
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोष वर्णन

हरिरुवाच

वक्ष्ये प्रमाणसंस्थाने सूर्य्यादीनां शृणुष्व मे।
योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नवः॥१॥
ईशादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो वृषभध्वज। सार्द्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि च।
योजनानान्तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्॥२॥
त्रिनाभिमतिपञ्चारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके। संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥३॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः।
पञ्चान्यानि तु सार्द्धानि स्यन्दनस्य वृषध्वज॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—हे रुद्र! अब सूर्य आदि का प्रमाण संस्थान सुनिये। सूर्य के रथ का परिमाण नौ हजार योजन है। इसके ईषादण्ड का परिमाण रथ से दूना अर्थात् अट्ठारह हजार योजन है। इसका अक्ष परिमाण दो करोड़ बीस लाख योजन है। उसी में चक्र स्थित है। (चक्र = पहिया)। इस चक्र की तीन नाभियां हैं—पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्न। इसके पांच अर (चक्र की तीली) हैं संवत्सर, वरिवत्सरादि पांच। षड्ऋतु ही इसकी छः नेमियां हैं। यह अक्षर तथा संवत्सरमय है। इसी से ही समस्त काल चक्र परिष्ठित है। सूर्य के रथ के दूसरे अक्ष का परिमाण है ८४००० योजन। हे वृषध्वज! अन्य अक्ष हैं साढ़े पांच हजार योजन॥१-४॥

अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणन्तु युगार्द्धयोः। ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवाधारे रथस्य वै।
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले॥५॥

जितना अक्ष का माप है, तदनुसार ही दोनों पार्श्वों के दोनों युगार्द्ध का माप है। (ईषादण्ड के अगले भाग में अश्व बांधने का जो दण्ड होता है, वही युग है)। पहले कहा गया क्षुद्र अक्ष इस युगार्द्ध के साथ वायु द्वारा बंधा रहा है। वह रथ के ध्रुव धारणरूपेण स्थित रहता है। द्वितीय अक्ष तथा उसका चक्र मानसपर्वत पर संस्थित रहता है॥५॥

गायत्री सबृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुबेव च। अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ताश्छन्दांसि हरयो रवेः॥६॥
धाता क्रतुस्थला चैव पुलस्त्ये वासुकिस्तथा। रथकृद्ग्रामणीर्हेतिस्तुम्बुरुश्चैत्रमासके॥७॥
अर्य्यमा पुलहश्चैव रथौजाः पुञ्जिकास्थला। प्रहेतिः कच्छनीरश्च नारदश्चैव माधवे॥८॥
मित्रोऽत्रिस्तक्षको रक्षः पौरुषेयोऽथ मेनका।
हाहा रथस्वनश्चैव ज्यैष्ठे भानो रथे स्थितः॥९॥

सात छन्द गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पंक्ति ही सूर्य के सात घोड़े हैं।

जिस मास में सूर्य का रथ जिन देवताओं द्वारा अधिष्ठित रहता है, वह सुनें। चैत्र मास में धाता-क्रतुस्थला-पुलत्स्य नामक प्रधान राक्षस, वासुकि तथा रथकृत् यक्ष, हेतु तथा तुम्बुर सूर्य रथ पर रहते हैं। वैशाख में अर्यमा—पुलह यक्ष, रथौजा: पूतिकामा राक्षस, प्रहेति, कच्छनीर एवं नारद सूर्यरथ पर रहते हैं। ज्येष्ठ मास में मित्र—अत्रि—तक्षक नामक नाग, पौरुषेय राक्षस, मेनका, हा हा, रथस्वन सूर्यरथ पर रहते हैं॥६-९॥

वरुणो वशिष्ठो रम्भा सहजन्या कुहुर्बुधः। रथचित्रस्तथा शुक्रो वसन्त्याषाढसंज्ञिते॥१०॥

इन्द्रो विश्वावसुः स्रोत एलापत्रस्तथाङ्गिराः।
प्रम्लोचा च नभस्येते सर्पाश्चार्के तु सन्ति वै॥११॥

विवस्वानुग्रसेनश्च भृगुरापूरणस्तथा। अनुम्लोचा शङ्खपालो व्याघ्रो भाद्रपदे तथा॥१२॥

आषाढ़ में वरुण, वसिष्ठ, रम्भा, सहजन्या, कुहुर्बुध, चित्ररथ तथा शुक्र, ये सात सूर्यरथ पर रहते हैं। श्रावण मास में इन्द्र, विश्वावसु, गन्धर्व, स्रोत:—एलापत्र—अंगीरा—प्रम्लोचा तथा सर्प, सूर्यरथ पर रहते हैं। भाद्रमास में विवस्वान—उग्रसेन गन्धर्व, भृगु तथा आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा, शंखपाल—व्याघ्र राक्षस, आदित्य रथ पर रहते हैं॥१०-१२॥

पूषा च सुरुचिर्धाता गौतमोऽथ धनञ्जयः।
सुषेणोऽन्यो घृताची च वसन्त्याश्वयुजे रवौ॥१३॥

विश्वावसुर्भरद्वाजः पर्जन्यैरावतौ तदा। विश्वाची सेनजिच्चापः कार्त्तिके चाधिकारिणः॥१४॥

अंशुः काश्यपस्तार्क्ष्यश्च महापद्मस्तथोर्वशी। चित्रसेनस्तथा विद्युन्मार्गशीर्षाधिकारिणः॥१५॥

क्रतुर्भर्गस्तथोर्णायुः स्फूर्जः कर्कोटकस्तथा। अरिष्टनेमिश्चैवान्या पूर्वचित्तिर्वराप्सराः।
पौषमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले॥१६॥

आश्विन मास में पूषा, सुरुचि, धाता, गौतम, धनंजय, सुषेण, घृताची, ये सात लोग सूर्यरथ पर रहते हैं। कार्त्तिक मास में विश्वावसु, भरद्वाज, पर्जन्य, ऐरावत, विश्वाची, सेनजित् तथा चाप सूर्यरथ पर रहते हैं। अगहन में अंशु, काश्यप, तार्क्ष्य, महापद्म, उर्वशी, चित्रसेन, विद्युत् सूर्यरथ के अधिष्ठाता रहते हैं। पौष मास में क्रतु, भर्ग, ऊर्णायुः, गन्धर्व, स्फूर्ज, कर्कोटक, अरिष्टनेमि, पूर्वचित्ति नामक उत्तम अप्सरा सूर्यमण्डल में (रथ में) रहते हैं॥१३-१६॥

त्वष्टाऽथ जमदग्निश्च कम्बलोऽथ तिलोत्तमा। ब्रह्मापेतोऽथ ऋतजिद्धृतराष्ट्रश्च सप्तमः॥१७॥

माघमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले॥१८॥
विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्य्यवर्च्चाथ सत्यजित्।
विश्वामित्रस्तथा रक्षो यज्ञापेतो हि फाल्गुने॥१९॥

सवितुर्मण्डले ब्रह्मन्विष्णुशक्त्युपबृंहिताः। स्तुवन्ति मुनयः सूर्य्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः॥२०॥

नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति सूर्य्यस्यानु निशाचराः। वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषुसंग्रहः।
बालिखिल्यास्तथैवेनं परिवार्य्य समासते॥२१॥

माघमास में त्वष्टा, जमदग्नि, कश्यप, तिलोत्तमा, राक्षस ब्रह्मापेत, ऋतजित् यक्ष, गन्धर्व, धृतराष्ट्र दिवाकर मण्डल में स्थित रहते हैं। फाल्गुन में विष्णु, अश्वतर सर्प, रम्भा, सूर्यवर्चागन्धर्व, सत्यजित्यक्ष, विश्वामित्र, राक्षस यज्ञापेत सूर्यमण्डलस्थ रहते हैं। हे राजन्! ये सात लोग चैत्र आदि बारह महीनों में विष्णु की शक्ति से उपबृंहित होकर सूर्यमण्डल में रहते हैं। सूर्य के चलते समय मुनि लोग दिवाकर देव का स्तव करते हैं। गन्धर्व लोग उन देवता के समक्ष गायन करते रहते हैं, अप्सरायें नृत्य करती हैं। राक्षसगण सूर्यदेव का अनुगमन करते हैं। सर्प लोग सूर्यदेव वहन करते हैं। यक्ष लोग रथ में लगाम संयोजित करते हैं (घोड़ों की लगाम)। सूर्य के चलते समय बालखिल्य नामक साठ हजार मुनि लोग सूर्यदेव को चारों ओर से घेरे रहते हैं॥१७-२१॥

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ॥२२॥
वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च। पिषङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः॥२३॥
सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूमिभवैर्हयैः। सोपासङ्गपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान्॥२४॥
रथो भूमिसुतस्यापि तप्तकाञ्चनसन्निभः।
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान्भौमस्यापि रथो महान्।
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः॥२५॥

चन्द्ररथ तीन पहियों वाला तथा दस घोड़ों से युक्त है। उनके अश्व कुन्द के फूल की तरह उजले वर्ण के हैं। वे दाहिने तथा बायें पार्श्व में जुते रहते हैं। चन्द्र पुत्र बुध का रथ वायु एवं अग्नि द्वारा बना है। वह वायुवत् वेग से चलने वाला है। उसमें पिंगल वर्ण के आठ घोड़े जुते रहते हैं। शुक्र का रथ अत्यन्त विस्तृत माप का है। उसके अश्व भूमि से उत्पन्न हैं। उसमें वरुथ एवं अनुकर्ष (रथ के नीचे की लकड़ी) तथा पताका भी रहती है। उसमें उपासङ्ग (रथ के शिखर की लकड़ी) लगा है। भूमिपुत्र मंगल का रथ तपे हुये स्वर्ण वर्ण वाला समुज्ज्वल सा है। यह अत्यन्त मजबूत तथा बड़ा है। इसमें स्वर्ण जैसे आठ घोड़े जुते रहते हैं। ये घोड़े पद्मराग मणि जैसे अरुण रंग के हैं। इन घोड़ों का जन्म अग्नि से हुआ है॥२२-२५॥

अष्टाभिः पाण्डरैर्युक्तैर्वाजिभिः काञ्चने रथे।
तिष्ठंस्तिष्ठति वर्षं वै राशौ राशौ बृहस्पतिः॥२६॥
आकाशसम्भवैरश्वैः शवलैः स्यन्दनं युतम्। समारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः॥२७॥
स्वर्भानोस्तुरगा ह्यष्टौ भृङ्गाभा धूसरं रथम्। सकृद्युक्तास्तु भूतेश वहन्त्यविरतं सदा॥२८॥
तथा केतुरथस्याश्वा अष्टौ ते वातरंहसः। पलालधूमवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणाः॥२९॥
द्वीपनद्यद्र्यदन्वन्तो भुवनानि हरेस्तनुः॥३०॥

॥इति गारुडे महापुराणे भुवनकोषो नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥
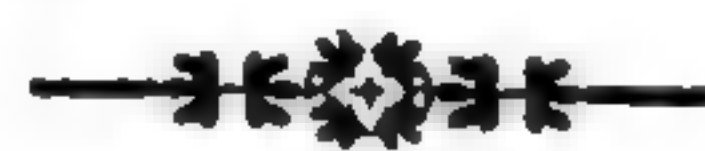
बृहस्पति ग्रह का रथ सोने का बना है, जिसमें पाण्डुर वर्ण वाले आठ घोड़े जुते हैं। इस पर बैठे बृहस्पति प्रतिवर्ष एक-एक राशि पार करते हैं। मन्द गति से चलने वाले शनि का रथ आकाश से उत्पन्न तथा चितकबरे वर्ण के अश्वों द्वारा खींचा जाता है। हे भूतपति रुद्र! राहु के रथ में भी आठ अश्व जुते हैं, जो भ्रमर की तरह कृष्ण वर्ण हैं। इनका यह रथ धूसर रंग का है। इसके घोड़े एक बार जोते जाने पर दीर्घकाल तक रथ चलाते हैं। केतु का रथ आठ घोड़ों वाला तथा वायुवेगी है। ये अश्व धूम्रवर्ण तथा लाक्षारस जैसे अरुणवर्ण हैं। द्वीप-नदी-समस्त पर्वत-समुद्रादि समस्त भुवनमण्डल श्रीहरि का स्वरूप ही है॥२६-३०॥

॥अट्ठावनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

नक्षत्र विचार वर्णन

सूत उवाच

ज्योतिश्चक्रं भुवो मानमुक्त्वा प्रोवाच केशवः।
चतुर्लक्षं ज्योतिषस्य सारं रुद्राय सर्वदः॥१॥

सूतजी ने कहा—केशव ने ज्योतिश्चक्र तथा धरती का परिमाप कहा। तदनन्तर उन्होंने ज्योतिर्मण्डल के सार चार लाख ज्योतिष्क का भी वर्णन रुद्रदेव से किया॥१॥

हरिरुवाच

कृत्तिकास्त्वग्निदैवत्या रोहिण्यो ब्रह्मणः स्मृताः। इल्वलाः सोमदैवत्या रौद्रं चार्द्रमुदाहृतम्॥२॥
पुनर्वसुस्तथादित्यस्तिष्यश्च गुरुदैवतः। अश्लेषा सर्पदैवत्या मघाश्च पितृदेवताः॥३॥
भाग्याश्च पूर्वफल्गुन्यः अर्य्यमा च तथोत्तरः।
सावित्रश्च तथा हस्ता चित्रा त्वष्टा प्रकीर्त्तितः॥४॥
स्वाती च वायुदैवत्या नक्षत्रं परिकीर्त्तितम्।
इन्द्राग्निदेवता प्रोक्ता विशाखा वृषभध्वज॥५॥
मैत्रमृक्षमनुराधा ज्येष्ठा शाक्रं प्रकीर्त्तितम्। तथा निर्ऋतिदैवत्यो मूलस्तज्ज्ञैरुदाहृतः॥६॥
आप्यास्त्वाषाढपूर्वास्तु उत्तरा वैश्वदेवताः।
ब्राह्मश्चैवाभिजित्प्रोक्तः श्रवणा वैष्णवः स्मृतः॥७॥

वासवस्तु तथा ऋक्षं धनिष्ठा प्रोच्यते बुधैः। तथा शतभिषा प्रोक्तं नक्षत्रं वारुणं शिव॥८॥
आज्यम्भाद्रपदा पूर्वा अहिर्बुध्ना तथोत्तरा। पौष्णञ्च रेवती ऋक्षमश्वयुक्चाश्वदैवतम्।
भरण्यश्च तथा याम्यं प्रोक्तास्ते ऋक्षदेवताः॥९॥

श्रीहरि ने कहा—कृत्तिका नक्षत्र के देवता अग्नि हैं, रोहिणी के देवता ब्रह्मा, मृगशिरा के देवता चन्द्र, आर्द्रा के देवता शिव, पुनर्वसु के देवता सूर्य, पुष्य के देवता बृहस्पति, पूषा के देवता बृहस्पति, आश्लेषा के देवता सर्प, मघा के देवता पितृगण, पूर्वाफाल्गुनी के देवता भग, उत्तराफाल्गुनी के देवता अर्यमा, हस्त के देवता सविता, चित्रा के देवता त्वष्टा, स्वाती के देवता वायु, विशाखा के देवता इन्द्राग्नि, अनुराधा के देवता मित्र, ज्येष्ठा के देवता इन्द्र, मूल के देवता निर्ऋति, पूर्वाषाढ़ा के देवता अप्, उत्तराषाढ़ा के देवता विश्वेदेव, अभिजित् के देवता ब्रह्मा, श्रवणा के देवता विष्णु, धनिष्ठा के इन्द्र, शतभिषा के देवता वरुण, पूर्वाभाद्रपद के देवता अज, उत्तराभाद्रपद के देवता अहिर्बुध्न, रेवती के देवता पूषा, अश्विनी के देवता अश्व, भरणी के देवता यम हैं॥२-९॥

ब्रह्माणी संस्थिता पूर्वे प्रतिपन्नवमीतिथौ। माहेश्वरी चोत्तरे च द्वितीयादशमीतियौ॥१०॥
पञ्चम्याञ्च त्रयोदश्यां वाराही दक्षिणे स्थिता।
षष्ठ्याञ्चैव चतुर्दश्यामिन्द्राणी पश्चिमे स्थित॥११॥
सप्तम्यां पौर्णमास्याञ्च चामुण्डा वायुगोचरे। अष्टम्यमावास्ययोगे महालक्ष्मीशगोचरे॥१२॥
एकादश्यां तृतीयायामग्निकोणे तु वैष्णवी।
द्वादश्याञ्च चतुर्थ्यान्तु कौमारी नैर्ऋते तथा।
योगिनीसम्मुखे नैव गमनादि प्रकारयेत्॥१३॥

अष्ट योगिनी में से प्रतिपदा तथा नवमी तिथि पर ब्रह्माणी योगिनी पूर्वदिक् में रहती हैं। माहेश्वरी योगिनी द्वितीया एवं दशमी तिथि पर उत्तरदिक् में रहती हैं। तृतीया तथा एकादशी तिथि पर कौमारी अग्निकोण में रहती है। नारायणी योगिनी चतुर्दशी तथा द्वादशी तिथि पर नैर्ऋत् कोणस्थ रहती है। पञ्चमी तथा त्रयोदशी तिथि पर देवी वराही योगिनी दक्षिण दिशा में अवस्थान करती हैं। षष्ठी तथा चतुर्दशी तिथि पर इन्द्राणी पश्चिम में विराजमान रहती हैं। सप्तमी तथा पूर्णिमा तिथि पर वायुकोण में चामुण्डा योगिनी की स्थिति होती है। महालक्ष्मी योगिनी ईशान कोणस्थ अष्टमी तथा अमावस्या तिथि पर हो जाती हैं। वैष्णवी योगिनी एकादशी तथा तृतीया तिथि पर अग्नि कोणस्थ होती हैं। कौमारी योगिनी द्वादशी एवं चतुर्थी तिथि पर नैर्ऋत् कोणस्थ हो जाती हैं। इन योगिनीगण की स्थिति कहां है, यह जानकर तब यात्रा का प्रारम्भ करे। योगिनी सामने हो, तब यात्रा न करे। जाते समय यह देखना चाहिये कि योगिनी किस दिक् में हैं। इन नियमों के अनुसार ही यात्रा में जाये। विपरीत स्थिति होने पर न जाये॥१०-१३॥

अश्विनीमत्र रेवत्यो मृगमूला पुनर्वसुः। पुष्या हस्ता तथा ज्येष्ठा प्रस्थानश्रेष्ठमुच्यते॥१४॥
हस्तादि पञ्च ऋक्षाणि उत्तरात्रयमेव च। अश्विनी रोहिणी पुष्या धनिष्ठा च पुनर्वसुः।
वस्त्रप्रावरणे श्रेष्ठो नक्षत्राणां गणः स्मृतः॥१५॥

कृत्तिका भरण्यश्लेषा मघा मूलविशाखयोः।
त्रीणि पूर्वा तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्त्तिताः॥१६॥
एष वापीतडागादिकूपभूमितृणानि च। देवागारस्य खननं निधानखननं तथा॥१७॥
गणितं ज्योतिषारम्भं खनिबिलप्रवेशनम्।
कुर्य्यादधोगतान्येव अन्यानि च वृषध्वज॥१८॥

अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूला, पुनर्वसु, पुष्या, हस्ता, ज्येष्ठा में यात्रा करना उत्तम होता है। हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, धनिष्ठा, पुनर्वसु नक्षत्र काल में नये वस्त्र धारण करना श्रेष्ठ है। कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, मघा, मूला, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद को **अधोमुखगण** नक्षत्र कहा गया है। अधोमुखगण नक्षत्र में पुष्करिणी, सरोवर, कूआं हेतु जमीन खनन का आरम्भ करना शुभ माना जाता है। धान तृण (फसल काटना) छेदन, देवालय बनाना, प्रारम्भ करना, गड़ा धन खोदना भी अधोमुखगण नक्षत्र में फलप्रद तथा शुभ होता है। हे वृषवाहन! ज्योतिष चक्र की गणना का प्रारम्भ करना, खान अथवा बिल (गह्वर) आदि में प्रवेश करना भी इस अधोमुखगण नक्षत्रों में उत्तम कहा गया है॥१४-१८॥

रेवती चाश्विनो चित्रा स्वाती हस्ता पुनर्वसुः।
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा एते पार्श्वमुखाः स्मृताः॥१९॥
गजोष्ट्राश्वबलीवर्ददमनं महिषस्य च। बीजानां वपनं कुर्य्याद् गमनागमनादिकम्॥२०॥
चक्रयन्त्ररथानाञ्च नावादीनां प्रवाहणम्। गवां दमनकर्माणि कुर्य्यादेतेषु तान्यपि॥२१॥
रोहिण्यार्द्रा तथा पुष्या धनिष्ठा चोत्तरात्रम्।
वारुणं श्रवणञ्चैव नव चोर्ध्वमुखाः स्मृताः॥२२॥
एषु राज्याभिषेकञ्च पटबन्धश्च कारयेत्।
ऊर्ध्वमुख्यान्युच्छ्रितानि सर्वाण्येतेषु कारयेत्॥२३॥
चतुर्थी चाशुभा षष्ठी अष्टमी नवमी तथा।
अमावास्या पूर्णिमा च द्वादशी च चतुर्दशी॥२४॥

रेवती, अश्विनी, स्वाती, चित्रा, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा तथा ज्येष्ठा को **पार्श्वमुख नक्षत्र** कहा जाता है। इसमें हाथी, ऊंट, बैल, महिष का दमन (वश में करने का) कार्य, बीज बोना, आना-जाना, चक्र, यन्त्र, रथ, यान, नाव का कार्य आरम्भ करना, पार्श्वमुख नक्षत्र काल में उत्तम होता है। गौओं का दमन कार्य (वश में करना) इसी पार्श्वमुख नक्षत्र में करे। रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, शतभिषा, श्रवण नक्षत्र को **ऊर्ध्वमुख** कहते हैं। ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में राज्याभिषेक तथा पट्टबन्ध कार्य करे। इससे इन कार्यों का शुभ फल मिलता है। इन नक्षत्रों में सभी कार्य करना उत्तम फलप्रद है। चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, अमावस्या, पूर्णिमा, द्वादशी, चतुर्दशी तिथियां अशुभ फल वाली होती हैं। इन तिथियों में शुभ कार्य कदापि उचित नहीं है। शुक्ला प्रतिपदा में यात्रा तथा यात्राकार्य भी न करे॥१९-२४॥

अशुक्ला प्रतिपत् श्रेष्ठा द्वितीया चन्द्रसूनुना। तृतीया भूमिपुत्रेण चतुर्थी च शनैश्चरे॥२५॥
गुरौ शुभा पञ्चमीं स्यात् षष्ठी मङ्गलशुक्रयोः।
सप्तमी सोमपुत्रेण अष्टमी कुजभास्करौ॥२६॥
नवमी चन्द्रवारेण दशमी तु गुरौ शुभा। एकादश्यां गुरुः शुद्धो द्वादश्याञ्च पुनर्बुधः॥२७॥
त्रयोदशी शुक्रभौमौ शनौ श्रेष्ठा चतुर्दशी।
पौर्णमास्यप्यमावास्या श्रेष्ठा स्याच्च बृहस्पतौ॥२८॥

लेकिन कृष्ण प्रतिपदा के दिन यात्रा शुभ फलप्रदा है। बुधवासरी द्वितीया, मंगलवासरी तृतीया, शनिवासरी चतुर्थी, बृहस्पतिवासरी पञ्चमी, मंगल-शुक्रवासरी षष्ठी, बुधवासरी सप्तमी, मंगल तथा रविवासरी अष्टमी, सोमवासरी नवमी, बृहस्पतिवासरी दशमी-एकादशी, बुधवासरी द्वादशी, शुक्र तथा मंगलवासरी त्रयोदशी, शनिवासरी चतुर्दशी एवं बृहस्पतिवासरी पूर्णिमा तथा अमावस्या शुभ फलप्रदा तिथियां हैं॥२५-२८॥

द्वादशीं दहते भानुः शंशी चैकादशीं दहेत्।
कुजो दहेच्च दशमीं नवमीञ्च बुधो दहेत्॥२९॥
अष्टमीं दहते जीवः सप्तमीं भार्गवो दहेत्।
सूर्य्यपुत्रो दहेत् षष्ठीं गमनाद्यासु नास्ति वै॥३०॥
प्रतिपन्नवमीष्वेव चतुर्दश्यष्टमीषु च। बुधवारे च प्रस्थानं दूरतः परिवर्जयेत्॥३१॥
मेषे कर्कटके षष्ठी कन्यायां मिथुनेऽष्टमी। वृषे कुम्भे चतुर्थी च द्वादशी मकरे तुले॥३२॥
दशमी वृश्चिके सिंहे धनुर्मीने चतुर्दशी। एता दग्धा न गन्तव्यं किल जीवादिमानवैः॥३३॥

अब दिनदग्ध प्रकरण सुनिये। रविवार को द्वादशी, सोमवासरी एकादशी, मंगलवासरी दशमी, बुधवासरी नवमी, बृहस्पतिवासरी अष्टमी, शुक्रवासरी सप्तमी, शनिवासरी अष्टमी—ये सभी दिनदग्ध दोषयुता तिथियां हैं। दग्ध दिवस में यात्रा आदि वर्जित है। शुक्ल प्रतिपदा नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी तिथियों पर तथा बुधवार को यात्रा करना वर्जित है। वैशाख तथा श्रावण मासीय षष्ठी, आश्विन एवं आषाढ़ मासीय अष्टमी, ज्येष्ठ तथा फाल्गुनमासीय चतुर्थी, माघ तथा कार्तिक मासीय द्वादशी, अग्रहायण तथा भाद्रमासीय दशमी तथा पौष एवं चैत्री चतुर्दशी दग्धदोषयुक्त तिथियां हैं। दग्धदोष के समय यात्रा पूर्णतः वर्जित है॥२९-३३॥

विशाखात्रयमादित्ये पूर्वाषाढात्रये शशी। धनिष्ठात्रितयं भौमे बुधे वै रेवतीत्रयम्॥३४॥
रोहिण्यादित्रयं जीवे शुक्रे पुष्यात्रयं शिव। शनिवारे वर्जयेच्च उत्तराफल्गुनीत्रयम्।
एष औत्पातिको योगो मृत्युरोगादिकं भवेत्॥३५॥

रविवार को विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, सोमवार को पूर्वाषाढ़ा तथा श्रवण, मंगलवार को धनिष्ठा, शतभिषा एवं पूर्वाभाद्रपद, बुधवार को रेवती, अश्विनी तथा भरणी, बृहस्पतिवार को रोहिणी,

मृगशिरा, आर्द्रा, शुक्रवार को पुष्य, आश्लेषा, मघा, शनिवार को उत्तरफाल्गुनी, हस्ता, चित्रा—इसे उत्पातिक योग कहते हैं। इस योग में यात्रा मृत्युप्रदा अथवा रोगप्रदा होती है॥३४-३५॥

मूलेऽर्कः श्रवणे चन्द्रः प्रोष्ठपद्युत्तरे कुजः। कृत्तिकासु बुधश्चैव गुरौ रुद्र पुनर्वसुः॥३६॥

पूर्वफल्गुनी शुक्रे च स्वातिश्चैव शनैश्चरे।
एते चामृतयोगाः स्युः सर्वकार्य्यप्रसाधकाः॥३७॥
विष्कम्भे घटिकाः पञ्च शूले सप्त प्रकीर्त्तिताः।
षड्गण्डे चातिगण्डे च नव व्याघातवज्रयोः॥३८॥

व्यतीपाते परीघे च वैधृते च दिने दिने। एते मृत्युयुता ह्येषु सर्वकर्माणि वर्जयेत्॥३९॥

रविवार को मूल, सोमवार को श्रवण, मंगल को उत्तराभाद्रपद, बुधवार को कृत्तिका, बृहस्पतिवार को पुनर्वसु, शुक्रवार को पूर्वाफाल्गुनी तथा शनिवार को स्वाती नक्षत्र होने पर अमृत योग होता है, जो सभी कार्य के लिये श्रेष्ठ है। विष्कुम्भ आदि सत्ताईस योगों में से विषुव योग के प्रथम पांच दण्ड, शूलयोग का सात दण्ड, गण्डयोग का तथा अतिगण्ड योग का छः दण्ड, व्याघात तथा वज्रयोग का नौ दण्ड, व्यतीपात, परिघ तथा वैधृति योग का पूरा दिन वर्जित काल है। इस समय किया कार्य, कार्य करने वाले के लिये मृत्युयुत होता है। इस समय सभी कार्य न करे॥३६-३९॥

हस्तेऽर्कश्च गुरुः पुष्ये अनुराधा बुधे शुभा।
रोहिणी च शनौ श्रेष्ठा सौमं सोमेन वै शुभम्॥४०॥

शुक्रे च रेवती श्रेष्ठा अश्विनी मङ्गले शुभा। एतेषु सिद्धियोगा वै सर्वदोषविनाशनाः॥४१॥
भार्गवे भरणी चैव सोमे चित्रा वृषध्वज। भौमे चैवोत्तराषाढा धनिष्ठा च बुधे हर॥४२॥

गुरौ शतभिषा रुद्र शुक्रे वै रोहिणी तथा।
शनौ च रेवती शम्भो विषयोगाः प्रकीर्त्तिताः॥४३॥

पुष्यः पुनर्वसुश्चैव रेवती चित्रया सह। श्रवणा च धनिष्ठा च हस्ताश्विनी मृगस्तथा।

कुर्य्याच्छतभिषायाञ्च जातकर्मादि मानवः॥४४॥
विशाखा चोत्तरा त्रीणि मघार्द्रा भरणी तथा।
अश्लेषा कृत्तिका रुद्र प्रस्थाने मरणप्रदाः॥४५॥

॥इति गारुडे महापुराणे ऊनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥

रविवासरी हस्त नक्षत्र, बृहस्पतिवासरी पुष्य नक्षत्र, बुधवासरी अनुराधा नक्षत्र, शनिवासरी रोहिणी नक्षत्र, सोमवासरी मृगशिरा नक्षत्र, शुक्रवासरी रेवती तथा मंगलवासरी अश्विनी नक्षत्र सिद्धिप्रद होता है। यह सिद्धिप्रद योग सभी दोषों का नाशक भी है। शुक्रवासरी भरणी नक्षत्र, सोमवासरी चित्रा, मंगलवासरी उत्तराषाढ़ा, बुधवासरी धनिष्ठा, बृहस्पतिवासरी शतभिषा, शुक्रवासरी रोहिणी, शनिवासरी रेवती नक्षत्र को

विषयोग कहा गया है। पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, मघा, आर्द्रा, भरणी, आश्लेषा, कृत्तिका में यात्रा करना मृत्युप्रद है तथा कष्टकारी है॥४०-४५॥

॥उनसठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
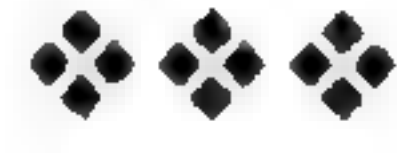
षष्टितमोऽध्यायः

यात्राकालीन शुभाशुभ वर्णन

हरिरुवाच

षडादित्ये दशा ज्ञेया सोमे पञ्चदश स्मृताः। अष्टावङ्गारके चैव बुधे सप्तदश स्मृताः॥१॥
शनैश्चरे दश ज्ञेया गुरोरेकोनविंशतिः। राहोर्द्वादशवर्षाणि एकविंशति भार्गवे॥२॥

श्रीहरि ने कहा—सूर्यदशाकाल छः वर्ष, चन्द्र का पन्द्रह वर्ष, मंगल का आठ वर्ष, बुध का सत्रह वर्ष, शनि का दस वर्ष, बृहस्पति का उन्नीस वर्ष, राहु का बारह वर्ष एवं शुक्र का इक्कीस वर्ष दशा भोग काल कहा गया है। (सब मिला कर १०८ वर्ष अर्थात् अष्टोत्तरी दशा यहां मानी गयी है)॥१-२॥

रवेर्दशा दुःखदा स्यादुद्वेगनृपनाशकृत्। विभूतिदा सोमदशा सुखमिष्टान्नदा तथा॥३॥
दुःखप्रदा कुजदशा राज्यादेः स्याद्विनाशिनी।
दिव्यस्त्रीदा बुधदशा राज्यदा कोषवृद्धिदा॥४॥
शनेर्दशा राज्यनाशबन्धुदुःखकरी भवेत्। गुरोर्दशा राज्यदा स्यात् सुखधर्मादिदायिनी।
राहोर्दशा राज्यनाशव्याधिदा दुःखदा भवेत्॥५॥
हस्त्यश्वदा शुक्रदशा राज्यस्त्रीलाभदा भवेत्॥६॥

सूर्य की दशा दुःखप्रदा, अनेक दुःखदायी, उद्वेग और राज्यनाश करती है। चन्द्रदशा में सम्पत्ति तथा मिष्ठान्न लाभ होता है। मंगल दशा में दुःख तथा राज्यनाश होगा। बुधदशा में स्त्रीलाभ, राज्यलाभ तथा संचित धन बढ़ता है। शनि की दशा में राज्यनाश तथा बन्धुजनित दुःख होता है। बृहस्पति की दशा में राज्य प्राप्ति, सुख तथा धर्म बढ़ता है। राहु की दशा में राज्यनाश, पीड़ा तथा दुःखभोग होना कहा गया है। शुक्रदशा हाथी, अश्व, राज्य तथा स्त्रीलाभ प्रदान करती है॥३-६॥

मेषमङ्गारकक्षेत्रं वृषं शुक्रस्य कीर्त्तितम्। मिथुनस्य बुधो ज्ञेयः सोमः कर्कटकस्य च॥७॥
सूर्य्यक्षेत्रं भवेत् सिंहः कन्याक्षेत्रं बुधस्य च।
भार्गवस्य तुलाक्षेत्रं वृश्चिकोऽङ्गारकस्य च॥८॥

धनुः सुरगुरोश्चैव शनेर्मकरकुम्भकौ। मीनः सुरगुरोश्चैव ग्रहक्षेत्रं प्रकीर्तितम्॥९॥

मेष राशि मंगल का क्षेत्र है। वृष शुक्र का, मिथुन बुध का, कर्क चन्द्र का, सिंह सूर्य का, कन्या बुध का, तुला शुक्र का, वृश्चिक मंगल का, धनु बृहस्पति का, मकर-कुंभ शनि का, मीन राशि बृहस्पति का ग्रहक्षेत्र है॥७-९॥

पौर्णमास्या द्वयं यत्र पूर्वाषाढाद्वयं भवेत्।
द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥१०॥
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा स्यादलङ्कृतौ॥११॥

मृगाहिकपिमार्जारश्वानः शूकरपक्षिणः। नकुलो मूषिकश्चैव यात्रायां दक्षिणे शुभः॥१२॥
विप्रकन्या शवो रुद्र शङ्खभेरीवसुन्धराः। वेणुस्त्रीपूर्णकुम्भानां यात्रायां दर्शनं शुभम्।

जम्बूकोष्ट्रखराद्याश्च यात्राया वामके शुभाः॥१३॥
कार्पासौषधितैलञ्च पक्वाङ्गारभुजङ्गमाः।
मुक्तकेशीं रक्तमाल्यं नग्नाद्यशुभमीक्षितम्॥१४॥
हिक्काया लक्षणं वक्ष्ये लभेत्पूर्वे महाफलम्।
आग्नेये शोकसन्तापौ दक्षिणे हानिमाप्नुयात्॥१५॥
नैर्ऋत्ये शोकसन्तापौ मिष्टान्नञ्चैव पश्चिमे।
अर्थं प्राप्नोति वायव्ये उत्तरे कलहो भवेत्।
ईशाने मरणं प्रोक्तं हिक्कायाश्च फलाफलम्॥१६॥

पूर्णिमा एवं पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र जिस महीने में दो बार पड़ें, वह मास द्विराषाढ़ कहा जायेगा। जिस वर्ष में द्विराषाढ़ होता है, उस वर्ष में विष्णुदेव श्रावण मास में शयन करते हैं। अश्विनी, रेवती, चित्रा, धनिष्ठा नक्षत्र में अलंकारादि धारण करना श्रेष्ठ है। यात्रा के समय यदि मृग, सर्प, वानर, विडाल, कुत्ता, शूकर, पक्षी, नेवला, मूषक, दक्षिण भाग (दाहिने) दीखे, तब यात्रा शुभ फलप्रदा होगी। यात्रा के समय ब्राह्मण की लड़की, शव, शंख, भेरी, वसुन्धरा, वेणु तथा पूर्णकुंभ लिये नारी दीखने से यात्रा शुभ फलदायक होगी। यात्राकाल में बाईं ओर सियार, ऊंट, गधा दीखने का उत्तम फल है। यात्रा काल में कपास, औषधि, तैल, जला कोयला, सर्प, बाल खोले स्त्री, लाल माला, नंगा व्यक्ति दीखने पर यात्रा अशुभ फलदायक होगी। उस समय हिचकी सुनने का महाफल होता है। अग्निकोण में शोक-सन्ताप (हिचकी की ध्वनि सुनने पर), दक्षिण में सुनाई देने पर हानि, नैर्ऋत्कोण में सुनाई पड़ने पर शोक सन्ताप, पश्चिम में सुनाई पड़ने पर मिष्ठान्न भोजन, वायुकोण में सुनाई पड़ने पर अर्थलाभ, उत्तर में सुनाई पड़ने पर कलह, ईशान कोण में सुनाई पड़ने पर मरण भय होता है। यह हिचकी का शुभ-अशुभ फल कहा गया॥१०-१६॥

विलिख्य रविचक्रन्तु भास्करो नरसन्निभः।
वरिमन्नृक्षे वसेद्भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके॥१७॥

त्रयं वक्त्रे प्रदातव्यमेकैकं स्कन्धयोर्न्यसेत्। एकैकं बाहुयुग्मे तु एकैकं हस्तयोर्द्वयोः॥१८॥
हृदये पञ्च ऋक्षाणि एकंनाभौ प्रदापयेत्।
ऋक्षमेकं न्यसेद् गुह्ये एकैकं जानुके न्यसेत्॥१९॥
नक्षत्राणि च शेषाणि रविपादे नियोजयेत्। चरणस्थेन ऋक्षेण अल्पायुर्जायते नरः॥२०॥
विदेशगमनं जानौ गुह्यस्थे परदारवान्। नाभिस्थेनाल्पसन्तुष्टो हृत्स्थेन स्यान्महेश्वर॥२१॥
पाणिस्थेन भवेच्चौरः स्थानभ्रष्टो भवेद्भुजे।
स्कन्धस्थिते धनपतिर्मुखे मिष्टान्नमाप्नुयात्।
मस्तके पट्टवस्त्रन्तु नक्षत्रं स्याद्यदि स्थितम्॥२२॥

॥इति गारुडे महापुराणे षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

अब रविचक्र को कहता हूं। जन्मकाल में जिस नक्षत्र में रवि स्थित रहते हैं, उस नक्षत्र से तीन नक्षत्र मस्तक पर, उसके आगे के तीन नक्षत्र मुख पर, उसके आगे वाले एक-एक नक्षत्र दोनों कंधों पर, उसके आगे वाले एक-एक नक्षत्र दोनों जानु पर, बाकी सभी नक्षत्रों को दोनों पैरों पर बनाये। इससे शुभाशुभ निर्णय होगा। इस चक्र में चरणों पर जिसका जन्म नक्षत्र पड़े, वह कम आयु वाला होगा। जानु पर जन्मनक्षत्र पड़े, तब विदेश गमन, गुह्य में जन्मनक्षत्र हो, तब वह परस्त्रीगामी होगा। नाभि पर जन्मनक्षत्र पड़ने से कम सन्तानें होंगी। हृदय पर जन्मनक्षत्र पड़े तब महा ऐश्वर्य, हाथों पर जन्मनक्षत्र पड़े तब चौर्य, बाहु पर जन्मनक्षत्र पड़े, तब स्थानच्युति, कन्धे पर पड़े तब धनलाभ, मुख पर पड़े तब मिष्ठान्न लाभ तथा मस्तक पर जन्म नक्षत्र हो तब वस्त्रलाभ होगा॥१७-२२॥

॥साठवां अध्याय समाप्त॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

चन्द्रशुद्धि वर्णन

हरिरुवाच

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्र शोभनः। शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा।
संपूज्यमानो लोकैस्तु गुरुवद् दृश्यते शशी॥१॥
चन्द्रस्य द्वादशावस्था भवन्ति शृणु ता अपि।
त्रिषु त्रिषु च ऋक्षेषु अश्विन्यादि वदाम्यहम्॥२॥

प्रवासस्थं पुनर्नष्टं मृतावस्थं जयावहम्। हास्यावस्थं क्रीडावस्थं प्रमोदावस्थमेव च॥३॥

विषादावस्थभोगस्थेज्वरावस्थं व्यवस्थितम्।

कम्पावस्थं स्वस्थावस्थं द्वादशावस्थगं भवेत्॥४॥

श्रीहरि ने कहा—अब चन्द्रशुद्धि सुनें। यदि चन्द्र जन्म लग्न से सप्तम, तृतीय, षष्ठ, दशम किंवा एकादश राशि में हों अथवा जन्मलग्न में ही स्थित हों, तब चन्द्र शुभ हैं। शुक्लपक्ष में सप्तम राशि आदि में (सप्तम, तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश) तथा पञ्चम अथवा नवम राशि में हों, तब चन्द्र शुद्ध हैं। यात्रा आदि कार्य हेतु यदि चन्द्रशुद्धि न हो, तब चन्द्रार्चन करे तथा चन्द्र को गुरु जैसा माने। इससे चन्द्रशुद्धि दोष नहीं रहता। चन्द्र की बारह अवस्था कही गयी है। हे रुद्र! इन बारह अवस्था का तद्‌जनित शुभ अथवा अशुभ फलों को सुनिये। अश्विनी से लेकर तीन-तीन नक्षत्र को एक अवस्था कहते हैं। इस प्रकार बारह अवस्था होती हैं। ये बारह अवस्थायें इस प्रकार हैं—प्रवास अवस्था, नष्ट अवस्था, मृत अवस्था, जय अवस्था, हास्य अवस्था, क्रीड़ा अवस्था, प्रमोद अवस्था, विषाद अवस्था, भोग अवस्था, ज्वर अवस्था, कम्प अवस्था, स्वास्थ्य अवस्था। (जैसी अवस्था में जब चन्द्रमा रहते हैं, तब उस व्यक्ति की वही अवस्था होती है)॥१-४॥

प्रवासो हानिर्मृत्युश्च जयो हासो रतिः सुखम्।

शोको भोगो ज्वरः कम्पः सुस्थावस्था क्रमात् फलम्॥५॥

जन्मस्थः कुरुते तुष्टिं द्वितीये नास्ति निर्वृतिः। तृतीये राजसम्मानं चतुर्थे कलहागमः॥६॥

पञ्चमेन मृगाङ्केण स्त्रीलाभो वै तथा भवेत्। धनधान्यागमः षष्ठे रतिः पूजा च सप्तमे।

अष्टमे प्राणसन्देहो नवमे कोषसञ्चयः॥७॥

दशमे कार्य्यनिष्पत्तिर्ध्रुवमेकादशे जयः। द्वादशेन शशाङ्केन मृत्युरेव न संशयः॥८॥

जन्मलग्नस्थ चन्द्रमा तुष्ट करता है, द्वितीयस्थ चन्द्र रहने से छुटकारा नहीं है, तृतीयस्थ चन्द्र राज सम्मान, चतुर्थस्थ चन्द्र कलह, पंचमस्थ चन्द्र स्त्रीलाभ, षष्ठ चन्द्र धन-धान्य लाभ, सप्तम चन्द्र रति तथा सम्मान, अष्टम चन्द्र प्राणों का भय, नवम चन्द्र धन संचय, दशम चन्द्र कार्य में सफलता, एकादश चन्द्र निश्चित जय तथा द्वादश चन्द्र निःसंदिग्ध रूप से मृत्युप्रद है॥५-८॥

कृत्तिकादौ च पूर्वेण सप्तर्क्षाणि च वै व्रजेत्। मघादौ दक्षिणे गच्छेदनुराधादि पश्चिमे॥९॥

प्रशस्ता चोत्तरे यात्रा धनिष्ठादि च सप्तसु॥१०॥

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा आश्लेषा—इन सात नक्षत्रों में पूर्व दिशा जाये। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा में दक्षिणदिक् जाये। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण तथा अभिजित् नक्षत्रों में पश्चिमदिक् जाये। धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी तथा भरणी आदि सात नक्षत्रों में उत्तर दिशा जाये॥९-१०॥

अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा समलङ्कृतौ। मृगाश्विचित्रापुष्याश्च मूला हस्ता शुभाः सदा।

कन्याप्रदाने यात्रायां प्रतिष्ठादिषु कर्मसु॥११॥

शुक्रचन्द्रौ जन्मस्थौ शुभदौ च द्वितीयके। शशिज्ञशुक्रजीवाश्च राशौ चाथ तृतीयके॥१२॥
भौममन्दशशाङ्कार्का बुधः श्रेष्ठश्चतुर्थके। शुक्रजीवौ पञ्चमे च चन्द्रकेतुसमाहितौ॥१३॥
मन्दार्कौ च कुजः षष्ठे गुरुचन्द्रौ च सप्तमे। ज्ञशुक्रावष्टमे श्रेष्ठौ नवमस्थो गुरुः शुभः॥१४॥

अर्कार्किचन्द्रादशम एकादशेऽखिला ग्रहाः।
बुधोऽथ द्वादशे चैव भार्गवः सुखदो भवेत्॥१५॥

सिंहेन मकरः श्रेष्ठः कन्यया मेष उत्तमः। तुलया सह मीनस्तु कुम्भेन सह कर्कटः॥१६॥
धनुषा वृषभः श्रेष्ठो मिथुनेन च वृश्चिकः। एतत्षडष्टकं प्रीत्यै भवत्येव न संशयः॥१७॥

॥इति गारुडे महापुराणे एकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

अश्विनी, रेवती, चित्रा तथा धनिष्ठा में आभूषण धारण करना श्रेयस्कर है। मृगशिरा, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, मूल तथा हस्त नक्षत्रों में कन्यादान, यात्रा, गृह-प्रासादादि प्रतिष्ठा करना शुभ है। यदि उस समय शुक्र, चन्द्र जन्मलग्न में स्थित हों, तब और शुभ होगा। द्वितीय स्थान में चन्द्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति, तृतीय में मंगल, शनि, सूर्य, चतुर्थ में बुध, पंचम में शुक्र, बृहस्पति, चन्द्र, केतु, षष्ठ में शनि, सूर्य, मंगल, सप्तम में बृहस्पति, चन्द्र, अष्टम में बुध, शुक्र, नवम में बृहस्पति, दशम में सूर्य, शनि तथा चन्द्र हों, तब शुभ फल मिलता है। एकादश स्थान में सभी ग्रह शुभ होते हैं। द्वादश में बुध-शुक्र उत्तम फलप्रद हो जाते हैं। यदि कन्या की जन्मराशि सिंह तथा वर की जन्मराशि मकर हो, कन्या की राशि मेष तथा वर की राशि कन्या हो, कन्या की राशि तुला तथा वर की मीन हो, कन्या की राशि कुंभ, वर की कर्क हो, कन्या की राशि धनु तथा वर की वृष हो, कन्या की राशि मिथुन तथा वर की राशि वृश्चिक हो, षड़ष्टक योग हो, यह सभी योग विवाहार्थ उत्तम हैं। इसमें संशय नहीं है॥११-१७॥

॥एकसठवां अध्याय समाप्त॥
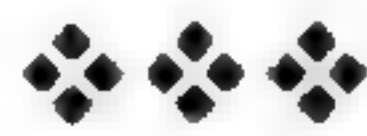
द्विषष्टितमोऽध्यायः

राशि का परिमाण वर्णन

हरिरुवाच

उदयात्तु समारभ्य राशौ भानुः स्थितो हर।
स्वराश्याद्यैर्व्रजेदह्नि षड्भिः षड्भिस्तथा निशाम्॥१॥

मीने मेषे च पञ्च स्युश्चतस्त्रो वृषकुम्भयोः। मकरे मिथुने तिस्त्रः पञ्च चापे च कर्कटे॥२॥

सिंहे च वृश्चिके षट् च सप्त कन्यातुले तथा।
एता लग्नप्रमाणेन घटिकाः परिकीर्त्तिताः॥३॥
रसपूर्वावसानेषु रसाब्धिष्वरिसागराः। लङ्कोदया हि तद्वत्तु तु लग्ना मेषादयोऽथवा॥४॥

श्रीहरि ने कहा—अपनी उदय राशि से लेकर सूर्य प्रत्येक राशि में जाता है। वह उदय राशि से छः राशि तक दिन में तथा शेष छः राशि में रात में जाता है। अब बारहों राशि का परिमाण कह रहा हूं। मीन तथा मेष का परिमाण है पांच दण्ड, वृष तथा कुम्भ का चार दण्ड, मकर तथा मिथुन लग्न का तीन दण्ड, धनु तथा कर्क का परिमाण पांच दण्ड, सिंह तथा वृश्चिक का परिमाण छः दण्ड तथा कन्या एवं तुला का परिमाण सात दण्ड कहा गया है। इस तरह से लग्न परिमाण का आकलन करके कार्य करे। अन्य मतानुसार मीन-मेष का परिमाण छः दण्ड, वृष-कुम्भ का छः दण्ड, मकर-मिथुन का चार दण्ड, धनु तथा कर्क का पांच दण्ड, वृश्चिक तथा सिंह का छः दण्ड एवं कन्या-तुला का परिमाण सात दण्ड कहते हैं। यह लंकोदय परिमाण के नाम से विदित है॥१-४॥

मेषलग्ने भवेद् बन्ध्या वृषे भवति कामिनी।
मिथुने सुभगा कन्या वेश्या भवति कर्कटे॥५॥
सिंहे चैवाल्पपुत्रा च कन्यायां रूपसंयुता। तुलायां रूपमैश्वर्य्यं वृश्चिके कर्कशा भवेत्॥६॥
सौभाग्यं धनुषि स्याच्च मकरे नीचगामिनी।
कुम्भे चैवाल्पपुत्रा स्यान्मीने वैराग्यसंयुता॥७॥
तुला कर्कटको मेषो मकरश्चैव राशयः।
चरकार्य्याणि कुर्य्याच्च स्थिरकार्य्याणि चैव हि॥८॥
पञ्चाननो वृषः कुम्भो वृश्चिकः स्युः स्थिराणि हि।
कन्या धनुश्च मीनश्च मिथुनं द्विस्वभावतः॥९॥
द्विस्वभावानि कर्माणि कुर्य्यादेषु विचक्षणः।
यात्रा चरेण कर्त्तव्या प्रवेष्टव्यं स्थिरेण तु।
देवस्थापनवैवाह्यं द्विस्वभावेन कारयेत्॥१०॥

कन्या मेषलग्न से वन्ध्या, वृष से सुन्दरी, मिथुन से सौभाग्यवती, कर्क से वेश्या, सिंह से अल्प पुत्रों वाली, कन्या से रूपवान्, तुला से भी सुन्दरी, वृश्चिक से कर्कशा, धनु से सौभाग्यवती, मकर से नीच गमनकारिणी, कुंभ से अल्प पुत्रों वाली, मीन में विवाह होने पर वैराग्यवान् हो जाती है। तुला, कर्क, मेष, मकर चरराशियां हैं। इन चार लग्नों में यात्रा आदि चरकार्य करे। सिंह, वृष, कुंभ तथा वृश्चिक स्थिर राशि हैं। कन्या, धनु, मीन, मिथुन द्वयात्मक हैं (चर एवं स्थिर दोनों गुण हैं)। चरलग्न में चरकार्य, स्थिरलग्न में स्थिरकार्य तथा द्वयात्मक में द्विस्वभाव कार्य करे। चरलग्न में यात्रा, स्थिरलग्न में गृहप्रवेशादि तथा देवस्थापनादि कार्य, विवाहादि कार्य द्वयात्मक लग्न में करना चाहिये॥५-१०॥

प्रतिपच्चाथ षष्ठी च नन्दा चैकादशी स्मृताः।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी वृषभध्वज॥११॥
जयाष्टमी तृतीया च स्मृता रुद्र त्रयोदशी।
चतुर्थी नवमी रिक्ता सा वर्ज्याऽथ चतुर्दशी।
पञ्चमी दशमी पूर्णा पूर्णिमा च शुभाः स्मृताः॥१२॥
चरः सौम्यो गुरुः क्षिप्रो मृदुः शुक्लो रविर्ध्रुवः।
शनिश्च दारुणो ज्ञेयो भौम उग्रः शशी समः॥१३॥
चरक्षिप्रैः प्रयातव्यं प्रवेष्टव्यं मृदुध्रुवैः। दारुणोग्रैश्च योद्धव्यं क्षत्रियैर्जयकाङ्क्षिभिः।
नृपाभिषेकोऽग्निकार्य्यञ्च सोमवारे प्रशस्यते॥१४॥
सोमे तुले प्रमाणञ्च कुर्य्याच्चैव गृहादिकम्।
सैनापत्यं शौर्य्ययुद्धं शस्त्राभ्यासः कुजे स्मृतः॥१५॥
सिद्धिकार्य्यञ्च मन्त्रश्च यात्रा चैव बुधे स्मृता। पठनं देवपूजा च वस्त्राद्याभरणं गुरौ॥१६॥
कन्यादानं गजारोहः शुक्रे स्यात्समयः स्त्रियाः।
स्थाप्यं गृहप्रवेशश्च गजबन्धः शनौ शुभः॥१७॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

—※※※—

प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी **नन्दा** तिथियां हैं। द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी **भद्रा** तिथियां हैं। तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी **जया** तिथियां हैं। चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी **रिक्ता** तिथियां हैं। पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा, **पूर्णा** तिथियां हैं। बुध, बृहस्पति क्षिप्रग्रह, चरसंज्ञक हैं। शुक्र मृदु ग्रह कहा जाता है। सूर्य ध्रुवग्रह है। शनि दारुण ग्रह है। मंगल उग्र ग्रह है। चन्द्र समग्रह है। बुध-बृहस्पति के समय यात्रा करे तथा शुक्र-रविवार को गृहप्रवेशादि करे। शनि-मंगलवार को क्षत्रिय लोग जयार्थ युद्ध के लिये जायें। सोमवार को राज्याभिषेक तथा यज्ञादि प्रारम्भ करना उचित है। सोमवार को तुलादान एवं गृहकार्य सम्पन्न करे। मंगल को सेनापति का अभिषेक, शौर्य कार्य, युद्ध प्रशिक्षण तथा अस्त्र शिक्षण देना चाहिये। ये कार्य मंगल को प्रारम्भ करे। बुध के दिन सिद्धिकार्य, मन्त्रणा तथा यात्रा श्रेष्ठ होती है। बृहस्पति के दिन वेदाध्ययन, देवपूजा, नव वस्त्र धारण, आभूषण धारण करे। शुक्र के दिन कन्यादान, गजारोहण, स्त्री संगम करना उचित है। शनिवार को गृह बनाना प्रारम्भ करे। गृहप्रवेश तथा हाथी वांधने का कार्य शुभ है॥११-१७॥

॥बासठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

नर-नारी लक्षण विचार वर्णन

हरिरुवाच

नरस्त्रीलक्षणं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर! अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ॥१॥

श्लिष्टाङ्गुली ताम्रनखौ सुगुल्फौ शिरयोज्झितौ।

कूर्मोन्नतौ च चरणौ स्यातां नृपवरस्य हि॥२॥

विरूक्षपाण्डरनखौ वक्त्रश्चैव शिरोन्नतम्। शूर्पाकारौ च चरणौ संशुष्कौ चरणाङ्गुली।

दुःखदारिद्र्यदौ स्यातां नात्र कार्य्या विचारणा॥३॥

श्रीहरि ने कहा—हे रुद्रदेव! अब मैं पुरुष तथा नारी लक्षण संक्षिप्त रूप से कहता हूं। जिसके तलवे कोमल, पद्ममध्य की तरह सुन्दर हों, उनमें पसीना न हो, उंगलियां परस्पर सटी हों, ऊपरी भाग कच्छप पृष्ठ जैसा उठा हो, नख ताम्रवर्ण हों, गुल्फद्वय सुरूप तथा पैर शिराओं से रहित हो, वह मानव राजा होगा। जिस मानव के हाथ-पैर के नख रूखे हों तथा पाण्डुरवर्ण हों, मुख पर शिरायें उभरी हों, पैर के तलवे शूप जैसे फैले हों, पैरों की उंगलियां रूखी सी लगें,वह दरिद्र तथा दुःख भोगने वाला होगा। इसमें अन्य विचार न करे॥१-३॥

अल्परोमयुता श्रेष्ठा जङ्घा हस्तिकरोपमा।

रोमैकैकं कूपके स्याद्भूपानान्तु महात्मनाम्॥४॥

द्वे द्वे रोमे पण्डितानां श्रोत्रियाणां तथैव च। रोमत्रयं दरिद्राणां रोगी निर्मांसजानुकः॥५॥

अल्पलिङ्गे च धनवान् स्याच्च पुत्रादिवर्जितः।

स्थूललिङ्गो दरिद्रः स्याद्दुःख्येकवृषणो भवेत्॥६॥

विषमे स्त्रीचञ्चलो वै नृपः स्याद् वृषणे समे।

प्रलम्बवृषणोऽल्पायुर्निर्द्रव्यः कुमणिर्भवेत्।

पाण्डुरैर्मलिनैश्चैव मणिभिश्च सुखी नरः॥७॥

जिसके दोनों जानु अत्यन्त कृश हों, वह चिरकाल योगी रहता है, जिसका लिंग छोटा हो, वह धनी होगा, लेकिन पुत्रहीन रहेगा। जिसका लिंग अति स्थूल हो, वह दरिद्र होगा। जिसे मात्र एक अण्डकोष हों, वह दीर्घकालीन दुःखभोगी होगा। जिसके अण्डकोष छोटे-बड़े हों, उसकी पत्नी चंचला होगी। जिसके दोनों अण्डकोष समान हों, वह राजा होगा। जिसके दोनों अण्डकोष लटके हों, वह अल्पायु होगा। जिसकी लिंगमणि मलिन तथा पाण्डुर हो, वह सुखी होगा॥४-७॥

निःस्वस्य शब्दमूत्राः स्युर्नृपा निःशब्दधारयः।

भोगाढ्याः समजठरा निःस्वाः स्युर्घटसन्निभाः॥८॥

सर्पोदरा दरिद्राः स्यू रेखाभिश्चायुरुच्यते।
ललाटे यस्य दृश्यन्ते तिस्रो रेखाः समाहिताः।
सुखी पुत्रसमायुक्तः स षष्टिं जीवते नरः॥९॥

जिसके मूत्र त्याग के समय मूत्र शब्द करे, वह दरिद्र होगा। जिसके मूत्र त्याग के समय मूत्र निकलने का शब्द अत्यल्प हो, वह राजा होगा। समान उदर वाले भाग्यवान् होते हैं। कुंभवत् उदर वाले निर्धन होते हैं। जिसका पेट सर्पवत् हो, वह भी दरिद्र होगा। जिसका ललाट समान हो, उस पर तीन रेखायें हों, वह सुखी, पुत्रादियुक्त तथा ६० वर्ष का जीवन पाता है॥८-९॥

चत्वारिंशच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनान्नरः। विंशत्यब्दमेकरेखा आकर्णान्ता गतायुषः।
आकर्णान्तरिता रेखास्तिस्त्रश्च स्युः शतायुषः॥१०॥
सप्तत्यायुर्द्विरेखा तुषष्ट्यायुस्ति सृभिर्भवेत्।
व्यक्ताव्यक्ताभी रेखाभिर्विंशत्यायुर्भवेन्नरः॥११॥
चत्वारिंशच्च वर्षाणि हीनरेखस्तु जीवति। भिन्नाभिश्चैव रेखाभिरपमृत्युर्नरस्य हि॥१२॥
त्रिशूलं पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते। धनपुत्रसमायुक्तः स जीवेच्छरदः शतम्॥१३॥
तर्जन्या मध्यमाङ्गुल्या आयुरेखा तु मध्यतः।
संप्राप्ता या भवेद्रुद्र स जीवेच्छरदः शतम्॥१४॥
प्रथमा ज्ञानरेखा तु ह्यङ्गुष्ठादनुवर्त्तते। मध्यमा मूलगा रेखा आयूरेखा अतः परम्॥१५॥
कनिष्ठायां समाश्रित्य आयुरेखा समाविशेत्।
अच्छिन्ना वा विभक्ता वा स जीवेच्छरदः शतम्॥१६॥
यस्य पाणितले रेखा आयुस्तस्य प्रकाशयेत्।
शतवर्षाणि जीवेच्च भोगी रुद्र न संशयः॥१७॥
कनिष्ठिकां समाश्रित्य मध्यमायामुपागता। षष्टिवर्षायुषं कुर्य्यादयूरेखा तु मानवः॥१८॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

जिसके ललाट पर दो ही रेखा हो, उसकी परमायु ४० वर्ष कही गयी है। जिसके कपाल पर मात्र एक रेखा हो, वह २० वर्ष ही जीता है। जिसकी कपाल रेखा कानों तक लम्बी हो, वह अत्यन्त कम आयु वाला होगा। जिसके मस्तक पर कानों तक लम्बी तीन रेखायें हों, वह सौ वर्ष जीवित रहेगा। जिसके ललाट पर ऐसी लम्बी दो रेखा हो, वह ६० वर्ष की परमायु वाला होगा। जिसकी ललाट रेखा का कुछ ही अंश व्यक्त हो, वह बीस वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहेगा। जिसके कपाल पर एक भी रेखा न हो, वह ४० वर्ष जीवित रहेगा। जिसकी कपाल रेखा टूटी-कटी हो, वह अपमृत्युभागी होगा। जिसके कपाल पर त्रिशूल अथवा पट्टिश का चिह्न दीखे, वह धन-पुत्रादि युक्त रह कर सौ वर्ष जीवित रहेगा। हे शिव! जिसकी हथेली

की आयुरेखा तर्जनी तथा मध्यमा अंगुली के मध्य तक लम्बी हो, वह सौ वर्ष जीवित रहता है। अंगुष्ठ मूल से जो रेखा निकलती है, वह है ज्ञानरेखा। मध्यमा अंगुली के मूल तक जाने वाली रेखा आयुरेखा है। यह कनिष्ठा उंगली के मूल तक जाती है। जिसकी आयुरेखा कटी-फटी अथवा बंटी हुई नहीं रहती, वह सौ वर्ष आयु वाला होता है। हे शंकर! जिसकी हथेली की आयुरेखा स्पष्ट रहती है, वह शतायु होगा। यह निःसंदिग्ध है। जिसकी आयुरेखा कनिष्ठा उंगली से लगा कर मध्यमा उंगली तक विस्तृत है, वह ६० वर्ष जीता है॥१०-१८॥

॥तिरसठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कन्या के शुभ लक्षणों का वर्णन

हरिरुवाच

यस्यास्तु कुञ्चिताः केशा मुखञ्च परिमण्डलम्।
नाभिश्च दक्षिणावर्त्ता सा कन्या कुलवर्द्धिनी॥१॥
या च काञ्चनवर्णाभा रक्तहस्तसरोरुहा। सहस्राणान्तु नारीणां भवेत्सापि पतिव्रता॥२॥
वक्रकेशा च या कन्या मण्डलाक्षी च या भवेत्।
भर्त्ता च म्रियते तस्या नियतं दुःखभागिनी॥३॥
पूर्णचन्द्रमुखी कन्या बालसूर्य्यसमप्रभा। विशालनेत्रा बिम्बोष्ठी सा कन्या लभते सुखम्॥४॥

श्रीहरि ने कहा—जिस कन्या के केश कुंचित (घुंघराले) हों, मुख मण्डलाकार, नाभि दक्षिणावर्त्त हो, वह कुल की वृद्धि करने वाली होती है। जिसकी देहकान्ति स्वर्ण जैसी हो, वह पतिव्रता तथा हजारों स्त्रियों में प्रधान होती है। जिस स्त्री के केश वक्र, नेत्र मण्डलाकृति हों, उसके पति की शीघ्र मृत्यु होती है। वह चिरकाल तक दुःख भोगती है। जिस कन्या का मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अच्छा लगने वाला, देह प्रभा नये उगे सूर्य जैसी अरुणिमा वाली हो, दोनों नेत्र विशाल हों, ओंठ बिम्बफल जैसा रक्तवर्ण हो, ऐसी कन्या चिरकाल तक सुख भोगती है॥१-४॥

रेखाभिर्बहुभिः क्लेशं स्वल्पाभिर्धनहीनता।
रक्ताभिः सुखमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यतां व्रजेत्॥५॥
कार्य्येपि मन्त्री पत्नी स्यात्सखी स्यात्करणेषु च।
स्नेहेषु भार्य्या माता स्याद्वेश्या च शयने शुभा॥६॥
अङ्कुशं मण्डलं चक्रं यस्याः पाणितले भवेत्। पुत्रं प्रसूयते नारी नरेन्द्रं लभते पतिम्॥७॥

यस्यास्तु रोमशौ पार्श्वौ रोमशौ च पयोधरौ। उन्नतौ चाधरोष्ठौ च क्षिप्रं मारयते पतिम्॥८॥

जिनकी हथेली पर अनेक रेखायें हों, वह दुःख भोगती है। जिसकी हथेली पर बहुत कम रेखायें हों, वह धनहीन होती है। जिसकी हथेली की रेखा रक्तवर्ण होती है, वह सुख पाती है। काली हस्तरेखायें हों, तब वह नारी दासी होती है। सती नारी पति की जविका के नित्य के कार्य में मन्त्री जैसी, वार्त्तालाप में सखी जैसी, स्नेह में माता जैसी होकर तथा शयन काल में वेश्या जैसी व्यवहार करके पति को सुख देती है। जिसकी हथेली पर अंकुश, कुण्डल तथा चक्रचिह्न हो, वह राजपत्नी तथा राजमाता होती है। जिस नारी के दोनों पार्श्व (कांख) तथा स्तन रोमयुक्त हों, ओंठ तथा अधर उच्च हों, उसका पति शीघ्र मर जाता है॥५-८॥

यस्याः पाणितले रेखा प्राकारं तोरणं भवेत्। अपि दासकुले जाता राज्ञीत्वमुपगच्छति॥९॥
उद्वृत्ता कपिला यस्या रोमराजी निरन्तरम्। अपि राजकुले जाता दासीत्वमुपगच्छति॥१०॥

जिस नारी की हथेली पर प्राकार (दीवार) अथवा तोरणाकृति रेखा हो, भले ही वह दासवंश में जन्मी हो, राजपत्नी हो जाती है। जिस नारी की नाभि पर बिना टूटी रोमावलि निकली हो तथा वह यदि कपिल वर्णा हो और ऊपर उठकर वृत्ताकार हो जाये, तब वह कन्या भले ही राजकुमारी हो, दासी बनेगी॥९-१०॥

यस्या अनामिकाङ्गुष्ठौ पृथिव्यां नैव तिष्ठतः। पतिं मारयते क्षिप्रं स्वेच्छाचारेण वर्त्तते॥११॥
यस्या गमनमात्रेण भूमिकल्पः प्रजायते। पतिं मारयते क्षिप्रं म्लेच्छाचारेण वर्त्तते॥१२॥
चक्षुःस्नेहेन सौभाग्यं दन्तस्नेहेन भोजनम्। त्वचः स्नेहेन शय्याञ्च पदस्नेहेन वाहनम्॥१३॥

जिसके पैरों की अनामिका उंगली तथा अंगूठा चलते समय पृथिवी को नहीं छूते, उसका पति शीघ्र मर जाता है। वह स्वतन्त्र होकर रहती है। जिसके चलने पर पृथिवी पर धमक लगती है, वह विधवा होकर म्लेच्छाचारी हो जाती हैं। जिस कन्या के नेत्रों में चमक होती है तथा नेत्र उज्ज्वल होते हैं, वह सौभाग्यवती होती है। जिसके दांत खाते समय चिक् चिक् आवाज करें, उसे उत्तम भोजन मिलता है। जिनके अंगों की चमड़ी उज्ज्वल होती है, उसे उत्तम शय्याभोग मिलता है। जिसके दोनों तलवे चिकने होते हैं, उसे वाहनसुख मिलता है॥११-१३॥

स्निग्धोन्नतौ ताम्रनखौ नार्य्याश्च चरणौ शुभौ।
मत्स्याङ्कुशाब्जचिह्नौ च चक्रलाङ्गललक्षितौ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ प्रशस्तौ चरणौ स्त्रियाः॥१४॥
शुभे जङ्घे विरोमे च ऊरू हस्तिकरोपमौ। अश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं गुह्यमुत्तमम्॥१५॥
नाभिः प्रशस्ता गम्भीरा दक्षिणावर्त्तिका शुभा।
अरोमा त्रिवली नार्य्या हृत्स्तनौ रोमवर्जितौ॥१६॥

।इति गारुडे महापुराणे चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

जिसके चरण उन्नत स्निग्ध हैं, नख तांबे के रंग के हैं, चरणों के तलवों में मत्स्य, अंकुश, पद्म, चक्र, हल चिह्न में से कोई हो, वह शुभलक्षणा स्त्री है। स्त्रियों के तलवे कोमल तथा पसीने से रहित हों, तब यह उत्तम है। जंघा तथा उरुद्वय रोओं से रहित हो, हाथी की सूंड़ जैसी उत्तम गोलाई हो, गुह्य (योनि) पीपल के पत्ते जैसी विस्तृत हो, नाभि गहरी हो तथा दक्षिणावर्त्त हो, उदर रोमरहित तथा तीन रेखायुक्त हो (त्रिवली), स्तन रोम रहित हों, तब वह नारी शुभलक्षणा है॥१४-१६॥

॥चौंसठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
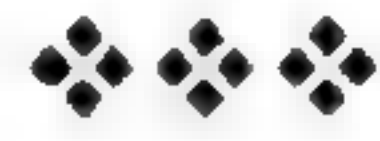
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

सामुद्रिक के अनुसार स्त्री-पुरुष लक्षण वर्णन

हरिरुवाच

समुद्रोक्तं प्रवक्ष्यामि नरस्त्रीलक्षणं शुभम्। येन विज्ञातमात्रेण अतीतानागताश्रमाः॥१॥
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ।
श्लिष्टाङ्गुली ताम्रनखौ पादावुष्णौ शिरोज्झितौ।
कूर्मोन्नतौ गूढगुल्फौ सुपार्ष्णी नृपतेः स्मृतौ॥२॥

श्रीहरि ने कहा—अब समुद्र द्वारा कहे गये स्त्री-पुरुष के शुभ-अशुभ लक्षणों को सुनिये। इस शास्त्र का ज्ञान होते ही भूत एवं भविष्य का ज्ञान एकदम प्रत्यक्ष की तरह होने लगता है। जिसके तलवों में कदापि पसीना नहीं होता तथा यदि वह कोमल तथा पद्मगर्भ ऐसा हो, पैर की अंगुलियां सटी हों, नख ताम्रवर्ण के हों, पादद्वय उष्ण हो तथा शिरायें दिखाई न पड़ें, तलवों का ऊपरी भाग कछुये की पीठ जैसा उन्नत हो, गुल्फद्वय गूढ़ हों, पार्ष्णिद्वय वर्तुलाकार हों, उस व्यक्ति को राजा के लक्षण वाला जाने॥१-२॥

शूर्पाकारौ विरूक्षौ च वक्रौ पादौ शिरालकौ।
संशुष्कौ पाण्डरनखौ निःस्वस्य विरलाङ्गुली॥३॥
मार्गायोत्कटौ पादौ कषायसदृशौ तथा। विच्छिद्यौ चैव वंशस्य ब्रह्मघ्नौ शङ्कुसन्निभौ॥४॥
युगस्यायतने तुल्या जङ्घा विरलरोमिका। मृदुरोमा समा जङ्घा तथा करिकरप्रभा।
ऊरवो जानवस्तुल्या नृपस्योपचिताः स्मृताः॥५॥

जिसका सूप की तरह फैला, रूखा, वक्र पैर जहां शिरायें दीखती हों, शुष्क हो तथा नख पाण्डुवर्णी हों, अंगुलियां परस्पर सटी न हों, वह निर्धन व्यक्ति होगा। चलते समय जिसके पैर विषम रूप से अटपटा कर चलते हैं, चरण लाल-पीले मिश्रित रंग के हों, ऐसे व्यक्ति का वंश नहीं चलता। जिसके

पैर शंकु की तरह होते हैं (पंजे शंकुवत् हों) वह ब्रह्महत्यारा होता है। जिसका जंघा रथ के युग के समान आयत एवं समान आकार का हो अथवा हाथी की सूंड़ जैसा गोल, कोमल रोयें वाला हो, वह मानव राजा होता है। उरु तथा जानु जिसके समान आकृति के होते हैं, वह राजा होता है॥३-५॥

निःस्वस्य शृगालजङ्घा रौमैकैकञ्च कूपके।
नृपाणां श्रोत्रियाणाञ्च द्वे द्वे श्रिये च धीमताम्।
त्र्याद्यैर्निःस्वा मानवाः स्युर्दुःखभाजश्च निन्दिताः॥६॥
केशाश्चैव कुञ्चिताश्च प्रवासे म्रियते नरः।
निर्मांस जानुः सौभाग्यमल्पैर्निम्नैरतः स्त्रियाः।
विकटैश्च दरिद्राः स्युः समांसै राज्यमेव च॥७॥
महद्भिरायुराख्यातं ह्यल्पलिङ्गो धनी नरः। अपत्यरहितश्चैव स्थूललिङ्गो धनोज्झितः॥८॥

जिसका जंघा शृगाल के जंघे के समान हो, एक रोम छिद्र में एक ही रोम हो, वह निर्धन होता है। जब वहां के रोमछिद्र में दो-दो रोम दिखलाई पड़ें, वह व्यक्ति राजा अथवा श्रोत्रिय तथा धनी होता है। जिसके प्रत्येक रोमछिद्र में तीन अथवा अधिक रोम हों, वह धनहीन, सुखहीन तथा निन्दनीय होता है। जिसके केश कुंचित होते हैं, वह विदेश जाकर मरता है। जिसके दोनों जानु पतले होते हैं, वह भाग्यशाली होगा। जिसके जानु नाटे होते हैं, वह नित्य स्त्री में ही लिप्त रहता है। विकटाकृति जानु वाला दरिद्र होता है। स्थूल जानु वाला राजा, बृहत् लिंग वाला दीर्घायु, लघु लिंगी व्यक्ति धनी और स्थूल लिंग वाला निर्धन होता है पुत्रवान् नहीं होता॥६-८॥

मेढ्रे वामनते चैव सुतार्थरहितो भवेत्। वक्रेऽन्यथा पुत्रवान्स्याद्दारिद्र्यं विनते त्वधः॥९॥
अल्पे तु तनयो लिङ्गे शिरालेऽथ सुखी नरः।
स्थूलग्रन्थियुते लिङ्गे भवेत्पुत्रादिसंयुतः॥१०॥
कोषगूढे नृपो दीर्घैर्भुग्नैश्च धनवर्जितः। बलवान्युद्धशीलश्च लघुशेफः स एव च॥११॥
दुर्बलस्त्वेकवृषणो विषमाभ्याञ्चलस्त्रियः।
समाभ्यां क्षितिपः प्रोक्तः प्रलम्बेन शताब्दवान्॥१२॥
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां बहुष्वायू रूक्षैर्मणिभिरीश्वरः।
पाण्डरैर्मणिभिर्निःस्वा मलिनैः सुखभागिनः॥१३॥
सशब्दनिःशब्दमूत्राः स्युर्दरिद्राश्च मानवाः। एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्धाराभिरेव च॥१४॥
दक्षिणावर्त्तचलितमूत्राभिश्च नृपाः स्मृताः।
विकीर्णमूत्रा निःस्वाश्च प्रधानसुखदायिकाः॥१५॥

जिसका लिंग बायीं ओर झुका होता है, वह सन्तान रहित तथा धन संग्रह रहित होता है। जिसका लिंग छोटे आकार का होता है, वह पुत्रयुक्त होता है। जिसका लिंग नीचे झुका होता है, उसके पास धन

नहीं होता। जिसका लिंग वक्र है, वह पुत्रवान् होता है। शिराओं से भरे लिंग वाला व्यक्ति सुखी होता है। स्थूल तथा ग्रन्थियुक्त लिंग वाला पुत्रवान् होता है। जिसके अण्डकोष गूढ़ होते हैं, वह राजा होता है। जिसके अण्डकोष दीर्घ एवं भुग्न होते हैं, वह धनहीन होता है। (भुग्न = झुके हुये)। लघु लिंग वाला बली तथा युद्ध का ज्ञाता होता है। जिसका एक अण्डकोष दुर्बल हो, जिसका एक अण्डकोष छोटा तथा एक बड़ा हो, उसकी स्त्री चंचल स्वभाव वाली होती है। समान अण्डकोष वाला व्यक्ति राजा होता है तथा सौ वर्ष जीवित रहता है। जिसके दोनों अण्ड अण्डकोष के ऊर्ध्वभाग में स्थित रहते हैं, वह दीर्घायु होता है। जिसकी लिंगमणि रूखी होती है, वह धनवान् होता है। पाण्डुवर्ण की लिंगमणि वाला निर्धन होता है तथा मलिन वर्ण की लिंगमणि वाला मनुष्य सुखी होता है। जिनके मूत्र त्याग के समय अधिक शब्द होता है अथवा तनिक भी शब्द नहीं होता, वे निर्धन होते हैं। जिनका मूत्रत्याग एक, दो, तीन, चार, पांच अथवा छः धाराओं में होकर दक्षिणावर्त्त भूमि पर गिरता है, वे राजा होते हैं। जिनका मूत्र बिना धार के छितराता हुआ भूपतित होता है, वे दरिद्र तथा दुःख भोग करने वाले होते हैं॥९-१५॥

एकधाराश्च वनिताः स्निग्धैर्मणिभिरुन्नतैः।
समैः स्त्रीरत्नधनिनो मध्ये निम्नैश्च कन्यकाः॥१६॥
शुक्रैर्निःस्वा विशुष्कैश्च दुर्भगाश्च प्रकीर्त्तिताः।
पुष्पगन्धे नृपाः शुक्रे मधुगन्धे धनं बहु॥१७॥
पुत्राः शुक्रे मत्स्यगन्धे तन्न शुक्रे च कन्यकाः।
महाभोगी मांसगन्धे यज्वा स्यान्मदगन्धिनि॥१८॥

जिस स्त्री का मूत्र एक धारा में भूपतित होता है, वह सुखभोग करती है। लिंगमणि स्निग्ध तथा उन्नत होने पर वह व्यक्ति धनी तथा अच्छे लक्षण वाला होता है। जिसकी लिंगमणि सम है, वह मनुष्य स्त्री लाभ करता है तथा धनी होता है। यदि स्त्री की मणि मध्य में नीची हो, तब वह शुभलक्षणा कही जाती है। जिस व्यक्ति का वीर्य शुष्क होता है, वह दरिद्र तथा भाग्यहीन होता है। यदि वीर्य में पुष्प गन्ध हो, तब वह व्यक्ति राजा होगा। जिसके शुक्र की गन्ध मधु के समान हो, वह अतीव धनी होगा। जिसके वीर्य से मछली की गन्ध उठे, उसे पुत्र होगा अन्यथा कन्या होगी। जिसका वीर्य मांसगन्ध की तरह महके, वह महाभोगी होगा। जिसके वीर्य से मदगन्ध उठे, वह यज्ञशाली होगा॥१६-१८॥

दरिद्रः क्षारगन्धे च दीर्घायुः शीघ्रमैथुनी।
अशीघ्रमैथुन्यल्पायुः स्थूलस्फिक्स्याद्धनोज्झितः॥१९॥
मांसलस्फिक्सुखी स्याच्च सिंहस्फिग्भूपतिः स्मृतः।
भवेत्सिंहकटी राजा निःस्वः कपिकटिर्नरः॥२०॥
सर्पोदरा दरिद्राः स्युः पिठरैश्च घटैः समाः।
धनिनो विपुलैः पार्श्वैर्निःस्वा रक्तैश्च निम्नगैः॥२१॥
समकक्षाश्च भोगाढ्या निम्नकक्षा धनोज्झिताः।
नृपाश्चोन्नतकक्षाः स्युर्जिह्मा विषमकक्षकाः॥२२॥

जिसका वीर्य क्षारगन्ध वाला हो, वह दरिद्र होगा। जो शीघ्र मैथुन सम्पन्न कर देता है, वह दीर्घजीवी होगा। जो दीर्घकाल तक मैथुन करता है, वह अल्पजीवी होगा। जिसके नितम्ब स्थूल हैं, वह धनहीन होगा। जिसके नितम्ब मांसल हैं, वह सुखी होगा। सिंह के समान नितम्ब वाला राजा होगा। जिसकी कमर सिंह की तरह लगे, वह भूपति होगा। वानर के समान कमर वाला धनहीन होगा। जिसका उदर सर्प जैसा अथवा थाली की तरह विस्तृत अथवा घट के समान है, वह निर्धन होगा। जिसकी कोख उन्नत है, वह राजा होगा। विषम कक्ष वाला खल व्यक्ति होगा। सम कोख वाले भोगयुक्त तथा निम्न कक्ष वाले निर्धन होते हैं॥१९-२२॥

मत्स्योदरा बहुधना नाभिभिः सुखिनः स्मृताः।
विस्तीर्णाभिर्बहुलाभिर्निम्नाभिः क्लेशभागिनः॥२३॥
बलिमध्यगतो नाभिः शूलबाधां करोति हि।
वामावर्त्तश्च साध्यं वै मेधां दक्षिणतस्तथा॥२४॥
पार्श्वायता चिरायुः स्याद्धूपरिष्टाद्धनेश्वरः।
अधो गवाढ्यं कुर्य्याच्च नृपत्वं पद्मकर्णिका॥२५॥
एकबलिःशतायुः स्याच्छ्रीभोगी द्विबलिः स्मृताः।
त्रिबलिः क्ष्माप आचार्य्य ऋजुभिर्बलिभिः सुखी।
अगम्यागामी जिह्मबलिः भूपाः पार्श्वैश्च मांसलैः॥२६॥

मत्स्य के समान उदर वाले अति धनी होते हैं। विस्तीर्ण नाभि वाले सुखी तथा निम्न नाभि वाले क्लेश भोगते हैं। जिनकी नाभिवलि मध्यगत हो, वे शूल रोग भोगते हैं। वामावर्त्त चिह्न वाली नाभि वाला व्यक्ति शक्तिमान होता है। दक्षिणावर्त्त रेखा युक्त नाभि वाला व्यक्ति बुद्धिमान होगा। पार्श्वदेश यदि विस्तृत हो, तब वह दीर्घजीवी होगा। पार्श्व उन्नत होने पर वह ऐश्वर्य युक्त होगा। पार्श्व अधोमुखी होने पर वह व्यक्ति गोधन युक्त होगा। यदि नाभि कमल के भीतरी भाग के समान गहरी हो तथा मनोरम हो, तब वह व्यक्ति राजा होगा। जिस व्यक्ति के पेट पर एक ही वलय हो, वह सौ वर्ष जीवित रहेगा। दो वलय वाला श्रीयुक्त, तीन वलय वाला राजा अथवा शिक्षक होगा। सीधे वलय वाला विद्वान् होगा तथा सुखी होगा। यह वलय वक्र होने पर वह व्यक्ति अगम्या स्त्री से गमन करने वाला होगा। जिसके दोनों पार्श्व स्थूल हैं, वह राजा होगा॥२३-२६॥

मृदुभिः सुसमैश्चैव दक्षिणावर्त्तरोमभिः। विपरीतैः परप्रेष्या निर्द्रव्याः सुखवर्जिताः॥२७॥
अनुद्धतैश्चूचुकैश्च भवन्ति सुभगा नराः। निर्धना विषमैर्दीर्घैः पीतोपचितकैर्नरैः॥२८॥

जिस व्यक्ति के पेट पर कोमल, मनोहर, दक्षिणावर्त्त रोम हों, वह राजा होगा। यदि उदर पर स्थित रोम कड़े, अच्छे न लगने वाले, वामावर्त्त हों, वह व्यक्ति दूसरे का नौकर, धनहीन, दुःखी होगा। जिस पुरुष का स्तनाग्र भाग उन्नत नहीं है, वह सौभाग्यशाली होगा। जिसका स्तनाग्र भाग विषम तथा दीर्घ है, वह धनहीन होगा। पीतवर्ण, स्थूल तथा विस्तृत स्तन वाला व्यक्ति राजा होगा॥२७-२८॥

समोन्नतञ्च हृदयकम्पं मांसलं पृथु। नृपाणामधमानाञ्च खररोमशिरालकम्॥२९॥
अर्थवान्समवक्षाः स्यात्पीनैर्वक्षोभिरूर्जितः।
वक्षोभिर्विषमैर्निस्वाः शस्त्रेण निधनास्तथा॥३०॥
विषमैर्जत्रुभिर्निस्वा अस्थिनद्धैश्च मानवाः।
उन्नतैर्भोगिनो निम्नैर्निःस्वाः पीनैर्धनान्विताः॥३१॥

जिसका सम, उन्नत, मांसल, विस्तृत हृदय है, जो कम्पित न हो (भय से न कांपे), वह राजा होगा। जिसके हृदय पर रोम कर्कश हों, शिरायें स्पष्ट दिखलाई पड़ें, वह दरिद्र होगा। समतल वक्ष वाला नर धनवान् होगा। जिसका वक्ष स्थूल है, वह बली होगा। जिसका वक्ष विषम है, वह निर्धन होगा। वह अस्त्रों की चोट से मरेगा। जिसके स्कन्ध की सन्धि समान नहीं है तथा अस्थि संलग्न लगे, वह दरिद्र होगा। उन्नत स्कन्ध सन्धि वाला भोगी होगा। नीची स्कन्ध सन्धि वाला धनहीन होगा। स्थूल स्कन्ध वाला मानव धनी होगा॥२९-३१॥

निःस्वश्चिपिटकण्ठः स्याच्छिराशुष्कगलः सुखी।
शूरः स्यान्महिषग्रीवः शास्त्रान्तो मृगकण्ठकः॥३२॥
कम्बुग्रीवश्च नृपतिर्लम्बकण्ठोऽतिभक्षकः। अरोमशाभुग्नपृष्ठं शुभञ्चाशुभमन्यथा॥३३॥
कक्षाऽश्वत्थदला श्रेष्ठा सुगन्धिर्मगरोमिका।
अन्यथा त्वर्थहीनानां दारिद्र्यस्य च कारणम्॥३४॥

चपटे कण्ठ वाला धनहीन होगा। जिसका गला शुष्क है तथा शिरायें उभरी हैं, वह सुखी होगा। जिसकी गर्दन भैंसे के गले के समान है, वह बली होगा। जिसका कण्ठ मृग के कण्ठ जैसा होगा, वह नाना शास्त्रों का पारदर्शी होगा। शंखवत् ग्रीवा वाला व्यक्ति राजा होगा। लम्बे कण्ठ वाला (लम्बी गर्दन वाला) व्यक्ति भिक्षा से जीवन निर्वाह करेगा। पीठ अधिक रोम वाली न होना शुभ लक्षण है। अधिक रोम होना अशुभ लक्षण है। जिसकी कांख पीपल के पत्ते की आकृति वाली, सुगन्धित तथा मृग के रोम के समान रोमावलि वाली हो, यह उत्तम लक्षण है। इसके विपरीत होना अशुभ है, वह अर्थहीन होगा॥३२-३४॥

समांसौ चैव भुग्नाल्पौ श्लिष्टौ च विपुलौ शुभौ।
आजानुलम्बितौ बाहू वृत्तौ पीनौ नृपेश्वरे।
निःस्वानां रोमशौ ह्रस्वौ श्रेष्ठौ करिकरप्रभौ॥३५॥
हस्ताङ्गुलय एव स्युर्वायुद्वारनिभाः शुभाः।
मेधाविनाञ्च सूक्ष्माः स्युर्भृत्यानां चिपिटाः स्मृताः।
स्थूलाङ्गुलीभिर्निःस्वाः स्युर्नताः स्युः सुकृशैस्तदा॥३६॥

जिसकी भुजा मांसल, किंचित् वक्र, विशाल, एक माप की, जानु पर्यन्त लम्बी, गोल, स्थूल हो, वह मानव सम्राट होगा। जिसकी बाहु रोमयुक्त तथा छोटी हो, वह निर्धन होगा। जब दोनों बाहु हाथी की

सूंड़ जैसी गोल हों, तब यह उत्तम चिह्न है। जिसके हाथों की उंगलियों का अग्रभाग सूक्ष्म होता है, वह मानव मेधावी होता है। जिसकी उंगलियां चपटी होती हैं, वह भृत्य रहता है। जिसके हाथ की उंगलियां स्थूल होती हैं, वह निर्धन होता है। जिसकी उंगलियां पतली होती हैं, वह विनयी होता है। जिसकी हथेली वानर जैसी होती है, वह निर्धन होता है। जिसका हाथ व्याघ्र के पंजे जैसा हो, वह बली, जिसकी हथेली नीची हो, उसके पिता तथा धन का विनाश हो जाता है॥३५-३६॥

कपितुल्यकरा निःस्वा व्याघ्रतुल्यकरैर्बलम्।
पितृवित्तविनाशश्च निम्नात्करतलान्नराः॥३७॥
मणिबन्धैर्निगूढैश्च सुश्लिष्टैः शुभगन्धिभिः।
नृपा हीनाः करच्छेदैः सशब्दैर्धनवर्जिताः॥३८॥
संवृतैश्चैव निम्नैश्च धनिनः परिकीर्त्तिताः। प्रोत्तानकरदातारो विषमैर्विषमा नराः॥३९॥
करैः करतलैश्चैव लाक्षाभैरीश्वरस्तनैः। परदाररताः पीतै रूक्षैर्निःस्वा नरा मताः॥४०॥

जिसके बाहु के मणिबन्ध सुगठित तथा शुभ गन्धान्वित हों, वह भूपाल होता है। जिसका मणिबन्ध शब्दयुक्त हो, वह धनवर्जित जीवन व्यतीत करता है। जिसकी हथेली संवृत (संकुचित) अथवा नीची हो, वह धनी रहेगा। जिसकी हथेली उन्नत होती है, वह दानी होता है। हथेली ऊंची-नीची विषम होना अशुभ है। जिसकी बाहु, हथेली तथा सीना लाक्षा के समान रंग वाले हों, वह धनी होगा। पीली हथेली वाला परस्त्रीगामी होगा। रूक्ष हथेली वाला धनहीन होगा॥३८-४०॥

तुषतुल्यनखाः क्लीबाः कुटिलैः स्फुटितैर्नराः।
निःस्वाश्च कुनखैस्तद्वद्विवर्णैः परतर्ककाः॥४१॥
ताम्रैर्भूपा धनाढ्याश्च अङ्गुष्ठैः सयवैस्तथा।
अङ्गुष्ठमूलजैः पुत्री स्याद्दीर्घाङ्गुलिपर्वकाः॥४२॥
दीर्घायुः सुभगश्चैव निर्धनो विरलाङ्गुलिः।
घनाङ्गुलिश्च सधनस्तिस्रो रेखाश्च यस्य वै।
नृपतेः करतलगा मणिबन्धात्समुत्थिताः॥४३॥
युगमीनाङ्कितनरो भवेत्सत्रप्रदो नरः। वज्राकाराश्च धनिनां मत्स्यपुच्छनिभा बुधे॥४४॥
शङ्खातपत्रशिविकागजपद्मोपमा नृपे। कुम्भाङ्कुशपताकाभा मृणालाभा निधीश्वरे॥४५॥

जिसके नख अत्यन्त छोटे हों, वह नपुंसक होता है। जिसके नख टेढ़े तथा स्फुटित हों, वह निर्धन होता है। कुनखी तथा विवर्ण नख वाला मनुष्य दूसरों से तर्क करने वाला होता है। जिसके अंगूठे रक्तवर्ण तथा अंगुष्ठमूल जौ के चिह्नयुक्त होता है, वह मानव राजा तथा धनी होता है। जिसकी उंगली के पर्व बड़े होते हैं, वह पुत्रवान् होता है। जिसकी हाथ की उंगलियां परस्पर सटी नहीं होतीं, वह दीर्घजीवी होता है। वह पुत्र-पौत्रों वाला तथा सौभाग्यवान् होता है, तथापि धनहीन ही रहता है। जिसकी उंगलियां घनी होती हैं, वह धनी होता है। जिसके मणिबन्ध से तीन रेखा निकले तथा करतल तक जाये, वह राजा होता

है। जिसके हथेली पर मत्स्य के समान अथवा रथ के युग (रथ का जूआ) के समान चिह्न हो, वह यज्ञतत्पर होता है। जिसकी हथेली में वज्रचिह्न हो, वह धनी होता है तथा मछली की पूंछ के समान चिह्न दीखने पर मानव पण्डित होता है। हथेली पर शंख, वज्र, पालकी, हाथी अथवा कमल चिह्न हो, तब वह राजा होगा। जिसकी हथेली पर कुंभ, अंकुश, पताका तथा मृणाल का चिह्न हो, वह निधीश्वर होगा॥४१-४५॥

दामाभाश्च गवाढ्यानां स्वस्तिकाभा नृपेश्वरे। चक्रासितोमरधनुर्दन्ताभा नृपतेः करे॥४६॥
उदूखलाभा यज्ञाढ्या वेदीभाच्चाग्निहोत्रिणि।
वापीदेवकुल्याभाश्च त्रिकोणाभाश्च धार्मिके॥४७॥
अङ्गुष्ठमूलगा रेखाः पुत्राश्च सुखदायकाः। प्रदेशिनीगता रेखा कनिष्ठामूलगामिनी।
शतायुषञ्च कुरुते छिन्नया तरुतो भयम्॥४८॥

जिस मनुष्य की हथेली पर रस्सी के समान चिह्न हो, वह प्रभूत गोधन का स्वामी होता है। जिसकी हथेली पर स्वस्तिक चिह्न हो, वह चक्रवर्त्ती राजा होता है। जिसकी हथेली पर चक्र, तलवार, तोमर, धनु तथा बाण चिह्न हो, वह यज्ञ करने वाला होता है। जिसकी हथेली में वेदी का चिह्न हो, वह अग्निहोत्र यज्ञ करता रहता है। जिसकी हथेली में पुष्करिणी, देवनदी, त्रिकोण चिह्न लक्षित हो, वह अतीव धार्मिक होता है। जिसके अंगूठे के मूल में रेखा दिखाई पड़े, वह पुत्र से सुख पाता है। जिसकी कनिष्ठा उंगली के मूल से उठी रेखा तर्जनी मूल तक जाये, वह सौ वर्ष की आयु पाता है। यदि यह रेखा बीच में कटी हो, तब उसकी वृक्ष से पतन की आशंका रहती है॥४६-४८॥

निःस्वाश्च बहुरेखाः स्युर्निर्द्रव्याश्चिबुकैः कृशैः। मांसलैश्च धनोपेता आरक्तैरधरैर्नृपाः॥४९॥
विम्बोपमैश्च स्फुटितैरोष्ठै रूक्षैश्च खण्डितैः।
विषमैर्धनहीनाश्च दन्ताः स्निग्धा घनाः शुभाः॥५०॥
तीक्ष्णा दन्ताःसमाश्रेष्ठा जिह्वा रक्ता समाः शुभाः।
श्लक्ष्णा दीर्घा च विज्ञेया तालुः श्वेतो धनक्षये॥५१॥
कृष्णा च परुषा वक्त्रं समं सौम्यञ्च संवृतम्।
भूपानाममलं श्लक्ष्णं विपरीतञ्च दुःखिनाम्॥५२॥

अधिक रेखायुक्त हथेली वाला निर्धन होता है। जिसका चिबुक पतला है, वह धन-द्रव्य रहित हो जाता है। जिसका अधर स्थूल है, वह धन-सम्पत्तिवान् होता है। जिसका अधर बिम्बफल जैसा रक्तवर्ण है, वह राजा होता है। जिसके ओंठ विषम, ऊंचे-नीचे, फटे-रूखे हैं, वह निर्धन होता है। दांत सटे हुये हों, चिकने हों, तब यह शुभ लक्षण है। जब दन्त तीखे तथा समान आकार वाले हों, तब मानव अनेकों में श्रेष्ठ सा झलकता है। जिह्वा लालिमायुक्त, समतल, पतली तथा लम्बी होना शुभ लक्षण है। तालु श्वेतवर्ण हो, तब वह मानव धन का क्षय करने वाला होता है। जिसका मुख श्याम तथा कर्कश न हो, वह सम शान्त, संवृत मुख हो, तब उसे राजा होना निश्चित है। जिसका मुख गन्दा सूक्ष्म हो, पूर्व कहे लक्षण से उलटा हो, तब वह मानव अत्यन्त दुःख झेलता है॥४९-५२॥

महादुःखं दुर्भगाणां स्त्रीमुखं पुत्रमाप्नुयात्।
आढ्यानां वर्त्तलं वक्त्रं निर्द्रव्याणाञ्च दीर्घकम्॥५३॥
भीरुवक्त्रः पापकर्मा धूर्त्तानाञ्चतुरस्रकम्।
निम्नं वक्त्रमपुत्राणां कृपणानाञ्च ह्रस्वकम्॥५४॥
सम्पूर्णं भोगिनां कान्तं श्मश्रु स्निग्धं शुभं मृदु।
संहतञ्चास्फुटिताग्रं रक्तश्मश्रुश्च चौरकः।
रक्ताल्पपरुषश्मश्रुः कर्णाः स्युः पापमृत्यवः॥५५॥
निर्मांसैश्चिपिटैर्भोगाः कृपणा ह्रस्वकर्णकाः।
शङ्कुकर्णाश्च राजानो रोमकर्णा गतायुषः॥५६॥

जिसका चेहरा नारी के समान होता है, वह पुत्र सम्पन्न होता है। जिसका मुख वर्त्तुल है, वह सम्पत्ति वाला होगा। दीर्घ मुख वाला द्रव्यलाभ नहीं कर पाता। जिसका चेहरा देख कर लगे कि वह डरपोक है, वह निश्चित रूप से पापी होता है। चौकोर मुख वाला धूर्त्त होता है। निम्न मुखी अपुत्रक होता है। जिसका चेहरा छोटा होता है, वह अत्यन्त कृपण होता है। जिनके दाढ़ी-मूंछ सम्पूर्ण, स्निग्ध, कोमल तथा अतिशय सुन्दर तथा परस्पर एकीभूत तथा आगे से छितराये न हों, वे सभी मानव महाभोग भोगते जीवन यापन करते हैं। जिनके दाढ़ी-मूंछ रक्तवर्ण हों, वह व्यक्ति चोर होता है। जिनकी दाढ़ी-मूंछ, केश, रक्तवर्ण, विरल तथा कड़े हों, उनकी मृत्यु पापकार्य में होती है। जिन मनुष्यों के कान चपटे तथा अधिक मांसयुक्त नहीं होते, वे भोगी होते हैं। जिनके कान अतिशय छोटे तथा अतीव कृपण होते हैं। शंकुकर्ण वाला राजा होता है। जिसके कान पर अधिक रोम दृष्टिगत हों, वे मानव अल्पायु होते हैं॥५३-५६॥

बृहत्कर्णाश्च धनिनो राजानः परिकीर्त्तिताः।
कर्णैः स्निग्धैरनद्धैश्च व्यालम्बैर्मांसलैर्नृपाः॥५७॥
भोगी वै निम्नगण्डः स्यान्मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः।
शुकनासः सुखी स्याच्च शुष्कनासोऽतिजीवनः॥५८॥
छिन्नाग्रकूपनासः स्यादगम्यागमने रतः। दीर्घनासे च सौभाग्यं चौरश्चाकुञ्चितेन्द्रियः॥५९॥
मृत्युश्चिपिटनासः स्याद्धीनभाग्यवतां भवेत्।
स्वल्पच्छिद्रा सुपुटा च अवक्रा च नृपेश्वरे॥६०॥
क्रूरे दक्षिणवक्रा स्याद् बलिनाञ्च क्षुतं सुकृत्।
स्याद्विनिष्पिण्डितं ह्लादी सानुनादञ्च जीवकृत्॥६१॥

बड़े कान वाला धनी होता है अथवा वह राजा होता है। दोनों कान कोमल, विस्तृत, मांसल तथा लम्बे होना राजचिह्न है। गण्ड प्रदेश निम्न होने पर वह व्यक्ति भोगी होता है। सम्पूर्ण गण्ड प्रदेश वाला व्यक्ति मन्त्री बनता है। सुग्गे जैसी नाक वाला सुखी होता है। शुष्क नाक वाला अल्पायु कहा गया है।

जिसकी नासिका का अग्रभाग छिन्न-भिन्न एवं नासिका का छिद्र कुयें जैसा गहरा लगे, वह अगम्या गमन करता है। बड़ी नासिका वाला भाग्यशाली होता है। टेढ़ी नाक वाला चोरी का काम करता है। चपटी नाक वाले का पत्नी वियोग होता है। सुन्दर नाक वाला भोगवान् होता है। जिसकी नासिका का छिद्र छोटा तथा उत्तम वृत्ताकार हो, टेढ़ी नाक न हो, वह चक्रवर्त्ती होता है। जिसकी नाक दाहिनी ओर टेढ़ी हो, वह क्रूर स्वभाव होगा। जिसे मात्र एक बार में एक हिचकी आवे, वह बली होता है। जिसे एक बार में कई हिचकी आये, वह सन्तुष्ट मन वाला होता है। जो तनिक नाक से बोलता है, (अर्थात् लगता है कि कुछ नाक से बोल रहा है) वह दीर्घजीवी होता है॥५७-६१॥

वक्रान्तैः पद्मपत्राभैर्लोचनैः सुखभागिनः।
मार्जारलोचनैः पाप्मा दुरात्मा मधुपिङ्गलैः॥६२॥
क्रूराः केकरनेत्राश्च हरिताक्षाः सकल्मषाः।
जिह्मैश्च लोचनैः शूराः सेनान्यो गजलोचनाः॥६३॥
गम्भीराक्षा ईश्वराः स्युर्मन्त्रिणः स्थूलचक्षुषः।
नीलोत्पलाक्षा विद्वांसः सौभाग्यं श्यामचक्षुषाम्॥६४॥

जिनकी आंखों का किनारा तनिक वक्र होता है तथा नेत्र कमल के पत्ते की तरह विस्तृत हों, वे सुखभोग करते हैं। जिनके नेत्र विडाल के नेत्र के समान हैं, वे पापी होते हैं। जिनके नेत्र पिंगलवर्ण हैं, वे दुःशील होते हैं। जिनकी आंखें भेंगी होती हैं, वे अत्यन्त क्रूर होते हैं। जिनके नेत्र हरे हैं, वे पापी होते हैं। जिनकी आंखें वक्र होती हैं, वे अति बली होते हैं। जिनके दोनों नेत्र हाथी की आंखों जैसे होते हैं, वे सेनापतित्व करते हैं। जिनके नेत्र गंभीर होते हैं, वे अनेक लोगों के स्वामी होते हैं। जिनके नेत्र स्थूल होते हैं, वे सुमन्त्री होते हैं। जिनके नेत्र नीलकमल जैसे होते हैं, वे विद्वान् होते हैं। जिनके नेत्र श्यामवर्ण होते हैं, वे सौभाग्यशाली होते हैं॥६२-६४॥

स्यात्कृष्णतारकाक्षाणामक्ष्णामुत्पाटनं किल।
मण्डलाक्षाश्च पापाः स्युर्निःस्वाःस्युर्दीनलोचनाः।
त्वक् स्निग्धा विपुलो भोगा अल्पायुर्नाभिरुन्नता॥६५-६६॥
विशालोन्नताः सुखिनो दरिद्रा विषमभ्रुवः। धनी दीर्घासंसक्तभ्रूर्बालेन्दून्नतसुभ्रुवः॥६७॥
आढ्यो निःस्वश्च खण्डभ्रुर्मध्ये च विनतभ्रुवः।
स्त्रीष्वगम्यास्वासक्ताः स्युः सौभाग्य परिवर्जिताः॥६८॥

जिन मानवों के चक्षु का तारक कृष्णवर्ण होता है, उनके चक्षु उखाड़े जाते हैं। जिनके चक्षु मण्डलाकार होते हैं, वे पापी होते हैं। जिनके नेत्र दीन भावात्पन्न होते हैं, वे मानव निर्धन होते हैं। जिनके देह की त्वचा स्निग्ध होती है, उनको विपुल भोग मिलता है। जिसकी नाभि उन्नत होती है, वह अल्पायु होता है। जिनकी भौंहें विशाल तथा उन्नत होती हैं, वे सुखी होते हैं। जिनकी भौंहें विषम होती हैं, वे दरिद्र जीवन व्यतीत करते हैं। जिनकी भौंहें दीर्घ होती हैं, आपस में जुड़ी नहीं होतीं, बालचन्द्र जैसी ऊंची होती

हैं तथा देखने में अच्छी लगती हैं, वे धनी होते हैं। जिनकी भौंहें मध्य में कटी होती हैं, वे निर्धन होते हैं। जिनकी भौंहें झुकी होती हैं, वे अगम्या स्त्री में आसक्त होते हैं तथा वे सौभाग्यरहित होते हैं॥६५-६८॥

उन्नतैर्विपुलैः शङ्खैर्ललाटैर्विषमैस्तथा। निर्धना धनवन्तश्च अर्द्धेन्दुसदृशैर्नराः॥६९॥

आचार्य्याः शुक्तिविशालैः शिरालैः पापकारिणः।

उन्नताभिः शिराभिश्च स्वस्तिकाभिर्धनेश्वराः॥७०॥

निम्नैर्ललाटैर्वधार्हाः क्रूरकर्मरतास्तथा। संवृतैश्च ललाटैश्च कृपणा उन्नतैर्नृपाः॥७१॥

जिस मनुष्य के ललाट की अस्थि ऊंची होती है तथा ललाट विषम होता है और कपाल अर्द्धचन्द्र होता है, वे पहले भले ही धनहीन हों, बाद में धनी हो जाते हैं। जिसका कपाल सीपी के समान आकार वाला होता है तथा आयत होता है, वे अध्यापक होते हैं। जिसके ललाट में बड़ी शिरायें होती हैं, वह मानव पापी होता है। जिसके कपाल पर स्वस्तिक चिह्न होता है, वह महाधनी होता है। जिसका ललाट नीचा होता है, वह व्यक्ति वध योग्य तथा कठोर कार्य में लगा रहता है। जिसका ललाट संवृत हो, तब वह कंजूस होता है। उन्नत ललाट होने पर मनुष्य राजा होता है॥६९-७१॥

अनश्रुस्निग्धरुदितमदीनमशुभं नृणाम्। प्रचुरस्वेदिनं रूक्षं रुदितञ्च सुखावहम्॥७२॥

अकम्पं हसितं श्रेष्ठं निमीलितमघावहम्। असकृद्धसितं दुष्टं सोन्मादस्य ह्यनेकधा॥७३॥

ललाटोपसृतास्तिस्रो रेखाः स्युः शतवर्षिणाम्।

नृपत्वं स्याच्चतसृभिरायुः पञ्चनवत्यथ॥७४॥

जिनके नेत्रों से रोते समय आंसू नहीं गिरते-तथा क्रन्दन सुन कर शोक जिनको नहीं होता, ऐसे लोग भाग्यहीन होते हैं। जिनके नेत्रों से रोते समय अधिक आंसू गिरते हैं, जिनमें रुदन सुनकर शोक जाग जाता है, वे भाग्यवान् होते हैं। हंसते समय जिनका मस्तक नहीं कांपता, इसे शुभ लक्षण कहते हैं। जिनकी हंसी स्पष्टतः व्यक्त नहीं होती, उनके मन में कोई न कोई दुरभिसन्धि अवश्य रहती है। जो व्यक्ति पुनः-पुनः हंसता है, वह उन्मत्त अथवा अतीव दुःखी कहलाता है। ललाट पर यदि तीन रेखायें हों, तब वह एक सौ वर्ष जीवित रहेगा। ललाट पर चार रेखायें होने के कारण वह जातक ९५ वर्ष जीयेगा तथा वह राजा होगा॥७२-७४॥

अरेखेनायुर्नवतिर्विच्छिन्नाभिश्च पुंश्चलाः।

केशान्तोपगताभिश्च अशीत्यायुर्नरो भवेत्॥७५॥

पञ्चभिः सप्तभिः षड्भिः पञ्चाशद्बहुभिस्तथा।

चत्वारिंशच्च रक्ताभिस्त्रिंशद् भ्रूलग्नगामिभिः।

विंशतिर्वामवक्राभिरायुः क्षुद्राभिरल्पकम्॥७६॥

जिसके ललाट पर रेखा ही नहीं रहती, वह मनुष्य ९० वर्ष तक जीवित रहता है। जिसके ललाट की रेखा विच्छिन्न होती है, वह चरित्रभ्रष्ट होता है। जिसकी ललाट रेखा केशान्त तक जाती है, उसकी कुल आयु अस्सी वर्ष की कही गयी है। यदि ललाट पर पांच, छः, सात रेखायें हों, तब उसकी आयु पचास

वर्ष तक की रहेगी। यदि ललाट पर रक्तवर्ण रेखा हो, तब वह चालीस वर्ष तक जीवित रहेगा। यदि ललाट रेखा भौंहों तक हो, तब उस व्यक्ति की कुल आयु तीस वर्ष होगी। जिसकी ललाट रेखा बायीं ओर टेढ़ी हो जाये, उसकी कुल आयु बीस वर्ष ही जाने। यदि यह रेखा छोटी हो, तब उस व्यक्ति की आयु अल्प होगी।।७५-७६।।

छत्राकारैः शिरोभिस्तु नृपः शिवमयो धनी।
चिपिटैश्च पितुर्मृत्युर्धनाढ्यः परिमण्डलैः।
घटमूर्द्धा पापरुचिर्धनाद्यैः परिवर्जितः।।७७।।
कृष्णैराकुञ्चितैः केशैः स्निग्धैरेकैकसम्भवैः।
अभिन्नाग्रैश्च मृदुभिर्न चातिबहुभिर्नृपाः।।७८।।

छत्राकृति मस्तक वाला राजा, धनवान् तथा मंगलमय जीवन वाला होगा। जिसका मस्तक चपटा हो, उसके पिता की मृत्यु शीघ्र हो जाती है। गोल मस्तक वाला धनी होगा। घटाकार मस्तक वाला पापी तथा धनहीन होगा। जिनकी केशराशि काली, घुंघराली, चिकनी हो, एक-एक बाल अलग-अलग उगा हो, कोमल हो, प्रत्येक का अग्रभाग चिरा हुआ न हो तथा बहुत घने बाल न हों, तब वह व्यक्ति राजा होगा।।७७-७८।।

बहुमूलैश्च विषमैः स्थूलाग्रैः कपिलैस्तथा। निम्नैश्चैवातिकुटिलैर्घनैरसितमूर्द्धजैः।।७९।।
यद्यद्गात्रं महारूक्षं शिरालं मांसवर्जितम्।
तत्तत्स्यादशुभं सर्वं शुभं सर्वं ततोऽन्यथा।।८०।।
विपुलस्त्रिषु गम्भीरो दीर्घः सूक्ष्मश्च पञ्चसु। षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वो रक्तः सप्तसमो नृपः।।८१।।

यदि शिर के बाल एक ही साथ २-३ उगे हों, उनका अग्रभाग मोटा हो, कपिल रंग के हों, निम्न, कठोर, घने तथा काले हों, यह अशुभ लक्षण है। व्यक्ति का जो-जो अंग अत्यन्त रूखा हो, शिरायें उभरी हों, मांसरहित हो, वे-वे अंग अशुभप्रद होते हैं। यदि सभी अंग चिकने, मांसल हों, शिरायें न उभरी हों, तब यह उत्तम लक्षण है। जिस व्यक्ति के तीन अंग विशाल तथा गम्भीर, दीर्घ हों, पांच सूक्ष्म हों, छः अंग उन्नत हों, चार छोटे हों, सात रक्तिम हों, वह राजा होगा।।७९-८१।।

नाभिः स्वरश्च बुद्धिश्च त्रयं गम्भीरमीरितम्।
पुंसः स्यादतिविस्तीर्णं ललाटं वदनमुरः।।८२।।
चक्षुःकक्षदन्तनासाः षट्स्युर्मुखकृकाटिकाः।
उन्नतानि च ह्रस्वानि जङ्घा ग्रीवा च लिङ्गकम्।।८३।।
पृष्ठञ्चत्वारि रक्तानि करताल्वधरा नखाः।
नेत्रान्तपादजिह्वौष्ठाः पञ्च सूक्ष्माणि सन्ति वै।।८४।।
दशनाङ्गुलिपर्वाणि नखकेशत्वचः शुभाः। दीर्घाः स्तनान्तरं बाहुदन्तलोचननासिकाः।।८५।।

नराणां लक्षणं प्रोक्तं वदामि स्त्रीषु लक्षणम्।
राज्याः स्निग्धौ समौ पादौ तलौ ताम्रौ नखौ तथा।
शिलष्टाङ्गुली चोन्नताग्रौ तां प्राप्य नृपतिर्भवेत्॥८६॥

नाभि, स्वर तथा बुद्धि गंभीर होना उत्तम श्रेष्ठ लक्षण है। कपाल, मुख, वक्षस्थल विशाल होना उत्तम है तथा शुभ है। चक्षु, कक्ष, दांत, नाक, मुख तथा कृकाटिका उन्नत हो तथा जंघा, ग्रीवा तथा पीठ और लिंग ह्रस्व हो। यह शुभ चिह्न है। हथेली, तालु, ओंठ, अधर, नख, नेत्रों का किनारा, पैर के तलवे तथा जिह्वा, यह रक्तिम होना उत्तम है। दांत, उंगली, पर्व (उंगली के पर्व), नख, केश, चर्म पतले होना शुभ माना गया है। स्तनद्वय, मध्यभाग, दोनों बाहु, दांत, नेत्र तथा नाक का दीर्घ होना शुभ कहा गया है। इस प्रकार पुरुषों के हाथ-पैर के शुभाशुभ चिह्न तथा फल मैंने कह दिया। अब नारीगण के अंगों के शुभाशुभ लक्षण और उसका फल कहता हूं।

जिस नारी के दोनों पैर स्निग्ध तथा समान हैं तथा तलवे एवं नख ताम्रवर्ण हैं, उंगलियां सटी हैं, पैर का अग्रभाग उन्नत है, वह रानी होगी अथवा उसका पति राजा होगा॥८२-८६॥

निगूढगुल्फोपचितौ पद्मकान्तितलौ शुभौ।
अस्वेदिनौ मृदुतलौ मत्स्याङ्कुशध्वजाञ्चितौ।
वज्राब्जहलचिह्नौ च राज्याः पादौ ततोऽन्यथा॥८७॥
जङ्घे च रोमरहिते सुवृत्ते विशिरे शुभे। अनुल्वणं सन्धिदेशं समं जानुद्वयं शुभम्॥८८॥
ऊरू करिकराकारावरोमौ च समौ शुभौ। अश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं गुह्यमुत्तमम्॥८९॥
श्रोणीललाटकं स्त्रीणामुरः कूर्मोन्नतं शुभम्।
गूढो मणिश्च शुभदो नितम्बश्च गुरुः शुभः॥९०॥

जिस नारी का गुल्फ गूढ़ तथा फैला हो, तलवा कमल जैसा मनोरम हो, कोमल तथा पसीना रहित हो और उसमें मत्स्य, मकर, वज्र, पद्म अथवा हल के चिह्न हों, वह राजपत्नी होगी। ये चिह्न न होने पर नारी दासी ही रहेगी। जिस स्त्री का जंघा रोमरहित, उभरी शिराओं से रहित, सीधा, गोल समान हो, दोनों जानु समान आकार हों, उनका संधिस्थान ऊंचा न हो, इसे उत्तम लक्षण मानते हैं। स्त्रियों का दोनों उरु हाथी की सूंड जैसा गोल, रोओं से रहित तथा समान होना अच्छा लक्षण है। स्त्रियों के नितम्ब, ललाट तथा वक्ष कछुए की पीठ जैसे उन्नत हों, यह अच्छा लक्षण है। उनका गुह्य (योनि) स्थान पीपल के पत्ते जैसा विस्तृत होना शुभ है। उनकी मणि गूढ़ हो तथा नितम्ब भारी हों, यह भी श्रेष्ठ लक्षण है॥८७-९०॥

विस्तीर्णा मांसोपचिता गम्भीरा विपुला शुभा।
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता मध्यं त्रिबलिशोभितम्॥९१॥
अरोमशौ स्तनौ पीनौ घनाववि‌षमौ शुभौ।
कठिना रोमशा शस्ता मृदुग्रीवा च कम्बुभा॥९२॥

आरक्तावधरौ श्रेष्ठौ मांसलं वर्त्तुलं मुखम्।
कुन्दपुष्पसमा दन्ता भाषितं कोकिलासमम्॥९३॥
दाक्षिण्ययुक्तमशठं हंसशब्दसुखावहम्। नासा समा समपुटा स्त्रीणान्तु रुचिरा शुभा॥९४॥
नीलोत्पलनिभं चक्षुर्नासलग्नं शुभावहम्।
न पृथू बालेन्दुनिभे भ्रुवौ चाथ ललाटकम्।
शुभमर्द्धेन्दुसंस्थानमतुङ्गं स्यादलोमकम्॥९५॥
अमांसलं कर्णयुग्मं समं मृदु समाहितम्।
स्निग्धनीलाश्च मृदवो मूर्द्धजाः कुञ्चिताः शुभाः॥९६॥

जिस स्त्री की नाभि विस्तार वाली, मांसल, गम्भीर, दक्षिणावर्त्त हो, मध्यभाग तीन वलय से घिरा हो, वह उत्तम लक्षण वाली है। स्त्रियों का स्तन रोमरहित, स्थूल, घना तथा समान आकार का हो। यह उत्तम लक्षण है। उनका गला (गर्दन) रोमरहित, मृदु तथा शंख के समान होना अच्छा लक्षण है। स्त्रियों का ओंठ तनिक रक्तवर्ण हो, मुख मांसल तथा वर्त्तुल हो, दांत कुन्दपुष्प ऐसे सुन्दर श्वेत हों, वाणी कोकिला की तरह सुमधुर हो, उत्तम तथा कपट रहित हो, हंस के शब्द की तरह सुनने में अच्छी लगे, यह उत्तम लक्षण है। उसकी नासिका तथा नासापुट समान आकार के तथा सुन्दर हों, उनके नेत्र नीलकमलवत तथा नासिका तक (नासिका के ऊपरी मूल तक) फैले हों, भौंहें बाल चन्द्रमा जैसी वक्र तथा अत्यन्त फैली न हों, ललाट अर्द्धचन्द्र जैसा अधिक ऊंचा न हो और रोयें से रहित हो, यह अति शुभ चिह्न हैं। जिस स्त्री के कान अतीव स्थूल (मोटे) नहीं होते, दोनों समान आकार वाले तथा कोमल होते हैं, वह शुभ लक्षणा स्त्री कही जाती है। उसके केश चिकने नीलापन लिये (श्यामल), कोमल तथा आकुंचित हों, यह उनका उत्तम लक्षण माना जाता है॥९१-९६॥

स्त्रीणां समं शिरः श्रेष्ठं पादे पाणितलेऽथवा। वाजिकुञ्जरश्रीवृक्षयूपेषुयवतोमरैः॥९७॥
ध्वजचामरमालाभिः शैलकुण्डलवेदिभिः। शङ्खातपत्रपद्मैश्च मत्स्यस्वस्तिकसद्रथैः।
लक्षणैरङ्कुशाद्यैश्च स्त्रियः स्यू राजवल्लभाः॥९८॥

स्त्री का मस्तक समान (ऊंचा-नीचा न हो) यदि उसके करतल तथा पदतल पर घोड़ा, हाथी, बिल्ववृक्ष, यूप (यज्ञ के यूप), बाण, जौ, तोमर, ध्वज, चामर, माला, पर्व, कुण्डल, वेदी, शंख, छत्र, पद्म, मत्स्य, स्वस्तिक, रथ, अंकुश आदि चिह्न हों, वह राजपत्नी होगी॥९७-९८॥

निगूढमणिबन्धौ च पद्मगर्भोपमौ करौ। न निम्नं नोन्नतं स्त्रीणां भवेत्करतलं शुभम्।
रेखान्वितां त्व विधवां कुर्य्यात्संभोगिनीं स्त्रियम्॥९९॥
रेखा या मणिबन्धोत्था गता मध्याङ्गुलीकरे।
गता पाणितले या च योर्ध्वपादतले स्थिता।
स्त्रीणां पुंसां तथा सा स्याद्राज्याय च सुखाय च॥१००॥

कनिष्ठिकामूलभवा रेखा कुर्याच्छतायुषम्।
प्रदेशिनीमध्यमाभ्यामन्तरालगता सती॥१०१॥
ऊना ऊनायुषं कुर्य्याद्रेखा चाङ्गुष्ठमूलगा।
बृहत्यः पुत्रास्ताः क्षीणाः प्रमदाः परिकीर्त्तिताः॥१०२॥

जिस स्त्री के मणिबन्ध निगूढ़ हों, हथेली कमल के समान हो, हथेली अधिक उच्च अथवा निम्न न हो, उसमें यह उत्तम लक्षण है। हथेली पर अधिक हस्तरेखा होने पर वह रमणी जीवन पर्यन्त विधवा नहीं होती तथा अनेक भोगों के साथ जीवन व्यतीत करती है। जो रेखा मणिबन्ध से निकल कर मध्यमा उंगली की जड़ तक जाती है, उसे ऊर्ध्वरेखा कहा जाता है। जिस स्त्री अथवा पुरुष की हथेली पर ऐसी रेखा दिखलाई पड़े अथवा पैर के तलवे पर ऊर्ध्वरेखा बनी हो, वह नारी किंवा नर राज्य प्राप्त करता है तथा सुखी जीवन व्यतीत करता है। जिसकी हथेली में आयु वाली रेखा कनिष्ठा उंगली की जड़ से निकलती तर्जनी तथा मध्यमा उंगली के बीच तक रहती है, उसकी आयु सौ वर्ष कही गयी है। तर्जनी तथा मध्यमा उंगली के मध्य में आयुरेखा जितनी छोटी होगी, उसकी आयु भी उतनी कम होगी। आयुरेखा स्थूल होने पर अधिक पुत्र होंगे, क्षीण होने पर कन्यायें अधिक होना कहा जाता है॥९९-१०२॥

स्वल्पायुषो बहुच्छिन्ना दीर्घाच्छिन्ना महायुषः।
शुभन्तु लक्षणं स्त्रीणां प्रोक्तन्त्वशुभमन्यथा॥१०३॥
कनिष्ठिकाऽनामिका वा यस्या न स्पृशते महीम्।
अङ्गुष्ठं वा गतातीत्य तर्जनी कुलटा च सा॥१०४॥
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां पिण्डिताभ्यां जङ्घे चातिशिरालके।
रोमशे चातिमांसे च कुम्भाकारं तथोदरम्।
वामावर्त्तं निम्नमल्पं दुःखितानाञ्च गुह्यकम्॥१०५॥

जिसकी आयुरेखा जहां-तहां कटी रहती है, उसका जीवन अल्प होगा। जिसकी आयु रेखा दीर्घ रहती है, कटी नहीं रहती, वही दीर्घ काल तक जीवित रहता है। यहां पर मैंने जो-जो शुभ लक्षण कहे हैं, यदि उनके उलटे लक्षण दीखें तब विपरीत फल तथा कुलक्षण समझें। जिस स्त्री के चलते समय उसकी अनामिका उंगली भूमि स्पर्श नहीं करती तथा दोनों पैरों की तर्जनी पैरों के अंगुष्ठ से बड़ी होती है, वह स्त्री वेश्या होती है। जिस स्त्री की दोनों पिण्डिका जंघा के ऊपर स्थित हैं, दोनों जांघों पर शिरायें उभरी हैं, वे रोमयुक्त तथा मांसल हैं, उदर घड़े जैसा है, गुह्य (योनि) वामावर्त्त तथा किंचित् नीची है, ऐसी स्त्रियां दुःखभोग करती हैं॥१०३-१०५॥

ग्रीवया ह्रस्वया निःस्वा दीर्घया च कुलक्षयः।
पृथुलया प्रचण्डाश्च स्त्रियः स्युर्नात्र संशयः॥१०६॥
प्रलम्बिनी ललाटे तु देवरं हन्ति चाङ्गना।
उदरे श्वशुरं हन्ति पतिं हन्ति स्फिचोर्द्धयोः॥१०७॥

या तु रोमोत्तरौष्ठी स्यान्न शुभा भर्त्तुरेव हि।
स्तनौ सरोमावशुभौ कर्णौ च विषमौ तथा॥१०८॥
कराला विषमा दन्ताः क्लेशाय च भवन्ति ते।
चौर्याय कृष्णमांसाश्च दीर्घा भर्त्तुश्च मृत्यवे॥१०९॥

छोटी गर्दन वाली स्त्री धनहीना, अति दीर्घ गर्दन वाली (लम्बी गर्दन) कुल का नाश करने वाली, विस्तृत (चौड़ी) ग्रीवा वाली प्रचण्ड स्वभावा होती है। जिसके नेत्र भेंगे हैं, पिंगल वर्ण, श्यामलवर्ण अथवा चंचल हैं, वह सती स्त्री नहीं होती। हंसते समय जिसके गालों में गढ़े पड़ जाते हैं, वह व्यभिचारिणी होती है। जिसका ललाट लम्बी रेखा से चिह्नित रहता है, उस नारी का देवर मर जाता है। यदि नारी के पेट पर ऐसी रेखा पड़े, तब श्वसुर का और नितम्बों पर ऐसी रेखा हो, तब पति का नाश निश्चित है। जिस स्त्री के अधर पर रोम हों, वह कदापि पति को सुखी नहीं कर सकती। नारीगण के दोनों स्तन यदि रोम वाले हों, तब यह शुभ लक्षण नहीं है। जिस नारी के दोनों कान समान आकार के न हों, उसे अशुभ लक्षण जाने (यह जान कर दूर से त्याग दे)॥१०६-१०९॥

क्रव्यादरूपैर्हस्तैश्च वृककाकादिसन्निभैः।
शिरालैर्विषमैः शुष्कैर्वित्तहीना भवन्ति हि॥११०॥
समुन्नतोत्तरौष्ठी या कलहे रूक्षभाषिणी॥१११॥
स्त्रीषु दोषा विरूपासु यत्राकारो गुणास्ततः।
नरस्त्रीलक्षणं प्रोक्तं वक्ष्ये तु ज्ञानदायकम्॥११२॥

॥इति गारुडे महापुराणे नरस्त्रीलक्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥

जिस नारी के दांत कराल लगें तथा छोटे-बड़े विषम हों, वह जीवन पर्यन्त क्लेशग्रस्त रहती है। जिसका मसूड़ा काला हो, वह चोरी करती है। बड़े दांतों वाली पतिघातिनी कही गयी है। जिसके हाथ राक्षस, कौवे, व्याघ्र अथवा काक के पंजे के समान हो, उस पर नसें उभरी हों, हाथ सूखे हों, वह नारी धनहीन होती है। जिसका ओष्ठ उन्नत है, वह लोगों के साथ कलह करने वाली तथा रूखी वाणी बोलने वाली होती है। कुत्सित आकार वाली स्त्री के स्वभाव में अनेक दोष होते हैं। जिस स्त्री के अंग-प्रत्यंग पूर्वोक्त अच्छे लक्षणों वाले रहते हैं, उनका चरित्र भी शुद्ध होगा। मैंने पुरुष-स्त्री का लक्षण कह दिया। इसको जानने वाला अन्य के बारे में जान लेता है॥११०-११२॥

॥पैंसठवां अध्याय समाप्त॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

ज्योतिःशास्त्र वर्णन

हरिरुवाच

निर्लक्षणा शुभा स्याच्चचक्रान्वितशिलार्चनात्।
आदौ सुदर्शनो मूर्त्तिर्लक्ष्मीनारायणः परः॥१॥
त्रिचक्रोऽसावच्युतः स्याच्चतुश्चक्रश्चतुर्भुजः।
वासुदेवश्च प्रद्युम्नस्ततः सङ्कर्षणः स्मृतः॥२॥
पुरुषोत्तमश्चाष्टमः स्यान्नवव्यूहो दशात्मकः।
एकादशोऽनिरुद्धः स्याद् द्वादशो द्वादशात्मकः॥३॥
अत ऊर्ध्वमनन्तः स्याच्चक्रे रेखादिकैः क्रमात्।
सुदर्शना लक्षिताश्च पूजिताः सर्वकामदाः॥४॥

श्री हरि कहते हैं—यदि किसी स्त्री का लक्षण अतिशय निन्दित हो तब शालिग्राम शिला पर विष्णु की अर्चना से शुभ फल मिलता है। सुदर्शन, लक्ष्मीनारायण, त्रिचक्र, अच्युत, चतुश्चक्र, वासुदेव, चतुर्भुज, प्रद्युम्न, संकर्षण, पुरुषोत्तम, एक स्थान पर इन दश चक्र के समावेशित होने पर नवव्यूह होता है। एकादश हैं अनिरुद्ध, द्वादश है द्वादशात्मक चक्र तथा त्रयोदश हैं अनन्त चक्र। रेखादि लक्षणों द्वारा चक्रों का निर्णय होता है। उक्त चक्रों का अवलोकन करते अर्चना करने से सर्व कामनाओं का पूरण हो जाता है।।१-४।।

शालग्रामशिला यत्र देवो द्वारवतीभवः। उभयोः सङ्गमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः॥५॥
शालग्रामो द्वारका च नैमिषं पुष्करं गया। वाराणसी प्रयागश्च कुरुक्षेत्रञ्च शूकरम्॥६॥
गङ्गा च नर्मदा चैव चन्द्रभागा सरस्वती। पुरुषोत्तमो महाकालस्तीर्थान्येतानि शङ्कर।
सर्वपापहराण्येव भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै॥७॥

जहां शालग्राम शिला तथा द्वारिका शिला का संगम होता है, वह महातीर्थ है। उन-उन महातीर्थ में मनुष्य निश्चय ही मुक्तिलाभ करते हैं। हे शिव! शालग्राम, द्वारका, नैमिष, पुष्कर, वाराणसी, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, शूकरगंगा, नर्मदा, गोदावरी, चन्द्रमा, सरस्वती, श्रीक्षेत्र, महाकाल—ये सब पुण्यतीर्थ हैं। उक्त पुण्यतीर्थों का दर्शन करने से सर्वविध पाप नष्ट होते हैं तथा भुक्ति-मुक्ति लाभ होता है।।५-७।।

प्रभवो विभवः शुक्रः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः।
अङ्गिराः श्रीमुखो भावः पूषा धाता तथैव च॥८॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो विधुः।
चित्रभानुः स्वर्भानुश्च दारुणः पार्थिवो व्ययः॥९॥

सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः स्वरः। नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ॥१०॥

हेमलम्बो विलम्बश्च विकारः शर्वरी प्लवः।
शुभकृच्छोभनः क्रोधो विश्वावसुः पराभवः॥११॥
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत्।
परिधारी प्रमादी च आनन्दी राक्षसो नलः॥१२॥
पिङ्गलः कालसिद्धार्थौ दुर्मतिः सुमतिस्तथा।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनोऽक्षयः।
शोभनाऽशोभना ज्ञेया नाम्नैवैते हि वत्सराः॥१३॥

अब वर्षों का नाम कहता हूं। प्रभव, विभव, शुक्र, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, पूषा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, स्वभानु, दारुण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्द, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वर, प्लव, शुभकृत, शोभन, क्रोध, विश्वावसु, पराभव, प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधारी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, नल, पिङ्गल, काल, सिद्धार्थ, रौद्रि, दुर्मति, सुमति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन, क्षय, शोभन, अशोभन। ये नामरूप शुभाशुभ देते हैं।।८-१३।।

कालं वक्ष्यामि संसिद्ध्यै रुद्र पञ्चस्वरोदयात्।
राजा साजा उदासा च पीडा मृत्युस्तथैव च॥१४॥
आ ई ऊ ऐ औ स्वराणि लिखेत्पञ्चाग्निकोष्ठके।
ऊर्ध्वतिर्य्यग्गतै रेखैः षड्वह्निक्रममागतैः॥१५॥
तिथी एकाग्निकोष्ठेषु त्रयो राजाथ साजयाः।
उदासपीडामृत्युश्च कुजः सोमसुतः क्रमात्॥१६॥

गुरुशुक्रशनैश्चरा रविचन्द्रौ यथोदितम्। रेवत्यादिशिवान्ताश्च ऋक्षे च प्रथमा कला॥१७॥

अब इनका निर्णय निरूपित किया जा रहा है। राजा, साजा, उदर पीड़ा तथा मृत्यु पञ्चस्वर का यह नाम निर्दिष्ट है। आ, ई, ऊ, ऐ, औ यह पांच स्वर लेकर पञ्चस्वरा मतानुसार गणना की जाती है। ऊर्ध्व में ६ रेखा तथा तिर्यक् भाव से ४ रेखा अं करके १५ कोष्ठों में बांट कर चक्रांकन करे। उसमें आ-ई-ऊ-औ यह पञ्चस्वर, राजा-साजादि ५ नाम, नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता तथा पूर्णा—ये पंच तिथि, मंगल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-रवि-सोम, इन पंच वारों को लिखे।

'अ' स्वर में रेवती से आर्द्रा पर्यन्त सात नक्षत्र, 'ई' स्वर में पुनर्वसु से लेकर उत्तर फाल्गुनी पर्यन्त ५ नक्षत्र, 'ऊ' स्वर में उत्तर फाल्गुनी से विशाखा पर्यन्त ५ नक्षत्र, 'ऐ' स्वर में अनुराधा से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त ५ नक्षत्र तथा 'औ' स्वर में श्रवणा से लेकर उत्तर भाद्रपद पर्यन्त ५ नक्षत्र अंकित करें।।१४-१७।।

पञ्च पञ्चान्यत्र भानि चैत्राद्यउदयस्तथा। द्वादशाहो द्विमासैश्च नाम्न आद्यक्षरं तथा॥१८॥

कलालिङ्गा च या तिष्ठेत् पञ्चमस्तस्य वै मृतिः।
कला तिथिस्तथा वारो नक्षत्रं मासमेव च।
नामोदयस्य पूर्वञ्च तथा भवति नान्यथा॥१९॥
ओं क्षौं शिवाय नमः। क्षामाद्यङ्गशिवामीक्षा विषग्रहमतेर्हर।
त्रैलोक्यमोहनं बीजं नृसिंहस्य तु पद्मगम्॥२०॥
मृत्युञ्जयो गणो लक्ष्मी रोचनाद्यैस्तु लेखिता।
भूर्जे तु धारिताः कण्ठे बाहौ चेति जयादिदाः॥२१॥

॥इति गारुडे महापुराणे ज्योतिःशास्त्रं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

चैत्रमास से दो मास १२ दिन करके एक-एक स्वर का उदय होता है। अ स्वर से—क्षा, का, छा, डा, धा, भा, वा।

ई स्वर से—ई, खि, जि, ढि, नि, मि, णि।

ऊ स्वर से—ऊ, चो, ठो, दो, वो, लो, हो।

इस प्रकार से वर्णविन्यास करके नाम के प्रथमाक्षर के अनुसार स्वरनिर्णय करे। इसके ५ प्रकार से स्वरनिर्णय करके शुभाशुभ गणना का निर्णय करे। जिनके नाम का आदिवर्ण जिस कोष्ठ में दिखलाई पड़े, उस कोष्ठ में लिखित मास, तिथि, नक्षत्रादि में शुभाशुभ फल निश्चित होता है। राजा स्वर से विजय, साजा स्वर से लाभ, उदासा स्वर से कार्यसिद्धि, पीड़ा स्वर से रोग तथा मृत्यु स्वर से मृत्यु होता है। 'ॐ क्षौं शिवाय नमः' मन्त्र से भोजपत्र पर गोरोचन से लिखकर बाहु किंवा कण्ठ में धारण करने से सभी जगह विजय प्राप्त होता है। अथवा इसी प्रकार से नृसिंह बीज धारण करने से त्रिभुवन मोहित कर सकता है॥१८-२१॥

॥षष्टषष्टितम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

पवनविजयादि वर्णन

सूत उवाच

हरेः श्रुत्वा हरो गौरीं देहस्थं ज्ञानमब्रवीत्॥१॥
कुजो वह्नी रविः पृथ्वी शौरिरापः प्रकीर्त्तितः।
वायुसंस्थः स्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रावभासकः॥२॥

सूतजी कहते हैं—महादेव ने हरि से जिस देह निर्णायक स्वरोदय शास्त्र का श्रवण किया था, वह वे पार्वती से कहने लगे। पिंगला नाड़ी से (दक्षिण नासिका से) श्वास वहन काल में मंगल अग्नितत्व के अधिपति, सूर्य पृथिवी तत्व के अधिपति, शनि जलतत्व के अधिपति तथा राहु वायुतत्व के अधिपति हैं।।१-२।।

गुरुःशुक्रस्तदा सौम्यश्चन्द्रश्चैव चतुर्थकः।
वामनाड्यान्तु मध्यस्थान् कारयेदात्मनस्तथा॥३॥
यदा चार इडायुक्तस्तदा कर्म समाचरेत्। स्थानसेवां तथा ध्यानं वाणिज्यं राजदर्शनम्।
अन्यानि शुभकर्माणि कारयेत् प्रयत्नतः॥४॥
दक्षनाडीप्रवाहे तु शनिर्भौमश्च सैंहिकः। इनश्चैव तथाप्येव पापानामुदयो भवेत्॥५॥
शुभाशुभविवेको हि ज्ञायते तु स्वरोदयात्।
देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तराः॥६॥

जब इड़ा नाड़ी (वाम नासिका से) श्वास वहन होता है, तब बृहस्पति अग्नितत्व के, शुक्र पृथिवी तत्व के, बुध जलतत्व के तथा चन्द्र वायु तत्व के अधिपति हो जाते हैं। जब इड़ा नाड़ी में श्वास प्रवाह हो तब स्थानसेवा (तीर्थयात्रा आदि), ध्यान, वाणिज्य, राजदर्शन तथा अन्य शुभ कर्म यत्नतः करना चाहिये। पिङ्गला नाड़ी में श्वास प्रवाह काल में शनि, मंगल, राहु तथा सूर्य रूपी पापग्रहों का उदय रहता है। इस स्वरोदय शास्त्र द्वारा समस्त शुभ कर्मों का ज्ञान होता है। शुभग्रह शुभ कार्य में फल प्रदान करते हैं। इसलिये शुभ कार्य करने हेतु जब वाम नासा में श्वास प्रवाह हो तभी करना चाहिये। शरीर में विविध आकार की अनेक सुविस्तार वाली नाड़ियां रहती हैं।।३-६।।

नाभेरधस्ताद्यः कन्द अङ्कुरास्तत्र निर्गताः।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः।
चक्रवच्च स्थितास्तास्तु सर्वाः प्राणहराः स्मृताः॥७॥
तासां मध्ये त्रयः श्रेष्ठा वामदक्षिणमध्यमाः॥८॥
वामा सोमात्मिका प्रोक्ता दक्षिणा रविसन्निभा।
मध्यमा च भवेदग्निः फलतां कालरूपिणी।
वामा ह्यमृतरूपा च जगदाप्यायने स्थिता॥९॥

ये सभी नाभि से नीचे मूलकंद से निकली हैं। समस्त नाड़ियां ७२००० हैं। यह वक्र रूप से स्थित हैं। इन सबमें से वाम (इड़ा), दक्षिण (पिंगला) तथा मध्यमा (सुषुम्ना) प्रधान हैं। इड़ा चन्द्र, पिंगला सूर्य तथा सुषुम्ना अग्नितुल्य हैं। सुषुम्ना ही कालरूपा है।।७-९।।

दक्षिणा रौद्रभागेन जगच्छोषयते सदा।
द्वयोर्वाहे तु मृत्युः स्यात् सर्वकार्य्यविनाशिनी।
निर्गमे तु भवेद्वामा प्रवेशे दक्षिणा स्मृता॥१०॥

इडाचारे तथा सौम्यं चन्द्रसूर्य्यगतस्तथा। कारयेत्क्रूरकर्माणि प्राणे पिङ्गलसंस्थिते॥११॥

यात्रायां सर्वकार्य्येषु विषापहरणे इडा।
भोजने मैथुने युद्धे पिङ्गला सिद्धिदायिका॥१२॥

उच्चाटमारणाद्येषु कर्मस्वेतेषु पिङ्गला। मैथुने चैव संग्रामे भोजने सिद्धिदायिका॥१३॥

शोभनेषु च कार्य्येषु यात्रायां विषकर्मणि।
शान्तिमुक्त्यर्थसिद्ध्यै च इडा योज्या नराधिपैः॥१४॥

वाम नाड़ी सुधास्वरूपा है। इसका कार्य है जगत् तृप्ति साधन। दाहिनी नाड़ी पिंगला में श्वास लेते समय महाताप प्रकाशित होता है। इसका कार्य है जगत् का पोषण करना। जब दोनों श्वास साथ चलती है (सुषुम्ना) तब मृत्यु एवं सर्वकर्म ध्वंस हो जाता है। पिंगला नाड़ी में जब श्वास चले तब क्रूर कर्म करे। इड़ा नाड़ी में जब प्राण चले तब शुभ कर्म करे। इड़ा नाड़ी (वाम नासिका) में जब श्वास चलता हो तब यात्रा, विषहरणादि तथा जब पिंगला (दाहिनी नासिका) में श्वास चले तब मारण, मैथुन, संग्राम आदि कार्य की सिद्धि होती है। इड़ा नाड़ी श्वास काल में यात्रा, विषप्रयोग का हरण, शान्ति कार्य, मुक्ति हेतु कार्य तथा अभीष्ट सिद्धि के कार्य आदि शुभदायक कार्य करना चाहिये।।१०-१४।।

द्वाभ्याञ्चैव प्रवाहे च क्रूरसौम्यविवर्जने। विषुवं तं तु जानीयात् संस्मरेत्त विचक्षणः॥१५॥

सौम्यादिशुभकार्य्येषु लाभादिजयजीविते। गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता॥१६॥

युद्धादौ भोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु सङ्गमे।
प्रशस्ता दक्षिणा नाडी प्रवेशे क्षुद्रकर्मणि॥१७॥

सुषुम्ना (दोनों नासिका से एक साथ) नाड़ी से श्वास वहन के समय कोई भी शुभ अथवा अशुभ कार्य न करे। बुद्धिमान् व्यक्ति इस काल में सभी कार्य को न करे। लाभ, विजय, आयुकारक कार्य, गमन-आगमन आदि में इड़ा नाड़ी ही प्रशस्त है। युद्ध, भोजन, प्रहार, स्त्री संग, प्रवेश, क्षुद्रकार्य (जादू-टोना आदि) दाहिने नाक से प्राणप्रवाह के समय करना चाहिये।।१५-१७।।

शुभाशुभानि कार्य्याणि लाभालाभौ जयाजयौ।
जीवो जीवाय यत्पृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा।
वामाचारेऽथवा दत्ते प्रत्यये यत्र नायकः॥१८॥

तनुस्थः पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न संशयः। वैच्छन्दो वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि।
तत्र भागे स्थितः पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला॥१९॥

सुषुम्ना प्राणवहन काल में लाभ-अलाभ, शुभ-अशुभ कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। इस समय जीवन सम्बन्धित प्रश्न का उत्तर भी अशुभ होगा। यदि इड़ा तथा पिंगला श्वास वहन काल में कोई प्रश्न करता है (श्वास अंदर लेते) तब वह कार्य अवश्य सिद्ध होगा। इसके विपरीत यदि कोई तब प्रश्न करता है जब उत्तरदाता की नाक से श्वास बाहर अर्थात् इड़ा-पिंगला से बाहर आ रही हो, तब उस दिशा से कोई प्रश्न करे, जिस ओर की नाक से श्वास बाहर आ रही है, तब वह प्रश्न का कार्य नहीं होगा।।१८-१९।।

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवा।
घोरे घोराणि कार्य्याणि सौम्ये वै मध्यमानि च।
प्रस्थिते भागतो हंसे द्वाभ्यां वै सर्ववाहिनि॥२०॥
तदा मृत्युं विजानीयाद्योगी योगविशारदः। यत्र यत्र स्थितः पृच्छेद्वामदक्षिणसंमुखः॥२१॥
तत्र तत्र समं दिश्याद्वातस्योदयनं सदा। अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा।
वामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा॥२२॥

वाम नासा तथा दक्षिण नासिका वायु वहन काल में विवेचना के साथ क्रूर कार्य तथा शुभ के उदय पर शुभ कार्य करे। सुषुम्ना काल को मृत्यु काल कहा गया है, यह योगीगण को ज्ञात प्रश्नकर्त्ता जब उत्तरदाता के बायें, दाहिने किंवा सामने बैठ प्रश्न करता है, तब किस नाड़ी से वायु चल रही है, इस पर विशेष लक्ष्य रखना होगा। यदि वाम नासिका से वायु प्रवाह के समय सामने अथवा बायीं ओर से तथा दाहिनी नासिका से वायु प्रवाह के समय पीछे अथवा दाहिने से प्रश्न हो, तब वह शुभ होगा।।२०-२२।।

जीवो जीवति जीवेन यच्छून्यं तत् स्वरो भवेत्।
यत्किञ्चित्कार्य्यमुद्दिष्टं जयादिशुभलक्षणम्॥२३॥
तत्सर्वं पूर्णनाड्यान्तु जायते निर्विकल्पतः। अन्यनाड्यादिपर्य्यन्तं पक्षत्रयमुदाहृतम्॥२४॥
यावत्षष्ठीन्तु पृच्छायां पूर्णायां प्रथमो जयेत्।
रिक्तायान्तु द्वितीयस्तु कथयेत्तदशङ्कितः॥२५॥

जब पूर्ण नाड़ी चल रही हो तब जयादि शुभ कार्य का प्रश्न करता है, वह निश्चित रूप से सफल होगा। पूर्णा किंवा रिक्ता नाड़ी काल में जयादि शुभ कार्य सम्पन्न होने में तीन पक्ष (४५ दिन) का समय स्वरोदय शास्त्र में नियत किया गया है। नासापुट जब स्वरपूर्ण रहे, अर्थात् श्वास भीतर खींची जाये, तब वह पूर्णा नाड़ी कहलाती है। जब श्वास बाहर छोड़ने से श्वास शून्य हो तब वह रिक्ता नाड़ी है। जब पूर्णा नाड़ी का ६ भाग श्वासपूर्ण तथा १० भाग श्वासशून्य रहे तब जयादि सम्बन्धित प्रश्न होने पर इस पक्षत्रय के प्रथम भाग में ही कार्यसिद्धि होगी। रिक्ता नाड़ी के समय ऐसा प्रश्न होने पर पक्षत्रय के द्वितीय भाग में ही कार्य सिद्धि होगी।।२३-२५।।

वामाचारसमो वायुर्जायते कर्मसिद्धिदः। प्रवृत्ते दक्षिणे मार्गे विषमे विषमाक्षरम्॥२६॥
अन्यत्र वामवाहे तु नाम वै विषमाक्षरम्। तदासौ जयमाप्नोति योधः संग्राममध्यतः॥२७॥
दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम्।
जायते नात्र संदेहो नाडीमध्ये तु लक्षयेत्॥२८॥
पिङ्गलान्तर्गते प्राणे शमनीयाहवञ्जयेत्। यावन्नाड्योदयं चारस्तां दिशं यावदापयेत्॥२९॥
न दातुं जायते सोऽपि नात्र कार्या विचारणा।
अथ संग्राममध्ये तु यत्र नाडी सदा वहेत्॥३०॥

सा दिशा जयमाप्नोति शून्ये भङ्गं विनिर्दिशेत्।
जातचारे जयं विद्यान्मृतके मृतमादिशेत्।
जयं पराजयं चैव यो जानाति स पण्डितः॥३१॥

वामनासा में वायु वहन काल में प्रश्न अक्षर की गणना से यदि युग्म (जोड़ी) होते हैं (अर्थात् २-४-६-८-१०-१२ इत्यादि) तब कार्य सिद्धि होगी। यदि इन दोनों नासिका से प्रश्नकाल को यदि प्रश्न के अक्षर अयुग्म हों, तब योद्धा विजयी होगा। दाहिनी नासिका से प्राण वहन काल में प्रश्नाक्षर अथवा नामाक्षर समान हों, तब सन्धियोग्य जय होगी। पहले उस समय जिस नासापुट में प्राणोदय हो, उस दिशा में स्थित जयादि प्रश्न करने पर उस युद्ध में विजय होगी। वह राजा कभी भी विपक्ष के हाथ में राज्य का अथवा अपना समर्पण नहीं करेगा। युद्ध प्रश्नकाल में जिस दिशा की (बायीं-दाहिनी) नासिका से वायुप्रवाह रहे, उसी दिशा में ही जय होगी, अन्य ओर से हार होगी। इड़ा-पिंगला किसी भी नाड़ी से वायुप्रवाह रहने पर प्रश्न के सम्बन्ध में यहां कहे मतानुसार जय आदि तथा सुषुम्ना नाड़ी प्रवाह के समय प्रश्न होने पर मृत्यु ही होगी। जिनको यह विवरण ज्ञात है, वे ही विद्वान् हैं।।२६-३१।।

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सञ्चरते शिवम्।
कृत्वा तत्पादमाप्नोति यात्रा सन्ततशोभना॥३२॥
शशिसूर्य्यप्रवाहे तु सति युद्धं समाचरेत्। तत्रस्थः पृच्छते यस्तु स साधुर्जयते ध्रुवम्॥३३॥
यां दिशं बहते वायुस्तां दिशं यावदाजयेत्।
जायते नात्र सन्देह इन्द्रो यद्यग्रतः स्थितः॥३४॥
मेष्याद्या दश या नाड्यो दक्षिणा वामसंस्थिताः।
चरस्थिरद्विमार्गे तास्तादृशे तादृशः क्रमात्॥३५॥
निर्गमे निर्गमं याति संग्रहे संग्रहं विदुः।
पृच्छकस्य वचः श्रुत्वा घण्टाकारेण लक्षयेत्॥३६॥
वामे वा दक्षिणे वापि पञ्चतत्त्वस्थितः शिवे।
ऊर्ध्वेऽग्धिरध आपश्च तिर्य्यक्संस्थः प्रभञ्जनः।
मध्ये तु पृथिवी ज्ञेया नभः सर्वत्र सर्वदा॥३७॥
ऊर्ध्वे मृत्युरधःशान्तिस्तिर्य्यक् चोच्चाटयेत्सुधी:।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्मोक्षः सर्वत्र सर्वगे॥३८॥

।।इति गारुडे महापुराणे पवनविजयादिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः।।६७।।

यात्राकाल में वाम अथवा दक्षिण जिस नासिका से वायु बहे, उस ओर पहला कदम रख कर जो यात्रा करेगा, उसे शुभ होगा। इड़ा अथवा पिंगला नाड़ी में वायु बहते युद्ध करे तथा जिस नासिका से वायु बह रही

हो, यदि उस ओर प्रश्नकर्त्ता बैठा हो तब उस दिशा में ही जय होगी। जिस नासिका से वायु बह रही हो, उस दिशा में स्थित होकर यदि कोई प्रश्न करे तब यदि युद्ध करने जा रहा हो, तब भी विजयी होगा। बायीं तथा दाहिनी दस नाड़ियों में मेष आदि राशि तथा उनके चर-स्थिर तथा व्यापक संज्ञादि का विचार करके प्रश्न का फलाफल कहे। श्वास निर्गम में उस प्रश्न का अशुभ फल होगा। श्वास अन्दर लेते समय उस प्रश्न का शुभ फल होगा। दोनों नासिका में पञ्चतत्वोदय होता है। नव नासापुट के ऊर्ध्व के स्थान को स्पर्श करके प्राण बहे, तब अग्नितत्व का, नासापुट के नीचे स्थान को स्पर्श करके बहे तब जलतत्व का, पार्श्व का स्पर्श करके प्रवाहित होने पर वायुतत्व, मध्यस्थान स्पर्श करके बहने पर पृथिवीतत्व तथा सर्वत्र स्पर्श करके घूर्णित होने पर आकाश तत्व का उदय होगा। अग्नितत्वोदय पर मारण, पृथ्वीतत्वोदय पर स्तम्भन, आकाश तत्वोदय पर कहीं से मुक्ति आदि का उत्तर जानना होगा।।३२-३८।।

सप्तषष्टितम अध्याय समाप्त

❖❖❖

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

रत्न परीक्षण वर्णन

सूत उवाच

परीक्षां वच्मि रत्नानां बलो नामासुरोऽभवत्।
इन्द्राद्या निर्जितास्तेन निर्जेतुं तैर्न शक्यते॥१॥
वरव्याजेन पशुतां याचितः स सुरैर्मखे। बलो ददौ स्वपशुतामतिसत्त्वो मखे हतः॥२॥
पशुवत्प्रविशेत्स्तम्भे स्ववाक्याशनियन्त्रितः।
बलो लोकोपकाराय देवानां हितकाम्यया॥३॥
तस्य सत्त्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा। कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्वमाययुः॥४॥

सूतजी कहते हैं—अब रत्नों की परीक्षा प्रणाली कहते हैं। पूर्वकाल में बल नामक असुर था। उसने इन्द्रादि देवों को हरा दिया। कोई भी उसे नहीं जीत सका। जब देवगण किसी भी प्रकार से उसे पराजित न कर सके, तब उन्होंने छल से एक यज्ञानुष्ठान किया तथा बलासुर से कहा कि तुम यज्ञपशु बनो, यह कहकर उसके शरीर को भिक्षा में मांग लिये। बलासुर प्रतिज्ञाबद्ध हो गया, तब उसने यज्ञीय पशुरूप में अपना देह अर्पित करने हेतु पशुवत् बलिस्तम्भ के पास जाकर देहोत्सर्ग करके देवगण का हितसाधन किया तथा उसने देवलोक प्राप्त किया। इस उत्कट पुण्य के प्रभाव से बलासुर के शरीर के प्रत्येक अवयव रत्नबीज हो गये।।१-४।।

देवानामथ यक्षाणां सिद्धानां पवनाशिनाम्। रत्नबीजमयं ग्राहः सुमहानभवत्तदा॥५॥
तेषां तु पततां वेगाद्विमानेन विहायसा। यद्यत्पपात रत्नानां बीजं क्वचन किञ्चन॥६॥

महोदधौ सरिति वा पर्वते काननेऽपि वा। तत्तदाकरतां यातं स्थानमाधेयगौरवात्।।७।।
तेषु रक्षो विषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च। प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च।।८।।

रत्न की इस उत्पत्ति से देव, यक्ष, सिद्ध, नाग प्रभृति सबका महान् उपकार हो गया। देवता विमान पर बैठकर बलासुर की मृत देह लेकर आकाशमार्ग से चले गये। उनके गमनवेग से उस विमान से वह देह खण्डित होकर सैकड़ों टुकड़ों में पृथिवी पर गिरने लगा। बलासुर के देह के खण्ड समुद्र-नदी-पर्वत-कानन आदि स्थानों में गिरने लगे। उन-उन स्थान में एक-एक रत्न का भण्डार हो गया। इन स्थानों से विविध रत्न उत्पन्न होने लगे। कुछ रत्न विषपीड़ा हारी, कुछ राक्षस, सर्पादि भयहारी, पापहारी तथा कुछ गुणहीन भी थे।।५-८।।

वज्रं मुक्ता मणयः सपद्मरागाः समरकताः प्रोक्ताः।
अपि चेन्द्रनीलमणिवरवैदूर्य्याश्च पुष्परागाश्च।।९।।
कर्केतनं सपुलकं रुधिराख्यसमन्वितं तथा स्फटिकम्।
विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्टं संग्रहे तज्ज्ञैः।।१०।।
आकारवर्णौ प्रथमं गुणदोषौ तत्फलं परीक्ष्य च।
मूल्यञ्च रत्नकुशलैर्विज्ञेयं सर्वशास्त्राणाम्।।११।।

रत्नगुणज्ञाता विद्वान् लोग इन सब खानों से हीरा, मोती, मणि, पद्मराग, मरकत, नीलम, वैदूर्य, पुखराज, कर्कोटक, पुलक, कपिल, स्फटिक, प्रवाल प्रभृति नाना रत्नों का संग्रह करने लगे। रत्न पारखी लोग पहले इन रत्नों के आकार, रंग, गुण, दोष, फल की परीक्षा करके उनका मूल्य तय करते थे।।९-११।।

कुलग्नेषूपजायन्ते यानि चोपहतेऽहनि। दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा।।१२।।
परीक्षापरिशुद्धानां रत्नानां पृथिवीभुजा।
धारणं संग्रहो वापि कार्य्यः श्रियमभीप्सता।।१३।।
शास्त्रज्ञाः कुशलाश्चापि रत्नभाजः परीक्षकाः।
त एव मूल्यमात्राया वेत्तारःपरिकीर्त्तिताः।।१४।।
महाप्रभावं विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहृतम्। वज्रपूर्वा परीक्षेयं ततोऽस्माभिः प्रकीर्त्त्यते।।१५।।
तस्यास्थिलेशो निपपात येषु भुवः प्रदेशेषु कथञ्चिदेव।
वज्राणि वज्रायुधनिर्जिगीषोर्भवन्ति नानाकृतिमन्ति तेषु।।१६।।
हैममातङ्गसौराष्ट्राः पौण्ड्रकालिङ्गकोशलाः।
वेण्वातटाः ससौवीरा वज्रस्याष्टविहारकाः।।१७।।

अब रत्न परीक्षण कहते हैं। खराब लग्न में तथा अशुभ दिन में जिन रत्नों की उत्पत्ति हुई है, वे सभी दोषभय तथा गुणहीन हैं। शुभाभिलाषी राजा रत्न परीक्षण करके ही धारण करके इसका संग्रह करते हैं। जो दक्ष परीक्षक हैं, वे ही रत्न के मूल्य का निर्धारण करें। जिस मणि की प्रभा अत्यन्त उज्ज्वल है, वह हीरा कहलाता

है। अतः पहले रत्न परीक्षण कहा जाता है। इन्द्रविजयी बलासुर के अस्थिकण पृथिवी पर जहां-जहां गिरे, वहां-वहां विविध रंग के हीरे उत्पन्न हो गये। हिमालय, मातंग पर्वत, सौराष्ट्र, पुण्ड्र, कलिंग, कोशल, वेण्वातट, सौवीर इन आठ स्थानों पर हीरे की खानें हैं।।१२-१७।।

आताम्रा हिमशैलजाश्च शशिभा वेण्वातटीयाः स्मृताः।
सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजाः।
कालिङ्गाः कनकावदातरुचिराः पीतप्रभाः कोशले।
श्यामाः पुण्ड्रभवा मतङ्गविषये नित्यन्तपीतप्रभाः॥१८॥
अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पार्श्वेषु सम्मक्समं,
रेखाबिन्दुकलङ्ककाकपदकत्रासादिभिर्वर्जितम् ॥१९॥

हिमालय का हीरा किंचित् ताम्रवर्ण, वेण्वातट का हीरा शशिप्रभ, सौवीर का हीरा नील कमल वर्ण तथा मेघवर्ण आभायुक्त, सौराष्ट्र का हीरा ताम्रवर्ण, कलिंग का हीरा सुवर्णवत् मनोहर कान्ति वाला, कोशल देश का हीरा पीला, पौण्ड्र देश का हीरा श्यामवर्ण, मतङ्ग देश का हीरा ईषत् पीला होता है। जो अपेक्षाकृत् छोटा, समुज्ज्वल, समान पार्श्व वाला, रेखा-बिन्दु-कलंक चिह्न विहीन होता है तथा त्रासादि मणिदोष वर्जित होता है, वैसा तीक्ष्ण तेज हीरा परमाणु परिमाण भी जहां दीख जाये, वहां देवताओं का ही स्थान जानना चाहिये।।१८-१९।।

लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद्दृश्यते,
तस्मिन्देवसमाश्रयो ह्यवितथं तीक्ष्णाग्रधारं यदि
वज्रेषु वर्णयुक्त्या देवानामपि विग्रहः प्रोक्तः।
वर्णेभ्यश्च विभागः कार्य्यो वर्णाश्रयादेव॥२०॥
हरित्श्वेतपीतपिङ्गश्यामताम्राः स्वभावतो रुचिराः।
हरिवरुणशक्रहुतवहपितृपतिमरुतां स्वका वर्णाः॥२१॥
विप्रस्य शङ्खकुमुदस्फटिकावदातः, स्यात्क्षत्रियस्य शशबभ्रुविलोचनाभः।
वैश्यस्य कान्तकदलीदलसन्निकाशः, शूद्रस्य धौतकरबालसमानदीप्तिः॥२२॥
द्वौ वज्रवर्णौ पृथिवीपतीनां सद्भिः प्रदिष्टौ न तु सार्वजन्यौ।
यः स्याज्जवाविद्रुमभङ्गशोणो यो वा हरिद्रारससन्निकाशः॥२३॥

हीरा के वर्ण के अनुसार देवस्थान (उसमें स्थिति) निश्चय करे। वर्णदृष्टि से ही हीरे का जाति विभाग होता है। हरे रंग का हीरा हरि, श्वेत वर्ण का वरुण, पीतवर्ण का इन्द्र, पिंगलवर्ण का अग्नि, श्यामवर्ण का यम, ताम्रवर्ण का वायु का अधिष्ठान माना गया है। ब्राह्मणार्थ शंख-कुमुद-स्फटिक तुल्य शुभ्र वर्ण, क्षत्रियार्थ शशक-नकुल-नेत्रवत् वर्ण युक्त, वैश्य हेतु कदलीपत्र के समान कान्ति युक्त तथा शूद्र हेतु तेज तलवार की चमक वाला हीरा उत्तम है। पण्डितगण राजा के लिये दो प्रकार के हीरे को प्रशस्त कहते हैं। जवापुष्प तथा प्रवालवत् रक्तवर्ण तथा हल्दी के रस के समान पीतवर्ण, ये द्विविध हीरे केवल राजा हेतु ही उत्तम हैं। अन्य के लिये नहीं हैं।।२०-२३।।

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्सार्ववर्णिकम्। कामतो धारयेद्राजा न त्वन्योऽन्यः कथञ्चन॥२४॥
अधरोत्तरवृत्तो हि यादृक्स्याद्वर्णसङ्करः। ततः कष्टतरो वज्री वर्णानां सङ्करो मतः॥२५॥
न च मार्गविभागमात्रवृत्त्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः।
गुणवद्गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतुः॥२६॥
एकमपि यस्य शृङ्गं विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा।
गुणवदपि तन्न धार्य्यं श्रेयोऽर्थिभिर्भवने॥२७॥

राजा सभी वर्ण वालों का अधीश्वर होता है। अतएव वह इच्छा मात्र से सर्ववर्ण तथा सर्वगुणयुक्त हीरा धारण कर सकता है। अन्य वर्ण को यह अधिकार नहीं है। जिस हीरे का पूर्व भाग वृत्ताकृति है तथा नाना वर्णयुक्त है, वह हीरा इन्द्र को भी कष्ट देने वाला है। अतएव कोई भी उसे धारण न करे। विद्वान् लोग केवल हीरा के मात्राविभागानुसार धारण की व्यवस्था न करें, उसका गुण-दोष विचार करके धारणार्थ व्यवस्था करें। गुणयुक्त हीरा सम्पत्ति प्रदान करता है, लेकिन दोषयुक्त हीरा दुःखकारण है। जिस हीरे का मात्र एक शृङ्ग हो तथा वह विदीर्ण किंवा विदलित न हो, तब वह गुणयुक्त होने पर भी मंगल चाहने वाले हेतु धारण योग्य नहीं है।।२४-२७।।

स्फुटिताग्निविशीर्णशृङ्गदेशं मलवर्णैः पृषतैर्व्यपेतमध्यम्।
न हि वज्रभृतोऽपि वज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलालसां न कुर्यात्॥२८॥
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितवर्णचित्रम्।
न तत्र कुर्य्याद् ह्रियमाणमाशु स्वच्छन्दमृत्योरपि जीवितान्तम्॥२९॥
कोट्यः पार्श्वानि धाराश्च षडष्टौ द्वादशेति च।
उत्तुङ्गसमतीक्ष्णाग्रा वज्रस्याकरजा गुणाः॥३०॥

जिस हीरक के शृङ्ग स्फुटित, अग्निदग्ध अथवा मध्य भाग से मलिन हैं, किंवा उसमें विन्दु चिह्न हैं, उसे धारण करके इन्द्र भी श्रीभ्रष्ट हो जायेंगे। जो हीरा एक ओर लाल तथा रक्तवर्ण से चित्रित है, उसे धारण करने पर इच्छामृत्यु वरदान प्राप्त का भी जीवन नष्ट हो जाता है। षट्कोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, षट्पार्श्व, अष्टपार्श्व, द्वादशपार्श्व तथा षट्धार, अष्टधार, द्वादशधार, उत्तुङ्ग, समतीक्ष्ण, समानाग्र प्रभृति नानाविध हीरक हैं। इन सबमें खान का (पृथक्) गुण है। खान के भेद से हीरे की आकारगत भिन्नता होती है।।२८-३०।।

षट्कोटिशुद्धममलं स्फुटतीक्ष्णधारं वर्णान्वितं लघु सुपार्श्वमपेतदोषम्।
इन्द्रायुधांशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेवंविधं भुवि भवेत्सुलभं न वज्रम्॥३१॥
तीक्ष्णाग्रं विमलमपेतसर्वदोषं धत्ते यः प्रयततनुः सदैव वज्रम्।
वृद्धिस्तं प्रतिदिनमेति यावदायुः स्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम्॥३२॥
व्यालवह्निविषव्याघ्रतस्कराम्बुभयानि च। दूरात्तस्य निवर्त्तन्ते कर्माण्याथर्वणानि च॥३३॥
यदि वज्रमपेतसर्वदोषं बिभृयात्तण्डुलविंशतिं गुरुत्वे।
मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुणं रूपलक्षणमग्रमूल्यम्॥३४॥

जो हीरा षट्कोण, विशुद्ध, निर्मल, तीक्ष्ण धार, प्रशस्त वर्ण, लघु, शोभन, किनारों वाला तथा दोषरहित है और जिसकी प्रभाराशि इन्द्रधनुष के समान (आकाश पर उठाने पर) प्रतिफलित हो, ऐसा हीरा अत्यन्त दुर्लभ है। जो तीक्ष्णाग्र, निर्मल, दोषशून्य हो, उसे धारण करने पर नित्य आयु, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, धन-धान्य, गो, पशु प्रभृति में वृद्धि होती है। सर्प, अग्नि, विष, व्याघ्र, जल, चौरभय तथा शस्त्रकृत अभिचार दूर हो जाते हैं। जो हीरा सर्वपापरहित तथा २० चावल इतना है, मणि-मन्त्र के ज्ञाता उसका मूल्य अन्य हीरों से दूना कहते हैं।।३१-३४।।

त्रिभागहीनार्द्धतदर्द्धशेषं त्रयोदशं त्रिंशदतोऽर्द्धभागाः।
अशीतिभागोऽथ शतांशभागः सहस्रभागोऽल्पसमानयोगः।।३५।।
यत्तण्डुलैर्द्वादशभिः कृतस्य वज्रस्य मूल्यं प्रथमं प्रदिष्टम्।
द्वाभ्यां क्रमाद्धानिमुपागतस्य त्वेकावसानस्य विनिश्चयोऽयम्।।३६।।
न चापि तण्डुलैरेव वज्राणां धारणक्रमः। अष्टाभिः सर्षपैगौरैस्तण्डुलं परिकल्पयेत्।।३७।।
यत्तु सर्वगुणैर्युक्तं वज्रं तरति वारिणि। रत्नवर्गे समस्तेऽपि तस्य धारणमिष्यते।।३८।।
अल्पेनापि हि दोषेण लक्ष्यालक्ष्येण दूषितम्।
स्वमूल्याद्दशमं भागं वज्रं लभति मानवः।।३९।।
प्रकटानेकदोषस्य स्वल्पस्य महतोऽपि वा।
स्वमूल्याच्छतशो भागो वज्रस्य न विधीयते।।४०।।

पूर्वोक्त परिमाण का तीसरा भाग, आधा, चौथाई, १३वां भाग, तीसवां भाग, ६०वां भाग, ८०वां भाग, १००वां भाग, हजारवां भाग का कम किंवा अधिक अथवा कम मूल्य उसी के अनुसार होगा। १२ चावल भार के परिमाण से न्यूनाधिक्य मूल्य का तारतम्य कहा गया है। साक्षात् चावल से हीरे का वजन न करे, लेकिन आठ श्वेत सरसों दाने को एक तण्डुल मानकर सरसों से वजन करना चाहिये। मणिशास्त्रज्ञ के मत से आठ संख्यक सफेद सरसों से पारिभाषिक तण्डुल संख्या मानी गयी है। जो हीरा सर्वगुणयुक्त हो तथा जल में न डूबे, वह ही सर्वोत्तम है। उसे धारण करना चाहिये। यदि यह हीरा अल्प दोष, लक्ष्य दोष अथवा न दिखाई पड़ने वाले दोष से दूषित भी हो, तब स्वाभाविक मूल्य का १/१० मूल्य होगा। जो हीरा एकाध अथवा अनेक दोषयुक्त हो, उसका मूल्य तो १/१०० भी नहीं होगा।।३५-४०।।

स्पष्टदोषमलङ्कारे वज्रं यद्यपि दृश्यते। रत्नानां परिकल्पार्थं मूल्यं तस्य भवेल्लघु।।४१।।
प्रथमं गुणसम्पदाभ्युपेतं प्रतिबद्धं समुपैति यच्च दोषम्।
अलमाभरणेन तस्य राज्ञो गुणहीनोऽपि मणिर्न भूषणाय।।४२।।
नार्य्या वज्रमधार्य्यं गुणवदपि सुतप्रसूतिमिच्छन्त्या।
अन्यत्र दीर्घचिपिट ह्रस्वाद्गुणैर्विमुक्ताच्च।।४३।।
अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च।
वैदूर्य्यस्फटिकाभ्याञ्च काचैश्चापि पृथग्विधैः।।४४।।

प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जनाः।
परीक्षा तेषु कर्तव्या विद्वद्भिः सुपरीक्षकैः।
क्षारोल्लेखनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम्॥४५॥

यदि आलंकारिक हीरक में कोई स्पर्शदोष लक्षित हो, तब उस हीरे का मूल्य अपेक्षाकृत अल्प होगा। कोई-कोई हीरा सर्वगुणयुक्त लगता है, लेकिन यदि उसके दोष प्रकट हो जायें तो वैसा हीरा राजा ग्रहण न करे। गुणहीन मणि से आभूषण की शोभा नहीं बढ़ती। सन्तान चाहने वाली स्त्री दीर्घ, चपटे, छोटे तथा गुणहीन हीरा को ही धारण करे। गुणयुक्त हीरा धारण न करे। मणिशास्त्रज्ञ (जौहरी) व्यक्ति अयस्कान्त, पुखराज, गोमेद, वैदूर्य, स्फटिक तथा अन्य वर्ण के कांच से हीरे का प्रतिरूप बना लेते हैं। इसलिये विद्वान् लोग हीरा का परीक्षण करके ही उसे ग्रहण करें। क्षारद्रव्य (तेजाब आदि) से खुरच कर हीरे की परीक्षा करें (जिससे कृत्रिम का भेद खुल सके)।।४१-४५।।

पृथिव्यां यानि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः।
सर्वाणि विलिखेद्वज्रं तच्च तैर्न विलिख्यते॥४६॥
गुरुता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम्। वज्रे तां वैपरीत्येन सूरयः परिचक्षते॥४७॥
जातिरजातिं विलिखन्ति वज्रकुरुविन्दाः।
वज्रैर्वज्रं विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम्॥४८॥

पृथिवी में जितने प्रकार के रत्न तथा लोहा प्रभृति धातु हैं, हीरा उन सबको खुरच सकता है, लेकिन अन्य कोई धातु अथवा रत्न हीरा को नहीं खुरच सकता। सर्वप्रकार के रत्न की गुरुता ही गौरव का कारण है, लेकिन पण्डितगण हीरा के सम्बन्ध में उसकी विपरीतता का भी निर्देश करते हैं। अन्यान्य रत्न जितने भी भारी हों, इससे उनका गौरव बढ़ता है, लेकिन हीरा जितना ही हल्का होगा, उतनी ही उसकी विशेषता कही जायेगी। पद्मराग तथा हीरा अन्य सभी मणियों को काट सकते हैं। हीरे को केवल हीरे से ही काट सकते हैं। अन्य धातु उसे काट नहीं सकती।।४६-४८।।

वज्राणि मुक्तामणयो ये च केचन जातयः।
न तेषां प्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी॥४९॥
तिर्य्यक्क्षतत्वात्केषाञ्चित्कथञ्चिद्यदि दृश्यते।
तिर्य्यगालिख्यमानानां स पार्श्वेषु विहन्यते॥५०॥
यद्यपि विशीर्णकोटिः स बिन्दुरेखान्वितो विवर्णो वा।
तदपि धनधान्यं पुत्रान्करोति सेन्द्रायुधो वज्रः॥५१॥
सौदामिनीविस्फुरिताभिरामं राजा यथोक्तं कुलिशं दधानः।
पराक्रमाक्रान्तपरप्रतापः समस्तसामन्तभुवं भुनक्ति॥५२॥

।।इति गारुडे महापुराणे वज्रपरीक्षा नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः।।६८।।

हीरा, मणि, मुक्तादि जितने रत्न हैं, उनमें से किसी की किरण भी ऊर्ध्व में नहीं जाती। यदि किसी हीरे का वक्रभाव से भग्न हो अथवा उसमें वक्राकार रेखा हो, तब उसके पार्श्व में दीप्ति नहीं होती। यदि हीरे का पार्श्व भाग विशीर्ण हो तथा वह विन्दुयुक्त रेखा संयुक्त हो, अथवा वह मलिन हो तब भी वह हीरा धन-धान्य-लक्ष्मी दाता होता है। यदि कोई राजा विद्युत् के समान उज्ज्वल तथा सुलक्षण वाला हीरा धारण करता है, तब वह हीरा के प्रभाव से शत्रुगण का दमन करके सामन्तों को वश में रख कर ससागर धरती का भोग करता है।।४९-५२।।

।।अष्टषष्टितम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

मुक्तारत्न परीक्षा

सूत उवाच

द्विपेन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि ।
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषाञ्च शुक्त्युद्भवमेव भूरि।।१।।
तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निविश्यते रत्नपरस्य जातु।
वेध्यन्तु शुक्त्युद्भवमेव तेषां शेषाण्यवेध्यानि वदन्ति तज्ज्ञाः।।२।।
त्वक्सारनागेन्द्रतिमिप्रसूतं यच्छङ्खजं यच्च वराहजातम्।
प्रायोविमुक्तानि भवन्ति भासा शस्तानि माङ्गल्यतया तथापि।।३।।
या मौक्तिकानामिह जातयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिता रत्नविनिश्चयज्ञैः।
कम्बूद्भवं तेष्वधमं प्रदिष्टमुत्पद्यते यच्च गजेन्द्रकुम्भात्।।४।।
स्वयोनिमध्यच्छवितुल्यवर्णं शाङ्खं बृहत्कोणपलप्रमाणम्।
उत्पद्यते वारणकुम्भमध्यादापीतवर्णं प्रभया विहीनम्।।५।।
ये कम्बवः शाङ्खमुखावमर्षपीतस्य शङ्खप्रवरस्य गोत्रे।
मतङ्गजाश्चापि विशुद्धवंश्यास्ते मौक्तिकानां प्रभवाः प्रदिष्टाः।
उत्पद्यते मौक्तिकमेषु वृत्तमापीतवर्णं प्रभया विहीनम्।।६।।

सूतजी कहते हैं—हाथी, मेष, शूकर, शंख, मत्स्य, शुक्ति तथा बांस, इन सबसे मुक्ता उत्पन्न होती है। इन सबमें से शुक्ति (सीपी) की मुक्ता प्रधान है। मुक्ता शास्त्रज्ञगण कहते हैं जितनी भी मुक्ता हैं, उनमें से केवल सीप की मुक्ता में ही छिद्र किया जाये। अन्य मुक्ताओं का वेधन न हो। बांस, हाथी, मत्स्य, शंख तथा

वाराहमुक्ता में कम चमक होती है। तथापि ये सब मंगल कार्य में प्रशस्त हैं। रत्नशास्त्र के पारदर्शी लोगों ने इन आठ प्रकार की मुक्ता का निर्णय किया है। इनमें गजमुक्ता तथा शंखमुक्ता निकृष्ट है। शंखमुक्ता अपने उत्पत्तिस्थान के मध्य से उत्पन्न होती है। यह बृहद् कोण वाली तथा फल प्रमाण होती है। गजकुंभ से निकली मुक्ता किंचित् पीली तथा आभाहीन होती है। जो शंखोत्पन्न होती है, वह भी प्रायः पीत शंख से मिलती है। जो गज विशुद्ध वंश वाले हैं, उनके कुम्भस्थल से मुक्ता की उत्पत्ति होती है। मुक्तायुक्त हाथी अत्यन्त प्रधान होता है। गजमुक्ता वृत्ताकार, तनिक पीला तथा प्रभारहित होती है।।१-६।।

पाठीनपृष्ठस्य समानवर्णं मीनात् सुवृत्तं लघु चातिसूक्ष्मम्।
उत्पद्यते वारिचराननेषु मत्स्याश्च ते मध्यचराः पयोधेः॥७॥
वराहदंष्ट्राप्रभवं प्रदिष्टं तस्यैव दंष्ट्राङ्कुरतुल्यषर्णम्।
क्वचित् कथञ्चित् स भुवः प्रदेशे प्रजायते शूकरवद्विशिष्टः॥८॥
वर्षोपलानां समवर्णशोभं त्वक्सारपर्वप्रभवं प्रदिष्टम्।
ते वेणवो भव्यजनोपभोग्ये स्थाने प्ररोहन्ति न सार्वजन्ये॥९॥

मत्स्य मुक्तर पाठीन मछली के पीठ के रंग वाली, सुवृत, अत्यन्त सूक्ष्म तथा अत्यन्त छोटी होती है। जिन मत्स्य से मुक्ता उत्पन्न होती है, वे सागर मध्य में विचरण करती हैं। वराह दन्त से जो मुक्त उत्पन्न होती है, वह अत्यन्त प्रशस्त होता है, उसकी प्रभा वराह के नये उत्पन्न दांत के समान होती है। सभी समय तथा सभी देश के वराह से मुक्ता जन्म नहीं होता, अपितु कभी-कभी किसी देश के अति प्राचीन वराह में ही वराहमुक्ता की उत्पत्ति होती है। वंश पर्व (बांस के पर्व से) उत्पन्न मुक्ता वर्षा के ओले के समान वर्ण वाली तथा अत्यन्त शोभन होती है। यह महाजनगण ही भोग करें। यह स्थान विशेष में ही उत्पन्न होती है। सभी स्थान में नहीं होती।।७-९।।

भौजङ्गमं मीनविशुद्धवृत्तं संस्थानतोऽत्युज्ज्वलवर्णशोभनम्।
नितान्तधौतप्रविकल्पमाननिस्त्रिंशधारासमवर्णकान्ति॥१०॥

सर्पमुक्ता मत्स्यमुक्ता के समान विशुद्ध तथा वर्तुल होती है। यह स्थान विशेष में अति उज्ज्वल तथा शोभित होती है। यह तेज तलवार की धार के समान कान्ति वाली होती है।।१०।।

प्राप्यातिरत्नानि महाप्रभाणि राज्यं श्रियं वा महतीं दुरापाम्।
तेजोऽन्विताः पुण्यकृतो भवन्ति मुक्ताफलस्याहिशिरोभवस्य॥११॥
जिज्ञासया रत्नधनं विधिज्ञैः शुभे मुहूर्त्ते प्रयतैः प्रयत्नात्।
रक्षाविधानं सुमहाद्विधाय हर्म्योपरिष्ठं क्रियते यदा तत्॥१२॥
तदा महादुन्दुभिमन्द्रघोषैर्विद्युल्लताविस्फुरितान्तरालैः।
पयोधराक्रान्तिविलम्बिनम्रैर्घनैर्घनैराव्रियतेऽन्तरिक्षम्॥१३॥
न तं भुजङ्गा न तु यातुधाना न व्याधयो नाप्युपसर्गदोषाः।
हिंसन्ति यस्याहिशिरःसमुत्थं मुक्ताफलं तिष्ठति कोषमध्ये॥१४॥

सर्प शिरोजात मुक्ताधारी मानव महा प्रभाव वाले रत्न, राज्य तथा दुष्प्राप्य महासम्पत्ति को पाकर अत्यन्त प्रतापी तथा पुण्यात्मा हो जाता है। रत्न के गुणागुण जानने हेतु विशुद्ध पण्डित यत्नपूर्वक शुभ लग्न में उसे प्रासाद पर स्थापित करे तथा यह रत्नज्ञ पण्डित उसकी परीक्षा करे। इस प्रकार से सर्पमुक्ता प्रासाद के ऊपर रखने से आकाश में महादुन्दुभि वाद्य होने लगते हैं। बिजली चमकती है और प्रगाढ़ मेघजाल नभमण्डल में व्याप्त हो जाता है। जिसके खजाने में सर्पमुक्ता रहती है, सर्प अथवा राजा उसकी हिंसा नहीं कर पाते। उसका अनिष्ट नहीं कर सकते। राक्षस, उपसर्ग दोष तथा व्याधि उसका स्पर्श नहीं कर सकते।।११-१४।।

नाभ्येति मेघप्रभवं धरित्रीं वियद्गतं तद्विबुधा हरन्ति।
अर्चिःप्रभानावृतदिग्विभागमादित्यवद्दुःखविभाव्यबिम्बम्॥१५॥
तेजस्तिरस्कृत्य हुताशनेन्दुनक्षत्रताराप्रभवं समग्रम्।
दिवा यथा दीप्तिकरं तथैव तमोऽवगाढास्वपि तन्निशासु॥१६॥
विचित्ररत्नद्युतिचारुतोया चतुःसमुद्रा भवनाभिरामा।
मूल्यं न वा स्यादिति निश्चयो मे कृत्स्ना मही तस्य सुवर्णपूर्णा॥१७॥
हीनोऽपि यस्तल्लभते कदाचिद्विपाकयोगान्महतः शुभस्य।
सापत्न्यहीनां स महीं समग्रां भुनक्ति तत्तिष्ठति यावदेव॥१८॥

मेघ से उत्पन्न मुक्ता पृथिवी पर अलभ्य है। उसे उत्पन्न होते ही देवता आकाश से ही हर लेते हैं। उसकी प्रभा से दिशायें आलोकित हो जाती हैं। जो इसे धारण करता है, लोग उसकी ओर अत्यन्त कष्ट से देख पाते हैं। अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र तथा तारागण के आलोक को भी तिरोहित करके यह मणि प्रकाश करती है। जैसे दिन में इसका उज्ज्वल आलोक रहता है, मेघाच्छन्न अंधराकारवृत्त रात्रि में भी यही प्रकाश रहता है। जिसके गृह में यह विद्यमान रहती है, वह मनुष्य विचित्र रत्नशोभित सुवर्ण से परिपूर्ण चतुःसागर युक्त पृथिवी का अधिपति हो जाता है। यह दरिद्र मनुष्य को भी मिल जाये तब जब तक यह मणि उसके गृह में रहेगी, तब तक वह निष्कण्टक समस्त पृथिवी भोग कर सकेगा।।१५-१८।।

न केवलं तच्छुभकृन्नृपस्य भाग्यैः प्रजानामपि तस्य जन्म।
तद्योजनानां परितः सहस्रं सर्वाननर्थान् विमुखीकरोति॥१९॥
नक्षत्रमालेव दिवो विशीर्णा दन्तावली तस्य महासुरस्य।
विचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पयःसु पत्युः पयसां पपात॥२०॥

यह केवल राजा के ही लिये शुभ नहीं है, अपितु प्रजा भी सौभाग्य से राज्य में इस मणि का जन्म होता है। जहां यह मणि रहती है, उसके १०० योजन तक कोई अमंगल नहीं होता। बल नामक असुर की विशुद्ध वर्ण दन्तावलि स्वर्गभ्रष्ट नक्षत्रों के समान समुद्र के विचित्रवर्ण जल में गिरती है।।१९-२०।।

सम्पूर्णचन्द्रांशुकलापकान्तेर्मणिप्रवेकस्य महागुणस्य।
तच्छुक्तिमत्सु स्थितिमाप बीजमासन् पुराऽप्यन्यभवानि यानि॥२१॥

यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारुमुक्तामणिरत्नबीजम्।
तस्मिन्पयस्तोयधरावकीर्णं शुक्तौ स्थितं मौक्तिकतामवाप॥२२॥
सैंहलिकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रपर्णपारशवाः। कौबेरपाण्ड्यहाटकहेमका इत्याकरास्त्वष्टौ॥२३॥
शुक्त्युद्भवं नाति निकृष्टवर्णं प्रमाणसंस्थानगुणप्रभाभिः।
उत्पद्यते वर्द्धनपारसीकपाताललोकान्तरसिंहलेषु॥२४॥
चिन्त्या न तस्याकरजा विशेषा रूपे प्रमाणे च यतेत विद्वान्।
न च व्यवस्थास्ति गुणागुणेषु सर्वत्र सर्वाकृतयो भवन्ति॥२५॥

पूर्ण चन्द्र के किरणजाल के समान उज्ज्वल मणितुल्य प्रभावान् समुद्र जल में पहले जो सब मणि थी, वह तथा यह सभी सीपी से उत्पन्न मोती का कारण है। समुद्र के जिस जलभाग में मुक्तामणि रत्नादि की कारणीभूत बलासुर की दन्तावली पतित हो गयी है, उस भाग का जल सीपी में प्रवेश करके मुक्ताबीज हो जाता है। सिंहल, पाराक, सौराष्ट्र, ताम्रपर्णी, पारशव, कौवेर, पाण्ड्य, हाटक, छेमक (विराट), ये आठ देश मुक्ता के खान रूप हैं। इन सबके पास की नदी में भी मुक्ता का जन्म होता है। पुण्ड्रवर्द्धन, पारसीक, पाताल लोक तथा सिंहल में जो मुक्ता उत्पन्न होती है, वह प्रमाण, आकृति, गुण तथा प्रभाव में अन्य सीपी से उत्पन्न मुक्ता की तुलना में निकृष्ट नहीं होती। मुक्ता की उत्पत्ति के कारण हुये दोष-गुण का विचार न करे। केवल उसके रूप तथा प्रमाण के ही सम्बन्ध में विचार करना चाहिये।।२१-२५।।

एकस्य शुक्तिप्रभवस्य मुक्ताफलस्य शाणेन समुन्मितस्य।
मूल्यं सहस्राणि तु रूपकाणां त्रिभिः शतैरप्यधिकानि पञ्च॥२६॥
यन्माषकार्द्धेन ततो विहीनं तत्पञ्चभागद्वयहीनमूल्यम्।
यन्माषकास्त्रीन् बिभृयात्सहस्रे द्वे तस्य मूल्यं परमं प्रदिष्टम्॥२७॥
अर्द्धाधिकौ द्वौ वहतोऽस्य मूल्यं त्रिभिःशतैरप्यधिकं सहस्रम्।
द्विमाषकोन्मापितगौरवस्य शतानि चाष्टौ कथितानि मूल्यम्॥२८॥
अर्द्धाधिकं माषकमुन्मितस्य सपञ्चविंशत्त्रितयं शतानाम्।
गुञ्जाश्च षड् धारयतः शते द्वे मूल्यं परं तस्य वदन्ति तज्ज्ञाः।
अध्यर्द्धमुन्मापकृतं शतं स्यान्मूल्यं गुणैस्तस्य समन्वितस्य॥२९॥
यदि षोडशभिर्भवेदनूनं धरणं तत्प्रवदन्ति दार्विकाख्यम्।
अधिकं दशभिः शतञ्च मूल्यं समाप्नोत्यपि वालिशस्य हस्तात्॥३०॥

केवल उसके रूप तथा प्रमाण के सम्बन्ध में विचार करें, क्योंकि मुक्ता के दोष-गुण विचार की कोई स्थिर व्यवस्था नहीं है। इन सभी स्थान पर सभी प्रकार की मुक्ता जन्म लेती है। जिस मुक्ता का वजन आधा तोला है, उसका मूल्य १३०० मुद्रा। जिसका आधा तोला से आधा मास कम वजन है, वह ७८३ मुद्रा की होगी। जो तीन मासा वजन की है, उसका मूल्य होगा ३००० मुद्रा। जिसका परिमाण २.५ मासा है, उसका

मूल्य है १३०० मुद्रा + १२ मासा की मुक्ता का मूल्य है ८०० मुद्रा। आधा मास की मुक्ता उसका मूल्य २०० मुद्रा। जो तीन घुमची परिमाण में है, उसका मूल्य होगा १०० मुद्रा। जो उक्त परिमाण से १/१६ है, उसका मूल्य दार्विकाख्य कहा गया है। उसका मूल्य होगा १९० मुद्रा।।२६-३०।।

द्विगुणैर्दशभिर्भवेदनूनं धरणं तद्भवकं वदन्ति तज्ज्ञाः।
नवसप्ततिमाप्नुयात्स्वमूल्यं यदि न स्याद् गुणसम्पदा विहीनम्।।३१।।
त्रिंशता धरणं पूर्णं शिक्यन्तस्येति कीर्त्त्यते।
चत्वारिंशद्भवेत्तस्याः परो मूल्यो विनिश्चयः।।३२।।
चत्वारिंशद्भवेच्छिक्यो त्रिंशन्मूल्यं लभेत सा।
षष्टिर्निकरशीर्षं स्यात्तस्य मूल्यं चतुर्दश।।३३।।
अशीतिर्नवतिश्चैव कूप्येति परिकीर्त्तिता। एकादश स्यान्नव च तयोर्मूल्यमनुक्रमात्।।३४।।
आदाय तत्सकलमेव ततोऽन्नभाण्डं जम्बीरजातरसयोजनया विपक्वम्।
घृष्टं ततो मृदूतनूकृतपिण्डमूलैः कुर्य्याद्यथेष्टमनुमौक्तिमाशुविद्धम्।।३५।।
मृल्लिप्तमत्स्यपुटमध्यगतन्तु कृत्वा पश्चात्पचेत्तनु ततश्च वितानपत्या।
दुग्धे ततः पयसि तं विपचेत्सुधायां पक्वं ततोऽपि पयसा शुचिचिक्कणेन।।३६।।
शुद्धं ततो विमलवस्त्रनिघर्षणेन स्यान्मौक्तिकं विपुलसद्गुणकान्तियुक्तम्।
व्याडिर्जगाद जगतां हि महाप्रभावसिद्धो विदग्धहितत्परया दयालुः।।३७।।

जिस मुक्ता का परिमाण २० भाग का एक भाग है, उसे मवक कहते हैं। यदि वह गुणहीन न हो, तब उसका मूल्य ९७ मुद्रा होगा। जिसका परिमाण ३० भाग का एक भाग हो, उसे शिक्य कहते हैं। उसका मूल्य है ४० मुद्रा। जो मुक्ता ४०वां भाग ही है, उसे शिक्थ कहते हैं। उसका मूल्य है ३० मुद्रा। जो मुक्ता ६०वां भाग है, उसे निकरशीर्ष कहते हैं। उसका मूल्य है १४ मुद्रा। ८०वां भाग तथा ९०वां भाग वाली मुक्ता को कूप्य कहते हैं। उनका मूल्य ८०वां भाग का ११ मुद्रा तथा ९०वां भाग का ९ मुद्रा होगा। मुक्ता को विशुद्ध करने हेतु उसे अन्नपात्र में रखकर जम्बीरी नींबू के रस में पकाये। इसके पश्चात् भिलावा की जड़ से घिसने पर मुक्ता विशुद्ध उज्ज्वल हो जाती है।

इसके अनन्तर अपनी इच्छा से इसमें छिद्र करे। किसी मछली के पेट में मुक्ता रखकर मत्स्य पर मिट्टी लगाकर उसे दग्ध करे। इसके अनन्तर मुक्ता को बाहर करके दुग्ध-जल-सुरा में क्रमशः पकाये। तदनन्तर धोते ही वह चिकनी हो जाती है। तदनन्तर इसे साफ कपड़े से रगड़ने से वह उत्तम कान्तिमय हो जाती है। दयालु महापण्डित व्याड़ि ने मुक्ताशुद्धि की इस पद्धति को खोजा था।।३१-३७।।

श्वेतकाचसमं तारं हेमांशशतयोजितम्। रसमध्ये प्रधार्य्येत मौक्तिकं देहभूषणम्।
एवं हि सिंहले देशे कुर्वन्ति कुशला जनाः।।३८।।
यस्मिन्कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशां तद्वासयेज्जले।।३९।।

व्रीहिभिर्मर्दनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम्। यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम्॥४०॥

कांच की तरह श्वेत वर्ण तथा तारे के समान समुज्ज्वल मोती को सोने के साथ लगाकर रस में रखे। ऐसी मोती देह का आभूषण होती है। सिंहल देश के रत्न संस्कार में कुशल लोग इसी प्रकार से मुक्ता का व्यवहार करते हैं। यदि कोई मोती नकली लगे, तब उसे नमक मिले जल में एक रात्रि रखना होगा। तब धान्य से मलकर शुद्ध वस्त्र में लपेटे। ऐसा करने पर जो मुक्ता रंग नहीं खोती, वही शुद्ध है।।३८-४०।।

सितं प्रमाणवत् स्निग्धं गुरु स्वच्छं सुनिर्मलम्।
तेजोऽधिकं सुवृत्तञ्च मौक्तिकं गुणवत्स्मृतम्॥४१॥
प्रमाणवद्गौरवरश्मियुक्तं सितं सवृत्तं समसूक्ष्मवेधम्।
अक्रेतुरप्यावहति प्रमोदं यन्मौक्तिकं तद्गुणवत् प्रदिष्टम्॥४२॥
एवं समस्तेन गुणोदयेन यन्मौक्तिकं योगमुपागतं स्यात्।
न तस्य भर्त्तारमनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोषः॥४३॥

।।इति गारुडे महापुराणे मुक्ताफलपरीक्षा नाम ऊनसप्ततितमोऽध्यायः।।६९।।

जो श्वेतवर्ण, बृहद्, स्निग्ध, गुरु, निर्मल, अधिक उज्ज्वल, सुवृत्त है, वही गौरवान्वित होती है। जो मोती बड़ी, शुक्ल, चमकती, श्वेतवर्ण, सुवृत्त तथा समसूक्ष्म छिद्र वाली है तथा देखकर सभी के मन में आनन्द हो, वही प्रशस्त है। वह मुक्ता पूर्वोक्त समस्त गुणसम्पन्न है, जो अपने स्वामी पर किसी अनर्थकारी दोष का आक्रमण नहीं होने देती।।४१-४३।।

।।उनसप्तितम अध्याय समाप्त।।
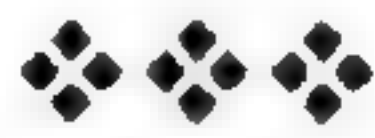
सप्ततितमोऽध्यायः

पद्मराग प्रसंग तथा पद्मराग रत्न परीक्षण वर्णन

सूत उवाच

दिवाकरस्तस्य महामहिम्नो महासुरस्योत्तमरत्नबीजम्।
असृग् गृहीत्वा चरितुं प्रतस्थे निस्त्रिंशनीलेन नभःस्थलेन॥१॥
जेत्रा सुराणां समरेष्वजस्रं वीर्य्यावलेलोद्धतमानसेन।
लङ्काधिपेनार्द्धपथे समेत्य स्वर्भानुनेव प्रसभं निरुद्धः॥२॥

तत्सिंहलीचारुनितम्बबिम्बविक्षोभितागाधमहाह्रदायाम्।
पूगद्रुमाबद्धतटद्वयायां मुमोच सूर्य्यः सरिदुत्तमायाम्॥३॥
ततःप्रभृति सा गङ्गा तुल्यपुण्यफलोदया। नाम्ना रावणगङ्गेति प्रथिमानमुपागता॥४॥

सूतजी ने कहा— महाबली पराक्रमी बलासुर का रक्त लेकर दिवाकर देव ने नीलवर्ण आकाश मण्डल की ओर गमन किया, जो महारत्न का कारण स्वरूप था। तभी सभी समर विजयी लंकापति रावण ने अपने बल के घमण्ड में सूर्य को उनके आधे मार्ग में रोक लिया। तभी सूर्यदेव ने सिंहलद्वीपस्थ किसी प्रसिद्ध नदी में उस बलासुर के रक्त को फेंक दिया। यह नदी अतीव मनोहर थी। उसका जल सदा सिंहली नारियों की जलक्रीड़ा के समय उनके विस्तृत नितम्बों के हिलने के कारण विक्षुब्ध हो रहा था तथा उसमें लहरें उठ रही थीं। उस नदी के दोनों किनारों पर सुपारी के वृक्षों की कतार शोभित थी। उसी दिन से यह नदी गंगा नदी की ही तरह पुण्य देने वाली रावणगंगा के नाम से विख्यात हो गयी॥१-४॥

ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैर्निचितानि तस्याः।
सुवर्णनाराचशतैरिवान्तर्बहिःप्रदीप्तैर्निशितानि भान्ति॥५॥
तस्यास्तटेषूज्ज्वलचारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्मरागाः।
सौगन्धिकोत्थाःकुरुविन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसंप्रसूताः॥६॥
बन्धूकगुञ्जासकलेन्द्रगोपजवासमासृक्समवर्णशोभाः।
भ्राजिष्णवो दाडिमबीजवर्णास्तथापरे किंशुकपुष्पभासः॥७॥
सिन्दूरपद्मोत्पलकुङ्कुमानां लाक्षारसस्यापि समानवर्णाः।
सान्द्रेऽपि रागे प्रभया स्वयैव भान्ति स्वलक्ष्याः स्फुटमध्यशोभाः॥८॥
भानोश्च भासामनुवेधयोगमासाद्य रश्मिप्रकरेण दूरम्।
पार्श्वानि सर्वाण्यनुरञ्जयन्ति गुणोपपन्नाः स्फटिकप्रसूताः॥९॥

उसी दिन से इस नदी के तट पर रत्नों का ढेर नदी की लहरों से होकर एकत्र होने लगा। यह समस्त रत्न के ढेर स्वर्णमय नाराच शस्त्र की तरह रात में चमकते रहते हैं। इस नदी के जल से पद्मराग, सौगन्धिक, कुरुविन्द, स्फटिक आदि उत्पन्न होने लगे। इन रत्नों की उत्तम प्रभा से नदी के दोनों किनारे सदा उद्भासित होते रहते थे। पद्मराग मणि नाना प्रकार की थी। उसमें कुछ बन्धूक पुष्प के वर्ण की थीं। कुछ घुमची के वर्ण की, अन्य जवाकुसुम की कान्ति वाली थी। कुछ रक्तवर्ण थी। कुछ अनार के दानों की आभा वाली थीं। अन्य पद्मराग मणियां पलाश के पुष्प के समान कान्ति वाली थीं। सभी पद्मराग मणियां अत्यन्त उज्ज्वल वर्ण, सिंदूर, कमल, कुंकुम तथा लाक्षारस जैसी थीं। पद्मराग मणियों का वर्ण घनीभूत हो रहा था। गुणयुक्त स्फटिक मणियां सूर्यकिरण से उज्वलित होकर अपनी किरणों से अगल-बगल के सभी पदार्थों तथा द्रव्यों को प्रकाशित कर रही थीं॥५-९॥

कुसुम्भनीलव्यतिमिश्ररागप्रत्युग्ररक्ताम्बुजतुल्यभासः।
तथापरेऽरुष्करकण्टकारीपुष्पत्विषो हिङ्गुलवत्त्विषोऽन्ये॥१०॥

कोई पद्मराग मणि कुसुम्भ पुष्प, रक्तनील वर्णाभ थी। कतिपय पद्मराग मणियां रक्तवर्ण पद्म के समान आभा वाली थीं। अन्य पद्मराग मणियां भल्लातक एवं कण्टकारी के पुष्पों के रंग वाली तथा कुछ हिंगुल के समान सुशोभित हो रही थीं॥१०॥

चकोरपुंस्कोकिलसारसानां नेत्रावभासश्च भवन्ति केचित्।
अन्ये पुनः सन्ति पुष्पितानां तुल्यत्विषः कोकनदोत्तमानाम्॥११॥
प्रभावकाठिन्यगुरुत्वयोगैः प्रायः समानाः स्फटिकोद्भवानाम्।
आनीलरक्तोत्पलचारुभासः सौगन्धिकोत्था मणयो भवन्ति॥१२॥
कामं तु रागः कुरुविन्दजेषु स नैव यादृक्स्फटिकोद्भवेषु।
निरर्चिषोऽन्तर्बहला भवन्ति प्रभाववन्तोऽपि न तैः समस्तैः॥१३॥
ये तु रावणगङ्गायां जायन्ते कुरुविन्दकाः।
पद्मरागघनं रागं बिभ्राणाः स्फटिकार्चिषः॥१४॥

कोई पद्मराग मणि कपोत, कोकिल तथा सारस के नेत्रों के रंग वाली थी। कतिपय पद्मराग कोकनद जैसी कान्तियुक्त थी। स्फटिक मणियां अपने असर, कठिनता तथा भारीपन में अन्य मणियों के तुल्य ही होती हैं। जैसी प्रभा स्फटिक मणियों में होती है, वैसी कुरुविन्द श्रेणी वाली मणियों में नहीं होती। कोई कुरुविन्द मणि अधिक प्रभावान् होती अवश्य है, तथापि उसकी तुलना स्फटिक की प्रभा से नहीं कर सकते। रावणगंगा में जो कुरुविन्द मणियां उत्पन्न होती हैं, वे भी पद्मराग जैसी उज्ज्वला हो जाती हैं॥११-१४॥

वर्णानुयायिनस्तेषामन्ध्रदेशे तथा परे। न जायन्ते हि ये केचिन्मूल्यलेशमवाप्नुयुः॥१५॥
तथैव स्फाटिकोत्थानां देशे तुम्बुरुसंज्ञके।
सधर्माणः प्रजायन्ते स्वल्पमूल्या हि ते स्मृताः॥१६॥
वर्णाधिक्यं गुरुत्वञ्च स्निग्धता समताच्छता।
अर्चिष्मत्ता महत्ता च मणीनां गुणसंग्रहः॥१७॥
ये कर्करच्छिद्रमलोपदिग्धाः प्रभाविमुक्ताः परुषा विवर्णाः।
न ते प्रशस्ता मणयो भवन्ति समानतो जातिगुणैः समस्तैः॥१८॥
दोषोपसृष्टं मणिमप्रबोधाद् बिभर्ति यः कश्चन कश्चिदेव।
तं शोकचिन्तामयमृत्युवित्तनाशादयो दोषगणा हरन्ति॥१९॥
कामं चारुतराः पञ्च जातीनां प्रतिरूपकाः।
विजातयः प्रयत्नेन विद्वांस्तानुपलक्षयेत्॥२०॥

अंगदेशोत्पन्न मणियों में से अपने रंग के मुताबिक किसी मणि के मूल्य का तारतम्य नहीं होता। गुणों के अनुसार ही मूल्य का तारतम्य जाना जाता है। तुम्बुरु देशोत्पन्न जो स्फटिक मणि है, वह प्रायः

स्फटिक के धर्मानुसार लगती है। ये अल्पमूल्य होती हैं। वर्ण की अधिकता, गुरुत्व, स्निग्ध गुण, समान वर्तुलाकृति, अंदर की निर्मलता, तेज तथा महत्ता ही मणि का गुण होता है। ऐसी गुणयुक्त मणियां ही जनमानस द्वारा आदर योग्य मानी जाती हैं। एक ही जाति की कई मणियां यद्यपि एक जैसी गुणयुक्त ही होती हैं, तथापि छिद्र होने, उज्ज्वलता रहित होने, मसृण न होने अथवा विवर्ण होने के कारण सभी उत्तम नहीं होतीं। अज्ञानतः दोषयुक्त मणि धारण करना शोक, चित्त चंचलता, रोग, मृत्यु, धननाश आदि विपत्ति का कारण हो जाता है। मणियां दस तरह की कही जाती हैं। ५ जाति उत्तम तथा ५ जाति अधम होती हैं। मणिशास्त्रज्ञ इनकी उचित परीक्षा करें॥१५-२०॥

कलसपुरोद्भवसिंहलतुम्बुरुदेशोत्थमुक्तपाणीयाः ।
श्रीपूर्णकाश्च सदृशा विजातयः पद्मरागाणाम्॥२१॥
तुषोपसर्गात्कलसाभिधानमाताम्रभावादपि तुम्बुरुत्थम्।
कार्ष्ण्यायात्तता सिंहलदेशजातं मुक्ताभिधानं नभसः स्वभावात्॥२२॥
श्रीपूर्णकं दीप्तिविनाकृतत्वाद् विजातिलिङ्गाश्रय एव भेदः।
यस्ताम्रिकां पुष्यति पद्मरागो योगात्तुषाणामिव पूर्णमध्यः॥२३॥

कलसपुर से प्राप्त, सिंहल, मरुदेश, मुक्तपानीय से प्राप्त तथा श्रीपूर्वक पद्मराग मणियां विजातीय कही गयी हैं। कलसपुर में उत्पन्न पद्मराग, तुषवत्, तुम्बुरदेशज पद्मराग तनिक ताम्र वर्ण वाला, सिंहलदेशज तनिक कृष्णता लिये हुये। मुक्तपानीय नीलिमा दोषान्वित तथा श्रीपूर्वक पद्मराग मणि दीप्तिहीनता वाली होती हैं। अतः ये पांचों निकृष्ट कही गयी हैं। केवल इन दोषों के कारण इनको विजातीय भावयुक्त कहते हैं। जो पद्मराग मणि कमल के साथ रखने पर ताम्रवर्ण प्रतीत हो, वह मणि पूर्णमध्य है॥२१-२३॥

स्नेहप्रदिग्धः प्रतिभाति यश्च यो वा प्रघृष्टः प्रजहाति दीप्तिम्।
आक्रान्तमूर्द्धा च तथाङ्गुलिभ्यां यः कालिकां पार्श्वगतां बिभर्ति॥२४॥
संप्राप्य चोत्क्षिप्य यथानुवृत्तिं बिभर्त्ति यः सर्वगुणानतीव।
तुल्यप्रमाणस्य च तुल्यजातेर्यो वा गुरुत्वेन भवेत्तु तुल्यः।
प्राप्यापि रत्नाकरजां स्वजातिं लक्षेद्गुरुत्वेन गुणेन विद्वान्॥२५॥

तैलादि चिकने द्रव्य से मार्ज़ित जो मणि प्रदीप्त हो, तथापि छूये जाने पर प्रभारहित हो जाये अथवा ऊर्ध्व तथा अधः भाग को अंगुलि से पकड़े जाने पर जिसका पार्श्व कृष्णवर्ण लगे, जो मणि मिलते ही ऊपर उछालने पर सर्ववर्णात्मक लगे, जो मणि एकजातीय, तुलापरिमाण तथा गुरुत्व में समान है, विद्वान् लोग उसकी बनावट तथा अन्य दोष-गुण का विचार करके परीक्षा करें॥२४-२५॥

अप्रणश्यति सन्देहे शाणे तु परिलेखयेत्। स्वजातकसमुत्थेन लिखित्वापि परस्परम्॥२६॥
वज्रं वा कुरुविन्दं वा विमुच्यानेन केनचित्। नाशक्यं लेखनं कर्तुं पद्मरागेन्द्रनीलयोः॥२७॥
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग् विजातयःसन्ति समानवर्णाः।
तथापि नामाकरणार्थमेव भेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः॥२८॥

गुणोपपन्नेन सहावबद्धो मणिर्न धार्य्यो विगुणो हि जात्यः।
न कौस्तुभेनापि सहावबद्धं विद्वान् विजातिं बिभृयात्कदाचित्॥२९॥
चण्डाल एकोऽपि यथा द्विजातीन्समेत्य भूरीनपि हन्त्ययत्नात्।
अथो मणीन्भूरिगुणोपपन्नान्शक्नोति विप्लावयितुं विजात्यः॥३०॥

यदि तब भी मणि के प्रति सन्देह दूर न हो सके, तब उसी प्रकार की अन्य मणि लाकर दोनों मणियों को घिसे। वज्र अथवा कुरुविन्द मणियों पर अन्य मणियों द्वारा रेखा खींची जा सकती है, तथापि पद्मराग एवं नीलमणि पर मणि द्वारा नहीं लिखा जा सकता (अर्थात् निशान नहीं लगाया जा सकता)। एक जाति वाली सभी मणियां परस्परतः समान एक जैसी होती हैं, तथापि अलग-अलग नाम रखने के लिये उनका प्रकारभेद किया गया है। गुणयुक्त मणि के साथ गुणहीन एवं विजातीय मणि धारण न करे। क्या कोई विद्वान् व्यक्ति कौस्तुभ मणिराज के साथ अन्य विजातीय गुणरहित मणि धारण करना उचित समझेगा? जैसे एक चाण्डाल के संसर्ग से, साथ से, अनेक ब्राह्मण पतित हो जाते हैं, एक विजातीय गुणरहित मणि धारण करने से अनेक गुणयुक्त मणियों के श्रेष्ठत्व का नाश हो जाता है॥२६-३०॥

सपत्नमध्येऽपि कृताधिवासं प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम्।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्त्तारमापत्स्पृशतीह काचित्॥३१॥
दोषोपसर्गप्रभवाश्च ये ते नोपद्रवास्तं समभिद्रवन्ति।
गुणैः समुत्तेजितचारुरागं यः पद्मरागं प्रयतो बिभर्त्ति॥३२॥
वज्रस्य यत्तण्डुलसंख्ययोक्तं मूल्यं समुत्पादितगौरवस्य।
तत्पद्मरागस्य महागुणस्य तन्माषकस्याकलितस्य मूल्यम्॥३३॥
वर्णदीप्त्युपपन्नं हि मणिरत्नं प्रशस्यते। ताभ्यामीषदपि भ्रष्टं मणिर्मूल्यात्प्रहीयते॥३४॥

॥इति गारुडे महापुराणे पद्मरागपरीक्षा नाम सप्ततितमोऽध्यायः॥७०॥

पद्मराग मणि धारण करने वाला व्यक्ति यदि अनेक शत्रुओं के साथ भी रहे अथवा किसी संकट से घिर जाये, तथापि कोई विपदा उसका स्पर्श नहीं कर सकती। जो मानव सुलक्षणयुक्त उज्ज्वल पद्मराग मणि यत्नतः पहनता है, उसका स्पर्श कोई दोष तथा उपसर्ग उपद्रव नहीं कर सकते। उसे बाधा नहीं दे सकते। चावल से तौल कर जिस प्रकार भार के अनुसार हीरे का परिमाण निर्णीत करते हैं, उसी तरह पद्मराग मणि के वजन के अनुसार उसके मूल्य का निर्धारण किया जाये। जो मणि तथा रत्न उत्तम रंग वाले तथा अत्यन्त उज्ज्वल होते हैं तथा उत्तम चमक वाले होते हैं, वे ही श्रेष्ठ कहे जाते हैं। वर्ण तथा उज्ज्वलता की कमी होने पर उसी मात्रा में मूल्य भी कम होता है॥३१-३४॥

॥सत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकसप्ततितमोऽध्यायः

मरकतमणि परीक्षा

सूत उवाच

दानवाधिपतेः पित्तमादाय भुजगाधिपः। द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ॥१॥
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ। राजतः स महानेकः खण्डसेतुरिवाबभौ॥२॥
ततः पक्षनिपातेन संहरन्निव रोदसी। गरुत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्त्तुमुपचक्रमे॥३॥

सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाद्युक्ततुरस्कपादपायाम्।
नलिकावनगन्धवासितायां वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम्॥४॥
तस्य प्रपातसमनन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे।
स्थानं क्षितेरुपपयोनिधितीरलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरतां जगाम्॥५॥

तत्रैव किञ्चित्पततस्तु पित्तादुपेत्य जग्राह ततो गरुत्मान्।
मूर्च्छापरीतः सहसैव घोणारन्ध्रद्वयेन प्रमुमोच सर्वम्॥६॥

सूतजी ने कहा—नागराज वासुकि ने दानवराज बलासुर का पित्त लेकर शीघ्रता से आकाश में जाकर उसका दो भाग करके प्रस्थान किया। जाते समय उनके शिर की मणि की प्रभा से आकाश में मानों एक प्रभा का रजत जैसा सेतु सा परिलक्षित होने लगा। तभी पक्षीराज गरुड़ पंख फैला कर स्वर्ग एवं मर्त्यलोक का मार्ग रोक कर नागराज की गति को रोकते हुये उनसे उस पित्त का हरण करने का प्रयास करने लगे। तब पक्षिराज के आक्रमण से भौचक्के होकर नागराज वासुकि ने बलासुर के पित्त को तत्काल त्याग दिया। वह रसाल शिलावर पादपों पर तथा गन्धद्रव्य नालिका की सुगन्ध से भरे वनों वाले माणिक्य पर्वत की उपत्यका पर जा गिरा। वहां गिरते ही वह पित्त उस स्थान को छोड़ कर समुद्र में लक्ष्मी देवी के पास जा पहुंचा। तभी से सागर मरकत मणि का खान हो गया। नागराज वासुकि ने जब पित्त को त्यागा था, उस पित्त के तनिक भाग को पक्षीराज गरुड़ ने खा लिया। उसके प्रभाव से पक्षीराज मूर्च्छित होकर गिर पड़े तथा वह पित्त उनकी नाकों से चू कर भूमि पर जा पड़ा॥१-६॥

तत्राकठोरशुककण्ठशिरीषपुष्पखद्योतपृष्ठचरशाद्वलशैवलानाम् ।
कह्लारशष्पकभुजङ्गभुजाञ्च पत्रप्राप्तत्विषो मरकताः शुभदा भवन्ति॥७॥

तद्यत्र भोगीन्द्रभुजाभियुक्तं पपात पित्तं दितिजाधिपस्य।
तस्याकरस्यातितरां स देशो दुःखोपलभ्यश्च गुणैश्च युक्तः॥८॥

तस्मिन्मरकतस्थाने यत्किञ्चिदुपजायते। तत्सर्वं विषरोगाणां प्रशमाय प्रकीर्त्त्यते॥९॥
सर्वमन्त्रौषधिगणैर्यन्न शक्यं चिकित्सितुम्। महाहिदंष्ट्राप्रभवं विषं तत् तेन शाम्यति॥१०॥

पूर्ण युवावस्था वाले शुक पक्षी का कण्ठ, शिरीष पुष्प, जुगनू कीड़े की पीठ, तृण-खेत, शाद्वल

शैवाल, कल्हार, नयी घास, भुजंगम पर जो वर्ण परिलक्षित होता है, मरकतमणि में वे सभी वर्ण हैं। अत: यह मणि शुभफलप्रद है। नागसर्प भोजी गरुड़ ने जहां दैत्यपति बलासुर का पित्त उगला था, वहीं-वहीं मरकत मणि उत्पन्न होने लगी। वे सभी देश सर्वगुणसम्पन्न हो गये, तथापि वहां जहां मरकतमणि की खान है, वह अतीव दुर्लभ है। उन खानों पर जो वनस्पति उगती है, वह सभी द्रव्य विषरोग की महान् औषधियां भी हैं। उनका सेवन करने से विषपीड़ा का शमन होता है। महासर्प के डसने के पश्चात् मरकतमणि की खानों पर उगी वनस्पति के सेवन से विषजनित महारोग शान्त हो जाता है॥७-१०॥

अन्यदप्याकरे तत्र यद्दोषैरुपवर्जितम्। जायते ततपवित्राणामुत्तमं परिकीर्त्तितम्॥११॥

अत्यन्तहरितवर्णं कोमलमर्चिर्विभेदजटिलञ्च।
काञ्चनचूर्णस्यान्तः पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च॥१२॥

युक्तं संस्थानगुणैः समरागं गौरवेण। सवितुः करसंस्पर्शाच्छुरयति सर्वाश्रमं दीप्तया॥१३॥

हित्वा च हरितभावं यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्तिः।
अचिरप्रभाप्रभाहतशाद्वलसमन्विता भाति॥१४॥
यच्च मनसः प्रसादं विदधाति निरीक्षितमतिमात्रम्।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदां मनोवृत्तिः॥१५॥

इन खानों पर जो सब द्रव्य पैदा होते हैं, वे सभी पावन हैं। उनके छूने मात्र से देह शुद्ध हो जाती है। मरकत मणि हरे रंग की कोमल होती है। इसकी उज्ज्वल चमक वक्ररेखीय होती है। उसके भीतर लगता है मानों स्वर्णचूर्ण भरा हो। उत्तम मणि सुगठित, सभी गुणों से सम्पन्न, सभी ओर एक तरह की चमक वाली, लघु (हल्की) तथा सूर्य किरण पड़ने पर वह स्थान आलोकित करती है। यह तब तृणपूर्ण क्षेत्र की आभा तिरोहित करके अपनी कान्ति के कारण दीप्तिमान् हो उठती हैं। इस मरकत मणि के दर्शन से सभी के मन में उसी समय प्रसन्नता का संचार होने लगता है। ऐसी मणि को रत्नपारखी लोग सर्वगुणयुक्त कहते हैं॥११-१५॥

वर्णस्यातिबहुलत्वाद्यस्यान्तः स्वच्छकिरणपरिधानम्।
सान्द्रस्निग्धविशुद्धं कोमलबर्हिप्रभादिसमकान्ति॥१६॥
वर्णोज्ज्वलया कान्त्या सान्द्राकारो विभासया भाति।
तदपि न गुणवत् संज्ञामाप्नोति यादृशीं पूर्वकम्॥१७॥
शबलकठोरमलिनं रूक्षं पाषाणकर्करोपेतम्।
दिग्धञ्च शिलाजतुना मरकतमेवंविधं विगुणम्॥१८॥

यत्सन्धिशेषितं रत्नमन्यं मरकताद्भवेत्। श्रेयस्कामैर्न तद्धार्य्यं क्रेतव्यं वा कथञ्चन॥१९॥

भल्लातकीपुत्रिका च तद्वर्णसमयोगतः। मणेर्मरकतस्यैते लक्षणीया विजातयः॥२०॥

जिस मरकत मणि को देखने से ही मन में हर्ष हो, उसे रत्नपारखी सर्वगुणयुक्त कहते हैं। वर्ण

की प्रगाढ़ता के कारण जिस मरकतमणि से निर्मल किरणें निकलती हैं, उसकी कान्ति घनीभूत, स्निग्ध, विशुद्ध तथा कोमल बहिप्रभा युक्त हो, उसे उत्तम मरकत मणि कहेंगे। जो चितकबरी, अमसृण, मलिन, सूखी, पत्थर तथा कर्कर (भाई का) युक्त हो अथवा शिलाजीत जैसी हो, वह उत्तम नहीं होती, वह गुणहीन होती है। मरकतमणि के सन्धि स्थान के अन्त में उसमें कोई अन्य रत्न प्राकृतिक रूप से जुड़ा लगे, तब ऐसी मणि खरीदना तथा धारण करना उचित नहीं है। इस मणि को धारण करना, विक्रय करना अमंगल जनक होगा। यदि मरकतमणि भल्लातक फल के समान आभा वाली दृष्ट होती है, तब उस मणि को विजातीय लक्षण वाली माना जाता है॥१६-२०॥

क्षौमेण वाससा मृष्टा दीप्तिं त्यजति पुत्रिका।
लाघवेनैव काचस्य शक्या कर्त्तुं विभावना॥२१॥
कस्यचिदनेकरूपैर्मरकतमनुगच्छतोऽपि गुणवर्णैः।
भल्लातकस्यानिलैर्वैषम्यमुपैति वर्णस्य॥२२॥
वज्राणि मुक्ताः सन्त्यन्ये ये च केचिद्विजातयः।
तेषां नाप्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी॥२३॥
ऋजुत्वाच्चैव केषाञ्चित् कथञ्चिदुपजायते।
तिर्य्यगालोच्यमानानां सद्यश्चैव प्रणश्यति॥२४॥

यदि किसी रेशमी कपड़े से पोंछने पर मणि की चमक कम हो जाये, तब कांच के पात्र में उस मणि का प्रतिबिम्ब गिराने पर उसका मूल्य निरूपित करें। कोई-कोई मरकत मणि प्रायः गुणवर्ण में एक ही प्रकार की दृष्ट होती है। इसलिये यहां जो तरीका कहा गया है, उसी से उसकी परीक्षा करें। कृत्रिम मणि पर भल्लातक पत्र की भाप देने पर उसमें वर्ण की विषमता हो जाती है। अनेक हीरा मणि तथा मुक्ता हैं, ये सब मणि यदि कोई आच्छादन से अच्छादित न होंगी (अर्थात् उन पर यदि कोई कृत्रिम रंग नहीं चढ़ा होगा तब) असली मणि की प्रभा और भी बढ़ जाती है। प्रायः सभी मणियों की दीप्ति सरल भाव से तथा किसी मणि की किरणें वक्र भाव से निर्गत होती हैं। जिन मणियों की दीप्ति टेढ़ी निकलती है, उनका तेज दीर्घकाल तक नहीं रहता। वह शीघ्रता से नष्ट हो जाता है॥२१-२४॥

स्नानाचमनजप्येषु रक्षामन्त्रक्रियाविधौ। ददद्भिर्गोहिरण्यानि कुर्वद्भिः साधनानि च॥२५॥
दैवपैत्रातिथेयेषु गुरुसंपूजनेषु च। बाध्यमानेषु विविधैर्दोषजातैर्विषोद्भवैः॥२६॥
दोषैर्हीनं गुणैर्युक्तं काञ्चनप्रतियोजितम्। संग्रामे विचरद्भिश्च धार्य्यं मरकतं बुधैः॥२७॥
तुलया पद्मरागस्य यन्मूल्यमुपजायते। लभतेऽत्यधिकं तस्माद्गुणैर्मरकतं युतम्॥२८॥
तथा च पद्मरागाणां दोषैर्मूल्यं प्रहीयते। ततोऽस्याप्यधिका हानिर्दोषैर्मरकते भवेत्॥२९॥

॥इति गारुडे महापुराणे मरकतपरीक्षा नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

स्नान, आचमन, जप तथा रक्षामन्त्र पाठ आदि कार्य को समाप्त करके गौ, हिरण्य आदि दान देकर अन्य कार्य का समापन करके देवकार्य, पितृतर्पण, अतिथि सेवा, गुरुपूजा करके निर्दोष तथा गुणयुक्त मरकतमणि सुवर्ण में जड़ कर धारण करनी चाहिये। इसके धारण के फलस्वरूप विष पीड़ा आदि उपद्रव दूर हो जाते हैं तथा संग्राम में विजय होती है। जितने वजन की मणि का जितना मूल्य होता है, उसकी तुलना में गुणयुक्त मणि का मूल्य अधिक होगा। जिस प्रकार से पद्मराग मणि में यदि कोई दोष होने पर उसका मूल्य कम हो जाता है, दोषयुक्त मरकत मणि की कीमत उससे कहीं अधिक कम होगी।।२५-२९।।

।।एकहत्तरवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रनील परीक्षा (रत्न परीक्षण प्रसंग)

सूत उवाच

तत्रैव सिंहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबाललवलीकुसुमप्रबाले।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्तं प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति नेत्रयुग्मम्।।१।।
तत्प्रत्ययादुभयशोभनवीचिभासा विस्तारिणी जलनिधेरुपकच्छभूमिः।
प्रोद्भिन्नकेतकबलप्रतिबद्धलेखा सान्द्रेन्द्रनीलमणिरत्नवती विभाति।।२।।
तत्रासिताब्जहलभृङ्गसमानि भृङ्गशार्ङ्गायुधाङ्गहरकण्ठकषायपुष्पैः।
शुभ्रेतरैश्च कुसुमैर्गिरिकर्णिकायास्तस्माद्भवन्ति मणयः सदृशावभासः।।३।।
अन्ये प्रसन्नपयसः पयसां निधातुरम्बुत्विषः शिखिगणप्रतिमास्तथान्ये।
नीलीरसप्रभवबुद्बुदभाश्च केचित्केचित्तथा समदकोकिलकण्ठभासः।।४।।

सूतजी ने कहा—जब सिंहल की स्त्रियां अपने हाथ से लवलीपुष्प-पल्लव तोड़ रही थीं, तभी उनके सामने प्रफुल्ल कमल कान्ति वाले बलासुर के दोनों नेत्र गिरे। समुद्र के तट पर वे नेत्र गिर गये थे। उनकी विशद प्रभा उन तरंगों से सुशोभित सागर तट भूमि बलासुर के नेत्र गिरने के कारण इन्द्रनीलमणि की खान होकर अत्यधिक समुज्ज्वल हो गयी। वहां नीलपद्म, भृंग, हरकण्ठ तथा अपराजित पुष्प जैसी चमक वाली इन्द्रनीलमणि पैदा हो गयी। वहां अनेक प्रकार की इन्द्रनीलमणि उत्पन्न हो गयी। उन मणियों में से बहुत सी मणियां सागर जल जैसी थीं। कुछ मयूर के गले के समान शोभा वाली थीं। अन्य अनेक मणियां नीलीरस के बुदबुद की आभा के समान थीं। कतिपय कोकिल के कण्ठ के समान भी थीं।।१-४।।

एकप्रकारा विस्पष्टवर्णशोभावभासिनः। जायन्ते मणयस्तस्मिन्निन्द्रनीला महागुणाः।।५।।

मृत्पाषाणशिलारन्ध्रकर्करात्राससंयुताः। अभ्रिकापटलच्छायावर्णदोषैश्च दूषिताः॥६॥
तत एव हि जायन्ते मणयस्तत्र भूरयः। शास्त्रसम्बोधितधियस्तान्प्रशंसन्ति सूरयः॥७॥
धार्य्यमाणस्य ये दृष्टाः पद्मरागमणेर्गुणाः। धारणादिन्द्रनीलस्य तानेवाप्नोति मानवः॥८॥

वे सभी इन्द्रनील मणियां विस्पष्ट वर्ण वाली, उत्तम शोभा वाली, समान आकार वाली तथा महागुणयुक्त थीं। जो सभी मणियां मृत्तिका तथा पाषाणयुक्त शिराओं वाली, रन्ध्र वाली तथा कर्करान्वित एवं मेघमाला के समान प्रभा वाली होती हैं, वे दूषित होती हैं। यहां से जितनी इन्द्रनील मणियां पैदा होने लगीं, रत्नपारखी लोग उन मणियों की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं। जो गुण पद्मराग मणियों का कहा जाता है, वही गुण इन्द्रनील मणि धारण करने वाले को मिलता है॥५-८॥

यथा च पद्मरागाणां जातकत्रितयं भवेत्। इन्द्रनीलेष्वपि तथा द्रष्टव्यमविशेषतः॥९॥
परीक्षा प्रत्ययैर्यैश्च पद्मरागः परीक्ष्यते। तत्रैव प्रत्यया दृष्टा इन्द्रनीलमणेरपि॥१०॥

जिस प्रकार से पद्मराग मणियों की तीन जातियां होती हैं, इन्द्रनील मणियों की भी उतनी अनेक जातियां होती हैं। जिन-जिन उपाय से लोग पद्मराग की जांच करते हैं, इस इन्द्रनील की भी परीक्षा उसी प्रकार से करे॥९-१०॥

यावन्तं चंक्रमेदग्नि पद्मरागोपयोगतः। इन्द्रनीलमणिस्तस्मात्क्रमेत् सुमहत्तरम्॥११॥
तथापि न परीक्षार्थं गुणानामभिवृद्धये। मणिरग्नौ समाधेयः कथञ्चिदपि कश्चन॥१२॥
अग्निमात्रापरिज्ञाने दाहदोषैश्च दूषितः। सोऽनर्थाय भवेद्धर्त्तुः कर्तुः कारयितुस्तथा॥१३॥

काचोत्पलकरवीरसस्फटिकाद्या इह बुधैः सवैदूर्य्याः।
कथिता विजातय इमे सदृशा मणिनेन्द्रनीलेन॥१४॥

गुरुभावकठिनभावेतेषां नित्यमेव विज्ञेयौ। काचाद्यथावदुत्तरविवर्द्धमानौ विशेषेण॥१५॥

इन्द्रनीलो यथा कश्चिद्बिभर्त्याताम्रवर्णताम्।
रक्षणीयौ यथा ताम्रौ करवीरोत्पलावुभौ॥१६॥

यस्य मध्यगता भाति नीलस्येन्द्रायुधप्रभा। तमिन्द्रनीलमित्याहुर्महार्हं भुवि दुर्लभम्॥१७॥

यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरे शतगुणे स्थितः।
नीलतां तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते॥१८॥

यत्पद्मरागस्य महागुणस्य मूल्यं भवेन्माषसमन्वितस्य।
तदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य वर्णस्य संख्याकुलितस्य मूल्यम्॥१९॥

॥इति गारुडे महापुराणे इन्द्रनीलपरीक्षा नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥७२॥

पद्मराग से जिस मात्रा में अग्नि का चक्रमण होता है, इन्द्रनील के उपयोग से उससे अधिक

अग्नि का चक्रमण होता है, लेकिन परीक्षणार्थ किंवा उनके गुण को देखने हेतु कभी भी किसी भी मणि को अग्नि में छोड़ना वर्जित है। यदि कोई मनुष्य बिना जाने-बूझे मणि को अग्नि में छोड़ता है, तब मणि के मालिक पर अनर्थ टूटता है। साथ ही जो व्यक्ति ऐसा करने की सलाह देता है, वह भी अमंगल का भाजन होता है। कांच, उत्पल, कनेर, स्फटिक, वैदूर्य भी यदि बहुत कुछ इन्द्रनील मणि से मिलते-जुलते हों, तदापि रत्नपारखी विद्वान् उनको विजातीय ही मानते हैं। मणियों के गुरुत्व तथा कठोरता की जांच अवश्य करनी चाहिये। सभी मणियां कांच की तुलना में अधिक उत्तम होती हैं। यदि कोई इन्द्रनील मणि अधिक ताम्रवर्ण हो, तब वह यत्नपूर्वक रखने लायक होती है। ताम्रवर्णी, कनेर तथा उत्पल वर्ण मणि का भी आदर करे। जिस इन्द्रनीलमणि में आयुधाकृति नीली रेखा दिखलाई देती है, वह महामूल्यवान् तथा पृथिवी पर दुर्लभ है। जो गाढ़े रंग की होती है, यदि उसे उस मणि से सौगुने दूध में रखा जाय, तब वह समस्त दूध नील वर्ण हो जायेगा। ऐसी मणि महानीलमणि कही जाती है। जिस प्रकार माषा आदि वजन द्वारा पद्मराग मणि के मूल्य को तय किया जाता है, तद्रूप माषा आदि परिमाण से इन्द्रनीलमणि का मूल्य तय करे॥११-१९॥

॥बहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
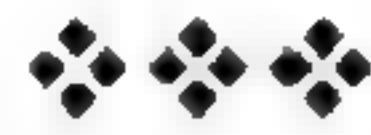
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

वैदूर्यमणि परीक्षण प्रसंग

सूत उवाच

वैदूर्य्यपुष्यरागाणां कर्केतनभीष्मकयोः। परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज॥१॥

कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्निर्ह्लादकल्पाद्दितिजस्य नादात्।
वैदूर्य्यमुत्पन्नमनेकवर्णं शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम्॥२॥

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्गरोधसः। कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरो भवेत्॥३॥

तस्य नादसमुत्थत्वादाकरः सुमहागुणः। अभूदुत्तरितो लोके लोकत्रयविभूषणः॥४॥

तस्यैव दानवपतेर्निनदानुरूपाः प्रावृट्पयोदवरदर्शितचारुरूपाः।
वैदूर्य्यरत्नमणयो विविधावभासस्तस्मात्स्फुलिङ्गनिवहा इव संबभूवुः॥५॥

पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ। सर्वांस्तान्वर्णशोभाभिर्वैदूर्य्यमनुगच्छति॥६॥

सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मणगण! व्यासजी से ब्रह्मा ने वैदूर्य तथा पुष्पराग मणियों के परीक्षण का जो प्रकरण कहा था, उसे कहता हूं। जब कल्प समाप्त होने पर सागर क्षुब्ध हो गया तथा जिस प्रकार का

गंभीर नाद करने लगा, दिति के पुत्र बलासुर ने जब प्राणत्याग किया था, तब भी वैसा ही महागर्जन सुना गया था। अत्यन्त शोभित, अत्यन्त प्रभावान्, विचित्र पोखराज मणि की उत्पत्ति इसी गर्जन से कही गयी है। अत्यन्त ऊंचे पर्वत शिखर वाले विदुर पर्वत के पास में ही कामभूतिक की सीमा के निकट वैदूर्य मणि की खान हो गई। बलासुर के मरण से उत्पन्न यह खान अत्यन्त गुणयुक्त तथा त्रैलोक्य के आभूषणस्वरूप हो गई। यह खान बलासुर की मृत्यु के समय उसके निनाद के कारण वर्षाकालीन जलराशि के समान सुन्दर, अग्नि की चिनगारी जैसी उज्ज्वलतम, विचित्रवर्ण वैदूर्य मणि पैदा होने लगी। पृथिवी पर जितनी पद्मराग प्रभृति रमणियों की स्थिति है, वैदूर्य मणि उन सभी मणियों की शोभा से बराबरी करती है॥१-६॥

तेषां प्रधानं शिखिकण्ठनीलं यद्वा भवेद् वेणुदलप्रकाशम्।
चाषाग्रपक्षप्रतिमश्रियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भिः॥७॥
गुणवान्वैदूर्य्यमणिर्योजयति स्वामिनं वरभाग्यैः। दोषैर्युक्तो दोषैस्तस्माद्यत्नात्परीक्षेत्॥८॥

उनमें से मयूर के कण्ठ के समान नीलवर्ण अथवा बांस के पत्ते के समान उज्ज्वल वैदूर्य मणि प्रधान है। जो वैदूर्यमणियां चाषा पक्षी के पंखों जैसे वर्ण वाली हैं, मणिरत्न के पारखी लोग ऐसी मणि को उत्तम नहीं मानते। जब वैदूर्य मणि गुणयुक्त होती है, तब उसको धारण करने अथवा रखने वाले के सौभाग्य में सदैव उन्नति होती रहती है। दोषी मणिधारी व्यक्ति का अथवा रखने वाले का अमंगल होता है। इसलिये इसे यत्नतः जांच लेना चाहिये॥७-८॥

गिरिकांचशिशुपालौ काचस्फटिकाश्च धूमनिर्भिन्नाः।
वैदूर्य्यमणेरेते विजातयः सन्निभाः सन्ति॥९॥
लिख्याभावात्काचं लघुभावाच्छैशुपालकं विद्यात्।
गिरिकाचमदीप्तित्वात्स्फटिकं वर्णोज्ज्वलत्वेन॥१०॥

गिरिकांच, शिशुपाल, कांच, स्फटिक ये सभी वैदूर्यमणि के विजातीय होते हैं। कांच पर लेखन (खरोंच) नहीं होती, शिशुपाल अत्यन्त हल्का होता है। गिरिकांच चमक रहित होता है, स्फटिक उज्ज्वल होता है। यह सब गुण देख कर इन चारों को पहचाने॥९-१०॥

यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य सुवर्णसंख्याकलितस्य मूल्यम्।
तदेव वैदूर्य्यमणेः प्रदिष्टं पलद्वयोन्मापितगौरवस्य॥११॥
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग्विजातयः सन्ति समानवर्णाः।
तथापि नामाकरणानुमेयभेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः॥१२॥
सुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्य्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण।
स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्वं विजातिलिङ्गं खलु सार्वजन्यम्॥१३॥
कुशलाकुशलैः प्रपूर्य्यमाणाः प्रतिबद्धाः प्रतिसत्क्रियाप्रयोगैः।
गुणदोषसमुद्भवं लभन्ते मणयोऽर्थान्तरमूल्यमेव भिन्नाः॥१४॥

क्रमशः समतीतवर्त्तमानाः प्रतिबद्धा मणिबन्धकेन यत्नात्।
यदि नाम भवन्ति दोषहीना मणयः षड्गुणमाप्नुवन्ति मूल्यम्॥१५॥
आकरान्समतीतानामुदधेस्तीरसन्निधौ। मूल्यमेतन्मणीनान्तु न सर्वत्र महीतले॥१६॥
सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्तः षोडशमाषकः। तस्य सप्ततमो भागः संज्ञारूपं करिष्यति॥१७॥
शाणश्चतुर्माषमानो माषकः पञ्चकृष्णलः। पलस्य दशमो भागो धारणः परिकीर्त्तितः॥१८॥
इति मणिविधिः प्रोक्तो रत्नानां मूल्यनिश्चये॥१९॥

।इति गारुडे महापुराणे वैदूर्य्यपरीक्षा नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

महागुणयुक्त इन्द्रनील मणि का मूल्य जैसे उसके वजन से निश्चित करते हैं, तदनुरूप दो मासा वजन की वैदूर्यमणि का वजन भी उसी प्रकार तय किया जाता है। एक ही जाति की तथा समान गुण वाली मणियां अपनी आकृति तथा वर्ण चमक आदि भेद से अनेक प्रकार की हो जाती हैं। उनके गुणों के अनुसार उनका मूल्य तय होता है। रत्नपारखी विद्वान् लोग बारीकी से निर्णय लेकर वैदूर्य मणियों की असलियत को तय करते हैं। विशेष परीक्षा से मणियों के गुण-दोष का विचार करके उनके मूल्य के तारतम्य को निश्चित करते हैं। रत्नपारखी लोगों को चाहिये कि वे कई दिन जांच कर वैदूर्य की परीक्षा करें। यदि मणि की पहले की हालत में तथा अब की हालत में कोई अलगाव नहीं प्रतीत होता, तब उसका छः गुना दाम होगा, लेकिन धरती पर सभी जगह इस नियम से वैदूर्य मूल्य का मान नहीं होता। खान में उत्पन्न वैदूर्य का जो मूल्य होता है, समुद्र में उत्पन्न वैदूर्य का भी वही मूल्य होता है। सोलह माषा का एक स्वर्ण होता है। उसके सप्तम भाग द्वारा वैदूर्य का परिमाण करे। चार मासा का एक शाण होता है। पांच मासा का एक कृष्णल होता है। एक पल भार के १/१० भाग का एक धरण होगा। मणि का भार जानने हेतु ऐसे कार्य करे॥११-१८॥

॥तिहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

पुष्पराग परीक्षण वर्णन

सूत उवाच

पतिताया हिमाद्रौ तु त्वचस्तस्य सुरद्विषः। प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणाः॥१॥
आपीतपाण्डुरुचिरः पाषाणः पद्मरागसंज्ञकः।
कौरुण्डकनामा स्यात्स एव यदि लोहितस्तु पीतः॥२॥

आलोहितस्तु पीतः स्वच्छः काषायकः स एवोक्तः।
आनीलशुक्लवर्णः स्निग्धः सोमानकः सगुणः॥३॥
अत्यन्तलोहितोः यः स एव खलु पद्मरागसंज्ञः स्यात्।
अपि चेन्द्रनीलसंज्ञः स एव कथितः सुनीलः सन्॥४॥
मूल्यं वैदूर्य्यमणेरिव गदितं ह्यस्य रत्नशास्त्रविदा।
धारणफलञ्च तद्वत्किन्तु स्त्रीणां सुतप्रदो भवति॥५॥

॥इति गारुडे महापुराणे पुष्परागपरीक्षा नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥

सूतजी ने कहा—बलासुर की जो त्वचा हिमालय पर गिरी थी, उससे महागुणवान् पुष्पराग मणि की उत्पत्ति कही गई है। इसकी अनेक जाति होती है। जो तनिक पीली मणि होती है, वही पुष्पराग है। यदि यह पीताभ-लोहित वर्ण हो, तब उसे कोरशुक कहते हैं। जो मणि पीत-लोहिताभ हो, स्वच्छ हो, उसे काषायक कहते हैं। नीलाभ शुक्लवर्ण को सोमानक मणि कहते हैं। जो अतिशय लोहितवर्ण हो, वह पद्मराग है। जो अति नीली हो, वह इन्द्रनील है। रत्नवेत्ता लोगों ने वैदूर्य के मूल्य का जो नियम तय किया है, उसी नियम से पुष्पराग मणि का भी मूल्य तय किया जाता है। वैदूर्य पहनने का जो फल होता है, वही पुष्पराग धारण का फल है। पुष्पराग पहनने वाली स्त्रियां पुत्र सन्तान पाती हैं॥१-५॥

॥चौहतरवां अध्याय समाप्त॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

कर्केतन मणि परीक्षा वर्णन

सूत उवाच

वायुर्नखान्दैत्यपतेर्गृहीत्वा चिक्षेप सत्पद्मवनेषु हृष्टः।
ततः प्रसूतं पवनोपपन्नं कर्केतनं पूज्यतमं पृथिव्याम्॥१॥
वर्णेन तद्रुधिरसोममधुप्रकाशमाताम्रपीतदहनोज्ज्वलितं विभाति।
नीलं पुनः खलु सितं परुषं विभिन्नं व्याध्यादिदोषकरणे न च तद्विभाति॥२॥
स्निग्धा विशुद्धाः समरागिणश्च आपीतवर्णा गुरवो विचित्राः।
त्रासव्रणव्यालविवर्जिताश्च कर्केतनास्ते परमं पवित्राः॥३॥

पात्रेण काञ्चनमयेन तु वेष्टयित्वा तप्तं यदा हुतवहैर्भवति प्रकाशम्।
रोगप्रणाशनकरं कलिनाशनं तदायुष्करं कुलकरञ्च सुखप्रदञ्च॥४॥

सूतजी ने कहा—दैत्यराज बलासुर के नखों को पवन ने उड़ा कर प्रसन्न मन से पद्मवन में फेंक दिया। इसलिये उस कमलवन में सर्वोत्तम कर्केतन मणि की उत्पत्ति हो गई। यह मणि अनेक वर्ण में है, जैसे—रक्तवर्ण, चन्द्रप्रभ, मधु के समान वर्ण, तनिक ताम्रवर्ण, पीतवर्ण, अग्नि के समान उज्ज्वल, नीलवर्ण, श्वेतवर्ण। यदि यह अतीव कठोर, चिटकी अथवा विद्ध हो, तब उसमें चमक नहीं होती। जो कर्केतन मणि स्निग्ध, निर्मल, समान वर्ण, तनिक पीत वर्ण, भारी तथा त्रास, व्रण, व्याल आदि मणियों के दोषों से रहित हो, उसे उत्तम तथा पावन कहा जाता है। इसे स्वर्णपात्र में वेष्ठित करके अग्नि में यदि तपाया जाये, तब कर्केतन मणि और उज्ज्वल हो जायेगी। इसे पहनने से रोग नष्ट होते हैं। इसके प्रभाव से कलिजनित दोष का शमन होकर आयु बढ़ती है। कुलरक्षा होती है तथा सभी तरह के सुख की वृद्धि होती है॥१-४॥

एवंविधं बहुगुणं मणिमावहन्ति कर्केतनं शुभमलङ्कृतये नरा ये।
ते पूजिता बहुधना बहुबान्धवाश्च नित्योज्ज्वलाः प्रमुदिता अपि ते भवन्ति॥५॥

ऐसी अनेक गुणों वाली कर्केतन मणि पहनने से जो स्वयं को सजाते हैं, वे भूतल पर सबसे सम्मानित प्रचुर धन-धान्य युक्त, अनेक बन्धु-बान्धव वाले, नित्य उत्सव, नृत्यगीत से युक्त होकर समय व्यतीत करते हैं॥५॥

एकेऽपनह्य विकृताकुलनीलभासः प्रम्लानरागलुलिताः कलुषा विरूपाः।
तेजोऽतिदीप्तिकुलपुष्टिविहीनवर्णाः कर्केतनस्य सदृशं वपुरुद्वहन्ति॥६॥
कर्केतनं यदि परीक्षितवर्णरूपं प्रत्यग्रभास्वरदिवाकरसुप्रकाशम्।
तस्योत्तमस्य मणिशास्त्रविदा महिम्ना तुल्यन्तु मूल्यमुदितं तुलितस्य कार्य्यम्॥७॥

॥इति गारुडे महापुराणे कर्केतनपरीक्षा नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥७५॥

अन्य और भी ऐसी मणियां हैं, जो देखने में कर्केतन जैसी लगती हैं, लेकिन वे उतनी चमक वाली नहीं होतीं। वे दीप्ति, तेज, जाति, पुष्टिरहित होती हैं। जांची गई उत्तम कर्केतन मणि मध्याह्न सूर्य के समान तेजयुक्त होती है। रत्नपारखी विद्वान् उत्तम कर्केतन मणि की महिमा जान कर विचार करके उनका मूल्य तय करें॥६-७॥

॥पचहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
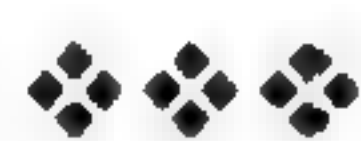
षट्सप्ततितमोऽध्यायः

भीष्मक परीक्षा प्रकरण

सूत उवाच

हिमवत्युत्तरे देशे वीर्य्यं पतितं सुरद्विषस्तस्य।
संप्राप्तमुत्तमानामाकरतां भीष्मरत्नानाम्॥१॥
शुक्लाः शङ्खाब्जनिभाः स्योनाकसन्निभाः प्रभावन्तः।
प्रभवन्ति ततस्तरुणा वज्रनिभा भीष्मपाषाणाः॥२॥
हेमादिप्रतिबद्धाः शुद्धमपि श्रद्धया विधत्ते यः।
भीष्ममणिं ग्रीवादिषु सम्पदं सर्वदा लभते॥३॥
निरीक्ष्य पलायन्ते ये तमरण्यनिवासिनः समीपेऽपि।
द्वीपिवृकशरभकुञ्जरसिंहव्याघ्रादयो हिंस्राः॥४॥

सूतजी ने कहा—देवशत्रु बलासुर का वीर्य हिमालय के उत्तर भाग में गिरा। वहां भीष्मक नामक महामणि की खान हो गई। इस खान में शंख तथा श्वेत कमल के समान श्वेतवर्ण तथा तरुण सूर्य के समान प्रभावशाली भीष्मकमणि उत्पन्न हो गई। जो व्यक्ति सश्रद्ध भाव से स्वर्ण से मढ़ कर पवित्र भीष्मक मणि गले में पहनता है, उसे सभी सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं। जो व्यक्ति इस भीष्मक मणि को धारण करता है, उसे सभी प्रकार की सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। भीष्मक मणिधारी को देखकर वनपशु, वृक, शरभ, हाथी, बाघ, सिंह आदि हिंस्र पशु भी भाग जाते हैं॥१-४॥

तस्योत्कलभकृतिनोर्भयं नचास्तीशमुपहसन्ति।
भीष्ममणिर्गुणयुक्तो सम्यक्प्राप्ताङ्गुलीयकलत्रत्वम्॥५॥
पितृतर्पणापि पितॄणां तृप्तिर्बहुवार्षिकी भवति।
शाम्यन्त्युद्भूतान्यपि सर्पाण्डजाखुवृश्चिकविषाणि।
सलिलाग्निवैरितस्करभयानि भीमानि नश्यन्ति॥६॥
शैवलबलाहकाभं परुषं पीतप्रभं प्रभाहीनम्।
मलिनद्युति च विवर्णं दूरात्परिवर्जयेत्प्राज्ञः॥७॥
मूल्यं प्रकल्प्यमेषां विबुधवरैर्देशकालविज्ञानात्।
दूरे भूतानां बहु किञ्चिन्निकटप्रसूतानाम्॥८॥

॥इति गारुडे महापुराणे वैदूर्य्यपरीक्षा नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥

जो इसकी अंगूठी पहनता है, उसे कोई भय नहीं रहता। इसे पहन कर पितृतर्पण करने से पितरों को अनेक वर्ष तक की तृप्ति होती है। इसके पहनने से भौतिक उपद्रवों की शान्ति हो जाती है। सर्प आदि अण्डे से उत्पन्न होने वाले प्राणी मूषक तथा बिच्छू आदि का विष निवृत्त हो जाता है। वह व्यक्ति जल, चोर, डाकू, शत्रु भयरहित होता है। जो भीष्मक मणि शैवाल तथा मेघ वर्ण वाली होती है, कड़ी, पीली, चमकरहित, मलिन अथवा रंगहीन होती है, विद्वान् व्यक्ति ऐसी दूषित भीष्मक मणि को त्यागें। विद्वान् लोग देश-काल के अनुरूप उनके मूल्य को तय करते हैं। खदान के दूरवर्त्ती जो देश हैं, वहां इसकी कीमत अधिक तथा निकटवर्त्ती स्थान में अल्प होती है॥५-८॥

॥छियत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

पुलक रत्न परीक्षा वर्णन

सूत उवाच

पुण्येषु पर्वतवरेषु च निम्नगासु स्थानान्तरेषु च तथोत्तरदेशगासु।
संस्थापिताश्च नखरा भुजगैः प्रकाशं संपूज्य दानवपतिं प्रथिते प्रदेशे॥१॥
दाशार्णवागदवमेकलकालगादौ गुञ्जाञ्जनक्षौद्रमृणालवर्णाः।
गन्धर्ववह्निकदलीसदृशावभासा एते प्रशस्ताः पुलकाः प्रसूताः॥२॥
शङ्खाब्जभृङ्गार्कविचित्रभङ्गाः सूत्रैर्व्यपेताः परमाः पवित्राः।
माङ्गल्ययुक्ता बहुभक्तिचित्रा वृद्धिप्रदास्ते पुलका भवन्ति॥३॥
काकश्वरासभशृगालवृकोग्ररूपैर्गृध्रैः समांसरुधिरार्द्रमुखैरुपेताः।
मृत्युप्रदाश्च विदुषा परिवर्जनीया मूल्यं पलस्य कथितञ्च शतानि पञ्च॥४॥

॥इति गारुडे महापुराणे पुलकपरीक्षा नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७॥

सूतजी ने कहा—सर्पगण बलासुर के नखों को पवित्र पर्वतों, पावन नदियों तथा उत्तरस्थ भूभाग में ले गये तथा उनको वहीं पूजा करके स्थापित किया। दाशार्ण, वागदव, मेकल तथा कालगा आदि प्रदेश में उनको स्थापित किया था। वहां-वहां गुंजा, अंजन, मधु एवं मृणाल के समान मणियां उत्पन्न हो गईं। इन समुज्ज्वल मणियों को पुलकमणि कहा गया। कोई-कोई मणि शंख, पद्म, भृंग तथा सूर्यवत् थी। इन

मणियों में धागा पिरोकर गले में पहनने से मंगल होता है तथा बुद्धिलाभ होता है, लेकिन जो मणिखान काक, कुत्ते, गधे, सियार, व्याघ्र आदि विकट जन्तुओं से घिरी है, वह मृत्युप्रद तथा वर्जित है। एक पल की उत्तम पुलक मणि का मूल्य होगा ५०० मुद्रा॥१-४॥

॥सतहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रगोप मणि परीक्षा वर्णन

सूत उवाच

हुतभुग्रूपमादाय दानवस्य यथेप्सितम्।
नर्मदायां निचिक्षेप किञ्चिद्धीनादिभूमिषु॥१॥
तत्रेन्द्रगोपकलितं शुकवक्त्रवर्णं संस्थानतः प्रकटपीनसमानमात्रम्।
नानाप्रकारविहितं रुधिराख्यरत्नमुद्धृत्य तस्य खलु सर्वसमानमेव॥२॥
मध्येन्दुपाण्डरमतीव विशुद्धवर्णं तच्चेन्द्रनीलसदृशं पटलं तुले स्यात्।
सैश्वर्य्यभृत्यजननं कथितं तदैव पक्वञ्च तत्किल भवेत्सुरवज्रवर्णम्॥३॥

॥इति गारुडे महापुराणे रुधिराख्यरत्नपरीक्षा नाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥

सूतजी ने कहा—दानवराज बलासुर का रूप अपने हाथों में लेकर अग्निदेव द्वारा नर्मदा प्रदेश की निम्न भूमि में फेंका गया। जहां कहीं दानव का रूप गिरा, वहां इन्द्रगोप मणि उत्पन्न हो गयी। यह मणि शुक पक्षी के मुख की तरह रंग वाली तथा पीपल के पत्ते की आकृति वाली है। यहां इन स्थानों पर ही नाना प्रकार की मणियां उत्पन्न हो गईं, जो इन्द्रगोप के ही समान लगती हैं। इनको रुधिराख्य मणि कहा गया। ये सभी चन्द्रमा जैसी पाण्डुरवर्ण वाली मणियां हैं। ये अत्यन्त शुद्ध तथा इन्द्रगोपमणि जैसी ही लगती है। ये सभी ऐश्वर्य तथा भृत्य देने वाली हैं। यह कालमान से भूमि के अन्दर पकते-पकते देवराज इन्द्र के वज्र के समान आकृति धारण करती है। वैसे ही वर्ण की हो जाती है॥१-३॥

॥अठहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनाशीतितमोऽध्यायः

रुधिराख्य मणि परीक्षा

सूत उवाच

कावेरविन्ध्ययवनचीननेपालभूमिषु। लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नतः॥१॥
आकाशयुद्धं तैलाख्यमुत्पन्नं स्फटिकं ततः।
मृणालशङ्खधवलं किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम्॥२॥
न तत्तुल्यं हि रत्नञ्च सर्वथा पापनाशनम्।
संस्कृतं शिल्पिना सद्यो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्ततः॥३॥

।।इति गारुडे महापुराणे स्फटिकपरीक्षा नाम ऊनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

सूतजी ने कहा—कावेर, विन्ध्य, यवन, चीन तथा नेपाल नाम वाले देशों में बलराम ने बलासुर का मेद: फेंका था। वहां-वहां तैलस्फटिक नामक महामणियां उत्पन्न हो गई थीं। ये सभी मृणाल तथा शंख के समान श्वेत वर्ण वाली हैं। कोई-कोई तनिक अन्य वर्ण भी हो सकती है। इस मणि के समान अन्य मणि है ही नहीं, जो सभी पाप नष्ट कर सके। शिल्पकार से इसकी उचित काट-छांट कराकर तब मूल्य निरूपित होगा॥१-३॥

॥उन्यासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
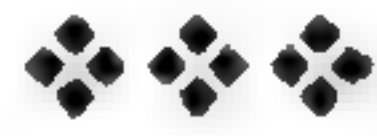
अशीतितमोऽध्यायः

रत्नपरीक्षा विद्रुममणि परीक्षा

सूत उवाच

आदाय शेषस्तस्यान्त्रं बलस्य केरलादिषु। चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः॥१॥
तत्र प्रधानं शशलोहिताभं गुञ्जाजवापुष्पनिभं प्रदिष्टम्।
सुनीलकं देवकरोमकञ्च स्थानानि तेषु प्रभवं सुरागम्।
अन्यत्र जातञ्च न तत्प्रधानं मूल्यं भवेच्छिल्पिविशेषयोगात्॥२॥

प्रसन्नं कोमलं स्निग्धं सुरागं विद्रुमं हि तत्। धनधान्यकरं लोके विषार्त्तिभयनाशनम्।
स्फटिकस्य विद्रुमस्य रत्नज्ञानाय शौनक॥३॥

।।इति गारुडे महापुराणे विद्रुमरत्नपरीक्षा नाम अशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

सूतजी ने कहा—बलासुर के अस्त्रों को लेकर केरल प्रभृति देशों में फेंका गया था। बलासुर का अस्त्र जहां फेंका गया, वहां-वहां पर महागुणान्वित विद्रुममणि उत्पन्न हो गई। जवापुष्प, गुंजा के वर्ण की अत्यन्त लोहित वर्ण वाली मिलने पर वह मणि सबसे प्रधान हो जाती है। रोमक तथा देवक देश में जो विद्रुम मणि उत्पन्न होती है, वह अतीव नीलवर्ण होती है। इन देशों में जो विद्रुममणि उत्पन्न होती है, वह प्रधान होती है। अन्य स्थान में उत्पन्न विद्रुममणि उतनी उत्तम नहीं होती। जो कोमल स्पर्श वाली, स्निग्ध तथा गाढ़े रक्तवर्ण की होती है, उसे धारण करने वाला धन एवं धान्य की प्राप्ति करता है। उसके शत्रुओं का भी नाश हो जाता है। पुलक मणि की जैसे परीक्षा की जाती है, तदनुरूप विद्रुम की परीक्षा करे॥१-३॥

॥अस्सीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकाशीतितमोऽध्यायः

सर्वतीर्थ माहात्म्य

सूत उवाच

सर्वतीर्थानि वक्ष्यामि गङ्गा तीर्थोत्तमोत्तमा। सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा॥१॥
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। प्रयागं परमं तीर्थं मृतानां भुक्तिमुक्तिदम्॥२॥
सेवनात्कृतपिण्डानां पापजित्कामदं नृणाम्।
वाराणसी परं तीर्थं विश्वेशो यत्र केशवः॥३॥
कुरुक्षेत्रं परं तीर्थं दानाद्यैर्भुक्तिमुक्तिदम्। प्रभासं परमं तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च॥४॥

सूतजी ने कहा—मैं सभी तीर्थों का माहात्म्य कहता हूं। धरती पर जितने भी तीर्थ हैं, उन सबमें से गंगा प्रधान है। यह सर्वत्र सुलभ है। यह हरिद्वार, प्रयाग एवं गंगासागर में दुर्लभ है। प्रयाग परम तीर्थ है। यहां जिन लोगों की मृत्यु होती है, वे मुक्तिलाभ करते हैं। यहां स्नान करके जो लोग यहां पितरों के लिये पिण्डदान करते हैं, वे सभी पापों का नाश करके अभीष्ट प्राप्त कर लेते हैं। वाराणसी अत्यन्त पावन तीर्थ है। यहां भगवान् केशव तथा महेश्वर सदा विद्यमान रहते हैं। कुरुक्षेत्र अत्यन्त उच्च महातीर्थ है। वहां

दान आदि करके साधक इहलोक में भुक्ति तथा परलोक हेतु मुक्तिलाभ करता है। प्रभास परमतीर्थ है, वहां सोमनाथ हैं॥१-४॥

द्वारका च पुरी रम्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिका। प्राची सरस्वती पुण्या सप्तसारस्वतं परम्॥५॥
केदारं सर्वपापघ्नं शम्भलग्राम उत्तमम्। नारायणं महातीर्थं मुक्त्यै वदरिकाश्रमम्॥६॥
श्वेतदीपं पुरी माया नैमिषं पुष्करं परम्। अयोध्या चार्य्यतीर्थन्तु चित्रकूटञ्च गोमती॥७॥
वैनायकं महातीर्थं रामगिर्य्याश्रमं परम्। काञ्चीपुरी तुङ्गभद्रा श्रीशैलं सेतुबन्धनम्॥८॥
रामेश्वरं परं तीर्थं कार्त्तिकेयं तथोत्तमम्। भृगुतुङ्गं कामतीर्थं कामरं कटकं तथा॥९॥

उज्जयिन्यां महाकालः कुब्जके श्रीधरो हरिः।
कुब्जाम्रकं महातीर्थं कालसर्पिश्च कामदः॥१०॥
महाकेशी च कावेरी चन्द्रभागा विपाशया।
एकाम्रञ्च तथा तीर्थं ब्रह्माणं देवकोटकम्।
मथुरा च पुरी रम्या शोणश्चैव महानदः॥११॥
जम्बूसरो महातीर्थं तानि तीर्थानि विद्धि च।
सूर्य्यः शिवो गणो देवी हरिर्यत्र च तिष्ठति॥१२॥

द्वारका महान् पुण्यस्थल है। इसका दर्शन करने वाले साधक इस लोक में विविध लौकिक भोग-भोग कर अन्तिम समय में मुक्ति पाते हैं। सरस्वती भी महापुण्य तीर्थ है। यहां स्नान करने वाला सभी विद्याओं को पाता है। केद।र सर्वपापनाशक तीर्थ है। सम्भल ग्राम भी उत्तम तीर्थ है। बदरिकाश्रम नारायण का महातीर्थ है। वहां मुक्ति प्राप्त होती है। श्वेत द्वीप, मायापुरी, नैमिष, पुष्कर क्षेत्र, अयोध्या, चित्रकूट, गोमती, विनायक तीर्थ, रामगिरि, काञ्चीपुरी, तुंगभद्रा, श्रीशैल, सेतुबन्ध, रामेश्वर, कार्त्तिकेय तीर्थ, भृगुतुङ्ग, कामतीर्थ, अमरकण्टक, उज्जयिनी में महाकाल तीर्थ, कुब्जकस्थ श्रीधरहरि, हरितीर्थ, कुब्जाम्रक तीर्थ, कालसर्पि, महाकेशी, कावेरी, चन्द्रभागा, विपाशा, एकाम्रकानन, ब्रह्मेशक्षेत्र, देवकोटक, मथुरापुरी, सोमनाथ, महानद, जम्बूसर को महातीर्थ कहा गया है। इन तीर्थों में सूर्य, शिव, गणपति, देवी तथा हरि सदा रहते हैं॥५-१२॥

एतेषु च तथान्येषु स्नानं दानं जपस्तपः।
पूजा श्राद्धं पिण्डदानं सर्वं भवति चाक्षयम्॥१३॥
शालग्रामं सर्वदं स्यात् तीर्थं पशुपतेः परम्।
कोकामुखञ्च वाराहं भाण्डीरं स्वामिसंज्ञकम्॥१४॥
मोहदण्डे महाविष्णुर्मन्दारे मधुसूदनः। कामरूपं महातीर्थं कामाख्या यत्र तिष्ठति।
पुण्ड्रवर्द्धनकं तीर्थं कार्त्तिकेयश्च यत्र च॥१५॥
विरजस्तु महातीर्थं तीर्थं श्रीपुरुषोत्तमम्। महेन्द्रपर्वतस्तीर्थं कावेरी च नदी परा॥१६॥

गोदावरी महातीर्थं पयोष्णी वरदा नदी। विन्ध्यः पापहरं तीर्थं नर्मदाभेद उत्तमः॥१७॥
गोकर्णं परमं तीर्थं तीर्थं माहिष्मती पुरी। कालञ्जरं महातीर्थं शुक्रतीर्थमनुत्तमम्॥१८॥
कृते शौचे मुक्तिदश्च शार्ङ्गधारी तदन्तिके। विरजं सर्वदं तीर्थं स्वर्णाक्षं तीर्थमुत्तमम्॥१९॥

पहले कहे गये तीर्थों में तथा अन्य तीर्थों में जो कोई स्नान, दान, जप, पूजा, श्राद्ध एवं पिण्डदानादि करते हैं, उनको अक्षय फल की प्राप्ति होती है। शालग्राम तीर्थ, पाशुपत तीर्थ, अत्यन्त फलदायक कहे गये हैं। कोकामुख, वाराह, भाण्डीर, स्वामीतीर्थ सभी महातीर्थ हैं। मोहदण्ड नामक महातीर्थ में महाविष्णु का निवास है। मन्दरतीर्थ में मधुसूदन का अवस्थान है। कामरूप महान् तीर्थ है। वहां पर कामाख्या देवी सतत् विद्यमान् रहती हैं। पौण्ड्रवर्द्धन महातीर्थ में कार्त्तिकेय देवता सदा निवास करते हैं। विराजतीर्थ, श्रीपुरुषोत्तम, महेन्द्रपर्वत, सरिताओं में श्रेष्ठ कावेरी, गोदावरी, पयोष्णी तथा वरदा नदी महातीर्थ कहे गये हैं। विद्या नामक महातीर्थ सभी पापों के नाशक हैं। गोकर्ण, महिष्मती, कालंजर, शुक्रतीर्थ तथा कृतशौच महातीर्थ हैं। वहां स्नानादि करने वाले देहशुद्धि पाकर ऐसे हो जाते हैं, जिसके कारण महाविष्णु उनको मरणकाल में मुक्त कर देते हैं। विरज तथा स्वर्णाक्षि नामक दोनों महातीर्थ उत्तम फल देने वाले सभी तीर्थों से उत्तम हैं॥१३-१९॥

नन्दितीर्थं मुक्तिदञ्च कोटितीर्थफलप्रदम्। नासिक्यञ्च महातीर्थं गोवर्द्धनमतः परम्॥२०॥
कृष्णा वेणी भीमरथा गण्डकी या त्विरावती।
तीर्थं बिन्दुसरः पुण्यं विष्णुपादोदकं परम्॥२१॥
ब्रह्मध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। दमस्तीर्थं तु परमं भावशुद्धिः सरस्तथा॥२२॥
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥२३॥
इदं तीर्थमिदं नेति ये नरा भेददर्शिनः। तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलञ्च यत्।
सर्वं ब्रह्मेति योऽवैति नातीर्थं तस्य किञ्चन॥२४॥

नन्दितीर्थ मुक्तिप्रद है। यहां स्नानादि करने वाला कोटितीर्थ का फल पाता है। नासिक महातीर्थ है। गोवर्द्धन भी परमतीर्थ है। कृष्णावेणी, भीमरथा, गण्डकी, इरावती, विन्दुसर तीर्थ, विष्णुपादोदक रूपी विन्दुतीर्थ महापुण्यप्रद तीर्थ कहे गये हैं। ब्रह्मध्यान परम तीर्थ है, इन्द्रिय निग्रह भी तीर्थ है। दम भी परमतीर्थ है। भावशुद्धि उस महातीर्थ का सरोवर है। ज्ञान वहां का वृक्ष है। इस ह्रद के रागद्वेष रूप मल नाशक ध्यानरूप जल से वह मानव स्नान करे। वह व्यक्ति ब्रह्मपद प्राप्तिरूप परमगति लाभ करता है। जो ऐसा ज्ञान रखते हैं कि "यह महातीर्थ रूप है, परन्तु यह स्थान तीर्थ नहीं है" ऐसा भेदज्ञान रखने वाले लोग तीर्थ गमन करें तथा वहां से प्राप्त फल का भोग करें, तथापि जिनकी दृष्टि में सर्वत्र ब्रह्म है, वे सर्वत्र तीर्थ ही उपलब्ध करते हैं। उनके लिये किसी तीर्थ की आवश्यकता नहीं रहती॥२०-२४॥

एतेषु स्नानदानानि श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम्।
सर्वा नद्यः सर्वशैलाः तीर्थं देवादिसेवितम्॥२५॥

इन वर्णित तीर्थों में स्नान, दान, श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान प्रभृति का अक्षय फल प्राप्त होता है।

सभी पहाड़ तथा नदियां तीर्थ हैं। वे देवगण सेवित स्थान जो होते हैं। जो देवता सेवित स्थान हैं, वे तीर्थ कहे जाते हैं।।२५।।

श्रीरङ्गश्च हरेस्तीर्थं तापी श्रेष्ठा महानदी। सप्तगोदावरं तीर्थं तीर्थं कोणगिरिः परम्।।२६।।
महालक्ष्मीर्यत्र देवी प्रणीता परमा नदी। सह्याद्रौ देवदेवेश एकवीरः सुरेश्वरी।।२७।।
गङ्गाद्वारे कुशावर्त्ते विन्ध्यके नीलपर्वते। स्नानं कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे।।२८।।

सूत उवाच

एतान्यन्यानि तीर्थानि स्नानाद्यैः सर्वदानि हि। श्रुत्वाऽब्रवीद्धरेर्ब्रह्मा व्यासं दक्षादिसंयुतम्।।२९।।
एतान्युक्त्वा च तीर्थानि पुनस्तीर्थोत्तमोत्तमम्।
गयाख्यं प्राह सर्वेषामक्षयं ब्रह्मलोकदम्।।३०।।

।।इति गारुडे महापुराणे सर्वतीर्थमाहात्म्यं नाम एकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

श्रीहरि के विराजमान रहने के कारण श्रीरंगपत्तन महातीर्थ है। तापी, महानदी, सप्तगोदावरी, कोणगिरि महातीर्थ कहे जाते हैं। कोणगिरि की यह महिमा है कि स्वयं लक्ष्मी वहां नदीरूपेण विद्यमान हैं। सह्य पर्वत पर एकवीर महातीर्थ स्थित है। यहां भगवती का नित्य निवास है। गंगाद्वार, कुशावर्त्त, विन्ध्य पहाड़, कनखल, नीलगिरि नामक महातीर्थ में जो स्नान करता है, उसे संसार में जन्म नहीं लेना पड़ेगा। इन तीर्थों के अतिरिक्त भी अनेक तीर्थ हैं। उन तीर्थों में स्नान-दानादि का सभी शुभ फल प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने हरि से यह सब सुन कर दक्ष आदि देवताओं तथा व्यास से कहा। इस प्रकार उन्होंने सभी तीर्थों का वर्णन करने के बाद पुनः सभी तीर्थों में से उत्तम श्रेष्ठ गयातीर्थ का वर्णन ब्रह्मा से किया था। गयातीर्थ ब्रह्मलोक में गति प्रदान करता है। वहां जो पुण्य मिलता है, वह अक्षय ब्रह्मलोक प्रदाता कहा गया है।।२५-३०।।

।।एक्यासीवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
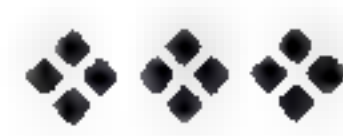
द्व्यशीतितमोऽध्यायः

गयातीर्थ माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

सारात्सारतरं व्यास गयामाहात्म्यमुत्तमम्। प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु।।१।।
गयासुरोऽभवत् पूर्वं वीर्य्यवान् परमः स च। तपस्तप्यन्महाघोरं सर्वभूतोपतापनम्।।२।।

तत्तपस्तापिता देवास्तद्वधार्थं हरिं गताः। शरणं हरिरूचे तान्भवितव्यं शिवात्मभिः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे व्यास! अब मैं सभी तीर्थों के सार रूपी गया तीर्थ का माहात्म्य कहता हूं। तुम उस भुक्ति-मुक्ति प्रदायक गया माहात्म्य को सुनो। पूर्वकाल में गयासुर नामक महाबली पराक्रमी एक दैत्य उत्पन्न हुआ। वह ऐसी उत्कट तपस्या करने लगा कि उससे समस्त जीव-जगत् तप्त हो उठा। देवता तक उसके तप से तप्त हो उठे। वे उस दैत्य के विनाशार्थ भयभीत होकर हरि के पास आये। उन्होंने हरि से गयासुर का प्रसंग कहा। वह सुनकर श्रीहरि ने कहा कि यह असुर शिवत्व लाभ करेगा। तब देवगण ने कहा कि भले यह असुर मरणान्त में शिवत्व पायेगा, जिससे सृष्टि की रक्षा हो जायेगी, परन्तु यदि इसका तत्काल विनाश नहीं होगा, तब सृष्टि ही लुप्त हो जायेगी। आप इसको शीघ्र नष्ट करिये। यह सुनकर भगवान् ने कहा "ऐसा ही होगा" तथा देवगण को अभय दिया॥१-३॥

पातितेऽस्य महादेहे तथेत्यूचुः सुरा हरिम्।
कदाचिच्छिवपूजार्थं क्षीराब्धेः कमलानि च॥४॥
आनीय कीकटे देशे शयनं चाकरोद् बली।
विष्णुमायाविमूढोऽसौ गदया विष्णुना हतः॥५॥

कुछ काल के उपरान्त गयासुर शिव की पूजा हेतु क्षीरसागर से कमल लाकर कीकटदेश में सो रहा था, परन्तु गदाधारी विष्णु ने उसे अपनी माया से मोहित करके गदा द्वारा निहत कर दिया॥४-५॥

अतो गदाधरो विष्णुर्गयायां मुक्तिदः स्थितः।
तस्य देहो लिङ्गरूपी स्थितः शुद्धे पितामहः॥६॥

उसी दिन से गदाधारी विष्णु गया में निवास करते हैं। वे वहां अनगिनत जीवों को मुक्ति देते हैं। गयासुर का महान् शरीर शिवरूप हो गया। वह संसार की शुद्धि सम्पन्न करता है॥६॥

जनार्दनश्च कालेशस्तथाऽन्यः प्रपितामहः। विष्णुराहाथ मर्य्यादां पुण्यक्षेत्रं भविष्यति॥७॥
यज्ञं श्राद्धं पिण्डदानं स्नानादि कुरुते नरः। स स्वर्गं ब्रह्मलोकञ्च गच्छेन्न नरकं नरः॥८॥
गयातीर्थं परं ज्ञात्वा यागं चक्रे पितामहः। ब्राह्मणान्पूजयामास ऋत्विगर्थमुपागतान्॥९॥

महानदीं रसवहां सृष्ट्वा वाप्यादिकं तथा।
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च कामधेनुं तथाऽसृजत्।
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं ब्राह्मणेभ्यो ददौ प्रभुः॥१०॥

विष्णु ने कहा कि आज से यह स्थान पुण्यक्षेत्र होगा। जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र में यज्ञ, श्राद्ध, पिण्डदान एवं स्नानादि करता है, वह सदा स्वर्गलोक तथा ब्रह्मलोक लाभ करता है। उसे नरक गमन नहीं करना पड़ता। पितामह ने भी गया को परमतीर्थ जानकर वहां यज्ञ किया था। उन्होंने यज्ञ के पुरोहित का कार्य करने हेतु आने वाले ब्राह्मणों का पूजन भी किया था। उन्होंने वहां चारों ओर रसपूर्ण महानदी की तथा भक्ष्य, भोज्य फल एवं कामधेनु की सृष्टि किया था। पांच क्रोश पर्यन्त का यह गयाक्षेत्र ब्रह्मदेव ने ब्राह्मणों को दान दे दिया था॥७-१०॥

धर्मयोगेषु लोभात्त प्रतिगृह्य धनादिकम्।
स्थिता विप्रास्तदा शप्ता गयायां ब्राह्मणास्ततः॥११॥
माभूत्त्रैपुरुषी विद्या माभूत्त्रैपुरुषं धनम्। युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वतः॥१२॥
शप्तैस्तु प्रार्थितो ब्रह्माऽनुग्रहं कृतवान् प्रभुः।
लोकाः पुण्या गयायां हि श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः।
युष्मान् वै पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा॥१३॥
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥१४॥

उस समय से वे उत्तम ब्राह्मण लोग लोभ के वशीभूत होकर ब्रह्मा से यज्ञ कराने का धन लेकर वहीं गंगातट पर बस गये। अतः ब्रह्मा ने उन ब्राह्मणों को यह शाप दिया कि "हे विप्रों! तुम लोगों के पास तीन पीढ़ी तक विद्या तथा धन नहीं रहेगा। मात्र यह पाषाण एवं पर्वत वाहिनी नदी ही तुम लोगों हेतु दीर्घकाल पर्यन्त रहेगी।" वे ब्राह्मण इस प्रकार पितामह का शाप पाकर विनय के साथ ब्रह्मा से शाप मुक्ति की प्रार्थना करने लगे। भगवान् कमलयोनि ब्रह्मा ने उनके प्रति कृपा किया तथा कहा कि "जो तुम लोगों की अर्चना करेगा, उससे मेरी ही पूजा सम्पन्न होगी।" ब्रह्मज्ञान, गया में श्राद्ध करना, गोगृह में मरण तथा कुरुक्षेत्र में निवास, यह चार मुक्ति के कारणरूप बताये गये हैं॥११-१४॥

समुद्राः सरितः सर्वा वापीकूपह्रदानि च।
स्नातुकामा गयातीर्थं व्यास यान्ति न संशयः॥१५॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति॥१६॥
असंस्कृता मृता ये च पशुचौरहताश्च ये।
सर्पदष्टा गयाश्राद्धान्मुक्ताः स्वर्गं व्रजन्ति ते॥१७॥

॥इति गारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥

जो व्यक्ति समस्त समुद्र, नदी तथा वापी-कूप-तड़ाग आदि जितने तीर्थ पृथिवी पर हैं, इन सभी में स्नान की कामना करता है, वह गयातीर्थ आये। इस तीर्थ के दर्शन तथा यहां श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करने से उसे ऊपर कहे गये सभी तीर्थों में स्नान का फललाभ हो जाता है। गयातीर्थ में श्राद्ध करने से श्राद्ध करने वाला ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, गुरुपत्नीगमन जैसे पापों, ब्रह्महत्यारों तथा उपरोक्त पाप करने वालों के संसर्गजनित पापों से मुक्ति मिल जाती है। जो असंस्कृत स्थिति में मृत हुये हैं, जो पशु अथवा चोर-डाकुओं के द्वारा मारे गये हैं, सर्प के डसने से मरे हैं, ऐसे पातकी भी गयाश्राद्ध से मुक्त हो जाते हैं तथा स्वर्गलाभ करते हैं। गयातीर्थ में पितरों के श्राद्ध से जो पुण्यलाभ होता है, मैं शतकोटि वर्षों में भी उसका पुण्य पूर्णतः नहीं कह सकूंगा॥१५-१७॥

॥बयासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

गया माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्। विषयश्चारणः पुण्यो नदीनाञ्च पुनःपुनः॥१॥
मुण्डपृष्ठं तु पूर्वस्मिन्पश्चिमे दक्षिणोत्तरे। सार्द्धक्रोशद्वयं मानं गयायां परिकीर्त्तितम्॥२॥
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः। तत्र पिण्डप्रदानेन पितृणां परमा गतिः।
गयागमनमात्रेण पितृणामनृणो भवेत्॥३॥
गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनार्द्दनः। तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात्॥४॥
रथमार्गं गयातीर्थे दृष्ट्वा रुद्रं पदाधिके। कालेश्वरञ्च केदारं पितृणामनृणो भवेत्॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—कीकट देश में गया महापुण्यतम स्थान है। इस स्थान में (देश में) राजगृह तथा वन नामक पुण्यस्थल हैं। चारण महापुण्यप्रद स्थल है। यहां की नदियां भी पुण्यमयी हैं। गया के चारों ओर आधे कोस के स्थान में मुण्डपृष्ठ तीर्थ है। गया का क्षेत्र पांच कोस का है। उसमें गयाशिर एक क्रोश का कहा गया है। यहां पिण्ड देने से पितरों को परमगति का लाभ होता है। व्यक्ति गया जाने मात्र से पितृऋण से उऋण हो जाता है। गया में देवदेव जनार्दन पितृरूप से स्थित हैं। उन पुण्डरीकाक्ष के दर्शन से व्यक्ति तीनों ऋणों से मुक्ति पा जाता है। गयातीर्थ में रथमार्ग कालेश्वर एवं केदार का दर्शन करने वाले लोग पितृऋण से उऋण हो जाते हैं॥१-५॥

दृष्ट्वा पितामहं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते। लोकं त्वनामयं याति दृष्ट्वा च प्रपितामहम्॥६॥
तथा गदाधरं देवं माधवं पुरुषोत्तमम्। तं प्रणम्य प्रयत्नेन न भूयो जायतेः नरः॥७॥
मौनादित्यं महात्मानं कनकार्कं विशेषतः। दृष्ट्वा मौनेन विप्रर्षे पितृणामनृणो भवेत्।
ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥८॥
गायत्रीं प्रातरुत्थाय यस्तु पश्यति मानवः। सन्ध्यां कृत्वा प्रयत्नेन सर्वदेवफलं लभेत्॥९॥

यहां पितामह ब्रह्मा का जो दर्शन करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। यहां उनके दर्शन से लोग अनामय लोकों की प्राप्ति करते हैं। वे लोग गदाधर देव माधव पुरुषोत्तम को यहां प्रणाम करने से पुनः जन्म नहीं लेते। यहां मौनादित्य तथा महात्मा का विशेषतः दर्शन करे। इनका दर्शन जो मौनी रहकर करता है,वह पितृऋण से मुक्त हो जाता है। यहां ब्राह्मण की पूजा करने वाला ब्रह्मलोकलाभ करता है। गया में गायत्री का जो प्रातः उठ कर दर्शन करता है तथा प्रयत्नतः सन्ध्या करता है, उसे सभी देवों का पूजन करने का फललाभ हो जाता है॥६-९॥

सावित्रीञ्चैव मध्याह्ने दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत्।
सरस्वतीञ्च सायाह्ने दृष्ट्वा दानफलं लभेत्॥१०॥

नगस्थमीश्वरं दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत्।
धर्मारण्यं धर्ममीशं दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम्॥११॥
देवं गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा को न मुच्येत बन्धनात्।
धेनुं दृष्ट्वा धेनुवने ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्॥१२॥
प्रभासेशं प्रभासे च दृष्ट्वा याति परां गतिम्।
कोटीश्वरं चाश्वमेधं दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम्॥१३॥
स्वर्गद्वारेश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात्। रामेश्वरं गदालोलं दृष्ट्वा स्वर्गमवाप्नुयात्॥१४॥

यहां मध्याह्न में सावित्री का दर्शन करने से (मध्याह्न सन्ध्या से) यज्ञफल लाभ होगा। यहां सायंकाल में सरस्वती के दर्शन से (सायं सन्ध्या करने से) समस्त दान का फल मिलता है। यहां पर्वत पर स्थित भगवान् ईश्वर का दर्शन करने वाला पितृऋण से मुक्त हो जाता है। यहां धर्मारण्य तथा धर्मेश्वर का दर्शन करने से भी ऋणों का नाश होता है। देव गृध्रेश्वर का दर्शन करने वाला ऐसा कौन है जो बन्धनमुक्त न हो। जो धेनुवन में धेनु का दर्शन करता है, वह अपने पितरों को ब्रह्मलोक ले जाता है। प्रभास में प्रभासेश्वर का दर्शन करने वाला परागतिलाभ करता है। जो व्यक्ति कोटीश्वर में अश्वमेध का दर्शन करता है, उसके तीनों ऋण नष्ट हो जाते हैं। स्वर्गद्वारेश्वर का दर्शन करने वाला संसार बन्धन से मुक्तिलाभ करता है। रामेश्वर तथा गदालोल का दर्शन जो करता है, उसे स्वर्ग प्राप्ति होती है॥१०-१४॥

ब्रह्मेश्वरं तथा दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया।
मुण्डपृष्ठे महाचण्डीं दृष्ट्वा कामानवाप्नुयात्॥१५॥
फल्वीशं फल्गुचण्डीञ्च गौरीं दृष्ट्वा च मङ्गलम्।
गोमकं गोपतिं देवं पितृणाम नृणो भवेत्॥१६॥
अङ्गारेशञ्च सिद्धेशं गयादित्यं गजं तथा। मार्कण्डेयेश्वरं दृष्ट्वा पितृणामनृणो भवेत्॥१७॥
फल्गुतीर्थे सरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्।
एतेन किं न पर्य्याप्तं नृणां सुकृतिकारिणाम्।
ब्रह्मलोकं प्रयान्तीह पुरुषानेकविंशतिम्॥१८॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये समुद्राःसरांसि च।
फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिने दिने॥१९॥
पृथिव्याञ्च गया पुण्या गयायाञ्च गयाशिरः।
श्रेष्ठं तथा फल्गुतीर्थं तन्मुखञ्च सुरस्य हि॥२०॥

ब्रह्मेश्वर का दर्शन करने वाला ब्रह्महत्या से मुक्ति पा जाता है। मुण्डपृष्ठ पर महाचण्डी का दर्शन करने वाला अपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है। फल्वीश्वर, फल्गुचण्डी, गौरी, मंगला, गोमक, गोपति देव का दर्शन करने वाला पितृऋण से मुक्ति पा जाता है। अंगारेश्वर, सिद्धेश्वर, गयादित्य,

गणेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर देवमूर्त्तियों का अवलोकन करने वाला भी पितृऋण से मुक्ति पा जाता है। फल्गुतीर्थ में स्नान तथा गदाधर का दर्शन करने मात्र से सुकृति वाले लोगों की ऐसी कौन सी कामना है, जो पूर्ण नहीं होती। उसकी २१ पूर्व पीढ़ी को ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाता है। पृथिवी पर जितने भी महान् तीर्थ, समुद्र तथा सरोवर हैं, वे नित्यप्रति एक बार फल्गुतीर्थ में आते हैं। पृथिवी के सभी श्रेष्ठ तीर्थों में से गयातीर्थ प्रधान है। उसमें भी गयाशिरः प्रधान है। यह समस्त पुण्यों को देने वाला है। फल्गुतीर्थ देवगण का मुख कहा गया है॥१५-२०॥

उदीचि कनकानद्योनाभितीर्थन्तु मध्यतः।
पुण्यं ब्रह्मसदस्तीर्थं स्नानात्स्याद्ब्रह्मलोकदः॥२१॥
कूपे पिण्डादिकं कृत्वा पितृणामनृणो भवेत्।
तथाऽक्षयवटे श्राद्धं ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्॥२२॥
हंसतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। कोटितीर्थे गयालोके वैतरण्याञ्च गोमके।
ब्रह्मलोकं नयेच् श्राद्धी पुरुषानेकविंशतिम्॥२३॥
ब्रह्मतीर्थे रामतीर्थे आग्नेये सोमतीर्थके। श्राद्धी रामह्रदे ब्रह्मलोकं पितृकुलं नयेत्॥२४॥
उत्तरे मानसे श्राद्धी न भूयो जायते नरः।
दक्षिणे मानसे श्राद्धी ब्रह्मलोकं पितॄन् नयेत्॥२५॥
भीष्मतर्पणकृत्तस्य कूटे तारयते पितॄन्। गृध्रेश्वरे तथा श्राद्धी पितृणामनृणो भवेत्॥२६॥

यहां पर उत्तर की ओर कनका नदी विराजित है। मध्य में नाभितीर्थ है। इन दोनों को ब्रह्मतीर्थ तथा महान् पुण्यप्रदाता कहते हैं। इन सभी तीर्थों में स्नानोपरान्त ब्रह्मकूप में पिण्डदान करना चाहिये। इससे पितरों की मुक्ति होती है। अक्षयवट पर श्राद्ध करने से भी पितृगण ब्रह्मलोक जाते हैं। हंसतीर्थ पर स्नान करने वाला सभी पूर्व पापों से मुक्त हो जाता है। कोटितीर्थ, गदालोल, वैतरणी, गोमक तीर्थ पर जो पितरों का श्राद्ध करता है, उसकी पूर्व की २१ पीढ़ी के पितृगण ब्रह्मलोक जाते हैं। उत्तरमानस में श्राद्ध करने वाले का पुनः जन्म नहीं होता। दक्षिण मानस पर श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुंचाता है। जो स्वर्गद्वार पर श्राद्ध करता है, उसके भी पितर ब्रह्मलोक जाते हैं। गृध्रेश्वर पर श्राद्ध करने वाले व्यक्ति के पितर मुक्त हो जाते हैं। वह व्यक्ति पितृऋण से मुक्त हो जाता है॥२१-२६॥

श्राद्धी च धेनुकारण्ये ब्रह्मलोकं पितॄन्नयेत्।
तिलधेनुप्रदः स्नाप्वा दृष्ट्वा धेनुं न संशयः॥२७॥
ऐन्द्रे वा नरतीर्थेषु वासवे वैष्णवे तथा। महानद्यां कृतश्राद्धो ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥२८॥
गायत्रे चैव सावित्रे तीर्थे सारस्वते तथा।
स्नानसन्ध्यातर्पणकृत् श्राद्धी चैकोत्तरं शतम्।
पितॄणां तु कुलं ब्रह्मलोकं नयति मानवः॥२९॥

ब्रह्मयोनिं विनिर्गच्छेत्प्रयतः पितृमानसः। तर्पयित्वा पितॄन् देवान्न विशेद्योनिसङ्कटे॥३०॥

धेनुकारण्य में श्राद्ध करने वाला पितरों को ब्रह्मलोक पहुंचाता है। वहां स्नान तथा तिलधेनु दान कर तथा धेनुदर्शन करे। मनुष्यगण ऐन्द्रतीर्थ, वासवतीर्थ, रामतीर्थ, नर तीर्थ, वैष्णव तीर्थ तथा महानदी में पितृगण का श्राद्ध करें। इससे उनके पितर ब्रह्मलोक जाते हैं। गायत्री तीर्थ, सावित्र तीर्थ, सारस्वत तीर्थ पर स्नान, सन्ध्या, तर्पण, श्राद्ध करने वाला व्यक्ति अपनी १०१ पूर्व पीढ़ी को ब्रह्मलोक पहुंचा देता है। जो मानव एकाग्र तथा जितेन्द्रिय होकर पितृगण हेतु ब्रह्मयोनि तीर्थ जाकर देव-पितृतर्पण करता है, उसे पुनः गर्भयन्त्रणा भोगनी ही नहीं पड़ती॥२७-३०॥

तर्पणे काकजङ्घायां पितृणां तृप्तिरक्षया।
धर्मारण्ये मतङ्गस्य वाप्यां श्राद्धी दिवं व्रजेत्॥३१॥
धर्मयूपे च कूपे च पितृणामनृणो भवेत्।
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः।
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितृणां निष्कृतिः कृता॥३२॥

काकजंघा तीर्थ में तर्पण करने से पितर दीर्घकाल के लिये तृप्त हो जाते हैं। जो व्यक्ति धर्मारण्य तथा मतंग सरोवर जाकर पितरों हेतु श्राद्ध करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है। धर्मयूप तीर्थ में स्नानादि तर्पण करने से मनुष्य पितृऋण से मुक्त हो जाते हैं। यहां स्नानोपरान्त यह मन्त्र पढ़ें—"हे देवगण, दिक्पालगण! आप मेरे कार्य के साक्षी रहिये। मैंने पितरों के उद्धार हेतु कार्य कर दिया"॥३१-३२॥

रामतीर्थे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा प्रभासके।
शिलायां प्रेतभावाः स्युर्मुक्ताः पितृगणाः किल॥३३॥
श्राद्धकृच्च स्वपुष्टायां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत्।
श्राद्धकृन्मुण्डपृष्ठादौ ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥३४॥
गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।
पञ्चक्रोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तु पिण्डदः।
अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥३५॥

जनार्दनस्य हस्ते तु पिण्डं दद्यात्स्वकं नरः। एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन॥३६॥
परलोकं गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम्। ब्रह्मलोकमवाप्नोति पितृभिः सह निश्चितम्॥३७॥

यहां पर मनुष्य रामतीर्थ, प्रभासतीर्थ तथा रामशिला पर स्नान करके पितृ श्राद्ध करे। इससे उसके प्रेतत्व प्राप्त पितरों की मुक्ति हो जाती है। यहां पर स्वपुष्टातीर्थ जाकर श्राद्ध करने से उसकी २१ पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। मुण्डपृष्ठादि तीर्थ में श्राद्ध करने से उस व्यक्ति के पितृगण ब्रह्मलोक जाते हैं। पांच कोस तक फैले गयातीर्थ में एक विन्दुमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है, जहां तीर्थ न हो। अतः गया में प्रत्येक स्थान पर पिण्ड दिया जा सकता है। इससे पितृगण को अक्षय फललाभ होता है। वे ब्रह्मलोक गमन करते हैं। जनार्दन के हाथों में पिण्ड दे रहा हूं, यह भावना करनी चाहिये। तब पिण्डदाता कहे—"हे जनार्दन!

मैंने आपके हाथों में पिण्ड दे दिया। जब मैं परलोक जाऊं, तब इस पिण्डदान के प्रभाव से मैं पितरों के साथ अक्षय फलभोग करूं।'' इस प्रकार जीते जी अपने उद्धारार्थ पिण्डदान करने से मानव पितृ लोगों के साथ ब्रह्मलोक जाता है। यह निश्चित है।।३३-३७।।

गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा। गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितृणां दत्तमक्षयम्।।३८।।
धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च। दृष्ट्वैतानि पितुश्चार्घ्यं वंशान्विंशतिमुद्धरेत्।।३९।।
ब्रह्मारण्यं मयनद्याः पश्चिमे भाग उच्यते। पूर्वे ब्रह्मसदोभागो नागाद्रिर्भरताश्रमः।।४०।।
भरतस्याश्रमे श्राद्धी मतङ्गस्य पदे भवेत्। गयाशीर्षाद्दक्षिणतो महानद्याश्च पश्चिमः।।४१।।
तत्स्मृतश्चम्पकवनं तत्र पाण्डुशिलास्ति हि।
श्राद्धी तत्र तृतीयायां निश्चिरायाश्च मण्डले।
महाह्रदे च कौशिक्यामक्षयं फलमाप्नुयात्।।४२।।

गयाक्षेत्रस्थ धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसरोवर, गयाशीर्ष, अक्षयवट पर पितरों हेतु जो श्राद्धादि किया जाता है, उसके फलस्वरूप अक्षय स्वर्गभोग की प्राप्ति होती है। धर्मारण्य, धर्मपृष्ठ, धेनुकारण्य का दर्शन करके मनुष्य अपनी इक्कीस पूर्वपीढ़ी का त्राण कर देता है। ब्रह्मारण्य महानदी के पश्चिम में स्थित है। ब्रह्मसद के पूर्वभाग का नाम नागाद्रि नाम से विख्यात है। वहां भरताश्रम तथा मतंगाश्रम में पितृगण का श्राद्ध करना चाहिये। गया से दक्षिण तथा महानदी से पश्चिम चम्पक वन नामक तीर्थ है। वहां पाण्डुशिला है। यहां मानव तृतीया के दिन निश्चिरा मण्डल, महाह्रद तथा कौशिकी तीर्थ में श्राद्ध करके अक्षय फललाभ करते हैं।।३८-४२।।

वैतरण्याश्चोत्तरतस्तृतीयाख्यो जलाशयः।
पदानि तत्र क्रौञ्चस्य श्राद्धी स्वर्गं नयेत्पितॄन्।।४३।।
क्रौञ्चपादादुत्तरतो निश्चिराख्यो जलाशयः।
सकृद् गयाभिगमनं सकृत्पिण्डप्रपातनम्।
दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितः।।४४।।
महानद्यामपः स्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः।
अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलञ्चापि समुद्धरेत्।
सावित्रे पठ्यते सन्ध्या कृता स्याद् द्वादशाब्दिकी।।४५।।

वैतरणी के उत्तर में तृतीया नामक जलाशय है। यहीं पर क्रौञ्चपद महातीर्थ भी है। यहां श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को स्वर्ग ले जाता है। क्रौञ्चपद के उत्तर में निश्चिरा नाम वाला जलाशय है। जो मनुष्य मात्र एक बार भी गया जाकर पिण्ड प्रदान करता है,उसको इहलोक तथा परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। महानदी के पवित्र जल का स्पर्श करके पितरों का तर्पण करने वाला अक्षय लोकों की प्राप्ति करके अपने कुल का उद्धार कार्य सम्पन्न कर देता है। सावित्री तीर्थ पर एक बार भी संध्या करने वाला द्वादश वर्ष की सन्ध्या का फललाभ करता है।।४३-४५।।

शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः।
पुनात्यासप्तमञ्चैव कुलं नास्त्यत्र संशयः॥४६॥

गयायां मुण्डपृष्ठञ्च अरविन्दञ्च पर्वतम्। तृतीयं क्रौञ्चपादञ्च दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते॥४७॥

जो व्यक्ति कृष्णपक्ष किंवा शुक्लपक्ष में गयातीर्थ में निवास करता है, उसकी सात पीढ़ी पावन हो जाती है। गया में मुण्डपृष्ठ, अरविन्द पहाड़, क्रौंचपाद का दर्शन करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। यह निःसंशय है॥४६-४७॥

मकरे वर्त्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः। दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम्॥४८॥

महाह्रदे च कौशिक्यां मूलक्षेत्रे विशेषतः।
गुहायां गृध्रकूटस्य श्राद्धं सप्त महाफलम्॥४९॥
यत्र माहेश्वरी धारा श्राद्धी तत्रानृणो भवेत्।
पुण्यां विशालामासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम्।
अग्निष्टोममवाप्नोति श्राद्धी प्रायाद्दिवं नरः॥५०॥

जब सूर्य मकरस्थ हों अथवा चन्द्र-सूर्य ग्रहण हो, तब गया में पिण्डप्रदान करने से त्रैलोक्य में कुछ भी अप्राप्त नहीं रह जाता। महाह्रद, कौशिकीतीर्थ, मूलक्षेत्र तथा गृध्रकूट पर्वत की गुफा में श्राद्ध करने से भी प्रभूत पुण्यलाभ होता है। जहां महेश्वर के शिर से गंगा की धारा उतरी है, वहां भी श्राद्ध करने वाला पितृऋण से उऋण हो जाता है। त्रैलोक्य प्रसिद्ध विशाला नदी में जाकर श्राद्ध करने से अग्निष्टोम यज्ञफल मिलता है। वह व्यक्ति स्वर्गलाभ करेगा॥४८-५०॥

श्राद्धी सोमपदे स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत्।
रविपादे पिण्डदानात्पतितोद्धारणं भवेत्॥५१॥
यो गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः।
कांक्षंते पितरः पुत्रान् नरकाद् भयभीरवः॥५२॥
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान् सन्तारयिष्यति।
गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत्॥५३॥
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किल दास्यति।
आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा॥५४॥
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तं नयेद् ब्रह्म शाश्वतम्।
पुण्डरीकं विष्णुलोकं प्राप्नु यात्कोटितीर्थगः॥५५॥

श्राद्ध करने वाला सोमपद में (पाठभेद से मासपद में) स्नान करके श्राद्ध करे। वह वाजपेय यज्ञफल प्राप्त करेगा। रविपाद तीर्थ में पिण्डदान करने वाला पतितों का भी उद्धार कर देता है। जो मानव गया जाकर पितरों को अन्न प्रदान करता है, उसके द्वारा ही पितर पुत्रवान् माने जाते हैं। नरक से डरे

पितृगण यह पुत्र से कामना करते हैं कि "हमारे वंश का कोई व्यक्ति गया आकर हमारा परित्राण करेगा।" इसी आशा को लेकर जब पितृगण सन्तान को गया में आया देखते हैं, तब वे उत्सव मनाते हैं। वे यह आशा संजोये रहते हैं कि "हमारे वंश वाले अथवा अन्य कोई गया आकर पैर से भी जल स्पर्श करके हमें पिण्ड प्रदान कर दें।" वहां पर जिसके नाम से पिण्ड दिया जाता है, उसे ब्रह्मलोक लाभ होता है। इसमें संशय नहीं है। गयातीर्थ यात्री नौ करोड़ तीर्थ फल पाकर विष्णुलोक गमन करते हैं।।५१-५५।।

या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय हि।।५६।।

श्राद्धदः पिण्डदस्तत्र गोप्रदानं करोति यः। एकविंशतिवंशान् स तारयेन्नात्र संशयः।।५७।।

यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित् कालपर्य्यये।
तानेव भोजयेद्विप्रान् ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः।।५८।।

तेषां ब्रह्मसदः स्थानं सोमपानं तथैव च। ब्रह्मप्रकल्पितं स्थानं विप्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः।
पूजितैः पूजिताः सर्वे पितृभिः सह देवताः।।५९।।

तर्पयेत्तु गयाविप्रान् हव्यकव्यैर्विधानतः। स्थानं देहपरित्यागे गयायान्तु विधीयते।।६०।।

तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त जो वैतरणी नदी है, पितरों को तारने हेतु वह गयाक्षेत्र में अवतीर्ण है। वहां जाकर जो श्राद्ध, पिण्ड तथा गौ प्रदान करता है, निःसंदिग्ध रूप से उसकी २१ पूर्व पीढ़ी तर जाती है। यदि कोई पुत्र कभी भी गया जाकर वहां ब्रह्मकल्पित ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उनका सत्कार करता है, वह ब्रह्मलोक जाकर सोमपान की प्राप्ति भी करता है। इस पूजा से सभी देवता तथा पितरों की पूजा हो जाती है। गया जाकर गया में रहने वाले ब्राह्मणों को हव्य-हवन विधान से तृप्त करे। देहत्यागार्थ गया उत्तम स्थान कहा गया है।५६-६०।।

यः करोति वृषोत्सर्गं गयाक्षेत्रे ह्यनुत्तमे। अग्निष्टोमशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः।।६१।।

आत्मनोऽपि महाबुद्धिर्गयायां तु तिलैर्विना।
पिण्डनिर्वपनं कुर्य्यादन्येषामपि मानवः।।६२।।
यावन्तो ज्ञातयः पित्र्या बान्धवाः सुहृदस्तथा।
तेभ्यो व्यास गयाभूमौ पिण्डो देयो विधानतः।।६३।।
रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोशतस्याप्नुयात्फलम्।
मतङ्गवाप्यां स्नात्वा च गोसहस्रफलं लभेत्।।६४।।
निश्चिरासङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्।
वसिष्ठस्याश्रमे स्नात्वा वाजपेयञ्च विन्दति।
महाकौश्यां समावासादश्वमेधफलं लभेत्।।६५।।

जो मानव अत्युत्तम गया क्षेत्र जाकर वृषोत्सर्ग करता है, उसे एक सौ अग्निष्टोम यज्ञफल की

प्राप्ति होती है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। महा बुद्धिशाली लोग गया जाकर अपने लिये पिण्ड प्रदान करें, तथापि उसमें तिल का व्यवहार न करें। वे अन्य के लिये भी पिण्ड प्रदान करें। वे पितृ ज्ञाति, पितृबान्धव पितृसुहृद के लिये सविधि पिण्ड प्रदान करें। उनको सहस्र गोदान फल की प्राप्ति हो जाती है। मतंग सरोवर में स्नान करने वाला एक हजार गोदान का फल पाता है। रामतीर्थ में स्नान करने वाला सौ गोदान का फललाभ करता है। जो मनुष्य निश्चिरा संगम में स्नान करता है, वह अपने पितरों को ब्रह्मलोक ले जाता है। जो वसिष्ठाश्रम में स्नान करता है, उसे वाजपेय यज्ञफल मिलता है। महाकौशी तीर्थ में जो व्यक्ति रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है॥६१-६५॥

पितामहस्य सरसः प्रसृता लोकपावनी। समीपे त्वग्निधारेति विश्रुता कपिला हि सा।
अग्निष्टोमफलं श्राद्धी स्नात्वाऽत्र कृतकृत्यता॥६६॥
श्राद्ध कुमारधारायामश्वमेधफलं भवेत्। कुमारमभिगम्याथ महामुक्तिमवाप्नुयात्॥६७॥
सोमकुण्डे नरः स्नात्वा सोमलोकञ्च गच्छति।
संवर्त्तस्य नरो वाप्यां सुभगः स्यात्तु पिण्डदः॥६८॥
धौतपापो नरो याति प्रेतकुण्डे च पिण्डदः।
देवनद्यां लेलिहाने मथने जानुगर्त्तके॥६९॥
एवमादिषु तीर्थेषु पिण्डदस्तारयेत् पितॄन्। नत्वा देवं वसिष्ठेशं प्रभूतमृणसंक्षयम्॥७०॥

॥इति गारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥८३॥

ब्रह्मसरोवर से तीनों लोकों को पावन करने वाली तथा प्रसिद्धा अग्निधारा नदी विनिर्गत है। इसे कपिला भी कहते हैं। यहां स्नानोपरान्त जो श्राद्ध करता है, उसका मानव जीवन धन्य होता है। उसे अग्निष्टोम यज्ञफल लाभ होता है। जो कुमारधारा नदी तट पर श्राद्ध करता है, वह अश्वमेध फल का भागी हो जाता है। कुमार तीर्थ जाने से (तथा वहां स्नान-श्राद्धादि करने से) मुक्ति मिल जाती है। सोमकुण्ड में स्नान करने वाला चन्द्रलोक प्राप्त करता है। मानव यहां के सर्व सरोवरों में स्नान करके पितरों को पिण्ड प्रदान करे। वह अपने सभी पापों से शुद्ध होकर परम उत्तम गति का भागी हो जाता है। प्रेतकुण्ड में जो मानव पिण्ड प्रदान करता है, उसके पाप धुल जाते हैं। देवनदी, लेलिहान तीर्थ, मथन तीर्थ, जानुगर्त्त आदि श्रेष्ठ तीर्थों में पिण्ड प्रदान करने से पितरों को नरकादि से छुटकारा मिलता है। जो सभी तीर्थों के देवता वसिष्ठेश को प्रणाम करता है, उसे प्रतिक्षण उन्नति की प्राप्ति होती रहती है॥६६-७०॥

॥तिरासीवां अध्याय समाप्त॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

गया माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
विधाय कापटं वेशं ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम्॥१॥
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्। कृत्वा प्रदक्षिणं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः॥२॥
गृहाच्चलितमात्रस्य गयायां गमनं प्रति। स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां तु पदे पदे।
मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः॥३॥
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम्।
दिवा च सर्वदा रात्रौ गयायां श्राद्धकृद्भवेत्॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—जो गया जाने की इच्छा करता है, उसे चाहिये कि वह सविधि श्राद्ध करके संन्यासी वेश में ग्राम की प्रदक्षिणा करे। तब अन्य ग्राम में जाकर भोजनोपरान्त प्रदक्षिणा करके जाये, तथापि कोई दान ग्रहण न करे। गया गमन की इच्छा से वह व्यक्ति अपने गृह से जितने कदम चलता है, बाद में वह उतनी ही सीढ़ियां अपने पितृगण के लिये स्वर्ग जाने के लिये तैयार कर देता है। तीर्थ में पहुंचते ही मुण्डन तथा उपवास करे, तथापि कुरुक्षेत्र, विशाला, विरजा तथा गया में यह नहीं करना चाहिये। यही शास्त्र का नियम है। गया में दिन-रात सभी समय श्राद्ध कर सकते हैं॥१-४॥

वाराणस्यां कृतं श्राद्धं तीर्थे शोणनदे तथा। पुनः पुनर्महानद्यां श्राद्धी स्वर्गं पितॄन्नयेत्॥५॥
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्।
तस्मिन्निवर्त्तयेच्छ्राद्धं स्नानञ्चैव निवर्तयेत्।
कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च सर्वशः॥६॥
दक्षिणं मानसं गत्वा मौनी पिण्डादि कारयेत्। ऋणत्रयापकरणं लभेद्दक्षिणमानसे॥७॥
सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानाञ्च भयङ्करैः। लेलिहानैर्महाघोरैरक्षतैः पन्नगोत्तमैः॥८॥
नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणसेवितम्।
तत्र स्नात्वा दिवं याति श्राद्धं दत्तमथाक्षयम्।
सूर्य्यं नत्वा त्विदं कुर्य्यात्कृतपिण्डादिसत्क्रियः॥९॥

वाराणसी, शोणनद, महानदी में पुनः-पुनः श्राद्ध द्वारा पितर स्वर्ग गमन करते हैं। उत्तरमानस में श्राद्ध करने वाला उत्तम सिद्धिलाभ करता है। वहां श्राद्ध अथवा स्नान की आवश्यकता ही नहीं है, तब भी वहां जाने वाला सभी कामना प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करता है। दक्षिणमानस जाकर मौनी रहते हुये पिण्डदान आदि करे। इससे श्राद्धकर्त्ता की मुक्ति देवऋण, ऋषिऋण तथा पितृऋण से हो जाती है। कनखल

नामक जो महातीर्थ है, वहां लाल जीभ वाले भयानक सांप रहते हैं। उनको देखने से सिद्धों को प्रसन्नता होती है तथा पापियों के हृदय में भय होता है। सर्वत्र प्रसिद्ध मुण्डपृष्ठ महातीर्थ के उत्तर में यह तीर्थ है। देवर्षि लोग सदैव इस तीर्थ का सेवन करते हैं। मनुष्य कनखल तीर्थ में नहा कर स्वर्गलोक जाता है। यहां श्राद्धादि करने से वह अक्षयफल प्रदान करता है। यहां सूर्य को प्रणाम करके पिण्डदानादि करना चाहिये॥५-९॥

कव्यवाहास्तथा सोमो यमश्चैवार्य्यमा तथा।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः॥१०॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितस्त्विह॥११॥
मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः।
तेषा पिण्ड प्रदाताहमागतोऽस्मि गयामिह॥१२॥
कृतपिण्डः फल्गुतीर्थे पश्येद्देवं पितामहम्। गदाधरं ततः पश्येत्पितृणामनृणो भवेत्॥१३॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्।
आत्मानं तारयेत्सद्यो दशपूर्वान्दशापरान्॥१४॥
प्रथमे हि विधिः प्रोक्तो द्वितीयदिवसे व्रजेत्।
धर्मारण्यं मतङ्गस्य वाप्यां पिण्डादिकृद्भवेत्॥१५॥
धर्मारण्यं समासाद्य वाजपेयफलं लभेत्।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं स्याद्ब्रह्मतीर्थके॥१६॥
श्राद्धं पिण्डोदकं कार्य्यं मध्ये वै कूपयूयोः।
कूपोदकेन तत्कार्य्यं पितृणां दत्तमक्षयम्॥१७॥

सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, सोमप पितृदेवता कहे गये हैं। ये श्राद्ध के द्रव्य (कव्य) का भोजन करते हैं। गया में श्राद्ध करते समय इनकी प्रार्थना करे—"हे महाभाग पितृदेवता! आप आईये। मेरी रक्षा करिये। हमारे कुल में जन्म लेकर जिन्होंने पितृलोक गमन किया है, मैं उनके पिण्ड देने गया आया हूं।" फल्गुतीर्थ में पिण्ड देकर तब पितामह ब्रह्मा का दर्शन करे। तदनन्तर गदाधर देव का दर्शन पाकर मानव पितृऋण से छुटकारा पा लेता है। फल्गु में स्नान तथा गदाधर का दर्शन करने वाला अपनी दस पूर्व पीढ़ी का तथा आगे की दस पीढ़ी का तथा स्वयं का, इस प्रकार २१ पीढ़ी का उद्धार कर देता है। तीर्थयात्रा के पहले वाले दिन सविधि संयत रहे। दूसरे दिन तीर्थ जाये। धर्मारण्य तथा मतंग सरोवर जाकर पिण्ड प्रदान करे। धर्मारण्य जाने मात्र से वाजपेय यज्ञ इतना फल मिलेगा। ब्रह्मतीर्थ में स्नानादि करने वाला राजसूय तथा अश्वमेध फललाभ करेगा। कूपतीर्थ तथा यूपतीर्थ में पिण्डदान तथा श्राद्ध सम्पन्न करे। वहां यदि केवल कूपजल से भी (कूपतीर्थ में) श्राद्ध करे, तब भी अक्षयफल की प्राप्ति हो जाती है॥१०-१७॥

तृतीयेऽह्नि ब्रह्मसदो गत्वा स्नात्वाऽथ तर्पणम्।
कृत्वा श्राद्धादिकं पिण्डं मध्ये वै यूपकूपयोः॥१८॥

गोप्रचारसमीपस्था आब्रह्म ब्रह्मकल्पिताः। तेषां सेवनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः।

यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत्॥१९॥

तीसरे दिन तीर्थयात्री ब्रह्मतीर्थ जाकर वहां श्राद्ध तथा तर्पण सम्पन्न करे। श्राद्ध सम्पन्न करके कूपतीर्थ तथा यूपतीर्थ में पिण्डदान करना होगा। गोप्रचार तीर्थ के पास ब्रह्मा द्वारा कहे गये ब्राह्मणगण को भोजन से सन्तुष्ट करे। वह व्यक्ति ब्रह्मलोक में स्थान प्राप्त करता है तथा वहां सोमपान करता है। ब्रह्मकल्पित तीर्थ मे ब्रह्मकल्पित ब्राह्मणों की पूजा करने से पितरों के सहित समस्त देवगण की पूजा सम्पन्न हो जाती है। उनकी सेवा मात्र से पितरों की मुक्ति हो जाती है। यूपतीर्थ की प्रदक्षिणा से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है॥१८-१९॥

फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणम्।
कृत्वा श्राद्धं गयाशीर्षे देवरुद्रपदादिषु॥२०॥

चतुर्थ दिन फल्गुतीर्थ में स्नान करके देवता आदि का तर्पण करे। गयाशीर्ष एवं रुद्रपद आदि स्थानों पर भी पिण्ड देना चाहिये॥२०॥

पिण्डान्देहि मुखे व्यास पञ्चाग्नौ च पदत्रये।
सूर्य्येन्दुकार्त्तिकेयेषु कृतं श्राद्धं तथाऽक्षयम्।
श्राद्धं तु नवदेव त्यं कुर्य्याद् द्वादशदैवतम्॥२१॥

अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां मृतवासरे। अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह॥२२॥
स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देवं पितामहम्। रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा न चेहावर्त्तते पुनः॥२३॥
त्रिवित्तपूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात्। स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्धं गयाशिरे॥२४॥

शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद् गयाशिरे।
पितरो यान्ति देवत्वं नात्र कार्य्या विचारणा॥२५॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे व्यास! प्रथम दिन पिण्ड प्रदान पञ्चाग्नि तथा पदत्रय पर देना होगा। कार्त्तिक संक्रमण के समय जो श्राद्ध करता है, उसे अक्षय फल मिलता है। गया में नवदैवत् तथा द्वादश दैवत् श्राद्ध करना चाहिये। अष्टका, वृद्धि के दिन, गया में तथा मृतक की तिथि के समय माता का श्राद्ध अलग करे। अन्यत्र पिता के ही साथ माता का भी श्राद्ध होगा। दशाश्वमेध में स्नान करके पितामह ब्रह्मा का दर्शन करे। तब रुद्र का चरण स्पर्श करने से मुक्तिलाभ होता है। ऐसे व्यक्ति को पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। नाना धन के साथ सम्पूर्ण पृथिवी को तीन बार दान करने का जो फल है, वही फल गयाधाम में मात्र एक बार पिण्ड देने से होता है। यदि कोई व्यक्ति गयाशिर पर शमी के पत्ते इतना भी पिण्ड प्रदान करता है, उसके पितरों को मात्र उतने से ही देवत्व की निःसन्देह प्राप्ति हो जायेगी!॥२१-२५॥

मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता। अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यमवाप्नुयात्॥२६॥

गयाशीर्षे तु यः पिण्डान्नाम्ना येषां तु निर्वपेत्।
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः॥२७॥

पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा वटतले ततः।
पिण्डं दद्यात्पितृणाञ्च सकलं तारयेत्कुलम्॥२८॥
वटमूलं समासाद्य शाकेनोष्णोदकेन च।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता॥२९॥
कृते श्राद्धेऽक्षयवटे दृष्ट्वा च प्रपितामहम्।
अक्षयान्लभते लोकान्कुलानामुद्धरेच्छतम्।३०॥

महादेव ने कहा है कि मुण्डपृष्ठ तीर्थ जाने वाला अल्पपुण्य मनुष्य भी महान् तप:फललाभ कर लेता है। जिसका नाम लेकर गया में पिण्ड प्रदान होता है, वे नरक में रहने पर भी स्वर्ग चले जाते हैं। जो पितर स्वर्ग में रहते हैं, उनको मोक्ष मिल जाता है। पांचवें दिन गदालोल में स्नानोपरान्त अक्षयवट के नीचे पिण्डदान करने से उस व्यक्ति के पितृकुल का उद्धार हो जाता है। यदि इस अक्षयवट के नीचे जाकर केवल शाक तथा गर्म पानी का भी एक ब्राह्मण को भोजन करा दिया जाये, तब एक कोटि ब्राह्मण भोजन का फल प्राप्त होगा। इस वृक्ष के नीचे श्राद्ध करके जो प्रपितामह देव का दर्शन करने जाता है, उसे आवागमन रहित स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वह अपनी १०० पीढ़ियों का उद्धारक हो जाता है॥२६-३०॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेद्वा अश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥३१॥

प्रेतः कश्चित्समुद्दिश्य वणिजं कञ्चिदब्रवीत्।
मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्वपनं कुरु।
प्रेतभावाद्विमुक्तः स्यात्स्वर्गदो दातुरेव च॥३२॥

श्रुत्वा वणिग्गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम्। प्रददावनुजैः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ॥३३॥

सर्वे मुक्ता विशालोऽपि सपुत्रोऽभूच्च पिण्डदः।
विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद् द्विजान्॥३४॥

इस आशा से लोग अनेक पुत्रों की कामना करते हैं; क्योंकि उनमें से कोई गया जायेगा, कोई अश्वमेध यज्ञ करेगा अथवा कोई नीलवृष उत्सर्ग करेगा। गया माहात्म्य के सन्दर्भ में एक पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। किसी प्रेतभावापन्न प्राणी ने विशाल नामक बनिये से कहा "हे वणिक्! तुम मेरे नाम से गया में पिण्ड देना। प्रेत के लिये गया में पिण्डदान करने से प्रेत की मुक्ति हो जाती है, साथ ही उसके लिये पिण्ड देने वाला भी स्वर्ग जाता है।" वणिक् ने यह सुनकर गया जाकर उस प्रेत के लिये पिण्ड प्रदान किया। तदनन्तर अपने पूर्वजों हेतु पिण्डदान किया। वणिक् द्वारा पिण्डदान करते ही वह प्रेत तथा वणिक् के मृत पिता-पितामह आदि तथा मृत बन्धु-बान्धव मुक्त हो गये। विशाल वणिक् ने भी पुत्र प्राप्त किया। जन्मान्तर में विशाल वणिक् राजकुल में जन्मा॥३१-३४॥

कथं पुत्रादयः स्युर्मे विप्राश्चोचुर्विशालकम्।
गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति।
विशालोऽयं गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान्॥३५॥

दृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत्।
के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम्॥३६॥
अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकं गतः शुभात्। मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्परः॥३७॥
अयं पितामहः कृष्ण ऋषयोऽनेन घातिताः।
अवीचिं नरकं प्राप्तौ मुक्तौ जातौ च पिण्डद॥३८॥
मुक्तीकृतास्ततः सर्वे व्रजामः स्वर्गमुत्तमम्।
कृतकृत्यो विशालोऽपि राज्यं कृत्वा दिवं ययौ॥३९॥

अब इस राजकुलोत्पन्न पूर्वजन्म वाले इस वणिक् ने ब्राह्मणों से पूछा कि किस कर्म के करने से मुझे पुत्रादि तथा सम्पत्ति लाभ होगा? तब ब्राह्मणों ने इस राजपुत्र को उत्तर दिया कि "तुमने गया में पूर्वजन्म में पिण्ड दिया था। उसी पिण्डदान को करके उस पुण्य के प्रभाव से तुमको पुत्रादि सम्पदा मिलेगी।" तब उस राजपुत्र ने गया में पिण्ड प्रदान किया तथा पुत्रवान् हो गया। तत्पश्चात् राजपुत्र ने एक दिन आकाश में श्वेतवर्ण, रक्तवर्ण तथा कृष्णवर्ण पुरुषों को देख कर पूछा कि आप लोग आकाश में अनेक वर्ण में रहने वाले कौन हैं? तब जो श्वेतवर्ण पुरुष था, उसने कहा—मैं तुम्हारा पिता हूं। पिण्डदान के पुण्य से मैं इस शुभ्र देह के साथ इन्द्रलोक में रहता हूं। हे पुत्र! ये लाल वर्ण वाले तुम्हारे पितामह ब्रह्महत्यारे हैं। ये पापी थे। ये कृष्णवर्ण पुरुष मेरे पितामह अर्थात् तुम्हारे प्रपितामह हैं। ये क्षत्रियवध जनित पापलिप्त हैं। ये चिरकाल नरक में पड़े थे। तुम्हारे पिण्डदान के कारण नरक से मुक्त हो गये। तुमने हम सभी का उद्धार किया है। अब हम स्वर्ग में रहते हैं। राजपुत्र यह सुनकर गद्गद् हो गया। उसने राज्यपालन धर्मतः किया। अन्त में देहान्त के पश्चात् स्वर्ग चला गया॥३५-३९॥

येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।
ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिःसृताः॥४०॥
येषां दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धास्तथापरे।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥४१॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही॥४२॥
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च। वृद्धप्रमातामहश्चाथ मातामही ततः परम्॥४३॥
प्रमातामही च तथा वृद्धप्रमातामहीति वै।
अन्येषाञ्चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥४४॥

॥इति गारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः॥८४॥

जो अपने मृत पिता-पितामहादि का नाम जानते हैं, वे उनका नाम लेकर पिण्डदान करें तथा यह मन्त्र पढ़ें—"हमारे कुल के जो सब पितृगण पिण्डोदकादि श्राद्ध प्रक्रिया रहित हैं, जो चूड़ाकरण के पूर्व

ही मृत हो गया, जो गर्भ से बाहर आते ही मर गये, जिनका दाहादि संस्कार नहीं किया गया, जो अग्निदाह किंवा आत्महत्या से मरे हैं, वे भूमि पर दिये इस पिण्डदान के फल से तृप्त होकर परमगतिलाभ करें। पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामह, मातामही, प्रमातामही, वृद्ध प्रमातामही तथा अन्य सुहृद्गण मेरे द्वारा इस दिये गये पिण्डदान द्वारा अक्षय फललाभ करें"॥४०-४४॥

॥चौरासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

गया माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

स्नात्वा प्रेतशिलादौ तु वरुणास्थामृतेन च। पिण्डं दद्यादिमैर्मन्त्रैरावाह्य च पितॄन्परान्॥१॥
अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामावाहयिष्यामि दर्भपृष्ठे तिलोदकैः॥२॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥३॥
मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥४॥
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥५॥
बन्धुवर्गाश्च ये कचिन्नामगोत्रविवर्जिताः। स्वगोत्रे परगोत्रे वा तेषां पिण्डः प्रकल्पितः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं— प्रेतशिला प्रभृति तीर्थों में स्नान करने के अनन्तर पितरों का आवाहन करे तथा वरुणा के जल से इन मन्त्रों को पढ़ते हुये पितरों को पिण्ड प्रदान करे। मन्त्र है—"जिन्होंने मेरे कुल में जन्म लेकर मरण प्राप्त किया है तथा जिनकी अन्य गति नहीं है, इस कुशपृष्ठ पर तिल जल प्रदान करके मैं उनका आवाहन करता हूं। जो मेरे पितृकुल में मरे हैं, जो मेरी माता के वंश में जन्म लेकर परलोकगत हो गये हैं, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूं। जो मातृकुल में उत्पन्न होकर गतिरहित स्थिति में नरक में पड़े हैं, उनके उद्धार हेतु यह पिण्ड प्रदत्त है। जो दांत निकलने के पहले ही मर गये, जो मातृगर्भ में ही रहते परलोकगत हो गये, उनके उद्धार के लिये यह पिण्डदान कर रहा हूं। जो मेरे बन्धुओं के कुल में जन्मे, उनमें से जिनका नामकरणादि संस्कार नहीं हो सका, जो मरे स्वगोत्री मृत हो गये तथा जिनकी कोई गति नहीं है, उनके लिये यह पिण्ड दे रहा हूं"॥१-६॥

उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये।
आत्मोपघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥७॥

अग्निदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये।
दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेषां पिण्डं ददाम्यहम्॥८॥
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथापरे।
विद्युच्चौरहता ये च तेषां पिण्डं ददाम्यहम्॥९॥

रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये मृताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥१०॥

जो बन्धन से, विष, शस्त्र से मर गये, जिन्होंने आत्मघात किया था, उनके लिये यह पिण्ड दे रहा हूं। जो अग्निदाह से, सिंह-व्याघ्र के आक्रमण से, बड़े दांत वालों के हमले से, सींग से मारे गये, उनके लिये पिण्ड दे रहा हूं। जो अग्नि से दग्ध होकर मरे, मरने के बाद जिनका दाह संस्कार नहीं हो सका, जो बिजली गिरने से मर गये, जिनको चोर-डाकुओं ने मार दिया, उनकी परलोक में सद्गति हो, एतदर्थ यह पिण्डदान किया। जो अन्धतामिस्र आदि नरकों में पड़े हैं, जो मर कर कालसूत्र में पड़े हैं, उनके उद्धारार्थ मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूं॥७-१०॥

असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाके च ये मृताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥११॥

अन्येषां यातनास्थानां प्रेतलोकनिवासिनाम्।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥१२॥
पशुयोनिं गता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः।
अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥१३॥

असंख्ययातनासंस्था ये नीता यमशासनैः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥१४॥
जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्ते स्वेन कर्मणा। मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥१५॥

जो मर कर घोर असिपत्र वन नरक में, कुंभीपाक में पड़े हैं, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड दे रहा हूं। जो अन्य यातनास्थान में, प्रेतलोक में पड़े हैं, उनके उद्धार के लिये यह पिण्ड दे रहा हूं। जो पशु योनि में हैं, जो पक्षी, कीट, सरीसृप योनियों में पड़े हैं, किंवा वृक्षयोनि में हैं, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड दे रहा हूं। जिन्होंने यम के आदेश से असंख्य यातना भोगना चालू रखा है, उनके उद्धारार्थ यह पिण्ड दिया है। जो अनेक योनियों में अपने कर्मों से भ्रमण कर रहे हैं तथा जिनके लिये मनुष्य देह दुर्लभ है, उनके लिये यह पिण्डदान दे रहा हूं॥११-१५॥

ये बान्धवाऽबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥१६॥

ये केचित्प्रेतरूपेण वर्त्तन्ते पितरो मम। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥१७॥
ये मे पितृकुले जाताः कुले मातुस्तथैव च। गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः॥१८॥

ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः।
क्रियालोपगता ये च जातान्धाः पङ्गवस्तथा॥१९॥

विरूपा आमगर्भा ये ज्ञाताज्ञाताः कुले मम।
तेषां पिण्डं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥२०॥
साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा।
मया गयां समासाद्य पितृणां निष्कृतिः कृता॥२१॥
आगतोऽहं गयां देव पितृकार्य्ये गदाधर।
तन्मे साक्षी भवस्वाद्य अनृणोऽहमृणत्रयात्॥२२॥
महानदी ब्रह्मसरोऽक्षयो वटः प्रभासमुद्यन्तमहो गयाशिरः।
सरस्वतीधर्मकधेनुपृष्ठा एते कुरुक्षेत्रगता गयायाम्॥२३॥

।।इति गारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

जो मेरे बन्धु तथा जो अबान्धव भी रहे हैं, अथवा जो जन्मान्तर में मेरे बन्धुत्व बन्धन में बंधे थे, यह पिण्डदान उनको सदा तृप्त रखे। मेरे पितृवंश में से जो लोग प्रेतलोक में पड़े हैं, वे इस पिण्ड जल से तृप्ति लाभ करें। मेरे पितृकुल तथा मातृकुल में जिन्होंने जन्म लिया था, मेरे गुरुकुल, श्वशुरकुल, बन्धुकुल, बान्धव कुल में जिनका जन्म हुआ था तथा परलोक चले गये, जो मेरे कुल में जन्म लेकर पुत्र-स्त्री न होने के कारण पिण्ड तथा उदक क्रिया से जो रहित हैं, जो क्रियायोग के कारण दुर्गतिग्रस्त हैं, जो जन्मान्धता के कारण सभी क्रियाओं के लिये योग्य नहीं हैं, नरक में निवास कर रहे हैं, जो लंगड़े होने के कारण क्रियाहीन होकर नरकगामी हैं, जो विकृत रूप में उत्पन्न होकर कर्मों के अधिकारी नहीं रहे हैं और नरकभोगी हैं, जो अपक्व गर्भावस्था में मृत होकर नरक में पड़े हैं तथा मेरे कुल वाले सभी जिनको मैं जानता हूं तथा जिनको मैं नहीं जानता, मैंने सबके उद्धारार्थ पिण्ड दिया है। वह सबको अक्षय तृप्तिदायक हो जाये। हे ब्रह्मा तथा ईशान आदि देवताओं! आप मेरे कार्य के गवाह रहिये। मैंने गया आकर पितरों के उद्धार का कार्य किया। हे गदाधर! पितृकार्य सम्पादन हेतु मैं गया आ गया। आप मेरे कार्य के साक्षी हो जायें। मैं तीनों ऋणों से आज मुक्त हो गया।' महानदी, ब्रह्मसरोवर, अक्षयवट तथा प्रभास तीर्थ गयाशिर: का आश्रय लेकर अवस्थान करते हैं। कुरुक्षेत्रस्थ सरस्वती, धर्मतीर्थ, धेनुपृष्ठ महातीर्थों की स्थिति भी गया में ही है॥१६-२३॥

॥पचासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
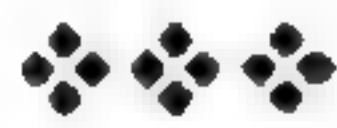
षडशीतितमोऽध्यायः

गया माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

येयं प्रेतशिला ख्याता गयायां सा त्रिधा स्थिता।
प्रभासे प्रेतकुण्डे च गयासुरशिरस्यपि॥१॥
धर्मेण धारिता भूत्यै सर्वदेवमयी शिला। प्रेतत्वं ये गता नृणां मित्राद्या बान्धवादयः।
तेषामुद्धरणार्थाय यतः प्रेतशिला ततः॥२॥
अतोऽत्र मुनयो भूपा राजपत्न्यादयः सदा।
तस्यां शिलायां श्राद्धादिकर्त्तारो ब्रह्मलोकगाः॥३॥
गयासुरस्य यन्मुण्डं तस्य पृष्ठे शिला यतः। मुण्डपृष्ठो गिरिस्तस्मात् सर्वदेवमयो ह्ययम्॥४॥
मुण्डपृष्ठस्य पादेषु यतो ब्रह्मसरोमुखाः। अरविन्दवनं तेषु तेन चौरोपलक्षितः॥५॥

ब्रह्मा जी ने कहा—गया में प्रेतशिला नाम वाला तीनों लोकों में प्रसिद्ध तीर्थ है, वह तीन भाग में होकर तीन स्थानों में स्थित है। प्रभास, प्रेतकुण्ड तथा गयाशिरः—इन तीनों स्थान में प्रेतशिला है। धर्म ने स्वयं अपनी महिमा को व्यक्त करने के लिये सर्वदेवात्मक शिला को धारण किया था। मनुष्यों के बन्धु-बान्धवों में से जो प्रेत हो जाते हैं, उनके उद्धार हेतु प्रेतशिला पर पिण्ड प्रदान करे। राजा-राजपत्नी सभी इस शिला पर ही श्राद्ध करें। उनको ब्रह्मलोक का लाभ इस श्राद्ध से होगा। गयासुर के मुण्ड के पीछे वाली शिला ही मुण्डपृष्ठगिरि है, जो सर्वदेवात्मक और महातीर्थ कहा गया है। इस मुण्डपृष्ठ के पाददेश में जो तीर्थ विद्यमान हैं, उनमें से अरविन्दवन अत्यन्त पुण्यप्रद तीर्थ कहा गया है॥१-५॥

अरविन्दो गिरिर्नाम क्रौञ्चपादाङ्कितो यतः।
तस्माद् गिरिः क्रौञ्चपादः पितृणां ब्रह्मलोकदः॥६॥
गदाधरादयो देवा आद्या आदौ व्यवस्थिताः।
शिलारूपेण चाव्यक्तास्तस्माद्देवमयी शिला॥७॥
गयाशिरश्छादयित्वा गुरुत्वादास्थिता शिला।
कालान्तरेण व्यक्तश्च स्थित आदिर्गदाधरः॥८॥
महारुद्रादिदेवैस्तु अनादिनिधनो हरिः। धर्मसंरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये॥९॥
दैत्यराक्षसनाशार्थं मत्स्यपूर्वं यथाऽभवत्। कूर्मो वराहो नृहरिर्वामनो राम ऊर्जितः॥१०॥
यथा दाशरथी रामः कृष्णो बुद्धोऽथ कल्क्यपि।
तथा व्यक्तोऽव्यक्तरूपी आसीदादिर्गदाधरः॥११॥

यह अरविन्द पर्वत क्रौंच पक्षी के पदचिह्न से अंकित है, तभी यह क्रौञ्चपाद तीर्थ कहलाया है। यहां पितरों के लिये श्राद्धादि करे। इससे उनको ब्रह्मलोक लाभ होता है। गदाधर आदि देवता इसी शिला पर (प्रेतशिला) अवस्थित रहते हैं। यह पहले दिखलाई नहीं देती थी। यह गयासुर के मस्तक पर उसे ढंके हुये रखी थी। बाद में यह व्यक्त हो गई। इसी पर गदाधर अवस्थित रहते हैं। यह महातीर्थरूपेण व्यक्त हुई है। जिस प्रकार से आदि-अन्तरहित हरि धर्मरक्षा, अधर्मनाश, दैत्यों-राक्षसों के संहारार्थ महारुद्रादि देवताओं के साथ मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, भार्गव परशुराम, दशरथपुत्र श्रीराम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि का अवतार लेते हैं, वैसे ही लोगों के उद्धारार्थ अव्यक्त गदाधर प्रभु गया में व्यक्त हो गये हैं॥६-११॥

आदिरादौ पूजितोऽत्र देवैर्ब्रह्मादिभिर्यतः। पाद्याद्यैर्गन्धपुष्पाद्यैरत आदिर्गदाधरः॥१२॥
गदाधरं सुरैः सार्द्धमाद्यं गत्वा ददाति यः। अर्घ्यपात्रञ्च पाद्यञ्च गन्धपुष्पञ्च धूपकम्॥१३॥
दीपं नैवेद्यमुत्कृष्टं माल्यानि विविधानि च।
वस्त्राणि मुकुटं घण्टां चामरं प्रेक्षणीयकम्॥१४॥
अलङ्कारादिकं पिण्डमन्नदानादिकं तथा। तेषां तावद्धनं धान्यमायुरारोग्यसम्पदः॥१५॥
पुत्रादिसन्ततिः श्रेयोविद्यार्थं काम ईप्सितः।
भार्य्यास्वर्गादिवासश्च स्वर्गादागत्य राज्यकम्॥१६॥
कुलीनः सत्त्वसम्पन्नो रणे मर्दितशात्रवः। वधबन्धविनिर्मुक्तश्चान्ते मोक्षमवाप्नुयात्।
श्राद्धपिण्डादिकर्त्तारः पितृभिर्ब्रह्मलोकगाः॥१७॥

पूर्वकाल में ब्रह्मा आदि देवताओं ने पाद्य-अर्घ्य-गन्धादि उपहार से गदाधर देवता की अर्चना किया था। तभी इनका नाम आदि गदाधर प्रसिद्ध हो गया। जो मानव गया आकर पहले देवगण के ही साथ गदाधर को पात्र में अर्घ्य, पाद्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, उत्तम नैवेद्य, नाना प्रकार की माला, वस्त्र, मुकुट, घंटा, चामर, दर्पण, अलंकार तथा अन्न आदि प्रदान करते हैं, वे धन, दीर्घायु, स्वस्थ देह, सम्पत्ति, पुत्र-पौत्रादि, मंगल, विद्या, अर्थ आदि इच्छित पदार्थ, पत्नी तथा राज्य और देहान्त होने पर स्वर्ग निवास प्राप्त कर लेते हैं। वह मानव कुलीन होता है। वह शत्रु संहारक होता है। वह स्वयं वध-बन्धनादि में त्राण पाकर अन्तिम समय में स्वर्ग में निवास प्राप्त करता है। वह मोक्ष पाता है। श्राद्ध-पिण्डादि प्रदान करने वाला पितरों को ब्रह्मलोक पहुंचाता है॥१२-१७॥

बलभद्रं येऽर्चयन्ति सुभद्रां बलभद्रकम्।
ज्ञानं प्राप्य श्रियं पुत्रान्व्रजन्ति पुरुषोत्तमम्॥१८॥
पुरुषोत्तमराजस्य सूर्य्यस्य च गणस्य च। पुरतस्तत्र पिण्डादि पितृणां ब्रह्मलोकदः॥१९॥

जो मानव सुभद्रा तथा बलभद्र पूजन करते हैं, वे पुत्र-सन्तान आदि इस लोक का सुख भोग कर अन्तिम समय में ज्ञान पाकर पुरुषोत्तम को प्राप्त करते हैं। पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाकर भगवान् पुरुषोत्तम, सूर्यदेव तथा गणपति के सामने पितरों को पिण्ड देने पर पितृगण ब्रह्मलोक गमन करते हैं॥१८-१९॥

नत्वा कपर्द्दिविघ्नेशं सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते।
कार्त्तिकेयं पूजयित्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥२०॥
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य सर्वरोगैः प्रमुच्यते। वैश्वानरं समभ्यर्च्य उत्तमां दीप्तिमाप्नुयात्॥२१॥
रेवन्तं पूजयित्वाथ अश्वानाप्नोत्यनुत्तमान्।
अभ्यर्च्येन्द्रं महैश्वर्य्यं गौरं सौभाग्यमाप्नुयात्॥२२॥
विद्यां सरस्वतीं प्राच्र्य लक्ष्मीं सम्पूज्य च श्रियम्।
गरुडञ्च समभ्यर्च्य विघ्नवृन्दात्प्रमुच्यते॥२३॥

यहां पर महादेव तथा विघ्नेश्वर को प्रणाम करने से सभी विघ्नों से त्राण होता है। यहां कार्त्तिकेय की पूजा करने वाला ब्रह्मलोक जाता है। पुरुषोत्तम क्षेत्र में बारहों आदित्यों की अर्चना करने वाला सर्वरोग समूह से छुटकारा पाता है। यहां अग्नि पूजक उत्तम दीप्तिलाभ करेगा। यहां रेवन्त देवता का अर्चक सर्वोत्तम अश्व पाता है। इन्द्रपूजक महा ऐश्वर्य तथा गौरी देवी का पुजारी सौभाग्यलाभ करता है। सरस्वती की पूजा करके व्यक्ति विद्या तथा लक्ष्मीपूजक सम्पदा लाभ करता है। गरुड़ का पूजक सम्पदा पाता है तथा सभी विषों से मुक्त बना रहता है॥२०-२३॥

क्षेत्रपालं समभ्यर्च्य ग्रहवृन्दैः प्रमुच्यते। मुण्डपृष्ठं समभ्यर्च्य सर्वकाममवाप्नुयात्॥२४॥
नागाष्टक समभ्यर्च्य नागदष्टो विमुच्यते।
ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥२५॥
बलभद्रं समभ्यर्च्य बलारोग्यमवाप्नुयात्।
सुभद्रां पूजयित्वा तु सौभाग्यं परमाप्नुयात्॥२६॥
सर्वान्कामानवाप्नोति संपूज्य पुरुषोत्तमम्। नारायणं तु संपूज्य नराणामधिपो भवेत्॥२७॥
स्पृष्ट्वा नत्वा नारसिंह संग्रामे विजयी भवेत्।
वराहं पूजयित्वा तु भूमिराज्यमवाप्नुयात्॥२८॥
यो वा विद्याधरौ स्पृष्ट्वा विद्याधरपदं लभेत्।
सर्वान्कामानवाप्नोति संपूज्यादिगदाधरम्॥२९॥
सोमनाथं समभ्यर्च्य शिवलोकमवाप्नुयात्। रुद्रेश्वरं नमस्कृत्य रुद्रलोके महीयते॥३०॥

यहां क्षेत्रपाल की पूजा से सभी ग्रहदोष निवृत्त हो जाते हैं। मुण्डपृष्ठा देवी की पूजा द्वारा सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। अष्टनाग का पूजक नागविष से मुक्ति पाता है। ब्रह्मापूजक ब्रह्मलोक जाता है। बलभद्र पूजक बल एवं निरोगता लाभ करता है। सुभद्रा का पूजक अमित सौभाग्य लाभ करता है। पुरुषोत्तम तीर्थ में पुरुषोत्तम का उपासक सभी अभिलाषाओं की प्राप्ति करता है। नारायण पूजक मनुष्यों का अधिपति बन जाता है। नृसिंह का स्पर्श तथा उनको प्रणाम करने वाला युद्धों में विजयी होता है। वराह पूजक भूमि तथा राज्यलाभ करता है। यहां जो विद्याधर का स्पर्श करता है, उसे विद्याधर पद मिलेगा। गदाधर के पूजक को

सभी कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है। सोमनाथ का अर्चक शिवलोक में जाता है। रुद्रेश्वर को नमस्कार करने वाला रुद्रलोक में आदर पाता है॥२४-३०॥

रामेश्वरं नरो नत्वा रामवत्सुप्रियो भवेत्। ब्रह्मेश्वरं नरः स्तुत्वा ब्रह्मलोकाय कल्प्यते॥३१॥
कालेश्वरं समभ्यर्च्य नरः कालञ्जयो भवेत्। केदारं पूजयित्वा तु शिवलोके महीयते।
सिद्धेश्वरञ्च संपूज्य सिद्धो ब्रह्मपुरं व्रजेत्॥३२॥
आद्यै रुद्रादिभिः सार्द्धं दृष्ट्वा ह्यादिगदाधरम्।
कुलानां शतमुद्धृत्य नयेद् ब्रह्मपुरं नरः॥३३॥

यहां मनुष्य रामेश्वर शिव को नमस्कार करके राम की पूजा करे। वह सब का प्रियपात्र हो जायेगा। ब्रह्मेश्वर की स्तुति करने वाला ब्रह्मलोकगामी होता है। कालेश्वर का अर्चक कालजयी हो जाता है। केदारेश्वर का पूजक शिवलोक लाभ करता है। सिद्धेश्वर की अर्चना करने वाला सिद्धि पाकर ब्रह्मलोक जाता है। रुद्रादि देवगण के साथ गदाधर का दर्शन करने वाले मनुष्यों की सौ पीढ़ी का उद्धार होता है। वे ब्रह्मपुर जाते हैं॥३१-३३॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्।
कामान्संप्राप्नुयात् कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्॥३४॥
राज्यार्थी राज्यमाप्नोति शान्त्यर्थी शान्तिमाप्नुयात्।
सर्वार्थी सर्वमाप्नोति संपूज्यादिगदाधरम्॥३५॥
पुत्रान्पुत्रार्थिनी स्त्री च सौभाग्यञ्च तदर्थिनी। वंशार्थिनी च वंशान्वै प्राप्याचर्यादिगदाधरम्॥३६॥
श्राद्धेन पिण्डदानेन अन्नदानेन वारिदः। ब्रह्मलोकमवाप्नोति संपूज्यादिगदाधरम्॥३७॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थेभ्यो यथा श्रेष्ठा गयापुरी। तथा शिलादिरूपश्च श्रेष्ठश्चैव गदाधरः।
तस्मिन्दृष्टे शिला दृष्टा यतः सर्वं गदाधरः॥३८॥

॥इति गारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः॥८६॥

धर्मार्थी को धर्म, अर्थार्थी को अर्थ, कामना चाहने वाले को सभी कामना तथा मोक्षार्थी को मोक्ष मिलता है। राज्यार्थी राज्य पाते हैं। शान्ति चाहने वाला शान्ति, सर्वार्थी सब कुछ पाता है। यह गदाधर की पूजा से होता है। पुत्रार्थिनी स्त्री पुत्र तथा सौभाग्य चाहने वाली सौभाग्य, वंशवृद्धि चाहने वाली वंश भी गदाधर की कृपा से पाती है। गदाधर की पूजा, श्राद्ध में पिण्डदान तथा अन्नदान (ब्राह्मणादि भोजन) तथा जलदान (तर्पण) से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। पृथिवी पर गंगा में जैसे सर्वप्रधान तीर्थ हैं, उसी प्रकार शिलारूपी देवगण में गदाधर देवता सबसे श्रेष्ठ हैं। अत: गदाधर देवता का दर्शन करने से सर्वदेव दर्शन फल मिलता है॥३४-३८॥

॥छियासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

मन्वन्तर निर्णय वर्णन

हरिरुवाच

चतुर्दश मनून्वक्ष्ये तत्सुतांश्च शुकादिकान्।
मनुः स्वायम्भुवः पूर्वमग्निधाद्याश्च तत्सुताः॥१॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्यः पुलहः क्रतुः। वसिष्ठश्च महातेजा ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः॥२॥
जयाख्याश्चामिताख्याश्च शुक्रो यामास्तथैव च।
गणा द्वादशकाश्चेति चत्वारः सोमपायिनः॥३॥
विश्वभुग्वामदेवेन्द्रो वाष्कलिस्तदरिर्ह्यभूत्। स हतो विष्णुना दैत्यश्चक्रेण सुमहात्मना॥४॥
मनुः स्वारोचिषश्चाथ तत्पुत्रो मण्डलेश्वरः। चैत्रको विनतश्चैव कर्णान्तो विद्युतो रविः॥५॥
बृहद्गुणो नभश्चैव महाबलपराक्रमः।

श्रीहरि ने कहा—चौदह मनु तथा उनकी सन्तति परम्परा को कहूंगा। पूर्वकाल में स्वायम्भुव मनु थे। उनके कतिपय पुत्र अग्नीध्न आदि थे। मरीचि, अत्रि, अंगीरा, पुलत्स्य, पुलह तथा वसिष्ठ तथा क्रतु, ये सप्तर्षि कहे गये हैं। ये सातों ऋषि अग्नीध्न आदि की सन्तान हैं। उन सात ऋषियों से जय, अमित, शुक्र एवं यम नामक चार सोमपायी उत्पन्न हुये। इनकी सन्तान द्वादश गणों में विभक्त हो गयी। तदनन्तर विश्वभुक्, वामदेव तथा इन्द्र उत्पन्न हो गये। वाष्कलि दैत्य उनका प्रबल शत्रु था। महात्मा विष्णु ने चक्र से इस दैत्य के टुकड़े कर दिये। स्वायम्भुव मनु के राज्यकाल के अनन्तर स्वारोचिष मनु आविर्भूत हो गये। उनके पुत्रों का नाम था विनत, कर्णाभ, विद्युत, रवि, बृहद्गण तथा नभ। ये सभी महाबली एवं पराक्रमशाली थे॥१-५॥

ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राण ऋषभो निचुलस्तथा॥६॥
दम्भोलिश्चार्ववीरश्च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः।
तुषिता द्वादश प्रोक्तास्तथा पारावताश्च ये॥७॥
इन्द्रो विपश्चिद्देवानां तद्रिपुः पुरुकृत्सरः। जघान हस्तिरूपेण भगवान्मधुसूदनः॥८॥
औत्तमस्य मनोः पुत्रा आजश्च परशुस्तथा। विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः।
देवो देवावृधो रुद्र महोत्साहाजितस्तथा॥९॥
रथौजा ऊर्ध्वबाहुश्च शरणश्चानघो मुनिः।
सुतपाः शङ्कुरित्येते ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः॥१०॥

चित्रकादि से उर्ज, स्तम्ब, प्राण, ऋषभ, निचुल, दत्तोलि तथा अर्वरीवान नामक सात महर्षि जन्मे। पूर्वकाल में बारह तुषितगण तथा पारावतगण भी जन्मे। तदनन्तर देवराज इन्द्र का जन्म हुआ। पुरुकृत्स

नामक महाबली दैत्य ने इन्द्र से शत्रुता किया। तब भगवान् मधुसूदन ने हाथी का रूप धर कर उसको नष्ट किया। हे रुद्रदेव! स्वारोचिष मनु का जब अधिकार था, तब औत्तम मनु जन्मे। इनके कतिपय पुत्रगण का नाम था आज, परशु, विनीत, सुकेतु, सुमित्र, सुबल, शुचि, देव, देवावृष, महोत्साह, अजित, रथौजा, ऊर्ध्वबाहु, शरण, अनघ, मुनि, सुतपा तथा शंकु। इनमें रथौजा आदि सात सप्तऋषि हुये (ये थे रथौजा, ऊर्ध्वबाहु, शरण, अनघ, मुनि, सुतपा तथा शंकु नामक सप्तर्षि॥६-१०॥

वशवर्त्तिः स्वधामानः शिवाः सत्याः प्रतर्दनाः।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ताः सर्वे द्वादशकास्तु ते॥११॥
इन्द्रः स्वशान्तिस्तच्छुक्रः प्रलम्बो नाम दानवः।
मत्स्यरूपी हरिर्विष्णुस्तं जघान च दानवम्॥१२॥
तामसस्य मनोः पुत्रा जानुजङ्घोऽथ निर्भयः।
नवख्यातिर्नयश्चैव प्रियभृत्यो विविक्षिपः॥१३॥
हवुष्कधिः प्रस्तलाक्षः कृतबन्धुः कृतस्तथा।
ज्योतिर्धामा धृष्टकाव्यश्चैत्रश्चेताग्निहेमको॥१४॥
मुनयः कीर्त्तिताः सप्त सुरागाः स्वधियस्तथा।
हरयो देवतानाञ्च चत्वारः पञ्चविंशकाः॥१५॥
गण इन्द्रः शिबिस्तस्य शत्रुर्भीमरथाः स्मृताः। हरिणा कूर्मरूपेण हतो भीमरथोऽसुरः॥१६॥

तदनन्तर वशवर्त्ती, स्वधामा, शिव, सत्य तथा प्रतर्दन इन पांच देवताओं का आविर्भाव हो गया। इनमें से प्रत्येक की संख्या बारह हो गयी। इसी समय प्रलम्ब नामक एक दानव इन्द्र का शत्रु हो गया। भगवान् विष्णु ने मत्स्य रूप धारण करके उसका वध कर दिया। तदनन्तर तामस मनु उद्भूत हो गये। उनके अनेक पुत्र थे। उनका नाम था जानु, जंघ, निर्भय, नव, ख्याति, नय, प्रियभृत्य, विविक्षिप, दृढेयुधि, प्रस्तलाक्ष, कृतबन्धु, कृत, ज्योतिर्यामा, पृथु, कावा, चैत्र, श्वेताग्नि तथा हेमक। ये सब सुरपालक तथा समृद्धि वाले थे। इनमें से सात लोग सप्तर्षि कहलाये। इन मनु के काल में शिवि नामक मुनि ने इन्द्रत्व लाभ किया था। उनका शत्रु था भीमरथ असुर। हरि ने कूर्मरूपी होकर भीमरथ को निहत कर दिया॥११-१६॥

रैवतस्य मनोः पुत्रा महाप्राणश्च साधकः। वनबन्धुनिरमित्रः प्रत्यङ्गः परहा शुचिः॥१७॥
दृढव्रतः केतुशृङ्ग ऋषयस्तस्य वर्ण्यते। देवश्रीर्वेदबाहुश्च ऊर्ध्वबाहुस्तथैव च।
हिरण्यरोमा पर्जन्यः सत्यनामा स्वधाम च॥१८॥
अभूतरजसश्चैव तथा देवाश्वमेधसः। वैकुण्ठश्चामृतश्चैव चत्वारो देवतागणाः॥१९॥
गणे चतुर्दश सुरा विभुरिन्द्रः प्रतापवान्। शान्तशत्रुर्हतो दैत्यो हंसरूपेण विष्णुना॥२०॥

इसके बाद रैवत मनु का आविर्भाव हुआ था। उनके अनेक पुत्र थे। यथा—महाप्राण, साधक,

बलबन्धु, निरमित्र, प्रत्यङ्ग, परहा, शुचि, दृढव्रत तथा केतुशृंग। इनके वंश में देवश्री, देवबाहु, ऊर्ध्वबाहु, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सत्य तथा सुधाम—ये सप्तर्षि हो गये। इन सात ऋषियों से चार देवता उत्पन्न हो गये। यथा—सुमेधा, वैकुण्ठ, अमृत, अभूतरज। ये चार देवता १४ गणों में विभक्त हैं। विभु नामक कोई सिद्ध प्रतापी इस समय इन्द्र बने। शान्त दैत्य इनका शत्रु था। विष्णु ने हंस रूप लेकर इसका वध किया॥१७-२०॥

चाक्षुषस्य मनोः पुत्रा ऊरुः पुरुर्महाबलः।
शतद्युम्नस्तपस्वी च सत्यबाहुः कृतिस्तथा॥२१॥
अग्निष्णुरतिरात्रश्च सुद्युम्नश्च तथा नरः। हविष्मान्सुतनुः श्रीमान्स्वधामा विरजस्तथा।
अभिमानः सहिष्णुश्च मधुश्री ऋषयः स्मृताः॥२२॥
आर्य्या प्रसुता भाव्यश्च लेखाश्च पृथुकास्तथा।
अष्टकस्य गणाः पञ्च तथा प्रोक्ता दिवौकसाम्॥२३॥
इन्द्रो मनोजवः शत्रुर्महाकालो महाभुजः। अश्वरूपेण स हतो हरिणा लोकधारिणा॥२४॥
मनोर्वैवस्वतस्यैते पुत्रा विष्णुपरायणाः। इक्ष्वाकुरथ नाभाख्यो विष्टिः सर्जातिरेव च॥२५॥
लजिप्यन्तस्तथा पांशुर्नभो नेदिष्ठ एव च। करूषश्च पृषध्रश्च सुद्युम्नश्च मनोः सुताः॥२६॥
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्जामदग्निश्च कश्यपः।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ सप्तमः॥२७॥
तथा ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतः परिकीर्त्तिताः।
आदित्या वसवः साध्या गणा द्वादशकास्त्रयः॥२८॥
एकादश तथा रुद्रा वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः।
द्वावश्विनौ विनिर्दिष्टौ विश्वेदेवास्तथा दश।
दशैवाङ्गिरसो देवा नव देवगणास्तथा॥२९॥
तेजस्वी नाम वै शक्रो हिरण्याक्षो रिपुः स्मृतः।
हतो वराहरूपेण हिरण्याख्योऽथ विष्णुना॥३०॥

चाक्षुष मनु के अनेक पुत्र जन्मे थे। यथा—उरु, पुरु, महाबल, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्य, कृति, अग्निष्णु, अतिरात्र, सुद्युम्न, हविष्मान्, उत्तम, श्रीमान्, सुधामा, विरज, अभिमान, सहिष्णु, मधुश्री। ये सभी ऋषि थे। आर्य, प्रभूत, भाव्य, लेख, पृथुक ये पांच देवता हैं। ये प्रत्येक आठ संख्या वाले हैं। उस समय भुजवीर्यशाली, महाशान नाम का एक दैत्य इन्द्रशत्रु था। लोकपालक हरि ने अश्व रूप धारण करके उनका विनाश किया था। वैवस्वत मनु के कई पुत्र जन्मे थे। वे सभी विष्णुपरायण थे। उनके नाम हैं—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नीष्यन्त, प्रंशु, नभ, नेदिष्ट, करुष, पृषध्र, सुहास। वैवस्वत मनु का जब शासन काल था, तब अत्रि, वसिष्ठ, जमदग्नि, कश्यप, गौतम, भरद्वाज तथा विश्वामित्र नामक सप्तर्षि

आविर्भूत हुये थे। तभी ४९ देवगण, ११ रुद्र, १२ आदित्य, आठ वसु, अश्विनीकुमार द्वय, दस विश्वेदेव, दस आंगीरस तथा नौ देवगण का आविर्भाव हो गया। उस समय महाबली तथा विक्रमी इन्द्रशत्रु अमित तेजस्वी हिरण्याक्ष दैत्य जन्मा। विष्णु ने वराह रूप धारण करके उसका विनाश किया॥२१-३०॥

वक्ष्ये मनोर्भविष्यस्य सावर्ण्याख्यस्य वै सुतान्।
विजयश्चार्ववीरश्च निर्देहः सत्यवाक्कृतिः।
वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च वाचः संगतिरेव च॥३१॥
अश्वत्थामा कृपो व्यासो गालवो दीप्तिमानथ।
ऋष्यशृङ्गस्तथा राम ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः॥३२॥
सुतपा अमृताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुराः।
तेषां गणस्तु देवानामेकैको विंशकः स्मृतः॥३३॥
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति। दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम्।
ऋद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति॥३४॥

अब सावर्णि मनु के पुत्रों का विवरण कहता हूं। विरज, अर्वरीवान्, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वाच तथा संगति इन मनु की सन्तान थे। अश्वत्थामा, कृप, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, ऋष्यशृंग तथा राम इन मनु के शासन के समय सप्तर्षि थे। इन मनु के समय सुतपा, अमृताभ, मुख्य ये देवता उत्पन्न हुये। इनके प्रत्येक गण में बीस-बीस देवता थे। इसी मन्वन्तर में विरोचन पुत्र बलि ने इन्द्रत्व पाने हेतु यज्ञ किया। विष्णु ने इस यज्ञ में वामन रूप धारण करके आगमन किया तथा बलि से तीन पग मात्र भूमि मांगी। बलि ने तत्क्षण विष्णु को तीन पग भूमि दान किया तथा इन्द्रत्व त्याग कर सिद्धि पाई॥३१-३४॥

वारुणेर्दक्षसावर्णेर्नवमस्य सुताञ् शृणु। धृष्टिकेतुर्दीप्तिकेतुः पञ्चहस्तो निराकृतिः।
पृथुश्रवा बृहद्द्युम्न ऋचीको बृहतो गुणः॥३५॥
मेधातिथिर्द्युतिश्चैव सबलो वसुरेव च। ज्योतिष्मान्हव्यकव्यौ च ऋषयो विभुरीश्वरः॥३६॥
परो मरीचिर्गर्भश्च स्वधर्माणश्च ते त्रयः। देवशत्रुः कालकाक्षस्तद्धन्ता पद्मनाभकः॥३७॥
धर्मपुत्रस्य पुत्रांस्तु दशमस्य मनोः शृणु।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिश्रेण्यश्च वीर्य्यवान्॥३८॥
शतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथः।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च शान्तिरिन्द्रः प्रतापवान्॥३९॥

अब दशम मनु दक्षसावर्णि की सन्तति का वृत्तान्त सुनें। धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निराकृति, पृथुश्रवा, बृहद्युम्न, ऋचीक, बृहद्गुण इन मनु की सन्तान थे। इन मनु के वंश में मेधातिथि, द्युति, सबल, वसु, ज्योतिष्मान्, हव्य, कव्य—ये सात सप्तर्षि थे। इस वंश के अन्य ऋषित्रय का नाम था पार-मरीचि-

गर्भ-सुधर्म। इनमें से प्रत्येक बारह गणों में विभक्त थे। हे शिव! उस समय के इन्द्र थे अद्भुद नामक महाबली इन्द्र। कालकाक्ष दैत्य इन इन्द्र का शत्रु था। पद्मनाभ विष्णु ने उसका वध किया। इसके पश्चात् धर्म के पुत्र दशम मनु की सन्तति का विवरण सुनिये। यथा—सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिश्रवा, वीर्यवान्, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा, शान्ति तथा इन्द्र॥३५-३९॥

अयोमूर्त्तिर्हविष्मांश्च सुकृतिश्चाव्ययस्तथा। लाभगोऽप्रतिमश्चैव सौरभ ऋषयस्तथा॥४०॥

प्राणाख्याः शतसंख्यास्तु देवतानां गणस्तदा।
बलिशत्रुस्तं हरिश्च गदया घातयिष्यति॥४१॥

रुद्रपुत्रस्य ते पुत्रान् वक्ष्याम्येकादशस्य तु। सर्वत्रगः सुशर्मा च देवानीकः पुरुर्गुरुः॥४२॥
क्षेत्रवर्णो दृढेषुश्च आर्द्रकः पुत्रकस्तथा। हविष्मांश्च हविष्यश्च वरुणो विश्वविस्तरौ॥४३॥

विष्णुश्चैवाग्नितेजाश्च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः।
विहङ्गमाः कामगमा निर्माणरुचयस्तथा॥४४॥

एकैक रुचयस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः। दशग्रीवो रिपुस्तस्य श्रीरूपी घातयिष्यति॥४५॥
मनोस्तु दक्षपुत्रस्य द्वादशस्यात्मजाञ् शृणु। देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः॥४६॥

अयोमूर्त्ति, हविष्मान्, सुकृति, अव्यय, नाभाग, प्रतिम तथा सौरभ इस समय के सप्तऋषि थे। इस वंश में सौ प्राणाख्य देवगण जन्मे थे। इस मन्वन्तर में शान्ति नामक महाबली इन्द्र थे। बलि नामक प्रबल दैत्य इस मन्वन्तर के इन्द्र शान्ति का प्रबल शत्रु हो गया था। श्रीहरि ने गदा के आघात से उसे निहत कर दिया। तत्पश्चात् रुद्र के पुत्र एकादशवें मनु की सन्तान का वर्णन सुनें। सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक पुरु, गुरु, क्षेत्रवर्ण, दृढ़ेयु, आर्द्रक इन ग्यारहवें मनु की सन्तान थे। इस मन्वन्तर में हविष्मान्, हविष्य, वपुष्मान, विष्णु, वारुणि, निश्च तथा अग्नितेजा नाम के सप्तर्षि भी थे। इन मनु के अधिकार काल के समय ही इच्छानुरूप गति वाले विहङ्गमों का जन्म हुआ। ये अत्यन्त मनोहर देहधारी थे। ये श्रेणीविभाग के अनुसार ३१ श्रेणियों में विभक्त थे। इस काल में जो इन्द्र थे, उनका नाम था वृष। इस समय दशग्रीव नामक राक्षस भी उत्पन्न हो गया जो इन्द्र शत्रु था। श्रीरूपी विष्णु ने उसका नाश कर दिया था॥४०-४६॥

मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रबिन्दुश्च वीर्य्यवान्। मित्रवाहः प्रवाहश्च दक्षपुत्रमनोः सुताः॥४७॥
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्त्तिस्तपोरतिः। तपोधृतिर्द्युतिश्चान्यः सप्तर्षयस्तपोधनाः॥४८॥
स्वधर्माणः सुतपसो हरितो रोहितस्तथा। सुरारयो गणाश्चैते प्रत्येकं दशको गणः॥४९॥

अब दक्षपुत्र बारहवें मनु के पुत्रों का विवरण सुनिये। देव, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रविन्द, मित्रवाह, प्रवाह। ये बारहवें मनु की सन्तान थे। द्वादश मनु के राजत्व काल में तपसी, सुतपा, तपोमूर्त्ति, तपोधृति, घुति तथा तपोधन नामक सात ऋषि आविर्भूत हो गये थे। ये सब तपस्वी थे। इस मन्वन्तर में सुधर्मा, सुतपा, हरित, रोहित तथा तारा नामक गण प्रादुर्भूत हो गये। इनमें से प्रत्येक दस गण वाले थे॥४७-४९॥

ऋतधामा च भद्रेन्द्रस्तारको नाम तद्रिपुः। हरिर्नपुंसको भूत्वा घातयिष्यति शङ्कर॥५०॥

त्रयोदशस्य रौच्यस्य मनोः पुत्रान्निबोध मे। चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधर्मरतो धृतिः॥५१॥
सुनेत्रः क्षेत्रवृत्तिश्च सुनयो धर्मपो दृढः। धृतिमानव्ययश्चैव निशारूपो निरुत्सुकः॥५२॥
निर्माणस्तत्त्वदर्शी च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः।
स्वरोमाणः स्वधर्माणः स्वकर्माणस्तथामराः॥५३॥
त्रयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवानां तत्र वै गणाः।
इन्द्रो दिवस्पतिः शत्रुस्त्विष्टिभो नाम दानवः॥५४॥
मायूरेण च रूपेण घातयिष्यति माधवः। चतुर्दशस्य भौत्यस्य शृणु पुत्रान्मनोर्मम॥५५॥
ऊरुर्गभीरो धृष्टश्च तरस्वी ग्राह एव च। अभिमानी प्रवीरश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा।
तेजस्वी दुर्लभश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः॥५६॥
अग्निधश्चाग्निबाहुश्च मागधश्च तथा शुचिः।
अजितो मुक्तशुक्रौ च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः॥५७॥
चाक्षुषाः कर्मनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिनस्तथा।
वाचावृथा देवगणाः पञ्च प्रोक्तास्तु सप्तकाः॥५८॥
शुचिरिन्द्रो महादैत्यो रिपुहन्ता हरिः स्वयम्।
एको देवश्चतुर्द्धा तु व्यासरूपेण विष्णुना॥५९॥
कृतस्ततः पुराणानि विद्याश्चाष्टादशैव तु।
अङ्गानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः॥६०॥
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च आयुर्वेदार्थशास्त्रकम्। धनुर्वेदश्च गान्धर्वो विद्या ह्यष्टादशैव ताः॥६१॥

॥इति गारुडे महापुराणे मन्वन्तरनिर्णये सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

हे शंकर! इस मन्वन्तर के इन्द्र थे ऋतधामा। इस समय तारक दैत्य देवगण तथा इन्द्र का शत्रु उत्पन्न हो गया, जिसका वध हरि ने नपुंसक रूप धारण करके किया। तेरहवें मनु रुचि के पुत्रों का नाम सुनिये। यथा—चित्रसेन, विचित्र, तपधर्मरत, धृति, सुनेत्र, क्षेत्रवृत्ति, सुनयो ये सभी तेरहवें मनु के पुत्र थे। इनके अन्य सात पुत्र सप्तर्षि (इस मन्वन्तर के) हो गये। यथा—धर्मप, धृतिमान्, अव्यय, निशारूप, निरुत्सुक, निर्मोह, तत्वदर्शी, सुतपा। तदनन्तर सुरोमा, सुधर्मा, सुकर्मा नामक तीन गण उत्पन्न हुये। ये प्रत्येक तीस-तीस थे। इस समय सुरपति इन्द्र थे दिवस्पति। टिट्टभ नामक दानव उनका शत्रु था। माधव देव विष्णु ने मायु रूप धारण करके उसे निहत कर दिया। चौदहवें मनु थे भौत्य। उनके पुत्रों का नाम था—उरु, गभीर, धृष्ट, तरस्वी, ग्रह, अभिमानी, प्रवीर, जिष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी, दुर्लभ। अग्नीध्न, अग्निबाहु, मागध, अशुचि, अजित, मुक्त, शुक्र इस मन्वन्तर के सप्तर्षि थे। इस समय के पांच गण थे चाक्षुष, कर्मनिष्ठ, पवित्र, भ्राजी तथा वचोवृद्ध। ये प्रत्येक सात संख्या में थे। इस मन्वन्तर के इन्द्र थे शुचि। उनका

शत्रु था महादैत्य। हरि ने उसका स्वयं वध किया। इसी काल में व्यास रूप धारण करके प्रभु विष्णु ने एक वेद को चार भाग में बांटा तथा अट्ठारह पुराणों का तथा अट्ठारह विद्याओं की रचना की। अष्टादश विद्या हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः तथा ज्योतिष (षडङ्ग) तथा चार वेद—मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, धनुर्वेद तथा आयुर्वेद और गान्धर्व शास्त्र। यही हैं १८ विद्या॥५०-६१॥

॥सत्तासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

रुचि-पितृगण संवाद

सूत उवाच

हरिर्मन्वन्तराण्याह ब्रह्मादिभ्यो हराय च।
मार्कण्डेयः पितृस्तोत्रं क्रौञ्चुकिं प्राह तच्छृणु॥१॥

सूतजी ने कहा—हरि ने ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ आये त्रिलोचन देव से चौदहों मन्वन्तर का जो वर्णन किया था, वह आप लोगों से कह दिया। अब मैं वह पितृस्तोत्र कहता हूं, जिसे मार्कण्डेय ने ऋषि कौष्टुकि से कहा था॥१॥

मार्कण्डेय उवाच

रुचिः प्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहंकृतिः। यत्रास्तमितमायी च चचार पृथिवीमिमाम्॥२॥
अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम्। विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुः स्वपितरो मुनिम्॥३॥

मार्कण्डेय ने कहा—पूर्वकाल में रुचि नामक महर्षि संसार की माया-मोह तथा अहंकार को छोड़कर पृथिवी भ्रमण करने लगे। उन्होंने अग्नि सेवा तथा गृह का त्याग कर दिया था। वे दिन-रात में मात्र एक ही बार फलमूल का तनिक आहार करते थे। कभी कहीं आश्रम आदि में नहीं रुकते थे। उनको इस प्रकार विमुक्त संग देखकर उनके पितृगण ने उनसे कहा॥२-३॥

पितर ऊचुः

वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः। स्वर्गापवर्गसेतुत्वाद्बन्धस्तेनामिषं विना॥४॥
गृही समस्तदेवानां पितृणाञ्च तथार्हणम्। ऋषीणामर्थिनाञ्चैव कुर्वन्लोकानवाप्नुयात्॥५॥
स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चारणतः पितॄन्। विभजत्यन्नदानेन भृत्याद्यानतिथीनपि॥६॥
सत्त्वं दैवादृणाद् बन्धमिममस्मदृणादपि। अवाप्तोऽसि मनुष्यर्षे भूतेभ्यश्च दिने दिने॥७॥

अनुत्पाद्य सुतान्देवान्सन्तर्प्य च पितृंस्तथा।
अकृत्वा च कथं मौण्ड्यं स्वर्गतिं गन्तुमिच्छसि॥८॥
क्लेशबोधैककं पुत्र अन्यायेन भवेत्तव। मृतस्य नरकं त्यक्त्वा क्लेश एवान्यजन्मनि॥९॥

पितरों ने कहा—हे पुत्र! तुम किसलिये विवाह नहीं करते हो? यह महापुण्यप्रद कार्य है, यह तुमको ज्ञात तो होगा। विवाह द्वारा ही स्वर्ग-मोक्ष मिलता है। गृहस्थ ही देवता, पितर, ऋषिगण तथा धनार्थी लोगों की सेवा करता है। जिससे उसे मृत्यु के पश्चात् उत्तम गति मिलती है। देवगण को 'स्वाहा' उच्चारण से तथा पितरों को 'स्वधा' उच्चारण से अन्नदान करे। अतिथि तथा भृत्यों को भी अन्न से सन्तुष्ट करे। तुमने सभी कर्मों को त्याग दिया है। अत: तुम देवऋण, पितृऋण से ग्रस्त ही रहोगे। मानव, ऋषि तथा भूतवर्ग के तुम दिनों-दिन ऋणी हो जा रहे हो। तुम तो पुत्र उत्पत्ति, देवपूजा तथा पितरों को तर्पण किये बिना स्वर्ग पाना चाहते हो? हे पुत्र! तुम तो व्यर्थ में कष्ट सह रहे हो। इससे तुमको कदापि सुखप्राप्ति नहीं होगी। जो व्यक्ति अपने पितरों को नरक से त्राण नहीं दिलाता, उसका अगला जन्म दु:खपूर्ण ही रहता है॥४-९॥

रुचिरुवाच

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा। भवत्यतो मया पूर्वं न कृतो दारसंग्रहः॥१०॥
आत्मनः संशयोपायः क्रियते क्षणमन्त्रणात्।
स्वमुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात्॥११॥
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं य आत्मा निष्परिग्रहः।
ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि विद्याम्भोभिर्वरं हि तत्॥१२॥
अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काङ्कितो बुधैः। आत्मा तत्त्वज्ञानतोयैः प्रक्षाल्य नियतेन्द्रियैः॥१३॥

रुचि ने कहा—पत्नी परिग्रह करने से व्यक्ति को दु:खभोग तथा पापसंचय करना पड़ता है। अन्तकाल में उसकी अधोगति होती है। यह विचार करके मैंने आज तक विवाह नहीं किया। स्त्री से तो क्षणमात्र में आत्मा के प्रति संशय उत्पन्न हो जाता है। स्त्री तो कदापि मुक्ति का कारण नहीं हो सकती। उससे तो सदैव दु:ख की ही संभावना रहती है। जो व्यक्ति परिग्रह से रहित रहता है, उसकी आत्मा यदि ममता के कीचड़ से दूषित भी हो जाये, तथापि वह उसे विद्यारूपी जल द्वारा धोकर आत्मा को पावन कर सकता है। इसलिये स्त्री परिग्रह करके आत्मा की मलिनता उत्पन्न करने की जगह ज्ञानोपार्जन से आत्मा का उत्कर्ष करना ही श्रेयप्रद है। बारम्बार जन्म लेने से आत्मा दिनोंदिन कर्म बन्धनरूपी कीचड़ से सन जाता है। इन्द्रियविजयी विद्वान् लोग तत्वज्ञानरूपी जल से कीचड़ सनी आत्मा को धोकर शुद्ध तथा पवित्र कर देते हैं॥१०-१३॥

पितर ऊचुः

युक्तं प्रक्षालनं कर्त्तु मात्मनोऽपि यतेन्द्रियैः।
किन्तु नोपायमार्गोऽयं यतस्वं पुत्र! वर्त्तसे॥१४॥

पञ्चयज्ञैस्तपोदानैरशुभं नुदतस्तव। फलाभिसन्धिरहितैः पूर्वकर्म शुभाशुभैः॥१५॥
एवं न बाधा भवति कुर्वतः करणात्मकम्।
न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनतिसन्निभम्॥१६॥
पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयते ह्यनिशं तथा।
सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम्॥१७॥
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते। रक्ष्यश्च स्वविवेकैर्न पापपङ्केन दह्यते॥१८॥

पितरों ने रुचि का कथन सुनकर कहा—हे वत्स! तुम्हारा कथन अवश्य सत्य है। जितेन्द्रियता द्वारा आत्मा का शोधन करना विहित तो है, तथापि उसके शोधनार्थ तुम्हारे द्वारा चुना गया मार्ग अनुचित है तथा उत्तम नहीं है। यदि तुम फल कामना त्याग कर पंचयज्ञ, तप तथा दानादि कर्म करोगे, उससे तुम्हारा कोई अशुभ नहीं होगा। फलकामना रहित कर्म संसार-बन्धन का कारण नहीं होता। हे पुत्र! मनुष्य पूर्व जन्म के पुण्य-पाप रूप कर्मों को संचित किये रहता है। ऐसे संचित कर्म सुख-दुःख का भोग किये बिना नष्ट नहीं होते। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे कर्म द्वारा आत्मा को शुद्ध करते हैं। वे भवबन्धन से रहित हो जाते हैं। विवेकरूपी शक्ति से जो लोग आत्मा को आच्छादित कर देते हैं, उनका आत्मा कदापि पापों से लिप्त नहीं होता॥१४-१८॥

रुचिरुवाच

अविद्या पच्यते वेदे कर्ममार्गाः पितामहाः।
तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम्॥१९॥

रुचि ने कहा—हे पितामहगण! वेद से ज्ञात होता है कि कर्ममार्ग अविद्या से युक्त है। तब आप ऐसे कर्ममार्ग में मुझे क्यों लगा रहे हैं॥१९॥

पितर ऊचुः

अविद्या सर्वमेवैतत्कर्मणैतन्मृषा वचः। किन्तु विद्यापरिव्याप्तौ हेतुः कर्म न संशयः॥२०॥
विहिताकरणानर्थो न सद्भिः क्रियते तु यः।
संयमो मुक्तये योऽन्यः प्रत्युताधोगतिप्रदः॥२१॥
प्रक्षालयामीति भवान्यदेतन्मन्यते वरम्। विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वमसि दह्यसे॥२२॥
अविद्याऽप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम्।
अनुष्ठानाभ्युपायेन बन्धयोग्यापि नो हि सा॥२३॥
तस्माद्वत्स! कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम्।
आजन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलौकिकम्॥२४॥

पितरों ने कहा—यह कथन गलत है कि कर्म द्वारा केवल अविद्या का संचय होता है। यही विद्या का हेतु भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। जो लोग बुद्धिहीन हैं वे मुक्ति की प्राप्ति कराने वाले कर्म का

आचरण न करके कठोर संयम तथा गुरुतर उपवास आदि करते हैं, ऐश्वर्य त्याग कर प्रण का कर्षण करते हैं। उनका कर्म मोक्षप्रद न होकर अधोगति ही प्रदान करता है। तुम जो यह धारणा रखते हो कि विवेक जल से आत्मा को धोना श्रेयःस्कर है, यह उचित विचार नहीं है; क्योंकि तुम जो विहित कार्य है, उसको नहीं कर रहे हो। इस पाप से दिनोंदिन दग्ध होते जा रहे हो। विशेष परिस्थिति में विष भी उपकारी हो जाता है, इसी प्रकार कभी-कभी अविद्या से भी (कर्म से भी) उपकार होना संभव हो जाता है। कार्य के कौशल भेद के द्वारा अविद्या भी संसार-बन्धन का कारण न होकर मुक्ति का कारण हो जाती है। हे पुत्र! तुम सविधि विवाह करो। यदि तुम मानव जन्म लेकर परलोक हेतु कुछ नियमानुकूल कार्य नहीं करोगे, तब तुम्हारा यह जन्म निष्फल होगा॥२०-२४॥

रुचिरुवाच

वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः! सम्प्रदास्यति।
भार्यान्तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः॥२५॥

रुचि ने कहा—हे पितृगण! मैं वृद्ध हो गया। इस आयु में अब कौन मुझे पत्नी प्रदान करेगा? मैं दरिद्र हूं। दरिद्र के लिये पत्नी परिग्रह अत्यन्त दुःखद कार्य है॥२५॥

पितर ऊचुः

अस्माकं पतनं वत्स! भवतश्चाप्यधोगतिः।
नूनं भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः॥२६॥

पितृगण कहते हैं—"हे पुत्र! यदि तुम विवाह तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितरों की जलप्रत्याशा का कोई उपाय नहीं करोगे, तब हमारा पतन तो होगा ही, तुम्हारी भी अधोगति अवश्य होगी। अतः तुम हमारे वाक्य को अपनाकर पत्नी परिग्रह करो"॥२६॥

इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम।
बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वातहता इव॥२७॥
मुनिः क्रौञ्चुकये प्राह मार्कण्डेयो महातपाः। रुचिवृत्तान्तमखिलं पितृसंवादलक्षणम्॥२८॥

॥इति गारुडे महापुराणे रुचिस्तोत्रं नाम अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥

पितृगण रुचि से यह कहकर वैसे अदृश्य हो गये, जैसे वायु के कारण दीपक से अग्नि सहसा अदृश्य हो जाती है। महातपस्वी मार्कण्डेय ने अपने शिष्य क्रौष्टुकि से रुचि-पितृगण संवाद इस प्रकार कहा॥२७-२८॥

॥अट्ठासीवां अध्याय समाप्त॥

ऊननवतितमोऽध्यायः

रुचि द्वारा पितृगण का स्तोत्र कथन

सूत उवाच

पृष्ठः क्रौञ्चुकिनोवाच मार्कण्डेयः पुनश्च तम्। स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः॥१॥

कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राय मेदिनीम्।
कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्येन दीपितः।
चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः॥२॥

किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः। क्षिप्रं भवेन्मत्पितृणां ममाभ्युदयकारकम्॥३॥

इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः।
तपसाऽऽराधयाम्येनं ब्राह्मणं कमलोद्भवम्॥४॥

ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे महामनाः। तत्र स्थितश्चिरं कालं वनेषु नियमस्थितः।
आराधनाय स तदा परं नियममास्थितः॥५॥

सूतजी ने कहा—क्रौष्टुकि ने गुरु मार्कण्डेय मुनि से पुनः प्रश्न किया कि हे प्रभो! अब रुचि का यह प्रसंग विस्तार से कहिये। तब महर्षि मार्कण्डेय ने उनसे कहा—"महर्षि रुचि तब पितरों के वाक्य से उद्विग्न मन वाले हो गये। वे विवाहार्थ कन्या की इच्छा से पृथिवी की यात्रा करने लगे। कहीं वे कन्यालाभ नहीं कर सके, तथापि पितरों की वाक्यरूपी अग्नि से वे सन्तप्त हो गये थे। अतः वे विकल होकर विचाररत हो गये कि अब क्या करूं, कहां जाऊं, कैसे पत्नी पाऊं? किस उपाय द्वारा मेरा तथा पितरों का सतत् अभ्युदय हो सकेगा? ऐसा सोचते हुये महात्मा रुचि ने यह तय किया कि "देवता की आराधना बिना मेरी इच्छा कदापि पूर्ण नहीं होगी। अब मैं कमलयोनि भगवान् ब्रह्मा की उपासना करूंगा। इसी से मेरी इच्छा पूर्ण होगी।" यह तय करके महात्मा रुचि ने दिव्यमान वाले सौ वर्ष तक (एक दिव्य वर्ष = मानव का ३६० वर्ष) तप किया। उपवास आदि नियम तत्पर रहकर वे वनों में रहते ब्रह्मा की उपासना करते रहते थे"॥१-५॥

ततः प्रदर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः। उवाचाथ प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवांछितम्॥६॥

ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम्।
पितृणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम्॥७॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा रुचि पर प्रसन्न हो गये। वे उनके सामने प्रकट हो गये तथा कहा—"मुझसे अपनी इच्छा कहो, मैं उसे पूर्ण करूंगा।" यह सुनकर जगदाधार ब्रह्मा को प्रणाम करने के अनन्तर रुचि ने कहा—"पितरों ने मुझे विवाह तथा सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया है, जिससे उनका उद्धार हो सके। यही मेरी कामना है। आप यह वर देने की कृपा करिये"॥६-७॥

ब्रह्मोवाच

प्रजापतिस्त्वं भविता स्त्रष्टव्या भवता प्रजाः।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान्विप्रः समुत्पाद्य क्रियास्तथा॥८॥
कृत्षा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि।
स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम्॥९॥
कामञ्चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम्। त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितम्।
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—तुम प्रजापति होकर प्रजा सृष्टि करोगे। तुम अधिकार प्राप्त करोगे तथा सिद्धिलाभ भी करोगे। तुमको जो पितरों ने विवाह का आदेश दिया है, उसका पालन करो। तुम अपनी कामना सिद्धि के लिये पितरों की पूजा करो। इससे वे प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। वे ही तुमको पत्नी-पुत्र देंगे। ये पितामहगण प्रसन्न होकर क्या नहीं दे सकते?॥८-१०॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्यृषिर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
नद्या विविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम्॥११॥
तुष्टाव च पितृन्विप्रः स्तवैरेभिरथादृतः। एकाग्रप्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥१२॥

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—महर्षि रुचि ने जब अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा का यह कथन सुना, तब वे निर्जन नदी तट पर गये तथा पितरों का तर्पण किया। वे भक्तियुक्त होकर नम्रता पूर्वक एकाग्रता के साथ पितृगण की स्तुति करने लगे॥११-१२॥

रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितृन्भक्त्या ये वसन्त्यधिदेवताः।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये श्राद्धेषु स्वधोत्तरैः॥१३॥
नमस्येऽहं पितृन्स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः॥१४॥
नमस्येऽहं पितृन्स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान्।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः॥१५॥
नमस्येऽहं पितृन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैर्दिवि।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिं यांत्यन्तिकीं पराम्॥१६॥

रुचि कहने लगे—जो अधिदेवता के समान नित्य निवास करते हैं, मैं भक्ति के साथ उनको प्रणाम करता हूं! देवता भी श्राद्ध के समय 'स्वधा' उच्चारण करके जिनका तर्पण करते हैं, उन पितृगण को

नमस्कार! स्वर्गस्थ सिद्ध मुनि लोग भी भुक्ति तथा मुक्ति लाभार्थ मानसिक श्राद्ध करके पितरों की आराधना करते हैं, मैं ऐसे पितृगण को प्रणाम करता हूं! स्वर्गस्थ सिद्ध लोग नाना स्वर्गीय उपहारों को देकर उन पितृदेवों का तर्पण करते हैं, मैं पितृदेवताओं को प्रणाम करता हूं! स्वर्गलोकस्थ गुह्यकगण अत्यन्त उत्तम सम्पत्ति पाने की इच्छा को लेकर जिन पितरों की आराधना करते हैं, मैं ऐसे पितृगण को प्रणाम करता हूं!॥१३-१६॥

नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा। श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिनः॥१७॥

नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः॥१८॥
नमस्येऽहं पितॄन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः।
वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्द्धूतकल्मषैः॥१९॥

जिन पितृगण की अर्चना पृथिवी पर मानव सदा करते रहते हैं, मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं! जो पितर श्राद्धकाल में भक्तिभाव से अर्चित होकर सबको इच्छित पुष्टि प्रदान करते हैं, पृथिवी पर ही ब्राह्मणगण अपनी वांछित प्राप्ति के लिये तथा प्रजापतित्व पाने के लिये जिन पितरों की अर्चना करते हैं, उन प्रजापतित्व देने वाले पितरों को प्रणाम करता हूं! वन में निवास करने वाले मुनि लोग तप से अपने पापों का नाश करके एकाग्रतापूर्वक वन में पैदा हुये कन्द-फल मूलादि द्वारा जिन पितरों को तृप्त करते हैं, मैं उन पितृदेवगण को प्रणाम करता हूं!॥१७-१९॥

नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकैर्धर्मचारिभिः।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः॥२०॥
नमस्येऽहं पितॄञ्श्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान्।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ॥२१॥

नमस्येऽहं पितॄन्वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा। स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः॥२२॥

नैष्ठिक धर्माचरण करने वाले संयतात्मा समाधिभाव में स्थित रहकर जिन पितरों का तर्पण करते हैं, मैं उन पितृदेवगण को प्रणाम करता हूं! राजा लोग अनेक कव्यों द्वारा श्राद्ध करके सविधि जिन पितरों को तृप्त करते रहते हैं तथा जिनकी कृपा से वे अपने-अपने ऐहिक एवं पारलौकिक फल का भोग भी करते हैं, मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं! अपने कार्य में लगे वैश्य वर्ण वाले पृथिवी वासी लोग पुष्प, धूप, अन्न, जल से जिन पितरों की अर्चना करते हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं!॥२०-२२॥

नमस्येऽहं पितॄञ्श्राद्धे शूद्रैरपि च भक्तितः।
सन्तर्प्यन्ते जगत्कृत्स्नं नाम्ना ख्याताः सुकालिनः॥२३॥
नमस्येऽहं पितॄञ्श्राद्धे पाताले ये महासुरैः।
सन्तर्प्यन्ते सुधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा॥२४॥

जिन पितृदेवता की अर्चना भक्ति के साथ शूद्र भी करते हैं, जिनकी अर्चना से समग्र ब्रह्माण्ड की

तृप्ति हो जाती है तथा जो सुकालिन नाम से प्रसिद्ध हैं, मैं ऐसे पितृगण को प्रणाम करता हूं! पाताल में रहने वाले महान् असुर लोग अपने दम्भ तथा मद को छोड़ कर जिन पितृगण का सुधा आहार द्वारा तर्पण करते हैं, उन पितृदेवों को मेरा प्रणाम!॥२३-२४॥

नमस्येऽहं पितॄञ्श्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले। भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः॥२५॥

नमस्येऽहं पितॄञ्श्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः॥२६॥

पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोकेऽथ महीतले वा।
तथाऽन्तरिक्षे च सुरारिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम्॥२७॥

जिन पितृदेव लोग का तर्पण रसातलस्थ नागलोक में श्राद्धीय विहित नाना भोगवस्तुओं से अपनी मनोकामना पूर्ति हेतु करते हैं, मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं! नागलोकवासी नाग महान् ऐश्वर्य वाली अनेक भोग्यवस्तु अर्पित करके मन्त्रों को पढ़ते हुये जिन पितरों का तर्पण करते हैं,मैं उन पितृगण के चरणों में नतशिर होकर प्रणाम करता हूं! जो पितर पृथिवी, देवलोक तथा अन्तरिक्ष में सदा रहते हैं, सुर-असुर सदैव जिनकी आराधना करते हैं, मैं उन पितरों के चरणों में प्रणाम करता हूं! वे मेरे द्वारा अर्जित उपहारों को स्वीकार करें॥२५-२७॥

पितॄन्नमस्ये परमार्थभूता ये वै विमाने निवसन्त्यमूर्त्ताः।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून्॥२८॥

पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु॥२९॥

जो पितर लोग परमाणु स्वरूपी होकर अमूर्त्तरूपेण विमानों पर निवास करते हैं, जिनकी आराधना योगीगण शुद्ध अन्तःकरण से करते रहते हैं, जो लोगों के लिये सांसारिक दुःखों से मुक्ति दिलाने वाले कारण रूपी हैं, मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं! जो पितर लोग साक्षात् मूर्त्तरूपी होकर स्वर्ग में देवता रूप में रहा करते हैं, जो स्वधा मन्त्र का उच्चारण होते ही भोजन करने के सुख का अनुभव करते हैं, जो कामनायुक्त लोगों को वांछित फल देते हैं तथा जो निष्काम लोगों को मुक्तिफल प्रदान करते हैं, उन पितृदेवताओं को मैं प्रणाम करता हूं!॥२८-२९॥

तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान्।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि॥३०॥

सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु॥३१॥

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः॥३२॥

ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च।
कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यैः संप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु॥३३॥
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषां मम पूजितानाम्।
तेषाञ्च सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु॥३४॥

जो पितर लोग कामना करने वालों को उनकी इच्छा के अनुरूप हाथी, अश्व, रत्न, गृह आदि सम्पदा प्रदान करते हैं, वे सभी पितृदेवता मेरी इस आराधना से तृप्त हो जायें। जो पितर लोग चन्द्रकिरण, सूर्य प्रतिबिम्ब तथा श्वेत विमान में रहते हैं, वे मेरी अर्चना द्वारा तृप्त हों। मैं उनको प्रणाम करता हूं! मेरे द्वारा प्रदत्त गन्धादि उपचारों से उनको पुष्टिलाभ हो। जिनके लिये मैंने घृत से अग्नि में होम किया है, वे सभी पितर लोग ब्राह्मण की देह में स्थित होकर हुत द्रव्यों का भोजन करें। जिन्होंने पिण्डप्रदान होने के कारण प्रसन्नता लाभ किया है, वे पितृगण श्राद्ध में दिये अन्न-जल को स्वीकार करके तृप्त हो जायें। जिन पितृदेवगण की अर्चना देवता उनकी अभीष्ट गैंडे के मांस से तथा मनोहर दिव्य काले तिल द्वारा पितृपक्ष में अर्चना करते हैं, वे मेरे द्वारा किये श्राद्ध से तथा महर्षियों को प्रदान किये गये शाक आदि से तृप्ति लाभ करें। मैंने जो यह पितरों की आराधना किया है, विविध कव्य जिनको पसंद हैं, मेरे द्वारा प्रदत्त पुष्प, गन्ध, जल तथा भोजनादि पदार्थ उनके पास चला जाये॥३०-३४॥

दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम्॥३५॥

जो पितर नित्यप्रति पूजा ग्रहण करते, जिनकी विशेष अर्चना अमावस्या तथा अष्टका तिथि पर की जाती है, वर्षान्त जिनकी अर्चना करनी आवश्यक कही गयी है, विवाहादि मांगलिक कार्यों में जिनकी अर्चना कर्तव्य मानी गयी है, वे पितर लोग मेरे द्वारा कृत इस श्राद्ध से तृप्त हो जायें॥३५॥

पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां ज्वलनार्कवर्णाः।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीप्रभाः शूद्रजनस्य ये च॥३६॥
तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्धधूपाम्बुभोज्यादिनिवेदनेन।
तथाऽग्निहोमेन च यान्ति तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः॥३७॥

जो ब्राह्मणों के लिये कुमुद तथा चन्द्रवत् शुक्लवर्ण हैं, जो क्षत्रियों हेतु अग्नि तथा सूर्यवत् अतीव उज्ज्वल प्रतीत होते हैं, जो वैश्यों हेतु स्वर्णवर्ण हैं तथा शूद्रों के लिये नीलवर्ण हैं, ब्राह्मणादि वर्ण अपने-अपने वर्णानुरूप इनके उसी वर्ण का ध्यान द्वारा इन पितृदेवों की अर्चना करता है, वह वांछित लाभ प्राप्त कर लेता है। ऐसे पितर लोग मेरी इस अर्चना में प्रदत्त गन्ध-पुष्प-धूप-जल-भोजन तथा अन्य अर्पित द्रव्य से एवं मेरे द्वारा किये गये होम से तृप्त हो जायें। मैं ऐसे पितृदेवगण को पुनः-पुनः प्रणाम अर्पित करता हूं!॥३६-३७॥

ये देवपूर्वाण्यभितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मि तेभ्यः॥३८॥

रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तु त्वशिवं प्रजानाम्।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः॥३९॥

जो पितर लोग श्राद्ध के समय दैवश्राद्ध सम्पन्न होने पर कव्य भोजन से तृप्त होते हैं तथा इस तृप्ति के कारण मनुष्यों को सम्पत्ति देते हैं, वे मेरे द्वारा कृत श्राद्ध से तृप्त हो जायें। मैं उन पितरों को प्रणाम करता हूं! पितृदेवता सदैव उग्र स्वभावयुक्त राक्षस, भूत, असुरों का नाश करके सन्तानों के अशुभों का नाश करते हैं। वे देवगण के भी पूर्वज तथा पूज्य हैं। वे सभी पितर लोग मेरे श्राद्ध से तृप्त हों। मैं उनको प्रणाम करता हूं!॥३८-३९॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया॥४०॥
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम्।
तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां मे पितरः सदा।
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः॥४१॥
रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः। सर्वतः पितरो रक्षां कुर्वन्तु मम नित्यशः॥४२॥
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः।
भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव॥४३॥
कल्याणः कल्यदः कर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः।
कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः॥४४॥

इस श्राद्ध द्वारा अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, आज्यप तथा सोमप आदि पितृदेवता तृप्ति प्राप्त करें। मैंने उनका तर्पण किया है। अग्निष्वात्ता पितर मेरी पूर्वदिक् में रक्षा करें। बर्हिषद् नामक पितर मेरी दक्षिण दिशा में, आज्यप पितर पश्चिम में तथा सोमप पितृगण उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें। पितर लोग मेरी रक्षा सर्वदा राक्षस, भूत, पिशाच, असुरों के उपद्रवों से करें। विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभासन, भूतिद, भूतिकृत् तथा भूति रूप नौ प्रकार के पितर और कल्याण, कल्यदकर्त्ता, कल्य, कल्यतराश्रय कल्यता हेतु एवं अनघ रूप छः प्रकार के पितर कहे गये हैं (कुल १५ प्रकार के)॥४०-४४॥

वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिदः पुष्टिदस्तथा।
विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणाः स्मृताः॥४५॥
महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः। गणाः पञ्च तथैवैते पितृणां पापनाशनाः॥४६॥
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः। पितृणां कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम्॥४७॥
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
त एवात्र पितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितम्॥४८॥

वर, वरेण्य, वरद, तुष्टिद, पुष्टिद, विश्वपाता, धाता—ये सात भी पितृगणों में कहे गये हैं।

महान्, महात्मा, महित, महिमावान् तथा महाबल नामक पांच पितृगण भी कथित हैं। ये सभी पापनाशक रहें। सुखद, धनद, धर्मद, भूतिद, इन चार को भी पितृगण में गिना गया है। ये समस्त एकतीस पितर हैं। ये समस्त संसार में व्याप्त हैं। ये एकतीस पितर मेरे इस श्राद्ध में लाई गई वस्तु से तृप्ति लाभ करके सदा मेरा हित करें॥४५-४८॥

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः। प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः॥४९॥

तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समाच्छाद्य स्थितं जगत्।
जानुभ्यामवनीं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ॥५०॥

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—जब रुचि ने ऐसे पितरों का स्तव किया। तभी उनके देह से निर्गत तेज निकला, जिससे समस्त आकाश भर गया। तब महातेजस्वी रुचि ने उस तेज से सब कुछ आच्छादित देखकर पृथिवी पर घुटने टेक कर पुनः पितरों का स्तव प्रारम्भ कर दिया!॥४९-५०॥

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्॥५१॥
इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान्॥५२॥

मन्वादीनाञ्च नेतारः सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा। तान्नमस्याम्यहं सर्वान्पितॄनप्युद्दधार सः॥५३॥

नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥५४॥

रुचि कहते हैं—मैं आदिकाल से अर्चित, अमूर्त्त, दीप्त तेज वाले, ध्यानतत्पर, प्रजापतियों तथा सप्तर्षियों के पितर अभिनायकों को प्रणाम करता हूं! जो इन्द्रादि देवता, दक्ष-मरीचि आदि साधक की कामना पूर्ण करने वाले हैं, जो इनके अधिनायक हैं तथा उनके भी पितर हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूं! वे साधकों की कामना पूरी करें। जो मनु आदि धर्म संस्थापकों के अधिनायक तथा चन्द्र-सूर्य के प्रकाशक हैं, उन सभी पितृदेवों को प्रणाम! जो पितृगण नक्षत्र, वायु, आकाश, स्वर्ग, धरती, जल तथा सागरों के अधिनायक हैं, मैं हाथ जोड़कर उन पितृदेवताओं को प्रणाम करता हूं!॥५१-५४॥

प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च। योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥५५॥

नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु।
स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे॥५६॥

सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्त्तिधरांस्तथा। नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम्॥५७॥

अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम्। अग्निसोममयं विश्वं यत एतदशेषतः॥५८॥

जो पितृदेवगण, देवर्षिगण को जन्म देने वाले प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण तथा योगेश्वर हैं, उनको हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूं! मैं सातों लोकों में रहने वाले सप्तगण को प्रणाम करता हूं! योगचक्षुधारी स्वयम्भू ब्रह्मा को प्रणाम करता हूं! योग के आधार योगमूर्त्तिधारी पितरों को प्रणाम करता हूं! जगत् के पितृरूपी सोमरूप पितरों को प्रणाम करता हूं! यह अग्निषोमात्मक समस्त जगत् जिन पितरों द्वारा उत्पन्न किया गया है, मैं अग्निरूप उन पितरों को प्रणाम करता हूं!।।५५-५८।।

ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः। जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः।।५९।।

तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः।
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः।।६०।।

जिनका तेज: रूप सोम, सूर्य तथा अग्निमूर्त्ति है, जो ब्रह्मरूप हैं, मैं संयत होकर उन पितरों को पुनः प्रणाम करता हूं! जगत् के पिता सोमरूपी पितरों को प्रणाम! यह अग्निषोमात्मक जगत् जिन पितरों से उत्पन्न है, उन अग्निरूप पितरों को प्रणाम!।।५९-६०।।

मार्कण्डेय उवाच

एवंस्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमाः। निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश।।६१।।
निवेदनञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम्। तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थिताम्।।६२।।
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः।।६३।।
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमचुर्मुनिसत्तमम्। वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः।।६४।।

इस स्तुति से उस तेज से पितर निकले तथा वे अपनी प्रभा से दसों दिशाओं को उद्भासित करने लगे। उस समय रुचि ने उनको पुष्प-गन्ध तथा अनुलेपन से सन्तुष्ट किया तथा उनके सामने खड़े होकर रुचि ने भक्तिपूर्वक उनको हाथ जोड़कर प्रणाम किया! वे पुनः-पुनः उन पितृगणों को अलग-अलग नमस्कार-नमस्कार कहने लगे। तब पितृगण ने उन मुनिसत्तम रुचि से कहा तुम वर मांगो। यह सुनकर रुचि नम्रता के साथ कन्धे नत करके कहने लगे।।६१-६४।।

रुचिरुवाच

प्रजानां सर्गकर्त्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम्।।६५।।

रुचि ने कहा—ब्रह्मदेव ने मुझे प्रजासृष्टि का आदेश दिया है। मैं किस प्रकार सन्तानोत्पत्ति करने वाली मनोरमा स्त्री पा सकूंगा, उसका विधान करें।।६५।।

पितर ऊचुः

अत्रैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा। तस्याञ्च पुत्रो भविता भवतो मुनिसत्तम।।६६।।

मन्वन्तराधिपो धीमांस्तन्नाम्नैवोपलक्षितः।
रुचे रौच्य इति ख्यातिं प्रयास्यति जगत्त्रये।।६७।।

तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः। भविष्यन्ति महात्मानैः पृथिवीपरिपालकाः॥६८॥

पितृदेवगण ने कहा—तुम अभी मनोरमा पत्नी प्राप्त करोगे। हे मुनिप्रवर! उसी पत्नी से सन्तानों की उत्पत्ति होगी। तुम्हारा पुत्र मन्वन्तर का अधिपति होकर प्रियव्रत नाम से प्रसिद्ध होगा। कालक्रमेण इस रौच्य मनु प्रियव्रत के महाबली पराक्रमी अनेक पुत्र होंगे। वे समस्त पृथिवी के अधिपति हो जायेंगे॥६६-६८॥

त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः।
क्षीणाधिकारो धर्मज्ञस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥६९॥
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः।
तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मजं ध्यानमुत्तमम्॥७०॥

तुम भी प्रजापति होकर चारों प्रकार की प्रजा सृष्टि करोगे। तत्पश्चात् उन पर का अधिकार छोड़कर धर्मज्ञ होकर सिद्धिलाभ करोगे। जो मनुष्य इस स्तोत्र को भक्तिभाव से पढ़ कर हमें सन्तुष्ट करेगा, हम उस पर प्रसन्न होकर नाना भोग सन्तान तथा ध्यानयोग उसे प्रदान करेंगे।६९-७०॥

आयुरारोग्यमर्थञ्च पुत्रं पौत्रादिकं तथा।
वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः॥७१॥
श्राद्धेषु य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम्।
पठिष्यति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः॥७२॥

स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या सन्निधाने परे कृते। अस्माभिरक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयः॥७३॥

जो मनुष्य आयु, निरोग शरीर, अर्थ, पुत्र, पौत्र चाहते हैं, वे सर्वदा इस स्तोत्र का पाठ तथा हमारा स्तव करें। जो व्यक्ति पितृश्राद्ध के दिन ब्राह्मण भोजन के समय उनके सामने खड़ा होकर भक्तिपूर्वक हमको तृप्त करने हेतु यह स्तोत्रपाठ करेगा, उसके इस स्तोत्र को सुनकर हमें प्रसन्नता होगी। हम वहां उपस्थित हो जायेंगे। हमारे वहां सन्निहित रहने के फलस्वरूप वह श्राद्ध अक्षय फलप्रद होगा। यह निःसन्दिग्ध है॥७१-७३॥

यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत्। अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा॥७४॥
अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतैः। अकालेऽप्यथवा देशे विधिहीनमथापि वा॥७५॥

अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य यत्कृतम्।
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात्॥७६॥
यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम्।
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी॥७७॥
हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति।
शिशिरे द्विगुणाब्दानि तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम्॥७८॥

जो श्राद्ध भले ही श्रोत्रिय ब्राह्मणों से रहित हो, जो श्राद्ध अन्याय से कमाये धन से किया गया

हो अथवा अन्य कारण से दोषपूर्ण हो अथवा जो श्राद्ध नियमतः न किया गया हो, जिसमें वर्जित उपहार प्रदान किया गया हो अथवा अशुद्ध वस्तुओं से सम्पन्न किया गया हो, जो असमय में तथा गलत स्थान पर किया गया हो, विधिरहित हो, जिसे दम्भ के कारण अथवा इच्छा न होने पर भी किया गया हो, वे सब अपवित्र श्राद्ध भी इस स्तोत्र पाठ द्वारा दोषरहित होकर हमें तृप्त करते हैं। श्राद्ध में हमें सुख देने वाले इस स्तव को जो पढ़ता है, उसके फलस्वरूप हमें उस श्राद्ध द्वारा बारह वर्ष पर्यन्त की तृप्ति होती है। जो हेमन्तकालीन श्राद्धकाल में इसे पढ़ता है, उससे भी हमें बारह वर्ष पर्यन्त तृप्ति बनी रहती है। शिशिर कालीन श्राद्ध में इस स्तोत्र का पाठ करने से हमें २४ वर्ष पर्यन्त तृप्ति बनी रहती है॥७४-७८॥

वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि। ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम्॥७९॥

विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते।
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे॥८०॥
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति।
अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम्॥८१॥
यस्मिन्गोहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा।
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति॥८२॥
तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः।
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिकारकम्॥८३॥

॥इति गारुडे महापुराणे पितृस्तोत्रे रुचिस्तोत्रं नाम ऊननवतितमोऽध्यायः॥८९॥

वसन्त कालीन श्राद्धकाल में इसे पढ़ने से हमें १६ वर्षों तक की तृप्ति का लाभ होता है। ग्रीष्मकालीन श्राद्ध में भी इसे पढ़ने से हमें १६ वर्षीय तृप्ति मिलती है। यदि किसी कारण से श्राद्ध विकल होने पर यदि कोई यह स्तव पढ़ता है, तब उस श्राद्ध की विकलता दूरीभूत हो जाती है। वर्षाकालीन श्राद्ध में हे महात्मा रुचि! जो इसका पाठ करता है, उससे हमें अक्षय तृप्ति होगी। जो शरत्काल में इसका पाठ करेगा, उससे हमें १५ वर्षीय तृप्ति प्राप्त होगी। जिसके गृह में यह स्तव लिखा हुआ रखा जाता है, वहां हमारा सदैव सन्निधान रहता है। इस कारण से श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों के भोजन करते समय, उनके सामने खड़े होकर उनको यह स्तव श्रवण कराये। इससे हमारी पुष्टि होगी॥७९-८३॥

॥नवासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

नवतितमोऽध्यायः

रुचि का पाणिग्रहण तथा पुत्रलाभ वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा। प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सराः॥१॥

सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम्। प्रसादयामास भूयः प्रम्लोचा च वराप्सराः॥२॥

अतीवरूपिणी कन्या मत्प्रसादाद्वराङ्गना। जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना॥३॥

तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम्।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः॥४॥

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—जब रुचि ने पितरों का यह स्तव किया, तब उस नदी से प्रम्लोचा नामक सुन्दरी उत्तम अंगों वाली अप्सरा उद्भूत हो गयी। वह अप्सरा महात्मा रुचि को अपने मीठे शब्दों से प्रसन्न करती कहने लगी—"महात्मा वरुणतनय पुष्कर ने एक अत्यन्त रूप एवं लावण्य सम्पन्ना कन्या मुझसे उत्पन्न किया था। मैं वह कन्या आपको प्रदान करती हूं। आप उस सुन्दरी को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करें। उस कन्या से आपको पुत्र मनु की प्राप्ति होगी"॥१-४॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेति तेन साप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम्।
उद्दधार ततः कन्यां मानिनीं नाम नामतः॥५॥

नद्याश्च पुलिने तस्मिन्स मुनिर्मुनिसत्तमाः!। जग्राह पाणिं विधिवत्समानीय महामुनिः॥६॥

तस्यां तस्य सुतो जग्मे महावीर्य्यो महाद्युतिः।
रुचे रौच्य इति ख्यातो यो मया पूर्वमीरितः॥७॥

॥इति गारुडे महापुराणे पितृस्तोत्रं नाम नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—रुचि यह सुनकर राजी हो गये तथा उन्होंने 'तथास्तु' कहकर कन्या को ग्रहण करने का वचन दे दिया। तभी प्रम्लोचा ने उस नदी के जल से मानिनी नामक अपनी कन्या को बाहर निकाला। महामुनि रुचि ने उसी नदी तट पर सविधि कन्या का पाणिग्रहण कर लिया। कालान्तर में रुचि ने इसी पत्नी मानिनी से महाबली पराक्रमी तेजस्वी रौच्य नामक पुत्र उत्पन्न किया। उनका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूं॥५-७॥

॥नब्बेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकनवतितमोऽध्यायः

हरि ध्यान वर्णन

हरि उवाच

स्वायम्भुवाद्या मुनयो हरिं ध्यायन्ति कर्मणा। व्रताचारार्चनाध्यानस्तुतिजप्यपरायणाः॥१॥
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम्। आकाशेन विहीनं वै तेजसा परिवर्जितम्॥२॥
उदकेन विहीनं वै तद्धर्मपरिवर्जितम्। पृथिवीरहितञ्चैव सर्वभूतविवर्जितम्॥३॥
भूताध्यक्षं तथा बुद्धं नियन्तारं प्रभुं विभुम्। चैतन्यरूपतारूपं सर्वाध्यक्षं निरञ्जनम्॥४॥

श्रीहरि ने कहा—स्वायम्भुव प्रभृति जो मनु थे, वे मुनि थे। वे व्रत, नियम, आराधना, ध्यान, स्तुति तथा जप में निरत रहकर हरि का ध्यान करते थे। श्रीहरि देह, इन्द्रिय, मनः, बुद्धि तथा अहंकार से परे हैं। उनका शरीर अलौकिक है। उसमें आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवीरूपी पञ्चमहाभूत हैं ही नहीं। उनमें पाञ्चभौतिक कोई भी धर्म नहीं है। वे सर्वज्ञ हैं तथा सभी प्राणियों के कर्त्ता भी हैं। वे भूताध्यक्ष, बुद्ध, नियन्ता, प्रभु तथा विभु हैं। वे चैतन्यमय, सर्वाध्यक्ष एवं निरंजन हैं॥१-४॥

मुक्तसङ्गं महेशानं सर्वदेवप्रपूजितम्। तेजोरूपमसत्त्वञ्च तपसा परिवर्जितम्॥५॥
रहितं रजसा नित्यं व्यतिरिक्तं गुणैस्त्रिभिः। सर्वरूपविहीनं वै कर्त्तृत्वादिविवर्जितम्॥६॥
वासनारहितं शुद्धं सर्वदोषविवर्जितम्। पिपासावर्जितं तत्तच्छोकमोहविवर्जितम्॥७॥
जरामरणहीनं वै कूटस्थं मोहवर्जितम्। उत्पत्तिरहितञ्चैव प्रलयेन विवर्जितम्॥८॥
सर्वाचारहीनं सत्यं निष्कलं परमेश्वरम्। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिवर्जितं नामवर्जितम्॥९॥
अध्यक्षं जाग्रदादीनां शान्तरूपं सुरेश्वरम्।
जाग्रदादिस्थितं नित्यं कार्य्यकारणवर्जितम्॥१०॥

वे संगरहित, महेश्वर, सभी देवगण से आराधित हैं। वे तेजमय, सत्वरहित, तप से भी रहित हैं। वे तीनों गुणों से रहित हैं। वे सभी रूपों से रहित तथा कर्तृत्वादि से भी रहित विवर्जित हैं। वे वासनारहित, शुद्ध, सभी दोषों से रहित, पिपासारहित हैं। वे शोक-मोह विवर्जित भी हैं। वे मोहरहित, कूटस्थ, जरा-मरण विहीन, उत्पत्तिरहित तथा प्रलयरहित हैं। वे सभी आचाररहित, सत्य एवं निष्कल परमेश्वर हैं। वे नामरहित तथा जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिरूपी अवस्थात्रय से भी रहित हैं। वे जाग्रत आदि सभी अवस्था के अध्यक्ष, शान्त रूप, देवताओं के ईश्वर हैं। वे जाग्रदादि अवस्था में स्थित, नित्य तथा कार्य-कारणरहित हैं॥५-१०॥

सर्वदृष्टं तथा मूर्त्तं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं परम्। ज्ञानदृक्श्रोत्रविज्ञानं परमानन्दरूपकम्॥११॥
विश्वेन रहितं तद्वत्तैजसेन विवर्जितम्। प्राज्ञेन रहितञ्चैव तुरीयं परमाक्षरम्॥१२॥
सर्वगोप्तृ सर्वहन्तृ सर्वभूतात्मरूपि च। बुद्धिधर्मविहीनं वै निराधारं शिवं हरिम्॥१३॥

विक्रियारहितश्चैव वेदान्तैर्वेद्यमेव च। वेदरूपं परं भूतमिन्द्रियेभ्यः परं शुभम्॥१४॥
शब्देन वर्जितश्चैव रसेन च विवर्जितम्। स्पर्शेन रहितं देवं रूपमात्रविवर्जितम्॥१५॥
रूपेण रहितश्चैव गन्धेन विवर्जितम्। अनादि ब्रह्मरन्ध्रान्तमहं ब्रह्मास्मि केवलम्॥१६॥

श्रीहरि सबके द्वारा वांछित, मूर्त्त, सूक्ष्म तथा परम सूक्ष्मतम भी हैं। वे ज्ञान-दृक्-श्रोत तथा विज्ञान रूप और परमानन्द रूप हैं। वे विश्वरहित, तैजसरहित तथा प्राज्ञरहित और तुरीय परमेश्वर रूप हैं। वे परमाक्षर हैं। वे सबकी रक्षा करने वाले, सबका हनन करने वाले, सर्व प्राणीरूप, बुद्धिधर्मरहित तथा निराधार कल्याणमय हरि हैं। वे विकारहीन, वेदान्त द्वारा जाने गये, वेदरूपी, पर, भूत-इन्द्रियों से परे तथा शुभ हैं। वे सभी शब्दों तथा रसों से वर्जित, स्पर्श से रहित रूप तथा मात्रारहित हैं। वे रूप गन्ध से रहित अनादि ब्रह्मरन्ध्रान्तस्थ अहं ब्रह्मास्मि रूप हैं॥११-१६॥

एवं ज्ञात्वा महादेव ध्यानं कुर्य्याज्जितेन्द्रियः।
ध्यानं यः कुरुते ह्येवं स भवेद् ब्रह्म मानवः॥१७॥
इति ध्यानं समाख्यातमीश्वरस्य मया तत्र।
अधुना कथयाम्यन्यत्किं तद्ब्रूहि वृषध्वज॥१८॥

।।इति गारुडे महापुराणे हरिध्यानं नाम एकनवतितमोऽध्यायः।।९१।।

इन महादेव को एवंविध जानकर इनका ध्यान जितेन्द्रिय होकर करना चाहिये। जो इनका ध्यान करता है, वह मानव भी ब्रह्म हो जाता है। हे वृषध्वज! मैंने ईश्वर का ध्यान कह दिया। अब आप और क्या जानना चाहते हैं, वह कहिये॥१७-१८॥

॥एक्यानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्विनवतितमोऽध्यायः

विष्णु ध्यान वर्णन

रुद्र उवाच

विष्णोर्ध्यानं पुनर्ब्रूहि शङ्खचक्रगदाधर!।
येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः॥१॥

रुद्रदेव ने कहा—हे शंख-चक्र-गदाधारी प्रभु! आप विष्णु का ध्यान पुनः कहिये, जिसे जानकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥१॥

हरिरुवाच

प्रवक्ष्यामि हरेर्ध्यानं मायातन्त्रविमर्दकम्। मूर्त्तामूर्त्तादिभेदेन तद्ध्यानं द्विविधं हर!॥२॥
अमूर्त्तं रुद्र! कथितं हन्त मूर्त्तं ब्रवीम्यहम्। सूर्य्यकोटिप्रतीकाशो जिष्णुर्भ्राजिष्णुरेकतः॥३॥

कुन्दगोक्षीरधवलो हरिर्ध्येयो मुमुक्षुभिः।
विशालेन सुसौम्येन शङ्खेन च समन्वितः॥४॥
सहस्रादित्यतुल्येन ज्वालामालोग्ररूपिणा।
चक्रेण चान्वितः शान्तो गदाहस्तः शुभाननः॥५॥

श्रीहरि ने कहा—मायातन्त्र का विनाश करने वाला विष्णुध्यान कहता हूं, जो दो प्रकार का है—यथा मूर्त्त एवं अमूर्त्त। हे रुद्र! अमूर्त्त ध्यान मैंने पहले कह दिया था। अब आप मूर्त्त ध्यान श्रवण करिये। भगवान् विष्णुदेव करोड़ों सूर्य के समान आभा वाले, सदा जययुक्त तथा कुन्दपुष्प एवं दुग्ध के समान धवल वर्ण हैं। मुमुक्षुगण ऐसे हरि का ध्यान करें। उनके हाथ में विशाल सौम्य शंख विराजमान है। ये सहस्र सूर्य के समान ज्वालामालारूप, उग्र चक्र, गदाधारी एवं शुभानन हैं। ये शान्तमूर्त्ति हैं॥२-५॥

किरीटेन महार्हेण रत्नप्रज्वलितेन च। सायुधः सर्वगो देवः सरोरुहधरस्तथा॥६॥
वनमालाधरः शुभ्रः समांसो हेमभूषणः। सुवस्त्रः शुद्धदेहश्च सुकर्णः पद्मसंस्थितः॥७॥
हिरण्मयशरीरश्च चारुहारी शुभाङ्गदः। केयूरेण समायुक्तो वनमालासमन्वितः॥८॥
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो लक्ष्मीवन्द्येक्षणान्वितः। अणिमादिगुणैर्युक्तः सृष्टिसंहारकारकः॥९॥

इन्होंने रत्नों से प्रज्वलित लगने वाला महान् मुकुट धारण किया है। ये देव सर्वत्र गमन करने वाले, आयुधधारी तथा कमलधारी हैं। ये श्रीहरि वनमाला धारी, स्वच्छ शुभ्र, स्थूल शरीर, स्वर्णाभूषणों से भूषित, सुवस्त्रधारी, शुद्ध देह, उत्तम कर्म वाले, कमल पर विराजमान हैं। इनका शरीर स्वर्ण वर्ण का है, इन्होंने शुभ अंगद तथा सुन्दर हार धारण किया है। ये वनमाला युक्त तथा केयूर से सुशोभित हैं। इनका वक्ष कौस्तुभमणि से शोभित तथा श्रीवत्स चिह्न से अंकित है। इनके दोनों नेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं। इन प्रभु के आठों प्रकार के ऐश्वर्य सेवकरूपी हैं। ये सदा उनका अनुगमन करते हैं। ये देवदेव सृष्टि तथा संहारकारी हैं॥६-९॥

मुनिध्येयोऽसुरध्येयो देवध्येयोऽतिसुन्दरः।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तभूतजातहृदि स्थितः॥१०॥

सनातनोऽव्ययो मेध्यः सर्वानुग्रहकृत्प्रभुः। नारायणो महादेवः स्फुरन्मकरकुण्डलः॥११॥

सन्तापनाशनोऽभ्यर्च्यो मङ्गल्यो दुष्टनाशनः।
सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वगो ग्रहनाशनः॥१२॥

चार्वङ्गुरीयसंयुक्तः सुदीप्तनख एव च। शरण्यः सुखकारी च सौम्यरूपो महेश्वरः॥१३॥

समस्त मुनि, असुर, देवता सदैव इनका ध्यान करते रहते हैं। इनकी सुन्दरता की कहीं तुलना नहीं

है। ये ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब कुछ में विराजमान रहते हैं। ये सनातन, अव्यय, पावन हैं। ये जगत् सृष्टि में स्थित सभी प्राणीगण के प्रति करुणार्द्र भी रहते हैं। ये ही नारायण, महादेव तथा मकराकृति कुण्डल से शोभायमान हैं। ये प्रभु सभी के सन्ताप का नाश करते हैं। ये सभी के पूज्य—आराध्यरूप हैं। ये मंगलकर्त्ता तथा दुष्टों का नाश करने वाले, सबके शरण्य, सुखकारी, सर्वात्मा, सर्वरूप, सर्वगामी, ग्रहों के नाशक, उत्तम अंगूठीधारी तथा दीप्त नख वाले सौम्यरूपी महेश्वर हैं॥१०-१३॥

सर्वालङ्कारसंयुक्तश्चारुचन्दनचर्चितः। सर्वदेवसमायुक्तः सर्वदेवप्रियङ्करः॥१४॥

सर्वलोकहितैषी च सर्वेशः सर्वभावनः।
आदित्यमण्डले संस्थो अग्निस्थो वारिसंस्थितः॥१५॥

वासुदेवो जगद्ध्याता ध्येयो विष्णुर्मुमुक्षुभिः।
वासुदेवोऽहमस्मीति आत्मा ध्येयो हरिर्हरिः॥१६॥

ध्यायन्त्येवञ्च ये विष्णुं ते यान्ति परमां गतिम्।
याज्ञवल्क्यः पुरा ह्येवं ध्यात्वा विष्णुं सुरेश्वरम्।
धर्मोपदेशकर्तृत्वं संप्राप्यागात्परं पदम्॥१७॥

तस्मात्त्वमपि देवेश! विष्णुं चिन्तय शङ्कर!।
विष्णुध्यानंपठेद्यस्तु प्राप्नोति परमां गतिम्॥१८॥

।।इति गारुडे महापुराणे विष्णुध्यानं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः।।९२।।

विष्णुदेव सभी अलंकारों से सज्जित, उत्तम चन्दन से लिप्त, सर्वदेव समायुक्त तथा सभी देवों का प्रिय करने वाले, सर्वलोक के हितैशी, सर्वेश सभी को प्रिय हैं। ये आदित्य मण्डल में, अग्नि में तथा जल में स्थित रहते हैं। ये जगत्पालक हैं। मोक्षकामी लोग इनका ही ध्यान करते रहते हैं। हे हर! मोक्षकामीगण अपनी आत्मा में "मैं ही वासुदेव हरि हूं" यह ध्यान करते हैं। जो विष्णु का ध्यान करते हैं, वे परमगति लाभ करते हैं। याज्ञवल्क्य ने सुरेश्वर विष्णु का इसी प्रकार से ध्यान किया था, जिससे उनको धर्मोपदेश का अधिकार मिला तथा सर्वान्त में उन्होंने मुक्तिलाभ किया। आप भी इसी प्रकार विष्णु ध्यान करिये। जो व्यक्ति इस ध्यान विधि का पाठ करता है, वह मुक्त होगा। उसे परमगति मिलेगी॥१४-१८॥

॥बानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
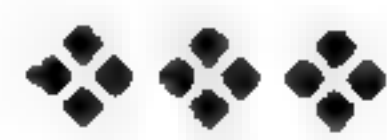
त्रिनवतितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य द्वारा वर्णधर्मादि का वर्णन

महेश्वर उवाच

याज्ञवल्क्येन वै पूर्वं धर्मः प्रोक्तः कथं हरे!।
तन्मे कथय केशिघ्न! यथातत्त्वेन माधव!॥१॥

महेश्वर ने कहा—हे केशिघ्न! हे हरि! पूर्वकाल में याज्ञवल्क्य ने किस प्रकार का धर्मोपदेश दिया था? हे माधव! उसे कहिये॥१॥

हरिरुवाच

याज्ञवल्क्यं नमस्कृत्य मिथिलायां समास्थितम्।
अपृच्छन्नृषयो गत्वा वर्णधर्मानशेषतः।
तेभ्यः स कथयामास विष्णुं ध्यात्वा जितेन्द्रियः॥२॥

श्रीहरि ने कहा—ऋषियों ने मिथिला में याज्ञवल्क्य को प्रणाम करके सभी प्रकार के धर्मों को पूछा था। उस समय इन जितेन्द्रिय मुनि ने हरि का ध्यान करके वहां उपस्थित मुनिगण को समस्त धर्म का उपदेश दिया॥२॥

याज्ञवल्क्य उवाच

यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मं निबोधत। पुराणन्यायमीमांसा-धर्मशास्त्रार्थमिश्रिताः॥३॥
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।
वक्तारो धर्मशास्त्राणां मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः॥४॥
वसिष्ठदक्षसंवर्त्ताः शातातपपराशराः। आपस्तम्बोशनसौ व्यासः कात्यायनबृहस्पती॥५॥
गौतमः शङ्खलिखितौ हारीतोऽत्रिर्ऋषिस्तथा।
एते विष्णुसमाराध्या जाता धर्मोपदेशकाः॥६॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—जहां कृष्णसार जाति के मृग विचरते हैं, उस देश का धर्म सुनिये। वह कहता हूं। पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्रार्थ मिश्रित ज्ञान, वेद एवं चतुर्दश विद्या ही धर्मरूप है। धर्मशास्त्र के वक्ता हैं मनु, विष्णु, यम तथा अंगिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, अत्रि तथा मैं। इन सबने विष्णु की उपासना द्वारा धर्मोपदेशकत्व लाभ किया॥३-६॥

देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्। पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम्॥७॥
इष्टाचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च। अयञ्च परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्॥८॥

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः परास्त्रैविद्यमेव वा। सव्रते यत्स्वधर्मः स्याद्देवाराध्यात्मवित्तमः॥९॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः।
निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रिया॥१०॥

श्रद्धापूत मन से देश तथा काल का विचार करके योग्य पात्र (व्यक्ति) को कुछ देना ही धर्म का लक्षण कहा गया है। यज्ञ, नियमानुरूप आचार पालन, दम, अहिंसा, दान, स्वाध्याय परम धर्म कहे गये हैं। इससे योग द्वारा आत्मदर्शन का लाभ होता है। ऊपर कहे गये चार वेद धर्मज्ञ हैं। (मनु, विष्णु, यम तथा अंगिरा)। बाकी सभी त्रैविद्य हैं। ये लोग तथा आध्यात्म्यविद् उपदेश देते हैं, उसे ही धर्म समझे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चतुर्विध जाति हैं। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विज कहे गये हैं। द्विज लोग गर्भाधान, जन्म से लेकर मरण तक सभी संस्कार मन्त्रयुक्त करे॥७-१०॥

गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवो जातकर्म च॥११॥
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडां कुर्य्याद्यथाकुलम्॥१२॥
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहश्च समन्त्रकः॥१३॥

॥इति गारुडे महापुराणे वर्णधर्मो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥
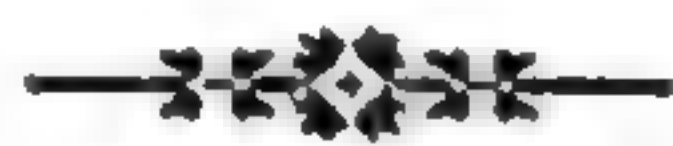
स्त्रीगण का ऋतुकाल होने पर गर्भाधान होता है। गर्भस्पन्दन के पहले पुंसवन, तदनन्तर गर्भाधान होने पर छठे किंवा आठवें महीने सीमन्तोन्नयन, सन्तान जन्म होने पर जातकर्म संस्कार के पश्चात् जन्म के ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीने निष्क्रम कृत्य, छठे मास अन्नप्राशन करके कुलपरम्परा के अनुरूप चूड़ा कार्य करे। उन-उन कार्य हेतु विधान के अनुरूप उचित समय पर संस्कार कार्य करने से गर्भसम्भूत पापों का नाश होता है। स्त्रीगण यह सब कार्य मन्त्ररहित करें। किसी भी कार्य में स्त्री स्वयं मन्त्रपाठ न करे। केवल विवाहकार्य में स्त्री भी मन्त्रयुक्त कार्य करे॥११-१३॥

॥तिरानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्णवतितमोऽध्यायः

वर्णधर्म प्रसंग वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

गर्भाष्टमाष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्॥१॥
उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥२॥
दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः। कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः॥३॥
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः। गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्य्यान्महाव्रतः॥४॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—गर्भाधान से अथवा जन्म से आठवें वर्ष ब्राह्मण का उपनयन होगा। क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष तथा वैश्य का बारहवें वर्ष उपनयन होगा। इस सम्बन्ध में किसी मुनि का मत है कि जिसका जैसा कुल का नियम है, तदनुरूप उपनयन करे। आयु वर्ष का नियम अपेक्षित नहीं है। गुरु को चाहिये कि वे महाव्याहृति का उच्चारण करके उपनयन कराये तथा उस शिष्य को वेदाध्ययन और अपने-अपने वर्णानुरूप जो पवित्रता तथा सदाचार आदि के कर्त्तव्य हैं, उसकी शिक्षा प्रदान करें। द्विजों को चाहिये कि वे दिन तथा सन्ध्याकाल में उत्तर की ओर मुंह करके तथा दाहिने कान पर जनेऊ चढ़ाकर मलमूत्र त्याग करे। रात्रि में यही कार्य उपरोक्त नियम से दक्षिणमुख होकर करे। शुद्धाचारी ब्राह्मण मल-मूत्र त्याग करके जब उठे तब लिंग पकड़ कर उठे और लाये गये जल एवं मृत्तिका से दुर्गन्ध दूर होने तक हस्त आदि का मार्जन करके पवित्र हो जाये॥१-४॥

अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्॥५॥
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च। प्रजापतिपितृब्रह्मदैवतीर्थाननुक्रमात्॥६॥
त्रिःप्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखान्यद्भिश्च संपृशेत्।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिः हीनाभिः फेनबुद्‌बुदैः॥७॥
हृत्कण्ठतालुनाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः।
शुध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः॥८॥
स्नानं तद्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः। सूर्य्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः॥९॥
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिवारं प्राणसंयमः॥१०॥
प्राणायामस्य संशुद्धिस्त्र्यृचा तद्दैवतेन तु। जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात्॥११॥
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठन्नासूर्य्यदर्शनात्।
अग्निकार्य्यं ततः कुर्य्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि॥१२॥

ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्। गुरुञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः॥१३॥

आहूतश्चाप्यधीयीत सर्वञ्चास्मै निवेदयेत्।
हितञ्चास्यापरान्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः॥१४॥

ब्राह्मण लोग दोनों जानु के बीच शरीर रखते पवित्र स्थान पर बैठे (उकड़ूं होकर बैठें) तथा बड़ी उंगली के (ब्राह्मतीर्थ) मूलस्थान में जल लेकर आचमन करें। कनिष्ठा के मूल का स्थान प्रजापति तीर्थ, तर्जनी का मूल स्थान पितृतीर्थ, अंगूठे का मूल स्थान ब्राह्मतीर्थ एवं सभी उंगलियों का अग्रभाग देवतीर्थ बतलाया गया है। ब्राह्मतीर्थ से ३ बार किंचित् जल पीकर (आचमन करके) तीन बार ओष्ठ-अधर का स्पर्श करे। फेन एवं बुलबुलारहित जल से हृदय, कण्ठ, तालु तथा नाभि का स्पर्श करना चाहिये। यह क्रमशः एक के बाद एक करे। लेकिन शूद्र तथा स्त्री ओष्ठ में जल का स्पर्श कराये। इसके पश्चात् हृदय, कण्ठ, तालु एवं नाभि को जलस्पर्श कराये। इसी से उसका आचमन सम्पन्न होगा। द्विज नित्य जलदेवता का मन्त्र पढ़ते स्नान, आपोमार्जन, प्राणायाम तथा सूर्योपस्थान करे। पहले प्रणव लगाकर "(ॐ) भूर्भुवः स्वः" गायत्री जपते तीन प्राणायाम करे। देवता की इस तीन मन्त्रयुक्त प्राणायाम से शुद्धि हो जाती है। सायं संध्या से लेकर आकाश में तारे दिखलाई देने तक गायत्री जपे। प्रातः सन्ध्या काल से लेकर सूर्योदय तक जप करे। दोनों सन्ध्या के समय नित्य होम करके वहां स्थित वृद्धों को "मैं प्रणाम करता हूं" कहते हुये प्रणाम करे। इसके पश्चात् गुरु के पास समाहित चित्त से अध्ययन हेतु जाये। अध्ययन हेतु बुलाये जाने पर अध्ययनरत हो जाना चाहिये। शिष्यगण सदैव मन-कर्म-वाणी से गुरु का हित साधन करें॥५-१४॥

दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत्। द्विजेषु चारयेद्भैक्ष्यमनिन्देष्वात्मवृत्तये॥१५॥

आदिमध्यावसानेषु भवेच्छन्दोपलक्षितः।
ब्राह्मणः क्षत्रियविशां भैक्ष्यं चर्य्याद्यथाक्रमम्॥१६॥
कृताग्निकार्य्यो भुञ्जीत विनीतो गर्वनुज्ञया।
आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्वाऽन्नमकुत्सयन्॥१७॥

ब्रह्मचर्य्यास्थितोऽनेकमन्नमद्यादनापदि। ब्राह्मणः काममश्नीयात् श्राद्धे व्रतमपीडयन्॥१८॥

मधु मांसं तथा स्विन्नमित्यादि परिवर्जयेत्।
स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति॥१९॥

वह दण्ड, मृगचर्म, यज्ञोपवीत तथा मेखला धारण करे और वह जीविका हेतु अनिन्दित द्विजों के यहां से भिक्षा मांगे। वहां यह नियम है कि पहले ब्राह्मण से, तदनन्तर क्षत्रिय से तथा अन्त में वैश्य के यहां जाकर कहे "मुझे भिक्षा दीजिये" इसके पश्चात् होम सम्पन्न करके गुरु की आज्ञा होने पर भोजन के प्रारम्भ में तथा अन्त में आपोशान मन्त्र पढ़ कर अन्न संस्कार करे अर्थात् पात्र में अन्न को नियमानुरूप स्थापित करके उसमें से भूसी आदि निकाल कर अन्न की निन्दा किये विना भोजन करे। शिष्य सदा ब्रह्मचर्य नियम पालन करे। अधिक आहार करना वर्जित है। अधिक आहार-मद्यादि वर्जित है। अपने व्रत का

उल्लंघन न हो, इस सावधानी से श्राद्धादि में इच्छानुरूप भोजन कर सकता है, तथापि मद्य, मांस तथा बासी भोजन कदापि ग्रहण न करे। जो सविधि वेद पढ़ाते हैं, वे ही गुरु हैं॥१५-१९॥

उपनीय ददात्येनमाचार्य्यः स प्रकीर्त्तितः। एकदेश उपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते॥२०॥

एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी। प्रतिवेदं ब्रह्मचर्य्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा॥२१॥

ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशः।
आषोडशाद्द्विविंशाच्च चतुर्विंशाच्च वत्सरात्॥२२॥

ब्रह्मक्षत्रविशां काल उपनायनिकः परः। अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मविवर्जिताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः॥२३॥

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजातयः॥२४॥

यज्ञोपवीत प्रदाता वेदशिक्षक आचार्य हैं। जो कुछ अंश पढ़ायें, वे उपाध्यय। जो यज्ञ कराते हैं, उनको ऋत्विक् कहा गया है। ये उत्तरोत्तर माननीय हैं अर्थात् ऋत्विक् से अधिक उपाध्याय, उससे अधिक आचार्य, उससे अधिक गुरु माननीय हैं, तथापि सर्वापेक्षा माता का स्थान है। नित्य वेदाध्ययन आजीवन करे अथवा बारह वर्ष करे, किंवा मात्र ५ वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करे। किसी मुनि का मत है कि वेदाध्ययन समाप्ति पर्यन्त कोई कहते हैं कि केशच्छेदन काल पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। किसी का मत है कि ब्राह्मण १६ वर्ष, क्षत्रिय २२ वर्ष तथा वैश्य २४ वर्ष तक यज्ञोपवीत अवश्य कराये। इस आयु तक यज्ञोपवीत न होने पर तीनों वर्ण वाले पतित हो जाते हैं। उनको धर्मकर्म का अधिकार नहीं होता। व्रात्य प्रायश्चित्त न करने पर वे सावित्री पतित हो जाते हैं। प्रथम जन्म है मातृगर्भ से, द्वितीय जन्म है यज्ञोपवीत संस्कार होने पर। तभी ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य जाति द्विज है॥२०-२४॥

यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानाञ्चैव कर्मणाम्। वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः॥२५॥

मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेद् द्विजः।
पितॄन्मधुघृताभ्याञ्च ऋचोऽधीते हि सोऽन्वहम्॥२६॥

यजुः साम पठेत्तद्वदथर्वाङ्गिरसं द्विजः। सन्तर्पयेत् पितॄन्देवान्सोऽन्वहं हि घृतामृतैः॥२७॥

वेदवाक्यं पुराणाञ्च नावाशंसीश्च गाथिकाः।
इतिहासांस्तथा वेदान्योऽधीते शक्तितोऽन्वहम्॥२८॥

सन्तर्पयेत्पितॄन्देवान्मांसक्षीरौदनादिभिः। ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः॥२९॥

यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात्फलम्।
भूमिदानस्य तपसः स्वाध्यायफलभाग् द्विजः॥३०॥

वेद ही यज्ञ, तप तथा शुभ कर्म का मूल स्वरूप है। वेद से ही द्विजों को श्रेयलाभ हो सकता है। जो द्विज नित्य ऋग्वेदाध्ययनरत रहता है, वह दुग्ध, मधु से देवताओं का, मधुघृत से पितरों का तर्पण करने का फल पाता है। जो नित्यप्रति साम, यजुः का और अथर्ववेद के आंगीरस आख्यान का पाठ करता

है, उसको देवताओं को यज्ञाहुति द्वारा, पितृगण को घृत तथा जल द्वारा तृप्त करने का फललाभ होता है। जो द्विज नित्य वैदिक अध्याय, पुराण गाथा, शुभ प्रसंग युक्त पुरातन वृत्तान्त एवं वेद पढ़ता है, उसे पितरों को मांस, दुग्धान्न तथा घृतोदक द्वारा पितरों को सन्तुष्ट करने का फललाभ होता है। उसके पितर इससे सन्तुष्ट होकर उस पाठकर्त्ता को अत्यन्त उत्तम अभिलषित फल प्रदान कर देते हैं। जिस-जिस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है, उनमें जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, श्राद्धकर्त्ता को वैसा ही उत्तम फललाभ होता है। वह द्विज भूमिदान, तप तथा स्वाध्याय का फल पा जाता है॥२५-३०॥

नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्य्यसन्निधौ। तद्भावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा॥३१॥
अनेन विधिना देहं साधयेद्विजितेन्द्रियः। ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः॥३२॥

॥इति गारुडे महापुराणे वर्णधर्मो नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः॥९४॥
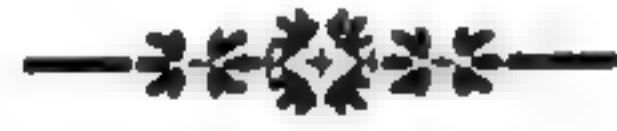
अतः वह आचार्य के पास निवास करे। यदि आचार्य दिवंगत हो, तब आचार्य पुत्र, आचार्य पत्नी अथवा सविधि संस्कृत अग्नि के पास रहकर ब्रह्मचर्य पालन करे। जो ब्राह्मण इन नियमों का पालन करता हुआ तथा जितेन्द्रिय रहकर अपने शरीर तथा स्वभाव द्वारा धर्म के कार्यों का पालन करता है, वह ब्रह्मलोकवासी होता है। उसे पुनः पृथिवी पर जन्म नहीं लेना पड़ता॥३१-३२॥

॥चौरानबेवां अध्याय समाप्त॥
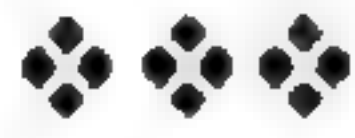
पञ्चनवतितमोऽध्यायः

गृहस्थ धर्म वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

शृण्वन्तु मुनयो धर्मान्गृहस्थस्य यतव्रताः। गुरवे च धनं दत्त्वा स्नात्वा च तदनुज्ञया॥१॥
समापितब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥२॥
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्। पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा॥३॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—हे मुनिवृन्द! यतव्रत गृहस्थ का धर्म श्रवण करिये। शिष्य पहले गुरु को दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा के अनुसार सविधि स्नान करे तथा ब्रह्मचर्य समाप्त करके ऐसी कन्या से विवाह करे, जिसका पहले विवाह न हुआ हो, जो असपिण्डा, सुन्दर, अच्छे वंश में उत्पन्न, गुण वाली, निरोग, भाईयों सहित, असमान गोत्र वाली तथा ऋषिवंशीय (जैसे भरद्वाज गोत्र, शाण्डिल्य गोत्र आदि

ऋषि नाम वाले गोत्र की हो), उससे विवाह करे। मातामह से लगाकर पांच पीढ़ी तथा पितामह से सात पीढ़ी का त्याग करके कन्या से विवाह करे॥१-३॥

द्विपञ्चनवविख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्।
सवर्णः श्रोत्रियो विद्वान्वरो दोषान्वितो न च॥४॥
यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रादारोपसंग्रहः। न तन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम्॥५॥
तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशाद्भार्या वा शूद्रजन्मनः॥६॥
ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता। तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम्॥७॥

श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न, समान वर्ण, विद्वान्, श्रोत्रिय एवं दोषहीन वर से ही विवाह कार्य हो। कोई मुनि कहते हैं कि शूद्र कन्या से ब्राह्मण विवाह कर सकता है, तथापि यह मेरा मत नहीं है। कारण यह है कि शूद्रा से आत्मा ही पुत्ररूपेण उत्पन्न होता है। अत: ब्राह्मण कदापि शूद्रा से विवाह न करे। द्विजगण शूद्रा से विवाह करें, मैं इस मत के विरुद्ध हूं। अत: ब्राह्मण ब्राह्मण कन्या से, क्षत्रिय एवं वैश्य कन्या से विवाह करें। क्षत्रियगण क्षत्रिय तथा वैश्य कन्या से विवाह करें। वैश्य केवल मात्र वैश्य कन्या से विवाह करे। शूद्र केवल शूद्र कन्या से ही विवाह करे। यथाविधि वर को बुला कर अपनी शक्ति के अनुसार कन्या को अलंकार देना चाहिये। ऐसा विवाह ही ब्राह्म विवाह है। इस विवाह से पैदा हुआ पुत्र मातृकुल तथा अपने कुल की २१ पूर्व पीढ़ी को पाप तथा नरक से मुक्त कर देता है॥४-७॥

यज्ञस्थायर्त्विजे दैवमादायार्षस्तु गोयुगम्। चतुर्दशप्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट्॥८॥
इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने।
सकायः पावयेत्तज्जं षड्वंश्यानात्मना सह॥९॥
आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्॥१०॥

यज्ञस्थ पुरोहित को कन्या अर्पित करना दैव विवाह है। इस कन्या से उत्पन्न पुत्र अपने पितृ तथा मातृकुल की १४ पीढ़ियों का उद्धारक हो जाता है। वर से दो गौ लेकर उन दो गौओं के बदले कन्या देता है। यह आर्य विवाह है। इस कन्या से उत्पन्न पुत्र अपने पितृ तथा मातृकुल की छः पूर्व पीढ़ियों का तथा स्वयं का उद्धार कर देता है।

"तुम इस कन्या के साथ धर्माचरण करो" यह कहकर जो कन्या चाहने वाले को कन्या समर्पित करे, वह प्राजापत्य विवाह है। इस विवाह से उत्पन्न पुत्र अपना तथा अपने पितृ एवं मातृकुल की छः पूर्वपीढ़ी का उद्धार करता है। धन लेकर कन्यादान को आसुर विवाह कहते हैं। वर-कन्या के पारस्परिक अनुराग (प्रेम) के कारण होने वाले विवाह को गान्धर्व विवाह कहा गया है। युद्ध करके बलपूर्वक कन्या हरण करके उससे विवाह करना राक्षस विवाह है। निर्जन स्थान में गई अथवा उन्मत्ता अथवा सोई हुई कन्या को उसकी इच्छा के बिना ग्रहण करना पैशाच विवाह है॥८-१०॥

चत्वारो ब्राह्मणस्याद्यास्तथा गान्धर्वराक्षसौ। राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः॥११॥

पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीत क्षत्रिया शरम्। वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने चाग्रजन्मनः॥१२॥

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा।

कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः॥१३॥

अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ। एषामभावे दातॄणां कन्या कुर्य्यात्स्वयंवरम्॥१४॥

ब्राह्म, दैव, आर्य तथा प्राजापत्य विवाह ब्राह्मण के लिये उत्तम हैं। गान्धर्व तथा राक्षस विवाह क्षत्रिय हेतु उत्तम हैं। आसुर विवाह वैश्य हेतु उत्तम है। पैशाच विवाह शूद्रों हेतु है। ब्राह्मण कन्या विवाह के समय केवल वर का हाथ पकड़े, क्षत्रिय कन्या बाण पकड़े, वैश्य कन्या चाबुक पकड़े। कन्यादानार्थ पहला अधिकारी पिता है। वह न हो, तब पितामह, वह न हो तब भाई, वह न हो, तब दस पीढ़ी तक के जाति सम्बन्धी तथा माता कन्यादान की अधिकारी होती है। इनमें से जो कोई पातित्य आदि दोषों वाले नहीं हैं, उनमें पूर्व-पूर्व वाले अधिकारी की जगह बाद वाले अधिकारी को कन्यादान करने का उपयुक्त पात्र माने (जैसे पिता न हो, तब पितामह, वह न हो तब भाई इत्यादि)। यदि इनमें से जिसका कन्यादान का अधिकार है, वह निश्चित समय तक कन्या का विवाह नहीं करता, तब उस कन्या के प्रति ऋतुकाल में (जब तक कन्या का विवाह न हो जाये) उसे भ्रूण हत्या का पापभागी होना पड़ेगा। यदि उपयुक्त कन्यादान अधिकारी न मिले, तब वह कन्या स्वयंवर करे॥११-१४॥

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक्।

अदुष्टां हि त्यजन्दण्ड्यः सुदुष्टां तु परित्यजेत्॥१५॥

यदि कोई ऐसी स्त्री का त्याग करता है, जो दुष्टा नहीं है, तब उसका वह पति दण्डनीय है। यदि कोई विवाहित स्त्री का हरण करता है, तब वह उसी दण्ड से दण्डित किया जाये, जो चोरों को दिया जाता है। जो स्त्री अत्यन्त दुष्टा हो, उसका त्याग कर सकते हैं॥१५॥

अपुत्रीं गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया।

सपिण्डो वा सगोत्रे वा घृताभ्यक्तो ऋतावियात्॥१६॥

आगर्भसम्भवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत्।

अनेन विधिना जातः क्षेत्रपस्य भवेत्सुतः॥१७॥

यदि अपुत्रवान् स्त्री पुत्र चाहे, तब वह श्वसुर आदि गुरुजन की आज्ञा लेकर घृत लिप्त देह वाले देवर अथवा सपिण्ड द्वारा पुत्र उत्पन्न करे। जब तक गर्भसंचार नहीं हो जाता, तब तक ही ऋतुकाल में उस व्यक्ति से संगम करे। आगे संगम करते रहने पर वह स्त्री पापभागी होगी। इस नियम से जो पुत्र होगा, वह उस स्त्री के क्षेत्र पति का ही (पतिदेव) का ही माना जायेगा॥१६-१७॥

कृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपसेविनीम्।

परिभूतामधःशय्यां वासयेद् व्यभिचारिणीम्॥१८॥

सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम्।

पावकः सर्वदा मेध्यो मेध्या वै योषितो ह्यतः॥१९॥

व्यभिचारादृतेऽशुद्धेर्गर्भत्यागं करोति या। गर्भभर्त्तृवधे तासां तथा महति पातके॥२०॥

सुरापी व्याधिता द्वेष्ट्री विहर्त्तव्या प्रियंवदा।

भर्त्तव्या चान्यथा ह्येन ऋषयो हि भवेन्महत्॥२१॥

यदि कोई स्त्री स्वेच्छा से व्यभिचारिणी हो जाये, तब उसे मलिन वस्त्रादि पहनाकर मात्र जीवित रहने हेतु अन्न पाकर अपने ही गृह में भूमि पर ही शयन करना होगा। चन्द्र ने स्त्रियों को पवित्रता, गन्धर्वों ने मधुर वाणी तथा अग्नि ने नित्य मेध्यता प्रदान किया है। अत: दोषहीना नारी सदा स्वभावत: पवित्र है। स्त्रियां यदि व्यभिचार दोषग्रस्त हो जायें, तब वे ऋतुकाल में पहले जैसी पवित्र हो जाती हैं, तथापि व्यभिचारजनित गर्भ रह जाने वाली नारी को तत्काल त्यागे। यह नियम है। यदि वह उस नाजायज गर्भ को नष्ट करके पति का नाश करे अथवा ब्रह्महत्या-मद्यपानादि किये हो अथवा यदि स्त्री वन्ध्या-धूर्त्ता, अनिष्ट करने वाली, अप्रिय बोलने वाली हो, पति तथा पति के परिजनों से द्वेष करती हो, तब भी उसका भरण-पोषण करना चाहिये। यह नियम है। हे ऋषिवृन्द! ऐसा न करने वाला स्वामी महापापी कहा जाता है॥१८-२१॥

यत्राविरोधो दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते। मृते जीवति या पत्यौ या नान्यमुपगच्छति॥२२॥

सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह।

शुद्धां त्यजंस्तृतीयांशं दद्यादाभरणं स्त्रियाः॥२३॥

स्त्री भिर्भर्त्तृवचः कार्य्यमेष धर्मःपरः स्त्रियाः।

षोडशर्त्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्॥२४॥

ब्रह्मचारी च पर्वण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत्।

एवं गच्छन् स्त्रियं कामान्मघां मूलञ्च वर्जयेत्॥२५॥

लक्षण्यं जनयेदेवं पुत्रं रोगविवर्जितम्। यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां स्मरमनुस्मरन्॥२६॥

स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतस्ततः। भर्त्तृ भ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः॥२७॥

बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।

संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी॥२८॥

जहां स्वामी तथा स्त्री के बीच कलह न हो, उस घर में अर्थ-धर्म सदा बढ़ता है। उस घर में सबकी कामना पूर्ण होती है। जो स्त्री स्वामी की मृत्यु के उपरान्त इन्द्रियभोग हेतु अन्य पुरुष का आश्रय ग्रहण नहीं करती, वह इहलोक में यशस्विनी होकर परलोक में भगवती उमा के साथ खेलती रहेगी। शुद्धा, सद्गुणों से सम्पन्न, पतिव्रता नारी का जो पुरुष त्याग करता है, तब उस स्त्री के भरण-पोषणार्थ स्वामी ही जिम्मेदार होगा। नारी का प्रधान परम धर्म है पति के वाक्यों का पालन करना। ऋतु के प्रथम दिन से लगाकर १६ रात्रि पर्यन्त स्त्री का ऋतुकाल होता है। पुत्रकामी पति इनमें से दो दिन स्त्री संगम करे। जो ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले हैं, वो चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा आदि पर्वकाल में पत्नी का उपभोग न करें। ब्रह्मचारी के लिये पहली चार (ऋतुकालीन) रात्रि अत्यन्त वर्जित है। ऋतुकाल में भी पत्नी

संसर्ग हेतु मघा तथा मूलनक्षत्र वर्जित हैं। इस नियम पालन द्वारा जो सन्तान जन्म लेती है, वह सुरूप, बली तथा रोगहीन रहती है। यदि स्त्री रमण की इच्छा करती भी है, तब पति पूर्वोक्त युग्मरात्रि तथा नक्षत्रादि विचार न करे तथा रमण करे। स्त्रियों की पति, भ्राता, पिता, जाति बन्धु, श्वसुर तथा देवर रक्षा करे। उसे अलंकार, कपड़े तथा भोजनादि देकर प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखें। नारीगण को भी चाहिये कि वे गृह की सभी वस्तुओं की देखभाल दक्षता से करें। प्रसन्न रहे तथा (व्यर्थ) व्यय करने से विमुख हों।।२२-२८।।

श्वश्रूश्वशुरयोः कुर्य्यात्पादयोर्वन्दनं सदा। क्रीडाशरीरसंस्कारसमाजोत्सवदर्शनम्।।२९।।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्त्तृका। रक्षेत्कन्यां पिता बाल्ये यौवने पतिरेव ताम्।।३०।।
वार्द्धक्ये रक्षते पुत्रो ह्यन्यथा ज्ञातयस्तथा।
पतिं विना न तिष्ठेत दिवा वा यदि वा निशि।।३१।।

वे सास-ससुर की नित्य पदवन्दना करें। जब पति परदेश चले जायें, तब वह क्रीड़ा, शरीरसज्जा, समाज के उत्सव दर्शन, द्यूत क्रीड़ा, वेशभूषा सजाने का त्याग करे। वे तब गीत-वाद्यादि सभा में, जहां उत्सवादि में अधिक लोग आते हैं, कदापि न जाये। वे हास-परिहास, पराये गृह में जाना, पराये गृह में सोना आदि का त्याग करें। कन्या की बाल्यावस्था में पिता रक्षा करे, यौवन में पति रक्षा करे। वृद्धावस्था में सन्तान रक्षा करे। यदि ये लोग न हों, तब बन्धु-बान्धव रक्षा करें। रमणीगण जब पति साथ न हो, तब वे दिन हो अथवा रात हो, अन्य स्थान में न ठहरें।।२९-३१।।

ज्येष्ठा धर्मविधौ कुर्य्यान्न कनिष्ठां कदाचन।
दाहयेदग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः।।३२।।
आहरेद्विधिवद्दारानग्निश्चैवाविलम्बितः। हिता भर्त्तुर्दिवं गच्छेदिह कीर्त्तिरवाप्य च।।३३।।

।।इति गारुडे महापुराणे गृहस्थधर्मनिर्णयो नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः।।९५।।

पति को भी चाहिये कि वह अपनी पत्नी को धर्म-कर्म में ज्येष्ठा माने, कभी कनिष्ठ न समझे। पतिव्रता स्त्री की कदापि अवज्ञा न करे। पत्नी की मृत्यु होने पर उसकी देह का दाह अग्निहोत्र यज्ञ की अग्नि से करे। तदनन्तर पुनः यथाविधि अविलम्ब पत्निसंग्रह और अग्न्याधान करे। पति का हित चाहने वाली स्त्री इहलोक में कीर्त्ति तथा परलोक में स्वर्ग गामिनी होती है।।३२-३३।।

।।पंचानबेवां अध्याय समाप्त।।

षण्णवतितमोऽध्यायः

संकर जाति की उत्पत्ति, गृहस्थों में धर्म का निर्णय, विधि वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

वक्ष्ये सङ्करजात्यादि गृहस्थादि विधिं परम्।
विप्रान्मूर्द्धाभिषिक्तो हि क्षत्रियार्या विशःस्त्रियाम्॥१॥
जातोऽम्बष्ठस्तु शूद्रायां निषादः पर्वतोऽपि वा।
माहिष्यः क्षत्रियाज्जातो वैश्यायां म्लेच्छसंज्ञितः॥२॥
शूद्रायां करणो वैश्याद्विद्वानेष विधिः स्मृतः।
ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा॥३॥
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्ववर्णविगर्हितः।
क्षत्रियायां मागधो वैश्याच्छूद्रा क्षेत्रावमेव च॥४॥
शूद्र्यामयोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम्। माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते॥५॥

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—अब मैं संकर जाति की उत्पत्ति तथा गृहस्थों की परम विधि को कहता हूं। ब्राह्मण पुरुष तथा क्षत्रिय कन्या से उत्पन्न सन्तान मूर्द्धाभिषिक्त, पुरुष ब्राह्मण तथा वैश्य कन्या से उत्पन्न सन्तान अम्बष्ट तथा ब्राह्मण पुरुष तथा वैश्य कन्या से उत्पन्न सन्तान निषाद अथवा पर्वत जाति कही जाती है। क्षत्रिय पुरुष तथा वैश्य कन्या से उत्पन्न सन्तान माहिष्य तथा क्षत्रिय पुरुष और शूद्रा कन्या से पैदा सन्तान उग्र नामक म्लेच्छ जाति कही जाती है। जब क्षत्रिय पुरुष तथा ब्राह्मण कन्या से सन्तान हो, तब उसे सूत कहते हैं। क्षत्रिय पुरुष तथा वैश्य कन्या की सन्तान को वैदेह, क्षत्रिय पुरुष तथा शूद्र कन्या से उत्पन्न सन्तान को सर्वधर्मरहित चाण्डाल जाति वाला कहते हैं। वैश्य पुरुष तथा क्षत्रिय कन्या से उत्पन्न सन्तान मागध, क्षत्रिय कन्या तथा शूद्रा से उत्पन्न सन्तान क्षत्ता जाति कही गयी है। शूद्र पुरुष तथा वैश्य नारी से पैदा सन्तान अयोगव जाति वाली कही गई है। माहिष्य पुरुष तथा करण जातीय स्त्री की सन्तान रथकार जाति की होती है। ये अपकृष्ट जाति वाले होते हैं॥१-५॥

असंस्तुतास्तु वै ज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः।
जात्युत्कर्षाद् द्विजो ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा॥६॥
व्यत्यये कर्मणां साम्ये पूर्ववच्चोत्तरावरम्। कर्म स्मार्त्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही॥७॥
दानकालादृते वापि श्रौतं वैवाहिकाग्निषु। शरीरचिन्तां निर्वर्त्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः॥८॥

कर्म के उत्कर्ष से तथा कर्म के अपकर्ष से ही जाति का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष माना जाता है। उत्तम कर्म वाले का जन्म उत्तम कुल में तथा निकृष्ट कर्मा का जन्म निन्दित कुल में होता है। इन सबमें अम्बष्ट, सूत तथा माहिष्य अपेक्षाकृत रूपेण श्रेष्ठ हैं। गृहस्थ लोग विवाह के दिन वाली संस्कृत अग्नि की

रक्षा करते हैं तथा उसमें स्मृति के कहे विधानानुरूप नित्य होम करते हैं। वे अनुष्ठान काल में (विशेष अनुष्ठानों में) श्रौत कर्म भी उसी अग्नि में करते हैं। ब्राह्मण प्रातः उठे तथा द्विज शरीर चिन्ता निवृत्त करके शौचादि विधि का पालन करे॥६-८॥

प्रातः सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्वकम्। हुत्वाग्नौ सूर्य्यदैवत्याञ्जपेन्मन्त्रान्समाहितः॥९॥

वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च।

योगक्षेमादिसिद्ध्यर्थमुपेयादीश्वरं गृही॥१०॥

स्नात्वा देवान्पितृंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा। वेदानथ पुराणानि सेतिहासानि शक्तितः॥११॥

जपयज्ञानुसिद्ध्यर्थं विद्याञ्चाध्यात्मिकीं जपेत्।

बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः ॥१२॥

भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः। देवेभ्यस्तु हुतं चाग्नौ क्षिपेद्भूतबलिं हरेत्॥१३॥

दन्तधावन करके वह प्रातः सन्ध्योपासना करे। इसके अनन्तर सूर्यादि देवता का होम सम्पन्न करके मन्त्र जपे। वेदादि शास्त्रों के अध्ययन में मन लगाये। तब वह योग-क्षेम सिद्धि हेतु ईश्वर की उपासना करे। पुनः मध्याह्न में स्नान करके पितृतर्पण, श्राद्ध, वेद-पुराण-इतिहास तथा जपयज्ञादि की सिद्धि के लिये आध्यात्मिक विद्या का जप करे। बलिवैश्येवकर्म, अध्ययन, होम, अतिथि सत्कार तथा पितृतर्पण करे। भूत, पितर, देवता, ब्राह्मण, मनुष्य को प्रसन्न करने वाले काम को करते हुये वह दिन व्यतीत करे। अग्नि में देवता के लिये होम करके प्राणियों की तृप्ति हेतु बलि प्रदान करे॥९-१३॥

अन्नं भूमौ च चाण्डालवायसेभ्यश्च निक्षिपेत्।

अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम्॥१४॥

स्वाध्यायमन्वहं कुर्य्यान्न पचेच्चान्नमात्मने।

बालस्वधासिनी वृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः॥१५॥

संभोज्यातिथिकृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम्। प्राणाग्निहोमविधिनाऽश्नीयादन्नमकुत्सयन्॥१६॥

मितं विपाकञ्च हितं भक्ष्यं बालादिपूर्वकम्।

आपोशानेनोपरिष्टादधस्ताच्चैव भुज्यते॥१७॥

अनग्नममृतञ्चैव कार्य्यमन्नं द्विजन्मना। अतिथिभ्यस्तु वर्णेभ्यो देयं शक्त्यनुपूर्वशः॥१८॥

अप्रणम्योऽतिथिः सोऽयमपि नात्र विचारणा।

संहत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च॥१९॥

आगतान्भोजयेत्सर्वान्महोक्षं श्रोत्रियाय च।

प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातकाचार्य्यपार्थिवाः॥२०॥

प्रियो विवाह्यश्च तथा यः प्रत्युद्विग्नजः पुनः।

अध्वनीनोऽतिथिः प्रोक्तः श्रोत्रियो वेदपारगः॥२१॥

इसके पश्चात् काक एवं चाण्डाल के लिये भूमि पर बलि रखे। इस प्रकार नित्य पितृश्राद्ध, मनुष्यों को अन्न-जल प्रदान करे। नित्य अध्ययन करे, लेकिन केवल मात्र अपने लिये भोजन न पकाये। बालक, वृद्ध, गर्भिणी, पीड़ितों को अन्न खिलाने के पश्चात् गृहस्वामी तथा उसकी पत्नी अन्त में भोजन करे। भोजन के पहले पञ्चप्राण को पांच आहुति देकर भोजनीय अन्न की निन्दा किये बिना भोजन करना चाहिये। ऐसी भक्ष्य वस्तु, जो परिमित पर्याप्त तथा सुख से पके, पहले सन्तान, सन्तति को खिला कर तब स्वयं भोजन करना उचित है। भोजन के पहले तथा भोजनोपरान्त आपोशान करे। ब्राह्मण भोजन पकाकर उसे ढांकें। सर्व वर्ण के आगन्तुक अतिथि को अन्न देना चाहिये। यदि अतिथि प्रणाम का अधिकारी न भी हो, तथापि वह अतिथि होने के कारण मान्य होता है। इसमें अन्यथा विचार न करे। भले ही गृहस्थ निर्धन हो, तथापि वह मांग कर एकत्र करके साधुशील भिक्षुक को भिक्षा अवश्य प्रदान करे। यदि श्रोत्रिय ब्राह्मण अतिथिरूपेण आ जायें, उनके भोजनार्थ महोक्ष प्रदान करे। स्नातक, आचार्य, राजा, सुहृद, वैवाहिक तथा विपन्नों को प्रतिवर्ष भोजनादि से प्रसन्न करना चाहिये। यह नियम है। वेदज्ञ ब्राह्मण को श्रोत्रिय तथा पथिक को अतिथि कहा है॥१४-२१॥

मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सतः। परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृते॥२२॥

जो गृहस्थ ब्रह्मलोक प्राप्त करना चाहें, उसके लिये श्रोत्रिय तथा अतिथि माननीय होते हैं। साधु व्यक्ति यदि निमन्त्रण दे, तब उनके यहां जाये, लेकिन अन्य लोगों द्वारा निमन्त्रित होकर भी उन लोगों के यहां भोजन नहीं करे॥२२॥

वाक्पाणिपाद चापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम्।
श्रोत्रियं वातिथिं तृप्तमासीमान्तादनुव्रजेत्॥२३॥
अहःशेषं सहासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नौ भोजनं ततः॥२४॥
कुर्य्याद्भृत्यैः समायुक्तैश्चिन्तयेदात्मनो हितम्।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय मान्यो विप्रो धनादिभिः॥२५॥

गृहस्थ को चाहिये कि वह वाणी तथा हाथ-पैर की चंचलता, अति भोजन त्यागे। श्रोत्रिय अथवा अतिथि की प्रसन्नता हेतु उनके भोजनोपरान्त वापस जाते समय उनके पीछे-पीछे घर की सीमा तक जाकर विदा करे। शान्त एवं शीलयुक्त कुटुम्बी लोगों के साथ एक जगह सुखपूर्वक बैठे। दिन के शेष भाग के उपरान्त सायं सन्ध्योपासना करके होम करे। तब नौकरों के साथ अपने हितार्थ राय-मशविरा करे। ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर ब्राह्मणों को धनादि देकर सन्तुष्ट करे॥२३-२५॥

वृद्धार्त्तानां समादेयः पन्था वै भारवाहिनाम्।
इज्याध्ययनदानादि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च॥२६॥
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा।
प्रधानं क्षत्रिये धर्मः प्रजानां प्रतिपालनम्॥२७॥

कुषीदकृषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम्।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजो यज्ञं न हापयेत्॥२८॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः। दमः क्षमाऽऽर्जवं दानं सर्वेषां धर्मसाधनम्।
आचरेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा॥२९॥

वृद्ध, आर्त्त को दान देकर भारवाही रीति को (परिश्रम वाले कामों का) करे। यज्ञ, अध्ययन, दानादि क्षत्रिय तथा वैश्य के कर्त्तव्य कर्म कहे गये हैं। यज्ञ, अध्ययन, दान, प्रतिग्रह, यजन, अध्यापन, ब्राह्मण के कर्त्तव्य धर्म हैं। प्रजापालन क्षत्रिय का प्रधान धर्म है। सूद लेना, खेती, वाणिज्य, पशुपालन ही वैश्य का नित्य कर्म है। शूद्र लोग केवल द्विजों की सेवा करें। यही उनका श्रेष्ठ धर्म होगा। द्विजगण नित्य सत्य, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियों को वश में रखना, दम, क्षमा, सरलता, दान, सभी वर्ण के लिये विहित कर्म हैं। सभी वर्ण वाले अपनी-अपनी जाति वाली जीविका का आचरण करें। शठता तथा दर्प को छोड़ कर जीवनयापन करें॥२६-२९॥

त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स सोमं पातुमर्हति।
स्यादन्नं वार्षिकं तस्य कुर्य्यात् प्राक् सौमिकीं क्रियाम्॥३०॥
प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुप्रत्ययनं तथा। कर्त्तव्या ग्रहणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि यत्नतः॥३१॥
एषामसम्भवे कुर्य्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः। हीनद्रव्यं न कुर्वीत सति द्रव्ये फलप्रदम्॥३२॥
चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्।
यज्ञार्थलब्धं नादद्याद्भासः काकोऽपि वा भवेत्॥३३॥
कुसूलकुम्भी धान्यो वा त्रैहिको ह्यस्तनोऽपि वा।
जीवेद्वापि शिलोञ्छेन न श्रेयानेषां परः परः॥३४॥

जो मानव तीन वर्ष के उपयोग भर का अन्न संचित रखता है, वह सोमपान का उचित अधिकारी है। जो मनुष्य एक वर्ष के उपयोग भर का अन्न संचित रखता है, वह सोमपान के पहले जो कार्य होता है, उतने का अधिकारी है। प्रत्येक वर्ष सोमयाग, पशुयाग, ग्रहणेष्टि तथा चातुर्मास्य व्रत करे। एक वर्ष में जो मानव यह कार्य नहीं कर सकता, वह कम से कम अग्निहोत्र अवश्य करे। जो द्रव्य उस कार्य के अंग हैं, उनके अभाव में अंगहीन कार्य कदापि करना उचित नहीं है। द्रव्ययुक्त कार्य ही फलप्रद होता है। जो शूद्र से भिक्षा लेकर उस द्रव्य से कोई यज्ञ करता है, उस यज्ञकर्त्ता को चाण्डालयोनि मिलती है। यज्ञ के लिये लाये द्रव्य का भक्षण करने वाला काकयोनि में जन्म लेता है। जिसके पास कुम्भ भर कर धान्य है अथवा तीन दिन के आहार करने लायक अन्न संचित है अथवा केवल अगले दिन उपभोग लायक ही अन्न है तथा जो व्यक्ति उञ्छवृत्ति द्वारा नित्यप्रति अन्न एकत्र करता है, इन सबके सुख में एक तारतम्य है॥३०-३४॥

न स्वाधायविरोध्यर्थमीहते न यतस्ततः।
राजान्तेवासिगोत्रेभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा।
दम्भहेतुकपाषण्डिवकवृत्तीश्च वर्जयेत्॥३५॥

शुक्लाम्बरधरो नित्यं केशश्मश्रूनखैः शुचिः।
न भार्य्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासा न संस्थितः॥३६॥
अप्रियं न वदेज्जातु ब्रह्मसूत्री विनीतवान्।
देवप्रदक्षिणान् कुर्य्याद् यष्टिमान् सकमण्डलुः॥३७॥
न तु मेहेन्नदीच्छायाभस्मगोष्ठाम्बुवर्त्मसु।
न प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसन्ध्याम्बुस्त्री द्विजन्मनाम्॥३८॥
नेक्षेताग्न्यर्कनग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम्।
न मूत्रं पुरीषं वापि स्वपेत् प्रत्यक्शिरा न च॥३९॥

स्वाध्याय में विघ्न हो, ऐसी जीविका न अपनाये। यदि अन्न न रहने पर भूख की पीड़ा आती है, तब राजा, छात्र अथवा स्वजातीय से भी धन की याचना की जा सकती है। दाम्भिक वृत्ति से, पाखण्ड वृत्ति से, नकली तपस्वी बनकर इन विधियों का आश्रय लेना उचित नहीं है। सदा शुभ्र वस्त्र पहने। बाल, दाढ़ी साफ रखे। साफ नख रखे। पत्नी के सामने अथवा एक कपड़ा पहने भोजन न करे। सदा यज्ञोपवीतधारी रहना तथा विनीत रहना चाहिये। छड़ी तथा कमण्डल लेकर देवता की प्रदक्षिणा करे। नदी में, वृक्षों की छाया में, भस्म में, गोष्ठ में, जल में तथा मार्ग में मूत्रत्याग कदापि न करे। अग्नि, सूर्य, गौ, चन्द्र, पूर्व-पश्चिम दिशा की ओर, जल, स्त्री तथा ब्राह्मण के सामने मूत्र त्याग वर्जित है। जब सूर्य उग रहे हों, किंवा डूब रहे हों, तब सूर्य की ओर न देखे। नग्ना अथवा रमणरत स्त्री, मूत्र-मल को कभी न देखे। पश्चिम की ओर शिर करके निद्रा निषिद्ध है॥३५-३९॥

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्रविषाण्यप्सु न संक्षिपेत्।
पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलङ्घयेत्॥४०॥
पिबेन्नाञ्जलिना तोयं न शयानं प्रबोधयेत्।
नाक्षैः क्रीडेच्च कितवैर्व्याधितैश्च न संविशेत्॥४१॥
विरुद्धं वर्जयेत् कर्म प्रेतधूमं नदीतटम्। केशभस्मतुषाङ्गारं कपालेषु च संस्थितिम्॥४२॥
नाचक्षीत धयन्तीं गां नाद्वारेणाविशेत्क्वचित्।
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्त्तिनः॥४३॥
अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन च।
हस्ते चौषधिभावे वा पञ्चम्यां श्रावणस्य च॥४४॥
पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा।
जलान्ते छन्दसां कुर्य्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः॥४५॥

थूक, रक्त, मल, मूत्र तथा विष जल में कदापि न फेंके। दोनों पैर अग्नि में तापना, अग्नि को लांघना, अंजलि से जल पीना, निद्रित को जगाना, धूर्त के साथ पासा (द्यूत) खेलना, रोगी के साथ

छुआछूत करना उचित नहीं है। चिता की धुंआ तथा नदीतट पर निवास का वर्जन करे। कटे केश, भस्म, भूसी, अंगार (जले कोयले) तथा मनुष्य के कपाल पर न बैठे। जल पीती गौ को न हटाये। द्वार के अतिरिक्त खिड़की से अथवा दीवाल फांद कर घर में प्रवेश करना अनुचित है। लालची राजा तथा शास्त्र मर्यादा न मानने वाले से धन न मांगे। श्रावणी पूर्णिमा, श्रवणानक्षत्र, हस्ता, श्रवण पञ्चमी, पौषमासीय रोहिणी नक्षत्र, अष्टका आदि के दिन उपाकर्म (संस्कार युक्त वेदपाठ) करना उचित नहीं है। नगर के बाहर, जल के पास (जल में नहीं) सविधि मूत्र त्याग करना चाहिये॥४०-४५॥

अनध्यायस्त्र्यहं प्रेते शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु। उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखश्रोत्रिये मृते॥४६॥
सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातनात्। समाप्य वेदं त्वनिशमारण्यकमधीत्य च॥४७॥
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके।
ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च॥४८॥
पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारशूकरैः। कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शुक्रपाते तथोच्छ्रये॥४९॥

जब गुरु, शिष्य तथा बन्धु का मरण हो, तब तीन रात्रि (दिन-रात) अनध्याय रहे। उपाकर्म पूर्ण होने पर, अपनी शाखा के श्रोत्रिय के मरण पर, सन्ध्या गर्जन पर, निर्घात तथा भूकम्प होने पर, उल्कापात होने पर, वेद समाप्ति होने पर, आरण्यकोपनिषद् का अध्ययन समाप्त होने पर अनध्याय करे। पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी, अष्टमी, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, ऋतुसन्धि, भोजन के अन्त में तथा श्राद्धीय द्रव्य ग्रहण करके अध्ययन न करे। पशु, मेंढक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिड़ाल तथा शूकर यदि गुरु-शिष्य के बीच के स्थान से पार हो जायें, तब तथा बिजली गिरने पर अहोरात्र (दिन-रात) अनध्याय रहेगा॥४६-४९॥

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबालार्त्तनिस्वने। अमेध्यशवशूद्रान्ते श्मशानपतितान्तिके॥५०॥
देशेऽशुचौ वर्त्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे। भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोऽन्तरर्द्धरात्रेऽतिमारुते॥५१॥
दिग्दाहे पांशुवर्षे च सन्ध्यानीहारभीतिषु। धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते॥५२॥
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे। सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः॥५३॥
वेदद्विष्टं तथाचार्य्यं राजच्छायां परस्त्रियम्। नाक्रामेद्रक्ताविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्त्तनानि च॥५४॥
विप्रा हि क्षत्रियात्मानो नावज्ञेयाः कदाचन।
दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादान्तानां समुत्सृजेत्॥५५॥
श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं कुर्य्यान्मर्मणि न स्पृशेत्।
न निन्दाताडने कुर्य्यात्सुतं शिष्यञ्च ताडयेत्॥५६॥

कुत्ता, शृगाल, गधा, उल्लू, बालक तथा पीड़ाग्रस्त व्यक्ति का जब आर्त्त स्वर सुनाई पड़े, जब अपवित्र शव, शूद्र, नीच-पतित व्यक्ति निकट आये, तब अनध्याय होगा। अपवित्र जगह, रास्ता, बिजली कड़कने, भोजन के अन्त में, गीला हाथ रहने पर, जल में, आधी रात में, झंझावात होने पर, दिग्दाह होने पर, धूलवर्षा (आंधी), सन्ध्या काल में, कुहरा पड़ने पर अध्ययन वर्जित है। कभी दौड़ते उपाध्याय से अध्ययन न करे। जब कोई साधु गृह में आ जाये, तब वेदाध्ययन रोके (साधु का स्वागत करे)। गर्दभ,

ऊंट, यान, हाथी, घोड़ा, वृक्ष, नौका तथा पर्वत पर चढ़ते समय अनध्याय रखे। जिस समय के लिये कहा गया, केवल तभी अनध्याय होगा। वेदोक्त कार्य में लगे ऋत्विक्, स्नातक, आचार्य, राजा की छाया लांघनी नहीं चाहिये। पराई नारी, रक्त, मल-मूत्र, थूक, तैल, उबटन को लांघना नहीं चाहिये। ब्राह्मण, राजा, सर्प तथा जीवन की अवज्ञा कभी नहीं करे। जूठन, मल, मूत्र को दूर से अस्पृश्य मान कर इनका त्याग करना चाहिये। वेद तथा श्रुति में बताये गये आचार का पालन करने में मन में कोई पछतावा नहीं होना चाहिये। उक्त आचार की निन्दा भी न करे। पुत्र तथा शिष्य को शिक्षा तथा अनुशासन देते समय पीटा जा सकता है॥५०-५६॥

आचरेत्सर्वदा धर्मं तद्विरुद्धं तु नाचरेत्। मातापित्रतिथीत्युच्चैर्विवादं नाचरेद् गृही॥५७॥
पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु। स्नायान्नदीप्रस्रवणदेवखातह्रदेषु च॥५८॥
वर्जयेत्परशय्यादि न चाश्नीयादनापदि। कदर्य्यं बद्धवैराणां तथा चानग्निकस्य च॥५९॥
वैणाभिशस्तवार्द्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम्। पात्रान्तरचिकित्सानां क्लीबरङ्गोपजीविनाम्॥६०॥
क्ररोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम्। शास्त्रविक्रयिणश्चैव स्त्रीजितग्रामयाजिनाम्॥६१॥
नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम्। पिशुनानृतिनोश्चैव सोमविक्रयिणस्तथा॥६२॥
वन्दिनां स्वर्णकाराणामन्नमेषां कदाचन।
न भोक्तव्यं वृथा मांसं केशकीटसमन्वितम्॥६३॥

सदा अपने धर्म का पालन आवश्यक है। अधर्म का आचरण सदा अनुचित है। माता, पिता, अतिथि तथा धनी व्यक्ति से मौका पड़ने पर भी अत्यन्त विवाद न करे। पराये जलाशय से पांच मिट्टी का पिण्ड निकाल कर बाहर फेंके बिना उसमें स्नान वर्जित है। नदी, पर्वत, प्रस्रवण, देवखातों तथा ह्रदों हेतु यह नियम पालन न करने पर भी दोष नहीं होता। कभी भी पराये बिस्तर पर शयन न करे। यदि विपत्ति न पड़ी हो, तब बासी अन्न, शत्रु का अन्न तथा अग्निरहित ब्राह्मण के अन्न का कदापि भोजन न करे। बांसुरी वादक, परदोष बताने वाले, सूदखोर, व्रात्य (जिनका यथाकाल यथानियम उपनयन नहीं हुआ), घमण्डी, जूठा खाने वाला, शास्त्र बेचने वाला, वेश्याओं को दीक्षा देने वाला ब्राह्मण, चिकित्सक, नपुंसक, रंगरेज, दुष्टचित्त, उग्र स्वभाव, स्त्री के वशीभूत रहने वाला, ग्राम में यजन करने वाला, प्रजा वर्ग को पीड़ित करने वाला, राजा, कृतघ्न, धोबी, कसाई-जल्लाद, दुष्ट, झूठा, सोम विक्रेता, वन्दी (जो यशगान करते हैं), सोनार का अन्न खाने लायक नहीं होता। व्यर्थ तथा देवों को निवेदित किये बिना मांस भोजन तथा केश-कीट आदि पड़ा अन्न इनका कभी भोजन न करे॥५७-६३॥

भक्तं पर्य्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितोक्षितम्। उदक्यास्पृष्टसंघृष्टमपर्य्याप्तञ्च वर्जयेत्।
गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पादस्पृष्टञ्च कामतः॥६४॥
शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः। भोज्यान्नो नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत्॥६५॥
अन्नं पर्य्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम्।
अस्नेहा नापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः॥६६॥

औष्ट्रमैकशफं स्त्रीणां पयश्च परिवर्जयेत्। क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुक्रमांसानि वर्जयेत्॥६७॥
सारसैकशफान्हंसान्बलाकवकटिट्टिभान्। वृथा कृषरसंयावपायसापूपसष्कुलीः॥६८॥
कुररं जालपादञ्च खञ्जरीटमृगद्विषः। चाषान्मत्स्यान्नरक्तपादान्जग्ध्वा वै कामतो नरः॥६९॥

बन्धुरं कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं भवेत्।
पलाण्डुलशुनादीनि जग्ध्वा चान्द्रायणञ्चरेत्॥७०॥

बासी जूठा अन्न, कुत्ते का चाटा अन्न, पतितों द्वारा देखा अन्न, रजस्वला नारी का स्पर्श किया अन्न, गौ द्वारा सूंघा अन्न, पक्षी का जूठा अन्न, जानबूझ कर पैर से छूआ अन्न कदापि न खाये। शूद्रान्न तो सदा वर्जित है, तथापि शूद्रों में से दास, गोप, कुलमित्र, अर्द्धसीरी, नाऊ तथा आत्मसमर्पण करने वाले शूद्र के अन्न का भोजन हो सकता है। जो अन्न बासी तथा बहुत पहले पकाया हुआ है, उसे घृत मिला कर रखने पर भोजन दोष नहीं लगता। घृत न मिला हो तथापि जौ, गेहूं तथा दुग्ध विकार (दही-खोया-छेना) आदि से बने अन्न का भोजन किया जा सकता है। जो गौ गर्भ धारणार्थ कामुक हो गई है, उसका दुग्ध, उन पशुओं का दुग्ध, जिनका एक ही खुर है तथा नारियों का दूध पीना वर्जित है। मांसभोजी पक्षी, डाहुक, शुक, सारस, एकशफ, कृष्णवर्ण बक, टिटिहरी का मांस खाना वर्जित है। जो तिल चावल की खिचड़ी देवता अथवा अतिथि को अर्पित नहीं की गई, मिला-जुला भोजन, द्रव्य, यवागू, मिठाई, मालपूआ, पिष्टक, शष्कुली न खाये। कुररी पक्षी, राजहंस, खंजन तथा कुत्ते का मांस खाना मना है। सोन चिड़िया, तोता, हंस का मांस खाने पर तीन अहोरात्र उपवासी रहने से व्यक्ति निष्पाप होगा। प्याज तथा लहसुन खाने पर चान्द्रायण व्रत करे॥६४-७०॥

श्राद्धे देवान्पितॄन्प्राच्च्य खादेन्मांसं न दोषभाक्।
वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमतः॥७१॥
सम्मितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून्।
मांसं सन्त्यज्य संप्रार्थ्य कामाद्याति ततो हरिम्॥७२॥

॥इति गारुडे महापुराणे गृहस्थविधिर्नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

श्राद्ध में देवता-पितर को निवेदित करके मांस खाने का कोई दोष नहीं होता, लेकिन व्यर्थ हत्या करके स्वाद हेतु खाने वाला मृत पशु के जितने रोम हैं, उतने समय तक भयानक नरक में रहता है। तदनन्तर नरक भोग पूरा होने पर कहता है कि "हे भगवान्! मैं वृथा पशुवध नहीं करूंगा।" ऐसी प्रार्थना करके वह प्रभुकृपा से पापरहित होता है॥७१-७२॥

॥छियानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
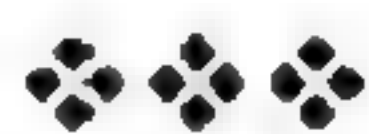
सप्तनवतितमोऽध्यायः

द्रव्यशुद्धि प्रकरण वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां निबोधत सत्तमाः।
सुवर्णराजताब्जानां शङ्खरज्ज्वादिचर्मणाम्।
पात्राणाञ्चासनानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते॥१॥

उष्णाद्भिः स्रुक्स्रुवयोर्धान्यानां प्रोक्षणेन च। तक्षणाद्दारुशृङ्गादेर्यज्ञपात्रस्य मार्जनात्॥२॥

सोष्णैरुदकगोमूत्रैः शुद्ध्यत्याविककौषिकम्।
भैक्ष्यं योषिन्मुखं पश्यन्पुनः पाकान्महीमयम्॥३॥
गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते।
भस्मक्षेपाद्विशुद्धिः स्याद्भूशुद्धिर्मार्जनादिना॥४॥

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—हे सत्तमों! मैं द्रव्य शोधन कहता हूं। उसे सुनिये। स्वर्ण, चांदी, शंख, रज्जु, चर्म से बने पात्र, आसन को सामान्य जल से प्रक्षालित करने से शुद्ध होते हैं। स्रुक्, स्रुव, धान्य उष्ण जल से प्रक्षालन द्वारा शुद्ध होते हैं। काठ तथा सींग से बने द्रव्य जब अशुद्ध हों, तब उनका कुछ अंश काट कर फेंके। अशुद्धि नाश होगा। यज्ञीय द्रव्य मार्जन से पवित्र होंगे। उष्ण जल तथा उष्ण गोमूत्र से धोने से कम्वल तथा कौषेय वस्त्रों की शुद्धि हो जाती है। भिक्षा से प्राप्त तण्डुल आदि तथा स्त्री का मुख सदा पवित्र है। मिट्टी के पात्र पुनः तपाने से पवित्र होते हैं। अन्न को गौ सूंघ ले अथवा वह मक्खी, केश, किंवा कीड़ों से दूषित हो जाये, तब वह भस्म छिड़कने से शुद्ध होगा। भूमि धोने से पावन होगी॥१-४॥

त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः। भस्माद्भिर्लोहकांस्यानामज्ञातञ्च सदा शुचि॥५॥

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धलेपापकर्षणात्। शुचि गोतृप्तिदं तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्॥६॥

तथा मांसं श्वचण्डालक्रव्यादादिनिपातितम्।
रश्मिरग्निरजच्छाया गौश्चैव वसुधानि च॥७॥
अश्वाजविप्रुषो मेध्यास्तथा च मलबिन्दवः।
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे॥८॥

आचान्तः पुनराचामेद्वासोऽन्यत्परिधाय च। क्षुते निष्ठीवने स्वापे परिधानेऽश्रुपातने॥९॥

पञ्चस्वेतेषु नाचामेद्दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्।
तिष्ठन्त्यग्न्यादयो देवा विप्रकर्णे तु दक्षिणे॥१०॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्रव्यशुद्धिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥९७॥

पीतल, शीशा, धातु तथा ताम्रपात्र अम्ल तथा क्षार जल से शुद्ध होते हैं। लौहपात्र भस्म जल से धोये जाने पर पवित्र हो जाते हैं। अज्ञात द्रव्य सर्वदा शुद्ध रहते हैं। यदि कोई द्रव्य का अशुद्ध वस्त्र से स्पर्श हो जाये, तब उसे मिट्टी मिले जल से धोकर सुगन्ध लेप से लिप्त करे। वे शुद्ध हो जायेंगे। गढ़े का जल यदि किसी अशुद्ध वस्तु को मिलने से अशुद्ध हो जाये, तब वहां गौओं के पीने से वह शुद्ध होगा। कुक्कुर, चाण्डाल तथा मांसाहारी निकृष्ट जीव द्वारा मारे जाने पर भी वैध मांस अपवित्र नहीं होता। रश्मि, अग्नि, गौ, अश्व, पृथिवी, वायु, ब्रह्मविन्दु तथा शहद की मक्खी अपवित्र नहीं है। यह सब सर्वदा शुद्ध होते हैं। स्नान के बाद, पीने के बाद, हिचकी, शयन के अन्त में, भोजनोपरान्त, पथ पर्यटन के बाद आचमन करके पुन: आचमन करे तथा पहिने वस्त्र उतार कर बदले। हिचकी, थूक, निद्रा, वस्त्र परिधान तथा अश्रुपात के पश्चात् आचमन न करे। मात्र दाहिना कान स्पर्श करने से शुद्धि हो जाती है। ब्राह्मण के दाहिने कान पर अग्नि आदि देवगण सदा रहते हैं।।५-१०।।

।।सतानबेवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
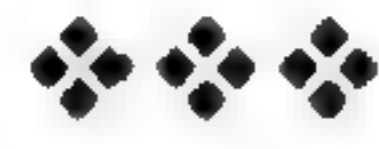
अष्टनवतितमोऽध्यायः

दानधर्म वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

अथ दानविधिं वक्ष्ये तन्मे शृणुत सुव्रताः।
अन्येभ्यो ब्राह्मणाः श्रेष्ठास्तेभ्यश्चैव क्रियापराः।।१।।
ब्रह्मवेत्ता च तेभ्योऽपि पात्रं विद्यात्तपोऽन्वितम्।
गोभूधान्यहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।।२।।
विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः। गृह्णन्प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च।।३।।
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः। याचिते चापि दातव्यं श्रद्धापूतं तु शक्तितः।।४।।
हेमशृङ्गी शफै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता।
सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा।।५।।

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—हे सुव्रत मुनिगण! अब मैं दानविधि कहता हूं। सुनिये। अन्य वर्णों से ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनके क्रिया तत्पर प्रधान हैं। इनमें से भी जो ब्रह्म, तप:शील तथा विद्वान् हैं, वे सत्पात्र हैं। गौ, भूमि, धान्य, स्वर्ण को सत्पात्र की पूजा करके उसे ही देना चाहिये। जो लोग विद्या तथा तप: रहित हैं, वे कदापि दान ग्रहण न करें। यदि वे दान लेते हैं, तब वे स्वयं को और दाता को अधोगामी करते

हैं। नित्य अथवा किसी कारण से दान अवश्य करे। यह दान सत्पात्र को करे। किसी व्यक्ति द्वारा याचना किये जाने पर श्रद्धा के कारण अपनी जितनी शक्ति हो, दान करना चाहिये। स्वर्ण से मढ़े सींग वाली, चांदी से मढ़े खुरों वाली, वस्त्र से आच्छादित, कांस्य पात्र के दोहन पात्र के साथ दुग्धवती गौ दक्षिणा के साथ दान करे॥१-५॥

स दशर्णवैकशृङ्गं शफं सप्तपलैः कृतम्।
पञ्चाशत्पलिकं पात्रं कांस्यं वत्सस्य कीर्त्त्यते॥६॥
स्वर्णपिप्पलपात्रेण वत्सो वा वत्सिकापि वा।
अस्या अपि च दातव्यमपत्यं रोगवर्जितम्॥७॥
दाता स्वर्गमवाप्नोति वत्सरान्रोमसंमितान्। कपिला चेत्तारयते भूयश्चासप्तमं कुलम्॥८॥
यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ मुखं योन्यां प्रदृश्यते।
तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति॥९॥
यथा कथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते॥१०॥

दश पल से स्वर्ण शृंग, सात पल रजत द्वारा खुर, पचास पल कांसा से दोहन पात्र बनाये। गौ सवत्सा हो। इस गौ के साथ एक बछड़ा अथवा बछड़ी भी स्वर्णपात्र सहित दान करे। यह बछड़ी रोगहीन हो। ऐसी विधि के साथ दान करने वाला उतने समय स्वर्ग में रहता है, जितने संख्यक रोम उस गौ के होते हैं। यदि यह कपिला गौ हो, तब दानकर्त्ता की सात पीढ़ी नरक से त्राण पा जाती है। जब गौ बच्चा दे रही हो, तब मात्र बच्चे का मुख तथा दोनों अगले पैर बाहर दीखें, उसी समय तक वह गौ पृथिवी रूपा होती है। इस अर्द्ध प्रसूता गौ का दान समग्र पृथिवी के दान इतना पुण्यप्रद होता है। रोगवर्जिता उत्तम गौ का दाता स्वर्ग जाता है॥६-१०॥

श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्य्या सुरार्चनम्। पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत्॥११॥
द्विजाय स्वमभीष्टं तु दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात्।
भूदीपांश्चान्नवस्त्राणि सर्पिर्दत्त्वा व्रजेच्छ्रियम्॥१२॥
गृहधान्यच्छत्रमाल्यवृक्षयानघृतं जलम्। शय्यानुलेपनं दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते॥१३॥
ब्रह्मदाता ब्रह्मलोकं प्राप्नोति सुरदुर्लभम्।
वेदार्थयज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि।
मूल्येनापि लिखेद्वापि ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥१४॥

थके तीर्थयात्री का शरीर दबाना, रोगी की सेवा, देवतार्चन, ब्राह्मण का पैर धोना, उनके जूठन की जगह साफ करना भी गोदान का फल देता है। ब्राह्मण को इच्छित वस्तु देने पर स्वर्ग मिलता है। भूमि, प्रदीप, अन्न, वस्त्र तथा घृत दान करने वाले को लक्ष्मी मिलती है। गृह, धान्य, छाता, माला, फलदार पेड़,

यान, घृत, जल, शय्या दान से श्री तथा अनुलेपन दान से स्वर्ग मिलता है। जो मनुष्य वेद दान करता है, उसे देवदुर्लभ ब्रह्मलोक की प्राप्ति होगी। वेद का अर्थ, यज्ञपात्र, धर्मशास्त्र को यदि मूल्य लेकर भी लिखकर प्रदान किया जाये, तब वह ब्रह्मलोक जाता है॥११-१४॥

एतन्मूलं जगद्यस्मादसृजत्पूर्वमीश्वरः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य्यो वेदार्थसंग्रहः॥१५॥

इतिहासपुराणं वा लिखित्वा यः प्रयच्छति।
ब्रह्मदानसमं पुण्यं प्राप्नोति द्विगुणोन्नतिम्॥१६॥
लोकायतं कुतर्कञ्च प्राकृतं म्लेच्छभाषितम्।
न श्रोत्रव्यं द्विजेनैतदधो नयति तं द्विजम्॥१७॥
समर्थो यो न गृह्णीयाद्दातृलोकानवाप्नुयात्।
कुशाः शाकं पयो गन्धाः प्रत्याख्येया न वारि च॥१८॥

ईश्वर ने वेद मूल से ही जगत् का सृजन कार्य किया था। अत: जो इतिहास-पुराणशास्त्र लिख कर दान करता है, उसे ब्रह्मदान ऐसा पुण्य होता है। उसकी दूनी उन्नति होती है। ब्राह्मण लौकिक खराब गन्दे शब्द, कुतर्क, प्राकृत-म्लेच्छ भाषा कभी न सुने। इन सबका श्रवण करने वाला ब्राह्मण अधोगति पाता है। जो मनुष्य समर्थ होकर भी प्रतिग्रह नहीं करता (दान नहीं लेता), उसे दाता इतना फल मिलेगा, तथापि कृशर, शाक, दुग्ध, गन्ध, जल मिलने पर उसे कदापि मना न करे। यदि कोई यह सब देना चाहे, तब अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिये॥१५-१८॥

अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः। अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यो द्विषस्तथा।
देवातिथ्यर्चनकृते पितृतृप्त्यर्थमेव च॥१९॥

॥इति गारुडे महापुराणे दानधर्मो नाम अष्टनवतितमोऽध्यायः॥९८॥
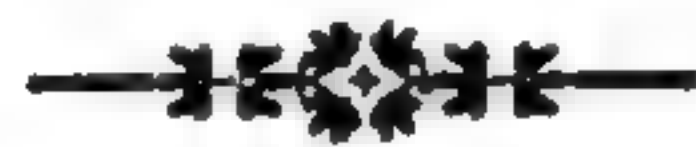
यदि कोई दुष्कृति करने वाला भी बिना मांगे कुछ देता है तो उसे लेने में कोई मनाही नहीं है, लेकिन कुलटा स्त्री, नपुंसक, पतित तथा शत्रु से कुछ नहीं लेना चाहिये। देवार्चन, अतिथि सेवा, श्राद्धादि करने हेतु पतित से भी दान लिया जा सकता है। अपनी जीवन रक्षा हेतु सामान्य व्यक्ति से भी दान लेने से दोष नहीं होता॥१९॥

॥अट्ठानबेवां अध्याय समाप्त॥

नवनवतितमोऽध्यायः

श्राद्ध विधि वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

अथ श्राद्धविधि वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम्। अमावस्याष्टकावृद्धिकृष्णपक्षायनद्वयम्॥१॥
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्य्यसंक्रमः। व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्य्ययोः।
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालः प्रकीर्त्तितः॥२॥
अग्रो यः सर्वदेवेषु श्रोत्रियो वेदविद्यवा। तिथिज्ञाने च कुशलः त्रिमधुस्त्रिसवर्णिकः॥३॥
स्वस्त्रीयऋत्विग्जामाताचार्य्यश्वशुरमातुलाः। त्रिणाचिकेतदौ हित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः॥४॥
कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः। पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धदेवताः॥५॥

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—अब सर्व पाप नाश करने वाली श्राद्ध विधि सुनिये। अमावस्या, अष्टका, वृद्धि, प्रेतपक्ष, दक्षिणायन, उत्तरायण तथा जब कभी उत्कृष्ट वस्तु एकत्र हो जाये, वेदज्ञ विधिज्ञाता ब्राह्मण मिल जाये, दोनों विषुव, रवि संक्रमण, व्यतीपात योग, गजच्छाया (माघी त्रयोदशी), चन्द्र-सूर्य ग्रहण तथा जब भी श्राद्धार्थ विशेष प्रवृत्ति हो, वह सब श्राद्ध काल है। सर्व वेदज्ञ, श्रोत्रिय, वेदार्थज्ञ, ज्येष्ठ सामज्ञ, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, भागिनेय, पुरोहित, जामाता, आचार्य, श्वशुर, मातुल, त्रिणाचिकेत, दौहित्र, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव तथा जो कोई ब्राह्मण क्रियावान् हों, तपस्वी तथा अग्निहोत्र करने वाले, ब्रह्मचारी किंवा पिता-माता की सेवा करने वाले हों, ऐसे ब्राह्मण श्राद्धकार्य कराने के पात्र हैं। वे श्राद्धदेवता हैं॥१-५॥

रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा।
अवकीर्णादयो ये च ये चाचारविवर्जिताः॥६॥
अवैष्णवाश्च ये सर्वे श्राद्धार्हा न कदाचन। निमन्त्रयेच्च पूर्वेद्युर्द्विजैर्भाव्यं च संयतैः॥७॥
आचान्ताश्चैव पूर्वाह्ले ह्यासनेषूपवेशयेत्। युष्मान्देवे तथा पित्र्ये स्वप्रदेशेष्वशक्तितः॥८॥
द्वौ दैवे प्रागुदक्पित्र्ये त्रीण्येकञ्चोभयोः पृथक्।
मातामहानामप्येवं मन्त्रं वा वैश्वदेविकम्॥९॥
हस्तप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थे कुशानपि। आवाह्य तदनुज्ञातो विश्वेदेवा महानृचा॥१०॥
यवैरन्नं विकीर्य्याथ भाजने सपवित्रके।
शन्नोदेव्याः पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा॥११॥
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वेव विनिक्षिपेत्।
गन्धं तथोदकञ्चैव धूपादींश्च पवित्रकम्॥१२॥

रोगी, कम अंग वाले, अधिक अंग वाले, जो स्त्री द्वितीय पति कर चुकी हो, उससे उत्पन्न सन्तान को पौनर्भव कहते हैं, ऐसा पौनर्भव ब्राह्मण, व्रत संकल्प करके उससे पुनः च्युत होना, भ्रष्ट आचार वाले, विष्णु भक्तिरहित ब्राह्मण श्राद्धीय ब्राह्मण नहीं हो सकते। जिस दिन श्राद्ध करना हो, उससे पूर्व वाले दिन गुणयुक्त ब्राह्मणों के पास एक ब्राह्मण द्वारा श्राद्धार्थ श्राद्ध में निमन्त्रित करे। श्राद्धकाल में आचमन करके श्राद्धकर्त्ता पहले हाथ जोड़कर निमन्त्रित ब्राह्मणों को आसन पर बैठा कर देवपात्र हेतु दो ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख, पितृपात्र के तीन ब्राह्मणों को उत्तराभिमुख पृथक्-पृथक् आसन पर बैठा कर इसी प्रकार मातामह पात्र के तीन ब्राह्मणों को भी बैठाये। तत्पश्चात् हाथ धोने हेतु जल दे और बैठने हेतु कुशासन देकर श्राद्ध करने वाले 'विश्वेदेवास' इत्यादि मन्त्र से आवाहन करे। ब्राह्मण से आज्ञा लेकर अब पवित्र युक्त पात्र में यव विकीर्ण करे। 'शन्नो देव्या' इत्यादि मन्त्र द्वारा जल, 'यवोऽसि' इत्यादि मन्त्र से यव तथा 'या दिव्या' इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण के हाथ में अर्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर गन्ध, जल, धूप, माला, वस्त्र, दीप अर्पित करे॥६-१२॥

अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम्।
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन्॥१३॥
आवाह्य तदनुज्ञातैर्जपेदायान्तु नस्ततः।
यवार्थस्तु तिलैः कार्य्यः कुर्य्यादर्घ्यादि पूर्ववत्॥१४॥
दत्त्वार्घ्यं संश्रवं ह्येषां पात्रे कृत्वा विधानतः।
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः॥१५॥
अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम्।
सव्याहृतिञ्च गायत्रीं मधुवातेत्यृचस्तथा॥१६॥

तब अपसव्य हाथ द्वारा वामवर्त्त क्रमेण 'उशन्तस्त्वे' इत्यादि ऋचा से पितरों का आवाहन करके उनसे आज्ञा ले तथा 'आयन्तु नः पितरः' इत्यादि मन्त्र को पढ़ना चाहिये। अर्घ्य आदि में यव की जगह अब तिल छोड़े। सविधि पात्र में अर्घ्य रख कर पितरों का स्मरण करे। तदनन्तर 'पितृभ्यः स्थानमसि' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर पात्र को उलटा करके घृतयुक्त अन्न लेकर 'अग्नौ करिष्ये' यह प्रश्न करे। यह सुन कर पुरोहित आज्ञा प्रदान करे। 'कुरुष्व' अर्थात् करो। यह आज्ञा पाकर पितृयज्ञ की तरह अग्नि में होम करने के बाद एकाग्रता पूर्वक होम से बचे पदार्थ को प्रदान करे। पितृकार्य चांदी के वर्त्तन में श्रेष्ठ कहा गया है। जिसकी जैसी धन शक्ति हो, वह तदनुरूप पात्र का उपयोग कर सकता है। इसके बाद 'पृथिवी ते पात्रं' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर निमन्त्रण करके 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इत्यादि को पढ़ते हुये पात्र में अंगूठा छोड़े। इसके पश्चात् व्याहृति युक्त गायत्री तथा 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्र को तीन बार पढ़ना चाहिये॥१३-१६॥

जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः।
अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनो नरः॥१७॥
आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा।
अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषञ्चैवान्नमन्वहम्॥१८॥

तब 'यथासुखं वाच्यं' इत्यादि मन्त्र पाठ करके कुछ समय मौन होकर रहे। इसी समय पितर अन्न भोजन करते हैं। अब श्राद्ध करने वाला निष्कपट मन से वांछित हविष्यान्न अर्पित करे। जब तक पितृगण तृप्त न हों, तब तक हरि नाम का जप करते हुये 'मधुवाता' मन्त्र पाठ करता रहे॥१७-१८॥

तदन्नं विकिरेद्भूयौ दद्याच्चापि सकृत्सकृत्। सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः॥१९॥
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत्। मातामहानामप्येवं दद्याच्चाचमनं ततः॥२०॥

स्वस्ति वाच्यस्ततो दद्यादक्षय्योदकमेव च।
दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत्॥२१॥
वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यश्च स्वधोच्यताम्।
विप्रैरस्तु स्वधेत्युक्तो भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम्॥२२॥
प्रीयन्तामिति चाहैवं विश्वेदेवा जलं ददत्।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च॥२३॥
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति।
इत्युक्तोऽपि प्रियं वाचं प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥२४॥

अब अन्न लेकर "ॐ तृप्तास्थ' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर 'शेष मत्रं क्व देयं' प्रश्न पूछे। ब्राह्मण पुरोहित कहे 'कुरुष्व'। यह अनुमति पाकर वह अन्न भूमि पर बिखेरे। अब दक्षिणमुखी होकर तिल-अन्न लेकर उच्छिष्ट पात्र के पास पिण्ड देना चाहिये। एवंविध पिता-पितामहादि के लिये पिण्ड दिया जाता है। अब आचमनीय प्रदान करे। सभी कार्य में ब्राह्मण 'स्वस्ति' कहे। अब अक्षया दानोपरान्त अपनी धनशक्ति के अनुरूप दक्षिणा प्रदान करे। तब श्राद्धकर्त्ता 'स्वधा वाचयिष्ये' इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण से प्रार्थना करे, जिस पर ब्राह्मण 'वाच्यतां' कह कर अनुमति प्रदान करे। ब्राह्मण पुरोहित की आज्ञा मिल जाने पर 'पितृभ्यः स्वधोच्यतां' मन्त्र से पहले दी गयी पवित्र उतारे। अब जल देकर 'विश्वेदेवा प्रीयतां' कहकर 'दातारो नोऽभिवर्द्धंताम्' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर 'ॐ अस्तु' वाक्य से ब्राह्मण पुरोहित श्राद्धकर्त्ता को आज्ञा प्रदान करे। अब श्राद्ध करने वाला प्रिय वाक्य बोलते ब्राह्मण को प्रणाम करे तथा उनको विदा करे॥१९-२४॥

वाजे वाजे इति प्रीत्या पितृपूर्वं विसर्जनम्।
यस्मिंस्ते संश्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निपातिताः।
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत्॥२५॥
प्रदक्षिणमनुस्तुत्य भुञ्जीत पितृशेषितम्। ब्रह्मचारीं भवेत्तत्र रजनीं भार्य्यया सह॥२६॥
एवं सदक्षिणं कुर्य्याद्वृद्धौ नान्दीमुखानपि।
यजेत्तदधिकर्कन्धुमिश्राः पिण्डा यवैः श्रिताः॥२७॥
एकोद्दिष्टं दैवहीनं एकान्नैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नीकरणरहितं ह्यपसव्यवत्॥२८॥

'वाजे-वाजे' इत्यादि मन्त्र द्वारा पितृ आदि क्रम से ब्राह्मण को विदा करना चाहिये। पूर्व में जिस

पितृपात्र द्वारा अर्घ्यपात्र में स्थित संस्रव जल को ढांका गया था, अब उस आच्छादन को हटा कर उसमें का कुछ विन्दु जल मस्तक पर रख कर ब्राह्मणों को विदा करे। तदनन्तर प्रदक्षिणा एवं प्रणाम करके ब्राह्मण भोजन कराये तथा रात्रि में श्राद्धकर्त्ता पत्नी के साथ उस रात ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे। इस प्रकार विवाहादि शुभ काम में दक्षिणायुक्त श्राद्ध करे। यह नान्दीमुख श्राद्ध कहा जाता है। इसमें विशेषता यह है कि इसके पितरों के नाम के पूर्व नान्दीमुख शब्द को कहते हैं। इसमें दधि, कर्केन्दु, यव मिश्रित पिण्ड देते हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्ध में देवपक्ष न करे। इसमें एक अन्न तथा एक ही पवित्र देना पड़ता है। यह आवाहन तथा अग्निकरणरहित होता है। इसका कार्य अपसव्य स्थिति में किया जाता है अर्थात् दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत रहेगा।२५-२८॥

उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रान्विसर्जयेत्।
अभिरम्यतां प्रब्रूयात्प्रोचुस्तेभिरताः स्वह॥२९॥
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं कुर्य्यात्पात्रचतुष्टयम्। अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्॥३०॥
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत्। एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि॥३१॥
अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत्।
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरे द्विजः।
पिण्डांश्च गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा॥३२॥

एकोद्दिष्ट श्राद्ध के समय अक्षया प्रदान करते समय 'उपतिष्ठताम्' कहे। ब्राह्मण विसर्जन के समय 'अभिरम्यतां' कहे। तब ब्राह्मण 'अभिरतोऽस्मि' कहे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध में यही विशेष कार्य है। बाकी सब पूर्ववत् होगा। सपिण्डीकरण श्राद्ध में विशेष यह है कि अर्घ्य देते समय गन्धजल तथा तिलयुक्त चार पात्र स्थापित करके एक पात्र को प्रेतपात्र मानते हैं। तदनन्तर 'ये समानाः' इत्यादि दो मन्त्र पढ़ कर प्रेतार्घ्य विभाग करके उसे पितामहादि पात्र से मिला देते हैं। बाकी कार्य इसमें पूर्वोक्त नियम से होगा। इसमें अर्घ्य मिश्रण की तरह पिण्डमिश्रण भी करना होगा। एक ही वर्ष में जिनका सपिण्डीकरण होता है, वहां वर्ष पूर्ण होने वाले दिन जलपूर्ण कुंभ तथा अन्न भी प्रदान करना होगा। श्राद्धकृत्य समाप्त होने पर गौ, बकरा अथवा ब्राह्मण को पिण्ड दे अथवा अग्नि किंवा जल में छोड़े॥२९-३२॥

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्। मात्स्यहारिणऔरभ्रशांकुनच्छागपार्षतैः॥३३॥
ऐणरौरववाराहशशमांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्ध्यापि तुष्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः॥३४॥
दद्याद्वर्षत्रयोदश्यां मघासु च न संशयः। प्रतिपत्प्रभृतिष्वेवं कन्यादीन्श्राद्धदो लभेत्॥३५॥
शस्त्रेण निहतानां तु चतुर्दश्यां प्रदीयते। स्वर्णं ह्यपत्ययोगञ्च शौर्य्यं क्षेत्रं बलं तथा॥३६॥

पितृगण हविष्यान्न से श्राद्ध द्वारा एक मास, पायस से एक वर्ष तृप्त रहते हैं। मत्स्य, हरिण मांस, मेष मांस, शकुल मछली का मांस, बकरे का मांस, पृषत हरिण मांस, एण हरिण मांस, रुरु हरिण मांस, वराह मांस तथा खरगोश के मांस से श्राद्ध करने पर पितर क्रमशः एक-एक मास अधिक तृप्त रहते हैं। प्रतिवर्ष माघ त्रयोदशी को श्राद्ध करे। पितृपक्ष में प्रतिपदा से अमावस्या तक नित्य पितरों का श्राद्ध करने

वाला कन्या आदि का लाभ करता है। जिन्होंने शस्त्राघात से प्राण छोड़ा है, उनका श्राद्ध चतुर्दशी को करे। इससे स्वर्ण, सन्तान, शूरता, खेत तथा बललाभ श्राद्धकर्त्ता को होता है॥३३-३६॥

अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम्।
धनं विद्याञ्च वाक्सिद्धिं कुप्यं गोऽजाविकं तथा।
अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रतीच्छति॥३७॥
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामी प्राप्नुयादिमान्।
वस्त्राढ्याः प्रीणयन्त्येव नवं श्राद्धकृतं द्विजाः॥३८॥
आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गमोक्षमुखानि च।
प्रयच्छति तथा राज्यं प्रीत्या नित्यं पितामहः॥३९॥

॥इति गारुडे महापुराणे श्राद्धविधिर्नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥

जो सविधि पितरों का श्राद्ध करते हैं, वे पुत्र, श्रेष्ठ स्थिति, सौभाग्य, समृद्धि, राज्य, आरोग्य, अपने समाज में श्रेष्ठत्व, वाणिज्य में प्रभूतलाभ तथा नाना शुभ फल पाते हैं। वे यशस्वी तथा शोकहीन होकर अन्ततः परमगति प्राप्त करते हैं। वे ऐश्वर्य, विद्या, वाक्सिद्धि, ताम्र आदि धातु, गौ, बकरे, अश्व आदि सम्पदा पाते हैं। उनकी आयु बढ़ती है। सकाम व्यक्ति कृत्तिका से भरणी तक प्रति नक्षत्र में श्राद्ध द्वारा यही सम्पदा पाते हैं। आस्तिक ब्राह्मण नवान्न तथा नवोदक श्राद्ध करे। उनके पितर तृप्त हो जाते हैं। उनको आयु, सन्तति, प्रजा, ऐश्वर्य, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, राज्य देते हैं॥३७-३९॥

॥निन्यानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
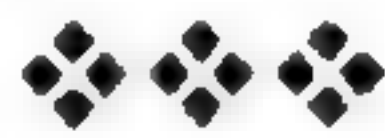
शततमोऽध्यायः

जिन पर विनायक का आवेश होता है, उसका लक्षण तथा उसकी शान्ति के उपाय का वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

विनायकोपसृष्टस्य लक्षणानि निबोधत। स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति॥१॥
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः। राजा राज्यं कुमारी च पतिं पुत्रञ्च गुर्विणी॥२॥
नाप्नुयात्स्नपनं तस्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्। गौरसर्षपगन्धेन साज्येनोत्सारितस्य तु।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसं तथा॥३॥

भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्यं द्विजान्शुभान्।
मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुग्गुलुञ्चाप्सु निक्षिपेत्॥४॥

एककृत्या ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलसैर्ह्रदात्। चर्मण्यानुड्वहे रक्ते स्नाप्यं भद्रासने तथा॥५॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा— जिन पर विनायक आते हैं, उनका लक्षण कहता हूं। विनायक से आविष्ट व्यक्ति स्वप्न में जल में अवगाहन, जल तथा मुण्ड को देखता है। जिस पर विनायक का आवेश होता है, कभी उसमें विमर्ष भाव रहता है, कभी वह बिना मतलब का काम करता है, कभी बेवजह दुःख में डूब जाता है। इनका आवेश होने पर राजा राज्य, कुमारी पति तथा गर्भिणी पुत्र नहीं पाती। इनकी शान्ति हेतु पुण्य तिथि पर सविधि स्नान कराये। श्वेत सरसों का काढ़ा तथा घृत उस व्यक्ति के शिर पर लगाये, तब पुनः नहलाये। सर्वौषधि तथा सर्व प्रकार के लेप द्वारा उसका मस्तक लिप्त करे। तब उसे बैल के चर्मासन पर बैठा कर ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करें। तब किसी ह्रद से चार घड़ा जल (एक रंग के घट में) लाये। इसमें मिट्टी, गोरोचन, गन्ध तथा गुग्गुलु छोड़ कर इस जल से उस व्यक्ति को नहलाये॥१-५॥

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पारणं कृतम्। तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥६॥

भगवान्वरुणो राजा भगं सूर्य्यो बृहस्पतिः। भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥७॥

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि। ललाटे कर्णयोरक्ष्णोर्नाशं तद्यातु ते सदा॥८॥

स्नातस्य सार्षपं तैलं श्रवणे मस्तके तथा।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्साज्यान्संपरिगृह्य च॥९॥

ब्राह्मण लोग स्नान काल में यह मन्त्र पढ़ें "ऋषि लोग जिस जल से पारण करते हैं, उस जल से तुम्हारा अभिषेक हो रहा है। पावमानी शक्ति तुमको पवित्र करे। वरुणराज, सूर्यदेव, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षि तुमको स्वास्थ्य प्रदान करें। तुम्हारा केश, सीमन्त, मस्तक, ललाट, कान, दोनों आंखें, जिस दुर्भाग्य चिह्न से युक्त हैं, वह इस जलाभिषेक से नष्ट हो जाये।" उस भूत से आविष्ट व्यक्ति को एवंविध स्नान कराने के बाद उसके शिर पर गूलर की स्रुव को बायें हाथ में लेकर उसमें सरसों का तेल तथा घृत लेकर कुशपत्र पर होम करें॥६-९॥

मितः संयमितश्चैव तथा शालकटङ्कटैः।
कूष्माण्डं राजपुत्रांश्च अन्ते स्वाहासमन्वितैः॥१०॥
दद्याच्चतुष्पथे भूमौ कुशानास्तीर्य्य सर्वशः।
कृताकृतं तथा चैव तण्डुलौदनमेव च॥११॥

पुष्पं चित्रं सुगन्धञ्च सुराञ्च त्रिविधामपि। दधिपायसमन्नञ्च घृतञ्च गुडमोदकम्॥१२॥

एतान्सर्वानुपाकृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिवः।
अम्बिकामुपतिष्ठेच्च दद्यादन्नं कृताञ्जलिः॥१३॥

दूर्वासर्षपपुष्पैश्च पुत्रजन्मभिरन्ततः। कृतस्वस्त्ययनञ्चैव प्रार्थयेदम्बिकां सतीम्॥१४॥

रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भवति देहि मे। पुत्रान्देहि श्रियं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे॥१५॥
ब्राह्मणांस्तोषयेत्पश्चाच्छुक्लवस्त्रानुलेपनैः। वस्त्रयुग्मं गुरोर्दद्यात्संपूज्यश्च ग्रहस्तथा॥१६॥

॥इति गारुडे महापुराणे विनायकोपसृष्टलक्षणं नाम शततमोऽध्यायः॥१००॥

मित, सम्मित, कूष्माण्ड तथा राजपुत्र का होम अन्त में स्वाहा लगा कर करे। तदनन्तर चौराहे पर कुश बिछा कर सूप पर पका तथा अपक्व मांस-चावल, नाना सुगन्ध पुष्प, माला, तीन प्रकार की सुरा, मूली, पूड़ी, विविध पिष्टक, दधि, पायस, अन्न, घृत, गुड़ तथा मोदक एकत्र करके अम्बिका को हाथ जोड़े तथा यह सब बलि पदार्थ अर्पित करे। इसके अनन्तर दूर्वा, सरसों तथा पुष्प से अम्बिका की अर्चना करे। इसके पश्चात् स्वस्त्यायन करके अम्बिका से प्रार्थना करे—"हे भगवती! मुझे रूप तथा यश दीजिये। हे देवी! आप पुत्र, सौभाग्य देकर मेरी कामना पूरी करिये।" तदनन्तर शुक्ल वस्त्र तथा अनुलेपन से ब्राह्मणगण को सन्तुष्ट करके गुरु को दो वस्त्र देकर ग्रहों की तथा सूर्य की अर्चना करनी चाहिये। इससे वांछित फललाभ होगा॥१०-१६॥

॥सौवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
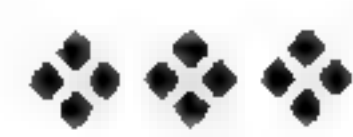
एकाधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहशान्ति वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहदृष्ट्यभिचारवान्।
ग्रहयागं समं कुर्य्याद्ग्रहाश्चैते बुधैः स्मृतः॥१॥

सूर्य्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः। शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुर्ग्रहगणाः स्मृताः॥२॥
ताम्रकांस्यस्फाटिकाच्चरक्तचन्दनस्वर्णकात्। रजतादयसः सीसात्कांस्याद्दृष्टिः प्रशाम्यति॥३॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—श्रीकामी, शान्तिकामी किंवा ग्रहों से प्रभावित व्यक्ति की शान्ति हेतु ग्रहयाग करे। पण्डित लोग में ग्रहों का इस प्रकार से नाम रखा है—सूर्य, सोम, मगंल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतु। ग्रहदृष्टि के कारण रवि आदि ग्रहों के दोषों की शान्ति हेतु ताम्र आदि द्रव्य को धारण करना होगा। रवि की दृष्टि होने पर ताम्र धारण करे। चन्द्र हेतु कांसा, मंगल हेतु स्फटिक, बुध हेतु लाल चन्दन, बृहस्पति हेतु सोना, शुक्र हेतु चांदी, शनि हेतु लौह, राहु हेतु सीसा, केतु हेतु कांसा धारण करने से ग्रहदोष शान्त होता है॥१-३॥

रक्तः शुक्लस्तथा रक्तः पीतः पीतः सितासितः।
कृष्णः कृष्णः क्रमाद्वर्णं निबोध मुनयस्ततः॥४॥
स्नापयेद्धोमयेच्चैव ग्रहद्रव्यैर्विधानतः। सुवर्णानि प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च॥५॥
गन्धादिबलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः। कर्त्तव्यास्तत्र मन्त्रैश्च अधिप्रत्यधिदैवतैः॥६॥

हे मुनिवृन्द! अब ग्रहों का रंग सुनिये। रवि रक्तवर्ण, चन्द्रमा शुक्लवर्ण, मंगल रक्तवर्ण, बुध तथा बृहस्पति पीतवर्ण, शुक्र श्वेत वर्ण, शनैश्चर असित वर्ण, राहु तथा केतु कृष्णवर्ण हैं। हे मुनिगण! ग्रह दृष्ट व्यक्ति की शान्ति के लिये उन-उन ग्रह के होम को करे। उसके लिये यह द्रव्य एकत्र करे तथा पट पर उसी ग्रह का रंग चित्रण करे, जिसकी दृष्टि की शान्ति करनी हो। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से इनकी अर्चना करे। ग्रहदेव की पूजा में गुग्गुलु की धूप श्रेष्ठ मानी जाती है। उन-उन ग्रह के मन्त्र से उन-उन ग्रह की पूजा करे तथा ग्रह के मन्त्र द्वारा उसके अधिदेवता, प्रत्यधिदेवता की अर्चना करे॥४-६॥

आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धादिवः ककुत्।
उद्बुध्यस्वेति जुहुयादृग्भिरेव यथाक्रमम्॥७॥
बृहस्पते परिदीयेति अन्नात्परिश्रुतोरसम्। शन्नो देवी कयानश्च केतुंकृण्वन्निति क्रमात्॥८॥
अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्वितः॥९॥

"आकृष्णेन रजसा" इत्यादि मन्त्र से रवि की, "इमं देव्या" मन्त्र से चन्द्र की, "अग्निमूर्द्धा" इत्यादि मन्त्र से मंगल की, "उद्बुद्धाय" इत्यादि से बुध की, "बृहस्पते" इत्यादि मन्त्र से बृहस्पति की, "शुक्रस्तेऽन्यत्" इत्यादि से शुक्र की, "शन्नो देवीति" इत्यादि से शनि की, "कयानश्च" इत्यादि से राहु की, "केतुं कृण्वन्न" इत्यादि से केतु की पूजा करे। ग्रहों का होम द्रव्य यह है—रवि का मदार, मंगल का पलाश, बुध का खदिर, बृहस्पति का अपामार्ग, शुक्र का पीपल, शनि का गूलर, राहु का शमी तथा केतु का दूर्वा है। इन सभी होमीय द्रव्य के साथ दधि, मधु, घृत मिला कर होम करे॥७-९॥

गुडौदनौ पायसञ्च हविष्यं क्षीरषष्टिकम्। दध्योदनं हविः पूपान्मांसं चित्रान्नमेव च॥१०॥
दद्याद्द्विजः क्रमा देतान्ग्रहेभ्यो भोजनं ततः।
धेनुः शङ्खस्तथानड्वान्हेमवासो हयस्तथा॥११॥
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात्।
ग्रहाः पूज्याः सदा यस्माद्राज्ञापि प्राप्यते फलम्॥१२॥

।इति गारुडे महापुराणे ग्रहशान्तिर्नाम एकाधिकशततमोऽध्यायः॥१०१॥

ग्रहों का बलि पदार्थ यह है—सूर्य हेतु गुड़, चन्द्र हेतु पायस, मंगल हेतु हविष्यान्न, बुध हेतु

क्षीरान्न, बृहस्पति हेतु दधि तथा अन्न, शुक्र हेतु घृत, शनि हेतु पिष्टक, राहु हेतु मांस, केतु हेतु विचित्र अन्न बलिद्रव्य है। पूर्वोक्त सभी द्रव्य ग्रहों के क्रम से भोजनीय द्रव्य के तरीके से देना चाहिये। अब ग्रहों हेतु दक्षिणा कहता हूं। रवि हेतु धेनु, चन्द्र को शंख, मंगल को वृष, बुध को स्वर्ण, बृहस्पति को वस्त्र, शुक्र को अश्व, शनि हेतु काली गौ, राहु हेतु लौह, केतु हेतु बकरा की दक्षिणा प्रदान करे। एवंविध ग्रह द्वारा अर्चना करने से समुचित फलरूप में राज्यादि का लाभ होता है॥१०-१२॥

॥एक सौ एकवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

वानप्रस्थ धर्म वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

वानप्रस्थाश्रमं वक्ष्ये तत्करस्तु महर्षयः! पुत्रेषु भार्य्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥१॥
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः शमदमक्षमी। अर्चयेत्साग्निकान्विप्रान्पितृदेवातिथींस्तथा॥२॥
भृत्यांस्तु तर्पयेच्छश्रुज्जटालोमभृदात्मवान्। दान्तस्त्रिसवनं स्नायान्निवृत्तश्च प्रतिग्रहात्॥३॥
स्वाध्यायवान्ध्यानशीलः सर्वभूतहिते रतः।
अह्नो मासस्य मध्ये वा कुर्य्यात्स्वार्थपरिग्रहम्॥४॥
निराश्रयं स्वपेद्भूमौ कर्म कुर्य्यात्फलं विना।
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः॥५॥
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते योगाभ्यासाद्दिनं नयेत्। अक्रुद्धः परितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च॥६॥

।इति गारुडे महापुराणे वानप्रस्थधर्मो नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०२॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—अब मैं वानप्रस्थ धर्म कहता हूं। हे मुनिवृन्द! पुत्र के हाथों अपनी पत्नी को देकर अथवा अपनी पत्नी के साथ ही वन में जाये। वानप्रस्थ धर्म का व्रत लेकर वह व्यक्ति ब्रह्मचारी रहे और नित्य प्रति होम करे। वह शान्त मन वाला, दान्त तथा क्षमावान् रहते हुये अग्नि, ब्राह्मण, पितर तथा अतिथि की सदा पूजा करे। आत्मतत्वानुसन्धान में लगा वानप्रस्थ धर्म का पालन करने वाला वह व्यक्ति दाढ़ी तथा जटा धारण करे। भृत्यों को सन्तुष्ट रख कर तीनों सन्ध्या काल में दान एवं स्नान भी करे। दान तो कदापि न ले। वह स्वाध्याय परायण रहे तथा ध्यान तत्पर रहकर सभी प्राणीगण के हितार्थ कार्य करे। एक मास में अथवा दिन में स्वार्थ परिग्रह करे। वह निराश्रित होकर भूमि पर सोये।

कर्म को फलाकांक्षारहित होकर करे। वह ग्रीष्म में पञ्चाग्नि के बीच में तप करे और वर्षा काल में खुले आसमान के नीचे चबूतरे पर शयन करे। हेमन्त ऋतु में गीला कपड़ा पहने योगाभ्यास करता दिन व्यतीत करे। वह सर्वदा सन्तुष्ट एवं क्रोधरहित रहे॥१-६॥

॥एक सौ दोवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

भिक्षु (संन्यास धर्म) धर्म वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि तं निबोधत सत्तमाः। वनान्निवृत्य कृत्वेष्टिं सर्ववेदप्रदक्षिणम्॥१॥

प्राजापत्यं तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनि।
सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः।
सर्वायासं परित्यज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत्॥२॥

अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यं सायाह्ने नाभिलक्षितः। वाहितैर्भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः॥३॥

भवेत्परमहंसो वा एकदण्डी यमादितः। सिद्धयोगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात्॥४॥

योगमभ्यस्य मितभुक्परां सिद्धिमवाप्नुयात्।
दाताऽतिथिप्रियो ज्ञानी गृही श्राद्धेऽपि मुच्यते॥५॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०३॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—हे तपोधनों! अब मैं संन्यास आश्रम को (भिक्षुधर्म) कहता हूं। वन से लौट कर सर्ववेद प्रदक्षिणा करके अग्न्याधान करने के पश्चात् प्राजापत्य यज्ञ करे। तदनन्तर आत्मा में अग्नि को आरोपित करे। वह सभी प्राणीगण का हितैषी, शान्त, त्रिदण्डधारी तथा कमण्डलु ग्रहण करे। सभी प्रयास त्याग कर भिक्षा हेतु ग्राम का आश्रय ले। वह अप्रमत्त होकर ऐसे ग्राम में भिक्षा मांगे, जहां अन्य भिक्षु न हों, तथापि सायंकाल भिक्षा हेतु न जाये। लोभ न करे। केवल मात्र जीवन निर्वाह हो सके, उतनी ही भिक्षा मांगे। ऐसा भिक्षु यम-नियम का सहारा लेकर त्रिदण्डी और परमहंस होता है। तत्पश्चात् वह योगसिद्धि होने पर देह त्यागोपरान्त मुक्ति पद प्राप्त करता है। नियत आहार तथा योगाभ्यास करने वाला उत्तमगतिलाभ करता है। गृही व्यक्ति भी दाता, अतिथिप्रिय तथा ज्ञानलाभ करके मुक्त हो जाता है॥१-५॥

॥एक सौ तीनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

पापों के फल का वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

नरकात्पातकोद्भूतात्पापस्य कर्मणः क्षयात्।
ब्रह्महा श्वा खरोष्ट्रः स्यान्मूकश्चान्ते भविष्यति॥१॥
स्वर्णचौरः कृमिः कीटः तृणादिर्गुरुतल्पगः।
क्षयरोगी श्यावदन्तः कुनखी शिपिविष्टकः।
ब्रह्महत्याक्रमात्स्युश्च तत्सर्वं वा शिशोर्भवेत्॥२॥
धान्यहर्त्ता त्वनाहारी मूको रागापहारकः।
धान्यहार्य्यतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः॥३॥

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—पापी व्यक्ति लोग मनुष्य देह में अपना भोगकाल खत्म होने पर जब तक पाप पाप रहित नहीं हो जाते, उस समय तक हीन योनि में जाते हैं। ब्रह्महत्यारे लोग नरक भोग के पश्चात् क्रमशः कुत्ता, ऊंट, गधा तथा मेंढक योनि में जाकर सर्वान्त में उलूक योनि में जन्म लेते हैं। जो मानव स्वर्ण चोरी करता है, वह कृमि-कीट योनि पाता है। जो गुरुपत्नीगामी है, वह तृण आदि होकर जन्म लेता है। ब्रह्महत्यारा क्षय रोगी होता है। स्वर्ण चोर काले दांत वाला तथा गुरुस्त्रीगामी पापी कुनख वाला होता है। जो अन्न का हरण करता है, वह अगले जन्म में आहार से रहित रहता है। जो झूठ बोलता है, वह गूंगा होता है। धान्य का हरण करने वाला अधिक अंगधारी होता है। दुष्ट व्यक्ति अगले जन्म में दुर्गन्धित नासिका वाला होकर जन्म लेता है॥१-३॥

तैलहारी तैलपायी पूतिवक्त्रस्तु सूचकः। जायन्ते लक्षणभ्रष्टा दरिद्राः पुरुषाधमाः।
जायन्ते लक्षणोपेता धनधान्यसमन्विताः॥४॥

॥इति गारुडे महापुराणे चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

—※※※—

तेल हरण करने वाला, तेल पीने वाला कीड़ा होता है। सूचक (लोगों के भेद कहने वाला) के मुख से अगले जन्म में अत्यन्त दुर्गन्ध होती है। लक्षण भ्रष्ट व्यक्ति पुरुषाधम दरिद्र होकर जन्म लेता है। लक्षणान्वित (निष्पाप) लोग उत्तम धन-धान्य समन्वित होकर जन्म लेते हैं॥४॥

॥एक सौ चारवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्त वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति॥१॥
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये। एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति॥२॥
लोकः प्रसीदेदात्मैवं प्रायश्चित्तैरघक्षयः। प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पश्चात्तापविवर्जिताः॥३॥
नरकान्यान्ति पापा वै महारौरवरौरवान्। तामिस्रं लोहशङ्कुञ्च पूतिगन्धसमाकुलम्॥४॥
हंसाभं लोहितोदञ्च सञ्जीवननदीपथम्। महानिलयकाकोलमन्धतामिस्रवापनम्॥५॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—जो विहित कर्मानुष्ठान न करके निन्दित कर्मों में लगा रहता है, जो इन्द्रिय संयम नहीं करता, वह नरकगामी होता है। पापी मनुष्य नरकगामी होता है। अतः देहशुद्धि के लिये सदा प्रायश्चित्त करे। इससे व्यक्ति की अन्तरात्मा पावन होती है। ऐसे व्यक्ति के प्रति सभी लोग प्रसन्न रहते हैं। जो पापी होकर भी प्रायश्चित्त नहीं करता, अनुताप भी नहीं करता, वह अत्यन्त अन्धकार से घिरे, लौह कील से भरे तथा अपवित्र दुर्गन्धित रौरव नरक में गिराया जाता है। संघात, लोहितोदक, संजीवन, महानिलय, काकोल, अन्धतामिस्र, भीषण आदि अनन्त नरक हैं। पापी लोग विशेष पाप के कारण इनमें गिराये जाते हैं॥१-५॥

अवीचीं कुम्भपाकञ्च यान्ति पापान्विता नराः।
ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी संयोगी गुरुतल्पगः॥६॥
गुरुनिन्दा वेदनिन्दा ब्रह्महत्यासमे ह्युभे। निषिद्धभक्षणं जिह्मक्रियाचरणमेव च॥७॥
रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमानि तु। अश्वादिहरणं ज्ञेयं सुवर्णस्तेयसम्मितम्॥८॥

अवीची, कुम्भीपाक में महापापी जाते हैं। ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर, इनका साथ रखने वाले, गुरुपत्नीगामी ये महापापी हैं। गुरु तथा वेदनिन्दक ये सभी ब्रह्महत्या के समान पाप वाले होते हैं। निषिद्ध वस्तु खाना, कुत्सित कार्य करना, रजस्वला का मुख चुम्बन करना, ये सभी मद्यपान जैसे पाप हैं। अश्वादि का हरण करना भी स्वर्ण चोरी के समान पाप है॥६-८॥

सखिभार्य्याकुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजादिषु।
सगोत्रासु तथा स्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम्॥९॥
पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलीं भगिनीं तथा।
मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्य्यतनयां तदा॥१०॥
आचार्य्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः।
छित्त्वा लिङ्गं वधस्तस्य सकामायाः स्त्रियास्तथा॥११॥

पत्नी की सखी, कन्या, बहन, अन्त्यज जाति की नारी, स्वगोत्रा से गमन करने का पाप गुरुपत्नीगमन जैसा होता है। पितृष्वसा, मातृष्वसा, मामी, बहन, विमाता, आचार्य कन्या, आचार्य पत्नी, पुत्री तथा गुरुपत्नी से गमन जो करे, उसका लिंग काट कर उसका वध करे। यदि स्वेच्छा से कोई स्त्री व्यभिचार करती है, तब उसका भी यही प्रायश्चित्त होगा॥९-११॥

गोवधो ब्राह्मणस्तेयमृणानाञ्च परिक्रिया। अनाहिताग्निता पण्यविक्रयः परिवेदनम्॥१२॥
भृत्यादध्ययनादानं भृतकाध्यापनं तथा। पारदार्य्यं पारिवित्त्यं वार्द्धुष्यं लवणक्रिया॥१३॥

सच्छूद्रविट्क्षत्रवधो निन्दितार्थोपजीविता।
न्यासित्वं व्रतलोपश्च शूल्यं गोश्चैव विक्रयः॥१४॥

पितृमातृसुहृत्त्यागस्तडागारामविक्रयः। कन्याया भूषणानाञ्च परिविन्दकयाजनम्॥१५॥

कन्याप्रदानं तस्यैव कौटिल्यं व्रतलोपनम्।
आत्मनोऽर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्री निषेवणम्॥१६॥
स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च।
असच्छास्त्राभिगमनं भार्य्यात्मपरिविक्रयः॥१७॥
उपपापानि चोक्तानि प्रायश्चित्तं निबोधत।
शिरःकपालध्वजवान्भिक्षाशी कर्म वेदयन्॥१८॥

ब्रह्मस्व का हरण, गौ वध, ऋण लेकर न चुकाना, उपनयन आदि संस्कार न करना, पण्य विक्रय, वेतन लेकर पढ़ाना, दान लेना, तनख्वाह देकर पढ़ना, परस्त्री लिप्तता, बड़े भाई के विवाह के पूर्व छोटे का विवाह, सूद लेना, नमक बेचना, स्त्री-शूद्र-वैश्य तथा क्षत्रिय वध करना, हीन कार्य करके रोजी कमाना, नास्तिक होना, व्रत को खंडित करना अभिचार आदि प्रयोग करना, गौ बेचना, पिता-माता-बन्धु का त्याग, सरोवर-बाग बेचना, कन्या को दूषित करना, ऐसे व्यक्ति का यज्ञादि कराना, जिसने बड़े भाई के विवाह पूर्व स्वयं विवाह किया हो, ऐसे व्यक्ति को कन्या देना, कुटिलता, अपने लिये ही कार्य करना; परस्त्री भोग, स्वाध्याय त्याग, अग्नि त्याग, पुत्र त्याग, बान्धव त्याग, असत् ग्रन्थों को पढ़ना, पत्नी-पुत्र बेचना—इनको उपपातक कहा गया है। ये सभी पापी भिक्षा पात्र लेकर भिक्षा से जीवन निर्वाह करें॥१२-१८॥

ब्रह्महा द्वादशसमा मितभुक्शुद्धिमाप्नुयात्।
लोमेभ्यः स्वाहेति च वा लोमवान्बिभृयात्तनुम्॥१९॥
ग्रहांश्च जुहुयाद्वापि स्वस्वमन्त्रैर्यथाक्रमम्।
शुद्धिः स्याद् ब्रह्महननात्कृत्वैवं शुद्धिरेव च॥२०॥
निरातङ्कं द्विजं गाञ्च ब्राह्मणार्थे हतोऽपि वा।
अरण्ये नियतो जप्ता त्रिःकृत्वो वेदसंमिताम्॥२१॥

सरस्वतीं वा संसेव्य धनं पात्रे समर्पयेत्। यागस्थक्षत्रविड्घाते चरेद्ब्रह्महनो व्रतम्॥२२॥
गर्भहा वा यथा वर्णे तथा त्रयीनिषूदनम्। चरेद् व्रतमहत्त्वापि घातनार्थमुपागतः॥२३॥
द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमाचरेत्। सुराम्बुघृतगोमूत्रं पीत्वा शुद्धिः सुरापिनः॥२४॥
अग्निवर्णं मृते नापि चीरवासा जटी भवेत्। व्रतं ब्रह्महनं कुर्य्यात्पुनः संस्कारमर्हति॥२५॥

ब्रह्महत्यारा इससे बारह वर्षों में शुद्ध होता है अथवा "लोमेभ्यः स्वाहा" इत्यादि मन्त्र द्वारा शरीर के लोम से मज्जा तक सभी अवयव का होम करे। इससे वह ब्रह्महत्या पातक से मुक्त होगा। उनके-उनके मन्त्र से उन ग्रहों को भी क्रमशः आहुति दे। जो भयरहित कर ब्राह्मण के लिये गौ मारता है, वह वन में जाकर त्रिवेद के सभी मन्त्रों का जप करने से शुद्ध होगा अथवा सरस्वती की उपासना और सत्पात्र को धन प्रदान करे। यज्ञस्थ वैश्य अथवा क्षत्रिय की हत्या करने वाला भी ब्रह्मवध वाला प्रायश्चित्त करे। गर्भहत्या में जिस वर्ण के गर्भ का हनन किया है, उसी वर्ण के वध का जो प्रायश्चित्त कहा जाता है, उसे करे। जो मानव हनन करने हेतु उद्यत होकर भी हनन नहीं करता, वह भी वधजनित पाप का ही प्रायश्चित्त करे। सुरापायी ब्राह्मण सुरा, जल, घृत तथा गोमूत्र को खौला कर पीये और प्राण त्यागे। इससे उसका पातक नाश होगा। यदि खौला हुआ तरल पीकर भी मृत्यु न हो, तब चीर पहने तथा जटा धारण करे॥१९-२५॥

रेतोविण्मूत्रपानाच्च सुरापा ब्राह्मणी तथा।
पतिलोकपरिभ्रष्टा गृधी स्याच्छूकरी शुनी॥२६॥
स्वर्णहारी द्विजो राज्ञे दत्त्वा तु मुषलं तथा।
कर्मणः ख्यापनं कृत्वा हतस्तेन भवेच्छुचिः।
आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दत्त्वा शुद्धिमियाद्द्विजः॥२७॥
शयने क्रीडमानस्तु योषितं योषिता स्वपेत्।
उच्छेद्य लिङ्गं वृषणं नैर्ऋत्यामुत्सृजेद्दिशि॥२८॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं दुरात्मा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्॥२९॥
पञ्चगव्यं पिबेद्गोघ्नो मासमासीच्च संयतः।
गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुध्यति॥३०॥

इन प्रायश्चित्तों से देहशुद्धि करने के उपरान्त समस्त संस्कारों को करना चाहिये। यदि ब्राह्मणी रेतः, विष्ठा, मूत्र, मद्य पान कर लेती है, तब वह पतिलोक न जाकर गृध्री, शूकरी तथा कुतिया होती है। स्वर्णचोर ब्राह्मण एक मूषल लाये। उसे राजा को प्रदान करके अपने द्वारा की गई चोरी का वर्णन राजा से करे। अब राजा इस मूषल से उस ब्राह्मण पर आघात करे अथवा वह ब्राह्मण अपने वजन इतना स्वर्ण देने पर शुद्ध होगा। यदि कोई स्त्री सोई है, तब कोई पुरुष उस स्त्री से सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से उस स्त्री से गमन करता है, तब उस पापी मनुष्य के लिंग तथा अण्डकोष को काट कर नैर्ऋत्कोण में फेंके अथवा तपायी हुई लोहे की स्त्री प्रतिमा का उसे आलिंगन करवा कर मृत करे, यही प्रायश्चित्त है।

गुरुपत्नी गामी कृच्छ्र-प्राजापत्य व्रत करे अथवा वह तीन महीने चान्द्रायण व्रत करने के पश्चात् वेदसंहिता पढ़े। ऐसे उपरोक्त पापी के साथ जो रहते हैं, उनको भी उसी पापी इतना पाप लगता है। गो वध करने वाला पातकी पंचगव्य पान करता गौशाला में शयन करे। सदा गौओं का अनुगमन करे (अर्थात् जब गौयें चलें, तब चले, जब बैठें तब खुद बैठे। जब वे उठ जायें, तब स्वयं भी खड़ा हो जाये, इत्यादि)। संयत होकर जो एक मास इस विधि का पालन करता है, वह गोवध पातकरहित हो जाता है। वह गोदान भी करे॥२६-३०॥

उपपातकशुद्धिः स्याच्चान्द्रायणव्रतेन च। पयसा वापि मासेन पराकेणापि वा पुनः॥३१॥
वृषभैकं सहस्त्रं गा दद्यात्क्षत्रवधे पुमान्। ब्रह्महत्याव्रतं वापि वत्सरत्रितयं चरेत्॥३२॥
वैश्यहाऽब्दांश्चरेदेतद्दद्याद्वैकशतं गवाम्। षण्मासाच्छूद्रहा चैतद्दद्याद्वा धेनवो दश।
अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतञ्चरेत्॥३३॥

चान्द्रायण व्रताचरण से उपपातक छूट जाते हैं। एक मास केवल दुग्धाहारी रहे अथवा पराक् व्रत करे। जिसने क्षत्रियवध किया हो, वह एक वृष तथा एक हजार गौ दान करे किंवा तीन वर्ष तक वही प्रायश्चित्त करे, जिसका ब्रह्महत्यानाश हेतु वर्णन किया गया है। वैश्य का हत्यारा एक वर्ष तक ब्रह्महत्यानाशक व्रत का आचरण करे अथवा वह सौ गौओं का दान करे। शूद्र की हत्या करने वाला छः मास ब्रह्महत्यानाशक व्रत का पालन करे अथवा दस गौ दान करने से प्रायश्चित्त हो जायेगा। जो ऐसी स्त्री का वध करता है, जो दुष्ट नहीं है, वह शूद्रवध नाशक विधि का पालन करने से शुद्ध होगा॥३१-३३॥

मार्जारगोधानकुलपशुमण्डूकघातनात्। पिबेत्क्षीरं त्र्यहं पापी कृच्छ्रं वाप्यधिकञ्चरेत्॥३४॥
गजे नीलान्वृपान्पञ्च शुक्लवत्सं द्विहायनम्।
खराजमेषेषु वृषो देयः क्रौञ्चे त्रिहायणः॥३५॥
वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम्।
अवकीर्णी भवेद्धत्त्वा ब्रह्मचारी च योषितम्॥३६॥
गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतञ्च विशुध्यति। मधुमांसाशने कार्य्यं कृच्छ्रशेषं व्रतानि च॥३७॥

विड़ाल, गोध, नेवला, साधारण पशु तथा मेंढक हत्यारा पापी तीन रात्र केवल दूध पीकर रहे अथवा कृच्छ्र व्रत करे, तब शुद्ध होगा। गर्द्दभ, बकरा तथा भेड़े का हत्यारा एक वृष दान से शुद्ध होगा। वकुला मारने वाला तीन वर्ष के वयस्क वृष का दान करे, तब पाप से मुक्त होगा। वृक्ष, गुल्म, लता, काटने वाला प्रायश्चित्त हेतु १०० गायत्री मन्त्र जप करे। जो ब्रह्मचारी स्त्रीसंसर्गजनित पाप से लिप्त हो, वह अवकीर्ण कहा जाता है। एक गधा दान करने से यह पाप नष्ट होगा। मधु-मांस भक्षण करने वाला कृच्छ्रव्रत का शेष व्रत करे॥३४-३७॥

कृच्छ्रत्रयं गुरुः कुर्य्यान्म्रियेत प्रहितो यदि।
प्रतिकूलं गुरोः कृत्वा प्रसाद्यैव विशुद्ध्यति॥३८॥
रिपून्धान्यप्रदानाद्यैः स्नेहाद्यैर्वाप्युपक्रमेत्। क्रियमाणोपकारे च मृते विप्रे न पातकम्॥३९॥

जो गुरुवाक्य के विपरीत कार्य करता है, वह तीन कृच्छ्र व्रत से शुद्ध होगा अथवा गुरु को सान्त्वना देने से शुद्ध होगा। यदि किसी व्यक्ति को कहीं भेजने पर भेजे गये मनुष्य की मृत्यु हो जाये, तब उसे भेजने वाला तीन कृच्छ्रव्रत का प्रायश्चित्त करे। किसी शत्रु के प्रतिकूल कार्य यदि किसी ने किया, तब वह शत्रु को धान्यादि एवं स्नेह वचन द्वारा सन्तुष्ट करे। जो उपकारी का अनिष्ट करता है, मृत्यु ही उसका प्रायश्चित्त है॥३८-३९॥

महापापोपपापाभ्यां यो वदेच्च मृषावचः।
अप्रेक्ष्यो मासमासीत अयाची नियतेन्द्रियः॥४०॥
अनियुक्तो भ्रातृभार्य्यां गच्छंश्चान्द्रायणं चरेत्।
त्रिरात्रान्ते घृतं प्राश्य गत्वोदक्यां शुचिर्भवेत्॥४१॥
गोष्ठे वसन्ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रती। गायत्रीजप्यनिरतो मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्॥४२॥
त्रिःकृच्छ्रमाचरेद्व्रात्ये याजकोऽपि चरन्नपि।
पठेद्वेदं यथाशक्ति त्यक्त्वा च शरणागतान्॥४३॥

जो मनुष्य झूठ बोलता है, वह महापापी तथा उप पापी है। इसके प्रायश्चित्तार्थ वह मनुष्य एक मास निर्जन में रह कर इष्ट मन्त्र जपे। आहार के लिये कहीं याचना न करे। जो (नियोग को छोड़ कर) भाई की पत्नी से गमन करता है, उसे चान्द्रायणव्रत से ही पाप से छुटकारा मिलेगा। रजस्वला स्त्री से गमन करने वाला तीन रात्रि उपवासी रहकर तब घृतपान से शुद्ध होगा। असत् वस्तु का दान लेने के पाप से छूटने हेतु एक मास तक ब्रह्मचारी रहे तथा दुग्ध पर निर्वाह करता गोशाला में रहकर गायत्री जप करे। तब वह असत् वस्तु दान लेने के पाप से मुक्त होगा। जिसका समय पर यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, वह तीन कृच्छ्रव्रत करे। जो व्यक्ति व्रतभ्रष्ट का यज्ञादि कराता है, वह ब्राह्मण भी पतित हो जायेगा। इस पापनाशार्थ वह तीन कृच्छ्रव्रत करे। शरणागत का त्याग करने वाला अपनी शक्तिपर्यन्त वेदपाठ से शुद्ध हो सकेगा॥४०-४३॥

प्राणायामत्रयं कुर्य्यात्खरयानोष्ट्रयानगः।
नग्नः स्नात्वा च शुद्ध्येत गत्वा चैव दिवा स्त्रियम्॥४४॥
गुरुं हुंकृत्य हुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। प्रसाद्य तञ्च मुनयस्ततो ह्युपवसेद्दिनम्॥४५॥
विप्रे दण्डोद्यमे कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।
देशं कालं वयःशक्तिं पापञ्चावेक्ष्य यत्नतः।
प्रायश्चित्तप्रकल्पः स्याद्यत्र चोक्ता तु निष्कृतिः॥४६॥
गर्भत्यागो भर्तृनिन्दा स्त्रीणां पतनकारणम्।
एष ग्रहान्तिके दोषः तस्मात्तां दूरतस्त्यजेत्॥४७॥
विख्यातदोषः कुर्वीत गुरोरनुमतं व्रतम्। असंविख्यातदोषस्तु रहस्यं व्रतमाचरेत्॥४८॥

गधे अथवा ऊंट की गाड़ी पर चलने का जो पाप है, वह तीन प्राणायाम से नष्ट होगा। दिन में स्त्री संग हो जाने पर वस्त्रत्याग कर स्नान करने से शुद्धि होगी। जो गुरु से तुम करके बोलता है अथवा घुड़कता है, किंवा ब्राह्मण को वाणी द्वारा नीचा दिखाता है, वह उन्हें सान्त्वना देकर एक दिन उपवासी रहे। इससे पापमोचन होगा। यदि ब्राह्मण को मारने हेतु हाथ ही उठा ले, तब कृच्छ्रव्रत करे। यदि ब्राह्मण पर प्रहार किया हो, तब अतिकृच्छ्रव्रत करना होगा। प्रायश्चित्त का निर्णय देश, काल, आयु, शक्ति तथा पाप के तारतम्य से करे। तभी पाप से छुटकारा मिलता है। गर्भपात करने तथा पति की निन्दा करने से स्त्री पतिता होती है। ऐसी स्त्री को निम्न श्रेणी के गृह में रखे तथा उसे निकृष्ट अन्न-वस्त्र देकर उसकी रक्षा करे। जो कुख्यात पापी हो, वह समाज के लोगों के मत से प्रायश्चित्त करे। जो पाप गुप्त हो, उसका प्रायश्चित्त भी गुप्तरूपेण करे॥४४-४८॥

त्रिरात्रोपोषणो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम्।
अन्तर्जले विशुद्धे च दत्त्वा गाञ्च पयस्विनीम्॥४९॥
सोमेभ्यः स्वाहेति ऋचा दिवसं मारुताशनः।
जले स्थित्वा तु जुहुयाच्चत्वारिंशद्घृताहुतीः॥५०॥
त्रिरात्रोपोषणो हुत्वा कूष्माण्डीभिर्घृतं शुचिः।
सुरापः स्वर्णहारी च रुद्रजापी जले स्थितः॥५१॥

ब्रह्महत्यारा मनुष्य तीन रात उपवासी रहकर विशुद्ध जल में खड़ा हो जाये तथा अघमर्षण मन्त्र जपे। ब्राह्मण को दुग्धवती गौ प्रदान करे। तीन दिन वायु भक्षण करता हुआ जल में खड़ा होकर ४० घृताहुति दे (मन्त्र होगा 'ॐ लोमेभ्यः स्वाहा')। इससे ब्रह्महत्या पाप नष्ट होता है। मद्यप तथा स्वर्णचोर तीन रात्रि जल में खड़ा होकर उपवासी रहते रुद्रमन्त्र जपे। तब घृतपान करके कूष्माण्ड मन्त्र से होम द्वारा शुद्धि होती है॥४९-५१॥

अज्ञानकृतपापस्य नाशः सन्ध्यात्रये कृते।
रुद्रैकादशजप्याद्धि पापनाशो भवेद्द्विजाः॥५२॥
सहस्रशीर्षाजप्येन मुच्यते गुरुतल्पगः। प्राणायामशतं कुर्य्यात्सर्वपापापनुत्तये॥५३॥

अज्ञानतः किया पाप त्रिसन्ध्या आचरण से नष्ट हो जाता है। द्विजों का पाप एकादश रुद्राध्याय जप से नाश हो जाता है। गुरुपत्नीगामी 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि जप द्वारा शुद्ध हो जाता है। १०० प्राणायाम करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥५२-५३॥

ओङ्काराभियुतं सायं सलिलप्राशनाच्छुचिः।
कृत्वोपवासं रेतोविण्मूत्राणां प्राशने द्विजः॥५४॥
वेदाभ्यासरतं शान्तं पञ्चयज्ञक्रियापरम्।
न स्पृशन्ति हि पापानि चाशु स्मृत्वा ह्यपोहितः।
जप्त्वा सहस्रगायत्रीं शुचिर्ब्रह्महणादृते॥५५॥

ब्रह्मचर्य्यं दया क्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्पता।
अहिंसास्तेयमाधुर्य्यदमाश्चैते यमाः स्मृताः॥५६॥
स्नानमौनोपवासेज्यास्वाध्यायेन्द्रियनिग्रहः ।
तपोऽक्रोधो गुरोर्भक्तिः शौचञ्च नियमाः स्मृताः॥५७॥

रेतः, विष्ठा, मूत्र आदि का भक्षण हो जाने पर उपवासी रहे तथा सायंकाल ॐ से अभिमन्त्रित जल पान करे। इससे वह पाप शान्त होगा। जो मानव वेदाभ्यासी, शान्तियुक्त तथा पंचयज्ञ करता है, उसे पाप-महापातक भी स्पर्श नहीं करते। ब्रह्महत्या को छोड़ कर सभी पातक नाशक उपाय यह है—समस्त रात्रि जल में खड़ा होकर अगले दिन उपवासी होकर सूर्य की ओर मुख करके एक हजार गायत्री जप करे। ब्रह्मचर्य पालन, क्षमाशीलता, ध्यानतत्परता, सत्य बोलना, कपटरहित होना, अहिंसा-अस्तेय व्रती होना, मधुर वाणी बोलना तथा दम—यह संयम है। स्नान, मौन रहना, उपवास करना, यज्ञ करते रहना, स्वाध्याय तत्परता, इन्द्रियनिग्रह, तप, अक्रोध, गुरुभक्ति तथा पवित्र रहना नियम है।।५४-५७।।

पञ्चगव्यं तु गोक्षीरं दधिमूत्रशकृद्घृतम्। जग्ध्वा परेद्यूपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं द्विजाः॥५८॥
पृथक्सान्तपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनः स्मृतः॥५९॥
पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः। प्रत्येकं प्रत्यहाभ्यस्तैः पर्णकृच्छ्र उदाहृतः॥६०॥

गौदुग्ध, गौदधि, गव्यघृत, गोमूत्र, गोबर ही पंचगव्य है। पहले दिन पञ्चगव्य ही भक्षण करे। दूसरे दिन उपवासी रहे। यही कृच्छ्रसान्तपनव्रत है। पहले दिन दूध, दूसरे दिन दधि, तीसरे दिन गोमूत्र, चौथे दिन गोबर तथा पांचवे दिन घी खाकर रहना, छठे दिन उपवासी रहना, सातवें दिन कृच्छ्रव्रत करना, यह एक सप्ताह वाला महासान्तपनव्रत है। पत्ते, गूलर के पत्ते, कमलपत्र, बिल्वपत्र, कुश जल का एक-एक दिन क्रमशः एक-एक का भोजन करे। पांच दिन में पांच प्रकार के पत्तों का भक्षण ही पर्णकृच्छ्रव्रत है।।५८-६०।।

तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रश्च पावनः॥६१॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्र उदाहृतः॥६२॥
यथा कथञ्चित्त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते।
अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूर्णाम्बुभोजनात्॥६३॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम्। द्वादशाहोपवासैश्च पराकः समुदाहृतः॥६४॥
पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम्।
एकैकमुपवासश्च कृच्छ्रः शामोऽयमुच्यते॥६५॥
एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकं स्याद्यथाक्रमात्। तुलापुरुष इत्येव ज्ञेयः पञ्चदशाह्निकः॥६६॥

पहले दिन गर्म तप्त दुग्ध, द्वितीय दिन तप्त घृत, तृतीय दिन तप्त जल पीये। चतुर्थ दिन

उपवासी रहे। यही तप्तकृच्छ्र है। यह सर्वपाप नाशक है। पहले दिन रात में किंचित् आहार करे। दूसरे दिन बिना मांगे जो मिले, उसका आहार करे। तीसरे दिन उपवासी रहे। यह पादकृच्छ्र है। ऊपर जितने व्रत कहे गये, उनमें से किसी व्रत का तिगुना आचरण करना प्राजापत्यव्रत है। इस व्रत में मात्र एक अंजलि जल पीने को अतिकृच्छ्रव्रत कहते हैं। २१ दिन केवल जल पीकर रहना कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत है। बारह दिन उपवास को एक पराकव्रत कहा गया है। पहले दिन पिण्याक आहार, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन केवल मट्ठा पीना, चौथे दिन उपवास, पांचवे दिन केवल सत्तू खाना, छठें दिन उपवास, ऐसा करना सौम्यकृच्छ्र कहा जाता है। पहले दिन पिण्याक भोजन, दूसरे दिन मट्ठा, तीसरे दिन सत्तू, ऐसे १५ दिन करने को तुलापुरुषव्रत कहा गया है॥६१-६६॥

तिथिपिण्डांश्चरेद्वृद्ध्या शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान्।
एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डश्चान्द्रायणञ्चरेत्॥६७॥

शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ करके एक पिण्ड (एक मुर्गी के अण्डे के इतना भोजन करे) अर्थात् प्रतिपदा को एक पिण्ड, द्वितीया को दो पिण्ड, ऐसे बढ़ाते हुये पूर्णिमा के दिन १५ पिण्ड भोजन करे। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन १४ पिण्ड, द्वितीया के दिन १३ पिण्ड ऐसे नित्य घटाते हुये अमावस्या के दिन मात्र एक पिण्ड भोजन करे। इस मासिकव्रत को चान्द्रायण कहा गया है॥६७॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम्। मासेनैवोपभुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम्॥६८॥
कृत्वा त्रिषवणं स्नानं पिण्डश्चान्द्रायणञ्चरेत्।
पवित्राणि जपेत्पिण्डान्गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्॥६९॥
अनादृष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु। धर्मार्थी यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्।
कृच्छ्रकृद्धर्मकामस्तु महतीं श्रियमश्नुते॥७०॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्रायश्चित्तविवेको नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥१०५॥

अन्य एक प्रकार का चान्द्रायणव्रत कहा जाता है। एक मास में मात्र २४० ग्रास अन्न भोजन करे। यह भी चान्द्रायण है। त्रिसन्ध्या स्नान करके कृच्छ्रचान्द्रायण व्रताचरण करे। इसमें पवित्र मन्त्र जप कर गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित अन्न खाना चाहिये। इस क्रिया से ज्ञात-अज्ञात सभी प्रकार के पापों का नाश हो जाता है तथा देहशुद्धि होती है। धर्म चाहने वाली इच्छा से युक्त होकर चान्द्रायणव्रत करे। वह मानव चन्द्रलोक में गति प्राप्त करता है। धर्मकामी तथा अर्थकामी व्यक्ति कृच्छ्रव्रत से महान् लक्ष्मीलाभ करता है॥६८-७०॥

॥एक सौ पांचवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षडधिकशततमोऽध्यायः

अशौच आदि का वर्णन

याज्ञवल्क्य उवाच

प्रेताशौचं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं यतव्रताः। ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्य्यादुदकं ततः॥१॥
आश्मशानादनुवाह्य इतरैर्ज्ञातिभिर्युतः। यमसूक्तं तथा जप्यं जपद्भिर्लौकिकाग्निना।
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत्॥२॥
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयान्त्यपः। अपनः सोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः॥३॥
एवं मातामहाचार्य्यपत्नीनाञ्चोदकक्रियाः। कामोदकाः सखिपुत्रस्वस्त्रीयश्वशुरद्विजाः।
नामगोत्रेण ह्युदकं सकृत्सिञ्चन्ति वाग्यताः॥४॥
पाषण्डपतितानां तु न कुर्य्युरुदकक्रियाः।
न ब्रह्मचारिणो व्रात्या योषितः कामगास्तथा॥५॥
सुरापाः स्वात्मघातिन्यो न शौचोदकभाजनाः।
ततो न रोदितव्यं हि त्वनित्या जीवसंस्थितिः॥६॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा—हे यतव्रती ऋषिगण! अब मैं प्रेतशौच कहता हूं, उसे सुनिये। दो वर्ष पूर्ण होने के पहले बालक मृत हो जाये, तब दाह न करे। उसे मिट्टी में गाड़ दे। उसकी उदकक्रिया तथा श्राद्ध नहीं होगा। दो वर्ष से अधिक की मृत्यु होने पर उसे बन्धु-बान्धवों के साथ श्मशान ले जाये। यमसूक्त पढ़ कर उसका दाह करे। सातवें अथवा दसवें दिन बन्धु-बान्धव "अपनः सो शुच दघम" इत्यादि मन्त्र से दक्षिण की ओर मुख करके उदकक्रिया करें। इसी प्रकार मातामह तथा आचार्य पत्नी का भी तर्पण करे। बन्धु, पुत्र, भागिनेय, श्वशुर आदि का नाम-गोत्र कहते हुये संयत वाणी से सबको एक-एक जलांजलि देनी चाहिये। इच्छा हो तब इन सबका तर्पण करे। अन्यथा कोई दोष नहीं होगा। पाषण्डी तथा पतितों का तर्पण एवं ब्रह्मचारी का तर्पण निषिद्ध है। व्रत से भ्रष्ट मृत स्त्री का तर्पण इच्छा हो तब करे अथवा इच्छा न हो तब न करे। शराबी, आत्महत्याकारी के लिये मरने पर शोक न करे। उनका तर्पण भी न करे॥१-६॥

क्रिया कार्य्या यथाशक्ति ततो गच्छेद्गृहान् प्रति।
विदार्य्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मनः॥७॥
आचम्याथाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान्। प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः॥८॥

यह क्रिया कार्य यथाशक्ति करके तब गृह जाये। गृह के द्वार पर नीम की पत्ती का प्राशन करके तब गृह में प्रवेश करना चाहिये। गृह प्रवेश काल में आचमन करके अग्नि, जल, गोबर तथा सफेद सरसों का स्पर्श करके शिला पर पैर रख कर तब क्रमशः गृह में प्रवेश करना चाहिये॥७-८॥

प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शनादपि। ईक्षतां तत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात्॥९॥

क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् पृथक्।
पिण्डं यज्ञकृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम्॥१०॥
जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं तु मृन्मये।
वैतानोपासनाः कार्य्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदिताः॥११॥
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडं नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम्॥१२॥
त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमुच्यते। ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि।
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति॥१३॥

जिसने प्रेतस्पर्श (मृत देह स्पर्श) किया हो, वे सभी यह कार्य करने के पश्चात् घर में आयें। जिन्होंने केवल मृत देह देखा है, उनकी तत्क्षण शुद्धि होती है। बन्धु-बान्धव की शुद्धि स्नान एवं संयम से संभव हो जाती है। पूर्वोक्त प्रेतक्रिया करने के अनन्तर घर में आकर भोजनादि के पश्चात् अलग-अलग भूमि पर शयन करें। इसके बाद तीन दिन तक लगातार अन्न से पिण्ड प्रदान करके तथा मिट्टी के पात्र में दुग्ध एवं जल रखे। यह पात्र बाहर आकाश के नीचे रहेगा। इसके पश्चात् शास्त्रोक्त विधानानुसार श्राद्धकार्य सम्पन्न करना चाहिये। जन्म से लेकर दांत निकलने के बीच मरण हो, तब तत्काल शुद्धि हो जाती है। दांत निकलने से लेकर चूड़ाकरण के बीच मृत्यु होने पर एक रात्रि में शुद्धि होती है। चूड़ाकरण से उपनयन के बीच मृत्यु होने पर तीन रात्रि में तथा यज्ञोपवीत के उपरान्त मरण होने पर दस रात्रि में शुद्धि होगी। सपिंड भेद के कारण तीन किंवा दस रात का अशौच होगा। इसका तात्पर्य यह है कि सपिंड लोगों को दस रात का तथा अन्य को तीन रात्रि का ही अशौच होगा। दो वर्ष के पुत्र अथवा कन्या का मरण होने पर केवल माता को अशौच रहेगा। और लोग सद्यः शुद्ध होंगे। यदि एक अशौच के रहते दूसरा अशौच हो जाये, तब प्रथम अशौच में जितने दिन बचे थे, उतने ही दिन में दोनों अशौच निवृत्त हो जायेंगे॥९-१३॥

दशद्वादशवर्णानां तथा पञ्चदशैव च। त्रिंशद्दिनानि च तथा भवति प्रेतसूतकम्॥१४॥

ज्ञाति का जन्म किंवा मरण हो जाने पर ब्राह्मण को दस दिन का, क्षत्रिय को बारह दिन का, वैश्य को १५ दिन का तथा शूद्र को एक माह (३० दिन का) अशौच होगा॥१४॥

अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम्। गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च॥१५॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्य्यास्वन्यगतासु च। नीरसे राजनि तथा तदहः शुद्धिकारकम्॥१६॥

अविवाहित कन्या अथवा बालक का मरण होने पर एक दिन में शुद्धि होती है। सांगवेदाध्यायी (अनूचान) गुरु, शिष्य, मामा, श्रोत्रिय, औरस पुत्र के अतिरिक्त अन्य पुत्र, व्यभिचारिणी तथा राजा की मृत्यु होने पर एक दिन में अशौच समाप्त होता है॥१५-१६॥

हतानां नृपगोविप्रैरलक्षं चात्मघातिनाम्। विषाद्यैश्च हतानाञ्च नाशौचं पृथिवीपतेः॥१७॥
सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा। दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे॥१८॥
आपद्यपि हतानाञ्च सद्यः शौचं विधीयते।
कालोऽग्निकर्म मृद्वायुर्मनो ज्ञानं तपो जपः॥१९॥

पश्चात्तापो निराहारः सर्वेषां शुद्धिहेतवः।
अकार्य्यकारिणां दानं वेगो नद्यास्तु शुद्धिकृत्॥२०॥

राजा, गाय तथा विप्र द्वारा मारा गया, आत्महत्यारा का अशौच ज्ञाति वर्ग न माने। जिन्होंने विष से देह त्यागा है, उनका भी अशौच अग्राह्य ही है। जो याज्ञिक, व्रती, ब्रह्मचारी, दानव्रती तथा ब्रह्मज्ञानयुक्त हैं, उनका मरण होने पर तत्काल शुद्धि हो जाती है। दान, विवाह, युद्ध, देश विप्लव, दुर्भिक्षादि-भूकम्प आदि आपदा में मृत लोगों के ज्ञातिगण सद्यः शुद्ध हो जाते हैं। काल, अग्नि, कर्म, मिट्टी, वायु, ज्ञान, तपः, जल, पश्चाताप तथा निरादार यह सर्वविध शुद्धि प्रदान करते हैं। पापी की शुद्धि पश्चात्ताप से और नदी की शुद्धि उसके वेगवान् प्रवाह से होती है। अकार्य करने वाले की शुद्धि दान से होती है।।१७-२०॥

क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः। फलसोमक्षौमवीरुद्दधि क्षीरं घृतं जलम्।
तिलौदनरसक्षारमधुलाक्षायुतं हविः॥२१॥
वस्त्रोपलामवं पुष्पं शाकमृच्चर्मपादुकम्। एणत्वञ्चैव कौषेयं लवणं मांसमेव च॥२२॥
पिण्याकमूलगन्धांश्च वैश्यवृत्तो न विक्रयेत्।
धर्मार्थं विक्रयस्तेषां तिलयान्येन संयुतम्॥२३॥
लवणादि न विक्रीयात् तथा चापद्गतो द्विजः।
कुर्य्यात् कृष्यादिकं तद्वदविक्रेया हयास्तथा॥२४॥
बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा दृष्ट्वा वृत्तिविवर्जितम्।
राजा धर्मान्प्रकुर्वीत वृत्तिं विप्रादिकस्य च॥२५॥

।इति गारुडे महापुराणे वर्णधर्मो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः।।१०६।।

यदि ब्राह्मण आपत्ति में पड़े तब वह क्षत्रियों किंवा वैश्यों की वृत्ति अपना कर जीवन यापन करे, तथापि वह फल, कपूर, रेशमी वस्त्र, पक्षी, दही, दूध, घृत, जल, तिल, चावल, पारद, क्षार वस्तु, मधु, लाख, कुश, वस्त्र, पत्थर, मद्य, पुष्प, शाक, मिट्टी, चमड़े की पादुका, हिरण का चर्म, कौषेय वस्त्र, नमक, मांस, पिण्याक, पशु तथा सुगन्धित वस्तु न बेचे। जो धर्मार्थी है, वह मूल्य लेकर तिल न बेचे। आवश्यक हो, तब तिल के बदले धान्य लेकर तिल दे सकता है। ब्राह्मण भले ही आपत्ति में हो, वह नमक कदापि न बेचे। आपत्ति में वह इस नियम का पालन करने से सूर्यवत् पाप में लिप्त नहीं होता। वह कृषि भी कर सकता है, लेकिन अन्न न बेचे। ब्राह्मण के पास जब कोई जीविका साधन न हो, तब वह तीन रात उपवासी रहे। तदनन्तर राजा उसके लिये जिस वृत्ति का विधान करे, वही वृत्ति अपनाये॥२१-२५॥

॥एक सौ छठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
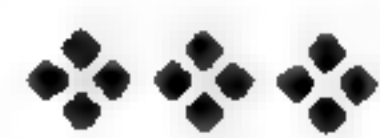
सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

वर्ण तथा आश्रम धर्म

सूत उवाच

परागरोऽब्रवीद् व्यासं धर्मं वर्णाश्रमादिकम्।
कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तिः क्षीयन्ते न ह्यजादयः॥१॥
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारो यः कश्चिद्वेदकर्त्तृकः।
वेदाः स्मृता ब्राह्मणादौ धर्मा मन्वादिभिः सदा॥२॥
दानं कलियुगे धर्मः कर्त्तारश्च कलौ त्यजेत्। पापकृत्यं तु तत्रैव शापं फलति वर्षतः॥३॥
आचारात्प्राप्नुयात्सर्वं षट्कर्माणि दिने दिने।
सन्ध्या स्नानं जपे होमो देवातिथ्यादिपूजनम्॥४॥
अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वा यतयस्तदा। क्षत्रियः परसैन्यानि जित्वा पृथ्वीं प्रपालयेत्।
वणिक्कृष्यादि वैश्ये स्याद् द्विजभक्तिश्च शूद्रके॥५॥

सूतजी ने कहा—महर्षि पराशर ने वेदव्यास से वर्ण धर्म तथा आश्रम धर्म का वर्णन किया था। प्रत्येक कल्प में प्रलय होता है, लेकिन इससे विष्णु आदि का क्षय कदापि नहीं होता। श्रुति, स्मृति तथा सदाचार का वर्णन सभी वेदों में मिलता है। सबसे पहले ब्रह्मा ने वेद को कहा था। इसके पश्चात् मनु आदि महर्षियों ने धर्मशास्त्र को कहा। दान ही कलिकाल का एकमात्र धर्म है। कलि में अन्य धर्म लुप्त हो जाते हैं। सभी पाप कार्यरत हो जाते हैं। पाप कृत्य तथा शाप का फल तब एक वर्ष में मिलता है। कलिकाल में जो विशुद्धाचारी रहता है, उसे समस्त धर्म-कर्म का फल मिलेगा। सन्ध्या, स्नान, जप, देव-अतिथि पूजा कलिकाल में धर्म की सीढ़ियां हैं। व्रती तथा अतिथिसेवी विप्र कलिकाल में विरल ही होते हैं। वे सर्वपूज्य होते हैं। क्षत्रियगण पराई सेना को हराकर पृथिवी का पालन करें। वैश्य वाणिज्य तथा कृषिकर्म करें। शूद्र द्विजों की सेवा भक्तिभाव से करें॥१-५॥

अभक्ष्यभक्षणाच्चौर्य्यादगम्यागमनात् पतेत्।
कृषिं कुर्वन्द्विजः श्रान्तं बलीवर्दं न वाहयेत्॥६॥
दिनार्द्धं स्नानयोगादिकारी विप्रांश्च भोजयेत्।
निर्वपेत्पञ्च यज्ञानि क्रूरे निन्दाञ्च कारयेत्॥७॥
तिलाज्यं न विक्रीणीत सूनायज्ञादधान्वितः।
राज्ञो दत्त्वा तु षड्भागं देवतानाञ्च विंशतिम्।
त्रयस्त्रिंशच्च विप्राणां कृषिकर्त्ता न लिप्यते॥८॥
कर्षकाः क्षत्रविट्शूद्राः खल्वदत्त्वा तु चौरकाः। दिनत्रयेण शुध्येत ब्राह्मणः प्रेतसूतके॥९॥

अभक्ष्य भक्षी, चोर, अगम्यागामी पतित होगा। यदि द्विज लोग कृषिकार्य में लगें, तब वे थके हुये बैल को हल में न लगायें। वे द्विप्रहर काल में स्नान तथा योगसाधन आदि करके पंचयज्ञ करें। यज्ञ तथा ब्राह्मण भोजन कराये। द्विज लोग तिल तथा तरल वस्तु को मूल्य लेकर न बेचे। यदि यह विक्रय करना पड़े तब धन में मूल्य न लेकर धान्य आदि के बदले यह बिक्री करें। कृषि करने वाला विप्र राजा को छठा भाग, देवगण को १/२० भाग तथा ब्राह्मण को १/३३ भाग प्रदान करने से पापलिप्त नहीं होता। कृषि करने वाले क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भी यदि यह निश्चित भाग नहीं देते, तब वे चोर कहे जायेंगे। प्रेतसूतक में ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध हो जाता है॥६-९॥

क्षत्री दशाहाद्वैश्यस्तु द्वादशान्मासि शूद्रकः।
याति विप्रो दशाहात्तु क्षत्रो द्वादशकाद्दिनात्॥१०॥
पञ्चदशाहाद्वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति।
एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्भावनिकेतनाः॥११॥
जन्मना च विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम्। चतुर्थे दशरात्रस्य षण्णिशाः पुंसि पञ्चमे॥१२॥
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे च दिनत्रयम्। देशान्तरे मृते बाले सद्यः शुद्धिर्यतो मृते॥१३॥

ब्रह्मज्ञ क्षत्रिय १० दिन में, ब्रह्मज्ञ वैश्य १२ दिन में तथा ऐसा शूद्र एक मास में प्रेतसूतक से शुद्ध होगा (अन्य मत से) विप्र १० दिन में, क्षत्रिय १२ दिन में, वैश्य १५ दिन में तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होते हैं। यदि सपिण्ड ज्ञातिगण अलग रहते हैं तथा अलग अन्न ग्रहण करते हैं, तब भी उनको जन्म-मरण में सूतक होगा। चतुर्थ पुरुष में दस रात, पञ्चम पुरुष में छः रात तथा षष्ठ पुरुष में चार रात एवं सप्तम पुरुष में तीन रात्रि में शुद्धि होगी। यदि देशान्तर में कोई बालक मृत हो जाये, तब तत्क्षण शुद्धि होगी॥१०-१३॥

अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः।
न तेषामग्निसंस्कारो न पिण्डं नोदकक्रिया॥१४॥
यदि गर्भो विपद्येत स्त्रवते वापि योषितः।
यावन्मासान्स्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम्॥१५॥

जिस बालक की मृत्यु दांत निकलने के पहले हो गयी, जो पैदा होते ही मर गया, उनका अग्नि संस्कार, पिण्डदान तथा तर्पण नहीं होता। यदि गर्भ में ही मृत्यु हो जाये तथा जब नारी को गर्भस्राव हो जाये, उस परिस्थिति में जितने मास का गर्भ था, उतने दिन का अशौच होगा॥१४-१५॥

आनामकरणात्सद्य आचूडान्तादहर्निशम्। आव्रतस्थात्त्रिरात्रेण तदूर्ध्वं दशभिर्दिनैः॥१६॥
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः।
ब्रह्मचर्य्यादग्निहोत्रान्नाशुद्धिः सङ्गवर्जनात्॥१७॥
शिल्पिनः कारवो वैद्या दासीदासाश्च भृत्यकाः।
अग्निमान्श्रोत्रियो राजा सद्यःशौचाः प्रकीर्त्तिताः॥१८॥

दशाहाच्छुद्ध्यते माता स्नानात्सूते पिता शुचिः।
सङ्गात् सूतौ सूतकं स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः॥१९॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके। पूर्वसंकल्पितादन्यवर्जनञ्च विधीयते॥२०॥

नामकरण होने के पहले मृत्यु होने पर सद्यः शौच होता है। तदनन्तर चूड़ाकरण होने के पूर्व तथा नामकरण के पश्चात् इस बीच मृत्यु होने पर एक दिन-रात का अशौच होगा। इस चूड़ाकरण के बाद मरण होने पर सम्पूर्ण १० रात का अशौच होगा। चार मास तक के गर्भ का नाश होने पर वह गर्भस्राव कहा जाता है। पञ्चम तथा छठें मास का गर्भ नष्ट होने को गर्भपात कहते हैं। यदि जो ब्रह्मचारी तथा अग्निहोत्री है, सर्वसंगरहित है, उसका कोई अशौच नहीं होगा। शिल्पी, कारीगर, वैद्य, दास, दासी, भृत्य, अग्निहोत्री, श्रोत्रिय, राजा की मृत्यु का अशौच नहीं होगा। सूत का शौच होने पर दसवें दिन माता-पिता स्नान से ही शुद्ध हो जायेंगे। विवाह, यज्ञ तथा उत्सव काल में जनना किंवा मरणाशौच का समाचार मिले, तब उस पूर्व संकल्प युक्त विवाह, यज्ञ तथा उत्सव को पूर्ण करे, लेकिन अन्य कार्य न करे॥१६-२०॥

मृतेन शुद्ध्यते सूती मृतकं जातकं त्वसौ। गोग्रहादौ विपन्नानामेकरात्रं तु सूतकम्॥२१॥
अनाथप्रेतवहनात् प्राणायामेन शुध्यति। प्रेतशूद्रस्य वहनात्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥२२॥
आत्मघातिविषादबन्धकृमिदष्टे न संस्कृतिः।
गोहतं कृमिदष्टञ्च स्पृष्ट्वा कृच्छ्रेण शुध्यति॥२३॥

यदि सन्तान जन्म लेकर जनना शौच काल में ही मृत हो जाये, तब स्त्री इस मरणाशौच से ही दोनों अशौच काल के बाद शुद्ध होगी। एक मरणा शौच के पश्चात् यदि उसी बीच अन्य मरणाशौच हो जाये, तब पहले वाले अशौच से ही शुद्धि वाला दिन गिना जायेगा। बाद वाले से नहीं गिना जायेगा। गौशाला में मरण होने पर एक ही रात्रि का अशौच होगा। जो कोई अनाथ व्यक्ति की अर्थी उठाता है अथवा दहन करता है, तब प्राणायाम से शुद्धि होगी। यदि कोई शूद्र का शव वहन करे, तब उसे तीन रात का ही अशौच होगा। जो मनुष्य आत्महत्या करे अथवा जो बन्धन किंवा विषपान से मरे, जो कीट दंश से मरे, उनका अग्निसंस्कार नहीं होगा। गाय द्वारा मृत अथवा कीड़ा डसने से मृत का स्पर्श करने वाला कृच्छ्रचान्द्रायण से शुद्ध होगा॥२१-२३॥

अदुष्टां पतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत्।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः॥२४॥
बालहत्या त्वगमनादृतौ च स्त्री तु शूकरी।
अगम्या व्रतकारिण्यो भ्रष्टपानोदकक्रियाः॥२५॥

जो ऐसी पत्नी का त्याग करता है, जो दुष्टा अथवा पतिता नहीं है, वह सात जन्मों तक स्त्री होकर जन्म लेगा तथा विधवा रहेगा। ऋतुकाल में जो पत्नी संभोग नहीं करता, उसे बालक की हत्या का पाप लगेगा। जो नारी ऋतुकाल में संभोग नहीं करती, वह अन्य जन्म में शूकरी होगी। यदि व्यक्ति पत्नी के ऋतुकाल में गमन करने से विरत रहता है और उस समय वेदोक्तव्रत आदि का अनुष्ठान करता है, तथापि वह तर्पण तथा उदकक्रिया से रहित होगा॥२४-२५॥

औरसः क्षेत्रजः पुत्रः पितृजौ पिण्डदौ पितुः।
परिवित्तेस्तु कृच्छ्रं स्यात्कन्यायाः कृच्छ्रमेव च॥२६॥
अतिकृच्छ्रं चरेद्दाता होता चान्द्रायणञ्चरेत्। कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च।
जात्यन्धबधिरे मूके न दोषः परिवेदने॥२७॥

औरस तथा क्षेत्रज पुत्र पिता के क्षेत्र से उत्पन्न होते हैं। ये पिता को दण्ड दे सकते हैं। जो बड़े भाई के विवाह के पहले विवाह करते हैं, वे सपत्नीक कृच्छ्रव्रत करें। ऐसे व्यक्ति को जिसने कन्यादान किया है, वह अतिकृच्छ्रव्रत तथा चान्द्रायणव्रत करे। यदि बड़ा भाई कुबड़ा, बौना, षण्ड, जड़, जन्मान्ध, बधिर अथवा मूक हो, तब यदि छोटा भाई बड़े भाई के अविवाहित रहते विवाह करता है, तब उसे दोष नहीं होगा॥२६-२७॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे वा पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो न विद्यते॥२८॥
भर्त्रा सह मृता नारी रोमाब्दानि वसेद्दिवि॥२९॥
श्वादिदष्टस्तु गायत्र्या जपाच्छुद्धो भवेन्नरः।
दाह्यो लोकाग्निना विप्रश्चाण्डालाद्यैर्हतोऽग्निमान्।
क्षीरैः प्रक्षाल्य तस्यास्थि स्वाग्निना मन्त्रतो दहेत्॥३०॥

यदि स्वामी निरुद्देश्य हो (कोई लक्ष्य अथवा जीविका न हो), मृत हो, संन्यासी हो जाये, नपुंसक अथवा पतित हो, तब कन्या का विवाह अन्य पात्र से करे। जो स्त्री अपने पति के साथ मृत हो जाती है, उसके शरीर में जितने रोम होंगे, उतने समय तक वह पति के साथ स्वर्ग में रहेगी। कुत्ता आदि से दंश किये जाने पर गायत्री जप द्वारा शुद्धि मिलती है। ब्राह्मण मृत हो तब उसे लौकिक अग्नि में जलाये। यदि किसी ब्राह्मण को चाण्डाल आदि ने मारा है तथा वह मृत ब्राह्मण साग्निक हो, तब उसे लौकिक अग्नि से दग्ध करके उसकी अस्थि को दुग्ध द्वारा धोकर मन्त्रपाठ द्वारा दग्ध करे॥२८-३०॥

प्रवासे तु मृते भूयः कृत्वा कुशमयं दहेत्।
कृष्णाजिने समास्तीर्य्य षट्शतानि पलाशजाः॥३१॥
शमीं शिश्ने विनिक्षिप्य अरणिं वृषणे क्षिपेत्।
कुण्डं दक्षिणहस्ते तु वामहस्ते तथोपभृत्॥३२॥
पार्श्वे तूदूखलं दद्यात्पृष्ठे तु मुषलं दहेत्। ऊरौ निक्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे॥३३॥
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीञ्च चक्षुषोः।
कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलान् क्षिपेत्॥३४॥
अग्निहोत्रोपकरणाद् ब्रह्मलोकगतिर्भवेत्।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्याज्याहुतिः सकृत्॥३५॥

यदि कोई साग्निक विप्र अन्य देश में मृत होता है तथा शरीर नहीं मिलता, तब उसके स्वजन कुश

से उसकी आकृति बना कर उसका पुनः दाह करें। पहले काले मृगचर्म पर ६०० पलाश के पत्ते बिछा कर उस पर वह कुश की आकृति रखें। उसके शिश्न पर शमी रखकर वृषण पर अरणि रखें। दाहिने हाथ पर जूह तथा वाम हाथ पर उपसत् (यज्ञपात्र), बगल में ऊखल, पीठ पर मूसल, उरुस्थल पर पत्थर, मुख पर घृत, तण्डुल एवं तिल, कानों पर प्रोक्षणी, आंखों पर घृत की कटोरी स्थापित करे। उस शव के कान, आंख, मुख तथा नाक पर स्वर्णखण्ड रखें। एवंविध अग्निहोत्र के सभी सामान रख कर अग्निसंस्कार करने पर मृत व्यक्ति ब्रह्मलोक जाता है। उस समय "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा" कह कर घृताहुति देना उचित है॥३१-३५॥

हंससारसक्रौञ्चानां चक्रवाकञ्च कुक्कुटम्। मयूरमेषघाती च अहोरात्रेण शुद्ध्यति॥३६॥

पक्षिणः सकलान् हत्वा अहोरात्रेण शुध्यति।
सर्वांश्चतुष्पदान्हत्वा अहोरात्रोषितो जपेत्॥३७॥
शूद्रं हत्वा चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं तु वैश्यहा।
क्षत्रं चान्द्रायणं विप्रं द्वाविंशं त्रिंशमाहरेत्॥३८॥

॥इति गारुडे महापुराणे पराशरोक्तधर्मो नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥

जिस व्यक्ति ने हंस, सारस, बकुला, चक्रवाक्, मुर्गा, मयूर तथा मेष को मारा हो, वह एक दिन-रात उपवासी रहकर शुद्ध होगा। अन्य पक्षियों का वधकर्त्ता भी यही उपवास करे। चार पैरों वाले पशुओं को मारने वाला एक रात उपवासी रहे तथा (रात अर्थात् दिन-रात) जप करके पापरहित होगा। शूद्रहत्यारा कृच्छ्रव्रत करे। वैश्य का हत्यारा अतिकृच्छ्रव्रत, क्षत्रिय वधकर्त्ता चान्द्रायणव्रत, ब्राह्मण हत्यारा २२ या ३० बार चान्द्रायणव्रत करे॥३६-३८॥

॥एक सौ सातवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
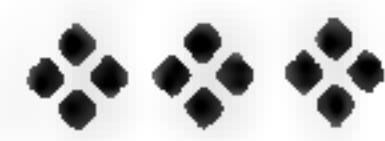
अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

नीतिसारं प्रवक्ष्यामि अर्थशास्त्रादिसंश्रितम्।
राजादिभ्यो हितं पुण्यमायुः स्वर्गादिदायकम्॥१॥
सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः।
नासद्भिरिह लोकाय परलोकाय वा हितम्॥२॥

वर्जयेत्क्षुद्रसंवादं दुष्टस्य चैव दर्शनम्। विरोधं सह मित्रेण संप्रीतिं शत्रुसेविना॥३॥
मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च। दुष्टानां संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति॥४॥
ब्राह्मणं बालिशं क्षत्रमयोद्धारं विशं जडम्। शूद्रमक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत॥५॥

कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः।
कार्य्यकारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पण्डितः॥६॥
कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥७॥

कालेषु चरते वीर्यं काले गर्भे च वर्द्धते। कालो जनयते सृष्टिं पुनः कालोऽपि संहरेत्॥८॥
कालः सूक्ष्मगतिर्नित्यं द्विविधश्चेह भाव्यते। स्थूलसंग्रहचारेण सूक्ष्माचारान्तरेण च॥९॥
नीतिसारं सुरेन्द्राय इममूचे बृहस्पतिः। सर्वज्ञो येन चेन्द्रोऽभूद्दैत्यान् हत्वाप्नुयाद्दिवम्॥१०॥

सूतजी ने कहा—अब अर्थशास्त्र युक्त नीतिसार कहता हूं। इस पावन शास्त्र को सुनने वाले ब्राह्मण तथा अन्य सब वर्ग का हित होगा। इसके श्रवण से इहकाल में आयु की वृद्धि तथा परकाल में स्वर्गलाभ होगा। जो स्वयं सिद्धिकामी लोग हैं, वे सदैव साधुसंग करें। असाधु लोगों का साथ इहलोक तथा परलोक के लिये अहितकर है। क्षुद्र प्रवृत्ति वालों के साथ कथनोपकथन तथा अति दुष्ट का मुख देखना वर्जित है। जो शत्रु का आश्रित है, उसके साथ मित्रता एवं मित्र के साथ विरोध न करे। मूर्ख शिष्य को उपदेश देना, दुष्टा स्त्री का भरण-पोषण करना, दुष्ट व्यक्ति के अनुकूल कार्य करना, इससे विद्वान् व्यक्ति भी निम्न हो जाता है। मूर्ख ब्राह्मण, युद्ध से भागने वाला क्षत्रिय, जड़बुद्धि वैश्य तथा वेदाक्षर उच्चारक शूद्र—इनको दूर से त्यागे।

समय अनुसार ही शत्रु से सन्धि तथा मित्र से विवाद करे। पण्डि व्यक्ति कार्य-कारण का विचार करके समय अतिवाहित करे। काल ही व्यक्ति में परिवर्त्तन लाता है तथा उसे बढ़ाता है। काल ही संहारक भी है। सबके सोने पर भी काल जागता रहता है। कोई भी काल को पार नहीं कर सकता। काल ही गर्भ में बालक को बढ़ाता है। यही समय पर (युवावस्था में) बलवृद्धि करता है। काल ने ही सबको उत्पन्न किया है। काल ही सबका संहार करने वाला भी है। काल की गति देखी अथवा जानी नहीं जा सकती। काल सूक्ष्म एवं स्थूल भेद से द्विविध है। कहीं सूक्ष्मतः तो कहीं स्थूलतः संचरण करता है। देवराज शक्र को देवगुरु ने यही नीतिसार कहा था। उन्होंने इसे जान कर सर्वज्ञतालाभ किया तथा दैत्यों को मार कर देवलोक का राज्य पाया॥१-१०॥

राजर्षिब्राह्मणैः कार्य्यं देवविप्रादिपूजनम्। अश्वमेधेन यष्टव्यं महापातकनाशनम्॥११॥

उत्तमैः सह साङ्गत्यं पण्डितैः सह सत्कथाम्।
अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति॥१२॥

परदारं परार्थञ्च परिहासं परस्त्रिया। परवेश्मनि वासञ्च न कुर्वीत कदाचन॥१३॥
परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः। अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम्॥१४॥

स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते॥१५॥

राजर्षि लोगों, ब्राह्मणों का कार्य है देव-ब्राह्मण पूजा। राजर्षि लोग महापातकनाशार्थ अश्वमेध का अनुष्ठान करें। जो श्रेष्ठों का संग, विद्वानों के साथ वार्त्ता तथा लालचरहित से मित्रता करते हैं, वे कभी दुःखी तथा स्तब्ध नहीं होते। परस्त्री परायणता, पराये द्रव्य का हरण, परस्त्री से परिहास, अन्य के गृह में रहना, यह सब वर्जित समझे। यदि शत्रु भी हित करे, तब वही मित्र है। बन्धु जब अनिष्ट करने का उपक्रम करे, तब वही शत्रु है। शरीर में उत्पन्न रोग मनुष्य के शत्रु हैं। वन में उत्पन्न औषधि वर्ग मनुष्य के हितचिन्तक हैं। हित करने वाला बन्धु तथा भरण-पोषण करने वाला पिता है। विश्वासभाजन ही मित्र है। जहां जीविका मिले, वही स्वदेश है॥११-१५॥

स भृत्यो यो विधेयस्तु तद्बीजं यत् प्ररोहति।
सा भार्य्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यस्तु जीवति॥१६॥
स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य स जीवति।
गुणधर्मविहीनो यो निष्फलं तस्य जीवनम्॥१७॥
सा भर्य्या या गृहे दक्षा सा भार्य्या या प्रियंवदा।
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या पतिव्रता॥१८॥
हिता स्नाता सुगन्धा च नित्यञ्च प्रियवादिनी।
अल्पभक्ताल्पभाषिणी सततं मङ्गलैर्युता॥१९॥
सततं धर्मबहुला सततञ्च पतिप्रिया। सततं प्रियवक्त्री च सततम् ऋतुकामिनी॥२०॥

जो अपने वश में है, वही वास्तविक भृत्य कहा जायेगा। जो अंकुरित हो, वही यथार्थ बीज है। प्रिय वाक्य बोले, वही यथार्थ भार्या है। दीर्घजीवी है वास्तविक पुत्र है। गुणी तथा धार्मिक जीवन सार्थक है। जो मनुष्य धर्महीन एवं गुणहीन है, उसका जीवन सफल नहीं है। जो गृहकार्य में दक्षा है, वही वास्तविक पत्नी है। पति परायणा, प्रियवादिनी, स्नान तथा सुगन्ध युक्त, प्रिय वाक्य से सान्त्वना देने वाली, मिताहारी, कम बोलने वाली, मांगलिक कार्य में सतत् तत्पर ही प्रकृत भार्या है। जो ऋतुकाल की कामना करती है, वही वास्तविक भार्या है॥१६-२०॥

एतदादिक्रियायुक्ता सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी।
यस्येदृशी भवेद्भार्य्या देवेन्द्रो न स मानुषः॥२१॥
यस्य भार्य्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया।
उत्तरोत्तरवादास्या सा जरा न जरा जरा॥२२॥
यस्य भार्य्याश्रितान्यत्र परवेशमाभिकांक्षिणी।
कुक्रिया त्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा जरा॥२३॥

यस्य भार्य्या गुणज्ञा च भर्त्तारमनुगामिनी।
अल्पेऽल्पेन तु संतुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया॥२४॥

दुष्टा भार्य्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः। ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥२५॥

जिसकी भार्या पितृक्रिया, देवक्रिया प्रभृति में उत्साहित रहती है, जो सदा सौभाग्य बढ़ाती है, वह व्यक्ति मानव नहीं है, वह साक्षात् इन्द्र है। जिसकी पत्नी विरूप आंखों वाली, कलही, मलिन, बराबरी में जवाब देने वाली है, वही पुरुष की जरा (वृद्धावस्था) है। वस्तुतः वार्द्धक्ययुक्त होना 'जरा' नहीं है। जो पत्नी अन्य पर आश्रित, पराये गृह में रहने की इच्छा वाली, बुरी क्रियाओं में तत्पर तथा निर्लज्जा है, वही पति के लिये जरारूपा है। जो गुणग्राही, पति के वचन का पालन करने वाली, अन्न से सन्तुष्ट रहती है, (जो कुछ मिले, उसी में प्रसन्न रहने वाली), उसे ही प्रिया कहते हैं। इसके अतिरिक्त जो स्त्री है, उसे प्रिया नहीं कहते। यदि पत्नी दुष्टा हो, मित्र यदि शठ हो, भृत्य यदि सवाल-जवाब करे, यदि सर्पयुक्त घर में निवास हो, तब मृत्यु में शंका?॥२१-२५॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्। कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥२६॥

व्याली कण्ठप्रदेशादपि च फणभृतो भीषणा या च रौद्री
या कृष्णा व्याकुलाङ्गी रुधिरनयनसंव्याकुला व्याघ्रकल्पा।
क्रोधे यैवोग्रवक्त्रा स्फुरदनलशिखा काकजिह्वा कराला
सेव्या न स्त्री विदग्धा परपुरगमना भ्रान्तचित्ता विरक्ता॥२७॥

भुजङ्गमे वेश्मनि दृष्टिदृष्टे व्याधौ चिकित्साविनिवर्त्तिते च।
देहे च बाल्यादिवयोऽन्विते च कालावृतोऽसौ लभते धृतिं कः॥२८॥

॥इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥

दुर्जन के साथ का त्याग, सदा साधुसंग में रुचि तथा पुण्य संचय करे। सदा जगत् की क्षणभंगुरता को याद रखे। जो स्त्री सर्पिणी के कण्ठ से भी भीषण वाक्य बोलने वाली, रौद्ररूपा, कृष्णवर्णा, चंचला, लाल-लाल आंखों वाली, व्याकुल, बाघिन जैसी भयानक है, जिसका मुख सदा क्रोध से उग्र रहता है, जो काकजिह्वा तथा कराला है, जो अग्नि के समान भीषणा है, जो परपुरुष से सम्बन्ध रखती है, भ्रान्त बुद्धि है, विद्वान् व्यक्ति ऐसी रमणी का आश्रय कभी न लें। जिसके गृह में सर्प हो, जिसका रोग चिकित्सा की पहुंच के बाहर हो गया हो, जिसके शरीर ने बाल्य, यौवन, वार्द्धक्यावस्था भोग लिया हो, वह पुरुष-स्त्री तो काल से आक्रान्त है। इसमें क्या सन्देह? ऐसी अवस्था में कौन निश्चिन्त रहेगा?॥२६-२८॥

॥एक सौ आठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

नवाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि। आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥१॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥२॥

वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे। नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्त्तते॥३॥

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्। न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्॥४॥

त्यजेद्देशमसद्वृत्तं वासं सोपद्रवं त्यजेत्। त्यजेत् कृपणराजानं मित्रं मायामयं त्यजेत्॥५॥

सूतजी ने कहा—आपत्ति के लिये धन बचाये रहे। स्त्री रक्षा के लिये धन व्यय अवश्य करे। धन द्वारा ही हो अथवा स्त्री द्वारा हो, अपनी रक्षा सभी तरह से करे। कुल को बचाने हेतु यदि एक को त्यागना पड़े, तब नि:संकोच उसे त्यागे। ग्राम बचाने के लिये कुल तक को त्याग दे। जनपद बचाने हेतु ग्राम त्यागे, लेकिन अपने को बचाने हेतु समग्र पृथिवी त्याग दे। नरक में रहना उत्तम है, लेकिन दुष्ट के गृह में रहना उचित नहीं है। नरक में रहकर तो पाप नाश होने पर पुन: जन्म होता है, लेकिन कुगृह में रहने वाला सदा नरक भोगता है, उसका जन्म नहीं होगा। जो बुद्धिशाली हैं, वे एक कदम उठा कर तब दूसरा कदम उठाते हैं। अत: पहले स्थान का त्याग तब तक न करे, जब तक दूसरे वाले स्थान को भली-भाँति जांच न ले। जिस देश में चरित्रहीन लोग भरे पड़े हों, उस देश का त्याग करे। जहां सदा उपद्रव हो, उसका भी त्याग करे। कंजूस राजा तथा मायावी मित्र का त्याग कर देना चाहिये॥१-५॥

अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन पुंसा ज्ञानेन किं बहुशठाकुलसङ्कुलेन।
रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन॥६॥

अदृष्टपूर्वा बहवः सहायाः सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्राः।
अर्थैर्विहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः॥७॥

आपत्सु मित्रं जानीयाद् रणे शूरं रहः शुचिम्।
भार्य्याञ्च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्॥८॥

कृपण के पास गये धन का क्या फल? जो ज्ञान शठता भरा हो, उससे क्या प्रयोजन लाभ होगा? जो रूप, गुण, पराक्रम रहित हो, उसका क्या लाभ? जो व्यसन काल में विमुख हो, ऐसे मित्र की क्या आवश्यकता? उच्चपदस्थ व्यक्ति के उसके भाग्य के कारण अनेक सहायक होते हैं। सभी उसके दोस्त बन जाते हैं। जब वही पदच्युत तथा अर्थहीन होता है, तब उसके अपने परिवार वाले भी शत्रु की तरह उसके साथ व्यवहार करने लगते हैं। विपत्ति में ही मित्र की परीक्षा होती है। युद्धकाल में वीर में कितनी वीरता

है, यह जानकारी में आता है। व्यक्ति ऐश्वर्यरहित होने पर भी पत्नी के स्वभाव की वास्तविकता जान पाता है। दुर्भिक्ष काल में ही यह ज्ञात होता है कि कौन कितना अतिथि परायण है॥६-८॥

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः।
पुष्पं पर्य्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः
सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभः॥९॥
लुब्धमर्थप्रदानेन श्लाघ्यमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च याथातथ्येन पण्डितम्॥१०॥
सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा द्विजाः।
इतराः खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिताः॥११॥

पक्षी लोग फलहीन वृक्ष को छोड़ देते हैं। सूखे जलाशय को जलक्रीड़ा करने वाले सारस त्याग देते हैं। रमणी लोग (गणिका) धनहीन को तथा मन्त्रीगण राज्यच्युत राजा को त्याग देते हैं। बासी फूल को भौंरे त्याग देते हैं। जले वन को मृगगण त्याग देते हैं। सभी लोग अपने-अपने मतलब से ही यत्र-तत्र जाते हैं। कोई किसी का प्रिय नहीं है। सब स्वार्थ है। लोभी तो तनिक धन पाकर वश में आ जाता है। घमण्डी को हाथ जोड़ कर प्रणाम करे, वह वशीभूत होगा। मूर्ख व्यक्ति के मन के अनुसार काम कर दीजिये, वह वश में होगा। पण्डित को यथार्थ आचरण से किसी कार्य के लिये वाध्य किया जा सकता है। ऋषिगण अर्घ्य देने से वश में होते हैं। देवता, द्विज, सत्पुरुष लोग सद्भाव से सन्तुष्ट होते हैं। पण्डित सम्मान से तथा अन्य लोग खाना खिलाने-पिलाने से प्रसन्न होते हैं॥९-११॥

उत्तमं प्रणिपातेन शठं भेदेन योजयेत्। नीचं स्वल्पप्रदानेन समं तुल्यपराक्रमैः॥१२॥
यस्य यस्य हि यो भावस्तस्य तस्य हि तं वदन्।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत्॥१३॥
नदीनाञ्च नखिनाञ्च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव गन्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥१४॥
अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च। वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत्॥१५॥

उत्तम व्यक्ति को प्रणाम द्वारा तथा शठ व्यक्ति को उसके साथ शठता करके वाध्य किया जा सकता है। नीच बुद्धि किंचित् धन लेकर वशीभूत होता है। अपने से बराबरी वाले को तुल्य पराक्रम द्वारा वश में किया जा सकता है। जिसकी मन की भावना जैसी रहती है, उनसे तदनुरूप हित वाक्य कहकर पण्डितगण उसे शीघ्र वशीभूत करते हैं। नदी, नखी प्राणी तथा शृङ्ग वाले प्राणी, अस्त्रधारी, स्त्री तथा राजा पर कभी भरोसा न करे। बुद्धिमान मानव अर्थनाश, मनःस्ताप, गृहछिद्र, वञ्चना तथा अपमान कभी भी व्यक्त न करे॥१२-१५॥

दीनदुर्जनसंसर्गमत्यन्तविरहादरः। स्नेहोऽन्यगेहवासश्च नारीसच्छीलनाशनम्॥१६॥

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः।
केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तराः॥१७॥
कोऽर्थं प्राप्य न गर्वितो भुवि नरः कस्यापदो नागताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान्॥१८॥

दीन, दुर्जन संसर्ग, विरहकातरता, अत्यन्त स्नेह तथा अन्य गृह में निवास करने से नारी का शील नष्ट होता है। किसके कुल में दोष नहीं है? कौन व्याधि से पीड़ित नहीं है? कौन दुःखी नहीं होता? किसके पास सदा लक्ष्मी बनी रहती है? कौन धन पाकर गर्व नहीं करता? किस पर आपत्ति नहीं आई? स्त्री ने किसके मन को वश में नहीं किया और कौन राजा का प्रिय बन सका है? किसे काल ने ग्रसित नहीं किया? किस याचना करने वाले का गौरव बढ़ा? कौन दुर्जनों के षड्यन्त्र में नहीं फंसा? कौन सदा कुशलता से रहा है?॥१६-१८॥

सुहृत्स्वजनबन्धुर्न बुद्धिर्यस्य न चात्मनि।
यस्मिन् कर्मणि सिद्धेऽपि न दृश्येत फलोदयः।
विपत्तौ च महद्दुःखं तद् बुधः कथमाचरेत्॥१९॥
यस्मिन् देशे न सम्मानं न प्रीतिर्न च बान्धवाः।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥२०॥

बन्धु-बान्धव-स्वजन रहित मनुष्य जिसे अपनी भी बुद्धि का बल नहीं है, वह विपदाकाल में अत्यन्त दुःख भोगता है। जिसके कर्म की सिद्धि न होने के कारण कोई फल नहीं दिखलाई देता, वह विद्वान् होने पर भी महादुःख विपत्ति को कैसे झेल पायेगा? जिसका देश में कोई सम्मान नहीं है, जहां बन्धुजन प्रीति नहीं करते, जहां विद्या-शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकती, बुद्धिमान व्यक्ति वहां उस देश का त्याग करे॥१९-२०॥

धनस्य यस्य राजभ्यो भयं नास्ति न चौरतः।
मृतञ्च यन्न मुच्येत समर्जयस्व तद्धनम्॥२१॥
यदर्जितं प्राणहरैः परिश्रमैः मृतस्य तं वै विभजन्ति रिक्थिनः।
कृतञ्च यद् दुष्कृतमर्थलिप्सया तदेव दोषापहतस्य यौतुकम्॥२२॥
सञ्चितं निहितं द्रव्यं परामृश्यं मुहुर्मुहुः। आखोरिव कदर्य्यस्य धनं दुःखाय केवलम्॥२३॥
नग्ना व्यसनिनो रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः।
दर्शयन्तीह लोकस्य अदातुः फलमीदृशम्॥२४॥

जिस धन को चोर अथवा राजा हर नहीं सकते, जो धन मरने पर भी साथ नहीं छोड़ता, उस

प्रकार के धन को कमाओ। प्राण से भी अधिक श्रम करके वैसा धन एकत्र करो। जो धन जान देकर कमाया जाता है, मरणान्त में उत्तराधिकारी बांट लेते हैं। जो मूर्ख धन के लिये दुष्कर्म करता है, उसे यही इनाम मिलता है कि उसका चित्त ही मलिन-दूषित हो जाता है। दुष्कर्म से कमाये धन का लाभ पाप ही है अर्थात् बदले में वह धन केवल पाप ही देता है। जो मात्र धन जोड़ता रहता है, कभी खर्च नहीं करता, उसे उस धन से दुःख भोग ही मिलेगा। उसे कमाने वाला तनिक भी सुख नहीं पाता। वह सदा धन की रक्षा के क्लेश को ही भोगता रहता है। जैसे मूषिक अन्न संग्रह करता है, उसका भोग नहीं कर पाता, बल्कि उसकी रक्षा में सदा क्लेश ही मिलता है, तदनुरूप कंजूस व्यक्ति अपने धन के कारण नाना दुःखभोग करने के लिये विवश है। यदि कृपण के धन का हरण हो जाये, तब वह नग्न तथा व्यथित होकर माथे पर हाथ ठोंकता यही उदाहरण प्रस्तुत करता है कि जो धन व्यय किये बिना संचय में ही लगा है, उसकी ऐसी दुःखद दशा होगी॥२१-२४॥

शिक्षयन्ति च याचन्ति देहीति कृपणा जनाः। अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि॥२५॥

सञ्चितं क्रतुशतैर्न युज्यते याचितं गुणवते न दीयते।
तत् कदर्य्यपरिरक्षितं धनं चौरपार्थिवगृहे प्रयुज्यते॥२६॥
न देवेभ्यो न विप्रेभ्यो बन्धुभ्यो नैव चात्मनि।
कदर्य्यस्य धनं याति अग्नितस्करराजसु॥२७॥

वह कृपण पुनः 'दीजिये-दीजिये' कहता याचना करते हुये जगत् में यही उदाहरण प्रस्तुत करता है कि जो धन दान न करके संचय करते हैं, उनकी यही हालत होगी। अतः कोई भी ऐसी गलती न करे। धन संचय करने वाले कंजूस का धन यज्ञादि सत्कृत्य में व्यय नहीं होता। वह गुणी व्यक्ति द्वारा याचना किये जाने पर भी नहीं देता। अन्त में वह धन तस्कर किंवा राजा के हाथों में पड़ जाता है। वह धन कृपण देवपूजा में व्यय नहीं करता, विद्वान् ब्राह्मण को नहीं देता, मित्र-बन्धुओं का उपकार नहीं करता, यहां तक कि स्वयं भी नहीं भोगता। अन्ततः राजा, अग्नि अथवा तस्कर उसे ले जाते हैं॥२५-२७॥

अतिक्लेशेन येऽप्यर्था धर्मस्यातिक्रमेण च। अरेर्वा प्रणिपातेन माभूवंस्ते कदाचन॥२८॥

विद्याघातो ह्यनभ्यासः श्रीणां घातः कुचेलता।
व्याधानं भोजनाज्जीर्णं शत्रोर्घातः प्रपञ्चता॥२९॥
तस्करस्य वधो दण्डः कुमित्रस्याल्पभाषणम्।
पृथक्शय्या तु नारीणां ब्राह्मणस्यानिमन्त्रणम्॥३०॥

धनार्जन में अतिशय कष्ट उठाना पड़ता है। जिस धनोपार्जन से धर्म नष्ट हो अथवा शत्रु की कृपा से जो धन मिले, वह व्यर्थ है। शास्त्र चर्चा बिना विद्या नहीं रहती। स्त्रीगण की पोशाक गंदी तथा बेतरतीब होने पर उनकी शोभा नहीं रह जाती। भोजनान्त में यदि भोजन पचे तभी रोग नष्ट होगा। उद्दण्डता से शत्रु परास्त होता है। तस्कर पर प्रहार करे। कुमित्र से अत्यल्प बात करे। अपनी नारी की पृथक् शय्या रखना तथा ब्राह्मण को निमन्त्रण न देना उनके लिये मृत्युवत् है॥२८-३०॥

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः।
ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम्॥३१॥
जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे।
मित्रञ्चापदि काले च भार्य्याञ्च विभवक्षये॥३२॥
स्त्रीणां द्विगुण आहारः प्रज्ञा चैव चतुर्गुणा।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः॥३३॥
न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन स्त्रियं जयेत्। न चेन्धनैर्जयेद्वह्निं न मद्येन तृषां जयेत्॥३४॥
समांसैर्भोजनैः स्निग्धैर्मद्यैर्गन्धविलेपनैः।
वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते॥३५॥

दुर्जन, शिल्पी, दास, दुष्ट व्यक्ति, ढक्का वाद्य तथा स्त्री, ताड़न से ही ये नम्र होते हैं। ये सत्कार के भागी नहीं होते। किसी काम के लिये लगाये जाने पर भृत्य का स्वभाव पता चलता है। दुःख काल में बन्धुओं की परीक्षा होती है। आपत्ति में मित्र का स्वभाव पता चलता है। सम्पत्ति नाश होने पर पत्नी के भाव का ज्ञान होता है। स्त्री पुरुष से दूना भोजन करती है। उनकी बुद्धि चौगुनी होती है। उनमें काम वासना पुरुष से आठ गुनी अधिक होती है। निद्रा द्वारा निद्रा पर विजय नहीं मिलती। काम क्रीड़ा से स्त्री पर विजय नहीं होती। काठ द्वारा कोई अग्नि को नहीं जीत सकता। मद्य पीने से कोई तृष्णा को नहीं जीत सकेगा। मांसादि स्निग्ध आहार, कई तरह की मदिरा, मनोहर अच्छे वस्त्र तथा उत्तम माला से स्त्री में काम भाव प्रकट होता है॥३१-३५॥

ब्रह्मचर्य्येऽपि वक्तव्यं प्राप्तं मन्मथचेष्टितम्।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः॥३६॥
सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि शौनक॥३७॥
नद्यश्च नार्य्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्य्यः॥३८॥
नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम्।
नारीणाञ्च नदीनाञ्च स्वच्छन्दा ललिता गतिः॥३९॥

ब्रह्मचर्य स्थिति में पुरुष का कामभाव उभरता है। मनोहर व्यक्ति को देख कर स्त्रियों की योनि से स्राव होने लगता है। पिता प्रभृति गुरुजन, किसी भिक्षुक अथवा उत्तम पोशाक वाले धनी को देखकर स्त्रियों की कामभावना दीप्त हो उठती है। हे शौनक! मेरा यह वचन सत्य है। नदी तथा नारी का स्वभाव एक तरह का होता है। नदी (कूल) किनारे को गिरा देती है। नारी कुल को नष्ट कर देती है। दोनों की ही यह स्वच्छन्द तथा ललित गति है॥३६-३९॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना॥४०॥

अग्नि में चाहे कितनी ही लकड़ी छोड़ी जाय, अग्नि की तृप्ति नहीं होती, उसे और भी लकड़ी को भस्म करने की कामना बनी रहती है। समुद्र में चाहे जितनी नदियां गिरें, वह तृप्त नहीं होता। यम सभी प्राणियों का संहार करके भी तृप्त नहीं होते। नारियों की आकांक्षा अनेक पुरुषों के संभोग से भी तृप्त नहीं होती!॥४०॥

न तृप्तिरस्ति शिष्टानामिष्टानां प्रियवादिनाम्।
सुखानाञ्च सुतानाञ्च जीवितस्य वरस्य च॥४१॥
राजा न तृप्तो धनसञ्चयेन न सागरस्तृप्तिमगाज्जलेन।
न पण्डितस्तृप्यति भाषितेन तृप्तं न चक्षुर्नृपदर्शनेन॥४२॥
स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥४३॥

शिष्ट पुरुष से बातें करके कोई भी वितृष्ण नहीं होता, साधु व्यक्ति से जितनी भी बात करिये, बात करने की इच्छा बलवती होती जाती है। वांछित सुख से किसी की तृप्ति नहीं होती। प्रिय वाणी वाले पुत्र से कोई तृप्त नहीं होता। अपने जीवन से किसी की तृप्ति नहीं होती (वह और भी जीते रहना चाहता है)। राजा धन से, महासमुद्र जल से, पण्डित विद्वान् सत्कथा से, नेत्र नृप दर्शन से कभी तृप्त नहीं होते। अपने धर्म-कर्म के प्रति तत्पर, शास्त्र में तथा केवल अपनी पत्नी में रत, इन्द्रियजित-अतिथिप्रिय लोग ही श्रेष्ठतम मनुष्य होते हैं। वे गृही रहकर भी मोक्ष पाते हैं॥४१-४३॥

मनोऽनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः स्वलङ्कृताः।
वासः प्रासादपृष्ठेषु स्वर्गः स्याच्छुभकर्मणः॥४४॥
न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया। न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः॥४५॥

सत्कर्म करने वाले व्यक्ति अनुकूला मनोहर अलंकारों से सजी पत्नी को पाकर अट्टालिका में रहते स्वर्गसुख भोगते हैं। स्त्रियां सर्वदा विषम बुद्धि होती हैं। उनको कोई भी दान-सम्मान से सन्तुष्ट नहीं कर पाता। उनको सरल व्यवहार तथा सेवा से भी वशीभूत नहीं कर सकते। अस्त्र से डराकर तथा शास्त्रोपदेश से भी उन पर नियन्त्रण नहीं हो पाता॥४४-४५॥

शनैर्विद्या शनैरर्थाः शनैः पर्वतमारुहेत्। शनैः कामञ्च धर्मञ्च पञ्चैतानि शनैः शनैः॥४६॥
शाश्वतं देवपूजादि विप्रदानञ्च शाश्वतम्। शाश्वतं सगुणां विद्या सुहृन्मित्रञ्च शाश्वतम्॥४७॥
ये बालभावान्न पठन्ति विद्यां ये यौवनस्था ह्यधनात्मदाराः।
ते शोचनीया इह जीवलोके मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥४८॥
पठने भोजने चित्तं न कुर्य्याच्छास्त्रसेवकः। सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद्गरुडवेगवान्॥४९॥

ये बालभावे न पठन्ति विद्यां कामातुरा यौवननष्टवित्ताः।
ते वृद्धकाले परिभूयमानाः संदह्यमानाः शिशिरे यथाब्जम्॥५०॥

विद्या तथा अर्थ क्रमशः प्राप्त होते हैं। पर्वत पर व्यक्ति क्रमशः चढ़ पाता है। क्रमशः कामना पूर्ण हो पाती है। धर्म भी क्रमशः अर्जित हो पाता है। ये पांचों काम क्रम से सम्पन्न होते हैं। देवपूजनादि आराधना अक्षय पुण्यप्रदा है। ब्राह्मण को धन दान का अनन्त फल होता है। गुणयुक्त विद्या तथा गुणी सुहृद लोग अक्षय सुखदाता होते हैं। जो बाल्यावस्था में विद्या नहीं पढ़ सके, वे मृत्युलोक में विचरते पशु हैं। जो विद्यार्थी भोजन-धन की कामना नहीं करते, तथापि विद्याभ्यास के लिये गरुड़ के वेग से सुदूर चले जाते हैं, वे ही प्रशंसनीय हैं। जिन्होंने बाल्यकाल में विद्या नहीं पढ़ी तथा यौवन में कामविकार से चित्त को कलुषित कर दिया, वे वृद्ध होने पर शिशिर के कमल के समान शीर्ण हो जाते हैं॥४६-५०॥

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥५१॥

धर्म के सम्बन्ध में सदा सबकी प्रवृत्ति तर्कयुक्त रही है। इस सम्बन्ध में बहुत सी श्रुति हैं, जिनमें मतविभिन्नता है। ऋषियों में भी मत विभिन्नता है। धर्म का तत्व गुह्य है। गुहानिहित है। अतः महाजनगण जिस पथ पर चलते हैं, उसी पथ पर चलना श्रेयस्कर है॥५१॥

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन तु। नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥५२॥

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः।
उदीरितार्थः पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति देशितम्॥५३॥
अर्थाद्भ्रष्टस्तीर्थयात्रां तु गच्छेत्सत्याद् भ्रष्टो रौरवं वै व्रजेच्च।
योगाद्भ्रष्टः सत्यधृतिञ्च गच्छेद् राज्याद्भ्रष्टो मृगयायां व्रजेच्च॥५४॥

।।इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे नवाधिकशततमोऽध्यायः।।१०९।।
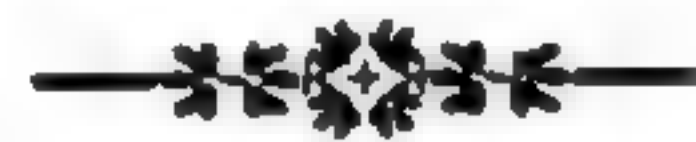
आकार, संकेत, जाना, प्रयत्न, वाक्य तथा मुख और नेत्र की भंगिमा को लक्ष्य करके उस व्यक्ति के मन के भाव का ज्ञान होता है। मन के भाव को यदि कोई वाणी से न भी कहे, तथापि धीमान् लोग आकार तथा विभिन्न संकेत का विचार करके मनोगत भाव जान लेते हैं। अन्य के इंगित को जान लेना बुद्धि का विषय है। बुद्धि की यह क्षमता है कि उससे उन विषयों को भी जान लिया जाता है, जिसे वाणी द्वारा नहीं कहा गया। जो सर्वत्र व्यक्त है, उसे तो पशु भी जान लेता है। हाथी तथा घोड़े मालिक के संकेत को समझ कर काम करते हैं। धनरहित तीर्थ जाकर भी जीविका प्राप्त करता है। उसे संसार में कहीं सुख नहीं है। सत्य से च्युत मानव रौरव नरक में जाता है। योगभ्रष्ट लोग सत्य तथा धैर्यवान् रहते हैं। राजभ्रष्ट राजा शिकार हेतु वन में जाता है॥५२-५४॥

॥एक सौ नौवां अध्याय समाप्त॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च॥१॥

वाग्यन्त्रहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं यथा कापुरुषस्य हस्ते।

न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः॥२॥

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराः स्त्रियः।

विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्॥३॥

सूतजी ने कहा—जो अपने निश्चित उपाय का त्याग करके अनिश्चित के पीछे भागता है, उसके निश्चित उपाय का नाश हो जाता है। अनिश्चित तो नष्ट है ही। कापुरुष के पास का हथियार उसके किसी काम में नहीं आता, उसी प्रकार तेजस्विता बिना विद्या का कोई फल नहीं मिलता। अत्यन्त रूप-लावण्ययुता नारी अन्धों को कैसे अपने रूप से लुब्ध कर सकेगी? उत्तम भोजन, भोजनशक्ति, रतिशक्ति, श्रेष्ठ नारी, अतुलित ऐश्वर्य-सम्पत्ति, दानशक्ति सामान्य तप से प्राप्त नहीं होती॥१-३॥

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तिफलं शुभम्। रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम्॥४॥

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्। सुरूपां सुनितम्बाञ्च नाकुलीनां कदाचन॥५॥

वेदों के अध्ययन को अधिकार होना ही यज्ञरूपी फल है। सच्चरित्रता का फल है शास्त्र ज्ञान, स्त्री लाने का फल है रति संभोग सुख तथा पुत्रलाभ। धनलाभ का फल है दान एवं भोग। बुद्धिमान व्यक्ति सत्कुल की कन्या से विवाह करे, भले ही वह कुरूप क्यों न हो। यदि उत्तम कुल में जन्मा वर कुरूप भले हो, तथापि उत्तम कुलोत्पन्न को ही कन्या प्रदान करे। असत् कुल में उत्पन्न कन्या रूपवती क्यों न हो, उसे कदापि ग्रहण न करे॥४-५॥

अर्थेनापि हि किं तेन यस्यानर्थे तु सङ्गतिः।

को हि नाम शिखाजतं पन्नगस्य मणिं हरेत्॥६॥

हविर्दुष्टकुलाद्ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।

अमेध्यात्काञ्चनं ग्राह्यं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥७॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्। नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥८॥

न राज्ञा सह मित्रत्वं न सर्पो निर्विषः क्वचित्।

न कुलं निर्मलं तत्र स्त्रीजनो यत्र जायते॥९॥

कुले नियोजयेद्भक्तं पुत्रं विद्यासु योजयेत्।

व्यसने योजयेच्छत्रुमिष्टं धर्मे नियोजयेत्॥१०॥

स्थानेष्वेव प्रयोक्तव्या भृत्याश्चाभरणानि च।
न हि चूडामणिः पादे शोभते वै कदाचन॥११॥

जिसका धन लेने पर अनर्थ हो, उसका धन कदापि न चाहे। कौन व्यक्ति काले नाग के शिर की मणि लेना चाहेगा? देवकुल से हविः ग्रहण करे, बालक के मधुर वाक्यों को सुने, विष से भी अमृत ग्रहण करे, अपवित्र स्थान पर पड़ा स्वर्ण उठाये, नीच जाति से भी उत्तम विद्या ग्रहण करे, दुष्कुल होने पर भी स्त्री रत्न ग्रहण करे। कभी राजा से दोस्ती न करे। कभी सर्प विषहीन नहीं होता। कभी भी कोई कुल निष्कलंक नहीं होता, क्योंकि कुल में ही स्त्री का जन्म होता है। भक्त को कुल से युक्त करे। पुत्र को विद्याभ्यास में लगाये। शत्रु को दुःखप्रद कार्य में लगाये। अपनी इष्ट वस्तु को धर्मार्जन में लगाये। भृत्य का तथा आभूषण का प्रयोग यथास्थान करे। कभी भी पैर में चूड़ामणि न पहने। भृत्य कभी स्वयं को स्वामी न माने। चूड़ामणि कभी भी पैर में शोभित नहीं होती॥६-११॥

चूडामणिः समुद्रोऽग्निर्घण्टा चाखण्डमम्बरम्।
अथवा पृथिवीपालो मूर्ध्नि पादे प्रमादतः॥१२॥
कुसुमस्तबकस्येव द्वे गती तु मनस्विनः। मूर्ध्नि वा सर्वलोकानां शीर्षतः पतितो वने॥१३॥
कर्णभूषणसंग्रहोचितो यदि मणिस्तु पदे प्रतिबध्यते।
किं मणिर्न हि शोभते ततो भवति योजयितुर्वचनीयता॥१४॥
वाजिवारणलौहानां काष्ठपाषाणवाससाम्। नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम्॥१५॥
कदर्थितस्यापि हि धैर्य्यवृत्तेर्न शक्यते सर्वगुणप्रमाथः।
अधः खलेनापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव॥१६॥

चूड़ामणि, इन्द्रधनुष, आकाश, समुद्र, अग्नि, राजा का कभी भी पैर से स्पर्श न करे। पुष्प कुसुम के गुच्छा और मनस्वी लोगों की दो ही गति कही गयी है। ये मस्तक पर रहते हैं अथवा वन में जाते हैं। जिस मणि को स्वर्ण में जड़ कर नाभि से ऊपर के अंगों में धारण करना उचित है, यदि कोई उसे निकृष्ट सीसा धातु में जड़कर पहने, तब वह मणि न तो रोती है, न शोभा देती है, अपितु ऐसे व्यक्ति की लोग संसार में निन्दा करते हैं। हाथी, घोड़े, लौह, काठ, पत्थर, वस्त्र, स्त्री, पुरुष एवं जल का पारस्परिक महान् अन्तर है। जो धैर्यवान् तथा साधु है, वह अपमानित होने पर भी अपने गुणों को नहीं बदलता। अग्नि को कितना नीचे क्यों न स्थापित करे, उसकी ज्वाला ऊपर ही उठेगी। नीचे की ओर कभी नहीं जायेगी॥१२-१६॥

न सदश्वः कशाघातं सिंहो न गजगर्जितम्। वीरो वा परनिर्दिष्टं न सहेद्धीमनिःस्वनम्॥१७॥
यदि विभवविहीनः प्रच्युतो वाशु दैवान्नतु खलजनसेवां काङ्क्षयेन्नैव नीचम्।
न तृणमदनकार्य्ये सुक्षुधार्त्तोऽत्ति सिंहः पिबति रुधिरमुष्णं प्रायशः कुञ्जराणाम्॥१८॥
सकृद्दुष्टञ्च यो मित्रं पुनः सन्धातुमिच्छति।
स मृत्युमेव गृह्णीयाद् गर्भमश्वतरी यथा॥१९॥

उत्तम अश्व चाबुक का आघात नहीं सहता, सिंह हाथी का गर्जन सहन नहीं करता। वीर पुरुष अन्य का भीम नाद नहीं सुन पाता। उच्चाशयव्यक्ति यदि दैवात् धन-ऐश्वर्यरहित भी हो जाये, तथापि वह दुष्ट सेवा, नीच सेवा नहीं करेगा। उनसे याचना भी नहीं करेगा। सिंह चाहे कितना भूखा क्यों न हो, वह कदापि तृण भोजन नहीं करेगा। वह तो हाथी के रुधिर का ही पान करेगा। यदि किसी मित्र से एक बार भी शत्रुता हो जाये, बाद में कभी भी उसे मित्ररूप में न माने। वह मित्र साक्षात् मृत्यु स्वरूप है। जैसे खच्चरी गर्भ धारण करते ही मर जाती है, इसे भी वैसा जाने अर्थात् उससे मित्रता जीवननाशक होगी॥१७-१९॥

शत्रोरपत्यानि प्रियंवदानि नोपेक्षितव्यानि बुधैर्मनुष्यैः।
तान्येव कालेषु विपत्कराणि क्ष्विस्य पात्राणि हि दारुणानि॥२०॥
उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत्। पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम्॥२१॥

इस तरह दुष्ट मित्र को पुनः स्वीकार करके मित्रता करना मृत्युवत् होता है। यदि शत्रु के पुत्र प्रिय मधुर वाक्य भी बोलें, तब भी उनका त्याग करे। कभी शत्रु का भरोसा न करे। वे मौका देख कर विपदा उत्पन्न करेंगे। विष का बर्त्तन भी अनिष्ट करता है। तदवत् शत्रु के पुत्रादि भी अनिष्ट करते हैं। शत्रु को उपकार से वश में करे। उसके द्वारा अन्य शत्रु का नाश कराये। पैर के कांटे को निकालने में अन्य कांटे से खोद कर उस पहले वाले कंटक को निकालते हैं, उसी के अनुसार एक शत्रु द्वारा अन्य शत्रु का उच्छेद कराये॥२०-२१॥

अपकारपरे नित्यं चिन्तयेन्न कदाचन। स्वयमेव पतिष्यन्ति कूलजाता इव द्रुमाः॥२२॥
अनर्था ह्यर्थरूपाश्च अर्थाश्चानर्थरूपिणः। भवन्ति ते विनाशाय दैवायत्तस्य वै सदा॥२३॥
कार्य्यकालोचिताऽपापा मतिः सञ्जायते हि वै।
सानुकूलेषु दैवेषु पुंसः सर्वत्र जायते॥२४॥
धनप्रयोगकार्य्येषु तथा विद्यागमेषु च। आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सदैव हि॥२५॥
धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संस्थितिम्॥२६॥

जो अन्य का अपकार करता है, उसके विनाशार्थ कोई दूसरा उपाय काम में नहीं लाना पड़ता। वह अपकारी स्वयं नष्ट होगा, जैसे नदी के किनारे उगा वृक्ष स्वयं भूपतित हो जाता है। जब भाग्य दोष होता है, तब इस दैव दुर्विपाक के कारण अहित में हित का तथा हित में अहित का भान होने लगता है। ऐसे भान तथा कार्य से कर्त्ता का विनाश हो जाता है। अनुकूल दैव होने पर तब अहितकारी बुद्धि नष्ट हो जाती है। उस समय अनुकूल भाग्य (दैव) होने के कारण सद्बुद्धि उदित होती है। धन के उपयोग काल में, विद्या हेतु जाते समय, आहार के समय तथा व्यवहार में सदा व्यर्थ लज्जा छोड़ कर ही अग्रसर होना चाहिये। जिस देश में धनवान, ब्राह्मण, राजा, नदी तथा वैद्य न हों, वहां रहना ही नहीं चाहिये॥२२-२६॥

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं दानशीलता।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत्॥२७॥
कालविच्छ्रोत्रियो राजा नदी साधुश्च पञ्चमः।
एते यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत्॥२८॥
नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य किल शौनक।
सर्वः सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कुत्रचित्॥२९॥
न सर्ववित्कश्चिदिहास्ति लोके नात्यन्तमूर्खो भुवि चापि कश्चित्।
ज्ञानेन नीचोत्तममध्यमेन यो यं विजानाति स तेन विद्वान्॥३०॥

॥इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११०॥

जिस देश में सामाजिक व्यवस्था न हो (लोक यात्रा न हो), वहां के निवासियों में लज्जा, भय, दया एवं दानशक्ति नहीं होती। वहां एक दिन भी न रहे। जहां दैवज्ञ, ब्राह्मण, राजा, नदी तथा साधु जन न हो, वहां निवास न करे। हे शौनक! कभी भी एक व्यक्ति में समस्त ज्ञान नहीं होता। सभी व्यक्ति सब कुछ नहीं जान सकते। जगत् में सब कुछ जानने वाला कोई नहीं है। ऐसा भी कोई नहीं है, जो कुछ भी न जानता हो। किसी में अधिक ज्ञान है, तो कोई अल्प ज्ञानी है। जो व्यक्ति जो कुछ जानता है, उसे उसी ज्ञान में तथा उस मात्रा में ज्ञानी कहते हैं॥२७-३०॥

॥एक सौ दसवां अध्याय समाप्त॥
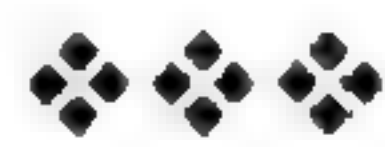
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

पार्थिवस्य तु वक्ष्यामि भृत्यानाञ्चैव लक्षणम्।
सर्वाणि हि महीपालः सम्यङ्नित्यं परीक्षयेत्॥१॥
राज्यं पालयते नित्यं सत्यधर्मपरायणः। निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्॥२॥
पुष्पात्पुष्पं विचिन्वीयान्मूलच्छेदं न कारयेत्। मालाकार इवारण्ये न यथाङ्गारकारकः॥३॥
दोग्धारः क्षीरभुञ्जाना विकृतं तन्न भुञ्जते। परराष्ट्रं महीपालैर्भोक्तव्यं न च दूषयेत्॥४॥

नोधश्छिन्द्यात्तु यो धेन्वाः क्षीरार्थी लभते पयः।
एवं राष्ट्रं प्रयोगेण पीड्यमानं न वर्जयेत्॥५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत्। पालकस्य भवेद्भूमिः कीर्त्तिरायुर्यशो बलम्॥६॥

सूतजी ने कहा—अब राजा एवं भृत्य का लक्षण सुनें। राजा को सदैव चाहिये कि सभी भृत्यों के लक्षण की परीक्षा करते रहें। सत्य-धर्मपरायण राजा सदैव राज्य का शासन तथा पालन करें। वे परसैन्य को जीत कर धर्मपूर्वक पृथिवी का पालन करें। जैसे माली वन में जाकर फूले हुये वृक्षों का पुष्प एकत्र करता है, परन्तु उन वृक्षों को जड़ से नहीं काटता, राजा उसी प्रकार प्रजाजन से इतना ही कर ग्रहण करे, जिससे प्रजाजन का अहित न हो। जैसे आग जलाने हेतु व्यक्ति सम्पूर्ण वृक्ष को काट देता है, राजा को चाहिये कि वह उस प्रकार प्रजा का सर्वस्व नष्ट न करे। उतना कर न वसूले। जिस प्रकार से गौ दुहने वाला दुग्धपान तो करता है, तथापि गाय के स्तन को विकृत नहीं करता। राजा भी केवल इस प्रकार से राजभोग करे, प्रजा पर अत्याचार न करे। वह सर्व प्रयत्न से प्रजापालन करे (शोषण न करे)। पालक राजा को भूमि, कीर्त्ति, आयु तथा बल प्राप्त होता है॥१-६॥

अभ्यर्च्य विष्णुं धर्मात्मा गोब्राह्मणहिते रतः।
प्रजाः पालयितुं शक्तः पार्थिवो विजितेन्द्रियः॥७॥
ऐश्वर्य्यमध्रुवं प्राप्य राजा धर्मे मतिश्चरेत्। क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायत्तं धनादिकम्॥८॥
सत्यं मनोरमाः कामाः सत्यं रम्या विभूतयः।
किन्तु वै वनितापाङ्गभङ्गीलोलं हि जीवितम्॥९॥
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा अपि तर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्रे।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोको न चात्महितमाचरतीह कश्चित्॥१०॥

वह धर्मात्मा गौ, ब्राह्मण के हित में रत रहे। विष्णु की अर्चना करे। वह प्रजापालन करे तथा सदा इन्द्रियों पर विजयी होकर रहे। राजा अस्थायी ऐश्वर्य पाकर भी धर्म में मति रखे। विभव तो क्षण में नाशवान है। धन तथा सांसारिक वस्तु अपनी नहीं है। मनोरम काम सत्यरूप है। रम्य राजवैभव भी सत्य है। लेकिन यह जीवन वनिता के अंगों की चंचल भंगिमा के कारण अत्यन्त चंचल हो जाता है। जीवगण के शरीर में जरा एक भयानक बाघिन की तरह सदा विद्यमान रहती है। रोग भी शत्रु जैसे शरीर पर प्रभाव डालते रहते हैं। जैसे टूटे घट से जल रिसता रहता है, तद्रूप आयु भी सदा क्षरित (कम) होती रहती है। लेकिन लोग इस सम्बन्ध में आंख बन्द किये रहते हैं। अपने हित का विचार ही नहीं करते॥७-१०॥

निःशंकं किं मनुष्याः कुरुत परहिते युक्तमग्रे हितं य
न्मोदध्वं कामिनीभिर्मदनशरहता मन्दमन्दातिदृष्ट्या।
मा पापं संकुरुध्वं द्विजहरिपरमाः संभजध्वं सदैव
आयुर्निःशेषमेति स्खलति जलघटीभूतमृत्युच्छलेन॥११॥

हे मनुष्य! तुम निःशंक क्यों हो? आगे के लिये क्या सोचा है? तुम क्यों मदनबाण से आहत

होकर मन्द-मन्द हास्य वाली निगाहों से कामिनीगण के प्रति उन्मुख हो? अब तो पाप मत करो। द्विजों तथा श्रीहरि की अर्चना करो। तुम्हारी आयु क्रमशः कम होती जा रही है। घटीयन्त्ररूपी मृत्यु पास आती जा रही है॥११॥

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥१२॥

एतदर्थं हि विप्रेन्द्रा राज्यमिच्छन्ति भूभृतः। यदेषां सर्वकार्य्येषु वचो न प्रतिहन्यते॥१३॥

एतदर्थं हि कुर्वन्ति राजानो धनसञ्चयम्।
रक्षयित्वा तु चात्मानं यद्धनं तद्द्विजातये॥१४॥
ओंकारशब्दो विप्राणां येन राष्ट्रं प्रवर्द्धते।
स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिश्च न बध्यते॥१५॥

असमर्थाश्च कुर्वन्ति मुनयो द्रव्यसञ्चयम्। किं पुनस्तु महीपालः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः॥१६॥

पराई नारी को मां के समान तथा पराये द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान समझो। जो सभी प्राणीगण को आत्मवत् देखता है, वही पण्डित है। कभी भी राजाओं के वाक्य से प्रतिहत मत होना। इसीलिये राजा राज्य की कामना करते हैं। हे विप्रेन्द्रगण! राजा धन द्वारा अपनी रक्षा करते हैं तथा शेष धन ब्राह्मण को प्रदान करते हैं। राजा लोग आत्मरक्षार्थ तथा ब्राह्मणों के भरण-पोषण के लिये धन एकत्र करते हैं। ब्राह्मणों को ओंकार का उच्चारण करना चाहिये। इससे राज्य की वृद्धि होती है। यह विप्रों का शब्द है। राजा भी इसी ओंकार के द्वारा ब्राह्मण राजा के राज्य को पुष्ट एवं वर्द्धित करते हैं और राजागण भी इस ओंकार के योग से बढ़ते हैं। इसके कारण वे व्याधिग्रस्त भी नहीं होते। मुनिगण द्रव्य संचय में असमर्थ होते हैं, तभी वे भी धन जुटाये रहते हैं। राजा सदा प्रजा का पुत्र की तरह पालन करे॥१२-१६॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमान्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः॥१७॥
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।
ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ति अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥१८॥
अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति॥१९॥

जिसके पास धन है, उसी के पास मित्र तथा बन्धु होते हैं। जिसके पास धन है, वही लोक में पुरुष कहा गया है। जिसके पास धन है, वही विद्वान् है। धनहीन को पुत्र, स्त्री, बन्धु, बान्धव छोड़ देते हैं। जब वह पुनः धनसंचय कर लेता है, तब उसके अनेक बन्धु-बान्धव हो जाते हैं। धन ही पुरुष का बन्धु है। पुत्र-स्त्री आदि कोई भी बन्धु नहीं है। शास्त्रज्ञान रहित राजा तो अन्धे जैसा है। अन्धा तो कुछ न कुछ आभास द्वारा जान लेता है, लेकिन शास्त्रहीन तो कुछ भी नहीं देख पाता॥१७-१९॥

यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताः।
इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि॥२०॥

येनार्जितास्त्रयोऽप्येते पुत्रा भृत्याश्च बान्धवाः।
जिता तेन समं भूपैश्चतुरब्धिर्वसुन्धरा॥२१॥

जिस राजा के पुत्र, भृत्य, मन्त्री तथा पुरोहित प्रसुप्त (लापरवाह) होते हैं, जिसमें इन्द्रिय संयम नहीं है, उस राजा का राज्य अधिक समय नहीं टिकता। जिस राजा के वश में उसके पुत्र, भृत्य, मित्र हैं, वह ससागरा समस्त धरती जीत लेता है॥२०-२१॥

लङ्घयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च।
स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च॥२२॥
मनस्तापं न कुर्वीत आपदं प्राप्य पार्थिवः।
समबुद्धिः प्रसन्नात्मा सुखदुःखे समो भवेत्॥२३॥

जो राजा शास्त्रोक्त युक्तियुक्त मत का उल्लंघन करता है, वह इहलोक तथा परलोक, दोनों में नष्ट हो जाता है। यदि राजा पर कोई विपदा आ जाये, तब वह अफसोस न करे। वह सुख तथा दुःख में सम रहे। यही राजा का रूप है॥२२-२३॥

धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः।
प्रविश्य वदनं राहोः किं नोदेति पुनः शशी॥२४॥
धिग्धिक्शरीरसुखलालितमानवेषु मा खेदयेद्धनकृशं हि शरीरमेव।
सद्दारका ह्यधनपाण्डुसुताः श्रुता हि दुःखं विहाय पुनरेव सुखं प्रपन्नाः॥२५॥

विद्वान् लोग क्लेश आने पर विषाद नहीं करते। राहु के मुख में प्रवेश करने वाला चन्द्रमा क्या पुनः उदित नहीं होता? जो सुखार्थ सदा शरीर का ही लालन-पालन करते रहते हैं, उनको धिक्कार है। किसी कारण से भले देह दुर्बल हो जाये, उसका दुःख नहीं करे। यह सभी जानते हैं कि पाण्डव लोग सपरिवार विपत्ति में पड़े थे, तथापि उन्होंने पुनः सम्पदालाभ कर लिया। वे पुनः सुखी हो गये थे॥२४-२५॥

गन्धर्वविद्यामालोक्य वाद्यं च गणिकागणाः।
धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रक्षेच्च भूपतिः॥२६॥
कारणेन विना भृत्ये यस्तु कुप्यति पार्थिवः।
स गृह्णाति विषोन्मादं कृष्णसर्पविसर्जितम्॥२७॥
चापलाद्वारयेद्दृष्टिं मिथ्यावाक्यञ्च वारयेत्। मानवे श्रोत्रिये चैव भृत्यवर्गे सदैव हि॥२८॥
लीलां करोति यो राजा भृत्यस्वजनगर्वितः। शासने सर्वदा क्षिप्रं रिपुभिः परिभूयते॥२९॥
हुंकारं भृकुटीं नैव सदा कुर्वीत पार्थिवः।
विना दोषेण यो भृत्यान्राजाऽधर्मेण शास्ति च।
लीलासुखानि भोग्यानि त्यजेदिह महीपतिः॥३०॥
सुखप्रवृत्तैः साध्यन्ते शत्रवो विग्रहे स्थितैः॥३१॥

उद्योगः साहसं धैर्य्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षड्विधे यस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शङ्कते॥३२॥
उद्योगेन कृते कार्य्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते। दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्त्तव्यं पौरुषं सदा॥३३॥

॥इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥१११॥

राजा गन्धर्वविद्या से गणिका वर्ग की तथा धनुर्वेद एवं अर्थशास्त्र के ज्ञान से प्रजा का रक्षण करें। भृत्यों पर बिना वजह क्रोध करने वाला राजा स्वयं पर विष आदि का प्रयोग होने के कारण विपत्ति ग्रस्त हो जाता है। राजा कदापि चपलता न करे। झूठ न बोले। वह प्रजा, ब्राह्मण तथा भृत्यों पर सदैव प्रसन्न रहे। ऐसा राजा जो भृत्यों और स्वजनों के कारण गर्व में भर कर सदा आमोद-प्रमोद में लगा रहता है, उसे उसकी असावधानी के कारण शीघ्र ही शत्रु से पराजय प्राप्त होती है। राजा सदा घमण्ड में हुंकार न भरे। क्रोध में सदा भ्रुकुटी वक्र न किये रहे। वे राजधर्म द्वारा भृत्यों का पालन करें। वह स्त्री सुख रूपी लीला सुख भोग में न पड़ा रहे। ऐसे सुख में मुग्ध हो गये राजा को शत्रु परास्त कर देते हैं। जो उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, पराक्रमरूपी छः गुणों तथा तत्संबंधित कार्य से युक्त हैं, देवता भी उससे मन ही मन डरते हैं। यदि दैवात् उद्योग से भी कार्यसिद्धि न मिले, तब वह इसे भाग्यदोष माने, तथापि तब भी पुरुषार्थ में लगा रहे। यही कर्त्तव्य है॥२६-३३॥

॥एक सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

भृत्या बहुविधा ज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः। नियोक्तव्या यथार्हेषु त्रिविधेष्वेव कर्मसु॥१॥
भृत्ये परीक्षणं वक्ष्ये यस्य यस्य हि ये गुणाः।
तमिमं संप्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च॥२॥
यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिर्भृतकं परीक्षयेद् व्रतेन शीलेन कुलेन कर्मणा॥३॥

सूतजी ने कहा—उत्तम-मध्यम-अधम प्रकार भेद से भृत्य लोग तरह-तरह के होते हैं। जो भृत्य जिस काम लायक हो, उसे वही काम देना उचित है। भृत्य को काम पर लगाते समय उसे अच्छी तरह

जांच लेना चाहिये। जिस प्रकार के भृत्य में जिस प्रकार का गुण हो, वह कह रहा हूं। जैसे घिस कर, काट कर, तपा कर तथा हथौड़ी के आघात आदि द्वारा स्वर्ण की परीक्षा होती है, तदनुरूप कुल, शील, व्रत तथा कर्म इन चार प्रकार से भृत्य की परीक्षा करे॥१-३॥

कुलशीलगुणोपेतः सत्यधर्मपरायणः। रूपवान्सुप्रसन्नश्च कोषाध्यक्षो विधीयते॥४॥
मूल्यरूपपरीक्षाकृद्भवेद्रत्नपरीक्षकः। बलाबलपरिज्ञाता सेनाध्यक्षो विधीयते॥५॥
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः। अप्रमादी प्रमाथी च प्रतीहारः स उच्यते॥६॥
मेधावी वाक्पटुः प्राज्ञः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
सर्वशास्त्रसमालोकी ह्येष साधुः स लेखकः॥७॥
बुद्धिमान्मतिमांश्चैव परचित्तोपलक्षकः। क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते॥८॥
समस्तस्मृतिशास्त्रज्ञः पण्डितोऽथ जितेन्द्रियः।
शौर्य्यवीर्य्यगुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते॥९॥

उत्तम कुल वाला, सत्स्वभाव युक्त, गुणी, सत्य बोलने वाला, धार्मिक, स्वरूपवान्, प्रसन्न, ऐसे भृत्य को राजा कोषाध्यक्ष बनाये। जो सभी द्रव्य के मूल्य परीक्षण में योग्य तथा रत्नपारखी हो, उसे कोषाध्यक्ष बनाये। बलाबल के ज्ञाता को सेनाध्यक्ष बनाये। प्रिय दर्शन, बली तथा संकेत से ही बात समझ जाये, जो अप्रमादी तथा युद्धविद्या तत्वज्ञ एवं सतत् सजग रहे, उसे प्रतिहारी बनाये (द्वारपाल बनाये)। जो बुद्धिमान्, मतिमान, दूसरे के मन की बात भांपने वाला, अच्छा बोलने वाला हो, उसे दूत बनाये। जो मेधावी, वाक्पटु, प्राज्ञ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय तथा सभी शास्त्रों को पढ़ने वाला हो, उसे लेखक बनाये। जो सभी स्मृतियों तथा शास्त्रों को जानने वाला, विद्वान्, जितेन्द्रिय, शौर्यता-वीरता गुण वाला हो, उसे राजा अपने यहां धर्माध्यक्ष बनाये॥४-९॥

पितृपैतामहो दक्षः शास्त्रज्ञः सत्यवाचकः। शुचिश्च कठिनश्चैव सूपकारः स उच्यते॥१०॥
आयुर्वेदकृताभ्यासः सर्वेषां प्रियदर्शनः। आयुःशीलगुणोपेतो वैद्य एष विधीयते॥११॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जपहोमपरायणः। आशीर्वादपरो नित्यमेष राजपुरोहितः॥१२॥
लेखकः पाठकश्चैव गणकः प्रतिबोधकः। आलस्ययुक्तश्चेद्राजा कर्मणो वर्जयेत्सदा॥१३॥

जो राजा के पिता-पितामहादि पूर्व पीढ़ी के इतिहास को जानने वाला, शास्त्रज्ञ (पाकशास्त्रज्ञ), सत्यवादी, पवित्र, सदाचारी है, उसे पाचक कार्य (रसोईयां) के कार्य के लिये उपयुक्त व्यक्ति समझना चाहिये। जिसने आयुर्वेद का अभ्यास किया है, प्रियदर्शन है, आयु, शील तथा वैद्यक गुण वाला है, वही राजवैद्य हो। वेद-वेदाङ्ग ज्ञाता, जप-होम-परायण-आशीर्वाद देने वाला (अर्थात् आशीर्वाद शक्तियुक्त) व्यक्ति पुरोहित होने योग्य है। जो कोई लेखक, पाठक, गणक, प्रतिबोधक कर्मचारी अपने कर्म में तथा कर्तव्य पालन में आलस्य दिखाये, उसे राजा कार्य से हटा दे॥१०-१३॥

द्विजिह्वमुद्वेगकरं क्रूरमेकान्तदारुणम्। खलस्याहेश्च वदनमपकाराय केवलम्॥१४॥
दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥१५॥

अकारणाविष्कृतकोपधारिणः खलाद्भय कस्य न नाम जायते।
विषं महाहेर्विषमस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निपतेत्सदा मुखे॥१६॥
तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम्।
अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो हन्यात्स न हन्यते॥१७॥
शूरत्वयुक्ता मृदुमन्दवाक्या जितेन्द्रियाः सत्यपराक्रमाश्च।
प्रागेव पश्चाद्विपरीतरूपा ये ते तु भृत्या न हिता भवन्ति॥१८॥

दुष्ट का मुख सर्प के दो जिह्वा वाले मुख की तरह उद्वेगकारी, क्रूर तथा दारुण होता है। दूसरे का अपकार (बुरा) करना ही खल-दुष्ट का काम है। वे अन्य कार्य नहीं करते। यद्यपि विद्या से अलंकृत व्यक्ति दुर्जन है, उसे दूर से त्यागे। मणि से भूषित होने पर भी सर्प कितना भयानक होता है! दुष्ट-खल अकारण क्रोध करते रहते हैं। उनसे किसका फायदा हो सकेगा? उनके मुख से जो वाणी निकलती है, वह काले सर्प की ही तरह दुःसह होती है। राजा ऐसे भृत्यों का नाश करे, जो उसके बराबर धनी, समान सामर्थ्यवान्, मर्मज्ञ, राजा का राज्य हड़पने के उत्सुक हों। इससे राजा कभी भी नष्ट नहीं होगा। जो वीर्यवान्, मृदु तथा धीमे बोलने वाले, सत्य पराक्रमी हैं, तथापि उनका जो पहले स्वभाव था, अब विपरीत हो गया हो, ऐसे भृत्य राजा का हित नहीं कर सकते॥१४-१८॥

निरालस्याः सुसन्तुष्टाः सुस्वप्नाः प्रतिबोधकाः।
सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभाः॥१९॥
क्षान्तिसत्यविहीनश्च क्रूरबुद्धिश्च निन्दकः।
दाम्भिकः पेटुकश्चैव शठश्च स्पृहयाऽन्वितः।
अशक्तो भयभीतश्च राज्ञा त्यक्तव्य एव सः॥२०॥

आलस्यरहित, सन्तुष्ट चित्त वाले, अच्छी प्रकार से निद्रा लेने वाले (अर्थात् समयानुसार शयन करने वाले), शीघ्र, सजग, सुख-दुःख में भी स्थिर रहने वाले, भृत्य अतीव दुर्लभ हैं। जो क्षमायुक्त नहीं हैं, सत्य-धर्मरहित हैं, क्रूर हैं, अशक्त, निन्दक-नास्तिक, पेटू, दुष्ट, लालची, कार्य करने में असफल हैं, भयप्रद हैं, ऐसे लोगों का राजा त्याग करे। इन लोगों को कोई कार्यभार न प्रदान करे॥१९-२०॥

सुसन्धानानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च।
दुर्गे प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत्॥२१॥
षण्मासमथ वर्षं वा सन्धिं कुर्य्यान्नराधिपः।
पश्यन्सञ्चितमात्मानं पुनः शत्रुं निपातयेत्॥२२॥
मूर्खान्नियोजयेद्यस्तु त्रयोऽप्येते महीपतेः। अयशश्चार्थनाशश्च नरके चैव पातनम्॥२३॥

दुर्ग में राजा अच्छा सन्धान करने वाले शस्त्र तथा विविध अस्त्र रखे। उनको तैनात करे। तभी उनसे राजा शत्रुवध कर सकेगा। जब राजा शत्रु से हार जाये, तब वह छः मास अथवा एक वर्ष हेतु सन्धि

करे। पुनः समर्थ होकर उस शत्रु का नाश करे। मूर्खों को जो राजा अपने राज्यकार्य में तैनात करता है, वे राजा को अयश, अर्थनाश तथा नरक प्रदानरूप फल प्रदान करते हैं॥२१-२३॥

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तेन स्म वर्द्धते राजा सूक्ष्मतो भृत्यकार्य्यतः॥२४॥
तस्माद्भूमीश्वरः प्राज्ञं धर्मकामार्थसाधने। नियोजयेद्धि सततं गोब्राह्मणहिताय वै॥२५॥

॥इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥११२॥

राजा तथा भृत्य शुभ-अशुभ जो कार्य करते हैं, उसी के अनुसार राजा की वृद्धि अथवा हानि होती है। अतः सूक्ष्म विचार करके ही राजा कार्य करे। वह गौ तथा ब्राह्मण के रक्षार्थ सदा सही आदमी को लगाये तथा सन्नद्ध रहे। सदा धर्मकार्य में तथा अर्थकार्य में सदा उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त करे॥२४-२५॥

॥एक सौ बारहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
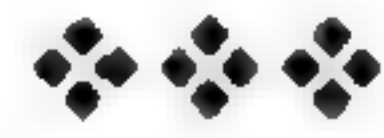
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

गुणवन्तं नियुञ्जीत गुणहीनं विवर्जयेत्। पण्डितस्य गुणाः सर्वे मूर्खे दोषाश्च केवलाः॥१॥
सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीञ्च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्॥२॥
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेत न तु राज्ये खलैः सह॥३॥
सावशेषाणि कार्य्याणि कुर्वन्नर्थैश्च युज्यते।
तस्मात्सर्वाणि कार्य्याणि सावशेषाणि कारयेत्॥४॥

सूतजी ने कहा—राजा गुणशील को ही नियुक्त करे। गुणहीन का वर्जन करे। पण्डित में गुण ही गुण होते हैं। मूर्ख में केवल दोष होते हैं। सदा सज्जनों के साथ रहे। सत् लोगों से ही मैत्री अथवा विवाद करे। असत् लोगों से यह सब नहीं करना चाहिये। विद्वान्, विनीत, धर्मज्ञ, सत्यवादी के साथ तो बन्दीगृह में भी रहना उत्तम है, किन्तु खल व्यक्ति के साथ राज्यभोग भी श्रेयप्रद नहीं है। जो व्यक्ति

जो कार्य हाथ में लेता है, उसे पूर्ण करे। बाकी न रखे। इससे वह धनी होगा। अतः सभी कार्य को सम्पन्न कर दे॥१-४॥

मधुहेव दुहेद्राष्टं कुसुमञ्च न पातयेत्। वत्सापेक्षी दुहेत्क्षीरं भूमिं गाञ्चैव पार्थिवः॥५॥
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट् पदः। तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत सञ्चयम्॥६॥
वल्मीकं मधुजालञ्च शुक्लपक्षे तु चन्द्रमाः।
राजद्रव्यञ्च भैक्ष्यञ्च स्तोकस्तोकेन वर्द्धते॥७॥
अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम्। अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु॥८॥

जिस प्रकार से भ्रमर एक फूल से दूसरे फूल पर जाकर पराग पान करता है, जिस प्रकार से गौ दुहने वाला दुहते समय बछड़े के लिये दूध छोड़कर बाकी दुह लेता है, उस प्रकार राजा भी प्रजा के भरण-पोषण के लिये छोड़ कर तब कर वसूल करे। जैसे मधुमक्खी बूंद-बूंद करके छत्ते में शहद जोड़ती है, वैसे राजा भी क्रमशः धन संचय करे। जैसे दीमक की बांबी, मधु का छत्ता तथा शुक्लपक्ष का चन्द्रमा, ये सब क्रमशः बढ़ते जाते हैं, वैसे ही राज्य, द्रव्य एवं भैक्ष्य क्रमशः बढ़ता है। कालिख क्षयीभूत होते हैं (अंजन क्षय होता जाता है), लेकिन दीमक की बांबी नित्य बढ़ती है। यह देखकर राजा नित्य दान तथा किंचित् अध्ययन भी करे॥५-८॥

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥९॥
सत्येन रक्षते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते। मृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते॥१०॥

जिस प्रकार लोग अल्प मात्रा में स्याही खर्च करते हैं, उससे अल्प मात्रा की स्याही अनेक दिनों तक चलती है, उसी प्रकार से अत्यल्प दान भी नित्यप्रति करने से अल्प धन से दीर्घकाल तक दानकार्य चलता जाता है। जो विषयी हैं, वे यदि वन में भी रहें, तब भी उनमें अनेक दोष उद्भूत होते रहते हैं। लेकिन जो इन्द्रियसंयमी हैं, वे घर में भी तप करते रहते हैं। जिनके अन्तर्मन से विषयों के प्रति लगाव हट गया है, उनके लिये तो घर ही तपःस्थली है। सत्य पालन से धर्म रक्षित होगा। सदा अभ्यास से विद्या रक्षित होगी, अच्छे स्वभाव से तो कुल की रक्षा हो जाती है। मार्जन करते धोते रहने से पात्र की रक्षा होती है। शील से कुल रक्षित हो जाता है॥९-१०॥

वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमभुक्तस्य मरणं वरं सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम्।
वरं भ्रान्तावर्त्ते सभयजलमध्ये प्रविशनं न तु स्वीये पक्षे तु धनमणु देहीति कथनम्॥११॥
भाग्यक्षयेषु क्षीयन्ते नोपभोगेन सम्पदः। पूर्वार्जिते हि सुकृते न नश्यन्ति कदाचन॥१२॥
विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः।
नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम्॥१३॥

विन्ध्यवन में निवास, अनाहार से मृत्यु हो जाना ठीक है। इसी प्रकार सर्पयुक्त गृह में सोना, कूप में गिरना, भंवरयुक्त जल में प्रवेश कर लेना अच्छा है, तथापि आत्मीय से धन मांगना विहित नहीं है।

पूर्वजन्मार्जित सुकृति तथा दुष्कृति उस व्यक्ति के साथ ही रहती है। सुकृति जब तक समाप्त नहीं हो जाती, तब तक व्यक्ति सुखी रहता है। जब सुकृति नष्ट होती है, तब दुर्भाग्य रूप दुष्कृति का दुःख भोग करना पड़ता है। ब्राह्मण का आभूषण है विद्या, पृथिवी का भूषण है राजा, आकाश का आभूषण है चन्द्रमा, सबका भूषण है सुशीलता॥११-१३॥

एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः
शूराः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केशवेनोपगूढाः।
ते वै दुष्टग्रहस्थाः कृपणवशगता भैक्ष्यचर्य्यां प्रयाताः
को वा कस्मिन्समर्थो भवति विधिवशाद् भ्रामयेत्कर्मरेखा॥१४॥

राजपुत्र भीमसेन तथा अर्जुन चन्द्रमा के समान प्रभावान्, शूर, सत्यप्रतिज्ञ, सूर्य के समान प्रतापी थे, स्वयं केशव उनके रक्षक पालक थे, तथापि वे दुष्ट ग्रहों तथा दुष्टों के वशीभूत होने के कारण पत्ते के दोने में भिक्षान्न खाने के लिये विवश हो गये थे। अतः संसार में कौन स्वाधीन है? सभी कर्म के अनुरूप दैवाधीन होकर विचरते रहते हैं॥१४॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिमरो भिक्षाटनं कारितः।
सूर्य्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥१५॥

ब्रह्मा इस ब्रह्माण्डोदर में कुम्हार के चक्र की तरह नियमित रूप से कर्म के कारण कार्यरत रहते हैं। विष्णुदेव कर्म के कारण महा संकटपूर्ण दस अवतार लेते हुये क्षिप्त रहते हैं। रुद्र भी कर्म के कारण हाथ में कपाल का भिक्षापात्र लेकर घूमते रहते हैं। सूर्य भी नित्य आकाश मण्डल में भ्रमण करते रहते हैं, यह भी कर्म का ही फल है। ऐसे कर्म को नमस्कार!॥१५॥

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दानं मही विप्रमुखस्य मध्ये।
दत्त्वा फलं बन्धनमेव लब्धं नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे॥१६॥

बलि ऐसा दाता, दान लेने वाले स्वयं विष्णु, दान की वस्तु पृथिवी, इस दान के साक्षी भी ब्राह्मण! तब भी ऐसा दान देकर बलिराज को बन्धन फलभोग करना पड़ा। बलिराज विष्णु को पृथिवी प्रदान करके भी पाताल में ही बद्ध हैं। हे दैव! आप ही मानव को यथेष्ट फल देने वाले हैं। आपको प्रणाम!॥१६॥

माता यदि भवेल्लक्ष्मीः पिता साक्षाज्जनार्दनः।
कुबुद्धिप्रतिपत्तिश्चेत्तद्दण्डं विधृतं सदा॥१७॥
येन येन यथा यद्वत्पुरा कर्म सुनिश्चितम्। तत्तदेवान्तरा भुङ्क्ते स्वयमाहितमात्मनः॥१८॥

यदि माता साक्षात् लक्ष्मी तथा पिता साक्षात् जनार्दन भी हों, तब भी कुबुद्धि से प्रेरित होने पर उसके लिये भी दण्ड निश्चित है। जिसने पूर्वकाल में जिस प्रकार का कर्म किया है, वह उसी प्रकार के कर्मानुरूप फल पायेगा। यह निश्चित है। अतः व्यक्ति स्वयं अपने फलभोग का विधाता होता है॥१७-१८॥

आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम्।
गर्भशय्यामुपादाय भुङ्क्ते वै पौर्वदेहिकम्॥१९॥
न चान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विविधप्रदेशे।
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तुं क्षमः कर्मकृतं नरो हि॥२०॥

वह स्वयं अपने सुख तथा दुःख का कारण है। गर्भ में रहने पर भी वह अपने पूर्वदेह के कर्मों का भोग करता है। चाहे व्यक्ति अन्तरिक्ष में, समुद्र में, पर्वत के विविध स्थान में, मातृगर्भ में अथवा माता की गोद में, चाहे जहां रहे, वह पूर्वार्जित कर्म के हाथों बच ही नहीं सकता। कृत कर्म उसका पीछा नहीं छोड़ता॥१९-२०॥

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधाः परमा च वृत्तिः।
शास्त्रञ्च वै तूशनसा प्रदिष्टं स रावणः कालवशाद्विनष्टः॥२१॥
यस्मिन् वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि।
यन्मुहूर्त्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा॥२२॥
गच्छन्ति चान्तरिक्षे वा प्रविशन्ति महीतले। धारयन्ति दिशः सर्वा नादत्तमुपलभ्यते॥२३॥
पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम्।
पुरा कृतानि कर्माणि अग्रे धावन्ति धावतः॥२४॥

रावण का दुर्ग त्रिकूट पर था, उसकी चारों ओर की खाई समुद्र थी, राक्षस योद्धा थे, शुक्राचार्य ने उसे स्वयं नीतिशास्त्र पढ़ाया था, वह भी काल के ग्रास हो गया। जिस आयु में, जिस काल में, जिस दिन, जिस रात, जिस मुहूर्त्त में, जिस क्षण में जो कर्म निश्चित है, वह उस आयु, काल, दिन, रात्रि, मुहूर्त्त तथा क्षण में अवश्य घटित होता है। यह बात अन्यथा नहीं होती। व्यक्ति अन्तरिक्ष, भूगर्भ चाहे जहां जाये, सभी ओर भाग-दौड़ करे, तथापि जो मिलना नहीं है, उसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। पहले पढ़ी विद्या, पहले दान किया धन तथा पूर्व में किये गये कर्म दौड़ रहे व्यक्ति से भी आगे-आगे दौड़ते हैं॥२१-२४॥

कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे। वसिष्ठकृतलग्नेऽपि जानकी दुःखभाजनम्॥२५॥

पूर्व जन्म में पढ़ी विद्या, पूर्वजन्म में प्रदत्त दान तथा पूर्वजन्म के कृत कर्म का फल अगले जन्म में मिलता है। कर्म सबमें प्रधान है। जब ग्रह-नक्षत्र अनुकूल-शुभ हों, तब मानव कर्म के अनुरूप फल पाता है। जानकी के विवाह में स्वयं ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने लग्न बताया था, तथापि जानकी को स्वकर्म फल स्वरूप दीर्घकालीन दुःख सहना पड़ा॥२५॥

स्थूलजङ्घो यता रामः शब्दगामी च लक्ष्मणः।
घनकेशी यथा सीता त्रयस्ते दुःखभाजनम्॥२६॥
न पिण्डकर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा। कर्मजन्यशरीरेषु रोगाः शारीरमानसाः॥२७॥
शरा इव पतन्तीह विमुक्ता दृढधन्विनः।
अतो वै शास्त्रगर्भिण्या धिया धीरोऽर्थमीहते॥२८॥

वालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम्।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्तेजन्मनि जन्मनि॥२९॥
अनिच्छमानोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः। स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत् फलम्॥३०॥

राम स्थूल जंघा वाले (बली) थे, लक्ष्मण शब्दगामी थे, सीता घने केश वाली थीं, तथापि इन तीनों ने अनेक कष्ट भोग किया। पिता पुत्र के किये कर्म से तथा पुत्र पिता के किये कर्म से बद्ध अथवा मुक्त नहीं होता। सभी स्वकर्म से ही बद्ध अथवा मुक्त हो पाते हैं। जैसे दृढ़ धनुर्धर तीव्र वेग से बाण छोड़ते हैं, वह बाण लक्ष्य पर ही गिरता है, तद्रूप कर्मजालरूप इस शरीर में सभी अपने-अपने कर्म के मुताबिक देह का तथा मन का दुःखभोग करते हैं। इसी प्रकार वे सुखभोग भी करते रहते हैं। बाल्यावस्था, यौवन किंवा वार्द्धक्य आदि में जिन अवस्था में जो शुभ-अशुभ कर्म किया जाता है, उसी-उसी अवस्था में जन्म-जन्म में उस कर्म का फलभोग करना होगा॥२६-३०॥

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे ललाटरेखा न पुनः प्रयाति
(यदस्मदीयं न तु तत् परेषाम्)॥३१॥

कर्मफल भोगने से अनिच्छुक तथा विदेशस्थ मनुष्य उस किये कर्म का फल भोग करता है। कर्मफल कर्मरूप वायुप्रवाह से व्यक्ति को कर्मक्षेत्र में ले जाता है। फलभोग की इच्छा भले न हो, तथापि कर्मफल भोग करना ही होगा। सभी प्रारब्ध भोग करते हैं। देवता भी इसे अन्यथा नहीं कर सकते। तभी मैं अपने कर्मफल भोग के विषय में न तो दुःख करता हूं, न आश्चर्य करता हूं। ललाट रेखा कोई मिटा नहीं सकता॥३१॥

सर्पः कूपे गजः स्कन्धे आखुर्बिले च धावति।
नरः शीघ्रतरादेव कर्मणः कः पलायति॥३२॥
नाल्पायति हि सद्विद्या दीयमानापि वर्द्धते। कूपस्थमिव पानीयं भवत्येव बहूदकम्॥३३॥
येऽर्था धर्मेण ते सत्या ये धर्मेण गताः श्रियः।
धर्मार्थी च महान्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात्॥३४॥

सर्प कूप में, गज अपने झुण्ड में तथा चूहा अपने बिल में भाग जाये, कोई मनुष्य कितना भी तीव्रता से दौड़ने वाला होकर क्यों न भागे, ये सभी कर्म से बचकर कहां जा सकते हैं? क्या सद्विद्या कभी दान करने से कम होती है? वह तो दान से दिन-रात वृद्धि पाती है। जिस प्रकार से कूप में से जल निकालने पर वह पुनः भर जाता है, उसी प्रकार सद्विद्या दान करने पर पुनः और वर्द्धित हो जाती है। जो अर्थ धर्मतः उपार्जित होता है, वही वास्तविक अर्थ है। जो सम्पदा धर्म से उपार्जित होती है, वही यथार्थ सम्पत्ति है। धर्म चिन्तन द्वारा धर्मतः धन कमाये॥३२-३४॥

अन्नार्थी यानि दुःखानि करोति कृपणो जनः।
तान्येव यदि धर्मार्थी न भूयः क्लेशभाजनम्॥३५॥

सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते।
योऽन्नार्थैरशुचिः शौचान्न मृदा वारिणा शुचिः॥३६॥
सत्यशौचं मनःशौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूते दया शौचं जलशौचञ्च पञ्चमम्॥३७॥
यस्य सत्यञ्च शौचञ्च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः।
सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते॥३८॥
मृत्तिकानां सहस्त्रेण उदकानां शतेन च। न शुद्ध्यति दुराचारो भावोपहतचेतनः॥३९॥

कृपण व्यक्ति अन्न की आवश्यकता होने पर जो दुःख उठाता है, यदि वही दुःख धर्मोपार्जनार्थ सहन करे, तब उसे कभी दुःख उठाना ही नहीं पड़ेगा। सभी शौचों में अन्न शौच मुख्य हैं। जिस मनुष्य के धन तथा अन्न में अशुद्धि है, मिट्टी अथवा जल से धुल कर भी वह पवित्र नहीं हो सकेगा। सत्य शौच, मन: शौच, इन्द्रिय निग्रहरूपी शौच, सर्वभूत के प्रति दया शौच तथा पांचवां शौच है जल शौच। जिसे सत्य शौच प्राप्त है, उसके लिये स्वर्ग दुर्लभ नहीं है। सत्य बोलने वाला व्यक्ति अश्वमेध यज्ञकर्त्ता से भी श्रेष्ठ है। हजारों मिट्टी तथा सैकड़ों जल से धुल कर भी दुराचार एवं दुष्टता से कलुषित मन शुद्ध नहीं हो सकता॥३५-३९॥

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥४०॥
न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूया देतत् साधोस्तु लक्षणम्॥४१॥
दरिद्रस्य मनुष्यस्य प्राज्ञस्य मधुरस्य च।
काले श्रुत्वा हितं वाक्यं न कश्चित्परितुष्यते॥४२॥
न मन्त्रबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण च। अलभ्यं लभ्यते मर्त्यैस्तत्र का परिवेदना॥४३॥
अयाचितो मया लब्धो मत्प्रेषितः पुनर्गतः। यत्रागतस्तत्र गतस्तत्र का परिवेदना॥४४॥

जिसके हाथ, पैर, मन संयत हैं, जिसके पास विद्या, तप, कीर्त्ति है, वही सभी तीर्थों में स्नान का फलभोग कर सकता है। जो सम्मान पाकर प्रसन्न नहीं होता, अपमान पाकर कुपित नहीं होता, क्रोधित होकर कठोर वाक्य नहीं बोलता, वही वास्तविक साधु है। यदि दरिद्र मनुष्य प्राज्ञ हो अथवा मीठी वाणी बोलने वाला हो, तब भी उसकी बातों को सुन कर कोई प्रसन्न नहीं होता। कोई भी व्यक्ति मन्त्र, ताकत, पराक्रम से तथा बुद्धि से अलभ्य चीज नहीं पा सकता। जिसे जो वस्तु पाने का अदृष्ट (दैव) नहीं है, उसे वह चीज नहीं मिल पाती। जिसे जो कोई वस्तु पाने का भाग्य (दैव) नहीं है, उसे वह न मिलने पर कोई दुःख नहीं करना चाहिये। कभी मांगने पर भी कुछ नहीं मिलता, कभी बिना मांगे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जिस वस्तु का जहां रहना उचित है, वह वस्तु वहां खुद चली जाती है। इसमें शोक की क्या बात?॥४०-४४॥

एकवृक्षे सदा रात्रौ नानापक्षिसमागमः। प्रभातेऽन्यदिशं यान्ति का तत्र परिवेदना॥४५॥

एकस्वार्थप्रयातानां सर्वेषान्तत्र गामिनाम्।
यस्त्वेकस्त्वरितो याति का तत्र परिवेदना॥४६॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक।
अव्यक्तनिधनान्येव का तत्र परिवेदना॥४७॥
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि।
कुशाग्रेण तु संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति॥४८॥
लब्धव्यान्येव लभते गन्तव्यान्येव गच्छति।
प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति दुःखानि च सुखानि च॥४९॥
ततः प्राप्नोति पुरुषः किं प्रलापं करिष्यति।
आचोद्यमानानि तथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वकालं नातिवर्त्तन्ते यथा कर्म पुराकृतम्॥५०॥

एक ही वृक्ष पर रात में अनेक पक्षी बसेरा लेते हैं। प्रातः होते ही वे नाना दिशाओं में चले जाते हैं। उनमें से किसी को दुःख नहीं होता। एक ही वस्तु पाने हेतु अनेक लोग चल पड़े। यदि उनमें से कोई जल्दी से जाकर सबसे पहले उस वस्तु के पास पहुंच कर उसे पा ले, इसमें अन्य को दुःखी होने का क्या प्रयोजन? हे शौनक! सभी वस्तु व्यक्त तथा अव्यक्त रूप में रहती हैं। उनका नाश भी व्यक्तरूप से किंवा अव्यक्तरूप से होता ही रहता है। इसमें दुःख क्यों? जिसका काल नहीं आया है, वह सैकड़ों तीर से भेदे जाने पर भी मरता नहीं, किन्तु जिसका काल आ गया है, वह मात्र कुशा द्वारा विद्ध होने पर भी मर जायेगा। लोग वही पाते हैं, जो पाने योग्य होता है। जो गन्तव्य दैव द्वारा निश्चित है, मनुष्य वहीं जा पाता है। जो दुःख या सुख उसे पाना दैव द्वारा तय है, वही दुःख-सुख वह आदमी पाता है। मनुष्य अपना प्राप्य पाकर रहता है। उसमें प्रार्थना वाक्य क्या करेगा? इसमें प्रलाप क्यों? वृक्ष से चाहे प्रार्थना भले नहीं की जाये, वह वृक्ष तो फल, पुष्प देगा ही। एवंविध कोई भी अपने पूर्वकृत कर्म का उल्लंघन नहीं कर सकता। जो पूर्वकृत है, वही मिलता है॥४५-५०॥

शीलं कुलं नैव न चैव विद्या ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धिः।
भाग्यानि पूर्व तपसार्जितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥५१॥
तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः। तत्र तत्र स्वयं याति प्रेष्यमाणः स्वकर्मभिः॥५२॥
भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति। यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्॥५३॥
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति। सुकृतं भुङ्क्ष्व चात्मीयं मूढ किं परितप्यसे॥५४॥

शील, उत्तम कुल, श्रेष्ठ विद्या, ज्ञान, गुण से कुछ भी नहीं होता। मात्र भाग्य ही फल दाता है। जैसे वृक्ष सभी को पुष्प-फल देता है, तदनुरूप भाग्य (दैव) शील आदि गुण की अपेक्षा बिना किये पूर्व संचित तप के अनुरूप फलदान करता है। जिसके लिये जहां कहीं घात, मृत्यु, श्री, सम्पदा मिलना तय है, वह स्वयं अपने पूर्व कर्मों द्वारा वहीं भेज दिया जाता है। पूर्वकाल में किये कर्म जो हैं, वे कर्मकर्त्ता के

साथ चलते हैं। हजारों गौ तथा बछड़े एक ही जगह रहते हैं, तथापि दुग्ध पान के समय वे बछड़े अपनी ही माता के पास जाते हैं। पूर्वजन्म में जिसने जैसा कर्म किया था, वह अगले जन्म में वही कर्मफल भोगता है। अत: मूढ़गण क्यों व्यर्थ दु:ख करते हैं?॥५१-५४॥

यथा पूर्वकृतं कर्म कर्तामनुतिष्ठति। एवं पूर्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्॥५५॥

नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥५६॥
रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचिद्द्विज।
विचार्य्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः॥५७॥

कर्म करने वाला पूर्व में अर्जित कर्म का फलभोग करता है। कोई सुखी रहता है कोई दु:खी। यह सब उसके ही कर्म का फल है। जो नीच बुद्धि हैं, वे अन्य की सरसों इतनी भी त्रुटि देख कर उसे खोज कर व्यक्त करने लगते हैं, तथापि वे अपनी बेलफल इतनी त्रुटि रहने पर भी उसकी अनदेखी कर जाते हैं। नीच लोग अपना दोष न देख कर सर्वदा पराया दोष ही खोजते रहते हैं। रागद्वेष के वश में हो गये लोग कभी भी सुखी नहीं हो सकते। मैंने चिन्तन करके देखा है, जो शान्तिगुणान्वित लोग हैं, वे ही वास्तविक सुख भोगी हैं। जहां निवृत्ति है, वहीं सुख है॥५५-५७॥

यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम्।
स्नेहमूलानि दुःखानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम्॥५८॥

शरीरमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च। जीवितञ्च शरीरञ्च जात्यैव सह जायते॥५९॥

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥६०॥

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्। सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्त्तते॥६१॥

यद्गतं तदतिक्रान्तं यदि स्यात्तच्च दूरतः। वर्त्तमानेन वर्त्तेत न स शोकेन बाध्यते॥६२॥

॥इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११३॥

जहां स्नेह है, वहीं भय है। स्नेह करने वाला दु:ख का भागी होता है। स्नेह के मूल में दु:ख है। स्नेह त्याग कर महा सुख मिलता है। यह शरीर सुख तथा दु:ख का गृह है। शरीर की उत्पत्ति से ही सुख एवं दु:ख उसके साथ ही जन्म लेते हैं। परवश होने पर सब कुछ दु:ख है। आत्मवश रहना ही सुख है। सुख-दु:ख मनुष्य में चक्रवत् चक्रमण करते रहते हैं। जो यह जानता है कि अतीत बीत गया। भविष्य दूर है तथा वर्त्तमान में वह रत नहीं रहता, उसे कोई भी शोक वश में नहीं कर सकता॥५८-६२॥

॥एक सौ तेरहवां अध्याय समाप्त॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः।
कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा॥१॥
शोकत्राणं भयत्राणं प्रीतिविश्वासभाजनम्। केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्॥२॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥३॥
न मातरि न दारेषु न सोदर्य्ये न चात्मजे। विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे॥४॥
यदीच्छेत् शाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत्। द्यूतमर्थप्रयोगञ्च परोक्षे दारदर्शनम्॥५॥

सूत जी ने कहा— कोई किसी का मित्र नहीं होता, कोई किसी का शत्रु नहीं होता। केवल कारण उत्पन्न होने से ही शत्रु तथा मित्र सम्बन्ध होता है। जो मित्र हैं, वे शोक-भय से छुटकारा दिलाते हैं तथा प्रीति एवं विश्वास भाजन होते हैं। किसने 'मित्र' रूपी दो अक्षर रत्न की सृष्टि किया है? जो एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षर का उच्चारण करता है, वह मुक्ति पाने का अधिकारी होकर मोक्षार्थ जाता है। स्वभावतः मित्र के समान विश्वासी तो माता, स्त्री, सगे भाई तथा पुत्र भी नहीं होते। यदि किसी के साथ अकृत्रिम (वास्तविक) प्रेम रखना हो, तब उसके साथ घृतक्रीड़ा, धन का व्यवहार तथा परोक्ष में उसकी स्त्री को देखना, इन तीन दोष से दूर रहे॥१-५॥

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासने वसेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥६॥
विपरीतरतिः कामः स्वायत्तेषु न विद्यते। यत्रापायो वधो दण्डस्तथैव ह्यनुवर्त्तते॥७॥
अपि कल्पानिलस्यैव तुरगस्य महोदधेः। शक्यते प्रसरो बोद्धं नह्यरक्तस्य चेतसः॥८॥
क्षणं नास्ति रहो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता जनः।
तेन शौनक नारीणां सतीत्वमुपजायते॥९॥
एकं वै सेवते नित्यमन्यं चेतसि रोचते। पुरुषाणामलाभेन नारी चैव पतिव्रता॥१०॥

निर्जन में तो एक ही आसन पर माता, बहन अथवा कन्या के साथ भी न रहे। सभी मानवों में इन्द्रियां बलवत्तर होती हैं। विद्वान् भी इन इन्द्रियों के द्वारा खींच लिये जाते हैं। जो अपने प्रति अधीन है, उससे विपरीत अनुराग न रखे तथा उसके साथ स्वार्थ व्यवहार भी न करे। जिसे वधादि दण्ड प्रयोग दिया गया हो, उसका अनुवर्त्तन करे। अग्नि की गति, अश्व का वेग तथा महासागर की भले थाह मिल जाये, लेकिन अनुरक्त व्यक्ति के चित्त के बारे में कोई नहीं जान सकता। हे शौनक! यदि मौका न मिला, निर्जन में कोई चाहने वाला नहीं हो, तभी नारी सतीत्व में रह पाती है (अन्यथा सतीत्व नहीं रह पाता)। पुरुष

का न मिलना ही नारी का पातिव्रत्य है (यदि अन्य पुरुष हो तब पातिव्रत्य कैसे रह पायेगा, यह तात्पर्य है)। वे एक पुरुष का सेवन करके भी अन्य के बारे में चित्त में सोचती हैं॥६-१०॥

जननी यानि कुरुते रहस्यं मदनातुरा। सुतैस्तानि न चिन्त्यानि शीलविप्रतिपत्तिभिः॥११॥
पराधीना निद्रा परहृदयकृत्यानुसरणं सदा हेलाहास्यं नियतमपि शोकेन रहितम्।
पणे न्यस्तः कायः विटजनखुरैर्दारितगलो बहूत्कण्ठावृत्तिर्जगति गणिकाया बहुमतः॥१२॥

यदि माता काम के वशीभूत होकर कोई काम सम्बन्ध वाला रहस्य कार्य करती है, पुत्रों को चाहिये कि वे शील गुण के कारण उसे मन ही मन भले सोचें, लेकिन किसी से न कहें। गणिका की निद्रा स्वाधीन नहीं होती (ग्राहक के अधीन होती है)। अन्य के चित्त की इच्छा का पालन ही उनका कारण होता है। यदि व्यक्ति के अन्तर्मन में कोई दुःख हो, उसे चेहरे पर व्यक्त न होने दे। अपितु हास्य परिहास के ऊपरी दिखावे से दुःख वेदना को छिपाये रहे। गणिका से न कहे। गणिकाओं का शरीर धन लेने के कारण बिका रहता है। उनके हृदय में अनेक से अनेक उत्कण्ठा रहती है। किसी के नख से गर्दन क्षत होने पर उनका निधन भी हो जाता है॥११-१२॥

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च।
नित्यं परोपसेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट्॥१३॥
किं चित्रं यदि शब्दशास्त्रकुशलो विप्रो भवेत्पण्डितः
किं चित्रं यदि दण्डनीतिकुशलो राजा भवेद्धार्मिकः।
किं चित्रं यदि रूपयौवनवती योषिन्न साध्वी भवेत्
किं चित्रं यदि निर्द्धनोऽपि पुरुषः पापं न कुर्य्यात्क्वचित्॥१४॥
नात्मच्छिद्रं परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च। गृहे कूर्मे इवाङ्गानि परभावञ्च लक्षयेत्॥१५॥

अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, सर्प, राजकुल, ये दूसरों द्वारा सेव्य हैं तथा सद्यः प्राण लेने वाले भी हैं। शब्द प्रभृति शास्त्र में कुशल मनुष्य यदि विद्वान् है, इसमें क्या विचित्रता है। दण्डनीति के कुशल राजा यदि धार्मिक हैं, इसमें क्या आश्चर्य। रूपयौवन शालिनी नारी यदि सती नहीं है, इसमें क्या आश्चर्य। यदि धनहीन व्यक्ति पाप नहीं करता, इसमें क्या आश्चर्य। पराये व्यक्ति से अपनी त्रुटि कभी न कहे, लेकिन अन्य के छिद्र (भेद) अवश्य जाने। अपने को उसी प्रकार गुप्त रखे, जैसे कछुआ अपने खोल में अपने अंग छिपाता है तथा अन्य के भाव को जाने॥१३-१५॥

पातालतलवासिन्य उच्चप्राकारछादिताः।
यदि नो चिकुरोद्भेदः स्त्रियाः केनोपलभ्यते॥१६॥
समधर्मा हि मर्मज्ञस्तीक्ष्णः स्वजनकण्टकः।
न तथा बाधते शत्रुः कृतवैरो बहिःस्थितः॥१७॥
स पण्डितो यो ह्यनुरञ्जयेद्वै मिष्टेन बालं विनयेन शिष्टम्।
अर्थेन नारीं तपसा हि देवान्सर्वांश्च लोकांश्च सुसंग्रहेण॥१८॥

पाताल तल में चारों ओर दीवार से घिरे स्थान में भी स्त्रियों का चिकुरोद् भेद न हो, तब स्त्री को कौन पा सकेगा। समान धर्म वाले (आपसी लोग) क्रोधित होकर अपने स्वजनगण का जो अपकार कर सकते हैं, वैसा अनिष्ट शत्रु व्यक्ति वैरसाधन तत्पर होकर भी नहीं कर सकता। जो व्यक्ति बालकों को अपनी मीठी बोली से वश में करते हैं, शिष्टजन को विनयपूर्ण व्यवहार से वशीभूत करते हैं, स्त्रियों को धन द्वारा वशीभूत करते हैं, तप से देवगण को प्रसन्न करके वशीभूत करते हैं, साधारण लोगों को अच्छे व्यवहार से वश में कर लेते हैं, वस्तुतः वे ही पण्डित कहलाने योग्य हैं॥१६-१८॥

छलेन मित्रं कलुषेण धर्मं परोपतापेन समृद्धिभावम्।
सुखेन विद्यां परुषेण नारीं वाञ्छन्ति वै ये न च पण्डितास्ते॥१९॥
फलार्थी फलिनं वृक्षं यश्छिन्द्याद्दुर्मतिर्नरः।
निष्कलं तस्य वै कार्य्यं तन्मूलं दोषमाप्नुयात्॥२०॥

जो छल द्वारा मित्र को वशीभूत करना, कुत्सित कलुष कार्य द्वारा धर्म करना, अन्य को कष्ट पहुंचा कर धन कमाना, भोग विलास करते हुये विद्या पाना चाहते हैं, कठोर वचनों से नारी को वशीभूत करना चाहते हैं, वे पण्डित नहीं हैं। जो फल पाने हेतु वृक्ष की जड़ ही काट देते हैं, वे दुष्ट बुद्धि हैं। अतः कभी फलदार वृक्ष को न काटे। इससे दोष होता है॥१९-२०॥

सधनो हि तपस्वी च दूरतो वै कृतश्रमः। मद्यपा स्त्री सतीत्येवं विप्र न श्रद्दधाम्यहम्॥२१॥
न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत्।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्॥२२॥
सर्वभूतेषु विश्वासः सर्वभूतेषु सात्त्विकः।
स्वभावमात्मना गुह्यमेतत्साधोर्हि लक्षणम्॥२३॥
यस्मिन्कस्मिन्कृते कार्य्ये कर्त्तारमुवर्त्तते।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि धैर्य्यबुद्धिन्तु कारयेत्॥२४॥

हे विद्वान् शौनक! मैं इस बात का कदापि विश्वास नहीं कर पाता कि धनी तपस्वी होगा तथा मद्यप नारी सती होगी। यह कदापि विश्वसनीय बात नहीं है। अविश्वसनीय का कभी विश्वास न करे। अपने बन्धुओं पर भी पूर्णतः भरोसा नहीं करे। जो अविश्वसनीय बन्धु होता है, वह क्रोधित होने पर गुप्त भेदों को प्रकट कर देगा। सभी प्राणी के प्रति विश्वास, सबके प्रति सात्त्विक भाव रखे। अपने स्वभाव को गुप्त रखे। यही महापुरुष का लक्षण है। कर्त्ता अपने द्वारा किये गये कार्य के शुभ-अशुभ का भागी होता है। इसलिये धैर्य के साथ विवेचना करने के पश्चात् ही कोई कार्य करना चाहिये॥२१-२४॥

वृद्धः स्त्रियो नवं मद्यं शुष्कं मांसं त्रिमूलकम्।
रात्रौ दधि दिवा स्वप्नं विद्वान् षट् विवर्जयेत्॥२५॥
विषं गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम्।
विषं कुशिक्षिता विद्या अजीर्णे भोजनं विषम्॥२६॥

प्रियं दानमकुण्ठस्य नीचस्योच्छासनं प्रियम्।
प्रियं दानं दरिद्रस्य यूनश्च तरुणी प्रिया॥२७॥

विद्वान् को चाहिये कि वह वृद्धा स्त्री, नयी शराब, सूखा मांस, त्रिमूलक, रात में दधि तथा दिन में सोना, इन छः कार्य का त्याग करे। दरिद्र के लिये गोष्ठी (सभा आदि), वृद्ध हेतु तरुणी विष रूप है। गलत ढंग से दी गई विद्या तथा अजीर्ण होने पर भोजन विष है। जो धनी हैं, वे अकुण्ठित व्यक्ति दान से प्रेम करते हैं। दान उनका प्रिय कर्म है। निम्न के लिये उन्नति तथा शासन प्रिय है। दरिद्र को दान प्रिय है। जो वृद्ध लोग हैं, उनको युवती प्रिय लगती है॥२५-२७॥

अत्यम्बुपानं कठिनाशनञ्च धातुक्षयो वेगविधारणञ्च।
दिवाशयो जागरणञ्च रात्रौ षड्भिर्नराणां निवसन्ति रोगाः॥२८॥
बालातपश्चाप्यतिमैथुनञ्च श्मशानधूमः करतापनञ्च।
रजस्वलावक्त्रनिरीक्षणञ्च सुदीर्घमायुस्त्वपि कर्षयेच्च॥२९॥

अधिक जल पीना, गरिष्ठ तथा कड़ी चीज खाना, धातुक्षय करना, मलमूत्रादि वेग को रोकना, दिन में निद्रा, रात में जागना, ये छः कार्य जो करता है, रोग उसके शरीर में निवास करते हैं। प्रातः की धूप में रहना, अति मैथुन, श्मशान की धूआं, हाथ तापना, रजस्वला का मुख देखना दीर्घायु को भी अल्पायु कर देते हैं॥२८-२९॥

शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्॥३०॥
सद्यः पक्वघृतं द्राक्षा बाला स्त्री क्षीरभोजनम्।
उष्णोदकं तरुच्छाया सद्यःप्राणकराणि षट्॥३१॥
कूपोदकं वटच्छाया नारीणाञ्च पयोधरः।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम्॥३२॥
सद्योबलकरास्त्रीणि बालाभ्यङ्गसुभोजनम्।
सद्योबलहरास्त्रीणि अध्वा च मैथुनं ज्वरः॥३३॥

सूखा मांस, वृद्धा नारी, बाल सूर्य, रात्रि में दधि, प्रातः काल में मैथुन तथा सोना, ये सभी तत्काल प्राणहारी हैं। तत्काल गर्म किया घृत, द्राक्षा, बाला नारी, क्षीर भोजन, गर्म जल तथा पेड़ की छाया, ये सभी शरीर को बली करते हैं। कूएं का जल, बरगद की छाया, नारीगण के स्तन ये शीतकाल में उष्ण होते हैं तथा ग्रीष्मकाल में शीतल होते हैं। बाला स्त्री, तैल मालिश तथा उत्तम भोजन, ये तीन तत्काल बलप्रद होते हैं। पथ पर्यटन, मैथुन, ज्वर, ये तीन सद्यः प्राणहारी होते हैं॥३०-३३॥

शुष्कं मांसं पयो नित्यं भार्य्यामित्रैः सहैव तु।
न भोक्तव्यं नृपैः सार्द्धं वियोगं कुरुते क्षणात्॥३४॥

कुचेलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्।
सूर्य्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥३५॥

सूखा . तथा दूध एक साथ ग्रहण न करे। बन्धु तथा पत्नी के साथ भोजन वर्जित है। राजा के साथ भोजन कदापि उचित नहीं है। इनके साथ भोजन करने से शीघ्रता से वियोग होता है। जो गंदे वस्त्र पहने, दांतों को स्वच्छ न करे, प्रचुर भोजन करे, कटु वाणी बोले, सूर्योदय तथा सन्ध्या के समय शयन करे, यदि वह विष्णु के समान भी हो, तो लक्ष्मी उसको छोड़ देती है॥३४-३५॥

नित्यं छेदस्तृणानां धरणिविलिखनं पादयोश्चापमार्ष्टि-
र्दन्तानामप्यशौचं मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम्।
द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयनं ग्रासहासातिरेकः
स्वाङ्गे पीठे चा वाद्यं निधनमुपनयेत्केशवस्यापि लक्ष्मीम्॥३६॥
शिरः सुधौतं चरणौ सुमार्जितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम्।
अनग्नशायित्वमपर्वमैथुनं चिरप्रनष्टां श्रियमानयन्ति षट्॥३७॥
यस्य तस्य तु पुष्पस्य पाण्डरस्य विशेषतः।
शिरसा धार्य्यमाणस्य अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते॥३८॥
दीपस्य पश्चिमा छाया छाया शय्यासनस्य च।
रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति॥३९॥
बालातपः प्रेतधूपः स्त्री वृद्धा तरुणं दधि।
आयुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरजः॥४०॥

जो व्यक्ति नखों से तृणों को सदा काटता है, भूमि पर लिखता है, दोनों पैर नहीं धोता, दांतों को स्वच्छ नहीं करता, मलिन कपड़े पहनता है, बाल नहीं झाड़ता, प्रभात तथा सूर्यास्त काल में सोता है, बड़े-बड़े भोजन के टुकड़े खाता है, अधिक हंसता है, अपने देह अथवा आसन पर उंगलियों से बाजा बजाता है, वह नारायण के समान होकर भी लक्ष्मीरहित हो जाता है। जो सदा मस्तक तथा दोनों पैर साफ रखता है, उत्तम स्त्री से सहवास करता है, अधिक भोजन नहीं करता, नग्न होकर नहीं सोता, पर्वों के दिन मैथुन से दूरी बनाये रखता है, दीर्घकाल से नष्ट लक्ष्मी भी उसे मिल जाती है। कोई पुष्प अथवा पाण्डुर वर्ण का पुष्प शिर पर धारण करने से शीघ्र लक्ष्मी आती हैं। उसके यहां से तत्काल अलक्ष्मी का नाश हो जाता है। प्रदीप के पीछे की छाया, शय्या की छाया, आसन की छाया तथा धोबी के वस्त्र धोने की जगह पर सदा अलक्ष्मी रहती है। आयु चाहने वाला व्यक्ति बाल सूर्य की धूप, शव स्थान की धुआं, वृद्धा स्त्री, तरुण दधि तथा झाड़ू की धूल से दूर रहे॥३६-४०॥

गजाश्वरथधान्यानां गवाञ्चैव रजः शुभम्।
अशुभञ्च विजानीयात्खरोष्ट्राजाविकेषु च॥४१॥

गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः। एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम्॥४२॥
अजारजः खररजो यत्तु सन्मार्जनीरजः। एतद्रजो महापापं महाकिल्बिषकारकम्॥४३॥
शूर्पवातो नखाग्राम्बु स्नानवस्त्रमृजोदकम्।
मार्जनीरेणुः केशाम्बु हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥४४॥
विप्रयोर्विप्रवह्नयोश्च दम्पत्योः स्वामिनोस्तथा।
अन्तरेण न गन्तव्यं हयस्य वृषभस्य च॥४५॥

घोड़ा, हाथी, धान्य, गौ की धूल शुभ होती है। अशुभ धूल है गधे, ऊंट, बकरी तथा मेष के चलने से उठी धूल। गोरज, धान्य की रज, बच्चे (पुत्र) के देह में लगी रज शुभ तथा महापाप नाशक है। छाग (बकरे) की रज, गधे की रज, झाड़ू से उठी रज ये पापरूपी हैं। सूप की हवा, नाखून से छूआ जल, धूल और केश मिला जल स्पर्श करने से पूर्व संचित पुण्यों का नाश होता है। दो ब्राह्मणों के बीच से, विप्र तथा अग्नि के बीच से, पति तथा पत्नी के बीच से, अश्व तथा वृष के बीच से कभी न जाये॥४१-४५॥

स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेवने।
भोगास्वादेषु विश्वासं कः प्राज्ञः कर्त्तुमर्हति॥४६॥
न विश्वसेदविश्वस्तं विश्वस्ते नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति॥४७॥
वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति। स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुध्यते॥४८॥
नात्यन्तं मृदुना भाव्यं नात्यन्तं क्रूरकर्मणा। मृदुनैव मृदुं हन्ति दारुणेनैव दारुणम्॥४९॥
नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं नात्यन्तं मृदुना तथा।
सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः॥५०॥

स्त्री, राजा, आग, सर्प, अध्ययन, शत्रु सेवन, भोग तथा आस्वादन में बुद्धिमान व्यक्ति विश्वस्त का भी अति विश्वास न करे। अति विश्वास करने पर वही विश्वस्त व्यक्ति मूलोच्छेदक विनाश कर सकता है। जो शत्रु से सन्धि करके विश्वास कर लेता है, वह वृक्ष की डाल पर सोकर गिरने पर ही चेतेगा। अत्यन्त मुलायम नहीं होना चाहिये। अत्यन्त क्रूर भी नहीं होना उचित है, तथापि मृदु व्यक्ति से अत्यन्त मृदु व्यवहार करें तथा दारुण उपाय से दारुण व्यक्ति से निपटे। अतः अत्यन्त सरल तथा अत्यन्त मृदु नहीं होना चाहिये। सभी सीधे पेड़ को काटते हैं, टेढ़ा वृक्ष बचा रह जाता है॥४६-५०॥

नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च॥५१॥
अप्रार्थितानिदुःखानि यथैवायान्ति यान्ति च।
मार्जार इव लम्फेत तथा प्रार्थयते नरः॥५२॥
पूर्वं पश्चाच्चरन्त्यार्य्ये सदैव बहुसम्पदः। विपरीतमनार्य्ये च यथेच्छसि तथा चर॥५३॥

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुःकर्णश्च धार्य्यते।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्येको न बुध्यते॥५४॥
तथा गवा किं क्रियते या न दोग्धी न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः॥५५॥

फलयुक्त वृक्ष झुक जाते हैं। गुणी व्यक्ति भी नम्र (झुके) रहते हैं। शुष्क वृक्ष तथा मूर्ख भग्न होते हैं, लेकिन झुकते नहीं। सुख-दुःख अनचाहे आते हैं। यदि इनको भगाने की इच्छा न हो, तब भी समय पर ये चले जाते हैं। लेकिन मनुष्य को चाहिये कि जैसे मार्जार (बिड़ाल) छलांग लगाता है, वैसे मानव सदा सुख चाहे। साधु के सामने तथा पीछे सदा सम्पदा विचरती है। जो असाधु है, उनके पीछे सदा इसका उल्टा होता है। अतः जो विवेचना से अच्छा लगे, वही कीजिये। यह तो मनुष्य को तय करना है कि वह साधु का आचरण अपनायेगा अथवा असाधु का। कोई भी गुप्त मन्त्रणा छः कानों (तीन लोगों) के बीच जाने पर गुप्त नहीं रह जाती। चार कान (दो लोगों) के बीच की मन्त्रणा स्थिर रहती है। दो कान की मन्त्रणा (केवल एक आदमी की मन में की गई विचारणा) को तो ब्रह्मा भी नहीं जान सकते। दुग्ध न दे तथा गर्भिणी भी न हो, ऐसी गाय का क्या प्रयोजन? जो पुत्र विद्वान् तथा धर्मपरायण न हो, तब ऐसी सन्तान के जन्म से क्या लाभ?॥५१-५५॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता। कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगनं यथा॥५६॥

एक ही चन्द्रमा से आकाश शोभायमान हो जाता है। उसी प्रकार अकेला बुद्धिमान एकमात्र पुरुषप्रवर पुत्र ही कुल को उज्ज्वल कर देता है॥५६॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना। वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥५७॥
एको हि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः॥५८॥
लालयेत्पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥५९॥

एक ही सुपुत्र उत्पन्न हो, जो विद्यायुक्त धीमान् हो, वह समस्त कुल को सुवासित (धन्य) कर देता है, जैसे वन का मात्र एक वृक्ष ही अपने पुष्पों की सुगन्ध से सम्पूर्ण वन को सुवासित करता है। एक ही गुणी पुत्र पर्याप्त है। गुणरहित सौ पुत्रों का कोई प्रयोजन नहीं है। हजारों-हजार तारे आकाश को ज्योति से द्योतित नहीं कर सकते। मात्र एक चन्द्र सम्पूर्ण गगन को आलोकित कर देता है। पुत्र का लालन प्रेम के साथ पांच वर्ष की आयु तक करे। दस वर्ष तक ही उसे ताड़ना आदि से दण्डित करे। १६ वर्ष का हो जाने पर उसे मित्रवत् माने॥५७-५९॥

जायमानो हरेद्दारान्वर्द्धमानो हरेद्धनम्। म्रियमाणो हरेत्प्राणान्नास्ति पुत्रसमो रिपुः॥६०॥

पुत्र उत्पन्न होते ही माता की युवावस्था का हरण करता है। आयु बढ़ने पर पिता का धन हरण करता है। यदि वह अकाल में मृत हो जाये, तब उसके दुःख से परिवार वालों का जैसे प्राण ही चला जाता है। पुत्र जैसा कोई शत्रु ही नहीं है॥६०॥

केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद्व्याघ्रमुखा मृगाः।
तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वासः पदे पदे॥६१॥
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते। यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥६२॥
एतदेवानुमन्येत भोगा हि क्षणभङ्गिनः।
स्निग्धेषुं च विदग्धस्य मतयो वै ह्यनाकुलाः॥६३॥
ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता मृते पितरि शौनक।
सर्वेषां स पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालकः॥६४॥

कभी मृगमुखी व्याघ तो कभी व्याघ्रमुख हरिण परिलक्षित होता है। इनके स्वभाव ज्ञानार्थ विश्वास ही कारण है, क्योंकि शक्ल से किसी बात का हल ज्ञात नहीं होता। स्वभाव जानने पर ही यह तय होता है कि वह कौन सा पदार्थ है। क्षमाशील में एक ऐसा दोष है, जो तत्काल ज्ञात नहीं होता। वह दोष यह है कि लोग क्षमावान् को कमजोर समझ लेते हैं। सभी जानें कि भोग क्षणिक होते हैं। स्निग्ध तथा विदग्ध (विद्वान्) से अधिक लगाव न रखे। हे शौनक! पिता की मृत्यु पर बड़ा भाई ही कुटुम्ब पालता है। अतः वह पितातुल्य ही है॥६१-६४॥

कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्त्तते। समोपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च॥६५॥
बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः। तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते॥६६॥

जितने कनिष्ठ भ्राता हैं, वे सभी उसके अन्तर्गत् तथा आदर करके रहें। ज्येष्ठ भ्राता भी कनिष्ठ भाईयों का पालन पुत्रवत् करें। यदि नाना असार पदार्थ को एक साथ मिला दिया जाये, तब वह भी दारुण हो जाता है। तृणों से आवेष्टित रस्सी हाथी को भी बांध देती है॥६५-६६॥

अपहृत्य परस्वं हि यस्तु दानं प्रयच्छति।
स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम्॥६७॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥६८॥
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥६९॥

जो व्यक्ति अन्य की वस्तु-धनादि का हरण करके दान देता है, उसे नरक लाभ होता है। लेकिन जिसका धन हरण करके दान दिया गया है, उसे स्वर्गलाभ होगा। देवता की वस्तु को नष्ट करना, ब्रह्मस्व हरण करना, ब्राह्मण का अपमान करना कुलनाश का कारण है। जो ब्रह्मस्वहारी, मद्यप, चोर तथा व्रत तोड़ने वाले हैं, इनकी पापमुक्ति का उपाय अच्छे तथा श्रेष्ठ लोगों ने कहा है अर्थात् उसका प्रायश्चित्त तो है, लेकिन जो कृतघ्न है, उसकी पापमुक्ति का उपाय है ही नहीं॥६७-६९॥

नाश्नन्ति पितरो देवाः क्षुद्रस्य वृषलीपतेः।
भार्य्याजितस्य नाश्नन्ति यस्याश्चोपपतिर्गृहे॥७०॥

अकृतज्ञमनार्य्यञ्च दीर्घरोषमनार्जवम्।
चतुरो विद्धि चाण्डालान्जात्या जायेत पञ्चमः॥७१॥
नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धिः शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया।
वह्निरल्पोऽप्यसंग्राह्यः कुरुते भस्मसाज्जगत्॥७२॥
नवे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते॥७३॥
पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्वसाधारणाः श्रियः।
मदीया इति मत्वा वै न हि हर्षयुतो भव॥७४॥
चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्ते नष्टे धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति॥७५॥

॥इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥

पितर तथा देवता भले ही शूद्र का अन्न तथा वृषली स्त्री के पति द्वारा दिया अन्न ग्रहण करें तथापि जो स्त्री घर में उपपति रखती है, उसका अन्न ग्रहण नहीं करते। जो अकृतज्ञ (ऐहसान फरामोश) है, वह सदा कुत्सित कार्य करता है। जो अत्यन्त क्रोधी है, जिसका अन्तर्मन कुटिल है, ये चार तरह के व्यक्ति चाण्डाल रूप हैं। जो व्यक्ति जन्मत: चाण्डाल है, वे तथा उपरोक्त चार ये पांच चाण्डाल होते हैं। जो अल्प (सामान्य) दुष्ट शत्रु है, उसका भी विश्वास न करे। अल्प अग्नि भी संसार को दग्ध करती है। जो मनुष्य प्रारम्भ से ही शान्त है, वही शान्त है। यही मेरा मत है। जब वृद्धावस्था में धातु क्षीण होने से शरीर दुर्बल होता है, तब कौन शान्त नहीं होता। मार्ग पर जिस तरह सबका हक होता है, उसी प्रकार साधारण स्त्री पर सबका समान अधिकार होता है। एतदर्थ स्त्री निन्दा न करे। धातु से उत्पन्न देह मन के अधीन है। चित्त (मन) का नाश होते-होते ही धातु का क्षय होता है तथा शरीर भी नाश हो जाता है। अत: सदा चित्त रक्षणीय है। चित्त के वर्त्तमान रहने से ही बुद्धि की शक्ति बढ़ती है। स्वस्थ चित्त में ही धातु उत्पन्न होती है॥७०-७५॥

॥एक सौ चौदहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

नीति सार

सूत उवाच

कुभार्य्याञ्च कुमित्रञ्च कुराजानं कुपुत्रकम्। कुकन्याञ्च कुदेशञ्च दूरतः परिवर्जयेत्॥१॥

धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरङ्गतं
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः।
मर्त्याः स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नता
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः॥२॥

सूतजी ने कहा—कुभार्या, कुमित्र, कुराजा, कुसौहृद, कुबन्धु का दूर से त्याग करे। कलि में धर्म चला जाता है। धर्म की तरह तप भी चला जाता है। सत्य दूर हो जाता है। पृथिवी फलहीन हो जाती है। लोग कपटी हो जाते हैं। ब्राह्मणों में लालच समा जाती है। मनुष्य स्त्री के वशीभूत होते हैं। स्त्रियां चपल होती हैं। नीच लोग श्रेष्ठ हो जाते हैं। हाय! कितने कष्ट से लोग कलि में जीवन यापन करते हैं। वे धन्य हैं, वे धन्य हैं॥१-२॥

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम्। परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम्॥३॥

कुपुत्रे निर्वृतिर्नास्ति कुभार्य्यायां कुतो रतिः।
कुमित्रे नास्ति विश्वासःकुराज्ये नास्ति जीवितम्॥४॥

परान्नञ्च परस्वञ्च परशय्याः परस्त्रियः। परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि श्रियं हरेत्॥५॥

जो देश का भंग होना, कुल का नाश, परपुरुष में आसक्त स्त्री तथा वासना में आसक्त कुपुत्र को नहीं देख पाते, वे धन्य हैं। जिनकी सन्तान दुश्चरित्र है, उसका मन कभी स्थिर नहीं रहता। जिसकी पत्नी परपुरुष में आसक्त है, उसे रतिसुख कहां मिल पायेगा। मित्र दुःशील हैं, उन पर विश्वास नहीं होता। कुराज्य में जीवन की क्या आशा? सदा पराये अन्न का भोजन, पराई शय्या पर शयन, पराया धन ग्रहण, पराई नारी के प्रति लगाव तथा पराये घर में रहने से तो इन्द्र की भी लक्ष्मी का नाश होता है॥३-५॥

आलापाद्गात्रसंस्पर्शात्संसर्गात्सह भोजनात्।
आसनाच्छयनाद्यानात्पापं संक्रमते नृणाम्॥६॥

स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति। गावो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमः॥७॥

मनुष्यों में पाप का संक्रमण इस तरह से होता है। यथा—पापी से आलाप, उसके अंग का स्पर्श-संसर्ग (साथ), एक साथ भोजन, एक आसन पर बैठना, एक शय्या पर सोना तथा एक यान में आना-जाना। व्यक्ति जिससे आलाप करता है, उसके पाप का वह भागी हो जाता है। जब स्त्री अत्यन्त रूपवती हो, तब उसके कलुषित होने की संभावना हो जाती है। अधिक क्रोध करने से तप करने वाले

का तप नष्ट होता है। अत्यन्त दूर ले जाने से गौयें नष्ट हो जाती हैं। शूद्रान्न खाने से ब्राह्मणत्व का नाश होता है॥६-७॥

आसनादेकशय्याया भोजनात्पङ्क्तिसङ्करात्।
ततः संक्रमते पापं घटाद् घट इवोदकम्॥८॥
लालने बहषो दोषास्ताडने बहवो गुणाः। तस्माच्छिष्यञ्च पुत्रञ्च ताडयेन्न तु लालयेत्॥९॥
अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा। असंभोगश्च नारीणां वस्त्राणामातपो जरा॥१०॥

जो पापियों के साथ एक ही आसन पर बैठता है, एक ही शय्या पर सोता है, एक ही पंक्ति में भोजन करता है, उसमें पापी का पाप आ जाता है। जिस प्रकार से एक घट से अन्य घट में जल भरते हैं, वैसे ही एक से अन्य में पाप संचरित हो जाता है। सन्तानों के साथ सदा लाड़-प्यार करने से उनमें नाना दोष आते हैं, लेकिन ताड़न द्वारा उन पर शासन करने से उनमें अनेक गुणों का आगमन होता है। अतः शिष्य तथा पुत्र का ताड़न करे। उन पर लालन न करे। देहधारी के लिये मार्ग पर पर्यटन जरास्वरूप होता है। इससे शरीर क्षीण होता है। यदि पर्वत पर अधिक जल एकत्र हो जाये, वह पर्वत को विदीर्ण करके बाहर फूट पड़ता है। स्त्री से सम्भोग न करने पर उसकी जरावस्था होने लगती है। धूप में सदा वस्त्र रखना, यह वस्त्र की जरावस्था उत्पन्न करता है (जीर्ण कर देता है)॥८-१०॥

अधमाः कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥११॥
मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम्। प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं धनेन किमायुषा॥१२॥

जो निकृष्ट लोग हैं, उनकी इच्छा कलह की रहती है। मध्यम श्रेणी वाले सदा सन्धिकामी होते हैं। उत्तम लोग सदा सम्मान कामी होते हैं। मान ही सत्पुरुषों की पूंजी है। जिसके पास सम्मान है, उसे धन का क्या प्रयोजन। जिसके मान का दर्प नष्ट हो गया, उसे धन तथा जीवन (आयु) का क्या प्रयोजन?॥११-१२॥

अधर्मा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥१३॥

अधर्मी धन चाहते हैं। मध्यम लोग धन तथा मान दोनों चाहते हैं। उत्तम लोग केवल मान चाहते हैं। मान ही परम धन है॥१३॥

वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभुक्षिता नांशनिरीक्षणञ्च।
धनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्माणि समारभन्ति॥१४॥

वन में रहने वाला सिंह अत्यन्त भूखा होने पर भी किसी के सामने नत होकर भोजन नहीं मांगता। वह मस्तक झुका कर अपने बाहुमूल को भी नहीं देखता। उत्तम कुल के लोग धनहीन होकर भी हीन कर्म नहीं करते॥१४॥

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने। नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता॥१५॥

वणिक्प्रमादी भृतकश्च मानी भिक्षुर्विलासी ह्यधनश्च कामी।
वराङ्गना चाप्रियवादिनी च न ते च कर्माणि समारभन्ति॥१६॥
दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा।
परापकारेषु नरस्य मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च॥१७॥
कान्तावियोगः स्वजनापमानं ऋणस्य शेषः कुजनस्य सेवा।
दारिद्र्यभावाद्विमुखाश्च मित्रा विनाग्निना पञ्च दहन्ति तीव्राः॥१८॥
चिन्तासहस्रेषु च तेषु मध्ये चिन्ताश्चतस्रोऽप्यसिधारतुल्याः।
नीचापमानं क्षुधितं कलत्रं भार्य्या विरक्ता सहजोपरोधः॥१९॥

सिंह वन का निवासी है। उसका अभिषेकादि कोई संस्कार नहीं होता, तथापि अपने तेज से ही वह पशुराज है। यदि वणिक् अविश्वासी (विश्वास योग्य नहीं) है, भृत्य अभिमानी है, भिक्षुक विलासी तथा वाराङ्गना कटु बोलने वाली है, तब ये लोग अपना-अपना काम सफलता से नहीं कर सकते। यदि दाता दरिद्र हो, कृपण धनी हो, पुत्र अयोग्य हो, दुष्टों की सेवा करता हो, सबके अपकार में लगा रहे, ऐसा सज्जन हेतु मृत्युरूप है। पत्नी वियोग, स्वजनों से अपमान, ऋण रह जाना, कुजनों की सेवा, दरिद्रता तथा मित्रों का विमुख होना, ये सब बिना अग्नि के व्यक्ति को दग्ध कर देते हैं। मनुष्य सहस्रों चिन्ताओं से घिरा रहता है, जिनमें चार प्रधान हैं—ये तलवार की धार जैसी पीड़ा देने वाली हैं। वे हैं—नीचों द्वारा अपमानित किया जाना, पत्नी का भूखा होना, स्त्री की विरक्ति, भाईयों द्वारा उपरोध (बाधा पहुंचाना)। ये अतीव कष्टप्रद चार चिन्तायें हैं॥१५-१९॥

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च।
इष्टा च भार्य्या वशवर्त्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च॥२०॥
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गा मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमाथी स कथं न घात्यो यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥२१॥
अधीरः कर्कशः स्तब्धः कुचेलः स्वयमागतः।
पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि॥२२॥

पुत्रों का वश में होना, अर्थदायिनी विद्या प्राप्त होना, निरोग देह, सज्जनों का साथ, वशवर्त्तिनी पत्नी ये पांचों दुःख का मूलोच्छेद करते हैं। कुरंग, मातंग, पतंग, भृंग तथा मीन ये एक दूसरे के घातक होते हैं। जो इनकी हत्या करता है, ये पांचों उसकी हिंसा क्यों न करें। मनुष्य हिंसा भावना के कारण सभी जीवों की हत्या करता है। चंचल, कर्कश बोली वाले, स्तब्ध, बुरे वेश वाले, बिना बुलाये आये हुये यदि ये पांचों प्रकार के ब्राह्मण बृहस्पति जैसे क्यों न हों, उनका कोई आदर नहीं करेगा॥२०-२२॥

आयुः कर्म चरित्रञ्च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः॥२३॥
पर्वतारोहणे तोये गोकुले दुष्टनिग्रहे। पतितस्य समुत्थाने शस्ता ह्येते गुणाः स्मृताः॥२४॥

अभ्रच्छाया खले प्रीतिः परनारीषु सङ्गतिः।
पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च॥२५॥

व्यक्ति अपनी आयु, कर्म, चरित्र, विद्या, निधन का सदा चिन्तन करता रहे। पर्वत पर आरोहण, जल में तैरना, गौशाला में जाना, अपने निवास तथा जनपद की रक्षार्थ युद्धादि काम करना, पतित का उद्धार, यह करने में जो समर्थ है, वही उत्तम मनुष्य है। मेघ की छाया, दुष्ट से प्रेम, पराई नारी का साथ, यौवन तथा धन ये सब कदापि स्थिर नहीं रहते॥२३-२५॥

अस्थिरं जीवितं लोके ह्यस्थिरं धनयौवनम्।
अस्थिरं पुत्रदाराद्यं धर्मः कीर्त्तिर्यशः स्थिरम्॥२६॥
शतं जीवितमत्यल्पं रात्रिस्तस्यार्द्धहारिणी।
व्याधिशोकजरायासैरर्द्धं तदपि निष्फलम्॥२७॥
आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रो तदर्द्धं हृतं।
तस्यार्द्धं स्थित किञ्चिदर्द्धमधिकं बालस्य काले हृतम्॥२८॥
किञ्चिद्बन्धुवियोगदुःखमरणैर्भूपालसेवागतं ।
शेषं वारितङ्गगर्भचपलं मानेन किं मानिनाम्॥२९॥

संसार में जीवन, धन, यौवन, पुत्र, स्त्री आदि अस्थिर होते हैं। परन्तु धर्म, कीर्त्ति, यश स्थिर है। मनुष्य की सौ वर्ष की परमायु अत्यन्त कम प्रतीत होती है। उसमें से भी आधी आयु रात्रि में व्यतीत हो जाती है। बाकी आधी शोक, रोग, वृद्धावस्था में व्यर्थ चली जाती है। सौ वर्ष की परमायु में ५० वर्ष निद्रा में चले जाते हैं। बाकी बची आयु का कुछ भाग बाल्यावस्था में, कुछ बन्धु आदि के मरण दुःख तथा वियोग दुःख में, कुछ अंश राजा की सेवा में बीत जाता है। जो किंचित् आयु बचती भी है, वह जलतरंगवत् चपल रहती है। अतएव मान आदि से क्या लाभ?॥२६-२९॥

अहो रात्रोमयो लोके जरारूपेण सञ्चरेत्।
मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवनं पन्नगो यथा॥३०॥
गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतो न चेत्।
सर्वसत्त्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम्॥३१॥

यह लोक दिनरात मय है। यहां अहोरात्र में जरारूप सदा विचरण करता है। यहां प्राणीगण का ग्रास मृत्यु कर लेती है। जैसे नाग वायु का ग्रास करता है, वैसे काल सबको ग्रस लेता है। यहां चलते, बैठते, सोते, स्वप्न देखते व्यक्ति हर समय प्राणीगण का हितचिन्तन करे। सदा पशु की तरह आहार, निद्रा, भय, स्वार्थ, मैथुन में ही न लगा रहे॥३०-३१॥

अहितहितविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिसमये बहुभिर्वितर्कितस्य।
उदरभरणमात्रतुष्टबुद्धेः पुरुषपशोः पशोश्च को विशेषः॥३२॥

शौर्य्ये तपसि दाने च यस्य न प्रथितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः।
सज्जीवितं क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमानैः।
तन्नाम जीवितमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते॥३३॥
किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन मित्रेण किं भवति वेति सशङ्कितेन।
सिंहव्रतञ्चरत गच्छत माविषादं काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते॥३४॥

जिसकी बुद्धि हित-अहित के विचार से रहित है, जो कोई बात सुनते समय अनेक तर्क-वितर्क करता है, जो पेट भरने मात्र से सन्तुष्ट हो जाता है, उस पशु तथा जंगली पशु में अन्तर क्या? जिसने शौर्य, तप, दान में यश अर्जित नहीं किया, विद्या तथा धनलाभ करते जिसने यश नहीं पाया, वे तो माता के मल स्वरूप हैं। जो अपने विज्ञान, विक्रम, यश से प्रसिद्ध हैं, उनका जन्म धन्य है। जो केवल उदरपोषण करने में ही तत्पर रहता है, वह तो मनुष्य ही नहीं है। कौआ तथा मनुष्यों द्वारा प्रदत्त बलि का आहार करके जीता रहता है॥३२-३४॥

यो वात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे दीने दयां न कुरुते न च मित्रकार्य्ये।
किं तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते॥३५॥
यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च। स लौहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥३६॥

स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः॥३७॥
स्वपुरा वै कापुरुषाः स्वपुरो मूषिकाञ्जलिः।
असन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति॥३८॥

आत्मा, गुरु, भृत्यवर्ग तथा दीनों पर जो सदा कृपालु नहीं रहता, जो मित्रों का हित कार्य नहीं करता, उसके जीवित रहने का क्या लाभ? कौआ भी दीर्घकाल तक बलि भोजन करता जीवित रहता है। जो अपना पूरा दिन व्यर्थ कामों में व्यर्थ कर देता है, लेकिन जो त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) हेतु कोई प्रयास नहीं करता, वह जीवित भी मृतप्रायः है। स्वाधीन वृत्ति पाना ही व्यक्ति की सफलता है। पराधीन वृत्ति सफलता नहीं है। जो स्वाधीन वृत्ति से जीविका कमाते हैं, वे धन्य हैं। जो अपना पेट भर कर ही सन्तोष करते हैं, वे कापुरुष हैं। चूहा भी अपनी अंजलि (पेट) भर लेता है। जो असन्तुष्ट हैं, वे कापुरुष ही होते हैं, लेकिन सत्पुरुष अल्प से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं॥३५-३८॥

अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथे जलम्।
वेश्यारागः खले प्रीतिः षडेते बुद्बुदोपमाः॥३९॥
वाचा विहितसार्थेन लोको न च सुखायते।
जीवितं मानमूलं हि माने म्लाने कुतः सुखम्॥४०॥

अबलस्य बलं राजा बालस्य रुदितं बलम्।
बलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करस्यानृतं बलम्॥४१॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथाऽस्य मेधा स्याद्विज्ञानञ्चास्य रोचते॥४२॥

बादलों की छाया, घास-फूस की आग, मार्ग का जल, वेश्या का लगाव, खल व्यक्ति से प्रेम, यह सभी जल के बुलबुले जैसा क्षणभंगुर है। लोगों में जिसका सम्मान हो, यश बखाना जाये, उसी का जीवन सुखी है। सम्मान ही जीवन का मूल है। मानहीन को सुख कहां? दुर्बल का बल है राजा, बालक का बल है रुदन, मौन मूर्ख का बल है। तस्कर का बल है झूठ बोलना। मनुष्य को चाहिये कि वह जो-जो शास्त्र पढ़ता है, उसका दृढ़ अभ्यास करके स्वयं को मेधावी तथा विज्ञानमय बनाये॥३९-४२॥

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम्।
तथा तथा हि सर्वत्र शिलष्यते लोकसुप्रियः॥४३॥
लोभप्रमादविश्वासैः पुरुषो नश्यति त्रिभिः।
तस्माल्लोभो न कर्त्तव्यः प्रमादो नो न विश्वसेत्॥४४॥

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्। उत्पन्ने तु भये तीव्रे स्थातव्यं वै ह्यभीतवत्॥४५॥
ऋणशेषञ्चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च। पुनः पुनः प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत्॥४६॥
कृते प्रतिकृतं कुर्य्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम्। न तत्र दोषं पश्यामि दुष्टे दोषं समाचरेत्॥४७॥

मनुष्य जहां-जहां रहे, वहां के लोगों के मेल-जोल रखकर उनका प्रिय पात्र बने। लोभ, प्रमाद एवं (गलत लोगों पर) विश्वास द्वारा लोक नष्ट होता है। लोभ त्यागे। सदा चौकन्ना रहे और सभी का विश्वास न करे। जब तक भय सामने न आये, तब तक भय करे, लेकिन जब तीव्र भय सामने आ जाये, तब निर्भयता पूर्वक उसका सामना करे। ऋण, अग्नि तथा शत्रु को बनाये न रखे। इनको समाप्त करे। ऋण रहना उचित नहीं है। अग्नि बनी रहने पर अग्निकाण्ड का भय रहता है। शत्रु को छोड़े रखने से सर्वदा आशंक बनी रहती है। ये सब यदि बचे रहते हैं, तब क्रमशः बढ़ कर अनिष्ट करते हैं। उपकारी व्यक्ति का प्रत्युपकार (उपकार के बदले उपकार) करे। हिंसक की हिंसा करे। दुष्ट के साथ उसी की तरह व्यवहार करे। इससे कोई दोष नहीं होगा॥४३-४७॥

परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत्तादृशं मित्रं मायामयमरिन्तथा॥४८॥
दुर्जनस्य हि सङ्गेन सुजनोऽपि विनश्यति। प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमैः कलुषीकृतम्॥४९॥

सम्यग्भुङ्क्ते जनः सो हि द्विजायार्थो हि यस्य वै।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्विजः पूज्यः प्रयत्नतः॥५०॥
तद्भुज्यते यद्द्विजभुज्यशेषं स बुद्धिमान्यो न करोति पापम्।
तत्सौहृदं यत्क्रियते परोक्षे दम्भैर्विना यः क्रियते स धर्मः॥५१॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति नैतत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्॥५२॥
ब्रह्मणोऽपि मनुष्याणामादित्यश्चैव तेजसाम्।
शिरोऽपि सर्वगात्राणां व्रतानां सत्यमुत्तमम्॥५३॥

जो सामने प्रिय बोलते हैं, लेकिन पीठ पीछे काम बिगाड़ते हैं, ऐसे छल करने वाले मित्र का तत्काल त्याग करे। दुर्जन के साथ से सज्जन का चरित्र दूषित होता है। अत्यन्त निर्मल जल कीचड़ पड़ने से मलिन हो जाता है। ब्राह्मण जो कुछ भोग करते हैं, वही सद्भोग है। यत्नतः ब्राह्मण की पूजा करे। द्विज के भोजन करने के पश्चात् घर में बचा भोजन ही यथार्थ भोजन है। जो पाप नहीं करता, वही बुद्धिशाली है। जो विना बताये उपकार करे, वही यथार्थ वन्धु है। विना दम्भ किये जो धर्म किया जाये, वही वास्तविक धर्म है। जहां वृद्ध नहीं है, वह सभा व्यर्थ है। जिस धर्म में छल हो, सत्य न हो, वह वास्तविक धर्म ही नहीं है। मनुष्यों में ब्राह्मण, तेजस्वी लोगों में सूर्य, शरीर में मस्तक तथा व्रतों में सत्य व्रत प्रधान कहा गया है॥४८-५३॥

तन्मङ्गलं यत्र मनः प्रसन्नं तज्जीवनं यन्न परस्य सेवा।
तदर्जितं यत्स्वजनेन भुक्तं तद्गर्जितं यत्समरे रिपूणाम्॥५४॥
सा स्त्री या न मदं कुर्य्यात्स सुखी तृष्णयोज्झितः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरुषः स जितेन्द्रियः॥५५॥

मन में जिस किसी अच्छे कार्य आदि से प्रसन्नता का संचार हो, वही मंगलमय है। जो पराई सेवा से जीविका नहीं चलाता, वही जीवन यथार्थ जीवन है। जो उपार्जित धन स्वजनगण भोग करें, वही यथार्थ उपार्जन है। जो सभा में रिपुगण पर गर्जन करे, वही यथार्थ गर्जन है। श्रेष्ठ स्त्री वही है, जो मदमत्त नहीं होती। वही मानव यथार्थतः सुखी है, जिसे विषयों की तृष्णा नहीं है। जो पूर्णतः विश्वस्त हो, वही मित्र है। वास्तविक पुरुष वह है, जिसने इन्द्रियों को जय कर लिया॥५४-५५॥

तत्र मुक्तादरस्नेहो विलुप्तं यत्र सौहृदम्।
तदेव केवलं श्लाघ्यं यस्यात्मा क्रियते स्तुतौ॥५६॥
नदीनामग्निहोत्राणां भारतस्य कुलस्य च। मूलान्वेषो न कर्त्तव्यो मूलाद्दोषेण हीयते॥५७॥
लवणजलान्ता नद्यः स्त्रीभेदान्तञ्च मैथुनम्।
पैशुन्यं जनवार्त्तान्तं वित्तं दुःखकृतान्तकम्॥५८॥
राज्यश्रीर्ब्रह्मशापान्ता पापान्तं ब्रह्मवर्चसम्।
आचारं घोषवासान्तं कुलस्यान्तं स्त्रियः प्रभोः॥५९॥
सर्वे क्षयान्ता निलयाः पतनान्ताः समुच्छ्रिताः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥६०॥

जो लोग मात्र अपनी प्रशंसा किया करते हैं, उनका सम्मान, उनसे प्रेमपूर्ण वृत्ति रखना नहीं चाहिये। नदी, अग्निहोत्र, भारत एवं कुल का मूल न खोजे। मूल को खोजने से दोष होता है। नदी का सीमान्त समुद्र है। मैथुन की सीमा स्त्री की चंचलता है, चुगली की सीमा है जनवार्त्ता, धन की सीमा है मृत्यु, दुःख। ब्राह्मण के शाप से राजश्री नष्ट होती है, पाप से ब्रह्मतेज नष्ट होता है। गोपों के साथ रहने से आचार का नाश होता है। स्त्री के कारण (उसकी चंचलता से) कुल का नाश होता है। संचय का अन्त क्षय से होता है, उच्चता का अन्त नीचे गिरने से होता है। संयोग का अन्त वियोग से तथा जीवन का अन्त मरण से हो जाता है॥५६-६०॥

यदीच्छेत्पुनरागन्तुं नातिदूरमनुव्रजेत्। उदकान्तान्निवर्त्तेन स्निग्धपर्णाच्च पादपात्॥६१॥

अनायके न वस्तव्यं न वा च बहुनायके।
स्त्रीनायके न वस्तव्यं तथा च बालनायके॥६२॥
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥६३॥
त्यजेद्बन्ध्यामष्टमेऽब्दे नवमे तु मृतप्रजाम्।
एकादशे स्त्रीजननीं सद्यश्चाप्रियवादिनीम्॥६४॥

यदि पुनः अपने स्थान पर व्यक्ति लौटना चाहे, तब दूर न जाये। जल तक जाकर अथवा स्निग्ध पत्ते वाले वृक्ष पर्यन्त जाकर लौट आये। जिस देश का कोई मालिक (राजा-शासक) नहीं है अथवा जहां के कई मालिक हों, जहां की मालिक स्त्री अथवा बालक हो, उस राज्य में रहना उचित नहीं है। नारी का पालक बाल्यकाल में पिता, यौवनकाल में पति, प्रौढ़ावस्था में पुत्र करता है। वह कभी भी स्वाधीन न रहे। पति वन्ध्या स्त्री की आठ वर्ष तक सन्तानोत्पत्ति की प्रतीक्षा करके उसका त्याग कर सकता है। जिसकी सन्तान मृत हो जाती हो, उसके सन्तान के बचने की प्रतीक्षा ९ वर्ष तक करे। तदनन्तर सन्तान न होने पर उसका त्याग कर सकता है। जो केवल कन्या को ही जन्म दे, उसके पुत्र सन्तान होने की प्रतीक्षा ११ वर्ष तक करने पर पुत्र सन्तान न हो, तब पति उस नारी को त्याग सकता है। लेकिन अप्रिय बोलने वाली नारी का पति तत्काल त्याग करे॥६१-६४॥

अनर्थित्वान्मनुष्याणां भिया परिजनस्य च। अर्थादपेतमर्य्यादास्त्रयस्तिष्ठन्ति भर्तृषु॥६५॥

अश्वं श्रान्तं गजं मत्तं गावः प्रथमसूतिकाः।
अनूदके च मण्डूकान्प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत्॥६६॥
अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः कामातुराणां न भयं न लज्जा।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां लवणं न तेजः॥६७॥
कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यवरस्य च। परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च॥६८॥
सुखं स्वपित्यनृणवान्व्याधिमुक्तश्च यो नरः।
सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः॥६९॥

अम्भसः परिमाणेन उन्नतं कमलं भवेत्।
स्वस्वामिना बलवता भृत्यो भवति गर्वितः॥७०॥

जो व्यक्ति सच्चा मित्र है, याचकों की मांग को वह व्यर्थ नहीं करता। वह सदा परिजन के पालन के लिये चिन्तित रहता है। धन के निमित्त मर्यादा का नाश नहीं करता। थके घोड़े, मदमत्त हाथी, पहली बार बच्चा देने वाली गौ तथा जलरहित मेढक (जो विषैले होते हैं) का बुद्धिमान व्यक्ति दूर से त्याग करे। कंजूस व्यक्ति का अपना तथा बन्धु कोई नहीं होता। चिन्तातुर मानव चैन से सो नहीं पाता तथा भूखे व्यक्ति में बल-वीर्य नहीं होता। जो दरिद्र है, दूसरे का मुहताज है, पराई स्त्री में आसक्त है, पराया धन हरण करता है, उसे निद्रा कहां? जो ऋणरहित, रोगरहित है, किसी कार्य के तथा स्त्री के प्रति जिसकी अनुरक्ति नहीं है, वह सुखपूर्वक शयन करता है। जल के माप के अनुसार ही कमलनाल ऊपर उठता है। इसी प्रकार अपने स्वामी की सामर्थ्य पर ही भृत्यगण गर्वित होते हैं॥६५-७०॥

स्थानस्थितस्य पद्मस्य मित्रौ वरुणभास्करौ।
स्थानच्युतस्य तस्यैव क्लेशशोषणकारकौ॥७१॥
पदे स्थितस्य मित्रा ये ते तस्य रिपुतां गताः।
भानोः पद्मे जले प्रीतिः स्थलोद्धरणशोषणः॥७२॥
स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः॥७३॥

जब कमल जल में रहता है, तभी तक वरुण तथा सूर्य उससे बन्धुवत् व्यवहार रखते हैं। जब कोई उसे तोड़ कर पृथिवी पर ले आता है, तब वरुण उसे मुरझा देते हैं, सूर्य उसकी नमी सोखते हैं। जो जब तक अपनी जगह पर तथा अपने पद पर है, तभी तक लोगों द्वारा वह पूजित होता है। स्थानच्युत का कोई आदर ही नहीं करता। अपने स्थान से भ्रष्ट मनुष्य, केश, दांत, नख पूजित नहीं होते॥७१-७३॥

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषितम्।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्॥७४॥

आचार-व्यवहार देखने से व्यक्ति का कुल ज्ञात होता है। भाषा सुनकर उस व्यक्ति के देश की जानकारी हो जाती है। सम्भ्रम से स्नेह ज्ञात होता है तथा शरीर देखकर भोजन परिमाण की जानकारी हो जाती है॥७४॥

वृथा वृष्टिः समुद्रस्य तृप्तस्य भोजनं वृथा।
वृथा दानं समृद्धस्य नीचस्य सुकृतं यथा॥७५॥
दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थितः।
हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरतः॥७६॥
मुखभङ्गः स्वरो दीनो गात्रस्वेदो महद्भयम्।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचतः॥७७॥

कुब्जस्य कीटघातस्य वातान्निष्कासितस्य च।
शिखरे वसतस्तस्य वरं जन्म न याचितम्॥७८॥
जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनताङ्गतः।
कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम्॥७९॥
माता शत्रुः पिता वैरी बाला येन न पाठिताः।
सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये वका यथा॥८०॥

समुद्र पर होने वाली वर्षा व्यर्थ है। तृप्त का भोजन व्यर्थ है। समृद्ध को दान देना व्यर्थ है। नीचात्मा द्वारा किया हुआ सुकृत व्यर्थ है। जो जिसके हृदय में बसा है, वह दूर होकर भी निकट ही है। जो जिसके लिये अप्रिय है, वह बगल में बैठा होकर भी दूर ही है। याचक व्यक्ति जब याचना कर रहा हो, तब मुखविकृति, स्वरभंग, देह में पसीना आना, तब महाभय होना मरण चिह्न है। भले ही कीड़ा खाये, कुबड़ा हो, वातपीड़ित हो, पर्वत शिखर पर जाकर रहे, वह ठीक है, परन्तु याचना न करे। जो विश्वपति हरि हैं, उनको भी बलि के यज्ञ में याचना हेतु वामन होना (छोटा होना) पड़ा था। इन विष्णु से बढ़ कर कौन है? तथापि याचना से वे वामन हो गये। जो माता-पिता बालक को नहीं पढ़ाते, वे माता-पिता बालक के दुश्मन हैं, लेकिन वह बालक चाहे कितना भी सजाया क्यों नहीं जाये, वह सभा में उसी प्रकार शोभित नहीं होता, जैसे हंसों के बीच बगुला अच्छा नहीं लगता॥७५-८०॥

विद्या नाम कुरूपरूपमधिकं विद्यातिगुप्तं।
धनं विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥८१॥
विद्याबन्धुजनार्त्तिनाशनकरी विद्या परं दैवतं।
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः॥८२॥
गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्यं लग्नञ्चैव तु दृश्यते। अशेषं हरणीयञ्च विद्या न ह्रियते परैः॥८३॥
शौनकाय नीतिसारं विष्णुः सर्वव्रतानि च। कथयामास वै पूर्वं तत्र शुश्राव शङ्करः।
शङ्कराच्च श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च॥८४॥

॥इति गारुडे महापुराणे नीतिसारे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११५॥

कुरूप का भी रूप है विद्या, वह गुप्त धन है। विद्या से असाधु साधु हो जाता है। यह अप्रिय को भी प्रिय बना देती है। विद्या गुरु की गुरु, बन्धुओं की पीड़ा का नाश करने वाली, परम देवतारूप है। विद्या राजा से पूजित कराती है। यही धनी का धन है। विद्याविहीन व्यक्ति पशु है। गृह स्थित धन तो चोर चोरी कर सकता है, परन्तु विद्या का हरण कोई नहीं कर सकता। हे शौनक! श्रीविष्णु ने एवंविध शिव से नीतिसार कहा था। महादेव से इसे व्यासजी ने तथा व्यासजी से मैंने सुना॥८१-८४॥

॥एक सौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

विभिन्न तिथियों के व्रतों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि हरिर्यैः सर्वदो भवेत्। सर्वमासर्क्षतिथिषु वारेषु हरिरर्च्चितः॥१॥
एकभक्तेन नक्तेन उपवासफलादिना। ददाति धनधान्यादि पुत्रराज्यजयाशया॥२॥
वैश्वानरः प्रतिपदि कुबेरः पूजितोऽर्थदः। उपोष्य ब्रह्मा प्रतिपद्यर्च्चितः श्रीस्तथाश्विनीम्॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! अब व्रतविधि सुनो। इस नियम से व्रत करने से हरि उस व्यक्ति को सब कुछ प्रदान करते हैं। सभी महीनों, नक्षत्रों तथा तिथियों पर हरि की आराधना करनी चाहिये। साधक को चाहिये कि वह एकाहारी अथवा रात्रिभोजी, उपवासी, फलमूल का आहार करने वाले व्रत का वरण करे तथा पुत्र प्राप्ति अथवा राज्य जीतने के लिये हरि के नाम पर धन-धान्य का दान करें। यदि प्रतिपदा के दिन वैश्वानर अग्नि तथा कुबेर की पूजा की जाये, वे धन देते हैं। इस दिन उपवास करके जो ब्रह्मा की पूजा करता है, उसे ब्रह्मा घोड़ी तथा श्री प्रदान करते हैं॥१-३॥

द्वितीयायां यमो लक्ष्मीर्नारायण इहार्थदः। तृतीयायां त्रिदेवांश्च गौरीविघ्नेशशङ्करान्॥४॥
चतुर्थ्याञ्च चतुर्व्यूहः पञ्चम्यामर्चितो हरिः। कार्त्तिकेयो रविः षष्ठ्यां सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः॥५॥
दुर्गाष्टम्यां नवम्याञ्च मातरोऽथ दिशोऽर्थदाः। दशम्याञ्च यमश्चन्द्र एकादश्यामृषीन्यजेत्॥६॥
द्वादश्याञ्च हरिः कामस्त्रयोदश्यां महेश्वरः। चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽर्थदाः॥७॥

अमावस्यां पूजनीया वारा वै भास्करादयः।
नक्षत्राणि च योगाश्च पूजिताः सर्वदायकाः॥८॥

।इति गारुडे महापुराणे तिथ्यादिव्रतकथनं नाम षोडशाधिकततमोऽध्यायः॥११६॥
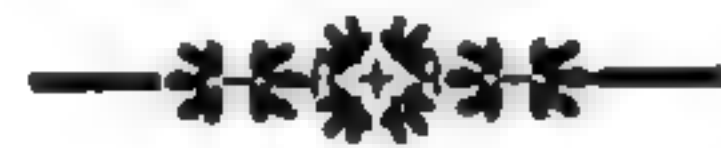
द्वितीया को यम अथवा लक्ष्मी-नारायण की पूजा अर्थप्रद होती है। तृतीया को गौरी, गणेश, शंकर की पूजा करे। चतुर्थी को चतुर्व्यूह की, पंचमी को हरि की, षष्ठी को कार्त्तिकेय तथा रवि की पूजा करे। सप्तमी को भास्कर की पूजा धनप्रद होती है। दुर्गाष्टमी तथा नवमी को मातृगण अथवा दिक्पाल पूजा अर्थप्रदा होती है। दशमी को यम तथा चन्द्र की, एकादशी को ऋषियों की पूजा करे। द्वादशी को हरि की, त्रयोदशी को काम की पूजा करे। चतुर्दशी को महेश्वरार्चन करे। पञ्चदशी को ब्रह्मा की तथा पितरों की पूजा अर्थप्रद है। अमावस्या को सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि की, नक्षत्र तथा योगों की पूजा सर्वप्रदायक है॥४-८॥

॥एक सौ सोलहवां अध्याय समाप्त॥
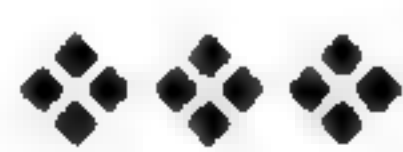
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

अनंग त्रयोदशी व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

मार्गशीर्षे सिते पक्षे व्यासानङ्गत्रयोदशी। मल्लिकाजं दन्तकाष्ठं धुस्तूरैः पूजयेच्छिवम्॥१॥
अनङ्गायेति नैवेद्यैर्मधु प्राश्याथ पौषके। योगेश्वरं पूजयेच्च बिल्वपत्रैः कदम्बजम्।
दन्तकाष्ठञ्चन्दनादि नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत्॥२॥
माघे नटेश्वरायार्च्य कुन्दैर्मौक्तिकमालया। प्लक्षेण दन्तकाष्ठञ्च नैवेद्यं पूरिका मुने॥३॥
वीरेश्वरं फाल्गुने तु पूजयेत्तु मरूवकैः। शर्कराशाकमण्डलांश्च चूतजं दन्तधावनम्॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! अगहन मास की शुक्ला त्रयोदशी अनंग त्रयोदशी है। इस दिन मल्लिका का दन्तकाष्ठ शिव को (दतुअन) निवेदित करे तथा धतूरा के फूलों से उनकी पूजा करे। पौष मास में मधुप्राशन करके नाना प्रकार के नैवेद्य अनंगदेव (कामदेव) को देना चाहिये। बेल के पत्तों से महेश्वर की अर्चना करके कदम्ब की दतुअन, चन्दन, नैवेद्य, शष्कुली नैवेद्य प्रदान करे। हे मुनिवर व्यास! माघ में कुन्द फूल तथा मुक्ता की माला नटेश्वर को अर्पित करके पाकड़ की दतुअन, नैवेद्य, पूड़ी अर्पित करे। फाल्गुन मास में मरुवक पुष्प से वीरेश्वर शिव की पूजा करके चीनी, शाक तथा मांड़ अर्पित करके आम्रवृक्ष की दतुअन अर्पित करे॥१-४॥

चैत्रे यजेत्सुरूपाय कर्पूरं प्राशयेदिति। दन्तधावनं वटजं नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत्॥५॥
पूजा च मोदकैः शम्भोर्वैशाखेऽशोकपुष्पकैः। महारूपाय नैवेद्यं गुडभक्तं ह्युदुम्बरम्॥६॥
दन्तकाष्ठं प्रायशेच्च ददेज्जातीफलं तथा। प्रद्युम्नं पूजयेज्ज्यैष्ठे चम्पकैर्बिल्वजं ददेत्॥७॥
लवङ्गाशन्तथाषाढे उमाभद्रेतिशासनः। अगुरुं दन्तकाष्ठञ्च तमपामार्गकैर्यजेत्॥८॥
श्रावणे करवीरञ्च शम्भवे शूलपाणये। गन्धासनो घृताद्यैश्च करवीरजशोधनम्॥९॥
सद्योजातं भाद्रपदे वकुलैः पूपकैर्यजेत्। गन्धर्वाशो मदनजमाश्विने च सुराधिपम्॥१०॥

चैत्र मास में कर्पूर का प्राशन करके सुरूप देवता की पूजा करे। वट वृक्ष की दतुअन, शष्कुली नैवेद्य तथा अन्य नैवेद्य अर्पित करे। "ॐ महारूपाय नमः" मन्त्र से नैवेद्य, गुड़ान्न तथा गूलर की दतुअन और जातीफल अर्पित करे। ज्येष्ठ मास में चम्पा पुष्प से प्रद्युम्न देव की पूजा करके बेल की दतुअन प्रदान करे। साधक लवंग खाकर आषाढ़ मास में अगुरु की दतुअन दे तथा अपामार्ग पुष्प से 'ॐ उमाभद्राय नमः' मन्त्र से अर्चना करे। सावन मास में "ॐ शूलपाणये शम्भवे नमः" से पूजा करे। गन्ध, कनेर, पुष्प, घृत आदि उपहार तथा कनेर की दतुअन प्रदान करे। भाद्रपद मास में बकुलपुष्प तथा मालपूआ से पूजा करे। "ॐ सद्योजाताय नमः" से पूजा करे तथा मदन वृक्ष की दतुअन निवेदित करे। इस प्रकार सुराधिप की पूजा करे॥५-१०॥

चम्पकैः स्वर्णवार्य्यादो यजेन्मोदकसंप्रदः।
खादिरं दन्तकाष्ठञ्च कार्त्तिके रुद्रमर्चयेत्॥११॥
वदर्य्या दन्तकाष्ठञ्च दशनो दशमाशनः। क्षीरशाकप्रदः पद्मैरब्दान्ते शिवमर्चयेत्॥१२॥

आश्विन महीने में चम्पा के फूल से सुराधिप की पूजा करके लड्डू का नैवेद्य अर्पित करके खदिर वृक्ष की दतुअन प्रदान करे। कार्त्तिक मास में बदरी वृक्ष की दतुअन प्रदान करके रुद्रदेव की पूजा करे। क्षीर तथा शाक अर्पित करके वर्ष के अन्त में पद्मपुष्प से पूजा करे॥११-१२॥

रतियुक्तमनङ्गञ्च स्वर्णमण्डलसंस्थितम्। गन्धाद्यैर्दशसाहस्त्रं तिलव्रीह्यादि होमयेत्॥१३॥
जागरं गीतवादित्रं प्रभातेऽभ्यर्च्य वेदयेत्। द्विजाय शय्यां पात्रञ्च छत्रं वस्त्रमुपानहौ॥१४॥
गान्दिजं भोजयेद्भक्त्या कृतकृत्यो भवेन्नरः। एतदुद्यापनं सर्वं व्रतेषु ध्येयमीदृशम्।
फलञ्च श्रीयुतारोग्यसौभाग्यसर्वभाग्भवेत्॥१५॥

।इति गारुडे महापुराणे अनङ्गत्रयोदशीव्रतं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११७।।
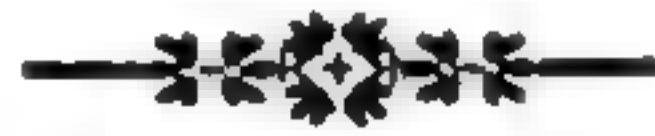
स्वर्णमण्डल में स्थापित रति-कामदेव की पूजा गन्धादि उपचारों से करनी चाहिये। तिल तथा ब्रीहि से १०००० होम भी करे। रात्रि में गीत-वाद्यादि द्वारा उत्सव करते हुये इनके समक्ष रात्रि जागरण करे। प्रात: पुन: पूजनोपरान्त ब्राह्मण को शय्या, पात्र, छत्र, वस्त्र, जूता प्रदान करे। तदनन्तर गौ-ब्राह्मण को भोजनार्पण के पश्चात् व्रती कृतकृत्य हो जाता है। इसका एक वर्ष तक अनुष्ठान करना होगा। यही मदन त्रयोदशी व्रत है। इससे स्त्री, पुत्र, आरोग्य तथा सौभाग्यलाभ होता है॥१३-१५॥

॥एक सौ सत्रहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अखण्ड द्वादशी व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

व्रतं कैवल्यशमनमखण्डद्वादशीं वदे। मार्गशीर्षे सिते पक्षे गव्याशी समुपोषितः॥१॥
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं दद्यान्मासचतुष्टयम्। पञ्चव्रीहियुतं पात्रं विप्रायेदमुदाहरेत्॥२॥
सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मयाखण्डव्रतं कृतम्। भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥३॥
यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तमः। तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्त्युत॥४॥

सक्तुपात्राणि चैत्रादौ श्रावणादौ घृतान्वितान्।
व्रतकृद् व्रतपूर्णन्तु स्त्रीपुत्रस्वर्गभाग्भवेत्॥५॥

॥इति गारुडे महापुराणे अखण्डद्वादशीव्रतं नाम अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः॥११८॥

ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! अब मैं कैवल्य प्रदान करने वाली अखण्ड द्वादशी व्रत विधि कहता हूं। अगहन शुक्लपक्ष में एकादशी को केवल पंचगव्य भोजन करके द्वादशी को उपवास करे। सविधि हरि पूजा करे। तदनन्तर अग्रहायण, पौष, माघ, फाल्गुन में ब्राह्मण को पांच प्रकार की ब्रीही भरे पात्र दान करे। मन्त्र है—"हे प्रभो! मैंने सात जन्मों तक जो सुकृति किया था, आपकी कृपा से वह अखण्ड हो जाये। जगत् अखण्ड है, आप पुरुषोत्तम हैं, अत: मेरा व्रत अखण्ड हो जाये।" तत्पश्चात् चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ में पूर्ववत् विष्णुपूजा करके ब्राह्मण को घृत भरा पात्र दान करे। ऐसा व्रत जो एक वर्ष करता है, उसका अखण्ड द्वादशी व्रत सम्पन्न हो जाता है। इस व्रत के करने से व्रती मानव इस लोक में स्त्री-पुत्रादिलाभ करता है। अन्त में वह स्वर्ग जाता है॥१-५॥

॥एक सौ अट्ठारहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्यार्घ्य व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यार्घ्यव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
अप्राप्ते भास्करे कन्यां सतिभागे त्रिभिर्दिनैः॥१॥
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय मूर्त्तिं संपूज्य वै मुने। काशपुष्पमयीं कुम्भे प्रदोषे कृतजागरः॥२॥
दध्यक्षताद्यैः संपूज्य उपोष्य फलपुष्पकैः। पञ्चवर्णसमायुक्तं हेमरौप्यसमन्वितम्॥३॥
सप्तधान्ययुतं पात्रं दधिचन्दनचर्चितम्। अगस्त्यः खलमानेति मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत्॥४॥
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥५॥
शूद्रस्त्र्यादिरनेनैव त्यजेद्धान्यं फलं रसम्। दद्याद् द्विजातये कुम्भं सहिरण्यं सदक्षिणम्।
भोजयेच्च द्विजान्सप्त वर्षान्कृत्वा तु सर्वभाक्॥६॥

॥इति गारुडे महापुराणे अगस्त्यार्घ्यव्रतं नाम ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥११९॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह भुक्तिमुक्तिदायक अगस्त्यार्घ्य व्रत कहता हूं। भाद्र महीने के अन्तिम तृतीय भाग में तीन दिन यह व्रत करे। घट में काशपुष्प की अगस्त्य की मूर्त्ति बनाकर प्रदोषकाल में पूजा करे। तब अगस्त्यदेव को अर्घ्य देकर रात्रि में जागे। व्रती व्यक्ति उपवासी रहे तथा दधि-अक्षत-फल-पुष्प से इन देव की पूजा करे तथा अर्घ्य दे। अर्घ्यपात्र पांच प्रकार के मुक्ता आदि रत्न से युक्त हो। चांदी-स्वर्ण युक्त हो, उसमें सातों धान्य हों। उसे दधि-चन्दन से लिप्त करके इस मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिये। यथा—"हे अगस्त्य! आप काशपुष्प के समान आभा पाते, अग्नि-मरुत् से उत्पन्न, मित्रावरुण पुत्र तथा कुम्भ योनि हैं। आपको प्रणाम!" शूद्र तथा स्त्री भी यह व्रत कर सकते हैं। इसका व्रती धान्य, फल तथा रस भक्षण न करे। ब्राह्मण को स्वर्णदक्षिणा प्रदान करे। वह कुंभ में रख कर दान करे। तदनन्तर ब्राह्मण भोजन करने से व्रत पूर्ण होगा। ऐसा सात वर्ष करने वाला सभी सम्पदालाभ करता है॥१-६॥

॥एक सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रम्भा तृतीया व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

रम्भातृतीयां वक्ष्ये च सौभाग्यश्रीसुतादिदाम्। मार्गशीर्षे सिते पक्षे तृतीयायामुपोषितः॥१॥
गौरीं यजेद्बिल्वपत्रैः कुशोदककरस्ततः। कादम्बदो गिरिसुतां पौषे मरुवकैर्यजेत्॥२॥
कर्पूरादः कृशरदो मल्लिकादन्तकाष्ठकृत्। माघे सुभद्रां कह्लारैर्घृताशो मण्डकप्रदः॥३॥
गीतीमयं दन्तकाष्ठं फाल्गुने गोमतीं यजेत्।
कुन्दैः कृत्वा दन्तकाष्ठं जीवाशः शष्कुलीप्रदः॥४॥
विशालाक्षीं मदनकैश्चैत्रे कृशरसम्प्रदः। दधिप्राशो दन्तकाष्ठं तगरं श्रीमुखीं यजेत्।
वैशाखे कर्णिकारैश्च अशोकाशो रदप्रदः॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अब मैं रम्भा तृतीया व्रत वर्णन करता हूं, जिससे मानव सौभाग्य, स्त्री तथा पुत्रलाभ करते हैं। अग्रहायण मासीय शुक्ला तृतीया को उपवासी रहे। कुश, जल, करम्भ, बिल्वपत्र से गौरीदेवी की पूजा करके कदम्ब की दतुअन अर्पित करे। पौष मास में गिरिजानन्दिनी की पूजा मरुबक फूल से करके स्वयं मात्र कर्पूर खाकर रहे और खिचड़ी प्रदान करे। मल्लिका की दतुअन अर्पित करे। माघ में कल्हारपुष्प से सुभद्रा देवी की पूजा करके स्वयं घृत का प्राशन करे और देवी को मांड़ अर्पित करके गीतिमय दतुअन दे। फाल्गुन में गोमती पूजन करके कुन्दकाष्ठ की दतुअन अर्पित करे। स्वयं यवागु

का प्राशन करे। देवी को शष्कुली नैवेद्य अर्पित करे। चैत्र मास में मदनपुष्प से विशालादेवी की पूजा करे। कृशर (खिचड़ी) देकर स्वयं दधि का प्राशन करे। तगरकाष्ठ की दतुअन प्रदान करे। वैशाख में कर्णिका फूलों से श्रीमुखीदेवी की पूजा करके स्वयं अशोक कलिका का प्राशन करे तथा अशोककाष्ठ की दतुअन देवी को अर्पित करे॥१-५॥

ज्यैष्ठे नारायणीमर्चेच्छतपत्रैश्च खण्डदः। लवङ्गाशो भवेदेव आषाढे माधवीं यजेत्॥६॥
तिलाशो बिल्वपत्रैश्च क्षीरान्नवटकप्रदः। औदुम्बरं दन्तकाष्ठं तगर्य्या श्रावणे श्रियम्॥७॥

ज्येष्ठ मास में गन्धपुष्पों से नारायणी पूजन करके गुड़ प्रदान करे तथा स्वयं लवंग प्राशन करके रहे। आषाढ़ में बेल के पत्ते से माधवी की अर्चना करे। श्रावण मास में तिलभक्षी रहकर तगरपुष्प से लक्ष्मी पूजा करे। उनको क्षीर तथा अन्नमिश्रित नैवेद्य देकर गूलर की दतुअन अर्पित करे॥६-७॥

दन्तकाष्ठं मल्लिकायाः क्षीरदो ह्युत्तमां यजेत्।
पद्मैर्यजेद्भाद्रपदे शृङ्गदाशो गुडादिदः॥८॥
रात्रपुत्रीञ्चाश्वयुजे जवापुष्पैश्च जीरकम्। प्राशयेन्निशि नैवेद्यैः कृशरैः कार्त्तिके यजेत्॥९॥
जातीपुष्पैः पद्मजाञ्च पञ्चगव्याशनो यजेत्।
घृतौदनञ्च वर्षान्ते सपत्नीकान्द्विजान्यजेत्॥१०॥
उमामहेश्वरं पूज्य प्रदद्याच्च गुडादिकम्। वस्त्रच्छत्रसुवर्णाद्यै रात्रौ च कृतजागरः।
गीतावाद्यैर्ददेत्प्रातर्गवाद्यं सर्वमाप्नुयात्॥११॥

॥इति गारुडे महापुराणे रम्भातृतीयाव्रतं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२०॥

भाद्रपद मास में मल्लिका वृक्ष का दन्तकाष्ठ अर्पित करे तथा कमलपुष्प से उत्तमादेवी की अर्चना करके उनको गुड़ आदि प्रदान करे। आश्विन मास में जवापुष्प से राजपुत्रीदेवी की पूजा करके रात्रि में जीरा का भक्षण करे। कार्त्तिक मास में खिचड़ी, नैवेद्य तथा जातीपुष्प से पद्मजादेवी की पूजा करे तथा पंचगव्य भक्षण करे। एक वर्ष तक इस विधि से व्रत करके वर्षान्त में घृत-चावल प्रदान करे तथा द्विज दम्पति की पूजा करे। तदनन्तर उमा-महेश्वर की पूजा करके ब्राह्मण को वस्त्र, छत्र, स्वर्ण देकर गीत-वाद्य द्वारा रात्रि जागरण पूजा की जगह करे। प्रातः गौदान करे। यह व्रत करने वालों की सभी अभिलाषा पूरी होती है॥८-११॥

॥एक सौ बीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चातुर्मास्य व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

चातुर्मास्यव्रतान्यूचे एकादश्यां समाचरेत्।
आषाढ्यां पौर्णमास्यां वासर्वेण हरिमर्च्य च॥१॥
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव। निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव॥२॥
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियाम्यहम्। तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥३॥
एवमभ्यर्च्य गृह्णीयाद्व्रतार्चनजपादिकम्। सर्वाघञ्च क्षयं याति चिकीर्षेयो हरेर्व्रतम्॥४॥
स्नात्वा यश्चतुरो मासानेकभक्तेन पूजयेत्।
विष्णुं स याति विष्णोर्वै लोकं मलविवर्जितम्॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अब चातुर्मास्य व्रत कहता हूं।•आषाढ़मासीय एकादशी अथवा पूर्णिमा तिथि के दिन यह व्रत प्रारम्भ करे। व्रत के प्रारम्भ में श्रीहरि की पूजा करके यह दो मन्त्र पढ़े—"हे केशव! मैंने आपके पास यह व्रत वरण किया है। आप मेरे प्रति प्रसन्न होकर इसे निर्विघ्न सिद्ध करें। हे देव! यदि व्रत पूर्ण होने के पहले मेरी मृत्यु हो जाये, तब आपकी कृपा से व्रत पूर्ण माना जाये, यह निवेदन है।" इस प्रकार से व्रत ग्रहण करके जपार्चन आदि सम्पन्न करना चाहिये। जो व्यक्ति इस विधान से चातुर्मास्य व्रताचरण करता है, उसके सभी पापों का नाश हो जाता है। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद तथा आश्विन मास में स्नानोपरान्त एक समय भोजन पर निर्भर रहकर विष्णु की आराधना करता है, उसे विष्णुलोक में गति प्राप्त होती है। वह निर्मल हो कर विष्णुलोक गमन करता है॥१-५॥

मद्यमांससुरात्यागी वेदविद्धरिपूजनात्।
तैलवर्जी विष्णुलोकं विष्णुभाक्कृच्छ्रपादकृत्॥६॥
एकरात्रोपवासाच्च देवो वैमानिको भवेत्। श्वेतद्वीपं त्रिरात्रात्तु व्रजेत्षष्ठान्नकृन्नरः॥७॥
चान्द्रायणाद्धरेर्धाम लभेन्मुक्तिमयाचिताम्। प्राजापत्यं विष्णुलोकं पराकव्रतकृद्धरिम्॥८॥
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिघृताशनः। गोमूत्रयावकाहारः पञ्चगव्यकृताशनः।
शाकमूलफलत्यागी रसवर्जी च विष्णुभाक्॥९॥

।।इति गारुडे महापुराणे चातुर्मास्यव्रतानि नाम एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२१।।

वेदज्ञ लोग मद्य, मांस, तैल का त्याग करके हरि की पूजा करते यह व्रत पालन करें। वे विष्णुलोक में सायुज्यलाभ करते हैं। तब केवल उपवास मात्र से ही व्यक्ति को देवत्व लाभ होता है। तीन

रात उपवासी व्यक्ति श्वेतद्वीप लाभ करता है। इस चातुर्मास्य में जो चान्द्रायण व्रत करता है, वह मुक्त हो जाता है। प्राजापत्य व्रत करने वाला विष्णुलोक जाता है। चातुर्मास्य में पराक् व्रताचरण से वह हरि को प्राप्त करता है। इस व्रत में सत्तू, यावक, दधि, दूध, घृत का भक्षण करके उसी से जीवन चलाये अथवा भिक्षा में मिले भोजन से निर्वाह करे अथवा गोमूत्र, यावक, पंचगव्य का आहार करे। शाक, मूल, फल, रस इसमें वर्जित है। यह व्रत विष्णुलोक प्रदाता है॥६-९॥

॥एक सौ एक्कीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मासोपवास व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

व्रतं मासोपवासाख्यं सर्वोत्कृष्टं वदामि ते।
वानप्रस्थो यतिर्नारी कुर्य्यान्मासोपवासकम्॥१॥
आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः। व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु॥२॥
अद्यप्रभृत्यहं विष्णोर्यावदुत्थानकं तव। अर्चये त्वामनश्नँस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु॥३॥
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लयोरहम्।
म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—अब मैं सर्वश्रेष्ठ मासिक उपवास व्रत का वर्णन करता हूं। वानप्रस्थ, यति तथा नारी इसे करें। आश्विनमासीय शुक्ला एकादशी के दिन से उपवासी रहकर यह व्रत वरण करे। तीस दिन तक इस व्रत को करना होगा। व्रत प्रारम्भ काल में श्रीविष्णु से प्रार्थना करे—"हे विभु! मैं आज से आपकी उत्थान तिथि तक उपवासी रहते आपकी आराधना करूंगा। हे प्रभो! मैं आश्विन शुक्ला द्वादशी से लगाकर कार्त्तिक शुक्ला द्वादशी तक व्रताचरण करूंगा। यदि इस दौरान मेरा निधन हो, तब मेरा व्रतभंग न माना जाये"॥१-४॥

हरिं यजेत्त्रिषवणस्नायी गन्धादिभिर्व्रती। गात्राभ्यङ्गं गन्धलेपं देवतायतने त्यजेत्॥५॥
द्वादश्यामथ संपूज्य प्रदद्याद् द्विजभोजनम्। ततश्च पारणं कुर्य्याद्धरेर्मासोपवासकृत्॥६॥
दुग्धादिप्राशनं कुर्य्याद् व्रतस्थो मूर्च्छितोऽन्तरा।
दुग्धाद्यैर्न व्रतं नश्येद्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्॥७॥

॥इति गारुडे महापुराणे मासोपवासाख्यव्रतं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२२॥

व्रती मनुष्य तीन बार स्नान करे। गन्धादि उपचारों से श्रीहरि की आराधना करे। इस व्रतकाल में वह तैल मालिश तथा गन्ध आदि स्वयं न लगाये। शिर में तेल न लगाये। आश्विन शुक्ला एकादशी से लगाकर कार्त्तिक शुक्ला एकादशी तक एक मास उपवास तथा श्रीहरि की पूजा करे। द्वादशी के दिन (कार्त्तिक शुक्ला द्वादशी को) ब्राह्मण भोजन कराये तथा स्वयं पारण करे। एक मास नियम रखते हुये हरि की पूजा एवं उपवासी रहना ही मासोपवास व्रत है। जो व्यक्ति एक मास उपवास करने में समर्थ न हो, वह दुग्धादि पी सकता है। इससे व्रत भंग नहीं होता। व्रत करने वाला संसार में सुख भोग कर अन्त में मुक्त हो जाता है॥५-७॥

॥एक सौ बाईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
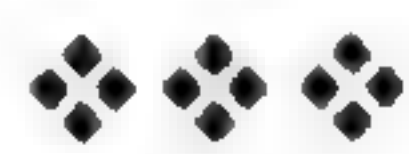
त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चक व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

व्रतानि कार्त्तिके वक्ष्ये स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत्।
एकभक्तेन नक्तेन मासं वायाचितेन वा॥१॥
दुग्धशाकफलाद्यैर्वा उपवासेन वा पुनः। सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो हरिं व्रजेत्॥२॥
सदा हरेर्व्रतं श्रेष्ठं ततः स्याद्दक्षिणायने। चातुर्मास्ये ततस्तस्मात्कार्त्तिके भीष्मपञ्चकम्॥३॥
ततः श्रेष्ठव्रतं शुक्लस्यैकादश्यां समाचरेत्।
स्नायात्त्रिकालं पित्रादीन्यवाद्यैरर्चयेद्धरिम्॥४॥
यजेन्मौनी घृताद्यैश्च पञ्चगव्येन वारिभिः। स्नापयित्वाऽथ कर्पूरमुखैश्चैवानुलेपयेत्॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर मैं कार्त्तिक मास के उन व्रतों का वर्णन करता हूं, जिनको विधि से करे। पहले स्नानोपरान्त विष्णु की पूजा करे। इस मास में एक बार दिन में भोजन करे अथवा नक्ताहार (केवल रात्रि में एक बार भोजन करके रहना) पर रहने का व्रत करे अथवा बिना मांगे जो मिले, उसका ही आहार करे। कार्त्तिक पर्यन्त मात्र दुग्ध, शाक, फल भोजन करे अथवा उपवासी ही रहे। एवंविध व्रताचरण जो करेगा, वह सभी पापों से रहित होकर अपनी काम्य वस्तु (इच्छा) का लाभ करेगा तथा वह शीघ्र ही श्रीहरि को प्राप्त करेगा। यह सर्वपापनाशक श्रेष्ठ व्रत श्रीहरि का है। विशेषत: दक्षिणायन काल में श्रीहरि का व्रत विशेष श्रेयप्रद है। सभी वार्षिक व्रतों में चातुर्मास्य व्रत प्रधान है। चातुर्मास्य की अपेक्षा भीष्मपंचक सर्वश्रेष्ठ है। कार्त्तिक शुक्ला एकादशी के समय इस व्रताचरण को करे। त्रिसन्ध्या स्नान करके यवादि से पितरों की

पूजा करे। व्रती व्यक्ति मौन रहकर पंचगव्य तथा पवित्र जल से विष्णु को नहलाये। तब कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य का लेप करके देवता को लिप्त करे॥१-५॥

घृताक्तगुग्गुलैर्धूपं द्विजः पञ्चदिनं दहेत्। नैवेद्यं परमान्नन्तु जपेदष्टोत्तरं शतम्॥६॥
ओं नमो वासुदेवाय घृतव्रीहितिलादिकम्। अष्टाक्षरेण मन्त्रेण स्वाहान्तेन तु होमयेत्॥७॥
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ यजेत्पद्मैर्द्वितीयके। बिल्वपत्रैर्जानुदेशं नाभि गन्धेन चापरे॥८॥

स्कन्धौ बिल्वजवाभिश्च पञ्चमेऽह्नि शिरोऽर्चयेत्।
मालत्या भूमिशायी स्याद्गोमयं प्राशयेत्क्रमात्॥९॥
गोमूत्रं क्षीरदधि च पञ्चमे पञ्चगव्यकम्।
नक्तं कुर्य्यात्पञ्चदश्यां व्रती स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक्॥१०॥

एकादशी से पूर्णिमा तक पांच दिन घृत लिप्त गुग्गुलु से धूप देनी चाहिये। नैवेद्य तथा परमान्न निवेदित करके १०८ मूलमन्त्र जप करे। "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" अष्टाक्षर मन्त्र से पूजन करना चाहिये। इसके पश्चात् "ॐ नमो वासुदेवाय स्वाहा" से घृतयुक्त ब्रीहि एवं तिल आदि से होम करना चाहिये। पहले दिन कमलपुष्प से हरि के चरणों की पूजा, दूसरे दिन बिल्वपत्र से हरि के जानु की पूजा, तीसरे दिन गंध से श्रीहरि के नाभि की पूजा, चौथे दिन बेलपत्र तथा जवा के फूलों से विष्णु के कन्धे की अर्चना करे। पांचवें दिन गोबर आदि पंचगव्य भक्षण करे अर्थात् पूजक पहले दिन गोमय, दूसरे दिन गोमूत्र, तीसरे दिन दुग्ध, चौथे दिन दधि का भोजन तथा पांचवें दिन रात में पंचगव्य का भोजन करे। जो व्यक्ति एवंविध व्रताचरण करता है, वह इहलोक में काम्य भोगों का भोग करके सर्वान्त में मुक्त हो जाता है॥६-१०॥

एकादशीव्रतं नित्यं तत्कुर्य्यात्पक्षयोर्द्वयोः। अघौघनरकं हन्यात्सर्वदं विष्णुलोकदम्॥११॥

एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी।
नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः॥१२॥

दशम्येकादशी यत्र तत्रस्थाश्चासुरादयः। द्वादश्यां पारणं कुर्यात्सूतके मृतके चरेत्॥१३॥
चतुर्दशी प्रतिपदि पूर्वमिश्रामुपावसेत्। पौर्णमास्याममावास्यां प्रतिपन्मिश्रितां मुने॥१४॥

द्वितीयां तृतीयामिश्रां तृतीयाञ्चाप्युपावसेत्।
चतुर्थ्या सङ्गतां नित्यं चतुर्थीञ्चानया युताम्।
पञ्चमीं षष्ठीसंयुक्तां षष्ठ्या युक्ताञ्च पञ्चमीम्॥१५॥

॥इति गारुडे महापुराणे भीष्मपञ्चकादिव्रतं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥

एकादशी व्रत का कभी लंघन न करे। शुक्लपक्ष की तथा कृष्णपक्ष की दोनों एकादशी पर व्रताचरण करे। इससे विष्णु व्रताचारी के सभी पाप नष्ट होते हैं तथा प्रभु उसे सभी वांछित वस्तु प्रदान करते

हैं। उसे अन्ततः मुक्ति मिलती है। एकादशी पर उपवासी रहकर द्वादशी के दिन पारण करे। तब रात्रि व्यतीत कर पूजक व्रती त्रयोदशी वाले दिन त्रयोदशी वाला कार्य करे। जो सदा एकादशी व्रत करता है, विष्णु उससे सदा सन्निहित रहते हैं। जब दशमी-एकादशी संयुक्त हो, उस दिन उपवास करना आसुरी उपवास होता है। अतः दशमी युक्त एकादशी पर व्रत कदापि न करे। एकादशी के उपवास के उपरान्त द्वादशी को पारण करे। अशौचादि होने पर भी एकादशी व्रत में बाधा नहीं होती। यदि चतुर्दशी त्रयोदशीयुक्त हो अथवा पूर्णिमा प्रतिपदायुक्त हो, तब उपवासी रहे। पूर्णिमा अथवा अमावस्या जब प्रतिपदायुक्त हो, उसी दिन उपवासी रहे। तृतीयायुक्त द्वितीया के दिन उपवास विहित है। चतुर्थीयुता तृतीया उपवास-व्रत हेतु वरणीय है। तृतीयायुक्त चतुर्थी के दिन तथा पञ्चमीयुता षष्ठी के दिन, षष्ठीयुक्त पंचमी को उपवास करे॥११-१५॥

॥एक सौ तेईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

शिवरात्रि व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये कथाञ्च सर्वकामदम्।
यथा च गौरी भूतेशं पृच्छति स्म परं व्रतम्॥१॥

ईश्वर उवाच

माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी।
तस्यां जागरणाद्रुद्रः पूजितो भुक्तिमुक्तिदः॥२॥
कामयुक्तो हरिः पूज्यो द्वादश्यामिव केशवः। उपोषितैः पूजितः सन्नरकात्तारयेत्तथा॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैं अब सर्वकामप्रद शिवरात्रि व्रत कहता हूं। गौरी ने इस व्रत के सम्बन्ध में शिवशंकर से पूछा था, तब महेश्वर ने कहा कि माघ तथा फाल्गुन मास के बीच जो कृष्णपक्षीय चतुर्दशी होती है, उसमें उपवासी रहकर जागरण करे। महादेव इस समय पूजित होकर भोग-मोक्ष प्रदायक हो जाते हैं। जैसे एकादशी पर उपवासी रहकर द्वादशी को भगवान् विष्णु की अर्चना द्वारा सभी मानवीय कामनायें प्राप्त होती हैं, तद्वत् शिवरात्रिव्रत करने वाला व्यक्ति नरक से त्राण पाता है॥१-३॥

निषादश्चाम्बुदे राजा पापी सुन्दरसेनकः। स कुक्कुरैः समायुक्तो मृगान् हन्तुं वनं गतः॥४॥
मृगादिकमसंप्राप्य क्षुत्पिपासार्दितो गिरौ। रात्रौ तडागतीरेषु निकुञ्जे जाग्रदास्थितः॥५॥
तत्रास्ति लिङ्गं संरक्षञ्छरीरञ्चाक्षिपत्ततः। पर्णानि चापतन्मूर्ध्नि लिङ्गस्यैव न जानतः॥६॥

तेन धूलिनिरोधाय क्षिप्तं नीरञ्च लिङ्गके। शरः प्रमादेनैकस्तु प्रच्युतः करपल्लवात्॥७॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा लिङ्गं स्पृष्ट्वा गृहीतवान्।
एवं स्नानं स्पर्शनञ्च पूजनं जागरोऽभवत्॥८॥
प्रातर्गृहागतो भार्य्यादत्तान्नं भुक्तवान् स च।
काले मृतो यमभटैः पाशैर्बद्ध्वा तु नीयते॥९॥
तदा मम गणैर्युद्धे जित्वा मुक्तीकृतः स च।
कुक्कुरेण सहैवाभूद्गणो मत्पार्श्वगोऽमलः॥१०॥

इस विषय में एक प्राचीन इतिहास है। उस समय अर्बुद देश में सुन्दरसेन नामक निषादों का पापी राजा रहता था। वह कुत्ते के साथ वन में जाकर मृगपशुओं की हत्या करने हेतु उनको खोजने लगा। दैवात् उसे वहां कोई पशु परिलक्षित नहीं हो सका। वह भूख-प्यास से अत्यन्त पीड़ित हो गया। तभी रात्रि आ गई। अन्य कोई उपाय न देख कर वह पर्वत पर चढ़ा तथा वहां एक सरोवर के तट पर उगे निकुंज में बैठ गया। उस निकुंज में ही एक बेल के पेड़ के नीचे शिवलिंग स्थापित था। व्याध अपने रक्षार्थ वहीं ठहर गया। उसके द्वारा (पेड़ टकराने से) उस शिवलिंग पर कुछ बिल्वपत्र गिरे। व्याध यह सब कुछ भी नहीं समझता था। वहां निकुंज में धूल पड़ी थी। व्याध ने स्वयं आराम करने के विचार से जल से वह स्थान प्रक्षालित किया। असावधानी से उसके हाथ का एक बाण धरती पर गिर पड़ा। व्याध उसे उठाने के लिये अपने जानु धरती पर रख कर झुका था। उस लिंग पर हाथ टेक कर उसने बाण उठाया। इस प्रकार अनजाने में व्याध ने लिंग का स्पर्श कर लिया। इस प्रकार उस दिन व्याध का स्नान-पूजन तथा जागरण कार्य अनजाने में सम्पन्न हो गया। इसके बाद व्याध प्रातः अपने गृह गया तथा भार्या द्वारा प्रस्तुत आहार ग्रहण किया। जब व्याध की आयु पूरी हो गई, तब वहां यमदूत आये तथा उन्होंने व्याध को पाश से बांधा तथा यमपुर के लिये प्रस्थान किये। तभी मेरे दूतों ने आकर यमदूतों को भगा कर व्याध को बंधन से छुड़ा लिया। तदनन्तर वह व्याध अपने कुत्ते के साथ मेरे पुर में (शिव के पुर में) आया तथा वह मेरे पार्श्वचरगण में सम्मिलित हो गया॥४-१०॥

एवमज्ञानतः पुण्यं ज्ञानात्पुण्यमथाक्षयम्।
त्रयोदश्यां शिवं पूज्य कुर्य्यात्तु नियमं व्रती॥११॥
प्रातर्देव चतुर्दश्यां जागरिष्याम्यहं निशि।
पूजां दानं तपो होमं करिष्याम्यात्मशक्तितः॥१२॥
चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि।
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर॥१३॥

इस प्रकार व्याध ने अनजाने में उपवासी रह कर ऐसा फललाभ किया। तब जो लोग जानबूझ कर शिवरात्रि व्रताचरण करते हैं, उनके सभी प्रकार के पापों का नाश अवश्य होता है। इस व्रतपालनार्थ व्यक्ति त्रयोदशी तिथि के दिन व्रती रहे। शिवार्चन तत्पर होकर संयत भाव से रहे। चतुर्दशी के दिन वह प्रातः यह

संकल्प करे—"हे महेश्वर! मैं चतुर्दशी की रात में उपवासी रहूंगा तथा निद्रालस्य रहित जागरण करके स्वशक्ति के अनुसार पूजन-जपकार्य तथा ध्यान करूंगा। दान तथा होम भी करूंगा। चतुर्दशी तिथि पर उपवासी रहकर अगले दिन पारण करूंगा।" पारण काल में यह प्रार्थना करे—"हे महेश्वर! मैं भोजन करूंगा। आप भुक्ति-मुक्ति हेतु मुझे आश्रय दीजिये"॥११-१३॥

पञ्चगव्यामृतैः स्नाप्य अन्तकाले गुरुं श्रितः।
ओं नमो नमः शिवाय गन्धाद्यैः पूजयेद्धरम्॥१४॥
तिलतण्डुलव्रीहींश्च जुहुयात्सघृतं चरुम्।
हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्त्वा शृणुयाद् गीतसंकथाम्॥१५॥

उस समय पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत से शिवलिंग को स्नान कराने के अनन्तर गुरुदेव से शिवमन्त्र तथा शिवपूजा प्रणाली की शिक्षा ग्रहण करे। तत्पश्चात् "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र से गन्धादि द्वारा पूजा करे। इसके अनन्तर तिल, तंडुल, व्रीहि एवं सघृत चरु से होम करने के पश्चात् पूर्णाहुति करके गीत तथा शिवकथा सुने॥१४-१५॥

अर्द्धरात्रे त्रियामे च चतुर्थे च पुनर्जयेत्। मूलमन्त्रं तथा जप्त्वा प्रभाते तु समापयेत्॥१६॥
अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम्। क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर॥१७॥
यन्मयाद्य कृतं पुण्यं यद्रुद्रस्य निवेदितम्। त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम्॥१८॥
प्रसन्नो भव मे श्रीमन्गृहं प्रति च गम्यताम्।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः।
भोजयेद्ध्याननिष्ठांश्च वस्त्रछत्रादिकं ददेत्॥१९॥

प्रदोषकाल, अर्द्धरात्रि, तृतीययाम एवं चतुर्थी प्रहर में पूजा करनी चाहिये। पूजान्त में मूलमन्त्र जप करके प्रातः देवता से क्षमा याचना मन्त्र द्वारा करे। "हे हर! आपकी कृपा से मेरा व्रत बिना विघ्न सम्पन्न हो गया। आप त्रिभुवन के स्वामी हैं। मेरे ऊपर कृपा करें। मैं सभी पूर्वकृत् पूजनादि भगवान् रुद्र को समर्पित कर रहा हूं। हे भगवान् हर! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। मैंने आपका आवाहन किया था। अब आप प्रस्थान करें। मैं आपके दर्शन से पवित्र हो गया।" महादेव का विसर्जन करके ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र, छत्रादि अर्पित करे॥१६-१९॥

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक। यन्मया श्रद्धया दत्तं प्रीयतां तेन मे प्रभुः॥२०॥
इति समाप्य च व्रती कुर्य्याद् द्वादशवार्षिकम्।
कीर्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य शैवं पुरं व्रजेत्॥२१॥
द्वादशेष्वपि मासेषु प्रकुर्य्यादिह जागरम्।
व्रती द्वादश संभोज्य दीपदः स्वर्गमाप्नुयात्॥२२॥

॥इति गारुडे महापुराणे शिवरात्रिव्रतं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४॥

"हे देवाधिदेव! भूतपति! आप लोकों पर कृपा करते हैं। मैंने सश्रद्ध भाव से जो कुछ अर्पित किया, उससे आप प्रसन्न हों।" यह प्रार्थना करके विसर्जन तथा द्वादशवर्षीय व्रत ग्रहण करे। व्रती व्यक्ति एवंविध इस लोक में यश, ऐश्वर्य, राज्य आदि पाकर अन्तकाल में शिवपुर जाता है। बारह मास इस तरह पूजा, उपवास तथा जागरण करना चाहिये। तब ऐसे ही बारह व्रती लोगों को भोजन कराकर दीपक प्रदान करे। इससे व्रती स्वर्ग गमन करते हैं॥२०-२२॥

॥एक सौ चौबीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकादशी माहात्म्य वर्णन

पितामह उवाच

मान्धाता चक्रवर्त्यासीदुपोष्यैकादशीं नृपः। एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥१॥
दशम्येकादशीमिश्रा गान्धार्य्या समुपोषिता। तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥२॥
दशम्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः। बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा॥३॥
द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम्। एकादशी कलापि स्यादुपोष्या द्वादशी तथा॥४॥
एकादशी द्वादशी च विशेषेण त्रयोदशी। त्रिमिश्रा सा तिथिर्ग्राह्या सर्वपापहरा शुभा॥५॥

पितामह ने कहा—कभी मान्धाता नामक एक चक्रवर्त्ती राजा थे। वे एकादशी का उपवास करके ससागरा पृथिवी के एकमात्र स्वामी हो गये। इसलिये शुक्ला एवं कृष्णा एकादशी को कोई भी भोजन न करे। लेकिन गान्धारी ने दशमीयुता एकादशी का व्रत किया था। इसीलिये गान्धारी के सौ पुत्र मारे गये। दशमी संयुता एकादशी का सदा वर्जन करे। इस दिन कोई उपवासी न रहे। दशमीयुता एकादशी में असुर सन्निहित रहते हैं। जबकि द्वादशीयुता एकादशी में हरि की स्थिति है। अनेक शास्त्रों के वचन में पारस्परिक विरोध देखा जाता है। यदि एक ही दिन दशमी, एकादशी तथा द्वादशी युक्त हो, तब नियम यह है कि द्वादशी को उपवासी रहे तथा त्रयोदशी को पारण करे। यद्यपि कभी द्वादशी के दिन मात्र एक कला ही एकादशी हो, तथापि द्वादशी को ही उपवासी रहे॥१-५॥

एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमथवा द्विज। त्रिमिश्राञ्चैव कुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित्॥६॥
रात्रौ जागरणं कुर्वन्पुराणश्रवणं नृपः। गदाधरं पूजयंश्च उपोष्यैकादशीद्वयम्।
रुक्माङ्गदो ययौ मोक्षमन्ये चैकादशीव्रतम्॥७॥

॥इति गारुडे महापुराणे एकादशीमाहात्म्यं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२५॥

जब एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी तीनों मिल जायें, तब उपवासी रहे, लेकिन कभी दशमीयुता एकादशी को उपवास न करे। रात्रि जागरण, पुराण श्रवण, भगवान् विष्णु की अर्चना करके एकादशी का उपवास करना चाहिये। रुक्मांगद ने इसी प्रकार एकादशी व्रत किया था तथा मोक्षपद उन्होंने प्राप्त किया॥६-७॥

॥एक सौ पच्चीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूजाविधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

येनार्चनेन वै लोको जगाम परमां गतिम्। तमर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम्॥१॥
सामान्यमण्डलं न्यस्य धातारं द्वारदेशतः। विधातारं तथा गङ्गां यमुनाञ्च महानदीम्॥२॥
द्वारश्रियञ्च दण्डञ्च प्रचण्डं वास्तुपूरुषम्। मध्ये चाधारशक्तिञ्च कूर्मञ्चानन्तमर्चयेत्॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—जिसके अनुष्ठान से मनुष्य परमगतिलाभ करते हैं, उस भुक्ति तथा मुक्ति देने वाली अर्चना को कहिये। प्रथमतः द्वार देश पर सामान्य मण्डल निर्माण करके उसमें धाता-विधाता-गंगा-यमुना तथा महानदी की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् गण्डल के द्वार पर श्री, दण्ड, प्रचण्ड तथा वास्तुपुरुष की पूजा करके कूर्म, आधारशक्ति तथा अनन्त की पूजा करे॥१-३॥

भूमिं धर्मं तथा ज्ञानं वैराग्यैश्वैर्य्यमेव च। अधर्मादींश्च चतुरः कन्दनालञ्च पङ्कजम्॥४॥
कर्णिकां केशरं सत्त्वं राजसन्तामसं गुणम्।
सूर्य्यादिमण्डलान्येव विमलाद्याश्च शक्तयः॥५॥
दुर्गां गणं सरस्वतीं क्षेत्रपालञ्च कोणके। आसनं मूर्त्तिमभ्यर्च्य वासुदेवं बलं स्मरम्॥६॥

इसके पश्चात् भूमि, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य की भी पूजा करे। तत्पश्चात् कन्द, नाल एवं पंकज की अर्चना करनी चाहिये। इसके पश्चात् कर्णिका, केशर, सत्व-रज-तमः की पूजा करके सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल की पूजा करे। तदनन्तर विमला आदि शक्तिगण के पूजनोपरान्त दुर्गा, गणेश, सरस्वती एवं क्षेत्रपाल की पूजा चारों कोणों पर (एक-एक की) करे। तदनन्तर आसन तथा मूर्तिपूजा के अनन्तर वासुदेव, बलभद्र एवं कामपूजन करे॥४-६॥

अनिरुद्धं महात्मानं नारायणमथार्चयेत्। हृदयादीनि चाङ्गानि शङ्खादीन्यायुधानि च॥७॥
श्रियं पुष्टिञ्च गरुडं गुरुं परगुरुं यजेत्। इन्द्रादीन्दिक्ष्वधोनागमूर्ध्वं ब्रह्माणमर्चयेत्॥८॥

विष्वक्सेनमथैशान्यां प्रोक्तं पूजनमागमे। सकृदभ्यर्चितो देवो येनैवं विधिपूर्वकम्॥९॥
न तस्य सम्भवो भूयः संसारेऽस्मिन्महात्मनः।
पुण्डरीकाय संपूज्य ब्रह्माणञ्च गदाधरम्॥१०॥

॥इति गारुडे महापुराणे षडविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥

इसके पश्चात् अनिरुद्ध एवं महात्मा नारायण की पूजा करके हृदयादि षडंग की और शंख-चक्रादि आयुधपूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् श्री, पुष्टि, गरुड़ तथा परमगुरु की पूजा करने के उपरान्त आठ दिशाओं में इन्द्रादि आठ दिक्पाल, अध:दिक् में अनन्त की तथा ऊर्ध्वदिक् में ब्रह्मा की पूजा करे। ईशान कोण में विष्वक्सेन की पूजा होगी। ऐसे महात्मा पूजक को पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। इसी पूजा क्रम में पुण्डरीक, ब्रह्मा तथा गदाधर की पूजा भी करनी चाहिये॥७-१०॥

॥एक सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकादशी माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

माघमासे शुक्लपक्षे सूर्य्यर्क्षेण युता पुरा। एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता॥१॥
आश्चर्य्यन्तु व्रतं कृत्वा पितृणामनृणोऽभवत्।
भीमद्वादशी विख्याता प्राणिनां पुण्यवर्द्धिनी॥२॥
नक्षत्रेण विनाप्येषा ब्रह्महत्यादि नाशयेत्। विनिहन्ति महापापं कुनृपो विषयं यथा॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—माघ मास के शुक्लपक्ष में हस्तानक्षत्रयुक्त एकादशी के दिन भीमसेन ने उपवास किया था। इसी कारण इसका नाम भैमी एकादशी पड़ गया। भीमसेन इस एकादशी के दिन आश्चर्यपूर्ण व्रत द्वारा पितृऋण से मुक्त हो गये थे। भीमद्वादशी नामक यह व्रत सभी का पुण्य बढ़ाने वाला है। जो मानव इस एकादशी पर उपवासी रहकर द्वादशी को पारण करता है, उसके पुण्य की वृद्धि होती है। यदि उस दिन हस्तानक्षत्रयोग न मिले, तब भी इस एकादशी का व्रत करना चाहिये। इससे भी ब्रह्महत्या पाप नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार गलत मार्ग पर चलने वाला राजा अपना विषय नष्ट कर देता है, उसी तरह यह एकादशी महापाप नाशक है॥१-३॥

कुपुत्रस्तु कुलं यद्वत्कुभार्य्या च पतिं यथा।
अधर्मश्च यथा धर्मः कुमन्त्री च यथा नृपम्॥४॥
अज्ञानेन यथा ज्ञानं शौचताशौचतां यथा। अश्रद्धया यथा श्राद्धं सत्यश्चैवानृतैर्यथा॥५॥
हिमं यथोष्णमाहन्यादनर्थं चार्थसञ्चयः। यथा प्रकीर्त्तनाद्दानं तपो वै विस्मयाद्यथा॥६॥
अशिक्षया यथा पुत्रो गावो दूरगतैर्यथा। क्रोधेन च यथा शान्तिर्यथा वित्तमवर्द्धनात्॥७॥
ज्ञानेनैव यथा विद्या निष्कामेन यथा फलम्। तथैव पापनाशाय प्रोक्तेयं द्वादशी शुभा॥८॥

कुपुत्र कुल का, कुभार्या पति का, धर्म अधर्म का, कुमन्त्री राजा का नाश कर देते हैं। अज्ञान ज्ञान का, पवित्रता अपवित्रता का, अश्रद्धा श्रद्धा का, सत्य असत्य का, ग्रीष्म बर्फ का, असत् आचरण धन का नाश कर देते हैं, जैसे अपने दान का अपने मुंह से प्रचार करने से दानफल नष्ट हो जाता है, विषयों के प्रति लगाव से तप नष्ट हो जाता है, शिक्षित न करने से पुत्र नष्ट होता है, दूर तक ले जाने से गौ का नाश होता है, क्रोध से विद्वत्ता का नाश होता है, ज्ञान से अविद्या का तथा निष्काम रहने से कर्मफल नष्ट होता है, वैसे ही यह द्वादशी पापों का नाश कर देती है॥४-८॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। युगपदुपजानाति न निहन्ति त्रिपुष्करम्॥९॥
न चापि नैमिषं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं प्रभासकम्।
कालिन्दी यमुना गङ्गा न चैव न सरस्वती॥१०॥
न चैव सर्वतीर्थानि एकादश्याः समो न हि।
न दानं न जपो होमो न चान्यं सुकृतं क्वचित्॥११॥

ब्रह्महत्या, मद्यपान, स्वर्ण चोरी, गुरुपत्नी से व्यभिचार इन पापों का इस एकादशी के बिना अन्य उपाय से नाश नहीं होता। जिस प्रकार से त्रिपुष्करा तट का विनाश करती है, उसी प्रकार यह एकादशी सभी पापों का नाश कर देती है। ऐसे पापों को नैमिष, कुरुक्षेत्र, प्रभास, कालिन्दी, यमुना, गंगा, सरस्वती नष्ट नहीं कर पाते। ये सभी तीर्थ इस एकादशी के समान नहीं हैं। दान, जप, होम तथा अन्य सुकृत इस एकादशी के समान नहीं हैं॥९-११॥

एकतः पृथिवीदानमेकतो हरिवासरः। ततोऽप्येका महापुण्या इयमेकादशी वरा॥१२॥
अस्मिन्वराहपुरुषं कृत्वा देवन्तु हाटकम्। घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वै ताम्रभाजने॥१३॥
सर्वबीजभृतोविन्वाः सितवस्त्रावगुण्ठिते। सहिरण्यप्रदीपाद्यैः कृत्वा पूजां प्रयत्नतः॥१४॥

यदि समस्त पृथिवी दान से इस एकादशी व्रत की तुलना की जाये, उस स्थिति में यह एकादशी व्रत ही श्रेष्ठ होगा। इस व्रतार्थ वराह भगवान् की स्वर्ण की मूर्त्ति बनाये। घट पर नवीन तांबे के पात्र में स्थापित करके उनकी पूजा की जाये। इस प्रतिमा को सफेद कपड़े से आवरित करे। सोने के दीप को जलाकर वराहदेव की नाना उपचार से पूजा की जाये॥१२-१४॥

वराहाय नमः पादौ क्रोडाकृति नमः कटिम्।
नाभिं गभीरघोषाय उरः श्रीवत्सधारिणे॥१५॥

वाहुं सहस्रशिरसे ग्रीवां सर्वेश्वराय च। मुखं सर्वात्मने पूज्यं ललाटं प्रभवाय च॥१६॥

केशाः शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिणः।
विधिना पूजयित्वा तु कृत्वा जागरणं निशि॥१७॥
श्रुत्वा पुराणं देवस्य माहात्म्यप्रतिपादकम्।
प्रातर्विप्राय दत्त्वा च याचकाय शुभाय तत्॥१८॥

कनकक्रोडसहितं सन्निवेद्य परिच्छदम्। पश्चात्तु पारणं कुर्य्यान्नातितृप्तः सकृद्व्रतः॥१९॥

एवं कृत्वा नरो विद्वान्न भूयः स्तनपो भवेत्।
उपोष्यैकादशीं पुण्यां मुच्यते वै ऋणत्रयात्।
मनोऽभिलषितावाप्तिः कृत्वा सर्वव्रतादिकम्॥२०॥

॥इति गारुडे महापुराणे एकादशीमाहात्म्यं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२७॥

'ॐ क्रोड़ाकृतये नमः' से वराहदेव की कटि की, 'ॐ गभीरघोषाय नमः' से नाभि की, 'ॐ श्रीवत्सधारिणे नमः' से उनके वक्ष की, 'ॐ सहस्रशिरसे नमः' से बाहु की, 'ॐ सर्वेश्वराय नमः' से ग्रीवा की, 'ॐ सर्वात्मने नमः' से मुख की, 'ॐ प्रभवाय नमः' से ललाट की, 'ॐ शतमुखाय नमः' से केश की पूजा करे। सविधि पूजनोपरान्त रात्रि जागरण आवश्यक है। रात में वराहदेव के माहात्म्य वाली पौराणिक कथाओं को सुने। प्रातः कथावाचक ब्राह्मण को स्वर्णयुक्त परिधान दान करके व्रतचारी स्वयं पारण करे। पारण काल में अधिक भोजन वर्जित है। अल्पाहार करे। जो धीमान् पूजक यह व्रत सविधि निष्पन्न करता है, उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। इस पुण्यदा एकादशी व्रत के प्रभाव से वह गर्भयन्त्रणा अब नहीं झेलेगा। उसे सभी काम्य वस्तुयें प्राप्त होंगी। यह सभी व्रतों के फल को अकेले देने वाली तिथि है॥१५-२०॥

॥एक सौ सत्ताईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनेक व्रतपरिभाषा वर्णन

ब्रह्मोवाच

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि यैस्तुष्टः सर्वदो हरिः।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम्॥१॥

नियमास्तु विशेषाः स्युर्व्रताब्दस्य यमादयः।
नित्यं त्रिषवणं स्नायादधःशायी जितेन्द्रियः॥२॥
स्त्रीशूद्रपतितानां तु वर्जयेद्भिभाषणम्। पवित्राणि च पञ्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः॥३॥
कृच्छ्राण्येतानि सर्वाणि चरेत्सुकृतवान्नरः। केशानां रक्षणार्थन्तु द्विगुणं व्रतमाचरेत्॥४॥
कांस्यं माषं मसूरञ्च चणकं कोरदूषकम्। शाकं मधु परान्नञ्च वर्जयेदुपवासवान्॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अब अनेक व्रतों का वर्णन कहता हूं। इन व्रताचार से हरि सन्तुष्ट हो जाते हैं। शास्त्र में वर्णित नियम पालन ही व्रत है। इसे तप माना गया है। व्रतनिरत मनुष्य को यम-नियमादि का पालन करना होगा। वह तीनों सन्ध्या नहाये तथा इन्द्रियों पर काबू रख कर जमीन पर सोये। व्रत के समय स्त्री, पुत्र, पतितों के साथ बात न करे। अपने सामर्थ्य के मुताबिक पांच पवित्र द्वारा होम करना चाहिये। जो व्रत के पुण्यफल को पाना चाहता है, वह पूर्व में कहे गये कृच्छ्र (कठोर) नियमों का अनुसरण पालन करे। व्रतकाल में वाल मुंड़वाना चाहिये। जो यह नहीं करना चाहता, उसे दूना व्रत करना होगा। उपवास तथा व्रत करने वाला मनुष्य अगले दिन कांसे के बर्त्तन में भोजन न करे। वह उर्द, मसूर, चना, कोरदूषक धान्य, शाक, मधु तथा पराये अन्न का आहार न करे। पुष्प, आभूषण, नये कपड़े, अनुलेप, दांत धोना, काजल लगाना—यह कृत्य न करे॥१-५॥

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम्। उपवासेन दुष्येत्तु दन्तधावनमञ्जनम्॥६॥
दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतञ्चरेत्।
असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात्।
उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वप्नाक्षमैथुनात्॥७॥
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। देवपूजाग्निहवने सन्तोषास्तेयमेव च॥८॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः। नक्षत्रदर्शनान्नक्तमनक्तं निशि भोजनम्॥९॥

पहले दिन उपवासी रहकर अगले दिन पञ्चगव्य से मुख धोये। उस अगले दिन पुनः-पुनः जल पीना, ताम्बूल खाना, दिन में सोना तथा मैथुन वर्जित है। इससे व्रतफल नहीं मिलेगा। क्षमा, सच बोलना, दया करना, पवित्रता, इन्द्रिय संयम, देवपूजा, होम, सन्तोष तथा आन्तरिक व्रत—इन दस सामान्य नियमों का पालन व्रताचारी अवश्य करे। नक्षत्रों को रात में देख कर भोजन करना ही नक्त (रात्रि) भोजन है॥६-९॥

गोमूत्रञ्च पलं दद्यादर्द्धाङ्गुष्ठन्तु गोमयम्। क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलत्रयम्॥१०॥
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम्। गायत्र्या चैव गन्धेति आप्यायस्व दधिग्रहः।
तेजोऽसीति च देवस्य ब्रह्मकृच्छ्रव्रतं चरेत्॥११॥

एक पल गोमूत्र (एक पल = आठ तोला), आधे अंगूठे इतना गोबर, सात पल दूध, तीन पल दही, एक पल घी तथा एक पल कुशजल, इससे पंचगव्य बनता है। मन्त्र पढ़ कर प्रत्येक वस्तु का शोधन करके तब पंचगव्य बनाये। गायत्री मन्त्र से गोमूत्र का, 'गन्धद्वारा' इत्यादि से गोबर का, 'आप्यायस्व'

इत्यादि से दुग्ध का, 'दधिक्राव्येन' इत्यादि से दधि का, 'तेजोसीति' इत्यादि से घृत का तथा 'देवस्य' इत्यादि से कुशजल का शोधन करके ब्रह्मकृच्छ्र व्रत करे॥१०-११॥

अग्न्याधानं प्रतिष्ठान्तु यज्ञदानव्रतानि च। वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः।
माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत्॥१२॥
दर्शादर्शस्य चान्तः स्यात्त्रिंशाहोभिस्तु सावनः।
रविसंक्रमणात्सौरो नाक्षत्रः सप्तविंशतिः॥१३॥
सौरो मासो विवाहाय यज्ञादौ सावनस्थितिः।
युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः।
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा॥१४॥
प्रतिपदाप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्।
एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥१५॥

अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, वेदाध्ययन, वृषोत्सर्ग, चूड़ाकरण, उपनयन तथा मांगलिक अभिषेक मलमास में न करे। एक अमावस्या से लेकर अगली अमावस्या तक जो ३० दिन होते हैं, वही सावन मास कहलाता है। जब रवि एक राशी में रहकर दूसरी राशि में जाता है, वही सौर मास है। अश्विनी नक्षत्र के भुक्तकाल से लेकर रेवती के भुक्तकाल तक के २७ दिन को नाक्षत्रिक मास कहा गया है। विवाहादि कार्य हेतु सौर मास का, यज्ञादि हेतु सावन मास का तथा पितृकार्य हेतु नक्षत्र (चान्द्रमास का) उल्लेख करके कार्य करे। द्वितीया से तृतीया का, चतुर्थी से पंचमी का, षष्ठी से सप्तमी का, अष्टमी से नवमी का, दशमी से एकादशी का, चतुर्दशी से पूर्णिमा का तथा अमावस्या से प्रतिपदा का युग्मादर जाने। प्रतिपदा-अमावस्या तिथियुग्म का महाफल है। जो युग्मादर की अवहेलना करके काम करता है, उसके पूर्वकृत पुण्य नष्ट हो जाते हैं॥१२-१५॥

प्रारब्धतपसां स्त्रीणां रजो हन्याद् व्रतं न हि।
अन्यैर्दानादिकं कुर्य्यात्कायिकं स्वयमेव च॥१६॥
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि।
दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डनं भवेत्॥१७॥
असामर्थ्ये शरीरस्य पुत्रादीन्कारयेद्व्रतम्।
व्रतस्थं मूर्च्छितं विप्रं जलानि चानुपाययेत्॥१८॥

।।इति गारुडे महापुराणे व्रतपरिभाषा नाम अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२८।।

राजा, यज्ञ में तत्पर तथा किसी व्रती के वन से लौटते ही अथवा विवाह काल में किंवा विपत्ति के कारण यदि अशौच हो जाये, तब तत्काल शुद्धि होती है। यदि स्त्री संकल्पित व्रत करे तथा व्रत पूर्ण

होने के पहले ही रजोदर्शन हो जाये, उससे आरम्भ किया कर्म नष्ट नहीं होता। दान, पूजा आदि दूसरे से कराकर स्नान उपवास स्वयं करे। क्रोध, असावधानी तथा लोभ के कारण प्रारम्भ किया व्रत भंग हो जाये, तब व्रताचारी तीन दिन उपवासी रहे तथा मुण्डन कराये। यदि स्वयं अशक्त हो, तब पुत्रादि लोग व्रत करें। यदि व्रत करने वाला उपवास प्रभृति से मूर्च्छित हो जाये, तब जल पिलाने से व्रत नहीं टूटता॥१६-२०॥

॥एक सौ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिपदा आदि तिथियों का व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतानि व्यास शृण्वथ। वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम्।
प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः॥१॥
चैत्रादौ कारयेच्चैव ब्रह्मपूजां यथाविधि। गन्धपुष्पार्चनैर्दानैर्माल्यादिभिर्मनोरमैः।
सहोमैः पूजयेद्देवं सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥२॥
कार्त्तिके तु सितेऽष्टम्यां पुष्पहारेण वत्सरम्। पुष्पादिदाता रूपेप्सू रूपभागी भवेन्नरः॥३॥
कृष्णपक्षे तृतीयायां श्रावणे श्रीधरं श्रिया।
व्रती सवस्त्रां शय्याञ्च फलं दद्याद्द्विजातये॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! प्रतिपदा आदि के समय जैसा व्रत करना चाहिये, वह कहता हूं। प्रतिपदा के दिन एक समय आहार करे। तत्पश्चात् कपिला गौ देकर व्रत समाप्त करे। इस व्रत द्वारा वैश्वानर पद की प्राप्ति होगी। इसे शिखिव्रत कहा गया है। इसे चैत्र मास से प्रारम्भ करने का नियम है। ब्रह्मा की पूजा गन्ध, पुष्प तथा सुन्दर माला से करनी चाहिये। कार्त्तिक मासीय शुक्ला षष्ठी को पुष्प की माला तथा सुगन्धित पुष्प प्रदान करे। इसी तरह से एक वर्ष तक प्रति षष्ठी तिथि के दिन पुष्प प्रदान करने वाला उत्तम रूपलाभ करता है। श्रावण की कृष्णा तृतीया तिथि पर लक्ष्मी-श्रीधर की पूजा करके व्रत करने वाला मनुष्य ब्राह्मण को परिधान, शय्या तथा फल का दान करे॥१-४॥

शय्यां दत्त्वा प्रार्थयेच्च श्रीधराय नमः श्रिये।
उमां शिवं हुताशञ्च तृतीयायाञ्च पूजयेत्॥५॥
हविष्यमन्नं नैवेद्यं देयं मदनकं तथा। चैत्रादौ फलमाप्नोति उमया मे प्रभाषितम्॥६॥
फाल्गुनादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत्। समाप्ते शयनं दद्याद्गृहञ्चोपस्करान्वितम्॥७॥

'श्रीधराय नमः' तथा 'श्रियै नमः' मन्त्र से शय्यादान काल में इन दोनों देवताओं की पूजा करे। इसके बाद उमा, शंकर तथा अग्नि पूजन करे। व्रती मानव हविष्यान्न भक्षण करे। नैवेद्य तथा दमनक फूल अर्पित करे। चैत्र मास से इस व्रत को एक वर्ष करने वाला व्रती इच्छित फल पाता है। इस व्रत में उक्त एक वर्ष तक नमक का त्याग करे। एक वर्ष जब समाप्त हो, तब ब्राह्मण को नमक तथा सभी उपकरण के साथ गृहदान करे। इससे व्रत यथायथ सम्पन्न होता है॥५-७॥

संपूज्य विप्रमिथुनं भवानि प्रीयतामिति। गौरी लोके वसेन्नित्यं सौभाग्यकरमुत्तमम्॥८॥

गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती।
मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मीः शिवा नारायणी क्रमात्।
मार्गतृतीयामारभ्य अवियोगादि चाप्नुयात्॥९॥

वह विप्रदम्पति की पूजा करके प्रार्थना करे—"हे भवानी! आप प्रसन्न हों।" तब विप्रदम्पति की पूजा करने से भवानी प्रसन्न होती हैं। वह उत्तम सौभाग्य प्राप्त करके अन्त में नित्य गौरीलोक में स्थानलाभ करता है। उसकी सभी क्षेत्र में इस लोक में उन्नति होती है। अगहन महीने की तृतीया से प्रारम्भ करके एक वर्ष प्रति मास क्रमशः एक-एक देवी की पूजा करे। उनके नाम हैं—गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा, नारायणी। एक देवी की पूजा एक मास में करे। ऐसा व्यक्ति कभी परिवार में वियोग दुःख नहीं सहता॥८-९॥

चतुर्थ्यां सितमाघादौ निराहारो व्रतान्वितः।
दत्त्वा तिलांस्तु विप्राय स्वयं भुङ्क्ते तिलोदकम्।
वर्षद्वये समाप्तिश्च निर्विघ्नादि समाप्नुयात्॥१०॥
गः स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं प्रणवेन समन्वितः।
ग्लौं ग्लां हृदये गां गीं गूं हूं ह्रीं ह्रीं शिरः शिखा।
गूं वर्म गोञ्च गौं नेत्रं गोञ्च आवाहनादिषु॥११॥
आगच्छोल्काय गन्धोल्कः पुष्पोल्कधूपकोल्ककः।
दीपोल्काय महोल्काय बलिश्चाथ विसर्जनम्॥१२॥
सिद्धोल्काय च गायत्री न्यासोऽङ्गुष्ठादिरीरितः।

ओं महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥१३॥

पूजयेत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा। गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च।

अमोघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे॥१४॥

माघ शुक्लाचतुर्थी तिथि पर व्रती व्यक्ति उपवासी रहकर ब्राह्मण को तिलदान करके तिलजल पान करे। ऐसा व्रत प्रतिमास चतुर्थी को करना चाहिये। यह दो वर्ष करे। इससे व्रती को कभी विघ्न नहीं होता। इसमें पूजा मन्त्र है—"ॐ गः स्वाहा" इसका अंगन्यास यह है—

ॐग्लौं ग्लां हृदयाय नम: - हृदय,
ॐ गां गीं गूं शिरसे स्वाहा - शिर,
ॐ हूं ह्रीं ह्रीं शिखायै वषट् - शिखा,
ॐ गूं गों कवचाय हुम् - कवच,
ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट् - नेत्रत्रय,

ॐ ग: करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्—

अब 'गां' मन्त्र से आवाहन करे। अब करन्यास करे—

ॐ आगच्छोल्काय अंगुष्ठाभ्यां नमः,
ॐ गन्धोल्काय तर्जनीभ्यां स्वाहा,
ॐ पुष्पोल्काय मध्यमाभ्यां वषट्,
ॐ धूपोल्काय अनामिकाभ्यां हुं,
ॐ दीपोल्काय कनिष्ठाभ्यां वौषट्,
ॐ महोल्काय अस्त्राभ्यां फट्।

इस प्रकार न्यासोपरान्त सिद्धोल्काय मन्त्र से बलि प्रदान तथा विसर्जन करना होगा। ''महाकर्णाय विद्महे'' इत्यादि गायत्री जप करे। गण, गणपति, कूष्माण्ड, अमोघोल्क, एकदन्त तथा त्रिपुरान्तक—ये गणपति लोग हैं॥१०-१४॥

ओं श्यामदन्तविकरालास्याहवेशाय वै नमः। पद्मदंष्ट्राय स्वाहान्तमुद्रा वै नर्त्तनं गणे।
हस्ततालश्च हसनं सौभाग्यादिफलं भवेत्॥१५॥
मार्गशीर्षे तथा शुक्ल चतुर्थ्यां पूजयेद् गणम्।
अब्दं प्राप्नोति विद्यां श्रीकीर्त्त्यायुः पुत्रसन्ततिम्॥१६॥
सोमवारे चतुर्थ्याञ्च समुपोष्यार्चयेद् गणम्।
जपञ्जुह्वत्स्मरन्नित्यं स्वर्गं निर्विघ्नतां व्रजेत्॥१७॥
यजेच्छुक्लचतुर्थ्यां यः खण्डलड्डुकमोदकैः।
विघ्नार्चनेन सर्वान्वै कामान् सौभाग्यमाप्नुयात्।
पुत्रादिकं मदनकैर्मदनाख्या चतुर्थ्यपि॥१८॥
ओं गणपतये नमः चतुर्थ्यन्तं यजेद् गणम्।
मासे तु यस्मिन्कस्मिंश्चिज्जुहुयाद् वा जपेत्स्मरेत्।
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वविघ्नविनाशनम्॥१९॥

तब 'ॐ श्यामदन्ताय स्वाहा', इस प्रकार से विकरालास्य, आहवेश, पद्मदंष्ट्र की पूजा करे। अर्थात् चतुर्थ्यन्त नाम के आरम्भ में प्रणव तथा अन्त में 'स्वाहा' लगाये। तब मुद्रा प्रदर्शन, नृत्य, ताली

तथा हास्य करे। इस पूजा का फल है सौभाग्यलाभ। अगहन मास की शुक्ला चतुर्थी तिथि पर गणदेव की पूजा करे। एक वर्ष इसी तिथि पर प्रतिमाह पूजा करने से विद्या, श्री, कीर्त्ति, आयु, पुत्र, सन्ततिलाभ होता है। सोमवासरी चतुर्थी पर उपवासी रहकर गणपति पूजा करे। इस अर्चना के उपरान्त जप, होम, देवनाम स्मरण द्वारा इहलोक के सभी विघ्न शान्त होते हैं। अन्तकाल में स्वर्ग मिलता है। शुक्लपक्षीय चतुर्थी तिथि पर चीनी, लड्डू, मोदकादि से पूजा करे। जिससे सन्तानलाभ होगा। इसे मदनचतुर्थी कहा गया है। किसी भी महीने में "ॐ गणपतये नमः" से पूजा करे। होम, नामस्मरण तथा मन्त्रजप करने वाले व्रती के समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। सर्व मनोकामना लाभ भी होता है। सर्व देवाधिदेव विनायक की पूजा द्वारा वह व्यक्ति सुख, सद्गति, स्वर्ग, मोक्षलाभ करता है॥१५-१९॥

विनायकं मूर्त्तिकाद्यं यजेदेभिश्च नामभिः। सोऽपि सद्गतिमाप्नोति स्वर्गमोक्षसुखानि च॥२०॥

गणपूज्य एकदन्ती वक्रतुण्डश्च त्र्यम्बकः।
नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः।
धूम्रवर्णो बालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः॥२१॥
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादश वै यजेद् गणम्।
पृथक्समस्तं मेधावी सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥२२॥
श्रावणे चाश्विने भाद्रे पञ्चम्यां कार्त्तिके शुभे।
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालीयो मणिभद्रकः॥२३॥

ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ। घृताद्यैः स्नापिता ह्येते आयुरारोग्यस्वर्गदाः॥२४॥

अनन्तं वासुकिं शङ्खं पद्मं कम्बलमेव च। तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रञ्च शङ्खकम्॥२५॥

कालीयं तक्षकञ्चापि पिङ्गलं मासि मासि च।
यजेद्भाद्रसिते नागानष्टौ मुक्त्वा दिवं व्रजेत्॥२६॥
द्वारस्योभयतो लेख्या श्रावणे तु सिते यजेत्।
पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान्महोरगान्॥२७॥

क्षीरं सर्पिश्च नैवेद्यं देयं सर्वविषापहम्। नागा अभयहस्ताश्च दष्टोद्धरणपञ्चमी॥२८॥

॥इति गारुडे महापुराणे दष्टोद्धरणपञ्चमी नाम ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१२९॥

इन १२ गणपतियों की पूजा करनी चाहिये। यथा—एकदन्त, वक्रतुण्ड, त्र्यम्बक, नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, बालचन्द्र, विनायक, गणपति, हस्तिमुख। अलग-अलग अथवा एक साथ इन देवताओं की पूजा से सभी मनःकामना पूरी होती है। श्रावण, भाद्र, आश्विन अथवा कार्त्तिक मासीय शुक्लापंचमी को वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक, धनंजय, नागगण को घृतादि से नहलाकर पूजा करे। इससे आयु, आरोग्य तथा स्वर्गलाभ होता है। अनन्त, वासुकि,

शंख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, शंखककालीय, तक्षक, पिंगल की प्रतिमास (पंचमी पर) पूजा करे। विशेषतया भाद्र मास में अष्टनाग पूजन करने वाला मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग जाता है। श्रवण शुक्ला पंचमी के दिन दरवाजे के दोनों ओर नागमूर्त्ति चित्रित करे। अनन्तादि महानागों की पूजा करे। क्षीर, घृत, नैवेद्य देने वाला व्यक्ति सभी विष भय से निवृत्त रहता है। नागों द्वारा उसे अभयदान मिला रहता है। इस पंचमी का नाम है दष्टोद्धरण पंचमी॥२०-२८॥

॥एक सौ उन्तीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमी व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

एवं भाद्रपदे मासि कार्त्तिकेयं प्रपूजयेत्। स्नानदानादिकं सर्वमस्याक्षय्यमुच्यते।
सप्तम्यां प्राशयेच्चापि भोज्यं विप्रान् रविं यजेत्॥१॥
ओं खखोल्कायमृतत्वं प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा।
अष्टम्यां पारणं कुर्य्यान्मरिचं प्राश्य स्वर्गभाक्॥२॥

इति मरिचसप्तमी।

ब्रह्मा ने कहा—भाद्रपद मास में श्री कार्त्तिकेय देव की पूजा करके जो भी स्नान-दान किया जायेगा, वह अक्षय फलदायक होगा। सप्तमी के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर "ॐ खखोल्काय नमः" आदि मन्त्रों से सूर्य की पूजा करे। इससे व्रताचारी स्वर्ग जाता है। यही **मरीचसप्तमी** कही जाती है॥१-२॥

सप्तम्यां नियतः स्नात्वा पूजयित्वा दिवाकरम्।
दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्त्तण्डः प्रीयतामिति॥३॥
खर्जूरं नारिकेलं वा प्राशयेन्मातुलुङ्गकम्। सर्वे भवन्तु सफला मम कामाः समन्ततः॥४॥

इति फलसप्तमी।

संपूज्य देवं सप्तम्यां पायसेनाथ भोजयेत्।
विप्रांश्च दक्षिणं दत्त्वा स्वयञ्चाथ पयः पिवेत्॥५॥
भक्ष्यं चोष्यं तथा लेह्यमोदनेति प्रकीर्त्तितम्। धनपुत्रादिकामस्तु त्यजेदेतदनोदनः॥६॥

इति अनोदनसप्तमी

इस दिन संयम पूर्वक स्नानादि करके सूर्य पूजा करे तथा "सूर्य प्रसन्न हों" कहकर ब्राह्मण को

फल देना चाहिये। खजूर, नारियल, मातुलुंग फल (बिजौरा नींबू) ब्राह्मण को खिलाये। तब "मेरी कामना फलीभूत हो" यह प्रार्थना करे। यह **फलसप्तमी** व्रत है। इस तिथि पर सूर्यपूजा करके ब्राह्मण को खीर खिलाये। उनको दक्षिणा देकर तब स्वयं जलपान करे। चर्व्य, चोष्य, लेह्य आदि भोजन द्रव्य ओदन कहलाते हैं। धन तथा पुत्र चाहने वाला व्रत में ओदन त्याग करे तथा उपरोक्त ओदनरहित भोजन ग्रहण करे। यह **अनोदनसप्तमी** व्रत है॥३-६॥

वाय्वाशी विजयेच्छुश्च कुर्य्याद्विजयसप्तमीम्।
अद्यादर्कञ्च कामेच्छुरुपवासेत कामदम्॥७॥
गोधूममाषयवषष्टिककांस्यपात्रं पाषाणपिष्टमधुमैथुनमद्यमांसम्।
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलांश्च विवर्जयेद्यः तस्योषितं भवति सप्तसु सप्तमीषु॥८॥

इति सप्तम्यादि व्रतानि।

॥इति गारुडे महापुराणे सप्तम्यादिव्रतं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥

विजय चाहने वाला निराहार रहकर सप्तमी व्रत करे। कामी व्यक्ति अर्क पत्र देकर उपवासी रहे। (देकर = चढ़ा कर) यह व्रत सर्वकामना पूरक है। इसमें गेहूं, उर्द, यव, यष्टिधान्य, पाषाण पात्र, पिष्टक, कांस्यपात्र, मधु, मैथुन, मद्य, मांस, अभ्यञ्जन, तिल का वर्जन करे। इसे करके सप्तमी व्रत सम्पन्न करे॥७-८॥

॥एक सौ तीसवां अध्याय समाप्त॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रोहिणी अष्टमी व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः।
दूर्वां गौरीं गणेशञ्च फलपुष्पैः शिवं यजेत्॥१॥
फलव्रीह्यादिकरणैः शम्भवे नमः शिवाय च।
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि ह्यष्टमी सर्वकामभाक्।
अनग्निपक्वमश्नीयान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥२॥

इति दूर्वाष्टमी।

ब्रह्मा ने कहा—हे ब्रह्मन् व्यास! भाद्रपद मासीय शुक्लाष्टमी पर उपवासी रहकर दूर्वा, गौरी, गणेश, शिव की पूजा करे। फल, व्रीहि आदि से "ॐ शंभवे नमः", "ॐ शिवाय नमः" मन्त्र से पूजा करे। तदनन्तर "त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि" इत्यादि से दूर्वा पूजन करे। यह दूर्वाष्टमी व्रत सर्वकामप्रद है। इस दिन अग्नि में पका कोई अन्न न खाये। इस व्रतफल से व्यक्ति ब्रह्महत्या से भी छूट जाता है। यह **दूर्वाष्टमी** है॥१-२॥

कृष्णाष्टम्याञ्च रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्चनं हरेः।
कार्य्या विद्धापि सप्तन्या हन्ति पापं त्रिजन्मकम्॥३॥
उपोषितोऽर्चयेन्मन्त्रैस्तिथिभान्ते च पारणम्।
योगाय योगपतये योगेश्वराय गोविन्दाय नमो नमः॥४॥

स्नानमन्त्रः

यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।

अर्चनस्य

विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः॥५॥

शयनस्य

सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।
स्थण्डिले पूजयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीन्तथा॥६॥

भाद्रमासीय कृष्णपक्ष में रोहिणी नक्षत्रयुता अष्टमी ही **रोहिणीष्टमी** होती है। इस दिन आधी रात में हरि की पूजा करे। जब सप्तमी, अष्टमी का संयोग हो, तभी अष्टमी व्रत होगा। इससे तीन जन्म के पाप नष्ट होते हैं। अष्टमी पर उपवासी रह कर पूजा करे। तदनन्तर यह तिथि एवं नक्षत्र समाप्त होने पर पारण करना होगा।

स्नान मन्त्र है—"ॐ योगाय योगपतये योगेश्वराय गोविन्दाय नमो नमः।" इससे स्नान कराये।

पूजा मन्त्र है—"यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसंभवाय गोविन्दाय नमो नमः।" इस मन्त्र से पूजा करे।

शयन मन्त्र से शयन कराये, मन्त्र है—विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः।

इस मन्त्र से स्थण्डिल पर चन्द्र-रोहिणी पूजा करे। यथा—सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥३-६॥

शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम्। जानुभ्यामवनीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत्॥७॥
क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं शशाङ्केमं रोहिण्या सहितो मम॥८॥
श्रियै च वसुदेवाय नन्दाय च बलाय च। यशोदायै ततो दद्यादर्घ्यं फलसमन्वितम्॥९॥
अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्। वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्॥१०॥

वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम्। दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम्॥११॥
गोविन्दमच्युतं देवमनन्तमपराजितत्। अधोक्षजं जगद्बीजं स्वर्गस्थित्यन्तकारणम्॥१२॥
अनादिनिघनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्। नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१३॥
पीताम्बरधरं दिव्यं वनमालाविभूषितम्। श्रीवत्साङ्कं जगद्धाम श्रीपतिं श्रीधरं हरिम्॥१४॥

इसके पश्चात् शंख में जल-पुष्प-फल-चन्दन लेकर घुटने टेक धरती पर बैठकर चन्द्र को अर्घ्य देना चाहिये। मन्त्र है—"हे शशांक! क्षीरोद-सागर आपका जन्मस्थल है। आप अत्रि ऋषि के नेत्रों से अवतरित हैं। मैं अर्घ्य प्रदान करता हूं। आप देवी रोहिणी सहित इसे स्वीकार करें।" यह **अर्घ्य मन्त्र** है।

इसके अनन्तर लक्ष्मी, वासुदेव, नन्द, बलदेव, यशोदा को फलयुक्त अर्घ्य देना चाहिये। तत्पश्चात् यह मन्त्र कहे—"आप पापरहित, वामन, शौरि, वैकुण्ठपति, पुरुषोत्तम, वसुदेवनन्दन, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वराह, पुण्डरीकाक्ष, नृसिंह, दैत्यनाशक, पद्मनाभ, केशव, गरुड़वाहन, गोविन्द, अच्युत, अपराजेय, जगत्कारण, सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी, उत्पत्ति-नाश रहित हैं। त्रैलोक्यपति! स्वर्ग, मर्त्य, पाताल ये सब आपके पैर में स्थित है। आप नारायण, चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, पीताम्बरधर, वनमाला से शोभित हैं। आपके वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न शोभायमान है। आप जगदाधार, श्रीपति, श्रीधर हैं॥७-१४॥

यं देवं देवकी देवी वासुदेवादजीजनत्। भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।
नामान्येतानि संकीर्त्त्य गत्यर्थं प्रार्थयेत्पुनः॥१५॥

"वसुदेव से देवकी ने जिन देव को उत्पन्न किया, वे पृथिवी तथा ब्राह्मणों की रक्षा के लिये आप ही अवतरित हैं। आपको प्रणाम!" इन नामों का कीर्त्तन करके अपनी उत्तम गति हेतु पुनः प्रार्थना करे॥१५॥

त्राहि मां देवदेवेश हरे संसारसागरात्। त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो॥१६॥
देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात्। दुर्वृत्तांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत्।
सोऽहं देवाति दुर्वृत्तस्त्राहिं मां शोकसागरात्॥१७॥
पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे। त्राहि मां देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता॥१८॥
स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।
शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक्॥१९॥

।इति गारुडे महापुराणे रोहिण्यष्टमीव्रतं नाम एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३१।।

यथा—"हे देवदेवेश! हे हरि! आप संसार सागर से मेरी रक्षा करिये। हे सर्वपापनाशक! प्रभु आप दुःख शोक के इस संसार समुद्र से मुझे बचाइये। हे श्रीपति! देवकी पुत्र! आप संसार सागर से रक्षा करिये। आप हे विष्णु! दुर्वृत्तों का भी त्राण करते हैं। वे आपका स्मरण करके त्राण पा जाते हैं। हे देव! मैं अत्यन्त दुर्वृत्त हूं। मुझे शोकसमुद्र के पार उतारिये। हे कमलनयन प्रभु! मैं महान् अज्ञान सागर में डूब रहा

हूं। हे देवेश्वर! मेरी रक्षा करिये। आपके सिवाय मुझे बचाने वाला कोई नहीं है। आपने वसुदेव से जन्म लेना स्वयं स्वीकार किया था। तभी आप वासुदेव कहे गये। आपने गौ-ब्राह्मण के हितार्थ अवतार लिया है। आप जगत् का कल्याण करने वाले हैं। आप गौ तथा ब्राह्मणों का कल्याण करिये। आप कृष्ण-गोविन्द को प्रणाम! मेरी शान्ति हो, मेरा कल्याण हो। मैं धन, कीर्ति, राज्यलाभ करूं।" यह कह कर विसर्जन करना चाहिये॥१६-१९॥

॥एक सौ एक्तीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

बुधाष्टमी वर्णन

ब्रह्मोवाच

नक्ताशी त्वष्टमी यावद्वर्षान्ते चैव धेनुदः। पौरन्दरपदं याति सद्गतिश्च व्रतेऽच्युत॥१॥

शुक्लाष्टम्यां पौषमासे महारुद्रेति साधु वै।
मत्प्रीतये व्रतकृतं शतसाहस्त्रिकं फलम्॥२॥

अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा। भविष्यति तदा तस्यां व्रतमेतत्कथा पुरा।
तस्यां नियमकर्त्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—अष्टमी तिथि पर केवल रात्रिभोजन वाला होकर व्रत करे। जो व्यक्ति एक वर्ष तक प्रति अष्टमी को यथाविधि यह व्रत करता है तथा वर्षान्त में गोदान करता है, वह इन्द्रपद लाभ करता है। इसका नाम सद्गतिव्रत है। पौष शुक्ल अष्टमी उत्तम रूपेण व्रत करे। इसका नाम है महारुद्रव्रत। मेरी प्रसन्नता हेतु जो यह व्रत करता है, उसे सैकड़ों-सहस्रों फल मिलते हैं। यदि कृष्ण अथवा शुक्लपक्ष में बुधवासरी अष्टमी पड़े, तब उस दिन व्रत करे। जो इस समय नियम के साथ व्रत करता है, उसकी सम्पदा नष्ट नहीं होती॥१-३॥

तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्जयित्वाऽङ्गुलिद्वयम्।
भक्तं सद्भक्तिश्रद्धाभ्यां मुक्तिकामी हि मानवः॥४॥
आम्रपत्रपुटे कृत्वा यो भुंक्ते कुशवेष्टिते।
कलम्बिकाम्लिकोपेतं काम्यं तस्य फलं भवेत्॥५॥
बुधं पञ्चोपचारेण पूजयित्वा जलाशये।
शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्करीं तण्डुलान्वितााम्॥६॥

बुं बुधायेति बीजः स्यात्स्वाहान्तः कमलादिकः।
बाणचापधरं श्यामं दले चाङ्गानि मध्यतः॥७॥

दो अंगुली छोड़ कर आठ अंगुलियों की मुट्ठी बनाये। उसमें चावल भरे। ऐसे आठ मुट्ठी चावल का भोजन भक्ति-श्रद्धायुक्त होकर भक्षण करे। जो कुश से वेष्ठित आम्रपत्रपुट (आम के पत्ते के दोने में) कलम्बिका तथा तिन्तिडीयुक्त अन्न खाता है, उसे वांछित फललाभ होता है। तदनन्तर जलाशय पर पंचोपचारयुक्त बुधपूजा करके कर्करी तथा तण्डुल के साथ यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। "श्रीं श्रीं बुं बुधाय स्वाहा" यह बुधपूजा मन्त्र है। इससे धनुष-बाणधारी-श्यामवर्ण बुध की पूजा करें॥४-७॥

बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम्।
पुरे पाटलिपुत्राख्ये वीरो नाम द्विजोत्तमः॥८॥
रम्भा भार्य्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तमः।
दुहिता विजयानाम्नी धनपालो वृषोऽभवत्॥९॥

तब व्रती व्यक्ति बुधाष्टमी की पावन कथा श्रवण करे। पूर्वकाल में पाटलीपुत्र में वीर नाम वाला ब्राह्मण निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम था रंभा। उसका पुत्र था कौशिक। उसकी कन्या थी विजया तथा धनपाल नामक एक वृष उसके पास था॥८-९॥

गृहीत्वा कौशिकस्तञ्च ग्रीष्मे गङ्गां गतोऽरमत्।
गोपालकैर्वृषश्चौरैः क्रीडन्नपहृतो बलात्॥१०॥
गङ्गातः स च उत्थाय वनं बभ्राम दुःखितः।
जलार्थं विजया चागाद्भ्रात्रा सार्द्धञ्च साप्यगात्॥११॥
पिपासितो मृणालार्थी आगतोऽथ सरोवरम्।
दिव्यस्त्रीणाञ्च पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्यथ विस्मितः॥१२॥

एक दिन की बात है, अत्यन्त गर्मी के कारण वह ब्राह्मणपुत्र कौशिक उस वृष को लेकर गंगातट गया तथा जल में क्रीड़ा करने लगा। तभी ग्वाले आये तथा धनपाल वृष को हर कर ले गये। तब कौशिक जल से निकला और वहां धनपाल को न पाकर दुःखित होकर धनपाल को खोजता भटकने लगा। कौशिक की बहन विजया तभी वहां गंगाजल भरकर ले जाने के लिये पहुंची। वह भाई को भटकते देख कर उसके साथ वन में गई। तब कुछ काल के पश्चात् वे पिपासा से कातर हो गये तथा मृणाल लाने सरोवर के पास आये। वे सरोवर तट आकर देखते हैं कि वहां अनेक स्त्रियां पहुंची हैं और पूजा कर रही हैं। वे सभी दिव्य स्त्री हैं। यह देख कर विजया विस्मित हो गयी॥१०-१२॥

स ता गत्वा ययाचेऽन्नं सानुजोऽहं बुभुक्षितः।
स्त्रियोऽब्रुवन्व्रतं कर्त्तुं दास्यामश्च कुरु व्रतम्॥१३॥
पत्यर्थं धनपालार्थं पूजयामासतुर्बुधम्। पुटद्वयं गृहीत्वाऽन्नं बुभुजाते प्रदत्तकम्॥१४॥

स्त्रियो गतौ च धनदौ धनपालमपश्यताम्।
चौरैर्दत्तं गृहीत्वाथ प्रदोषे प्राप्तवान् गृहम्॥१५॥

तब वह विजया उन व्रतपरायणा स्त्रियों के पास गई तथा उसने अन्न मांगते हुये कहा कि "हम दोनों भूखे हैं। आप लोग तनिक अन्न दीजिये।" तब उन स्त्रियों ने कहा—"हम तुमको व्रत में प्रयुक्त होने वाले सभी द्रव्य प्रदान कर रही हैं। तुम यहीं व्रत करो।" तब कौशिक ने धनपाल वृष को पाने की इच्छा से तथा विजया ने पति पाने के लिये आम्रपत्र पुट (आम के पत्ते के दोने में) में अन्न भोजन किया। व्रत सम्पन्न करके वे स्त्रियां स्वस्थान लौट गयीं। कौशिक तथा विजया भी वहां से चल पड़े। कुछ दूर जाते ही कौशिक ने धनपाल को वहां देखा। चोरों ने प्रणाम करते हुये धनपाल वृष को कौशिक के हाथों सौंप दिया। प्रदोष होने पर वे घर लौटे॥१३-१५॥

वीरञ्च दुःखितं नत्वा रात्रौ सुप्तो यथासुखम्।
कन्याञ्च युवतीं दृष्ट्वा कस्मै देया सुता मया॥१६॥
यमायेत्यब्रवीद् दुःखात्साचाराद्व्रतसत्फलात्।
स्वर्गं गतौ च पितरौ व्रतं राज्याय कौशिकः॥१७॥
चक्रेऽयोध्यामहाराज्यं दत्त्वा च भगिनीं यमे। यमोऽपि विजयामाह गृहस्था भव मे पुरे॥१८॥

ब्राह्मण वीर पुत्र-कन्या को न पाकर दुःखी था। उधर कौशिक ने पिता को प्रणाम करके सुख के साथ शयन किया। प्रातः वीर ब्राह्मण पुत्री को युवती देख कर विचार करने लगा "इस कन्या का विवाह का समय आ गया। अब इसे किसको अर्पित करूं?" तभी विजया ने दुःखी होकर कहा "मुझे यम को दे दीजिये।" कुछ समय पश्चात् कौशिक के माता-पिता मृत हो गये। कौशिक राजा हो गया। उसने अयोध्या में राज्य स्थापित किया। वहां विजया के व्रतफल से यम आये। कौशिक ने यम के हाथों विजया को प्रदान कर दिया। यम ने कहा "तुम मेरी पत्नी होकर मेरे यहां चलो"॥१६-१८॥

अपश्यन्मातरं स्वां सा पाशयातनया स्थिताम्।
अथोद्विग्ना च विजया ज्ञात्वा विमुक्तिदं व्रतम्॥१९॥
चक्रे च सा ततो मुक्ता माता तस्याः कृतव्रता। व्रतपुण्यप्रभावेण स्वर्गं गत्वावसत्सुखम्॥२०॥

॥इति गारुडे महापुराणे बुधाष्टमीव्रतं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३२॥

विजया अब यमपुरी में रहने लगी। वहां उसने माता को यमयातना ग्रस्त देख कर उनके त्राण हेतु वहां वृषाष्टमी व्रत किया। इसके प्रभाव से विजया की माता ने यातना से मुक्ति पा लिया। उसने मुक्ति पाकर पुनः व्रत किया। तब उसके प्रभाव से स्वर्ग जाकर सुख से रहने लगी॥१९-२०॥

॥एक सौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अशोकाष्टमी व्रत तथा महानवमी व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

अशोककलिका ह्यष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः॥१॥
त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव। पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु॥२॥

इत्यशोकाष्टमी।

ब्रह्मा ने कहा—जो चैत्र मास के शुक्लपक्ष में पुनर्वसु नक्षत्र योग वाली अष्टमी के दिन आठ अशोक कलिका का भक्षण करते हैं, उनको कभी शोक नहीं होता। मन्त्र है—"हे अशोक! तुम हरप्रिय हो। चैत्र मास का उद्भव हो रहा है। शोकसन्तप्त मैं तुम्हारा पान कर रहा हूं। तुम मुझे शोकरहित करो।" इस मन्त्र से उन अशोक कलिका का भक्षण करे। यह **अशोकाष्टमी व्रत** है॥१-२॥

ब्रह्मोवाच

शुक्लाष्टम्यामश्वयुजे उत्तराषाढया युता। सा महानवमीत्युक्ता स्नानदानादि चाक्षयम्॥३॥
नवमी केवला चापि दुर्गाञ्चैव तु पूजयेत्। महाव्रतं महापुण्यं शङ्कराद्यैरनुष्ठितम्॥४॥
अयाचितादि षष्ठ्यादौ राजा शत्रुजयाय च।
जपहोमसमायुक्तः कन्यां वा भोजयेत्सदा॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—आश्विन मास की शुक्ला नवमी जब उत्तराषाढ़ा नक्षत्र समन्वित हो, तब वही महानवमी होती है। इस दिन स्नान-दानादि का अक्षय पुण्य मिलता है। इस तिथि पर दुर्गापूजा अत्यन्त महापुण्यमय व्रत है। शिव आदि देवता इस व्रत का अनुष्ठान अवश्य करते हैं। राजा शत्रुनाशार्थ अयाचित व्रत षष्ठी आदि को करके उक्त नवमी के दिन जप-होमादि सम्पन्न करे तथा कुमारी भोजन कराये॥३-५॥

दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा मन्त्रोऽयं पूजनादिषु।
दीर्घाकाराभिर्मात्राभिर्नवदेव्यो नमोऽन्तिकाः॥६॥
षड्भिःपदैर्नमः स्वाहा वषडादि हृदादिकम्।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं विन्यस्य पूजयेच्छिवाम्॥७॥

"ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा" मन्त्र से पूजनादि करे। षट्दीर्घ से न्यास करे। नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् से क्रमशः हृदयादिन्यास करना चाहिये। तदनन्तर अंगुष्ठादि करन्यास सम्पन्न करके देवी दुर्गा की पूजा करे॥६-७॥

अष्टम्यां नवगेहानि दारुजान्येकमेव वा। तस्मिन्देवी प्रकर्त्तव्या हैमा वा राजतापि वा॥८॥

शूले खड्गे पुस्तके वा पटे वा मण्डले यजेत्।
कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः॥९॥
ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु बिभ्रती।
शक्तिञ्च मुद्गरं शूलं वज्रं खड्गं तथाङ्कुशम्॥१०॥
शरं चक्रं शलाकाञ्च दुर्गामायुधसंयुताम्। शेषाः षोडशहस्ताः स्युरञ्जनं डमरुं विना॥११॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका॥१२॥
नवमी चोग्रचण्डा च मध्यस्थाग्निप्रभाकृतिः।
रोचना अरुणा कृष्णा नीला धूम्रा च शुक्लका।
पीता च पाण्डरा प्रोक्ता आलीढेन हरिस्थिताः॥१३॥
माहिषोऽथ सखड्गाग्रे प्रकचग्रहमुष्टिका।
जप्त्वा दशाक्षरीं विद्यां त्रिशूलञ्च ततो यजेत्॥१४॥

अष्टमी को काठ का नया घर बनाकर उसमें स्वर्ण या चांदी की देवी प्रतिमा की स्थापना करे। शूल, खड्ग, पुस्तक, पट किंवा मण्डल में देवी का ध्यान तथा पूजन किया जा सकता है। देवी के बायें हाथों में कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी, धनुः, ध्वज, डमरू तथा पाश है। ये नौ आयुध हैं। उनके दाहिने नौ हाथों में शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, बाण, चक्र तथा शलाका है। इन सभी अस्त्रों को धारण करने वाली अष्टादश भुजा दुर्गा की पूजा करे। बाकी देवियों के सोलह हाथ हैं। उनके पास उपरोक्त अट्ठारह अस्त्रों में से शलाका तथा डमरू नहीं हैं। बाकी अस्त्र यथावत् हैं। साथ में उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डाग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा तथा अतिचण्डिका की पूजा करे। इन आठ देवीगण की पूजा के उपरान्त मध्य में स्थित अग्नि के समान प्रभान्विता उग्रचण्डा की पूजा करनी चाहिये। ये उग्रचण्डा रोचन के (गोरोचन) वर्ण वाली हैं। प्रचण्डा अरुण वर्णा हैं। चण्डोग्रा कृष्णवर्णा, चण्डनायिका नीलवर्णा, चण्डा धूम्रवर्णा, चण्डवती शुक्लवर्णा, चण्डरूपा पीतवर्णा तथा अतिचण्डिका पाण्डुर वर्ण वाली हैं। ये सभी सिंह पर सवार हैं। ये आलीढपदा हैं अर्थात् बायां पैर आगे है। इन सब के सामने खड्गधारी महिषासुर खड़ा है। सभी देवियों ने मुष्टि बनाया है (प्रचण्ड मुक्का बनाया है)। साधक दशाक्षरी मन्त्र जपता त्रिशूलार्चन करे॥८-१४॥

लिङ्गस्थां पूजयेद्वापि पादुकेऽथ जलेऽपि वा। विचित्रां रचयेत्पूजामष्टम्यामुपवासयेत्॥१५॥
पश्चाब्दं महिषं शस्तं रात्रिशेषञ्च घातयेत्। विधिवत्कालिकी नीतिस्तदुत्थरुधिरादिकम्॥१६॥
नैर्ऋत्यां पूतनाञ्चैव वायव्यां पापराक्षसीम्।
चण्डिकाञ्च तथैशान्यामाग्नेय्याञ्च विदारिकाम्॥१७॥

।इति गारुडे महापुराणे महानवमीव्रतं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३३॥

लिंग में, पादुका अथवा जल में देवीपूजा हो सकती है। पूजनोपरान्त अष्टमी को उपवासी रहे। अपने वैभव के अनुरूप पूजा की जाये। रात्रि में पांच वर्ष के महिष तथा बकरे की बलि प्रदान करे। तदनन्तर "कालि कालि" इत्यादि मन्त्र से सविधि रुधिर प्रदान करे। नैर्ऋत्य में पूतना, वायुकोण में पापराक्षसी, ईशान में चण्डिका तथा अग्निकोण में विदारिका को रुधिर अर्पित करे॥१५-१७॥

॥एक सौ तैंतीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महानवमी व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

महाकौशिकमन्त्रश्च कथ्यतेऽत्र महाफलः।

महाकौशिकमन्त्रः

ओं महाकौशिकाय नमः। ओं हूं हूं प्रस्फुर लल लल कुल्व कुल्व चुल्व चुल्व खल्ल खल्ल मुल्व मुल्व गुल्व गुल्व तुल्व तुल्व पुल्ल पुल्ल धुल्व धुल्व धुम धुम धम धम मारय मारय धक धक वज्ञापय वज्ञापय विदारय विदारय कम्प कम्प कम्पय कम्पय पूरय पूरय आवेशय आवेशय ओं ह्लीं ओं ह्लीं हं वं वं हुं तट तट मद मद ह्लीं ओं हूं नैर्ऋताय नमः। निर्ऋतये दातव्यं महाकौशिकमन्त्रेण मन्त्रितं बलिमर्पयेत्॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मैं महाकौशिक मन्त्र कहता हूं, जो महाफलप्रद है (उक्त मन्त्र मूल में श्लोक १ में यथावत् लिखा है। मन्त्र होने से उसका अर्थ सम्भव नहीं है)॥१॥

तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छक्रं कृत्वा च पैष्टकम्।
खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात्स्कन्दविशाखयोः॥२॥
मात्तृणाञ्चैव देवीनां पूजा कार्य्या तथा निशि।
ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डिका तथा॥३॥
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥४॥

राजा इस महाकौशिक मन्त्र द्वारा बलि अर्पित करे। तब राजा स्नान करके एक पिष्टक (पींठी) से

शत्रु की आकृति बनाकर खड्ग से उसे काटे तथा स्कन्द एवं विशाख को प्रदान करे। रात्रि में मातृका पूजा करे। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, चण्डिका, जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा, धात्री, स्वाहा तथा स्वधा की पूजा करनी चाहिये॥२-४॥

क्षीराद्यैः स्नापयेद्देवीं कन्यकाः प्रमदास्तथा।
द्विजादीनथ पाषण्डान् अल्पदानेन पूजयेत्॥५॥
ध्वजपत्रपताकाद्यैरथ यात्रासु वस्त्रकैः। महानवम्यां पूजेयं जयराज्यादिदायिका॥६॥

।इति गारुडे महापुराणे महानवमीव्रतं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३४॥

क्षीर आदि से देवी को स्नान कराये। तब कुमारी कन्या एवं स्त्रियों की पूजा करे। ब्राह्मणादि तथा पाखण्डियों को अन्नादि दान से तृप्त करे। ध्वज, पताका, रथ को मन्त्र से देवी को देकर उनकी पूजा करे। इस पूजन फल से साधक हर जगह विजयी होकर राज्यादि पा लेता है॥५-६॥

॥एक सौ चौंतीसवां अध्याय समाप्त॥
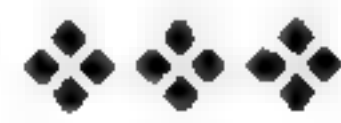
पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नवमी-दशमी आदि के व्रतों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

नवम्यामाश्विने शुक्ले एकभक्तेन पूजयेत्।
देवीं विप्रान्लक्षमेकं जयेद्बीजं व्रती नरः॥१॥

इति वीरनवमी।

ब्रह्मा ने कहा—आश्विन महीने की शुक्ला नवमी पर एकाहारी होकर देवी तथा ब्राह्मणार्चन करके व्रती मानव मूलमन्त्र का एक लाख जप करे। यह **वीर नवमी** व्रत है॥१॥

ब्रह्मोवाच

चैत्रे शुक्लनवम्याञ्च देवीं दमनकैर्यजेत्।
आयुरारोग्यसौभाग्यं शत्रुभिश्चापराजितः॥२॥

इति दमनाख्या नवमी।

ब्रह्मा ने कहा—चैत्रमासीय शुक्ला नवमी के दिन दमनक के फूलों से देवी की पूजा करे। इससे आयु-आरोग्य तथा सौभाग्य मिलता है। उसे शत्रु हरा नहीं सकते। यह **दमन नवमी** है॥२॥

ब्रह्मोवाच

दशम्यामेकभक्ताशी समान्ते दशधेनुदः।
दिशश्च काञ्चनीर्दत्त्वा ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत्॥३॥

इति दिग्दशमी।

ब्रह्मा ने कहा—दशमी को एक समय ही भोजन करे। दुर्गार्चन करे। प्रतिमास की दशमी को जो यह व्रत करता है तथा वर्षान्त में दस गौयें एवं स्वर्णमयी दिक्पाल प्रतिमा प्रदान करता है, वह ब्रह्माण्डाधिपति होता है। यह **दिक्दशमी** व्रत है॥३॥

ब्रह्मोवाच

एकादश्यामृषिपूजा कार्य्या सर्वोपकारिका। धनवान्पुत्रवाँश्चान्ते ऋषिलोके महीयते॥४॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। प्रचेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च।
चैत्रादौ कारयेत्पूजां माल्यैश्च दमनोद्भवैः॥५॥
अशोकाख्याष्टमी प्रोक्ता वीराख्या नवमी तथा।
दमनाख्या दिग्दशमी नवम्येकादशी तथा॥६॥

।इति गारुडे महापुराणे अष्टम्यादिव्रतं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३५।।

ब्रह्मा ने कहा—एकादशी को सर्वोपचार से ऋषिपूजा करे। इस व्रत से व्रती धनी, पुत्रवान् होता है। मृत्यु के पश्चात् ऋषिलोक जाता है। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु तथा नारद की पूजा चैत्र से आरम्भ करके प्रतिमाह दमनक के पुष्प माल्यादि से करे। इस प्रकार अशोकाष्टमी, वीरनवमी, दमनक नवनी तथा दिक् दशमी व्रत करे। अब अन्य व्रत कहता हूं॥४-६॥

॥एक सौ पैंतीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

श्रवण द्वादशी व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

श्रवणद्वादशीं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्। एकादशी द्वादशी च श्रवणेन च संयुता।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता हरिपूजादि चाक्षयम्॥१॥
एकभक्तेन नक्तेन यथैवायाचितेन च। उपवासेन भैक्ष्येण नैवाद्वादशिको भवेत्॥२॥
कांस्यं मांसं तथा क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम्।
व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवास्वप्नमथाञ्जनम्।
शिलापिष्टं मसूरञ्च द्वादश्यां वर्जयेन्नरः॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—अब श्रवण द्वादशी कहता हूं। इस व्रत से भुक्ति (भोग) तथा मुक्ति, दोनों प्राप्त होती है। यदि एकादशी तथा द्वादशी श्रवण नक्षत्रयुक्त हो, तब वह विजया कही जाती है। इस तिथि पर हरि की पूजा का फल है अक्षय पुण्यलाभ। एक समय आहार करना अथवा केवल रात्रि भोजन, किंवा बिना मांगे जो मिले उसका भोजन, या उपवास, इनमें से किसी एक का पालन करने से व्रतरक्षा होगी। मात्र एक समय आहार से व्रतभंग नहीं होता। व्रत काल में तनिक दान भी करे। कांसे के बर्त्तन में भोजन, मांस, मधु भोजन, लालच, असत्य बोलना, स्त्री मैथुन, दिन में शयन, अंजन लगाना, सिल पर पीसे पिष्टक आदि का भोजन, मसूर का त्याग श्रवण द्वादशी में किया जाये॥१-३॥

मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादशी श्रवणान्विता। महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला।
सङ्गमे सरितां स्नानं बुधयुक्ता महाफला॥४॥
कुम्भे सरत्ने सजले यजेत्स्वर्णे तु वामनम्। सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम्॥५॥

भाद्रमासीय शुक्लपक्षीय द्वादशी जब श्रवण नक्षत्रयुता हो, वही महाद्वादशी है। इस दिन उपवास का महापुण्य है। संगम तथा सरिता में तब स्नान महाफलप्रद है, जब यह बुधवार को पड़े। शुभ्र वस्त्र के जोड़े से ढंका, पादुका, छत्र के साथ जलभरा स्वर्णकुंभ लाये। उसमें रत्न छोड़े। इसमें वामन भगवान् की पूजा करे॥४-५॥

ओं नमो वासुदेवाय शिरः संपूजयेत्ततः। श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै नमः॥६॥
नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे। व्यापकाय नमः कुक्षौ केशवायोदरं बुधः॥७॥
त्रैलोक्यपतये मेढ्रं जङ्घे सर्वपतये नमः। सर्वात्मने नमः पादौ नैवेद्यं घृतपायसम्॥८॥

'ॐ नमो वासुदेवाय' से मस्तक की, 'ॐ श्रीधराय नमः' से मुख की, 'ॐ कृष्णाय नमः' से कण्ठ की, 'श्रीपतये नमः' से वक्षः की, 'सर्वास्त्रधारिणे नमः' से दोनों भुजा की, 'ॐ व्यापकाय नमः' से कोख की, 'ॐ केशवाय नमः' से उदर की, 'ॐ त्रैलोक्यपतये नमः' से मेढ्र की, 'ॐ सर्वपतये

नम:' से दोनों जंघा की, 'ॐ सर्वात्मने नम:' से पादद्वय की पूजा करे। तब घृत-पायस का नैवेद्य अर्पण करे॥६-८॥

कुम्भांश्च मोदकान्दद्याज्जागरं कारयेन्निशि।
स्नात्वा पीतोऽर्चयित्वा तु कृतपुष्पाञ्जलिर्वदेत्॥९॥
नमो नमस्ते गोविन्द बुध श्रवणसंज्ञक। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥१०॥
प्रीयतां देवदेवेशो विप्रेभ्यः कलशान्ददेत्।
नद्यास्तीरेऽथवा कुर्य्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥११॥

॥इति गारुडे महापुराणे श्रवणद्वादशी नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय:॥१३६॥

तदनन्तर कुंभ एवं मोदक प्रदान करने के पश्चात् रात्रि जागरण करना होगा। प्रात: स्नान तथा पीतवस्त्र पहन कर पुष्पांजलि लेकर कहे—"हे गोविन्द! मैं आपको पुन:-पुन: प्रणाम करता हूं! आप मेरी पापराशि का नाश करके सभी सुख दीजिये। मुझ पर आप देवदेवेश्वर प्रसन्न हों। इस कामना से यह घट ब्राह्मणों को प्रदान करूंगा।" किसी नदी तट पर अथवा पवित्र स्थान पर यह व्रत करे। इससे सभी कामना पूर्ण होती है॥९-११॥

॥एक सौ छतीसवां अध्याय समाप्त॥
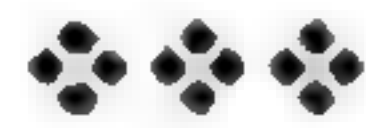
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सर्व तिथि व्रत वर्णन

ब्रह्मोवाच

कामदेवत्रयोदश्यां पूजा दमनकादिभिः।
रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः॥१॥

इति मदनत्रयोदशी।

चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।
योऽब्दमेकं न भुञ्जीत भुक्तिभाक् शिवपूजनात्॥२॥

इति चतुर्दश्यष्टमीव्रतम्।

त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्कार्त्तिक्यां भवनं शुभम्।
सूर्य्यलोकमवाप्नोति धामव्रतमिदं शुभम्॥३॥
अमावस्यां पितृणाञ्च दत्तं जलादि चाक्षयम्।
नक्ताभ्याशी वारनाम्ना यजन्वारिणि सर्वभाक्॥४॥

इति वारव्रतानि।

द्वादशर्क्षाणि विप्रर्षे प्रतिमासन्तु यानि वै। तन्नाम्ना तेऽच्युतं तेषु सम्यक् संपूजयेन्नरः॥५॥ केशवं मार्गशीर्षे तु इत्यादौ कृत्तिकादिका। घृतहोमश्चतुर्मासं कृसरञ्च निवेदयेत्॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—त्रयोदशी तिथि पर दमनक पुष्पों से कामदेवता की पूजा करनी चाहिये। पूजक रति-प्रीति समन्वित होकर सर्व प्रकार से सम्मानित होता है। यही है **मदन त्रयोदशी व्रत**।

शुक्लपक्षीय तथा कृष्णपक्षीय चतुर्दशी एवं अष्टमी को उपवास करके शिवपूजा एक वर्ष तक करे। इस व्रत से साधक सर्व भोगलाभ करता है। यह है **चतुर्दश्यष्टमी व्रत**।

साधक तीन रात्रि (तीन दिन-रात) उपवासी रह कर कार्त्तिक पूर्णिमा को उत्तम गृह दान करे। इस व्रत फल से साधक सूर्यलोक जाता है। यह है **वार व्रत**।

बारह मास में जो सब नक्षत्रों के नाम कहे गये हैं, उन सबका नाम कहते हुये संकल्प करे। प्रति मास उन-उन नक्षत्रों के दिन विष्णु पूजा करे। अगहन मास में मृगशिरायुक्त तिथि पर केशव पूजा करे।

पौष मास में पुष्य नक्षत्रयुक्त तिथि पर नारायण की, माघ में मघानक्षत्र की तिथि पर माधव की, फाल्गुन में पूर्वाफाल्गुनी युक्त तिथि में गोविन्द की, चैत्र में चित्रा नक्षत्रयुक्त तिथि में विष्णु की, वैशाख में विशाखा युक्त तिथि में मधुसूदन की, ज्येष्ठ में ज्येष्ठानक्षत्र युक्त तिथि में त्रिविक्रम की, आषाढ़ में पूर्वाषाढ़ानक्षत्र युक्त तिथि में वामन की, श्रावण में श्रवणानक्षत्र युक्त तिथि में श्रीधर की, भाद्रपद में पूर्वाभाद्रपदनक्षत्र युक्त तिथि हृषीकेश की, आश्विन मास में अश्विनीनक्षत्रयुता तिथि में पद्मनाभ की, कार्त्तिक में कृत्तिकानक्षत्र युक्त तिथि में दामोदर पूजा करे। चार मास तक घृत होम करके खिचड़ी (तिल युक्त) अर्पित करे॥१-६॥

आषाढादौ पायसन्तु विप्रांस्तेनैव भोजयेत्। पञ्चगव्यजले स्नानं नैवेद्यैर्नक्तमाचरेत्॥७॥ अर्वाग्विसर्जनाद् द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते। विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात्॥८॥ पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्यं भुञ्जते स्वयम्। एवं संवत्सरस्यान्ते विशेषेण प्रपूजयेत्॥९॥

**नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैति पुण्यम्।
ऐश्वर्य्यवित्तादि सदाऽक्षयं मे तथास्तु मे सन्ततिरक्षयैव॥१०॥
यथाच्युत त्वं परतः परस्मात्स ब्रह्मभूतः परतः परस्मात्।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं सदा मया कृतं पापहराप्रमेय॥११॥**

आषाढ़ आदि मास में पायस अर्पित करके उससे ब्राह्मण भोजन कराये। पंचगव्य जल से देवता

को नहला कर रात्रि में नैवेद्य देकर पूजा करे। देव विसर्जन के पहले सभी द्रव्य नैवेद्य होते हैं, लेकिन विसर्जन करते ही समस्त द्रव्य निर्माल्य हो जाते हैं। जो पञ्चरात्र विधिज्ञ हैं, उनको यह नैवेद्य (निर्माल्य) प्रदान करे। ऐसे एक वर्ष व्रताचरण करके वर्ष के अन्त में विशेष पूजा करनी चाहिये। तब व्रती मानव विष्णु से प्रार्थना करे—"हे अच्युत! मैं आपको पुनः-पुनः नमस्कार करता हूं! मेरा पाप नाश हो। पुण्य बढ़े। मेरा ऐश्वर्यादि, धन तथा सन्तति सदैव अक्षय हो। हे अप्रमेय! मैंने जिन पापों को किया है, आप उसका नाश करिये॥७-११॥

अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम्। तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम॥१२॥
कुर्य्याद्वै सप्तवर्षाणि आयुःश्रीसद्गतिं नरः। उपोष्यैकादशीमब्दमष्टमीञ्च चतुर्दशीम्॥१३॥
सप्तमीं पूजयेद्विष्णुं दुर्गां शम्भुं रविं क्रमात्।
तेषां लोकं समाप्नोति सर्वकामांश्च निर्मलः॥१४॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन शाकाद्यैः पूजयन्सर्वदेवताः।
सर्वः सर्वासु तिथिषु भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्॥१५॥
धनदोऽग्निः प्रतिपदि नासत्यो दस्र अर्चितः।
श्रीर्यमश्च द्वितीयायां पञ्चम्यां पार्वतीं श्रिया॥१६॥

"हे अच्युत, अनन्त, गोविन्द, अमेयात्मा, पुरुषोत्तम! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। मेरी अभिलाषा के विषयों को अक्षय कीजिये।" जो सत्गति चाहने वाला, आयु तथा लक्ष्मीकामी है, वह सात वर्ष यह व्रत करे। वह उपवासी रहे। एकादशी को विष्णु की, अष्टमी को दुर्गा की, चतुर्दशी को शंभु की तथा सप्तमी को सूर्य की पूजा करे। इस विधि से एक वर्ष तक व्रत करना चाहिये। इसके फल से वह व्यक्ति सर्व पापनाश तथा सर्व कामना पूर्ण करके अन्तकाल में देवलोक जाता है। व्रती मनुष्य एकाहारी, नक्तभोजी, बिना मांगे जो मिले उसे खाकर रहने वाला अथवा उपवासी होकर जहां तक शक्ति हो, तदनुरूप उपचार से देवगण की पूजा करे। उन-उन तिथियों पर उन-उन देवता की पूजा के फलस्वरूप पूजक भुक्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति करता है। प्रतिपदा के दिन कुबेर, अश्विनीकुमारद्वय, अग्नि की पूजा करे। द्वितीया को श्री, यम, की तथा पञ्चमी को पार्वती तथा श्री की पूजा करे॥१२-१६॥

नागाः षष्ठ्यां कार्त्तिकेयः सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः।
दुर्गाष्टम्यां मातरश्च नवम्यामथ तक्षकः॥१७॥
दशम्यामिन्द्रो धनद एकादश्यां मुनीश्वराः। द्वादश्याञ्च हरिः कामस्त्रयोदश्यां महेश्वरः।
चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽपरे॥१८॥

॥इति गारुडे महापुराणे सर्वतिथिव्रतानि नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३७॥

षष्ठी को नागों की, सप्तमी को सूर्य तथा दुर्गा की, अष्टमी को मातृगण की, नवमी को तक्षक

की, दशमी को इन्द्र-कुबेर की, एकादशी को मुनियों की, द्वादशी को हरि की, त्रयोदशी को कामदेव की, चतुर्दशी को महेश की, पूर्णिमा तिथि पर ब्रह्मा की, अमावस्या को पितरों की अर्चना करे॥१७-१८॥

॥एक सौ सैंतीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णन

हरिरुवाच

राज्ञां वंशान्प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितानि च।
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च तस्य वै॥१॥
ततोऽदितिर्विवस्वांश्च ततो विवस्वतः सुतः। मनुरिक्ष्वाकुः शर्यातिर्मृगो धृष्टः पृषध्रकः।
नरिष्यन्तश्च नाभागो दिष्टः करुष एव च॥२॥

श्रीहरि ने कहा—अब मैं राजाओं के वंश का तथा वंश चरित्र का वर्णन करता हूं। विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी। जिनके अंगूठे से दक्ष प्रजापति जन्मे। दक्ष से अदिति, उनसे सूर्य उत्पन्न हुये। सूर्य से मनु, उनसे इक्ष्वाकु, शर्याति, मृग, धृष्ट, पृषध्र, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट तथा करुष जन्मे॥१-२॥

मनोरासीदिला कन्या सद्युम्नोऽस्य सुतोऽभवत्।
इलायां तु बुधाज्जातो रजोरुद्रपुरूरवाः।
सुतास्त्रयश्च सुद्युम्नादुत्कलो विनतो गयः॥३॥
अभूच्छूद्रो गोवधात्तु पृषध्रस्तु मनोः सुतः। करूषात्क्षत्रिया जाताः कारूषा इति विश्रुताः॥४॥
दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्स च। तस्माद्भनन्दनः पुत्रो वत्सप्रीतिर्भनन्दनात्॥५॥

मनु की पुत्री थी इला। कालक्रम से इला पुरुष रूप होकर सुद्युम्न कही गई। जब वह स्त्री थी, तब उसका चन्द्रपुत्र बुध से संयोग हुआ। बुध के औरस से तथा इला के गर्भ से रजः, रुद्र एवं पुरूरवा, ये तीन पुत्र जन्मे। जब इला पुरुष हो गई तथा उसका नाम सुद्युम्न पड़ा, तब उसके उत्कल, विनत एवं गय नामक तीन पुत्र जन्मे। मनु के पुत्र पृषध्र से गोवध हो जाने के कारण उनको शूद्रत्व मिला। उनके पुत्र करुष से समस्त क्षत्रिय जन्मे। वे कारुष कहलाये। मनुपुत्र दिष्ट का नाभाग नामक पुत्र जन्मा। इस नाभाग ने वैश्यत्व पाया (दिष्ट के भाई का भी नाम नाभाग था)। दिष्टपुत्र नाभाग के एकमात्र पुत्र का नाम था भनन्दन, जिसका पुत्र था वत्सप्रीति॥३-५॥

ततः पांशुः खनित्रोऽभूद्भूपस्तस्मात्ततः क्षुपः।
क्षुपाद्विंशोऽभवत्पुत्रो विंशाज्जातो विविंशकः॥६॥
विविंशाच्च खनीनेत्रो विभूतिस्तत्सुतः स्मृतः।
करन्धमो विभूतेस्तु ततो जातोऽप्यविक्षितः॥७॥
मरुत्तोऽविक्षितस्यापि नरिष्यन्तस्ततः स्मृतः।
नरिष्यन्तात्तमो जातस्ततोऽभूद्राजवर्द्धनः॥८॥
राजवर्द्धात्सुधृतिश्च नरोऽभूत्सुधृतेः सुतः। नराच्च केवलः पुत्रः केवलाद्धुन्धुमानपि॥९॥
धुन्धुमतो वेगवांश्च बुधो वेगवतः सुतः।
तृणबिन्दुर्बुधाज्जातः कन्या चैलविला तथा॥१०॥

भनन्दन के पुत्रद्वय थे पांशु एवं खनित्र। खनित्र का पुत्र था क्षुप। उसका पुत्र था विंश, जिसके पुत्र का नाम था विवंश। उसका पुत्र था खनिनेत्र। उसका पुत्र था विभूति। उसका पुत्र था करन्धम। उसका पुत्र था अविक्षित, उसका पुत्र था मरुत्त। मरुत्त का पुत्र था नरिष्यन्त। उसका पुत्र था तम (पाठभेद से दम), उसका पुत्र था राजवर्द्धन, उसका पुत्र था सुधृति, उसका पुत्र था नर। नर का पुत्र था केवल। उसका पुत्र था धुन्धुमान्। उसका पुत्र था वेगवान्, जिसका पुत्र था बुध। उसका पुत्र था तृणबिन्दु। उसकी एक कन्या भी ऐलविला थी॥६-१०॥

विशालं जनयामास तृणबिन्दोस्त्वलम्बुषा।
विशालाद्धेमचन्द्रोऽभूद्धेमचन्द्राच्च चन्द्रकः॥११॥
धूम्राश्वश्चैव चन्द्रात्तु धूम्राश्वात्सृञ्जयस्तथा। सृञ्जयात्सहदेवोऽभूत्कृशाश्वस्तत्सुतोभऽवत्॥१२॥
कृशाश्वात्सोमदत्तस्तु ततोऽभूज्जनमेजयः। तत्पुत्रश्च सुमन्त्रिश्च एते वैशालका नृपाः॥१३॥

तृणविन्दु का पुत्र था विशाल, जो अलम्बुषा से जन्मा था। विशाल का पुत्र था हेमचन्द्र, जिसका पुत्र था चन्द्र। चन्द्र का पुत्र था धूम्राश्व। उसका पुत्र था सृञ्जय। उसका पुत्र था सहदेव। उसका पुत्र था कृशाश्व। उसका पुत्र था सोमदत्त, जिसके पुत्र का नाम था जन्मेजय। उसका पुत्र था सुमन्त्रि। ये सभी विशाला जनपद के राजा थे॥११-१३॥

शर्यातेस्तु सुकन्याऽभूत् सा भार्य्या च्यवनस्य तु।
अनन्तो नाम शर्यातेरनन्ताद्देवकोऽभवत्।
रैवतो रेवतस्यापि रेवताद्रेवती सुता॥१४॥
धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्रं वैश्यकं तद्बभूव ह। नाभागपुत्रो नेदिष्ठो ह्यम्बरीषोऽपि तत्सुतः॥१५॥

शर्याति का पुत्र था आनर्त्त, जिसके पुत्रद्वय थे देवक, रेवत। रेवत का पुत्र था रैवतक, जिसकी कन्या थी रेवती। मनुपुत्र धृष्ट का पुत्र था धार्ष्टक। इसने क्षत्रिय होकर भी वैश्य धर्म वरण किया। मनुपुत्र नाभाग के नेदिष्ट नामक पुत्र जन्मा, उसका पुत्र था अम्बरीष॥१४-१५॥

अम्बरीषाद्विरूपोऽभूत्पृषदश्वो विरूपतः। रथीनरश्च तत्पुत्रो वासुदेवपरायणः॥१६॥

इक्ष्वाकोस्तु त्रयः पुत्रा विकुक्षिनिमिदण्डकाः।
इक्ष्वाकुजो विकुक्षिस्तु शशादः शशभक्षणात्॥१७॥
पुरञ्जयः शशादाच्च ककुत्स्थाख्योऽभवत्सुतः।
अनेनास्तु ककुत्स्थाच्च पृथुः पुत्रस्त्वनेनसः॥१८॥
विश्वरातः पृथोः पुत्र आर्द्रोऽभूद्विश्वराततः।
युवनाश्वोऽभवच्चार्द्रात् श्रावस्तो युवनाश्वतः॥१९॥

अम्बरीष का पुत्र था विरूप, उसका पुत्र था विरूपत, पृषदश्व। पृषदश्व का पुत्र था रथीनर, जो वासुदेव का भक्त था। मनुपुत्र इक्ष्वाकु के तीन पुत्र थे। वे थे विकुक्षि, निमि तथा दण्डक। विकुक्षि ने यज्ञीय खरगोश (शशक) खा लिया था। उसका नाम पड़ा शशाद। शशाद का पुत्र था पुरंजय, उसका पुत्र था ककुत्स्थ। उसका पुत्र था अनेना, जिसके पुत्र का नाम था पृथु। उसका पुत्र था विश्वरात, जिसके पुत्र का नाम था आर्द्रा। उसका पुत्र था युवनाश्व, जिसका पुत्र था श्रावस्त॥१६-१९॥

बृहदश्वस्तु श्रावस्तात्तत्पुत्रः कुबलाश्वकः।
धुन्धुमारो हि विख्यातो दृढाश्वश्च ततोऽभवत्॥२०॥
चन्द्राश्वः कपिलाश्वश्च हर्य्यश्वश्च दृढाश्वतः।
हर्य्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूद्धिताश्वश्च निकुम्भतः॥२१॥
पूजाश्वश्च हिताश्वाच्च तत्सुतो युवनाश्वकः।
युवनाश्वाच्च मान्धाता बिन्दुमह्यस्ततोऽभवत्॥२२॥
मुचुकुन्दोऽम्बरीषश्च पुरुकुत्सस्त्रयः सुताः।
पञ्चाशत्कन्यकाश्चैव भार्य्यास्ताः सौभरेर्मुनेः॥२३॥

श्रावस्त का पुत्र था बृहदश्व। उसका पुत्र था कुबलाश्व। उसका पुत्र था दृढाश्व। यही धुन्धुमार कहलाया। इसके तीन पुत्र थे चन्द्राश्व, कपिलाश्व तथा हर्यश्व। हर्यश्व का पुत्र था निकुम्भ। उसका पुत्र था हिताश्व। उसका पुत्र था पूजाश्व, जिसका पुत्र था युवनाश्व। उसका पुत्र था मान्धाता, जिसके पुत्र का नाम था विन्दुमह्य। उसका पुत्र था मुचुकुन्द, अम्बरीष तथा पुरुकुत्स। इसकी पचास पुत्रियां भी थीं। उन सबका विवाह सौभरि ऋषि से हुआ॥२०-२३॥

युवनाश्वोऽम्बरीषाच्च हरितो युवनाश्वतः। पुरुकुत्सान्नर्मदायां त्रसद्दस्युरभूत्सुतः॥२४॥

अनरण्यस्ततो जातो हर्य्यश्वोऽप्यनरण्यतः।
तत्पुत्रोऽभूद् वसुमनास्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः॥२५॥
त्रय्यारुणस्तस्य पुत्रस्तस्य सत्यरतः सुतः।
यस्त्रिशङ्कुः समाख्यातो हरिश्चन्द्रोऽभवत्ततः॥२६॥

हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो हरितो रोहिताश्वतः। हरितस्य सुतश्चञ्चुश्चञ्चोश्च विजयः सुतः॥२७॥

विजयाद्रुरुको जज्ञे रुरुकात्तु वृकः सुतः।
वृकाद्बाहुर्नृपोऽभूच्च बाहोस्तु सगरः स्मृतः॥२८॥

षष्टिपुत्रसहस्त्राणि सुमत्यां सगरोद्भवः। केशिन्यामेक एवासौ असमञ्जससंज्ञकः॥२९॥

तस्यांशुमान्सुतो विन्द्वान्दिलीपस्तत्सुतोऽभवत्।
भगीरथो दिलीपाच्च यो गङ्गामानयद्भुवम्॥३०॥

अम्बरीष का पुत्र था युवनाश्व, उसका पुत्र था हारीत। पुरुकुत्स का नर्मदा गर्भ से उत्पन्न पुत्र था त्रसदस्यु। उसका पुत्र था अनरण्य, जिसका पुत्र था हर्यश्व। उसका पुत्र था वसुमना, जिसके पुत्र का नाम था त्रिधन्वा। उरु का पुत्र था त्रय्यारुण। उसका पुत्र था सत्यरच। यही कालान्तर में त्रिशंकु कहलाया। उसका पुत्र था हरिश्चन्द्र। उसका पुत्र था रोहिताश्व, जिसका पुत्र था हरित। उसका पुत्र था चञ्चु, जिसका पुत्र था विजय। विजय का पुत्र था रुरुक। उसका पुत्र था वृक, जिसके पुत्र का नाम था बाहु। उसका पुत्र था सगर। सगर के सुमति नामक रानी से ६०००० पुत्र थे तथा केशिनी से असमंजस नामक एक ही पुत्र था। असमंजस का पुत्र था दिलीप, जिसका पुत्र था धरती पर गंगा लाने वाला राजा भगीरथ॥२४-३०॥

श्रुतो भगीरथसुतो नाभागश्च श्रुतात्किल। नाभागादम्बरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषतः॥३१॥

सिन्धुद्वीपस्यायुतायुः ऋतुपर्णस्तदात्मजः।
ऋतुपर्णात्सर्वकामः सुदासोऽभूत्तदात्मजः॥३२॥
सुदासस्य च सौदासो नाम्ना मित्रसहः स्मृतः।
कल्माषपादसंज्ञश्च मदयन्त्यां तदात्मजः॥३३॥
अश्वकाख्योऽभवत्पुत्रो ह्यश्वकान्मूलकोऽभवत्।
ततो दशरथो राजा तस्य चैलविलः सुतः॥३४॥
तस्य विश्वसहः पुत्रः खट्वाङ्गश्च तदात्मजः।
खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च दीर्घबाहोर्ह्यजः सुतः॥३५॥

तस्य पुत्रो दशरथश्चत्वारस्तत्सुताः स्मृताः। रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताश्च महाबलाः॥३६॥

भगीरथ का पुत्र था श्रुत। श्रुत का पुत्र था नाभाग। उसका पुत्र था अम्बरीष, जिसका पुत्र था सिन्धुद्वीप। उसका पुत्र था अयुतायु, जिसका पुत्र था ऋतुपर्ण। उसका पुत्र था सर्वकाम, जिसका पुत्र था सुदास। उसका पुत्र था सौदास मित्रसह। सुदास की पत्नी मदयन्ती से जो पुत्र जन्मा वह था **कल्माषपाद**। उसका पुत्र था अश्वक। उसका पुत्र था मूलक, जिसका पुत्र था दशरथ। उसका पुत्र था ऐलविल। उसके पुत्र का नाम था विश्वसह। उसका पुत्र था खट्वाङ्ग, जिसका पुत्र था दीर्घबाहु। उसके पुत्र थे अज। अज के पुत्र थे दशरथ। उनके चार पुत्र थे राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न। ये महाबली थे॥३१-३६॥

रामात्कुशलवौ जातौ भरतात्तार्क्षपुष्करौ। चित्राङ्गदश्चन्द्रकेतुर्लक्ष्मणात्संबभूवतुः॥३७॥

सुबाहुशूरसेनौ च शत्रुघ्नात्संबभूवतुः। कुशस्य चातिथि पुत्रो निषधो ह्यतिथेः सुतः॥३८॥
निषधस्य नलः पुत्रो नलस्य च नभाः स्मृतः।
नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तदात्मजः॥३९॥
देवानीकस्तस्य पुत्रो देवानीकादहीनकः। अहीनकाद्रुरुर्जज्ञे पारिपात्रो रुरोः सुतः॥४०॥

राम के पुत्र थे कुश, लव। भरत के पुत्र थे तार्क्ष तथा पुष्कर। लक्ष्मण के पुत्र थे चित्रांगद, चित्रकेतु। शत्रुघ्न के पुत्र थे सुबाहु, शूरसेन। कुश का पुत्र था अतिथि, उसका पुत्र था निषध, उसका पुत्र था नल, नल का पुत्र था नभ, उसका पुत्र था पुण्डरीक, जिसका पुत्र था क्षेमधन्वा। उसका पुत्र था देवानीक, उसका पुत्र था अहीनक, उसका पुत्र था रुरु, उसका पुत्र था पारिपात्र॥३७-४०॥

पारिपात्राद्दलो जज्ञे दलपुत्रश्छलः स्मृतः।
छलाद्दुक्थस्ततो वुक्थाद्वज्रनाभस्ततो गणः॥४१॥
उषिताश्वो गणाज्जज्ञे ततो विश्वसहोऽभवत्।
हिरण्यनाभस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रः पुष्यकः स्मृतः॥४२॥
ध्रुवसन्धिरभूत्पुष्याद्ध्रुवसन्धेः सुदर्शनः। सुदर्शनादग्निवर्णः पद्मवर्णोऽग्निवर्णतः॥४३॥
शीघ्रस्तु पद्मवर्णात्तु शीघ्रात्पुत्रो मरुस्त्वभूत।
मरोः प्रसुश्रुतः पुत्रस्तस्य चोदावसुः सुतः॥४४॥
उदावसोर्नन्दिवर्द्धनः सुकेतुर्नन्दिवर्द्धनात्।
सुकेतोर्देवरातोऽभूद्बृहदुक्थस्ततः सुतः॥४५॥
बृहदुक्थान्महावीर्य्यः सुधृतिस्तस्य चात्मजः। सुधृतेर्धृष्टकेतुश्च हर्य्यश्वो धृष्टकेतुतः॥४६॥

पारिपात्र का पुत्र था दल, उसका पुत्र था छल। उसका पुत्र था दुक्थ, जिसके पुत्र का नाम था वज्रनाभ, जिसका पुत्र था गण, उसका पुत्र था उषिताश्व, उसका पुत्र था विश्वसह, उसका पुत्र था हिरण्यनाभ, जिसके पुत्र का नाम था पुष्पक। उसका पुत्र था ध्रुवसन्धि, जिसका पुत्र था सुदर्शन। सुदर्शन का पुत्र था अग्निवर्ण। उसका पुत्र था शीघ्र, जिसका पुत्र था मरु, उसका पुत्र था सुश्रुत। उसका पुत्र था उदावसु, जिसके पुत्र का नाम था नन्दिवर्द्धन। उसका पुत्र था सुकेतु। उसके पुत्र का नाम था देवरात। उसका पुत्र था बृहदुक्थ, उसका पुत्र था महावीर सुधृति। उसका पुत्र था धृष्टकेतु, जिसका पुत्र था हर्यश्व॥४१-४६॥

हर्य्यश्वात्तु मरुर्जातो मरोः प्रतीन्धकोऽभवत्। प्रतीन्धकात्कृतिरथो देवमीढस्तदात्मजः॥४७॥
विबुधो देवमीढात्तु विबुधात्तु महाधृतिः। महाधृतेः कृतिरातो महारोमा तदात्मजः॥४८॥
महारोम्णः स्वर्णरोमा ह्रस्वरोमा तदात्मजः।
सीरध्वजो ह्रस्बरोम्णस्तस्य सीताभवत्सुता॥४९॥
भ्राता कुशध्वजस्तस्य सीरध्वजात्तु भानुमान्।
शतद्युम्नो भानुमतः शतद्युम्नाच्छुचिः स्मृतः॥५०॥

हर्यश्व का पुत्र था मेरु, उसका पुत्र था प्रतीन्ध, जिसके पुत्र का नाम था कृतिरथ, जिसका पुत्र था देवमीढ़। उसका पुत्र था विवुध, जिसके पुत्र का नाम था महाधृति। उसका पुत्र था कृतिरात, उसका पुत्र था महारोमा, उसका पुत्र था स्वर्णरोमा, जिसका पुत्र था ह्रस्वरोमा। उसका पुत्र था सीरध्वज। उसकी पुत्री थी सीता। सीरध्वज का भाई कुशध्वज था। सीरध्वज का पुत्र था भानुमान्, जिसका पुत्र था शतद्युम्न। उसका पुत्र था शुचि॥४७-५०॥

ऊर्जनामा शुचेः पुत्रः सनद्वाजस्तदात्मजः।
सनद्वाजात्कुलिर्जातोऽनञ्जनस्तु कुलेः सुतः॥५१॥
अनञ्जनाच्च कुलजित्तस्यापि चाधिनेमिकः।
श्रुतायुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुपार्श्वश्च तदात्मजः॥५२॥
सुपार्श्वात्सृञ्जयो जातः क्षेमारिः सृञ्जयात्स्मृतः।
क्षेमारितस्त्वनेनाश्च तस्य रामरथः स्मृतः॥५३॥
सत्यरथो रामरथात्तस्मादुपगुरुः स्मृतः। उपगुरोरुपगुप्तः स्वागतश्चोपगुप्ततः॥५४॥
स्वनरः स्वागताज्जज्ञे सुवर्चास्तस्य चात्मजः।
सुवर्चसः सुपार्श्वस्तु सुश्रुतश्च सुपार्श्वतः॥५५॥
जयस्तु सुश्रुताज्जज्ञे जयात्तु विजयोऽभवत्।
विजयस्य ऋतः पुत्रः ऋतस्य सुनयः सुतः॥५६॥
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्याद्धृतिः स्मृतः।
बहुलाश्वो धृतेः पुत्रो बहुलाश्वात्कृतिः स्मृतः॥५७॥
जनकस्य द्वयं वंश उक्तो योगसमाश्रयः॥५८॥

॥इति गारुडे महापुराणे सूर्य्यवंशवर्णनं नाम अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३८॥

शुचि का पुत्र थ उर्ज, जिसका पुत्र था सनद्वाज। उसका पुत्र था कुलि, उसका पुत्र था अनंजन, जिसका पुत्र था कुलजित्। उसका पुत्र था अधिनेमि, उसका पुत्र था श्रुतायु, जिसके पुत्र का नाम पड़ा सुपार्श्व। इसका पुत्र था सृंजय। उसका पुत्र था क्षेमारि। उसका पुत्र था अनेना, जिसके पुत्र का नाम था रामरथ। उसका पुत्र था सत्यरथ, उसका पुत्र था उपगुरु, जिसका पुत्र था उपगुप्त। उसका पुत्र था सुवर्चा, जिसका पुत्र सुपार्श्व जन्मा। उसका पुत्र था सुश्रुत, उसका पुत्र था जय, जय का पुत्र था विजय। उसका पुत्र था ऋत, उसका पुत्र था सुनय, जिसके पुत्र का नाम पड़ा वीतहव्य। उसका पुत्र था धृति, जिसका पुत्र था बहुलाश्व, उसका पुत्र था कृति। जनक के दो वंश कहे गये हैं। दोनों योगपरायण वंश थे॥५१-५८॥

॥एक सौ अड़तीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्रवंश वर्णन

हरिरुवाच

सूर्य्यस्य कथितो वंशः सोमवंशं शृणुष्व मे। नारायणसुतो ब्रह्मा ब्रह्मणोऽत्रेः समुद्भवः।
अत्रेः सोमस्तस्य भार्य्या तारा सुरगुरोः प्रिया॥१॥
सोमात्तारा बुधं जज्ञे बुधपुत्रः पुरूरवाः। बुधपुत्रादथोर्वश्यां षट् पुत्रास्तु श्रतात्मकः।
विश्वावसुः शतायुश्च आयुर्धीमानमावसुः॥२॥
अभावसोर्भीमनामा भीमपुत्रश्च काञ्चनः। काञ्चनस्य सुहोत्रोऽभूज्जह्नुश्चाभूत्सुहोत्रतः॥३॥
जह्नोः सुमन्तुरभवत्सुमन्तोरपजापकः। बलाकाश्वस्तस्य पुत्रो बलाकाश्वात्कुशः स्मृतः॥४॥

श्रीहरि ने कहा— मैंने सूर्यवंश कह दिया। अब चन्द्रवंश श्रवण करो। नारायण के पुत्र हैं ब्रह्मा। उनके पुत्र थे अत्रि। देवगुरु बृहस्पति की प्रिय पत्नी तारा से चन्द्रमा ने बुध को जन्म दिया। बुध का पुत्र था पुरूरवा। पुरूरवा के औरस तथा उर्वशी के गर्भ से श्रुतात्मक, शतायु, आयुः, धीमान् तथा अभावसु जन्मे थे। अभावसु का पुत्र था भीम, भीम का कांचन, कांचन का सुहोत्र, सुहोत्र का जन्हु, जन्हु का सुमन्तु, सुमन्तु का उपराजक, उसका पुत्र बलाकाश्व जन्मा। जिसका पुत्र था कुश॥१-४॥

कुशाश्वः कुशनाभश्चामूर्त्तरयो वसुः कुशात्।
गाधिः कुशाश्वात्संजज्ञे विश्वामित्रस्तदात्मजः॥५॥
कन्या सत्यवती दत्ता ऋचीकाय द्विजाय सा। ऋचीकाज्जमदग्निश्च रामस्तस्याभवत्सुतः॥६॥
विश्वामित्राद्देवरातमधुच्छन्दादयः सुताः। आयुषो नहुषस्तस्मादनेना रजिरम्भकौ॥७॥
क्षत्रवृद्धः क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रश्चाभवन्नृपः। काश्यकाशगृत्समदाः सुहोत्रादभवंस्त्रयः॥८॥

कुश के चार पुत्र थे—कुशाश्व, कुशनाभ, अमूत्तरज तथा वसु। कुशाश्व का पुत्र था गाधि, उसका पुत्र था विश्वामित्र। गाधि की कन्या थी सत्यवती। वह ऋचीक ऋषि की पत्नी बनी। ऋचीक के पुत्र थे जमदग्नि, उनके पुत्र थे परशुराम। विश्वामित्र के अनेक पुत्र थे। यथा—देवरात, मधुच्छन्द आदि। बुधपुत्र आयु का पुत्र था नहुष। उसके चार पुत्र थे अनेना, रजि, रम्भक, क्षत्रवृद्ध। क्षत्रवृद्ध का पुत्र था तनय, तनय का पुत्र था सुहोत्र, उसके तीन पुत्र थे। यथा—काश्य, काश तथा गृत्समद॥५-८॥

गृत्समदाच्छौनकोऽभूत्काश्याद्दीर्घतमास्तथा। वैद्यो धन्वन्तरिस्तस्मात्केतुमांश्च तदात्मजः॥९॥
भीमरथः केतुमतो दिवोदासस्तदात्मजः। दिवोदासात्प्रतर्दनः शत्रुजित्सोऽत्र विश्रुतः॥१०॥

गृत्समद का पुत्र था शौनक, काश्य का पुत्र था दीर्घतमा, उनके पुत्र थे धन्वन्तरि। ये वैद्य थे। धन्वन्तरि का पुत्र था केतुमान्। उसका पुत्र था भीमरथ। जिनके पुत्र थे दिवोदास। उनके पुत्र थे प्रतर्दन, प्रतर्दन ही शत्रुजित् नाम से विख्यात थे॥९-१०॥

ऋतध्वजस्तस्य पुत्रो ह्यलर्कश्च ऋतध्वजात्।
अलर्कात्सन्नतिर्जज्ञे सुनीतः सन्नते सुतः॥११॥
सत्यकेतुः सुनीतस्य सत्यकेतोर्विभुः सुतः।
विभोस्तु सुविभुः पुत्रः सुविभोः सुकुमारकः॥१२॥
सुकुमाराद्धृष्टकेतुर्वीतिहोत्रस्तदात्मजः। वीतिहोत्रस्य भर्गोऽभूद्भर्गभूमिस्तदात्मजः॥१३॥
वैष्णवाः स्युर्महात्मान इत्येते काशयो नृपाः।
पञ्चपुत्रशतान्यासन्रजेः शक्रेण संहृताः॥१४॥
प्रतिक्षत्रः क्षत्रवृद्धात्सञ्जयश्च तदात्मजः।
विजयः सञ्जयस्यापि विजयस्य कृतः सुतः॥१५॥

प्रतर्दन का पुत्र था ऋतध्वज, उसका पुत्र था अलर्क, उसका पुत्र था सन्नति, उसका पुत्र था सुनीत, सुनीत का पुत्र सत्यकेतु, सत्यकेतु का पुत्र था विभु, उसका पुत्र था सुविभु, उसके पुत्र का नाम था सुकुमार, उसका पुत्र था धृष्टकेतु, जिसका पुत्र था वीतिहोत्र, उसका पुत्र था भर्ग। भर्ग का पुत्र था भर्गभूमि। ये सभी विष्णु आराधक तथा महात्मा थे। नहुषपुत्र रजि के पांच सौ पुत्र जन्मे। उनको इन्द्र ने मारा था। नहुष पुत्र क्षत्रवृद्ध का पुत्र था प्रतिक्षत्र, उसका पुत्र था संजय, उसका पुत्र था विजय, विजय का पुत्र था कृत॥११-१५॥

कृताद्वृषधनश्चाभूत्सहदेवस्तदात्मजः। सहदेवाददीनोऽभूज्जयत्सेनोऽप्यदीनतः॥१६॥
जयत्सेनात्संकृतिश्च क्षत्रधर्मा च संकृतेः।
यतिर्ययातिः संयातिरयातिर्वै कृतिः क्रमात्।
नहुषस्य सुताः ख्याता ययातेर्नृपतेस्तथा॥१७॥
यदुञ्च तुर्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत। द्रुह्युञ्चानुञ्च पूरुञ्च शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी॥१८॥
सहस्रजित्क्रोष्टुमना रघुश्चैव यदोः सुतः। सहस्रजितः शतजित्तस्माद् वै हयहैहयौ॥१९॥
अनरण्यो हयात्पुत्रो धर्मो हैहयतोऽभवत्। धर्मस्य धर्मनेत्रोऽभूत्कुन्तिर्वै धर्मनेत्रतः॥२०॥
कुन्तेर्बभूव साहञ्जिर्महिष्मांश्च तदात्मजः। भद्रश्रेण्यस्तस्य पुत्रो भद्रश्रेण्यस्य दुर्दमः॥२१॥
धनको दुर्दमाच्चैव कृतवीर्य्यश्च धानकिः।
कृताग्निः कृतकर्मा च कृतोगः सुमहाबलाः॥२२॥

कृत का पुत्र था वृषधन, उसका पुत्र सहदेव। सहदेव का पुत्र अदीन, उसका पुत्र था जयत्सेन, उसका पुत्र था संकृति, उसका पुत्र था-क्षत्रधर्मा। नहुष के अन्य पांच पुत्र थे—यति, ययाति, आयाति, विरति एवं कृति। ययाति के औरस से तथा देवयानी के गर्भ से यदु तथा तुर्वसु जन्मे। ययाति की अन्य पत्नी शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रह्यु, अनु, पुरु जन्मे। ययाति पुत्र यदु के चार पुत्र थे। यथा—सहस्रजित, क्रोष्टु, नल एवं रघु। सहस्रजित का पुत्र था शतंजित, उसका पुत्र था हय एवं हैहय। हय का पुत्र था अनरण्य,

हैहय का पुत्र था धर्म। धर्म का पुत्र था धर्मनेत्र तथा उसका पुत्र था कुन्ति, जिसका पुत्र था साहञ्जि। उसका पुत्र था महिष्मान्, जिसके पुत्र का नाम था भद्रश्रेण्य, उसका पुत्र था दुर्मद। दुर्मद का पुत्र था धनक। उसके पुत्र थे कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा तथा कृतोग। ये सभी महाबली पराक्रमी थे।१६-२२॥

कृतवीर्य्यादर्जुनोऽभूदर्जुनाच्छूरसेनकः। जयध्वजो मधुः शूरो वृषणः पञ्च सुव्रताः॥२३॥
जयध्वजात्तालजङ्घो भरतस्तालजङ्घतः। वृषणस्य मधुः पुत्रो मधोर्वृष्ण्यादिवंशकः॥२४॥
क्रोष्टोर्विजनिवान्पुत्र आहिस्तस्य महात्मनः।
आहेरुशङ्कुः संजज्ञे तस्य चित्ररथः सुतः॥२५॥
शशविन्दुश्चित्ररथात्पत्न्योर्लक्षश्च तस्य ह। दशलक्षश्च पुत्राणां पृथुकीर्त्यादयो वराः॥२६॥
पृथुकीर्त्तिः पृथुजयः पृथुदानः पृथुश्रवाः। पृथुश्रवसोऽभूत्तम उशनास्तमसोऽभवत्॥२७॥
तत्पुत्रः शितगुर्नाम श्रीरुक्मकवचस्ततः।
रुक्मश्च पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः॥२८॥
श्रीरुक्मकवचस्यैते विदर्भो ज्यामघात्तथा।
भार्य्यायाश्चैव शैव्यायां विदर्भात्क्रथकौशिकौ॥२९॥
रोमपादो रोमपादाद्बभ्रुर्बभ्रोर्धृतिस्तथा।
कौशिकस्य ऋचिः पुत्रस्ततश्चैद्यो नृपः किल॥३०॥
कुन्तिः किलास्य पुत्रोऽभूत्कुन्तेर्वृष्णिः सुतः स्मृतः।
वृष्णेश्च निवृतिः पुत्रो दशार्हो निवृतेस्तथा॥३१॥
दशार्हस्य सुतो व्योमा जीमूतश्च तदात्मजः।
जीमूताद्विकृतिर्जज्ञे ततो भीमरथोऽभवत्॥३२॥
ततो मधुरथो जज्ञे शकुनिस्तस्य चात्मजः।
करम्भिः शकुनेः पुत्रस्तस्य देवमतः स्मृतः॥३३॥
देवक्षत्रो देवमतो देवक्षत्रान्मधुः स्मृतः। कुरुवंशो मधोः पुत्रो ह्यनुश्च कुरुवंशतः॥३४॥
पुरुहोत्रो ह्यनोः पुत्रो ह्यंशुश्च पुरुहोत्रतः। सत्वश्रुतः सुतश्चांशोस्ततो वै सात्वतो नृपः॥३५॥

कृतवीर्य का पुत्र था अर्जुन। उसके पांच पुत्र थे—शूरसेन, जयध्वज, मधु, शूर, वृषण। ये सभी सुव्रती थे। जयध्वज का पुत्र था तालजंघ। उसका पुत्र था भरत। वृषण का पुत्र था मधु। उससे ही वृष्णिवंश प्रारम्भ हुआ। यदुपुत्र क्रोष्टु का पुत्र था आहि। उसका पुत्र था शंकु। उसका पुत्र था चित्ररथ। चित्ररथ का पुत्र था शशबिन्दु। शशविन्दु की एक लाख स्त्रियां थीं। उनके गर्भ से पृथुकीर्त्ति आदि दस पुत्र जन्मे। पृथुकीर्त्ति के पुत्र थे पृथुञ्जय, पृथुदान, पृथुश्रवा। पृथुश्रवा का पुत्र था तम, उसका पुत्र था उशना, उसका पुत्र था शीतगु, उसका पुत्र था श्रीरुक्मकवच। उसके पुत्र थे रुक्मेयु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित, हरि। ज्यामघ का पुत्र था विदर्भ। उसकी पत्नी थी शैव्या। विदर्भ के औरस से तथा शैव्या के गर्भ से क्रथ, कौशिक तथा

रोमपाद उत्पन्न हुये। रोमपाद का पुत्र था वभ्रु। उसका पुत्र था धृति। कौशिक का पुत्र था ऋचि। उसका पुत्र था चैद्य, उसका पुत्र था कुन्ति, जिसका पुत्र था वृष्णि, जिसका पुत्र था निर्वृति। उसका पुत्र था दशार्ह। उसका पुत्र था व्योमा, जिसके पुत्र का नाम था जीमूत, उसका पुत्र जन्मा कृतियज्ञ, जिसका पुत्र था भीमरथ। भीमरथ का पुत्र शकुनि, उसका पुत्र था करम्भि, जिसका पुत्र था देवमत। उसका पुत्र था देवक्षत्र, उसका पुत्र था मधु। इसका पुत्र था कुरुवंश, जिसके पुत्र का नाम था अनु। अनु का पुत्र था पुरुहोत्र। उसका पुत्र था अंशु। अंशु का पुत्र था सत्वश्रुत, जिसका पुत्र था सात्वत॥२३-३५॥

भजिनो भजमानश्च सात्वतादन्धकः सुतः।
महाभोजो वृष्णिदिव्यावन्यो देवावृधोऽभवत्॥३६॥
निमिवृष्णी भजमानादयुताजित्तथैव च। शतजिच्च सहस्राजिद्बभ्रुर्देवो बृहस्पतिः॥३७॥
महाभोजात्तु भोजोऽभूद्वृष्णेश्चैव सुमित्रकः।
स्वधाजित्संज्ञकस्तस्मादनमित्रशिनी तथा॥३८॥
अनमित्रस्य निघ्नोऽभून्निघ्नाच्छत्राजितोऽभवत्।
प्रसेनश्चापरः ख्यातो ह्यनमित्राच्छितिस्तथा॥३९॥
शिवेस्तु सत्यकः पुत्रः सत्यकात्सात्यकिस्तथा।
सात्यकेः सञ्जयः पुत्रः कुलिश्चैव तदात्मजः।
कुलेर्युगन्तरः पुत्रस्ते शैनेयाः प्रकीर्त्तिताः॥४०॥

सात्वत के पुत्रगण थे—भजिन, भजमान, अन्धक, महाभोज, वृष्णि, दिव्य, अरण्य, देवावृध। भजमान के पुत्र थे निमि, वृष्णि, अयुताजित, सहस्राजित। देवावृध का पुत्र था वभ्रु। महाभोज का पुत्र था भोज। वृष्णि का पुत्र था सुमित्र, जिसका पुत्र था युधाजित। उसके दो पुत्र थे अनमित्र तथा शिनि। शिनि का पुत्र था सत्यक्, उसका पुत्र था सात्यकि, जिसके पुत्र का नाम था संजय, उसका पुत्र था कुलि। कुलि का पुत्र था युगन्धर। ये सभी शैनेय कहलाये॥३६-४०॥

अनमित्रान्वये वृष्णिः श्वफल्कश्चित्रकः सुतः।
श्वफल्काच्चैव गान्दिन्यामक्रूरो वैष्णवोऽभवत्॥४१॥
उपमद्गुरथाक्रूराद्देवद्योतस्ततः सुतः। देववानुपदेवश्च अक्रूरस्य सुतौ स्मृतौ॥४२॥
पृथुर्विपृथुश्चित्रस्य अन्तकस्य शुचिः स्मृतः।
कुकुरो भजमानस्य तथा कम्बलबर्हिषः॥४३॥
धृष्टस्तु कुकुराज्जज्ञे तस्मात्कापोतरोमकः।
तदात्मजो विलोमा च विलोम्नस्तुम्बुरुः सुतः॥४४॥
तस्माच्च दुन्दुभिर्जज्ञे पुनर्वसुरतः स्मृतः। तस्याहुकश्चाहुकी च कन्याचैवाहुकस्य तु॥४५॥

अनमित्र के वंश में वृष्णि, श्वफल्क, चित्रक जन्मे। श्वफल्क का पुत्र था उसकी पत्नी गान्दिनी के

गर्भ से जन्मा अक्रूर। यह विष्णुभक्त था। उसका पुत्र था उपमद्गु, जिसके पुत्र का नाम था देवद्योत। अक्रूर के अन्य दो पुत्रों का नाम था देववान् तथा उपदेव। अनमित्र के वंश में उत्पन्न चित्रक के पुत्र थे पृथु तथा विपृथु। सात्वत नन्दन अन्धक का पुत्र था शुचि। भजमान के पुत्र थे कुकुर तथा कम्बलवर्हिष। कुकुर का पुत्र था धृष्ट। इसका पुत्र था कापोतरोमक। इसका पुत्र था विलोमा। विलोमा का पुत्र था तुम्बुरु। उसका पुत्र था दुन्दुभि, जिसका पुत्र पुनर्वसु था। उसका पुत्र था आहुक तथा कन्या का नाम था आहुकी॥४१-४५॥

देवकश्चोग्रसेनश्च देवकाद्देवकी त्वभूत्। वृकदेवोपदेवा च सहदेवा सुरक्षिता॥४६॥
श्रीदेवी शान्तिदेवी च वसुदेव उवाह ताः। देवश्चानुपदेवश्च सहदेवासुतौ स्मृतौ॥४७॥
उग्रसेनस्य कंसोऽभूत्सुनामा च वटादयः। विदूरथो भजमानाच्छूरश्चाभूद्विदूरथात्॥४८॥
विदूरथसुतस्याथ शूरस्यापि समी सुतः। प्रतिक्षत्रश्च समिनः स्वयम्भोजस्तदात्मजः॥४९॥

आहुक के पुत्र थे देवक तथा उग्रसेन। देवक की कन्या देवकी, वृकदेवा उपदेवा, सहदेवा, सुरक्षिता, श्रीदेवी तथा शान्तिदेवी थीं। देवक ने इन सबका विवाह वसुदेव से किया। देवक पुत्री सहदेवा ने वसुदेव से दो पुत्र उत्पन्न किये देव तथा उपदेव। देवक पुत्र उग्रसेन के कंस, सुनोमा, वट आदि पुत्र जन्मे। अन्धकनन्दन भजमान का पुत्र था विदूरथ, उसका पुत्र था शूर। शूर का पुत्र था शमी। शमी का पुत्र था प्रतिक्षत्र, उसका पुत्र था समिन, उसका पुत्र था स्वयम्भोज॥४६-४९॥

हृदिकश्च स्वयम्भोजात्कृतवर्मा तदात्मजः। देवः शतधनुश्चैव शूराद्वै देवमीढुषः॥५०॥
दश पुत्रा मारिषायां वसुदेवादयोऽभवन्। पृथा च श्रुतदेवी च श्रुतकीर्त्तिः श्रुतश्रवाः॥५१॥

राजाधिदेवो शूराच्च पृथां कुन्तेः सुतामदात्।
सा दत्ता कुन्तिना पाण्डोस्तस्यां धर्मानिलेन्द्रकैः॥५२॥
युधिष्ठिरो भीमपार्थौ नकुलः सहदेवकः।
माद्र्यां नासत्यदस्राभ्यां कुन्त्यां कर्णः पुराऽभवत्॥५३॥
श्रुतदेव्यां दन्तवक्रो जज्ञे वै युद्धदुर्मदः।
अन्तर्द्धानादयः पञ्च श्रुतकीर्त्त्यांश्च कैकयात्॥५४॥

स्वयम्भोज का पुत्र था हृदिक, उसका पुत्र था कृतवर्मा। विदूरथनन्दन शूर के पुत्र थे देव, शतधनु, देवमीढुष। शूर की अन्य पत्नी मारिया थी। उसके गर्भ से वसुदेव आदि दस पुत्र तथा पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतकीर्त्ति, श्रुतश्रवा तथा राजाधिदेवी नामक पांच कन्यायें जन्मीं। शूर ने पृथा नामक पुत्री को दत्तक कन्या के तौर पर कुन्तिराज (कुन्तिभोज) को प्रदान किया, जिन्होंने पृथा का विवाह पाण्डु से किया था। पृथा के गर्भ से धर्मराज के औरस से युधिष्ठिर, वायु के औरस से भीमसेन, इन्द्र के औरस से अर्जुन जन्मे। पाण्डु की माद्री नामक अन्य पत्नी थी। उसके गर्भ से तथा अश्विनीकुमारद्वय के औरस से नकुल तथा सहदेव जन्मे। पूर्व में कुन्ति ने सूर्य के औरस से अविवाहित रहते कर्ण को जन्म दिया था। श्रुतदेवी का पुत्र था महान् योद्धा दन्तवक्त्र। कैकय राज के औरस से श्रुतकीर्त्ति ने अन्तर्द्धान आदि पांच पुत्रों को उत्पन्न किया था॥५०-५४॥

राजाधिदेव्यां बिन्दश्च अनुबिन्दश्च जज्ञिरे। श्रुतश्रवा दमघोषात्प्रजज्ञे शिशुपालकम्॥५५॥
पौरवी रोहिणी भार्य्या मदिरानकदुन्दुभेः। देवकीप्रमुखा भद्रा रोहिण्यां बलभद्रकः॥५६॥

सारणाद्याः शठश्चैव रेवत्यां बलभद्रतः।
निशठश्चोल्मुको जातो देवक्यां षट् च जज्ञिरे॥५७॥
कीर्त्तिमांश्च सुषेणश्च उदार्य्यो भद्रसेनकः।
ऋजदासो भद्रदेवः कंस एवावधीच्च तान्॥५८॥
संकर्षणः सप्तमोऽभूदष्टमः कृष्ण एव च।
षोडशस्त्री सहस्राणि भार्य्याणाञ्चाभवन्हरेः॥५९॥

राजाधिदेवी के दो पुत्र जन्मे। वे थे विन्द तथा अनुविन्द। श्रुतश्रवा के गर्भ से तथा दमघोष के औरस से शिशुपाल जन्मा। वसुदेव की पौरवी, रोहिणी, मदिरा, देवकी आदि कई भार्या थीं। इनमें से रोहिणी ने बलभद्र को जन्म दिया। रेवती के गर्भ से तथा बलभद्र के औरस से सारण, शठ, निशठ, उल्मूक आदि कई पुत्र जन्मे। देवकी के प्रथमतः छः पुत्र जन्मे थे। उनका नाम था कीर्त्तिमान, सुषेण, उदार्य, भद्रसेन, ऋजुदास तथा भद्रदेव। कंस ने इनका वध कर दिया। देवकी के सातवें पुत्र थे बलराम संकर्षण तथा अष्टम थे कृष्ण। हरि (कृष्ण) की सोलह हजार पत्नियां थीं॥५५-५९॥

रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा चारुहासिनी।
श्रेष्ठा जाम्बवती चाष्टौ जज्ञिरे ताः सुतान्बहून्॥६०॥
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च प्रधानाः साम्ब एव च।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्ककुद्मिन्यां महाबलः॥६१॥
अनिरुद्धात्सुभद्रायां वज्रो नाम नृपोऽभवत्।
प्रतिबाहुर्वज्रसुतश्चारुस्तस्य सुतोऽभवत्॥६२॥

वह्निस्तु तुर्वसोर्वंशे वह्नेर्भार्गोऽभवत्सुतः। भार्गाद्भानुरभूत्पुत्रो भानोः पुत्रः करन्धमः॥६३॥
करन्धमस्य मरुतो द्रुह्योर्वंशं निबोध मे। द्रुह्योस्तु तनयः सेतुरारब्धश्च तदात्मजः।

अराब्धस्यैव गान्धारो धर्मो गान्धारतोऽभवत्॥६४॥

धृतस्तु धर्मपुत्रोऽभूद्दुर्गमश्च धृतस्य तु। प्रचेता दुर्गमस्यैव अनोर्वंशं शृणुष्व मे॥६५॥

उनमें श्रेष्ठा रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, चारुहासिनी, जाम्बवती आदि आठ थीं। इनके अनेक पुत्र जन्मे थे। कृष्णपुत्र प्रद्युम्न के औरस से तथा रति के गर्भ से महाबली अनिरुद्ध जन्मे। अनिरुद्ध की पत्नी सुभद्रा के गर्भ से वज्र जन्मे थे। वज्रपुत्र थे प्रतिबाहु। उसका पुत्र था चारु। तुर्वसु के वंश में वह्नि जन्मा। वह्नि का पुत्र था भार्ग, उसका पुत्र था भानु, जिसका पुत्र था करन्धम। उस करन्धम का पुत्र था मरुत्। अब द्रुह्यु वंश को सुनिये। द्रुह्यु का पुत्र था सेतु, उसका पुत्र था आरब्ध, उसका पुत्र था गान्धार, उसका पुत्र था धर्म। धर्म का पुत्र था धृत, उसका पुत्र था दुर्गम, उसका पुत्र हुआ प्रचेता। अब आप अनु का वंश श्रवण करें॥६०-६५॥

अनोः स्वभानरः पुत्रस्तस्मात्कालञ्जयोऽभवत्।
कालञ्जयात्सृञ्जयोऽभूत्सृञ्जयात्तु पुरञ्जयः॥६६॥
जनमेजयस्तु तत्पुत्रो महाशालस्तदात्मजः। महामना महाशालादुशीनर इति स्मृतः॥६७॥
उशीनराच्छिविर्जज्ञे वृषदर्भः शिवेः सुतः।
महामनोजात्तितिक्षोः पुत्रोऽभूच्च रुषद्रथः॥६८॥
हेमो रुषद्रथाज्जज्ञे सुतपा हेमतोऽभवत्। बलिः सुतपसो जज्ञे अङ्गबङ्गकलिङ्गकाः॥६९॥
अन्धः पौण्ड्रश्च बालेया अनपालस्तथाङ्गतः।
अनपालाद्दिविरथस्ततो धर्मरथोऽभवत्॥७०॥
रोमपादो धर्मरथाच्चतुरङ्गस्तदात्मजः। पृथुलाक्षस्तस्य पुत्रश्चम्पोऽभूत्पृथुलाक्षतः॥७१॥
चम्पपुत्रश्च हर्य्यङ्गस्तस्य भद्ररथः सुतः। बृहत्कर्मा सुतस्तस्य बृहद्भानुस्ततोऽभवत्॥७२॥

अनु का पुत्र था स्वभानर। उसका पुत्र था कालंजय। उसका पुत्र था सृंजय, जिसका पुत्र हुआ पुरंजय। इसका पुत्र था जन्मेजय, जिसके पुत्र का नाम था महाशाल। उसका पुत्र था महामना, यह उशीनर नाम से प्रसिद्ध था। उशीनर का पुत्र था शिवि, उसका पुत्र था वृषदर्भ। उशीनर महामना का एक अन्य पुत्र था तितीक्षु, जिसके पुत्र का नाम था रुषद्रथ। इसका पुत्र हुआ हेम, जिसके पुत्र का नाम पड़ा सुतपा। सुतपा का पुत्र था बलि। इस बलि के कई पुत्र थे। यथा—अंग, बंग, कलिंग, अन्ध्र, पौण्ड्र। अंग का पुत्र था अनपाल, जिसका पुत्र था दिविरथ, उसका पुत्र था धर्मरथ। उसके पुत्र का नाम था रोमपाद। रोमपाद का पुत्र था चतुरंग। उसका पुत्र था पृथुलाक्ष, उसका पुत्र जन्मा चम्प। चम्प का पुत्र था हर्यङ्ग। उसका पुत्र था भद्ररथ। उसका पुत्र था बृहत्कर्मा, जिसका पुत्र था बृहद्भानु॥६६-७२॥

बृहन्मना बृहद्भानोस्तस्य पुत्रो जयद्रथः।
जयद्रथस्य विजयो विजयस्य धृतिः सुतः॥७३॥
धृतेर्धृतव्रतः पुत्रः सत्यधर्मा धृतव्रतात्। तस्य पुत्रस्त्वधिरथः कर्णस्तस्य सुतोऽभवत्।
वृषसेनस्तु कर्णस्य पुरुवंशान् शृणुष्व मे॥७४॥

॥इति गारुडे महापुराणे चन्द्रवंशवर्णनं नाम ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३९॥

बृहद्भानु का पुत्र था बृहन्मना, उसका पुत्र था जयद्रथ, जिसके पुत्र का नाम था विजय। विजय का पुत्र था धृति, जिसका पुत्र था धृतिव्रत, उसका पुत्र था सत्यधर्मा। उसके पुत्र का नाम था अधिरथ, जिसका पुत्र था कर्ण। कर्णपुत्र था वृषसेन। अब पुरुवंश का वर्णन सुनिये॥७३-७४॥

॥एक सौ उन्तालीसवां अध्याय समाप्त॥

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

पुरुवंश वर्णन

हरिरुवाच

जनमेजयः पुरोश्चाभून्मनस्युर्जनमेजयात्। तस्य पुत्रश्चाभयदः सम्बुश्चाभयदादभूत्॥१॥

सम्बोर्बहुगतिः पुत्रः संजातिस्तस्य चात्मजः।
वत्सजातिश्च संजातेः रौद्राश्वश्च तदात्मजः॥२॥

ऋतेयुः स्थण्डिलेयुश्च कक्षेयुश्च कृतेयुकः। जलेयुः सन्ततेयुश्च रौद्राश्वस्य सुता वराः॥३॥

रतिनार ऋतेयोश्च तस्य प्रतिरथः सुतः। तस्य मेधातिथिः पुत्रस्तत्पुत्रश्चैनिलः स्मृतः॥४॥

ऐनिलस्य तु दुष्मन्तो भरतस्तस्य चात्मजः। शकुन्तलायां संजज्ञे वितथो भरतादभूत्॥५॥

श्रीहरि ने कहा—पुरु का पुत्र था जन्मेजय, उसका पुत्र प्रचिरान्, उसका पुत्र प्रवीर, उसका पुत्र मनस्यु, उसका पुत्र अभयद, उसका पुत्र सम्बु, उसका पुत्र बहुगति, उसका पुत्र संजाति, उसका पुत्र वत्सजाति, उसका पुत्र रौद्रश्व, उसके पुत्र कई थे। यथा ऋतेयु, स्थण्डिलेयु, कक्षेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु। इनमें से ऋतायु का पुत्र था रतिनार, उसका पुत्र प्रतीरथ, उसका पुत्र मेधातिथि, उसका पुत्र ऐनिल, उसका पुत्र दुष्मन्त, उसका पुत्र भरत। भरत का जन्म दुष्मन्त के औरस से तथा उनकी पत्नी शकुन्तला के गर्भ से हुआ॥१-५॥

वितथस्य मन्युः पुत्रो मन्योश्चैव नरः स्मृतः।
नरस्य संकृतिः पुत्रो गर्धो हि संकृतेः सुतः॥६॥

गर्धादमन्युः पुत्रो वै शिनिः पुत्रो व्यजायत।
मन्युपुत्रान्महावीर्य्यादुरुक्षयः सुतोऽभवत्॥७॥

उरुक्षयात्त्रय्यारुणिर्व्यूहक्षत्राच्च मन्युजात्। सुहोत्रस्तस्य हस्ती च अजमीढद्विमीढकौ॥८॥

हस्तिनः पुरुमीढश्च कण्वोऽभूदजमीढतः।
कण्वान्मेधातिथिर्जज्ञे यतः काण्वायना द्विजाः॥९॥

अजमीढाद् बृहदिषुस्तत्पुत्रश्च बृहद्धनुः। बृहत्कर्मा तस्य पुत्रस्तस्य पुत्रो जयद्रथः॥१०॥

जयद्रथाद्विश्वजिच्च सेनजिच्च तदात्मजः। रुचिराश्वः सेनजितः पृथुसेनस्तदात्मजः॥११॥

पारस्तु पृथुसेनस्य पाराद् द्वीपोऽभवन्नृपः। नृपस्य समरः पुत्रः सुकृतिश्च पृथोः सुतः॥१२॥

विभ्राजः सुकृतेः पुत्रो विभ्राजादश्वहोऽभवत्।
कृत्यां तस्माद् ब्रह्मदत्तो विष्वक्सेनस्तदात्मजः॥१३॥

यवीनरो द्विमीढस्य धृतिमांश्च यवमीनरात्। धृतिमतः सत्यधृतिर्दृढनेमिस्तदात्मजः॥१४॥

दृढनेमेः सुपार्श्वोऽभूत्सुपार्श्वात्सन्नतिस्तथा।
कृतस्तु सन्नतेः पुत्रः कृतादुग्रायुधोऽभवत्॥१५॥

भरत का पुत्र था वितथ। उस वितथ का पुत्र था मन्यु, मन्यु का पुत्र था नर, उसका पुत्र संकृति, उसका पुत्र गर्ग, उसका पुत्र अमन्यु, उसका पुत्र शिनि। मन्युपुत्र महावीर नर का उरुक्षय नामक एक पुत्र था। उसका पुत्र था त्र्य्यारुणि, उसका पुत्र था बृहक्षत्र। उसका पुत्र था सुहोत्र। उसके पुत्र थे हस्ति, अजमीढ तथा द्विमीढ़। हस्ति का पुत्र था पुरुमीढ़। अजमीढ़ का पुत्र था कण्व। उससे मेधातिथि जन्मे। कण्व से कात्यायन गोत्र प्रवर्तित हुआ। अजमीढ़ का एक अन्य पुत्र था बृहदिषु। इसका पुत्र था बृहद्धनु। इसका पुत्र था बृहत्कर्मा। उसका पुत्र था जयद्रथ। उसका पुत्र था विश्वजित्। उसका पुत्र था सेनजित्। उसका पुत्र था रुचिराश्व, उसका पुत्र था पृथुसेन। उसका पुत्र था पार, पार का पुत्र था नीप, उसका पुत्र था समर, उसका पुत्र भी पार था। पार के पुत्र थे पृथु तथा सुकृति। पृथुपुत्र था विभ्राज, जिसके पुत्र का नाम था अश्वह। अश्वह के औरस तथा कृति के गर्भ से ब्रह्मदत्त नामक एक पुत्र जन्मा। इसका पुत्र था विष्वक्सेन। सुहोत्रपुत्र द्विमीढ़ का पुत्र था यवीनर। उसका पुत्र था धृतिमान्, धृतिमान् का पुत्र था सत्यधृति। उसका पुत्र था दृढ़नेमि। उसका पुत्र था सुपार्श्व। उसका पुत्र हुआ सन्नति, उसका पुत्र था कृत, कृत का पुत्र था उग्रायुध॥६-१५॥

उग्रायुधाच्च क्षेम्योऽभूत्सुधीरस्तु तदात्मजः।
पुरञ्जयः सुधीराच्च तस्य पुत्रो विदूरथः॥१६॥
अजमीढान्नलिन्याञ्च नीलो नाम नृपोऽभवत्।
नीलाच्छान्तिरभूत्पुत्रः सुशान्तिस्तस्य चात्मजः॥१७॥
सुशान्तेश्च पुरुर्जातो ह्यर्कस्तस्य सुतोऽभवत्।
अर्कस्य चैव हर्य्यश्वो हर्य्यश्वान्मुकुलोऽभवत्॥१८॥
यवीनरो बृहद्धानुः कम्पिल्लः, सृञ्जयस्तथा।
पाञ्चालान्मुकुलाज्जज्ञे वृद्धश्वो वैष्णवो महान्॥१९॥
दिवोदासो द्वितीयोऽस्य अहल्यायां शरद्वतः।
शतानन्दोऽभवत्पुत्रस्तस्य सत्यधृतिः सुतः॥२०॥
कृपः कृपी सत्यधृतैरुर्वश्या वीर्य्यहानितः।
द्रोणपत्नी कृपी जज्ञे अश्वत्थामानमुत्तमम्॥२१॥

उग्रायुध का पुत्र था क्षेम, उसका पुत्र हुआ सुधीर। सुधीर का पुत्र था पुरंजय। उसका पुत्र था विदूरथ। अजमीढ़ की पत्नी थी नलिनी। उसके गर्भ से नील राजा जन्मा, जिसका पुत्र था शान्ति, उसका पुत्र था सुशान्ति। उसका पुत्र था पुरु, उसका पुत्र था अर्क। अर्क का पुत्र हर्यश्व, हर्यश्व का पुत्र मुकुल। यह उसके पुत्र थे। यवीनर, बृहद्भानु, कम्पिल्ल, सृंजय तथा वृद्धश्व। मुकुल पांचाल का राजा था। वृद्धश्व महान् वैष्णव हो गया था। इसका पुत्र था दिवोदास तथा अहल्या नामक पुत्री थी। अहल्या के गर्भ से तथा शरद्वान के औरस से शतानन्द उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र था सत्यधृति। उर्वशी को देख कर सत्यधृति का वीर्य च्युत

हो गया। जिससे कृपि नामक पुत्री तथा कृप नामक पुत्र जन्मा। द्रोणाचार्य ने कृपी से विवाह किया, उससे अश्वत्थामा जन्मा॥१६-२१॥

दिवोदासान्मित्रयुश्च मित्रयोश्च्यवनोऽभवत्।
सुदासश्च्यवनाज्जज्ञे सौदासस्तस्य चात्मजः॥२२॥

सहदेवस्तस्य पुत्रः सहदेवात्तु सोमकः। जन्तुस्तु सोमकाज्जज्ञे पृषतश्चापरो महान्॥२३॥
पृषताद् द्रुपदो जज्ञे धृष्टद्युम्नस्ततोऽभवत्। धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्ऋक्षोऽभूदजमीढतः॥२४॥
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणादभूत्। सुधनुश्च परीक्षिच्च जह्नुश्चैव कुरोः सुताः॥२५॥

सुधनुषः सुहोत्रोऽभूच्च्यवनोऽभूत्सुहोत्रतः।
च्यवनात्कृतको जज्ञे अथोपरिचरो वसुः॥२६॥
बृहद्रथश्च प्रत्यग्रः सत्याद्याश्च वसोः सुताः।
बृहद्रथात्कुशाग्रश्च कुशाग्रादृषभोऽभवत्॥२७॥
ऋषभात्पुष्पवांस्तस्माज्जज्ञे सत्यहितो नृपः।
सत्यहितात्सुधन्वाऽभूज्जह्नुश्चैव सुधन्वतः॥२८॥
बृहद्रथाज्जरासन्धः सहदेवस्तदात्मजः।
सहदेवाच्च सोमापिः सोमापेः श्रुतवान् सुतः॥२९॥
भीमसेनोग्रसेनौ च श्रुतसेनोऽपराजितः।
जनमेजयश्चान्योऽभूज्जह्नोस्तु सुरथोऽभवत्॥३०॥

दिवोदास का पुत्र था मित्रयु, उसका पुत्र था च्यवन, जिसके पुत्र का नाम था सुदास, उसका पुत्र था सौदास। सौदास का पुत्र था सहदेव, उसका पुत्र था सोमक, उसका पुत्र था जन्तु एवं पृषत। पृषत का पुत्र था द्रुपद। उसका पुत्र था धृष्टद्युम्न, जिसके पुत्र का नाम था धृष्टकेतु। पूर्वोक्त अजमीढ़ का पुत्र था ऋक्ष। उसका पुत्र था संवरण, उसके पुत्र थे कुरु, सुधनु, परिक्षित तथा जन्हु। सुधनु का पुत्र था सुहोत्र। उसका पुत्र था च्यवन। च्यवन से कृतकराज जन्मा। उसका पुत्र था उपरिचर नामक वसु। उपरिचर से बृहद्रथ, प्रत्यग्र, सत्य जन्मे। बृहद्रथ का पुत्र था कुशाग्र। उसका पुत्र था ऋषभ, ऋषभ का पुत्र था पुष्पवान्। उसका पुत्र था राजा सत्यजित्। उसका पुत्र था सुधन्वा, जिसके पुत्र का नाम था ज्न्हु। पूर्वोक्त बृहद्रथ से जरासन्ध जना। उसका पुत्र था सहदेव, उसका पुत्र था सोमापि, उसके पुत्र थे श्रुतवान्, भीमसेन, उग्रसेन, श्रुतसेन तथा जनमेजय। उक्त जह्नु का पुत्र था राजा सुरथ॥२२-३०॥

विदूरथस्तु सुरथात्सार्वभौमो विदूरथात्। जयसेनः सार्वभौमादावाधीतस्तदात्मजः॥३१॥

अयुतायुस्तस्य पुत्रस्तस्य चाक्रोधनः सुतः।
अक्रोधनस्यातिथिश्च ऋक्षोऽभूदतिथेः सुतः॥३२॥

ऋक्षाच्च भीमसेनोऽभूद्दिलीपो भीमसेनतः। प्रतीपोऽभूद्दिलीपाच्च देवापिस्तु प्रतीपतः॥३३॥

शन्तनुश्चैव वाह्लीकस्त्रयस्ते भ्रातरो नृपाः। वाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः॥३४॥

शालश्च शन्तनोर्भीष्मो गङ्गायां धार्मिको महान्।
चित्राङ्गदविचित्रौ तु सत्यवत्यान्तु शन्तनोः॥३५॥
विचित्रवीर्य्यस्य भार्य्ये तु अम्बिकाम्बालिके तयोः।
धृतराष्ट्रन्तु पाण्डुञ्च तद्दास्यां विदुरं तथा॥३६॥
व्यास उत्पादयामास गान्धारी धृतराष्ट्रतः।
शतं पुत्रं दुर्य्योधनाद्यं पाण्डोः पञ्च प्रजज्ञिरे॥३७॥
प्रतिविन्ध्यः श्रुतसोमः श्रुतकीर्त्तिश्च चार्जुनात्।
शतानीकः श्रुतकर्मा द्रौपद्यां पञ्च वै क्रमात्॥३८॥

सुरथ का पुत्र था विदूरथ, उसका पुत्र सार्वभौम, उसका पुत्र था जयत्सेन, उसका पुत्र था आवाधी। उसका पुत्र था अयुतायु, उसका पुत्र था अक्रोधन, उसका पुत्र था अतिथि, उसका पुत्र था ऋक्ष। उसका पुत्र था भीमसेन, जिसके पुत्र का नाम था दिलीप, उसका पुत्र था प्रतीप, प्रतीप के पुत्र हुये देवापि, शान्तनु तथा वाह्लीक। वाह्लीक का पुत्र था सोमदत्त, जिसके पुत्र थे भूरि। उसके पुत्र थे भूरिश्रवा एवं शाल। शान्तनु के औरस से तथा गंगा के गर्भ से महान् धार्मिक भीष्म जन्मे। शान्तनु की अन्य पत्नी सत्यवती से चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य जन्मे। विचित्रवीर्य की दो पत्नियां थीं अम्बिका, अम्बालिका। धृतराष्ट्र को अम्बिका के गर्भ से व्यास ने उत्पन्न किया। व्यासदेव ने अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु तथा दासी के गर्भ से विदुर को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्र ने गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन आदि सौ पुत्र उत्पन्न किये। पाण्डु के युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डव जन्मे। द्रौपदी से युधिष्ठिर ने प्रतिविन्ध्य को, भीमसेन ने द्रौपदी से श्रुतसोम को, अर्जुन ने द्रौपदी से श्रुतकीर्त्ति को, नकुल ने द्रौपदी से शतानीक को तथा सहदेव ने द्रौपदी से श्रुतकर्मा को उत्पन्न किया॥३१-३८॥

यौधेयी च हिडिम्बा च कौशी चैव सुभद्रिका।
विजयी वै रेणुमती पञ्चभ्यस्तु सुताः क्रमात्॥३९॥
देवको घटोत्कचश्च अभिमन्युश्च सर्वगः। सुहोत्रो निरमित्रश्च परीक्षिदभिमन्युजः।
जनमेजयोऽस्य ततो भविष्यांश्च नृपान् शृणु॥४०॥

॥इति गारुडे महापुराणे चन्द्रवंशवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४०॥

युधिष्ठिर आदि पांच भाईयों की यौधेयी, हिडिम्बा, कौशी, सुभद्रा, विजया, वेणुमती आदि कई पत्नियां थीं। उनके गर्भ से देवक, घटोत्कच, अभिमन्यु, सर्वग, सुहोत्र तथा निरमित्र आदि कई पुत्र जन्मे। अभिमन्यु का पुत्र था परीक्षित, जिसका पुत्र था जन्मेजय। अब जिन राजाओं का जन्म होगा, उन भविष्य के राजाओं का विवरण सुनिये॥३९-४०॥

॥एक सौ चालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

राजवंश वर्णन

हरिरुवाच

शतानीको ह्यश्वमेधदत्तश्चाप्यधिसोमकः। कृष्णोऽनिरुद्धश्चाप्युष्णस्ततश्चित्ररथो नृपः॥१॥
शुचिद्रथो वृष्णिमांश्च सुषेणश्च सुनीथकः। ऋचस्तस्याभवेत्पुत्रो नृचक्षुश्च सुखाबल॥२॥
पारिप्लवश्च सुनयो मेधावी च नृपञ्जयः। हरिस्तिग्मो बृहद्रथः शतानीकः सुदानकः॥३॥
उदानोऽह्निनरश्चैव दण्डपाणिर्निमित्तकः। क्षेमकश्च ततः शूद्रः पिता पूर्वस्ततः सुतः॥४॥

श्रीहरि ने कहा—शतानीक का पुत्र था अश्वमेधदत्त। उसका पुत्र था अधिसीमक, जिसका पुत्र था कृष्ण, उसका पुत्र था उष्ण, जिसका पुत्र चित्ररथ, उसका पुत्र शुचिद्रथ। उसका पुत्र वृष्णिमान, उसका पुत्र सुषेण, उसका पुत्र सुनीथ, उसका पुत्र ऋच, उसका पुत्र था नृचक्षु। उसका पुत्र था सुखाबल, जिसका पुत्र था पारिप्लव। उसका पुत्र था सुनय। उसका पुत्र हुआ मेधावी, जिसके पुत्र का नाम था नृपंजय। उसका पुत्र था हरि। हरि का पुत्र था तिग्म। उसका पुत्र हुआ बृहद्रथ, जिसके पुत्र का नाम है शतानीक। उसका पुत्र था सुदानक। उसका पुत्र था अह्निनर। उसका पुत्र दण्डपाणि था। उसका पुत्र निमित्तक था। उसका पुत्र था क्षेमक; जिसके पुत्र का नाम था शूद्र। (यह सब भविष्य वंश है। जहां 'था' लिखा है, उसे 'होगा' समझें)॥१-४॥

बृहद्बलास्तु कथ्यन्ते नृपाश्चेक्ष्वाकुवंशजाः। बृहद्बलादुरुक्षयो वत्सव्यूहस्ततः परः॥५॥
बृहदश्वो भानुरथः प्रतीव्यश्च प्रतीतकः। मनुदेवः सुनक्षत्रः किन्नरश्चान्तरिक्षकः॥६॥

अब इक्ष्वाकु वंश के वृहद्वल का भविष्य वंश सुनें। वृहद्वल का पुत्र उरुक्षय, उसका पुत्र वत्सव्यूह, उसका पुत्र बृहदश्व, उसका पुत्र भानुरथ, उसका पुत्र प्रतीव्य, उसका पुत्र प्रतीतक, उसका पुत्र मनुदेव, उसका पुत्र सुनक्षत्र, उसका पुत्र किन्नर, उसका पुत्र अन्तरीक्षक होगा॥५-६॥

सुपर्णः कृतजिच्चैव बृहद्भ्राजश्च धार्मिकः।
कृतञ्जयो धनञ्जयः सञ्जयः शाक्य एव च॥७॥

शुद्धोदनो बाहुलश्च सेनजित्क्षुद्रकस्तथा। समित्रः कुडवश्चातः सुमित्रो मागधान् शृणु॥८॥
जरासन्धः सहदेवः सोमापिश्च श्रुतश्रवाः। अयुतायुर्निरमित्रः स्वक्षेत्रा बहुकर्मकः॥९॥
श्रुतञ्जयः सेनजिच्च भूरिश्चैव शुचिस्तथा। क्षेम्यश्च सुव्रतो धर्मः सुश्रमो दृढसेनकः॥१०॥
सुमतिः सुबलो नीतो सत्यजिद्विश्वजित्तथा। इषुञ्जयश्च इत्येते नृपा बार्हद्रथाः स्मृताः॥११॥

उसका पुत्र सुपर्ण, उसका पुत्र कृतजित्, उसका पुत्र बृहद्भ्राज, उसका पुत्र कृतञ्जय, उसका पुत्र धनंजय, उसका पुत्र संजय, उसका पुत्र शाक्य, उसका पुत्र शुद्धोधन, उसका पुत्र बाहुल, उसका पुत्र सेनजित, उसका पुत्र क्षुद्रक, उसका पुत्र समित्र, उसका पुत्र कुड़व, उसका पुत्र सुमित्र होगा। अब मगधवंशीय वर्णन सुनें। जरासन्ध का पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि, उसका पुत्र श्रुतश्रवा, उसका पुत्र

अयुतायु, उसका पुत्र निरमित्र, उसका पुत्र स्वक्षेत्रा, उसका पुत्र बहुकर्मक, उसका पुत्र श्रुतंजय, उसका पुत्र सेनजित्, उसका पुत्र भूरि, उसका पुत्र शुचि, उसका पुत्र क्षेम्य, उसका पुत्र सुव्रत, उसका पुत्र धर्म, धर्म का पुत्र सुश्रम, उसका पुत्र दृढसेन, उसका पुत्र सुमति, उसका पुत्र सुबल, उसका पुत्र नीत, उसका पुत्र सत्यजित्, उसका पुत्र विश्वजित्। तदनन्तर उसका पुत्र ईषुञ्जय होगा। यह बृहद्रथ वंशीय राजाओं का वर्णन है॥७-११॥

अधर्मिष्ठाश्च शूद्राश्च भविष्यन्ति नृपास्ततः।
स्वर्गादिकृद्धि भगवान्साक्षान्नारायणोऽव्ययः॥१२॥
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः।
यातिभूः प्रलयञ्चाप्सु आपस्तेजसि पावकः॥१३॥
वायौ वायुश्च वियति आकाशं यात्यहंकृतौ।
अहंबुद्धौ मतिर्जीवे जीवोऽव्यक्ते तदात्मनि॥१४॥
आत्मा परेश्वरो विष्णुरेको नारायणो नरः। अविनाश्यपरं सर्वं जगत्सर्गादि नाशि हि॥१५॥
नृपादयो गता नाशमतः पापं विवर्जयेत्।
धर्मं कुर्य्यात्स्थिरं येन पापं हित्वा हरिं व्रजेत्॥१६॥

।इति गारुडे महापुराणे राजवंशो नाम एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४१।।

तब अधार्मिक शूद्र राज्य करेंगे। अव्यय प्रभु नारायण सृष्टि-स्थिति-प्रलयंकर हैं। प्रलय तीन तरह का होता है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक। पृथिवी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार बुद्धि में, बुद्धि जीव में तथा जीव अव्यक्त परमब्रह्म में लयीभूत होता है। आत्मा परेश्वर, विष्णु नारायण नर एक ही हैं। वे अविनाशी ही एकमात्र अव्यय हैं। बाकी सब नाशवान् हैं। इस भूमण्डल में सैकड़ों राजा जन्म कर नष्ट हो गये। अतः पाप कर्म छोड़ कर सदा धर्म करे। तभी श्रीहरि प्राप्त होंगे॥१२-१६॥

॥एक सौ इक्तालीसवां अध्याय समाप्त॥
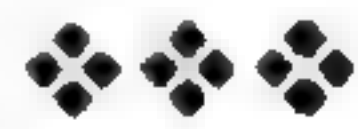
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सीता माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

वंशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरिः प्रभुः। दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये॥१॥

मत्स्यादिकस्वरूपेण अवतारं करोत्यजः।

मत्स्यो भूत्वा हयग्रीवं दैत्यं हत्वाजिकण्टकम्॥२॥

वेदानानीय मन्वादीन्पालयामास केशवः। मन्दरं धारयामास कूर्मो भूत्वा हिताय च॥३॥

क्षीरोदमथने वैद्यो देवो धन्वन्तरिर्ह्यभूत्। बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः॥४॥

आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं सुश्रुताय स उक्तवान्। अमृतं पाययामास स्त्रीरूपी च सुरान् हरिः॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—आर्य वंश के पालनार्थ हरि प्रभु अवतीर्ण होते हैं। वे दैत्य धर्म के नाशार्थ तथा वैदिक धर्मरक्षणार्थ समय आने पर मत्स्यादि अवतार ग्रहण करते हैं। उन्होंने मत्स्यरूपेण आविर्भूत होकर रणदुर्मद हयग्रीव का वध करके वेदोद्धार किया तथा केशव ने मनु आदि का पालन किया। उन्होंने प्राणिहितार्थ कूर्मरूपेण अपने ऊपर मन्दराचल को धारण किया। उन्होंने क्षीरसागर मंथन के समय वैद्य धन्वन्तरी के रूप में अमृतपूर्ण कमण्डलु के साथ क्षीर सागर से उत्थान किया। इन देव धन्वन्तरी ने सुश्रुत वैद्य शिष्य को अष्टांग आयुर्वेद का शिक्षण दिया। भगवान् हरि ने मोहिनी रूप से अवतीर्ण होकर देवगण को अमृत पिलाया॥१-५॥

अवतीर्णो वराहोऽथ हिरण्याक्षं जघान ह। पृथिवीं धारयामास पालयामास देवताः॥६॥

नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपुं रिपुम्। दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत्॥७॥

ततः परशुरामोऽभूज्जमदग्नेर्जगत्प्रभुः। त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं चक्रे निःक्षत्रियां हरिः॥८॥

कार्त्तवीर्य्यं जघानाजौ कश्यपाय महीं ददौ। यागं कृत्वा महाबाहुर्महेन्द्रे पर्वते स्थितः॥९॥

इन श्रीहरि ने वराह रूपेण अवतार लेकर हिरण्याक्ष का वध किया। इन्होंने पृथिवी का उद्धार करके देवगण को पाला। इन हरि ने नृसिंहावतार लेकर हिरण्यकशिपु नामक देवशत्रु का वध करके वेद तथा धर्म का पालन किया। वे हरि जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में अवतीर्ण हुये थे। उन्होंने २१ बार समग्र धरती को क्षत्रियरहित किया था। क्षत्रियों तथा कार्त्तिवीर्य का वध करके भगवान् परशुराम ने ऋषि कश्यप को भूमिदान किया। यज्ञ करके वे महाबाहु महेन्द्र पर्वत पर स्थित हैं॥६-९॥

ततो रामो भविष्णुश्च चतुर्धा दुष्टमर्दनः। पुत्रो दशरथाज्जज्ञे रामश्च भरजोऽनुजः॥१०॥

लक्ष्मणश्चाथ शत्रुघ्नो रामभार्य्या च जानकी॥११॥

वे भगवान् विष्णु पुनः दुष्टों के दमन हेतु चार अंश में विभक्त होकर दशरथ के औरस से राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के नाम से अवतीर्ण हो गये। रामचन्द्र की पत्नी थीं माता जानकी॥१०-११॥

रामश्च पितृसत्यार्थं मातृभ्यो हितमाचरन्। शृङ्गवेरं चित्रकूटं दण्डकारण्यमागतः॥१२॥
नासा शूर्पणखायाश्च छित्त्वाथ खरदूषणम्। हत्वा स राक्षसं सीतापहारिरजनीचरम्॥१३॥
रावणं चानुजं तस्य लङ्कापुर्य्यां विभीषणम्।
रक्षोराज्ये च संस्थाप्य सुग्रीवहनुमन्मुखैः॥१४॥
आरुह्य पुष्पकं सार्द्धं सीतया पतिभक्तया।
सुमहापतिव्रतया सोऽयोध्यां स्वपुरीं गतः॥१५॥
राज्यञ्चकार देवादीन्पालयामास स प्रजाः। धर्मसंरक्षणं चक्रे अश्वमेधादिकान्क्रतून्॥१६॥

राम ने पिता की प्रतिज्ञा के पालनार्थ तथा माता कैकेयी के हितार्थ मन से राज्य का त्याग किया तथा वे शृंगवेरपुर, चित्रकूट, दण्डकारण्य गये। उन्होंने सूर्पणखा राक्षसी की नाक काटी, खर-दूषणादि राक्षस वीरों एवं सीता हरणकारी रावण राक्षसराज का नाश किया तथा रावण के छोटे भाई विभीषण को लंका का राक्षसराज नियुक्त किया। उन्होंने सुग्रीव-हनुमान आदि अनुचरों तथा परम पतिव्रता जानकी के साथ पुष्पक विमान पर बैठ कर राजधानी अयोध्या में आगमन किया। तदनन्तर वे राज्य पर अभिषिक्त होकर देवता तथा पृथिवी पालन करने लगे। उन्होंने धर्म की रक्षा करते हुये अश्वमेधादि यज्ञ भी किया॥१२-१६॥

सुमहापतिव्रतया रेमे रामो यथासुखम्। रावणस्य गृहे सीता स्थित्वापि न हि रावणम्॥१७॥
कर्मणा मनसा वाचा सा गता राघवं विना। पतिव्रता तु सा सीता अनसूया यथैव तु॥१८॥
पतिव्रतायाः सीताया माहात्म्यं कथयाम्यहम्।
कौशिको ब्राह्मणः कुष्ठी प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरा॥१९॥
तं तथा व्याधितं भार्य्या पतिं देवमिवार्चयत्।
निभर्त्सितापि भर्त्तारं तममन्यत दैवतम्॥२०॥

वे परम पतिव्रता सीता के साथ अत्यन्त सुख से विहार करने लगे। यद्यपि सीता रावण के यहां दीर्घकाल थीं, तथापि वे मन, वाणी, कर्म से राम के सिवाय किसी पुरुष का चिन्तन नहीं करती थीं। जैसी पतिव्रता अनुसूया हैं, वैसी ही सीता हैं। अब पतिव्रता सीता का माहात्म्य सुनो। पूर्वकाल में प्रतिष्ठान पुरी में कौशिक नामक कुष्ठरोगी ब्राह्मण था। उसकी पतिव्रता पत्नी उनकी सेवा देवता मान कर करती थी। व्याधिग्रस्त पति से तनिक घृणा नहीं करती थीं। कौशिक उनका बराबर तिरस्कार करता था, तथापि वे देवता मानकर उसकी सेवा में कोई अवहेलना नहीं करती थीं॥१७-२०॥

भर्त्रोक्ता सानयद्वेश्यां शुल्कमादाय चाधिकम्।
पथि शूले तदा प्रोतमचौरं चौरशङ्कया॥२१॥
माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ स द्विजः।
पत्नीस्कन्धसमारूढश्चालयामास कौशिकः॥२२॥

पादावमर्षणात्क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह।
सूर्य्योदये मृतिस्तस्य येनाहं चालितः पदा॥२३॥
तच्छ्रुत्वा प्राह तद्भार्य्या सूर्य्यो नोदयमेष्यति।
ततः सूर्य्योदयाभावादभवत्सततं निशा॥२४॥
बहून्यब्दप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुस्तामूचे पद्मसम्भवः॥२५॥

एक दिन वे पति की आज्ञा से प्रचुर धन लेकर स्वामी को कंधे पर बैठा कर वेश्यालय ले जा रही थी। मार्ग में माण्डव्य नामक ऋषि को चोर न होने पर भी चोर के संदेह में पकड़कर शूली पर चढ़ा दिया था। माण्डव्य अन्धेरे में शूली पर दुःख भोग कर रहे थे। तभी पत्नी के कंधे पर बैठे कौशिक के धक्के से वे अत्यन्त पीड़ित हो उठे। माण्डव्य ने क्रोधित होकर शाप दिया, "जिसने भी मुझे हिलाया है, वह सूर्योदय होते ही मर जायेगा।" यह शाप सुनकर कौशिक की पत्नी ने कहा—"अब सूर्योदय नहीं होगा।" पतिव्रता के वाक्य के कारण सूर्योदय नहीं हुआ। बराबर रात्रि ही रह गयी। कई दिन तक रात्रि बनी रहने से देवता डरते हुये ब्रह्मा के यहां गये। उन्होंने ब्रह्मा से सभी वृत्तान्त कहा॥२१-२५॥

प्रशाम्यते तेजसैव तपस्तेजस्त्वनेन वै। पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः॥२६॥
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्त्यानां भवतां तथा। तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम्॥२७॥
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया। तैः सा प्रसादिता गत्वा ह्यनसूया पतिव्रता॥२८॥
कृत्वादित्योदयं सा च तं भर्त्तारमजीवयत्।
पतिव्रतानसूयायाः सीताभूदधिका किल॥२९॥

॥इति गारुडे महापुराणे सीतामाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४२॥

ब्रह्मा ने कहा—"अभी पतिव्रता के तपःतेज के कारण ऋषि का तपःतेज शान्त हो गया। पतिव्रता की महिमा से सूर्य उदित नहीं हो रहे हैं। सूर्योदय न होने से मनुष्यों तथा देवताओं की हानि होगी। अब तुम लोग सूर्योदय की इच्छा से पतिव्रता तपस्विनी अत्रिपत्नी अनुसूया की शरण में जाओ। उनको प्रसन्न करो।" तब देवता पतिपरायणा अनुसूया के पास गये तथा उनको प्रसन्न किया। अनुसूया ने सूर्योदय भी किया तथा कौशिक के प्राण भी बचा दिये। मैंने पतिव्रता माहात्म्य कहा तथापि अनुसूया से भी अधिक पतिव्रता सीता हैं॥२६-२९॥

॥एक सौ बयालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
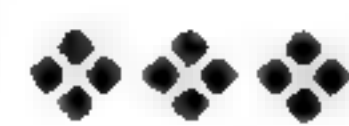
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रामायण का वर्णन

ब्रह्मोवाच

रामायणमतो वक्ष्ये श्रुतं पापविनाशनम्।
विष्णुनाभ्याब्जतो ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत्॥१॥
मरीचेः कश्यपस्तस्माद्रविस्तस्मान्मनुः स्मृतः।
मनोरिक्ष्वाकुरस्याभूद्वंशे राजा रघुः स्मृतः॥२॥
रघोरजस्ततो जातो राजा दशरथो बली। तस्य पुत्रास्तु चत्वारो महाबलपराक्रमाः॥३॥
कौशल्यायामभूद्रामो भरतः कैकयीसुतः। सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां बभूवतुः॥४॥
रामो भक्तः पितुर्मातुर्विश्वामित्रादवाप्तवात्। अस्त्रग्रामं ततो यक्षीं ताडकां प्रजघान ह॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अब मैं रामायण कहता हूं। इसे सुनने वाले के समस्त पापों का क्षय होता है। विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ। उनके पुत्र हैं मरीचि, जिनके पुत्र हैं कश्यप। उनके पुत्र हैं सूर्य, जिनके पुत्र हैं वैवस्वत मनु। मनुपुत्र हैं इक्ष्वाकु। इनके वंश में महाराज रघु जन्मे थे। रघुपुत्र थे राजा अज। अज के पुत्र थे महाबली राजा दशरथ। इनके महाबली पराक्रमी चार पुत्र जन्मे। इनमें कौशल्या के गर्भ से रामचन्द्र, कैकेयी के गर्भ से भरत, सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण-शत्रुघ्न उत्पन्न हुये। पिता-माता के भक्त राम ने विश्वामित्र से विविध अस्त्र-शस्त्र को सीख कर ताड़का नामक यक्षिणी का नाश किया॥१-५॥

विश्वामित्रस्य यज्ञे वै सुबाहुं न्यवधीद् बली।
जनकस्य क्रतुं गत्वा उपयेमेऽथ जानकीम्॥६॥
उर्मिलां लक्ष्मणो वीरो भरतो माण्डवीं सुताम्।
शत्रुघ्नो वै कीर्त्तिमतीं कुशध्वजसुते उभे॥७॥
पित्रादिभिरयोध्यायां गत्वा रामादयः स्थिताः। युधाजितं मातुलञ्च शत्रुघ्नभरतौ गतौ॥८॥
गतयोर्नृपवर्य्योऽसौ राज्यं दातुं समुद्यतः। रामाय तत्सुपुत्राय कैकेय्या प्रार्थितं तदा।
चतुर्दशसमा वासो वने रामस्य वाञ्छितः॥९॥
रामः पितृहितार्थञ्च लक्ष्मणेन च सीतया। राज्यञ्च तृणवत्त्यक्त्वा शृङ्गवेरपुरं गतः॥१०॥
रथं त्यक्त्वा प्रयागञ्च चित्रकूटगिरिं गतः।
रामस्य तु वियोगेन राजा स्वर्गं समाश्रितः॥११॥

विश्वामित्र जब यज्ञरत थे, तब राम ने सुबाहु नामक राक्षस का वध किया। तदनन्तर वे जनक के यहां गये तथा जानकी से विवाह किया। तभी महावीर लक्ष्मण ने उर्मिला से, भरत ने कुशध्वज पुत्री

माण्डवी से तथा शत्रुघ्न ने कुशध्वज पुत्री श्रुतकीर्त्ति से विवाह किया। तदनन्तर रामचन्द्र आदि चारों भाई पिता दशरथ तथा मन्त्रियों के साथ अयोध्या में रहने लगे। तभी भरत एवं शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित् के यहां गये। उस समय दशरथ ने अपने सुपुत्र राम को राज्यभार सौंपना चाहा। तभी कैकेयी ने अपना अभिलषित वर मांगा कि राम चौदह वर्ष वन में जायें। तब रामचन्द्र पिता के हितार्थ राज्य को तृणवत् छोड़ कर सीता एवं लक्ष्मण के साथ शृंगवेरपुर चले गये। वहां वे रथ त्याग कर प्रयाग गये, जहां से वे चित्रकूट जाकर रहने लगे। इधर राजा दशरथ ने राम के विछोह में प्राण त्यागा तथा स्वर्गगामी हो गये॥६-११॥

संस्कृत्य भरतश्चागाद्राममाह बलान्वितः। अयोध्यां तु समागत्य राज्यं कुरु महामते॥१२॥
स नैच्छत्पादुके दत्त्वा राज्याय भरताय तु। विसर्जितोऽथ भरतो रामराज्यमपालयत्॥१३॥

नन्दिग्रामे स्थितो भक्तो ह्ययोध्यां नाविशद् व्रती।
रामोऽपि चित्रकूटाच्च अत्रेराश्रममाययौ॥१४॥
नत्वा सुतीक्ष्णं चागस्त्यं दण्डकारण्यमागतः।
तत्र शूर्पणखा नाम राक्षसी चात्तुमागता॥१५॥
निकृत्य कर्णौ नासे च रामेणाथापराहिता।
तत्प्रेरितः खरश्चागाद्दूषणस्त्रिशिरास्तथा॥१६॥

चतुर्दशसहस्रेण राक्षसां तु बलेन च। रामोऽपि प्रेषयामास बाणैर्यमपुरञ्च तान्॥१७॥

राजकुमार भरत ने दशरथ का संस्कार किया तथा प्रचुर सैन्य वाहन के साथ रामचन्द्र के पास पहुंचे। उन्होंने राम से कहा—"महामति! अयोध्या आकर राज्य पालन करिये।" रामचन्द्र इस बात से सहमत नहीं हो सके, तथापि उन्होंने अपनी पादुका की जोड़ी देकर भरत को विदा किया। भरत भी न्यास के तौर पर राम के राज्य का शासन करने लगे। रामचन्द्र पर भरत की असीम भक्ति होने के कारण वे अयोध्या नहीं गये। वे भी रामचन्द्र की तरह व्रती होकर नन्दीग्राम में ही रहने लगे। रामचन्द्र अब चित्रकूट से महर्षि अत्रि के आश्रम गये। वहां से उन्होंने मुनि सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य को प्रणाम करके दण्डकारण्य में प्रवेश किया। वहां उनको देख कर शूर्पणखा राक्षसी सीता को खाने पहुंची। रामचन्द्र ने उसकी नासिका तथा कान काट कर भगा दिया। तब शूर्पणखा के कहने पर खर-दूषण त्रिशिरा राक्षस चौदह हजार सेना के साथ राम से युद्ध करने लगे। राम ने अपने बाणों से सभी को यमलोक भेज दिया॥१२-१७॥

राक्षस्या प्रेरितोऽभ्यागाद्रावणो हरणाय हि।
मृगरूपं स मारीचं कृत्वाग्रेऽथ त्रिदण्डधृक्॥१८॥
सीतया प्रेरितो रामो मारीचं निजघान ह।
म्रियमाणः स च प्राह हा सीते लक्ष्मणेति च॥१९॥
सीतोक्तो लक्ष्मणोऽथागाद्रामश्चानु ददर्श तम्।
उवाच राक्षसी माया नूनं सीता हृतेति सा॥२०॥

इसके पश्चात् शूर्पणखा ने राक्षसराज रावण को उत्तेजना दिलाकर सीता के हरणार्थ प्रेरित किया।

रावण इस हेतु मृगरूपी मारीच को सीता के सामने भेज कर स्वयं त्रिदण्डी भिक्षुक बनकर दण्डकवन गया। सीता के कथन के अनुसार श्रीराम ने मायामृग मारीच का पीछा करते हुये उसका वध किया। प्राण त्यागते समय मारीच ने "हा सीता, हा लक्ष्मण" का चीत्कार शब्द किया। तब सीता की आज्ञा से लक्ष्मण राम के अन्वेषणार्थ वन में गये। राम ने लक्ष्मण को देख कर कहा—"यह सब तो राक्षसी माया थी। अब राक्षस निःसन्देह सीताहरण कर लेंगे"॥१८-२०॥

रावणोऽन्तरमासाद्य अङ्केनादाय जानकीम्।
जटायुषं विनिर्भिद्य ययौ लङ्कां ततो बली॥२१॥
अशोकवृक्षच्छायायां रक्षितां तामधारयत्।
आगत्य रामः शून्याञ्च पर्णशालां ददर्श ह॥२२॥
शोकं कृत्वाथ जानक्या मार्गणं कृतवान्प्रभुः।
जटायुषञ्च संस्कृत्य तदुक्तो दक्षिणां दिशम्॥२३॥
गत्वा सख्यं ततश्चक्रे सुग्रीवेण च राघवः। सप्त तालान्विनिर्भिद्य शरेणानतपर्वणा॥२४॥
बालिनञ्च विनिर्भिद्य किष्किन्ध्यायां हरीश्वरम्।
सुग्रीवं कृतवान् राम ऋष्यमूके स्वयं स्थितः॥२५॥

उधर महाबली रावण ने मौका पाकर सीता को गोद में उठाया तथा जटायु को मार कर लंका पहुंचा। राक्षसराज दशानन ने सीता को अशोक वाटिका में रखा तथा राक्षसी लोगों को उनका प्रहरी बनाया। जब राम ने कुटिया में आकर देखा, तब उसे खाली पाया। वहां जानकी नहीं थीं। वे शोक प्रकट करते वैदेही की खोज में आगे बढ़े। उन्होंने जटायु का अंतिम संस्कार किया तथा जटायु के कथनानुसार दक्षिण की ओर चले गये। उन्होंने सुग्रीव के साथ मित्रता स्थापित करके उसे विश्वास दिलाने हेतु सात तालवृक्षों का भेदन एक ही बाण से किया। उन्होंने बालीवध करके सुग्रीव को किष्किन्धापति बनाया तथा स्वयं ऋष्यमूक पर्वत पर विराजमान हो गये॥२१-२५॥

सुग्रीवः प्रेषयामास वानरान्पर्वतोपमान्। सीताया मार्गणं कर्त्तुं पूर्वाद्यैः सुमहाबलान्॥२६॥
प्रतीचीमुत्तरां प्राचीं दिशं गत्वा समागताः।
दक्षिणान्तु दिशं ये च मार्गयन्तोऽथ जानकीम्॥२७॥
वनानि पर्वतान्द्वीपान्नदीनां पुलिनानि च। जानकीन्ते ह्यपश्यन्तो मरणे कृतनिश्चयाः॥२८॥
सम्पातिवचनाज्ज्ञात्वा हनूमान्कपिकुञ्जरः। शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे मकरालयम्॥२९॥
अपश्यज्जानकीं तत्र अशोकवनिकास्थिताम्।
भर्त्सितां राक्षसीभिश्च रावणेन च रक्षसा॥३०॥
भव भार्य्येति वदता चिन्तयन्तीञ्च राघवम्।
अङ्गुरीयं कपिर्दत्त्वा सीतां कौशल्यमब्रवीत्॥३१॥

अब वानरराज सुग्रीव ने सीता अन्वेषणार्थ पर्वत के समान विशाल वानरों को चारों ओर भेजा। वे वानर जो पूर्व-उत्तर-पश्चिम गये थे, निष्फल होकर लौट आये। जो दक्षिण में जानकी के अन्वेषणार्थ गये थे, उन्होंने वन, पर्वत, द्वीप, नदी तट को बहुतेरा खोजा तथापि कहीं जानकी का पता नहीं मिला। अब वे सभी निराश होकर अपने जीवन त्यागार्थ उद्यत हो गये। तभी सम्पाति गृध्र के वचनानुसार जानकी का पता लगने पर वानर वीर हनुमान ने एक उछाल में सौ योजन समुद्र पार कर लिया। उन्होंने लंका जाकर देखा कि अशोक वन में सीता माता अवस्थित हैं। राक्षसी उन्हें बारम्बार अपमानित कर रही है तथा राक्षसराज रावण "मेरी पत्नी बनो" इस वाक्य से उनको उत्पीड़ित कर रहा है। लेकिन सीता उसकी बात अनसुनी करके राम के ध्यान में तल्लीन हैं। तत्पश्चात् हनुमान ने मौका पाकर सीता को रामचन्द्र की अंगूठी दी तथा उनसे कुशल वार्त्ता किया॥२६-३१॥

रामस्य तस्य दूतोऽहं शोकं मा कुरु मैथिलि।
स्वाभिज्ञानञ्च मे देहि येन रामः स्मरिष्यति॥३२॥
तच्छ्रुत्वा प्रददौ सीता वेणीरत्नं हनूमते। यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा वाच्यं त्वया गते॥३३॥
तथेत्युक्त्वा तु हनुमान्वनं दिव्यं बभञ्ज ह।
हत्वाक्षं राक्षसांश्चान्यान्बन्धनं स्वयमागताः॥३४॥
सर्वैरिन्द्रजितो बाणैर्दृष्ट्वा रावणमब्रवीन्।
रामदूतोऽस्मि हनुमान्देहि रामाय मैथिलीम्॥३५॥

वानर वीर हनुमान ने कहा—"मैं राम का दूत हूं। हे माता मैथिली! शोक मत कीजिये। आप ऐसी कोई पहचान दीजिये, जिसे देख कर रामचन्द्र पहचानें कि मैं वास्तव में आपसे मिला हूं।" यह सुन कर सीता ने अपनी चूड़ामणि उतार कर हनुमान को प्रदान करके कहा कि—"रामचन्द्र शीघ्र मेरा यहां से उद्धार करें, यह कहना।" तब हनुमान ने 'तथास्तु' कहा तथा रावण के दिव्य प्रमोदवन को उजाड़ दिया। उन्होंने अक्षय कुमार तथा अनेक राक्षसों का वध किया तथा इन्द्रजीत के ब्रह्मास्त्र से बंध गये। उन्होंने रावण के पास ले जाये जाने पर उसे देख कर कहा—"मैं रामदूत हूं। मेरा नाम हनुमान है। अब तुम रामचन्द्र के पास सीता को लौटा दो"॥३२-३५॥

एतच्छ्रुत्वा प्रकुपितो दीपयामास पुच्छकम्।
कपिर्ज्वलितलाङ्गूलो लङ्कां देहे महाबलः॥३६॥
दग्ध्वा लङ्कां समायातो रामपार्श्वं स वानरः।
जग्ध्वा फलं मधुवने दृष्टा सीतेत्यवेदयत्॥३७॥
वेणीरत्नञ्च रामाय रामो लङ्कापुरीं ययौ। ससुग्रीवः सहनूमान्साङ्गदाद्यः सलक्ष्मणः॥३८॥
विभीषणोऽपि सम्प्राप्तः शरणं राघवं प्रति।
लङ्कैश्वर्य्येष्वभ्यषिञ्चद्रामस्तं रावणानुजम्॥३९॥

रावण यह सुनकर कुपित हो गया तथा उसने हनुमान की पूंछ में अग्नि लगवा दिया। उस ज्वलित

पूंछ से महाबली हनुमान ने पूरी लंका को जला दिया। पवनतनय एवंविध लंका को जलाकर रावण के मधुवन में अमृत फल खाकर राम के पास जाकर कहने लगे—''मैं सीता मां को देख आया।'' तब उन्होंने चूड़ामणि राम को प्रदान किया। तभी राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि ने लंकापुरी की ओर यात्रा किया। इसी समय रावण के छोटे भाई विभीषण राम की शरण में आ गये। रामचन्द्र ने तत्क्षण विभीषण को लंका के राज्यपद पर अभिषिक्त कर दिया॥३६-३९॥

रामो नलेन सेतुञ्च कृत्वाब्धौ चोत्ततार तम्। सुवेलावस्थितश्चैव पुरीं लङ्कां ददर्श ह॥४०॥
अथ ते वानरा वीरा नीलाङ्गदनलादयः। धूम्रधूम्राक्षवीरेन्द्रा जाम्बवत्प्रमुखास्तदा॥४१॥
मैन्दद्विविदमुखास्ते पुरीं लङ्कां बभञ्जिरे।
राक्षसांश्च महाकायान्कालाञ्जनचयोपमान्॥४२॥
रामः सलक्ष्मणो हत्वा सकपिः सर्वराक्षसान्।
विद्युज्जिह्वञ्च धूम्राक्षं देवान्तनरान्तकौ॥४३॥
महोदरमहापार्श्वातिकायं महाबलम्। कुम्भं निकुम्भं मत्तञ्च मकराक्षं ह्यकम्पनम्॥४४॥
प्रहस्तं वीरमुन्मत्तं कुम्भकर्णं महाबलम्॥४५॥
रावणिं लक्ष्मणश्छित्त्वा ह्यस्त्राद्यैः राघवो बली।
निकृत्य बाहुचक्राणि रावणं तु व्यपातयत्॥४६॥

तब रामचन्द्र ने वानर वीर नल से समुद्र पर पुल बनवाया तथा सभी वानर सैन्य के साथ समुद्र पार किया। उन्होंने सुबेल पर्वत पर बैठ कर सम्पूर्ण लंका को देखा। अगले दिन नील, अंगद, नल, धूम्र, धूम्राक्ष, जाम्बवान्, मैन्द, द्विविध आदि वानर वीर सेनानी ने लंकापुरी का मर्दन प्रारम्भ कर दिया। वे काले काजल के पहाड़ जैसे राक्षसों को मारने लगे। महावीर राम-लक्ष्मण ने भी वानर वीरों के साथ मिल कर विद्युजिह्व, धूम्राक्ष, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, महापार्श्व, अतिकाय, कुम्भ, निकुम्भ, मत्त, मकराक्ष, अकम्पन, प्रहस्थ, उन्मत्त, कुंभकर्ण तथा अन्य महावीर, महाबली राक्षसों को नष्ट कर दिया। बाद में लक्ष्मण ने इन्द्रजीत का वध कर दिया। रघुवंश के अवतंस महाबली राम ने रावण की बाहुओं को काट कर रावण का संहार कर दिया॥४०-४६॥

सीतां शुद्धां गृहीत्वाथ विमाने पुष्पके स्थितः।
सवानरः समायातो ह्ययोध्यां प्रवरां पुरीम्॥४७॥
तत्र राज्यं चकाराथ पुत्रवत्पालयन्प्रजाः। दशाश्वमेधानाहृत्य गयाशिरसि पातनम्॥४८॥
पिण्डानां विधिवत्कृत्वा दत्त्वा दानानि राघवः।
पुत्रौ कुशलवौ दृष्ट्वा तौ च राज्येऽभ्यषेचयत्॥४९॥
एकादशसहस्राणि रामो राज्यमकारयत्।
शत्रुघ्नो लवणं जघ्ने शैलूषो भरतः स्थितः॥५०॥

अगस्त्यादीन्मुनीन्नत्वा श्रुत्वोत्पत्तिञ्च रक्षसाम्।
स्वर्गं गतो जनैः सार्द्धमयोध्यास्थैः कृतार्थकः॥५१॥

॥इति गारुडे महापुराणे रामायणवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४३॥

तब सीता की अग्निपरीक्षा लेकर रामचन्द्र उनको लेकर वानरों के साथ पुष्पक विमान पर बैठे तथा अयोध्या लौट आये। वे राजसिंहासन पर बैठ कर प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगे। उन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये थे। उन्होंने गया में गयःशिर पर सविधि पूर्वजों को पिण्डदान करके ब्राह्मणों को प्रचुर धन दान दिया। उन्होंने कुश-लव दो पुत्रों को उत्पन्न करके उनका राज्याभिषेक किया। राम ने ग्यारह हजार वर्ष राज्य पालन किया। राम के राज्यत्व के समय शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध किया गया। इसी समय भरत नामक नाट्यकार ने नाटकाभिनय भी किया। तदनन्तर रामचन्द्र ने अगस्त्य आदि मुनियों को प्रणाम करके राक्षसों की उत्पत्ति का प्रसंग सुना। इस प्रकार वे देवकार्य करके अयोध्या के लोगों के साथ स्वर्ग चले गये॥४७-५१॥

॥एक सौ तिरालीसवां अध्याय समाप्त॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिवंश वर्णन

ब्रह्मोवाच

हरिवंशं प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम्। वसुदेवात्तु देवक्यां वासुदेवो बलोऽभवत्॥१॥
धर्मादिरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये। कृष्णः पीत्वा स्तनौ गाढं पूतनामनयत्क्षयम्॥२॥
शकटः परिवृत्तोऽथ भग्नौ च यमलार्जुनौ।
दमितः कालियो नागो धनुको विनिपातितः॥३॥
धृतो गोवर्द्धनः शैल इन्द्रेण परिपूजितः। भारावतरणं चक्रे प्रतिज्ञां कृतवान्हरिः॥४॥
रक्षणायार्जुनादेश्च अरिष्टादिर्निपातितः। केशी विनिहतो दैत्यो गोपाद्याः परितोषिताः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—अब मैं हरिवंश वर्णन करता हूं। इसमें उत्तम रूपेण कृष्ण माहात्म्य कहा गया है। वसुदेव के औरस से तथा देवकी के गर्भ से वासुदेव कृष्ण तथा बलराम का जन्म हुआ। भूमण्डल में अधर्मनाशार्थ तथा धर्मसंस्थापनार्थ इनका अवतार हुआ था। कृष्ण ने अत्यन्त गाढ़तापूर्वक स्तनपान द्वारा

पूतना राक्षसी को यमलोक भेजा। महाबली कृष्ण ने शकट पलट कर शकटासुर का वध किया तथा यमलार्जुन वृक्ष को भग्न किया। तदनन्तर कालिय नाग दमन भी किया। उन्होंने धेनुकासुर का वध किया। वे गोवर्द्धन पर्वत को उंगली पर उठा कर देवराज इन्द्र द्वारा पूजित हुये थे। उन्होंने पृथिवी का भार उतार कर प्रतिज्ञा किया तथा अर्जुन प्रभृति पांचों पाण्डवों का जीवन बचाया। उन्होंने अरिष्टासुर, केशी दैत्यों का वध करके गोपों को प्रसन्न किया॥१-५॥

चाणूरो मुष्टिको मल्लः कंसो मञ्चान्निपातितः।
रुक्मिणीसत्यभामाद्या अष्टौ पत्न्यो हरेः पराः॥६॥
षोडशस्त्रीसहस्राणि अन्यान्यासन्महात्मनः।
तासां पुत्राश्च पौत्राद्याः शतशोऽथ सहस्रशः॥७॥
रुक्मिण्याञ्चैव प्रद्युम्नोन्यवधीच्छम्बरञ्च यः।
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धोऽभूदुषाबाणसुतापतिः॥८॥
हरिशङ्करयोर्यत्र महायुद्धं बभूव ह। बाणबाहुसहस्रञ्च छिन्नं बाहुद्वयो ह्यभूत्॥९॥
नरको निहतो येन पारिजातं जहार यः। बलश्च शिशुपालश्च हतश्च द्विविदः कपिः॥१०॥
अनिरुद्धादभूद्वज्रः स च राजा गते हरौ। सान्दीपनिं गुरुञ्चक्रे सपुत्रञ्च चकार सः।
मथुरायाञ्चोग्रसेनं पालनञ्च दिवौकसाम्॥११॥

॥इति गारुडे महापुराणे हरिवंशवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४४॥
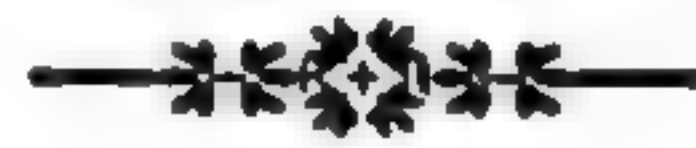
उन्होंने चाणूर, मुष्टिक मल्लों का वध किया तथा कंस को भी मंच से गिरा कर उसका भी वध कर दिया। उनकी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ प्रधान रानियां थीं। इसके अतिरिक्त इन महात्मा कृष्ण की अन्य १६००० रानियां और भी थीं। इन पत्नियों के गर्भ से कृष्ण के शतसहस्र पुत्र-पौत्र जन्मे। इनमें रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न ने जन्म लेकर शम्बर दैत्य का वध किया। प्रद्युम्न के पुत्र थे अनिरुद्ध। उनकी पत्नी थी बाणासुर की पुत्री ऊषा। ऊषाहरण काल में कृष्ण तथा शंकर का संग्राम भी छिड़ गया। कृष्ण ने बाणासुर की एक हजार बाहु में से मात्र दो बाहु छोड़ कर बाकी बाहुओं को काट दिया। कृष्ण ने नरकासुर का वध किया तथा स्वर्ग से पारिजात वृक्ष हर लाये। इन्होंने बल, शिशुपाल का और द्विविद वानर का वध किया। अनिरुद्ध का पुत्र था वज्र। जब कृष्ण ने स्वर्गगमन किया, तब वज्र मथुराधीश बना। यदुवंश कुलदीपक कृष्ण ने अपने गुरु सान्दीपनि के मृत पुत्र को वापस ला दिया था। उन्होंने मथुरा में कंस वध के पश्चात् उग्रसेन को राज्य दिया तथा देवताओं का पालन किया॥६-११॥

॥एक सौ चौवालिसवां अध्याय समाप्त॥
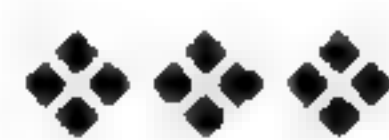
पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महाभारत वर्णन

ब्रह्मोवाच

भारतं संप्रवक्ष्यामि भारावतरणं भुवः। चक्रे कृष्णो युध्यमानः पाण्डवादिनिमित्ततः॥१॥

विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः।
सोमस्ततो बुधस्तस्मादुर्वश्याञ्च पुरूरवाः॥२॥
तस्यायुस्तत्र वंशेऽभूद्ययातिर्भरतः कुरुः।
शन्तनुस्तस्य वंशेऽभूद् गङ्गायां शन्तनोः सुतः॥३॥
भीष्मः सर्वगुणैर्युक्तो ब्रह्मवैवर्त्तपारगः॥४॥
शन्तनोः सत्यवत्याञ्च द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः।
चित्राङ्गदं तु गन्धर्वः पुत्रं चित्राङ्गदोऽवधीत्॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अब महाभारत सुनो। भगवान् कृष्ण ने यहां पाण्डवों हेतु युद्ध में भाग लिया था, जिससे वे पृथिवी के भार का हरण करें। तभी यह महाभारत (भारत) कही गयी। विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा जन्मे थे। उनके पुत्र थे अत्रि, जिनके पुत्र थे चन्द्रमा। चन्द्रपुत्र बुध थे। बुध पुत्र थे पुरूरवा। पुरूरवा के औरस तथा उर्वशी के गर्भ से आयु उत्पन्न हुये। उसके वंश में ययाति, भरत, कुरु तथा शान्तनु जन्मे थे। शान्तनु के औरस से तथा गंगा के गर्भ से ब्रह्मविद्या पारंगत, सर्वगुणनिधान भीष्म का जन्म हुआ। शान्तनु के औरस से तथा सत्यवती के गर्भ से चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य जन्मे थे। चित्रांगद नामक गन्धर्व ने शान्तनुपुत्र चित्रांगद का वध युद्ध में किया था। तब शान्तनुपुत्र विचित्रवीर्य ने काशीराज की पुत्री अम्बिका तथा अम्बालिका को अपनी पत्नी बनाया॥१-५॥

अन्यो विचित्रवीर्य्योऽभूत्काशिराजसुतापतिः।
विचित्रवीर्य्ये स्वर्याते व्यासात्तत्क्षेत्रतोऽभवत्॥६॥
धृतराष्ट्रोऽम्बिकापुत्रः पाण्डुरम्बालिकासुतः।
भुजिष्यायान्तु विदुरो गान्धार्य्यां धृतराष्ट्रतः॥७॥
दुर्य्योधनप्रधानास्तु शतसंख्या महाबलाः।
पाण्डोः कुन्त्याञ्च माद्र्याञ्च पञ्च पुत्राः प्रजज्ञिरे॥८॥

युधिष्ठिरो भीमसेनो ह्यर्जुनो नकुलस्तथा। सहदेवश्च पञ्चैते महाबलपराक्रमाः॥९॥
कुरुपाण्डवयोर्बैरं दैवयोगाद् बभूव ह। दुर्य्योधनेनाधीरेण पाण्डवाः समुपद्रुताः॥१०॥

जब विचित्रवीर्य का निधन हो गया तब उसके क्षेत्र से वेदव्यास ने पुत्रों को उत्पन्न किया। उन्होंने अम्बिका के गर्भ से धृतराष्ट्र को, अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु को तथा दासी के गर्भ से विदुर को उत्पन्न

किया। धृतराष्ट्र के औरस से तथा गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन प्रभृति महाबली, पराक्रमी सौ पुत्र जन्मे। पाण्डु के क्षेत्र से कुन्ती एवं माद्री के गर्भ से पांच पाण्डव जन्मे। ये थे युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव। ये सभी पुत्र महाबली, पराक्रमी थे। दैवात् कौरव-पाण्डवों में पारस्परिक शत्रुता तथा वैमनस्य था। अधीर बुद्धि दुर्योधन पाण्डवों के ऊपर उपद्रव अत्याचार करने लगा था॥६-१०॥

दग्ध्वा जतुगृहं वीरास्ते मुक्ताः स्वधियामलाः।
ततस्तदेकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने॥११॥
विप्रवेशा महात्मनो निहत्य बकराक्षसम्॥१२॥
ततः पाञ्चालविषये द्रौपद्यास्ते स्वयंवरम्।
विज्ञाय वीर्य्यशुल्कान्तां पाण्डवा उपयेमिरे॥१३॥
द्रोणभीष्मानुमत्या तु धृतराष्ट्रः समानयत्। अर्द्धराज्यं ततः प्राप्ता इन्द्रप्रस्थे पुरोत्तमे॥१४॥
राजसूयं ततश्चक्रुः सभां कृत्वा यतव्रताः।
अर्जुनो द्वारवत्यान्तु सुभद्रां प्राप्तवान्प्रियाम्।
वासुदेवस्य भगिनीं मित्रं देवकीनन्दम्॥१५॥

दुर्योधन ने लाक्षागृह में निर्दोष पाण्डवों को दग्ध करने का षड्यन्त्र किया, तथापि वे सभी अपनी बुद्धिशक्ति से बच गये। वे एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण के यहां रहने लगे। तभी उन्होंने बकासुर का वध किया। उनको उस समय ज्ञात हुआ कि पाञ्चाल नगरी में द्रौपदी का स्वयंवर हो रहा है। तब पाण्डवों ने वहां जाकर लक्ष्यवेध किया तथा द्रौपदी से विवाह किया। उधर भीष्म तथा द्रोण की अनुमति लेकर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया। पाण्डव उत्तम नगरी इन्द्रप्रस्थ से राज्य करने लगे। उन्होंने व्रत ले कर राजसूय यज्ञानुष्ठान किया तथा वहां एक उत्तम सभा निर्माण किया। वीरवर अर्जुन तब द्वारकापुरी गये तथा वासुदेव कृष्ण से मित्रता दृढ़ करने हेतु वासुदेव की बहन सुभद्रा को प्राप्त किया॥११-१५॥

नन्दिघोषं रथं दिव्यमग्नेर्धनुरनुत्तमम्। गाण्डीवं नाम तद्दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अक्षयान्सायकांश्चैव तथाभेद्यञ्च दंशनम्॥१६॥
स तेन धनुषा वीरः पाण्डवो जातवेदसम्। कृष्णाद्वितीयो बीभत्सुरतर्पयत् वीर्य्यवान्॥१७॥
नृपान्दिग्विजये जित्वा रत्नान्यादाय वै ददौ। युधिष्ठिराय महते भ्रात्रे नीतिविदे मुदा॥१८॥

अर्जुन ने अग्निदेव से नन्दीघोष नामक दिव्य रथ, गाण्डीव नामक तीनों लोकों में प्रसिद्ध दिव्य धनुष, कभी बाणों से रहित न होने वाला तरकश एवं अभेद्य कवच प्राप्त किया। महान् वीर अर्जुन ने कृष्ण के साथ इसी दिव्य धनुष द्वारा अग्नि को तृप्त किया। उन्होंने दिग्विजय के लिये जाकर समस्त राजाओं को पराजित किया तथा प्रचुर रत्न लाकर अत्यन्त प्रेम के साथ अपने बड़े भाई नीतिज्ञ युधिष्ठिर को अर्पित कर दिया॥१६-१८॥

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः।
जितो दुर्य्योधनेनैव मायाद्यूतेन पापिना॥१९॥

कर्णदुःशासनमते स्थितेन शकुनेर्मते। अथ द्वादश वर्षाणि वने तेषुर्महत्तपः॥२०॥
सधौम्या द्रौपदीषष्ठा मुनिवृन्दाभिसंवृतः। ययुर्विराटनगरं गुप्तरूपेण संश्रिताः॥२१॥
वर्षमेकं महाप्रज्ञा गोग्रहादिमपालयन्। ततो ज्ञाताः स्वकं राष्ट्रं प्रार्थयामासुरादृताः॥२२॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भाईयों के साथ कपटी पापी दुर्योधन की छलपूर्ण द्यूतक्रीड़ा में पराजित हो गये। यह दुष्टतापूर्ण सलाह दुर्योधन को कर्ण, दुःशासन तथा शकुनी ने दी थी। महात्मा पाण्डवों ने तब वन में बारह वर्ष कठोर तप किया। इसके अनन्तर पांचों पाण्डवगण पुरोहित धौम्य के साथ द्रौपदी को लेकर विराट नगरी पहुंचे तथा वहां गुप्त भाव से रहने लगे। एवंविध पाण्डवों ने वहां एक वर्ष अज्ञातवास किया तथा गौओं को हरे जाने से बचाया। तब यह समय व्यतीत होने पर उन्होंने कौरवों से उनका अपना राज्य वापस करने हेतु प्रार्थना किया॥१९-२२॥

पञ्चग्रामानर्द्धराज्याद्वीरा दुर्य्योधनं नृपम्। नाप्तवन्तः कुरुक्षेत्रे युद्धञ्चक्रुर्बलान्विताः॥२३॥
अक्षौहिणीभिर्दिव्याभिः सप्तभिः परिवारिताः।
एकदशभिरुद्युक्ता युक्ता दुर्य्योधनादयः॥२४॥
आसीद्युद्धं सङ्कुलञ्च देवासुररणोपमम्। भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्य्योधने बले॥२५॥
पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह। शस्त्राशस्त्रि महाघोरं दशरात्रं शराशरि॥२६॥

उन्होंने राजा दुर्योधन से मात्र पांच ग्राम देने के लिये कहा। जब यह पांच ग्राम भी पाण्डवों को नहीं मिला, तब वे सैन्य एकत्र करके कुरुक्षेत्र युद्ध हेतु तैयार हो गये। पाण्डवों के पास मात्र सात अक्षौहिणी सेना जुटी। दुर्योधन के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। इसके पश्चात् वहां महाभयंकर युद्ध होने लगा, जो देवासुर युद्ध जैसा प्रतीत हो रहा था। बहुत से वीर उसमें मरने लगे। पहले दुर्योधन के सेनापति भीष्म बने। पाण्डवों के सेनापति शिखण्डी बने। दस रात्रि पर्यन्त शस्त्रों, बाणों का घोर युद्ध होने लगा॥२३-२६॥

शिखण्ड्यर्जुनबाणैश्च भीष्मः शरशतैर्युतः।
उत्तरायणमीक्ष्याय ध्यात्वा देवं गदाधरम्॥२७॥
उक्त्वा धर्मान्बहुविधांस्तर्पयित्वा पितॄन्बहून्।
आनन्दे तु पदे लीनो विमले मुक्तकिल्बिषे॥२८॥
ततो द्रोणो ययौ योद्धुं धृष्टद्युम्नेन वीर्य्यवान्। दिनानि पञ्च तद्युद्धमासीत्परमदारुणम्॥२९॥
यत्र ते पृथिवीपाला हताः पार्षतसागरे। शोकसागरमासाद्य द्रोणोऽपि स्वर्गमाप्तवान्॥३०॥

शिखण्डी तथा अर्जुन के बाणों द्वारा भीष्म का शरीर भर गया और वे संग्राम भूमि में ही शरशय्या पर लेट गये। उन्होंने उसी हालत में युधिष्ठिर को धर्म के अनेक उपदेश दिये। जब उन्होंने देखा कि सूर्य उत्तरायण हो गये, तब वे परमपद में लीन हो गये। तब महावीर द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न के साथ संग्राम करने लगे। पांच दिन अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ। असंख्य राजा इसमें मारे गये। द्रोणाचार्य भी पुत्रशोक के कारण स्वर्ग चले गये॥२७-३०॥

ततः कर्णो ययौ योद्धुमर्जुनेन महात्मना। दिनद्वयं महायुद्धं कृत्वा पार्थास्त्रसागरे।
निमग्नः सूर्य्यलोकन्तु ततः प्राप स वीर्य्यवान्॥३१॥
ततः शल्यो ययौ योद्धुं धर्मराजेन धीमता।
दिनार्द्धेन हतः शल्यो बाणैर्ज्वलनसन्निभैः॥३२॥
दुर्य्योधनोऽथ वेगेन गदामादाय वीर्य्यवान्।
अभ्यधावत वै भीमं कालान्तकयमोपमः॥३३॥
अथ भीमेन वीरेण गदया विनिपातितः।
अश्वत्थामा गतो द्रौणिः सुप्तसैन्यं ततो निशि॥३४॥
जघान बाहुवीर्य्येण पितुर्वधमनुस्मरन्। दृष्टद्युम्नं जघानाथ द्रौपदेयांश्च वीर्य्यवान्॥३५॥
द्रौपद्यां रुद्यमानायामश्वत्थाम्नः शिरोमणिम्। ऐषिकास्त्रेण तं जित्वा जग्राहार्जुन उत्तमः॥३६॥

तदनन्तर कर्ण ने महात्मा अर्जुन के साथ युद्धार्थ गमन किया। दो दिन तक अपने बाहुबल से महायुद्ध करते हुये कर्ण अर्जुन के अस्त्ररूपी सागर में डूब कर सूर्यलोक को प्राप्त हो गया। इसके बाद शल्य धीमान् धर्मराज से युद्धरत हो गये। वे आधे दिन युद्ध करके धर्मराज के ज्वलन्त बाणों द्वारा मारे गये। तब कालान्तक यम के समान महावीर दुर्योधन ने गदा उठायी तथा भीमसेन पर प्रहारार्थ दौड़ पड़ा। भीमसेन ने भी गदा के आघात से उसे रणभूमि पर गिरा दिया, तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने रात्रि में सोई हुई पाण्डव सेना पर आक्रमण किया। उसने अपने पिता के वध को याद करते हुये अपने भुजबल द्वारा धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी के पुत्रों का नाश किया। तब द्रौपदी के रोने पर महावीर अर्जुन ने दिव्यास्त्र से अश्वत्थामा को हरा कर उसके शिर की मणि का हरण कर लिया था॥३१-३६॥

युधिष्ठिरं समाश्वास्य स्त्रीजनं शोकसङ्कुलम्।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितृनथ पितामहान्॥३७॥
आश्वासितोऽथ भीमेन राज्यञ्चैवाकरोन्महत्।
विष्णुमीजेऽश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता॥३८॥
राज्ये परीक्षितं स्थाप्य यादवानां विनाशनम्।
श्रुत्वा तु मौशले राजा जप्त्वा नामसहस्रकम्।
विष्णोः स्वर्गं जगामाथ भीमाद्यैर्भ्रातृभिर्युतः॥३९॥

तब राजा युधिष्ठिर ने शोकार्त्ता रानी द्रौपदी को सान्त्वना देकर पितृ-पितामह तथा देवताओं का तर्पण किया। तब भीष्म द्वारा आश्वस्त किये जाने पर उन्होंने राज्य-शासन कार्य हाथ में लिया। उन्होंने यथायथ दक्षिणा देते हुये अश्वमेध यज्ञ में यज्ञानुष्ठान द्वारा यज्ञेश्वर हरि की अर्चना किया। तदनन्तर उनको समाचार मिला कि मूषल से यदुवंश नष्ट हो गया। तब परीक्षित को राज्यभार देकर अपने भाईयों के साथ युधिष्ठिर विष्णु सहस्रनाम पाठ करते स्वर्ग चले गये॥३७-३९॥

वासुदेवः पुनर्बुद्धः स मोहाय सुरद्विषाम्। देवादीनां रक्षणाय अधर्महरणाय च॥४०॥
दुष्टानाञ्च वधार्थाय अवतारं करोति च। यथा धन्वन्तरिर्विंशे जातः क्षीरोदमन्थने॥४१॥
देवादीनां जीवनाय आयुर्वेदमुवाच ह। विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने।
भारतांश्चावतारांश्च श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नरः॥४२॥

॥इति गारुडे महापुराणे भारतवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४५॥

इसके पश्चात् प्रभु वासुदेव असुरों को मोहित करने, देवगण की रक्षा करने तथा अधर्म निवारणार्थ बुद्धरूप में अवतरित हो गये। तदनन्तर भगवान् संभलग्राम में विष्णुयशा ब्राह्मण के यहां कल्की नाम से अवतीर्ण हुये। उन्होंने अश्व पर बैठ कर समस्त पाषण्डी लोगों में भक्ति उत्पन्न किया। इस प्रकार वे भगवान् धर्म स्थापनार्थ और दुष्ट संहारार्थ समय-समय पर अवतार लेते हैं। बीसवें मन्वन्तर में क्षीरसागर मंथनकाल में धन्वन्तरीरूप से उन्होंने अवतीर्ण होकर आयुर्वेद कहा था। इस महाभारत प्रसंग तथा विष्णु के अवतारों को सुनने वाला स्वर्ग जाता है॥४०-४२॥

॥एक सौ उन्चासवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
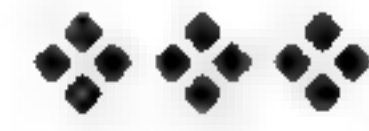
षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सर्वरोग निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

सर्वरोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तत्त्वतः। आत्रेयाद्यैर्मुनिवरैर्यथा पूर्वमुदीरितम्॥१॥
रोगःपाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुष्टमामयः।
यक्ष्मातङ्कगदाबाधाः शब्दाः पर्य्यायवाचिनः॥२॥
निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा। संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्॥३॥
निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः। निदानमाहुः पर्य्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते॥४॥
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः। लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम्॥५॥

धन्वन्तरी ने कहा—हे सुश्रुत! मैं तत्वतः सभी रोगों के निदान को कह रहा हूं। पूर्वकाल में आत्रेय आदि मुनियों ने इसे जिस तरह से कहा था, उस प्रकार कह रहा हूं। रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुष्ट, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद, बाधा यह सभी रोग शब्द का पर्यायवाची है। निदान, पूर्वरूप, रूप,

उपशम, सम्प्रति रोगविज्ञान के ये पंचभेद हैं। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान तथा कारण शब्द निदान वाचक हैं। जिससे रोग का पूर्वलक्षण ज्ञात हो, वही निदान है। जहां रोगोत्पत्ति हो गई, ऐसा दृढ़ संकेत ज्ञात होकर भी जब वातादि कोई दोष विशेषतः ज्ञात न हो सके, केवल रोग का तनिक चिह्न ही ज्ञात हो, ऐसा अव्यक्त रूप से लगे कि कुछ रोग हो सकता है, वह पूर्वरूप कहा गया है॥१-५॥

तदेव व्यक्ततां जातं रूपमित्यभिधीयते। संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः॥६॥
हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम्। औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥७॥
विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्येतिसंज्ञितः॥८॥
यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता। निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः॥९॥
संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः। सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति॥१०॥
दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना। स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यांव्याधेःप्राधान्यमादिशेत्॥११॥
हेत्वादिकात्स्न्र्यावयवैर्बलाबलविशेषणम्। नक्तं दिनर्तु भुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्॥१२॥
इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः॥१३॥

यदि यह पूर्वरूप व्यक्त हो, तब वही रूप है, यथा संस्थान, व्यञ्जन, लिंग, लक्षण, चिह्न, आकृति—ये सभी शब्द रूप वाचक हैं। हेतु वैपरीतत्य, व्याधिवैपरीत्य, हेतुव्याधि, उभयवैपरीत्य, यह कार्यकारी होता है। हेतु-व्याधि दोनों विपर्यस्त होकर विपर्यस्त अर्थकारी हो जाते हैं। औषधि, अन्न तथा आचरण से रोग की सम्यक् शान्ति का नाम है उपशम। यही सात्मा है। जिन औषधि तथा अन्न आदि के विपरीत काम को अनुपशय कहा गया है, उसी का अन्य नाम है व्याधि तथा असात्मा। प्राकृत किंवा वैकृत दोष के प्रभाव से वायु, पित्त तथा कफ दूषित होकर ऊर्ध्व-अधः अथवा तिर्यक् गति से रोग उत्पन्न करता है, वह है सम्प्राप्ति। इसका अन्य नाम है जाति तथा आगति। संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल तथा विशेष काल में यह सम्प्राप्ति विभिन्न रूपेण होती है। जैसे वातादि तीनों दोषों की न्यूनता तथा आधिक्य कारण ज्वर अष्टविध कहा गया है।

रोग का प्रकार भेद है संख्या। मिले-जुले दोषों में जिस अंशांश अर्थात् अधिकता एवं न्यूनता की कल्पना की जाती है, वह है विकल्प। वात आदि त्रिदोष की स्वतन्त्रता अथवा पराधीनता से ही व्याधि का प्राधान्य तय किया जाता है। निदानादि सभी अवयवों से ही रोग का बलाबल निर्धारित करते हैं। रात्रि, दिन, ऋतु किंवा आहार लेने के पहले अथवा बाद में किसी भी समय पीड़ा का जो आविर्भाव होता है, वही है काल निरूपण। निदानार्थ अभी इसे संक्षेप में ही कह रहा हूं। बाद में इसे विस्तृत तरीके से कहा जायेगा अर्थात् अभी मात्र निदान के लिये कहा गया है। कुपित वात-पित्त-कफ ही सभी रोगों का निदान है॥६-१३॥

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्।
अहितस्त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः॥१४॥

तिक्तोषणकषायाम्लरूक्षाप्रमितभोजनैः। धावनोदीरणनिशाजागरात्युच्चभाषणैः॥१५॥
क्रियाभियोगभीशोकचिन्ताव्यायाममैथुनैः ग्रीष्माहोरात्रभुक्तयन्ते प्रकुप्यति समीरणः॥१६॥

नाना अहितकर आचरण से वायु-पित्त-कफ का प्रकोप होता है। अहितकर आचरण तीन प्रकार के पहले कह दिये गये। तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल, रुक्ष तथा अपरिमित भोजन से, धावन, उदीरण, रात्रि जागरण, अत्यन्त जोर से बोलने, अत्यन्त मेहनत से, कार्य प्रवृत्ति से, भय, शोक, चिन्ता, अति व्यायाम-मैथुन से, ग्रीष्म में दिन अथवा रात्रि भोजन के अन्त में वायु प्रकुप्त हो जाती है॥१४-१६॥

पित्तं कट्वम्लतीक्ष्णोष्णकटुक्रोधविदाहिभिः। शरन्मध्याह्नरात्र्यर्द्धविदाहसमयेषु च॥१७॥
स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यन्दिशीतलैः। आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नादिबृंहणैः॥१८॥
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसन्तयोः। पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा वक्ष्यामि सङ्करान्॥१९॥

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, दुर्गन्धित द्रव्य किंवा गुरुपाक द्रव्य भक्षण द्वारा, क्रोध द्वारा, शरत्काल में, अर्द्धरात्रि में, मध्याह्न में, विदाह काल में पित्त प्रकुपित होता है। स्वादिष्ट, अम्ल, लवण, स्निग्ध, गुरुपाक, तरल द्रव्य तथा शीतल द्रव्य सेवन से, दीर्घकाल तक एक ही जगह बैठने से, अधिक सोने से, दिन में सोने से तथा अजीर्ण होने पर, इन सबके आतिशय्य में, वसन्त काल में पूर्वाह्न में अथवा शेष रात में भोजन से अथवा वमन आदि से श्लेष्मा कुपित होता है। अब मैं दोषसंकर कहूंगा॥१७-१९॥

मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः। संकीर्णाजीर्णविषमविरुद्धाद्यशनादिभिः॥२०॥
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः। पिण्याकमृत्यवसरपूतिशुष्ककृशामिषैः॥२१॥
दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथान्नपरिवर्त्ततः। धातोर्दुष्टात्पुरो वाताद्विग्रहावेशविप्लवात्॥२२॥
दुष्टामान्नैरतिश्लेष्मग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात्। मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानाञ्च निषेवणात्। स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिश्रोपचारतः॥२३॥
प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगविध्यनुगामिनः। रसायनं प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते॥२४॥

॥इति गारुडे महापुराणे सर्वरोगनिदानं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४६॥

सभी दोषों की मिश्रित स्थिति ही सन्निपात है। संकीर्ण, गुरुपाक, विषम, विरुद्ध प्रकृति के द्रव्य के भोजन से, विकृत मद्यपान तथा विकृत पानीय पान से, शुष्क शाक, आममूलक, पिण्याक, स्वयं मृत-दुर्गन्धित, शुष्क-कृश मत्स्यों के खाने से, हठात् खाद्य बदल देने से, ऋतु दोष से, पूर्व वायु सेवन से, सहसा शारीरिक कार्य की विपरीत स्थिति में, दूषित आमान्न भोजन से, श्लेष्मा का आवेश होने पर, जन्म नक्षत्र जनित पीड़ा से, मिथ्या व्यवहार से, पापकार्य करने से, स्त्रियों में प्रसव की विषमता से, मिथ्या उपचार से दोषसंकर होता है। प्रत्येक रोगों में रोग के अनुगामी वातादि दोषों के कुपित हो जाने से, रासायनिक सम्बन्ध प्राप्त होने के कारण देह में नाना विकार उत्पन्न होते हैं॥२०-२४॥

॥एक सौ छियालीसवां अध्याय समाप्त॥

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ज्वरनिदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

वक्ष्ये ज्वरनिदानं हि सर्वज्वरविबुद्धये। ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युराजोऽशनोऽन्तकः।
क्रुद्धदक्षाध्वरध्वंसिरुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः॥१॥
तत्सन्तापो मोहमयः सन्तापात्मापचारजः। विविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्त्तते॥२॥
पाकलो गजेष्वभितापो वाजिष्वलर्कः कुक्कुरेषु।
इन्द्रमदो जलदेष्वप्सु नीलिका ज्योतिरोषधीषु भूम्यामूषरो नाम॥३॥
हल्लासश्छर्दनं कासः स्तम्भः शैत्यं त्वगादिषु।
अङ्गेषु च समुद्भूताः पीडकाश्च कफोद्भवे॥४॥
काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा। निदानोक्तानुपशयो विपरीतो यथापि वा॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—अब सर्वविध ज्वर को ज्ञात करने हेतु ज्वर निदान कहता हूं। ज्वर रोगपति, पाप्मा, मृत्युराज, अशन, अन्तक, दक्षाध्वरध्वंसि, रुद्रनिःश्वास से उद्भूत, सन्ताप, मोहमय, सन्तापात्मा, अपचारज, आदि नाना नाम वाला होता है। क्रूर ज्वर नाना विषों को शरीर में प्रविष्ट कराता है। यह हस्तिशरीर में पाकल नाम से, घोड़े की देह में अभिताप नाम से, कुत्ते के शरीर में अलर्क नाम से, मेघ में इन्द्रमद के नाम से, जल में नीलिका नाम से, औषधियों में ज्योति नाम से तथा भूमि में ऊषर नाम से प्रसिद्ध है। कफ संभूत ज्वर में हिक्का, वमन, कास, उत्पत्ति-वृद्धि-विनाश होता है। उसी प्रकार निदानोक्त उपशय अथवा उपशयाभाव भी यथासमय प्रवृत्त होता है॥१-५॥

अरुचिश्चाविपाकश्च स्तम्भमालस्यमेव च। हृद्दाश्च विपाकश्च तन्द्रा चालस्यमेव च।
वस्तिविमर्दावनया दोषाणामप्रवर्त्तनम्॥६॥
लालाप्रसेको हल्लासः क्षुन्नाशो रसदं मुखम्। स्वच्छमुष्णगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुमूत्रता।
न विजीर्णं न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम्॥७॥

अरुचि, अपरिपाक, स्तब्धता, आलस्य, हृद्दाह, अवस्था परिवर्तन, तन्द्रा, आलस्य, वस्ति विमर्द, वातादि दोष की अप्रवृत्ति, लाल प्रसेक, हिक्का, क्षुधा समाप्त होना, मुख में लार आना, शरीर में उष्णता, देह में भारीपन, बहुत मूत्र होना, यह ज्वर लक्षण हैं॥६-७॥

क्षुत्क्षामता लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम्। दोषप्रवृत्तिरष्टाहान्निरामज्वरलक्षणम्।
यथास्वलिङ्गं संसर्गे ज्वरसंसर्गजोऽपि वा॥८॥
शिरोर्त्तिमूर्च्छावमिदेहदाहकण्ड्वास्यशोषावपि पर्वभेदाः।
उन्निद्रता सम्भ्रमरोमहर्षा जृम्भातिवाक्त्वं पवनात्सपित्तात्॥९॥

तापहान्यरुचिपर्वशिरोक्षिक्षीणश्वासबहुकासविवर्णाः ।
शीतजाड्यतिमिरभ्रमितन्द्राश्लेष्मवातजनितज्वरलिङ्गम्॥१०॥

क्षुत् क्षामता, अंगों की लघुता, ज्वर की मृदुता, आठवें दिन के उपरान्त दोष प्रवृत्ति, ये निराम ज्वर के लक्षण हैं। दोषों का पृथक्-पृथक् जो-जो लक्षण वर्णित है, मिश्र ज्वर में वही-वही लक्षण देखने में आते हैं। जैसे शिर में दर्द, मूर्च्छा, वमन, देह में जलन, कंठ-मुख का शोष, सन्धियों में पीड़ा, निद्रा न आना, त्रास, रोमांच, जंभाई, प्रलाप, ये वात-पित्तज ज्वर के लक्षण व्यक्त होते हैं। देह में ताप की कमी, अरुचि, सन्धि पीड़ा, शिर पीड़ा, श्वास क्षीणता, खांसी, मलरोध तथा विवर्णता, यह वात श्लेष्मज ज्वर लक्षण हैं॥८-१०॥

शीतस्तम्भवेददाहाव्यवस्थास्तृष्णा कासः श्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः।
मोहस्तन्द्रा लिप्ततिक्तास्यता च ज्ञेयं रूपं श्लेष्मपित्तज्वरस्य॥११॥
सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः। तद्वच्छीतं तिमिरनिद्रा दिवा जागरणं निशि॥१२॥
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदो हि नैव वा। गीतनर्त्तनहास्यादिः प्रकृतेहाप्रवर्त्तनम्॥१३॥
साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपक्ष्मणी।
अक्षिणी पिण्डिकापार्श्वशिरःपर्वास्थिरुग्भ्रमः॥१४॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ महाशीतो हि नैव वा।
परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुस्त्रस्ताङ्गसन्धिता॥१५॥
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य लोठनं शिरसोऽतितृट्।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम्॥१६॥
हृद्व्यथा मलसंसर्गः प्रवृत्तिर्वाल्पशोऽति वा।
स्निग्धास्यता बलभ्रंशः स्वरसादः प्रलापितः॥१७॥
दोषपाकश्चिरं तन्द्रा प्रततं कण्ठकूजनम्। सन्निपातमभिन्यासं तं ब्रूयाच्च हतौजसम्॥१८॥
वायुना कण्ठरुद्धेन पित्तमन्तःसुपीडितम्।
व्यवायित्वाच्च सौख्याच्च बहिर्मार्गं प्रपद्यते।
तेन हारिद्रनेत्रत्वं सन्निपातोद्भवे ज्वरे॥१९॥

अनियत शीत, स्तब्ध स्थिति, पसीना, दाह, तृष्णा, खांसी, श्लेष्मा, पित्त वमन, मोह तन्द्रा, मुख में लिप्तता तथा तिक्तता—पित्त श्लेष्म ज्वर लक्षण हैं। सन्निपातज ज्वर में ये सभी ऊपर कहे लक्षण व्यक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त एक-एक लहमें में शीत, दाह, आंख के आगे अन्धेरा छाना, दिन में निद्रा, रात में नींद न आना अथवा हमेशा नींद आना अथवा एक बार भी नींद न आना, अतिशय पसीना अथवा तनिक भी पसीना न आना, कभी गाना, कभी हंसना तो कभी नाचना, स्वाभाविक कार्य से अरुचि तथा दोनों आंखें अश्रुपूर्ण होना, आंखें लाल तथा कीचड़ युक्त रहना, दोनों पलकें बराबर कांपना। यह लक्षण

हैं। साथ ही पिण्डिका, बगलों में, जोड़ों में, शिर की अस्थि में वेदना, भ्रम, कानों में आवाज गूंजना, पीड़ा, अत्यन्त शीत किंवा शीत न लगना, जीभ काली होना (कोयले जैसी), गाय की जीभ जैसी खुरदुरी चमड़ी होना, सन्धिस्थान भारी तथा ढीला होना, रक्तपित्त युक्त थूक, मस्तक को लोट-पोट करना, एक से अधिक बार मल त्याग होना अथवा बार-बार तनिक-तनिक मल त्यागना, मुख की स्निग्धता, बल कम होना, स्वरभंग, प्रलाप, दोषों का पाक, चिरकालीन तन्द्रा, कण्ठ से अव्यक्त शब्द होना, ऐसे ज्वर को सान्निपातिक अभिन्यास कहा गया है। इसमें शरीर का बलवीर्य समाप्त-सा हो जाता है। इस ज्वर में वायु तथा कण्ठ अवरुद्ध होता है। आन्तरिक पित्त पीड़ा करने लगता है। इसमें व्यवायी होने पर पित्त बाहर की ओर प्रवृत्त होता है, जिससे दोनों नेत्र हल्दी के रंग के हो जाते हैं॥११-१९॥

दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा॥२०॥
अन्यत्र सन्निपातोत्थं यत्र पित्तं पृथक् स्थितम्।
त्वचि कोष्ठे च वा दाहं विदधाति पुरोऽनु वा॥२१॥
तद्वद्वातकफे शीतं दाहादिर्दुस्तरस्तयोः। शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्यन्दितशोषिते॥२२॥
पित्ते शान्तेऽथ वै मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते।
दाहादौ पुनरन्तेषु तन्द्रालस्ये वमिः क्रमात्॥२३॥
आगन्तुरभिघाताभिषङ्गशापाभिचारतः। चतुर्धा तु कृतः स्वेदो दाहाद्यैरभिघातजः॥२४॥
श्रमाच्च तस्मिन्पवनः प्रायो रक्तं प्रदूषयन्।
सव्यथाशोकवैवर्ण्यं सरुजं कुरुते ज्वरम्॥२५॥

जब वायु आदि त्रिदोष बढ़ते हैं और उदराग्नि का नाश हो जाता है और उपरोक्त सभी लक्षण पूर्ण लगें, तब ज्वर असाध्य जाने। यदि ऐसा न हो तब अत्यन्त कठिनाई से साध्य कहते हैं। अन्य तरह के सान्निपातिक ज्वर में अलग से पित्त कोप होने पर पहले अथवा बाद में चर्म तथा कोष्ठ में दाह होता है। इसी तरह जब वायु एवं कफ प्रकुपित हों तब शीत एवं दाह होता है, जो अत्यन्त दुःसाध्य स्थिति है। पित्त द्वारा शीत आदि होने पर कफ स्रावित तथा शोषित होगा। पित्त ज्वर निवृत्त होने पर मूर्च्छा, मद तथा तृष्णा होगी। पित्तजन्य दाह के आदि तथा अन्त में एक के बाद एक करके तन्द्रा, आलस्य तथा वमन होगा। अत्यन्तघात, अभिषङ्ग, शाप तथा अभिचार के कारण जो ज्वर उत्पन्न होता है, वह है आगन्तुक ज्वर। पसीने तथा दाहादि उत्पन्न ज्वर अभिघातज कहा जाता है। अधिक श्रम करने से वायु प्रकोप होने पर वह रक्तदूषण होकर ज्वर उत्पन्न होता है। इस ज्वर में व्यथा, शोक, शरीर का बदरंग होना तथा शरीर भंग होता है॥२०-२५॥

ग्रहावेशौषधिविषक्रोधभीशोककामजः। अभिषङ्गग्रहोऽप्यस्मिन्नकस्माद्धासरोदने॥२६॥
ओषधिगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः।
विषान्मूर्च्छातिसारश्च श्यावता दाहकृंद्भ्रमः॥२७॥

क्रोधात्कम्पः शिरोरुक् च प्रलापो भयशोकजे।
कामाद्भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीर्निद्राधीर्धृतिक्षयः॥२८॥
ग्रहादौ सन्निपातस्य रूपादौ मरुतस्तयोः।
कोपात्कोपेऽपि पित्तस्य यौ तु शापाभिचारजौ॥२९॥

सन्निपातज्वरौ घोरौ तावसह्यतमौ मतौ। तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हूयमानश्च तप्यते॥३०॥

ग्रहों का आवेश, औषधि, विष प्रयोग, क्रोध, भय, शोक एवं काम जनित ज्वर को अभिषङ्ग ज्वर कहते हैं। इसमें रोगी अकस्मात् हंसता है, कभी रुदन करता है। औषधिगन्ध जनित स्वर में मूर्च्छा, शिर:पीड़ा, वमन तथा क्षय के लक्षण आते हैं। विषजनित ज्वर में मूर्च्छा, अतिसार, शरीर का पिंगल वर्ण होना, दाह तथा चक्कर के चिह्न उत्पन्न होते हैं। क्रोध जनित ज्वर में शिर की पीड़ा, भय होता है। शोकजनित ज्वर में प्रलाप होता है। कामवासना से उत्पन्न ज्वर में अरुचि, दाह, लज्जा, निद्रा, बुद्धिक्षय, धैर्य नाश के संकेत प्रकट होते हैं। ग्रह के आवेश के कारण ज्वर तथा सन्निपातज ज्वर में वायु प्रकुपित हो जाती है। इसलिये पित्तप्रकोप भी हो जाता है। शाप तथा अभिशाप के कारण हुआ सन्निपात ज्वर अत्यन्त भयानक होता है। ये दोनों ज्वर असहनीय होते हैं। अभिचारजनित ज्वर में अभिचार नाशक मन्त्र से होम करे तथा होमाग्नि तापे॥२६-३०॥

पर्वञ्चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटदिग्भ्रमैः। सदाहमूर्च्छाग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्द्धते ज्वरः॥३१॥

इति ज्वरोऽष्टधाः दृष्टः समासाद्द्विविधस्तु सः।
शारीरो मानसः सौम्यस्तीक्ष्णोऽन्तर्बहिराश्रयः॥३२॥
प्राकृतो वैकृतः साध्योऽसाध्यः सामो निरामकः।
पूर्वं शरीरे शारीरे तापो मनसि मानसे॥३३॥
पवनैर्योगवाहित्वाच्छीत्तं श्लेष्मयुते भवेत्।
दाहः पित्तयुते मिश्रं मिश्रेऽन्तः संश्रये पुनः॥३४॥
ज्वरेऽधिकं विकाराः स्युरन्तःक्षोभो मलग्रहः।
बहिरेव बहिर्वेगे तापोऽपि च स साधितः॥३५॥

इन दोनों ज्वरों की पूर्व वाली स्थिति में रोगी अपने शरीर को इधर-उधर संचालित करता है। इसके पश्चात् विस्फोट तथा दिक्भ्रम होता है। रोगी दाह पीड़ित एवं मूर्च्छित हो जाता है। नित्य ज्वर में वृद्धि होती जाती है। संक्षेप में एवंविध आठ प्रकार के ज्वर देखे जाते हैं, तथापि इन आठ ज्वरों के और भी अनेक भेद देखने में आते हैं। शरीर, मानस, सौम्य, तीक्ष्ण, अन्दर के, बाहर के, प्राकृत, वैकृत, साध्य, असाध्य, साम, निराम विविध ज्वर होते हैं। शारीर ज्वर में शरीर में तथा मानस ज्वर में पहले मन में सन्ताप उपस्थित होता है। श्लैष्मिक ज्वर में वायु का योग होने पर शीत एवं पित्त का जब योग होता है, तब दाह होने लगता है। सान्निपातिक ज्वर में मिले-जुले लक्षण व्यक्त होते हैं। तब अन्त: का क्षोभ और मलप्रवृत्ति आदि विकार उदित होते हैं। बहिर्वेग होने पर बाह्य ताप होता है॥३१-३५॥

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्।
वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्रायश्च प्राकृतोऽनिलात्॥३६॥
वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितं ज्वरम्।
कुर्य्याच्च पित्तं शरदि तस्य चानुबलः कफः॥३७॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम्। कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु॥३८॥

वर्षा में वातिक, शरत्काल में पैत्तिक तथा वसन्त में श्लैष्मिक ज्वर होने से वह प्राकृत ज्वर कहा गया है। वैकृत ज्वर दुःसाध्य होते हैं। प्राकृत ज्वर अधिकतर वायु की प्रबलता से होते हैं। वर्षाकाल में वायु दुष्ट होकर पित्त-श्लेष्म ज्वरोत्पादन करता है। शरत्काल में पित्त कुपित होकर ज्वर उदित करता है, लेकिन तब कफ उसका साथी रहता है। इस ज्वर का हेतु है पित्त-श्लेष्म प्रकृति। इस ज्वर में लंघन से कोई भय न करे। जब वसन्त में कफ कुपित हो जाता है, तब ज्वर की उत्पत्ति होती है। वायु तथा पित्त उसका अनुबल हो जाता है॥३६-३८॥

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः। सर्वथा विकृतज्ञाने प्रागसाध्य उदाहृतः॥३९॥
ज्वरोपद्रवतीक्ष्णत्वमन्दाग्निर्बहुमूत्रता। न प्रवृत्तिर्न विजीर्णा न क्षुत्सामज्वराकृतिः॥४०॥

बली व्यक्ति का अल्प दोषोत्पन्न तथा उपद्रवरहित ज्वर सुसाध्य होता है। ज्वर में सर्वविध विकार होने पर मुनिगण उसे असाध्य कहते हैं। नाना उपद्रव, तीक्ष्णता, अग्निमन्दता, बहुमूत्र, आहार में रुचि न होना, अजीर्ण तथा भूख न लगना ये आम ज्वर लक्षण होते हैं॥३९-४०॥

ज्वरवेगोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम्॥४१॥
जीर्णतामविपर्य्यासात्सप्तरात्रञ्च लङ्घनम्। ज्वरः पञ्चविधः प्रोक्तो मलकालबलाबलात्॥४२॥
प्रायशः सन्निपातेन भूयसामुपदिश्यते। सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ॥४३॥
धातुमूत्रशकृद्वाहिस्त्रोतसां व्यापिनो मलाः।
तापयन्तस्तनुं सर्वां तुल्यदृष्ट्यादिवर्द्धिताः॥४४॥
बलिनो गुरवस्तस्याविशेषेण रसाः स्मृताः।
सततं निष्प्रतिद्वन्द्वाः ज्वरं कुर्य्युः सुदुःसहम्॥४५॥

ज्वर का अतीव वेग, पिपासा, प्रलाप, श्वास, भ्रमि, मलप्रवृत्ति तथा ऐसा भाव कि उलटी होने वाली है, ये पच्यमान ज्वर लक्षण हैं। इसमें जीर्णता, अपक्वता में वैपरीत्य होने पर सात रात्रि लंघन करायें। मल, काल तथा बलाबल विशेष के कारण सान्निपातिक ज्वर ५ प्रकार का कहा गया है। जैसे सन्तत्य, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक तथा चतुर्थक। ज्वर के समय वायु, पित्त तथा कफ, ये तीन धातु ही मूत्र-शकृद्वाही श्रोतोव्यापी तुल्य दोष से दूषित होकर समस्त शरीर को सन्तापित करते हैं। तत्पश्चात् रस विकृत, गुरु, बली तथा अप्रतिहत होकर ज्वर उत्पन्न करता है। यह ज्वर सदा भोग करना पड़ता ही है॥४१-४५॥

मलं ज्वरोष्णधातून् वा स शीघ्रं क्षपयेत्ततः।
सर्वाकारं रसादीनां शुद्ध्या शुद्ध्यापि वा क्रमात्॥४६॥
वातपित्तकफैः सप्तदशद्वादशवासरात्।
प्रायोऽनुयाति मर्य्यादां मोक्षाय च वधाय च॥४७॥
इत्यग्निवेशस्य मतं हारीतस्य पुनः स्मृतिः।
द्विगुणा सप्तमी या च नवम्येकादशी तथा।
एषा त्रिदोषमर्य्यादा मोक्षाय च वधाय च॥४८॥
शुद्ध्यशुद्ध्या ज्वरः कालं दीर्घमप्यत्र वर्त्तते।
कृशानां व्याधियुक्तानां मिथ्याहारादिसेविनाम्॥४९॥
अल्पोऽपि दोषो दुष्ट्यादेर्लब्धान्यतमतो बलम्।
सप्रत्यनीको विषमं यस्माद् वृद्धिक्षयान्वितः॥५०॥

त्रिदोषज ज्वर में १७ दिन अथवा १२ दिन में रसादि समस्त धातु पूर्ण शुद्ध होती है तथा रोगमुक्ति हो जाती है। अन्यथा सर्व प्रकार से अशुद्ध धातु रोगी का नाश करेगी। इस पीड़ा की सीमा यहीं तक है, यह अग्निवेश का मत है। हारीत का मत है कि सात दिन में, नौ दिन में, ग्यारह दिन में, १४ दिन में, १८ दिन में अथवा २२ दिन में ज्वर रोगी को छोड़ देता है। अन्यथा यदि नहीं छोड़ता, तब रोगी का वध कर देता है। धातु की शुद्धि तथा अशुद्धि के तारतम्य के अनुसार कहीं दीर्घकाल तक, कहीं अल्पकाल तक ज्वर भोग होता है। जो कृश, रोगी अथवा अपथ्य सेवी हैं, उनका अल्प दोष भी अन्य दोषों से बली होकर विषम विरुद्ध हो जाता है। वह बढ़ कर क्षय का कारण बन जाता है॥४६-५०॥

सविक्षेपो ज्वरं कुर्य्याद्विषमक्षयवृद्धिभाक्।
दोषः प्रवर्त्तते तेषां स्वे काले ज्वरयन् बली॥५१॥
निवर्त्तते पुनश्चैव प्रत्यनीकबलाबलः। क्षीणदोषो ज्वरः सूक्ष्मो रसादिष्वेव लीयते॥५२॥
लीनत्वात्कार्श्यवैवर्ण्यजाड्यादीनां दधाति सः।
आसन्नविकृतास्यत्वाच्छ्रोतसां रसवाहिनाम्।
आशु सर्वस्य वपुषो व्याप्तिदोषो न जायते॥५३॥

वह दोष विषम क्षय बढ़ाता हुआ अत्यन्त अप्रतिविधेय ज्वर का कारण हो जाता है। तदनन्तर यही दोष और भी ताकतवर होकर रोगी को जीर्ण करता है। लेकिन यदि औषधि द्वारा यह दोष बलहीन कर दिया जाये, तब दोष का नाश होता है। दोष जब क्षयीभूत होता है, तब अल्प ज्वर जो बचा रह जाता है, वह भी रसादि में लय हो जाता है। तब शरीर की दुर्बलता, बदरंग वर्ण, जड़ता आदि भी नहीं रह जाती। तब रसवाही स्रोतों की विपरीत गति समाप्त होकर सारे शरीर के दोष भी तत्काल समाप्त हो जाते हैं॥५१-५३॥

सन्ततः सततस्तेन विपरीतो विपर्य्ययात्।
विषमो विषमारम्भः क्षपाकालेन सङ्गवान्॥५४॥
दोषो रक्ताश्रयः प्रायः करोति सन्ततं ज्वरम्।
अहोरात्रस्य सन्धौ स्यात् सकृदन्येद्युराश्रितः॥५५॥
तस्मिन्मांसबहा नाडी मेदोनाडी तृतीयके।
ग्राही पित्तानिलान्मूर्ध्नस्त्रिकस्य कफपित्ततः॥५६॥
सपृष्ठस्यानिलकफात्स चैकाहान्तरः स्मृतः।
चतुर्थको मलैर्मेदोमज्जास्थ्यभ्यन्तरे स्थितः॥५७॥
मज्जास्थ एव ह्यपरः प्रभावमनुदर्शयेत्।
द्विधा कफोणिजङ्घाभ्यां सपूर्वशिरसानिलात्॥५८॥
अस्थिमज्जोरुपगते चतुर्थकविपर्य्ययः। त्रिधा त्र्यहं ज्वरयति दिनमेकन्तु मुञ्चति॥५९॥

सन्तत ज्वर का निरन्तर भोग रहता है। लेकिन जिस ज्वर का निरन्तर भोग नहीं रहता, वही विषम ज्वर है। विषम ज्वर का आक्रमण रात में भयानक रूप से होता है। रक्त का आश्रय लिये दोष प्रायः सन्तत ज्वर को उत्पन्न करते हैं। अन्येद्यु ज्वर दिन-रात की सन्धि में होता है। तृतीयक ज़्वर होने पर मांसवहा नाड़ी तथा मेदोवहा नाड़ी दोषाश्रित हो जाती है। यदि इस ज्वर में वायु-कफ भी कुपित हो जाये, तब तो समस्त पृष्ठ में दोष व्यक्त होने लगता है। एकाहान्तरित ज्वर भी इसी प्रकार होता है। चतुर्थक ज्वर में मल, मेद, मज्जा तथा अस्थि के अन्यतम स्थान दोषाश्रित हो जाते हैं। एक प्रकार के मज्जा स्थित ज्वर में वायु कुपित होकर द्विधा व्यक्त होता है। इसका प्रथम रूप कफोणि तथा जंघा का आश्रय लेता है तथा द्वितीय रूप कफोणि तथा मस्तक का आश्रय लेता है। यह ज्वर जब अस्थि एवं मज्जा, दोनों में हो, तब वही है चतुर्थक ज्वर। यह ज्वर रोगी पर तीन दिन में तीन बार हमला करता है। तब एक दिन हेतु रोगी को छोड़ देता है॥५४-५९॥

बलाबलेन दोषाणामभ्यचेष्टादिजन्मनाम्। पक्वानामविनिर्यासात्सप्तरात्रञ्च लङ्घयेत्॥६०॥

रोगी के अहित के लिये दोष के बलाबल के कारण इस ज़्वर में सभी दोष परिपक्व होकर नहीं निकलते। अतः सात दिन लंघन कराये॥६०॥

ज्वरः स्यान्मनसस्तद्वत्कर्मणश्च तदा तदा। गम्भीरधातुचारित्वात्सन्निपातेन सम्भवात्।
तुल्योच्छ्रयाच्च दोषाणां दुश्चिकित्स्यश्चतुर्थकः॥६१॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मज्वरेष्वेषु दूराद्दूरतरेषु च। दोषो रक्तादिमार्गेषु शनैरल्पश्चिरेण यत्॥६२॥
याति देहञ्च नाशेषं सन्तापादीन्करोत्यतः।
क्रमो यत्नेन विच्छिन्नः सतापो लक्ष्यते ज्वरः।
विषमो विषमारम्भः क्षपाकालानुसारवान्॥६३॥

यथोत्तरं मन्दगतिर्मन्दशक्तिर्यथायथम्। कालेनाप्नोति सदृशान्सरसादींस्तथा तथा॥६४॥
दोषो ज्वरयति क्रुद्धश्चिराच्चिरतरेण च।
भूमौ स्थितं जलैः सिक्तं कालं नैव प्रतीक्ष्यते।
अङ्कुराय यथा बीजं दोषबीजं भवेत्तथा॥६५॥

चतुर्थक ज्वर में मनः तथा कर्म ज्वरग्रस्त हो जाते हैं। इसमें गम्भीर धातुचारिता एवं सन्निपात संभव के कारण दोषों की समानरूपी प्रबलता की वजह से यह चतुर्थक ज्वर दुश्चिकित्स हो जाता है। इसमें सूक्ष्म रक्तादि का जो संचार मार्ग है तथा जो दूरस्थ रक्तादि के संचार मार्ग हैं, उनमें अल्प दोष उत्पन्न होने लगता है। इसमें देह शुष्क नहीं होता। शरीर में सन्ताप होता है। यदि इसमें यत्नतः चिकित्सा न हो, तब रात्रिकालीन सन्ताप के साथ विषम ज्वर विषम लक्षणों के साथ हो जाता है। इसमें जैसे-जैसे रोगी जिस मात्रा में हीनबल होता है, उसी मात्रा में ज्वर भी क्रमशः रस आदि धातुओं का आश्रय लेता है। तदनन्तर कुछ समय में यह दोष कुपित होकर रोगी को जीर्ण कर देता है। जैसे पृथिवी में बीज बोकर सिंचाई करने पर उसके अंकुर होने लगते हैं, दोष बीज भी उसी प्रकार अंकुरित (वर्द्धित) होते हैं॥६१-६५॥

वेगं कृत्वा विषं यद्वदाशये नीयते बलम्। कुप्यत्याप्तबलं भूयः कालदोषविषं तथा॥६६॥
एवं ज्वराः प्रवर्त्तन्ते विषमाः सततादयः।
उत्क्लेशो गौरवं दैन्यं भङ्गोऽङ्गानां विजृम्भणम्।
अरोचको वमिःश्वासः सर्वस्मिन्रसगे ज्वरे॥६७॥
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णा रूक्षोष्णः पिडकोद्गमः दाहरागभ्रममदप्रलापो रक्तसंश्रिते॥६८॥
तृडग्लानिस्पृष्टवर्चस्कमन्तर्दाहो भ्रमस्तमः।
दौर्गन्ध्यं गात्रविक्षेपो मांसस्थे मेदसि स्थिते।
स्वेदोऽतितृष्णा वमनं दौर्गन्ध्यं वा सहिष्णुता॥६९॥
प्रलापो ग्लानिररुचिरस्थिगे त्वस्थिभेदनम्॥७०॥

जिस प्रकार से विष तेजी से पक्वाशय में पहुंच कर तब बली होता है, यथाकाल कुपित होता है, दोषरूपी विष भी ऐसे कुपित होता है। सन्तत आदि सभी ज्वर में यदि रोगी द्वारा उपेक्षा की जाती है तथा चिकित्सा नहीं की जाती, तब ये सभी विषम ज्वर का रूप लेते हैं। उत्क्लेश, शरीर में भारीपन, दैन्य, अंगभंग, जंभाई, अरुचि, वमन, श्वास इत्यादि लक्षण जो रसगत होते हैं, वही सभी ज्वर व्यक्त करने लगते हैं। जब ज्वर रक्त का आश्रय लेता है, तब रक्त भरा थूक, तृष्णा, रुक्ष तथा उष्णा, पीड़का, दाह, शरीर में रक्तिमा, भ्रम, मत्तता, प्रलापरूपी उपद्रव देह में होते हैं। जब ज्वर अस्थिगत होता है, तब पसीना, अत्यन्त प्यास, वमन, देह में दुर्गन्ध, असहिष्णुता, प्रलाप, ग्लानि, अरुचि, अग्निभेद जैसे उपद्रव देह में व्यक्त होते हैं॥६६-७०॥

दोषप्रवृत्तिरुद्बोधः श्वासाङ्गक्षेपकूजनम्।
अन्तर्दाहो बहिः शैत्यं श्वासो हिक्का हि मज्जगे॥७१॥

तमसो दर्शनं मर्मच्छेदनं स्तब्धमेढ्रता। शुक्रप्रवृत्तौ मृत्युस्तु जायते शुक्रसंश्रये॥७२॥
उत्तरोत्तरदुःसाध्याः पञ्चान्ये तु विपर्य्यये।
प्रलिम्पन्निव गात्राणि श्लेष्मणा गौरवेण च।
मन्दज्वरप्रलापस्तु सशीतः स्यात्प्रलेपकः॥७३॥
नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शीतकृच्छ्रेण गच्छति। स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो भवेदङ्गबलाशकः॥७४॥
हरिद्राभेदवर्णाभस्तत्तल्लेपं प्रमेहति। स वै हारिद्रको नाम ज्वरभेदोऽन्तकः स्मृतः॥७५॥

जब ज्वर मज्जा तक जा पहुंचता है, तब ऊर्ध्व-अधः दोष प्रवृत्ति, श्वास, अंगविक्षेप, अव्यक्त ध्वनि, अन्तर्दाह, बहिःशैत्य, श्वास, हिक्का प्रभृति उपद्रव व्यक्त होते हैं। जब ज्वर शुक्रगत हो जाता है, तब अन्धकार दर्शन, मर्मभेद, स्तब्धमेढ्रता, शुक्रप्रवृत्ति तथा मृत्युरूपी दोष उत्पन्न होते हैं। ये ज्वर पांच प्रकार के हैं जो पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा तथा चौथे से पांचवां उत्तरोत्तर दुःसाध्य है। ये हैं १. रसगत, २. रक्तगत, ३. मांसगत, ४. मेदगत, ५. अस्थिगत। मज्जागत छठा तथा सातवां है शुक्रगत। ये दोनों तो पूर्ण असाध्य हैं। प्रलेपक ज्वर जब होता है, तब रोगी को लगता है कि भारीपन तथा श्लेष्मा का लेप पूरे शरीर में व्याप्त हो गया। इसमें ज्वरकोप तो कम होता है, लेकिन शीत अधिक लगती है। अंगवलासक ज्वर सदा मन्द भाव से होता है। इसमें रुक्षता, शीत, अंगों की स्तब्धता तथा श्लेष्मा की अधिकता होती है। जिस ज्वर में रोगी का शरीर पीला पड़ जाता है तथा मूत्र भी पीला होता है, वही हारिद्र ज्वर है, जो यमराज जैसा होता है॥७१-७५॥

कफवातौ समौ यत्र हीनपित्तस्य देहिनः।
तीक्ष्णोऽथवा दिवा मन्दो जायते रात्रिजो ज्वरः॥७६॥
दिवाकरार्पितबले व्यायामाच्च विशोषिते।
शरीरे नियतं वाताज्ज्वरः स्यात्पौर्वरात्रिकः॥७७॥
आमाशये यदात्मस्थे श्लेष्मपित्ते ह्यधः स्थिते।
तदर्द्धं शीतलं देहे अर्द्धं चोष्णं प्रजायते॥७८॥
काये पित्तं यदा न्यस्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः।
उष्णत्वं तेन देहस्य शीतत्वं करपादयोः॥७९॥
रसरक्ताश्रयः साध्यो मांसमेदोगतश्च यः। अस्थिमज्जागतः कृच्छ्रस्तैस्तैः स्वाङ्गैर्हतप्रभः॥८०॥
विसंज्ञो ज्वरवेगार्त्तः सक्रोध इव वीक्ष्यते। सदोषमुष्णञ्च सदा शकृन्मुञ्चति वेगवत्॥८१॥
देहो लघुर्व्यपगक्लमममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्।
स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि॥८२॥

॥इति गारुडे महापुराणे ज्वरनिदानं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४७॥

वातिक ज्वर में रोगी का कफ तथा वायु समान रहता है तथा पित्त मन्द रहता है। इस ज्वर का वेग दिन में मन्द तथा रात में प्रबल होता है। व्यायाम (मेहनत) के कारण दिवाकर के बल ग्रहण से रोगी शुष्क होकर वात की अधिकता से ग्रस्त होता है। उसके शरीर में सदा ज्वर बना रहता है। यह पौर्वरात्रिक ज्वर है। इस ज्वर में आमाशय स्वस्थानस्थ तथा पित्त अध:स्थित हो जाता है। इसमें तब रोगी का आधा शरीर शीतल तथा आधा उष्ण रहता है। ज्वर के समय रोगी के शरीर का ऊर्ध्वभाग पित्त से व्याप्त होता है तथा श्लेष्मा अध:भाग में स्थित रहता है। अत: उसका देह उष्ण तथा हाथ-पैर ठंडे बने रहते हैं। रस-रक्त पर आश्रित तथा मांस-मेदगत ज्वर साध्य होता है। अस्थि-मज्जागत ज्वर कठिनाई से ठीक होता है। ज्वर जिस-जिस अंग की अस्थि तथा मज्जा का आश्रय लेता है, उसकी प्रभा मलिन हो जाती है। अस्थि-मज्जागत जो ज्वर है, वह रोगी को संज्ञाहीन, ज्वररोगार्त्त एवं सक्रोध बनाता है। रोगी दोषयुक्त हो उष्ण मल त्याग करता है। ज्वर खत्म होने पर शरीर की लघुता, क्लेश शान्ति, मोह-तापादि से छुटकारा, इन्द्रियों की प्रसन्नता, व्यथा नाश, पसीना, भूख, मन का स्वास्थ्य, अन्न की इच्छा, मस्तक में कुछ खुजलाहट आदि लक्षण उदित होते हैं॥७६-८२॥

॥एक सौ सैंतालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
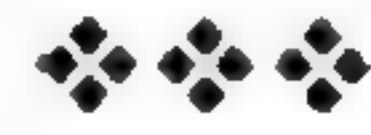
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रक्तपित्त निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

अथातो रक्तपित्तस्य निदानं प्रवदाम्यहम्। भृशोष्णातिक्तकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः॥१॥
कोद्रवोद्दालकैश्चान्यैस्तदुक्तैरतिसेवितैः। कुपितं पैत्तिकैः पित्तं द्रवं रक्तञ्च मूर्च्छति॥२॥
तैर्मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुवंस्तनुम्। पित्तरक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि॥३॥
गन्धवर्णानुवृत्तेषु रक्तेन व्यपदिश्यते। प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत्॥४॥
शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः।
छर्दितश्छर्दिर्बिभत्स्यं कासः श्वासो भ्रमः क्लमः॥५॥
लोहितो न हितो मत्स्यगन्धास्यत्वञ्च विज्वरे। रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु॥६॥
नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम्। स्वप्ने उन्मादधर्मित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति॥७॥

धन्वन्तरि ने कहा—अब रक्तपित्त निदान कहता हूं। अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु, अम्ल, लवण, गुरुपाक द्रव्य, कोद्रव, उद्दालक आदि द्रव्य जो प्रचुर मात्रा में खाता है, उसका पित्त इस द्रव्य से प्रकुपित

हो जाता है। इस पित्तरस से मिलित रक्त दूषित होता है। तदनन्तर यह रस तथा पित्त तुल्यवत् होकर शरीर भर में व्याप्त होता है। तत्पश्चात् इस पित्त मिले रक्त की विकृति के मिलने से तथा दोषों के कारण और गन्ध एवं वर्ण की एकरूपता होने के कारण यही पित्त ही रक्त कहलाता है। रक्ताकार परिणत पित्त रक्ताशय प्लीहा एवं यकृत् से उत्पन्न होता है। यह रक्तपित्त रोग पैदा होने के पहले मस्तक का भारीपन, अरुचि, शीतल द्रव्य पानार्थ इच्छा, धूमदर्शन, मुख में अम्ल का स्वाद रहना, वमन की इच्छा होती रहना, वमन, वैमत्स्य, कास, श्वास, भ्रान्ति, क्लान्ति, शरीर की रक्तवर्णता, मुख से मछली की गन्ध तथा रक्तवर्णता, ज्वर भाव, नेत्रादि में लालिमा, हल्दी का वर्ण हो जाना, नीललोहित तथा पीले रंग का भेद न जान पाना तथा स्वप्न में उन्मादधर्मिता लक्षण दिखलाई पड़ता है।।१-७।।

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः। कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते।।८।।
ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधितम्। बद्धौषधस्य पित्तस्य विरेको हि वरौषधम्।।९।।
अनुबन्धी कफो यत्र तत्र तस्यापि शुद्धिकृत्।
कषायाः स्वादवो यस्य विशुद्धौ श्लेष्मला हिताः।।१०।।
कटुतिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफावहाः। अधो याप्यञ्च नायुष्मांस्तत्प्रच्छर्दनसाधकम्।।११।।
अल्पौषधञ्च पित्तस्य वमनं नवमौषधम्। अनुबन्धिबलो यस्य शान्तपित्तनरस्य च।।१२।।
कषायश्च हितस्तस्य मधुरा एव केवलम्। कफमारुतसंस्पृष्टमसाध्यमुपनामनम्।।१३।।

ऊर्ध्व अंगों में से, नाक, आंख, कान तथा मुख से, अध: अंगों में से, गुह्य, योनि तथा मेढ्र से अथवा रोमकूपों से कुपित रक्तपित्त व्यक्त होता है। ऊर्ध्वगतं रक्तपित्त साध्य है। कफ उसका सहकारी होता है तथा विरेचन से यह कफ नाश होने के कारण यह साध्य है। पित्त को बद्ध करने वाली औषधि से श्रेष्ठ है, उसका विरेचन कर देना। विशेषत: इससे अनुवद्धी कफ भी शोधित हो जाता है। इसके शोधनार्थ कषाय, स्वादु तथा श्लेष्मज वस्तु उपादेय होती है। कटु, तिक्त, कषाय अथवा जो सब बद्ध कफावह है, वह सभी उसके शोधनार्थ हितप्रद हैं। अध: जाने वाला रक्तपित्त याप्य कहा गया है, तथापि यह रोगी की आयु क्षय करता है। इसमें तो वमन से लाभ होगा। जिसका पित्त अत्यन्त दूषित नहीं हो सका है, जिसकी देह में बल बचा है, उस रोगी हेतु पित्तविरेचन तथा अल्प मात्रा में नयी औषधि देना विहित है। ऐसे रोगी को मधुर-कषाय द्रव्य दे। जिस रोगी में कफ तथा वायु कुपित होकर पित्त से योग करते हैं, उनको रोगरहित करना अतीव कठिन है।।८-१३।।

असह्यं प्रतिलोमत्वादसाध्यादौषधस्य च। न हि संशोधनं किञ्चिदस्य च प्रतिलोमिनः।।१४।।
शोधनं प्रतिलोमञ्च रक्तपित्तेऽभिसर्जितम्। एवमेवोपशमनं संशोधनमिहेष्यते।।१५।।
संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वथा छर्दनं हितम्। तत्र दोषोऽत्र गमनं शिवास्त्र इव लक्ष्यते।
उपद्रवाश्च विकृतिं फलतस्तेषु साधितम्।।१६।।

।।इति गारुडे महापुराणे रक्तपित्तनिदानं नाम अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४८।।

प्रतिलोमगत रक्तपित्त का प्रतिकार कर सकना संभव नहीं है। रक्तपित्त की प्रतिलोम क्रिया ही उसका शोधन है। ऐसा शोधन उपशम करता है। जहां दोष एक दूसरे से मिले होते हैं, वहां वमन हितकारी है। रक्तपित्त के सभी दोषों का मृत्यु ही निदान है, जैसे शिवास्त्र से मृत्यु निश्चित है। वास्तव में इस रक्तपित्त में विकाररूपी अनेक उपद्रव होते हैं॥१४-१६॥

॥एक सौ अड़तालीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कासनिदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

आशुकारी यतः कासः स एवातः प्रचक्ष्यते।
पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः॥१॥
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम्। तेषां भविष्यतां रूपं कण्ठे कण्डूररोचकः॥२॥
शुष्ककर्णास्यकण्ठत्वं तत्राधोविहितोऽनिलः।
ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन्कण्ठे च संसृजन्॥३॥
शिरास्त्रोतांसि संपूर्य्य ततोऽङ्गान्युत्क्षिपन्ति च।
क्षिपन्निवाक्षिणी क्लिष्टस्वरः पार्श्वे च पीडयन्॥४॥
प्रवर्त्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः। हृत्पार्श्वोरुशिरःशूलमोहक्षोभस्वरक्षयान्॥५॥
करोति शुष्ककासञ्च महावेगरुजास्वनम्।
सोऽङ्गहर्षी कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतां व्रजेत्॥६॥

धन्वन्तरि कहते हैं—कासरोग आशुकारी है। अत: यहां उसका वर्णन किया जा रहा है। यह रोग पंचविध है। यथा—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, क्षतज, क्षयज। इसमें पहले से बाद वाला अधिक बली होता है। अन्त में यह क्षयरोग में परिणत होता है। इसके उत्पन्न होने के पहले कण्ठ में खुजली तथा आहार के प्रति अरुचि होती है। वातज कास में शुष्ककर्णता, मुखशोथ, कंठ का सूखना—ऐसे लक्षण व्यक्त होते हैं। इसमें अध: की वायु ऊर्ध्व में वक्ष तक पहुंचकर कण्ठ का अभिघात करती है। यह शिराओं को भर कर प्रत्येक अंग को उत्क्षिप्त करती है। तब पता चलता है कि मानों नेत्र बाहर निकले पड़ रहे हैं। पार्श्व में पीड़ा तथा स्वर क्षीण होते जाते हैं। इस रोग में मुख तथा गले से टूटे कांस्य पात्र को बजाने जैसी आवाज निकलती है। इस वातज रोग में हृदय तथा पार्श्व में वेदना, उर:शूल, शिरोवेदना, मोह, क्षोभ, स्वरक्षय,

महावेगपूर्वक पीड़ा के साथ सूखी खांसी आती है। अत्यन्त कष्ट से रोमांचित स्थिति में जब सूखा कफ कष्ट से निकाला जाता है, तब कष्ट कुछ कम होता है॥१-६॥

पित्तात्पीताक्षिकता तिक्तास्यत्वं ज्वरो भ्रमः।
पित्तासृग्वमनं तृष्णा वैस्वर्य्यं धूमको मदः॥७॥
प्रततं कासवेगे च ज्योतिषामिव दर्शनम्। कफादुरोऽल्परुङ्मूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु॥८॥
कण्ठे प्रलेपमदनं पीनसच्छर्द्यरोचकाः। रोमहर्षो घनस्निग्धश्लेष्मणाञ्च प्रवर्त्तनम्॥९॥
युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैः सेवितैरयथाबलम्। उरस्यन्तःक्षतो वायुः पित्तेनानुगतो बली॥१०॥
कुपितः कुरुते कासं कफं तेन सशोणितम्।
पीतं श्यावञ्च शुष्कञ्च ग्रथितं कुपितं बहु॥११॥

पित्तजनित कास रोग में नेत्र पीले, मुख में तिक्त स्वाद, ज्वर, भ्रम, पित्त का वमन, रक्तवमन, तृष्णा, स्वरभंग, धूमदर्शन, मत्तता प्रभृति लक्षण व्यक्त होते हैं। इस रोग में रोगी जब खांसता है, तब उसको खांसी के वेग के कारण आंखों के आगे चिनगारी फूटने लगती है। कफजनित खांसी रोग होने पर वक्ष में तनिक वेदना, मस्तक, हृदय में भारीपन तथा शुष्कता विदित होती है। लगता है कि कण्ठ में भीतर कुछ लिपटा है। इस रोग में पीनस, वमन, अरुचि, रोमाञ्च, घन तथा स्निग्ध श्लेष्मा का निकलना—ये लक्षण व्यक्त होते हैं। युद्ध प्रभृति अत्यन्त साहस वाले काम में व्यर्थ लगने पर वक्ष:स्थल पर क्षत होता है। तब उसमें पित्त, वायु दोनों मिल कर वायु बली तथा कुपित होकर खांसी पैदा करता है, जिससे रक्तयुक्त श्लेष्मा का निष्क्रमण होता है। खांसी के समय रोगी को थूकने पर वह पीतवर्ण, पिंगल वर्ण, सूखा, ग्रथित तथा कुपित लगता है॥७-११॥

ष्ठीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनैव चोरसा।
सूचिभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना॥१२॥
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडा हि तापिना। पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यकम्पवान्॥१३॥

खांसी उठने के समय गले में पीड़ा होती है। लगता है कण्ठ फट जायेगा तथा मानों नुकीली सुई से वक्ष छेदा जा रहा है। मानो दुःखप्रद शूल हृदय को भेद रहा है। हृदय पीड़ित एवं तापित हो रहा है, ऐसा अनुभव होता है। इस व्याधि में पर्वभेद, ज्वर, श्वास, तृष्णा, स्वरभंग तथा कम्परूपी उपद्रव होते हैं॥१२-१३॥

पारावत इवोत्कूजन्पार्श्वशूली ततोऽस्य च। कफाद्यैर्वमनं पक्तिबलवर्णश्च हीयते॥१४॥
क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं श्वासपृष्ठकटिग्रहः।
वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मणः॥१५॥
कुर्वन्ति यक्ष्मायतनं कासं ष्ठीवेत्कफं ततः। पूतिपूयोपमं पीतं मिश्रं हरितलोहितम्॥१६॥
सुप्यते तुद्यत इव हृदयं पचतीव च। अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वाशित्वं बलक्षयः॥१७॥
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दर्शननेत्रता। ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवन्ति च॥१८॥

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः।
याप्यो वा बलिनां तद्वत्क्षतजोऽपि नवौ तु तौ॥१९॥
सिद्ध्येतामपि सामर्थ्यात्साध्यादौ च पृथक्क्रमः।
मिश्रा याप्याश्च ये सर्वे जरसः स्थविरस्य च॥२०॥
कासश्वासक्षयच्छर्दिश्वरसादादयोगदाः। भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तां त्वरया जयेत्॥२१॥

।।इति गारुडे महापुराणे कासनिदानं नाम ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४९।।

अन्त में रोगी कबूतर की तरह क्षीण स्वर में बोलता है। इस समय उसे पार्श्वों में पीड़ा होती है। कफ के कारण वमन भी होता है। परिपाक शक्ति, बल तथा वर्ण नष्ट होने लगते हैं। राजयक्ष्मा में रोगी शीघ्र दुर्वल होता है। उसे रक्तस्राव, श्वास, कटि तथा पीठ में वेदना होती है। वायु की प्रधानता धातु को कुपित करती है। यक्ष्मा रोगी हरित एवं रक्तवर्ण वाला खांसी का कफ थूकता है। वह सदा व्यथित होकर शयन करता है। उसे यह प्रतीत होता है मानों कोई उसका हृदय पका रहा है। वह हठात् उष्णता, शीतेच्छा तथा अनेक भोजन की अभिलाषा करता है। उसका बल क्षय होता है। मुख स्निग्ध लगता है, दांत किटकिटाता है, नेत्र में चमक ऐसे उपद्रव होते हैं। तदनन्तर धीरे-धीरे सभी क्षयलक्षण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार क्षय वाली खांसी क्षीण व्यक्ति का देह नष्ट करती है। बलवान् व्यक्ति का कास असाध्य नहीं होता। क्षयज कास जब नये हों, तब प्रथम अवस्था में ही उसकी प्रतिकार करने की चेष्टा साध्य होती है। जो मिश्ररोग याप्य हैं, उन रोगों की तथा वृद्धों के सामान्य रोग की उपेक्षा करने से श्वास, कास, क्षय, सर्दी, स्वरभंग आदि नाना रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः रोग पता लगते ही शीघ्र उसका प्रतिकार करें॥१४-२१॥

॥एक सौ उन्चासवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्वासनिदान

धन्वन्तरिरुवाच

अथातः श्वासरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम्।
कासवृद्ध्या भवेच्छ्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः॥१॥
आमातिसारवमथुविषपाण्डुज्वरैरपि। रजोधूमानिलैर्मर्मघातादपि हिमाम्बुना॥२॥

क्षुद्रकस्तमकच्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चमः। कफोपरुद्धगमनपवनो विष्वगास्थितः॥३॥
प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टस्रोतांसि दूषयन्। उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम्॥४॥
प्राग्रूपं तस्य हृत्पार्श्वशूलं प्राणविलोमता। आनाहः शङ्खभेदश्च तत्रायासोऽतिभोजनैः॥५॥
प्रेरितः प्रेरयन् क्षुद्रं स्वयं स समलं मरुत्। प्रतिलोमं शिरा गच्छेदुदीर्य्य पवनः कफम्॥६॥

धन्वन्तरि कहते हैं—अब श्वासरोग निदान कहता हूं। कासरोग जब पुराना होता है, तब श्वासरोग जन्म लेता है अथवा वायु-पित्त-कफ की दूषित स्थिति में श्वास रोग होता है। आमातिसार, वमन, विष प्रयोग, पाण्डु, ज्वर से, धूल तथा धुआं से, अधिक वायुसेवन से, हृदय के मर्म स्थान पर आघात होने से, अधिकतम ठंड में रहने से श्वासरोग होता है। यह पांच प्रकार का होता है—क्षुद्र, तमक, छिन्न, महा तथा ऊर्ध्व। जब कफ द्वारा सर्वव्यापी वायु का आना-जाना रुद्ध होता है, तब वायु प्राणवाही, उदकवाही, अन्नवाही सभी स्रोतों को दूषित करता वक्ष में स्थित हो जाता है। वह आमाशय में श्वासोत्पादन करता है। श्वासरोग उत्पन्न होने के पहले हृदय तथा पार्श्व में शूल का अनुभव होता है। तब प्राणवायु की प्रतिलोमता, श्वास की दीर्घता तथा ललाट की अस्थि में पीड़ा होती है। अधिक मेहनत तथा अधिक भोजन से वायु प्रेरित होकर कफ को दूषित एवं प्रेरित करके प्रतिलोम भाव से शिराओं में जाता है। उसी से क्षुद्रश्वास की उत्पत्ति कही गयी है।१-६॥

परिगृह्य शिरोग्रीवमुरःपार्श्वे च पीडयन्। कासं घुर्घुरकं मोहरुचिरं पीनसं भृशम्॥७॥
करोति तीव्रवेगञ्च श्वासं प्राणोपतापिनम्। प्रताम्येत्तस्य वेगेन ष्ठीवनान्ते क्षणं सुखी॥८॥

कृच्छ्राच्छयानःश्वसिति निषण्णः स्वास्थ्यमर्हति।
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्त्तिमान्॥९॥
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासः कांक्षत्युष्णं सवेपथुः।
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते॥१०॥

वायु कफोत्पत्ति करके मस्तक, ग्रीवा, वक्ष का आश्रय लेकर पार्श्व में पीड़ा उत्पन्न करता है। इसके कण्ठ में घरघराहट, खांसी, मोह तथा पीनस जैसे उपद्रव होने लगते हैं। वायु की प्रबलता से श्वास वृद्धि होती है। जिससे अत्यन्त कष्ट होता है और कास का वेग वर्द्धित हो जाता है। इस रोग में अल्प मात्रा में कास होने पर रोगी कुछ स्वास्थ्य का अनुभव करता है। तब श्वासरोगी मानव उठना, शयन आदि में तकलीफ से आराम पाता है। इस रोग में दोनों नेत्र बाहर निकलते प्रतीत होते हैं। ललाट पसीने से भर जाता है। इससे रोगी कातर हो जाता है। इस रोग में पुनः-पुनः श्वास वहन होने के कारण रोगी का मुंह सूख जाता है तथा वह उष्ण द्रव्य खाना चाहता है। मेघ, शीत, पुरवा हवा तथा श्लेष्मा बढ़ाने वाली वस्तु खाने एवं सेवन करने से श्वासरोग बढ़ता है॥७-१०॥

सयाप्यस्तमकः साध्यो नरस्य बलिनो भवेत्।
ज्वरमूर्च्छावतः शीतैर्न शाम्येत्प्रथमस्तु सः॥११॥

कासश्वसितवच्छीर्णमर्मच्छेदरुजार्दितः। सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहविबोधवान्॥१२॥

अधोदृष्टिः प्लुताक्षस्तु स्निह्यद्रक्तैकलोचनः।
शुष्कास्यः प्रलपन्दीनो नष्टच्छायो विचेतनः॥१३॥
महता महता दीनो नादेन श्वसिति कथन्। उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम्॥१४॥

बली व्यक्ति की तमक श्वास व्याप्य तथा साध्य होती है, तथापि रोगी में ज्वर, मूर्च्छा प्रभृति लक्षण होने पर श्वासरोग सहसा ठीक नहीं होता। तमक श्वास में श्वास में भारीपन आदि उपद्रव होते हैं। इससे रोगी दुर्बल होता है और उसे व्यथा होती है कि मर्म में कोई पीड़ा पहुंचा रहा है। इसमें पसीना, मूर्च्छा, अनाह आदि उपद्रव प्रकट होते हैं। इसमें रोगी को यह लगता है कि मानों वस्ति में जलन हो रही है। तमक श्वास में रोगी की अधोदृष्टि होती है। दोनों नेत्र स्फीत, स्निग्ध तथा लाल हो जाते हैं। रोगी का गला सूखता है तथा वह अत्यन्त कातर स्वर में बातें करता है। वह कभी-कभी अचेतन भी हो जाता है। महाश्वास में वह मत्त सांड़ की तरह ऊपर की ओर श्वास छोड़ता है। ऐसी श्वास के कारण रोगी की कातरता बढ़ती जाती है॥११-१४॥

प्रनष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः। अक्षं समाक्षिपन्बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक्॥१५॥
शुष्ककण्ठो मुहुश्चैव कर्णशङ्खशिरोऽतिरुक्।
यो दीर्घमुच्छ्वसित्यूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः॥१६॥
श्लेष्मावृतमुखश्रोत्रः क्रुद्धगन्धवहार्दितः।
ऊर्ध्वदिग्वीक्ष्यते भ्रान्तमक्षिणी परितः क्षिपन्॥१७॥
मर्मसु च्छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक्।
एते सिद्धयेयुरव्यक्ता व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम्॥१८॥

।।इति गारुडे महापुराणे श्वासनिदानं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५०।।

महाश्वास रोगी का ज्ञान नष्ट होता है, नयन भ्रान्त होते हैं, इन्द्रियां विचलित रहती हैं। मल-मूत्र बद्ध रहता है। अटकते हुये बोलता है। रोगी का गला सूखता है। बार-बार श्वास बाहर आती है। ललाट तथा मस्तक वेदनायुक्त हो जाता है। जिसकी कुछ समय गहरी ऊर्ध्व श्वास होती है, वह उस श्वास को अधः नहीं कर पाता। इस महाश्वास में रोगी के मुख तथा कान श्लेष्मा से भर जाते हैं। वायु कुपित होकर रोगी को अत्यन्त कष्ट देता है। रोगी भ्रान्तवत् इधर-उधर देखता उर्ध्वदृष्टि करता है। लगता है मानों मर्मस्थल छिन्न हो रहे हैं। वह करुण भाव से रोता है, अन्त में बोली तक बन्द हो जाती है। जब तक श्वास रोग के सभी लक्षण प्रकट नहीं हो जाते, तब तक उसका दवा से प्रतिकार हो सकता है। लेकिन सभी उपद्रवों के प्रकट होने पर उसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। रोगी का प्राण तब नष्ट होता है, यह निश्चित है॥१५-१८॥

॥एक सौ पचासवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

हिक्का निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

हिक्कारोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु। श्वासैकहेतु प्राग्रूपं संख्या प्रकृतिसंश्रया॥१॥

हिक्का भव्योद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च।
गम्भीरा च मरुत्तत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितैः॥२॥
रूक्षतीक्ष्णखराशान्तैरन्नपानैः प्रपीडितः।
करोति हिक्कां मरुतो मन्दशब्दां क्षुधानुगाम्।
समं सन्ध्यान्नपानेन या प्रयाति च सान्नजा॥३॥

आयासात्पवनः क्रुद्धः क्षुद्रां हिक्कां प्रवर्त्तयेत्। जत्रुमूलात्परिसृता मन्दवेगवती हि सा॥४॥
वृद्धिमायासतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम्। चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते॥५॥

परिणामा मुखे वृद्धिं परिणामे च गच्छति।
कम्पयन्ती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत्॥६॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब हिक्कारोग निदान सुनो। जिन कारणों से श्वास रोग उत्पन्न होता है, उन कारणों से ही हिक्का रोग उत्पन्न होता है। इसका पूर्वरूप, संख्या भी श्वासरोग जैसा ही है। ये पांच प्रकार के कहे गये हैं—अन्नजा, क्षुद्रा, यमला, महती, गंभीर। जल्दबाजी में तथा अनियमित भोजन से वायु कुपित होकर अन्नजा हिक्का को उत्पन्न करती है। इसमें अधिक आवाज नहीं होती। यह अत्यन्त मन्द हिक्का होती है। अन्न-पानादि में अनियमितता से हिक्का उत्पन्न होती है। यह अन्नजा हिक्का है। यह हिक्का ग्रीवा के मूल से उत्पन्न होकर मन्द वेग से निर्गत होती है। परिश्रम से क्षूद्रिका हिक्का बढ़ती है। वह भोजनान्त में मृदु हो जाती है। यमला हिक्का में कुछ-कुछ देर में एक-दो ही हिचकी (हिक्का) आती है। यह हिक्का पहली अवस्था में याप्य रहती है। परिणामत: बढ़ती है। यह मस्तक तथा गले को कम्पित करती है॥१-६॥

प्रलापच्छर्द्यतीसारनेत्रविप्लुतजृम्भिता। यमला वेगिनी हिक्का परिणामवतीं च सा॥७॥
ध्वस्तभ्रूशङ्खयुग्मस्य श्रुतिविप्लुतचक्षुषः। स्तम्भयन्ती तनुं वाचं स्मृतिं संज्ञाञ्च मुञ्चती॥८॥
तुदन्ती मार्गमाणस्य कुर्वती मर्मघट्टनम्। पृष्ठतो नमनं साऽऽर्घ्य महाहिक्का प्रवर्तते॥९॥
महाशूला महाशब्दा महावेगा महाबला। पक्वाशयाच्च नाभेर्वा पूर्ववत्सा प्रवर्त्तते॥१०॥

यमला हिक्का परिणाम पाकर प्रलाप, छर्दि, अतिसार, नेत्रविकार, जंभाई ऐसे उपद्रव बढ़ाती तथा उत्पन्न करती है। (महती) महाहिक्का में दोनों भ्रू तथा ललाटास्थि विध्वस्त हो जाते हैं। चक्षु तथा कानों में विकृति होती है। शरीर तथा वाणी रुक सी जाती है। स्मृति-ज्ञान का लोप हो जाता है। इन्द्रियों में पीड़ा,

मर्म में व्यथा तथा पीठ का झुकना ऐसे लक्षण प्रतीत होते हैं। यही लक्षण होने पर इसे महाहिक्का जाने। यह हिक्का महापीड़ा, महाशब्द, महावेग तथा अत्यन्त बल के साथ पक्वाशय अथवा नाभि से उत्पन्न होती है।।७-१०।।

तद्रूपा सा महत्कुर्य्याज्जृम्भणाङ्गप्रसारणम्।
गम्भीरेण निनादेन गम्भीरां तु सुसाधयेत्।।११।।
आद्ये द्वे वर्जयेन्दन्ये सर्वलिङ्गाञ्च वेगिनीम्।
सर्वस्य सञ्चितामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः।।१२।।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदकृशस्य च।
सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेवं शीघ्रकारिणः।
हिक्काश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ।।१३।।

।।इति गारुडे महापुराणे हिक्कानिदानं नाम एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५१।।

इस हिक्का में जंभाई तथा अंगविक्षेप होता है। इसकी उत्पत्ति गंभीर वजहों से होती है। अतः इसका इलाज भी गंभीर भाव से हो। जब हिक्का के पूर्ण लक्षण आयें, तब अच्छे चिकित्सक चिकित्सा से हट जायें। सभी लक्षण न आने तक इलाज करे। लेकिन चिरसंचित हिक्का सभी चिकित्सकों हेतु वर्जित है। खास करके बूढ़े, अत्यन्त मैथुन करने वाले, अन्य रोगों के कारण दुर्बल हो गये तथा अन्न की इच्छा जिनको न हो, ऐसे लोगों की हिक्का चिकित्सा वर्जित है। सभी रोग मनुष्य को नष्ट कर देते हैं, लेकिन जितनी जल्दी हिक्का मनुष्य को नष्ट करती है, अन्यान्य रोग उतनी जल्दी व्यक्ति का नाश नहीं करते। हिक्का तथा श्वास रोग व्यक्ति को मृत्यु तक ले जाते हैं।।११।।

।।एक सौ एक्यावनवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

यक्ष्मारोग निदान

धन्वन्तरिरुवाच

अथातो यक्ष्मरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम्। अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः।।१।।
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति कथ्यते। नक्षत्राणां द्विजानाञ्च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा।
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः।।२।।

देहौषधक्षयकृतेः क्षयान्ते सम्भवेच्च सः। रसादिशोषणाच्छोषो रोगराडिति राजवान्॥३॥
साहसं वेगसंरोधः शुक्रौजःस्नेहसंक्षयः। अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः॥४॥
तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं व्यर्थञ्चोदीर्य्य सर्वतः।
शरीरसन्धिमाविश्य ताः शिराः प्रतिपीडयन्॥५॥
मुखानि स्त्रोतसां रुद्ध्वा तथैवातिविसृज्य वा।
मध्यमूर्ध्वमधस्तिर्य्यग्व्यथां सञ्जनयेद्धृदः॥६॥

धन्वन्तरि ने कहा—अब यक्ष्मारोग निदान कहता हूं। यह रोग अनेक रोगों के बाद होता है तथा यह उत्पन्न होकर अनेक रोगों को जन्म देता है। राजयक्ष्मा, क्षय, शोष तथा रोगराज यक्ष्मारोग के ही वाचक शब्द हैं। यह रोग पूर्वकाल में आकाश द्विजों तथा नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा को हुआ था। राजा को होने के कारण इसे राजयक्ष्मा कहते हैं। इस रोग की उत्पत्ति के कारण देह तथा औषधि का क्षय हो जाता है। इसलिये इसे क्षय कहते हैं। यह देह के रसों का शोषक रोग होने के कारण शोष कहा जाता है। यह सभी रोगों में प्रधान है, अतः इसे रोगराज कहते हैं। सभी साहस कार्य, मलमूत्र वेग को रोकना, शुक्र-बल तथा शरीरगत स्नेह क्षय तथा नियम की अवहेलना, इन चार कार्यों से यह रोग उत्पन्न होता है। इन कारणों से वायु प्रकुपित होकर पित्त एवं कफ को सर्वत्र व्याप्त करके शरीर की सन्धियों में प्रवेश कराके शिराओं को पीड़ित और शारीरिक स्त्रोतों को बन्द अथवा फैला देता है तथा शरीर के ऊर्ध्व-अधः तथा पार्श्व में पीड़ोत्पादन करता है॥१-६॥

रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं ज्वरः। प्रसेको मुखमाधुर्य्यं मार्दवं वह्निदेहयोः॥७॥
लौल्यमार्गान्नपानादौ शुचावशुचिवीक्षणः। मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रयोऽन्नपानयोः॥८॥
हृल्लासच्छर्दिररुचिरस्नातेऽपि बलक्षयः। पाण्यूरुवक्षःपादास्यकुक्ष्यक्ष्णामतिशुक्लता॥९॥
बाह्वोः प्रतोदो जिह्वायाः काये बैभत्स्यदर्शनम्।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणिता मूर्द्धगुण्ठनम्॥१०॥
नखकेशास्थिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत्।
पतनं कृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः॥११॥
केशास्थितुषभस्मादितरौ समधिरोहणम्। शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः।
ज्योतिर्दिवि दवाग्नीनां ज्वलताञ्च महीरुहाम्॥१२॥

इस रोग के आगमन के पहले अत्यन्त ज्वर, मूत्रस्राव, मुख में मधुरता, अग्नि तथा शरीरगत मृदुता, अन्न-पानादि की स्पृहा, पवित्र वस्तु को भी अपवित्र समझना, ये लक्षण व्यक्त होते हैं। रोगी को प्रतीत होता है मानों अन्नपानादि में मक्खी, केश, तृणादि पड़ गये हैं। श्वास, सर्दी, भोजन में अरुचि, स्नान के पहले बलक्षय, हाथ-उरु-वक्ष-पैर-मुख-कोख तथा नेत्र में शुक्लवर्ण द्योतित होना—यह राजयक्ष्मा रोग का उपद्रव रूप है। दोनों बाहु तथा जीभ में वेदना, शरीर से घृणा लगना, स्त्री-मद्य-मांस की इच्छा, शिर घूमना भी राजयक्ष्मा का विशेष लक्षण है। केश, अस्थि तथा नख की वृद्धि तथा शयनकाल में

अनेक विकृतियां परिलक्षित होती हैं। रोगी इनसे अभिभूत हो जाता है। उसे लगता है कि वह किसी ऊंची जगह से गिरा है। वह स्वप्न में गिरगिट, सांप, बन्दर, मांसाहारी पशु, पक्षी, केश, हड्डी, औषधि तथा भस्म देखता है। वृक्ष के ऊपर चढ़ना, ग्राम तथा देश की शून्यता (अर्थात् वे जनहीन लगें), जल से रहित शुष्क हैं, आकाशस्थ पदार्थों की ज्योति, दावाग्नि में जलते वृक्ष, यह सब यक्ष्मारोगी स्वप्न में देखता है॥७-१२॥

पीनसश्वासकासश्च स्वरमूर्द्धरुजोऽरुचिः। ऊर्ध्वनिःश्वाससंशोषा वधश्छर्दिश्च कोष्ठगे॥१३॥
स्थिते पार्श्वे च रुग्बोधे सन्धिस्थे भवति ज्वरः।
रूपाण्येकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मणः॥१४॥
तेषामुपद्रवान् विद्यात्कर्णध्वंसकरो रुजः। जृम्भाङ्गमर्दनिष्ठीववह्निमान्द्यास्यपूतिता॥१५॥
तत्र वाताच्छिरः पार्श्वशूलञ्च साङ्गमर्दनम्।
कण्ठरोधः स्वरभ्रंशो पित्तात्पादांसपाणिषु॥१६॥

पीनस, श्वास-कास, स्वरभंग, शिर:पीड़ा, अरुचि, ऊर्ध्वश्वास, वमन, शरीर की शुष्कता, पार्श्व सन्धियों में दर्द, ज्वर, ये ग्यारह उपसर्ग यक्ष्मा में होते हैं। इस रोग में कण्ठ में ऐसी वेदना होती है, जिसमें लगता है मानों कण्ठ फट जायेगा। जंभाई, अंगमर्दन, थूकना, अग्नि की मन्दता तथा मुख की दुर्गन्ध होती है। वातज, राजयक्ष्मा में शिर पीड़ा, पार्श्वों में पीड़ा, अंगों में मरोड़, कण्ठरोध, स्वरभंग आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं॥१३-१६॥

दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगन्धो ज्वरो मदः। कफादरोचकश्छर्दिकासावर्द्धाङ्गगौरवम्॥१७॥
प्रसेकः पीनसः श्वासः स्वरभेदोऽल्पवह्निता।
दोषैर्मन्दानलत्वेन शोथलेपकफोल्बणैः॥१८॥
स्त्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातुषु स्वल्पकेषु च।
विदाहो मनसः स्थाने भवन्त्यन्ये ह्युपद्रवाः॥१९॥
पच्यते कोष्ठ एवान्नमम्लयुक्तं रसैर्युतम्। प्रायोऽस्य क्षयभागानां नैवान्नं चाङ्गपुष्टये॥२०॥
रसो ह्यस्य न रक्ताय मांसाय कुरुते तु तत्।
उपस्तब्धः समन्ताच्च केवलं वर्तते क्षयी॥२१॥

पित्त से उत्पन्न राजयक्ष्मा रोग में पैर, कंधा तथा हथेली में दाह, अतिसार रोग, रक्त वमन, मुख से दुर्गन्ध, ज्वर तथा मत्तता के लक्षण व्यक्त होते हैं। कफजनित राजयक्ष्मा में अरुचि, सर्दी, कास, आधे अंगों में शुष्कता, मुखस्राव, पीनस, श्वास, स्वरभंग, अग्नि की मन्दता के लक्षण व्यक्त होते हैं। इस रोग में वायु-पित्त-कफ कुपित होकर अग्निमान्द्य तथा शोथ उत्पन्न करते हैं। कफ की अमित प्रबलता की वजह से लगता है कि मुख में कुछ लेप लगा है। इस रोग के कारण रस-रक्तवाहक स्रोत का मुख बन्द हो जाता है। धातु लाघववशात् हृदय में जलन आदि अनेक उपद्रव होते हैं और बारम्बार वमन तथा हिचकी होती है। इस रोग में पक्वाशय में एक अम्लमय रस जन्म लेता है। उससे अन्नपाक होने के कारण सर्वदा

शरीर ताप की हानि होती है। खाद्यद्रव्य का परिपाक अब शरीर पुष्ट नहीं कर पाता। यक्ष्मारोगी का खाया अन्न रक्त-मांस उत्पन्न नहीं कर सकता। फलतः शरीर वृद्धिगत नहीं होता। केवल उसका क्षयः ही होता है॥१७-२१॥

लिङ्गेष्वल्पेष्वतिक्षीणे व्याधौ षट्करणक्षयम्।
वर्जयेत्साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा॥२२॥
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात्सर्वस्य मेदसाम्।
स्वरभेदो भवेत्तस्य क्षामो रूक्षश्चलः स्वरः॥२३॥
शूकपर्णाभकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशमोऽनिलात्।
पित्तात्तालुगते दाहः शोषो भवति सन्ततम्॥२४॥
लिम्पन्निव कफैः कण्ठं मुखं घुरघुरायते।
स्वयं विरुद्धैः सर्वैस्तु सर्वलिङ्गैः क्षयो भवेत्॥२५॥
धूमायतीव चात्यर्थमुदेति श्लेष्मलक्षणम्।
कृच्छ्रसाध्याः क्षयाश्चात्र सर्वैरल्पञ्च वर्जयेत्॥२६॥

॥इति गारुडे महापुराणे यक्ष्मनिदानं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५२॥

यक्ष्मा में जब सब कुछ व्यक्त होता है, उस समय यदि रोगी के अंग क्षीण हों तथा इन्द्रियां विकल हो जायें, तब उस रोगी की चिकित्सा त्यागे। जब तक सम्पूर्ण लक्षण व्यक्त न हों, रोगी बली हो, उसकी इन्द्रियां सतेज हों, तभी तक उसकी चिकित्सा साध्य मानी जायेगी। उक्त रोग में जब दोष अलग से अथवा एक साथ व्यक्त हों, तब सभी में मेदक्षय होने के कारण स्वरभेद, स्वर में क्षीणता तथा रुक्षता होती है। वातज राजयक्ष्मा में रोगी का कण्ठ शुकशिम्बी की तरह कर्कश हो जाता है। शरीर की स्निग्धता तथा उष्णता का लोप हो जाता है। पित्तजनित राजयक्ष्मा में तालु एवं गले में दाह तथा शोष होता है। कफज राजयक्ष्मा में रोगी को कण्ठ तथा मुख लेप चढ़ा सा अनुभूत होता है। कण्ठ से सदा घरघराहट की आवाज होती है। इस रोग में रोगी अपथ्य सेवन करने लगता है, लेकिन अविलम्ब सभी लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। उक्त रोग में रोगी की आंखों के सामने धूम जैसा अनुभव होता है। श्लेष्मा के लक्षण भी व्यक्त होते हैं। यह रोग कठिनाई से साध्य हो पाता है। यदि ये सभी लक्षण कुछ-कुछ भी व्यक्त हों, तब वैद्य ऐसे रोगी की चिकित्सा त्याग दे॥२२-२६॥

॥एक सौ बावनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
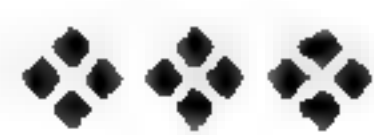
त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अरोचक निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

अरोचकनिदानं ते वक्ष्येऽहं सुश्रुताधुना। अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रयैः॥१॥
सन्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः। कषायतिक्तमधुरं वातादिषु मुखं क्रमात्॥२॥
सर्वं वीतरसं शोकक्रोधादिषु यथा मनः। छर्दिदोषैः पृथक् सर्वैर्दुष्टैरन्यैश्च पञ्चमी॥३॥
उदानोऽधिकृतान्दोषान्सर्वं सन्ध्यर्द्धमस्यति।
आशुक्लेशोऽस्य लावण्यप्रसेकारुचयोपमाः॥४॥
नाभिपृष्ठं रुजत्याशु पार्श्वे चाहारमुत्क्षिपेत्।
ततो विच्छिन्नमल्पाल्पकषायं फेनिलं वमेत्॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब अरोचक निदान श्रवण करो। वात-पित्तादि दोष जिह्वा तथा हृदय का आश्रय लेकर अरोचक रोग उत्पन्न करते हैं। यह पांच तरह का कहा गया है। यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज तथा मनःसन्तापज। वातज अरोचक व्याधि में रोगी के मुख का स्वाद कषाय, पित्तज में तिक्त, कफज में मधुर रहता है। इस रोग में रोगी किसी खाद्य के यथार्थ आस्वाद का अनुभव नहीं कर पाता, जैसे व्यक्ति शोक तथा क्रोध की स्थिति में अस्थिर हो जाता है, वैसे ही इस रोग में सभी द्रव्य रोगी के लिये ग्रहणीय नहीं रह जाते। यह रोग पांच प्रकार का वर्णित है। यथा—छर्दिज, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज। उदान वायु दूषित होकर सभी प्रकार के दोष उत्पन्न करती है। इससे रोगी को हठात् क्लेश होता है। मुख का स्वाद लवणाक्त होता है। मुख से स्राव होना तथा अरुचि होना प्रारम्भ होता है। इसमें सहसा नाभि एवं पीठ में दर्द होने लगता है। भोजन किया द्रव्य पार्श्व में बिखर जाता है, जिससे रोगी को कषाय, फेनिल, तनिक-तनिक वमन होने लगता है॥१-५॥

शब्दोद्गारयुतः कृच्छ्रमनुकृच्छ्रेण वेगवत्। कासास्यशोषकं वातात्स्वरपीडासमन्वितम्॥६॥
पित्तात्क्षारोदकनिभं धूम्रं हरितपीतकम्। सासृगम्लं कटु तिक्तं तृण्मूर्च्छादाहपाकवत्॥७॥
कफात्स्निग्धं घनं पीतं श्लेष्मतस्तु समाक्षिकम्।
मधुरं लवणं भूरि प्रसक्तं लोमहर्षणम्॥८॥
मुखश्वयथुमाधुर्य्यतन्त्रीहृल्लासकासवान्। सर्वैलिङ्गैः समापन्नस्त्याज्यो भवति सर्वथा॥९॥
सर्वं यस्य च विद्विष्टं दर्शनश्रवणादिभिः। वातादिनैव संक्रुद्धाः कृमिदुष्टान्नजे गदे।
शूलवेपथुहृल्लासो विशेषात्कृमिजे भवेत्॥१०॥

।।इति गारुडे महापुराणे अरोचकनिदानं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५३।।

वातज अरोचक रोग में अत्यन्त कष्ट के साथ तथा शब्द के साथ उद्गार निकलता है। वमन भी कष्टपूर्ण तथा वेगयुक्त होता है। खांसी, मुखशोष, स्वरभंग आदि उपद्रव भी होते हैं। पित्त जनित अरोचक रोग होने पर क्षारजल जैसा धूम्रवर्ण—हरित अथवा पीला रंग वाला, कटु-तिक्त अथवा रक्त वाला अम्ल वमन होता है। तृष्णा, मूर्च्छा, दाह आदि उपद्रव होते हैं। कफज अरोचक रोग में स्निग्ध, घन, पीतवर्ण, मधुर अथवा लवण जैसी श्लेष्मा निकलती है। इस रोग में अधिक मुखस्राव होता है तथा शरीर में रोमांच हो जाता है। इस रोग में मुखशोष, मुख में मधुर स्वाद होना, तन्द्रा, थूक, कास आदि उपद्रव होते हैं। जब यह रोग सभी लक्षणों वाला हो जाता है, तब रोगी को कुछ भी अच्छा प्रतीत नहीं होता। मनोरंजन वाली सभा भी उसे विरक्ति पैदा करती है। दर्शन-श्रवणादि में भी उससे प्रसन्नता तथा सन्तोष नहीं होता। यह रोग वातादि से और बढ़ जाता है। कृमि तथा दूषित अन्न सेवन से अरोचक रोग में शूल, कंपकपी, हल्लास आदि उपद्रव होने लगते हैं॥६-१०॥

॥एक सौ तिरपनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

हृद्रोग निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

हृद्रोग्रादिनिदानं ते वक्ष्येऽहं सुश्रुताधुना। कृमिहृद्रोगलिङ्गैश्च स्मृताः पञ्च तु हृद्गताः॥१॥
वातेन शून्यतात्यर्थं भुज्यते रोदितीति च। भिद्यते शुष्यते स्तब्धं हृदयं शून्यता भ्रमः॥२॥
अकस्माद्दीनता शोको भयं शब्देऽसहिष्णुता। वेपथुर्वेपनान्मोहश्वासरोधोऽल्पनिद्रता॥३॥
पित्तात्तृष्णा श्रमो दाहः स्वेदोऽम्लकरुजः क्लमः। छर्दनं ह्यम्लपित्तस्य धूमकल्पितको ज्वरः॥४॥

श्लेष्मणा हृदयं स्तब्धमग्निमान्द्यास्य वैकृतम्।
कासास्थिसादनिष्ठीव निद्रालस्यारुचिज्वराः॥५॥
हृद्रोगे हि त्रिभिर्दोषैः कृमिभिः श्यावनेत्रता।
तमःप्रवेशो हल्लासः शोथः कण्डुः कफस्नुतिः॥६॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब हृदयरोग निदान कहता हूं। कृमिजनित, वातज, पित्तज, कफज तथा सन्निपातज पांच भेद वाला हृदय रोग होता है। वातज हृद्रोग में हृदय में शून्यता लगती है। रोगी अधिक भोजन कर लेता है। कभी-कभी रोता है। इससे रोगी का हृदय विदीर्ण हो जाता है। शुष्क, स्तब्ध, शून्य बोध, भ्रम, अकस्मात् दीनता, शोक, भय, शब्द श्रवण में असहिष्णुता, कम्प, मोह, श्वास रोध तथा अनिद्रा के लक्षण उदित होते हैं। पित्तजनित हृद्रोग में तृष्णा, थकान, दाह, पसीना, अम्ल वाली डकार,

हृदयपीड़ा, अम्लपित्त वमन तथा ज्वर के लक्षण उभरते हैं। कफज हृद्रोग में हृदय की स्तब्धता, अग्नि की मन्दता, मुख की विकृति, खांसी, हड्डियों में पीड़ा, कफ का स्राव, आलस्य, अरुचि तथा ज्वर का उपद्रव होता है। कृमिज हृद्रोग में रोगी के नेत्र पिंगल वर्ण वाले होते हैं। आंखों के आगे अंधेरा छाता है। कफस्राव, शोथ, हल्लास तथा शरीर में खुजली अनुभूत होती है॥१-६॥

हृदयं सततञ्चात्र क्रकचेनेव दीर्य्यते। चिकित्सेदामयं घोरं तच्छीघ्रं शीघ्रमारिणम्॥७॥

वातात्पित्तात्कफात्तृष्णा सन्निपाताद् बलक्षयः।
षष्ठी स्यादुपसर्गाच्च वातपित्ते च कारणम्॥८॥

सर्वेषु तत्प्रकोपो हि सम्यग्धातुप्रशोषणात्। सर्वदेहभ्रमोत्कम्पतापहृद्दाहमोहकृत्॥९॥

जिह्वामूलगलक्लोमतालुतोयवहाः शिराः।
संशोष्य तृष्णा जायन्ते तासां सामान्यलक्षणम्॥१०॥

हृदय रोग के मरीज को लगता है, मानों उसका हृदय क्रकच (आरी) से विदीर्ण हो रहा है। यह रोग रोगी को शीघ्र मृत्यु प्रदान करता है। अत: रोग की पहली अवस्था में ही इलाज करे। वात, पित्त, कफ, तृष्णा, सन्निपात तथा उपसर्ग, इन छः प्रकार के हेतु से यह रोग होता है। परन्तु सभी प्रकार के हृदय रोग वात तथा पित्त के ही होते हैं। सभी हृद्रोग में धातु का शोष होता है। इसलिये वायु तथा पित्त का कोप होता है। इस रोग में देहभ्रमि, हृदय कांपना, ताप, हृद्दाह तथा मोहरूपी उपद्रव घटित होते हैं। इस रोग में जिह्वामूल, गला, फुफ्फुस, तालू तथा जलवाहिनी नाड़ियां सूख जाती हैं तथा अत्यन्त प्यास लगना हृद्रोग का लक्षण है। यह इसका सामान्य लक्षण है॥७-१०॥

मुखशोषो जलातृप्तिरन्नद्वेषः स्वरक्षयः। कण्ठौष्ठतालुकार्कश्याज्जिह्वानिष्क्रमणे क्लमः।
प्रलापश्चित्तविभ्रंशो ह्युद्गाराद्यस्तथामयः॥११॥

मारुतात्क्षामता दैन्यं शङ्खभेदः शिरोभ्रमः। गन्धाज्ञानास्यवैरस्यश्रुतिनिद्राबलक्षयाः॥१२॥

अम्लाल्पकेन वृद्धिश्च पित्तान्मूर्च्छास्यतिक्तता॥१३॥

रक्तेक्षणत्वं सततं शोषो दाहोऽतिधूमकः।
कफो रुणद्धि कुपितस्तोयवाहिषु मारुतम्॥१४॥

स्रोतश्च सकफं तेन पङ्कवच्छोष्यते ततः। शूकैरिवाचितः कण्ठो निद्रामधुरवक्त्रता॥१५॥

मुख शोष होना, प्रचुर जल पीकर भी तृप्ति न होना इस रोग का लक्षण कहा जाता है। स्वरभंग, कण्ठ-ओंठ तथा तालु की कर्कशता से जिह्वा निष्क्रमण में तकलीफ होती है। प्रलाप, चित्तभ्रम, उद्गार, शरीर में क्षीणता, दीनता, ललाटास्थिभेद तथा शिर चकराना वातिक हृद्रोग के लक्षण हैं। पित्तजनित हृद्रोग में रोगी की सूंघने की शक्ति चली जाती है। मुखविकृति, श्रवणशक्ति का ह्रास, निद्रानाश तथा बलक्षय होता है। अम्लवृद्धि रहने से मुख सदा तिक्त रहता है। रोगी के मुख से फेन निकलता है। बीच-बीच में मूर्च्छा होती है। कफज हृदय रोग में नेत्र लाल होते हैं। सर्वदा शोष, दाह तथा धूआं जैसा दीखना यह इसके लक्षण हैं। कफ कुपित हो जाता है, जिससे जलवाही शिराओं में वायु रुक जाती है। कफज हृदय

रोग में रोगी के अन्दर वाले स्रोतों में कफ लिपट कर शुष्क कीचड़ की तरह मार्ग आबद्ध कर लेता है। रोगी को कण्ठ में सूली चुभाने जैसी पीड़ा होती है। इसमें अधिक निद्रा, मुख में मीठापन आदि लक्षण व्यक्त होने लगते हैं॥११-१५॥

सर्वदा शिरसो जाड्यं स्तैमित्यच्छर्द्यरोचकाः। आलस्यमविपाकश्च यः स स्यात्सर्वलक्षणः॥१६॥

आमोद्भवाच्च रक्तस्य संरोधाद्वातपित्तता।
उष्णाक्रान्तस्य सहसा शीतो भवति दुःसहः॥१७॥
तृष्णारुद्धो गतः कोष्ठं कुर्य्यात्त पित्तजैव सा।
या च पानातिपानोत्थास्तीक्ष्णाग्रे स्नेहपाकजा॥१८॥

स्निग्धकटुवम्ललवणभोजनेन कफोद्भवा। तृष्णारसक्षयोक्तेन लक्षणेन क्षयात्मिका॥१९॥

शोषमोहज्वराद्यन्यदीर्घरोगोपसर्गतः। या तृष्णा जायते तीव्रा सोपसर्गात्मिका स्मृता॥२०॥

॥इति गारुडे महापुराणे हृद्रोगनिदानं नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५४॥

मस्तक की जड़ता, आर्द्र भाव, वमन, अरुचि, आलस्य तथा मन्दाग्नि हो जाती है। ऐसे हृदय रोग को सभी लक्षण युक्त कहा गया है। इसमें आम का उद्भव होता है तथा रक्त रुकने से वात-पित्त कुपित होते हैं। रोगी का शरीर उष्णतम होता है। उसे दुःसह शीत भी लगती है। जब तृष्णा के कारण पित्त रुक कर कोष्ठ में जाता है, उस समय जो हृदय रोग होगा, वही पित्तजनित हृदय रोग है। तब अत्यन्त जल पीने से शरीर स्नेह भाग का परिपाक होता है तथा हृदयपीड़ा होने लगती है। कटु-अम्ल-लवणद्रव्य भोजन से कफज तृष्णा होती है। रसक्षयोक्त लक्षण लक्षित होने पर जो तृष्णा होती है, वह है क्षयात्मिका। शोष, मोह, ज्वरादि रोग के उपसर्ग से जिस तृष्णा का उदय होता है, वह अत्यन्त प्रभाववान् होकर रोगी पर आक्रमण करती है। यही है उपसर्ग जनित तृष्णा॥१६-२०॥

॥एक सौ चौवनवां अध्याय समाप्त॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मदात्यय निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

वक्ष्ये मदात्ययादेश्च निदानं मुनिभाषितम्। तीक्ष्णाम्लरूक्षसूक्ष्माद्यव्यवायाशुकरं लघु॥१॥

विकासि विपदं मद्ये मेदसोऽस्माद्विपर्य्ययः। तीक्ष्णोदयाश्च दिव्युक्ताश्चित्तोपतापिनो गुणाः॥२॥

जीवितान्ताः प्रजायन्ते विशेषोत्कर्षवर्त्तिनः। तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यान्मान्द्यदीनौजसो गुणाः॥३॥

इन्द्रियाणि च संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम्।
आद्ये मद्ये द्वितीयेऽपि प्रमदायतने स्थितः॥४॥

दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्येवगुच्यते। मद्यपाने मतिर्यस्य प्राप्य राजासनं मदैः॥५॥

धन्वन्तरि कहते हैं—अब मैं मुनियों द्वारा कहे मदात्यय निदान को कहता हूं। मद्य तीक्ष्ण, रुखा, अम्ल, व्यवायकारी, लघु तथा विपत्तिजनक है। मद्य पीने से मेद का विपर्यय होता है। तीक्ष्णता आदि मद्य के जो गुण हैं, वे चित्त के ताप की वृद्धि करते हैं। अधिक मद्यपान जीवनान्त करता है। जो मद्य तीक्ष्णता आदि गुणों वाला है,वह बल-वीर्य नष्टकारी है। वह इन्द्रियों को संक्षुब्ध करके चित्त में विक्रिया उत्पन्न करता है। प्रथम अथवा द्वितीय मद्यपान भी ऐसा होता है, जिसमें भी विपत्ति आ पड़ने की सम्भावना रहती है। जिनकी दूरदृष्टि मर गयी है, वे ही मद्यपान को सुख हेतु करते हैं॥१-५॥

निरङ्कुश इव व्यालो न किञ्चिन्नाचरेत्ततः। इयं भूमिरवाच्यानां दौःशीलस्येदमास्पदम्॥६॥

एकोऽयं बहुमार्गाया दुर्गतेर्दर्शकः परः। निश्चेष्टः सततं वाञ्छेत्तृतीयेऽत्र मदे स्थितः॥७॥

मरणादपि पापात्मा गतः पापतरां दशाम्। धर्माधर्मं सुखं दुःखं मानामानं हिताहितम्॥८॥

न वेद शोकमोहार्त्तः शोषमोहादिसंयुतः।
संभोदभ्रममूर्च्छायां सापस्मारं पतत्यधः।
नातिमाद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाशनाः॥९॥

जिसे मद्यपान की अभिलाषा है, वे राज्य पाकर मत्त हो जाते हैं। मद पीने वाला निरंकुश सर्पवत् सदा चंचल रहता है। उसे किसी कार्य की शक्ति नहीं रह जाती। मद्यपान करने वाले के लिये कुछ भी ऐसा नहीं रहता जो वह न बके। सभी प्रकार की दुःशीलता का वह मालिक बन जाता है। तृतीय मद्यपान में वह निश्चेष्ट हो जाता है। पापी व्यक्ति मद्यपान करके मरणान्तक दुर्गति भोगता है। मद्यपायी को धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, मान-अपमान, हित-अनहित का विचार नहीं रहता। वह कभी शोक करता है, कभी मोहार्त्त हो जाता है तो कभी आमोदित होता है, कभी उसे भ्रम तथा मूर्च्छा ग्रस लेती है। सहसा (नाली तक में) गिर जाता है। जो बली हैं तथा उत्तम मात्रा में भोजन करते हैं, वे मद्यपान से अधिक मत्त नहीं हो पाते॥६-९॥

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्भवेद्रोगो मदात्ययः। सामान्यलक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा॥१०॥

विभेदप्रततं तृष्णा सौम्यो ग्लानिर्ज्वरोऽरुचिः।
पुरोविबन्धस्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः॥११॥
स्वेदोऽतिमात्रं विष्टम्भः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः।
स्वप्नेनेवाभिभवति न चोक्तश्च स भाषते॥१२॥

पित्ताद्दाहज्वरस्वेदो मोहो नित्यञ्च हृद्भ्रमः। श्लेष्मणश्छर्दिहल्लास निद्राश्चोदरगौरवम्॥१३॥

सर्वजे सर्वलिङ्गत्वं ज्ञात्वा मद्यं पिबेत्तु यः। सर्वञ्च रुचिरञ्चास्य मतिध्वंसकविक्रिये॥१४॥

वात-पित्त-कफ-सन्निपात से भी मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। मोह, हृदय की पीड़ा, असत् ग्रह, तृष्णा, असम स्थिति से ग्लानि, ज्वर, सामने घनघोर अन्धकार देखने से, कास, श्वास, अनिद्रा, अत्यन्त पसीना बहना, विष्टम्भ, शोथ, चित्तविभ्रम आदि मदात्यय रोग के सामान्य लक्षण कहे जाते हैं। मद्यप व्यक्ति सदा मानों स्वप्न स्थिति में रहता है। वह बिना पूछे बहुत बकबक करता है। पित्तजनित मदात्यय में वमन, हृल्लास, निद्रा, उदर का भारीपन आदि उपसर्ग व्यक्त होते हैं। सन्निपात वाले मदात्ययरोग में पूर्वोक्त सभी प्रकार के लक्षणों का आविर्भाव होता है। इन दोषों को जानकर इनकी विवेचना करके जो मद्य पीता है, वह उसके लिये रुचिकर होगा। फलस्वरूप मद्यपान में पीने वाले की शारीर स्थिति तथा मद्य की मात्रा जानने से किसी को अत्यन्त आनन्द मिलेगा, किसी को चरम यातना भोगनी पड़ेगी॥१०-१४॥

भवेतां पायिनः काष्ठे द्रव्ये तस्याविशेषतः। मारुताच्छ्लेष्मनिष्ठीवकण्ठशोषोऽतिनिद्रता॥१५॥

शब्दासहत्वं तच्चित्तविक्षेपोङ्गे हि वातरुक्।
हृत्कण्ठरोगः सम्मोहः श्वासतृष्णावमिज्वराः॥१६॥

देश-काल-पात्र की विचारणा करके, तब द्रव्य की मात्रा निश्चित की जाये। वातज मदात्ययरोग में श्लेष्मा थूकना, कण्ठशोष, अति निद्रा, शब्द सहने में कष्ट, चित्त विक्षेप, अंगों में वात रुकना, हृदय रोग, कण्ठ रोग, मोह, श्वास, तृष्णा, वमन, ज्वरादि उपसर्ग लक्षित होते हैं॥१५-१६॥

निवर्त्तेद्यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत्।
विकारैः क्लिश्यते जातु न स शारीरमानसैः॥१७॥

रजोमोहहिताहारपरस्य स्युस्त्रयो गदाः। वसासृकक्लेदनावाहिस्त्रोतोरोधसमुद्भवाः॥१८॥

मदमूर्च्छोपसंन्यासा यथोत्तरबलोद्भवाः। मदोऽत्र दोषैः सर्वैस्तु रक्तमद्यविषैरपि॥१९॥

रक्ताल्पत्वाद्धूताभासश्चलश्छलितचेष्टितः। रूक्षश्यामारुणतनुर्मद्ये वातोद्भवे भवेत्॥२०॥

जो इन्द्रियों को वश में रखने वाला मानव मद्यदोषों की विवेचना करके मद्यपान से दूर रहता है, वह कभी भी शरीर तथा मानस विकारों का क्लेश नहीं उठाता। रोगग्रस्त, मोहग्रस्त तथा अहितप्रद भोजन करने वाले मनुष्य का रस, रक्त, क्लेदवाही स्रोत अवरुद्ध होकर नाना रोगोत्पत्ति करता है। मद, मूर्च्छा, संन्यासादि रोग उसमें क्रमशः बल प्राप्त करते जाते हैं। रक्त, मद्य, विष दोष से मदात्ययरोग जन्म लेता है। वातज मदात्ययरोग में रक्त की अल्पता के कारण रोगी श्रीभ्रष्ट, चंचल तथा छल तत्पर होता है। उसका देह रुक्ष, पिंगल तथा अरुण वर्ण हो जाता है॥१७-२०॥

पित्तेन क्रोधनो रक्तपीताभः कलहप्रियः।
स्वप्नोऽसम्बद्धवाक्यादिः कफाद् ध्यानपरो हि सः॥२१॥

सर्वात्मा सन्निपातेन रक्तस्तम्भाङ्गदूषणम्। पित्तलिङ्गं तु मद्येन विकृतेहः स्वराज्ञता॥२२॥

विशेत्कम्पातिनिद्रा च सर्वेभ्योऽभ्यधिकं श्रमः।
लक्षयेल्लक्षणोत्कर्षाद्वातादीन्लक्षणादिषु ॥२३॥

पित्तजनित मदात्यय के कारण अत्यन्त क्रोध वृद्धि होती है। व्यक्ति का देह रक्तपीत वर्ण हो जाता है। वह कलही होता है। पैत्तिक मदात्यय में स्वप्न, अटपट बोलना आदि लक्षण उद्गत होते हैं। वह सदा किसी ख्याल में डूबा लगता है। सान्निपातिक मदात्ययरोगी में सभी लक्षण आ जाते हैं। उसमें रक्तस्तम्भ तथा अंगस्तम्भ दिखाई देता है। मदात्ययरोग में प्रायशः पित्तचिह्न व्यक्त होता है। वह विकृत चेष्टा होकर परिचितों की आवाज नहीं पहचान सकता। इस रोग में विशेषतः कम्प, अति निद्रा, अति थकान का बोध होता है। इन लक्षणों को जांचकर वातिकादि किस प्रकार का मदात्ययरोग हुआ है, इसका निराकरण करे॥२१-२३॥

अरुणं नीलकृष्णं वा खमापश्यन्विशेत्तमः। शीघ्रञ्च प्रतिबुध्येत हृत्पीडा वेपथुर्भ्रमः॥२४॥

कासः श्यावारुणच्छायामूर्च्छा च मारुतात्मिका।
पित्तेन रक्तं पीतं वा नभः पश्यन्विशेत्तमः॥२५॥

विबुध्येत च सस्वेदो दाहतृष्णोपपीडितः। भिन्नवत्पीतनीलाभो रक्तपित्तारुणेक्षणः॥२६॥

इन लक्षणों का परीक्षण करके देखे। मदात्ययरोगी आकाश को लाल, नीला किंवा काला देखता है। सहसा वह अचेतन, अज्ञानाच्छन्न हो जाता है तथा भूपतित हो जाता है। क्षणकाल में पुनः सचेतन होकर उठ बैठता है। लेकिन वह हृदयपीड़ा, कम्प तथा भ्रम से मुक्त नहीं होता। कास होना, पिंगलवर्णी किंवा अरुणवर्णी छाया का दर्शन, मूर्च्छा—यह सब वातिक मदात्यय लक्षण हैं। पित्तजनित मदात्यय में रोगी आकाश को लाल अथवा पीला देखकर हठात् अचेतन होता है। वह पसीना, देह की जलन तथा प्यास से पीड़ित होकर पुनः सचेत हो जाता है। उसे शरीर भिन्न तरह का लगता है। वह पीली तथा नीली छाया देखता है। वह अधिक बकबक करता है। उसके नेत्र पीले तथा लाल हो जाते हैं॥२४-२६॥

कफे स मेघसङ्काशं पश्यत्याकाशमाविशेत्।
तमश्चिराच्च बुध्येत हृल्लासः सुप्रसेकवान्॥२७॥

गुरुभिः स्तिमितैरङ्गै राजधर्मावबन्धवत्। सर्वाकृतिस्त्रिदोषैश्च अपस्मार इवापरः॥२८॥

पातयत्याशु निश्चेष्टं विना बीभत्सचेष्टितैः। दोषेषु मदमूर्च्छायां कृतवेगेषु देहिनाम्॥२९॥

स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासेनौषधैर्विना।
वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबलोऽमनाः॥३०॥

स संन्यासान्निपतिताः प्राणघातेन संश्रयाः।
भवन्ति तेन पुरुषाः काष्ठभूता मृतोपमाः॥३१॥

कफ जनित मदात्यय में रोगीगण आसमान को मेघ से छाया देखते हैं। वे अज्ञान होकर गिर जाते हैं तथा देर से उनमें चेतना लौटती है। उनमें हल्लास तथा मुखप्रसेक लक्षण व्यक्त रहते हैं। शरीर में भारीपन तथा अज्ञानतः (चेतनारहित स्थिति) मदात्ययरोगी राजधर्माक्रान्त अर्थात् आलसी होते हैं। त्रिदोष से उत्पन्न तथा आलस्य से घिरा मदात्ययरोग अपस्मार जैसा होता है। इससे उदित मूर्च्छा में दोषों की प्रबलता के कारण वह कोई गलत काम न करने पर भी सहसा चेष्टाहीन होकर गिर जाता है। औषधि के

उपयोग के बिना भी मदात्यय जनित मूर्च्छा स्वयं समाप्त हो जाती है। इस रोग में रोगी की वाणी, देह तथा मन की चेष्टा विकृत हो जाती है। वह उसे बली तथा अमनस्क कर देती है। इस रोग से प्रभावित व्यक्ति प्राण का आघात पाकर काष्ठ की तरह भूमि पर गिर जाता है॥२७-३१॥

म्रियेत शीघ्रं शीघ्रं चेच्चिकित्सा न प्रयुज्यते। अगाधे ग्राहबहुले सलिलौघ इवार्णवे॥३२॥
संन्यासे विनिमज्जन्तं नरमाशु निवर्त्तयेत्। मदमानो रोषतोषं लभेयुरिति निश्चितम्॥३३॥
युक्त्या युक्तं च विमुक्तिहेतवे मद्यमयुक्तं नरकादेः।
सामर्थ्यं प्रकृतिसहायमथवा वयांसि कुरुते।
प्रविविच्य तनुं रूपं पिबति ततः पिबत्यमृतम्॥३४॥

॥इति गारुडे महापुराणे मदात्ययादिनिदानं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५५॥

इस स्थिति में वह मर भी सकता है। यदि इस मदात्यय में सहसा रोगी की मृत्यु के लक्षण दीखें, तब चिकित्सा व्यर्थ है। अत्यन्त गहरे ग्राह आदि से भरे मदात्ययरूपी सागर में डूबे व्यक्ति को शीघ्र बचाना चाहिये। मदात्यय रोगी कभी क्रोध, कभी सन्तोष व्यक्त करता है। इसके पहले मद्य के जो दोष मैंने कहे हैं, अविधि से पीये गये मद्यपान का ही वह दोष होता है। इससे मनुष्य को नरक आदि झेलना पड़ता है। सविधि मद्यपान मुक्ति का हेतु होता है। तब मद्य शारीर शक्ति, सामर्थ्य तथा कान्ति बढ़ाता है। यह यौवन भी स्थिर रखता है। यह विवेचना करके जो मद्य पीता है, उसके लिये यही अमृत पान है॥३२-३४॥

॥एक सौ पचपनवां अध्याय समाप्त॥

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्शनिदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

अथार्शसां निदानञ्च व्याख्यास्यामि च सुश्रुत।
सर्वदा प्राणिनां मांसे कीलकाः प्रभवन्ति ये॥१॥
अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधनात्।
दोषस्त्वङ्मांसमेदांसि सन्दूष्य विविधाकृतीन्॥२॥
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः। सहजन्मान्तरोत्थेन भेदो द्वेधा समासतः॥३॥
शुष्कग्रावा विभेदाश्च गुदस्थानानुसंश्रयाः। अर्द्धपञ्चाङ्गुलिस्तस्मिंस्तिस्त्रोऽर्द्धाङ्गुलिसंस्थिताः॥४॥

रक्तप्रवाहिणी तासामन्त्रमध्ये विसर्जिनी। बाह्यासंवरणे तस्या गुदादौ बहिरङ्गुले॥५॥
सार्द्धाङ्गुलप्रमाणेन रोमाण्यत्र ततः परम्। तत्र हेतुः सहोत्थानां बाल्ये जीवोपतप्तता॥६॥
अर्शसां बीजसृष्टिस्तु मातृपित्रुपचारतः। देवतानां प्रकोपे हि सन्निपातो हि चान्नतः॥७॥
असाध्या एवमाख्याताः सर्वरोगाः कुलोद्भवाः। सहजानि विशेषेण रूक्षदुर्दर्शनानि तु।
अन्तर्मुखानि पाण्डूनि दारुणोपद्रवाणि च॥८॥
षोढार्शांसि पृथग्दोषसंसर्गनिश्चयत्वतः।
शुष्काणि वातश्लेष्माभ्यामार्द्राणि त्वस्य पित्ततः॥९॥
दोषप्रकोपहेतुस्तु प्रागुक्तमलसादिनि। अग्नौ मलेऽतिनिचिते पुनश्चातिव्य वायतः॥१०॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब अर्शरोग निदान कहूंगा। प्राणीगण के मांस में अनवरत कीलक उत्पन्न होते हैं। गुह्यद्वार का मार्ग रोक कर जो कीलक पैदा होते हैं, वे अर्श कहे जाते हैं। ये प्राय: दो तरह के होते हैं—सहज एवं जन्मान्तरज। गुह्य में सूखे अग्रभाग वाला अथवा विभिन्न अग्रभाग वाला मांस प्ररोह जन्म लेता है। गुह्य स्थान साढ़े पांच अंगुल का होता है। उसमें से साढ़े तीन अंगुल में अर्श रोग जन्म लेता है। इन सभी मांसांकुर में जो रक्तप्रवाही शिरायें हैं, उनके द्वारा रक्तस्राव होता है। यही है आभ्यन्तरिक अर्श।

बाह्य अर्श में गुह्यावरण के एक अंगुल भाग में अंकुर होता है। अन्य अर्शरोग में आधे अंगुल में अर्शोत्पत्ति होती है। इसके बाहरी भाग में रोम जन्म लेता है। बाल्यावस्था में अत्यन्त उपताप भोग करने से जो अर्शरोग उत्पन्न होता है, वह है सहोत्थ अर्श। माता-पिता के दोष से अर्श रोग के बीच का जन्म होता है। देवता के कोप तथा कदन्न खाने से भी यह रोगोत्पत्ति होती है। जो रोग कुलक्रम से (अनुवांशिक) हैं, वे असाध्य होते हैं। जो सहोत्थ अर्श है, वह रुक्ष, दुर्दर्शन तथा अन्तर्मुखी एवं पाण्डुवर्ण होते हैं। ऐसे अर्शरोग से दारुण उपद्रव होता है। अत: अर्शरोग छ: तरह के कहे जा सकते हैं। ये हैं वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक तथा पैत्तश्लेष्मिक। वातपित्तज अर्शरोग की वली सूखी होती है। पित्तज अर्श की वली आर्द्र होती है। इनके दोष उत्पन्न का कारण पहले कह दिया है। इसके अलावा अग्निमन्दता, मलसंचय तथा अधिक व्यवाय कर्म से भी अर्श रोग उत्पन्न होता है॥१-१०॥

पानसंक्षोभविषमकठिनक्षुद्रकाशनात्। वस्तिनेत्रगलौष्ठोत्थतलभेदादिघट्टनात्॥११॥
भृशशीताम्बु संस्पर्शप्रततातिप्रवाहणात्। गतमूत्रशकृद्वेगधारणात्तदुदीरणात्॥१२॥
जुगुप्सातीसारमेव ग्रहणी सोऽप्युपद्रवः। कर्षणाद्विषमादेश्च चेष्टाभ्यो योषितां पुनः॥१३॥
आमगर्भप्रपतनाद् गर्भवृद्धिप्रपीडनात्। ईदृशैश्चापरैर्वायुरपानः कुपितो मले॥१४॥
पायोर्वलीषु संवृत्तिरुद्धासु पर्वमूर्त्तिषु। जायन्तेऽर्शांसि तत्पूर्वं लक्षणं वह्निमन्दता॥१५॥

अतिपान, अल्पपान तथा अनमयपानरूपी पानदोष, विषम कठिन रुक्ष द्रव्य भोजन, वस्ति-नेत्र-गला-ओंठ आदि का दृढ़ता से मर्दन अर्शरोग का कारण है। अधिक मात्रा में हिमजल स्पर्श, निरन्तर घोड़े आदि की सवारी, मलमूत्रादि का वेग रोकना, वेग से मल निकलना भी अर्शरोग का कारण है। सदा घृणा, अतिसार तथा ग्रहणी से भी यह रोगोपद्रव होता है। विषम वस्तु का कर्षण करने का प्रयत्न भी इसका

कारण है। आम गर्भपात तथा गर्भवृद्धि पीड़ा से नारीगण में अर्शरोग उत्पन्न होता है। इन कारणों से अपान वायु कुपित होकर मल को पायुस्थान की वली में रोक देता है। अन्ततः पर्व के स्थान पर सन्ताप उत्पन्न होकर अर्शरोग व्यक्त होता है। अग्निमान्द्य इसका पूर्व लक्षण है॥११-१५॥

विष्टम्भः सास्थिसदनं पिण्डिकोद्वेष्टनो भ्रमः।
सन्दाहो नेत्रयोः शोथः शकृद्भेदोऽथ वा ग्रहः॥१६॥
मारुतः पुरतो मूढः प्रायो नाभेरधश्चरन्।
सरक्तः परिव्यक्तश्च कृच्छ्रातिगच्छति श्वसन्॥१७॥
अंत्रकूजनमाटोपः क्षारितोद्गारभूरिता। प्रभूतमूत्रमल्पविडश्रद्धाधूम्ररकोऽम्लकः॥१८॥
शिरःपृष्ठोरसां शूलमालस्यं भिन्नवर्त्तता। इन्द्रियार्थेषु लौल्यञ्च क्रोधो दुःखोपचारतः॥१९॥
आशङ्का ग्रहणीशोषपाण्डुगुल्मोदराणि च। एतान्येव विवर्द्धन्ते जातेष्वहतनामसु॥२०॥

विष्टम्भ, अस्थिभेद, पीड़कों की उत्पत्ति, नेत्रदाह, शोष, मलभेद, कलग्रह अर्शरोग का पूर्वलक्षण है। यह ऐसा रोग है, जिसमें शरीर के पुरोभाग में वायु मूढ़वत रहता है। वह सर्वदा नाड़ी के अधोदेश में संचार करता अत्यन्त तकलीफ सहित रक्त के साथ निकलता है। इस रोग स्थिति में आटोप, क्षारयुक्त डकार, भारी मात्रा में मूत्र होना, अल्प मल निर्गमन, घृणा, अम्लयुक्त डकार, आंखों के आगे धूआं (अन्धेरा) छाना, शिरोवेदना, पीठ में पीड़ा, वक्षपीड़ा, आलस्य, इन्द्रिय सुखलाभ की कामना, अल्प दुःख में ही क्रोध, सदा आशंका बनी रहना, शोष, पाण्डु, गुल्म तथा पेट का दर्द, यह स्थिति बनती है। यही वृद्धि होती है॥१६-२०॥

निवर्त्तमानोऽपानो हि तैरधोमार्गरोधतः। क्षोभयेदनिलानन्यान् सर्वेन्द्रियशरीरगान्॥२१॥
तथा मूत्रशकृत्पित्तकफस्थानानि शोषयन्। गृह्णात्यग्निं ततः सर्वे भवन्ति प्रायसोऽर्शसः॥२२॥
कृशो भृशं कृशोत्साहो दीनः क्षामोऽथ निष्प्रभः।
असारो विगतच्छायो जन्तुदग्ध इव द्रुमः॥२३॥
कृच्छ्रैरुपद्रवैर्ग्रस्तो यक्ष्मोक्तैर्मर्मपीडनैः। तथा कासपिपासास्यवैरस्यश्वासपीनसैः॥२४॥
क्लमाङ्गभङ्गवमथुक्षवथुश्वयथुज्वरैः। क्लैब्यबाधिर्य्यस्तैमित्यशर्करापरिपीडितः॥२५॥

अनियम पूर्वक अर्शरोग हटाया नहीं ज़ा सकता। यह अधोमार्ग का निरोध करके सभी इन्द्रियों तथा शरीरगत वायु को विक्षुब्ध करता है। वायु मूत्राशय, मलाशय तथा पित्तस्थान का शोषण करता अग्नि ग्रहण करता है। इसी से सभी अर्श रोगोत्पत्ति होती है। इसका रोगी जले वृक्ष की तरह अतीव कृश, उत्साहहीन, दीन, क्षीण, निष्प्रभ, असार, कान्तिहीन होता है। इसका रोगी कष्ट, उपद्रव, यक्ष्मारोग में कही मर्मपीड़ा सहता है। कास, पिपासा, मुख की विकृत स्थिति, श्वास, पीनस का रोगी हो जाता है। थकान, अंग टूटना, वमन, हिचकी, शोथ ज्वर विकलता, बधिरता, स्तैमित्य, शूगर रोग से आक्रान्त हो जाता है॥२१-२५॥

क्षामो भिन्नस्वरो ध्यायन् मुहुः ष्ठीवन्नरोचकी। सर्वमर्मास्थिहृन्नाभिपायुवङ्क्षणशूलवान्।
गुदेन स्रवता पित्तं पललोदकसन्निभम्॥२६॥

इस रोग का फल है क्षीणता, स्वरभंग, चिन्ता, पुनः-पुनः थूकना, अरुचि, अस्थि-हृदय-नाड़ी-पायु-वक्षण स्थान में पीड़ा। अर्शरोग में रोगी के गुह्य से मांस की धोअन जैसा पित्त क्षरण होता है॥२६॥

विशुष्कश्चैव मुक्ताग्रं पक्वमाचान्तवान्तरम्।
पित्तात् पीतं हरिद्राक्तं विच्छिन्नश्चोपविश्यते॥२७॥
गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः।
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः॥२८॥
मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः। बिम्बखर्जूरकर्कन्धुकार्पासफलसन्निभाः॥२९॥

कभी कोई अर्श अपनी ही अवस्था में यथावत् रहता है। कभी-कभी पकने से उसका अग्रभाग खुल जाता है। पित्तजनित अर्श पीतवर्ण एवं विच्छिन्न हो जाता है, उससे हरिद्रा वर्ण का रक्त निकलता है। जिस किसी को वातप्रकोप से अर्श उत्पन्न है, उसके मलद्वार की वलि में जो मांस के अंकुर जन्मते हैं, वे प्रायशः स्राव से रहित होते हैं। उनमें तनिक-तनिक वेदना होती है। ये सभी अधिक वृद्धि नहीं पाते। वह पिंगल, रक्तवर्ण, कठिन, अपिच्छिल, कर्कश, खुरदुरा, परस्पर असमान मुख वाले तथा सूक्ष्म रूप अग्रभाग वाले होते हैं। इन मांस अंकुरों का मुख फूटा होता है। इन सभी अर्शरोग की वली बिल्वफल, बदरीफल, खजूरफल तथा कपास बीज की तरह कही गयी है॥२७-२९॥

केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः।
शिरःपार्श्वांसज़ङ्घो रुवङ्क्षणाद्यधिकव्यथाः॥३०॥
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः। कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः॥३१॥
तैरार्त्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम्। रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते॥३२॥
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते। गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च॥३३॥
पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः।
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः॥३४॥
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः। दाहपाकज्वरस्वेद तृण्मर्च्छाऽरुचिमोहदाः॥३५॥

किसी अर्शरोग में मांसांकुर की वलि कदम्बफूल जैसी, किसी में सरसों के आकार की होती है। इस रोग में शिरः पार्श्व, अंस, जंघा, उरु में अधिक वेदना होती है तथा थूक, डकार, विष्टम्भ, हृद्ग्रह, अरुचि, कास, श्वास, अग्नि की मन्दता, कान में आवाज गूंजना तथा भ्रमादि उपद्रव होते हैं। इस रोग से ग्रस्त मनुष्य अधः शब्द, वेदना के साथ कठिन ग्रन्थियुक्त, पिच्छिल, पाषाणवत् बंधा मल अल्प मात्रा में त्याग करता है। रोगी का चर्म, नख, विष्ठा, मूत्र, चक्षु तथा मुख काला पड़ जाता है। वात से युक्त अर्श का रोगी गुल्म, प्लीहा, उदर पीड़ा, अष्ठीला जैसे उपद्रव को भोगता है। जिसमें कुपित पित्त के कारण अर्शरोग हुआ है, उसके गुह्य की वली स्थित मांस के इन अंकुर का मुख नीला या रक्तपीत और कृष्णाभ होता है। इन अंकुरों के मुख से तरल रक्तस्राव होता है। ये मांस के अंकुर आमगन्ध वाले, अल्प कोमल तथा लम्बे होते हैं। कोई मांसांकुर आमगन्ध वाला, अल्पकोमल तथा लम्बा होता है। कोई तोते की जिह्वा

की तरह सूक्ष्म, कोई यकृत पिण्ड जैसे, कोई जोंक के मुख की आभा लिये होते हैं। दाह, शुष्कता, पसीना, अरुचि तथा मोहादि उपद्रव से भी रोगी ग्रस्त रहता है॥३०-३५॥

सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः। यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः॥३६॥

श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः।
उत्सन्नोपचितस्निग्धस्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥३७॥
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः।
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः॥३८॥

वह रोगी कभी नीलवर्ण, कभी पीतवर्ण, कभी रक्तवर्ण पित्त के साथ अपक्व तथा उष्ण मल त्याग करता है। उक्त मांसांकुर यव की तरह बीज से स्थूल होता है। तब रोगी का चर्म, नख, मल-मूत्र, हरित, पीत किंवा हल्दी रंग का हो जाता है। जिसे श्लेष्मा की अधिकता से अर्शरोग होता है, उसके गुह्यस्थ इन मांस के अंकुरों का मूल अतीव विस्तीर्ण होता है। वह घना, तनिक-तनिक पीड़ा वाला, शुक्लवर्ण, दीर्घ, स्थूल, स्नेहयुक्त, अनम्र, वर्त्तुलाकार, गुरु द्रव्य की तरह, भार वाला, अचल, अकर्कश, आर्द्र स्थिति वाला, मणि की तरह मसृण, अनेक खुजलाहट वाला तथा स्पर्श में कोमल होता है। ये मांसांकुर कभी बांस के अंकुर जैसे, कोई कांटेदार कील ऐसे, कोई गाय के थन जैसे होते हैं॥३६-३८॥

वङ्क्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः। सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः॥३९॥
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरक्षारकारिणः। क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः॥४०॥

अर्शव्याधि पीड़ित व्यक्ति के ऊरु के ऊपर स्थित दो सन्धियों में बन्धन जैसी पीड़ा होती है। किसी रोगी के मल द्वार, वस्ति, नाभि में खिंचाव जैसी वेदना होती है। वह रोगी श्वास, कास, वेग से वमन, मांस के उन अंकुरों के मुख से होने वाले जलस्राव से पीड़ा पाता है। वह अरुचि, नाक से स्राव, मेह, मूत्रकृच्छ्र, शिरोवेदना, जाड्य, शीत, स्त्री संग में उत्साह, ज्वर, अग्निमान्द्य, वमन, आम रोग उपद्रवों से ग्रस्त रहता है॥३९-४०॥

वसाभसकफप्राज्यपुरीषाः सप्रवाहिकाः।
न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः॥४१॥

संसृष्टलिङ्गात्संसर्गनिचयात्सर्वलक्षणाः। रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः॥४२॥
वटप्ररोहसदृशाः गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः। तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णञ्च गाढविट्कप्रपीडिताः॥४३॥

स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः।
भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः॥४४॥

हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः। मुद्गकोद्रवजम्बीरकरीरचणकादिभिः॥४५॥

उस रोगी का मल वसा की तरह चमक वाला, कफ से सना प्रचुर रूप से बहिर्गत् होता है। मांसांकुरों से क्लेद अथवा रक्तस्राव भी नहीं होता। दृढ़ (कड़े) मल की पीड़ा भी उसे नहीं होती। उसका चर्म पाण्डु वर्ण तथा स्निग्ध लगता है। जिसे त्रिदोष जनित अर्शरोग होता है, उसे पूर्वोक्त त्रिदोषज लक्षण

दिखलाई देते हैं। जिसे रक्ताधिक्य से अर्शरोग होता है, उसके मलद्वारस्थ ये मांसांकुर पिण्डज, बवासीर लक्षणयुक्त होते हैं। वे विशेष करके वट की लटकती जड़, घुमची तथा मूंगे जैसे होते हैं। ये मांसांकुर अतीव कठिन मल से प्रपीड़ित होते हैं, तब इनमें से हठात् गर्म तथा दुष्ट रक्तस्राव होता है। अधिक रक्तस्रावयुक्त रोगी का देह मेंढक जैसा पीला पड़ जाता है। रोगी रक्तक्षय दुःख से पीड़ित रहता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति विवर्ण देह, कृश, उत्साहहीन, दुर्बल तथा विकल इन्द्रिय रहता है। मुद्ग, कोदो, जंबीर, करीर, चना आदि रुक्ष द्रव्य के भोजन से वायु कुपित होकर प्रबल होता है। वह विट् स्थान पर आघात करके अधोगामी श्रोतों को रोक देता है॥४१-४५॥

रूक्षैः संग्राहिभिर्वायुर्विट्स्थाने कुपितो बली।
अधोवहानि स्रोतांसि संरुध्याधः प्रशोषयन्॥४६॥
पुरीषं वातविण्मूत्रसङ्गं कुर्वीत दारुणम्। तेन तीव्रा रुजा कोष्ठपृष्ठहृत्पार्श्वगा भवेत्॥४७॥
आध्मानमुदरे विष्ठा हृल्लासपरिवर्त्तनम्। बस्तौ च सुतरां शूलो गण्डश्वयथुसम्भवः॥४८॥
पवनस्योर्ध्वगामित्वात् ततश्छर्द्यरुचिज्वराः। हृद्रोगग्रहणीदोषमूत्रसङ्गप्रवाहिकाः॥४९॥
बाधिर्य्यातिशिरःश्वासशिरोरुक्कासपीनसाः। मलविकारतृष्णासु पित्तगुल्मोदरादयः॥५०॥
एते च वातजा रोगा जायन्ते दारुणाः स्मृताः। दुर्नाम्ना मृत्यूदावर्त्तपरमोऽयमुपद्रवः॥५१॥

तब वह मूत्र-मल का शोषण करके उसे अतीव कठोर बना देता है। इससे कोष्ठ, पार्श्व, पृष्ठ तथा हृदय में दारुण दर्द होता है। अर्श रोग होते ही आध्मान, उदर रोग, मलरोध, मुखस्राव, वस्तिशूल तथा गण्डस्थल में शोथ हो जाता है। वायु ऊर्ध्वगामी होने से उसके कारण वमन, अरुचि, ज्वर, हृदय के रोग, ग्रहणी, मूत्रदोष, प्रवाहिका, वधिरता, शिरोवेदना, श्वास, सिर घूमना, कास, पीनस, मल विकार, पिपासा, रक्तवमन, गुल्म, उदरामय तथा अनेक दारुण वायु रोग हो जाते हैं। दुर्नामा, मृत्यु, उदावर्त्त ये अर्शरोग के ही उपद्रव हैं॥४६-५१॥

वाताभिभूतकोष्ठानां तैर्विनापि प्रजायते।
सहजानि तु दोषाणि यानि चाभ्यन्तरे बलौ।
स्थितानि तान्यसाध्यानि याप्यन्तेऽग्निबलादिभिः॥५२॥
द्वन्द्वजानि द्वितीयायां बलौ यान्याश्रितानि च।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च॥५३॥
बाह्यायां तु बलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पत्तिकानि च॥५४॥

वायु से जिनका कोष्ठ आक्रान्त है, उनको तो पूर्वोक्त कारणों के बिना भी अर्शरोग होता है। जब अर्शरोग आभ्यन्तर वली में उत्पन्न होते हैं, वे अर्श कुछ दिन बाद चिकित्सा से असाध्य हो जाते हैं। रोगी की अग्नि तथा बल का आधिक्य हो जाता है। तब यह रोग व्याप्य होता है। द्वन्द्वज अर्शरोग द्वितीय वली का आश्रय लेकर जब उत्पन्न होता है, तब यदि इसकी अग्नि तथा बल अधिक रहे, तब यह रोग कुछ

व्याप्य हो जाता है। द्वन्द्वज अर्शरोग में द्वितीय वली का आश्रय लेकर उत्पन्न होने पर यदि वर्ष भर के भीतर चिकित्सा नहीं होती, तब इसे कृच्छ्रसाध्य जाने। यदि यह वाह्य वली में अर्शोरोग का जन्म हो, तब यदि यह एक दोष वाला तथा शीघ्र उत्पन्न हो, तब इसे चिकित्सा से ठीक किया जा सकेगा॥५२-५४॥

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि तु।
गण्डूपदास्य रूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च॥५५॥
व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं च तद्विदुः॥५६॥
वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितवक्त्रता।
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता॥५७॥
अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान्।
तान्याशु हि गदं कार्यं कुर्य्युरूर्ध्वगुदोदरम्॥५८॥

।इति गारुडे महापुराणे अर्शोनिदानं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५६।।

मेढ्रादिज तथा नाभिज अर्शरोगांकुर केंचुआ के मुखवत् पिच्छिल तथा कोमल हो, तब वह वातादिज अर्शरोग के समान लक्षणान्वित होगा। समस्त शरीर में व्याप्त व्यान वायु श्लेष्मा ग्रहण करके चर्म के बाहर की ओर कीलकवत् अचल तथा कर्कश जो मांसांकुर उत्पन्न करता है, वह चर्मकीलक है। वातज चर्मकीलक रोग में मांसांकुर का मुख काला होता है। कफज चर्मकीलक रोग में मांसांकुर स्निग्ध, ग्रथित तथा गात्र के समान वर्णात्मक होते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति अर्शरोग होने पर शीघ्र उसका प्रतिकार करे। अन्यथा नाना प्रकार के गुह्य के तथा पेट के रोग उत्पन्न हो जाते हैं॥५५-५८॥

॥एक सौ छप्पनवां अध्याय समाप्त॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहणी-अतिसार निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

अतीसारग्रहण्योश्च निदानं वच्मि सुश्रुत।
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च षड्विधः॥१॥
अतीसारः स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः। विशुष्कान्नवसास्नेहतिलपिष्टविरूढकैः॥२॥

मद्यरूक्षातिमात्रादिदिवसादिपरिभ्रमात्। कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितानिलः॥३॥
विस्रंसयत्यधो रक्तं हत्वा तेनैव चानलम्। व्यापर्य्यान्नशकृत्कोष्ठपुरीषद्रवतादयः॥४॥
प्रकल्पेऽतीसारस्य लक्षणं तस्य भाविनः। भेदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रस्वेदो मलग्रहः॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं ग्रहणी तथा अतिसार निदान कहता हूं। अतिसार के छः भेद हैं—वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सान्निपातिक, भयोत्पन्न, शोकज। अधिक जल पीने, शुष्क अन्न भोजन, स्नेह-वसा-तिलपिष्ट, मद्य, रुक्षद्रव्य का अधिक सेवन से अतिसार रोग होता है। दिवानिद्रा, रात जागरण, क्रिमिदोष, मलमूत्रादि वेग रोकना आदि कारण से वायु कुपित होकर कोष्ठगत अग्नि को बुझा देता है तथा शरीर का रक्त अधः जाने लगता है। वायु तथा अन्न शकृत कोष्ठ का आश्रय लेकर तथा मल की द्रव स्थिति को लेकर अतिसारोत्पत्ति करता है। हृदय, गुह्य, कोष्ठ में भग्नवत् पीड़ा, अंगों की अवसन्नता तथा मलग्रह अतिसार के पूर्व लक्षण हैं॥१-५॥

आध्मानमविपाकश्च तत्र वातेन विज्वरम्। स्वल्पाल्पं शब्दशून्याढ्यं विरुद्धमुपवेश्यते॥६॥
रूक्षं सफेनमस्वच्छं ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः। तथा दग्ध्वा गुदामांसं पिच्छिलं परिकर्त्तयन्।
सशुष्कभ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिःश्वसन्॥७॥
पित्तेन पीतमसितं हारिद्रं शाद्वलप्रभम्। सरक्तमतिदुर्गन्धं तृण्मूर्च्छास्वेददाहवान्॥८॥

वातज अतिसार रोग में आध्मान, अविपाक, बिना शब्द कुछ-कुछ वमन, फेनिल अस्वच्छ मल निकलना किंवा बारम्बार ग्रथित मलभेद होता है। इस रोग में मलद्वार में दाह तथा कटने जैसी पीड़ा होती है। मल भी पिच्छिल हो जाता है। वातिक अतिसार में रोगी को ज्वर नहीं होता। तब मल द्वारा सूखा तथा भ्रष्ट होता है तथा रोगी को रोमांच तथा श्वास होता है। पित्तज अतिसार में पीला, काला, हल्दी के रंग का, हरा, रक्तयुक्त अथवा दुर्गन्धित मल निकलता है। इस रोग में रोगी को मूर्च्छा, तृष्णा, पसीना तथा दाह होता है॥६-८॥

सशूलपायुसन्तापपाकवान्श्लेष्मणा घनम्। पिच्छिलं तत्रानुसारमल्पाल्पं सप्रवाहिकम्॥९॥
सरोमहर्षः सोत्क्लेशो गुरुर्वस्तिगुदोदरः। कृतेऽप्यकृतसङ्गश्च सर्वात्मा सर्वलक्षणः॥१०॥

श्लेष्मज अतिसार में मलद्वार में पीड़ा, सन्ताप होता है। घना, पिच्छिल, प्रवाहयुक्त, तनिक-तनिक मल निकलता है। त्रिदोषोत्पन्न अतिसार में पहले वाले तीनों लक्षण रहते हैं। रोमांच, उत्क्लेश, वमन, मलद्वार तथा उदर में भारीपन होता है। रोगी संज्ञाहीन हो जाता है। किये कार्य को भी बिना किया समझता है॥९-१०॥

भयेन क्षुभिते चित्ते शयितो द्रावयेच्छकृत्।
वायुस्ततो निवार्य्येत् क्षिप्रमुष्णं प्रविप्लवम्॥११॥
वातपित्ते समं लिङ्गमभूत्तद्वच्च शोकतः। अतीसारः समासेन द्वेधा सामो निरामकः॥१२॥
शकृद्दुर्गन्धमाटोपविष्टम्भार्त्तिप्रसेकिनः। विपरीतो निरामस्तु कफात्कोऽपि न मज्जति॥१३॥
अतीसारेषु यो नातियत्नवान्ग्रहणीगदः। तस्य स्यादग्निनिर्वाणकरैरित्यनुसेवितैः॥१४॥

सामं शकृन्निरामं वा जीर्णं येनातिसार्य्यते।
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः।
सामशीर्णमजीर्णेन जीर्णे पक्वं तु नैव च॥१५॥

जब भय से चित्त क्षुभित होता है, तब मल द्रवरूप ले लेता है। तत्क्षण उष्णमल निकलने लगता है। वातपैत्तिक अतिसार में वातिक तथा पैत्तिक अतिसार लक्षण प्रकट होते हैं। शोकज अतिसार में भी भय से उत्पन्न अतिसार लक्षण प्रकट होते हैं। साधारण अतिसार दो तरह का होता है—साम तथा निराम। साम अतिसार में मल में भयानक दुर्गन्ध होती है। इसकी विपरीत स्थिति निराम अतिसार की होती है। साम अतिसार में आरोप, विष्टम्भ तथा प्रसेकादि उपद्रव व्यक्त होते हैं। जब अतिसार में कफ की प्रबलता होती है, तब कौन व्यक्ति उससे ग्रस्त नहीं होगा। यदि व्यक्ति अतिसार का प्रतिकार न करेगा, तब ग्रहणी रोग हो जायेगा। अग्निमन्दता वाले द्रव्य अधिक खाने से जब उदरस्थ अजीर्ण नहीं निकलता, तब साम अतिसार होता है। अधिक मल निकलना ही अतिसार है। यह रोग रोगी का शीघ्र नाश कर देता है। अजीर्णावस्था में सोमातिसार होता है। पक्वावस्था में उक्त अतिसार नहीं होता॥११-१५॥

चिरकृद् ग्रहणीदोषः सञ्चयञ्चोपवेशयेत्।
स चतुर्द्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते॥१६॥
प्राग्रूपाङ्गस्य सदनं चिरात्पवनमल्पकः। प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट्समो भ्रमः॥१७॥
आबद्धोदरता छर्दिः कर्णकेऽप्यनुकूजनम्।
सामान्यलक्षणं कार्श्यं भूमकस्तमको ज्वरः॥१८॥
मूर्च्छा शिरोरुविष्टम्भः श्वयथुः करपादयोः।
तन्द्रानिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः।
पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुजा तीक्ष्णविसूचिका॥१९॥
रुग्णेषु वृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णा परिकर्त्तिका।
जीर्णे जीर्य्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यं समश्नुते॥२०॥

जब अतिसार दीर्घकाल तक बना रहे, तब ग्रहणी रोग हो जाता है। यह भी चार तरह का कहा गया है। यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज। इसके होने के पहले अंगों में अवसाद रहता है तथा दीर्घकाल तक तनिक-तनिक वायु निकलती है। मुखस्राव, मुख की विरसता, अरुचि, तृष्णा, भ्रम, उदरपीड़ा, वमन, कर्ण में अव्यक्त शब्द गूंजना ग्रहणी के सामान्य लक्षण हैं। कृशता, धूमोद्‌गार, श्वास, ज्वर, मूर्च्छा, शिरोवेदना, वक्ष में विष्टाभ, हाथ-पैर में शोथ, तन्द्रा, तालुशोष, अन्धेरा छा जाना, कान में शब्द गुंजन, पार्श, उरु, ग्रीवा तथा वङ्क्षण में पीड़ा, विशूचिका जैसे उपद्रव होते हैं। जो पहले से रोगी हैं, उसमें ये उपद्रव बढ़ते हैं। इस रोग में रोगी क्षुधा-तृष्णा से अत्यन्त उद्विग्न हो जाता है। ग्रहणी रोग की जीर्ण अवस्था में उदर स्फीत हो जाता है, लेकिन भोजन करने पर तनिक स्वस्थता लगती है॥१६-२०॥

वाताद्धृद्रोगगुल्मार्शःप्लीहपाण्डुस्त्वसंज्ञिता। चिराद् दुःखं द्रवं शुष्कं तुन्दारं शब्दफेनवत्।
पुनः पुनः सृजेद्वर्च्चः पायुरुच्छ्वासकासवान्॥२१॥
पीतेन पीतनीलाभं पीताभं सृजति द्रवम्। अत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः॥२२॥
श्लेष्मणा पच्यते दुःखे मलश्छर्दिररोचकाः। आस्योपदाहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसाः॥२३॥
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुम्। उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं संप्रहर्षणम्॥२४॥
सम्भिन्नश्लेष्मसंश्लिष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम्। अकृशस्यापि दौर्बल्यं सर्वजे सर्वदर्शनम्॥२५॥
विभागेऽङ्गस्य ये चोक्ता विषमाद्यास्त्रयो मताः।
तेऽप्यस्य ग्रहणीदोषाः समस्तेष्वस्ति कारणम्॥२६॥
वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमोहोदरभगन्दरम्। अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः सुदुस्तराः॥२७॥

॥इति गारुडे महापुराणे अतिसारनिदानं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

वातिक ग्रहणी रोग में हृदयरोग, गुल्म, अर्श, प्लीहा, पाण्डु रोग, संज्ञाहानि आदि उपद्रव लक्षित होते हैं। इसमें कभी मल में पतलापन, कभी शुष्कता होती है। कभी शब्द के साथ फेनिल मल पुनः-पुनः होता है। रोगी मलद्वार में पीड़ा से, श्वास तथा कास से पीड़ित होता है। पित्तजन्य ग्रहणी रोग में पीताभ तरल मल निकलता है। इस रोग में अम्लमय डकार, हृदय कण्ठ में दाह, अरुचि तथा प्यास से रोगी बहुत दुःख उठाता है। श्लेष्मज ग्रहणी में भी दुःखपूर्वक मल त्याग, वमन, अरुचि, मुखदाह, मुखस्राव, कास, वमनवेग, पीनस के लक्षण उभरते हैं। इस रोग में रोगी का हृदय स्निग्ध तथा उदर स्तम्भित तथा भारी लगता है। मधुर डकार, शरीर में अवसन्नता तथा रोमांच लक्षण व्यक्त होते हैं। इस रोग में श्लेष्मा के साथ गुरु मल निकलता है। रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। त्रिदोषज ग्रहणी में उपरोक्त तीनों लक्षण रहते हैं। पूर्व में अलग-अलग ग्रहणी में जो सब लक्षण कहे गये, सान्निपातिक ग्रहणी में वे सभी लक्षण व्यक्त रहते हैं। अलग-अलग ग्रहणी रोगों का जो कारण कहा गया, वही कारण सभी ग्रहणी रोग में सभी दोषों की वजह हो जाता है। वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, मेह, उदर, भगंदर तथा अर्श महारोग होते हैं। इनसे छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है॥२१-२७॥

॥एक सौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
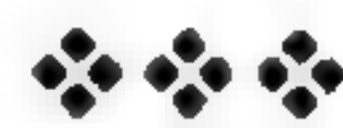
अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मूत्राघात-मूत्रकृच्छ्र निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

अथातो मूत्रघातस्य निदानं शृणु सुश्रुत। वस्तिवस्तिशिरामेढ्रकटीवृषणपायु च॥१॥
एकसंवरणाः प्रोक्ता गुदास्थिविवराश्रयाः। अधोमुखोऽपि वस्तिर्हि मूत्रवाहिशिरामुखैः॥२॥
पार्श्वेभ्यः पूर्य्यते सूक्ष्मैः स्यन्दमानैरनारतम्।
तैस्तैरेव प्रविश्यैवं दोषाः कुर्वन्ति विंशतिम्॥३॥
मूत्राघातः प्रमेहश्च कृच्छ्रान्मर्म समाश्रयेत्। वस्तिवङ्क्षणमेढ्रास्थियुक्तमल्पं मुहुर्मुहुः॥४॥
मूत्राणि वाते कृच्छ्राय पित्ते पीतं सदाहरुक्। रक्तं वा कफजे वस्तिमेढ्रगौरवशोथवान्॥५॥
सपिच्छिलं पिङ्गलञ्च सर्वैः सर्वात्मकं मलैः।
यदा वायुर्मुखं वस्तेर्व्यावर्त्त्य परिशोषयन्॥६॥

धन्वन्तरि कहते हैं—हे सुश्रुत! अब मूत्राघात तथा मूत्रकृच्छ्र निदान सुनो। वस्ति, वस्तिशिरा, मेढ्र, कटि, वृषण, पायु सभी एक संवरण में संवृत स्थिति में गुह्यदेश के अस्थिछिद्र का आश्रय लेकर रहते हैं। वस्तिदेश अधोमुख होकर मूत्रवाही शिरामुख के पार्श्व से समागत सूक्ष्म स्यन्दमान शिरा द्वारा परिपूर्ण रहता है। वायु-पित्तादि दोष उन-उन शिराओं के मुख में प्रविष्ट होकर बीस रोगों को उत्पन्न करते हैं। मूत्राघात तथा प्रमेह मर्माश्रय लेते हैं। ये कठिनाई से चिकित्सा साध्य हैं। इसमें वस्ति, वङ्क्षण, मेढ्र तथा अस्थियों का आश्रय लेकर पुनः-पुनः मूत्र बाहर निकल पाता है। वातज मूत्राघात में अति कष्ट से मूत्र निकल पाता है। पित्तज मूत्राघात में पीतवर्ण मूत्रस्राव हो पाता है। वायु कुपित होकर मूत्राघात रोग उत्पन्न करता है। तब रोगी का मुंह सूखने लगता है॥१-६॥

मूत्रं सपित्तं सकफं सशुक्रं वा तदा क्रमात्। संजायतेऽश्मरी घोरा पित्ताङ्गमिव रोचता॥७॥
श्लेष्माश्रया च सर्वा स्यादथास्याः पूर्वलक्षणम्।
वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशे हि परितोऽतिरुक्॥८॥
वस्तौ च मूत्रसङ्गित्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः।
सामान्यलिङ्गं रुग्नाभिसीवनीबस्तिमूर्द्धसु॥९॥
विस्तीर्णायासमूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने। वध्यं बाधामुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम्॥१०॥

मूत्राघात रोग में वायु की प्रबलता के कारण पित्त, कफ तथा शुक्र के साथ मूत्रस्राव होता है। जैसे पित्त से गौ में गोरोचन उत्पन्न होता है, उसी प्रकार से मूत्राघात रोग से पथरी रोग उदित होता है। सभी पथरी रोग श्लेष्मा का आश्रय लेकर उत्पन्न होते हैं। इसका लक्षण है वस्तिदेश में आध्मान तथा उसके आसन्न देश के चारों तरफ वेदना। यह पूर्वलक्षण है। वस्तिदेश में मूत्रसंसर्ग, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर तथा अरुचि सभी

प्रकार के अश्मरी रोग के लक्षण हैं। इस रोग में नाभि, सीवनी, वस्ति, मस्तक में पीड़ा होती है। यह रोग होने पर मूत्रमार्ग निरुद्ध होता है। मूत्र त्याग अत्यन्त कष्टकर होता है। गोमेद जैसा निर्मल मूत्र स्राव होता है।।७-१०।।

तत्संक्षोभाद्व्रवेत्सासृङ्मांसमध्वनि रुग्भवेत्।
तत्र वाताभिमूत्रार्त्तो दन्तान्खादति वेपते।।११।।
गृह्णाति मेहनं नाभिं पीडयत्यतिलक्षणम्। सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः।।१२।।
श्यामरूक्षाश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव।
पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्णवान्।।१३।।
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी।
बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतला गुरुः।।१४।।
अस्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाथवा सिता।
एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसाम्।।१५।।

पथरी रोग में मूत्रक्षोभ होने पर रक्तस्राव तथा मूत्रमार्ग में अधिक पीड़ा होती है। वातज मूत्ररोग में पीड़ित व्यक्ति पीड़ा के मारे दांत पर दांत दबाता है। उसका शरीर इससे कांपता रहता है। इस रोग में मूत्ररोध होने पर वह मूत्र नाभि का आश्रय लेकर अत्यन्त पीड़ित करता है। इस अवरोध से पीड़ित व्यक्ति का वायु के साथ उष्ण मल निकलता है। पुनः बूंद-बूंद मूत्र निकलता है। वातज पथरी श्यामवर्ण, रूखी तथा कांटेदार होती है।

पित्तज पथरी—रोग से ग्रस्त व्यक्ति को धूप में तपे व्यक्ति जैसा वस्ति में दाह होता है। यह पथरी भिलावा के बीज जैसे आकार भी लाल, पीली अथवा श्वेत होती है। श्लेष्मज पथरीरोग में वस्तिदेश में अधिक पीड़ा होती है। यह पथरी शीतल तथा गुरु होती है। यह गुरु, छोटी, मधुवर्ण अथवा श्वेत होती है। ऐसी अश्मरी प्रायः बालकों को होती है।।११-१५।।

आशयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखी।
शुक्राश्मरी तु महती जायते शुक्रधारणात्।।१६।।
स्थानच्युतममुक्तं वा अण्डयोरन्तरेऽनिलः। शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी।।१७।।
बस्तिरुक् कृच्छ्रमूत्रत्वं शुक्रा श्वयथुकारिणी।
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुष्कमेत्य विलीयते।।१८।।
पीडिते ज्वरकासेऽस्मिन्नश्मर्य्येव च शर्करा।
असौ वा वायुना भिन्ना सा त्वास्मिन्ननुलोमगे।
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विपच्यते।।१९।।
मूत्रसंस्राविणं कुर्य्यात्क्रुद्धो वस्तेर्मुखं मरुत्। मूत्रसङ्गं रुजं कुर्य्यात्कदाचिच्च स्वधामतः।।२०।।

अश्मरी का अल्प उपचय होने पर उसे निकालने में शान्ति होती है। शुक्र का वेग रोकने पर महती शुक्राश्मरी हो जाती है। यदि शुक्र (वीर्य) स्थानभ्रष्ट होकर बाहर न निकले, तब वायु इस पथरी को दोनों अण्डकोष में ले जाता है तथा वहां सुखा देता है। इसी से शुक्रपथरी बनती है। यह शुक्राश्मरी वस्ति में वेदना, मूत्रत्याग में पीड़ा तथा शोथ उत्पन्न करती है। यह उत्पन्न होते ही स्थानभ्रष्ट शुक्र सूख कर लयीभूत होता है। अश्मरी का रोगी ज्वर-कास से पीड़ित होकर क्रमशः शर्करा रोगी हो जाता है। यहां शर्करा वायु से टूट कर अनुलोम स्थिति में मूत्र के साथ निर्गत होती है। वायु की प्रतिलोम गति से वह पक्व रहती है। वायु कुपित होकर वस्ति का मुख मूत्रस्रावी कर देता है। तभी मूत्राधार में मूत्र एकत्र होकर पीड़ा देता है॥१६-२०॥

प्रच्छाद्य वस्तिमुद्धत्य गर्भान्तं स्थूलविप्लुताम्।
करोति तत्र रुग्दाहं स्पन्दनोद्वेष्टनानि च॥२१॥
बिन्दुशश्च प्रवर्त्तेत मूत्रं वस्तौ तु पीडिते। धारावरोधश्चाप्येष वातवस्तिरिति स्मृतः॥२२॥
दुस्तरो दुस्तरतरो द्वितीयः प्रबलोऽनिलः। शकृन्मार्गस्य वस्तेश्च वायुश्चान्तरमाश्रितः॥२३॥
अष्ठीलाभं घनं ग्रन्थिं करोत्यचलमुन्नतम्।
वाताष्ठीलेति सात्मानं विण्मूत्राणि च सर्गकृत्॥२४॥
विगुणः कुण्डलीभूतो बस्तौ तीव्रव्यथानिलः।
अवध्यमूत्रं भ्रमति संस्तम्भोद्वेष्टगौरवम्॥२५॥

तदनन्तर यह वायु वस्ति को ढांक कर ऊपर गर्भाशय में जाता है। इससे उदर स्फीत हो जाता है। वेदना, दाह, स्पन्दन, उद्वेष्टनादि व्याघात होते हैं। वायु द्वारा वस्ति को पीड़ित करने से बूंद-बूंद मूत्रस्राव होता है। कभी धारावाहित मूत्रत्याग नहीं होता। यही है वातवस्ति। यह रोग दुस्तर है। इसमें वायु की प्रबलता रहने से यह अत्यन्त दुस्तर हो जाता है। वायु मल के रास्ते का तथा वस्ति के अन्दर का आश्रय लेकर अष्टीलाभ, घन, ग्रंथियुक्त, उन्नत पथरी बनाती है। यही है वाताष्ठीला। इस रोग में मलमूत्र निकलता है। वायु कुपित होकर कुण्डलीभूत होती है। इससे वस्ति में तीव्र वेदना का उदय होता है। इस प्रकार की स्थिति में मूत्र निर्गम में रुकावट नहीं रहती, तथापि रोगी में भ्रम, सन्तप्तता, उद्वेष्टन तथा शरीर में भारीपन लक्षित होता है॥२१-२५॥

मूलमल्पाल्पमथवा विमुञ्चति सकृत् सकृत्।
वातकुण्डलिकेत्येव शुक्रे तु विधृतेऽचिरे॥२६॥
न निरेति निरुद्धं वा मूत्रातीतं तदल्परुक्। विधारणात् प्रतिहतो वातादावर्त्तितं यदा॥२७॥
नाभेरधस्तादुदरं मूत्रमापूरयेत्तदा। कुर्य्याद्धि रुगनाध्मानमशक्तिमलसंग्रहम्॥२८॥
तन्मत्रं जाठरं छिद्रं वैगुण्येना निलेन वा।
आक्षिप्तमल्पमूत्रस्य बस्तौ नाभौ च वा मले॥२९॥
स्थित्वा स्रवेच्छनैः पश्चात्सरुजं वाथवाऽरुजम्। मूत्रोत्सर्गमविच्छिन्नं तच्छेषं गुरुशोषवत्॥३०॥

यदि इस रोग में पुनः-पुनः अल्प मूत्र त्याग हो, तब उसे वातकुण्डिका कहते हैं। दीर्घकाल तक शुक्र का वेग धारण करने से यह रोग होता है। इस रोग में मूत्र निरुद्ध हो जाता है। तब मूत्रद्वार में धीमी वेदना होती है। मूत्रवेग धारण करने से जब यह वायुवेग से आवर्त्तित होता तथा प्रतिहत होता है, तब यह मूत्र नाभि के अधः में, उदर में भर कर तीव्र पीड़ा, आध्मान, मलप्रवृत्ति तथा अन्य उपद्रवों को जन्म देता है। ऐसे रोग में वायु कुपित होकर उस मूत्र को जठर में छोड़ता है। इससे रोगी के मूत्र में कमी लक्षित होती है। यह वायु, वस्ति अथवा नाभि अथवा मलकोष्ठ में उपस्थित रहता है। इससे ही बार-बार मूत्र होता है। मूत्रस्रावोपरान्त कभी-कभी पीड़ा का अनुभव होता है। इस रोग में वेदना के साथ अविच्छिन्न मूत्रस्राव भी होता है, लेकिन बाकी बचा मूत्र अण्डकोष में आश्रय लिये रहता है। इससे अण्डकोष में भारीपन आता है॥२६-३०॥

अन्तर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत्।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते॥३१॥
मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम्।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद् वा प्रवर्त्तते॥३२॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते। रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्त्तं शकृद् यदा॥३३॥
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत संसृष्टं शकृता तदा। मूत्रबिन्दुस्तुल्यगन्धी स्याद्विघातं तदादिशेत्॥३४॥

कभी-कभी इस रोग में ही वस्ति के अन्दर तनिक-तनिक मूत्र एकत्र होता, अश्मरी के समान ग्रन्थि बनाता है। यही मूत्रग्रन्थि है। मूत्ररोगी यदि स्त्रीगमन करता है, तब वायु द्वारा शुक्र उद्धृत तथा स्थान भ्रष्ट होकर पेशाब करने के पहले किंवा बाद में क्षरित भी होता है। यह शुक्र भस्म को धोये गये जल के वर्ण का होता है। इसे मूत्रशुक्र कहा गया है। इसमें रोगी दुबला तथा रुक्ष रहता है। जब वायु द्वारा मल को पक्वाशय से मूत्रस्रोत में ले जाने पर मलभेद होता है, तभी उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है। तब बूंद-बूंद मूत्र टपकता है। यही है मूत्र का विघात॥३१-३४॥

पित्तव्यायामतीक्ष्णाम्लभोजनाध्मानकादिभिः। प्रवृद्धवायुना मूत्रे वस्तिस्थे चैव दाहकृत्॥३५॥
मूत्रं वर्त्तयते पूर्वं सरक्तं रक्तमेव वा। उष्णं पुनः पुनः कृच्छ्रादुष्णवातं वदन्ति तम्॥३६॥
रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ। मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम्॥३७॥

व्यायाम, पित्त बढ़ाने वाले द्रव्य, तीक्ष्ण-अम्ल भोजन से आध्मान जनित वायु वर्द्धित होता है। वस्ति में वह मूत्र स्थापित करता है। तभी वस्ति में तीव्र प्रदाह होता है। पहले मूत्रस्राव होकर तदनन्तर रक्त अथवा रक्तवत् अल्प-अल्प मूत्र कष्ट के साथ बारम्बार स्रवित होता है। यही उष्णवान रोग है। रुक्ष तथा क्षीण व्यक्ति का पित्त-वायु वस्ति में स्थित होकर वेदना तथा प्रदाह के साथ मूत्रक्षय करता है। यही है मूत्रक्षय रोग॥३५-३७॥

पित्तं कफो द्वावपि वा हन्येते चानिलेन चेत्।
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत्॥३८॥

सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत्। शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम्।
इति विस्तारतः प्रोक्ता रोगा मूत्रप्रवृत्तिजाः॥३९॥

।।इति गारुडे महापुराणे मूत्राघात-मूत्रकृच्छ्रनिदानं नाम अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५८।।
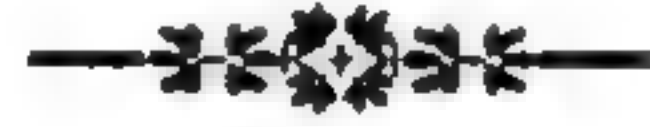
यदि पित्त तथा कफ वायु से पराभूत हो जाते हैं, तब कष्टपूर्वक पीत, रुक्ष अथवा श्वेतवर्ण का घना मूत्रस्राव होता है। इससे मूत्रद्वार में ज्वाला का अनुभव होता है। यह मूत्र गोरोचना अथवा शंखचूर्ण जैसे वर्ण वाला होता है। समय-समय पर वायु से मूत्र शुष्क हो जाता है। कभी नाना वर्ण का मूत्रस्राव होता है। यह मूत्रसाद कहा जाता है। इस मूत्रवृत्ति से अनेक रोग जनित होते हैं। मैंने सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया॥३८-३९॥

॥एक सौ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त॥

ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रमेहरोग निदान

धन्वन्तरिरुवाच

प्रमेहाणां निदानं ते वक्ष्येऽहं शृणु सुश्रुत। प्रमेहो विंशतिस्तत्र श्लेष्मणो दश पित्ततः।
षट्चत्वारोऽनिलात्तेषां मेदोमूत्रकफावहाः॥१॥
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं शकृत्। विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम्॥२॥
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः। वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः॥३॥
मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः। हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम्॥४॥
सलसीकं बिबद्धञ्च हस्तिमेही प्रमेहति। मधुमेही मधुसमं जायते स किल द्विधा॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब प्रमेह रोग का निदान श्रवण करो। प्रमेह रोग साधारणतः बीस तरह का होता है। इनमें श्लेष्मजन्य प्रमेह दस तरह का होता है। पित्तजन्य छः तरह का, वायुजन्य चार तरह का होता है। शुक्र, मेद तथा मूत्र कफावह होकर प्रमेह रोग उत्पन्न करते हैं। हारिद्रमेही कटुरस युक्त हल्दी जैसा शुक्र तथा मल निःसारण करते हैं। माजिष्ठ में ही रोगी का मूत्र मजिष्ठा जलवत् वर्ण का होता है। रक्तमेही का लवणयुक्त तथा रक्ताभ उष्णमेह क्षारित होता है। वसामेही रोगी का वसामिश्रित अथवा रसार के समान वर्ण वाला मूत्र होता है। मज्जामेही व्यक्ति बारम्बार मज्जा के समान वर्ण वाला अथवा मज्जामिश्र

मूत्र करता है। मत्त हाथी में जिस प्रकार मूत्रवेग नहीं रहता अथच अधिक मूत्र होता है। इस प्रकार मज्जामेही रोगी को मूत्रवेग नहीं होता, तथापि उसे मूत्र अधिक होता है॥१-५॥

क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथे यदा। आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयेत्॥६॥

क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम्।
कालेनोपेक्षितः सर्वो ह्यायाति मधुमेहताम्॥७॥

मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति। सर्वे ते मधुमेहाख्या माधुर्य्याच्च तनोर्यतः॥८॥

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम्॥९॥
वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः।
दाहस्तृष्णाम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम्॥१०॥

प्रमेह रोग में समधिक धातुक्षय होता है। तभी वायु कुपित होकर मधुमेह की उत्पत्ति करता है। विशेषत: पित्त तथा कफ द्वारा वायुस्रोत रुद्ध होकर वह रोग जन्म लेता है। जिस दोष की प्रबलता के कारण रोगोत्पत्ति होती है, उस-उस रोग के लक्षण व्यक्त होते हैं। बिना कारण प्रमेह की ह्रास वृद्धि होती है। यह रोग कभी क्षीण, कभी प्रवृद्ध होता है। यह अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य है। इस रोग की जो उपेक्षा करता है, कालान्तर में सभी प्रकार का मेह मधुमेह के रूप को ले लेता है। मधुमेह रोग में प्राय: मधु की तरह मीठी पेशाव होती है। जिस-जिस मेहरोग में शरीर में मधुरता जन्म लेती है, वही-वही मेह भी मधुमेह कहलाता है। अविपाक, अरुचि, वमन, निद्रा, कास, पीनस, कफज, मेहरोग में ये सभी उपद्रव प्रारम्भ होते हैं। पित्त मेहरोग में वस्ति तथा मूत्राशय में वेदना, अण्डकोष की विवर्णता, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्ल की डकार, मूर्च्छा तथा मलभेदादि उपद्रव होते हैं॥६-१०॥

वातजानामुदावर्तः कम्पहृद्ग्रहलोलताः।
शूलमुन्निद्रता शोषः श्वासः कासश्च जायते॥११॥
शराविका कच्छपिका जालिनी विनतालजी।
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका।
विद्रधिश्चेति पिडकाः प्रमेहोपेक्षया दश॥१२॥

अन्नश्च कफसंश्लेषात्प्रायस्तत्र प्रवर्त्तनम्। स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुरुपिच्छिलशीतलम्॥१३॥
नवं धान्यं सुरासूपमांसेक्षुगुडगोरसम्। एकस्थानासनवति शयनं विनिवर्त्तनम्॥१४॥

वस्तिमाश्रित्य कुरुते प्रमेहान्दूषितः कफः।
दूषयित्वा वपुः क्लेदं स्वेदमेदोवसामिषम्॥१५॥

वातजनित प्रमेह में उदावर्त्त, कम्प, हृदयपीड़ा, कटु-तिक्त-कषाय रसयुक्त द्रव्य खाने की इच्छा, शूल, अनिद्रा, शोष, श्वास-कास, उपद्रव जन्म लेते हैं। प्रमेहरोग उत्पन्न होने पर उसकी जो उपेक्षा करता

है, उसे शराविका, कच्छपिक, ज्वालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षापका, पुत्रिणी, विदारिका, विद्रधि, ये दस तरह की पीड़िका (विशेष प्रकार के घाव) उत्पन्न होते हैं। भुक्त अन्न जब कफयुक्त होता है, तब प्रायः प्रमेह रोग होता है। प्रमेह रोगी मधुर, अम्ललवणयुक्त स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल तथा शीतल मूत्रत्याग करता है। नवीन अन्न, सुरा, सूप, मांस, गन्ना, गुड़, दूध प्रमेह रोग का कारण है। प्रमेह रोगी के साथ एक ही आसन पर बैठने अथवा शयन करने से भी प्रमेह उत्पन्न होता है। दूषित कफ वस्ति तथा आश्रय स्थल को दूषित करके प्रमेहोत्पादन करता है तथा शरीर दूषित करके मेद-मांस-वसा को क्लिन्न कर देता है॥११-१५॥

पित्तं रक्तमतिक्षीणे कफादौ मूत्रसंश्रयम्। धातुं वस्तिमुपानीय तत्क्षये चैव मारुतः॥१६॥
साध्यासाध्यप्रतीत्याद्या मेहास्तेनैव तद्भवाः। समे समकृता दोषे परमत्वान्मतापि च॥१७॥
सामान्यलक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता। दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः।
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते॥१८॥

कफ आदि जब क्षीणता प्राप्त करते हैं, तब मूत्राशय में स्थित रक्त पित्त धातु को वायु वस्ति में लाकर मेहरोग उत्पन्न करता है। रोगी में मेहरोग उत्पादक दोष समूह की विवेचना करके यह निश्चित करे कि वह साध्य है अथवा असाध्य। वायु-पित्तादि दोष की साम्यावस्था वाला रोग साध्य होता है। इनकी विषमावस्था में रोग भी विषम हो जाता है। सभी मेहरोग में कीचड़ मिले जलवत् मलिन तथा अधिक मूत्रत्याग होता है। यह मेहरोग का सामान्य लक्षण है। जैसे श्वेत, पीत, कृष्ण तथा लोहितादि वर्ण के संयोग से पिंगल पाटलादि विविध वर्णोत्पत्ति होती है, तद्रूप वायुःपित्त-कफ दूषित होकर मेद-मांसादि के योग से मूत्र का वर्ण आदि भी अनेक तरह का हो जाता है। इसीलिये एक ही दोष को महादोष कहते हैं॥१६-१८॥

अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम्। मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम्॥१९॥
इक्षोरसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः। सान्द्रीभवेत् पर्य्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति॥२०॥
सुरामेही सुरातुल्यमुपर्य्यच्छमधो घनम्।
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टेन पिष्टवद्बहुलंसितम्॥२१॥
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति।
मूर्त्ताणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान्॥२२॥
शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम्। शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति।
लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम्॥२३॥

अब कफज मेहरोग के दस भेदों को क्रमशः कहते हैं—१. उदक-मेह निमेल, श्वेत, शीतल, गन्धरहित, आविल, पिच्छिल तथा जल के समान बहुमूत्र वाला होता है। २. इक्षुमेह में गन्ने के रसवत्, अति मधुर मूत्रत्याग होता है। ३. सान्द्रमेह में बासी अन्न के मांड़ जैसा मूत्र होता है। ४. सुरामेह में सुरा जैसा मूत्र होगा। इसे किसी बर्तन में रखने पर उसके ऊपर का अंश तरल तथा नीचे का अंश गाढ़ा होता

है। ५. पिष्टमेह में तण्डुल चूर्ण मिले जल जैसा मूत्र होता है। रोगी का देह रोमांचित रहता है। ६. शुक्रमेही रोगी वीर्य जैसे वर्ण युक्त अथवा वीर्यमिश्रित मूत्र करता है। ७. सिकतामेही रोगी बालू के समान सूक्ष्म तथा कठिन कणमय अपरिष्कृत मूत्र करता है। ८. शीतमेही रोगी अत्यधिक मूत्र त्याग करता है। यह मूत्र गुरु, मधुर तथा अति शीतल होता है। ९. शनैर्मेही बारम्बार अल्प मूत्र त्याग करता है। १०. लालामेह रोगी मुख की लार की तरह तत्वयुक्त तथा पिच्छिल मूत्र करता है॥१९-२३॥

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत्। नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मसीनिभम्॥२४॥

सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु।
अन्तोन्नता मध्यनिम्ना अक्लेदमरुजान्विता।
शरावमानसंस्थाना पिडका स्याच्छराविका॥२५॥

अब पित्तज मेहरोग का वर्णन करते हैं। ये छः प्रकार के होते हैं। १. हारिद्रमेही, २. माञ्जिष्ठमेही तथा ३. रक्तमेही का वर्णन पहले कह दिया है। ४. क्षारमेही क्षार धोये जल के समान गन्ध वर्ण वाला मूत्र त्याग करता है। वह रसयुक्त मूत्र होता है। यह क्षार जलवत् पिच्छिल स्पर्श वाला होता है। ५. नीलमेही नीलवर्ण तथा ६. कृष्णमेही कृष्णवर्ण मूत्र करता है। प्रमेह की उपेक्षा करने का परिणाम है सन्धि-मर्म तथा मांसल जगहों पर ऊपर कही गई १० प्रकार की पीड़का उत्पन्न होना॥२४-२५॥

सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः।
महती पिडका नीला विनता नाम सा स्मृता॥२६॥
दहति त्वमुत्थाने जालिनी कष्टदायिनी।
रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी भवेत्॥२७॥

मसूराकृतिसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका। सर्षपोन्मानसंस्थाना जिह्वापाकमहारुजा॥२८॥

पुत्रिणी महती चाल्पा सुसूक्ष्मा पिडका स्मृता।
विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका॥२९॥

विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा। पुत्रिणी च विदारी च दुःसहा बहुमेदसः॥३०॥

अब दसों प्रकार की पीड़का का लक्षण कहा जा रहा है। जिस पीड़का का आन्तरिक भाग उन्नत है, मध्यभाग निम्न तथा शराव के समान वेष्ठन वाला हो (शराव = मिट्टी का पात्र) तथा जो क्लेद तथा वेदनायुक्त हो, वह **शराविका** पीड़का है। जो कछुये की पीठ जैसी उन्नत तथा ज्वालायुक्त हो, वह **कच्छपिका** है। जो नीलवर्ण किंचित् बड़ी हो, वह **विनता** पीड़का है। जिस पीड़का की उत्पत्ति के समय त्वचा में प्रदाह हो, वह **ज्वालिनी** पीड़का है। यह अत्यन्त कष्ट देती है। जो पीड़का रक्त वर्ण अथवा श्वेत वर्ण वाली तथा स्फोट के समान दीर्घ हो, उसे **अलजी** पीड़का कहा गया है। जो मसूर के समान आकार तथा वर्ण वाली हो, वह **मसूरा** पीड़का है। जिसका आकार तथा वर्ण सरसों के समान हो, वह **सर्षपिका** पीड़का है। यह जिह्वा में पैदा होती है। इसके होने से जिह्वा का पाक तथा वेदना होती है। जो पीड़का अधिक स्थान में उत्पन्न होकर अधिक ऊंची नहीं होती, वह **पुत्रिणी** पीड़का है। जो पीड़का भूमिकूष्माण्ड

की जड़वत् बृहद तथा कठिन होती है, वह **विदारिका** पीड़का है। **विद्रधि** पीड़का का वही लक्षण है, जो विदारिका का है। पुत्रिणी तथा विदारिका पीड़का असहनीय तथा अत्यन्त मेदयुक्त होती है॥२६-३०॥

सद्यः पित्तोल्बणास्त्वन्याः सम्भवन्त्यल्पमेदसः।
तास्ताश्चापि पिडकाः स्याद्दोषोद्रेको यथायथम्॥३१॥
प्रमेहेण विनाप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः। तावच्च नोपलक्ष्यन्ते यावद्वर्णञ्च वर्जितम्॥३२॥
हारिद्र्यरक्तवर्णं वा मेहप्राग्रूपवर्जितम्। यो मूत्रयेत् तन्मेहं रक्तपित्तन्तु तद्विदुः॥३३॥

प्रमेह रोग में जब पित्ताधिक्य हो, तब अल्प मेद वाली नाना प्रकार की पीड़का पैदा होती है। जब जिस दोष की प्रबलता होती है, तब उन-उन दोषों के लक्षण वाली पीड़का उत्पन्न हो जाती है। जिस व्यक्ति का मेद दुष्ट हो गया हो, उसके प्रमेह रोग के बिना भी उक्त पीड़का जन्म लेती है। जब तक पीड़का का वर्ण व्यक्त नहीं होता, तब तक उसका लक्षण विदित नहीं होता। जिस व्यक्ति का मूत्र हरा अथवा लाल होता है, अथच पूर्वोक्त प्रमेह लक्षणरहित होता है, वह रक्तपित्त है॥३१-३३॥

स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे शय्याशनस्वप्नसुखाभिषङ्गः।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदाहा घनाग्रता केशनखाभिवृद्धिः॥३४॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो माधुर्य्यमास्ये करपाददाहः।
भविष्यतो मेहगणस्य रूपं मूत्रेऽपि धावन्ति पिपीलिकाश्च॥३५॥
तृष्णा प्रमेहे मधुरं प्रपिच्छम् मध्वामये स्याद् विविधो विकारः।
सम्पूरणाद्वा कफसम्भवः स्यात्क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा॥३६॥
सम्पूर्णरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेण ये वै रतिसम्भवाश्च।
संक्रामते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्योऽस्ति मेहो यदि नास्ति विष्टम्॥३७॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्रमेहनिदानं नाम ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१५९॥

पसीना, अंगों की गन्ध, अंग शैथिल्य, भोजन तथा शयन एवं निद्रासुख से लगाव, हृदय-नेत्र-जिह्वा तथा कर्ण दाह, केश-नख वृद्धि, शीतप्रियता, गले में शोष तथा तालुशोष, मुख की मधुरता तथा तलवों में प्रदाह मेहरोग का पूर्व लक्षण जाने। मेहरोग उत्पन्न होने के पहले मूत्र करने पर उसमें चीटियां लग जाती हैं। तृष्णा प्रमेह रोग में मूत्र में मधुरता तथा पिच्छिलता होती है। मधुमेह में नाना विकार होते हैं। कफज मेह में कफ से पूरा शरीर व्याप्त रहता है। वातिक प्रमेह में धातु क्षीण होती है। कफज तथा पित्तज (मिश्रित) मेह में देह सम्पूर्ण मेहलक्षण समन्वित हो जाता है। जिन मेहरोग में रति उचित हो, उन सब में मेह संक्रामित रहता है। पित्तकृत मेह व्याप्त होता है। जो मेह पूर्णतः उत्पन्न नहीं है, वही चिकित्सा साध्य होता है॥३४-३७॥

॥एक सौ उनसठवां अध्याय समाप्त॥

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विद्रधि निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

निदानं विद्रधेर्वक्ष्ये गुल्मस्य शृणु सुश्रुत। भक्तैः पर्य्युषितात्युष्णशुष्करूक्षविदाहिभिः॥१॥
जिह्मशय्याविचेष्टाभिस्तैस्तैश्चासृक्प्रदूषणैः। दुष्टस्त्वङ्मांसमेदोऽस्थिमदामृष्टोदराश्रयः॥२॥
यः शोथो बहिरन्तश्च महाशूलो महारुजः।
वृत्तः स्यादायतो यो वा स्मृतो रोगः स विद्रधिः॥३॥
दोषैः पृथक् समुदितैः शोणितेन स्नुतेन च। बाह्ये ते तत्र तत्राङ्गे दारुणे ग्रथितः स्नुतः॥४॥
अन्तरो दारुणश्चैव गम्भीरो गुल्मवद्घनः।
वल्मीकवत्समुत्स्रावी अग्निमान्द्यञ्च जायते॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब विद्रधि तथा गुल्म का निदान कहूंगा। बासी, अत्यन्त गर्म, रुक्ष तथा विदाही अन्न भोजन से विद्रधि एवं गुल्म रोग होता है। कदर्य शय्या पर शयन तथा गर्हित कार्य करने से रक्त दूषित होकर त्वक्, मांस, मेद, अस्थि दूषित हो जाते हैं। तब वह उदर का सहाय्य लेता है। दुष्ट रक्त उदर का आश्रय लेकर शरीर के बाहर की ओर अथवा अन्त में महान् दर्दयुक्त तथा महापीड़ा युक्त वृत्त आकृति में जिस शोथ का जन्म हो गया है, आयुर्वेदज्ञ उसी को विद्रधि कहते हैं। वायु-पित्तादि का पृथक् रूप से दूषित होने, किंवा मिलित रूपेण दूषित होने पर विद्रधि रोग उत्पन्न होता है। इसमें जिस अंग से अधिक रक्तस्राव होता है, उस-उस अंग में ग्रथित रूप से विद्रधि रोगोत्पत्ति होती है। अन्तर विद्रधि अत्यन्त भयानक होती है। यह गुल्मवत् घन तथा गम्भीर होती है। यह दीमक की बांबी की तरह छिद्र वाली होती है। इन छिद्रों से अहर्निश रक्तादि का स्राव होता ही रहता है। रोगी की उदराग्नि भी मन्द पड़ जाती है॥१-५॥

नाभिवस्तियकृत्प्लीहक्लोमहृत्कुक्षिवङ्क्षणि। हृदये वेपमाने तु तत्र तत्रातितीव्ररुक्॥६॥
श्यामारुणशिरोत्थानपाको विषमसंस्थितिः। संज्ञाच्छेद भ्रमानाहस्यन्दसर्पणशब्दवान्॥७॥
रक्तताम्रासितः पित्तात्तृण्मोहज्वरदाहवान्।
क्षिप्तोत्थामप्रपाकश्च पाण्डुः कण्डूयुतः कफात्॥८॥
संक्लेशशीतकस्तम्भजृम्भारोचकगौरवाः। चिरोत्थानोऽविपाकश्च सङ्कीर्णः सन्निपातजः॥९॥
सामर्थ्याच्चात्र विड्भेदो बाह्याभ्यन्तरलक्षणम्।
कृष्णः स्फोटावृतः श्यामस्तीव्रदाहरुजाज्वरः॥१०॥

नाभि, वस्ति, यकृत, प्लीहा, क्लोम, हृदय, कुक्षि प्रभृति स्थानों में इस रोग का जन्म होता है। यह रोग होने पर रोगी का हृदय कांपता है। रोगग्रस्त स्थान में तीव्र पीड़ा का अनुभव होता है। इसका शोथ

श्याम वर्ण अथवा लालिमा लिये होता है। इसमें ऊपरी हिस्सा उठा रहता है, तथापि बाद में पकने से विषमाकृति हो जाता है। इस रोग में संज्ञानाश, भ्रम, आनाह, रक्तस्राव तथा अव्यक्त शब्द होता है। पित्त से उत्पन्न विद्रधि रक्त ताम्र रंग का किंवा काला होता है। अब तृष्णा, मोह, ज्वर प्रभृति उपद्रव होते हैं। कफजनित विद्रधि विक्षिप्त, उन्नत, पाक और खुजलीयुक्त होता है। इसी रोग से पाण्डु रोगोत्पत्ति भी होती है। सन्निपात जनित विद्रधि में क्लेश, शीत, स्तम्भ, जंभाई, अरुचि, शारीरिक भारीपन का लक्षण प्रकटित होता है। सान्निपातिक विद्रधि चिरकाल में उत्पन्न होती है तथा कभी उसका पाक नहीं हो पाता। बाह्य एवं आभ्यन्तरिक विद्रधि रोग में मलभेद होता है। यह कृष्णवर्ण, स्फोटावृत तथा श्याम वर्ण होता है। इसमें रोगी को अत्यन्त दाह, रोगस्थान पर व्यथा और ज्वर होता है॥६-१०॥

पित्तलिङ्गोऽसृजा बाह्यं स्त्रीणामेव तथान्तरम्। शस्त्राद्यैरभिघातोत्थरक्तैश्च रोगकारणम्॥११॥

क्षतोत्थो वायुना क्षिप्तः स रक्तः पित्तमीरयन्।
पित्तासृग्लक्षणं कुर्य्याद्विद्रधिं भूर्य्युपद्रवम्॥१२॥

तेनोपद्रवभेदश्च स्मृतोऽधिष्ठानभेदतः। नाभौ हि ध्मातं चेद्वस्तौ मूत्रकृच्छ्रश्च जायते॥१३॥

श्वासप्रश्वासरोधश्च प्लीहायामतितृट् परम्।
गलरोधश्च क्लोम्नि स्यात्सर्वाङ्गप्ररुजो हृदि॥१४॥

प्रमोहस्तमकः कासो हृदयोद्घट्टनं तथा। कुक्षिपार्श्वान्तरे चैव कुक्षौ दोषोपजन्म च॥१५॥

तथा चेदूरुसन्धौ च वङ्क्षणे कटिपृष्ठयोः।
पार्श्वयोश्च व्यथा पायौ पवनस्य निरोधनम्॥१६॥

वाह्य विद्रधि पित्तज एवं रक्तज होता है। यह स्त्रियों को होता है। शस्त्रादि के आघात से अधिक खून बहने से यह होता है। कहीं क्षत होने पर समस्त रक्त वायु से चालित होने लगता है। यदि वह निःशेषतया न बह सके तब वह रक्त रोगी के पित्त से मिल कर विद्रधि रोग का कारण हो जाता है। इसे रक्तपित्त जनित विद्रधि कहा गया है। इसमें अनेक उपद्रव जो ऊपर कहे गये, वे अनेक रूपों में होते हैं। नाभि की विद्रधि में दाह होता है। वस्ति की विद्रधि में मूत्र करने में अत्यन्त तकलीफ होती है। प्लीहागत विद्रधि में श्वास-प्रश्वास में रुकावट तथा अत्यन्त प्यास लगती है। जब क्लोमस्थ विद्रधि होती है, तब गले का रोध होता है। हृदय में विद्रधि होने पर शरीर भर में दर्द होता है। कोख एवं पार्श्व के भीतर विद्रधि से मोह, तमक श्वास, कास तथा हृदय में शून्यता का एहसास होता है। हृदयगत इस विद्रधि से अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है। उरु सन्धि, वङ्क्षण, कटि, पृष्ठ, पार्श्व, पायु में विद्रधि रोग होने पर वायु अवरुद्ध होकर अत्यन्त पीड़ा का अनुभव होता है॥११-१६॥

आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत्। नाभेरूर्ध्वमुखात्पक्वात्प्रद्रवन्त्यपरे गुदात्॥१७॥

गुदास्यनाभिजे विद्याद्दोषं क्लेदाच्च विद्रधौ। कुरुते स्वाधिष्ठानस्य विवर्त्तं सन्निपातजः॥१८॥

पक्वो हि नाभिवस्तिस्थो भिन्नोऽन्तर्बहिरेव वा।
पाकश्चान्तःप्रवृद्धस्य क्षीणस्योपद्रवार्दिताः॥१९॥

विद्रधिश्च भवेत्तत्र पापानां पापयोषिताम्। मृते तु गर्भगे चैव सम्भवेच्छ्वयथुर्घनः॥२०॥

स्तने समुत्थे दुःखं वा बाह्यविद्रधिलक्षणम्।
नारीणां सूक्ष्मरक्तत्वात्कन्यायां तु न जायते॥२१॥
क्रुद्धो रुद्धगतिर्वायुः शेफमूलकरो हि सः।
मुष्कवङ्क्षणतः प्राप्य फलकोषातिवाहिनीम्॥२२॥
आपीड्य धमनीवृद्धिं करोति फलकोषयोः।
दोषो मेदेषु तदाऽऽस्ते सवृद्धिः सप्तधा गदः॥२३॥

अन्य शोथ की तरह विद्रधि का शोथ भी पकता है। जब विद्रधि का मुख नाभि से ऊर्ध्व है, तब वह पक कर तथा फट कर गुह्यदेश में स्रावित होता है। गुह्य, मुख तथा नाभिज विद्रधि क्लिन्न होने पर अधिक दोषयुक्त हो जाता है। सन्निपातज विद्रधि अपने-अपने स्थान पर अनेक विवर्त्त करता है। नाभि एवं वस्ति का विद्रधि अन्दर अथवा बाहर चाहे जिस रूप में हो, वह पकने पर विदीर्ण होता है। यह प्रवृद्ध होकर पकता है। यह विद्रधि जब क्षीण हो जाये, तब अनेक उपद्रव होते हैं। जो नारी चरित्रहीन है, उसकी सन्तान नष्ट होने के कारण गर्भगत शोथ होता है। उनके स्तन की विद्रधि ही बाह्य कही गयी है। यह भयानक दुःखप्रद है। स्त्रियों का खून सूक्ष्म होता है। अतः कन्यावस्था में उनमें यह रोग नहीं होता। गतिरोध उत्पन्न होने से वायु कुपित होकर लिंगमूल में शोथ पैदा करता है। वह मुष्क तथा वङ्क्षण की शिराओं को पीड़ित करके कोष की धमनियों की वृद्धि करता है। इससे मेदा में दोषोत्पत्ति होती है। यही वृद्धिरोग है। यह रोग सात प्रकार का होता है॥१७-२३॥

मूत्रं तयोरप्यनिलाद्बाह्ये वाभ्यन्तरे तथा।
वातपूर्णः खरस्पर्शो रूक्षो वाताच्च दाहकृत्॥२४॥
पक्वोदुम्बरसङ्काशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान्।
कफात्तीव्रो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान्कठिनाल्परुक्॥२५॥
कृष्णः स्फोटावृतः पिण्डो वृद्धिलिङ्गश्च रक्ततः।
कफवन्मेदसां वृद्धिर्मृदुतालफलोपमः॥२६॥

बाह्य एवं आन्तरिक विद्रधि में वायु प्राबल्य के कारण अधिक मूत्रत्याग होता है। वातपूर्ण विद्रधि स्वरस्पर्श वाला, रुक्ष तथा दाहयुक्त होता है। पित्तज विद्रधि पके गूलर के समान आभा वाला, दाह तथा पाकयुक्त होता है। कफजनित विद्रधि तीव्र, गुरु, स्निग्ध, खुजली वाला होता है। इसमें अल्प पीड़ा होती है। रक्तज विद्रधि कृष्णवर्ण, स्फोटावृत, पिण्ड के समान तथा वृद्धि के लक्षण वाला होता है। कफक्त मेदोवृद्धि होने से मृदु तथा तालफल के समान विद्रधिरोग होता है॥२४-२६॥

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजस्तत्र गच्छतः। अलोभः पूर्णधृतिमान्क्षोभं याति सरन्मृदु॥२७॥
मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च वलयः फलकोषयोः। वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः॥२८॥

विण्मूत्रधारणाच्चैव विषमाङ्गविचेष्टनैः।
क्षोभितैः क्षोभितौजश्च क्षीणान्तःशरीरो यदा॥२९॥
पवनो विगुणीभूय शोणितं तदधो नयेत्।
कुर्य्यात्तत्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभः श्वयथुस्तदा॥३०॥

जो मूत्रवेग रोकते हैं, उनमें मूत्रज विद्रधि रोग हो जाता है। इस रोग का रोगी धैर्यवान् तथा लोभरहित होता है। वह कभी-कभी क्षुब्ध हो जाता है। इस विद्रधि से जब रक्तादि निकलता है, तब वह मृदु लगने लगता है। इस रोग में वायु को प्रकुपित करने वाला भोजन तथा शीतल जल में डुबकी लगाने से कोष के अधः स्थान पर वलयाकार शोथ होता है। इससे मूत्रकृच्छ्र रोग होता है। मलमूत्रादि का वेग रोकने तथा विषम रूप से अंग संचालन से रोगी की शक्ति नाश होने पर जब आन्तरिक अवयव क्षीण होने लगते हैं, तब वायु कुपित होकर अधः में रक्त ले जाता है। इसलिये सन्धि में ग्रन्थिवत् शोथ होता है॥२७-३०॥

उपेक्ष्यमाणस्य च गुल्मवृद्धिमाध्मानरुग्वै विविधाश्च रोगाः।
सुपीडितोऽन्तःस्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मूर्ध्नः॥३१॥
रक्तवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः। रूक्षकृष्णारुणशिरा ऊर्णावृतगवाक्षवत्॥३२॥
वातोऽष्टधा पृथग्दोषैः संस्पृष्टैर्निचयं गतः।
आर्त्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः॥३३॥
ज्वरमूर्च्छातिसारैश्च वमनाद्यैश्च कर्मभिः।
कर्शितो बलवान्याति शीतार्त्तश्च बुभुक्षितः॥३४॥
यः पिबत्यन्नपानानि लङ्घनप्लवनादिकम्। सेवते हीनसंज्ञाभिरर्दितः समुदीरयन्॥३५॥
स्नेहस्वेदावनभ्यस्य शोषणं वा निषेवयेत्।
शुद्धो वा शुद्धिहानिर्वा भजेत स्यन्दनानि वा॥३६॥

विद्रधियोग की उपेक्षा करने से गुल्म, वृद्धि, आध्मान आदि रोग उत्पन्न होते हैं। रोगी पीड़ित हो जाता है। आभ्यन्तर शब्द होता है तथा वायु शिर में चला जाता है। रक्तज वृद्धियोग की चिकित्सा असाध्य है। वातिक वृद्धियोग साम्यावस्था में रहता है। उस रोग में शिरा समूह रुक्ष तथा काले पड़ते हैं। जिस प्रकार गवाक्ष द्वारा मकड़ी के जाले से भर जाता है, विद्रधि रोग में शिरायें ऐसी जालवत् हो जाती हैं। यह रोग अष्टविध होता है। यथा—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लेष्मिक, पित्तश्लेष्मिक, सान्निपातिक। स्त्रियों के ऋतुदोष से जो रोगोत्पत्ति होती है, वही है अष्टम। इस रोग का रोगी भले ही बली हो, वह ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार तथा वमन आदि से क्लिष्ट, शीत से आर्त्त तथा भूखा बना रहता है। इस रोग में यदि वह आहार करता अथवा तालद्रव्य सेवन करता है अथवा लंघन तथा स्नानादि करता है, तब वह संज्ञाहीन होकर अत्यन्त कातर हो जाता है। उक्त रोग में स्नेह कार्य तथा स्वेदाचरण न करके पोषण कार्य करे। शुद्ध शरीर हो किंवा अशुद्ध हो स्यन्दन कार्य करे॥३१-३६॥

वातोल्बणास्तस्य मलाः पृथक्चैव हि तेऽथवा।
सर्वो रक्तयुतो वातादेहस्त्रोतोऽनुसारिणः॥३७॥
ऊर्ध्वादोमार्गमावृत्य वायुः शूलं करोति वै।
स्पर्शोपलभ्यं गुल्मोत्थमुष्णं ग्रन्थिस्वरूपिणम्॥३८॥
कर्षणात्कफविड्घातैर्मार्गस्यावरणेन वा।
वायुः कृताश्रयः कोष्ठे रौक्ष्यात्काठिन्यमागतः॥३९॥
स्वतन्त्रः स्वाश्रये दुष्टः परतन्त्रः पराश्रये। ततः पिण्डितवच्छ्लेष्मा मलसंसृष्ट एव च।
गुल्म इत्युच्यते वस्तिनाभिहृत्पार्श्वसंश्रयः॥४०॥
वातजन्ये शिरःशूलज्वरप्लीहान्त्रकूजनम्।
वेधः सूच्येव विड्भ्रंशः कृच्छ्रं मूत्रं प्रवर्त्तते॥४१॥

वातिक विद्रधि में वातसहित मल बाहर निकलता है। कभी अलग-अलग वायु तथा मल बाहर आता है। वायु के कुपित होने पर ऊर्ध्व एवं अध: मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, तब दारुण शूल अनुभूत होता है। गुल्मरोग स्पर्श से जाना जाने वाला, उष्ण तथा ग्रथि स्वरूप होता है। कफ शारीर मार्ग को रोकता है। वायु कुपित होकर कोष्ठाश्रित हो जाता है। इससे कफयुक्त मल कड़ा होकर गुल्मरोग उत्पन्न करता है। वायु के दूषित होने पर जब अपने ही आश्रय में रहे, तब स्वतन्त्र तथा जब पराये के आश्रय में हो, तब परतन्त्र हो जाता है। उससे मलयुक्त श्लेष्मा पिण्डवत् होकर वस्ति, नाभि, हृदय तथा पार्श का आश्रय लेती है, जिससे गुल्मरोग होता है। वातज गुल्म में शिरोवेदना, ज्वर, प्लीहा, अन्त्र सूजन, सुई चुभोने की वेदना आदि उपद्रव होते हैं तथा मूत्रत्यागादि कष्टकर हो जाता है॥३७-४१॥

गात्रे मुखे पदे शोथः अग्निमान्द्यं तथैव च।
रूक्षकृष्णत्वगादित्वं चलत्वादनिलस्य च॥४२॥
अनिरूपितसंस्थानो विचक्षुश्चक्षुराततम्। पिपीलिकाव्याप्त इव गुल्मः स्फुरति नुद्यते॥४३॥
पित्ताद्दाहाम्लकौ मूर्च्छा विड्भेदः स्वेदतृड्भवाः।
हारिद्र्यं सर्वगात्रेषु गुल्माच्छोथस्य दर्शनम्॥४४॥
हीयते दीप्यते श्लेष्मा स्वस्थानं दहतीव च।
कफात्स्तैमित्यमरुचिः सदनं शिरसि ज्वरः॥४५॥

इस रोग में वायु चालित होकर शरीर, मुख, पद में शोथ तथा अग्निमन्दता आदि उपद्रव जन्म लेते हैं। विशेष करके शरीर की त्वचा रुक्ष तथा काली पड़ जाती है। गुल्मरोग का कोई तयशुदा स्थान नहीं होता। इस रोग में आंखें फैल जाती हैं। लेकिन दृष्टि में क्षीणता आ जाती है। गुल्म में लगता है मानों चींटियों ने उसे विदारित कर दिया है। पित्त वाले गुल्मरोग में अम्लभरी डकार, मूर्च्छा, मलभेद, पसीना, तृष्णा का उपद्रव होता है। सारा देह हल्दी के रंग का हो जाता है। इस रोग में यदा-कदा शोथ भी देखा जाता है। कफज गुल्म में कभी-कभी कफ मन्दीभूत हो जाता है। कभी प्रदीप्त होता है, मानों स्वस्थान को

दग्ध कर देगा। कफज गुल्मरोग में स्तैमित्य, अरुचि, शिरोवेदना, अवसन्नता का उपद्रव होता है। इस रोग में शरीर के स्थूलत्व, हल्लास होता है तथा त्वचा शुक्ल-कृष्ण हो जाती है। गुल्म जब अति कठिन, गंभीर तथा गुरु हो जाये, तब निद्राकाल में भी स्थिरता नहीं होती। कभी अति निद्रा तो कभी कम निद्रा होती है॥४२-४५॥

पीनमानस्य हल्लासः शुक्लकृष्णत्वगादिता।
गुल्मो गभीरः कठिनो गुरुः स्वप्नस्थिराल्पकः॥४६॥
स्वदोषस्थानधामानस्तत एवात्र मारकाः।
प्रायस्तु यत्तद्द्वन्द्वोत्था गुल्माः संसृष्टमैथुनाः॥४७॥
सर्वजस्तीव्ररुग्दाहः शीघ्रपाकी घनोन्नतः।
सोऽसाध्यो रक्तगुल्मस्तु स्त्रिया एव प्रजायते॥४८॥
ऋतौ या चैव शूलार्त्ता यदि वा योनिरोगिणी।
सेवते वातलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्याः समीरणः॥४९॥
निरुध्याप्यार्त्तवं योन्यां प्रतिमासं व्यवस्थितम्।
कुक्षिं करोति तद्गर्भे लिङ्गमाविष्करोति च॥५०॥

इस रोग में दोष समूह अपने-अपने स्थान का आश्रय लेकर रोगी के लिये मारक हो जाते हैं। इन दोषों के प्रकोप से गुल्मरोग होता है। अनियमित मैथुन भी इस रोग का कारण है। त्रिदोषजनित गुल्म में तीव्र पीड़ा तथा अत्यन्त दाह होता है। यह अतीव उन्नत तथा घन होकर जल्दी ही पक जाता है। रक्तज गुल्म असाध्य कहा गया है। यह स्त्रियों को होता है। जिस स्त्री को ऋतुकालीन प्रभूत वेदना होती है, किंवा कोई योनि की बीमारी होती है, उसके अधिक वायु सेवन से वायु कुपित होकर ऋतुद्वार रोक देता है। प्रतिमासीय निरूपित ऋतु रुकी रहने से उदर में रक्त संचय हो जाने के कारण गर्भलक्षण जैसा उदर फूल जाता है॥४७-५०॥

हल्लासदौहृदस्तन्यदर्शनं कामचारिता। क्रमेण वायोः संसर्गात्पित्तं योनिषु सञ्चयम्॥५१॥
रक्तस्य कुरुते तस्या वातपित्तोक्तगुल्मजान्। गर्भाशये च सुतरां शूलाश्चैवासृगाश्रये॥५२॥
योनिस्त्रावश्च दौर्गन्ध्यं तोयस्यन्दनवेदने।
कदापि गर्भवद् गुल्मः सर्वे ते रतिसम्भवाः॥५३॥
पाकश्चिरेण भजते नैधते विद्रधिः पुनः। पाच्यते शीघ्रमत्यर्थं दुष्टरक्ताश्रयस्तु सः॥५४॥
अतः शीघ्रं विदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते।
गुल्मान्तराश्रये वस्तिदाहश्च प्लीहवेदना॥५५॥

इस रोग के होने पर हल्लास, नाना द्रव्यों को खाने की इच्छा, स्तन में दूध उतरना, कामचारिता आदि लक्षण व्यक्त होते हैं। वायु संसर्गवशात् पित्त योनि में रक्त को एकत्र कर देता है। इससे वात-पित्त

प्रसंग में कहे सभी लक्षण उभरते हैं। जब रक्त गर्भाशय में जुटता है, तब गर्भाशय में वेदना होने लगती है। इस रोग में योनिस्राव, दुर्गन्ध, जल निकलना, वेदना आदि उपद्रव होते हैं। गुल्मरोग में कभी तो पूरे गर्भलक्षण दीखने लगते हैं। सब प्रकार का गुल्म रोग रति से उत्पन्न होता है। इस रोग में आहार किया गया द्रव्य दीर्घकाल में परिपक्व होता है। यह रोग जब उत्पन्न हो जाये, तब विद्रधि और नहीं बढ़ेगा। इसमें दुष्ट रक्ताश्रय विद्रधि का शीघ्र पाक होता है। गुल्म रोग का कोई लक्षण प्रकट होने पर यदि उसमें अधिक दाह हो, तब वही विद्रधिरोग है। गुल्मरोग जब अन्दर आश्रय लेता है, तब वस्ति में दाह तथा लौहावत् वेदना अनुभूत होती है।।५१-५५।।

अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां वाप्रवर्त्तनम्।
अतो विपर्य्यये बाह्यं कोष्ठाङ्गेषु च नातिरुक्।।५६।।
वैवर्ण्यमथवा कासो बहिरुन्नतताधिकम्। साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरे भृशम्।।५७।।
ऊर्ध्वाधो वातरोधेन तमानाहं प्रचक्षते। घनश्चाष्ठ्युपमो ग्रन्थिलोऽष्ठीला तु समुन्नतः।।५८।।
समस्तलिङ्गसंयुक्तः प्रत्यष्ठीला तदाकृतिः।
पक्वाशयोद्भवोऽप्येवं वायुस्तीव्ररुजाश्रयात्।।५९।।
उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य भवेच्च चिह्नम्।।६०।।

।।इति गारुडे महापुराणे विद्रधिगुल्मनिदानं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६०।।

यह रोग हो जाने पर अग्नि, बल तथा वर्ण का नाश होता है। मलमूत्रादि का वेग नहीं होता। लेकिन इसका विपर्यय हो जाने पर वाह्य लक्षण परिव्यक्त होते हैं। कोष्ठ तथा अंगों में अल्प वेदना होती है। इस रोग में शरीर की विवर्णता तथा कास होता है। उदर का बाहरी भाग अधिक ऊंचा हो जाता है। आटोप, उदर में प्रचण्ड वेदना, आध्मानादि उपसर्ग व्यक्त होते हैं। इस रोग में यदि ऊर्ध्व तथा अध: वायु रुक जाये, तब यही आनाहरोग है। गुल्मरोग जब अष्ठी के समान घन, ग्रन्थिवत् उन्नत हो, तब वही अष्ठीला है। पूर्वोक्त लक्षण प्रकाशित होने पर यदि पक्वाशय का वायु अधिक वेदना प्रदान करे, तब वह प्रत्यष्ठीला है। उदरष्ठीला, पुरीषबद्धता, इन्द्रिय शक्ति का ह्रास, अन्त्रकूजन, आटोप तथा परिपाक शक्ति में कमी, यह सभी गुल्मरोगों में व्यक्त होता है।।५६-६०।।

।।एक सौ साठवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

उदर निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

उदराणां निदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु। रोगाः सर्वेऽपि मन्दाग्नौ सुतरामुदराणि तु॥१॥

अजीर्णामयाश्चाप्यन्ये जायन्ते मलसञ्चयात्।
ऊर्ध्वाधो वायवो रुद्धा व्याकुलीव प्रवाहिणी॥२॥
प्राणा ह्यपानान्संदूष्य कुर्य्युश्तान्मांससन्धिगान्।
आध्माप्य कुक्षिमुदरमष्टधा तस्य भिद्यते॥३॥

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहवङ्क्षक्षतोदकैः। तेनार्त्ताः शुष्कताल्वोष्ठाः सर्वपादकरोदराः॥४॥
नष्टचेष्टबलाहाराः कृतप्रध्मातकुक्षयः। पुरुषाः स्युः प्रेतरूपा भाविनस्तस्य लक्षणम्॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं उदर निदान कहता हूं। उसे सुनो। मन्दाग्नि से सभी रोगोत्पत्ति होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि उदर रोग ह्री सभी रोगों का कारण है। उदर में मल संचय के कारण अजीर्ण प्रभृति अनेक रोग हो जाते हैं। ऊर्ध्व एवं अध:गामी वायु रुक जाती है तथा प्रवाहिणी नाड़ियां काम नहीं करतीं। प्राणवायु तब अपान वायु को दूषित करके उसे मांस संधिगत कर देता है। इसकी वजह से कुक्षिदेश अवरोधग्रस्त होने से उदर रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। ये उदर रोग अष्टविध वर्णित हैं। (यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, वक्ष्णज, प्लीहज, क्षतज तथा उदकज) जो इस रोग से ग्रसित होता है, उसके तालु-ओष्ठ सूख जाते हैं। उसमें कार्यक्षमता नहीं रहती। वह आहार नहीं कर पाता तथापि सदा पेट फूला रहता है। उसकी आकृति प्रेत ऐसी विकृति वाली हो जाती है॥१-५॥

क्षुन्नाशोऽरुचिवत्सर्वं सविदाहञ्च पच्यते। जीर्णान्नं यो न जानाति सोऽपथ्यं सेवते नरः॥६॥

क्षीयते बलमङ्गस्य श्वसित्यल्पोऽपि चेष्टितः।
विषयावृत्तिबुद्धिश्च शोकशोषादयोऽपि च॥७॥

रुग्बस्तिसन्धौ सततं लघ्वल्पभोजनैरपि। जराजीर्णो बलभ्रंशो भवेज्जठररोगिणः॥८॥
स्वतन्त्रतन्द्रालसता मलसर्गोऽल्पवह्निता। दाहः श्वयथुराध्मानमन्त्रे सलिलसम्भवे॥९॥
सर्वत्र तोये मरणं शोचनं तत्र निष्फलम्। गवाक्षवच्छिराजालैरुदरं गुड्गुडायते॥१०॥

इस रोग का पहले का लक्षण (होने के पूर्व का) है—भूख नष्ट होना, अरुचि, पाककालीन दाह। जहां अन्न की जीर्ण का ज्ञान नहीं हो पाता, वह पथ्य सेवन करता रहता है। इसमें बलहीनता होती है, अत: वह किसी भी कार्य को करने में थकान महसूस करता है। किसी विषय में उसकी बुद्धि प्रविष्ट नहीं हो पाती, तथापि वह शोक एवं शोषग्रस्त बना रहता है। इस रोग का रोगी अल्प भोजन करके भी वस्तिपीड़ा का अनुभव करता है। सभी उदररोगों में रोगी जराजीर्ण होता है। उसका बल ह्रास होता है। जलोदर रोग के

लक्षण हैं तन्द्रा, आलस्य, मलवेग, मन्दाग्नि, दाह, शोथ तथा आध्मान। सभी प्रकार के जलोदर रोग में रोगी की मृत्यु होती है। इसमें शोक करना व्यर्थ है। उदर रोगी का उदर शिराजाल में भर जाता है। वह गड़गड़ाता रहता है॥६-१०॥

नाभिमन्त्रञ्च विष्टभ्य वेगं कृत्वा प्रणश्यति। मारुते हृत्कटीनाभिपायुवङ्क्षणवेदनाः॥११॥
सशब्दो निःसरेद्वायुर्बहते मूत्रमल्पकम्। नातिमात्रं भवेल्लौल्यं नरस्य विरसं मुखम्॥१२॥
तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्मुखकुक्षिषु। कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम्॥१३॥
शुष्ककासाङ्गमर्दाधोगुरुता मलसंग्रहः। श्यामारुणत्वगादित्वं मुखे च रसवृद्धिता॥१४॥
सतोदभेदमुदरं नीलकृष्णशिराततम्। आध्मातमुदरे शब्दमद्भुतं वा करोति सः॥१५॥

इस रोग में नाभि तथा आंतें विष्टभ्य हो जाती हैं। मल निर्गम का वेग आ-आकर नष्ट हो जाता है। वायुजनित उदर रोग में हृदय, कटि, नाभि, पायु, वक्षण स्थानों में पीड़ा होती है। वायु शब्दयुक्त निकलती है। मूत्राल्पता होती है। वह किसी विषय के प्रति स्पृहा नहीं कर पाता। मुख रसहीन रहता है। वातजनित उदर रोग में हाथ, पैर, मुख में सूजन होती है। पेट, पार्श्व, कटि, पृष्ठादि स्थान में भेदने जैसा दर्द होता है। सूखी खांसी, अंगपीड़ा, शरीर के अधःभाग में भारीपन, मलसंग्रह, देह का श्यामवर्ण होना अथवा अंगों की अरुणवर्णता तथा मुख में नाना स्वादों का अनुभव होना, यह सब लक्षण हैं। उदर वेदना, उदर भेद तथा उदर पर नीली, काली शिराओं का जाल उभरना, यह भी प्रतीत होता है। उदराध्मान, उदर में अनेक शब्द इत्यादि उपद्रव होते हैं॥११-१५॥

वायुश्चात्र सरुक्शब्दं विधत्ते सर्वथागतिः।
पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहित्वं कटुकास्यता॥१६॥
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित्। पीतताम्रशिरादित्वं सस्वेदं सोष्म दह्यते॥१७॥
धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते। श्लेष्मोदरेषु सदनं स्वेदश्वयथुगौरवम्॥१८॥
निद्रा क्लेशोऽरुचिःश्वासः कासः शुक्लत्वगादिता।
उदरं तिमिरं स्निग्धं शुक्लकृष्णशिरावृतम्॥१९॥
नीरातिवृद्धौ कठिनं शीतस्पर्शं गुरुं स्थिरम्। त्रिदोषकोपने तैस्तैस्त्रिदोषजनितैर्मलैः॥२०॥

इस रोग में वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर अन्दर नाना शब्दोत्पादन करती है। पित्तजनित उदर रोग में ज्वर, मूर्च्छा, दाह, मुख की कटुता, अतिसार, चर्म का पीतवर्ण होना, उदर हरा सा लगना, यह सब लक्षण व्यक्त होते हैं। इस रोग में समस्त शरीर का वर्ण पीत अथवा ताम्रवर्ण हो जाता है। शिरायें व्याप्त हो जाती हैं। समस्त देह से पसीना गिरता है। देह अतीव उष्ण होकर यह लगता है मानों देह जल जायेगा। इस रोग में सदा धूमदर्शन होता है। उदर मुलायम स्पर्श वाला लगता है। यद्यपि तब पाक तो शीघ्र हो जाता है, लेकिन पाककाल में दाह भी होता है। श्लेष्मा जनित उदर रोग में शारीरिक अवसन्नता, पसीना, शोथ, शरीर की गुरुता, निद्रा, क्लेश, अरुचि, श्वास, कास, अंगों की शुक्लवर्णता, ये सभी लक्षण दृष्टिगत होते हैं। इस रोग में उदर स्निग्ध रहता है। वह काली अथवा श्वेत शिराओं से आवृत रहता

है। जलोदर में अधिक जलवृद्धि हो जाने पर उदर कड़ा, शीत स्पर्श, भारी तथा स्थिर रहता है। त्रिदोष जनित उदर रोग में तीनों दोषों के लक्षण लक्षित होते हैं॥१६-२०॥

सर्वदूषणदुष्टाश्च सरक्ताः सञ्चिता मलाः।
कोष्ठं प्राप्य विकुर्वाणाः शोषमूर्च्छाभ्रमान्वितम्॥२१॥
कुर्य्युस्त्रिलिङ्गमुदरं शीघ्रपाकं सुदारुणम्। वर्द्धते तच्च सुतरां शीतवातप्रदर्शने॥२२॥
अत्यशनाच्च संक्षोभाद्यानपानादिचेष्टितैः। अविहितैश्च पानाद्यैर्वमनव्याधिकर्षणैः॥२३॥
वामपार्श्वस्थिता प्लीहा च्युतस्थाना विवर्द्धते।
शोणिताद्वा वसादिभ्यो विबद्धश्च विवर्द्धयेत्॥२४॥
सोऽष्ठीला चातिकठिनः प्रोन्नतः कूर्मपृष्ठवत्।
क्रमेण वर्द्धमानश्च कुक्षौ व्याततिमाहरेत्॥२५॥

सभी तरह से दूषित उदर रोग में रक्त तथा मल कोष्ठ में एकत्र होकर विकृत हो जाता है। उससे मूर्च्छा तथा भ्रम आदि उपसर्गयुक्त उपसर्ग प्रकट होता है। इससे सभी प्रकार के दोषों के लक्षण व्यक्त होते हैं। यह अतीव दारुण रोग कहा जाता है। यह अल्प दिन में ही पक जाता है। शीत-वात प्रवृत्ति काल में यह और वर्द्धित होता है। प्रचुर आहार, संक्षोभ, अधिक वाहनों की सवारी (पशुओं की सवारी), अधिक पान तथा वमन के क्लेश के कारण वायीं ओर की प्लीहा स्थान से हट कर वढ़ती है। रक्त अथवा वसादि से प्लीहा वढ़ती है। यह अत्यन्त कड़ी तथा कछुये की पीठ जैसी उन्नत हो जाती है, जिसे अष्ठीला कहते हैं। यह क्रमशः बढ़ कर सम्पूर्ण पेट को व्याप्त कर देती है॥२१-२५॥

श्वासकासपिपासास्यवैरस्याध्मानकज्वरैः। पाण्डुत्वङ्मूर्च्छा छर्दिश्च दाहमोहैश्च संयुतः॥२६॥
अरुणाभं विचित्राभं नीलहारिद्रराजिमत्। उदावर्त्तेन चानाहमोहहृद्दहनज्वरैः॥२७॥
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विघातभ्रमसंक्रमात्। प्लीहवद्दक्षिणात्पार्श्वात्कुर्य्याद्यकृदपि च्युतम्॥२८॥
पक्वे भूते यकृचि च सदा बद्धे मले गुदे। दुर्नामभिरुदावर्त्तैरन्यैर्वा पीडितो भवेत्॥२९॥
वर्चःपित्तकफान्बद्धान्करोति कुपितोऽनिलः।
अपानो जठरे तेन संरुद्धो ज्वररुग्भवः॥३०॥

इस रोग में श्वास, कास, प्यास, आध्मान, ज्वर, चर्म का पाण्डुरवर्ण, मूर्च्छा, वमन, दाह, मोह प्रभृति उपद्रव होते हैं। उदर रोगी का उदर अरुणवर्ण, नाना वर्ण, नील वर्ण अथवा हरिद्रा (हल्दी) वर्ण होता है। इसमें उदावर्त्त, आनाह, मोह, हृदय सन्ताप तथा ज्वर का जन्म होता है। शारीरिक गुरुता, अरुचि, कठिनता, वेग में रुकावट (मलमूत्रादि वेग), भ्रम संक्रमण युक्त प्लीहा के समान दक्षिणावर्त्त होकर यकृत अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है। जब यकृत पक्व होता है, तब गुह्य में मल कड़ा होकर फंस जाता है। इससे रोगी में दुर्नाम उदावर्त्त आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यकृत रोग में वायु कुपित होकर मल, कफ तथा पित्त को आबद्ध रखता है। अतएव जठर में अपान वायु रुद्ध होकर ज्वर उत्पन्न करता है॥२६-३०॥

कासः श्वासोरुसदनं शिरोऽङ्गनाभिपार्श्वरुक्।
मलासर्गोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मलमारुतम्॥३१॥
स्थिरनीलारुणशिराजालैरुदरमावृतम्। नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते॥३२॥
अस्थ्यादिशल्यैरन्यैश्च विद्धे चैवोदरे तथा। पच्यते यकृदादिश्च तच्छिद्रैश्च सरन्बहिः॥३३॥
आम एव गुदादेति ततोऽल्पाल्पः शकृद्रसः।
स तु विकृतगन्धोऽपि पिच्छिलः पीतलोहितः॥३४॥
शेषश्चापूर्य्य जठरं घोरमारभते ततः। वर्द्धते तदधो नाभेराशु चैति जलात्मताम्॥३५॥

अवसाद, कास, श्वास तथा शिर, नाभि और अंग में वेदना, मल त्याग की वृत्ति में ह्रास, अरुचि, वमन की उत्पत्ति होती है। जितने प्रकार के उदर रोग होते हैं, सबका मूल है वायु। उदर रोग में स्थिर, नील तथा अरुण वर्ण शिरायें उदर में व्याप्त हो जाती हैं। प्रायः नाभि के ऊपर गाय की पूंछ के समान चिह्न लक्षित होता है। यदि हड्डी से, शल्य से अथवा अन्य किसी कारण उदर विद्ध हो जाये, तब यकृत आदि उदर रोग से पक्व हो जाते हैं। उस शल्य, हड्डी आदि के द्वारा बने छेद से अल्प मात्रा में रसस्राव होता रहता है। यह रस दुर्गन्धित, पिच्छिल, पीत तथा लोहित वर्ण होता है। यह सभी रस पूर्णतः निकल जाना चाहिये, अन्यथा यह उदर में भर कर घोर रोगोत्पत्ति करता है। इस प्रकार नाभि के नीचे वाले भाग में जल एकत्र होकर जलोदर रोग हो जाता है॥३१-३५॥

उद्रिक्ते दोषरूपे च व्याप्ते च श्वासतृड्भ्रमैः। छिद्रोदरमिदं प्राहुः परिस्रावीति चापरे॥३६॥
प्रवृत्तः स्नेहपानादिः सहसानन्दपायिनः।
अत्यम्बुपानान्मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य च॥३७॥
रुध्वाम्लमार्गाननिलः कफश्च जलमूर्च्छितः।
वर्द्धते तु तदेवाम्बु तन्मात्राद् बिन्दुराशितः॥३८॥
तत्कोपादुदरं तृष्णागुदश्रुतिरुजान्वितम्। कासश्वासारुचियुतं नानावर्णशिराततम्॥३९॥
तोयपूर्णान्मृदुस्पर्शात्सदृशं क्षोभवेपथू। दकोदरं स्थिरं स्निग्धं नाडीमावृत्य जायते॥४०॥

रोगी जब पूर्वोक्त छिद्र लक्षण से युक्त होता है तथा जब वह श्वास, पिपासा एवं भ्रम से पीड़ित होता है, तब वह छिद्रोदर कहलायेगा। इसे कोई विद्वान् परिस्रावी भी कहते हैं। जो सर्वदा स्नेह द्रव्य पान करने में लगे रहते हैं, जब वे अधिक जल पीते हैं, तब उनमें मन्दाग्नि रोग होता है। इससे रोगी दुबला होता है और यह रोग उत्पन्न हो जाता है। भय तथा वायु अम्लमार्ग को रोक देते हैं। अर्थात् अम्ल परिपाक न होने से उदर में अधिक जल संचय होता है। क्रमशः वह बढ़ने लगता है। जब यह रोग अधिक बढ़ता है, तब रोगी तृष्णा, गुदस्राव, कास, श्वास, अरुचि आदि उपद्रव से ग्रस्त होता है। इसमें उदर अनेक रंग की शिराओं से व्याप्त होता है। जलोदर में उदर जलपूर्ण तथा मृदुस्पर्श हो जाता है। इससे रोगी में क्षोभ तथा कंपकंपी होती है। उदर रोगी का उदर कभी-कभी बकोदर जैसा स्निग्ध एवं स्थिर भी प्रतीत होता है। उदर की नाड़ियों का आश्रय लेकर यह रोग होना कहा जाता है॥३६-४०॥

उपेक्षायाञ्च सर्वेषां स्वस्थानां परिचालिताः।
पाका द्रवा द्रवीकुर्य्युः सन्धिस्रोतोमुखान्यपि॥४१॥
स्वेदे चैव तु संरुद्धे मूर्च्छिताश्चान्तरस्थिताः। तदेवोदरमापूर्य्य कुर्य्यात्तदोदरामयम्॥४२॥
गुरूदरं स्थितं वृत्तमाहतञ्च न शब्दकृत्। हीनं बलं तथा घोरं नाड्यां स्पृष्टञ्च सर्पति॥४३॥
शिरान्तर्द्धानमुदरे सर्वलक्षणमुच्यते। वातपित्तकफप्लीहसन्निपातोदकोदरम्॥४४॥
पक्षाच्च जातसलिलं विष्टम्भोपद्रवान्वितम्।
जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम्॥४५॥

॥इति गारुडे महापुराणे उदरनिदानं नाम एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६१॥

सभी पेट के रोगों की उपेक्षा करने पर ये अपने स्थान से चालित होते हैं। ये पक्व तथा द्रवीभूत होते हैं। उस समय रोगी की सन्धि, स्रुति तथा मुख विकृत हो जाते हैं। शरीर का पसीना रुकने पर अन्दर का स्रोत भी अवरुद्ध सा हो जाता है। इससे उदर भर जाता है तथा उदर रोग पकड़ लेता है। किसी उदर रोग में उदर में अधिक जल एकत्र हो जाने से वह वर्तुल हो जाता है। लेकिन इसमें कोई शब्द नहीं होता। इसमें रोगी दिन-ब-दिन दुबला होता जाता है। यह रोग जब नाड़ी तक फैले, तब वही इसका घोरतम रूप है। जब उदर रोग में उदर की शिरायें छिप जाती हैं, तब इस रोग को पूर्ण लक्षणान्वित कहते हैं। वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, श्लेष्मोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर, जलोदर ये पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा, चौथे से पंचम, पंचम से षष्ठ तथा षष्ठ से सप्तम उत्तरोत्तर अत्यन्त कष्टपूर्ण तथा अधिक चिकित्सा साध्य होते जाते हैं। उदर रोग जब १५ दिन पार कर जाता है, तब वह असाध्य कहा गया है। इसमें जलोदर सबसे विष्टम्भ उपद्रव वाला होने के कारण वह कठिनाई से साध्य है। जन्म के तत्काल बाद से जो उदर रोग उत्पन्न होता है, वह अतीव कृच्छ्तम कहा गया है॥४१-४५॥

॥एक सौ एकसठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डु-शोथ निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

पाण्डुशोथनिदानञ्च शृणु सुश्रुत वच्मि ते।
पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः॥१॥

तत्र नीतेन बलिना क्षिप्ताक्षिप्तं यदि स्थितम्।
धमनीर्दशमीः प्राप्य व्याप्नुवन्सकलां तनुम्॥२॥
श्लेष्मत्वगसृङ्मांसानि प्रदूष्यन्त्येवमाश्रितम्।
त्वङ्मांसयोस्तु कुरुते त्वचि वर्णाः पृथग्विधाः॥३॥
स्वयं हरिद्राहारिद्रं पाण्डुत्वं तेषु चाधिकम्। यातोऽयं प्राहुरित्युक्तः स रोगस्तेन गौरवम्॥४॥
धातूनां स्पर्शशैथिल्यमामजश्च गुणक्षयः।
ततोऽल्परक्तभेदोऽस्थिनिःसारः स्याच्छ्लथेन्द्रियः॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! तुमसे पाण्डु तथा शोथ रोगनिदान कहता हूं। सुनो। जब पित्त अधिक प्रकट हो, तब वायु श्लेष्मा भी कुपित होता है। तब वायु बली होकर पित्त को हृदय में स्थापित करता है। यह पित्त धमनियों में व्याप्त होकर समस्त देह में व्याप्त हो जाता है। यह पूरे शरीर में व्याप्त होकर श्लेष्मा, चर्म, मांस आदि को दूषित करता है। इसमें चर्म वर्ण अनेक हो जाते हैं। जैसे हल्दी पीतवर्ण है। पाण्डुरोग से शरीर और अधिक पीला होता है। अतः इस रोग को पाण्डुरोग कहते हैं। इस रोग में धातु का गुरुत्व तथा शिथिल स्पर्श अनुभूत होता है। आमज पाण्डुरोग में शरीर का सर्वविध गुण क्षयीभूत होता है। इसके कारण रक्ताल्पता होती है। मेद तथा अस्थियां साररहित हो जाती हैं और इन्द्रियां श्लथ सी रहती हैं॥१-५॥

शीर्यमाणैरिवाङ्गैस्तु द्रवता हृदयेन च। शूनाक्षिकूटवदनस्तैमित्यं तत्र लालया॥६॥
हीनतृट् शिशिरद्वेषी शीर्षलोमा हतानलः।
समशक्तिज्वरी श्वासी कर्णशूली तथा भ्रमी॥७॥
स पञ्चधा पृथग्दोषैः समस्तैर्मृत्तिकादनात्। प्राग्रूपमस्यं हृदयस्पन्दनं रूक्षता त्वचि॥८॥
अरुचिः पीतमूत्रत्वं स्वेदाभावोऽल्पमूत्रता। मदः समानिलात्तत्र गाढरुक्क्लेदगात्रता॥९॥
कृष्णरूक्षारुणशिरानखविण्मूत्रनेत्रता। शोथो नासास्यवैरस्यं विट्शोषः पार्श्वमूर्च्छना॥१०॥

इस रोग में अंग शीर्ण होते हैं। हृदय में अत्यन्त धर्मोदय दिखलाई देता है। दर्द, आंखों में जलन तथा मुख लार से भर जाता है। रोगी तृष्णारहित, शिशिर से द्वेष करने वाला, शिरपीड़ा, रोमांच तथा मन्दाग्नि वाला होकर ज्वर, कास, श्वास, कान की पीड़ा तथा भ्रमि प्रभृति लक्षणान्वित रहता है। यह रोग पंचविध होता है। यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मृत्तिका भक्षणज। हृदय में स्पन्दन वृद्धि, त्वचा में रूखापन, अरुचि, मूत्र में पीलापन तथा अल्पमूत्र, धर्माभाव, ये पाण्डुरोग का पूर्वरूप द्योतित कराते हैं। वातज पाण्डुरोग में मत्तता, तीव्र पीड़ा, शारीरिक क्लिन्नता होती है। इसमें शिरा, नख, विष्ठा, मूत्र तथा नेत्र कृष्णवर्ण रहते हैं अथवा रुक्ष एवं अरुण वर्ण हो जाते हैं। इसमें शोथ, नाक-मुख की विरसता, सूखा मल होना, पार्श्व पीड़ा प्रभृति उपद्रव व्यक्त होते हैं॥६-१०॥

पित्ते हरितपित्ताभः शिरादिषु ज्वरस्तमः।
तृट्शोषमूर्च्छादौर्गन्ध्यं शीतेच्छा कटुवक्त्रता॥११॥

विड्भेदोऽम्लको दाहः कफाच्च हृदयार्द्रता।
तन्द्रा लवणवक्त्रत्वं रोमहर्षः स्वरक्षयः॥१२॥
कासश्छर्दिश्च निचयानिष्टलिङ्गोऽतिदुःसहः।
उत्कर्षानिलपित्तेन कटुर्वा मधुरः कफः॥१३॥

पित्तजनित पाण्डुरोग में शिरायें हरितवर्ण अथवा पीली होती हैं। ज्वर, अन्धेरा छाना, प्यास, शोष, मूर्च्छा, दुर्गन्ध, शीत सेवन की इच्छा, मुख की कटुता हो जाती है। कफ से उत्पन्न पाण्डुरोग में मलभेद, अम्ल भरी डकार, हृदय का आर्द्र भाव, तन्द्रा, मुख में नमकीन स्वाद, रोमांच, स्वरभंग, कास, वमन आदि लक्षण होते हैं। पाण्डुरोग में जब ये लक्षण हों, तब वह असहनीय हो उठता है। इसमें वायु तथा पित्त का उत्कर्ष रहने के कारण कफ मधुर अथवा कटु प्रतीत होता है॥११-१३॥

दूषयित्वा वसादींश्च रौक्ष्याद्रक्तविमोक्षणम्।
स्रोतसां संक्षयं कुर्य्यादनु रुद्ध्वा च पूर्ववत्॥१४॥
पाण्डुरोगे क्षयं यातं नाभिपादास्यमेहनम्।
पुरीषं कृमिवन्मुञ्चेद्भिन्नं सास्त्रं कफान्वितम्॥१५॥

उक्त कफ वसा आदि को दूषित करके रक्तमोक्षण करता है। वह शारीर स्रोतों का मार्ग रोक कर शरीर का क्षय करता है। इस रोग में नाभि, मुख, पैर, मुख तथा कोष क्षीण होते हैं। मल भी कृमियुक्त, रक्त मिला, कफयुक्त बहिर्गत् होता है॥१४-१५॥

यः पित्तरोगी सेवेत पित्तलं तस्य कामलम्।
कोष्ठशाखोद्गतं पित्तं दग्ध्वासृङ्मांसमाहरेत्॥१६॥
हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं मुखवक्त्रशकृत्तथा। दाही विपाकतृष्णावान्भेकाभो दुर्बलेन्द्रियः॥१७॥
भवेत्पित्तानुगः शोथः पाण्डुरोगावृतस्य च।
उपेक्षया च शोथाद्याः सकृच्छ्राः कुम्भकामलः॥१८॥
हरितश्चामपित्तत्वं पाण्डुरोगो यदा भवेत्। वातपित्तभ्रमस्तृष्णा स्त्रीषु हर्षो मृदुज्वरः॥१९॥
तन्द्रा वा चानलभ्रंशस्तं वदन्ति हलीमकम्। अलसञ्चाति महति तेषां पूर्वमुपद्रवः॥२०॥

जो पाण्डुरोगी पीतल के पात्र का सेवन करते हैं, उनको कामला रोग ग्रस लेता है। पित्त कोष्ठ से बहिर्गत् होकर रक्त मांस को जलाने लगता है। इस रोग के रोगी का मूत्र, नेत्र, त्वचा, मुख तथा मल हल्दी के रंग का होता है। रोगी दाह, विपाक, तृष्णा से पीड़ा पाता मेढक ऐसा दुर्बल हो जाता है। पाण्डु रोगी को पित्तज शोथ ग्रसता है। इस रोग की उपेक्षा करने से और अधिक शोथ होने से अत्यन्त क्लेश होने लगता है। इसे कुंभकामला कहते हैं। यदि पित्त के अपविपाक के कारण पाण्डुरोगी हरितवर्ण ऐसा हो और वात-पित्तजनित चक्कर, तृष्णा, स्त्री के प्रति अनुराग, हल्का ज्वर, तन्द्रा, अग्नि की मन्दता, अति आलस्य लक्षण प्रकट हों, तब इस रोग का नाम है हलीमक। ये सब रोग पूर्व के उपद्रव हैं॥१६-२०॥

शोथः प्रधानः कथितः स एवातो निगद्यते।
पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिःशिराः॥२१॥
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्य्यात्त्वङ्मांससंश्रयम्। उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः॥२२॥
सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम्। दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि॥२३॥
तदेव निजमागन्तु सर्वाङ्गे कामजं तु तत्। पृथन्नताग्रग्रथिता विशेषैश्च त्रिधा विदुः॥२४॥
सामान्यहेतुः शोथानां दोषजाता विशेषतः।
व्याधिकर्मोपवासादिक्षीणस्य भवति द्रुतम्॥२५॥

शोथ को अतीव प्रधान रोग कहा गया है। अब शोथ निदान कहता हूं। वायु दूषित होने पर रक्त, पित्त, कफ को दूषित कर देता है। उनको शिरा के बहिर्भाग में ले आकर उनकी गति को रुद्ध करके वायुत्वक् एवं मांस का आश्रय लेता है, जिससे त्वक् तथा मांस उच्च एवं कड़े हो जाते हैं। यही शोथ है। सभी शोथ अलग-अलग कारणों और रूप तथा भेद से विभिन्न प्रकार का होता है। यह नौ तरह का कहा गया है। जैसे—वातिक, श्लैष्मिक, पैत्तिक, वात-पैत्तिक, वात-श्लैष्मिक, पित्त-श्लैष्मिक, सान्निपातिक, अभिघातज, विषय एवं कामज। कामज शोथ सर्वव्यापक होता है। इसे आगन्तुक शोथ भी कहते हैं। कुपित वात-पित्त आदि को शोथ का सामान्य कारण कहा गया है। जिनका देह रोग, कर्म अथवा उपवास आदि से क्षीण है, उनको शोथ रोग आक्रान्त करता है॥२१-२५॥

अतिमात्रं यथान्यस्य गुरुरत्यन्तशीतलम्। लवणक्षारतीक्ष्णाम्लशाकाम्बुस्वप्नजागरम्॥२६॥
रोधो वेगस्य वल्लूरमजीर्णश्रममैथुनम्। पच्यते मार्गगमनं यानेन क्षोभिणापि वा॥२७॥

अधिक मात्रा में गुरु, शीतल, लवण, क्षारद्रव्य, तीक्ष्ण द्रव्य, अम्ल, शाक तथा जल ग्रहण करने से, अति निद्रा किंवा अति जागरण से शोथ होता है। मल-मूत्रादि वेग रोकना, सूखा मांस, गुरुपाक भोजन, ज्यादा मेहनत, मैथुनाधिक्य से शिरास्रोत में गतिरोध हो जाता है, अतः शोथ की उत्पत्ति होती है। सदा यान में आना-जाना भी शोथ का अहम कारण कहा गया है॥२६-२७॥

श्वासकासातिसारार्शोजठरप्रदरज्वरः। विष्टम्भालसकच्छर्दिहिक्कावीसर्पपाण्डु च॥२८॥
ऊर्ध्वशोथमधो वस्तौ मध्ये कुर्वन्ति मध्यगाः।
सर्वाङ्गगाः सर्वगतः प्रत्यगेति तदाश्रयः॥२९॥
तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामङ्गगौरवम्। वाताच्छोथश्चलो रूक्षः खररोमारुणोऽसितः॥३०॥

श्वास, कास, अतिसार, अर्श, उदरि, प्रदर, ज्वर, विष्टम्भ, अलसक, वमन, हिक्का, पाण्डुरोग तथा विसर्प शोथरोग के ही उपद्रव हैं। ऊर्ध्व, अधः, मध्य, वस्ति में जब जहां दोष जुट जाते हैं, वहीं शोथ का उदय होता है। इसके होने के पहले देह में उष्णता, शिरासमूह में प्रसारण जैसी वेदना तथा शरीर की गुरुता होती है। वातजनित शोथ चंचल, रूखा, अरुण वर्ण अथवा काला वर्ण होता है। शोथ के मूल वाले रोम कड़े तथा प्रखर हो जाते हैं॥२८-३०॥

शङ्खबस्त्यन्त्रभृशार्त्तिभेदी भेदाप्रसुप्तिमान्। वातोत्तानःसमः शीघ्रमुन्नमेत्पीडिता तनुः॥३१॥

स्निग्धस्तु मर्दनैः शाम्येद्रात्रावल्पो दिवा महान्।
त्वक्सर्षपलिप्ते च तस्मिंश्चिमिचिमायते॥३२॥
पीतरक्तासिताभासः पित्तजातश्च शोषकृत्।
शीघ्रं नासौ वा प्रशमेन्मध्ये प्राग्दहते तनुः॥३३॥
सतृड्दाहज्वरस्वेदो भ्रमक्लेशमदभ्रमाः।
साभिलाषी शकृद्भेदी गन्धः स्पर्शसहो मृदुः॥३४॥
कण्डूमान् पाण्डुरोमा त्वक्कठिनः शीतलो गुरुः।
स्निग्धः श्लक्ष्णः स्थिरः शूलो निद्राच्छर्द्यग्निमान्द्यकृत्॥३५॥

इस शोथ रोग में ललाट की अस्थि, वस्ति, अन्त्र में पीड़ा होती है। रोगी को अच्छी नींद नहीं आती। वायुजनित शोथ शीघ्र उठ जाता है। अंगुली से दबाने पर नीचा हो जाता है। यह शोथ स्निग्ध होता है। मलने पर शान्त होता है। रात में मन्द हो जाता है। दिन में बढ़ता है। इस पर सरसों आदि का लेपन करने से चुनचुनाहट होती है। पित्तज शोथ पीला, काला अथवा रक्तवर्ण होता है। इस शोथ को शोषकारी जाने। यह जल्दी ठीक नहीं होता। इसके उत्पन्न होने के पहले शरीर में जलन सी होती है। तृष्णा, दाह, ज्वर, धर्म, भ्रम, क्लेश, मत्तता जैसे उपद्रव होते हैं। यह दुर्गन्धमय, स्पर्श सहन करने लायक मृदु, खुजलीयुक्त, पीले रोमों वाला, कड़े चर्म का, शीतल-गुरु-स्निग्ध, कोमल, स्थिर तथा पीड़ामय होता है। यह शोथ ऐसा है, जिसमें नींद, वमन, मन्दाग्नि रूप उपद्रव होते हैं॥३१-३५॥

आघातेन च शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः। हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः॥३६॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान्।
भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः॥३७॥
विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्। दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि॥३८॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसङ्करात्। विषवृक्षानिलस्पर्शाद् गरयोगावचूर्णनात्॥३९॥
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः।
नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः॥४०॥

।इति गारुडे महापुराणे पाण्डुशोथनिदानं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६२।।

चोट, अस्त्र-शस्त्रों से भेदन, क्षत, शीतल वायु लगना, समुद्री वायु लगना, भिलावा के रस का सेवन करने तथा शुकशिम्बी के रोमों का स्पर्श करने से शोथोत्पत्ति होती है। अतिशय आने-जाने, चलने वाले व्यक्ति को शोथ होता है। इस शोथ में सभी पित्तलक्षण व्यक्त रहते हैं। जब कोई विषैला जीव, कीट, व्यक्ति के किसी अंग पर चलता अथवा मूत्र त्याग करता है, किंवा दांत-नख से आघात करता है, वहां शोथ पैदा हो जाता है। यह है विषज शोथ। इसके अलावा विषाक्त जीव की विष्ठा, मूत्र, शुक्र तथा मलयुक्त

वस्त्र के स्पर्श से, विषवृक्ष से लगती वायु के सेवन से, विषयुक्त वस्तु का देह पर लेप लगाने से विषज शोथ होता है। यह कोमल, चलनशील तथा शरीर के निम्न में जाता है। नया तथा उपद्रव रहित शोथ को चिकित्सा साध्य मानते हैं। इसके विपरीत जो शोथ है, उसे असाध्य समझो॥३६-४०॥

॥एक सौ बासठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विसर्प निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

विसर्पादिनिदानं ते वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु। स्याद्विसर्पो विघातात्त दोषैर्दुष्टैश्च शोथवत्॥१॥

अधिष्ठानञ्च तं प्राहुर्बाह्यं तत्र भयाच्छ्रमात्। यथोत्तरञ्च दुःसाध्यस्तत्र दोषो यथायथम्॥२॥

प्रकोपनैः प्रकुपिता विशेषेण विदाहिभिः।
देहे शीघ्रं विशन्तीह तेऽन्तरे हि स्थिता बहिः॥३॥

तृष्णाभियोगाद्वेगानां विषमाच्च प्रवर्त्तनात्।
आशु चाग्निबलभ्रंशादतो बाह्यं विसर्पयेत्॥४॥

तत्र वातात्स वीसर्पो वातज्वरसमव्यथः। शोथस्फुरणनिस्तोदभेदायासार्त्तिहर्षवान्॥५॥

धन्वन्तरि कहते हैं—हे सुश्रुत! अब मैं तुमसे विसर्परोग निदान कहता हूं। सुनो। मल-मूत्रादि के वेग को रोकने से वात प्रभृति रोग दुष्ट हो जाते हैं। वे शोथ जैसा विसर्प-उत्पन्न करते हैं। मल-मूत्रादि वेग ही विसर्परोग का बाह्य अधिष्ठान माना गया है। एतद् व्यतिरिक्त भय किंवा अत्यधिक मेहनत से भी विसर्परोग होता है। दोष के बलाबल तारतम्य से विसर्परोग क्रमशः दुःसाध्य होता जाता है। विशुद्ध आहार का उपभोग करने से वातादि दोष शान्त हो जाते हैं। विदाही द्रव्यों का सेवन करने से वे विशेष कुपित होकर अन्तः-बाह्य में अवस्थान करते हैं। तृष्णा तथा मलमूत्र वेग रोकने से वातादि दोष विशेषतः प्रवृत्त होकर अग्नि का बल का भ्रंश करके वाह्य में विसर्पण करते हैं। वात जनित विसर्परोग की स्थिति में वातिकज्वर के समान पीड़ा का अनुभव करते हैं। स्फोटक स्थान स्पन्दित होता है। शरीर में अनेक तरह की पीड़ा होती है तथा बिना परिश्रम किये थकान का बोध होता है॥१-५॥

पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः।
कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक्॥६॥

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः। सदोषलिङ्गैश्चीयन्ते सर्वैः स्फोटैरुपेक्षितः॥७॥

पित्तजनित विसर्परोग में वह लोहित वर्ण का होता है तथा एक स्थान से अन्य स्थान में खिसक जाता है। परिणामतः रोगी पित्तज ज्वरग्रस्त होता है। कफज विसर्परोग में व्रण में स्निग्धता होती है तथा खुजली अनुभूत होती रहती है। इसमें कफज ज्वर पीड़ा होती है। सान्निपातिक विसर्प में वात आदि त्रिदोष लक्षण प्रकट होते हैं। विसर्प के व्रण त्रिदोष लक्षणयुक्त होकर बढ़ते जाते हैं॥६-७॥

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः। ग्रन्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः॥८॥
करोति सर्वमङ्गञ्च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत्। यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत् स सः॥९॥

शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाशु च चीयते।
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं स च॥१०॥
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः।
व्यथतेऽङ्गं हरेत्संज्ञां निद्राञ्च श्वासमीरयेत्॥११॥
हिक्काञ्च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना।
क्वचिन्मर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु॥१२॥
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान्।
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते॥१३॥

वात-पित्तजनित विसर्प को अग्निविसर्प कहते हैं। इसमें रोगी को वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भ्रम, सन्धियों में भीषण वेदना, अग्नि की मन्दता, अरुचि तथा तमक श्वास का उपद्रव होता है। रोगी को अपने शरीर में ऐसी जलन का अनुभव होता है, मानों वह अंगारों से ढंका हो। जहां-जहां विसर्पजनित व्रण होता है, वहां-वहां वह स्थान बुझे कोयले की तरह काला पड़ जाता है अथवा वह स्थान नीला अथवा लाल भी लगता है। स्फोटक वाला स्थान अग्निदग्ध जैसा स्फीत हो जाता है। इसके पश्चात् यह रोग मज्जा आदि मर्म से प्रवेश करता है। वहीं पर वायु प्रबल होकर वेदना उत्पन्न करता है। रोगी इस पीड़ा से मूर्च्छित हो जाता है। इस रोग में अनिद्रा, मूर्च्छा, श्वास, हिचकी पैदा होकर रोगी को अतीव यातना प्रदान करती है। रोगी यातना से अत्यन्त अस्थिर हो कर कभी जमीन पर लेटता है, कभी बैठता है। उसे किसी भी तरह चैन नहीं मिलता। इस रोग में रोगी यातना से त्रस्त होकर अनेक प्रकार का प्रयत्न करने लगता है, लेकिन उसे कहीं भी चैन नहीं मिलता। अतः यातना से अस्थिर होकर वह मूर्च्छित हो उठता है। शीघ्र ही उसे चिरनिद्रा का आश्रय लेकर (मृत्यु का आश्रय लेकर) सभी ताप का नाश करना पड़ता है। यही है अग्निविसर्प का लक्षण॥८-१३॥

कफेन रुद्धःपवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम्।
रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम्॥१४॥
दूषयित्वा तु दीर्घानुवृत्तस्थूलखरात्मिकाम्। ग्रन्थीनां कुरुते मालां सरक्तां तीव्ररुग्ज्वराम्॥१५॥
श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः। मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम्।
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः॥१६॥

जब वायु कफ द्वारा अवरुद्ध हो जाता है, तब कफ अनेक भाग में बंट कर वायु से मिल जाता है। इससे यह व्यक्ति के चर्म, स्नायु, शिरा तथा मांसस्थ रक्त को दूषित कर देता है और तब वह जिस दीर्घ, गोलाकार, वेदना संयुक्त, स्थूल और खरस्फर्श वाली ग्रंथिमाला को जन्म देता है, वही है ग्रन्थि विसर्प। इस रोगाक्रान्त व्यक्ति को ज्वर, श्वास, कास, अतिसार, मुखशोष, हिक्का, वमन, भ्रम, मोह, मूर्च्छा, शरीर में विवर्णता, अंगों में वेदना तथा अग्नि की मन्दता का लक्षण व्यक्त होता है। कफ एवं स्नायु प्रकोप भी उत्पन्न हो जाता है। यही ग्रन्थि विसर्प है, जो कफ तथा वायु के कोप से उत्पन्न होता है॥१४-१६॥

कफपित्ताज्ज्वरःस्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा। अङ्गावसादविक्षेपौ प्रलापारोचकभ्रमाः॥१७॥

मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम्।

आमोपवेशनं लेपः स्त्रोतसां स च सर्पति॥१८॥

कर्दम विसर्प रोगग्रस्त रोगी में ज्वर, शरीर में शुष्कता, विवर्णता, निद्रा, तन्द्रा, शिरोवेदना, दुर्बलता, अंगविक्षेप, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्नि की मन्दता, प्यास, जड़ता, अपक्व मल त्याग का लक्षण होता है। सभी स्रोत कफ से लिप्त प्रतीत होते हैं॥१७-१८॥

प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक्। पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः॥१९॥

स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोथवान् गुरुः।

गम्भीरपाकः प्रायोष्मस्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्य्यते॥२०॥

आमाशय को ही कफ-पित्त का निवास कहते हैं। आमाशय से ही विसर्ग रोगोत्पत्ति होती है तथा वह शरीर में कहीं व्याप्त हो जाता है। इसमें अधिक वेदना नहीं होती। यह पीत, लाल तथा पाण्डुवर्णी पीड़का द्वारा व्याप्त होता है। यह स्निग्ध, कृष्णवर्ण, ईषत् काला, रुक्ष, मलिन, मिले वर्ण वाला, शोथवान्, गुरु, उष्ण तथा क्लेदयुक्त होता है। यह अन्दर से पक भी जाता है। विसर्प व्रण जब फूटता है, तब अतीव दुर्गन्धित रहता है॥१९-२०॥

पक्ववच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः। शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम्॥२१॥

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः स रक्तपित्तमीरयन्।

वीसर्पं मारुतः कुर्य्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम्॥२२॥

स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम्।

पृथग्दोषैस्त्रयः साध्या द्वन्द्वजाश्चानुपद्रवाः॥२३॥

असाध्याः कृतसर्वोत्थाः सर्वे चाक्रान्तमर्मणः।

शीर्णस्नायुशिरामांसाः क्लिन्नाश्च शवगन्धयः॥२४॥

॥इति गारुडे महापुराणे विसर्पनिदानं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६३॥

विसर्परोग में वहां से मांस खिसकता है, तब शिरायें-स्नायु दिखलाई पड़ने लगते हैं। यह विसर्प क्लेदयुक्त होता है। तभी इसे क्लेद विसर्प कहा है। शस्त्रघात से शरीर का कोई स्थान चोटहिल होने पर वहां का वायु दूषित होता है। यही दुष्ट हो गया वायु रक्त तथा पित्त को संचालित करके कुलथी की दाल के समान स्फोटकयुक्त जिस विसर्प को जन्म देता है, वही है क्षतज विसर्प। इसमें अतीव जलन एवं वेदना होती है। रोगी को ज्वर होता है तथा रक्त श्यामवर्ण हो जाता है अथवा काला-पीला मिश्रित रंग वाला लगता है। यह विसर्प एक दोष से ही उत्पन्न होने के कारण चिकित्सा साध्य है। जो विसर्प त्रिदोषज होते हैं, जो मर्म पर आक्रमण करते हैं, स्नायु, शिरा, मांस आदि को शीर्ण करके क्लिन्न होकर शव जैसी दुर्गन्ध फैलाते हैं, वे असाध्य होते हैं। यह निःसंदिग्ध बात है॥२१-२४॥

॥एक सौ तिरसठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कुष्ठरोग निदान

धन्वन्तरिरुवाच

मिथ्याहारविहारेण विशेषेण विरोधिना। साधुनिन्दावधाद् युद्धहरणाद्यैश्च सेवितैः॥१॥

पाप्मभिः कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैःप्रेरिता मलाः।
शिराः प्रपद्य तैर्युक्तास्त्वग्वसारक्तमामिषम्॥२॥
दूषयन्ति शुष्कीकृत्य निश्चरन्तस्ततो बहिः।
त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं शिष्टाः कुष्ठमुशन्ति तम्॥३॥
कालेनोपेक्षितं यत्स्यात् सर्वं कुष्ठानि तद्वपुः।
प्रपद्य धातून् बाह्यान्तः सर्वान् संक्लेद्य चावहेत्॥४॥
सस्वेदक्लेदसङ्कोचान् क्रिमीन् सूक्ष्मांश्च दारुणान्।
लोमत्वक्स्नायुधमनीराक्रामति यथाक्रमम्॥५॥

धन्वन्तरि कहते हैं—मिथ्या (गलत) आहार-विहार, विरोधी द्रव्य सेवन, साधु निन्दा, युद्ध-चोरी प्रभृति पाप कर्मों से वायु-पित्तादि कुपित हो जाते हैं। वे सभी शिराओं का आश्रय लेकर उनसे युक्त होते हैं। इससे चर्म, वसा, रक्त, मांस दूषित एवं शुष्क हो जाता है। वह मांस के (वह अर्थात् दूषित त्रिदोष) बहिर्भाग तक पहुंच कर चर्म को विवर्ण कर देता है। आयुर्वेद ज्ञाता विद्वान् इसे कुष्ठरोग कहते हैं। इस रोग के उत्पन्न होने पर इसकी उपेक्षा करना तथा चिकित्सा न करना, इस अवहेलना के कारण यह समस्त शरीर

पर आक्रमण कर देता है। तब यह आन्तरिक धातुओं को क्लिन्न करता है। इस रोगग्रस्तता में यत्र-तत्र धर्मोद्‌गम, कहीं किसी स्थान में क्लिन्नता, कहीं-कहीं संकुचन करता है। तदनन्तर क्लिन्न स्थानों में सूक्ष्म दारुण कृमि उत्पन्न होकर लोम, त्वचा, स्नायु तथा शिरा पर हमला कर देते हैं॥१-५॥

भस्माच्छादितवत्कुर्य्याद् बाह्यं कुष्ठमुदाहृतम्।
कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः॥६॥
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकस्ततः। वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात्॥७॥
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋष्याख्यं वातपित्तजम्।
चर्मैककुष्ठं किटिमं सिध्मालसविपादिकाः॥८॥
वातश्लेष्मोद्भवा श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी। पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा॥९॥
सर्वेभ्यः काकणं पूर्वत्रिकं दद्रु सकाकणम्।
पुण्डरीकर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु॥१०॥

जिस कुष्ठरोग में शरीर भस्म से आच्छादित सा लगता है, उसे वाह्यकुष्ठ कहा गया है। कुष्ठ सात तरह के कहे गये हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, वात-पित्त से उत्पन्न, वात-श्लेष्मा से उत्पन्न, पित्त-श्लेष्मा से उत्पन्न, सन्निपात से उत्पन्न। सभी कुष्ठ का तीनों दोषों से सम्बन्ध रहता है। वातज कुष्ठ को कापाल कहा गया है। पित्तज कुष्ठ को उदुम्बर तथा कफज कुष्ठ को मण्डल कहते हैं। विचर्चिका, ऋष्यजिह्व नामक दो कुष्ठ वातपित्तज हैं। चर्मकुष्ठ, किटिम, सिध्म, अलस, विपादिका कुष्ठ वातश्लेष्मज होते हैं। दद्रु, शतारुष, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा, चर्मदल नामक कुष्ठ पित्तश्लेष्मज हैं। सभी कुष्ठों में दद्रु तथा काकण प्रथम कुष्ठ हैं। पुण्डरीक आदि सात कुष्ठ महाकुष्ठ कहे जाते हैं॥६-१०॥

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः। दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः काचोन्न तिस्तमः॥११॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः।
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽतिकोपनम्॥१२॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम्। कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु॥१३॥
विस्तृताकृतिपर्य्यस्तं दूषितैर्लोमभिश्चितम्।
कापालं तोदबहुलं तत् कुष्ठं विषमं स्मृतम्॥१४॥
उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत्। वर्त्तुलं बहुलक्लेदयुक्तं दाहरुजाधिकम्॥१५॥

कुष्ठ कोमल, खुरदुरा, स्वेदयुक्त तथापि अस्वेद भी होता है। यह विवर्ण रहता है। इस रोगोत्पत्ति के पहले खुजली, ज्वाला, चर्म की स्पर्शशक्ति का गायब होना तथा उस स्थान में संकुचन, ये लक्षण हैं। रोगी की आंखों के आगे अंधेरा छाता है। इसमें कम समय में ही बहुत से व्रण हो जाते हैं। ये सभी व्रण दीर्घकालीन होते हैं। इनमें सदा शूलभेद जैसी पीड़ा उभरती रहती है। ये सभी व्रण रूखे भी होते हैं। इनमें कम समय में ही दोष अत्यधिक प्रकटित हो जाते हैं। रोमांच, रक्तक्षीणता कुष्ठ के प्रधान लक्षणद्वय हैं। इस रोग के पहले कपाल काला, अरुण रंग का रूखा, कर्कश तथा क्षीण हो जाता है। जिस कुष्ठ में कहीं-

कहीं रोमों तक फैले विस्तृत चिह्न दीखें तथा वहां अधिक वेदना का अनुभव हो, वह है कपाल कुष्ठ। यह अतीव विषम होता है। जिसमें शरीर में उडुम्बर जैसे व्रण उत्पन्न हों, वह उडुम्बर कुष्ठ है। इसमें शरीर में अनेक क्लेद वाले वर्त्तुल व्रण पैदा होते हैं। इनमें प्रभूत दर्द तथा जलन होती है॥११-१५॥

असंच्छन्नमदरणं कृमिवत् स्यादुदुम्बरम्।
स्थिरं स्त्यानं गुरु स्निग्धं श्वेतरक्तं मलान्वितम्॥१६॥
अन्योन्यासक्तमुच्छूनबहुकण्डूस्रुतिक्रिमिम्। श्लक्ष्णपीताभसंयुक्तं मण्डलं परिकीर्तितम्॥१७॥
सकण्डूपिडका श्यावा सक्लेदा च विचर्चिका।
परुषं तत्र रक्तान्तमन्तः श्यामं समुन्नतम्॥१८॥
ऋष्यजिह्वाकृति प्रोक्तं ऋष्यजिह्वं बहुक्रिमि।
हस्तिचर्मखरस्पर्शं चर्माख्यं कुष्ठमुच्यते॥१९॥
अस्वेदञ्च मत्स्यशल्कसन्निभं किटिमं पुनः।
रूक्षाग्निवर्णं दुःस्पर्शं कण्डूमत् परुषासितम्॥२०॥

इस कुष्ठ में व्रण विदीर्ण नहीं होते। इनमें तो कृमियों का जन्म होता है। जिस कुष्ठ में व्रण स्थिर, घने, गुरु, स्निग्ध, सफेद अथवा लाल होते हैं, अधिक मलान्वित होते हैं, परस्पर सटे नहीं होते, उच्च होते हैं, जिनमें खुजली, रक्तस्राव होता है तथा कृमि वाले होते हैं, कोमल पीले आभा वाले होते हैं, वह मण्डलकुष्ठ है। खुजली तथा पीड़का वाले श्याम वर्ण, क्लेदयुक्त कुष्ठ ही विचर्चिका है। यह कर्कश होता है। अन्दर से लाल, बाहर से श्याम रंग का तथा कुछ उठा होता है। जिस कुष्ठ में देह में ऋष्य की जीभ जैसा चिह्नांकन हो, वही है ऋष्यजिह्व कुष्ठ। इसमें कीड़े भरे रहते हैं। जब शरीर का चर्म हाथी की चमड़ी जैसा खुरदुरा हो, तब वही है चर्मकुष्ठ। स्वेदहीन, मछली के शल्क की तरह जो चिह्न देह पर उत्पन्न होता है, वही है किटिमकुष्ठ। यह रुक्ष, अग्निवर्ण अथवा अश्वेतवर्ण, दुस्पर्शयुक्त तथा खुजली सहित होता है॥१६-२०॥

अन्तरूक्षं बहिः स्निग्धमन्तर्घृष्टं रजः किरेत्।
श्लक्ष्णस्पर्शं तनु स्निग्धं स्वच्छमस्वेदपुष्पवत्॥२१॥
प्रायेण चोर्ध्वं कार्श्यञ्च कुण्डैः कण्डूपरैश्चितम्।
रक्तैरलंशुका पाणिपादे कुर्य्याद्विपादिका॥२२॥
तीव्रार्त्तगाढकण्डूञ्च सरागपिडकाचितम्। दीर्घप्रतानदूर्वावदतसीकुसुमच्छवि॥२३॥
उच्छूनमण्डलो दद्रुः कण्डूमानिति कथ्यते। स्थूलमूलं सदाहात्ति रक्तस्रावं बहुव्रणम्॥२४॥
सदाहकक्लेद रुजं प्रायशः सर्वजन्म च।
रक्ताक्तमण्डलं पाण्डु कण्डूदाहरुजान्वितम्॥२५॥

सिध्म कुष्ठ अन्दर से रूखा, बाहर से स्निग्ध कहा गया है। इस कुष्ठ स्थान को दबाने से रक्त

निकलने लगता है। यह कभी कोमल स्पर्शयुक्त, अति क्षीण तथा स्वच्छ हो जाता है। जो कुष्ठ व्रण ऊर्ध्व में कृश तथा कुण्डाकार, खुजली वाला तथा लाल चिह्नों से भरा रहता है, वह विपादिका कहा गया है। यह प्रायशः पैर एवं हाथ में (तलवों में) होता है। कोई कुष्ठ तीव्र दर्द वाला, अत्यन्त खुजलाहट युक्त, लालिमा लिये, पीड़काओं से भरा, दीर्घ, विस्तृत, अतसी पुष्प के रंगों वाला तथा दूर्वा के अंकुर जैसा हो जाता है। दाद को भी कुष्ठ में ही गिनते हैं। यह मण्डलाकार तनिक ऊंचा खुजलाहट भरा व्रण होता है। त्रिदोष से उत्पन्न कुष्ठ स्थूलमूल, दाह तथा दर्दयुक्त होता है। कभी-कभी शरीर पर लाली लिये मण्डलाकृति पाण्डुवर्ण चिह्न होते हैं। इसमें खुजली, जलन तथा पीड़ा होती रहती है॥२१-२५॥

सोत्सेधमाचितं रक्तैः पर्णपत्रमिवाम्बुभिः।
पुण्डरीकं भवेत्तद्धि चित्तं स्फोटैः सितारुणैः॥२६॥
विस्फोटपिटका पामा कण्डूक्लेदरुजान्विता।
सूक्ष्मा श्यामारुणा रूक्षा प्रायः स्फिक्पाणिकूर्परे॥२७॥
सस्फोटसंस्पर्शसहं कण्डूरक्तातिदाहवत्। रक्तदलं चर्मदलं काकणं तीव्रदाहरुक्॥२८॥
पूर्वरक्तञ्च कृष्णञ्च काकणं त्रिफलोपमम्।
कृष्णलिङ्गैर्युतैः सर्वैः स्वस्वकारणतो भवेत्॥२९॥
दोषभेदाय विहितैरादिशेल्लिङ्गकर्मभिः। कुष्ठं स्वदोषानुगतं सर्वदोषगतं त्यजेत्॥३०॥

पुण्डरीक कुष्ठ तनिक ऊंचा, पर्णपत्रवत् होता है। यह सफेद अथवा लाल स्फोटकों से भरा रहता है। इसमें खुजली, क्लेद तथा वेदना अनुभूत होते हैं। जो कुष्ठ श्याम वर्ण किंवा लालिमा लिये रूखे विस्फोटक तथा पीड़कायुक्त होता है, वह पामाकुष्ठ कहा गया है। यह नितम्ब, केहुनी में होता है। रक्तदल, चर्मदल, काकण कुष्ठ तीव्र दाह तथा अधिक वेदना वाले होते हैं। ये स्फोट सहित होते हैं। ये स्पर्शसह्य, खुजली भरे तथा रक्तयुक्त देखे जाते हैं। काकणकुष्ठ पहले लालिमा लिये, बाद में कृष्ण वर्ण होता है। इसका आकार त्रिफला जैसा होता है। कुष्ठ रोग में अपने-अपने कारण के वशात् सभी चिह्न प्रकट होते हैं। चिह्न एवं कार्य से कुष्ठ रोग के दोषों का निर्णय करना चाहिये। जिस दोष से जो कुष्ठ जन्मा है, उसके अनुसार उसका इलाज करे। लेकिन जो कुष्ठ सर्वदोष समन्वित हो, उसका त्याग करे, अर्थात् चिकित्सक के लिये उसे ठीक कर सकना असाध्य होगा। जिस एक दोष से उत्पन्न कुष्ठ में तीनों दोषों का लक्षण व्यक्त हो जाये, उसका तत्काल त्याग कर दे॥२६-३०॥

कुष्ठोक्तं यच्च यच्चास्थिमज्जशुक्रसमाश्रयम्।
कृच्छ्रं मेदोगतञ्चैव याप्यं साध्यास्थिमांसगम्॥३१॥
अकृच्छ्रं कफवातोत्थं त्वग्गतं त्वमलञ्च यत्।
तत्र त्वचि स्थिते कुष्ठे काये वैवर्ण्यरूक्षता॥३२॥
स्वेदतापश्वयथवः शोणिते पिशिते पुनः।
पाणिपादाश्रिताः स्फोटाः क्लेशात् सन्धिषु चाधिकम्॥३३॥

दोषस्याभीक्ष्णयोगेन दलनं स्याच्च मेदसि।
नातिसंज्ञास्ति मज्जास्थिनेत्रवेगस्वरक्षयः॥३४॥
क्षते च क्रिमिभिः शुक्रे स्वदारापत्यबाधनम्।
यथा पूर्वाणि सर्वाणि स्वलिङ्गानि मृगादिषु॥३५॥

जिस-जिस तरह का कुष्ठ कहा गया है, उसका अस्थि-मज्जा तथा शुक्रगत होना जब पता चले, तब वह कठिनाई से ठीक होगा। चर्मगत, कफवातज तथा मलरहित कुष्ठ सुसाध्य है। चर्मगत कुष्ठ में केवल शरीर की विवर्णता तथा रुक्षता होती है। रक्तगत एवं मांसगत कुष्ठ में हाथ-पैरों में पसीना, ताप तथा सूजन होती है और सन्धियों में अनेक स्फोटक पैदा होते हैं। इससे रोगी नितान्त पीड़ित होता है। कुष्ठरोग में दोषों की अधिकता होने पर मेद का विदलन होने लग जाता है। इसमें नासाभंग, मज्जा-अस्थि-नेत्र-वेग तथा स्वरक्षय भी होता है। कुष्ठ में कृमियों के कारण शुक्रक्षय होता है। इसमें सन्तानोत्पादन शक्ति नहीं रह जाती। इन सब कहे गये चिह्न द्वारा उन-उन कुष्ठरोग का दोष निर्णय करे (अर्थात् रोगी का निदान करे)। यह रोग मृग आदि प्राणियों को भी हो जाता है॥३१-३५॥

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं दारुणं भवेत्। निर्दिष्टमपरिस्त्रावि त्रिधातूद्भवसंक्षयम्॥३६॥
वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्। सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु॥३७॥
सकण्डूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत्। वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम्॥३८॥
अशुक्लरोमबहुलमसंश्लिष्टमथो नवम्।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा॥३९॥
गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम्। वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता॥४०॥
स्पर्शैकाहारसङ्गादिसेवनात् प्रायशो गदाः।
एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥४१॥

।।इति गारुडे महापुराणे कुष्ठरोगनिदानं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६४।।

श्वित्ररोग (सफेद कुष्ठ) भी कुष्ठ के अन्तर्गत् है। किलास कुष्ठ अतीव दारुण होता है। इन दोनों कुष्ठों में रक्तादि का स्राव नहीं होता, यह त्रिदोषज है। वातज श्वित्ररोग रुक्ष तथा अरुण वर्ण, पित्तज श्वित्र ताम्रवर्ण तथा पद्मपत्राकृति होता है। कफज श्वित्ररोग श्वेत, घन तथा गुरु होता है। इसमें सदा प्रदाह रहता है तथा श्वित्र स्थान में रोम नहीं रहते। श्वित्ररोग पहले चर्म में होता है। क्रमशः मांस एवं मेदाश्रय लेता है। श्वित्र तथा किलास एक ही समान होते हैं। केवल रक्तगत होने पर ही ये साध्य हैं। मेदोगत होने पर ये असाध्य हैं। जिस श्वित्ररोग में जब तक रोम श्वेत नहीं हो जाते, श्वित्र अलग-अलग एक दूसरे से पृथक रहते हैं, ऐसा नया रोग ही साध्य है। इसके विपरीत असाध्य होता है। अग्नि से जला श्वित्र पूर्णतः असाध्य होता है। गुह्य, हथेली, ओष्ठ में श्वित्र जन्म होने पर वह भी असाध्य है। यह भले ही नया उत्पन्न हो, तथापि

चिकित्सा से साध्य (अच्छा) नहीं हो सकता। यशकामी चिकित्सक ऐसे श्वित्र तथा किलास रोगी को छोड़ कर चला जाये। प्राय: सभी रोग संक्रामक होते हैं। रोगी के स्पर्श, उसके साथ आहार आदि संसर्ग से रोगों का संक्रमण होता है। रोगी के साथ एक बिस्तर पर शयन, एक आसन पर बैठना, एक ही वस्त्र बदल कर (रोगी का) पहनना, रोगी के उपयोग में आये माला अनुलेप को धारण करना स्वस्थ को भी रोगी बना देगा!॥३६-४१॥

॥एक सौ चौंसठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
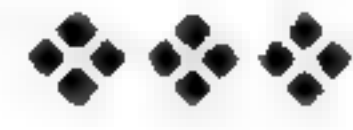
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

क्रिमि निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

क्रिमयश्च द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः। बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः॥१॥

नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः।
तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः॥२॥
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः।
द्विधा ते कोठपिडकाः कण्डूगण्डान् प्रकुर्वते॥३॥

कुष्ठैकहेतवोऽन्तर्जाः श्लेष्मजा बाह्यसम्भवाः। मधुरान्नगुडक्षीरदधिमत्स्यनवौदनैः॥४॥

धन्वन्तरि कहते हैं—हे सुश्रुत! अब मैं बाह्य तथा आभ्यन्तर भेद से क्रिमि निदान कहता हूं। बाह्य मल और कफ, रक्त तथा विष्ठा से जो क्रिमि पैदा होते हैं। अत: बाह्य एवं आन्तर इन दो भेद वाले कृमि ही अब चतुर्विध हो जाते हैं। ये सभी बीस तरह के कहे गये हैं। स्वेद आदि बाहरी मल से जो कृमि पैदा होते हैं, वे हैं बाहरी कृमि। ये सभी तिल जैसे वर्ण एवं आकृति के होते हैं। ये सभी केश एवं वस्त्र का आश्रय लेकर रहते हैं। बाहरी कृमियों के अनेक पैर होते हैं। ये सूक्ष्म होते हैं। इनको जूं तथा लीख कहा जाता है। ये कोठ, पीड़का तथा खुजली तथा गण्डरोग पैदा करते हैं। श्लेष्मज कृमि भी बाहर पैदा होते हैं। अन्दर उत्पन्न क्रिमि कोढ़ के एकमात्र कारण हैं। मधुर अन्न, गुड़, खीर, दधि, मछली तथा नया अन्न खाने से क्रिमि पैदा हो जाते हैं॥१-४॥

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः।
पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूषदोपमाः॥५॥

रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाणवः। श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते॥६॥

अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुदाः। च्युरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते॥७॥
हृल्लासमास्यस्त्रवणमविपाकमरोचकम्। मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान्॥८॥

कफज क्रिमि आमाशय में पैदा होकर बढ़ते हैं। ये संचरण करते हैं। इनमें कई विस्तृत तथा सूर्यमण्डल जैसे गोल होते हैं। कुछ लूका की तरह होते हैं। कोई क्रिमि धान के अंकुर जैसे सूक्ष्म होते हैं। कुछ सूक्ष्म अंकुरवत् निर्मल होते हैं। इनमें कुछ श्वेत आभा वाले, कुछ ताम्राभ होते हैं। नाम के वर्गीकरण से ये सप्तधा कहे गये हैं। ये हैं अन्त्रद, उदरावेष्ठ, हृदयाद, महागुद, च्युरु, दर्भकुसुम तथा सुगन्ध। ये मनुष्य को हृल्लास, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, आनाह, कृशता, हिचकी तथा नासिका से स्राव के उपद्रव को पैदा करते हैं॥५-८॥

रक्तवाहिशिरास्थानरक्तजा जन्तवोऽणवः।
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्मयात्केचिददर्शनाः॥९॥
केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः। षट् ते कुष्ठककर्माणः सहसौरसमातरः॥१०॥
पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः।
वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदामाशयोन्मुखाः॥११॥
तदास्योद्गारनिःश्वासविड्गन्धानुविधायिनः। पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः॥१२॥
ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः।
सौसुरादाः सशूलाख्या लेलिहा जनयन्ति हि॥१३॥
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः। रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः॥१४॥

॥इति गारुडे महापुराणे क्रिमिनिदानं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६५॥

रक्तवाही शिरा से रक्त द्वारा जो छोटे-छोटे कृमि उत्पन्न होते हैं, उनके पैर नहीं होते। वे गोलाकृति तथा ताम्रवर्ण होते हैं। इनमें कुछ तो इतने सूक्ष्म होते हैं, जो परिलक्षित नहीं होते। उक्त क्रिमि छः प्रकार के होते हैं—केशाद, रोम विध्वंस, रोमदीप, उडुम्बर, सौरस तथा मातृ। ये कुष्ठ उत्पन्न करते हैं। जो क्रिमि उत्पन्न होकर पक्वाशय के नीचे की जगहों पर विचरते हैं, वे बड़े होकर जब आमाशय में पहुंचते हैं, तब रोगी के डकार में तथा श्वास में विष्ठा जैसी दुर्गन्ध उठती है। इस समय क्रिमियों में कुछ विस्तृत (लम्बे), कुछ वृत्ताकार, कुछ सूक्ष्म, कुछ स्थूल, कुछ श्याम, कुछ पीत, कुछ शुभ्रवर्ण, कुछ कृष्णवर्ण होते हैं। ये पांच तरह के कहे गये हैं। यथा—ककेरुक, मकेरुक, सोसुराद, सशूलाख्य तथा लेलिह। ये विपथगामी होकर मलभेद, शूल, उदर की विष्टम्भता, देह की कृशता, कर्कशता, पाण्डुवर्णता, अग्निमन्दता, मलद्वार पर खुजली पैदा करते हैं॥९-१४॥

॥एक सौ पैंसठवां अध्याय समाप्त॥

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वातव्याधि निदान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

वातव्याधिनिदानं ते वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु। सर्वथानर्थकथने विघ्न एव च कारणम्॥१॥
अदृष्टदुष्टपवनशरीरमविशेषतः। स विश्वकर्मा विश्वात्मा विश्वरूपः प्रजापतिः॥२॥
स्त्रष्टा धाता विभुर्विष्णुः संहर्त्ता मृत्युरन्तकः। तद्वदुक्तञ्च यत्नेन यतितव्यमतः सदा॥३॥
तस्योक्ते दोषविज्ञाने कर्म प्राकृतवैकृतम्। समासव्यासतो दोषभेदानामवधाय च॥४॥
प्रत्येकं पञ्चधा वीरो व्यापारश्चेह वैकृतः। तस्योच्यते विभागेन सनिदानं सलक्षणम्॥५॥

धन्वन्तरि कहते हैं—हे सुश्रुत! अब वातरोग निदान सुनो। सभी अनर्थ का कारण है शारीर विघ्न। अदृष्ट बल से शरीर में वायुदोष उत्पन्न होने पर शरीर अकर्मण्य सा हो जाता है। इसी की परीक्षा का यत्न जिस प्रकार विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप, प्रजापति, स्त्रष्टा, धाता, विभु, विष्णु, संहर्त्ता, मृत्यु तथा यम ने किया था, उसी तरह से सर्वदा शरीर रक्षार्थ व्यक्ति यत्न करता रहे। रोग के दोष जानने हेतु प्राकृत तथा वैकृत कर्म जरूरी है। सामान्यतया तथा विशेषतया दोष-अदोष को ज्ञात करके रोगनिर्णय करे। पञ्च कर्म से पृथक् रूपेण रोगनिर्णय करते हैं। वही है प्राकृत कर्म। इसको जानने हेतु वातव्याधि का कारण तथा लक्षण कहते हैं॥१-५॥

धातुक्षयकरैर्वायुः क्रुद्धो नातिनिषेव्यते। चतुःस्त्रोतोऽवकाशेषु भूयस्तान्येय पूरयेत्॥६॥
तेभ्यस्तु दोषपूर्णेभ्यः प्रच्छाद्य विवरं ततः।
तत्र वायुः शकृत्क्रुद्धः शूलानाहान्त्रकूजनम्॥७॥
मलरोधं स्वरभ्रंशं दृष्टिपृष्ठकटिग्रहम्। करोत्येव पुनः काये कृच्छ्रानन्यानुपद्रवान्॥८॥
आमाशयोत्थं वमथुश्वासकासविसूचिकाः। कण्डूपरोधधर्मादिव्याधीनूर्ध्वञ्च नाभितः॥९॥
स्त्रोतादिष्विन्द्रियाबाधं त्वचि स्फोटनरूक्षताम्। चक्रे तीव्ररुजाश्वासगरामयविवर्णताः॥१०॥

धातु का क्षय करने वाले द्रव्यदोषों के कारण वायु दूषित होता है। इस कारण वे द्रव्य सेवनीय नहीं हैं। वायु सभी शिरास्त्रोतों का रोध करके पुनः उनको भरता है। जब शिरास्त्रोत ही दूषित हो जायें, तब वायु कुपित हो जाता है। वह सभी चर्म विवर को आच्छादित कर देता है। इस कारण शूल, आनाह, अंगकूजन, मलरोध, स्वरभ्रंश, चक्षु का दृष्टिरोध, पृष्ठ एवं कटिग्रह प्रभृति उपद्रव होने लगते हैं। शरीर दूषित होकर अन्य तकलीफदेह उपद्रव भी हो जाते हैं। जब आमाशय में वातव्याधि पैदा हो जाये, तब वमन, श्वास, कास, विसूचिका, कण्ठावरोध तथा नाभि के ऊर्ध्वभाग में अनेक व्याधियों का उदय होता है। शारीरिक स्त्रोतों का रोध, इन्द्रियपीड़ा, चर्मस्फोट, चर्म का रूखापन, अत्यन्त पीड़ा, श्वास, गरामय, विवर्णता आदि वात व्याधियां प्रकट होती हैं॥६-१०॥

अन्त्रस्यान्तञ्च विष्टम्भमरुचिं कृशतां भ्रमम्। मांसमेदोगतग्रन्थिं चर्मादावुपकर्कशम्॥११॥

गुर्वङ्गं तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं यथा।
अस्थिस्थः सक्थिमन्यस्थिशूलं तीव्रञ्च लक्षयेत्॥१२॥
मज्जस्थोऽस्थिषु चास्थैर्य्यमस्वप्नं यत्तदा रुजाम्।
शुक्रस्य शीघ्रमुत्सङ्गसर्गान्विकृतिमेव वा॥१३॥
तत्तद्गर्भस्थशुक्रस्थः शिरश्चाश्यानविट्कता।
तत्र स्थानस्थितः कुर्य्यात्क्रुद्धः श्वयथुकृच्छ्रताम्॥१४॥

जलपूर्णदृतिस्पर्शं शोषं सन्धिगतोऽनिलः। सर्वाङ्गसंश्रयस्तोदभेदस्फुरणभञ्जनम्॥१५॥

इसमें अंग का विष्टम्भ (अवरोध), अरुचि, भ्रम, मांस तथा मेदोगत ग्रन्थि तथा चर्मादि में कर्कशता, ये सभी उपद्रव उदित होते हैं। इसमें शरीर अतीव भारी लगता है। शरीर पर मुक्का मारने अथवा लाठी का प्रहार करने से जो पीड़ा होती है, इस रोग में भी तद्रूप वेदना का अनुभव होता है। अस्थि-मज्जा, जानु आदि में अत्यन्त शूल प्रतीत होता है। वात-व्याधि रोग में मज्जा तथा अस्थि में ऐसी वेदना होती है कि कैसे भी रोगी को आराम नहीं मिल पाता। वह स्वयं निद्रा में नहीं जा पाता। उसमें शीघ्र वीर्यपतन की विकृति पैदा हो जाती है। गर्भस्थ तथा शुक्रस्थ वात रोग शिर में पीड़ा तथा मल की कठिनता उत्पन्न करता है। यह रोग पहले जहां हमला करता है, वहां शोथ उत्पन्न हो जाता है। यह शोथ रोगी को भयानक पीड़ा पहुंचाता है। इस रोग में रोगी का समस्त शरीर जलपूर्ण दृतिस्पर्श सा लगता है। (दृति = मशक) वायु शरीरस्थ सन्धि में प्रवेश करके शोष उत्पन्न करता है। पुनः वायु सर्वाङ्ग का आश्रय लेता है। तब शारीर पीड़ा, जैसे कुछ भेदन हो रहा हो, ऐसी वेदना, सन्धि टूटने जैसा आभास, स्तम्भन, आक्षेपण, स्वप्न तथा कम्पन का प्रकोप होता है॥११-१५॥

स्तम्भनाक्षेपणं स्वप्नः सन्धिभञ्जनकम्पनम्।
यदा तु धमनीः सर्वाः क्रुद्धोऽभ्येति मुहुर्मुहुः।
तदाङ्गमाक्षिपत्येष व्याधिराक्षेपणः स्मृतः॥१६॥

अधः प्रतिहतो वायुर्व्रजेदूर्ध्वं तदा पुनः। तदावष्टभ्य हृदयं शिरःशङ्खौ च पीडयेत्॥१७॥

स क्षिपेत्परितो गात्रं हनुं वा चास्य नामयेत्।
कृच्छ्रादुच्छ्वसितिस्तस्य निमीलन्नयनद्वयम्॥१८॥

कपोत इव कूजेच्च निःसङ्गः सोपतंत्रकः। स एव वामनासायां युक्तस्तु मरुता हृदि॥१९॥

प्राप्नोति च मुहुः स्वास्थ्यं मुहुरस्वास्थ्यवान्भवेत्।
अभिघातसमुत्थश्च दुश्चिकित्स्यतमो मतः॥२०॥

जब वायु का आक्रमण सभी धमनियों पर होता है, तब वह कुपित होकर पुनः-पुनः समस्त देह में विचरने लगता है। इससे अंगविक्षेप होता है। उसे आक्षेपण रोग कहते हैं। जब वायु अधोदिक् (आघात)

से लौट कर पुनः ऊर्ध्व में उठता है, तब उस समय वह हृदय पर हमला करके शिरः एवं ललाटास्थि को दबाता है। इस वायु से समस्त शरीर विक्षिप्त सा हो जाता है। इससे हनु स्तम्भित होता है और मुख झुक सा जाता है। यह रोग होने पर रोगी का श्वसन कार्य अत्यन्त तकलीफ से होता है। दोनों नेत्र बन्द हो जाते हैं। इस रोग में रोगी कपोत की तरह अव्यक्त सा शब्द करता है। इससे ज्ञानाभाव से अपतन्त्रक रोग का आक्रमण होता है। यही अपतन्त्रक रोग कहा गया है। यह रोग बायीं नाक तथा हृदय तक पहुंच जाता है। इस अपतंत्र रोगोत्पत्ति होने पर रोगी कभी अच्छा महसूस करता है, कभी अत्यन्त अस्वस्थता का अनुभव करता है। अभिघातक वातरोग को असाध्य तथा अत्यन्त दुश्चिकित्स्य भी कहते हैं॥१६-२०॥

स्वेदस्तम्भं तदा तस्य वायुच्छिन्नतनुर्यदा।
व्याप्नोति सकलं देहं यत्र चायाम्यते पुनः॥२१॥
अन्तर्धातुगतश्चैव वेगस्तभश्च नेत्रयोः। करोति जृम्भां सदनं दशनानां हतोद्यम्॥२२॥
पार्श्वयोर्वेदनां बाह्यां हनुपृष्ठशिरोग्रहम्। देहस्य बहिरायामं पृष्ठतो हृदये शिरः॥२३॥
उरश्चोत्क्षिप्यते तत्र स्कन्धो वा नाम्यते तदा।
दन्तेष्वास्ये च वैवर्ण्यमस्वेदस्तत्र गात्रतः॥२४॥
बाह्यायामं हनुस्तम्भं ब्रुवते वातरोगिणम्। विण्मूत्रमसृजं प्राप्य ससमीरसमीरणाः।२५॥

इस रोग में वायु समस्त शरीर को ढांकता है। रोगी को तब पसीना नहीं होता तथा जब यह लगे कि रोगी का शरीर अवसन्नता में है, तब वायु ने सर्व शरीर को आक्रान्त कर लिया, यह जाने। जब वायु अन्तर्धातुगत होता है, तब वेगस्तम्भ, नेत्ररोध, जंभाई, दान्तों की मलिनता, उत्साहहीनता आदि उपसर्ग होते हैं। इस रोग में पार्श्ववेदना, हनुग्रह, पृष्ठरोध, शिरोवेदना, शरीर के बाह्य भागों का नुकसान, पृष्ठ तथा हृदय में गुरुता आदि अनेक उपद्रव होते हैं। इस रोग में सदैव मस्तक घूमता है। कन्धे झुक जाते हैं। दांत तथा मुख विवर्ण हो जाता है। शरीर के किसी स्थान से भी पसीना नहीं निकलता। शरीर के बाह्य भागों की अवनति होती है। हनुस्तम्भ होने से इस रोगी को वात रोगी कहते हैं। इस रोग में वायु द्वारा मल तथा मूत्र रक्त का आश्रय लेकर समस्त शरीर में घूमता है॥२१-२५॥

आयच्छन्ति तनोर्दोषाः सर्वमापादमस्तकम्।
तिष्ठतः पाण्डुमात्रस्य व्रणायामः सुवर्द्धितः॥२६॥
नात्र वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपणेन तत्। जिह्वाविलेखनादुष्णभक्षणादतिमानतः॥२७॥
कुपितो हनुमूलस्थः स्तम्भयित्वाऽनिलो हनुम्।
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम्॥२८॥
हनुस्तम्भः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम्।
वाग्वाहिनीशिरास्तम्भो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः॥२९॥
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता। शिरसा भारहरणादतिहास्यप्रभाषणान्॥३०॥

विषमादुपधानाच्च कठिनानाञ्च चर्वणात्।
वायुर्विवर्द्धते तैश्च वातलैरूर्ध्वमास्थितः॥३१॥

इस वात रोग के होने पर सभी दोष सिर से पैर तक समस्त शरीर में फैल कर शरीर में पाण्डुता, व्रण तथा आयास को वढ़ाते हैं। सभी आक्षेपक रोगों में शरीर परिचालित करने पर तनिक स्वास्थ्यबोध होता है। अधिक परिमाण में उष्ण भोजन करने वाले की वायु कुपित हो जाती है तथा हनुस्तम्भ होता है। इससे मुख विवृत अथवा संवृत होता है। अत्यन्त परिश्रम से चर्वण अथवा ऊंची आवाज में बोलने से कुपित वायु वाक्वाहिनी शिरा को स्तंभित करके जिह्वा का स्तम्भन कर देता है। इसी से हनुस्तम्भ घटित होता है। जिह्वा का स्तम्भन होने पर अन्नभोजन, जलपान, वाक्यालाप की ताकत नहीं रह जाती। मस्तक पर भारी बोझ ढोने, अत्यन्त ऊंचे स्वर में हंसने, विषम विस्तर पर सोने, कड़ी वस्तु चबाने, ऊंची आवाज से बातें कहने से वायु वढ़ जाता है तथा देह के ऊर्ध्व भाग में स्थान लेता है॥२६-३१॥

वक्रीकरोति वक्त्रञ्च उच्चैर्हसितमीक्षितम्।
ततोऽस्य कुरुते मृद्धीं वाक्शक्तिं स्तब्धनेत्रताम्॥३२॥
दन्तचालं स्वरभ्रंशः श्रुतिहानीक्षितग्रहः।
गन्धाज्ञानं स्मृतिध्वंसस्त्रासः श्वासश्च जायते॥३३॥
निष्ठीवः पार्श्वतोदश्च एकस्याक्ष्णो निमीलनम्।
जत्रोरूर्ध्वं रुजस्तीव्राः शरीरार्द्धधरोऽपि वा॥३४॥
तमाहुरर्दितं केचिदेकाङ्गमथ चापरे। रक्तमाश्रित्य च शिराः कुर्य्यान्मूर्द्धधराः शिराः॥३५॥
रूक्षः सवेदनः कृष्णः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः।
तनुं गृहीत्वा वायुश्च शिरास्नायुस्तथैव च॥३६॥
पक्षमन्यतरं हन्ति पक्षाघातः स उच्यते।
कृत्स्नस्य कायस्यार्द्धं स्यादकर्मण्यमचेतनम्॥३७॥
एकाङ्गरोगतां केचिदन्ये कक्षरुजो विदुः। सर्वाङ्गरोधस्तम्भश्च सर्वकायाश्रितेऽनिले॥३८॥
शुद्धवातकृतः पक्षः कृच्छ्रसाध्यतमो मतः।
कृच्छ्रश्चान्येन संसृष्टो विवृद्धः क्षयहेतुकः॥३९॥
आमबद्धायनः कुर्य्यात्संस्तभ्याङ्गं कफान्वितः।
असाध्य एव सर्वो हि भवेद्दण्डापतानकः॥४०॥

अतीव ऊंचे स्वर से हंसने तथा नेत्र को बलात् खूब फैलाने से मुख टेढ़ा हो जाता है। इससे वाक् शक्ति की हानि तथा नेत्रों में सूखापन आता है। वातव्याधिरोग होने पर दन्तचालन तथा स्वरभ्रंश का उत्पात होता है। देखने-सुनने की शक्ति में कमी आती है। ठीक से गन्ध सूंघ नहीं पाते। स्मरणशक्ति क्षीण होती है। त्रास, श्वास का उपद्रव होता है। इस रोग में थूक, बगल में वेदना, आंखें बन्द होना, जत्रु के ऊपरी

भाग में भयानक पीड़ा, आधे देह में अवसन्नता के उपसर्ग आते हैं। कोई-कोई इस रोग को अर्दित तथा अन्य कोई एकांग रोग भी कहने लगते हैं। वायु तब रक्त का आश्रय लेकर शिराओं में रुकावट पैदा कर देता है। इससे ऊर्ध्व शिरायें (मूर्द्धा की) अकर्मण्य हो उठती हैं। अब मस्तिष्क अवसन्न लगता है। यदि वायु द्वारा अधिगृहीत शिरायें रुक्ष, पीड़ा वाली तथा कृष्णवर्ण हों, तब यह अस्पष्ट है यही निदान होगा। वायु तदनुग्रहण करके शिरा एवं स्नायु को अवरुद्ध करता है। तत्पश्चात् शरीर के एक भाग पर आक्रमण कर देता है। इसे पक्षाघात कहते हैं। इसमें सम्पूर्ण देह का आधा भाग कर्मरहित तथा चेतनाहीन हो जाता है। कोई इसे एकांग रोग तो कोई पक्षरोग कहते हैं। यदि वायु समस्त शरीर को स्तम्भित कर देता है, तब यह रोग सर्वाङ्गरोग कहा जायेगा। केवल वायु से उत्पन्न पक्षाघात रोग साध्य होता है। यदि यह दो दोषों वाला हो जाये, तब यह कठिनाई से ठीक होगा। जब यह पूर्ण बढ़ जाये तब यह असाध्य कहा जायेगा। इस रोग में रोगी का क्षय होता जाता है। कफयुक्त वायु की दशा में यदि आम द्वारा उसकी गति को रोक दिया जाता है, तब सभी अंग अवसन्न हो जाते हैं। यह असाध्य रोग स्थिति है। इसे दण्डापतानक कहते हैं॥३२-४०॥

अंसमूलोत्थितो वायुः शिराः संकुच्य तत्रगः।
बहिः प्रस्यन्दितहरं जनयत्येव बाहुकम्॥४१॥
तलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कण्डरा बाहुपृष्ठतः।
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची वेति सोच्यते॥४२॥
वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद् यदा।
तदा खञ्जो भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्॥४३॥
कम्पते गमनारम्भे खञ्जन्निव च गच्छति।
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम्॥४४॥

शिरागत वायु सभी शिराओं को सिकोड़ कर धर्मरोध करके जिस प्रकार के वातव्याधि को उत्पन्न करता है, उसे अववाहक कहते हैं। जो कण्डरा (नस), बाहु पृष्ठ से हाथ के ऊपर की ओर जाकर उंगली के प्रान्तभाग में शेष होती है, यह कण्डरा जिस रोग से दूषित होकर हथेली के कार्य सिकोड़ना-फैलाना का रोध कर देती है, वही रोग है विश्वची। जिस रोग में कटिस्थित वायु किसी एक जंघा के नस को खींच कर जंघा का शक्ति लोप जब कर दे, वह है खञ्जरोग। जिस रोग में दोनों जंघा का शक्तिलोप हो, वह है पंगुरोग। जिस वातव्याधि में रोगी चलते समय कांपते हुये विकलता पूर्वक चले, उसके पैर के सन्धिबन्धन कमजोर हो जाते हैं। यह रोग है कलायखञ्ज॥४१-४४॥

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैश्च सेवितैः।
जीर्णाजीर्णे तथायासक्षोभस्निग्धप्रजागरैः॥४५॥
सश्लेष्ममेदः समये परमत्यर्थसञ्चितम्। अभिभूयेतरं दोषं शरीरं प्रतिपद्यते॥४६॥
सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्य्यान्तः श्लेष्मणा स्तम्भितेन तत्।
तदास्थि स्नाति तेनोरोस्तथा शीतानिलेन तु॥४७॥

श्यामाङ्गभङ्गस्तैमित्यतन्द्रामूर्च्छारुचिज्वरैः। तमूरुस्तम्भमित्याह बाह्यवातमथापरे॥४८॥
वातशोणितसंशोथो जानुमध्ये महारुजः। ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलक्रोष्टुकशीर्षवत्॥४९॥
रुक्पादविषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा। वातेन गुल्फमाश्रित्यं तमाहुर्वातकण्टकम्॥५०॥

जब शीतल, गर्म, द्रव, शुष्क, गुरु तथा स्निग्ध द्रव्यों को अधिक परिमाण में सेवन करके उसके जीर्ण होने अथवा अजीर्ण होने के पहले ही (पचने अथवा न पचने के पूर्व ही) अधिक मेहनत अथवा रात्रि जागरण करने से, किंवा क्षोभ होने पर मेद श्लेष्मा से युक्त होकर संचित हो जाता है। अब श्लेष्मा सभी दोषों को अभिभूत करके समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है। श्लेष्मा जंघा की सभी अस्थियों को प्रपूरित करके स्तम्भित कर देता है। इससे वह हड्डी अवसन्न हो जाती है। क्रमशः उरु देश तथा नाभिमूल भी खूब ठंडा हो जाता है। अब रोगी को लगता है कि उसके दोनों उरु हैं ही नहीं। वे किसी दूसरे के हैं। तब उरु में भीषण पीड़ा तथा भारीपन का अनुभव होने लगता है। उस समय शरीर श्यामवर्ण होता है। अंगों में स्तैमित्य, तन्द्रा, मूर्च्छा, अरुचि तथा ज्वर हो जाता है। इसे कोई उरुस्तम्भन कहते हैं। कोई वाह्यवात भी कह देते हैं। वायु तथा खून से उरु एवं जंघा की सन्धि में जो अतीव दर्दयुक्त सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजन को क्रोष्टुकशीर्ष कहा गया है। नियम विरुद्ध पैर रखने अथवा पथ पर्यटन वगैरह में भारी मेहनत करते रहने से वायु कुपित होता है तथा वह गुल्फ में भारी वेदना को उत्पन्न करता है। यह है वातकण्टकरोग, जो प्रभूत वेदना वाला होता है॥४५-५०॥

पार्ष्णिप्रत्यङ्गुलीनाभौ कण्ठे वा मारुतार्दिते।
सातिक्षेपं निगृह्णाति गृधसीं तां प्रचक्षते॥५१॥

हृष्येते चरणौ यस्य भवेताञ्चापि सुप्तकौ। पादहर्षः स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः॥५२॥
पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः। विशेषतश्चंक्रमतः पाददाहं तमादिशेत्॥५३॥

॥इति गारुडे महापुराणे वातव्याधिनिदानं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६६॥

जिस रोग में क्रमशः पार्ष्णि, अंगुलि, नाभि, कण्ठ में वायु भारी पीड़ा देता है, वह गृध्रसीरोग है। इस रोग में वायु एवं कफ दूषित होकर दोनों पैरों को स्पर्श शक्ति से रहित कर देते हैं। दोनों पैरों में नख से चोट करने पर भी वेदना नहीं होती। लेकिन रोमांच होता है तथा उस समय शरीर की स्थिति होती है कि नखाघात से दोनों पैरों पर चिह्न उभर आता है। यह है पादहर्षरोग। जिस रोग में वायु तथा पित्त रक्त से मिल कर पैरों में ज्वाला उत्पन्न करते हैं तथा चलने-फिरने में यह ज्वाला कुछ कम होती है, वही पाददाहरोग कहलाता है॥५१-५३॥

॥एक सौ छांछठवां अध्याय समाप्त॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

निदान वर्णन

धन्वतरिरुवाच

वातरक्तनिदानं ते वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु। विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः॥१॥

प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम्।

स्थूलानां सुखिनाञ्चापि कुप्यते वातशोणितम्॥२॥

अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते। वातलैः शीतलैर्वाथ वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः॥३॥

तादृशैवासृजा रुद्धः प्राक्तदेव प्रदोषयेत्। आद्यं वातं गुदं वादं बलासं वातशोणितम्॥४॥

तदा दुर्नामभिः स्तब्धं पूर्वस्यादौ प्रधावति। विशेषाद्वमनाद्यैश्च प्रलम्बस्तस्य लक्षणम्॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! मैं वातरक्त का निदान कहता हूं। उसे सुनो। विरुद्ध अशन, अत्यन्त क्रोध प्रकट करना, दिन में सोना, अधिक जागना, इससे वात तथा रक्त कुपित होकर वातरक्तरोग उत्पन्न करते हैं। जिनका देह अति कोमल अथवा स्थूल है, जो अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, उनमें यह रोग जन्म लेता है। मिथ्या आहार-विहार से वातरक्त का कोप होता है। शरीर में किसी तरह का आघात होने पर अथवा देह का रक्त दूषित होने पर किंवा वायुवर्द्धक तथा अतिशय शीतल द्रव्य सेवन करने से वायु बढ़ती, कुपित होती तथा विमार्ग पर चलने लगती है। इस वायु से शरीरगत रक्त दूषित हो जाता है। वह वायु का मार्ग रोक देता है। अतः यह रोग जन्मता है। वातरक्तरोग का नाम है आद्यवातादि। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में दुर्नामा आदि कई रोग होते हैं। विशेष करके वमन आदि से शरीर प्रलम्बित हो उठता है। यही है प्रलम्ब नाम वाले वातरक्तरोग का लक्षण॥१-५॥

भविष्यतः कुष्ठसमं तथा साम्बुदसंज्ञकम्। जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु॥६॥

कण्डूस्फुरणनिस्तोदभेदगौरवसुप्तताः। भूत्वा भूत्वा प्रशाम्यन्ति कदा वाविर्भवन्ति च॥७॥

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि आखोरिव विषं क्रुद्धः कृत्स्नं देहं विधावति॥८॥

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं तत्पूर्वं जायते ततः। कालान्तरेण गम्भीरं सर्वधातूनभिद्रवेत्॥९॥

कट्यादिसंयतस्थाने त्वक्ताम्रश्यावलोहिताः।

श्वयथुः ग्रथितः पाकः स वायुश्चास्थिमज्जसु॥१०॥

कुष्ठरोग के जन्म के पहले जो सब लक्षण प्रकट होते हैं, वातरक्तरोग में भी वे सभी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। उक्त रोग में जानु, जंघा, उरु, कटि, स्कन्ध, हस्त, पाद तथा अंगों की सन्धि में खुजली, स्फुरण, सुई के गड़ने जैसी पीड़ा, प्रदाह, गुरुता तथा असारता का जन्म होता है। कभी-कभी यह रोग उत्पन्न होकर स्वयं शान्त भी हो जाता है तथा समय पाकर पुनः उद्‌भूत होता है। वातरक्तरोग कभी-कभी पैरों के मूल में, कभी-कभी दोनों हाथों के मूल में स्थान ग्रहण करके पैदा होता है। जिस प्रकार से

चूहे का विष समस्त देह में फैल जाता है, तदनुरूप वातरक्तरोग भी समस्त देह में फैलता है। वातरक्तरोग सबसे पहले चर्म, उसके बाद मांस का आश्रय लेकर जन्म लेता है। बाद में यह अत्यन्त गम्भीर रूप के साथ सभी धातुओं पर हमला कर देता है। इस रोग में कटि आदि संयत जगह का चर्म भी ताम्र, श्याव (काला) अथवा लोहित वर्ण हो जाता है। इन सब जगहों पर ग्रथित सूजन पैदा होकर पाक को प्राप्त होती है। इसके बाद यह रोग अस्थि एवं मज्जा में भी चला जाता है॥६-१०॥

छिन्दन्निव चरत्यन्तश्चक्रीकुर्वंश्च वेगवान्। करोति खञ्जं पङ्गुं वा शरीरं सर्वतश्चरन्॥११॥

वाताधिकेऽधिकन्तत्र शूलस्फुरणभञ्जनम्।
शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावतावृद्धिहानयः॥१२॥

धमन्यङ्गुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक्। शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः॥१३॥

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते।
स्निग्धरूक्षैः शम नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः॥१४॥

इस रोग में लगता है मानों वेगवान् वायु अस्थि आदि सभी का भेदन करता आभ्यन्तर में चक्रवत् घूम रहा है। इसके बाद यह वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर रोगी को खञ्ज किंवा पंगु कर देता है। वात की अधिकता से उत्पन्न वातरोग उदित होने पर शरीर में अत्यन्त कंपकंपी, भंग करने जैसी पीड़ा, पैर के शोथ में रूखापन, कृष्णवर्णता किंवा श्यामवर्णता होती है। इस रोग में कभी-कभी अतीव वृद्धि होती है, कभी-कभी यह अतीव लघु हो जाता है। वायु से उत्पन्न वात-रक्त रोग अंगुलियों की सन्धि वाली धमनी के संकुचित होने के कारण अधिक वेदना होती है। इसमें शीतद्वेष, अनुपशय, स्तम्भ, वेपथु तथा शरीर की असारता होती है। इस रोग में रोगी को शीतल वस्तुओं के सेवन की इच्छा होती है, तथापि इससे यह रोग और भी बढ़ जाता है। रक्ताधिक वातरक्तरोग में यह शोथ होता है। कभी अत्यन्त वेदना कभी सुई से छेदे जाने जैसी वेदना, खुजली, अवसाद तथा शरीर की श्यामवर्णता हो जाती है। झिंझीवात का देह पर हमला होता है। उस समय की स्निग्ध एवं रुक्ष क्रिया के कारण रोगशान्ति नहीं होती। शरीर में खुजली होती है। क्लेदयुक्त देह हो जाता है॥११-१४॥

पित्ते विदाहः सम्मोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा।
स्पर्शासहत्वं रुग्रावः शोषः पाको भृशोष्मता॥१५॥
कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः।
कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वं सर्वलिङ्गञ्च सङ्करात्॥१६॥

एकदोषञ्च संसाध्यं याप्यञ्चैव द्विदोषजम्। त्रिदोषजं त्यजेदाशु रक्तपित्तं सुदारुणम्॥१७॥

पित्तजनित वातरक्तरोग की स्थिति में दाह, मोह, स्वेद, मूर्च्छा, मद, तृष्णा, शोष, पाक आदि उपद्रव होते हैं तथा व्रणस्थान में ताप अधिक होता है। लोम का स्पर्श दुःसह प्रतीत होता है। कफजनित वातरक्तरोग में स्तैमित्य, गुरुता, स्निग्धता, शैत्य, अल्प-अल्प खुजली का उपद्रव होता है। द्वन्द्वज वातरक्त में दो प्रकार के लक्षण तथा त्रिदोषज वातरक्त में सभी प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं। एक दोषज वातरक्त

चिकित्सा से साध्य होता है। लेकिन यही द्विदोषज होने पर चिकित्सा याप्य हो जाता है। त्रिदोषज वातरक्त अत्यन्त दारुण कहा गया है। उसमें चिकित्सा का कोई लाभ नहीं होता। ऐसी स्थिति में उत्तम चिकित्सक त्रिदोषज वातरक्तरोगी की चिकित्सा न करके उसे त्याग दे। उसमें रक्तपित्त की स्थिति दारुण जो हो जाती है!॥१५-१७॥

रक्तमङ्गे निहन्त्याशु शाखासन्धिषु मारुतः।
निवेश्यान्योन्यमावार्य्य वेदनाभिर्हरत्यसून्॥१८॥
वायौ पञ्चात्मके प्राणे रौक्ष्याच्चापल्यलङ्घनैः।
अत्याहाराभिघाताच्च वेगोदीरणचारणैः॥१९॥
कुपितश्चक्षुरादीनामुपघातं प्रकल्पयेत्। पीनसो दाहतृट्कासश्वासादिश्चैव जायते॥२०॥

वातरक्तरोग में वायु शरीर स्थित रक्त का विनाश कर देता है। तदनन्तर पित्त तथा श्लेष्मा को ढंक कर अत्यधिक वेदना उत्पन्न करता यह प्राणनाश करता है। पांच प्रकार का वायु रुक्षता, चपलता, लंघन, अत्याहार, अति वात तथा वेगरोध द्वारा कुपित होकर चक्षु आदि इन्द्रियों का उपघात करता है। इससे पीनस, दाह, प्यास, कास, श्वास आदि उपद्रव पैदा होते हैं॥१८-२०॥

कण्ठरोधो मलभ्रंशच्छर्द्यरोचकपीनसान्।
कुर्य्याच्च गलगण्डादींस्तात्र् जत्रुमूर्द्धसंश्रयः॥२१॥
व्यानोऽतिगमनस्नानक्रीडाविषयचेष्टितैः। विरुद्वरूक्षभीहर्षविषादाद्यैश्च दूषितः॥२२॥
पुंस्त्वोत्साहबल भ्रंशशोकचित्तप्लवज्वरान्। सर्वाकारादिनिस्तोदरोमहर्षं सुषुप्तताम्॥२३॥
कुष्ठं विसर्पमन्यच्च कुर्य्यात्सर्वाङ्गसादनम्। समानो विषमाजीर्णशीतसङ्कीर्णभोजनैः॥२४॥
करोत्यकालशयनजागराद्यैश्च दूषितः।
शूलगुल्मग्रहण्यादीन् यकृत्कामाश्रयान् गदान्॥२५॥

इस रोग में वायु जत्रु तथा मूर्द्धा का आश्रय लेता है। वह कण्ठरोध, मलभ्रंश, वमन, अरुचि, पीनस तथा गलगण्ड आदि उपद्रवों को उत्पन्न कर देता है। अत्यन्त दूर चल कर जाना, अधिक नहाना, अधिक क्रीड़ा करना तथा अत्यधिक विषय-वासना में डूबे रहना, विरुद्ध अथवा रूखा व्यवहार करना, भय-हर्ष एवं विवाद करना इससे व्यानवायु का दूषण होता है। यह पुंस्त्व, बल एवं उत्साहनाशक स्थिति है। शोक, चित्तभ्रम, ज्वर, अंगों में दर्द, रोमांच, स्पर्शज्ञान का अभाव, कुष्ठ, विसर्प, अंगों में अवसाद आदि उपद्रव को यह रोग उत्पन्न करता है। विषम अजीर्ण, शीत तथा संकीर्ण द्रव्य भोजन, अकाल में शयन तथा जागरण आदि से समानवायु दूषित होने से शूल, गुल्म, ग्रहणी, अर्थ, यकृत आदि रोग उत्पन्न होते हैं॥२१-२५॥

अपानो रूक्षगुर्वन्नवेगाघातातिवाहनैः। यानयानसमुत्थानचङ्क्रमैश्चातिसेवितैः॥२६॥
कुपितः कुरुते वेगान् कृच्छ्रान् पक्वाशयाश्रयान्।
मूत्रशुक्रप्रदोषार्शोगुदभ्रंशादिकान् बहून्॥२७॥

सर्वाङ्गमाततं साम तन्द्रास्तैमित्यगौरवैः।
स्निग्धत्वादबोधकालस्य शैत्यशोथाग्निहानयः॥२८॥
कण्डूरूक्षातिनाशेन तद्विधोपशमेन च।
मुक्ति विद्यान्निरामं तं तन्द्रादीनां विपर्य्ययात्॥२९॥
वायोरावरणं वातो बहुभेदं प्रचक्षते। पित्तलिङ्गावृते दाहस्तृष्णां शूल भ्रमस्तमः।
कटुकोष्णाम्ललवणैर्विदाहशीतकामता॥३०॥

रुक्ष-गुरु अन्न का आहार ग्रहण, वेगों (मलमूत्रादि वेग) का विघात, अति वाहन (घोड़े आदि की पीठ की अत्यन्त सवारी), यान पर जाना, इनसे अपान वायु कुपित हो जाता है। वह पक्वाशय का आश्रय लेता है। इससे मल-मूत्रादि का वेग अधिक क्लेशप्रद हो जाता है। मूत्रदोष, शुक्रदोष, अर्श, गुदभ्रंश आदि अनेक रोगोत्पत्ति होती है। इन रोग की आमावस्था में तन्द्रा तथा स्तैमित्य द्वारा सर्वांग व्याप्त हो जाता है। समस्त शरीर गौरवयुक्त बोध होता है तथा समस्त शरीर की स्निग्धता से बुद्धि चंचल हो जाती है। तब शैत्य, शोथ तथा मंदाग्नि होती है। जब शरीर की खुजली तथा रुक्षता आदि एवं इसी तरह के अन्य उपसर्गों की निवृत्ति होती है और तन्द्रा आदि का विपर्यय हो जाता है, तव उस रोगी को व्याधिरहित कहते हैं। वायु का आवरण भेद हो जाने से यह रोग अनेक प्रकार का कहा जाता है। पैत्तिक चिह्नों से जब देह ढंक जाता है, तव दाह, तृष्णा, शूल, श्रम, अंधकार दर्शन आदि उपद्रव होते हैं। कभी कटु, कभी उष्ण, कभी अम्ल, कभी लवण, कभी शीतल द्रव्य की कामना रोगी करता है॥२६-३०॥

शैत्यगौरवशूलाग्निकट्वाज्यपयसोऽधिकम्। लङ्घनायासरूक्षोष्णकामता च कफावृते॥३१॥
कफावृतेऽङ्गमर्दः स्याद्धृल्लासो गुरुताऽरुचिः।
रक्तावृते सदाहार्त्तिस्त्वङ्मांसाश्रयजा भृशम्॥३२॥
भवेत्सरागः श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च।
शोथो मांसेन कठिनो हृल्लासपिटकास्तथा॥३३॥
चललग्नो मृदुः शीतः शोथो गात्रेषु रोचकः।
आढ्यवात इव ज्ञेयः स कृच्छ्रो मेदसावृतः॥३४॥
स्पर्श आच्छादितेऽत्युष्णः शीतलश्च त्वनावृते।
मज्जावृते तु विषमं जृम्भणं परिवेष्टनम्।
शूलश्च पीड्यमाने च पाणिभ्यां लभते सुखम्॥३५॥

कफचिह्न से देह को आवरित हो जाने से शीत, गौरव, शूल, मन्दाग्नि प्रभृति उपद्रव होता है। अधिक जल पीने की इच्छा होती है। लंघन से अत्यन्त थकान का अनुभव होता है। रुक्ष एवं उष्ण द्रव्य की इच्छा होती है। कफावृत वातरक्त में अंगमर्द, हल्लास, गुरुता, अरुचि के लक्षण प्रकट होते हैं। रक्त से आवृत वातरक्त में त्वचा, मांस आदि में अतीव वेदना का अनुभव होता है। इस रोग में रक्तवर्ण शोथ

होता है तथा देह में मण्डलाकार चिह्न दिखाई देते हैं। जब यह शोथ मांस का आश्रय लेता है, तब यह अत्यन्त कड़ा हो जाता है। उस समय हल्लास तथा पीड़का आदि का उपद्रव होता है। इस रोग में देह में जो शोथ होता है, वह सचल होता है किंवा एक ही स्थान में रहता है। वह मृदु तथा स्पर्श में शीतल होता है। मज्जावृत शोथ में पूर्वोक्त कहे गये वर्णन का उलटा होता है। इसमें जंभाई तथा अत्यधिक शूल का अनुभव होता है। हाथ से दबाने पर कुछ आराम मिलता है॥३१-३५॥

शुक्रावृते तु शोथे वै चातिवेगो न विद्यते।
भुक्ते कुक्षौ रुजाजीर्णे निवृत्तिर्भवति ध्रुवम्॥३६॥
मूत्रप्रवृत्तिराध्मानं वस्तेर्मूत्रावृते भवेत्। छिद्रावृते विबन्धोऽथ स्वस्थानं परिकृन्तति॥३७॥
पतत्याशु ज्वराक्रान्तो भुक्ते च लभते नरः।
सकृत्पीडितमन्नेन दुष्टं शुक्रं चिरात्सृजेत्॥३८॥
सर्वधात्वावृते वायौ श्रोणिवङ्क्षणपृष्ठक्। विलोमे मारुते चैव हृदयं परिपीड्यते॥३९॥
भ्रमो मूर्च्छा रुजा दाहः पित्तेन प्राण आवृते।
रुजा तन्द्रा स्वरभ्रंशो दाहो व्याने तु सर्वशः॥४०॥

तथापि जीर्ण होने पर यह वेदना समाप्त हो जाती है। वातरक्त मूत्राशय का आश्रय लेकर मूत्रप्रवृत्ति, आध्मान का लक्षण व्यक्त करता है। वातरक्तरोग समस्त शारीर छिद्रों को ढंक लेता है। अब स्वस्थान पर ऐसी पीड़ा होती है, मानों कुछ काटा जा रहा है। वातरक्त ग्रसित रोगी अचानक ज्वर से आक्रान्त होकर गिर जाता है। उसे भोजनोपरान्त भी वेदना का अनुभव होता है। चिरकाल में उसका दुष्ट शुक्र निकलता है। वायु जब सभी धातुओं को ढंक लेती है, तब कमर, वङ्क्षण तथा पृष्ठ में वेदना प्रतीत होती है। उस समय वायु विलोमरूप से हृदय को पीड़ा पहुंचाता है। पित्त द्वारा प्राणवायु को ढंकने पर भ्रमि, मूर्च्छा, वेदना, दाहरूपी उपसर्ग होते हैं। यह पित्त प्राणवायु को जब आवरित कर लेता है, तब वेदना, तन्द्रा, स्वरभ्रंश होता है और सम्पूर्ण शरीर में दाह होता है॥३६-४०॥

क्रमोऽङ्गचेष्टाभङ्गश्च सन्तापः सहवेदनः। समान ऊष्मोपहतिः सस्वेदोपरतिः सुतृट्॥४१॥
दाहश्च स्यादपाने तु मले हारिद्रवर्णता। रजोवृद्धिस्तापनञ्च तथा चानाहमेहनम्॥४२॥
श्लेष्मणा प्रावृते प्राणे नादः स्रोतोऽवरोधनम्।
ष्ठीवनञ्चैव सस्वेदश्वासनिःश्वाससंग्रहम्॥४३॥
उदाने गुरुगात्रत्वमरुचिर्वाक्स्वरग्रहः। बलवर्णप्रणाशश्च व्याने पर्वास्थिसंग्रहः॥४४॥
गुरुताङ्गेषु सर्वेषु स्थूलत्वञ्चागतं भृशम्। समानेऽतिक्रियाज्ञत्वमस्वेदो मन्दवह्निता॥४५॥

जब समानवायु आक्रान्त होता है, तब अंगचेष्टा, अंग भंग, सन्ताप, वेदना, शारीरिक ताप का नष्ट होना, चर्मरोध, तृष्णा, दाह—ये उपद्रव होते हैं। अपानवायु जब आक्रान्त होता है, तब मल में हरिद्रवर्णाभा आ जाती है। रजोवृद्धि, ताप, आनाह तथा मेहरूपी उपसर्ग होते हैं। वातरक्तरोग में श्लेष्मा द्वारा प्राणवायु को आवृत करने से नादस्रोत पर रुकावट हो जाती है। ष्ठीवन, धर्म, श्वास-प्रश्वास रोध आदि

उपद्रव होते हैं। श्लेष्मा का जब उदानवायु पर आक्रमण होता है, तब देह में भारीपन, अरुचि, वाणीरोध, बल-वर्ण का नाश—ये उपसर्ग प्रकट होते हैं। प्राणवायु के आक्रान्त होने पर पर्वों तथा अस्थि में पीड़ा होती है। अंगों में भारीपन होता है। शरीर अधिक स्थूल हो जाता है। जब समानवायु आक्रान्त होता है, तब किसी शारीर क्रिया का ज्ञान नहीं होता। स्वेद नहीं निकलता। अग्नि भी मन्द पड़ जाती है॥४१-४५॥

अपाने सकफं मूत्रं शकृतः स्यात् प्रवर्त्तनम्। इति द्वाविंशतिविधं वातरक्तामयं विदुः॥४६॥

प्राणादयस्तथान्योऽन्यं समाक्रान्ता यथाक्रमम्।
सर्वेऽपि विंशतिविधं विद्यादावरणञ्च यत्॥४७॥
हृल्लासोच्छ्‌वाससंरोधः प्रतिश्यायः शिरोग्रहः।
हृद्रोगो मुखशोषश्चप्राणेनापान आवृते॥४८॥

उदानेनावृते प्राणे भवेद्धि बलसंक्षयः। विचारणेन विभजेत्सर्वमावरणं भिषक्॥४९॥

स्थानान्यपेक्ष्य वातानां वृद्धिर्हानिश्च कर्मणाम्।
प्राणादीनाञ्च पञ्चानां पित्तमावरणं मिथः॥५०॥
पित्तादीनामावसतिर्मिश्राणां मिश्रितैश्च तैः।
मिश्रैः पित्तादिभिस्तद्वन्मिश्राण्यपि त्वनेकधा॥५१॥

(वातरक्त से)-अपानवायु के आक्रान्त होने पर कफयुक्त मल-मूत्र निकलने लगता है। यही वातरक्तरोग बाईस प्रकार का कहा गया है। प्राणादि वायु जब आक्रान्त होता है, तब यही रोग बीस प्रकार का हो जाता है। जब प्राणवायु अपानवायु का आवरण करता है, तब हल्लास, श्वास रोग, प्रतिश्याय, शिरोग्रह, हृद्‌रोग तथा मुख शोषरूपी उपद्रव घटित होता है। उदानवायु तब प्राणवायु को आच्छादित करती है। इससे बलक्षय होता है। इस प्रकार से विचार करके सर्वविध आवरणों का निश्चय करके रोग का विभाग करना होता है। वातादि के स्थान को अस्थान मान कर कर्म की ह्रास-वृद्धि का अनुमान करना चाहिये। पित्त ही प्राण प्रभृति पंचवायु का आवरण है। पित्त आदि मिश्रित होने से उनका आवस स्थल भी मिश्रित होता है। पित्त आदि मिलित होने पर जिस प्रकार से अनेक रूप धारण करते हैं, उसी प्रकार मिश्रित पित्त प्रभृति जनित रोग भी अनेक तरह के होते हैं॥४६-५१॥

तांल्लक्षयेदवहितो यथास्वलक्षणोदयात्। शनैः शनैश्चोपशयं दृढानपि मुहुर्मुहुः॥५२॥

विशेषाज्जीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते।
स्यात्तयोः पीडनाद्धानिरायुषश्च बलस्य च॥५३॥
आवृता वायवो ज्ञाता ज्ञाता वा स्वस्थानच्युताः।
प्रयत्नेनापि दुःसाध्या भवेयुर्वाऽनुपद्रवाः॥५४॥

विद्रधिप्लीहहृद्रोगगुल्माग्निसदनादयः। भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षया॥५५॥

विज्ञ चिकित्सक एकाग्र होकर अपने-अपने रोग लक्षण द्वारा रोग का निश्चय करे। रोग समूह भले

ही अतीव दृढ़ हो, धीरे-धीरे उनका उपशम करना होगा। प्राणवायु जीवन है। उदान बाहुबल है। इस वायु का पीड़न होने से आयु तथा बल की हानि हो जाती है। इस कारण से यह देखना चाहिये कि प्राण एवं उदानवायु द्वय का ह्रास न हो। ऐसी सावधानी से इलाज किया जाये। जब यह ज्ञात हो कि ये वायु आवृत हैं, किंवा स्थानच्युत हैं, तब यह रोग भले उपद्रवरहित लगे, लेकिन वह दु:साध्य ही हो जाता है। अधिक प्रयत्न करने पर भी उसकी चिकित्सा साध्य नहीं हो पाती। वातरक्तरोग होने पर यदि उससे सर्वाङ्ग आवृत हो जाये, तब विद्रधि, प्लीहा, हृद्रोग, गुल्म, अग्निमन्दता, पीड़ा प्रभृति उपद्रव लक्षित होते हैं॥५२-५५॥

निदानं सुश्रुत मया आत्रेयोक्तं समीरितम्। सर्वरोगविवेकाय नराद्यायुःप्रवृद्धये॥५६॥
एवं विज्ञाय रोगादींश्चिकित्सामथवा चरेत्। त्रिफला सर्वरोगघ्नी मध्वाज्यगुडसंयुता॥५७॥
सव्योषा त्रिफला वापि सर्वरोगप्रमर्दिनी। शतावरीगुडूच्यग्निबिडङ्गेन युताथवा॥५८॥
शतावरी गुडूच्यग्निः शुण्ठी मूषलिका बला।
पुनर्नवा च बृहती निर्गुण्डी निम्बपत्रकम्॥५९॥
भृङ्गराजश्चामलकं वासकस्तद्रसेन वा। भाविता त्रिफला सप्तवारमेकमथापि वा॥६०॥
पूर्वोक्तश्च यथालाभं युक्ताश्चूर्णश्च मोदकः।
वटिका घृततैलं वा कषायः शोषरोगनुत्।
पलं पलार्द्धकं वापि कर्षं कर्षार्द्धमेव वा॥६१॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्तषष्ट्यधिकसततमेऽध्यायः रोगाणां निदानं समाप्तम्॥१६७॥

हे सुश्रुत! मैंने आत्रेय ऋषि वर्णित निदानों को तुमसे कह दिया। इनसे सभी रोगों की जानकारी हो जायेगी। इसको जान कर उपयुक्त व्यवहार आदि करने से मनुष्यों की आयु बढ़ेगी। पूर्वोक्त तरीके से रोगों का पता लगाकर चिकित्सा करे। त्रिफला (हरीतकी, आमला, बहेड़ा) को मधु-घृत अथवा गुड़ के साथ खाने से सभी रोग नष्ट होते हैं। शतमूली, गुरुच, चिता अथवा बिड़ङ्ग के साथ त्रिफला एवं त्रिकटु का सेवन करने से सभी रोगों का नाश हो जाता है। शतमूली, गुरुच, चिता, शुण्ठी, तालमूली, बड़ेला, पुनर्नवा, बृहती, निसिन्दा, नीम की पत्ती, भृंगराज, आमलकी तथा वासक के रस में त्रिफला को सात बार अथवा एक बार भावना देकर पूर्वोक्त शतमूली आदि के चूर्ण के साथ मोदक, बटी बनाये अथवा उपरोक्त द्रव्यों का घृत या तेल बना कर किंवा इनका काढ़ा बना कर पीये। इससे सभी रोग नष्ट होंगे। एक पल, (आठ तोला) पलार्द्ध, कर्ष (दो तोला) अथवा एक तोला उक्त कषाय का सेवन करे॥५६-६१॥

॥एक सौ सड़सठवां अध्याय समाप्त॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वैद्यक शास्त्र में सूत्रस्थान वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

सर्वरोगहरं सिद्धं योगसारं वदाम्यहम्। शृणु सुश्रुत संक्षेपात्प्राणिनां जीवहेतवे॥१॥
कषायकटुतिक्ताम्लरूक्षाहारादिभोजनात्। चिन्ताव्यवायव्यायामभयशोकप्रजागरात्॥२॥
उच्चैर्भाषातिभाराच्च कर्मयोगातिकर्षणात्।
वायुः कुप्यति पर्ज्जन्ये जीर्णान्ने दिनसंक्षये॥३॥
उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनात्। तीक्ष्णातपाग्निसन्तापमद्यक्रोधनिषेवणात्॥४॥
विदाहकाले भुक्तस्य मध्याह्ने जलदात्यये।
ग्रीष्मकालेऽर्द्धरात्रेऽपि पित्तं कुप्यति देहिनः॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब सभी प्राणीगण के जीवनार्थ नाना रोगनाशक औषधियोग तुमसे संक्षेप में कहता हूं। सुनो। कषाय, कटु, तिक्त, अम्ल तथा रुक्ष द्रव्य भोजन, चिन्ता, व्यवाय, भय, शोक, जागरण, जोरों से चिल्ला कर बोलना, अत्यन्त भार ढोना इससे, वर्षा काल में, भोजन किये गये द्रव्य के जीर्ण होते समय तथा दिन के अवसान के समय **वायु कुपित** हो जाता है। उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, कटु तथा गुरुपाक द्रव्य खाने से, तीक्ष्ण धूप तथा अग्नि के सन्ताप से, मद्य पान से, क्रोध के वेग को दबाने से, खाये गये आहार के विदाह के समय, वर्षा के अवसान काल में, ग्रीष्म में, मध्याह्न समय में तथा अर्द्धरात्रि में पित्त कोप होता है॥१-५॥

स्वाद्वम्ललवणास्निग्धगुरुशीतातिभोजनात्। नवान्नपिच्छिलानूपमांसादिसेवनादपि॥६॥
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखादिभिः। कफप्रदोषो भुक्ते च वसन्ते च प्रकुप्यति॥७॥
देहपारुष्यसंकोचतोदविष्टम्भकादयः। तथा च सुप्तता रोमहर्षस्तम्भनशोषणम्॥८॥
श्यामत्वमङ्गविश्लेषबलमायासवर्द्धनम्। वायोर्लिङ्गानि तैर्युक्तं रोगं वातात्मकं वदेत्॥९॥
दाहोष्मपादसंक्लेदकोपरागपरिश्रमाः। कट्वम्लशववैगन्ध्यस्वेदमूर्च्छातितृड्भ्रमा।
हारिद्रं हरितत्वञ्च पित्तलिङ्गान्वितैर्नरः॥१०॥

स्वादु, अम्ल, लवण, अस्निग्ध, गुरु तथा शीतल द्रव्यों का अधिक भोजन, नया अन्न भोजन, पिच्छिल द्रव्य, अनूप मांसादि सेवन, व्यायाम का पूर्ण त्याग, दिन में सोना, सदा शय्या आसन पर सुखपूर्वक पड़े रहना, वसन्त काल तथा भोजनान्त में **कफप्रकोप** होता है। शरीर की कर्कश स्थिति, संकोच, (अंग संकोच), वेदना, विष्टम्भ, सुप्तता, रोमांच, स्तम्भन, शोषण, शरीर का पिंगलवर्ण होना, अंग विश्लेष, बलवृद्धि तथा आयास **वायुप्रकोप** के चिह्न हैं। शरीर का दाह, ताप, पैरों के तलवों से पसीना निकलना, अत्यन्त क्रोध, विविध विषयों के प्रति पछतावा होना, लार तथा पसीना का अधिक

टपकना, मुख के कटु अथवा अम्लीय स्वाद आना, शव जैसी दुर्गन्ध का बोध होना, पसीना, मूर्च्छा, तृष्णा, भ्रम, हरिद्रावर्ण किंवा हरा रंग दिखलाई पड़ना, यह **पित्त का चिह्न** है। जिस रोग में ये लक्षण हों, वह पित्तरोग है॥६-१०॥

स्निग्धत्वं देहे माधुर्य्यचिरकारित्वबन्धनम्। स्तैमित्यतृप्तिसङ्घातशोथशीतलगौरवम्॥११॥
कण्डूनिद्राभियोगश्च लक्षणं कफसम्भवम्।
हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद् व्याधिं द्विदोषजम्॥१२॥
सर्वहेतुसमुत्पन्नं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम्। दोषधातुमलाधारो देहिनां देह उच्यते॥१३॥
तेषां समत्वमारोग्यं क्षयवृद्धेर्विपर्य्ययः।
वसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः॥१४॥
वातपित्तकफा दोषा विण्मूत्राद्या मलाः स्मृताः।
वायुः शीतो लघुः सूक्ष्मः स्वरनाशी स्थिरो बली॥१५॥

देहगत स्निग्धता, मुख में माधुर्य, कार्य में देरी करना, शरीर में बांधने जैसा दर्द लगना, शरीर का आद्रता युक्त होना, तृप्ति संघात, शोथ, शरीर में शीतलता का आभास तथा गुरुता लगना, अंगों में खुजली, अधिक नींद आना, यह **कफ प्रकोप** का लक्षण है। व्याधि का लक्षण, कारण जाने तथा संसर्ग प्रभृति से यह जाने कि कौन दोष पित्तादि दोषों में अब प्रबल है। रोगी के लक्षण को जान कर ही यह पता लगेगा कि रोग एक दोष अथवा दो किंवा तीनों दोषों से हुआ है। जिस रोग में कफ-पित्त-वायु इन तीनों का लक्षण व्यक्त हो, उसे त्रिलिंग अथवा सान्निपातिक कहते हैं। देहधारियों का शरीर दोष, धातु तथा मल की खान है। जब वायु-पित्त-कफ में समत्व हो तभी देह निरोग है। निरोग अवस्था में क्षय अथवा वृद्धि नहीं होती। आयुर्वेद ज्ञाता विद्वान् वसा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र को धातु कहते हैं। वायु, पित्त, कफ को दोष कहा जाता है। विष्ठा, मल-मूत्रादि को मल कहते हैं। वायु शीतल, लघु-सूक्ष्म-रुक्ष स्थित तथा बली होता है॥११-१५॥

पित्तमम्लकटूष्णञ्चापक्तिश्च रोगकारणम्।
मधुरो लवणः स्निग्धो गुरुः श्लेष्मातिपिच्छिलः॥१६॥
गुदश्रोण्याश्रयो वायुः पित्तं पक्वाशयस्थितम्।
कफस्यामाशयस्थानं कण्ठो वा मूर्द्धसन्धयः॥१७॥
कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम्।
कट्वम्ललवणाः पित्तं स्यादूष्णलवणाः कफम्॥१८॥
एत एव विपर्य्यस्ताः शमायैषां प्रयोजिताः।
भवन्ति रोगिणां शान्त्यै स्वस्थानं सुखहेतवः॥१९॥
चक्षुष्यो मधुरो ज्ञेयो रसधातुविवर्द्धनः। अम्लोत्तरो मनोहृद्यं तथा दीपनपाचनम्॥२०॥

पित्त अम्ल, कटु समय तथा उष्ण होता है। यह परिपाक कार्य तथा ओज धातु को वली करता है। यही विकृत पित्त रोग कारण हो जाता है। श्लेष्मा का गुण मधुर है। यह लवणरस वाला तथा स्निग्ध, गुरु तथा अतिशय पिच्छिल है। वायु गुह्य एवं कमर में स्थित रहता है। पित्त पक्वाशय में रहता है। कफ की स्थिति आमाशय, कण्ठ, मस्तक तथा सन्धियों में है। कटु, तिक्त, कषाय वायु को प्रकुपित करते हैं। कटु-अम्ल तथा लवण द्रव्य पित्त को प्रकुपित करते हैं। स्वादु, उष्णा, लवण द्रव्य कफ को प्रकुपित करते हैं। इन द्रव्यों को इनके विपरीत रूप से देने पर वायु-पित्त-कफ शान्त तथा स्वस्थानस्थ होकर रोगी को आराम पहुंचाते हैं। मधुर द्रव्य चक्षुष्य होते हैं तथा रस-धातु को बढ़ाते हैं। मधुर द्रव्य अम्ल सहित होकर मन को तृप्त करते हैं। ये अग्नि बढ़ाने वाले तथा पाचक हो जाते हैं॥१६-२०॥

दीपनो ज्वरतृष्णघ्नास्तिक्तः शोधनशोषणः।
पित्तलो लेखनः स्तम्भी कषायो ग्राहिशोषणः॥२१॥

रसवीर्य्यविपाकानामाश्रयं द्रव्यमुत्तमम्। रसपाकान्तरस्थायी द्रव्यः सर्वद्रव्याश्रयः॥२२॥
शीतोष्णलवणं वीर्य्यमथवा शक्तिरिष्यते। रसानां द्विविधः पाको मधुरः कटुरेव च॥२३॥
भिषग्भेषजरोगार्त्तपरिचारकसम्पदः। चिकित्साङ्गानि चत्वारि विपरीतान्यसिद्धये॥२४॥
देशकालवयोवह्निसाम्यप्रकृतिभेषजम्। देहसत्त्वबलव्याधीन्बुद्ध्वा कर्म समारभेत्॥२५॥

लवण रस पोषण करता है, वह पाचक क्लेदकारक, देह को शिथिल करने वाला तथा मित्र-बन्धु की तरह जीवन धारण में मदद करता है। कटुरस अग्नि उद्दीपक, पाचक है। स्थूलता और विषदोष नाशक भी है। तिक्तरस अग्नि उद्दीपक, ज्वर तृष्णानाशक और शोषण एवं शोधन करता है। कषाय रस पित्त बढ़ाने वाला, लेखन, स्तम्भक, ग्राही तथा शोषण गुण वाला होता है। जो द्रव्य रस एवं वीर्य के विपाक का आश्रय है, वही उत्तम है। रसपाकान्तर स्थायी द्रव्य ही सभी द्रव्यों के आश्रय कहे जाते हैं। शीतता, उष्णता तथा लवणता ही सभी द्रव्यों के वीर्य किंवा शक्तिरूप हैं। रस पाक द्विविध कहा गया है। यथा—मधुर एवं कटु। चिकित्सक, औषधि, परिचारक तथा धन—ये चार चिकित्सा के अंग हैं। यदि ये चारों श्रेष्ठ हैं, तब रोगी जल्दी ही निरोग होगा, तथापि यदि इनमें से किसी में दोष है, तब रोगी शीघ्र निरोग नहीं होगा। देश-काल-रोगी की उम्र-अग्नि की स्थिति (देह में), प्रकृति, औषधि, देहबल तथा व्याधि को जान कर चिकित्सक चिकित्सा चालू करे॥२१-२५॥

संसृष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणः स्मृतः।
बाल आषोडशान्मध्यः सप्ततेर्वृद्ध उच्यते॥२६॥
कफपित्तानिलाः प्रायो यथाक्रममुदीरिताः।
क्षाराग्निशस्त्ररहिताः क्षीणे प्रवयसि क्रियाः॥२७॥
कृशस्य बृंहणं कार्य्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम्।
रक्षणं मध्यकायस्य देहभेदास्त्रयोः मताः॥२८॥

स्थैर्य्यव्यायामसन्तोषैर्बोद्धव्यं यत्नतो बलम्। अविकारो महोत्साहो महासाहसिको नरः॥२९॥

देश की भिन्नता से रोग भी अन्य तरह के हो जाते हैं। अत: चिकित्सा कार्य में देश भी साधारण कारण है। अनेक जल से घिरे स्थान तथा पहाड़ वात-श्लेष्मा प्रवर्त्तक होते हैं। जांगल देश तथा वृक्षाग्र किंवा पर्वत शिखर रक्तपित्त प्रवर्त्तक होते हैं। मनुष्य १६ वर्ष तक बाल्यकाल में, १६ से ७० वर्ष तक मध्यकाल में तथा ७० से लगाकर मृत्यु पर्यन्त वृद्धकाल में घिरा रहता है। कफ-पित्त-वायु क्रमेण उदीरित होते हैं। बलक्षीण रोगी की अथवा वृद्धावस्था में बालकी क्षार क्रिया, अग्नि चिकित्सा या अस्त्र प्रक्रिया से इलाज न करे। दुबले व्यक्ति हेतु बृंहण क्रिया तथा स्थूल शरीर वाले के लिये कर्षण क्रिया से चिकित्सा करनी चाहिये। जिसका शरीर न तो दुर्बल है, न कृश है, उसकी चिकित्सा शरीर रक्षा द्वारा करे। इस तरह शरीर की विवेचना त्रिविध प्रकार से करके तब इलाज करे। स्थिरता, व्यायाम तथा सन्तोष द्वारा रोगी के बल को जाने। जो मनुष्य उत्साही तथा साहसी है, वही बलवान् होगा॥२६-२९॥

पानाहारादयो यस्य विरुद्धाः प्रकृतेरपि।
स्वसुखायोपकल्प्यन्ते तत्साम्यमिति कथ्यते॥३०॥
गर्भिण्याः श्लैष्मिकैर्भक्ष्यैः श्लैष्मिको जायते नरः।
वातलैः पित्तलैस्तद्वत्समधातुर्हिताशनात्॥३१॥
कृशो रूक्षोऽल्पकेशश्च चलचित्तो नरः स्थितः।
बहुवाक्यरतः स्वप्ने वातप्रकृतिको नरः॥३२॥
अकालपलितो गौरः प्रस्वेदी कोपनो बुधः।
स्वप्नेऽपि दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते॥३३॥
स्थिरचित्तः स्वरः सूक्ष्मः प्रसन्नः स्निग्धमूर्द्धजः।
स्वप्ने जलशिलालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः॥३४॥

पानीय तथा भक्ष्य वस्तु प्रकृति के विरुद्ध भले ही हो, उससे भी जिसे सुखलाभ हो रहा है, वह सम प्रकृति है। यदि गर्भिणी नारी श्लैष्मिक द्रव्य खाती है, तब उसकी सन्तान भी श्लेष्माप्रकृति की होगी। इसी प्रकार यदि वह नारी वात प्रकृति द्रव्य खाती है तब वायु प्रकृति की सन्तान होगी, यदि वह पित्त जनक द्रव्य का आहार करती है, तब सन्तान भी पित्त प्रकृति ही होगी। जिसके बाल रूखे तथा अल्प हैं, जो चलायमान चित्त है, कृश है तथा सोये हुये बड़बड़ाता है, वह वायु प्रकृति है। जिसका बाल अकाल में पके तथा शरीर शिथिल हो, जिसका शरीर गोरा हो, सर्वदा पसीना टपके, क्रोधी स्वभाव हो तथा स्वप्न में उज्ज्वल प्रभा देखे, वह पित्तप्रकृति है। जिसका चित्त स्थिर तथा सूक्ष्म हो, केश स्निग्ध हों, स्वप्न में जल तथा शिला देखे, वह श्लेष्मप्रकृति कहा जायेगा॥३०-३४॥

सम्मिश्रलक्षणैर्ज्ञेयो द्वित्रिदोषान्वयो नरः। दोषस्येतरसद्भावेऽप्यधिकप्रकृतिः स्मृतः॥३५॥
मन्दस्तीक्ष्णोऽथ पिषमः समश्चेति चतुर्विधाः। कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः॥३६॥

समस्य पालनं कार्य्यं विषमे वातनिग्रहः।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम्॥३७॥

प्रभवः सर्वरोगाणामजीर्णञ्चाग्निनाशनम्। आमाम्लरसविष्टम्भलक्षणं तच्चतुर्विधम्॥३८॥

जो मनुष्य सम्मिलित लक्षणों वाला है, उसे मिश्रप्रकृति कहा जाता है। इस प्रकार मनुष्य दो प्रकृति तथा तीन प्रकृति वाले हो सकते हैं। वायु-पित्तादि में से जिसकी अधिकता हो, उसे ही उस व्यक्ति की प्रकृति कहते हैं। कफ-पित्त-वायु की मन्द, तीक्ष्ण, विषम एवं सम, यह चतुर्विध अवस्था होती है। कफ-पित्त आदि की अधिकता से सामान्यत: जठराग्नि में प्रकार जनित विभिन्नता हो जाती है। जठराग्नि सम रहे, यह प्रयास चिकित्सक करे। जठराग्नि की विषम स्थिति हो, तब वायु का निग्रह करना चाहिये। जब तीक्ष्णावस्था हो, तब पित्तप्रतिकार करे। जठराग्नि की मन्दावस्था में श्लेष्मा-विशोधन करे। अजीर्ण तथा मन्दाग्नि ही सभी रोगों का कारण है। मन्दाग्नि चार प्रकार की है। यथा—आम, अम्ल, रस तथा विष्टम्भ॥३५-३८॥

आमाद्विसूचिका चैव हृदालस्यादयस्तथा। वचालवणतोयेन छर्दनं तत्र कारयेत्॥३९॥

शुक्राभावो भ्रमो मूर्च्छा तर्षोऽम्लात्संप्रवर्त्तते।
अपक्वं तत्र शीताम्बुपानं वातनिषेवणम्॥४०॥
गात्रभङ्गशिरोजाड्यभक्तद्वेषादयो रसात्।
तस्मिन्स्वापो दिवा कार्यो लङ्घनं वा विवर्जनम्॥४१॥
शूलगुल्मौ च विण्मूत्रस्तम्भविष्टम्भसूचकौ।
विधेयं स्वेदनं तत्र पानीयं लवणोदकम्॥४२॥
आमममम्लञ्च विष्टब्धं कफपित्तानिलैः क्रमात्।
आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुत्र्यूषणसैन्धवैः॥४३॥

दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णविनाशनम्। अहिताम्नै रोगराशिरहितार्थं ततस्त्यजेत्॥४४॥

आमावस्था में विसूचिका तथा देह क्लिन्नता, वमनवेग, आलस्य, ये लक्षण होते हैं। इस स्थिति में वच एवं लवण के साथ जल पीकर वमन करे। अम्ल की अधिकता होने पर शुक्र का अभाव, भ्रम, मूर्च्छा, तृष्णा आदि लक्षण होते हैं। इस स्थिति में बिना पकाये ठंडा जल पीये अथवा वायु सेवन करे। रसाधिक्य होने पर गात्र भंग, शिराओं में गुरुता, भोजन की अनिच्छा आदि उपद्रव होते हैं। इस स्थिति के होने पर दिन में सोये तथा लंघन भी करे। विष्टम्भ स्थिति में शूल, अरुचि, सूखा मल, मूत्र में शुष्कता आदि उपसर्ग दिखलाई पड़ते हैं। इसमें गर्म जल से सिंकाई करे तथा लवण जल का पान करे। कफदोष में आम, पित्तदोष में अम्ल तथा वायुदोष में विष्टम्भ प्रकट होता है। इनके निवारण के लिये हींग, त्रिकटु तथा सेंधा नमक का पेट पर लेप लगाये तथा दिन में सोये। इससे सभी प्रकार के अजीर्ण का नाश होगा। अहित भोजन से अनेक रोग होते हैं, अत: उसे त्यागे॥३९-४४॥

उष्णाम्बु वानुपानञ्च माक्षिकैः पाचनं भवेत्।
करीरदधिमत्स्यैश्च प्रायः क्षीरं विरुध्यते॥४५॥

बिल्वः शोणा च गम्भारी पाटला गणिकारिका। दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत्॥४६॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः। वातपित्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम्॥४७॥

उभयं दशमूलं स्यात्सन्निपातज्वरापहम्।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते॥४८॥

मधु के साथ उष्ण जल पीने से उदर में परिपाक होता है। वंश के अंकुर, दधि, मछली तथा क्षीर, ये जल्दी परिपाक वाले नहीं हैं। बिल्व, शोणाल, गांभारी, पाटली, गणिकारी की जड़ को पंचमूल कहते हैं। ये अग्नि उद्दीपित करती हैं तथा कफ-वात नाशक हैं। शालपाणि, पाठानी, बृहती, कन्टकारी, गोखरु, इनकी जड़ को स्वल्प पंचमूल कहा गया है। ये शरीर का पोषण करती हैं तथा वातपित्तहारी हैं। इन दोनों महा पंचमूल एवं लघु पंचमूल को मिलने से दशमूल होता है। यह सन्निपात ज्वरहारी है। कास, श्वास, तन्द्रा, पार्श्वशूल आदि रोग हेतु दशमूल उत्तम औषधि है॥४५-४८॥

एतैस्तैलानि सर्पींषि प्रलेपान्यलकां जयेत्।
क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्॥४९॥
स्नेहश्च तत्समं क्षीरं कल्कश्च स्नेहपादकः।
संवर्त्तितौषधैः पाको बस्तौ पाने भवेत्समः।
खरोऽभ्यङ्गे मृदुर्नस्ये पाकोऽपि संप्रकल्पयेत्॥५०॥
स्थूलदेहेन्द्रियाश्चिन्त्या प्रकृतिर्या त्वधिष्ठिता।
आरोग्यमिति तं विद्यादायुष्मन्तमुपाचरेत्॥५१॥
यो गृह्णातीन्द्रियैरर्थान्विपरीतान्स मृत्युभाक्।
भिषङ्मित्रगुरुद्वेषी प्रियारातिश्च यो भवेत्॥५२॥

गुल्फजानुललाटश्च हनुर्गण्डस्तथैव च। भ्रष्टं स्थानच्युतं यस्य स जहात्यचिरादसून्॥५३॥

वामाक्षिमज्जनं जिह्वा श्यामा नासा विकारिणी।
कृष्णौ स्थानच्युतौ चोष्ठौ कृष्णास्यं यस्य तं त्यजेत्॥५४॥

॥इति गारुडे महापुराणे वैद्यकशास्त्रे सूत्रस्थानं नाम अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६८॥

इस दशमूल काढ़े के साथ तैल या घृत पका कर अंग में लेप करे। इससे अलका रोग पलायित होता है। इसका क्वाथ (काढ़ा) तैयार करने में दसों मूल का चौगुना जल लेकर उबाले। जब जल एक चौथाई बचे, तब उस काढ़े का १/४ तेल छोड़ कर पकाये। तैल पाक काल में उसमें तेल इतना दूध भी छोड़े। जो औषधि वस्तिकार्य तथा पीने हेतु बनाया जाये, उसे समपाक में पाक करे। अभ्यंग के लिये औषधि को खर पाक करे। (सम पाक अर्थात आंच न कम हो न अधिक, खर पाक अर्थात तीव्र आंच में पकाये)। नस्य लेने वाली औषधि को मन्द आंच में पकाये, यही सामान्य व्यवस्था कथित है। देह पुष्टि, सबल इन्द्रियां आदि प्राकृतिक जो स्थिति है, वही है आरोग्य। ऐसा निरोग मानव आयुष्मान् होता है। जो

इन्द्रियों का विपरीत अर्थ लेता है (विपरीत प्रयोग करता है) उसे आसन्न मृत्यु कहा गया है। जो व्यक्ति वैद्य, मित्र तथा गुरु से द्वेष करने वाला है अथवा शत्रु को ही प्रिय माने और गुल्फ, जानु, हनु, गण्ड जिनके भ्रष्ट हों तथा वे स्थानच्युत हों, वह शीघ्र मृत होगा। जिसका वाम नेत्र निमग्न हो, जीभ काली पड़ी हो, नाक विकारग्रस्त हो तथा ओष्ठ-अधर अपने स्थान से च्युत हों, मुख से दुर्गन्ध आये, ऐसे व्यक्ति की चिकित्सा वैद्य त्याग दे॥४९-५४॥

॥एक सौ अड़सठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनुपान विधि वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

हिताहितविरेकाय अनुपानविधिं वदे। रक्तशालि त्रिदोषघ्नं तृष्णामेदोनिवारकम्॥१॥
महाशालि परं वृष्यं कलमः श्लेष्मपित्तहा। शीतो गुरुस्त्रिदोषघ्नः प्रायशो गौरषष्टिकः॥२॥
श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः श्लेष्मपित्तहा। तद्वत्प्रियङ्गुनीवारकोरदूषाः प्रकीर्त्तिताः॥३॥

बहुवारः सकृच्छीतः श्लेष्मपित्तहरो यवः।
वृष्यः शीतो गुरुः स्वादुर्गोधूमो वातनाशनः॥४॥
कफपित्तास्रजिन्मुद्गः कषायो मधुरो लघुः।
माषो बहुबलो वृष्यः पित्तश्लेष्महरो गुरुः॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—अब मैं हित-अहित का विवेक करने हेतु अनुपानविधि कहता हूं। द्रव्य का गुण-अवगुण जान कर अनुपान की व्यवस्था करे। अतः द्रव्य के गुण-अवगुण का ज्ञान आवश्यक है। रक्तशालि त्रिदोष तथा मेद का निवारण करता है। महाशालि परम बलकारी है। कलम धान्य श्लेष्मा-पित्त नाशक है। गौरवर्ण यष्टिधान्य शीतवीर्य गुरु एवं त्रिदोषनाशक है। श्यामाक शोषण कारक, रुक्ष, वायु बढ़ाने वाला तथा श्लेष्मा तथा पित्त विनाशक है। प्रियंगु, नीवार, कोरदोष भी पूर्वोक्त गुण वाला है। बहुवार शीतवीर्य है। यव श्लेष्मा तथा पित्तहारी है। गेहूं बलप्रद, शीतवीर्य, गुरु स्वादु तथा वातघ्न है। मूंग कफ-पित्त तथा रक्तनिवारक है। यह कषाय, मधुर, लघु है। उर्द अत्यन्त बलप्रद, पुष्टिकर श्लेष्मा तथा पित्त विनाशक एवं गुरु है॥१-५॥

अवृष्यः श्लेष्मपित्तघ्नो राजमाषोऽनिलार्त्तिनुत्।
कुलत्थः श्वासहिक्काहृत्कफगुल्मानिलापहः॥६॥

रक्तपित्तज्वरोन्माथी शीतो ग्राही मकुष्ठकः।
पुंस्त्वासृक्कफपित्तघ्नश्चणको वातलः स्मृतः॥७॥
मसूरो मधुरः शीतः संग्राही कफपित्तहा। तद्वत्सर्वगुणाढ्यश्च कलायश्चातिवातलः॥८॥
आढकी कफपित्तघ्नी शुक्रला च तथा स्मृता।
अतसी पित्तला ज्ञेया सिद्धार्थः कफवातजित्॥९॥
सक्षारमधुरस्निग्धो बलोष्णपित्तकृत्तिलः।
बलघ्ना रूक्षकाः शीता विविधाः शस्यजातयः॥१०॥

राजमाष पुष्टिप्रद, पित्त-श्लेष्मा नाशक वायुरोगहारी है। कुलथी कलाय श्वास, हिचकी, कफ, गुल्म तथा वायुरोग नाशकारी है। वनमूंग रक्तपित्त तथा ज्वरनाशक, शीतवीर्य ग्राही है। चना पुरुषत्व नाशक तथा रक्तपित्त और कफहारी है। यह विशेषत: वातव्याधि बढ़ाता है। मसूर मधुर रसयुक्त, शीतवीर्य, संग्राही तथा कफ-पित्त का हरण करने वाला अन्न है। कलाई भी इसी गुण से युक्त तथा वातवर्द्धक है। अरहर कफ-पित्त नाशक तथा शुक्रवर्द्धक है। यह पित्त बढ़ाता है। सरसों कफ तथा वायुनाशक है। तिल, क्षार तथा मधुर रस वाली है। यह स्निग्ध, बलकारक, उष्णवीर्य, पित्तवर्द्धक है। अन्य शस्य बलघ्न, रुक्ष, शीतवीर्य होते हैं॥६-१०॥

चित्रकेङ्गुदिनालीकाः पिप्पलीमधुशिग्रवः। चव्याचरणनिर्गुण्डीतर्कारीकासमर्दकाः॥११॥
सबिल्वाः कफपित्तघ्नाः क्रिमिघ्ना लघुदीपिकाः।
वर्षाभूमार्करौ वातकफघ्नौ दोषनाशनौ॥१२॥
तिक्तरसः स्यादेरण्डः काकमाची त्रिदोषपहृत्।
चाङ्गेरी कफवातघ्नी सर्षपं सर्वदोषदम्॥१३॥
तद्वदेव च कौसुम्भं राजिका वातपित्तला। नाडीचः कफपित्तघ्नः चुञ्चुर्मधुरशीतलः॥१४॥
दोषघ्नं पद्मपत्रञ्च त्रिपुटं वातकृत्परम्। सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तुको रोचनः परः॥१५॥

चित्रक, ईंगुदी, पद्मनाल, पिप्पली, मधु, सहजन, चव्या, निषिन्दा, जयन्ती, कालकासन्दा तथा बेल कफ, पित्त, कृमिनाशक हैं। ये अतीव लघु तथा अग्निदीपक हैं। पुनर्नवा तथा मार्कर औषधि वायु एवं श्लेष्माहारी हैं। ऐरण्ड तिक्तरस है। काकमाची त्रिदोष नाशक है। आमरूल कफ-वायुनाशक कहा गया है। सर्षप सर्वदोषप्रद है। कुसुम्भ भी सर्वदोषकारी है। राजिका वात एवं पित्त बढ़ाता है। नालिका कफ-पित्त नाशक है। जयन्ती शाक मधुर रस वाला तथा शीतवीर्य है। कमल का कोमल पत्ता सभी दोष नाश करता है। खेसारी वात वृद्धिकारक है। वास्तुक शाक लवण मिलाने से सभी दोषों का नाशक तथा रुचिकारक हो जाता है॥११-१५॥

तण्डुलीयो विषहरः पालङ्क्याश्च तथापरे।
मूलकं दोषकृच्चामं स्विन्नं वातकफापहम्॥१६॥

सर्वदोषहरं हृद्यं कण्ठ्यं तत्पक्वमिष्यते। कर्कोटकं सवार्त्ताकं पटोलं कारवेल्लकम्॥१७॥
कुष्ठमेहज्वरश्वासकासपित्तकफापहम्। सर्वदोषहरं हृद्यं कूष्माण्डं बस्तिशोधनम्॥१८॥
कलिङ्गालावुनी पित्तनाशिनी वातकारिणी। त्रपुषेर्वारुके वातश्लेष्मले पित्तवारणे॥१९॥
वृक्षाम्लं कफवातघ्नं जम्बीरं कफवातनुत्। वातघ्नं दाडिमं ग्राहि नागरङ्गफलं गुरु॥२०॥

तण्डुलीय विषहारी है। पालक, इन्द्रिका आदि शाक भी ऐसे ही हैं। मूलक आमावस्था में सर्वदोषकारी है, लेकिन स्वित्र होने पर वात-कफ का हरण करती है। अच्छी तरह पका देने पर यह सभी दोषों का नाश करती है तथा स्वादु लगती है। काकरोल, बैंगन, पटल, करेला कुष्ठ, मेह, ज्वर, कास, पित्त, कफ नाशक हैं। कोहड़ा सभी दोषों का नाशक तथा सुस्वादु है। इससे वस्ति शोधन भी हो जाता है। इन्द्रयव तथा अलावु पित्तनाश तथा वातवृद्धि कारक हैं। त्रपुष तथा वारुक पित्तनाश करते हैं, लेकिन वायु-श्लेष्मा को बढ़ाते हैं। वृक्षाम्ल तथा जम्बीर कफ-वातहारी हैं। अनार वातघ्न तथा ग्राही है। नारंगी अति गुरुपाक है॥१६-२०॥

केशरं मातुलुङ्गञ्च दीपनं कफवातनुत्। वातपित्तहरं माषं त्वक्स्निग्धोष्णानिलापहम्॥२१॥
सर्वमामलकं वृष्यं मधुरं हृद्यमम्लकृत्। भुक्तप्ररोचका पुण्या हरीतक्यमृतोपमा॥२२॥
स्त्रंसनी कफवातघ्नी परं तद्वत्त्रिदोषजित्।
वातश्लेष्महरं त्वम्लं स्त्रंसनं तिन्तिडीफलम्॥२३॥
दोषलं लकुचं स्वादु वकुलं कफवातजित्। गुल्मवातकफश्वासकासघ्नं बीजपूरकम्॥२४॥
कपित्थं ग्राहि दोषघ्नं पक्वं गुरु विषापहम्। कफपित्तकरं बालमापूर्णं पित्तवर्द्धनम्॥२५॥

केसर, बिजौरा, नींबू कफ-वात नाशक तथा अग्नि दीप्त करने वाले हैं। उर्द वात-पित्तहारी है। इसके सेवन से त्वचा स्निग्ध होती है तथा वायुरोग नष्ट होता है। आमलकी बलकारी, मधुर, रुचिकर तथा अम्ल रसान्वित है। हरीतकी रुचिकारी, पुण्यप्रद, अमृततुल्य विरेचक तथा कफ-वात नाशक है। तिन्तिड़ी में कफ-वात नाशक ताकत है। यह विरेचक, त्रिदोष जीतने वाली, कफनाशक भी है। यह अम्लरस युक्त है। लीची सभी दोषों का घर है, तथापि स्वादु भी है। बकुल फल कफ एवं वात-पित्त का नाश करता है। बीजपूर गुल्म, वात, कफ, श्वास, कास नाशक है। कैंथा ग्राही तथा सभी दोषों का नाशक है। यह पकने पर अतीव गुरुपाक होता है, तथापि विषदोष का नाश कर देता है। यह कच्चेपन पर कफ-पित्तवर्द्धक रहता है। पक जाने पर केवल पित्त बढ़ाता है॥२१-२५॥

पक्वाम्रं वातकृन्मांसशुक्रवर्णबलप्रदम्। वातलं कफपित्तघ्नं ग्राहि विष्टम्भि जाम्बवम्॥२६॥
तिन्दुकं कफवातघ्नं वदरं वातपित्तहृत्। विष्टम्भि वातलं बिल्वं प्रियालं पवनापहम्॥२७॥

पका आम वात बढ़ाता है। यह मांस, शुक्र, बल तथा देह वर्ण को बढ़ाता है। जायफल वातल (वातप्रद), पित्तनाशक, कफनाशक, ग्राही तथा विष्टम्भि होता है। तिन्दुक कफ-वातनाशक तथा बेर वात, पित्तनाशक होता है। बिल्वफल वातल (वातवृद्धिकारी) तथा विष्टम्भी होता है। प्रियाल वातनाशक है॥२६-२७॥

राजादनफलं मोचं पनसं नारिकेलजम्। शुक्रमांसकराण्याहुः स्वादुस्निग्धगुरूणि च॥२८॥
द्राक्षामधुकखर्जूरं कुङ्कुमं वातरक्तजित्। मागधी मधुरा पक्वा श्वासपित्तहरा परा॥२९॥
आर्द्रकं रोचकं वृष्यं दीपनं कफवातहृत्।
शुण्ठीमरिचपिप्पल्यः कफवातजिता मताः॥३०॥
अवृष्यं मरिचं विद्यादिति वैद्यकसम्मितम्। गुल्मशूलविबन्धघ्नं हिङ्गु वातकफापहम्॥३१॥
यमानीधन्यकाजाज्यो वातश्लेष्मनुदः परम्।
चक्षुष्यं सैन्धवं वृष्यं त्रिदोषशमनं स्मृतम्॥३२॥
सौवर्चलं बिबन्धघ्नमुष्णं हृच्छूलनाशनम्। उष्णं शूलहरं तीक्ष्णं विडङ्गं वातनाशनम्॥३३॥
रोमकं वातलं स्वादु रोचनं क्लेदनं गुरु। हृत्पाण्डुगलरोगघ्नं यवक्षारोऽग्निदीपनः॥३४॥

राजदानफल, मोचफल, पनसफल, नारियलफल ये सभी शुक्र-मांस वृद्धि करने वाले हैं। ये स्निग्ध तथा गुरुपाक हैं तथापि स्वादु हैं। द्राक्षा, महुआ, खजूर तथा कुंकुम वातरक्त नाशक हैं। पकी पिप्पली मधुर तथा श्वास एवं पित्त का निवारण करती है। अदरख रुचिकर, बलकारक, अग्निदीपक तथा कफवातहारी है। शुण्ठी, मरिच तथा पिप्पली—ये कफ तथा वात जय करते हैं। इनमें मरिच अवृष्य है। शुण्ठी तथा पिप्पली वृष्य कही गयी है। ये गुल्म, शूल तथा विवंधनाशक हैं। हींग कफ-वात नाशक है। यमानी, धनिया, जीरा वात तथा श्लेष्मा नाश करते हैं। सैन्धव नेत्र तेजवर्द्धक है। यह बलवृद्धिकारी तथा त्रिदोष नाशक है। सौवर्चल लवण उष्णगुण, विवंध एवं हृदयशूल नाशक है। विडङ्ग उष्ण, शूलहारी, तीक्ष्ण तथा वातनाशक है। रोमक लवण वातवर्द्धक है। वह स्वादु, रुचिप्रद तथा गुरु होता है। यह हृदय रोग, पाण्डु एवं गले के रोग का नाशक है। यवक्षार अग्नि दीप्त करता है॥२८-३४॥

दहनो दीपनस्तीक्ष्णः सर्जिक्षारो विदारणः। दोषघ्नं नाभसं वारि लघु हृद्यं विषापहम्॥३५॥
नादेयं वातलं रूक्षं सारसं मधुरं लघु। वातश्लेष्महरं वाप्यं ताडागं वातलं स्मृतम्॥३६॥
रौच्यमग्निकरं रूक्षं कफघ्नं लघु नैर्झरम्। दीपनं पित्तलं कौपमौद्भिदं पित्तनाशनम्॥३७॥
दिवार्ककिरणैर्जुष्टं रात्रौ चैवेन्दुरश्मिभिः। सर्वदोषविनिर्मुक्तं तत्तुल्यं गगनाम्बुना॥३८॥
उष्णं वारि ज्वरश्वासमेदोऽनिलकफापहम्। शृतशीतं त्रिदोषघ्नमुषितं तच्च दोषलम्॥३९॥
गोक्षीरं वातपित्तघ्नं स्निग्धं गुरु रसायनम्।
गव्याद्गुरुतरं स्निग्धं माहिषं वह्निनाशनम्॥४०॥

सज्जीक्षार पाचक अग्निदीपक, तीक्ष्ण तथा विदारक है। वृष्टि का जल त्रिदोष वाला, लघु, स्वादु तथा विषनाशक है। नदी जल वातवर्द्धक तथा रूखा है। सरोवर का जल मधुर तथा लघु होता है। वापी का जल वात एवं श्लेष्मा उत्पन्न करता है। तड़ाग का जल वात बढ़ाता है। झरना का जल रुचिकर, अग्निदीप्त करने वाला, रुक्ष, कफनाशक, लघु होता है। कूपजल अग्नि बढ़ाने वाला तथा पित्त बढ़ाता है। उद्भिद्जल पित्तनाशक होता है। जो जल दिन में सूर्य किरणों से रुक्ष होकर रात में चन्द्रमा की किरणों से ठंडा होता है, उसमें कोई दोष नहीं होता। यह आकाशीय जल के समान है। उष्णजल ज्वर,

श्वास, मेदोरोग, वायुदोष तथा कफनाशक है। जप पाक करके उसे ठंडा करे। यह त्रिदोषघ्न होता है, लेकिन बासी होने पर इसके गुण नष्ट होकर यह हानिप्रद हो जाता है। गोदुग्ध वात-पित्त नाशक, स्निग्ध, गुरुपाक तथा पोषक कहा गया है। भैंस का दूध गोदुग्ध से भारी, स्निग्ध तथा अग्नि मन्द करने वाला होता है॥३५-४०॥

छागं रक्तातिसारघ्नं कासश्वासकफापहम्।
चक्षुष्यं जीवनं स्त्रीणां रक्तपित्ते च लावणम्॥४१॥
परं वातहरं वृष्यं पित्तश्लेष्मकरं दधि। दोषघ्नं मन्थजातं तु मस्तु स्त्रोतोविशोधनम्॥४२॥
ग्रहण्यर्शोऽर्दितार्त्तिघ्नं नवनीतं नवोद्धृतम्।
विकाराश्च किलाटाद्या गुरवः कुष्ठहेतवः॥४३॥
परं ग्रहणीशोथार्शःपाण्डवतीसारगुल्मनुत्। त्रिदोषशमनं तक्रं कथितं पूर्वसूरिभिः॥४४॥
वृष्यञ्च मधुरं सर्पिर्वातपित्तकफापहम्।
गव्यं मेध्यञ्च चक्षुष्यं संस्काराच्च त्रिदोषजित्॥४५॥

बकरी का दुग्ध रक्तातिसार नाशक तथा कास, श्वास तथा कफहारक है। स्त्रीदुग्ध नेत्र तेज वर्द्धित करने वाला, जीवनप्रद, रक्तपित्तघ्न तथा लवणरस समन्वित होता है। दधि बलप्रद, वातहारी, पुष्टिदायक तथा पित्त एवं श्लेष्मकारक है। दधि का मट्ठा त्रिदोषघ्न तथा शिरस्त्रोत के शोषणकारक थे। नया मक्खन ग्रहणी, अर्श तथा अर्दित रोगनाशक है। किलाट आदि गुरु तथा कुष्ठदायक होते हैं। चिकनाई रहित मट्ठा ग्रहणी, अर्श, शोथ, पीलिया, अतिसार तथा गुल्मनाशक है। यह त्रिदोष नाशकर्त्ता भी है। घृत मधुर तथा वात-पित्त-कफघ्न है। गौघृत मेधा बढ़ाने वाला तथा नेत्र का तेज बढ़ाता है। उसका संस्कार होने से वह त्रिदोष नाश करता है॥४१-४५॥

अपस्मारगदोन्मादमूर्च्छाघ्नं संस्कृतं घृतम्।
अजादीनाञ्च सर्पींषि विद्याद् गोक्षीरसद्गुणैः।
कफवातहरं मूत्रं सर्वक्रिमिविषापहम्॥४६॥
पाण्डुत्वोदर कुष्ठार्शःशोथगुल्मप्रमेहनुत्।
वातश्लेष्महरं बल्यं तैलं केश्यं तिलोद्भवम्॥४७॥
सार्षपं कृमिपाण्डुघ्नं कफमेदोऽनिलापहम्। क्षौमं तैलमचक्षुष्यं पित्तहृद्वातनाशनम्॥४८॥
अक्षजं कफपित्तघ्नं केश्यं त्वक्स्त्रोततर्पणम्।
त्रिदोषघ्नं मधु प्रोक्तं वातलञ्च प्रकीर्त्तितम्॥४९॥
हिक्काश्वासकृमिच्छर्दिमेहतृष्णाविषापहम् ।
इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याः कफप्रदाः॥५०॥

पुराना घृत अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा प्रभृति रोग को नष्ट करता है। बकरी-भेड़ से उत्पन्न घृत भी

पूर्वोक्त गुणों वाला होता है। विशेष करके यह कफ-वात हरने वाला, मूत्रदोष नाशक, क्रिमिदोषघ्न तथा विषदोष नाशक है। तिल तैल पाण्डुरोग, उदर रोग, कुष्ठ, अर्श, शोथ, गुल्म, प्रमेह तथा वात-श्लेष्म विकार का नाश करता है। वह बलप्रद तथा केश को उज्वलता देने वाला है। सरसों का तेल क्रिमि तथा पाण्डुरोगघ्न, कफ, मेद तथा वायुनाशक है। मसिना तैल चक्षु के तेज का नाशक है। वह पित्त, वात रोग, हृदयरोग नाशक है। बहेड़ा तैल कफपित्तघ्न, केशवर्द्धक, चर्म तथा कर्ण का उत्कर्ष साधक है। वह मधुर तथा त्रिदोष नाशक है, तथापि वातवृद्धि करने वाला और हिचकी, श्वास, क्रिमि, वमन, मेद, तृष्णा तथा विषदोषनाशक है। इक्षु रक्तपित्तज, बलकारक, पुष्टिसाधक तथा कफ वृद्धिकारक है॥४६-५०॥

फाणितं पित्तलं तीव्रं सुरामत्स्यण्डिका लघुः।
खण्डं वृष्यं तथा स्निग्धं स्वाद्वसृक्पित्तवातजित्॥५१॥
वातपित्तहरो रूक्षो वातघ्नः कफकृद् गुडः।
स पित्तघ्नः परः पथ्यः पुराणोऽसृक्प्रसादनः॥५२॥
रक्तपित्तहरा वृष्या सस्नेहा गुडशर्करा। सर्वपित्तकरं मद्यमम्लत्वात्कफवातजित्॥५३॥
रक्तपित्तकरास्तीक्ष्णास्तथा सौवीरजातयः।
पाचनो दीपनः पथ्यो मण्डः स्याद् भृष्टतण्डुलः॥५४॥
वातानुलोमनी लघ्वी पेया बस्तिविशोधनी।
सतक्रदाडिमव्योषा सगुडा मधुपिप्पली॥५५॥

फाणित (शीरा) पित्तकारक तथा तीव्र होता है। चीनी-मिश्री लघुपाक होती है। बताशा बलप्रद, स्निग्ध, स्वादु और रक्तपित्त एवं वायुनाशक है। गुड़ पित्तहारी, रुक्ष, वातनाशक तथा कफहर है। पुराना गुड़ पित्तनाशक, पथ्य तथा रक्तशोधक होता है। स्नेहमिश्रित गुड़ शर्करा, रक्तपित्तहारी एवं बलप्रद है। सभी प्रकार के मद्य पित्त बढ़ाने वाले हैं। वे अम्लगुणयुक्त होते हैं, अतः कफ-वात पर विजय पाते हैं। कांजी तीव्र तथा रक्तपित्तहारी है। भूंजा चावल तथा मांड़ अग्नि को बढ़ाने वाला तथा पथ्य है। पेया वायु को अनुलोम करती है तथा अति लघुपाक है। मट्ठा, अनार, त्रिकटु, गुड़, मधु तथा पिप्पली युक्त पेया वस्तिशोधक है। (पेया = भात का मांड़)॥५१-५५॥

हन्तीयं सुकृता पेया कासश्वासप्रवाहिकाः।
पायसः कफहृद्बल्यः कृशरा वातनाशिनी॥५६॥
सुधौतः प्रस्रुतः स्निग्धः सुखोष्णो लघुरोचनः।
कन्दमूलफलस्नेहैः साधितो बृंहणो गुरुः॥५७॥
ईषदुष्णसेवनाच्च लघुः सूपः सुसाधितः।
स्विन्नं निष्पीडितं शाकं हितं स्नेहादिसंस्कृतम्॥५८॥
दाडिमामलकैर्यूषो वह्निकृद्वातपित्तहः। श्वासकासप्रतिश्यायकफघ्नो मूलकैः कृतः॥५९॥

यवकोलकुलत्थानां यूषः कण्ठ्योऽनिलापहः। मुद्गामलकजो ग्राही स्लेष्मपित्तविनाशनः॥६०॥

उत्तम बना पेया कास, श्वास, प्रवाहिका का नाश करता है। पायस कफ-वात नाशक तथा बलप्रद है। खिचड़ी वातहारी है। सूप उत्तम रूप से धोकर बनाये तथा पकाये। तब उसे वस्त्र से छाने। ऐसा सूप तनिक गरम रहे, तब खाये। वह लघुपाक तथा रुचिप्रद होता है। यह सूप फलमूलादि के साथ पकाये तथा बनाये जाने से गुरुपाक तथा बृंहणकारी होता है। यह सूप उत्तम रूपेण पकाये जाने पर तथा किंचित् गरम रहते सेवन करने से अल्पकाल में पच जाता है। शाक पकाकर उसे निचोड़े तथा घृत-तैलादि के साथ पकाये। ऐसा शाक हित करता है। अनार तथा आमलकी के साथ यूष पाक करे। यह यूष श्वास, कास, प्रतिश्याय तथा कफरोग का विनाश करता है। यव, वदरी, कुलथी का यूष प्रिय लगने वाला तथा वातरोगनाशक है। मूंग तथा आमलकी का यूष ग्राही तथा पित्त-श्लेष्मा रोग का नाश करता है॥५६-६०॥

सगुडं दधि वातघ्नं सक्तवो रूक्षवातलाः।
घृतपूर्णोऽग्निकारी स्याद् वृष्या गुर्वी च शष्कुली॥६१॥
बृंहणाः सामिषा भक्ष्याः पिष्टका गुरवः स्मृताः।
तैले कृताश्च दृष्टिघ्नास्तोयस्विन्नाश्च दुर्जराः॥६२॥
अत्युष्णा मण्डकाः पथ्याः शीतला गुरवो मताः।
अनुपानञ्च पानीयं श्रमतृष्णादिनाशनम्॥६३॥

अनुपानादिरक्षाकृत्स्याद्विषाद्रोगवर्जितः। अनुष्णः शिखिकण्ठाभो विषश्चैव विवर्णकृत्॥६४॥

गन्धस्पर्शरसास्तीव्रा भोक्तुश्च स्यान्मनोव्यथा।
आघ्राणे चाक्षिरोगः स्यादसाध्यश्च भिषग्वरैः।
वेपथुजृम्भणाद्यं स्याद्विषस्यैतत्तु लक्षणम्॥६५॥

॥इति गारुडे महापुराणे अनुपानादिविधिकथनं नाम ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६९॥

गुड़ मिला दधि वातनाशक है। सत्तू रुक्ष तथा वात बढ़ाने वाला है। शष्कुली घृत में पकाने पर अग्नि तथा बल की वृद्धि करता है, तथापि वह गुरुपाक है। सभी आमिष शारीरिक पोषण करता है। सभी पिष्टक गुरुपाक है। तेल में पका पिष्टक दृष्टि का ह्रास करता है। जल में पका गुरुपाक होता है। अति उष्ण मांड़ ही पथ्य कहा गया है। यह शीतल होने पर गुरुपाक हो जायेगा। अनुपानयुक्त दवा लेने से थकान तथा प्यास मिटती है। अनुपान सदा मानव की रक्षा विषादि से करता है। वह रोगरहित करता है। विष अनुष्ण, मोर के कण्ठ जैसा, प्राणी को विवर्ण करने वाला होता है। इसका गन्ध-स्पर्श-रस सभी तीव्र होता है। इसे सूंघने से अति असाध्य नेत्ररोग हो जाता है। देह में कम्पन तथा जम्हाई आती है। यह सब विष लक्षण है॥६१-६५॥

॥एक सौ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ज्वरादि चिकित्सा वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसङ्घातागन्तुजः। मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः।
शृतशीतं जलं दद्यात्पिपासाज्वरशान्तये॥१॥
नागरं देवकाष्ठञ्च धन्याकं बृहतीद्वयम्। दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम्॥२॥

धन्वन्तरि ने कहा—ज्वर अष्टविध कहे गये हैं। यथा—वातिक, श्लैष्मिक, पैत्तिक, वातपैत्तिक, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक, सान्निपातिक तथा आगन्तुक। मोथा, पित्तपापड़ा, बेना की जड़, लाल चन्दन, बाला तथा शुण्ठी को पानी में पकाये। ठंडा होने पर ज्वरार्त्त व्यक्ति को पिपासा शान्त करने हेतु पिलाये। इससे ज्वर जनित प्यास की शान्ति होगी॥१-२॥

आरग्वधाभयामुस्तातिक्ताग्रन्थिकनिर्मितः। कषायः पाचनः सामे सशूले च ज्वरे हितः॥३॥
मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसानस्यं कुर्य्यात्संज्ञाप्रबोधनम्॥४॥

शुण्ठी, देवदारु, धनिया, बृहती, काटकारी को जल में पकाकर जब ठंडा हो जाये, तब उसे पान करे। ज्वरजनित प्यास शान्त होगी। आरग्वध, हर्रे, मोथा, इन्द्र जौ, पीपलमूल का काढ़ा पीने से नये ज्वर वाला मनुष्य शरीर पीड़ा से मुक्त होगा तथा ज्वरनाश के साथ रसों का पाक होगा। मुलेठी, सैन्धव, पिप्पली को समभाग पीसे। उसे जल में मिला कर सुंघनी के तौर पर सूंघे। इससे ज्वररोगी भले अचेतन हो गया हो तो वह भी प्रबोधित हो जाता है॥३-४॥

त्रिवृद्विशालात्रिफलाकटुकारग्वधैः कृतः। सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः॥५॥
महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधन्यकैः। क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः॥६॥
अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः।
बद्ध्वा वारे रवेर्नूनं ज्वरं हन्ति तृतीयकम्॥७॥
गङ्गाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः। तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्यैकाहिको ज्वरः॥८॥
गुडूच्याः क्वाथकल्काभ्यां त्रिफलावासकस्य च।
मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः॥९॥
धात्रीशिवाकणावह्निक्वाथः सर्वज्वरान्तकः। ज्वरातिसारहरणमौषधं प्रवदाम्यथ॥१०॥

त्रिवृत्, गोरक्ष कर्कटी, त्रिफला, कटुकी, आरग्वध इन सब द्रव्य का काढ़ा बनाकर यवक्षार के साथ पीने से सभी प्रकार के ज्वर की शान्ति हो जाती है। शुण्ठी, गुरुच, मोथा, रक्तचन्दन, वेणा की जड़, धनियां का काढ़ा बनाकर मधु तथा शर्करा के साथ पीने से तृतीयक ज्वर नाश हो जाता है। रविवार को

अपामार्ग की जड़ ले आये, सात रक्तसूत्र द्वारा कटि में बांधने से त्रयाहिक ज्वर नष्ट हो जाता है। गंगा के उत्तर तट पर अपुत्र तापस मृत हो गया। उसको तिलांजलि प्रदान करे। इससे एकाहिक ज्वर का नाश हो जाता है। गुरुच, त्रिफला, वासक, द्राक्षा, बेड़ेला, इनमें से प्रत्येक का क्वाथ तथा कल्क से घृत अथवा तैल पाक करे। इसका सेवन करने से ज्वर नाश होता है। आमलकी, हरीतकी, पिप्पली, चिता का काढ़ा पीये। सभी ज्वर नाश होगा। इसके पश्चात् ज्वर-अतिसार नाशक औषधि कहता हूं॥५-१०॥

पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः। पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकैः शृताः।
जयन्त्याममतीसारं सज्वरं समहौषधाः॥११॥
नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः। सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः॥१२॥
मुस्तपर्पटकैर्दिव्यशृङ्गवेरशृतं पयः। शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका॥१३॥
बलाश्वदंष्ट्राविश्वादिपाठानागरधन्यकम्। एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम्॥१४॥

पृश्निपर्णी, वेड़ेला, बिल्व, शुण्ठी, उत्पल, धनियां, आक्नादि, इन्द्र यव, चिरायता, मोथा, पित्तपापड़ा, का क्वाथ बनाकर उसे शुण्ठीचूर्ण के साथ पान करे। ज्वर तथा आमातिसार नष्ट हो जाता है। मोथा, पित्तपापड़ा, हरीतकी, अदरख, शालपाणि, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, बेड़ेला, गोखरु, बिल्वादिगण, आक्नादि शुण्ठी-धनियां का सेवन करने वाले को सभी अतिसार में अधिक लाभ होगा॥११-१४॥

विल्वचूतास्थिक्वाथश्च खण्डं मध्वतिसारनुत्।
अतिसारे हिता तद्वत्कुटजत्वक्कणायुता॥१५॥
वत्सकातिविषाविश्वकणाकन्दकषायकः। प्रयुक्तश्चामशूलाढ्ये ह्यतीसारे सशोणिते॥१६॥

बेल तथा आम के बीज का काढ़ा मधु तथा चीनी के साथ पीने से अतिसार निवृत्त हो जाता है। कुटज की छाल को पिप्पली के साथ सेवन करने से अतिसार समाप्त हो जाता है। इन्द्रयव, अतीष, बेल, पिप्पलीमूल का काढ़ा पीये। इससे आमपीड़ा वाला रक्तातिसार भी ठीक हो जायेगा॥१५-१६॥

चिकित्साथ ग्रहण्यास्तु ग्रहणी चाग्निनाशिनी।
चित्रकक्वाथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं शृतं हविः।
गुल्मशोथोदरप्लीहशूलार्शोघ्नं प्रदीपनम्॥१७॥
सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडङ्गौद्भिदमेव च। सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत्॥१८॥
भेषजं शस्त्रक्षाराग्नि त्रिधा वै चार्शसां हरम्।
विद्धि तच्चांर्शसो घ्नन्तु तक्रं नवोद्धृतञ्च यत्॥१९॥
गुडुर्चीं पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम्।
त्रिवृदर्शोविनाशार्थं भक्षयेदम्ललोणिकाम्॥२०॥

अब ग्रहणी चिकित्सा कहते हैं। यह पेट की अग्नि का नाशक रोग है। चिता का काढ़ा तथा कल्क

को घृतपाक करके उसका सेवन करे। इससे ग्रहणी, गुल्म, शोथ, उदरी, प्लीहा, शूल तथा अर्शनाश होता है। साथ ही उदराग्नि बढ़ती है। सौवर्चल, सैन्धव तथा विट्‌लवण, उद्भिज तथा समुद्र का नमक, इन पांचों लवण को पूर्वोक्त घृत में मिलाये (जो चिता (चित्रक) के कल्क से पाक करके बनेगा)। औषधि, अस्त्र, क्षार तथा अग्नि प्रक्रिया अर्शनाश करती है। गुरुच, पिप्पली, हरें को घी में भूंज कर खाये। किंवा अर्शनाशार्थ त्रिवृत तथा आमरुल खाने से भी यह रोग नष्ट होगा॥१७-२०॥

तिलेक्षुरससंयोगश्चार्शःकुष्ठविनाशनः। पञ्चकोलं समरिचं सत्र्यूषणमथाग्निकृत्॥२१॥
हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा। सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी॥२२॥

फलत्रिका मृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम्॥२३॥
त्रिबृच्च त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु।
मोदकः सन्निपातान्तो रक्तपित्तज्वरापहः॥२४॥
वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति॥२५॥

तिल तथा गन्ने का रस मिलाकर खाये। इससे अर्श तथा कुष्ठ नाश होता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, च्यव, चित्रक तथा शुण्ठी का सेवन मरीच एवं त्रिकटु से करे। अग्निवृद्धि होगी तथा शुण्टी, गुड़ तथा सेंधा नमक के साथ हरीतकी खाये। इससे भी उदराग्नि बढ़ती है। त्रिफला, गुरुच, वासक, इन्द्र जौ, चिरायता, नीम का काढ़ा बनाकर मधु के साथ पान करे। यह कामला तथा पांडुरोग नाशक है। त्रिवृत, त्रिफला, प्रियंगु, चीनी, मधु मिलाकर लड्डू बनाये। यह सन्निपात का नाशक है। यह रक्तपित्त तथा ज्वर हरण करने वाला है। वासक अपनी उपस्थिति से जीवित रहने की आशारूप है। जो रक्तपित्त हरण करने वाला है, इसके रहते क्षय रोगी, रक्तपित्त रोगी, कासग्रस्त रोगी क्यों प्राणभय से अवसन्न हो रहे हैं?॥२१-२५॥

अटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः। क्षौद्राढ्यः कासनश्वासरक्तपित्तनिबर्हणः॥२६॥

वासारसः खण्डमधुयुतः पीतोऽथ रक्तजित्।
सल्लकीबदरीजम्बुप्रियालाम्रार्जुनं धवः।
पीतक्षीरञ्च मध्वाढ्यं पृथक्शोणितवारणम्॥२७॥
समूलफलपत्राया निर्गुण्ड्याः स्वरसैर्घृतम्।
सिद्धं पीत्वा क्षयक्षीणो निर्व्याधिर्भाति देववत्॥२८॥

हरीतकीकणाशुण्ठिमरिचं गुडसंयुतम्। कासघ्नो मोदकः प्रोक्तस्तृष्णारोचकनाशनः॥२९॥

कण्टकारिगुडूचीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पले रसे।
प्रस्थं सिद्धं घृतं स्याच्च कासनुद्वह्निदीपनम्॥३०॥

बहेड़ा, द्राक्षा तथा हरीतकी का काढ़ा बना कर चीनी तथा शहद के साथ पान करने से श्वास तथा रक्तपित्त रोग का नाश हो जाता है। वासक के रस में शर्करा तथा मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त का नाश होता है। बाबला, बदरी, जामुन, प्रियाल, अर्जुन, वट का क्षीर मधु के साथ पान करे। इससे रक्तदोष निवृत्त होगा। निसिंदा की जड़, फल तथा पत्र का स्वरस घृत में पाक करके पान करे। क्षयरोग से क्षीण हो गया व्यक्ति तक व्याधिरहित देववत् हो जाता है। हरीतकी, पिप्पली, शुण्ठी, मरीच, गुड़ का लड्डू बनाये। इस मोदक के खाने से कास, तृष्णा तथा अरुचि का नाश होता है। पहले तीस पल कन्टकारी के रस के साथ एक प्रस्थ घृत पकाये। तदनन्तर इसी घृत को तीस पल गुरुच के रस के साथ पाक करे। इस घृत पान से कासरोग समाप्त होता है। यह घृत अग्नि उद्दीपक भी है॥२६-३०॥

कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी हिक्काघ्नी मधुसंयुता।
हिक्काश्वासी पिबेद्भार्गीं सविश्वामुष्णवारिणा॥३१॥
तैलाक्तं स्वरभेदी वा खादिरं धारयेन्मुखे।
पथ्यां पिप्पलीसंयुक्तां संयुक्तां नागरेण वा॥३२॥
विडङ्गत्रिफलाचूर्णं छर्दिहन्मधुना सह। आम्रजम्बुकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम्॥३३॥
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णाञ्चैवापकर्षति।
त्रिफला भ्रममूर्च्छाहृत्पीता सा मधुनापि वा॥३४॥
पञ्चगव्यं हितं पानादपस्मारग्रहादिनुत्। कुष्माण्डकरसो वाज्यं सयष्टिकं तदर्थकृत्॥३५॥

द्राक्षा, आमलकी, चीनी, शुण्ठी को मधु के साथ मिलाकर पान करने से हिक्कारोग शान्त होगा। श्वास तथा हिचकी पीड़ित लोग ब्रह्मयष्ठी (वामनहारी) तथा शुण्ठी को गर्म जल के साथ पीयें। स्वरभेद के रोगी तैलाक्त खदिर को मुख में रखें अथवा हरीतकी एवं पिप्पली अथवा हरीतकी एवं शुण्ठी खायें। वायविडङ्ग, त्रिफला, शुण्ठी को चूर्ण करके मधु के साथ खाने से वमन रोग समाप्त हो जायेगा। वमन का रोगी आम तथा जामुन का काढ़ा मधु के साथ पीये। यह सभी प्रकार के वमन तथा गला सूखने (तृष्णा) को समाप्त कर देता है। त्रिफला का काढ़ा मधु के साथ पीये। भ्रम तथा मूर्च्छा समाप्त होते हैं। पंचगव्य पीने से अपस्मार प्रभृति रोगों की समाप्ति होती है। कोहड़े का रस, घृत तथा मुलेठी का भक्षण करने से मूर्च्छा रोग नाश हो जाता है॥३१-३५॥

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च। पुराणं सेव्यमुन्मादग्रहापस्मारनुद् घृतम्॥३६॥
अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरे चतुर्गुणे। घृतपक्वं तु वातघ्नं वृष्यं मांसाय पुत्रकृत्॥३७॥
नीलीमुण्डीरिकाचूर्णं मधुसर्पिःसमन्वितम्।
छिन्नाक्वाथं पिबन्हन्ति वातरक्तं सुदुस्तरम्॥३८॥
सगुडाः पञ्च पथ्याश्च कुष्ठवातार्शसादनाः।
गुडूचीस्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्वाथमेव वा॥३९॥
वातरक्तान्तकं कालागुडूचीक्वाथकल्कतः। घृतं शृतं सदुग्धं स्यात्कुष्ठव्रणादिनाशनम्॥४०॥

त्रिफलागुग्गुलुर्वातरक्तमूर्च्छापहारकः ऊरुस्तम्भविनाशाय गोमूत्रेण च गुग्गुलुः॥४१॥

ब्राह्मीरस, वच, मूठ, शंखपुष्पी के साथ पुराना घी जो सेवन करता है, उसका ग्रहदोष, अपस्मार रोग शान्त हो जाता है। अश्वगन्धा का क्वाथ तथा कल्क लेकर उससे चौगुना दूध ले उसके साथ घृत पाक करे। यह घृत सेवन करने से वातरोग का नाश होगा। बल-मांस तथा पुत्रत्पादन शक्ति वृद्धि होगी। नील वृक्ष तथा मुण्डीरिका लता का चूर्ण घृत-मधु के साथ खाये अथवा गुरुच का काढ़ा पीये। इससे भयानक वातरक्त रोग नष्ट होगा। गुरुच का स्वरस, कल्क, चूर्ण अथवा क्वाथ का सेवन करे। यह रोग नष्ट होगा। गुड़ के साथ पांच हरीतकी खाये, कुष्ठ, वात तथा अर्शरोग नष्ट होगा। कृष्ण तेउड़ी तथा गुरुच के क्वाथ तथा कल्क के साथ घृत पकाये। कुष्ठ नाश होगा। इस घृत के पाक के साथ इसमें दूध मिलाये। त्रिफला तथा गुग्गुलु के सेवन से वातरक्त, मूर्च्छा आदि रोग ठींक हो जाते हैं। गोमूत्र के साथ गुग्गुलु खाये। उरुस्तम्भ का रोग ठींक होगा॥३६-४१॥

शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः सामवातार्त्तिशूलनुत्। दशमूलामृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः॥४२॥
क्वाथो हन्ति महाशोथं मरीचगुडसंयुतः।
कासघ्नो मोदकः प्रोक्तस्तृणारोचकनाशनः॥४३॥

शुण्ठी तथा गोखरु का काढ़ा पीने से आमवात तथा शूलरोग समाप्त होता है। दशमूल, गुरुच, रेंड़, रास्ना, शुण्ठी, दारुहल्दी का काढ़ा बनाकर मरीच तथा गुड़ के साथ पीये। इससे महाशोथ भी समाप्त होगा। इन्हीं का मोदक बनाकर खाये। कास, तृष्णा तथा अरुचिनाश होगा॥४२-४३॥

कण्टकारिगुडूचीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पले रसे। प्रस्थसिद्धं घृतञ्चैव कासनुद्धुदि दीपनः॥४४॥
कृष्णाधात्रीसिताशुण्ठीमरिचसैन्धवान्वितः। क्वाथ एरण्डतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम्॥४५॥

कण्टकारी का रस तीस पल, गुरुच का रस तीस पल अलग-अलग पकाये। पकाने के बाद इनमें एक प्रस्थ घृत छोड़ कर एक साथ पाक करे। इससे कासरोग नष्ट होगा। मल प्रयुक्त होगा। द्राक्षा, आमलकी, शुण्ठी, शर्करा, मरीच, सेन्धा लवण का क्वाथ ऐरण्ड तैल के साथ करे। आमदोष तथा प्रबल वायुरोगनाशक योग है॥४४-४५॥

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः। सहिङ्गु लवणं पीतं वातशूलविमर्दनम्॥४६॥
त्रिफलानिम्बयष्टीककटुकारग्वधैः श्रृतम्। पाययेम्मधुना मिश्रं दाहशूलोपशान्तये॥४७॥
त्रिफलापः सयष्टीकं परिणामार्त्तिनाशनम्। गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम्।
विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम्॥४८॥
त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुःपञ्चभागिकाः।
गुटिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः॥४९॥
हरीतकीयवक्षारपिप्पलीत्रिवृतस्तथा। घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम्॥५०॥

बेड़ेला, पुनर्नवा, एरण्ड, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर का क्वाथ हींग तथा लवण सहित पान करे। यह वातशूलनाशक है। त्रिफला, नीम, मुलेठी, कटुकी तथा आरग्वध का क्वाथ मधु के साथ ग्रहण करे।

दाहशूल नष्ट होगा। त्रिफला का काढ़ा मुलेठी के साथ पीने से परिणाम शूल नष्ट होगा। गोमूत्र से शुद्ध किया मण्डूर तथा त्रिफला चूर्ण घृत के साथ चाटे। त्रिदोष जनित शूल ठीक होगा। तिन्तिड़ी (त्रिवृत्) दो भाग, द्राक्षा चार भाग, हरीतकी पांच भाग को मिला कर उतना ही गुड़ लेकर वटी बनाये। इसके सेवन से कठिन मल रोग निवृत्त होगा। हरीतकी, यवक्षार, पिप्पली, त्रिवृत् का चूर्ण करके घी के साथ पीये। उदावर्त्त नष्ट होगा॥४६-५०॥

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भाविताः।
वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः॥५१॥
त्र्यूषणत्रिफलाधन्यविडङ्गचव्यचित्रकैः। कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं संस्कारं वातगुल्मनुत्॥५२॥
मूलं नागरनानीतं सक्षीरं हृदयार्त्तिनुत्। सौवर्चलं तदर्द्धन्तु शिवानाञ्च घृतं पिबेत्॥५३॥
कणापाषाणभेदैर्वा शिलाजतुकचूर्णकम्।
तण्डुलाद्भिर्गुडेनापि मूत्रकृच्छ्रीति जीवति॥५४॥
अमृतानागरीधात्रीवाजिगन्धात्रिकण्टकान्। प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः सशूली मूत्रकृच्छ्रवान्॥५५॥

त्रिवृत, हरीतकी, प्रियंगु को स्नुही वृक्ष के दुग्ध से भावना देकर बटी बनाये। इसे गोमूत्र से लेना चाहिये। आनाहरोग नाश होगा। त्रिकटु, त्रिफला, धनियां, च्यव्य, चित्रक का कल्क बना कर घृतपाक करे। इससे वातगुल्म नाश होगा। शुण्ठी चूर्ण दूध के साथ पीये। हृदय पीड़ा शान्त होगी। पिप्पली, पाषाणभेद तथा शिलाजीत का चूर्ण करके चावल की माड़ तथा गुड़ के साथ पान करे, मूत्रकृच्छ्र शान्त होगा। गुरुच, शुण्ठी, आमलकी, अश्वगन्धा, गोखरु का काढ़ा बनाकर पान करे। धातुरोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र नष्ट होगा॥५१-५५॥

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रनिवारणः।
निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः॥५६॥
लवणं त्रिफलाकल्कैर्मूत्राघातहरं स्मृतम्। मूत्रे विरुद्धे कर्चूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत्॥५७॥
क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कवोष्ण उष्मपातनः।
सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौत्रनिशायुतः।
त्रिफलादारुदार्व्यब्जक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा॥५८॥
अस्वप्नञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनानि च।
स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत्॥५९॥
यवश्यामाकभोजी स्यात्स्थूलो मधुरवारिपः।
उष्णमन्नं समण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत्॥६०॥
सचव्यजीरकं व्योषहिङ्गुसौवर्चलामलाः।
मधुना शक्तवः पीता मेदोघ्नाः सर्वदीपनाः॥६१॥

चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकोत्पले। कल्कैः सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षीरं जठरी पिबेत्॥६२॥
क्रमवृद्ध्या दशाहानि दश पैप्पलिकं दिनम्। वर्द्धयेत्पयसा सार्द्धं तथैवापनयेत्पुनः॥६३॥
क्षीरयष्टिकभोजी स्यादेवं कृष्णासहस्रकम्। बृंहणं मुद्गमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम्॥६४॥

चीनी तथा यवक्षार समान लेकर खाये। सभी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होगा। कण्टकारी का रस मधुयुक्त पान करे। इस दोष की शान्ति होगी। त्रिफला को अच्छी तरह पीसे। नमक के साथ खाये। मूत्राघात ठीक होगा। मूत्रबद्ध होने पर लिंग में कपूर का चूर्ण प्रविष्ट कराये। इस दोष में शान्तिलाभ होगा। तनिक गर्म सैहजन की जड़ का बना काढ़ा पीये। शारीरिक उष्मा निवारण होगा। त्रिफला, देवदारु, दारु हल्दी, कमलमूल का काढ़ा मधु के साथ पान करे। महारोग शान्त होंगे। जो स्थूल देह चाहते हैं, वे अनिद्रा, व्यायाम, व्यवाय तथा चिन्ता त्यागें। क्रमशः स्थूलता आयेगी। जौ तथा श्यामक भोजन द्वारा व्यक्ति स्थूल होगा तथा मधु के साथ जल पीने से भी शरीर स्थूल होगा। गर्म माढ़ समस्त उष्ण अन्न भोजन मानव को कृश कार्य बनाता है। चव्य, जीरा, त्रिकटु, हींग, सौवर्चल लवण, मेदोरोग नाशक हैं। मधुयुक्त सत्तू भक्षण भी मेदोरोग समाप्त करता है तथा अग्नि को उद्दीपित करता है। एक प्रस्थ घृत, जल चार प्रस्थ, गोमूत्र दो प्रस्थ तथा दूध पाक करे। पाक काल में उसमें चित्रक तथा उत्पल का कल्क छोड़े। उदर रोगी यह घी सेवन करे। उपकार होगा। पहले दिन एक पिप्पली दूध से खाये। तदनन्तर एक-एक पिप्पली हर रोज बढ़ाता जाये। दसवें दिन इस प्रकार दस पिप्पली खाये। तदनन्तर नित्य एक-एक घटाये। अन्तिम दिन मात्र एक पिप्पली खाये। इस औषधि को लेते समय दूध के साथ मुलेठी का भी सेवन दिन में करना होगा। इस दस दिन में मूंग का यूष भी खाये। इससे शरीर बली होगा। आयु बढ़ेगी तथा उदर रोग नहीं रह जायेगा। इससे प्लीहारोग भी नष्ट होगा॥५६-६४॥

पुनर्नवाक्वाथकल्कैः सिद्धं शोथहरं घृतम्।
गवां मूत्रेण संसेव्यं पिप्पलीं वा पयोऽन्विताम्।
गुडेन वाभयां तुल्यां विश्वं वा शोथरोगिणा॥६५॥
तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं पयोऽन्वितम्।
आध्मानशूलापचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः॥६६॥
भ्रष्टैरण्डकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः। कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः॥६७॥
निर्गुण्डीमूलनस्येन गण्डमाला विनश्यति। स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च॥६८॥

पुनर्नवा का काढ़ा कल्क-घृत के साथ पाक करके सेवन करे, सूजन नष्ट होगी। गोमूत्र के साथ पिप्पली अथवा दुग्धयुक्त पिप्पली सेवन करे, उतना ही (पिप्पली जितना) गुड़ तथा हरीतकी खाये अथवा गुड़-शुण्ठी पिप्पली दुग्ध के साथ खाये। शोथ नाशक योग है। रेड़ के तेल को पीकर बेड़ाला के साथ पका दूध पीये। उदराध्मान, शूल, अपाक, अन्त्रवृद्धि आदि रोग नष्ट होते हैं। मर्जित ऐरण्ड तेल, हरीतकी का कल्क, द्राक्षा को सैन्धव नमक के साथ पका कर खाये। वृद्धिरोग नष्ट होगा। निसिन्दा की जड़ का नस्य लेने से गण्डमाला रोग नष्ट होगा। स्नूही तथा गण्डीरिका के सेवन द्वारा अर्बुद नष्ट होगा॥६५-६८॥

हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डं तु लेपतः। धुस्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः॥६९॥
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमतिदारुणम्।
शोभाञ्जनकसिन्धूत्थहिङ्गु विद्रधिनाशनम्॥७०॥

हस्तिकर्ण तथा पलाश का लेप करने से गलगण्ड नष्ट होगा। धतूरा बीज, रेड़, निसिन्दा, पुनर्नवा, सरसों को पीस कर लेप करे। दीर्घकालीन हाथीपांव रोग नष्ट होगा। सैजन, सेन्धा लवण तथा हींग, यह विद्रधि रोग नष्ट करता है॥६९-७०॥

शरपुङ्खा मधुयुता स्यात्सर्वव्रणरोपणी। निम्बपत्रस्य वा लेपः स भवेद् व्रणशोषणः॥७१॥
त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधो व्रणशोधनः। सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत्॥७२॥
यष्टिमधुकयुक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा। बुद्ध्यागन्तुव्रणान्वैद्यो नाशयेत्संप्रलेपनात्॥७३॥
शीतां क्रियां प्रयुञ्जीत पित्तरक्तोष्मनाशिनीम्।
क्वाथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राणाञ्च समधुः॥७४॥
सहिङ्गुसैन्धवः पीतः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक्।
यवकोलकुलत्थानामारोग्यार्थं रसेन वा॥७५॥
भुञ्जीतान्नं युवागुं वा पिबेत्सैन्धवसंयुतम्। करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणक्रिमीन्॥७६॥
त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः। निर्यन्त्रणो विबन्धघ्नो व्रणशोषणशोधनः॥७७॥
दूर्वास्वरससिद्धत्वात्तैलं कम्पिल्लकेन वा। दार्वीत्त्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम्॥७८॥

॥इति गारुडे महापुराणे ज्वरादिचिकित्साकथनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७०॥

सरफोंखा को मधु में मिला कर लेपन करने से व्रणरोपण होगा। नीम का पत्ता पीस कर व्रण पर लेप करे, व्रण सूख जायेगा। त्रिफला, खैर, दारुहल्दी तथा वट को पीस कर व्रण पर लगाये। यह व्रण शोधन करता है। सद्यः उत्पन्न व्रण पर यह औषधि लगाने से तत्काल वेदना शमन होता है। क्षत स्थान भी शुद्ध होगा। मुलेठी तथा घी को तनिक गर्म करके मधु के साथ व्रण पर लगाये। इससे आगन्तुक व्रण का नाश होगा। शीत क्रिया से पित्तरक्त दोष से उत्पन्न शारीर उष्मा नष्ट होगी। बांस की छाल, रेंड़, गोखरु का काढ़ा, मधु, सेंधा नमक तथा हींग के साथ पान करें। कोष्ठस्थ दुष्ट रक्त भी निकल जायेगा। यव, वदरी, कुलथी के रस के साथ सेन्धा नमक युक्त यवागू अथवा अन्न खाये। इससे भी पूर्वोक्त रोग शान्त होगा। कटकरंज, नीम तथा निसिन्दा का रस व्रण के कृमि नष्ट करेगा। त्रिफला चूर्ण, गुग्गुलु युक्त करके वटी बनाये। यह वटी विवंद्धनाशक है तथा व्रणशोधक है। इससे यन्त्रणा नहीं होती। दूर्वा का रस, कम्पिल्ल तथा दारुहल्दी के साथ तैल में पकाये। तब इसे व्रण पर लेप करे। व्रण नष्ट होगा॥७१-७८॥

॥एक सौ सत्तरवां अध्याय समाप्त॥

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाड़ी व्रणादिरोग, कुष्ठरोग चिकित्सा वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

नाडीव्रणादिरोगाणां चिकित्सां शृणु सुश्रुत।
नाडीं शस्त्रेण संपाट्य नाडीनां व्रणवत्क्रिया॥१॥

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितैः। नाडीदुष्टव्रणं शूलं भगन्दरमथो जयेत्॥२॥
निर्गुण्डीरसतस्तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम्। हितं पामामयानान्तु पानाभ्यञ्जनंनस्यकैः॥३॥
गुग्गुलुत्रिफलाकृष्णात्रिपञ्चैकांशयोजिता। गुडिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता॥४॥
शिरावेधे ध्वजमध्ये विशुद्धिरुपदंशके। पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब नाड़ी व्रणादि चिकित्सा श्रवण करो। नाड़ी-घावों को अस्त्र से काट कर व्रणवत् चिकित्सा करे। गुग्गुलु, त्रिफला, त्रिकटु को समान भाग लेकर घी के साथ ग्रहण करने से नाड़ी, दुष्ट व्रण, पीड़ा तथा भगन्दर रोग नष्ट होता है। निसिन्दा के रस को तैल में पकाये तथा उसका लेप करने से नाड़ी एवं दुष्ट व्रण शान्त होते हैं। इसे पीने, अंजन लगाने तथा नस्य लेने से पामा आदि रोग भी ठीक होते हैं। तीन भाग त्रिफला, पांच भाग गुग्गुलु, द्राक्षा एक भाग को मिला कर बटी वनाये। यह शोध, अर्श तथा भगंदर में अधिक हितप्रद है। शिश्न में शिराभेद द्वारा उपदंश रोग शान्त होता है। इसमें शिश्न के व्रण न पकें, यह उपाय वैद्य करे। इसमें (उपदंश) शिश्न का क्षय होने लगता है॥१-५॥

पटोलनिम्बभूनिम्बगुडूचीक्वाथमापिबेत्। सुगुग्गुलं सखदिरमुपदंशो विनश्यति॥६॥
दहेत्कटाहे त्रिफलां सा मसी मधुसंयुता। उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयते व्रणम्॥७॥
त्रिफलानिम्बभूनिम्बकरञ्जखदिरादिभिः। कल्कैः क्वाथैर्घृतं पक्वमुपदंशहरं परम्॥८॥

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेत्शीतलाम्बुना।
पक्वेन लेपनं कार्य्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम्॥९॥

माषं मांसं तथा सर्पिः क्षीरं यूषः सतीनजः। बृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं तु भग्नरोगिणे॥१०॥

पटोल, नीम, गुरुच, मरिच का काढ़ा बनाकर गुग्गुलु तथा खदिर के साथ पान करे। उपदंश नाश होगा। एक कड़ाही में त्रिफला जला कर उस भस्म को मधु के साथ मिलाये। इसका लेप करने से उपदंश के व्रण ठीक होते हैं। त्रिफला, चिरायता, नीम, करंज तथा खदिर का काढ़ा तथा कल्क घृतपाक करे। उपदंश में लेपन करने से यह रोग नष्ट होगा। इसमें कहीं भग्न हो जाने पर पहले शीतल जल से सेंके, तब उसे कुश से बांधे। तब पकने पर उक्त द्रव्य (जो ऊपर कहा गया) लेप करे। भग्न रोगी को उर्द, मांस, घृत, क्षीर तथा कलाय का यूष पान कराये। इससे भग्न स्थान शोधित होता है॥६-१०॥

रसोनमधुलाजाम्बुसिताकल्कसमश्नुताम्। छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत्॥११॥
अश्वत्थत्रिफलाव्योषाः सर्वैरेभिः समीकृतैः।
तुल्यो गुग्गुलुर्योज्यश्च भग्नसन्धिप्रसाधकः॥१२॥
सर्वकुष्ठेषु वमनं रेचनं रक्तमोक्षणम्। वचावासापटोलानां निम्बस्य च कलित्वचः॥१३॥
कषायो मधुना पीतो वातहृद् बृंहणः परः। विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः॥१४॥
मनःशिलामरीचैस्तु तैलं कुष्ठविनाशनम्। सर्वकुष्ठे विलेपोऽयं शिवापञ्चगुडौदनम्॥१५॥

लहसुन, शहद, लावा, चीनी को पीस कर भक्षण करे। यदि अस्थि टूट-फूट भी गई होगी, तथापि वह ठीक जुड़ जायेगी। अश्वत्थ, त्रिफला, त्रिकटु बरावर लेकर उसमें उतना गुग्गुलु मिलाये। यह भग्न अस्थि जोड़ने वाला योग है। सभी कुष्ठ रोगों में विरेचन, वमन तथा रक्तमोक्षण करे। वचा, वासक, पटोल, नीम, बहेड़ा का काढ़ा वनाकर मधुयुक्त करके पीये। वातरोग नष्ट होगा। बलाधान भी होगा। वातरोग में त्रिवृत, दन्ती, त्रिफला का काढ़ा पीकर विरेचन करे। मैनसिल तथा मरिच का तैल पाक करके सेवन करने से भी कुष्ठ नाश होगा। सभी कुष्ठ रोगों में पांच हरीतकी, गुड़, तण्डुल को पीस कर लेप करे॥११-१५॥

करञ्जतगरौ कुष्ठं गोमूत्रेण प्रलेपतः। करवीरोद्वर्त्तनञ्च तैलाक्तस्य च कुष्ठहृत्॥१६॥
हरिद्रा मलयं रास्ना गुडूची तगरस्तथा। आरग्वधः करञ्जा च लेपः कुष्ठहरः परः॥१७॥
मनःशिलाविडङ्गानि वागुजी सर्षपस्तथा। करञ्जी मूत्रपिष्टोऽयं लेपः कुष्टहरोऽर्कवत्॥१८॥
विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः मूत्राम्बुपिष्टो लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविनाशनः॥१९॥
प्रपुन्नाडकबीजानि धात्रीसर्ज्जरसस्नुही। सौवीरपिष्टं दद्रूणासेतद्रुद्वर्तनं परम्॥२०॥

कटकरंज, तगरकाष्ठ, कूठ को गोमूत्र से पीस कर लेप करे। कुष्ठ का प्रतिकार होगा। इसका रोगी देह पर तैल मलकर करवीरमूल पीस कर उसकी उबटन लगाये। (करवीर = कनेर) यह कुष्ठरोगनाशक है। हल्दी, लाल चन्दन, रास्ना, गुरुच, तगर, करञ्ज तथा आरग्वध पीस कर इसका लेप लगाना कुष्ठनाशक है। मैनसिल, विड़ङ्ग, सोमराजी, सरसों, करंज तथा डहर करंज को गोमूत्र में पीस कर लेप करे। कुष्ठ नाश होगा। विड़ङ्ग, वनइलायची, कूठ, हल्दी तथा सरसों को गोमूत्र में पीस कर लेप करे। दादकुष्ठ नाश होगा। आकन्दबीज, आमलकी, धूप, सर्जरस को कांजी में पीस कर लेप करे। दाद का नाश होगा॥१६-२०॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत्। दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च॥२१॥
उष्णा पीता वागुजी च कुष्ठजित्क्षीरभोजिनः।
तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः। वृष्याः सप्त समा मेध्याः कुष्ठहाः कामचारिणः॥२२॥
विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम्।
हन्ति कुष्ठकृमी मेहनाडीव्रणभगन्दरान्॥२३॥
यः खादेदभयारिष्टं तथा चामलकानिशाः। स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः॥२४॥
दह्यमानश्च्युतः कुम्भे तत्सह खदिराङ्कुरः। साक्षधात्रीरसक्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनम्॥२५॥

आरग्वध के पत्तों को कांजी से पीस कर लेप लगाये। दाद, किट्टिम, कुष्ठ तथा सिध्मरोग नष्ट होगा। उष्ण सोमराजि पी कर दूध पीये। कुष्ठ पराजित होगा। तिल, घी, त्रिफला, मधु, त्रिकटु, भिलावा, चीनी समान लेकर खाये। कुष्ठ निवारित होकर शरीर बली होगा। शरीर कामदेव ऐसा कान्तिमान् हो जायेगा। विडङ्ग, त्रिफला, द्राक्षा का चूर्ण मधु के साथ चाटे। कुष्ठ, क्रिमि, मेह, नाड़ी व्रण तथा भगन्दर नाश होगा। जो मानव हरीतकी, नीम, आमलकी, हल्दी को मिला कर भक्षण करता है, एक मास में कुष्ठ रोग पराजित हो जायेगा। एक कलश में आम की गुठली जला कर उसके साथ खदिर का अंकुर, बहेड़ा, आमलकी का रस मधु मिला कर सेवन करे। कुष्ठ नष्ट होगा। यह औषधि रसायन तुल्य कार्य करती है॥२१-२५॥

धात्रीखदिरयोः क्वाथं पीत्वा वागुजिसंयुतम्।
शङ्खेन्दुधवलं श्वित्रं हन्ति तूर्णं न संशयः॥२६॥
पीत्वा भल्लातकं तैलं मासाद् व्याधिं जयेन्नरः।
सेवितं खादिरं वारि पानाद्यैः कुष्ठजिद्भवेत्॥२७॥
वासा गुडूची त्रिफला पटोलञ्च करञ्जकम्।
निम्बाशनं कृष्णवेत्रं क्वाथकल्केन यद्घृतम्।
वज्रकं तद्भवेत्कुष्ठं शतवर्षाणि जीवति॥२८॥
स्वरसेन च दूर्वायाः पचेत्तैलं चतुर्गुणम्।
कच्छुर्विचर्चिका पामा अभ्यङ्गादेव नश्यति॥२९॥

आमलकी तथा खदिर की लकड़ी का काढ़ा बनाकर सोमराजी के साथ पान करे। शंख तथा चन्द्रमा की तरह धवल दागों द्वारा श्वेत कुष्ठ (श्वित्र रोग) भी शीघ्र नष्ट होगा। भिलावा का तैल पीने से एक मास में कुष्ठ शान्त होगा। खदिर की लकड़ी का काढ़ा पीने से कुष्ठ नाश होता है। गुरुच, त्रिफला, पटोल, कटकरंज, नीम तथा अशन की लकड़ी और कृष्णवेत्र का काढ़ा तथा कल्क बनाकर उसका घृतपाक करे। यही है जिसके पान से कुष्ठ निवारण होगा तथा वह व्यक्ति सौ वर्ष जीयेगा। दूर्वा के स्वरस का चौगुना तेल लेकर दूर्वा का रस उसमें मिला कर पाक करे। इसके लगाने से कच्छु, विचर्चिका, पामा आदि का नाश होगा॥२६-२९॥

द्रुमत्वगर्ककुष्ठानि लवणानि च मूत्रकम्।
गण्डीरिकां चित्रकैस्तैस्तैलं कुष्ठव्रणादिनुत्॥३०॥
धात्रीनिम्बफलं तद्वद् गोमूत्रेण च चित्रकम्।
वासामृतापर्पटिकानिम्बभूनिम्बमार्कवैः। त्रिफलाकुलत्थैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा॥३१॥
फलत्रिकं पटोलञ्च तिक्ता क्वाथः सितायुतः।
पीतो यष्टिमधुयुतो ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित्॥३२॥
वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च। अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं गुडकूष्माण्डकं तथा॥३३॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी। श्लेष्माग्निमान्द्यनुत्पथ्यापिप्पलीगुडमोदकः॥३४॥
पिष्ट्वाजाजीं सधन्याकां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं हरेत्॥३५॥

पारिभद्र वृक्ष की छाल, मदार की जड़, कूठ, पांचों लवण, गोमूत्र, गण्डीरिका, चित्रक को तैल पाक करके (इनको पीस कर तैलपाक करे) सेवन करे। यह कुष्ठ नाशक तैल है। आंवला, नीमकौड़ी, गोमूत्र, चित्रक, वासक, गुरुच, पित्तपापड़ा, चिरायता, नीम, भृंगराज, त्रिफला, कुलथी का काढ़ा मधुयुक्त पीये। अम्लपित्त नाश होगा। त्रिफला, पटोल, कटुकी का काढ़ा, चीनी तथा मुलेठी चूर्ण के साथ ग्रहण करे। ज्वर, वमन, अम्लपित्त नाश होगा। वासा घृत, तिक्तक घृत, पिप्पली घृत, गुड़ कूष्माण्ड की औषधि बनाकर इसका प्रयोग अम्लपित्त रोग में करे। गुड़ मिश्रित पिप्पली खाने से अम्लपित्त नाश होता है। हर्रतकी, पिप्पली तथा गुड़ का लड्डू बनाये। इसके सेवन से श्लेष्मा तथा अग्निमन्दता नष्ट होगी। काला जीरा तथा धनिया पीस कर एक प्रस्थ घी में पाक करे। इस घृत सेवन से कफ, पित्त, अरुचि, मन्दाग्नि तथा रोग नष्ट हो जाते हैं। इससे वमनरोग भी शान्त होता है॥३०-३५॥

पिप्पल्यमृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः। खदिरारिष्टकैः क्वाथो विस्फोटार्त्तिज्वरापहः॥३६॥
त्रिफलारससंयुक्तं संपिंस्त्रिवृतया सह। प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये॥३७॥
खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः। क्वाथोऽष्टकाख्यो जयति रोमान्तिकमसूरिकाः॥३८॥
कुष्ठवीसर्पविस्फोटकण्डुवादीनां विघातकः।
लशुनानान्तु चूर्णस्य घर्षो मशकनाशनः॥३९॥
चर्मकीलं जीर्यमाणं मशकांस्तिलकालकान्।
उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः॥४०॥

पिप्पली, गुरुच, चिरायता, वासक, नीम, पित्तपापड़ा, खदिर की लकड़ी, लहसुन का काढ़ा पीने से विस्फोट तथा ज्वररोग नाश होता है। विसर्प तथा ज्वरनाश हेतु त्रिफला क्वाथ तथा त्रिवृत के साथ घृत पाक करके प्रयोग करे। इससे विरेचन होने से उक्त दोनों रोग की शान्ति (विस्फोट तथा ज्वररोग) होती है। खदिर की लकड़ी, त्रिफला, नीम, पटोल, गुरुच, वासक का काढ़ा पीने से रोमान्तिक मसूरिका का नाश होगा। लहसुन पीस कर घर्षण करे। इससे कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट तथा कण्डु का नाश होता है। उसके पास से मच्छर तक भाग जाते हैं, जो इसे लगाता है। चर्मकील, (मस्सा) मशक, तिलकालकादि रोगों में हाथ द्वारा कर्त्तन करके उसे क्षार एवं अग्नि से दग्ध करे॥३६-४०॥

पटोलनीलीलेपः स्याज्जालगर्दभरोगनुत्। गुञ्जाफलैः श्रृतं तैलं भृङ्गराजरसेन तु।
कण्डुदारणकृत्कुष्ठकापालकुष्ठनाशनम् ॥४१॥
आम्रास्थिमज्जात्रिफलानीलैश्च भृङ्गराजकैः।
सुपक्वं लौहचूर्णं सकाञ्जिकं कृष्णकेशकृत्॥४२॥
क्षीरीशार्कपर्णरसद्विप्रस्थे मधुकापले। तैलस्य कुडवं पक्कं वार्द्धक्यपलितापहम्॥४३॥

मुखरोगे तु त्रिफलागण्डूषपरिधारणम्। गृहधूमयवक्षारपाठाव्योषरसाञ्जनम्॥४४॥
सलोधं त्रिफलाचूर्णं तथा चित्रकचूर्णितम्।
सक्षौद्रं धारयेद्वक्त्रे ग्रीवादन्तस्य रोगनुत्॥४५॥

पटोल तथा नील पीस कर लेप करने से जलगर्दभरोग नष्ट हो जाता है। घुमची तथा भृंगराज के रस के साथ तैल पाक करके देह पर मले। खुजली, कुष्ठ तथा कापाल कुष्ठ आदि रोगों की समाप्ति हो जाती है। आम की गुठली तथा गूदा, त्रिफला, नील, भृंगराज, कांजी के साथ लौह चूर्ण पकाकर सेवन करने से (लेप करने से) श्वेत बाल काले होते हैं। शिरीष वृक्ष तथा मदार का रस दो प्रस्थ, मुलेठी एक पल को ३२ तोला तेल से पाक करके सेवन करे। चमड़ी झूलना आदि वृद्धता के लक्षण दूर हो जाते हैं। त्रिफला का काढ़ा बना कर कुल्ला करने से मुखरोग नष्ट होते हैं। गृहधू, यवक्षार, आकनादि, त्रिकटु, रसाञ्जन, त्रिफला, लोध, चिता को चूर्ण करके मधु के साथ मुख में रखने से दन्तरोग नष्ट होगा॥४१-४५॥

पटोलनिम्बजम्बीरआम्रमालतीपल्लवाः। पञ्चपल्लवकः श्रेष्ठः कषायो मुखधारणे॥४६॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां पारुल्या मूलकस्य च। कदल्याश्च रसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे॥४७॥
तीव्रशूलोत्तरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि। स्नुहीपत्ररसं कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम्॥४८॥
जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित्।
शुण्ठीतैलं सार्षपञ्च कोष्णं स्यात्कर्णशूलनुत्॥४९॥
पञ्चमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी। ससर्पिर्गुडः षडङ्गो यूषः पीनसशान्तये॥५०॥

पटोल, नीम, जम्बीर, आम, मालती के नये पत्तों का काढ़ा बनाकर मुख में रखे। मुख रोग निवारण होगा। लहसुन, अदरख, सैजन, पारुली की जड़ तथा केला इनका रस तनिक गर्म करके कान में डाले। कान के रोग दूर होंगे। कान में अतीव वेदना, आवाज गूंजना, मवाद निकलना, इसमें सेंधा नमक का चूर्ण सर्ज पत्ते के रस में मिला कर तनिक गर्म करके कान में छोड़े। चमेली का रस तेल में मिला कर कान में देने से कर्णवेदना निवृत्त होगी। सरसों का तैल शुण्ठी के साथ पकाकर तनिक गर्म करके कान में भरे। कर्णशूल नष्ट होगा। पञ्चमूल के साथ पका घी, चित्रक, हरीतकी, घृत, गुड़ तथा षडङ्गयूष, यह पीनस रोग निवृत्ति हेतु उत्तम उपाय है॥४६-५०॥

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्याय व्रणज्वराः।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लङ्घनात्॥५१॥
धात्रीरसानाञ्च दृशः कोपं हरति पूरणात्। सक्षौद्रसैन्धवं वापि शिग्रुदार्वीरसाञ्जनम्॥५२॥
हरिद्रादारुसिन्धूत्थरसाञ्जनैः सगैरिकैः। पिष्टैर्दत्तो बहिर्लेपो नेत्रव्याधिनिवारकः॥५३॥
घृतभृष्टाभयालेपात्त्रिफला क्षीरसंयुता। शुण्ठीनिम्बदलैः पिष्टैः सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः।
धार्य्यश्चक्षुषि विक्षेपाच्छोथकण्डुरुजापहः॥५४॥
अभयाख्यामृतञ्चैकद्विचतुर्भागिकं युतम्। मध्वाज्यलीढं क्वाथो वा सर्वनेत्ररुगर्दनः॥५५॥

नेत्र रोग, उदर व्याधि, प्रतिश्याय, व्रण तथा ज्वर यह पांच रात्रि के उपवास से नष्ट होते हैं। आमलकी का रस नेत्रों में छोड़ने से नेत्र रोग ठीक हो जाते हैं। मधु तथा सेंधा नमक, सैजन एवं दारु हल्दी का रस मिला कर इसका अंजन नेत्रों में लगाये। चक्षु रोग शान्त होंगे। हल्दी, दारु हल्दी, सेन्धा नमक, रसांजन तथा गेरु पीस कर बत्ती बनाये। इसे घिस कर नेत्र के बाहर लेप करे। इससे नेत्र रोग दूर होगा। हर्रे को घी में भूंज कर इसका लेप देने से, दूध के साथ त्रिफला पीस कर नेत्र में छोड़ने से तथा सेंधा नमक, नीम के पत्ते तथा शुण्ठी के साथ पीस कर कुछ उष्ण करके नेत्र में लेप देने से नेत्र शोथ, नेत्र खुजली तथा नेत्र वेदना नष्ट होती है। हर्रे दो भाग, गुरुच चार भाग, मधु-घृत के साथ चाटे अथवा काढ़ा बना कर पीये। सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट होंगे॥५१-५५॥

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुमूलकैः। जलपिष्टैरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा॥५६॥

दध्ना निर्घृष्टमरिचं राज्यन्धापहमञ्जनम्।
त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम्।
तिमिराण्यचिराद्धन्यात्पीतमेतन्निशामुखे ॥५७॥

पिप्पलीत्रिफलाक्षारलोहचूर्णं ससैन्धवम्। भृङ्गराजरसैर्घृष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते।
अर्शः सतिमिरं कोठं हन्त्यन्यान्नेत्ररोगकान्॥५८॥
त्रिकटु त्रिफला चैव सैन्धवञ्च मनःशिला।
केतकं शङ्खनाभिश्च जातीपुष्पाणि निम्बकम्॥५९॥

रसाञ्जनं भृङ्गराजं घृतं मधु पयस्तथा। एतत्पिष्ट्वा च वटिका सर्वनेत्ररुगर्दिनी॥६०॥

चन्दन, त्रिफला, सुपाड़ी, पलाश की जड़ को जल में पीसे तथा बत्ती बनाये। यह तिमिर रोगनाशक है। दधि के साथ मरिच पीस कर नेत्र में लगाने से रतौंधी दूर होती है। त्रिफला का काढ़ा तथा कल्क एवं दूध के साथ घृत पाक करके यह सायंकाल पान करने से रतौंधी दूर होगी। पिप्पली तथा त्रिफला का क्षार करके लौहचूर्ण, सैन्धव तथा भृंगराज के रस से उसे पीस कर उसका अंजन लगाये। अर्श, तिमिर, कोष्ठ तथा अन्य नेत्ररोगों का नाश होगा। त्रिफला, सेन्धा नमक, मैनसिल, केतकी, नाभीशंख, जातीपुष्प, नीम का पत्ता, रसांजन, भृंगराज, घृत, मधु, दुग्ध एक साथ पीसे तथा बटी बनाये। यह सभी नेत्ररोग नाशक वटी है॥५६-६०॥

दग्धमेरण्डकं मूलं लेपात्काञ्जिकपेषितम्।
शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दकम्॥६१॥
शतमूल्येरण्डमूलचक्राव्याघ्रीपलैः शृतम्।
तैलं नस्यं मरुच्छ्लेष्मतिमिरोर्ध्वगदापहम्॥६२॥

लवणं सगुडं विश्वं पिप्पली वा ससैन्धवा। भुजस्तम्भादिरोगेषु सर्वेषूर्ध्वगदेषु च॥६३॥
सूर्य्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम्। दशमूलीकषायं तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम्।
नस्यमङ्गविभेदघ्नं सूर्य्यावर्त्तशिरोऽर्त्तिनुत्॥६४॥

रेड़ की जड़ को दग्ध करके उसे कांजी के साथ पीसे। उसे मस्तक पर लगाये अथवा मुचुकुन्द पुष्प को पीस कर शिर पर लगाये। शिर पीड़ा शान्त होगी। शतमूली, एरण्ड मूल, नागरमोथा, कण्टकारी प्रत्येक एक पल लेकर तेल में पकाये। इसका नस्य सूंघे। वात-श्लेष्मा जनित ऊर्ध्वगत रोग तथा तिमिर रोग का नाश हो जाता है। लवण, गुड़, शुण्ठी, पिप्पली, सेन्धा नमक मिला कर भुज स्तम्भन आदि ऊर्ध्वगत रोग में सेवन करे। सूर्यावर्त्त रोग में नस्य कर्म विहित है। दशमूल काढ़ा के साथ घृत पकाये। सेन्धा नमक इस घृत में मिला कर नस्य सूंघे। अंगभेद, सूर्यावर्त्त तथा शिरपीड़ा निवृत्त होगी॥६१-६४॥

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधूकं नीलमुत्पलम्। पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता॥६५॥
वासकस्वरसं पैत्ते गुडूच्या रसमेव वा। जलेनामलकीबीजं शर्करामधुसंयुतम्॥६६॥
आमलक्या रसं मधु मूलं कार्पासमेव वा। पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा॥६७॥

सौवर्चल लवण, काला जीरा, मुलेठी, नील कमल को दही से पीसे। मधु के साथ पान करने से स्त्रियों के वातजनित असृग्रोग का नाश हो जाता है। पैत्तिकरोग में वासक का स्वरस अथवा गुरुच का रस उपयोग करे। आमलकी बीज जल में पीसे। मधु तथा चीनी के साथ खाये। किंवा आमलकी का रस, कपास बीज तथा मधु चावल के पानी के साथ पीये (चावल की धोवन से)। इससे पाण्डु तथा प्रदर रोग ठीक होता है॥६५-६७॥

तण्डुलीयकमूलं तु सक्षौद्रं सरसाञ्जनम्। तण्डुलोदकसंपीतं सर्वांश्चसृग्दराञ्जयेत्।
कुशमूलं तण्डुलाद्भिः पीतञ्चासृग्दरं जयेत्॥६८॥

।इति गारुडे महापुराणे कुष्ठादिचिकित्साकथनं नाम एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७१।।

कुश की जल चावल की धोवन से पीये। असृग्दररोग नष्ट होगा। तण्डुलीय (नट शाक्) की जड़, रसांजन, मधु को चावल की धोवन के साथ पीये। उपरोक्त रोग नष्ट होंगे॥६८॥

॥एक सौ एकहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्त्री रोग चिकित्सा

धन्वन्तरिरुवाच

स्त्रीरोगादिचिकित्साञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु।
योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्॥१॥

वचोपकुञ्चिकाजातीकृष्णावासकसैन्धवम्। अजाजी च यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम्॥२॥

पिष्ट्वालोड्य जलाद्यैश्च खादयेद्घृतभर्जितम्।
योनिपार्श्वार्त्तिहृद्रोगगुल्मार्शों विनिवर्त्तयेत्॥३॥

बदरीपत्रसंलेपाद्योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति। लोधतुम्बीफलालेपाद्योनेर्दार्ढ्यं करोति च॥४॥

पञ्चपल्लवयष्ट्यर्कमालतीकुसुमैर्घृतम्। रविपक्वमसृग्दरयोनिगन्धविनाशनम्॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब स्त्री रोगों की चिकित्सा सुनो। उसे कहता हूं। योनि में व्याप्त रोगों में जिस उपाय से वात पराजित हो जाये, ऐसी चिकित्सा श्रेष्ठ होती है। वच, काला जीरा, जातीपत्र, तुलसी, वासक, सैन्धव, जीरा, यवक्षार, चित्रक, शर्करा को पीस कर जल में रख कर हिलाये। तदनन्तर घृत में भूंज कर भक्षण करे। इससे योनिशूल, पार्श्व शूल, हृदयरोग, गुल्म तथा अर्शरोग का नाश होता है। वदरी पत्र पीस कर योनि में लेप लगाये। योनिपीड़ा दूर होगी। लोध्र तथा तुम्बीफल (लौकी) पीस कर लेप करे। योनि दृढ़ होगी। पीपल, कटहल, बकुल, आम के पत्ते, मुलेठी, आकन्द तथा मालती पीस कर घृत मिला कर तेज धूप में रख कर धूप से पकाये। इसे असृग्दररोग तथा योनि गन्ध का नाश होगा॥१-५॥

सकाञ्जिकं जवापुष्पं प्रस्थं ज्योतिष्मतीदलम्।
दूर्वापिष्टञ्च संप्राश्य चित्रकं शर्करान्वितम्॥६॥

धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत्। सदुग्धा लक्ष्मणा पीता नस्याद्वा पुत्रदेत्युभौ॥७॥

दुग्धस्यार्द्धाढकं चाज्यमश्वगन्धा च पुत्रदा।
बन्ध्या पुत्रं लभेत् पीत्वा घृतेन व्योषकेशरम्॥८॥
कुशकाशोरुवूकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च।
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत् परम्॥९॥
पाठालाङ्गल्यपामार्गैस्तथा च कुटजैः पृथक्।
नाभिबस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसूयते॥१०॥

कांजी, जवाफूल, ज्योतिष्मती लता के पत्ते, दूर्वा, चित्रक को पीस कर चीनी के साथ पीने से योनिरोग शान्त होते हैं। आमलकी, रसांजन, हरीतकी को पीस कर जल के साथ पीये। रजोदोष नष्ट होगा। लक्ष्मणा की जड़ को दूध से पीये अथवा नस्य ले। नारी को पुत्र होगा। दूध, आधा आढ़क घी तथा अश्वगन्धा को पकाये। इसे ऋतुकाल में पीने से पुत्रलाभ होगा। घृत के साथ त्रिकटु तथा नागकेशर खाये। वन्ध्या को भी पुत्र होगा। कुश, कास, रेड़, गोखरु के साथ दूध पका कर चीनी के साथ सेवन करने से गर्भिणी का शूल ठीक हो जाता है। आकनादि, लांगलिया, अपामार्ग तथा कुटज की जड़ पीसे (अलग-अलग पीसे)। तदन्तर मिला कर गर्भिणी की वस्ति, नाभि तथा योनि पर लेप करे। गर्भिणी को सुखपूर्वक प्रसव होगा॥६-१०॥

सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलमर्कन्दसंज्ञितम्। यवक्षारं पिबेत्तत्र मस्तु कोष्णोदकेन वा॥११॥

दशमूलीकृतः क्वाथः साज्यः सूतिरुजापहः।
शालितण्डुलचूर्णन्तु सदुग्धं दुग्धकृद्भवेत्॥१२॥
विदारीकुसुमरसं मूलं कार्पासजं तथा। धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषो रसायनः॥१३॥
कुष्ठा वचाभया ब्राह्मी मधूका क्षौद्रसर्पिषी।
वर्णायुः कान्तिजननं लेह्यं बालस्य दापयेत्॥१४॥
स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्।
स्वेदेन नाभिशोथान्तो मृदा स्यादग्नितप्तया॥१५॥

यदि स्त्री के प्रसवोपरान्त उसे हृदय, मस्तक अथवा वस्ति में पीड़ा रहती है, तब उसे दधि के पानी अथवा गर्म जल से आकन्द मूल एवं यवक्षार एक में पीस कर पान कराये। दशमूल काढ़े के साथ घृत पाक करके सेवन करने से प्रसूति की अंग वेदना नष्ट हो जाती है। शालितण्डुल का चूर्ण दूध के साथ पीने से प्रसूति के स्तन में दूध उतर आता है। भूमिकूष्माण्ड के पुष्प का रस तथा कपास की जड़ का सेवन करने से प्रसूति का स्तन्य शोधन होता है। मूंग का यूष प्रसूति हेतु रसायन का काम करता है। कूठ, वच, हरीतकी, ब्राह्मी शाक, मुलेठी, मधु तथा घृत बालक को चटाये। इससे उसका रंग, आयु, कान्ति बढ़ेगी। बच्चे को मां के दूध के न होने पर बकरी अथवा गौ का दूध पिलाना चाहिये। बालक की नाभि यदि सूची हो तब अग्नि में मिट्टी को जरा गर्म करके स्वेद प्रदान करे॥११-१५॥

लौहो मुस्तकातिविषा वमिकासज्वरे पिबेत्। मुस्तशुण्ठीविषारुणकूटजश्चातिसारनुत्॥१६॥
व्योषं मधु मातुलुङ्गं हिक्काच्छर्दिनिवारणम्।
कुष्ठेन्द्रयवसिद्धार्थो निशा दूर्वा च कुष्ठजित्॥१७॥
महामुण्डितिकोदीच्यक्वाथैः स्नानं ग्रहापहम्। सप्तच्छदामयनिशाचन्दनैश्चानुलेपनम्॥१८॥
शङ्खाब्जबीजरुद्राक्षवचालौहादिधारणम्। ओं कं टं पं शं वैनतेयाय नमः।
ओं ह्रौं ह्रां हः मन्त्रेण शान्तिर्बालानां मार्जनाद् बलिदानतः।
ओं ह्रीं बालग्रहाद् बलिं गृह्णीत बालं मुञ्चत स्वाहा॥१९॥

लौह, मोथा, अतिविषा को पीस कर वमन, कास तथा ज्वर में पान कराये। मोथा, शुण्ठी, अतिविषा, कुंकुम, कुटज अतिसार नाशक योग है। त्रिकटु, मधु, नींबू, हिक्का तथा वमन निवारक हैं। कूठ, इन्द्रयव, सर्षप, हल्दी तथा दूर्वा कुष्ठ रोग को परास्त करते हैं। महामुञ्जितिका तथा बाला का क्वाथ करके उससे स्नान करे। ग्रहदोष शान्त होंगे। शंख, पद्मबीज, वच तथा लौह धारण करने से ग्रहदोष निवृत्त होते हैं। "ॐ कं टं पं शं वैनतेयाय नमः" मन्त्र से ग्रहशान्ति करे।[1] "ॐ ह्रौं ह्रां हः" यह भी शान्ति मन्त्र है। अब बलिमन्त्र कहते हैं—

"ॐ ह्रीं बालग्रहाद् बलिं गृहणीत बालं मुञ्चत स्वाहा।" इससे बलि दे॥१६-१९॥

---

१. मतांतर से अन्य मन्त्र है—"ॐ कं टं गं गं वैनतेयाय नमः।"

तण्डुलाद्भिः शिरीषस्य मूलं पीतं विषापहम्।
तण्डुलाद्भिश्च वर्षाभोः शुक्लायाः सर्पदंशनुत्॥२०॥
दध्याज्यं तण्डुलीयञ्च गृहधूमो निशा तथा।
पिष्टं पानं तथा क्षौद्रं सिन्धूत्थस्य विषान्तकम्॥२१॥
अङ्कोटमूलनिष्क्वाथः साज्यः पीतो विषान्तकः।
यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्॥२२॥
सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा॥२३॥

चावल की धोअन के साथ शिरीष की जड़ पीने से विषदोष निवृत्त होगा। श्वेद गदहपूना की जड़ को चावल के जल से पीये। सर्पविष नष्ट होगा। दही, घृत, नटशाक, गृहधूम, हल्दी, मधु, सेंधा नमक पीस कर पान करे। विषदोष नाश होगा। अकोढ़ की जड़ का काढ़ा बना कर घृत के साथ पान करे। विषदोष नष्ट होगा। जो औषधि जरा-व्याधि (बुढ़ापा) का नाश करे, वह रसायन है। रसायन को चाहने वाले मनुष्य वर्षा में सेन्धा नमक के साथ, शरत् में चीनी के साथ, हेमन्त में शुण्ठी के साथ, शीत में पिप्पली के साथ, वसन्त में मधु के साथ तथा ग्रीष्म में गुड़ के साथ हरीतकी खाये॥२०-२३॥

ज्वरस्यान्तेऽभया चैका प्रभुङ्क्ते द्वे बिभीतके।
भुक्त्वा मध्वाज्यधात्रीणां चतुष्कं शतवर्षकृत्॥२४॥
पीताश्वगन्धा पयसा घृतेनाशेषरोगनुत्। मण्डूकपर्ण्याः स्वरसो विदार्य्याश्चामृतोपमः॥२५॥
तिलधात्रीभृङ्गरजो जग्ध्वा वर्षशती भवेत्। त्रिकटु त्रिफला वह्निर्गुडूची च शतावरी॥२६।
विडङ्गलोहचूर्णन्तु मधुना सह रोगनुत्। त्रिफला च कणा शुण्ठी गुडूची च शतावरी॥२७॥
विडङ्गभृङ्गराजादि भावितं सर्वरोगनुत्।
चूर्णं विदार्य्या मध्वाज्यं लीढ्वा दश स्त्रियो व्रजेत्॥२८॥

ज्वर के अन्त में एक हरीतकी तथा दो बहेड़ा खाये। नित्य मधु-घृत के साथ चार आमलकी खाये। वह व्यक्ति शतायु होगा। दूध तथा घृत के साथ अश्वगन्ध सेवन करने वाले के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। मण्डूकपर्णी को विदारीकन्द के रस के साथ पान करे, यह अमृत फलदायक है। तिल, आमलकी तथा भृंगराज का सेवन करने वाला सौ वर्ष जीवित रहेगा। त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, गुरुच, शतमूली, वायबिड़ङ्ग तथा लौह-चूर्ण मधु के साथ खाये। सभी रोग नष्ट होंगे। त्रिफला, पिप्पली, शुण्ठी, गुरुच, शतमूली को विड़ङ्ग तथा भृंगराज के रस के साथ खाने से सर्व रोग नष्ट होंगे। जो विदारीकन्द के चूर्ण को घृत-मधु से खायेगा, वह दस स्त्रियों से मैथुन कर सकेगा॥२४-२८॥

घृतं शतावरीकल्कैः क्षीरैर्दशगुणैः पचेत्। शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं वा जारकं विदुः॥२९॥
प्रतिमर्षोऽवपीडश्च नस्यं प्रवपनं तथा। शिरोविरेचश्चेति पञ्चकर्म च कत्यते॥३०॥

शतमूली के कल्क को दसगुने दूध के साथ घी डाल कर पकाये। उसे चीनी, पिप्पली तथा मधु

के साथ भक्षण करे। यह शरीर पुष्टिकर तथा वीर्यवर्द्धक योग है। प्रतिमर्ष, अवपीड़न, नस्य, प्रवपन, शिरोविरेचन—ये पंचकर्म कहे गये हैं॥२९-३०॥

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात्षड् ऋतवः स्मृताः।
अग्निसेवामधुक्षीरविकृतीः परिषेवयेत्॥३१॥
स्त्रीयुक्तः शिशिरे तद्वद्वसन्ते न दिवा स्वपेत्।
त्यजेद्वर्षासु स्वप्नादीन्शरदीन्दोश्च रश्मयः॥३२॥
पथ्यानि शालयो मुद्गा वर्षाम्भः क्वथितं पयः।
निम्बातसीकुसुम्भानां शिग्रुसर्षपयोस्तथा॥३३॥
ज्योतिष्मतीमूलकानां तैलानि च हरन्ति हि। कृमिकुष्ठप्रमेहांश्च वातश्लेष्मशिरोरुजः॥३४॥

वर्ष में माघ मास से आरम्भ करके दो-दो मास का एक-एक ऋतु होता है। इस नियम से एक वर्ष में छः ऋतु कहे गये हैं। इनमें अग्निसेवा, मधु-क्षीर आदि का व्यवहार करे। शिशिर में स्त्री के साथ रहे। वसन्त में दिन में न सोये। वर्षा में अविहित निद्रा तथा शरद में चन्द्रकिरणों का सेवन न करे। शालि तण्डुल, मूंग शरत्काल के पथ्य हैं। पुनर्नवा का काढ़ा, जल तथा नीम, अतसी, कुसुम्भ, सैजन, सरसों, ज्योतिष्मती लता, मूली—ये सभी तैल क्रिमि, कुष्ठ, प्रमेह, वातश्लेष्मा तथा शिरोवेदना का संहार करते हैं॥३१-३४॥

दाडिमामलकीकोलकरमर्दप्रियालकम्। जम्बीरं नागरङ्गञ्च आम्रातककपित्थकम्॥३५॥
पित्तलान्यनिलघ्नानि कफोत्क्लेशकराणि च।
जलं जीमूतकेक्ष्वाकुकूटजाकृतबन्धनम्॥३६॥
धामार्गवश्च संयोज्याः सर्वथा वमनेष्वमी। पूर्वाह्णे वमनायैते मदनेन्द्रयवौ वचा॥३७॥
मृदुकोष्ठश्च पित्तेन खरो वातकफाश्रयात्।
मध्यमः समदोषे स्यात्त्रिवृत्पित्ते विरेचनम्॥३८॥
शर्करामधुसंयुक्तं सैन्धवं नागरं त्रिवृत्। हरीतकी विडङ्गानि गोमूत्रेण विरेचनम्॥३९॥

अनार, आमलकी, बदरी, करमर्द, प्रियाल, जम्बीर, नारंगी, आमड़ा, कद्बेल—ये सभी पित्तप्रद, वायुनाशक तथा कफ बढ़ाने वाले हैं। घोषालता, तितलौकी, अपामार्ग को जल में पका कर वमन हेतु प्रयोग करे। पूर्वोक्त वमन हेतु मदनफल, इन्द्र जौ, वच का प्रयोग करे। पित्ताधिक्य होने पर मृदु विरेचन का, वात-कफ में खरविरेचन का तथा समदोष में समविरेचन की व्यवस्था करें। पित्ताधिक्य में त्रिवृत का विरेचन देना चाहिये। शुण्ठी, त्रिवृत, हरीतकी को गोमूत्र में पका कर चीनी, मधु तथा सेंधा नमक से विरेचन कराये॥३५-३९॥

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथश्च द्विगुणस्तथा।
वातोल्बणेषु दोषेषु भोजयित्वाथ वामयेत्॥४०॥

वंशादिनेत्रं कुर्वीत षडष्टद्वादशाङ्गुलम्। कर्कन्धफलवच्छिद्रं वस्तिरुत्तानशायिने॥४१॥
निरूहदानेऽपि विधिरयमेव मुदीरितः। अर्द्धत्रिषट्पले मात्रा लघुमध्योत्तमः क्रमात्॥४२॥
पथ्याक्षधात्र्य एकद्विचतुर्भागा रुगर्दनाः। शतावर्य्यमृताभृङ्गसिन्धुवारादिभाविताः॥४३॥

।इति गारुडे महापुराणे स्त्रीरोगचिकित्सादिकथनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७२।।

वायु जब उल्वण हो तथा रेड़ी का तेल ले उससे दूना त्रिफला का काढ़ा पीकर वमन करे। छः अंगुल, ८ अंगुल अथवा १२ अंगुल की बांस की छड़ी में वदरीफल के माप का सम वर्त्तुल छेद करे। इस बांस यष्टि से वस्तिशोधन करे। निरुहदान का भी यही विधान है। जिन औषधियों से वस्ति शोधन तथा निरुहण किया जाये, उसका वजन आधा पल, तीन पल अथवा छः पल रहे। इसी प्रमाण से आधा पल से लघु, तीन पल से मध्यम तथा छः पल से उत्तम वस्ति परिमाण कहा है। हरीतकी एक भाग, बहेड़ा २ भाग, आमलकी चार भाग तथा शतमूली, गुरुच, भृंगराज, सिन्धुवार के रस से भावना देकर वस्तिशोधन करे॥४०-४३॥

॥एक सौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

योगसार वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

द्रव्याणि मधुरादीनि वक्ष्ये रोगहराण्यहम्। शालिषष्टिकगोधूमक्षीरं घृतं रसो मधु॥१॥
मज्जाशृङ्गाटकयवकशेर्वेर्वारुगोक्षुरम्। गाम्भारी पौष्करं बीजं द्राक्षा खर्जूरकं बला॥२॥
नारिकेलेक्ष्वात्मगुप्ता विक्सो च पियालकम्।
मधूकं तालकूष्माण्डं मुख्योऽयं मधुरो गणः॥३॥
मूर्च्छादाहप्रशमनः षडिन्द्रियप्रसादनः कृमिकृत्कफकृच्चैव एकोऽत्यर्थं निषेवितः॥४॥
श्वासकासास्यमाधुर्य्यस्वरघातार्बुदानि च। गलगण्डश्लीपदानि गुडलेपादि कारयेत्॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—अब मैं सर्व रोग हरण करने वाले मधुरादि द्रव्यों को कहता हूं। शालिधान्य, यष्ठिधान्य, गेहूं, क्षीर, घृत, रस, मधु, मज्जा, पानीफल (सिंघाड़ा), यव, कशेरु, फूट, गोखरु, गाम्भारी, पुष्कर बीज, द्राक्षा, खजूर, बेड़ेला, नारियल, गन्ना, आलकुशिलता, भूकूष्माण्ड, पियाल, यष्टिमधु, ताल,

कूष्माण्ड को मधुर द्रव्य कहा जाता है। यही भेषजज्ञों का मत है। यह मधुर द्रव्य मूर्च्छा रोग तथा दाह रोग में शान्ति देता है। यह सभी इन्द्रियों को प्रसन्न करता है। इनमें से किसी को भी अधिक खाने पर क्रिमि तथा कफ बढ़ेगा। इन मधुर द्रव्यों की गुड़िका खाने किंवा लेपन से श्वास, कास, मुख की मधुरता, अर्बुद, स्वर घात, गलगण्ड, हाथीपांव रोग नष्ट हो जाते हैं।।१-५।।

दाडिमामलकाम्रञ्च कपित्थकरमर्दकौ। मातुलुङ्गाम्रातकञ्च बदरं तिन्तिडीफलम्।।६।।
दधि तक्रं काञ्जिकञ्च लकुचं चाम्लवेतसम्।
अम्लो लोणः शुण्ठीयुक्तो जारणः पाचनो रसः।।७।।
क्लेदनो वातकृद्वष्यो विदाही चानुलोमनः।
अम्लोऽत्यर्थं सेव्यमानः कुर्य्याद्वै दन्तहर्षकम्।।८।।
शरीरस्य च शैथिल्यं स्वरकण्ठास्यहृद्दहेत्। छिन्नभिन्नव्रणादीनि पाचयत्यग्निभावितः।।९।।
लवणानि यवक्षारसर्जिकादिश्च लवणः।
शोधनः पाचनः क्लेदी विश्लेषसर्पणादिकृत्।।१०।।

अनार, आमलकी, आम, कदबेल, करमर्दक, मातुलुंग, आमड़ा, वदरी, तेतुल, दही, मट्ठा, कांजी, डहूक, आमरुल, अम्लवेतस, शुण्ठी युक्त औषधियां जारण, पाचक, क्लेदजनक, वातवर्द्धक, अग्निवर्द्धक तथा विदारी होती हैं। परन्तु ये वात आदि को अनुलोम करते हैं। अतिरिक्त अम्लद्रव्य का सेवन करने से दन्तहर्ष होता है। ये औषधियां शरीर में शिथिलता का संचार करती हैं। स्वर, कण्ठ, आस्य, हृदय में ज्वाला उत्पन्न करते हैं। चित्रक रस से भावना देकर सेवन करने से छिन्न-भिन्न व्रणों का पाक होता है। पांचों लवण, यवक्षार, सज्जी मिट्टी, ये सभी लावणगण हैं। ये शरीर का शोधन, पाचन, क्लेदन तथा अस्थि-श्लेष्मादि का संयोजन करता है। पांचों लवण, यवक्षार, सज्जी मिट्टी, ये सब लावणगण हैं। ये देहशोधन, पाचन, क्लेदन तथा अस्थि टूटने पर संयोजन भी करते हैं।।६-१०।।

मार्गरोधी मार्दवकृत्स एकः परिषेवितः। गात्रकण्डूकोठशोथवैवर्ण्यं जनयेद्रसः।
रक्तवातं पित्तरक्तं पुंस्त्वेन्द्रियरुजादिकम्।।११।।
व्योषशिग्रुमूलकञ्च देवदारु च कुष्ठकम्। लशुनं वल्गुजीफलं मुस्तागुग्गुलु लाङ्गली।।१२।।
कटुको दीपनः शोधी कुष्ठकण्डुकफान्तकृत्।
स्थौल्यालस्यकृमिहरः शुक्रमेदोविरोधनः।
एकोऽत्यर्थं सेव्यमानः भ्रमदाहादिकृद्भवेत्।।१३।।

इनमें से किसी एक का प्रयोग अधिक करने से मार्गरोध, शरीर में मृदुता, देह में खुजली, कोठे में सूजन तथा शरीर का वर्ण बदरंग होता है। वातरक्त, पुरुषत्व में व्याघात तथा इन्द्रिय विकार होते हैं। त्रिकटु, सैजन, मूली, देवदारु, कूठ, लहसुन, सोमराजि, मोथा, गुग्गुलु, लांगलीया, कटुकी अग्निदीपक द्रव्य कहे गये हैं। ये शरीरशोधक, कुष्ठ, खुजली, कफ, स्थौल्य, आलस्य, क्रिमि, मेद तथा शुक्र के विरोधी हैं। इनमें से किसी एक के अधिक सेवन से भ्रम तथा दाहोत्पत्ति होती है।।११-१३।।

कृतमालः करीराणि हरिद्रेन्द्रयवास्तथा। स्वादुकण्टकवेत्राणि बृहतीद्वयशङ्खिनी॥१४॥
गुडूची च द्रवन्ती च त्रिवृन्मण्डूकपर्ण्यपि। कारवेल्लकवार्त्ताकुकरवीरकवासकाः॥१५॥

रोहिणी शङ्खपुष्पी च कर्कोटो वै जयन्तिका।
जातीवरुणकं निम्बो ज्योतिष्मती पुनर्नवा॥१६॥
तिक्तोरसश्छेदनः स्याद्रोचनो दीपनस्तथा।
शोधनो ज्वरतृष्णाग्नो मूर्च्छाघ्नः कण्डुकादिजित्॥१७॥

विण्मूत्रक्लेदसंशोषो ह्यत्यर्थं स च सेवितः। हनुस्तम्भाक्षेपकार्त्तिशिरःशूलव्रणादिहृत्॥१८॥

गुरुच, द्रवन्ती, त्रिवृत्, मण्डूकपर्णी, कारवेल्ल, वार्त्ताकु, करवीर, वासक, रोहिणी, शंखपुष्पी, कर्कोट, जयन्तिका, जगती, वरुण, नीम, ज्योतिष्मती, पुनर्नवा ये सभी तिक्त रस द्रव्य हैं। ये सभी रुचिकारक एवं अग्निदीप्त करने वाले हैं। ये शरीर शुद्ध करने वाले, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा तथा खुजलीनाशक भी हैं। इनका अधिक सेवन करने से मलमूत्र रोध, शरीर में क्लिन्नस्थिति, शोष, हनुस्तम्भ, आक्षेप, शिर:पीड़ा तथा व्रण रोग हो जाता है॥१४-१८॥

त्रिफलाशल्लकीजम्बु आम्रातकवटादिकम्।
तिन्दुकं वकुलं शालं पालङ्कमुद्गचिल्लकम्॥१९॥
कषायो ग्राहको रोपी स्तम्भनक्लेदशोषणः।
एकोऽत्यर्थं सेव्यमानो हृदये चाथ पीडकः।
मुखशोषज्वराध्मानहनुस्तम्भादिकारः ॥२०॥

त्रिफला, शल्लकी, जम्बु, आम्रातक, वटं, तिन्दुक, वकुल, शाल, पालङ्क, मुद्ग, चिल्लक—ये सभी कषाय रस, ग्राही, व्रण को भरने वाले, स्तम्भक, क्लेद करने वाले तथा शोषक होते हैं। इनमें से किसी एक का भी अधिक सेवन करने से हृदय में पीड़ा, मुखशोष, ज्वर, आध्मान, हनुस्तम्भरोग होता है॥१९-२०॥

हरिद्राकुष्ठलवणं मेषशृङ्गिबलाद्वयम्। कच्छुरा शल्लकी चैव पुनर्नवा शतावरी॥२१॥
अग्निमन्थो ब्रह्मदण्डी श्वदंष्ट्रैरण्डके तथा। यवकोलकुलत्थादिकर्षांशी दशमूलकम्।

पृथक्समस्तो वातान्तः कफपित्तहरस्तथा॥२२॥
शतावरी विदारी च बालकोशीरचन्दनम्।
दूर्वा वटः पिप्पली च बदरी शल्लकी तथा॥२३॥

कदली चोत्पलं पद्ममुदुम्बरपटोलकम्। अथ श्लेष्महरो वर्गो हरिद्रागुडकुष्ठकम्॥२४॥

हल्दी, कूठ, नमक, मेषशृंगी, वेड़ेला, श्वेत बेड़ेला, शुकशिम्बी, बावला, पुनर्नवा, शतमूली, गणियारी, ब्रह्मदण्डी, गोखरु, ऐरण्ड, यव, वदरी, कद्वेल को एक तोला तथा दशमूल से इनका अलग-अलग सेवन करे अथवा मिला कर करे। इससे वायु, पित्त तथा कफ दोषों में साम्य हो जाता है। शतमूली,

भूकूष्माण्ड, वाला, बेना की जड़, चन्दन, दूब, वट, पिप्पली, वदरी, बावला, केला, उत्पल, पद्म, उडूमर, पटोल, हल्दी, गुड़, कूठ, ये सभी श्लेष्मा नाशक हैं॥२१-२४॥

शतपुष्पी च जाती च व्योषारग्वधलाङ्गली। सर्पिस्तैलवसामज्जस्नेहेषु प्रवरं स्मृतम्॥२५॥

शतपुष्पी, जाती, व्योषा, आरग्वध, लांगली, ये सभी घृत, तैल, वसा, मज्जा आदि स्नेह पाक से उत्तम होते हैं। जो बुद्धि, याददाश्त, मेधा तथा पेट की अग्नि बढ़ाना चाहते हैं, यह घृत उनके लिये अतीव हितप्रद है॥२५॥

तथा धीस्मृतिमेधाग्निकाङ्क्षिणां शस्यते घृतम्।
केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम्॥२६॥

देयं बहुकफे वापि व्योषक्षारसमायुतम्। ग्रन्थिनाडीकृमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु॥२७॥
तैलं लाघवदार्ढ्याय क्रूरकोष्ठेषु देहिषु। वातातपाम्बुभारस्त्रीव्यायामक्षीणधातुषु॥२८॥

रौक्षक्लेशक्षयात्यग्निवातावृतपथेषु च।
अथ दग्ध्वा शिराजालं योनिकर्म शिरोरुजि॥२९॥

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे। जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च॥३०॥

सभी पैत्तिक रोगों में केवल घृत, वायुरोगों में लवण युक्त घृत, कफ की प्रबलता में त्रिकटु तथा यवक्षार मिश्रित घृत का सेवन करे। ग्रन्थिरोग, नाड़ीव्रण, क्रिमिरोग, श्लेष्मारोग, मेदोरोग तथा वातरोग में उक्त प्रकार से घृत सेवन करे। उदरामय रोगी तथा वात आतप में रहने वाले, भारवाही तथा स्त्री संभोग तथा व्यायाम से जो लोग क्षीणधातु हो गये हैं, वे शरीर हल्का होने पर दृढ़ करने हेतु तैल सेवन करें। रुक्षता, क्लेश, क्षय, अत्यन्त प्रकुपित अग्नि के कारण वायु कुपित होकर शिरापथ को ढंक लेता है। तब शिरा को दग्ध करे। शिरोरोग में योनिकर्म करे। स्नेह, क्वाथ तथा वटिका आदि औषधि में उत्तम, मध्यम तथा अधमरूपेण मात्रात्रय कही गयी है। उत्तम परिमाण मात्रा है आठ तोला, मध्यम है छः तोला। अधम मात्रा है चार तोला॥२६-३०॥

जलमुष्णं घृते देयं पृथक् तैले तु शस्यते। स्नेहे पित्ते तु तृष्णायां पिबेदुष्णोदकं नरः॥३१॥

वातानुलोमं दीप्ताग्नेर्वर्च्चः स्निग्धस्य तन्मतम्।
रूक्षस्य स्नेहनं कार्यमतिस्निग्धस्य रूक्षणम्॥३२॥
श्यामाककोरदूषान्नतक्रपिण्याकशक्तुभिः।
वातश्लेष्मणि वाते वा कफे वा स्वेद इष्यते।
न स्वेदयेदतिस्थूलरूक्षदुर्बलमूर्च्छितान्॥३३॥

॥इति गारुडे महापुराणे योगसारादिकथनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७३॥

घृत, तेल तथा स्नेहपाक में यदि जल पीना हो, तब उष्ण जल प्रदान करे। पित्तज तृष्णा होने पर

भी उष्ण जलपान का विधान है। दीप्ताग्नि व्यक्ति का वातानुलोग, स्निग्ध व्यक्ति का शरीरशोधन, रुक्ष व्यक्ति हेतु स्नेहन तथा अति स्निग्ध के लिये रक्षण करे। वात-श्लेष्मा रोग में, वातरोग में, कफरोग में श्यामक, कोर दोष, तक्र, पिण्याक अथवा सत्तू से स्वेद प्रदान विहित कहा गया है। लेकिन अति स्थूल, रुक्ष, दुर्बल तथा मूर्च्छित व्यक्ति को कभी स्वेद प्रदान न करे॥३१-३३॥

॥एक सौ तिहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

घृत-तैलादि का वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

घृततैलादि वक्ष्यामि शृणु सुश्रुत रोगनुत्। शङ्खपुष्पी वचा सोमा ब्राह्मी ब्रह्मसुवर्चला॥१॥
अभया च गुडुची च आटरूषकवागुजी। एतैरक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥२॥
कण्टकार्य्या रसप्रस्थं क्षीरप्रस्थसमन्वितम्। एतद् ब्राहीघृतं नाम श्रुतिमेधाकरं परम्॥३॥
त्रिफलाचित्रकबलानिर्गुण्डीनिम्बवासकाः। पुनर्नवा गुडूची च बृहती च शतावरी।
एतैर्घृतं यथालाभं सर्वरोगविमर्दनम्॥४॥

धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं रोग का नाश करने वाले घृत-तैल का वर्णन करता हूं। शंखपुष्पी, वच, सोमलता, ब्राह्मी, सौवर्चल, हरीतकी, गुरुच, वासक, सोमराजी, प्रत्येक दो तोला लेकर इनका चार सेर घृत में पाक करे। पाककाल में कण्टकारी का रस चार सेर तथा दूध भी चार सेर उसमें छोड़े। यह है ब्राह्मी घृत। इसे सेवन करने वाले की मेधा तथा स्मृति बढ़ती है। त्रिफला, चित्रक, बेड़ेला, निसिन्दा, नीम, वासक, पुनर्नवा, गुरुच, बृहती, शतमूली के साथ घृत पाक (पूर्ववत्) करके इसका सेवन करने वाले के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं॥१-४॥

बलाशतकषाये तु तैलस्याद्धढकं पचेत्। कल्कैः मधूकमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलपद्मकैः॥५॥
सूक्ष्मैलापिप्पलीकुष्ठत्वगेलागुरुकेशरैः। गन्धाश्वजीवनीयैश्च क्षीराढकसमाश्रितम्॥६॥
एवं मृद्वग्निना पक्वं स्थापयेद्राजते शुभे। सर्ववातविकारांस्तु सर्वधात्वन्तराश्रयान्।
तैलमेतत्प्रशमयेद् बलासं राजवल्लभम्॥७॥

बला का कषाय १०० सेर लेकर तेल १६ सेर लेना चाहिये। इसे पकाते समय मुलेठी, मजीठ, चन्दन, उत्पल, पद्म, छोटी इलायची, पिप्पली, कूठ, दारुचीनी, इलायची बड़ी, अगुरु, नागकेशर, अश्वगन्धा, जीवनीयगण—इन समस्त कल्क द्रव्य में ३२ सेर दूध छोड़े। इसे मंदी आंच पर पाक करके

चांदी के बर्त्तन में रखे। यह तैल सभी प्रकार के वातरोग तथा धातुरोगों का नाश करता है। यही है राजवल्लभ तैल। इस तैल के सेवन से बलासरोग शान्त होता है॥५-७॥

शतावरीरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थं तथैव च। शतपुष्पं देवदारु मांसी शैलेयकं बला॥८॥
चन्दनं तगरं कुष्ठं मनःशिला ज्योतिष्मती। एतैः कर्षसमैस्तेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥९॥

घी चार सेर, शतमूली का रस चार सेर, दूध चार सेर, शतपुष्प, देवदारु, जटामासी, शैलेयक, बेड़ेला, चन्दन, तगर, कूठ, मैनसिल, ज्योतिष्मती लता, प्रत्येक दो-दो तोला ले तथा १६ सेर तैल में पाक करे॥८-९॥

कुब्जवामनपङ्गूनां बधिरव्यङ्गकुष्ठिनाम्। वायुना भग्नगात्राणां ये च सीदन्ति मैथुने॥१०॥
जराजर्जरगात्राणां चाध्मानमुखशोषिणाम्।
त्वग्गताश्चापि ये रोगाः शिरास्नायुगताश्च ये॥११॥
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु तैलं रोगकुलान्तकम्। नारायणमिदं तैलं विष्णुनोक्तं रुगर्दनम्।
पृथक्तैलं धृतं कुर्य्यात्समस्तैरौषधैः पृथक्॥१२॥
शतावर्य्या गुडूच्या वा चित्रकैः व्योषनिम्बकैः।
निर्गुण्ड्या वा प्रसारण्या कण्टकार्य्या रसादिभिः॥१३॥
वर्षाभूबालया वापि वासकेन फलत्रिकैः। ब्राह्मिकैरण्डकेनापि भृङ्गराजेन यष्टिना॥१४॥
मुषल्या दशमूलेन खदिरेण वटादिभिः। वटिका मोदो वापि चूर्णं स्यात्सर्वरोगनुत्॥१५॥
घृतेन मधुना वापि अद्भिः खण्डगुडादिभिः।
लवणैः कटुकैर्युक्तं यथालाभञ्च रोगनुत्॥१६॥

इस तैल सेवन द्वारा कुब्जता, वामनता, पंगुता, बधिरता, व्यङ्गता—यह सब तथा कुष्ठरोग दूर होता है। वायु प्रकोप से जिनके अंग भग्न हैं, जो मैथुन में अशक्त हैं, जिनका अंग जरा से जर्जरित है, उनके लिये यह तैल अत्यन्त लाभकारी है। इस तैल से आध्मान, मुख के रोग, चर्मगत-शिरागत-स्नायुगत सभी रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह तो रोगकुल के लिये यमराज के समान है। यह नारायण तैल है। इस तैल का स्वयं नारायण ने वर्णन किया था। उक्त औषधि, घृत, तैल को पृथक्तः पाक करके मिलाये। पुनः उनको पकाने के पश्चात् सेवन करे। शतमूली, गुरुच, चित्रक, त्रिकटु, नीम, निसिन्दा, प्रसारणी, कण्टकारी, इनके रस में पुनर्नवा, बाला, वासक, त्रिफला, ब्राह्मी, ऐरण्ड, भृंगराज, मुलेठी, तालमूली, दशमूल, खदिर, वट का अंकुर की भावना देकर वटिका अथवा मोदक बनाये अथवा चूर्ण करके घृत, मधु, जल, खांड़, लवण, कटुकी के साथ सेवन करने से सर्वरोग नाश होता है॥१०-१६॥

चित्रकार्कत्रिवृद्वापि यमानीहयमारकम्।
सुधां च बालं गणिकां सप्तपर्णसुवर्चिकाम्॥१७॥
ज्योतिष्मतीञ्च संभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत्। एतन्निष्यन्दन तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे॥१८॥

शोधनं रोपणञ्चैव सर्ववर्णकरं परम्। चित्रकाद्यं महातैलं सर्वरोगप्रभञ्जनम्॥१९॥
अजमोदं ससिन्दूरं हरितालनिशाद्वयम्। क्षारद्वयं फेनयुतमार्द्रकं सरलोद्भवम्॥२०॥
इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलैः स्यन्दनैः समम्। एभिः सर्षपजं तैलमजामूत्रैश्च योजितम्॥२१॥
मृद्वग्निना पचेदेतत् गव्यक्षीरेण संयुतम्। अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति॥२२॥
विदग्धस्तु पचेत्पक्वं पक्वञ्चैव विशोधयेत्। रोपणं मृदुभावञ्च तैलेनानेन कारयेत्॥२३॥

॥इति गारुडे महापुराणे घृततैलादिकथनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७४॥

चित्रक, आकन्द, त्रिवृत्, यमानी, करवीर, विष, बाला, यूथी, छातिम, सज्जी मृत्तिका तथा ज्योतिष्मतीलता का तैलपाक करे। यह है निष्यन्दन तैल। इसे भगंदर पर पुनः-पुनः लगाने से क्षत का शोधन होता है तथा वह भरने लगता है। इस तैल के सेवन से शरीर की कान्ति बढ़ती है। यह है चित्रकाद्य तैल। यह सभी रोगों का निवारण करता है। काला जीरा, सिन्दूर, हरिताल, सज्जीक्षार, समुद्र फेन, अदरख, सरल की लकड़ी, राखालशशा (इन्द्रवारुणी), अपामार्ग, केला को बराबर मात्रा में लेकर सरसों तैल में पकाये। धीमी आंच पर पकाये। पाक काल में बकरी का मूत्र तथा दुग्ध मिलाये। यह है अजमोदादितैल। यह गण्डमालादि रोगनाशक है। विद्वान् चिकित्सक इस तैल को पाक करके रोगी को सेवन कराये। इससे घाव भरता है तथा उसका शोधन भी हो जाता है॥१७-२३॥

॥एक सौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योगों का वर्णन

सूत उवाच

एवं धन्वन्तरिर्विष्णुः सुश्रुतादीनुवाच ह।
हरिः पुनर्हरायाह नानायोगान् रुगर्दनान्॥१॥

सूतजी ने कहा—हे शौनक! धन्वन्तरि रूपधारी हरि ने सुश्रुत से इस प्रकार से रोग तथा औषधि आदि का वर्णन किया था। हरि ने यही प्रसंग भगवान् हर से कहा॥१॥

हरिरुवाच

सर्वज्वरेषु प्रथमं कार्यं शङ्करं लङ्घनम्। क्वथितोदकपानञ्च तथा निर्वातसेवनम्॥२॥

अग्निस्वेदाज्ज्वरास्त्वेवं नाशमायान्ति हीश्वर।
वातज्वरहरः क्वाथो गुडूच्या मुस्तकस्य च॥३॥
दुरालभैः कृतः क्वाथः पित्तज्वरहरः शृणु। शुण्ठीपर्पटमुस्तैश्च बालकोशीरचन्दनैः॥४॥
साज्यः क्वाथः श्लेष्मजन्तु सशुण्ठिः सदुरालभः।
सबालकः सर्वज्वरं सशुण्ठिः सहपर्पटः॥५॥
क्वाथश्च तिक्तकैरण्डगुडूचीशुण्ठिमुस्तकैः।
पित्तज्वरहरः स्याच्च शृणवन्यं योगमुत्तमम्॥६॥

श्रीहरि ने कहा—हे शंकर! सभी प्रकार के ज्वर की प्रथम (आरंभिक) अवस्था में लंघन करने का ही नियम है। इसके पश्चात् काढ़े का जल पीकर वायुरहित स्थान में रहे। पूर्वोक्त लंघन तथा काढ़ा पीने से ज्वर रोगी अपने शरीर में अग्निस्वेद प्रदान करे। इससे सभी ज्वरों का नाश होता है। गुरुच तथा मोथा का काढ़ा वातिक ज्वर का नाश करता है। दुरालभा का काढ़ा पीने से पित्तज्वर नष्ट होता है। शुण्ठी, पित्तपापड़ा, मोथा, बाला, बेना की जड़ तथा चन्दन का क्वाथ करके घृत के साथ शुण्ठीचूर्ण को प्रक्षिप्त करके पान करे। इससे श्लैष्मिक ज्वरनाश होगा। बाला, शुण्ठी तथा पित्तपापड़ा का काढ़ा सभी ज्वरों का संहारक है। चिरायता, एरण्ड, गुरुच, शुण्ठी तथा मोथा का काढ़ा पीये। इससे पित्तजज्वर नाश होगा॥२-६॥

बालकोशीरपाठाभिः कण्टकारिकमुस्तकैः। ज्वरनुच्च कृतः क्वाथस्तथा वै सुरदारुणा॥७॥
धन्याकनिम्बमुस्तानां समधुः स तु शङ्कर!। पटोलपत्रयुक्तस्तु गुडूचीत्रिफलायुतः।
पीतोऽखिलज्वरहरः क्षुधाकृद्वातनुत्त्विदम्॥८॥
हरीतकीपिप्पलीनामामलीचित्रकोद्भवम्। चूर्णं ज्वरघ्नं क्वथितं धन्याकोशीरपर्पटैः॥९॥
आमलक्या गुडूच्या च मधुयुक्तं सचन्दनम्।
समस्तज्वरनुच्च स्यात्सन्निपातहरं शृणु॥१०॥
हरिद्रानिम्बत्रिफलामुस्तकैर्देवदारुणा। कषायं कटुरोहिण्या सपटोलं सपत्रकम्।
त्रिदोषज्वरनुच्च स्यात्पीतन्तु क्वाथितं जलम्॥११॥

अब अन्य अत्यन्त उत्तम योग सुनिये। बाला, बेना की जड़, आकनादि, कण्टकारी, मोथा के काढ़ा को पीने से सभी तरह का ज्वर नष्ट होगा। धनियां, नीम, मोथा, पटोल पत्रा, गुरुच, त्रिफला का काढ़ा बना कर मधु के साथ पीने से सभी ज्वरों का नाश हो जाता है। इससे क्षुधा बढ़ती है तथा वातरोग का भी नाश होता है। धनिया, बेना की जड़ तथा पित्तपापड़ा के काढ़ा के साथ हरीतकी, पिप्पली, आमलकी तथा चित्रक का चर्ण पान करे। यह ज्वरनाशक योग है। आमलकी, गुरुच, लाल चन्दन का काढ़ा मधु के साथ पान करे, सभी प्रकार का ज्वर नष्ट होगा। इसके पश्चात् अब सन्निपात जनित ज्वर नाशक योग को सुनिये। हल्दी, नीम, त्रिफला, मोथा, देवदारु, कटुकी, पटोल, पटोल का पत्ता, इनका काढ़ा त्रिदोषजज्वर का नाशक है॥७-११॥

कण्टकार्य्या नागरस्य गुडूच्या पुष्करेण च।
जग्ध्वा नागबलाश्चूर्णं श्वासकासादिनुद्भवेत्॥१२॥
कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासिने। विश्वपर्पटकोशीरमुस्तचन्दनसाधितम्॥१३॥
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत्।
बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे॥१४॥

कण्टकारी, शुण्ठी, गुरुच, कूठ, पुष्कर, नागवला चूर्ण करके सेवन करे। श्वास-कास जैसे रोगों का नाश होगा। ज्वर से आर्त्त व्यक्ति मांड़, मूंग का यूष, शालितण्डुल का अन्न अथवा यूषवत् तरल शालि अन्न का गण्ड रोगी को पथ्य में प्रदान करे। इससे ज्वरनाश होगा। वातश्लेष्म ज्वर में रोगी को प्यास लगे, तब गर्म जल प्रदान करे। पित्तादि ज्वरों में शुण्ठी, पित्तपापड़ा, बेना की जड़, मोथा, लाल चन्दन को जल में पका कर जब ठंडा हो जाये, तब रोगी को पिलाये। इससे तृष्णा, वमन, ज्वर, दाह का नाश होगा। वातिकज्वर में बिल्वादि पंचमूल का काढ़ा पिलाये॥१२-१४॥

पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूचीविश्वभेषजम्।
वातज्वरे त्वयं क्वाथो दत्तः शान्तिकरः परः।
पित्तज्वरनुत्समधुः क्वाथः पर्पटनिम्बयोः॥१५॥
विधाने क्रियमाणेऽपि यस्य संज्ञा न जायते।
पादयोस्तु ललाटे वा दहेल्लौहशलाकया॥१६॥
तिक्ता पाठा पटोलश्च विशाला त्रिफला त्रिवृत्।
सक्षीरो भेदनः क्वाथः सर्वज्वरविशोधनः॥१७॥

।इति गारुडे महापुराणे नानायोगादिकथनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७५।।

पिप्पली, गुरुच, शुण्ठी का काढ़ा पीने से ज्वर का परिपाक होता है तथा वातिकज्वर नष्ट हो जाता है। पित्तपापड़ा तथा नीम का काढ़ा मधु के साथ रोगी को पिलाये। पित्तज्वर नष्ट होगा। यदि ज्वरादि रोग से रोगी अचैतन्य होकर औषधि द्वारा भी चेतनालाभ न करे, तब लौह शलाका से उसके पैर एवं ललाट को दागे। कटुकी, आकनादि, पटोल, गोरक्ष कर्कटी, त्रिफला, त्रिवृत् का काढ़ा दूध से पिलाने से उदरभेद होगा तथा सभी स्वर शान्त होगा॥१५-१७॥

॥एक सौ पचहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

भगवानुवाच

सप्तरात्र्याः प्रजायन्ते खल्वाटस्य कचाः शुभाः। दग्धहस्तिदन्तलेपात्साजाक्षीररसाञ्जनात्॥१॥
भृङ्गराजरसेनैव चतुर्भागेन साधितम्। केशवृद्धिकरं तैलं गुञ्जाचूर्णान्वितेन च॥२॥
एलामांसीकुष्ठमुरायुक्तमभ्युद्गतं शिरः। गुञ्जाफलं समादेयं लेपनं चन्द्रलुप्तमुत्॥३॥
आम्रास्यिचूर्णलेपाद् वै केशाः सूक्ष्मा भवन्ति च।
करञ्जामलकैलाः सलाक्षा लोपोऽरुणापहः॥४॥

श्री भगवान् ने कहा—हाथीदांत जला कर उस भस्म को तथा रसांजन को बकरी के दूध के साथ मस्तक पर लेप करने से खल्वाट (गंजे) रोगी का केश उत्तम रूप हो जाता है। तैल एक भाग, भृंगराज का रस चार भाग पाक करे। पकाते समय उसमें घुमची का चूरा छोंड़े। यह तैल लगाने से बाल बढ़ता है। इलायची, जटामासी, कूठ, मुरामांसी तथा घुमची को पीस कर मस्तक पर लगाये। इन्द्रलुप्तरोग नष्ट होगा। आम की गुठली का चूरा मस्तक पर लेप करने से केश में सूक्ष्मता आती है। कटकरंज, आमलकी, इलायची, लाक्षा को पीस कर केश में लगाये। केश की ताम्रवर्णता नष्ट होगी॥१-४॥

आम्रास्थिमज्जामलकलेपात्केशा भवन्ति वै।
बद्धमूला घना दीर्घाः स्निग्धाः स्युर्नोत्पतन्ति च॥५॥
विडङ्गगन्धपाषाणसाधितं तैलमुत्तमम्। सचतुर्गुणगोमूत्रं मनसः शिलमेव वा।
शिरोऽभ्यङ्गाच्छिरोजन्मयूकालिख्याः क्षयं नयेत्॥६॥
नवदग्धं शङ्खचूर्णं घृष्टसीसकलेपितम्। कचाः श्लक्ष्णा महाकृष्णा भवन्ति वृषभध्वज॥७॥
भृङ्गरागं लोहचूर्णं त्रिफला बीजपूरकम्। नीली च करवीरञ्च गुडमेतैः समैः श्रृतम्।
पलितानीह कृष्णानि कुर्य्याल्लेपान्महौषधम्॥८॥

आम की गुठली की मज्जा तथा आमलकी का मस्तक पर लेप करे। बाल उग आयेंगे। बिड़ंग, गन्धपाषाण के साथ तेल पकाये। पाक काल में तैल का १/४ भाग गोमूत्र तथा मैनसिल उसमें छोड़ें। यह तैल लगाने से मस्तिष्क स्थित जूं, लीख आदि नष्ट हो जायेंगे। जलाशंखचूर्ण तथा सीसा घिस कर मस्तक पर लगाये। सभी केश स्निग्ध तथा महाकृष्ण वर्ण होकर उग आयेंगे। भृंगराज, लौह चूर्ण, त्रिफला, नींबू, नील, करवीर, गुड़ को पकाये। इस महा औषधि का शिर पर लेप लगाने से केश की सफेदी नष्ट होती है और सभी केश कृष्णवर्ण तथा उज्वल उगते हैं॥५-८॥

आम्रास्थिमज्जा त्रिफला नीली च भृङ्गराजकम्।
जीर्णं पक्वलोहचूर्णं काञ्जिकं कृष्णकेशकृत्॥९॥

चक्रमर्दकबीजानि कुष्ठमेरण्डमूलकम्।
सात्युष्णकञ्जिकं पिष्ट्वालेपान्मस्तकरोगनुत्॥१०॥
सैन्धवञ्च वचा हिङ्गु कुष्ठं नागेश्वरं तथा। शतपुष्पा देवदारु एभिस्तैलं तु साधितम्॥११॥
गोपुरीषरसेनैव चतुर्भागेन संयुतम्। तत्कर्णभरणादुग्रकर्णशूलं क्षयं नयेत्॥१२॥
मेषमूत्रसैन्धवाभ्यां कर्णयोर्भरणाच्छि व!।
कर्णयोः पूर्तिनाशः स्यात्कृमिस्त्रावादिकस्य च॥१३॥
मालतीपुष्पदलयोरसेन भरणात्तथा। गोजलेनैव पूरेण पूयस्त्रावो विनश्यति॥१४॥

आम की गुठली की मज्जा, त्रिफला, नील, भृंगराज, लौह चूर्ण, कांजी को मिलाये। यह कृष्णता साधक (बाल काला करने वाले) हैं। चाकुन्दा बीज, कूठ, रेंड़ की जड़, अत्युष्ण कांजी के साथ पीस कर शिर पर लगाये। सर्वविध शिरोरोग नष्ट होंगे। सैन्धव, वच, हींग, कूठ, नागकेशर, शतपुष्पा, देवदारु इनको तैल में पकाये। पाक काल में तेल का चौगुना गोबर का घोल छोड़े। यह तैल कान में भरने से प्रबल कान की पीड़ा का नाश होता है। हे शिव! मेष का मूत्र तथा सेंधा नमक एक साथ कान में भरे। कान के कीड़े तथा मवाद आदि नष्ट होते हैं॥९-१४॥

कुष्ठमाषमरीचानि तगरं मधु पिप्पली। अपामार्गोऽश्वगन्धा च बृहती सितसर्षपाः॥१५॥
यवास्तिलाः सैन्धवञ्चैतेषामुद्वर्त्तनं शुभम्।
लिङ्गबाहुस्तम्भनाशं कर्णयोर्वृद्धिकृद्भवेत्॥१६॥
कटु तैलं भल्लातकं बृहतीफलदाडिमम्।
वल्कलैः साधितं लिप्तं लिङ्गं तेन विवर्द्धते॥१७॥

।।इति गारुडे महापुराणे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७६।।

मालतीपुष्प के पत्ते का रस गोमूत्र के साथ कान में भरे। मवाद आदि कर्ण रोग नष्ट होते हैं। मालतीपुष्प तथा मालती के पत्ते का रस कान में भरने से यही फल मिलेगा। कूठ, माष (उर्द), मरीच, तगर, मधु, पिप्पली, अपामार्ग, अश्वगन्ध, बृहती, सफेद सरसों, जौ, तिल, सैन्धव की उपटन बनाये तथा इसे लगाये। लिंग स्तम्भन, बाहु स्तम्भन नष्ट होगा। कान की शक्ति बढ़ेगी। कटु तैल, भिलावा, बृहती फल तथा अनार को पीस कर लेप करे। लिंग बढ़ेगा॥१५-१७॥

॥एक सौ छियत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
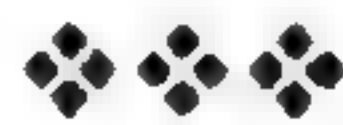
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

हरिरुवाच

शोभाञ्जनपत्ररसं मधुयुक्तं हि चक्षुषोः। भरणाद्रोगहरणं भवेन्नास्त्यत्र संशयः॥१॥

अशीतितिलपुष्पाणि जात्याश्च कुसुमानि च।
उपनिम्बामलाशुण्ठीपिप्पलीतण्डुलीयकम् ॥२॥
छायाशुष्कां वटीं कुर्य्यात् पिष्ट्वा तण्डुलवारिणां।
मधुना सह सा चाक्ष्णोरञ्जनात्तिमिरादिनुत्॥३॥

विभीतकास्थिमज्जा तु शङ्खनाभिर्मनःशिला। निम्बपत्रमरीचानि अजामूत्रेण पेषयेत्।

पुष्पं रात्र्यन्धतां हन्ति तिमिरं पटलं तथा॥४॥

चतुर्भागानि शङ्खस्य तदर्द्धेन मनःशिला। सैन्धवञ्च तदर्द्धेन एतत् पिष्ट्वोदकेन तु॥५॥
छायाशुष्कां तु वटिकां कृत्वा नयनमञ्जयेत्। तिमिरं पटलं हन्ति पिञ्जटस्य महौषधम्॥६॥

श्रीहरि ने कहा—सैंजन के पत्ते का रस मधु मिला कर नेत्र में लगाने से नेत्ररोग निश्चित रूप से नष्ट होगा। अस्सी तिलपुष्प तथा अस्सी जातीपुष्प, गुग्गुलु, नीम, आमलकी, शुण्ठी, पिप्पली, तण्डुलीयक, जल (चावल की धोअन) से पीस कर बटी बना कर छाया में सुखाये। इसे मधु के साथ अंजन की तरह लगाये। आंख के तिमिरादि दोषों का नाश होगा। भिलावा की गुठली की मज्जा, नाभीशंख, मैनसिल, नीम के पत्ते, मरीच को बकरी के मूत्र में पीसे। आंख का फूल, रतौंधी, पटल रोग तथा नेत्र का तिमिररोग नष्ट होगा। शंखभस्म चार भाग, मैनसिल दो भाग, सैन्धव एक भाग को जल से पीस कर बटी बनाये। इस बटी को छाया में सुखाये। इसका अंजन नेत्रों पर लगाने से चक्षुरोग का नाश होता है। यह वटी तिमिर, पटल तथा पिञ्जर नेत्ररोग हेतु महान् औषधि है॥१-६॥

त्रिकटु त्रिफला चैव करञ्जस्य फलानि च। सैन्धवं रजनी द्वे च भृङ्गराजरसेन हि।

पिष्ट्वा तदञ्जनादेव तिमिरादिविनाशनम्॥७॥

आटरूपकमूलं तु काञ्जिकापिष्टमेव तु। तेनाक्ष्णोर्भूरिलेपाच्च चक्षुःशूलं विनश्यति॥८॥
शतद्रुबदरीमूलं पीतमक्षिव्यथां हरेत्। सैन्धवं कटुतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम्॥९॥
क्षीरकाञ्जिकसंघृष्टं ताम्रपात्रे तु तेन च। अञ्जनात् पिञ्जटस्यैव नाशो भवति शङ्कर!।

ओं दद्रु सर क्रों ह्रीं ठः ठः दद्रु सर ह्रीं ह्रीं ओं उं ऊं सर क्रीं क्रीं ठः ठः आद्या वशमायान्ति मन्त्रेणानेन चाञ्जनात्॥१०॥

हे शंकर! त्रिकटु, त्रिफला, करञ्ज, सैन्धव, हल्दी, दारुहल्दी को भृंगराज रस में पीसे तथा नेत्र में अंजन लगाये। तिमिरादि नेत्ररोगों का नाश होगा। दारुक की जड़ कांजी में पीसे, नेत्र में प्रलेप लगाये।

नेत्रशूल नष्ट होगा। शतमूली तथा बदरी की जड़ पान करने से चक्षुपीड़ा नष्ट होगी। सेन्धानमक, कटु तैल, अपामार्ग की जड़ को ताम्रपात्र में कांजी के साथ पीस कर नेत्र में अंजन जैसे लगाये। नेत्र का पिंजररोग नष्ट होगा। अंजन लगाने का मन्त्र यह है—ॐ दद्रु सर क्रों ह्रीं ठः ठः दद्रु सर ह्रीं ह्रीं ॐ उं ऊं सर क्रीं क्रीं ठः ठः'' इस मन्त्र से अंजन लगाये। नेत्ररोग नाश होगा॥७-१०॥

बिल्वकनीलिकामूलं पिष्टमभ्यञ्जनेन च। अनेनाञ्जितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि॥११॥
पिप्पलीतगरञ्चैव हरिद्रामलकं वचा। खदिरैः पिष्टवर्तिश्च अञ्जनान्नेत्ररोगनुत्॥१२॥
नीरपूर्णमुखो धौति क्षिप्तजलेन योऽक्षिणी। प्रभाते नेत्ररोगैश्च नित्यं सर्वैः प्रमुच्यते॥१३॥
शुक्लैरण्डस्य मूलेन पत्रेणापि प्रसाधितम्। छागदुग्धसेकयुक्ताच्चक्षुषोर्वातरोगनुत्॥१४॥

बेल तथा नीली वृक्ष की जड़ पीस कर अंजन करने से नेत्र का तिमिररोग नाश होता है। पिप्पली, तगर, हल्दी, आमलकी, वच तथा खदिर को पीसे तथा बत्ती बनाये। इस बत्ती से नेत्र में अंजन लगाये (बत्ती को ही अंजन माने) नेत्ररोग नाश होगा। प्रभात में जल को मुंह में भर कर जो व्यक्ति उस मुख के जल द्वारा नेत्र धोता है, वह सभी नेत्ररोगों से छूट जाता है। श्वेत रेड़ की जड़ तथा पत्ता को बकरी के दूध में पकाये। उसे नेत्र पर लगाने से वातज चक्षुरोग नष्ट होगा॥११-१४॥

चन्दनं सैन्धवं वृद्धपलाशश्च हरीतकी। पटलं कुसुमं नीली चक्रिकां हरतेऽञ्जनात्।
गुञ्जामूलं छागमूत्रे घृष्टं तिमिरबन्धनुत्॥१५॥
रौप्यताम्रसुवर्णानां हस्तघृष्टशलाकया। घृष्टमुद्वर्त्तनं रुद्र कामलाव्याधिनाशनम्॥१६॥
घोषाफलमथाघ्रातं पीतं कामलनाशनम्। दूर्वा दाडिमपुष्पं तु अलक्तकहरीतकी।
नाशार्शवातरक्तनुन्नस्याद्वै स्वरसेन हि॥१७॥
सुपिष्टं जिङ्गिनीमूलं तद्रसेन वृषध्वज। नस्यादानाद्विनश्येत नाशार्शो नीललोहितः॥१८॥

चन्दन, सैन्धव, वृद्ध पलाश की जड़, हरीतकी को पीसे तथा अंजन लगाये। इससे पटोल पुष्प, नीली, चक्रिका आदि नेत्ररोगों का निवारण होगा। घुमची की जड़ बकरी के दूध में घिस कर अंजन करे। तिमिर आदि चक्षुरोग नष्ट होंगे। चांदी, तांबा अथवा स्वर्ण की शलाका हाथ में घिस कर वह चक्षु में उद्वर्त्तन करने से कामलारोग नाश होगा। घोषाफल सूंघे अथवा खाये, कामलारोग नाश होगा। दूब, अनार के फूल, आलता, हर्रे, इनके स्वरस का नस्य सूंघे। नाक का अर्श तथा वातरक्त नष्ट होगा। जिंगिणी की जड़ अच्छी तरह पीस कर उसके रस का नस्य सूंघे। नील एवं लौहित्यादि नासा अर्श नष्ट होगा॥१५-१८॥

गव्यं घृतं सर्ज्जरसं रुद्र धन्याकसैन्धवम्।
धुस्तूरकं गैरिकञ्च एतैः साधितसिक्यकम्।
सतैलं व्रणनुत स्याच्च स्फुटितोच्चटिताधरे॥१९॥
जातीपत्रञ्च चर्वित्वा विधृतं सुखरोगनुत्।
भक्षणात्केशरबीजस्य दन्ताः स्युश्चलिताः स्थिराः॥२०॥

मुस्तकं कुष्ठमेला च यष्टिकं मधुबालकम्। धन्याकमेतददनान्मुखदुर्गन्धनुद्धर॥२१॥

कषायं कटुकं वापि तिक्तशाकस्य भक्षणात्।
तैलयुक्तस्य नित्यं स्यान्मुखदुर्गन्धताक्षयः।
दन्तव्रणानि सर्वाणि क्षयं गच्छन्त्यनेन तु॥२२॥

काञ्जिकस्य सतैलस्य गण्डूषकवलास्थितिः। ताम्बूलचूर्णदग्धस्य मुखस्य व्याधिनुच्छिव॥२३॥

हे रुद्र! गोघृत, सर्जरस, धनियां, सैन्धव, धतूरा, गैरिक तथा मोम को तेल में पकाये। इसे व्रण पर लगाने से व्रण शोधन होगा। जातीपत्र चबाने से मुखरोग नष्ट होते हैं। केशर बीज खाने से हिलते दांत स्थिर हो जाते हैं। मोथा, कूठ, इलायची, मुलेठी, मधु, बाला तथा धनियां को खाये। मुख दुर्गन्ध नष्ट होगी। प्रतिदिन इस औषध को चबाने से दांतों का व्रण ठीक होगा। जिसका मुख ताम्बूलस्थ चूर्ण से जल गया हो (चूना आदि से) वह मनुष्य कांजी तथा तेल का कुल्ला करे, मुख व्याधि दूर होगी॥१९-२३॥

परित्यक्तिः श्लेष्मणश्च शुण्ठीचर्वणतो यथा।
मातुलुङ्गदलान्येला यष्टीमधु च पिप्पली॥२४॥
जातीपत्रमथैषाञ्च चूर्णं लीढं तथा कृतम्।
शेफालिकाजटायाश्च चर्वणं गलशुण्डिनुत्॥२५॥

नासाशिरारक्तकर्षान्नश्येच्छङ्कर जिह्विका। रसः शिरीषबीजानां हरिद्रायाश्चतुर्गुणः॥२६॥
तेन पक्वेन भूतेन नस्यं मस्तकरोगनुत्। गलरोगा विनश्यन्ति नस्यमात्रेण तत्क्षणात्॥२७॥

दन्तकीटविनाशः स्याद् गुञ्जामूलस्य चर्वणात्।
काकजङ्घास्नुहीनीलीकषायो मधुयोजितः।
दन्ताक्रान्तं दन्तजांश्च कृमीन्नाशयते शिव॥२८॥

जैसे शुण्ठी चबाने से श्लेष्मा त्याग होता है, उसी प्रकार मातुलुंग नींबू का पत्ता, मुलेठी, पिप्पली तथा जातीपत्र का चूर्ण चाटने से भी श्लेष्मा निकलने लगता है। शेफालिका की जड़ चबाने से गलगण्ड रोग नष्ट होता है। हे शंकर! नासा तथा शिरा से रक्त खींचने से जिह्विका रोग नष्ट होता है। एक भाग शिरीषबीज का रस, हल्दी का रस चार भाग मिला कर पकाये। इसका नस्य सूंघने से शिर के रोग नष्ट हो जाते हैं। इस सुंघनी से तत्काल गले का रोग नष्ट होगा। गुंजा की जड़ चबाने से दांतों के कीड़े मरते हैं। काकजंघा, सिज, नील ये कषाय हैं। इनका पान मधु के साथ करने से दांत को आक्रान्त करने वाले तथा दन्त से उत्पन्न क्रिमियों का नाश होगा॥२४-२८॥

घृतं कर्कटपादेन दुग्धमिश्रेण साधितम्।
तेन चाभ्यर्दिता दन्ताः कुर्य्युः कटकटा न हि॥२९॥
लिप्त्वा कर्कटपादेन केवलेनाथवा शिव।
त्रिसप्ताहं वारि पिष्ट्वा ज्योतिष्मत्याः फलानि हि॥३०॥

शुक्लाभयामज्जलेपाद्दन्तस्याङ्कलङ्कनुत्। लोधकुङ्कुममञ्जिष्ठालोहकालेयकानि च॥३१॥
यवतण्डुलमेतैश्च यष्टीमधुसमन्वितैः। वारिपिष्टैर्वक्त्रलेपः स्त्रीणां शोभनवक्त्रकृत्॥३२॥
द्विभागं छागदुग्धेन तैलप्रस्थं तु साधितम्। रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालाक्षाणां कर्षकेण वा।
यष्टिमधुकुङ्कुमाभ्यां सप्ताहान्मुखकान्तिकृत्॥३३॥
शुण्ठीपिप्पलीचूर्णं तु गुडूची कण्टकारिका।
एभिश्च क्वथितं वारि पीतं चाग्निं करोति वै॥३४॥

घृत जितना लिया हो, उसका १/४ कर्कटपाद तथा दुग्ध पकाये। यह दांत में मलने से दांत किटकिटाने का रोग नष्ट होगा। ज्योतिष्मती का फल तथा कर्कटपाद एक साथ जल में पीस कर दांतों पर लेप करे। सात दिनों में दन्तरोग नष्ट होंगे। लोध, कुंकुम, मजीठ, कृष्ण चन्दन, लौह, यव, तण्डुल, मुलेठी को पीसे। मुख पर लेप करने से स्त्रियों के मुख की शोभा बढ़ेगी। छाग (बकरी का दूध) दुग्ध दो भाग, तेल एक प्रस्थ, रक्त चन्दन, मजीठ, लाक्षा प्रत्येक दो-दो तोला, मुलेठी तथा कुंकुम मिला कर पाक करके मुख पर लेप करे। एक सप्ताह में मुख कान्ति बढ़ेगी। शुण्ठी, पिप्पली चूर्ण, गुरुच, कण्टकारी का काढ़ा पीने से जठराग्नि बढ़ेगी॥२९-३४॥

वातशूलक्षयञ्चैव करोति प्रमथेश्वर। करञ्जकर्कटोशीरं बृहती कटुरोहिणी॥३५॥
गोक्षुरं क्वथितं त्वेभिर्वारि पीतं श्रमापहम्।
दाहं पित्तज्वरं शोषं मूर्च्छाञ्चैव क्षयं नयेत्॥३६॥
मध्वाज्यपिप्पलीचूर्णं क्वथितं क्षीरसंयुतम्। पीतं हृद्रोगकासस्य विषमज्वरनुद्भवेत्॥३७॥
क्वाथौषधीनां सर्वासां कषार्द्धं ग्राह्यमेव च।
वयोऽनुरूपतो ज्ञेयो विशेषो वृषभध्वज॥३८॥
दुग्धं पीतं तु संयुक्तं गोपुरीषरसेन च। विषमज्वरनुत्स्याच्च काकजङ्घारसस्तथा॥३९॥
सशुण्ठीक्वथितं क्षीरं विषमज्वरनुद्भवेत्। यष्टीमधुकमुस्तञ्च सैन्धवं बृहतीफलम्॥४०॥
एतैर्नस्यप्रदानाच्च निद्रा स्यात्पुरुषस्य च। मरीचमधुयुक्तानां नस्यान्निद्रा भवेच्छिव॥४१॥
मूलं तु काकजङ्घाया निद्राकृत्स्याच्छिरस्थितम्।
सिद्ध तैलं काञ्जिकेन तथा सर्ज्जरसेन च॥४२॥
शीतोदकसमायुक्तं लेपात्सन्तापनाशनम्। शोणितज्वरदाहेभ्यो जातसन्तापनुत्तथा॥४३॥
शैलिशैवालाग्निमन्थशुण्ठीपाषाणभेदकम्। शोभाञ्जनं गोक्षुरं वा वरुणच्छत्रमेव च॥४४॥
शोभाञ्जनस्य मूलञ्च एतैः क्वथितवारि च। दत्त्वा हिङ्गुयवक्षारं पित्तवातविनाशनम्॥४५॥

यह काढ़ा वात शूलनाशक भी है। करञ्ज, कर्कट, बेना की जड़, बृहती, कटुकी, गोखरु का काढ़ा पीने से परिश्रम जनित कष्ट निवृत्त हो जाता है। यह काढ़ा दाह ज्वर, शोष, मूर्च्छा आदि का भी क्षय करता है। मधु, घृत, पिप्पली का चूर्ण तथा दुग्ध एक साथ पकाये। यह काढ़ा पीने से हृदय रोग, कास, विषम

ज्वर नष्ट होगा। प्रत्येक औषधि आधा कर्ष वजन की पकाये। काढ़ा बनने पर आधा कर्ष (एक तोला) ही काढ़ा पान करे। रोगी की उम्र के अनुरूप औषधि देनी चाहिये। दुग्ध अथवा काकजंघा का रस गोबर के घोल के साथ पीये। विषम ज्वर भाग जायेगा। शुण्ठी तथा दूध मिला कर पकाये। इससे भी विषम ज्वर नाश होगा। मुलेठी, मोथा, सैन्धव, बृहती फल का नस्य सूंघे, इससे व्यक्ति को निद्रा आयेगी। मरीच तथा मधु पीस कर उसका नस्य लेने से अधिक निद्रा होगी। काकजंघा की जड़ मस्तक पर रखने से अधिक निद्रा आयेगी।

कांजी तथा धूप के साथ तैल पाक करके शीतल जल में मिला कर देह में लेप द्वारा शरीर सन्ताप नष्ट होगा। रक्तदोष, ज्वर, दाहरोग जनित कष्ट भी इस औषध (लेप) द्वारा नष्ट होगा। रक्तदोष, ज्वर तथा दाहरोग से होने वाला सन्ताप भी इस औषधि के प्रयोग द्वारा ठीक हो जायेगा। शिलाजीत, शैवाल, अग्निमन्थ, शुण्ठी, पाषाणभेदी, सैजन, गोखरु, वरुण की छाल, सैजन की जड़ का काढ़ा बनावे। उसमें हींग तथा जवाखार भी छोड़े। इसे पीने से वात-पित्तज दोष नष्ट होगा॥३५-४५॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं तथा भल्लातकं शिव।
वार्येतैः क्वथितं पीतं शूलापस्मारनुद्भवेत्॥४६॥
अश्वगन्धामूलकाभ्यां सिद्धा वल्मीकमृत्तिका।
एतया मर्दनाद्रुद्र ऊरुस्तम्भः प्रशाम्यति॥४७॥
बृहतीकस्य वै मूलं संपिष्टमुदकेन च। पीतं सङ्घातवातस्य विपाटनकृदेव च॥४८॥
पीतं तक्रेण मूलञ्च आर्द्रस्य तगरस्य च। हरेज्झिञ्झिनीवातं वै वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥४९॥

पिप्पली, पिप्पली जड़ तथा भिलावा का काढ़ा पीये। इस औषधि से अपस्मार तथा शूलरोग नष्ट होगा। अश्वगन्ध, मूली, दीमक की बांबी की मिट्टी पका कर लेप लगाये। उरु स्तम्भ निवृत्त होगा। बृहती की जड़ जल में पीस कर पीये। इससे संघातवात निवारण होता है। अदरख तथा तगर की जड़ पीस कर मट्ठे के साथ पान करे। झिंझिनीवात नष्ट होगा। जैसे वज्रपात वृक्ष का नाश करता है, तदनुरूप इस औषधि से वातरोग ठीक हो जाता है॥४६-४९॥

अस्थिसंहारमेकेन भक्तेन सह खादितम्। पीतं मांसरसेनापि वातनुच्चास्थिभङ्गनुत्॥५०॥
घृतलिप्तं सक्तुकञ्च छागक्षीरेण संयुतम्।
तल्लेपात्पादयोर्नश्येत्सन्तापो नात्र संशयः॥५१॥
मध्वाज्यसैन्धवैः सिक्थगुडगैरिक गुग्गुलैः।
ससर्जरसस्फुटितः क्लोमशुद्धिश्च लेपनात्॥५२॥
कटुतैलेन लिप्तो वै विधूमाग्नौ प्रतापितः।
मृत्तिकाखादितः पादं समः स्याद् वृषभध्वज॥५३॥
सर्जरसाः सिक्थकञ्च जीरकञ्च हरीतकी।
तत्साधितघृताभ्यङ्गो ह्यग्निदग्धव्यथापनुत्॥५४॥

भोजन के साथ नित्यप्रति एक बार अस्थिसंहार वृक्ष की जड़ खाने से हड्डियां जुटती हैं। इसे यदि मांसरस के साथ खाया जाये, तब वातरोग का नाश होगा। घृतलिप्त सत्तू बकरी के दूध में मिला कर पैर में लेप करे। पैर की जलन ठीक होगी। मधु, घृत, सेंधा नमक, मोम, गुड़, गेरु मिट्टी, गुग्गुलु, धूप को पीस कर लेप करे, क्लोम शुद्ध होगा। कीचड़ में अधिक चलने पर उंगलियों के बीच तथा तलवों में जो क्षत होता है, उस पर कटु तैल लगाकर धूमरहित अग्नि से तपाये। यह क्षत शान्त होगा। धूप, मोम, जीरा, हरें को पीस कर गर्म घृत में मिला कर शरीर पर लगाये। अग्नि से जले व्रण तथा उसकी व्यथा का निवारण होगा॥५०-५४॥

तिलतैलं चाग्निदग्धं यवभस्मसमन्वितम्। अग्निदग्धव्रणं नश्येद् बहुशः कृतलेपतः॥५५॥
नवनीतं माहिषञ्च दग्धपिष्टतिलानि च। सभल्लाकं व्रणं नश्येद्धृच्छूलं नस्यलेपतः॥५६॥
कर्पूरगव्यसर्पिर्भ्यां प्रहारः पूरितो हर। शस्त्रोद्भवो बन्धनञ्च शुक्लवस्त्रेण शङ्कर।
पाकश्च वेदना चैव न स्पृशेद् वृषभध्वज॥५७॥
आम्रमूलरसेनैव शस्त्रघातः प्रपूरितः। ढौकते शस्त्रघातः स्यान्निर्व्रणो घृतपूरितः॥५८॥
शरपुङ्खः लज्जालुका पाठा चैषान्तु मूलकम्।
जलपिष्टं तस्य लेपाच्छस्त्रघातः प्रशाम्यति॥५९॥

अग्नि से दग्ध करके बनी यव की भस्म तथा तिल तैल मिला कर पुनः-पुनः लेप करने से अग्निदग्ध घाव ठीक होगा। जला कर पीसी तिल तथा भिलावा पीस कर उसमें भैंस के दूध का मक्खन मिलाये। इससे लेप करने से अग्नि से जला घाव ठीक होगा तथा इसका नस्य सूंघने से हृदय पीड़ा निवृत्त होगी। यदि किसी अंग पर अधिक प्रहार हुआ हो अथवा शस्त्रजनित आघात लगा हो, वहां गोघृत तथा कर्पूर लगाये और श्वेत वस्त्र से बांधे। वह स्थान पकेगा ही नहीं अथवा वेदना भी नहीं होगी। शस्त्राघात स्थान पर घृत तथा आम की जड़ का रस भरे। वहां क्षत नहीं रहेगा। सरफोखा, लाजवन्ती तथा आकनादि, इन तीनों की जड़ जल में पीस कर लेप करे। शस्त्राघात जनित घाव ठीक होगा॥५५-५९॥

मूलञ्च काकजङ्घायास्त्रिरात्रेणैव शोषितः। पाकपूतिवेदनाञ्च हन्ति वै रोहिते व्रणे॥६०॥
सजलं तिलतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम्। तत्सेकदानान्नश्येच्च प्रहारोद्भववेदना॥६१॥
अभयां सैन्धवं शुण्ठीमेतत्पिष्ट्वोदकेन तु।
भक्षयित्वा ह्यजीर्णस्य नाशो भवति शङ्कर॥६२॥
कटिबद्धं निम्बमूलमक्षिशूलहरं भवेत्। शणमूलं सताम्बूलं दग्धमिन्द्रियकल्पहृत्॥६३॥
अन्नस्विन्नहरिद्रा च श्वेतसर्षपमूलकम्। बीजानि मातुलुङ्गस्य एषामुद्वर्त्तनं समम्।
सप्तरात्रप्रयोगेण शुभदेहकरं भवेत्॥६४॥

तीन दिन तक व्रणस्थान में काकजंघा की जड़ पीस कर भरे। उसमें पकना, दुर्गन्ध, वेदना नहीं होगी। वह शीघ्र भर जायेगा। जल, तिलतैल, अपामार्ग की जड़ के द्वारा सेंकने से प्रहार वेदना नष्ट होगी। हरीतकी, सेन्धा लवण तथा शुण्ठी को जल में पीस कर खाये। इससे अपच ठीक होगा। नीम की जड़ कमर

में बांधे। नेत्र पीड़ा दूर होगी। सन की जड़ तथा पान का पत्ता जला कर सेवन करे। इन्द्रियविकार ठीक हो जाते हैं। अन्न के साथ हल्दी पकाये। उसमें सफेद सरसों की जड़ तथा नींबू बीज पीसे। इसे ७ दिनों तक देह पर मले। सौन्दर्य बढ़ेगा॥६०-६४॥

श्वेतापराजितापत्रं निम्बपत्ररसेन तु। नस्यदानाद् डाकिनीनां पितॄणां ब्रह्मरक्षसाम्।
मोक्षः स्यान्मधुसारेण नस्याच्च वृषभध्वज॥६५॥
मूलं श्वेतजयन्त्याश्च पुष्यर्क्षे तु समाहृतम्।
श्वेतापराजितार्कस्य चित्रकस्य च मूलकम्।
कृत्वा तु वटिकां नारी तिलकेन वशीभवेत्॥६६॥
पिप्पलीलोहचूर्णन्तु शुण्टीश्चामलकानि च। समानि रुद्र जातीयात्सैन्धवं मधुशर्करा॥६७॥
उदुम्बरप्रमाणेन सप्ताहभक्षणात्समम्। पुमांश्च बलवान्स स्याज्जीवेद्वर्षशतद्वयम्।
ओं ठ ठ ठ इति सर्ववश्यप्रयोगेषु प्रयुक्तः सर्वकामकृत्॥६८॥

श्वेत अपराजिता के पत्ते को नीम के पत्ते के साथ पीसे। मधु मिला कर सूंघे। डाकिनी, पितर तथा ब्रह्मराक्षस जनित उपद्रव नष्ट होगा। श्वेत जयन्ती, श्वेत अपराजिता, आकन्द तथा चित्रक की जड़ पुष्य नक्षत्र में उखाड़े। उसे पीस कर बटी बनाये। इसे घिस कर तिलक करने से स्त्री वशीभूत होती है। पिप्पली, लौह चूर्ण, शुण्ठी, आमलकी, सैन्धव तथा मधु को समान मात्रा में लेकर गूलर के बराबर की वटी बनाये। इसे खाने से व्यक्ति बली होकर दो सौ वर्ष जीवित रहता है। "ॐ ठ ठ ठ" मन्त्र से सभी वशीकरण कर्म करे। इससे (तत्सम्बन्धित) सभी कामना पूर्ण होगी॥६५-६८॥

संगृह्य वृक्षात्काकस्य निलयं प्रदहेच्च तत्।
चिताग्नौ भस्म तच्छत्रोर्दत्तं शिरसि शङ्कर॥६९॥
तमुच्चाटयते रुद्र शृणु तद्योगमुत्तमम्। निक्षिप्तञ्च पुरीषं वै वनमूषिकचर्मणि॥७०॥
कटितन्तुनिबद्धं वै कुर्य्यान्मलनिरोधनम्।
कृष्णकाकस्य रक्तेन यस्य नाम प्रलिख्यते॥७१॥
च्युतदले मध्यमध्ये ततो निक्षिप्यते हर। स खाद्यते काकवृन्दैर्नारी पुरुष एव च॥७२॥
शर्करामध्वजाक्षीरं तिलगोक्षुरकं समम्। स शत्रुं नाशयेद्रुद्र उच्चाटितमिदं हर॥७३॥
उलूककृष्णाकाकस्य बिल्वस्याथ समिच्छतम्।
रुधिरेण समायुक्तं ययोर्नाम्ना तु हूयते।
तयोर्मध्ये महावैरं भवेन्नास्त्यत्र संशयः॥७४॥
भावितं ऋक्षदुग्धेन मत्स्यस्य रोहितस्य च।
मांसं तत्साधितं तैलं तदभ्यङ्गाच्च रोगनुत्।
चन्दनोदकनस्यात्तु रोमोत्थानं भवेत्पुनः॥७५॥

वृक्ष पर से कौये का घोंसला लाकर चिता की आग में जलाये। यह भस्म शत्रु के माथे पर छोड़े। शत्रु का उच्चाटन होगा। हे रुद्रदेव! अब अन्य उत्तम योग सुनिये। शत्रु का मल लेकर वन के मूषिक की खाल में भर कर सूत्र से बांध कर कमर में लपेटे। उस शत्रु का मल विसर्जन बन्द होगा। काले कौये के खून से जिसका नाम लिख कर अपवित्र जगह पर फेंका जायेगा, उसे कौये खायेंगे। शर्करा, मधु, बकरी का दुग्ध, तिल तथा गोखरु को बराबर लेकर प्रयोग करे (क्या प्रयोग करे, नहीं लिखा है) इससे शत्रु का उच्चाटन होगा तथा वे नष्ट होंगे। एक सौ बेल की समिधा को काले कौये के खून से सान कर होम करे। नामद्वय से आहुति की जायेगी, वह व्यक्तिद्वय (दो व्यक्ति का नाम लेकर आहुति देनी होगी, जिससे उस शत्रु की लड़ाई करानी हो) आपस में महा विद्वेष करेंगे। रोहित मछली का मांस लेकर भालू के दूध में उसकी भावना देकर तैल से पाक करे। यह तैल अंग में मालिश करने से सभी रोग शान्त होते हैं। कहीं का रोम गिर जाये, तब चन्दन मिले जल का नस्य लेना चाहिये। वहां के रोम पुनः उग आते हैं॥६९-७५॥

हस्ते लाङ्गलिकाकन्दं गृहीतं तेन लेपितम्। शरीरं येन स पुमान्वृद्धेर्दर्पं व्यपोहति॥७६॥
मयूररुधिरेणैव जीवं संहरते शिव। ज्वलतान्तु भुजङ्गानां बिलस्थानामपीश्वर॥७७॥
देहश्चितागनौ दग्धश्च सर्पस्याजगरस्य हि। तद्भस्म संमुखे क्षिप्तं शत्रुणां भङ्गकृद्भवेत्॥७८॥

मन्त्रेणानेन तत्क्षिप्तं महाभङ्गकरं रिपोः। ओं ठ ठ ठ चाहीहि चाहीहि स्वाहा। ओं उदरं पाहिहि पाहिहि स्वाहा॥७९॥

लांगली कन्द की जड़ हाथ में धारण (लेकर) उससे अंगों को लिप्त करे। वह वृद्धि रोग के दर्प को नाश कर सकेगा। हे शिव! मयूर के रक्त से जीव संहार होता है। बिल में स्थित क्रोधित सर्प अथवा अजगर के देह को चिता की आग में जलावे। उस भस्म को दुश्मन के सामने फेंके। शत्रु भस्म होंगे। पूर्व में कही सभी विधि हेतु दोनों मन्त्र से यह काम करना चाहिये। प्रथम मन्त्र है—"ॐ ठ ठ ठ चाहीहि चाहीहि स्वाहा" अन्य है "ॐ उदरं पाहिहि पाहिहि स्वाहा"॥७६-७९॥

सुदर्शनाया मूलं तु पुष्यर्क्षे तु समाहृतम्। निक्षिप्तं गृहमध्ये तु भुजङ्गा वर्जयन्ति तत्॥८०॥

अर्कमूलेन रविणा अर्काग्निज्वलिता शिव।
युक्ता सिद्धार्थतैलेन वर्त्तिर्मार्गाहिनाशिनी॥८१॥
मार्जारपललं विष्ठा हरितालञ्च भावितम्।
छागमूत्रेण तल्लिप्तो मूषिको मूषिकान्हरेत्॥८२॥
मुक्तो हि मन्दिरे रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा।
त्रिफलार्जुनपुष्पाणि भल्लातकशिरीषकम्॥८३॥

लाक्षा सर्जरसश्चैव विडङ्गश्चैव गुग्गुलुः। एतैर्धूपो मक्षिकाणां मषकाणां विनाशनः॥८४॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७७॥

सुदर्शना की जड़ पुष्यनक्षत्र में लाकर घर में छोड़े। सर्प उस गृह को त्याग देते हैं। रविवार को मदार की जड़ उखाड़ कर सरसों के तेल में पकाये। इसे मदार की रुई की बत्ती बना कर अग्निकुण्ड में जलाये (उपरोक्त तेल में भिंगो कर जलाये)। इस दीपक को लेकर पथ पर चलने से मार्ग के सर्पों का भय नहीं रहेगा। बिल्ली का मांस तथा विष्ठा की हरिताल में भावना देकर उसे बकरी के मूत्र से पीसे। इसे एक चूहे के शरीर पर लेप लगा कर घर में छोड़े। यह चूहा सभी चूहों का नाश कर देगा। त्रिफला, अर्जुन का पुष्प, भिलावा, लाक्षा, धूप, विड़ङ्ग, गुग्गुलु की धूप देने से मक्खी-मच्छड़ नष्ट होते हैं।।८०-८४।।

।।एक सौ सतहत्तरवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
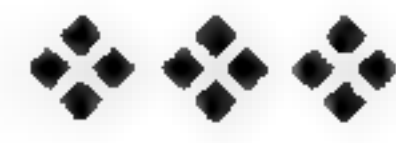
अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योगों का वर्णन

हरिरुवाच

ब्रह्मदण्डीवचाकुष्ठं प्रियङ्गुनागकेशरम्। दद्यात्ताम्बूलसंयुक्तं स्त्रीणां मन्त्रेण तद्वशम्।
ओं नारायण्यै स्वाहा।।१।।

ताम्बूलं यस्य दीयते स वशी स्यात्समन्त्रसः। ओं हरिः हरिः स्वाहा।।२।।

गोदन्तं हरितालञ्च संयुक्तं काकजिह्वया।
चूर्णं कृत्वा यस्य-यस्य शिरे दीयते स वशी भवेत्।
श्वेतसर्षपनिर्माल्यं यद्गृहे तद्विनाशकृत्।।३।।

वैभीतकं शाखोटकं मूलं पत्रञ्च संयुतम्। स्थाप्यते यद्गृहद्वारे तत्र वै कलहो भवेत्।।४।।

खञ्जरीटस्य मांसं तु मधुना सह पेषयेत्। ऋतुकाले योनिलेपात्पुरुषो दासतामियात्।।५।।

श्रीहरि कहते हैं—ब्रह्मदण्डी, वच, कूठ, प्रियंगु, नागकेशर को पान में रखकर स्त्री को देने से वह वश में होती है। इसका मन्त्र है—"ॐ नारायणि स्वाहा"। अन्य मन्त्र "ॐ हरि हरि स्वाहा" से जिसे भी पान दिया जायेगा, वह नारी वशीभूत होगी। गोदन्त, हरिताल, काकजिह्वा का चूर्ण करके जिसके मस्तक पर छोड़ा जायेगा, वह वशीभूत होगा। श्वेत सरसों, बिल्वपत्र जिसके घर में छोड़ा जायेगा, उसका नाश होगा। विभीतक वृक्ष तथा शाखोट की जड़ तथा पत्ता जिसके गृहद्वार पर रखा जायेगा, वहां नित्य कलह होगा। खंजन पक्षी का मांस मधु के साथ पीस कर योनि पर लगाने से (उस स्त्री से संभोग करने वाला) व्यक्ति उसका दास हो जायेगा।।१-५।।

अगुरुं गुग्गुलुञ्चैव नीलोत्पलसमन्वितम्। गुडेन धूपयित्वा तु राजद्वारे प्रियो भवेत्।।६।।

श्वेतापराजितामूलं पिष्टं रोचनया युतम्। यं पस्येत्तिलकेनैव वशी कुर्य्यान्नृपालये॥७॥
काकजङ्घा वचा कुष्ठं निम्बपत्रं सकुङ्कुमम्। आत्मरक्तसमायुक्तं वशी भवति मानवः॥८॥

आरण्यस्य विडालस्य गृहीत्वा रुधिरं शुभम्।
करञ्जतैले तद्भाव्यं रुद्राग्नौ कज्जलं ततः।
पातयेत्पद्मपत्रेण अदृश्यः स्यात्तदञ्जनात्॥९॥
ओं नमः खड्गवज्रपाणये महायक्षसेनापतये स्वाहा।
ओं रुद्रं ह्रां ह्रीं वरशक्ता त्वरिताविद्या।
ओं मातरः स्तम्भय स्वाहा।
महासुगन्धिकामूलं शुक्रं स्तम्भेत्कटौ स्थितम्॥१०॥

अगुरु, गुग्गुलु, नील कमल, गुड़ का धूप लेने से वह व्यक्ति राजप्रिय होगा। श्वेत अपराजिता की जड़ गोरोचन सहित पीसे तथा कपाल पर लगाये। राजभवन में वह जिसे देखेगा, वही उसके वश में होगा। काकजंघा, वच, कूठ, नीम का पत्ता, कुंकुम तथा अपना रक्त एक में पीस कर तिलक लगाये। यह वशीकरण करने वाला है। वन विलाव का रक्त लेकर उसमें करंज तैल की भावना देनी चाहिये। इसे पद्मपत्र पर लगा कर अग्नि की शिखा पर काजल पाड़े। इस कज्जल से अंजन लगाये। वह व्यक्ति सबके लिये अदृश्य होगा। मूल में लिखे मन्त्र से महा सुगन्धिका की जड़ को मन्त्रित करके बांह में बांधे। शुक्रस्तम्भन होगा (मन्त्र मूल में श्लोक १० में "ॐ नमः" से "स्वाहा" तक है)॥६-१०॥

ओं नमः सर्वसत्त्वेभ्यो नमः सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा करवीरस्य पुष्पकम्।
स्त्रीणामग्रे भ्रामयेच्च क्षणाद्वै सा वशा भवेत्॥११॥
ब्रह्मदण्डीवचापत्रं मधुना सह पेषयेत्। अङ्गलेपाच्च वनिता नान्यं भर्त्तारमिच्छति॥१२॥
ब्रह्मदण्डीशिखा वक्त्रे क्षिप्ता शुक्रस्य स्तम्भनम्।
मूलं जयन्त्या वक्त्रस्थं व्यवहारे जयप्रदम्॥१३॥
भृङ्गराजस्य मूलं तु पिष्टं शुक्रेण संयुतम्।
अक्षिणी चाञ्जयित्वा तु वशी कुर्य्यान्नरं किल॥१४॥
अपराजिताशिखान्तु नीलोत्पलसमन्विताम्।
ताम्बूलेन प्रदानाच्च वशीकरणमुत्तमम्॥१५॥

"ॐ नमः सर्वसत्वेभ्यो नमः सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा" मन्त्र से कनेर के पुष्प को मन्त्रित करके जिस स्त्री के आगे घुमाया जायेगा, वह क्षण में वशीभूत होगी। ब्रह्मदण्डी तथा वचा के पत्तों को मधु के साथ पीसे। इसे अपने अंग पर लिप्त करे। वह स्त्री अब अन्य पति नहीं चाहेगी। ब्रह्मदण्डी की जड़ मुख में धारण करे, इससे वीर्य स्तम्भन होगा। जयन्ती की जड़ मुख में रखने से मुकदमा, विवाद, पंचायत

आदि में विजय होगी। भृंगराज की जड़ अपने वीर्य के साथ पीस कर दोनों नेत्र में लगाये। सभी वशीभूत होंगे। अपराजिता की जड़ तथा नील कमल को ताम्बूल में रख कर देने से उत्तम वशीकरण होगा (जो इस ताम्बूल को खायेगा, वह वशीभूत होगा)॥११-१५॥

अङ्गुष्ठे च पदे गुल्फे जानौ च जघने तथा।
नाभौ वक्षसि कुक्षौ च कक्षे कण्ठे कपोलके॥१६॥
ओष्ठे नेत्रे ललाटे च मूर्ध्नि चन्द्रकलाः स्थिताः।
स्त्रीणां पक्षे सिते कृष्णे ऊर्ध्वाधः संस्थिता नृणाम्॥१७॥
वामाङ्गे दक्षिणाङ्गे च क्रमाद्रुद्र द्रवादिकृत्।
चतुःषष्टिकलाः प्रोक्ताः कामशास्त्रे वशीकराः।
आलिङ्गनाद्या नारीणां कुमारीणां वशीकराः॥१८॥

रोचनागन्धपुष्पाणि निम्बपुष्पं प्रियङ्गवः। कुङ्कुमं चन्दनञ्चैव तिलकेन जगद्वशेत्।
ओं ह्रीं गौरि देवि सौभाग्यं पुत्रवश्यादि देहि मे।
ओं ह्लीं लक्ष्मि देवि सौभाग्यं सर्वं त्रैलोक्यमोहनम्॥१९॥

अंगूठा, पैर, गुल्फ, जानु, जंघा, वक्ष, कुक्षि, कक्ष, कण्ठ, कपोल, ओष्ठ, ललाट, नेत्र, मस्तक पर चन्द्रकला रहती है। स्त्रीगण के ऊर्ध्व भाग में शुक्लपक्ष में तथा कृष्णपक्ष में अधोभाग में रहती है। यही पुरुषों के अधोभाग में शुक्लपक्ष में तथा ऊर्ध्वभाग में कृष्णपक्ष में रहती है। हे रुद्रदेव! स्त्रीगण के वामांग में तथा पुरुषों के दक्षिणांग में काम रहता है। अत: उन-उन अंग का उस-उस पक्ष में आलिंगन करने से स्त्री अथवा पुरुष वश में होते हैं। कामशास्त्र में वश में करने वाली ६४ कलायें वर्णित हैं। कुमारीगण के लिये आलिंगनादि से वशीकरण होता है। रोचना, गन्धपुष्प, नीम का फूल, प्रियंगु, कुंकुम, चन्दन एक में पीस कर तिलक लगाये। जगत् वश में होगा। यह सब कार्य मूलोक्त श्लोक १९ पढ़ कर करे॥१६-१९॥

सुगन्धञ्च हरिद्रा च कुङ्कुमानि च लेपतः। वशयोद्रुद्र धूपश्च पुष्पधूपं सुगन्धिकम्॥२०॥
दुरालभा वचा कुष्ठं कुङ्कुमञ्च शतावरी। तिलतैलेन संयुक्तं योनिलेपाद्वशो नरः॥२१॥
निम्बकाष्ठस्य धूमेन धूपयित्वा भगं स्त्रियः।
सुभगा स्यात्साति रुद्र पतिर्दासो भविष्यति॥२२॥
माहिषं नवनीतञ्च कुष्ठञ्च मधुयष्टिका। सौभाग्यं भगलेपात्स्यात्पतिर्दासो भवेत्तथा॥२३॥

सुगन्ध, हल्दी, कुंकुम तथा पुष्प-धूप को पीस कर अंग में लेपन करने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं। दुरालभा, वच, कूठ, कुंकुम, शतमूली को पीस कर तिल तैल के साथ मिलाये। यह तैल्य अपने गुप्त अंग में लेपन करके नारी पुरुष को वश में कर लेती है। नीम की लकड़ी की धूप से अपने अंग को धूपित करके नारी सुभग हो जाती है। उसका पति सदा उसका दास बना रहेगा। भैंस का मक्खन, कूठ, मुलेठी पीस कर अपने उत्तम अंगों (स्तन, योनि आदि) पर लेपन करने से उस नारी का पति स्त्री का दास हो जाता है॥२०-२३॥

मधुयष्टिञ्च गोक्षीरं तथा च कण्टकारिका। एतानि समभागानि पिबेदुष्णेन वारिणा।
चतुर्भागावशेषेण गर्भसम्भवमुत्तमम्॥२४॥

मुलेठी, गो का दुग्ध, कण्टकारी समान भाग में लेकर इसे गर्म जल से पीये अर्थात् दूध में मुलेठी तथा कण्टकारी पकाये। जब दूध १/४ भाग बचे, तब बचा द्रव्य गर्म पानी से पीये। इससे स्त्री को गर्भ ठहर जायेगा॥२४॥

मातुलुङ्गस्य बीजानि क्षीरेण सह भावयेत्।
तत्पीत्वा लभते गर्भं नात्र कार्य्या विचारणा॥२५॥
मातुलुङ्गस्य बीजानि मूलान्येरण्डकस्य च। घृतेन सह संयोज्य पाययेत्पुत्रकांक्षिणी॥२६॥
अश्वगन्धाघृतं दुग्धं क्वथितं पुत्रकारकम्। पलाशस्य तु बीजानि क्षौद्रेण सह पेषयेत्।
रजस्वला तु पीत्वा स्यात्पुष्पगर्भविवर्जिता॥२७॥

।।इति गारुडे महापुराणे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७८।।

मातुलुंग के बीजों को दुग्ध की भावना देकर पान करे। स्त्री को गर्भ रहेगा। इसमें अन्यथा विचार न करे। मातुलंग का बीज तथा रेड़ की जड़ घी से पीस कर पीये। इससे नारी को पुत्रलाभ होगा। असगन्ध तथा घृत को दूध में पकाकर काढ़ा पीये। पुत्र प्रसव होगा। पलाश का बीज मधु के साथ पीस कर रजस्वला नारी पान करे। वह नारी पुष्प तथा गर्भरहित होगी॥२५-२७॥

॥एक सौ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
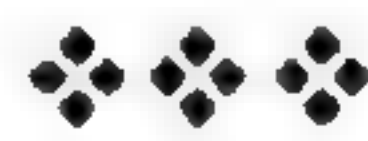
ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

विविध योग वर्णन

हरिरुवाच

हरितालं यवक्षारं पत्राङ्गं रक्तचन्दनम्। जातिहिङ्गुलकं लाक्षां पक्त्वा दन्तान्प्रलेपयेत्॥१॥
हरीतकीकषायेण मृष्ट्वा दन्तान्प्रलेपयेत्।
दन्ताः स्युर्लोहिताः पुंसः श्वेता रुद्र न संशयः॥२॥
मूलकं स्विद्य मन्दाग्नौ रसं तस्य प्रपूरयेत्। कर्णयोः पूरणात्तेन कर्णस्त्रावो विनश्यति॥३॥
अर्कपत्रं गृहीत्वा तु मन्दाग्नौ तापयेच्छनैः। निष्पीड्य पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलं विनश्यति॥४॥

प्रियङ्गुमधुकायष्टिधातक्युत्पलपंक्तिभिः। मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्वरसेन च।
पचेत्तैलं तथा स्त्रीणां नश्येत्क्लेदः प्रपूरणात्॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—हरिताल, जवाखार, तेजपत्ता, लाल चन्दन, जातीफल, हिंगुल, लाक्षा को पके तैल से पीसे। हरीतकी के कषाय द्वारा दांत मांज कर पूर्वोक्त औषधि का लेप करने से लाल दांत भी श्वेत हो जाते हैं। मन्द अग्नि में मूली पका कर उसके रस को कान में टपकाये। कर्ण का स्राव ठीक होगा। आकन्द की पत्ती मन्द अग्नि में तनिक तपा कर उसे निचोड़ कर रस निकाले। इसे कान में टपकाने से कान की पीड़ा निवृत्त होगी। प्रियंगु, मुलेठी, घातकी, उत्पल, मजीठ, लोध्र, लाक्षा, कदबेल का स्वरस यह सब तैलपाक करे। इसे भरने से स्त्री का स्रावदोष ठीक हो जाता है॥१-५॥

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु महौषधम्। शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रु रसायनम्॥६॥
सौवर्चलं यवक्षारं तथा सर्जकसैन्धवम्। तथा ग्रन्थि विडं मुस्तं मधुयुक्तं चतुर्गुणम्॥७॥
मातुलुङ्गरसस्तद्वत्कदल्याश्च रसो हि तैः। पक्वतैलं हरेदाशु स्रावादींश्च न संशयः॥८॥
कर्णयोः कृमिनाशाः स्यात्कटुतैलस्य पूरणात्।
हरिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च॥९॥
विडङ्गभद्रं मुस्तञ्च सप्तमं विश्वभेषजम्। गोमूत्रेण च पिष्ट्वैव कृत्वा च वटिकां हर।
अजीर्णहृद्द्रवेच्चैकं द्वयं विसूचिकापहम्॥१०॥
पटोलं मधुना हन्ति गोमूत्रेण तथार्बुदम्। एषा च शङ्करी वर्तिः सर्वनेत्रामयापहा॥११॥

॥इति गारुडे महापुराणे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७९॥

—※※※—
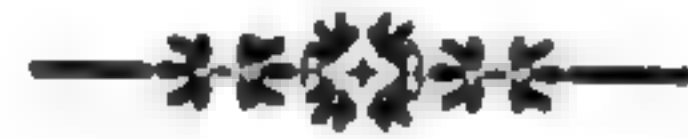
सूखी मूली, शुण्ठी की भस्म, हींग, शतपुष्पा, वचा, कूठ, दारु हल्दी, सहजन, रसायन (पाठभेद से रसांजन), सौवर्चल, यवक्षार, धूप, सेन्धा नमक, पिप्पली को पीस कर उसमें चौगुना शहद तथा नींबू का एवं केले का रस मिलाये, तब तैल में पकाये। इसके व्यवहार से नारीगण का स्राव आदि दोष नाश होगा। कान में कटु तैल छोड़ने से कान के क्रिमि मर जाते हैं। हल्दी, नीम की पत्ती, पिप्पली, मरीच, बायबिड़ङ्ग, मोथा, शुण्ठी को गोमूत्र के साथ पीस कर बटी बनाये। एक बटी नित्य खाने से अजीर्ण नष्ट होता है। दो खाने से विसूचिका नाश होगा। यह वटी मधु के साथ घिस कर चक्षु में लगाये, पटलरोग नाश होगा। गोमूत्र के साथ लगाने से अर्बुदरोग नाश होगा। इसे शंकरी बत्ती कहते हैं। यह सभी नेत्ररोगनाशक है॥६-११॥

॥एक सौ उन्यासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

विविध योग वर्णन

हरिरुवाच

वचा मांसी च बिल्वञ्च तगरं पद्मकेशरम्। नागपुष्पं प्रियङ्गुञ्च समभागानि चूर्णयेत्।
अनेन धूपितो मर्त्यः कामवद्विचरेन्महीम्॥१॥
कर्पूरं देवदारुञ्च मधुना सह योजयेत्। लिङ्गलेपाच्च तेनैव वशीकुर्य्यात्स्त्रियं किल॥२॥
मैथुनं पुरुषो गच्छेद् गृह्णीयात्स्वकमिन्द्रियम्।
वामहस्तेन वामञ्च हस्तं यस्याः स्त्रिया लिहेत्।
आलिप्ता स्त्री वशं याति नान्यं पुरुषमिच्छति॥३॥
ओं रक्तचामुण्डे अमुकं मे वशमानय आनय। ओं ह्रीं ह्रौं ह्रः फट्॥४॥
सैन्धवं कृष्णलवणं सौवीरं मत्स्यपित्तकम्। मधुसर्पिःसितायुक्तं स्त्रीणां तद्भगलेपनम्॥५॥
यः पुमान्मैथुनं गच्छेन्नान्यां नारीं गमिष्यति।
शङ्खपुष्पी वचा मांसी सोमराजी च फल्गुकम्॥६॥

श्रीहरि कहते हैं—हे रुद्र! वच, जटामांसी, बेल, तगर, पद्मकेशर, नागपुष्प, प्रियंगु को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाये। इसकी धूप लेने से व्यक्ति पृथिवी पर यथेच्छ चल सकता है। कपूर, देवदारु को मधु से पीसे। इसे शिश्न पर लगाने वाला व्यक्ति सभी नारियों को वशीभूत कर सकेगा। पुरुष स्त्री संगम के समय लिंग पकड़ कर स्त्री का वाम हस्त पकड़ कर इसे लेप करे। ऐसा करने पर वह स्त्री अन्य पुरुष को नहीं चाहती। मन्त्र यह है—ॐ रक्तचामुण्डे अमुकं मे वशमानय आनय ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रः फट्'' यह मन्त्र जप कर गोरोचन तथा अपने रक्त का तिलक लगाये। वशीकरण होगा। 'अमुक' की जगह जिसे वशीभूत करना हो, उसका नाम लेना चाहिये। सैन्धव, कृष्ण लवण, सौवीराञ्जन, मछली का पित्त, मधु, घी, चीनी को पीस कर स्त्री अंग पर लिप्त करे। तब जो पुरुष उस स्त्री से संभोग करेगा, वह अन्य स्त्री की कामना नहीं करेगा॥१-६॥

माहिषं नवनीतञ्च गुटीकरणमुत्तमम्। सनलानि च पक्षाणि क्षीरेणाज्येन पेषयेत्॥७॥
गुटिकां शोधितां कृत्वा नारीयोन्यां प्रवेशयेत्।
दशवारं प्रसूतापि पुनः कन्या भविष्यति॥८॥
सर्षपाश्च वचा चैव मदनस्य फलानि च। मार्जारविष्ठाधुस्तूरं स्त्रीकेशेन समन्वितः॥९॥
चातुर्थकहरो धूपो डाकिनीज्वरनाशकः। अर्जुनस्य च पुष्पाणि भल्लातकविडङ्गके॥१०॥
बाला चैव सर्जरसं सौवीरसर्षपास्तथा। सर्पयूकामक्षिकाणां धूमो मशकनाशनः॥११॥

भूलतायाश्च चूर्णेन स्तम्भः स्याद्योनिपूरणात्।
तेन लेपनतो योनौ भगस्तम्भस्तु जायते॥१२॥

।।इति गारुडे महापुराणे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८०।।

शंखपुष्पी, वच, जटामासी, सोमराजी अबीर तथा भैंस के दुग्ध का मक्खन मिलाकर वटी बनाये। नाल के साथ कमल तथा घृत के साथ इस वटी को पीस कर पुनः वटी बनाये। नारी की योनि में यह गुटिका रखे। दस बच्चों की माता भी कन्यावत् हो जायेगी। सरसों, वच, मदनफल, बिल्ली की विष्ठा, धतूरा बीज, स्त्री के बाल की धूप लेने से चातुर्थकज्वर तथा डाकिनीज्वर का नाश होगा। अर्जुन का पुष्प, भिलावा, बायबिड़ङ्ग, बाला, धूप, सौवीराञ्जन तथा सरसों की धूप देने से सर्प, जूं, मक्खी तथा मशक आदि भाग जाते हैं। भूमि कूष्माण्ड के चूर्ण से योनि भर दे। उसके बाहर इस चूर्ण का लेपन करे। अंग का संकुचन होगा॥७-१२॥

।।एक सौ अस्सीवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

हरिरुवाच

ताम्बूलञ्च घृतं क्षौद्रं लवणं ताम्रभाजने। तथा पयःसमायुक्तं चक्षुःशूलहरं परम्॥१॥
हरीतकी वचा कुष्ठं व्योषं हिङ्गु मनःशिला।
कासे श्वासे च हिक्कायां लिह्यात्क्षौद्रं घृतप्लुतम्॥२॥
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुना लेहयेन्नरः। नश्यते पीनसः कासः श्वासश्च बलवत्तरः॥३॥
समूलचित्रकं भस्म पिप्पलीचूर्णकं लिहेत्।
श्वासं कासञ्च हिक्काञ्च मधुमिश्रं वृषध्वज॥४॥
नीलोत्पलं शर्करा च मधुकं पद्मकं समम्। तण्डुलोदकसंमिश्रं प्रशमेद्रक्तविक्रिया॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—हे शिव! ताम्बूल, घृत, मधु तथा लवण को ताम्रपात्र में दुग्ध के साथ मले। इसे नेत्र में लगाने से नेत्रपीड़ा नष्ट हो जाती है। (बहेड़ा बीज, हरिताल, मैनसिल को बकरी के दूध में पीस कर अंजन लगाने से सभी प्रकार का नेत्ररोग दूर हो जाता है। मालती फूल को पीस कर अंजन लगाये।

तत्क्षण चक्षुरोग दूर होता है।)[१] हरीतकी, वच, कूठ, त्रिकटु, हींग, मैनसिल को घृत एवं मधु के साथ चाटे। कास, श्वास, हिचकी नष्ट होगी। पिप्पली चूर्ण तथा त्रिफला चूर्ण को मधु के साथ चाटे। हे वृषध्वज! इससे वली श्वास, कास, पीनस नाश होता है। चित्रक की जड़ तथा चित्रक की भस्म को मधु तथा पिप्पली चूर्ण में मिला कर चाटे। श्वास-कास-हिचकी का नाश होगा। नीलकमल, चीनी, मधु, पद्म को सम भाग लेकर मिलाये तथा चावल की धोअन के साथ पान करे। रक्तविकार शान्त होगा॥१-५॥

शुण्ठी च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता।
कोकिलस्वर एव स्याद् गुण्डिकाभुक्तिमात्रतः॥६॥
हरितालं शङ्खचूर्णं कदलीदलभस्मना। एतदद्रव्येण चोद्वर्त्त्यं लोमशातनमुत्तमम्॥७॥
लवणं हरितालञ्च तुम्बिन्याश्च फलानि च। लाक्षारससमायुक्तं लोमशातनमुत्तमम्॥८॥
सुधा च हरितालञ्च शङ्खभस्म मनःशिला। सैन्धवेन सहैकत्र छागमूत्रेण पेषयेत्।
तत्क्षणाद्वर्त्तनादेव लोमशातनमुत्तमम्॥९॥
शङ्खमामलकं पत्रं धातक्याः कुसुमानि च।
पिष्ट्वा तत्पयसा सार्द्धं सप्ताहं धारयेन्मुखे।
स्निग्धाः श्वेताश्च दन्ताश्च भवन्ति विमलप्रभाः॥१०॥

।इति गारुडे महापुराणे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८१॥

शुण्ठी, चीनी को मधु में मिला कर वटी बनाये। इसे खाने से कण्ठ स्वर कोकिलवत् होगा। हरिताल, शंखचूर्ण, कदलीदल की भस्म को मिला कर अंगों पर लेपन करे। सभी रोम गिर जायेंगे। हरिताल, नमक, तुम्बीफल को लाक्षारस में मिला कर लेप करे। लोम गिर जायेंगे। विष, हरताल, शंखभस्म, मैनसिल तथा सैन्धव मिला कर बकरी के मूत्र से पीसे। इसे देह पर लगाने से लोम गिर जायेंगे। शंख, आमलकी पत्र, धौ का फूल दुग्ध में पीस कर सप्ताह भर मुख में रखे। सभी दांत विमल प्रभा वाले, श्वेत तथा चमकीले होंगे॥६-१०॥

॥एक सौ एक्यासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

---

१. बंगभाषा संस्करण में यहां एक श्लोक अतिरिक्त है, जिसे ब्रैकेट में अनुवाद किया गया है। मूल यह है—

विभीतकस्य बीजानि हरितालं मनःसिला।
सर्वाक्षि रोगान् मन्येयुरजाक्षीर समन्विता।
तत्क्षणात् पुष्पनाशः स्यान्मालतीकुसुमाञ्जनात्॥

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

विविध योग वर्णन

हरिरुवाच

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्। हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते॥१॥
भुक्ते तु शर्करा पीता नवनीतेन बुद्धिकृत्। गुडस्य तु पुराणस्य पलमेकन्तु भक्षयेत्।
स्त्रीसहस्त्रञ्च गच्छेच्च पुमान्बलयुतो हर॥२॥
कुष्ठं संचूर्णितं कृत्वा घृतमाक्षिकसंयुतम्। भक्षयेत्स्वप्नवेलायां बलीपलितनाशनम्॥३॥
अतसीमाषगोधूमचूर्णं कृत्वा तु पिप्पलीम्। घृतेन लेपयेद् गात्रमेभिः सार्द्धं विचक्षणः।
कन्दर्पसदृशो मर्त्यो नित्यं भवति शङ्कर॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—हे रुद्र! शरत्, ग्रीष्म, वसन्त में दधि न खाये। हेमन्त, शिशिर तथा वर्षा में इसे लेना उत्तम है। मक्खन तथा शर्करा मिलाकर खाये। बुद्धि बढ़ेगी। हे हर! यदि कोई व्यक्ति लगातार एक वर्ष तथा एक पल पुराना गुड़ खाये, वह इतना बली होगा कि एक हजार स्त्री भोग से भी नहीं थकेगा। कूठ को चूर्ण करके घृत तथा मधु के साथ रात्रि में सोने के पूर्व खा ले। उसके वली पलित आदि लक्षणों का नाश होगा। हे शंकर! तीसी, उर्द, गेहूं तथा पिप्पली का चूर्ण करके घृत के साथ नित्य अंगों पर लगाने वाला कामदेव जैसी कान्ति प्राप्त करेगा॥१-४॥

यवास्तिलाश्वगन्धा च मुषली सरला गुडम्।
एभिश्च रचितां जग्ध्वा तरुणो बलवान्भवेत्॥५॥
हिङ्गुं सौवर्चलं शुण्ठीं पीत्वा तु क्वथितोदकैः।
परिणामाख्यशूलञ्च अजीर्णञ्चैव नश्यति॥६॥
धातकीं सोमराजीञ्च क्षीरेण सह पेषयेत्। दुर्बलश्च भवेत्स्थूलो नात्र कार्य्या विचारणा॥७॥
शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं बली लिहेत्। क्षीराशी च क्षयी पुष्टिं मेधाञ्चैवातुलां लभेत्॥८॥
कुलीरचूर्णं सक्षीरं पीतञ्च क्षयरोगनुत्। भल्लातकं विडङ्गञ्च यवक्षारञ्च सैन्धवम्॥९॥
मनःशिलाशङ्खचूर्णं तैलपक्वं तथैव च।
लोमानि शातयत्येव नात्र कार्य्या विचारणा॥१०॥
मालूरस्य रसं गृह्य जलौकां तत्र पेषयेत्। हस्तौ संलेपयेत्तेन अग्निस्तम्भमनुत्तमम्॥११॥
शाल्मलीरसमादाय खरमूत्रे निधाय तम्। अग्न्यादौ विक्षिपेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम्॥१२॥
वायस्या उदरं गृह्य मण्डूकवसया सह। गुटिकां कारयेत्तेन ततोऽग्नौ संक्षिपेत्सुधीः।
एवमेतत्प्रयोगेण अग्निस्तम्भनमुत्तमम्॥१३॥

मुण्डीतकवचामुस्तं मरिचं तगरं तथा। चर्वित्वा च इमं सद्यो जिह्वया ज्वलनं लिहेत्॥१४॥

गोरोचनां भृङ्गराजं चूर्णीकृत्य घृतं समम्।
दिव्याम्भसः स्तम्भनं स्यान्मन्त्रेणानेन वै तथा।
ओं अग्निस्तम्भनं कुरु कुरु॥१५॥

ओं नमो भगवते जलं स्तम्भय सं सं सं केक केक चर चर।
जलस्तम्भनमन्त्रोऽयं जलं स्तम्भयते शिव॥१६॥

जौ, तिल, असगन्ध, तालमूली, सरलकाष्ठ, गुड़ को पीस कर मिला कर खाने वाला तरुण अतीव बली होगा। हींग, सौवर्चल, शुण्ठी का काढ़ा पीने वाला परिणामशूल तथा अपच से मुक्त होगा। धौ का फूल, सोमराजी को दूध में पीस कर खाये। दुर्बल भी बली होगा। शर्करा को मधु के साथ मक्खन में पीसे। इसे चाट कर दुग्ध पान करने से क्षयरोगी भी अतुल पुष्टि तथा मेधालाभ करता है। कुलीर चूर्ण को दुग्ध के साथ पीने से क्षयरोग नष्ट होगा। भिलावा, बायविड़ङ्ग, जवाखार, मैनसिल, शंखचूर्ण को तैल में पका कर अंगों में लेप करे। सभी रोम गिर जायेंगे। बिल्व की जड़ के रस के साथ जोंक को पीस कर उत्तम रूप से हाथों पर लिप्त करे। यह योग उत्तम है। आग को हाथ पर रखने से भी हाथ नहीं जलेगा। शाल्मली का रस तथा गर्दभ मूत्र मिलाकर अग्नि में छोड़े। अग्नि स्तम्भन होगा। कौये (मादा कौआ) का उदर तथा मेंढक की चर्बी मिलाकर गुटिका बनाये। मन्त्र पढ़े—"ॐ अग्निस्तम्भनं कुरु कुरु"। तब इस गुटिका को अग्नि में फेंके। उत्तम अग्निस्तम्भन होगा। मुण्डीतक, वचा, मोथा, मरीच, तगर को चर्वण करे। वह अविलम्ब जिह्वा से अग्नि को चाट सकेगा। गोरोचन, भृंगराज को पीस कर घृत के साथ सम मात्रा में मिलाये। इससे जल स्तम्भन होगा। जल स्तम्भन मन्त्र मूल में श्लोक १६ में लिखा है। इससे जलस्तम्भन कार्य करना होगा॥५-१६॥

गृध्रास्थि च गवास्थि च तथा निर्माल्यमेव च।
अरेर्यो निखनेद् द्वारे पञ्चत्वमुपयाति सः॥१७॥
पञ्चरक्तानि पुष्पाणि पृथग्जात्याः समालभेत्।
कुङ्कुमेन समायुक्तमात्मरक्तसमन्वितम्॥१८॥
पुष्पेण तु समं पिष्ट्वा रोचनायाः पलैकतः।
स्त्रिया पुंसा कृतो रुद्र तिलकोऽयं वशीकरः॥१९॥

गृध्र की हड्डी, गाय की हड्डी तथा निर्माल्य को शत्रु के दरवाजे पर गाड़े। वह शत्रु निश्चित मृत होगा। पृथक्-पृथक् जाति वाले पांच लाल फूल, कुंकुम, अपना खून, पुष्प तथा गोरोचन को एक-एक पल लेकर पीसे। इसका मस्तक पर तिलक लगाये। स्त्री-पुरुष सभी वश में होंगे॥१७-१९॥

ब्रह्मदण्डी तु पुष्पेण भक्ष्ये पाने वशीकरः। यष्टिमधुपलैकेन पक्वमुष्णोदकं पिबेत्॥२०॥
विष्टम्भिकाञ्च हृच्छूलं हरत्येव महेश्वर।
ओं हूं जः। मन्त्रोऽयं हरते रुद्र सर्ववृश्चिकजं विषम्॥२१॥

पिप्पली नवनीतञ्च शृङ्गवेरञ्च सैन्धवम्। मरिचं दधि कुष्ठञ्च नस्ये पाने विषं हरेत्॥२२॥
त्रिफलाद्रककुष्ठञ्च चन्दनं घृतसंयुतम्। एतत्पलाच्च लेपाच्च विषनाशो भवेच्छिव॥२३॥

ब्रह्मदण्डी की जड़ पुष्यनक्षत्र में लाये तथा उसका खाद्य तथा जल के साथ जिसे दिया जायेगा, वह वशीभूत होगा। मुलेठी एक पल गर्म जल के साथ पीये। इससे विष्टम्भ तथा हृदय की वेदना समाप्त होगी। हे रुद्र! "ॐ हूं जः" मन्त्र सभी तरह के बिच्छू विष को दूर करता है। पिप्पली, नवनीत, अदरख, सैन्धव, मरीच, दधि, कूठ का नस्य सूंघे अथवा पान करे। विषदोष नष्ट होगा। त्रिफला, अदरख, कूठ, चन्दन, घृत सभी एक-एक पल (आठ तोला) लेकर लेप करने वाले का विषदोष शान्त होगा॥२०-२३॥

पारावतस्य चाक्षीणि हरितालं मनःशिला। एतद्योगाद्विषं हन्ति वैनतेय इवोरगान्॥२४॥

सैन्धवं त्र्यूषणं चूर्णं दधिमध्वाज्यसंयुतम्।
वृश्चिकस्य विषं हन्ति लेपोऽयं वृषभध्वज॥२५॥
ब्रह्मदण्डीतिलान्क्वाथ्य चूर्णं त्रिकटुकं पिबेत्।
नाशयेद्रुद्र! गुल्मानि निरुद्धं रक्तमेव च॥२६॥

पीत्वा क्षीरं क्षौद्रयुतं नाशयेदसृजः स्रुतिम्। आटरूषकमूलेन भगं नाभिञ्च लेपयेत्।
सुखं प्रसूयते नारी नात्र कार्य्या विचारणा॥२७॥

शर्करा मधुसंयुक्तां पीत्वा तण्डुलवारिणा। रक्तातिसारशमनं भवतीति वृषध्वज॥२८॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८२॥

हे शिव! कबूतर के नेत्र, हरताल तथा मैनसिल को पीस कर सेवन करने वाला उसी प्रकार विषदोष का संहार करता है, जैसे गरुड़ सर्पसंहार करते हैं। सैन्धव तथा त्रिकूट चूर्ण करके दही, मधु तथा घृत के साथ लेपन करे। वृश्चिकविष नाश होगा। ब्रह्मदण्डी तथा तिल का काढ़ा त्रिकटुचूर्ण के साथ पीये। ऋतुदोष जन्य रोग नष्ट होगा। इसी से गुल्मनाश भी होगा। मधु, दुग्ध मिलाकर पीये। रक्तस्राव रुकेगा। वासन की जड़ पीस कर नाभि एवं योनि पर लेप लगाये। स्त्रियों को सुख से प्रसव होगा। हे वृषध्वज! चावल की धोअन के साथ चीनी तथा मधु मिलाकर पीने से रक्तातिसार शमन होगा॥२४-२८॥

॥एक सौ बयासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
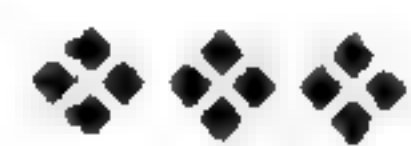
त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

हरिरुवाच

मरिचं शृङ्गवेरञ्च कुटजत्वचमेव च। पानाच्च ग्रहणी नश्येच्छशाङ्काकृतिशेखर॥१॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं तगरं वचा। देवदारुरसं पाठां क्षीरेण सह पेषयेत्॥२॥
अनेनैव प्रयोगेण अतीसारो विनश्यति। मरिचतिलपुष्पाभ्यामञ्जनं कामलापहम्॥३॥
हरीतकी समगुडा मधना सह योजिता। विरेचनकरी रुद्र भवतीति न संशयः॥४॥

श्रीहरि कहते हैं—हे शशांकशेखर! मरीच, अदरख, कुटज की छाल का सेवन जो करता है, उसका ग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, मरीच, तगर, वच, देवदारु, पाठा को दुग्ध में पीसे। इस प्रयोग से अतिसार विनष्ट हो जाता है। मरीच, तिलपुष्प पीस कर अंजन लगाने से कामलारोग नष्ट होगा। हे रुद्र! हर्रे तथा गुड़ बराबर लेकर मधु से खाये। विरेचन होगा। इसमें संशय नहीं है॥१-४॥

त्रिफला चित्रकं चित्रं तथा कटुकरोहिणी। ऊरुस्तम्भहरो ह्येष उत्तमं तु विरेचनम्॥५॥
हरीतकी शृङ्गवेरं देवदारु च चन्दनम्। क्वाथयेच्छागदुग्धेन अपामार्गस्य मूलकम्।
जयन्त्या वा चोरुस्तम्भं सप्तरात्रे तु नाशयेत्॥६॥
अनन्तशृङ्गवेरञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। गुग्गुलुं गुडतुल्यञ्च गुलिकामुपयुज्य च।
वायुं स्नायुगतञ्चैव अग्निमान्द्यञ्च नाशयेत्॥७॥
शङ्खपुष्पीन्तु पुष्येण समुद्धृत्य सपत्रिकाम्। समूलां छागदुग्धेन अपस्मारहरं पिबेत्॥८॥
अश्वगन्धाभया चैव उदकेन समं पिबेत्। रक्तपित्तं विनश्येत नात्र कार्य्या विचारणा॥९॥
हरीतकीकुष्ठचूर्णं कृत्वा आस्यञ्च पूरयेत्।
शीतं पीत्वाथ पानीयं सर्वच्छर्दिनिवारणम्॥१०॥

त्रिफला, चित्रक, कटुकी खाने से विरेचन होगा तथा उरुस्तम्भ का नाश होगा। हरीतकी, अदरख, देवदारु, रक्तचन्दन, अपामार्ग की जड़ तथा जयन्ती की जड़ को बकरी के दुग्ध में पकाये। यह काढ़ा पान करे। एक सप्ताह मात्र पान करने से उरुस्तम्भ नष्ट होगा। अनन्तमूल तथा अदरख उत्तम रूप से चूर्ण करके उसके बराबर गुड़ तथा गुग्गुलु मिलाये। इस गोली का सेवन करने से वायुरोग, स्नायु के रोग तथा अग्निमन्दता नष्ट होगी। पुष्यनक्षत्र में शंखपुष्पी उखाड़ कर उसकी जड़ तथा पत्ता सहित बकरी के दूध में पका कर पान करे। अपस्मार का नाश होगा। असगन्ध तथा हरीतकी को जल के साथ पान करने से रक्तपित्त नष्ट होगा। हरीतकी तथा कूठ को चूर्ण करके मुख में भर कर ऊपर से शीतल जल पीये। सभी प्रकार के वमन रोग का निवारण होगा॥५-१०॥

गुडुचीपद्मकारिष्टधन्याकं रक्तचन्दनम्। पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहतृष्णाघ्नमग्निकृत्। ओं हुं नम इति॥११॥

श्रोत्रे बद्धा शङ्खपुष्पी ज्वरं मन्त्रेण वै हरेत्।

ओं जम्भिनी स्तम्भिनी मोहय सर्वव्याधीन्मे वज्रेण ठः ठः सर्वव्याधीन्मे वज्रेण फट् इति॥१२॥

गुरुच, पद्मकाष्ठ, कूठ, धनियां, लालचन्दन ये सब द्रव्य पित्तश्लेष्मजज्वर, वमन, दाह, तृष्णा दूर करते हैं। ये अग्नि वृद्धि भी करते हैं। "ॐ हुं नमः" से यह सब कार्य करना चाहिये। कान में इस मन्त्र से शंखपुष्पी बांधे। मन्त्रशक्ति से ज्वर चला जायेगा। मन्त्र है—"ॐ जम्भिनी स्तम्भिनी मोहय सर्व व्याधिन्मे वज्रेण ठः ठः सर्व व्याधीन्मे वज्रेण फट्"॥११-१२॥

पुष्पमष्टशतं जप्त्वा हस्ते दत्त्वा नखं स्पृशेत्।
चातुर्थको ज्वरो रुद्र अन्ये चैव ज्वरास्तथा॥१३॥
जम्बूफलं हरिद्रा च सर्पस्यैव च कञ्चुकम्। सर्वज्वराणां धूपोऽयं हरश्चातुर्थकस्य च॥१४॥
करवीरं भृङ्गपत्रं लवणं कुष्ठकर्कटम्। चतुर्गुणेन मूत्रेण पचेत्तैलं हरेच्च तत्।
पामां विचर्चिकां कुष्ठमभ्यङ्गाद्धि व्रणानि वै॥१५॥

इस मन्त्र से पुष्प को १०८ बार मन्त्रित करके रोगी के हाथ में रखे। उसका नख छूये। इससे चातुर्थक आदि ज्वर शीघ्र भाग जाते हैं। जामुन, हल्दी, सांप का केंचुल की धूप देने से चातुर्थकज्वर का नाश होगा। करवीर, भृंगराज के पत्ते, लवण, कूठ, कर्कट तथा तैल को उससे चौगुने गोमूत्र में मिला कर तैल पाक करे। यह तैल मलने से पामा, विचर्चिका तथा कुष्ठव्रण नष्ट हो जाते हैं॥१३-१५॥

पिप्पलीमधुपानाच्च तथा मधुरभोजनात्। प्लीहा विनश्यते रुद्र तथा शूरणसेवनात्॥१६॥
पिप्पलीञ्च हरिद्राञ्च गोमूत्रेण समन्विताम्। प्रक्षिपेच्च गुदद्वारे अर्शांसि विनिवारयेत्॥१७॥
अजादुग्धमार्द्रकञ्च पीतं प्लीहादिनाशनम्।
सैन्धवञ्च विडङ्गानि सोमराजी तु सर्षपाः॥१८॥
रजनी द्वे विषञ्चैव गोमूत्रेणैव पेषयेत्। कुष्ठनाशश्च तल्लेपान्निम्बपत्रादिना तथा॥१९॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८३॥

हे रुद्र! पिप्पली, मधुपान तथा मधुर भोजन अथवा सूरन खाने से प्लीहा रोग नष्ट हो जाता है। गोमूत्र युक्त पिप्पली, हल्दी पीसे। इसे मल द्वार पर लगाये। अर्श रोग नष्ट होगा। बकरी का दूध, अदरख पान करने से प्लीहा आदि रोग होते हैं। सैन्धव, विड़ङ्ग, सोमराजी, सरसों, हल्दी, दारु हल्दी, विष, नीम का पत्ता गोमूत्र से पीसे। कुष्ठ रोग वाली जगह पर लगाये। कुष्ठ नाश होगा॥१६-१९॥

॥एक सौ तिरासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
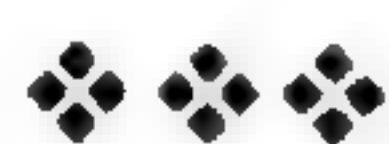
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वैद्यक शास्त्र का वर्णन

हरिरुवाच

रजनीकदलीक्षारलेपः सिध्मविनाशनः। कुष्ठस्य भागमेकं तु पथ्या भागद्वयं तथा।
उष्णोदकेन संपीत्वा कटिशूलविनाशनः॥१॥
अभयानवनीतञ्च शर्करापिप्पलीयुतम्। पानादर्शोहरं स्याच्च नात्र कार्य्या विचारणा॥२॥
अटरूषकपत्रेण घृतं मृद्वग्निना पचेत्। चूर्णं कृत्वा तु लेपोऽयमर्शरोगहरः परः॥३॥
गुग्गुलुत्रिफलायुक्तं पीत्वा नश्येद्भगन्दरम्। अजाजीशृङ्गबेरञ्च दध्ना मण्डं विपाचयेत्॥४॥
लवणेन तु संयुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम्। यवक्षारं शर्करा च मूत्रकृच्छ्रविनाशनम्॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—हरिद्रा तथा कदलीक्षार का लेप सिध्मरोग नाशक है। कूठ एक भाग, हरीतकी दो भाग मिलाये। इसे गर्म पानी से पान करे। यह कमर की पीड़ा का नाशक योग है। हरीतकी, मक्खन, चीनी, पिप्पली को बराबर लेकर भक्षण करने से निश्चितरूपेण अर्शरोग नष्ट होगा। वासक का पत्ता घी के साथ मंदी आंच में पकाये। इस पत्ते का चूरा करके लेपन करे। अर्शरोग नष्ट होगा। गुग्गुलु तथा त्रिफला भक्षण करने से भगन्दर रोग नष्ट होता है। जीरा, अदरख तथा दही को माड़ में पका कर नमक के साथ लेने से मूत्रकृच्छ्र शान्त होगा। जवाखार तथा चीनी सेवन करे। मूत्रकृच्छ्र नष्ट होगा॥१-५॥

चिताग्निः खञ्जरीटस्य विष्ठा फेनो हयस्य च। शोभाञ्जनं वासनेत्रं नर एतैस्तु धूपितः।
अदृश्यस्त्रिदशैः सर्वैः किं पुनर्मानवैः शिव॥६॥
तिलतैले यवान्दग्ध्वा मसीं कृत्वा तु लेपयेत्।
तेनैव सह तैलेन अग्निदग्धः सुखी भवेत्॥७॥
लज्जालुः शरपुङ्खा च लेपः साज्योऽग्निनाशनः।
ओं नमो भगवते ठ ठ छिन्धि छिन्धि ज्वलनं प्रज्वलितं नाशय नाशय हुं फट्॥८॥

चिता की अग्नि में खंजन पक्षी की बीट, अश्वफेन, शोभांजन, वास पक्षी के नेत्र, इनकी धूप जलाये। इस धूप के लगने से वह व्यक्ति देवताओं को भी नहीं दिखायी देगा, मनुष्य की तो बात ही क्या? तिल तैल में सिक्त जौ जलाये। उस भस्म को तिल तैल में मिलाकर स्याही बनाये। इस स्याही का लेप करने से अग्निदग्ध भी स्वस्थ होगा। लाजवन्ती लता तथा सरफोंका को पीस कर उसमें घी मिलाये। इसे लेप करे। अग्निदग्ध की ज्वाला शान्त होगी। इन सब प्रयोग का मन्त्र है—"ॐ नमो भगवते ठ ठ छिन्दि छिन्दि ज्वलनं प्रज्वलितं नाशय नाशय हुं फट्"॥६-८॥

करे बद्धं तु निर्गुण्ड्या मूलं ज्वरहरं द्रुतम्।
मूलञ्च श्वेतगुञ्जायाः कृत्वा तत्सप्तखण्डकम्॥९॥

हस्ते बद्ध्वा नाशयेच्च अर्शांस्येव न संशयः।
विष्णुक्रान्ताजमूत्रेण चौरव्याघ्रादिरक्षणम्॥१०॥

निसिन्दा की जड़ हाथ में बांधने से ज्वर शान्त होगा। श्वेत घुमची की जड़ टुकड़ा करे। हाथ में बांधने से अर्शरोग नष्ट होगा। अपराजिता की जड़ तथा बकरी का मूत्र चोर-व्याघ्र भय निवारक है॥९-१०॥

ब्रह्मदण्ड्यास्तु मूलानि सर्वकर्माणि कारयेत्।
त्रिफलायाश्च चूर्णन्तु साज्यं कुष्टविनाशनम्॥११॥
आज्यं पुनर्नवाबिल्वैः पिप्पलीभिश्च साधितम्।
हरेद्धिक्कां श्वासकासं पीतं स्त्रीणाञ्च गर्भकृत्॥१२॥
भक्षयेच्चैवमादीनि पयसाज्येन पाचितम्। घृतशर्करया युक्तं शुक्रः स्यादक्षयस्ततः॥१३॥
विडङ्गं मधुकं पाठां मांसीं सर्ज्जरसं तथा। हरिद्रां त्रिफलाञ्चैवमपामार्गं मनःशिलाम्॥१४॥
उदुम्बरं धातकीञ्च तिलतैलेन पेषयेत्।
योनिं लिङ्गञ्च म्रक्षेत स्त्रीपुंसोः स्यात्प्रियं मिथः॥१५॥
नमस्ते ईश वरदाय आकर्षिणि विकर्षिणि मुग्धे स्वाहा इति।
योनिलिङ्गस्य तैलेन शङ्कर म्रक्षणात्ततः॥१६॥

ब्रह्मदण्डी की जड़ से सर्वकार्य करे। त्रिफला चूर्ण घृतयुक्त सेवन द्वारा कुष्ठरोग नष्ट होता है। पुनर्नवा, बेल, पिप्पली का घृतपाक करके सेवन द्वारा हिचकी, श्वास, कास नष्ट होता है। यह घृत पान करने से नारी को गर्भ होता है। पूर्वोक्त सभी द्रव्य दूध अथवा घृत के साथ पाक करे। घृत तथा शर्करा के सहयोग से पान करने से उसे कभी शुक्रपात नहीं होगा। बायविड़ङ्ग, मुलेठी, आकनादि, जटामासी, धूप (सर्जरस), हल्दी, त्रिफला, अपामार्ग, मैनसिल, उदुम्बर, घातकी को तिल तैल में पीसे। इसे पुरुष तथा स्त्री अपने अंगों पर मले। इससे नर-नारी के बीच अतिशय प्रेम होगा। मन्त्र है—"ॐ नमस्ते ईश वरदाय आकर्षिणि-विकर्षिणि मुग्धे स्वाहा" स्त्री अपनी योनि पर इस मन्त्र से उपरोक्त लेप लगाये। पुरुष अपने लिंग पर इस मन्त्र से लेप लगाये। हे शंकर! उन दोनों स्त्री-पुरुष में अतिशय प्रेम उपजता है॥११-१६॥

पुनर्नवामृता दूर्वा कनकञ्चेन्द्रवारुणी। बीजेनैषां जातिकाया रसेन रसमर्दनम्॥१७॥
मूषायां मध्यगं कृत्वा रसं मारणमीरितम्। मध्वाज्यसहितं दुग्धं बलीपलितनाशनम्॥१८॥

पुनर्नवा, गुरुच, दूर्वा, धतूरा, राखालशशा (इन्द्रवारुणी) के बीज तथा जातीपत्र के रस के साथ पारद मर्दन करे। इसे मूषा में रख कर अग्निदग्ध करे। इस प्रकार पारद का मारण होता है। मधु-घृत के साथ दुग्ध पीने से चर्म की झुर्रियां नष्ट होती हैं॥१७-१८॥

मध्वाज्यं गुडताम्रञ्च कारवेल्लरसस्तथा। दहनाच्च भवेद्रौप्यं सुवर्णकरणं शृणु॥१९॥
पीतं धुस्तूरपुष्पञ्च सीसकञ्च पलं मतम्।
लाङ्गलिकायाः शाखा च स्वर्णञ्च दहनाद्भवेत्॥२०॥

चैलं धुस्तूरवृक्षस्य तेन दीपं प्रदीपयेत्। समाधावुपविष्टं तु गगनस्थो न पश्यति॥२१॥
वृषस्य मृण्मयस्यैव युक्तो भेको निगृह्यते। शङ्करावयवैर्युक्तो धूपं घ्रात्वा च गर्ज्जति।
विस्मयं कुरुते चैव वृषवन्नात्र संशयः॥२२॥
रात्रौ च सार्षषं तैलं कीटं खद्योतनामकम्।
ताभ्यां दीपः प्रज्वलितो वाग्निज्वालकलापवत्॥२३॥

मधु, घृत, गुड़, ताम्र तथा कारवेल्ल का रस दग्ध करने से चांदी बनती है। अब स्वर्ण बनाना कहते हैं। पीला धतूरा का फूल, फल, सीसा, लाङ्गलिया की शाखा अग्नि में दग्ध करे, स्वर्ण बन जायेगा। धतूरा के बीज के तैल से प्रदीप जलाकर समाधि में स्थित व्यक्ति को कोई आकाशचारी भी नहीं देख सकेगा। एक मेढक को मिट्टी के वृष के अंग से जोड़कर (बांध कर) उसे धूप दे। धूप सूंघ कर वह मेढक वृष की तरह गर्जन करेगा। यह विस्मय की बात है। सरसों का तैल तथा जुगनू लाकर रात में दीप जलाये। वह दीप अग्निराशि जैसा दीखेगा॥१९-२३॥

चूर्णं छुछुन्दरीदेहं दग्ध्वा रुद्र प्रलेपयेत्। तपन्ते तत्क्षणाद्दग्ध्वा यदि सम्यक् प्रलेपयेत्।
चन्दनेन भवेन्मोक्षः पानाल्लेपात्सुखी भवेत्॥२४॥
कुञ्जरस्य मदात्तस्य स्वयं नेत्रे शिवाञ्जयेत्। संग्रामं जयते सोऽपि महाशूरश्च जायते॥२५॥
दन्तं डुण्डुभसर्पस्य मुखे संगृह्य वै क्षिपेत्।
तिष्ठते जलमध्ये तु निर्विकल्पं स्थले यथा॥२६॥
कुम्भीरनेत्रदंष्ट्राणि अस्थीनि रुधिरं तथा। वसातैलसमायुक्तमेकत्र तन्नियोजयेत्।
आत्मानं म्रक्षयेत्तेन जले तिष्ठेद्दिनत्रयम्॥२७॥
कुम्भीरकस्य नेत्राणि हृदयं कच्छपस्य च।
मूषिकस्य वसास्थीनि शिशुमारवसा तथा।
एतान्येकत्र संलेपाज्जले तिष्ठेद् यथा गृहे॥२८॥

हे रुद्र! छछुन्दर को जला कर चूर्ण करे। इस चूर्ण का लेप देह पर कहीं भी करने पर वह स्थान तत्क्षण जल उठेगा। वहां चन्दन लेप करने से ज्वाला शान्त होगी। वह चन्दन का जल पीकर स्वस्थ होगा। मदमत्त हाथी के मद को अपने नेत्र में लगाये। वह संग्राम में जयी तथा महाशूर हो जाता है। डुण्डुम सर्प का दांत मुख में रखने वाला व्यक्ति पृथिवी की तरह जल पर खड़ा हो जायेगा। मगर के नेत्र, दांत, अस्थि, रक्त, वसा तथा तैल एकत्र करके अपने देह में लिप्त करे। वह मनुष्य ज़ल में तीन दिन रह सकेगा। मगर के नेत्र, कछुआ का हृदय, चूहे की वसा एवं हड्डी, सुईस जलजन्तु (डोल्फिन) की वसा को एकत्र करके अंग पर लेप करे। वह मनुष्य घर की तरह जल में रह सकेगा॥२४-२८॥

लौहचूर्णं तक्रपीतं पाण्डुरोगहरं भवेत्। तण्डुलीयकगोक्षुरमूलं पीतं पयोऽन्वितम्॥२९॥
कामलादिहरं पीतं मुखरोगहरं तथा। जातीमूलं तक्रपीतं कोलमूलं त्वजीर्णनुत्॥३०॥

सतक्रकुशमूलं वा बाकुचीमूलमेव वा।
काञ्जिकेन च बाकुच्या मूलं वै दन्तरोगनुत्॥३१॥
तथेन्द्रवारुणीमूलं वारिपीतं विषादिहृत्। सुरभिकामूलपानाद्वातनाशो भवेच्छिव॥३२॥
शिरोरोगहरं लेपाद् गुञ्जाचूर्णं सकाञ्जिकम्।
बला चातिबला यष्टी शर्करा मधुसंयुता॥३३॥
बन्ध्यागर्भकरं पीतं नात्र कार्य्या विचारणा।
श्वेतापराजितामूलं पिप्पलीशुण्ठिकायुतम्॥३४॥
परिषिष्टं शिरोलेपाच्छिरःशूलविनाशनम्।
निर्गुण्डिकाशिखां पीत्वा गण्डमालाविनाशनम्॥३५॥

मट्ठा के साथ लौहचूर्ण पान करने से पाण्डुरोग नाश होगा। तण्डुलीयक शाक तथा गोखरु की जड़ दूध के साथ पीये। कामला तथा मुखरोग नष्ट होगा। मट्ठा के साथ जाती की जड़ तथा बदरी की जड़ पीस कर पीये, अपच दूर होगा। कुश की जड़ तथा सोमराजी की जड़ मट्ठायुक्त पीये अथवा सोमराजी की जड़ कांजी के साथ पान करे। दन्तरोग नष्ट होगा। इन्द्रवारुणी की जड़ जल के साथ पीये। विषनाश होगा। चम्पा वृक्ष की जड़ पीसकर पीये। वातरोग नाश होगा। गुञ्जा का चूर्ण कांजी में मिलाकर मस्तक पर लेप करे। शिरोरोग नष्ट होगा। बेड़ेला, अतिबला, यष्टीमधु, शर्करा मधु के साथ खाये। वन्ध्या भी गर्भधारण कर लेगी। इसमें अन्यथा विचार न करे। श्वेत अपराजिता की जड़, पिप्पली, शुण्ठी को पीसकर शिर पर लेप करने से शिरोपीड़ा नष्ट होगी। निसिन्दा वृक्ष की जड़ पीने से गण्डमाला नष्ट होगा॥२९-३५॥

केतकीपत्रजं क्षारं गुडेन सह भक्षयेत्।
तक्रेण शरपुङ्खां वा पीत्वा प्लीहां विनाशयेत्॥३६॥
मातुलुङ्गस्य निर्यासं गुडाज्येन समन्वितम्। वातपित्तजशूलानि हन्ति वै पानयोगतः।
शुण्ठी सौवर्चलं हिङ्गु पीत्वा हृदयरोगनुत्॥३७॥

॥इति गारुडे महापुराणे वैद्यकशास्त्रे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८४॥
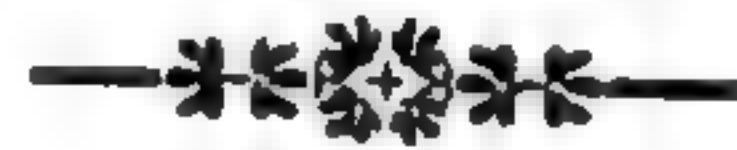
केतकी का पत्ता क्षारगुड़ सहित अथवा शरपोंखा को मट्ठे के साथ पीने से प्लीहारोग नष्ट होगा। मातुलुंग नींबू का रस गुड़-घृतयुक्त करके पान करने से वातपित्त जनित शूलरोग नष्ट हो जाता है। शुण्ठी, सौवर्चल तथा हींग मिलाकर पान करे। हृद्रोग नष्ट होगा॥३६-३७॥

॥एक सौ चौरासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योगों का वर्णन

हरिरुवाच

ओं नमो गणपतये इति। अयं गणपतेर्मन्त्रो धनविद्याप्रदायकः॥१॥

इममष्टसहस्रञ्च जप्त्वा बद्ध्वा शिखां ततः।
व्यवहारे जयः स्याच्च शतं जापान्नणां प्रियः॥२॥
तिलानान्तु घृताक्तानां कृष्णानां रुद्र होमयेत्।
अष्टोत्तरसहस्रं तु राजा वश्यस्त्रिभिर्दिनैः॥३॥

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामुपोष्याभ्यर्च्य विघ्नराट्। तिलाक्षतानां जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम्।

अपराजितः स्याद् युद्धे च सर्वे तञ्च सिषेविरे॥४॥

जप्त्वा चाष्टसहस्रं तु ततश्चाष्टशतेन हि। शिखां बद्ध्वा राजकुले व्यवहारे जयो भवेत्॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—"ॐ नमो गणपतये" यह गणपति मन्त्र धन विद्याप्रद है। इसे १००८ बार जप करके शिखा बांधे। वह व्यक्ति विवाद, मुकदमा में जय पायेगा। जो इसका १०० जप करेगा, वह सर्व जनप्रिय होगा। काली तिल को घृत में छोड़े। उक्त मन्त्र से होम करे। तीन दिन १००८ होम करने वाले के वश में राजा हो जाता है। अष्टमी तथा चतुर्दशी को उपवासी रहे। तब विघ्नराज की पूजा करके तिल, चावल मिला कर १००८ होम करे। वह व्यक्ति यह कार्य करने के कारण सर्वत्र जयी होता है। उसकी सेवा सब लोग करेंगे। पूर्वोक्त गणपति मन्त्र १००८ जप करके तब १०८ जप करते शिखा बांधे। वह व्यक्ति राजकुल पर तथा व्यवहार में जयलाभ करेगा॥१-५॥

ह्रीं:कारं सविसर्गञ्च प्रातःकाले नरस्तु यः।
स्त्रीणां ललाटे विन्यस्य वशतां नयति ध्रुवम्॥६॥
सुसमाहितचित्तेन न्यस्य तु प्रमदालये।
सोत्कामां कामिनीं कुर्य्यान्नात्र कार्य्या विचारणा॥७॥

जुहुयादयुतं यस्तु शुचिः प्रयतमानसः। दृष्टिमात्रे तदा तस्य वश्यमायान्ति योषितः॥८॥

मनःशिलापत्रकञ्च सगोरोचनकुङ्कुमम्। एभिः कृततिलकस्य वश्यमायान्ति योषितः॥९॥

सहदेवी भृङ्गराजः श्वेताऽपराजिता वचा।
तेनैव तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्॥१०॥

प्रातः स्त्री के मस्तक पर 'ह्रीं' विसर्ग युक्त लिखे। वह स्त्री वशीभूत हो जायेगी। संयत चित्त से यह मन्त्र वांछित स्त्री के गृह में न्यस्त करे। वह कामातुरा होकर उस पुरुष के वश में होगी। जो व्यक्ति शुद्ध मन से तथा शुद्ध होकर इस मन्त्र को जपेगा, वह देखने मात्र से स्त्री को वशीभूत कर सकेगा। मैनसिल,

तेजपत्ता, गोरोचन, कुंकुम पीस कर कपाल पर तिलक करे। वह सभी नारियों को वशीभूत कर सकेगा। सहदेई, भृंगराज, श्वेत अपराजिता तथा वच को पीस कर ललाट पर तिलक लगाये। त्रिभुवन वशीभूत होगा॥६-१०॥

गोरोचना मीनपित्तमाभ्याञ्च कृतवर्त्तिकः।
यः पुमान् तिलकं कुर्य्याद्वामहस्तकनिष्ठया।
स करोति वशं सर्वं त्रैलोक्यं नात्र संशयः॥११॥

गोरोचना महादेव धातुशोणितभाविता। ततो वै कृततिलका सा नरं यं निरीक्षते।
तत्क्षणात्तं वशं कुर्य्यान्नात्र कार्य्या विचारणा॥१२॥

नागेश्वरञ्च शैलेयं त्वक्पत्रञ्च हरीतकी। चन्दनं कुष्ठसूक्ष्मैलारक्तशालिसमन्विता॥१३॥
एतैर्धूपो वशकरः स्मरबाणैर्हरीश्वरः। रतिकाले महादेव पार्वतीप्रिय शङ्कर॥१४॥

निजशुक्रं गृहीत्वा तु वामहस्तेन यः पुमान्।
कामिनीचरणं वामं लिप्येत स्यात् स्त्रियः प्रियः॥१५॥

गोरोचन, मछली का पित्त—इसकी बत्ती बनाये। इसे घिसकर बायें हाथ की कनिष्ठा उंगली से तिलक करे। वह व्यक्ति तीनों लोकों को वशीभूत करेगा। इसमें सन्देह नहीं है। हे हर! नारी गोरोचन, स्ववीर्य तथा स्वरक्त मिलाकर कपाल पर तिलक करे। नारी ऐसा तिलक करके जिसे देखेगी, वही वशीभूत होगा। यह निःसन्दिग्ध है। नागेश्वर, शैलेय, दारुचीनी, तेजपत्ता, हरीतकी, रक्तचन्दन, कूठ, छोटी इलायची, रक्तशालि एकत्र करके इसकी धूप प्रदान करे। जैसे महेश्वर कामबाण के वशीभूत हो गये थे, तदनुरूप लोग इस धूप से वशीभूत होंगे। हे शंकर! मैथुन के समय अपना शुक्र बायें हाथ में लेकर कामिनी के बायें तलवे में लगाये। वह नारी चिरकाल प्रेम करेगी। सैन्धव, कबूतर की बीट तथा मधु पीस कर लिंग पर लगाये। वह व्यक्ति युवतियों का प्रिय होगा॥११-१५॥

सैन्धवञ्च महादेव पारावतमलं मधु। एभिर्लिप्ते तु लिङ्गे वै कामिनीवशकृद्भवेत्॥१६॥
पुष्पाणि पञ्चरक्तानि गृहीत्वा यानि कानि च। तत्तुल्यञ्च प्रियङ्गुञ्च पेषयेदेकयोगतः।
अनेन लिप्तलिङ्गस्य कामिनी वशतामियात्॥१७॥

हयगन्धा च मञ्जिष्ठा मालतीकुसुमानि च।
श्वेतसर्षपमेतैश्च लिप्तलिङ्गः स्त्रियः प्रियः॥१८॥

मूलं तु काकजङ्घाया दुग्धपीतं तु शोषनुत्। अश्वगन्धानागबलागुडमाषनिषेविणः।
रूपं भवेद्यथा तद्वन्नवयौवनचारिणाम्॥१९॥

लौह चूर्णसमायुक्तं त्रिफला चूर्णमेव वा। मधुना सेवितं रुद्र परिणामाख्यशूलनुत्॥२०॥

किसी भी प्रकार के ५ लाल फूल तथा उतना ही प्रियंगु लेकर पीसे। इसे लिंग पर लगाये। स्त्रियां वशीभूत होंगी। अश्वगन्धा, मजीठ, मालती फूल, सफेद सरसों पीस कर लिंग पर लेप करने वाला नारियों

का प्रिय होगा। काकजंघा की जड़ को दूध के साथ पीये, शोषरोग नष्ट होगा। असगन्ध, गोखरु, नागबला, गुड़, उर्द की दाल का सेवन करे। नवयुवक ऐसा रूप यौवन मिलेगा। लौह चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, मधु के साथ पान करे, परिणाम शूल ठीक होगा॥१६-२०॥

क्वथितोदकपानं तु शम्बूकक्षारकं तथा। मृगशृङ्गं ह्यग्निदग्धं गव्याज्येन समन्वितम्।
पीतं हत्पृष्ठशूलानां भवेन्नाशकरं शिव॥२१॥
हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठी वृषध्वज महौषधम्।
एभिस्तु क्वथितं वारि पीतं वै सर्वशूलनुत्॥२२॥
अपामार्गस्य वै मूलं सामुद्रलवणान्वितम्।
आस्वादितमजीर्णस्य शूलस्य स्याद्विमर्दनम्॥२३॥
वटरोहाङ्कुरो रुद्र तण्डुलोदकघर्षितः। पीतः सतक्रोऽतीसारं क्षयं नयति शङ्कर॥२४॥
अङ्कोटमूलकर्षार्द्धं पिष्टं तण्डुलवारिणा। सर्वातीसारग्रहणीं पीतं हरति भूतप॥२५॥

शम्बूकक्षार का काढ़ा पीने से अथवा हिरण की सींग जला कर उसका भस्म गोघृत के साथ पान करने से हृदयशूल तथा पीठ का शूल ठीक होगा। हिंगुल, सौवर्चल, शुण्ठी महौषध हैं। इन द्रव्यों का काढ़ा पीने से सभी प्रकार का शूलरोग नष्ट होगा। वटांकुर को चावल की धोअन के साथ पीस कर मट्ठा के साथ पीये। अतिसार नष्ट होगा। अकोढ़ की जड़ एक तोला लेकर चावल के धोअन से पीये। सर्वविध अतिसार तथा ग्रहणीरोग शान्त होगा॥२१-२५॥

मरीचशुण्ठिकुटजत्वक्चूर्णञ्च गुडान्वितम्।
क्रमात्तद्द्विगुणं पीतं · ग्रहणीव्याधिनाशनम्॥२६॥
श्वेतापराजितामूलं हरिद्रासिक्थतण्डुलम्। अपामार्गत्रिकटुकमेषाञ्च वटिका शिव।
विसूचिकामहाव्याधिं हरत्येव न संशयः॥२७॥
त्रिफलागुरु भूतेश शिलाजतु हरीतकी। एकैकमेषां चूर्णं तु मधुना च विमिश्रितम्।
पीतं सर्वञ्च मेहं तु क्षयं नयति शङ्कर॥२८॥
अर्कक्षीरप्रस्थमेकं तिलतैलं तथैव च। मनःशिलामरीचानां सिन्दूरस्य पलं पलम्॥२९॥
चूर्णं कृत्वा ताम्रपात्रे त्वातपैः शोषयेत्ततः। पीतं स्नुहीगतं दुग्धं सैन्धवं शूलनुद्भवेत्॥३०॥

मरीच एक भाग, शुण्ठी दो भाग, कुटज की छाल का चूर्ण चार भाग सभी चूर्ण करके गुड़ के साथ पान करे, ग्रहणीरोग दूर होगा। श्वेत अपराजिता की जड़, हल्दी, मोम, तण्डुल, अपामार्ग, त्रिकटु को पीस कर बटी बनाये। इसके सेवन से निःसन्देह विसूचिकारोग नष्ट होगा। त्रिफला, अगुरु, शिलाजीत, हल्दी का चूर्ण मधुयुक्त पीये। सर्वविध प्रमेहरोग नष्ट होगा। आकन्द का क्षीर चार सेर, तिल तैल चार सेर, मरिच, मैनसिल सिन्दूर, प्रत्येक ८ तोला इनको ताम्रपात्र में रख कर धूप में सुखाये। दूध तथा सेंधा नमक के साथ इसे पीने से शूलरोग शान्त होगा॥२६-३०॥

त्रिकटुत्रिफलालक्तं तिलतैलं तथैव च। मनःशिला निम्बपत्रं जातीपुष्पमजापयः॥३१॥
तन्मूत्रं शङ्खनाभिश्च चन्दनं घर्षयेत्ततः।
एभिश्च वर्त्तिकां कृत्वा त्वक्षिणी चाञ्जयेत्ततः॥३२॥
नश्यते पटलं काचं पुष्पञ्च तिमिरादिकम्।
विभीतकस्य वै चूर्णं समधु श्वासनाशनम्॥३३॥
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुसैन्धवसंयुतम्। सर्वरूपज्वरश्वासशोषपीनसहृद्भवेत्॥३४॥
देवदारोश्च वै चूर्णमजामूत्रेणं भावयेत्। एकविंशति वै वारमक्षिणी तेन चाञ्जयेत्।
रात्र्यन्धता पटलता नश्येन्निर्लोमता तथा॥३५॥
पिप्पली केतकं रुद्र हरिद्रामलकं वचा। सर्वाक्षिरोगा नश्येयुः सक्षीरादञ्जनात्ततः॥३६॥
काकजङ्घाशिग्रुमूले मुखेन विधृते शिव। चर्वित्वा दन्तकीटानां विनाशो हि भवेद्धर॥३७॥

॥इति गारुडे महापुराणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८५॥

त्रिकटु, त्रिफला, आलता, तिल तैल, मैनसिल, नीम का पत्ता, जाती फूल, बकरी का दूध, बकरी का मूत्र, पद्मनाभि, लाल चन्दन को पीस कर बत्ती बनाये। यह घिस कर आंख में अंजन लगाये। इसके प्रभाव से पटल, काच, पुष्प, तिमिर आदि नेत्ररोग नष्ट होंगे। भिलावा चूर्ण मधु के साथ खाने से श्वासरोग नष्ट होगा। पिप्पल तथा त्रिफला चूर्ण मधु एवं सेंधा नमक से खाने से सभी प्रकार का ज्वर, श्वास, शोष पीनस रोग नाश होगा। देवदारु का चूर्ण बकरी के मूत्र से २१ बार भावना दे। इस औषधि का अंजन आंख में लगाने से रतौंधी, पटल, रोमपातनादि नेत्र रोग नष्ट होंगे। पिप्पली, केतकी फूल, हल्दी, आमलकी, वच को दूध से पीस कर नेत्रांजन लगाये। सभी नेत्ररोग नष्ट होंगे। काकजंघा तथा शंजिना की जड़ मुख में रखे या चबाये। दन्तकीट नष्ट होंगे॥३१-३७॥

॥एक सौ पचासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
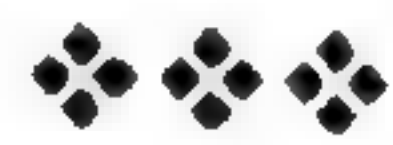
षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग कथन

हरिरुवाच

पीतं सारं गुडूच्याश्च मधुना च प्रमेहनुत्। पीतं गोहालिकामूलं तिलदध्याज्यसंयुतम्॥१॥
निरुद्धमूत्रं क्वथितं निवर्त्तयति शङ्कर। तथा हिक्कां हरेत्पीतं सौवर्चलयुतञ्च वै॥२॥

गोरक्षकर्कटीमूलं पिष्टं वास्योदकेन च। पीतं दिनत्रयेणैव नाशयेद्रुद्र शर्कराम्॥३॥
पीतं वै मालतीमूलं ग्रीष्मकाले समाहितम्। साधितं छागदुग्धेन पीतं शर्करयान्वितम्।
हरेन्मूत्रनिरोधञ्च हरेद्वै पाण्डुशर्कराम्॥४॥
द्विजयष्ट्याश्च वै मूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा। गण्डमालां हरेल्लेपात्कुरण्डगलगण्डकौ॥५॥

श्रीहरि कहते हैं—गुरुच का सत् मधु के साथ लेने से प्रमेह नाश होता है। गोहालिका की जड़ का काढ़ा तिल, दही, घृत के साथ पीने से मूत्ररोध ठीक हो जाता है। यह काढ़ा यदि सौवर्चल के साथ पान करे, तब हिचकी रोग ठीक हो जायेगा। गोरक्षकर्कटी की जड़ पीस कर बासी जल के साथ पीये। तीन दिन में शर्करारोग का नाश होगा। ग्रीष्मकाल में मालती की जड़ बकरी के दूध में पकाये। उसे चीनी के साथ पीने से मूत्ररोध, शर्करारोग तथा पाण्डुरोग का निवारण होगा। ब्रह्मयष्टी की जड़, चावल की धोअन से पीस कर लेप करने से गण्डमाला, गलगण्ड तथा कुरण्डरोग नष्ट हो जाता है॥१-५॥

रसाञ्जनं हरीतक्याश्चूर्णं तेनैव गुण्ठनात्। नश्येद्वै पुरुषव्याधीन्नात्र कार्य्या विचारणा॥६॥
करवीरमूललेपाल्लेपात्पूगफलस्य च। पुंव्याधिर्नश्यते रुद्र योगमन्यं वदाम्यहम्॥७॥
दन्तीमूलं हरिद्रा च चित्रकं तस्य लेपनात्। भगन्दरविनाशः स्यादन्यं योगं वदाम्यहम्।
जलौकाजग्धरक्तञ्च भगन्दरविनाशनम्॥८॥
त्रिफलाजलघृष्टञ्च मार्जारास्थि विलेपितम्। ततो न प्रस्रवेद्रक्तं नात्र कार्य्या विचारणा॥९॥
हरिद्राऽनेकवारञ्च स्नुहीक्षीरेण भाविता। वटिकार्शोविनाशाय तल्लेपाद्वृषभध्वज।
घोषाफलं सैन्धवञ्च पिष्ट्वा चार्शोहरं परम्॥१०॥

रसाञ्जन तथा हरीतकी को चूर्ण करके उसका अगुण्ठन करने से पुरुषेन्द्रिय के सभी रोग शान्त होते हैं। यह अन्यथा बात नहीं है। कनेर की जड़ तथा सुपाड़ी पीस कर लेपन करने से पुरुषेन्द्रिय की सब प्रकार की व्याधि निवृत्त हो जाती है। अब अन्य योग वर्णित है। दन्ती की जड़, हल्दी, चिता को पीस कर प्रलेप करने से भगन्दररोग नष्ट हो जाता है। जोंक से रक्त निकलवा कर यह लेप लगाये। भगन्दर नष्ट होगा। त्रिफला तथा बिड़ाल की हड्डी को जल में पीस कर लेपन करने से इसका रक्तस्राव निवारण होगा। यह बात निश्चित है। हल्दी की स्नूहीक्षीर से भावना अनेक बार देकर बटी बनाये। इसे घिस कर लेपन करे, अर्शरोग नष्ट होगा। घोषाफल तथा सेंधानमक मिला कर लेप करे। अर्शरोग समाप्त होगा॥६-१०॥

गव्याज्यं साधितं पीतं पलाशक्षारवारिणा। त्रिगुणेन त्रिकटुकमर्शांसि क्षपयेच्छिव॥११॥
बिल्वस्य च फलं दग्धं रक्तार्शःप्रविनाशनम्।
जग्ध्वा कृष्णतिलान्येवंनवनीतयुतान्यपि॥१२॥
यवक्षारं शुण्ठीचूर्णं युक्तं तुल्यगुडान्वितम्। अग्निवृद्धिं करोत्येव प्रत्यूषे वृषभध्वज॥१३॥
शुण्ठ्या च क्वथितं वारि पीतं चाग्निं करोति वै।
हरीतकीं सैन्धवञ्च चित्रकं रुद्र पिप्पली॥१४॥

चूर्णमुष्णोदकेनैषां पीतं चातिक्षुधाकरम्। साज्यं शूकरमांसं वै पीतञ्चातिक्षुधाकरम्॥१५॥

।।इति गारुडे महापुराणे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१८६।।

हे वृषध्वज! बेलफल को जला कर सेवन करे, रक्त अर्श शान्त होगा। मक्खन के साथ काला तिल खाये। यह रोग नाश प्राप्त होगा। जवाखार, शुण्ठी चूर्ण तथा गुड़ को समान लेकर प्रातः खाये। अग्नि बढ़ेगी। शुण्ठी का काढ़ा पीने से भी यह उदराग्नि वर्द्धित होगी। हर्रे, सैन्धव, चित्रक, पिप्पली का चूर्ण करके गर्म जल से पान करने से अत्यन्त क्षुधा बढ़ती है। हे रुद्र! घृत में पके शूकरमांस को खाने से भी भूख बढ़ेगी॥११-१५॥

।।एक सौ छियासीवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

हरिरुवाच

हस्तिकर्णपलाशस्य पत्राणि चूर्णयेद्धर। सर्वरोगविनिर्मुक्तं चूर्णं पलशतं शिव॥१॥
सक्षीरं भक्षितं कुर्यात्सप्ताहेन वृषध्वज। नरं श्रुतिधरं रुद्र मृगेन्द्रगतिविक्रमम्॥२॥
पद्मरागप्रतीकाशं युक्तं दशशतायुषा। षोडशाद्बाकृतिं रुद्र सततं दुग्धभोजनात्॥३॥
मधुसर्पिःसमायुक्तं जग्धमायुष्करं भवेत्। तज्जग्धं मधुना सार्द्धं दशवर्षसहस्त्रिकम्॥४॥
कुर्य्यान्नरं श्रुतिधरं प्रमदाजनवल्लभम्। दध्ना नित्यं भक्षितं तु वज्रदेहकरं भवेत्॥५॥

श्रीहरि ने कहा—हस्तिकर्ण पलाश का पत्ता चूर्ण करके दूध के साथ भक्षण करे। एक सप्ताह में सभी रोग निवृत्त हो जायेंगे। इस औषध की पूरी मात्रा है एक पल। इसके सेवन से मनुष्य श्रुतिधर होगा। उसकी गति तथा विक्रम सिंहवत् होगा। उसकी शरीर कान्ति पद्मराग जैसी होगी। वह एक हजार वर्ष जीवित रहेगा। इस औषध को खाकर गोदुग्ध पान करे। वृद्ध व्यक्ति भी सोलह वर्षीय युवावत् आकृति वाला होगा। मधु-घृत के साथ यह भक्षण करने से परमायु बढ़ेगी। इस पत्ते का चूर्ण मधु के साथ भक्षण करने वाला १०००० वर्ष जीता है तथा श्रुतिधर एवं स्त्रियों का प्रिय होता है। इस चूर्ण को दही के साथ खाने से उसका देह वज्र जैसा होगा। केश बढ़ेगा। वह एक हजार वर्ष जीवित रहेगा॥१-५॥

केशराजिसमायुक्तं नरं वर्षसहस्त्रिणम्। तच्च काञ्जिकसंयुक्तं नरं कुर्य्याच्च भक्षितम्॥६॥

शतवर्षं दिव्यदेहं बलीपलितवर्जितम्। जग्धं त्रिफलया युक्तं चक्षुष्मन्तं करोति वै॥७॥
अन्धः पश्येत्तु चूर्णस्य साज्यस्यैव तु भक्षणात्।
महिषीक्षीरसंयुक्तस्तल्लेपः कृष्णकेशकृत्॥८॥
खल्वाटस्य च वै केशा भवन्ति वृषभध्वज। तैलयुक्तेन चूर्णेन बलीपलितनाशनम्॥९॥
तदुद्वर्त्तनमात्रेण सर्वरोगैः प्रमुच्यते। सच्छागक्षीरचूर्णेन दृष्टिः स्यान्मासतोऽञ्जनात्॥१०॥

जो इसे कांजी के साथ भक्षण करेगा, वह दिव्यदेह, झुर्री आदि से रहित शरीर वाला, वृद्धचिह्नरहित होकर सौ वर्ष जीवित रहेगा। इसे त्रिफला के साथ खाने वाला उत्तम नेत्रज्योति लाभ करेगा। घृतयुक्त सेवन से अन्धा भी देख पायेगा। इसे भैंस के दूध में मलकर लेपन करने से श्वेत केश काले होंगे। इसके द्वारा गंजे का भी बाल उगेगा। यह चूर्ण तैलयुक्त सेवन करने वाले की झुर्री आदि नष्ट होगी। इसके चूर्ण की उबटन लगाने से व्यक्ति सर्वरोग रहित होगा। बकरी के दूध में मिलाकर इसका अंजन लगाने वाला व्यक्ति एक महीने में उत्तम नेत्रज्योतिलाभ करेगा॥६-१०॥

पलाशस्य च बीजानि श्रावणे वितुषाणि च।
गृहीत्वा नवनीतेन तेषां चूर्णञ्च भक्षयेत्॥११॥
कर्षार्द्धमेकं सेवेत नत्वा नित्यं हरिं प्रभुम्। षष्टिपुराणधान्यस्य पथ्यमम्बुवर्जं हर।
जीवेद्वर्षसहस्राणि बलीपलितवर्जितः॥१२॥
भृङ्गराजस्य वै मूलं पुष्यर्क्षे तु समाहृतम्। गृहीत्वा वै तच्चूर्णन्तु ससौवीरञ्च भक्षयेत्॥१३॥
मासमात्रप्रयोगेण बलीपलितवर्जितः। शतानि पञ्च जीवेच्च नरो नागबलो भवेत्।
भवेच्छ्रुतिधरो रुद्र पुष्यर्क्षे चैव भक्षणात्॥१४॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८७॥

श्रावण में पलाश का बीज लेकर उसकी भूसी हटाये। इसे चूर्ण करके मक्खन के साथ ६ मास खाये। नित्य एक तोला भक्षण करे। हरि को प्रणाम करके इसका सेवन करना चाहिये। इस समय पुराना यष्टिधान्य खाये। इस औषध को खाकर पानी न पीये। इससे व्यक्ति वलीपलित रहित होकर एक हजार वर्ष जीवित रहेगा। विडाल के पैर इतनी भृंगराज की जड़ को पुष्य नक्षत्र में उखाड़ कर चूर्ण करके कांजी से पीये। एक महीने में वलीपलित रहित होकर वह ५०० वर्ष जीवित रहेगा। हे रुद्र! यह औषधि खाने से मनुष्य हाथी जैसा बली होगा। यह औषधि पुष्यनक्षत्र में खाने वाला श्रुतिधर होगा॥११-१४॥

॥एक सौ सत्तासीवां अध्याय समाप्त॥

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

हरिरुवाच

निर्व्रणः स्यात्पूयहीनो प्रहारो घृतपूरितः। अपामार्गस्य वै मूलं हस्ताभ्याञ्च विमर्दितम्।
तद्रसेन प्रहारस्य रक्तस्रावो न पूरणात्॥१॥
रुद्र लाङ्गलिकामूलं हिज्जलस्य तथैव च।
तेन व्रणमुखं लिप्तं शल्यो निःसरति व्रणात्।
चिरकालप्रविष्टोऽपि तेन मार्गेण शङ्कर॥२॥
बालमूलं मेषशृङ्गीमूलं वा वारिघर्षितम्। तेन लिप्तं चिरं जातं नाडीव्रणं प्रशाम्यति॥३॥

श्रीहरि ने कहा—व्रण में घृत (गोघृत) भरने से वह व्रण शीघ्र नष्ट होता है। अपामार्ग की जड़ को दोनों हाथों से मल कर उसका रस क्षत स्थान में गिराकर भरे। रक्तस्राव निवृत्त होगा। लांगलिया वृक्ष तथा हिज्जल वृक्ष की जड़ पीस कर व्रण के मुख में लेपन करे। व्रणमध्यगत शल्य, कांटे आदि बाहर आ जाते हैं। इससे दीर्घकाल से गड़े हुये शल्य प्रभृति भी बाहर आ जाते हैं। बाला की जड़ तथा मेढाश्रृंगी की जड़ जल में घिस कर व्रण पर लेप करे। चिरकाल से उत्पन्न नाड़ीव्रण नष्ट हो जाता है॥१-३॥

माहिषादधियुक्तेन जग्धं कोद्रवभक्तकम्। कङ्गुमूलस्य वै चूर्णं दत्तं नाडीव्रणापहम्॥४॥
ब्रह्मयष्टिफलं पिष्टं वारिणा तेन लेपितम्। तेन घृष्टं रक्तदोषः प्रणश्यति न संशयः॥५॥
यवभस्म विडङ्गश्च गन्धपाषाणेव च। शुण्ठिरेषाञ्चैव चूर्णं भावितं रुधिरेण वै॥६॥
कृकलासस्य तल्लिप्तं विद्रधिं नाशयेच्छिव। शोभाञ्जनस्य मूलं तु अतसीमसिना सह॥७॥
गौरसर्षपयुक्तानि सर्वाण्येतानि शङ्कर। पिष्टान्यनम्लतक्रेण ग्रन्थिकं नाशयेद्धि वै॥८॥
श्वेतापराजितामूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा। तेन नस्यप्रदानात्स्याद्भूतवृन्दस्य विद्रवः॥९॥
अगस्त्यपुष्पनस्यो वै समरीचस्तु शूलहृत्। भुजङ्गवर्म वै हिङ्गु निम्बपत्राणि वै यवाः।
गौरसर्षप एभिः स्याल्लेपो भूतहरः शिव॥१०॥
गोरोचना मरीचानि पिप्पली सैन्धवं मधु। अञ्जनं कृतमेभिः स्याद् ग्रहभूतहरं शिव॥११॥
गुग्गुलूलूकपुच्छाभ्यां धूपाद् ग्रहहरो भवेत्।
चतुर्थकज्वरैर्मुक्तो कृष्णवस्त्रावगुण्ठितः॥१२॥

॥इति गारुडे महापुराणे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८८॥

कोदो चावल (भात) महिष के घृत के साथ खाने से तथा ककुनी दाना की जड़ चूर्ण करके व्रण

पर लगाने से नाड़ी का व्रण शान्त हो जाता है। ब्रह्मदण्डी को उसके फल के साथ पीस कर व्रण पर लिप्त करे। रक्तदोष अवश्य शान्त होगा। यवभस्म, विडङ्ग, गन्धपाषाण तथा शुण्ठी को चूर्ण करके उसमें गिरगिट के खून से भावना देनी चाहिये। इसे लेपन करने विद्रधिरोग नष्ट होगा। सैजन की जड़, तीसी, (मसिना) असिना, श्वेत सरसों को अम्लरहित मट्ठे के साथ पीसे। इसका लेप करने से ग्रन्थिकरोग नष्ट होते हैं। श्वेत अपराजिता की जड़ चावल की धोअन से पीसे। इसका नस्य सूंघने से भूत का उपद्रव नष्ट होगा। गोरोचन, मरीच, पिप्पली, सेंधा नमक को पीस कर इसका अंजन लगाने से ग्रह-भूतादि शान्त होते हैं। गुग्गुलु तथा उल्लू की पूंछ की धूप देने से ग्रहदोष नष्ट होते हैं। काले वस्त्र का अवगुण्ठन करके उससे धूप प्रदान करे। चातुर्थकज्वर नष्ट होगा॥४-१२॥

॥एक सौ अट्ठासीवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वैद्यक शास्त्र वर्णन

हरिरुवाच

श्वेतापराजितापुष्परसेनाक्ष्णोश्च पूरणे। पटलं नाशमायाति नात्र कार्या विचारणा॥१॥
मूलं गोक्षुरकस्यैव चर्वित्वा नीललोहित। दन्तकीटव्यथा दग्धा सुरासुरविमर्दन॥२॥
नारी पुष्यादि लेपित्वा गोक्षीरेणोपवासतः।
श्वेतार्कस्य तु वै मूलं तस्यास्तद्गुल्मशूलनुत्॥३॥
श्वेतार्कपुष्पं विधिना गृहीतं पूर्वमन्त्रितम्। ऋतुशुद्धा च ललना कटौ बद्ध्वा प्रसूयते॥४॥
हस्तबद्धं पलाशस्य अपामार्गस्य वा हर। मूलं सर्वज्वरहरं भूतप्रेतादिनुद्भवेत्॥५॥

श्रीहरि ने कहा—हे रुद्र! श्वेत अपराजिता के पुष्प का रस नेत्र में छोड़े। पटल आदि नेत्ररोग नष्ट होंगे। गोखरु की जड़ चबाने से दन्तकीट तथा दन्त की बाधा समाप्त होगी। नारी अपने रक्त से सफेद मदार की जड़ को लिप्त करके दूध से पीसे। तब उपवासी रहकर इस औषधि को खाये गुल्मरोग शान्त होगा। पहले दिन के पूर्व वाले दिन मदार के पुष्प को अभिमन्त्रित करके पहले दिन उसे यथाविधान लाये। ऋतुस्नाता स्त्री इसे कमर में बांधे। उसे पुत्र सन्तान होगी। पलाश तथा अपामार्ग की जड़ हाथ में बांधे। सभी ज्वर तथा भूत-प्रेतादि दोष का नाश होगा॥१-५॥

पीतं वृश्चिकमूलञ्च पर्य्युषितजलेन वै। सार्द्धं विनाशयेद्दाहज्वरञ्च परमेश्वर॥६॥
शिखायाञ्चैव तद्बद्धं भवेदैकाहिकादिनुत्। वास्योदकेन पीतं तत्सर्वविषहरं भवेत्॥७॥

यस्य लज्जालुकामूलं दीयते च स्वरेतसा।
सार्द्धं स वैरं संयाति पुमान्स्त्री वा न संशयः॥८॥
पिष्ट्वा गव्यघृतेनैव पाठामूलं पिबेत्तु यः। सर्वं विषं विनश्येत नात्र कार्य्या विचारणा॥९॥
वास्योदकयुतं मूलं शिरीषस्य यथा तथा। रक्तचित्रकमूलस्य रसस्य भरणाद्धर।
कर्णयोः कामलाव्याधिनाशः स्यान्नात्र संशयः॥१०॥

वृश्चिक की जड़ को बासी जल से पीस कर बासी जल से पान करे। हे परमेश्वर शिव! यह दाह, ज्वरनाशक है। इसी जड़ को शिखा में बांधे, ऐकाहिक ज्वर नष्ट होगा। इसी जड़ को पीस कर पूर्ववत् बासी जल से पीये, सभी विषदोष नष्ट होंगे। अपने शुक्र के साथ लाजवन्ती की जड़ को लिप्त करके जिस भी स्त्री अथवा पुरुष को दिया जायेगा, उसके यहां महान् विवाद पैदा होगा, वैरभाव होगा। आकनादि की जड़ पीस कर गोघृत के साथ पीये। सभी विषों का नाश होगा। इसमें सन्देह विचार न करे। शिरीष वृक्ष की जड़ को बासी जल से पान करने से विषदोष नाश होगा। रक्तचित्रक की जड़ का रस कान में छोड़े, कामलारोग ठीक हो जायेगा। यह नि:सन्दिग्ध समझे॥६-१०॥

श्वेतकोकिलाक्षमूलं छागीक्षीरेण संयुतम्। त्रिसप्ताहेन वै पीतं क्षयरोगं क्षयं नयेत्॥११॥
नारिकेलस्य वै पुष्पं छागक्षीरेण संयुतम्। पिबेच्च त्रिविधस्तस्य वातरक्तो विनश्यति॥१२॥
कुर्यात्सुदर्शनामूलं माल्येन सुसमाहृतम्। कण्ठबद्धं त्र्याहिकादिग्रहभूतविनाशनम्॥१३॥
पुष्ये धवलगुञ्जाया गृहीतं मूलमुत्तमम्। मुखे तु निहितं रुद्र हरेन्नानाविषं बहु॥१४॥
हस्ते बद्धं काण्डयुक्तं कण्ठे बद्धं ग्रहादिहृत्।
कृष्णायां तु चतुर्दश्यां कटिबद्धं समाहृतम्।
सिंहादिश्वापदाद्भीतिं हरेच्च नीललोहित॥१५॥
विष्णुक्रान्तामूलमीश कर्णबद्धन्तु धारयेत्। पट्टसूत्रेण बूतेश मकरादिभयं न वै॥१६॥

॥इति गारुडे महापुराणे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८९॥

श्वेत कोकिलाक्ष की जड़ को बकरी के दूध के साथ पीये, तीन सप्ताह में क्षयरोग नष्ट होगा। नारियल का फूल बकरी के दूध के साथ पान करे, त्रिविध वातरक्त व्याधि का नाश होगा। सुदर्शना की जड़ माला में बांधे तथा गले में पहने, त्र्याहिक ज्वर तथा ग्रहभूतादि दोष नष्ट होगा। श्वेत घुमची की जड़ पुष्य नक्षत्र में लाकर पहने, सभी विषों का नाश होगा। श्वेत घुमची की जड़ हाथ अथवा कण्ठ में पहनने से ग्रहदोष निवृत्त होंगे। यह जड़ कृष्णपक्षीय चतुर्दशी को लाकर धारण करे, सिंह आदि हिंसक जंतुभय निवृत्त होगा। अपराजिता की जड़ को पट्टसूत्र में बांधे, मकर आदि जलजन्तुओं का भय समाप्त होगा॥११-१६॥

॥एक सौ नवासीवां अध्याय समाप्त॥

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना रोग कथन

हरिरुवाच

अपराजिताया मूलञ्च गोमूत्रेण समन्वितम्। पीतञ्चापि हरत्येव गण्डमालां न संशयः॥१॥
अथेन्द्रवारुणीमूलं विधिना पीतमीश्वर। जिङ्गिण्या रसकं रुद्र शूकशिम्ब्या समन्वितम्।
शीतोदकञ्च तन्नस्यो बाहुग्रीवाव्यथां हरेत्॥२॥
माहिषं नवनीतञ्च अश्वगन्धा च पिप्पली। वचा कुष्ठद्वयं लेपो लिङ्गस्त्रोतःस्तनार्त्तिहृत्॥३॥
कुष्ठनागबलाचूर्णं नवनीतसमन्वितम्। तल्लेपो युवतीनाञ्च कुर्य्यान्मनोहरं स्तनम्॥४॥

श्रीहरि ने कहा—हे रुद्र! अपराजिता की जड़ गोमूत्र के साथ पीस कर उसी से पान करे, गण्डमाला रोग समाप्त होगा। यह निःसन्दिग्ध है। हे रुद्र! इन्द्रवारुणी की जड़, जिंगिणी का रस, शुकशिम्बी को ठंडे जल से पीसे। इसे पीने अथवा इसकी सुंघनी सूंघने से बाहु तथा ग्रीवा की व्यथा समाप्त होगी। भैंस के दुग्ध का मक्खन, अश्वगंध, पिप्पली, वच, कूठ को पीसे। इसके सेवन से लिंग, शिरा, स्तनद्वय के रोग नष्ट होंगे। कूठ, नागबला के चूर्ण को मक्खन में मिला कर युवती के स्तन पर मले। उसका स्तन मनोहर होगा॥१-४॥

इन्द्रवारुणिकामूलं यस्य नाम्ना सुदूरतः।
निक्षिप्यते समुत्पाट्य तस्य प्लीहा विनश्यति॥५॥
पुनर्नवायाः शुक्लाया मूलं तण्डुलवारिणा।
पीतं विद्रधिनुत्स्याच्च नात्र कार्य्या विचारणा॥६॥
कदलीपत्रक्षारं तु पानीयेन प्रसाधितम्। तस्यादनाद्विनश्यन्ति उदरव्याधयोऽखिलाः॥७॥
कदल्या मूलमादाय गुडाज्येन समन्वितम्।
अग्निना साधितं जग्धमुदरस्थक्रिमीन् हरेत्॥८॥
नित्यं निम्बदलानाञ्च चूर्णमामलकस्य च। प्रत्यूषे भक्षयेच्चैव तस्य कुष्ठं विनश्यति॥९॥

जिसके नाम से इन्द्रवारुणी की जड़ उखाड़ कर दूर फेंकी जाये, उसका प्लीहारोग नष्ट होगा। श्वेत पुनर्नवा की जड़ को चावल की धोअन से पीये, विद्रधि रोग नष्ट होगा, यह बात सत्य है। कदली पत्र का क्षार जल में पकाकर पीये। सभी उदररोग नष्ट होंगे। कदली की जड़, गुड़, घी मिलाकर खाये। इसे खाने से पेट के कृमि समाप्त होंगे। नित्य प्रातः नीम की पत्ती तथा आमलकी चूर्ण खाने से सब प्रकार का कुष्ठ नष्ट होगा॥४-९॥

हरीतकी विडङ्गञ्च हरिद्रा सितसर्षपाः। सोमराजस्य मूलानि करञ्जस्य च सैन्धवम्।
गोमूत्रपिष्टान्येतानि कुष्ठरोगहराणि वै॥१०॥

हरीतकी, विड़ङ्ग, हल्दी, श्वेत सरसों, सोमराजि की जड़, करञ्ज, सैन्धव को गोमूत्र में पीस कर ग्रहण करे। कुष्ठरोग नष्ट होगा॥१०॥

एकश्च त्रिफलाभागस्यथा भागद्वयं शिव।
सोमराजस्य बीजानां जग्धं पथ्यया दद्रुनुत्॥११॥
अम्लतक्रं सगोमूत्रं क्वथितं लवणान्वितम्।
कांस्यघृष्टं खरं लेपात्कुष्ठरोगविनाशनम्॥१२॥
हरिद्रा हरितालञ्च दूर्वागोमूत्रसैन्धवम्। अयं लेपो हन्ति दद्रु पामामेव गरं तथा॥१३॥
सोमराजस्य बीजानि नवनीतयुतानि च। मधुनास्वादितानि स्युः शुक्लकुष्ठहराणि वै।
तक्रान्नपानतो रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा॥१४॥

एक भाग त्रिफला, दो भाग सोमराजि बीज को पीस कर हरीतकी के साथ खाये, उसका दद्रु रोग नाश होगा। अम्लीय मट्ठा तथा गोमूत्र का काढ़ा बनाकर लवण के साथ कांसे के पात्र में मले, कुष्ठ व्याधि का नाश होगा। हल्दी, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र, सैन्धव को पीस कर लेप करे। दद्रु, पामा, विषरोग नष्ट होंगे। सोमराजि का बीज, मक्खन, मधु मिलाकर खाये। श्वेत कुष्ठ नष्ट होगा। हे रुद्र! यह औषधि जब ले रहे हों, तब मट्ठे के साथ अम्लपथ्य ग्रहण करे। अन्य सन्देह को मन में न लाये॥११-१४॥

श्वेतापराजितामूलं वर्त्तितं चास्य वारिणा। तल्लेपो रुद्र मासेन शुक्लकुष्ठविनाशनः॥१५॥
माहिषं नवनीतं च सिन्दूरं च मरीचकम्। पामा विलेपनान्नश्येद् दुर्नामा वृषभध्वज॥१६॥
विशुष्कगाम्भारीमूलं पक्वं क्षीरेण संयुतम्।
भक्षितं शुक्लपित्तस्य विनाशकरमीश्वरम्॥१७॥
मूलकस्य तु बीजानि अपामार्गरसेन वै। पिष्टानि तेन लेपेन सिह्निका रुद्र नश्यति॥१८॥
कदलीक्षारसंयुक्ता हरिद्रा शिह्निकापहा। रम्भापामार्गयोः क्षार एरण्डेन विमिश्रितः।
तदभ्यङ्गान्महादेव सद्यः सिध्म विनश्यति॥१९॥
कुष्माण्डलताक्षारश्च सगोमूत्रश्च तत्त्वतः। जलपिष्टा हरिद्रा च सिद्धा मन्दानलेन हि॥२०॥
माहिषेण पुरीषेण वेष्टिता वृषभध्वजः। अस्या उद्वर्त्तनं कुर्य्यादङ्गसौष्ठवमीश्वर॥२१॥

श्वेत अपराजिता की जड़ को उसी के रस में पीसे। इसकी बत्ती बनाये। यह बत्ती घिस कर लेप करने से एक महीने में श्वेत कुष्ठ का नाश होगा। भैंस का मक्खन, सिन्दूर, मरीच को साथ में पीस कर लेपन करने से पामा एवं दुर्नामा रोग नष्ट हो जाता है। शुष्क गान्धारी की जड़ को दूध से पीसे। इससे श्वेतपित्त नष्ट होगा। मूली के बीज को अपामार्ग के रस में पीसकर लेप करे, पिच्छिलका रोग नष्ट होगा। केले का क्षार तथा हल्दी का सेवन करने से पिच्छिलका रोग नष्ट होगा। रम्भा तथा अपामार्ग का क्षार रेड़ के तेल के साथ मिलाकर देह में मालिश करे। हे रुद्र! इससे सिह्निका रोग नष्ट होगा। गोमूत्र से कूष्माण्ड लता का क्षार पीसे तथा जल में हल्दी पीसे। हे ईश्वर! यह दोनों द्रव्य मन्दाग्नि में पाक करके महिष के गोबर में लपेट कर रक्खे। इस औषधि का उबटन देह में लगाने से अंगसौष्ठव की वृद्धि होगी॥१५-२१॥

तिलसर्षपसंयुक्तं हरिद्राद्वयकुष्ठकम्। तेनोद्वर्त्तितदेहः स्याद्दुर्गन्धः सुरभिः पुमान्॥२२॥
मनोहरश्चानुदिनं दूर्वाणां काकजङ्घया। अर्जुनस्य तु पुष्पाणि जम्बूपत्रयुतानि च।
सलोध्राणि च तल्लेपो देहदुर्गन्धतां हरेत्॥२३॥

तिल, सरसों, हल्दी, दारुहल्दी तथा कूठ को एक साथ पीसे तथा अंगों पर उबटन लगाये। जिसके शरीर से दुर्गन्ध उठे, इसे लगाने से वह सद्गन्धयुक्त हो जाता है। दूर्वा, काकजंघा, अर्जुन का फूल, जामुन के पत्ते, लोध्र को पीस कर इनका लेप लगाये, देह दुर्गन्ध दूर होगी॥२२-२३॥

युक्तं लोध्रभवैर्नीरैश्चूर्णन्तु कनकस्य च। तेनोद्वर्त्तितदेहस्य न स्याद् ग्रीष्मप्रबाधकम्॥२४॥
दुग्धेनोषसि सेकश्च घर्मदोषश्च नश्यति। काकजङ्घोद्वर्त्तनं तु अङ्गरागकरं भवेत्॥२५॥
यष्टीमधु शर्करा च वासकस्य रसो मधु। एतत्पीतं रक्तपित्तकामलापाण्डुरोगनुत्॥२६॥
रक्तपित्तं हरेत्पीतो वासकस्य रसो मधु। प्रातःकाले तोयपानात्पीनसं दारुणं हरेत्॥२७॥

धतूरा का चूर्ण लोध्र के काढ़े में मिला कर देह में उबटन लगाने से शरीर की ग्रीष्मजनित बाधा का नाश हो जाता है, ग्रीष्म उसे कष्ट नहीं पहुंचा सकेगा। प्रातः दुग्ध से अंगों को लिप्त करे। पसीने का दोष नहीं होगा। काकजंघा की उबटन लगाने से शरीरकान्ति अधिक वर्द्धित होगी। मुलेठी, चीनी, वासक का रस तथा मधु मिलाकर पान करे। रक्त, कामला तथा पाण्डुरोग की शान्ति होगी। वासक का रस तथा मधु पीने से रक्त-पित्त रोग दूरीभूत हो जाता है। प्रातः के समय जल पीने से (सोकर उठते ही) दारुण पीनसरोग का नाश होता है॥२४-२७॥

विभीतकस्य वै चूर्णं पिप्पल्याः सैन्धवस्य च।
पीतं सकाञ्जिकं हन्ति स्वरभेदं महेश्वर॥२८॥
चूर्णमामलकं सेव्यं पीतं गव्यपयोऽन्वितम्।
मनःशिला बलामूलं कोलपर्णञ्च गुग्गुलुः॥२९॥
जातिपत्रं कोलपत्रं तथा चैव मनःशिला। एभिश्चैव कृता वर्त्तिर्बदर्य्यग्नौ महेश्वर।
धूमपानं कासहरं नात्र कार्य्या विचारणा॥३०॥
त्रिफलापिप्पलीचूर्णं भक्षितं मधुना युतम्।
भोजनादौ हि समधु पिपासाज्वरितं हरेत्॥३१॥
बिल्वमूलञ्च समधु गुडूचीक्वथितं जलम्। पीतं हरेच्च त्रिविधं छर्दिं नैवात्र संशयः।
पीता दूर्वा छर्दिनुत्स्यात्पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा॥३२॥

॥इति गारुडे महापुराणे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९०॥

बहेड़ा, पिप्पली, सेंधा नमक मिलाकर कांजी के साथ पीये, स्वरभंग रोग नष्ट होगा। आमलकी का

चूर्ण, मैनसिल, बहेड़ा का चूर्ण, बदरीपत्र, गुग्गुलु को गोघृत के साथ पान करने से भी स्वरभंग रोग नष्ट होगा। जातीपत्र, बदरीपत्र, मैनसिल को पीस कर बत्ती बनाये। यह बत्ती बदरीकाष्ठ में जली अग्नि में जलाकर उस धूम का पान करे, कासरोग नाश होगा। त्रिफला तथा पिप्पली चूर्ण करके मधु के साथ भोजन के पूर्व पान करे। इससे प्यास तथा ज्वर शान्त होगा। बेल की जड़ तथा गुरुच का काढ़ा मधु के साथ पान करे, तीनों तरह का वमन नष्ट होगा। दूर्वा को चावल की धोअन से पीसे। इसे पान करे, वमन रोग नष्ट होगा॥२८-३२॥

॥एक सौ नब्बेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग कथन

हरिरुवाच

पुनर्नवाया मूलञ्च श्वेतं पुष्ये समाहृतम्। वारि पीतं तस्य पार्श्वे भवनेषु न पन्नगाः॥१॥
तार्क्ष्यमूर्त्ति बहेद्यो वै भल्लूकदन्तनिर्मिताम्। स पन्नगैर्न दश्येत यावज्जीवं वृषध्वज॥२॥

पिबेच्छाल्मलिमूलं यः पुष्यर्क्षे रुद्र वारिणा।
तस्मिन्नपास्तदशना नागाः स्युर्नात्र संशयः॥३॥
पुष्ये लज्जालुकामूले हस्तबद्धे तु पन्नगान्।
गृह्णीयाल्लेपतो वापि नात्र कार्य्या विचारणा॥४॥

पुष्ये श्वेतार्कमूलं तु पीतं शीतेन वारिणा। नश्येत दंशकविषं करवीरादिजं विषम्॥५॥

हरि ने कहा—पुनर्नवा की जड़ पुष्यनक्षत्र में लाकर जल के साथ पान करने से उस व्यक्ति के पास किंवा उसके घर में सर्प नहीं रह सकता। भालू के दांत से गरुड़ की मूर्ति बनाये, उसे धारण करे, जीवन पर्यन्त उसे सर्प नहीं डस सकेगा। शाल्मलि वृक्ष की जड़ को पुष्यनक्षत्र में लाकर जल के साथ पीने से उस व्यक्ति के लिये सर्पदन्त व्यर्थ हो जाता है। यह अन्यथा नहीं होगा। पुष्यनक्षत्र में लाजवन्ती की जड़ लाकर हाथ में बांधे अथवा पीस कर लेप लगाये। वह व्यक्ति निःसंदिग्ध रूप से सर्प को पकड़ लेगा। पुष्यनक्षत्र में श्वेत मदार की जड़ शीतल जल से पान करे। दंशकविष तथा करवीर आदि विष का नाश होगा॥१-५॥

महाकालस्य वै मूलं पिष्टं तत्काञ्जिकेन वै।
वोड्राणां डुण्डुभानाञ्च तल्लेपो हरते विषम्॥६॥

तण्डुलीयकमूलञ्च पिष्टं तण्डुलवारिणा। घृतेन सह पीतं तु हरेत्सर्वविषाणि च॥७॥
नीलीलज्जालुकामूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा। पीत्वा तद्दंशकविषं नश्येदेकैर्न चोभयोः॥८॥
कुष्माण्डकस्य स्वरसः सगुडः सहशर्करः।
पीतः सदुग्धो नाशः स्याद्दंशकस्य विषस्य वै॥९॥
तथा कोद्रवमूलस्य मोहस्य हर एव च। यष्टीमधुसमायुक्ता तथा पीता च शर्करा॥१०॥
सदुग्धा च त्रिरात्रेण मूषविषहरा भवेत्। चुल्लकत्रयपानाच्च वारिणः शीतलस्य वै॥११॥
ताम्बूलदग्धमुखस्य लालास्रावो विनश्यति। घृतं सशर्करं पीत्वा मद्यपानमदो न वै॥१२॥

महाकाल लता का मूल कांजी के साथ पीसकर जल से लेपन करने से बोड़ा तथा डुण्डुम सांप का भी विष नष्ट हो जाता है। तण्डुलीय शाक की जड़ को चावल के धोअन से पीस कर घृत के साथ पान करने से सभी विष नष्ट हो जाते हैं। नीलीवृक्ष तथा लाजवन्ती की जड़ को चावल के धुले जल से पीस कर सभी विष एवं दंशक विष का नाश हो जाता है। कूष्माण्ड का रस गुड़ चीनी तथा दुग्ध के साथ पान करने से सभी विष तथा दंशक जन्तुओं का विष नष्ट हो जाता है। कोद्रव की जड़ मोहरोग का हरण करती है। मुलेठी, चीनी तथा दुग्ध का पान करने से तीन रात में मूषिक विष नाश करता है। ताम्बूल खाने से जब मुख चूना आदि से जल जाये, तब जो लार गिरती है, तीन चुल्लू ठंडा जल पान करने से उसका निवारण होगा। चीनी के साथ घृत पीये, मद्यपान जनित मत्तता नहीं होगी॥६-१२॥

कृष्णाङ्कोठस्य मूलेन पीतं सुक्वथितं जलम्। ततो नश्येद् गरविषं त्रिरात्रेण महेश्वर॥१३॥
उष्णं गव्यघृतञ्चैव सैन्धवेन समन्वितम्। नाशयेत्तन्महादेव वेदनं वृश्चिकोद्भवम्॥१४॥
कुसुम्भं कुङ्कुमञ्चैव हरितालं मनःशिला। करञ्जं पिषितं चैव अर्कमूलञ्च शङ्कर॥१५॥

हे शंकर! कृष्णा आकोढ़ की जड़ का काढ़ा बनाकर उसको पीने से तीन रात में गरविष नष्ट होगा। गोघृत को गर्म करके सैन्धव नमक के साथ पान करने से वृश्चिक विषजनित वेदना नष्ट हो जाती है। कुसुम्भ, कुंकुम, हरताल, मैनसिल, करञ्ज तथा आकन्द की जड़ पीस कर पान करने से विषदोष का नाश होगा॥१३-१५॥

विषं नृणां विनश्येत एतेषां भक्षणाच्छिव। दीपतैलप्रदानाच्च दंशैराकीटजैः शिव।
खर्जूरकविषं नश्येत्तदा वै नात्र संशयः॥१६॥
दंशस्थानं वृश्चिकस्य शुण्ठीतगरपादिका। नश्येन्मधुमक्षिकाया एतेषां लेपतो विषम्॥१७॥

दंश स्थान में दीपक का तेल लेपन करने से कीटों के दंश जनित वेदना नष्ट हो जाती है। इससे खुजूर का विष भी नष्ट हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। वृश्चिकदंश स्थान में गुग्गुलु द्वारा धूपित करने से वह विष नष्ट हो जाता है। हे रुद्र! इसमें सन्देह नहीं है। आकोढ़ वृक्ष के पुष्प को लगाने से मूषिक दंशजनित विष नष्ट हो जाते हैं। हे नागेश्वर! मक्खी दंशन करने से मरीच, शुण्ठी तथा तगरपादिका पीस कर दंशन स्थल पर लेप करे। इससे दंशन ज्वाला निवृत्त हो जाती है॥१६-१७॥

शतपुष्पा सैन्धवञ्च साज्यं वा तेन लेपयेत्। शिरीषस्य तु बीजं वै सिद्धं क्षीरेण घर्षितम्॥१८॥

तल्लेपेन महादेव नश्येत्कुक्कुरजं विषम्।
ज्वलिताग्निर्वारिसेकी तथा दर्दुरजं विषम्॥१९॥

शतपुष्पा तथा सैन्धव पीस कर घृत से लेप करे अथवा शिरीष के बीज को दुग्ध में पका कर घर्षण करे। इसे घिस कर दंशस्थान में लेप करे। वृश्चिकदंश का विष शान्त होगा। अग्नि ज्वाला अथवा शीतल जल से सेंकने से मेंढक का विष शान्त होगा॥१८-१९॥

धुस्तूरकरसं मिश्रं क्षीराज्यगुडपानतः। मूलं विषं विनश्येत शशाङ्ककृतशेखर॥२०॥
वटनिम्बशमीनाञ्च वल्कलैः क्वथितं जलम्।
तत्सेकान्मुखदन्तानां नश्येद्वै विषवेदना॥२१॥
लेपनाद्देवदारोश्च गैरिकस्य च लेपनात्। नागेश्वरो हरिद्रे द्वे तथा चैव मञ्जिष्ठिका।
एभिर्लेपाद्विनश्येत लूताविषमुमापते॥२२॥
करञ्जस्य तु बीजानि वरुणच्छदमेव च। तिलाश्च सर्षपा हन्युर्विषं वै नात्र संशयः॥२३॥
घृतकुमारीपत्रं वै दत्तं सलवणं हर। तुरङ्गमशरीराणां कण्डुर्नश्येद्दशाहतः॥२४॥

॥इति गारुडे महापुराणे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९१॥
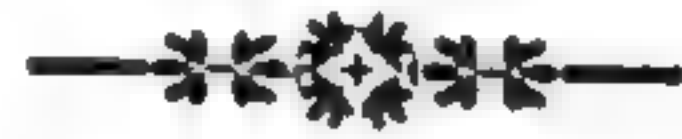
हे शशांकशेखर! धुतूरा के रस के साथ दूध, घी तथा गुड़ मिलाकर पीये। कुत्ते का विष नाश होगा। वट, नीम, शमी की छाल का काढ़ा बनाकर सेंक करे। मुख तथा दांत की विषपीड़ा नष्ट होगी। देवदारु, गेरु, नागेश्वर, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ को पीस कर लेप करे, मकड़ी का विष नष्ट होगा। करंजबीज, वरुण वृक्ष की पत्ती, तिल, सरसों विषनाशक हैं। इसमें संशय नहीं है। हे हर! लौंग तथा घृतकुमारी का पत्ता मिलाकर लेपन करे, दस दिन में घोड़े के देह की खुजली नष्ट होगी॥२०-२४॥

॥एक सौ एक्यानबेवां अध्याय समाप्त॥

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

हरिरुवाच

चित्रकस्याष्टभागाश्च शूरणस्य च षोडश।
शुण्ठ्याश्चत्वारो भागाश्च मरिचानां द्वयं तथा॥१॥
त्रितयं पिप्पलीमूलं विडङ्गानां चतुष्टयम्। अष्टौ मुषलिक्वाभागास्त्रिफलायाश्चतुष्टयम्॥२॥

द्विगुणेन गुडेनैषां मोदकानि हि कारयेत्। तद्भक्षणमजीर्णं हि पाण्डुरोगञ्च कामलम्।
अतीसाराणि मन्दाग्निं प्लीहाञ्चैव निवारयेत्॥३॥
बिल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभद्रकम्। प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका॥४॥
बला चातिबला रास्ना श्वदंष्ट्रा च पुनर्नवा।
एरण्डः शारिवा पर्णी गुडूची कपिकच्छुका॥५॥
एषां दशपलान्भागान्क्वाथयेत्सलिलेऽमले। तेन पादावशेषेण तैलपात्रे विपाचयेत्॥६॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्। शतावरीं सैन्धवञ्च तैलतुल्यं प्रदापयेत्॥७॥
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्यामि तच्छृणु।
शतपुष्पा देवदारु बला पर्णी वचागुरु॥८॥
कुष्टं मांसी सैन्धवञ्च पलमेकं पुनर्नवा। पाने नस्ये तथाभ्यङ्गे तैलमेतत्प्रदापयेत्॥९॥

श्रीहरि ने कहा—चित्रक आठ भाग, सूरन सोलह भाग, शुण्ठी चार भाग, मरीच दो भाग, पिप्पली की जड़ तीन भाग, बिड़ङ्ग चार भाग को दूने गुड़ में मिलाकर मोदक बनाये। यह खाने से अजीर्ण, पाण्डुरोग, कामला, अतिसार, अग्निमन्दता तथा प्लीहारोग निवृत्त होगा। बिल्व की जड़, गनियारी, श्योनाक, पाटला, पारिभद्रक, प्रसनीणी, अश्वगन्धा, बृहती, कण्टकारी, बला, अतिबला, रासना, अश्वदंष्ट्रा, पुनर्नवा, (अश्वदंष्ट्रा को गोरक्षकर्कटी बंग संस्करण में लिखा है), ऐरण्ड, अनन्तमूल, गुरुच, शालपाणी, शुकशिम्बी, इनको प्रत्येक दस पल लेकर शुद्ध जल में काढ़ा बनाये। जब एक चौथाई जल बाकी रहे, तब उसे तैलपात्र में पाक करे। तैल पकाते समय उसमें तैल का चौगुना बकरी या गाय का दूध मिलाये तथा तैल के इतनी शतमूली और सेंधानमक भी उसमें छोड़े। पक जाने पर इन द्रव्यों को पीस कर प्रदान करे। इसमें जो द्रव्य पीसा जाकर छोड़ने को कहा है, वह है—शतपुष्पा, देवदारु, बला, पर्णी, वचा, अगुरु, कूठ, जटामासी, सैन्धव तथा पुनर्नवा। यह सब एक-एक पल लेना चाहिये। इनको पीस कर तैल में छोड़े। यह तैल सविधि पका कर पान, नस्य, अभ्यंग लेना चाहिये॥१-९॥

हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च गण्डमालाञ्च नाशयेत्।
अपस्मारं वातरक्तं वपुष्मांश्च पुमान्भवेत्॥१०॥
गर्भमश्वतरी विन्द्यात्किं पुनर्मानुषी हर। अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा।
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारिणाम्॥११॥

इससे हृदय पीड़ा, पार्श्वपीड़ा, गंडमाला नष्ट होता है। वातरक्त, अपस्मार आदि का भी नाश होता है। शरीर पुष्ट होता है। इस तेल को देने से खच्चरी तक गर्भिणी हो जायेगी। वात रोगाक्रान्त हाथी तथा घोड़े भी तैल सेवन से ठीक होंगे। सभी वातरोगों में यह तैल उपयोग करे॥१०-११॥

हिङ्गु तुम्बुरु शुण्ठी च साध्यं तैलन्तु सार्षपम्। एतद्धि पूरणं श्रेष्ठं कर्णशूलापहं परम्॥१२॥
शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गुलनागरम्। तक्रं चतुर्गुणं दद्यात्तैलमेतद्विपाचयेत्॥१३॥

बाधिर्य्यं कर्णशूलञ्च पूयस्त्रावञ्च कर्णयोः।
क्रिमयश्च विनश्यन्ति तैलस्यास्य प्रपूरणात्॥१४॥
शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गुलनागरम्। शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रूरसाञ्जनम्॥१५॥
सौवर्चलं यवक्षारं सामुद्रं सैन्धवं तथा। ग्रन्थिकं विडमुस्तं च मधु शुक्तं चतुर्गुणम्॥१६॥
मातुलुङ्गरसश्चैव कदलीरस एव च। तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलापहं परम्॥१७॥
बाधिर्य्यं कर्णनादश्च पूयस्त्रावश्च दारुणः। पूरणादस्य तैलस्य क्रिमयः कर्णयोर्हर॥१८॥
सद्यो विनाशमायान्ति शशाङ्ककृतशेखर। क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तमलापहम्॥१९॥

हींग, तुम्बुरु, शुण्ठी के साथ सरसों का तैल पकाकर कान में ठंडा करके छोड़ने से कर्णशूल समाप्त होगा। सूखी मूली तथा शुण्ठी का क्षार, हींग, शुण्ठी के साथ तिल तैल पकाये। पकाते समय तैल का चार गुना कांजी छोड़े। यथाविधि पाक के अनन्तर यह तैल कान में छोड़ने पर वधिरता, कर्णशूल, मवाद निकलना, कान के कृमि नष्ट होंगे। शुष्क मूली, शुण्ठी का क्षार, हिंगुल, शुण्ठी, नागर, शतपुष्पा, वचा, कूठ, देवदारु, सैजन, रसांजन, सौवर्चल, जवाखार, सामुद्र, सैन्धव, पिप्पल, विट् लवण, मोथा, मधु लेकर तैल में पकाये। पकाते समय चौगुनी कांजी (तेल से चौगुनी), नींबू का रस तथा केले का रस मिलाये। इसे सविधि पकाकर ठंडा करके कान में छोड़े। वधिरता, कान में नाद गूंजना, मवाद बहना, कान के कृमि तत्क्षण नष्ट होते हैं। यह क्षारतैल कहा गया है। इसके सेवन से मुख तथा दांत का भी मलनाश होगा। हे शशांकशेखर! यह श्रेष्ठ क्षारतैल है॥१२-१९॥

चन्दनं कुङ्कुमं मांसी कर्पूरो जातिपत्रिका।
जातीकक्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च॥२०॥
अगुरूणि च कस्तूरी कुष्ठं तगरपादिका। गोरोचना प्रियङ्गुश्च बला चैव तथा नखी॥२१॥
सरलं सप्तपर्णञ्च लाक्षा चामलकी तथा। तथा तु पद्मकञ्चैव एतैस्तैलं प्रसाधयेत्॥२२॥
प्रस्वेदामलदुर्गन्धकण्डूकुष्ठहरं परम्। स्त्रीशतं गच्छते रुद्र वन्ध्यापि लभते सुतम्॥२३॥
यमानी चित्रकं धन्यं त्र्यूषणं जीरकं तथा। सौवर्चलं विडङ्गञ्च पिप्पलीमूलराजिकम्॥२४॥
एभिः पचेद् घृतप्रस्थं जलप्रस्थाष्टसंयुतम्।
तथाऽर्शोगुल्मश्वयथुं हन्ति वह्निं करोति वै॥२५॥

लाल चन्दन, कुंकुम, जटामासी, कपूर, जातीफल, कंकोल, सुपारी, लौंग, अगुरु, कस्तूरी, कूठ, तगरपादिका, गोरोचन, प्रियंगु, बला, नखी, सरलकाष्ठ, सप्तपर्णी, लाक्षा, आमलकी, पद्मकाष्ठ को तैलपाक करे। इसके सेवन से पसीने की गन्ध, खुजली, कुष्ठ नष्ट होगा। इससे (पान से) अत्यन्त शुक्र बढ़ेगा। इसे सेवन करने वाला नर सैकड़ों नारीगण से मैथुन कर सकेगा तथा स्त्रियों का प्रिय होगा। इसके सेवन से वन्ध्या भी गर्भवती होगी। यमानी, चित्रक, धनियां, त्रिकटु, जीरा, सौवर्चल, बायविडङ्ग, पिप्पली मूल, सरसों को एक प्रस्थ घृत में पकाये। पाक काल में आठ प्रस्थ जल भी छोड़े। यह यथाविधि पाक करने पर इसके प्रयोग-सेवन से अर्श, गुल्म, शोथ नष्ट होते हैं। जठराग्नि बढ़ती है॥२०-२५॥

मरिचं त्रिवृतं कुष्ठं हरितालं मनःशिला। देवदारु हरिद्रे द्वे कुष्ठं मांसी च चन्दनम्॥२६॥
विशाला करवीरञ्च अर्कक्षीरं शकृद्रसः।
एषाञ्च कार्षिको भागो विषस्यार्द्धपलं भवेत्॥२७॥
प्रस्थं कटुकतैलस्य गोमूत्रेऽष्टगुणो पचेत्। मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥२८॥
पामा विचर्चिका चैव दद्रु विस्फोटकानि च।
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति कोमलत्वञ्च जायते॥२९॥
प्रभूतान्यपि श्वित्राणि तैलेनानेन प्रक्षयेत्।
चिरोत्थितमपि श्वित्रं विनष्टं तत्क्षणाद्भवेत्॥३०॥

मरीच, त्रिवृत्, कूठ, हरिताल, मैनसिल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, जटामासी, लाल चन्दन, गोरक्षकर्कटी, करवीर, मदार का दूध तथा गोबर का रस, प्रत्येक दो तोला, विष चार तोला मिलाकर एक प्रस्थ तैल में पकाये। पाक करते समय तैल का आठ गुणा गोमूत्र छोड़े। इसे मिट्टी के बर्तन अथवा लौह पात्र में धीमी आंच पर पकाना चाहिये। यह तैल सेवन करने से पामा, विचर्चिका, दद्रु, विस्फोटकादि रोग नष्ट होते हैं। देह में मालिश करने से शरीर कोमल होगा। चिरकालीन श्वेतकुष्ठ भी नष्ट होगा॥२६-३०॥

पटोलपत्रं कटुका मञ्जिष्ठा शारिवा निशा।
जातीशमीनिम्बपत्रं मधुकं क्वथितं घृतम्॥३१॥
एभिर्लेपात्स्युररुजो व्रणा विस्राविणः शिव।
शङ्खपुष्पी वचा सोम ब्राह्मीवृक्षसुवर्चला॥३२॥
अभया च गुडूची च अटरूषकवागुजी। एतैरक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥३३॥
कण्टकार्य्या रसप्रस्थं क्षीरप्रस्थसमन्वितम्।
एतद् ब्राह्मीघृतं नाम स्मृतिमेधाकरं परम्॥३४॥
अग्निमन्थो वचा वासा पिप्पलीमधुसैन्धवम्। सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैरिव गीयते॥३५॥

पटोल के पत्ते, कटुकी, मजीठ, अनन्तमूल, हल्दी, जातीपत्र, नीम का पत्ता, शमी का पत्ता, मुलेठी का काढ़ा बनाकर इसमें घी मिलाकर व्रणों पर लगाने से पीड़ा तथा मवाद स्राव समाप्त होगा। हे शिव! शंखपुष्पी, वचा, कपूर, ब्राह्मी का पौधा, सुवर्चला, हरीतकी, गुरुच, वासक तथा सोमराजी प्रत्येक दो तोला लेकर एक प्रस्थ घी में पकाये। पकाते समय इसमें कण्टकारी का रस एक प्रस्थ तथा गोदुग्ध एक प्रस्थ छोड़े। यह है ब्राह्मीघृत। इसके सेवन से स्मृति-मेधा बढ़ती है॥३१-३५॥

अपामार्गः सगुडूची कुष्ठं शतावरी वचा।
शङ्खपुष्पाभया साज्यं विडङ्गं भक्षितं समम्।
त्रिभिर्दिनैर्नरं कुर्याद् ग्रन्थाष्टशतधारिणम्॥३६॥

अग्निमन्थ (गनियारी बंगाल में कहते हैं), वच, वासक, पिप्पली, मधु तथा सेंधानमक पीस कर पान करे। उसका कंठस्वर किन्नर जैसा होगा। अपामार्ग, गुरुच, कूठ, शतमूली, वचा, शंखपुष्पी, हरीतकी, विडङ्ग को पीस कर घृत के साथ तीन दिन ग्रहण करे। मेधाशक्ति ऐसी होगी कि वह १०८ ग्रन्थों को याद कर लेगा॥३६॥

अद्भिर्वा पयसाज्येन मासमेकन्तु सेविता। वचा कुर्यान्नरं प्राज्ञं श्रुतिधारणसंयुतम्॥३७॥

चन्द्रसूर्य्यग्रहे पीतं पलमेकं पयोऽन्वितम्।
वचायास्तत्क्षणं कुर्य्यान्महाप्रज्ञायुतं नरम्॥३८॥
भूनिम्बनिम्बत्रिफलापर्पटैश्च शृतं जलम्।
पटोलीमुस्तकाभ्याञ्च वासकेन च नाशयेत्॥३९॥
विस्फोटकानि रक्तञ्च नात्र कार्य्या विचारणा।
केतकस्य फलं शङ्खं सैन्धवं त्र्यूषणं वचा॥४०॥

फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला। एषां वर्त्तिर्हन्ति काचं तिमिरं पटलं तथा॥४१॥

जल, दूध किंवा घृत के साथ एक महीना वच खाये। वह श्रुतिधर हो जायेगा। जो सुनेगा, नहीं भूलेगा। चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण के समय जो व्यक्ति जल के साथ एक पल वच खायेगा, वह महाप्राज्ञ होगा। चिरायता, नीम, त्रिफला, पित्तपापड़ा, वटोला, मोथ, वासक का काढ़ा बना कर इसे पान करे। विस्फोटक तथा रक्तस्राव निवृत्त होगा। यह बात सत्य है। केतकी फल, शंख, सैन्धव, त्रिकटु, वच, समुद्रफेन, रसांजन, मधु, बायविड़ङ्ग, मैनसिल को पीस कर बत्ती बनाये। इससे नेत्र में अंजन देने से काच, तिमिर, पटल आदि आंख की बीमारी दूर होगी॥३७-४१॥

प्रस्थद्वयं माषकस्य क्वाथश्च द्रोणमम्भसाम्।
चतुर्भागावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥४२॥
काञ्जिकस्याढकं दत्त्वा पिष्टान्येतानि दापयेत्।
पुनर्नवा गोक्षुरकं सैन्धवं त्र्यूषणं वचा॥४३॥

लवणं सुरदारु च मञ्जिष्ठा कण्टकारिका। नस्यात्पानाद्धरत्येव कर्णशूलं सुदारुणम्॥४४॥
बाधिर्य्यं सर्वरोगांश्च अभ्यङ्गाच्च महेश्वर। पलद्वयं सैन्धवञ्च शुण्ठीचित्रकपञ्चकम्॥४५॥
सौवीरपञ्चप्रस्थञ्च तैलप्रस्थं पचेत्ततः। असृग्दरस्वरप्लीहासर्ववातविकारनुत्॥४६॥
उदुम्बरं वटं प्लक्षं जम्बूद्वयमथार्जुनम्। पिप्पलञ्च कदम्बञ्च पलाशं लोध्रतिन्दुकम्॥४७॥
मधूकमाम्रसर्ज्जञ्च बदरं पद्मकेशरम्। शिरीषबीजङ्केतक एतत्क्वाथेन साधितम्।
तैलं हन्ति व्रणाँल्लेपाच्चिरकालभवानपि॥४८॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९२॥

दो प्रस्थ उर्द एक द्रोण जल में पकाये। जब १/४ भाग जल बचे, तब उसमें एक प्रस्थ तैल छोड़कर पाक करे। पाककल में एक आढ़क (आठ सेर) कांजी छोड़े। तब इसमें जो सामग्री पीस कर छोड़नी है, उसे सुनिये। इसमें पुनर्नवा, गोखरु, सैन्धव, त्रिकटु, वच, लवण, देवदारु, मजीठ, कण्टकारी भी छोड़े तथा पकाये। इसका नस्य लेने अथवा पीने से दारुण कर्णशूल नष्ट होगा। इसे मर्दन करने से बधिरता तथा अन्य रोग इसकी मालिश से दूर होंगे। हे महेश्वर! दो पल सैन्धव नमक तथा शुण्ठी एवं चित्रक पांच पल, कांजी पांच प्रस्थ तथा एक प्रस्थ तैल मिलाकर पकाये। यह तैल असृक्दर, स्वरभंग, प्लीहा तथा सभी वातरोग को नष्ट करेगा। यज्ञउडुम्बर, वट, पाकड़, दोनों तरह की जामुन, अर्जुन, पिप्पल, कदम्ब, पलाश, लोध्र, तिन्दुक, मधूक, आम्र, सर्ज, बदरी, नागकेशर तथा शिरीषबीज निर्मलीफल मिलाकर काढ़ा बनाये। इस काढ़े को तैल में पाक करे। तत्पश्चात् व्रण में लगाने से चिरकालीन व्रण नष्ट होगा॥४२-४८॥

॥एक सौ बानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नाना योग वर्णन

हरिरुवाच

पलाण्डुजीरके कुष्ठमश्वगन्धाजमोदकम्। वचा त्रिकटुकञ्चैव लवणं चूर्णमुत्तमम्॥१॥
ब्राह्मीरसैर्भावितञ्च सर्पिर्मधुसमन्वितम्। सप्ताहं भक्षितं कुर्य्यान्निर्मलाञ्च मतिं पराम्॥२॥
सिद्धार्थकं वचा हिङ्गु करञ्जं देवदारु च। मञ्जिष्ठा त्रिफला विश्वं शिरीषो रजनीद्वयम्॥३॥
प्रियङ्गुनिम्बत्रिकटु गोमूत्रेणेव घर्षितम्। नस्यमालेपनञ्चैव तथा चोद्वर्त्तनं हि तत्॥४॥
अपस्मारविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम्। भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे तु पूजनम्॥५॥

श्रीहरि ने कहा—पलाण्डु, जीरा, कूठ, अश्वगन्धा, अजमोद, वचा, त्रिकटु, लवण का चूर्ण बनाकर ब्राह्मीरस में भावना देकर घृत-मधु से एक सप्ताह खाने से मति (बुद्धि) परम निर्मल होगी। सिद्धार्थ, वचा, हींग, कटकरंज, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, विश्वा, शिरीष, दोनों हल्दी, प्रियंगु, नीम, त्रिकटु को गोमूत्र से पीसे। इसका नस्य, लेप अथवा मालिश अपस्मार, विष जनित उन्माद, शोष, अलक्ष्मी तथा ज्वरहारक है। इसका उपयोग करने वाला राजद्वार में पूजित होगा। भूतभय नहीं होगा॥१-५॥

निम्बं कुष्ठं हरिद्रे द्वे शिग्रुसर्षपजं तथा। देवदारु पटोलञ्च धन्यं तक्रेण घर्षितम्॥६॥
देहं तैलाक्तगात्रं वै अनेनोद्वर्त्तनं तथा।
पामाः कुष्ठानि नश्येयुः कण्डुं हन्ति च निश्चितम्॥७॥

सामुद्रं सैन्धवं क्षारराजिकालवणं विडम्। कटुलोहरजश्चैव त्रिवृत्सुवर्णकं समम्।
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम्॥८॥

नीम, कूठ, दोनों हल्दी, सैजन, सरसों, देवदारु, पटोल, धनियां को मट्ठे से पीसे। तैलाक्त देह में यह उबटन लगाये। पामा, कुष्ठ नष्ट होगा। खुजली तो अवश्य नष्ट होगी। सामुद्र, सैन्धव क्षार, राजिका, लवण, विड, कटु, लौहरज, त्रिवृत तथा सुवर्णक समान ग्रहण करके दधि, गोमूत्र तथा दूध में मन्द आंच पर पकाये॥६-८॥

एतच्चाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा।
जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीत मासादिघृतभोजनम्॥९॥
नाभिशूलं मूत्रशूलं गुल्मप्लीहभवञ्च यत्। सर्वं शूलहरं चूर्णं जठरानलदीपनम्।
परिणामसमुत्थस्य शूलस्य च हितं परम्॥१०॥

इस अग्नि बलकारक चूर्ण को उष्ण जल से पान करे। अजीर्ण रोग समाप्त होगा। मांस, घृतादि भोजन पचेगा। यह परिणाम पीड़ा (दर्द) तथा शूल में परम हितकारी है॥९-१०॥

अभयामलकं द्राक्षा पिप्पली कण्टकारिका।
शृङ्गी पुनर्नवा शुण्ठी जग्ध्वा कासं निहन्ति वै॥११॥
अभयामलकं द्राक्षा पाठा चैव बिभीतकम्। शर्करा च समं चैव जग्धं ज्वरहरं भवेत्॥१२॥
त्रिफला बदरं द्राक्षा पिप्पली च विरेककृत्।
हरीतकी सोष्णनीरलवणञ्च विरेककृत्॥१३॥
कूर्ममत्स्याश्वमहिषगोशृगालाश्च वानराः। बिडालबर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटाः॥१४॥
हंस एषाञ्च विण्मूत्रं मांसं वा रोमशोणितम्।
धूपं दद्याज्ज्वरार्त्तेभ्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये॥१५॥
एतान्यौषधजातानि घ्नन्ति रोगान्भवेश्वर।
निघ्नन्ति तांश्च रोगांश्च वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥१६॥
औषधे भगवान्विष्णुः स स्मृतो रोगनुद्भवेत्।
ध्यातोऽर्चितः स्तुतो वापि नात्र कार्य्या विचारणा॥१७॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९३॥

अभया, आमलकी, द्राक्षा, पिप्पली, कण्टकारिका, शृंगी, पुनर्नवा, शुण्ठी को पीस कर लेने से कासरोग नष्ट होगा। अभया, आमलकी, द्राक्षा, पाठा, विभीतक तथा समभाग शर्करा पीस कर पान करे। यह ज्वरनाशक है। त्रिफला, बदर, द्राक्षा, पिप्पली विरेचक है। हरीतकी, उष्ण जल, लवण भी विरेचक है।

कूर्म, मत्स्य, महिष, अश्व, गौ, शृगाल, वानर, विडाल, मयूर, काक, वराह, उल्लू, मुर्गा, हंस, इनका मल, मूत्र, मांस, रोम, रक्त एकत्र करके धूप दे। ज्वरार्त्त तथा ज्वरोन्मत्त शान्त होगा। हे महेश्वर! ये औषधियां रोगनाशक हैं। ये रोगों को वैसे ही नाश करती हैं, जैसे इन्द्र (विद्युत्) का वज्र वृक्षों का नाश करता है। रोगनाशार्थ यह औषधियां भगवान् विष्णु ने कही हैं। उनको चित्त में ध्यान करके तथा स्तुति करके यह सब ग्रहण करे। इसमें अन्यथा विचार न करे॥११-१७॥

॥एक सौ तिरानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वैष्णव कवच वर्णन

हरिरुवाच

सर्वव्याधिहरं वक्ष्ये वैष्णवं कवचं शुभम्। येन रक्षा कृता शम्भोर्नात्र कार्या विचारणा॥१॥
प्रणम्य देवमीशानमजं नित्यमनामयम्। देवं सर्वेश्वरं विष्णुं सर्वव्यापिनमव्ययम्॥२॥
बध्नाम्यहं प्रतीकारं नमस्कृत्य जनार्दनम्। अमोघाप्रतिमं सर्वं सर्वदुःखनिवारणम्॥३॥
विष्णुर्मामग्रतः पातु कृष्णो रक्षतु पृष्ठतः। हरिर्मे रक्षतु शिरो हृदयञ्च जनार्दनः॥४॥
मनो मम हृषीकेशो जिह्वां रक्षतु केशवः। पातु नेत्रे वासुदेवः श्रोत्रे सङ्कर्षणो विभुः॥५॥
प्रद्युम्नः पातु मे घ्राणमनिरुद्धस्तु चर्म च। वनमाली गलस्यान्तं श्रीवत्सो रक्षतामधः॥६॥

श्रीहरि ने कहा—अब मैं सर्वव्याधि नाशक शुभ विष्णु कवच कहता हूं। इस कवच से तो शम्भु का भी रक्षा कार्य सम्पन्न होता है। मैं अनामय, अज, सनातन ईशान देव को, सर्व देवेश्वर जनार्दन को प्रणाम करके यह सर्वरोग नाशक कवच बन्धन करता हूं। विष्णु मेरे अग्रभाग की, कृष्ण पृष्ठ की, हरि शिर की, जनार्दन हृदय की, हृषीकेश मन की, केशव जिह्वा की, वासुदेव नेत्रद्वय की, संकर्षण कर्णद्वय की, प्रद्युम्न नाक की, अनिरुद्ध त्वचा की, वनमाली गण्डस्थल की, श्रीवत्स अधोभाग की रक्षा करें॥१-६॥

पार्श्वं रक्षतु मे चक्रं वामं दैत्यनिवारणम्। दक्षिणं तु गदादेवी सर्वासुरनिवारिणी॥७॥
उदरं मुषलं पातु पृष्ठं मे पातु लाङ्गलम्। ऊर्ध्वं रक्षतु मे शार्ङ्गं जङ्घे रक्षतु नन्दकः॥८॥
पार्ष्णी रक्षतु शङ्खश्च पद्मं मे चरणावुभौ। सर्वकार्य्यार्थसिद्ध्यर्थं पातु मां गरुडः सदा॥९॥
वराहो रक्षतु जले विषमेषु च वामनः। अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः॥१०॥

हिरण्यगर्भो भगवान् हिरण्यं मे प्रयच्छतु।
सांख्याचार्य्यस्तु कपिलो धातुसाम्यं करोतु मे॥११॥

श्वेतद्वीपनिवासी च श्वेतद्वीपं नयत्वजः। सर्वाञ्शत्रून्सूदयतु मधुकैटभसूदनः॥१२॥

वाम पार्श्व की रक्षा दैत्यहन्ता चक्र करें। दक्षिण पार्श्व की रक्षा असुरगण विनाशिनी गदा करे। मूषल उदर की, हल पृष्ठ की, शार्ङ्ग धनु: ऊर्ध्व की, नन्दक तलवार जंघाद्वय की, शंख पार्ष्णि की, पद्म चरणद्वय की, गरुड़ सर्वकार्य सिद्धि की रक्षा करें। वराहदेव जल में, वामन देव विषम संकटों में, नृसिंह वन में, केशव सर्वत्र रक्षा करें। हिरण्यगर्भ स्वर्ण प्रदान करें। सांख्य के आचार्य कपिल मेरे धातुसाम्य का विधान करें। श्वेत द्वीपवासी प्रभु अज मुझे श्वेतद्वीप ले जायें। मधुकैटभ हन्ता विष्णु मेरे सभी शत्रुओं का नाश करें॥७-१२॥

विष्णुः सदा चाकर्षतु किल्विषं मम विग्रहात्।
हंसो मत्स्यस्तथा कूर्मः पातु मां सर्वतो दिशम्॥१३॥

त्रिविक्रमस्तु मे देवः सर्वान्पापान्निगृह्णतु। तथा नारायणो देवो बुद्धिं पालयतां मम॥१४॥

शेषो मे निर्मलं ज्ञानं करोत्व ज्ञाननाशनम्।
वडवामुखो नाशयतु कल्मषं यत्कृतं मया॥१५॥

पद्भ्या ददातु परमं सुखं मूर्ध्नि मम प्रभुः। दत्तात्रेयः कलयतु सपुत्रपशुबान्धवम्॥१६॥

सर्वानरीन्नाशयतु रामः परशुना मम। रक्षोघ्नस्तु दाशरथिः पातु नित्यं महाभुजः॥१७॥

शत्रून्हलेन मे हन्याद्रामो यादवनन्दनः। प्रलम्बकेशिचाणूरपूतनाकंसनाशनः।
कृष्णस्य यो बालभावः स मे कामान् प्रयच्छतु॥१८॥

अन्धकारतमोघोरं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्। पश्यामि भयसंत्रस्तः पाशहस्तमिवान्तकम्॥१९॥

ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमच्युतं शरणं गतः।
धन्योऽहं निर्भयो नित्यं यस्य मे भगवान्हरिः॥२०॥

विष्णु सदा मेरे शरीर से सभी पापों को खींचें। हंस, मत्स्य, कूर्मावतार मेरी सभी दिशा से रक्षा करें। त्रिविक्रम मेरा सब पाप नाश करें। नारायण मेरी बुद्धि का पालन करें। अनन्त मेरे अज्ञान का नाश करके निर्मल ज्ञान प्रदान करें। मैंने जो सब पातक किया है, बड़वामुख (अश्वमुख) प्रभु वह सब नष्ट करें। परमदेव मेरे मस्तक पर अपने दोनों चरण रखकर सुख प्रदान करें। दत्तात्रेय प्रभु पुत्र, पशु, बन्धु देने की कृपा करें। परशुराम अपने फरसे से मेरे सभी रिपुगण का संहार करें। राक्षसनाशक दाशरथि रामचन्द्र महाबाहु प्रभु मेरा सदा पालन करें। यादवनन्दन प्रभु बलराम हल से मेरे रिपुगण का संहार करें। प्रलम्ब, केशी, चाणूर, पूतना तथा कंसविनाशक श्रीकृष्ण प्रभु का बाल्यभाव मेरी सभी कामना पूर्ण करें। मैं अन्धकार के समान तमोरूपी पाशधारी यम के समान घोर कृष्णपिंगल वर्ण वाले पुरुष को देखकर त्रस्त हो गया। अतः पुण्डरीकाक्ष अच्युत की शरण ले रहा हूं। श्रीहरि देव ने मुझे आश्रय दिया है। मैं धन्य तथा सदा के लिये भयहीन हो गया॥१३-२०॥

ध्यात्वा नारायणं देवं सर्वोपद्रवनाशनम्। वैष्णवं कवचं बद्ध्वा विचरामि महीतले॥२१॥

अप्रधृष्योऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम्। स्मरणाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः॥२२॥

सिद्धिर्भवतु मे नित्यं यथा मन्त्रमुदाहृतम्। यो मां पश्यति चक्षुर्भ्यां यञ्च पश्यामि चक्षुषा।
सर्वेषां पापदुष्टानां विष्णुर्बध्नाति चक्षुषी॥२३॥
वासुदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य ये त्वराः। ते हि छिन्दन्तु पापानि मम हिंसन्तु हिंसकान्॥२४॥
राक्षसेषु पिशाचेषु कान्तारेष्वटवीषु च। विवादे राजमार्गेषु द्यूतेषु कलहेषु च॥२५॥
नदीसन्तारणे घोरे संप्राप्ते प्राणसंशये। अग्निचौरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे॥२६॥
विद्युत्सर्पविषोद्वेगे रोगे च विघ्नसंकटे। जप्यमेतज्जपेन्नित्यं शरीरे भयमागते॥२७॥
अयं भगवतो मन्त्रो मन्त्राणां परमो महान्। विख्यातं कवचं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
स्वमायाकृतनिर्माणकल्पान्तगहनं महत्॥२८॥

मैं नारायण देव का ध्यान करके इस सभी उपद्रव का नाश करने वाले वैष्णव कवच को बांधकर पृथ्वी पर विचर रहा हूं। मैं सभी प्राणियों से इसलिये अजेय हो गया। मैं सर्वदेवात्मक हो गया। अमित तेजस्वी देवदेव विष्णु की कृपा से मुझे यह मन्त्र सिद्ध हो गया। मन्त्र है—"जो मुझे नेत्र से देखता है तथा मैं जिसे देखता हूं, विष्णु उन पापी दुष्टों का नेत्र बन्धन करें। भगवान् वासुदेव के चक्र के आरे उसका नाश करें, जो मुझसे हिंसा करे।" राक्षस आक्रमण, पिशाचानुष्ठान, दुर्गमपथ, वन में, राजपथ पर, द्यूत क्रीड़ा में, विवाद में, नदी पार करने में, प्राणों पर संकट आने पर, घोर उपद्रव में, अग्निभय में, चौरभय में, सर्वग्रहबाधा हटाने में, विद्युत् गिरने पर, सर्प विषोद्योग में, रोग में, विघ्नसंकटों में, शारीरिक भयों में यह भगवत् मन्त्र सभी पापों का नाशकर्त्ता है। यह सभी मन्त्रों में प्रधान है। यह कवच अत्यन्त गुप्त तथा सर्वपाप हारी भी है। भगवान् ने महत् कल्पान्त में अपनी माया से निर्माण किया है॥२१-२८॥

ओं अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तु ते।

ओं कालाय स्वाहा। ओं कालपुरुषाय स्वाहा। ओं कृष्णाय स्वाहा। ओं कृष्णरूपाय स्वाहा। ओं चण्डाय स्वाहा। ओं चण्डरूपाय स्वाहा। ओं प्रचण्डाय स्वाहा। ओं प्रचण्डरूपाय स्वाहा। ओं सर्वाय स्वाहा। ओं सर्वरूपाय स्वाहा। ओं नमो भुवनेशाय त्रिलोकधात्रे इह विटि सिविटि सिविटि स्वाहा। ओं नमः अयोखेतये ये ये संज्ञायापात्रदैत्यदानवयक्षराक्षसभूतपिशाचकुष्माण्डान्तापस्मारकच्छर्दनदुर्द्धराणामेकाहिक-द्वितीय-तृतीय-चातुर्थक मौहूर्त्तिकदिनज्वररात्रिज्वरसन्ध्याज्वरसर्वज्वरादीनां लूताकीट-कण्टकपूतनाभुजङ्गस्थावरजङ्गमविषादीनाम् इदं शरीरं मम पथ्यं तुम्बुरु स्फुट स्फुट प्रकोट लफट विकदंष्ट्रः पूर्वतो रक्षतु। ओं है है है है दिनकरसहस्रकालसमाहतो जय पश्चिमतो रक्ष। ओं निवि निवि प्रदीप्तज्वलनज्वालाकार महाकपिल उत्तरतो रक्ष। ओं विलि विलि मिलि मिलि गरुडि गरुडि गौरीगान्धारी विषमोहविषमविषमां मोहयतु स्वाहा दक्षिणतो रक्ष मां पश्य सर्वभूतयोपद्रवेभ्यो रक्ष रक्ष जय जय विजय तेन हीयते रिपुत्रासाहंकृतवाद्यतोभय रुदय वोभयो अभयं दिशतु च्युतः तदुदरमखिलं विशन्तु युगपरिवर्त्तसहस्रसंख्येयोऽस्तमलमिव प्रविशन्ति रश्मयः।

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।
सर्वज्वरान्मम घ्नन्तु विष्णुर्नारायणो हरिः॥२९॥

।।इति गारुडे महापुराणे वैष्णवकवचकथनं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९४।।

(यह मन्त्र मूल में "ॐ अनाद्यन्त" से लेकर "विष्णुर्नारायणो हरि" तक है। मन्त्रार्थ नहीं हो सकता। अतः पाठक इसे मूल से यथावत् पढ़ें)॥२९॥

॥एक सौ चौरानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सर्वकामप्रदा विद्या वर्णन

हरिरुवाच

सर्वकामप्रदां विद्यां सप्तरात्रेण तां शृणु। नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि॥१॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च। नमो विज्ञानदात्रे च परमानन्दमूर्त्तये॥२॥
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये। त्वं रूपाणि च सर्वाणि तस्मात्तुभ्यं नमो नमः॥३॥

श्रीहरि ने कहा—अब मैं सर्वकामप्रदा विद्या को कहता हूं। सुनो। सात रात इस विद्या की उपासना करने से समस्त कामना सिद्ध हो जाती है। यथा—हे भगवान्! आपको नमस्कार! हे वासुदेव! मैं आपका ही ध्यान करता हूं। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, संकर्षण को प्रणाम! आप ही विज्ञान दाता हैं। आप ही परमानन्दमूर्त्ति भी हैं। आप आत्माराम तथा शान्तमूर्त्ति हैं। आपमें ही द्वैतज्ञान निवृत्त होता है। आपके अतिरिक्त जगत् में कुछ नहीं है। आपको प्रणाम!॥१-३॥

हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्त्तये। यस्मिन्निदं यतश्चैतत्तिष्ठत्यन्योऽपि जायते॥४॥
मृण्मयीं वहसि क्षोणीं तस्मै ते ब्रह्मणे नमः। यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः।
अन्तर्बहिश्चरसि त्वं व्योमतुल्यं नमाम्यहम्॥५॥

ओं नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सकलसत्त्वभाविव्रीडनिकरकमल-रेणूत्पलनिभधर्माख्यविद्यया चरणारविन्दयुगल परमेष्ठिन्नमस्ते अवापविद्याधरतां चित्र-केतोश्च विद्यया॥६॥

।।इति गारुडे महापुराणे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९५।।

हे हृषीकेश! आप अनन्तमूर्त्ति हैं। आपमें ही चराचर यह विश्व विद्यमान है। आप सभी प्राणीगण के आश्रय तथा उत्पत्ति के कारण हैं। आपको नमस्कार! आप इस मृण्मयी पृथ्वी का वहन करते हैं। आप ब्रह्मरूप हैं। आपको नमस्कार! आपको हाथ-पैर, कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चक्षु, कर्ण आदि ज्ञानेन्द्रिय तथा प्राण नहीं जान सकते। आप सभी प्राणीगण के अन्तर में तथा बाहर विचरते रहते हैं। आप आकाशवत् अनन्त हैं। आपको नमस्कार! यह कहने के अनन्तर मूल के श्लोक छः में लिखा मन्त्र ''ॐ नमो भगवते'' से लगाकर ''विद्यया'' पर्यन्त पढ़े (यही मन्त्र सात दिन प्रार्थना के उपरान्त जपे) (मन्त्रार्थ नहीं हो सकता)।।४-६।।

।।एक सौ पच्चानबेवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

विष्णुधर्म नामक विद्या का वर्णन

हरिरुवाच

अवाप जप्त्वा चेन्द्रत्वं विष्णुधर्माख्यविद्यया।
सर्वाञ् शत्रून्विनिर्जित्य ताञ्च वक्ष्ये महेश्वर।।१।।

पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि। मुखे शिरस्यानुपूर्वमोङ्कारादीनि विन्यसेत्।।२।।

नमो नारायणायेति विपर्य्यासमथापि च। करन्यासं ततः कुर्य्याद् द्वादशाक्षरविद्यया।।३।।

प्रणवादि यकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु। न्यसेद्धृदय ओङ्कारं मनुं मूर्ध्नि समस्तकम्।।४।।

ओङ्कारं तु भ्रुवोर्मध्ये शिखानेत्रादि मूर्द्धतः। ओं विष्णवे इति इमं मन्त्रन्यासमुदीरयेत्।।५।।

श्रीहरि ने कहा—हे महेश्वर! जिस विष्णुधर्म विद्या का जप करने से सभी शत्रु पराजित होते हैं तथा जपकर्त्ता इन्द्रत्व लाभ करता है, उस विष्णु धर्मविद्या को कहता हूं। सुनिये। पादद्वय, जानुद्वय, उरुद्वय, उदर, हृदय, मुख, वक्ष तथा मस्तक पर ओंकारादि वर्णों का यथाक्रमेण न्यास करे। तब ''ॐ नमो नारायणाय'' का विपर्यय क्रमेण न्यास करे। (अर्थात् मन्त्र के अन्तिम भाग से आरम्भ करे)। अब द्वादशाक्षर मन्त्र से करन्यास एवं अंगन्यास सम्पन्न करना चाहिये। उंगली तथा अंगुष्ठ की पर्वसन्धि में प्रणव से लेकर 'म' तक के सभी वर्णों का न्यास करके हृदय में ओंकार का तथा मस्तक पर समस्त मन्त्र का न्यास करके भ्रूमध्य में ओंकार तथा शिखा-नेत्रादि में ''ॐ विष्णवे'' इस मन्त्र का न्यास करे।।१-५।।

आत्मानं परमं ध्यायेच्छेषं यच्छक्तिभिर्युतम्। मम रक्षां हरिः कुर्यान्मत्स्यमूर्त्तिर्जलेऽवतु।।६।।

त्रिविक्रमस्तथाकाशे स्थले रक्षतु वामनः। अटव्यां नरसिंहस्तु रामो रक्षतु पर्वते।।७।।

भूमौ रक्षतु वाराहो व्योम्नि नारायणोऽवतु। कर्मबन्धाच्च कपिलो दत्तो योगांश्च रक्षतु।।८।।

हयग्रीवो देवतानां कुमारो मकरध्वजः। नारदोऽन्यार्चनाद्देवः कूर्मो वै नैर्ऋते सदा॥९॥

अब परमात्मा का ध्यान करने के पश्चात् यह पढ़े। यथा—हरि सभी विषयों में मेरी रक्षा करें। मत्स्यमूर्त्ति प्रभु जल में रक्षा करें। उनकी त्रिविक्रम मूर्त्ति आकाश में, वामन मूर्त्ति स्थल में, नरसिंह मूर्त्ति वनों में तथा रामरूप पर्वत पर मेरी रक्षा करें। वराहदेव भूमि पर मेरी रक्षा करें। नारायण आकाश में रक्षा करें। कपिल कर्म बन्धन से रक्षा करें। हयग्रीवरूपी विष्णु देवताओं के निकट मेरी रक्षा कुमारादि देवदृष्टि से करें। नारद मेरी रक्षा अन्य अर्चना के दोषों से करें। कूर्म मेरी रक्षा नैर्ऋत् दिशा में करके सदा मेरा पालन करें॥६-९॥

धन्वन्तरिश्चापथ्याच्च नागः क्रोधवशात् किल।
यज्ञो रोगात् समस्ताच्च व्यासोऽज्ञानाच्च रक्षतु॥१०॥
बुद्धः पाषण्डसंघातात्कल्किरवतु कल्मषात्।
पायान्मध्यन्दिने विष्णुः प्रातर्नारायणोऽवतु॥११॥
मधुहा चापराह्ने च सायं रक्षतु माधवः। हृषीकेशः प्रदोषेव्यात्प्रत्यूषेऽव्याज्जनार्दनः॥१२॥

धन्वन्तरी अपथ्य से, नागमूर्त्ति शेष क्रोध से, यज्ञ सर्वरोग से, व्यास अज्ञान से, बुद्धदेव पाखण्ड से, कल्की कलिदोष से रक्षा करें। त्रिष्णु मेरी रक्षा मध्याह्न में, नारायण प्रातः में, मधुसूदन अपराह्न में रक्षा करें। माधव सायंकाल में, हृषीकेश प्रदोषकाल में, जनार्दन प्रत्यूष में रक्षा करें॥१०-१२॥

श्रीधरोऽव्यार्द्धरात्रे पद्मनाभो निशीथके। चक्रकौमोदकीबाणा घ्नन्तु शत्रूंश्च राक्षसान्॥१३॥
शङ्खः पद्मं च शत्रुभ्यः शार्ङ्गं वै गरुडस्तथा।
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पाहि च पार्श्वभूषणम्॥१४॥
शेषं सर्वञ्च रूपञ्च सदा सर्वत्र पातु माम्। विदिक्षु दिक्षु च सदा नरसिंहश्च रक्षतु॥१५॥

श्रीधर अर्द्धरात्रि में, पद्मनाभ निशीथ में रक्षा करें। चक्र, गदा, बाण मेरी रक्षा राक्षासादि समस्त शत्रुओं से करें। शंख, पद्म, शार्ङ्गधनु तथा गरुड़ सभी शत्रु से रक्षा करें। वासुदेव समस्त पार्श्वस्थ भुवनों में मेरी बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण की रक्षा करें। भगवान् वासुदेव नरसिंहादि सभी रूप मेरी रक्षा सदैव दिक्-विदिक् में करें॥१३-१५॥

एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा। स वशी स्याद्विपाप्मा च रोगमुक्तो दिवं व्रजेत्॥१६॥

॥इति गारुडे महापुराणे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९६॥

वासुदेव के इस मन्त्र के कवच से अपनी रक्षा करके जिस-जिस को नेत्र से वह व्यक्ति देखेगा, वही वश में हो जायेगा। इस स्तवपाठ को करने वाले के पाप नष्ट हो जाते हैं। वह रोगरहित होकर अन्तकाल में स्वर्ग जाता है॥१६॥

॥एक सौ छियानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गारुड़ी विद्या वर्णन

धन्वन्तरिरुवाच

गारुडं संप्रवक्ष्यामि गरुडेन उदीरितम्। कश्यपाय सुमित्रेण विषहृद् येन गारुडी॥१॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च। क्षित्यादिष्वेव वर्गाश्च एते वै मण्डलाधिपाः॥२॥
पञ्चतत्त्वे स्थिता देवाः प्राप्यंते विष्णुसेवकैः। दीर्घस्वरविभिन्नाश्च नपुंसकविवर्जिताः॥३॥
षडङ्गः स शिरः प्रोक्तो हृच्छिरश्च शिखा क्रमात्।
कवचं नेत्रमस्त्रंस्यान्न्यासः स्वस्थलसंस्थितिः॥४॥
सर्वसिद्धि पदस्यान्ते कालवह्निरधोऽनिलः। षष्ठस्वरसमायुक्तमर्द्धेन्दुसंयुतं परम्॥५॥

धन्वन्तरि ने कहा—अब मैं गरुड़ द्वारा कही गारुड़ी विद्या कहता हूं। यह विद्या सुमित्र ने कश्यप से कही थी। यह विद्या सभी विषों का हरण करती है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश मण्डलाधिपति हैं। ये ही पृथिवी आदि रूपों से स्थित हैं। इनको पंचतत्व कहा गया है। इनमें देवता स्थित रहते हैं। जो विष्णु सेवक हैं, वे ही पंचतत्व जान पाते हैं। इस मन्त्र से ऋ-ॠद्धरहित दीर्घ स्वर योजित करके हृदय, शिर, कवच तथा इसी क्रम से षडङ्गन्यास करे॥१-५॥

परापरविभिन्नाश्च शिवस्योर्ध्वाध ईरिताः। रेफेणाङ्गेषु सर्वत्र न्यासं कुर्य्याद् यथाविधि॥६॥
हृदि पाणितले देहे कर्णे नेत्रे करोति च। जपात्तु सर्वसिद्धिः स्याच्चतुर्वक्त्रसमायुतम्॥७॥
चतुरस्त्रां सुविस्तारां पीतवर्णां तु चिन्तयेत्। पृथिवीं चेन्द्रदैवत्यां मध्ये वरुणमण्डलम्॥८॥
मध्ये पद्मं तथा युक्तमर्द्धचन्द्रं सुशीतलम्। इन्द्रनीलद्युतिं सौम्यमथवाग्नेयमण्डलम्॥९॥
त्रिकोणं स्वस्तिकैर्युक्तं ज्वालामालानलं स्मरेत्।
भिन्नाञ्जनाभाकारं स्ववृत्तं बिन्दुभूषितम्॥१०॥

इस न्यास से स्वस्थान में स्थिति मिलती है। मन्त्र है—"ॐ सर्वसिद्धि क्षुं रुं युं" इस मन्त्र को परस्परतः अलग-अलग शिर के ऊर्ध्व तथा अधः में विन्यास करे। तदनन्तर "रां हृदयाय नमः" क्रमेण सर्वशरीर न्यास करे। तत्पश्चात् हृदय में, पाणितल में, देह में, कर्ण, नेत्र में यह मन्त्र जपे। ऐसे जप से सभी सिद्धियां मिलेंगी। चतुरस्त्र, विस्तीर्ण, पीतवर्णा, इन्द्रदैवत्या पृथिवी का चिन्तन करके उसमें रक्त मण्डल का ध्यान करे। तत्पश्चात् वरुण मण्डल में अर्द्ध चन्द्राकृति शीतल पद्म का किंवा इन्द्रनील मणिप्रभ सौम्य अग्नि मण्डल का चिन्तन करे, जो त्रिकोण, स्वस्तिकयुक्त, ज्वालानल से घिरा, दलितांजन जैसा वृत्त तथा बिन्दुभूषित है॥६-१०॥

क्षीरोर्भिसदृशाकारं शुद्धस्फटिकवर्चसम्।
प्लावयन्तं जगत् सर्वं व्योमामृतमनुं स्मरेत्॥११॥

वासुकिःशङ्खपालश्च स्थितौ पार्थिवमण्डले।
कर्कोटः पद्मनाभश्च वारुणे तौ व्यवस्थितौ॥१२॥
आग्नेयेन तु कुलिकस्तक्षश्चैव महाब्जकौ।
वायुमण्डलसंस्थौ च पञ्च भूतानि विन्यसेत्॥१३॥

अब तीक्ष्ण वेगवान्, भयंकर, दिक्-दिगन्त में व्याप्त वायुमण्डल का ध्यान करे। तदनन्तर दुग्ध की उर्मियों की तरह शुद्ध स्फटिक जैसा, त्रिभुवन को आप्लावित करने वाले, व्योमामृतरूपी मन्त्र का स्मरण करे। वासुकि तथा शंखपाल ये दो नाग पृथिवी मण्डल पर स्थित हैं। कर्कोटक तथा पद्मनाभ नाग वरुणमण्डल पर रहते हैं। कुलिक तथा तक्षक आग्नेय मण्डलस्थ हैं। पद्मनाभ वायुमण्डल में हैं। इन नागों का तत्व जानकर इन पञ्चभूत का न्यास करे॥११-१३॥

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमनुलोमविलोमतः। पर्वसन्धिषु च न्यस्या जया च विजया तथा॥१४॥
आस्यादिस्वपुरस्थाने न्यासाः शिवषडङ्गकम्।
कनिष्ठादौ हृदादौ च शिखायां करयोर्न्यसेत्॥१५॥

अंगुष्ठ से प्रारम्भ करके कनिष्ठा पर्यन्त अनुलोम कर से पूर्वोक्त सन्धियों में जया-विजया का न्यास करे। शरीर के मुख आदि अंग में शिव का षडङ्ग न्यास करे। कनिष्ठादि उंगली, हृदयादि अंग, शिखा तथा हाथ में न्यास करना आवश्यक है॥१४-१५॥

व्यापकन्तु ततः पूर्वं क्रमादङ्गुलिपर्वसु। भूतानाञ्च पुनर्न्यासः शिवाङ्गानि तथैव च॥१६॥
प्रणवादिनमश्चान्ते नाम्नैव च समन्विताः। सर्वमन्त्रेषु कथितो विधिः स्थापनपूजने॥१७॥
आद्याक्षरं तन्नाम्रश्च मन्त्रोयं परिकीर्त्तितः।
अष्टानां नागजातीनां मन्त्रः सान्निध्यकारकः॥१८॥
ओं स्वाहा क्रमशश्चैव पञ्चभूतपुरोगतम्। एष साक्षाद्भवेत्ताक्ष्र्यः सर्वकर्मप्रसाधकः॥१९॥
करन्यासं स्वरं कृत्वा शरीरे तु पुनर्न्यसेत्।
ज्वलन्तं चिन्तयेत् प्राणमात्मसंशुद्धिकारकम्॥२०॥

तदनन्तर क्रमशः उंगलियों के पर्व में व्यापक न्यास करे। पुनः भूतन्यास तथा शिव का अंगन्यास प्रयोज्य है। सभी देवगण की पूजा तथा शिवाङ्गन्यास जरूरी है। सभी देवता की पूजा के तथा प्रतिष्ठा के काम में उन-उन देवता के नाम के आरम्भ में 'ॐ' तथा अन्त में 'नमः' लगाये। यही विधान कहा गया है। देवता के नाम के आदि का वर्ण उनके नाम के आदि में योग करने की भी विधि मान्य है (जैसे ॐ कुबेराय नमः को ॐ कुं कुबेराय नमः कहे)। इस प्रकार से वह नाम ही मन्त्र हो जाता है। पूर्व में अष्टनाग मन्त्र कहा गया था। उन मन्त्रों से नागपूजादि कार्य करने से नागों का सन्निधान मिलता है। पंच महाभूतों के नाम के पूर्व में यथाक्रमेण "ॐ स्वाहा" करने से जो मन्त्र होगा, वह साक्षात् गरुड़ ही है। यह मन्त्र समस्त कार्य साधित करता है। इस मन्त्र से जप आदि काम में स्वरवर्ण से करन्यास करके पुनः शरीर में ऐसा ही न्यास करे। तत्पश्चात् प्राण का ज्वलन्तरूप ध्यान करके इस प्रकार अपनी आत्मशुद्धि करे॥१६-२०॥

बीजं तु चिन्तयेत्पश्चाद्वर्षान्तममृतात्मकम्।
एवञ्चाप्यायनं कृत्वा मूर्ध्नि सञ्चिन्त्य चात्मनः॥२१॥
पृथिवीं पादयोर्दद्यात् तप्तकाञ्चनसप्रभाम्।
अशेषभुवनाकीर्णां लोकपालसमन्विताम्॥२२॥

तदनन्तर अमृतात्मक बीज चिन्तन करे। एवंविध आप्यायन सम्पन्न करके अपने मस्तक पर आत्मचिन्ता करे। तदनन्तर तप्तकांचन की प्रभा वाले लोकपालों से युक्त अशेष भवनों (अनन्त भवनों से) भरी पृथिवी को पाद्य प्रदान करे॥२१-२२॥

एतां भगवतीं पृथ्वीं स्वदेहे विन्यसेद् बुधः।
श्यामवर्णमयं ध्यायेत्पृथिवीद्विगुणं भवेत्॥२३॥
ज्वालामालाकुलं दीप्तमाब्रह्म भुवनान्तिकम्।
नाभिग्रीवान्तरे न्यस्य त्रिकोणं मण्डलं रवेः॥२४॥
भिन्नाञ्जननिभाकारं निखिलं व्याप्य संस्थितम्।
आत्ममूर्त्तिस्थितं ध्यायेद्वायव्यं तीक्ष्णमण्डलम्॥२५॥
शिखोपरि स्थितं दिव्यं शुद्धस्फटिकवर्चसम्।
अप्रमाणमहाव्योम व्यापकं चामृतोपमम्॥२६॥
भूतन्यासं पुरा कृत्वा नागानाञ्च यथाक्रमम्।
लकारान्ता बिन्दुयुता मन्त्रा भूतक्रमेण तु॥२७॥

अब बुद्धिनान् व्यक्ति अपने देह में भगवती पृथिवी देवी का न्यास करे। इसके अनन्तर हृदय एवं नाभि के मध्य में प्रसन्नरूप जलतत्व का ध्यान करे। तदनन्तर श्यावर्ण, पृथिवी से दूनी दीप्तियुक्त, तेजस्वी, ब्रह्म से लेकर समस्त् भुवनव्यापी त्रिकोण सूर्य मण्डल का न्यास नाभि तथा ग्रीवा के मध्यस्थल में करे। इसके अनन्तर दलित अंजनप्रभ, सर्वभुवन व्यापक वायव्य तीक्ष्ण मण्डलस्थ आत्ममूर्त्ति में विद्यमान वासुदेव का चिन्तन करे। इस ध्यानोपरान्त शिखा के ऊपर विद्यंमान शुद्ध स्फटिकवत् उज्वल अमृतोयम सर्वव्यापी प्रमाणरहित महाव्योम मण्डल का ध्यान करे। एवंविध पहले भूतन्यास करके यथाक्रमेण नागों का न्यास करे। लकारान्त विन्दुयुक्त बीज प्रभृति यथाक्रमेण भूतगण का (पंचभूतों का मन्त्र है।)॥२३-२७॥

शिवबीजं ततो दद्यात्ततो ध्यायेच्च मण्डलम्।
यद्यस्य क्रममाख्यातं मण्डलस्य विचक्षणः।
तस्य तच्चिन्तयेद्वर्णं कर्मकाले विधानवित्॥२८॥
पादपक्षैस्तथा चञ्चुकृष्णनागैर्विभूषितम्।
तार्क्ष्यं ध्यायेत् ततो नित्यं विषे स्थावरजङ्गमे॥२९॥
ग्रहभूतपिशाचे च डाकिनीयक्षराक्षसे। नागैर्विवेष्टितं कृत्वा स्वदेहे विन्यसेच्छिवम्॥३०॥

इस भूत मन्त्र के अन्त में शिवबीज लगाये, तब मण्डल का ध्यान करे। क्रमशः जो-जो बीज कहा गया है, विधानज्ञ विद्वान् साधक पूजा के समय उन-उन बीज के वर्ण का ध्यान करे। गरुड़ के पैर, पंख तथा चोंच काले नागों से भूषित हैं। स्थावर, जंगम विष, ग्रह, भूत तथा पिशाच के अधिष्ठान में, डाकिनी, यक्ष तथा राक्षसादि के भय से ग्रस्त होने पर अपने देह में इसी प्रकार से नागों से लिपटे गरुड़ का ध्यान करे॥२८-३०॥

द्विधान्यासः समाख्यातो नागानाञ्चैव भूतयोः।
एवं ध्यात्वा कर्म कुर्य्यादात्मतत्त्वादिकं क्रमात्॥३१॥
त्रितत्त्वं प्रथमं दत्त्वा शिवतत्त्वं ततः परम्। यथा देहे तथा देवे अङ्गुलीनाञ्च पर्वसु॥३२॥
देहन्यासं पुरा कृत्वा अनुलोमविलोमतः। कन्दं नालं तथा पद्मं धर्मं ज्ञानादिमेव च॥३३॥
द्वितीयस्वरसम्भिन्नं वर्गान्तेन तु पूजयेत्।
क्षौमिति कर्णिकामध्ये मूर्ध्नि रेफेण संयुतम्॥३४॥
अ क च ट त प य शा वर्गाः पूर्वादिके न्यसेत्।
पत्रान्तकेशरान्ते तु द्वौ द्वौ पूर्वादिकौ तथा॥३५॥

नागों तथा भूतों का द्विविध न्यास कहा गया। इस प्रकार से ध्यान करके आत्मशुद्धि आदि कर्म करे। प्रथमतः त्रितत्व का तथा पुनः शिवतत्व का ध्यान करे। अपने देह में तथा अंगुलिपर्व में जिस प्रकार का न्यास करना है, उसी तरह से देवदेह का तथा अंगुलिपर्व का न्यास करे। प्रथमतः अनुलोम-विलोमक्रमेण देहन्यास करके कन्द, नाल, पद्म, धर्म तथा ज्ञानादि का न्यास करे। द्वितीय स्वरयुक्त वर्गान्त में वर्ण द्वारा पूजा करे। 'क्षौं' मन्त्र से कर्णिका में तथा मस्तक में न्यास करे। पूर्वादिक्रमेण अ वर्ग, क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य वर्ग श वर्ग का (अष्ट वर्ग का) न्यास करके पुनः पूर्वादिक्रमेण पत्रान्त एवं केशरान्त में दो-दो वर्ण का न्यास करे॥३१-३५॥

केशरे तु स्वरा न्यस्ता ईशान्तान् षोडशार्चयेत्।
वामाद्याः शक्त्यः प्रोक्तास्त्रितत्त्वं तु ततो न्यसेत्॥३६॥
आवाहयेत्ततो मूर्ध्नि शिवमङ्गं ततः परम्। कर्णिकायां न्यसेद्देवं साङ्गं तत्र पुरःसरम्॥३७॥
पृथिवी पश्चिमे पत्रे आपश्चोत्तरसंस्थिताः। तेजस्तु दक्षिणे पत्रे वायुं पूर्वेण पूजयेत्॥३८॥
स्वबीजं मूर्त्तिरूपं तु प्रागुक्तं परिकल्पयेत्। यं वायुमूलं नैर्ऋत्ये रेफस्त्वनलसंस्थितः॥३९॥
वं च ईशे सदा पूज्य ओं हृदिस्थश्च पूजयेत्।
तन्मात्रान् भूतमात्रांस्तान बहिरेव प्रपूजयेत्॥४०॥

ईशान कोण से केशर में सोलह स्वरों का न्यास करके उसकी अर्चना करे। तत्पश्चात् वामादिक्रमेण शक्तिन्यास करके त्रितत्वन्यास करे। तदनन्तर मस्तक का आवाहन करके तब शिव का अंगन्यास करे। तत्पश्चात् कर्णिका में अंगन्यास के साथ देवता का न्यास करे। पश्चिम पत्र में पृथिवी, उत्तर पत्र में जल, दक्षिण पत्र में तेजः तथा पूर्व पत्र में वायुपूजा करे। तदनन्तर पूर्वोक्त स्वबीज तथा मूर्त्ति की परिकल्पना करे।

'यं' वायुबीज नैर्ऋत् में, 'रं' वह्निबीज वायुकोण में, 'वं' बीज की ईशान में पूजा करके हृदय में 'ॐ' बीज की अर्चना करे। तदनन्तर बाह्य में भूतसमूह तथा भूततन्मात्र की पूजा करे॥३६-४०॥

शिवाङ्गानि ततः पश्चाद् ध्यात्वा संपूजयेत्ततः।
आग्नेय्यां हृदयं पूज्य शिर ईशानगोचरे॥४१॥
नैर्ऋत्ये तु शिखां दद्याद्वायव्यां कवचं न्यसेत्।
अस्त्रं तु बाह्यतो दद्यान्नेत्रमुत्तरसंस्थितम्॥४२॥
पत्राग्रे कर्णिकाग्रे तु बीजानि परिपूजयेत्।
अनन्तादिकुलीरान्ता अष्टौ नागाः क्रमात् स्थिताः॥४३॥
पूर्वादिकक्रमेणैव ईशपर्य्यन्तमेव च। पूजयेच्च सदा मन्त्री विधानेन पृथक् पृथक्॥४४॥

तत्पश्चात् शिव का षडङ्गन्यास करके ध्यान से पूजा करे। तदनन्तर अग्निकोण में हृदय, ईशान कोण में शिव, नैर्ऋत् में शिखा तथ वायुकोण में कवच, बाह्य में अस्त्र तथा उत्तर में नेत्र का विन्यास करके पत्राग्र में तथा कर्णिका में बीजपूजन करे। पूर्व से लगाकर ईशान कोण तक यथाक्रमेण अष्टनाग स्थित रहते हैं। ज्ञानी साधक इन नागों की पूजा अलग-अलग करे। नित्य-नैमित्तिकादि सभी कार्यों में इसी विधि से हृदय में, शिलादि मूर्त्ति में तथा मण्डल में नित्य-नैमित्तिक पूर्वोक्त कार्य करे॥४१-४५॥

हृदि पद्मे विधानेन शिलादौ दत्तमण्डले।
एतत् कार्य्यं समुद्दिष्टं नित्यनैमित्तिकेऽपि च॥४५॥
आत्मानं चिन्तयेन्नित्यं कामरूपं मनोहरम्।
प्लावयन्तं जगत् सर्वं सृष्टिसंहारकारकम्॥४६॥
ज्वालामालाभिरुद्दीप्तं आब्रह्मभुवनान्तिकम्।
दशबाहुं चतुर्वक्त्रं पिङ्गाक्षं शूलपाणिनम्॥४७॥
दंष्ट्राकरालमत्युग्रं त्रिनेत्रं शशिशेखरम्। भैरवं तु स्मरेत् सिद्ध्यै गरुडं सर्वकर्मसु॥४८॥
नागानां नाशनार्थाय गरुडं भीमभीषणम्।
पादौ पत्राणि संस्थाप्य दिशः पक्षांस्तु संश्रिताः॥४९॥
सप्तस्वर्गा उरसि च ब्रह्माण्डं कण्ठमाश्रितम्।
रुद्रादि ईशपर्यन्तं शिरस्तस्य विचिन्तयेत्॥५०॥

सदा कामरूपी मनोहर आत्मा का ध्यान करे। यह आत्मा समस्त जगत् का आप्लावन करके स्थित है। यह सृष्टि-संहार कारण, अपनी ज्वाला से दीप्त, ब्रह्म से लेकर भुवन तक व्यापक, दशभुज तथा चार मुखयुक्त है। यह पिंगल वर्ण है। इसके हाथ में शूल है। दांत भयानक हैं। ये उग्रमूर्त्ति, त्रिनेत्र तथा शशिशेखर हैं। भैरवरूपी आत्मा का यह ध्यान करके सभी कामों में सिद्धि हेतु गरुड़ ध्यान करे। गरुड़ ने नागों को भयभीत करने के लिये भीमरूप धरा है। उनके पादद्वय सभी पत्र पर संस्थित हैं। उनके पंखों ने सभी

दिशाओं को व्याप्त कर लिया है। उनके वक्ष पर सात स्वर्ग हैं। कण्ठ पर ब्रह्माण्ड विराजनान है। रुद्रादि से लेकर ईश्वर तक सभी का मस्तक पर स्थित रूप से ध्यान करे (गरुड़ के मस्तकस्थरूपेण)॥४६-५०॥

सदाशिवशिखान्तस्थं शक्तित्रितयमेव च।
परात्परं शिवं साक्षात्तार्क्ष्यं भुवननायकम्॥५१॥
त्रिनेत्रमुग्ररूपञ्च विषनागक्षयङ्करम्। ग्रसनं भीमवक्त्रञ्च गरुडं मन्त्रविग्रहम्॥५२॥
कालाग्निमिव दीप्तञ्च चिन्तयेत् सर्वकर्मसु।
एवं न्यासविधिं कृत्वा यं यं मनसि चिन्तयेत्॥५३॥
तत्तस्यैव भवेत् साध्यं नरो वै गरुडायते। प्रेता भूतास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः।
दर्शनात्तस्य नश्यन्ति ज्वराश्चातुर्थिकादयः॥५४॥

सदाशिव तथा शक्तित्रय गरुड़ की शिखा पर स्थित हैं। गरुड़देव परात्पर हैं। ये भुवनों के अध्यक्ष हैं। ये त्रिनेत्र, उग्रमूर्त्ति तथा नागों के लिये भयंकर हैं। ये विष के लिये भी भयवर हैं। ये भीममुख, ग्रसने वाले तथा मन्त्रविग्रह गरुड़ हैं। ये कालाग्निवत् दीप्त हैं। सभी कर्म में इस प्रकार से गरुड़ ध्यान करे। न्यास करके मन में चिन्तन करे। तब जो भी कामना साधक करेगा, उसको देखते ही भूत, प्रेत, यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा राक्षस भाग जायेंगे। चातुर्थिक ज्वरादि भी नष्ट होगा॥५१-५४॥

धन्वन्तरिरुवाच

एवं स गरुडं प्रोचे गरुडः कस्यपाय च।
महेश्वरो यथा गौरीं प्राह विद्यां तथा शृणु॥५५॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९७॥

धन्वन्तरि कहते हैं—एवंविध गरुड़ से काश्यप ने उपदेश पाया। तब महेश्वर ने गौरी से कहा—अब गारुड़ी विद्या कहता हूं, सुनो॥५५॥

॥एक सौ सत्तानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गारुड़ी विद्या वर्णन के अन्तर्गत् नित्यक्लिन्ना ज्वालामुखी विद्या वर्णन

भैरव उवाच

नित्यक्लिन्नामथो वक्ष्ये त्रिपुरां भुक्तिमुक्तिदाम्। ओं ह्रीं आगच्छ देवि! ऐं ह्रीं ह्रीं रेखाकरणम्। ओं ह्रीं क्लेदिनी भं नमः। मदनक्षोभिना तथा। ऐं यं क्रीं वा गणरेखया। ह्रीं मदनान्तरे च। ऐं ह्रीं ह्रीं च निरञ्जना वागति मदनान्तरेखे खनेत्रावलीति च। वेगवति महाप्रेतासनाय च पूजयेत्। ओं ह्रीं क्रैं नैं क्रैं नित्ये मदद्रवे क्रीं नमः। ऐं ह्रीं त्रिपुरायै नमः। ओं ह्रीं क्रीं पश्चिमवक्त्रं ओं ऐं ह्रीं ह्रीं च तथोत्तरम्। ऐं ह्रीं दक्षिणम् ऊर्ध्वं वक्त्रं तु पश्चिमम्। ओं ह्रीं पाशाय, क्रीं अङ्कुशाय, ऐं कपालाय नमः। आद्यं भयं ऐं ह्रीं ह्रीं च तथा शिरः तथा शिखायै कवचे। ऐं ह्रीं क्रीं अस्त्राय फट्॥१॥

भैरव ने कहा—अब मैं नित्यक्लिन्ना त्रिपुरा देवी की अर्चना कहता हूं, जो भुक्ति-मुक्ति देती हैं। इनका मन्त्र मूल में "ॐ ह्रीं आगच्छ देवि" से लगाकर "अस्त्राय फट्" पर्यन्त श्लोक १ में अंकित है॥१॥

पूर्वे कामरूपाय असिताङ्गाय भैरवाय नमो ब्रह्माण्यै। दक्षिणे चैव स्कन्दाय वै नमः।
रुरुभैरवाय माहेश्वर्य्यां वा आवाहयेत्॥२॥

तथा पश्चिमे चण्डाय वै नमः कौमार्य्यै। चोत्तरे चोल्काय क्रोधाय नमः वैष्णव्यै॥३॥

अग्निकोणे अघोराय उन्मत्तभैरवायेति वाराह्यै।
रक्षःकोणे साराय कपालिने भैरवाय माहेन्द्रयै॥४॥
वायुकोणे जालन्धराय भीषणाय भैरवाय चामुण्डायै।
ईशकोणके बटुकाय सहारञ्चण्डिकाञ्च प्रपूजयेत्॥५॥

रतिप्रीतिकामदेवान्पञ्चबाणान्यजेदथ। ध्यानार्चनाज्जप्यहोमाद्देवी सिद्धा च सर्वदा॥६॥

पूर्व में—ॐ कामरूपाय असिताङ्गाय भैरवाय ब्रह्मण्यै नमः।

दक्षिण में—ॐ स्कन्दाय रुरुभैरवाय माहेश्वर्यै नमः।

पश्चिम में—ॐ चण्डभैरवाय कौमार्यै नमः।

उत्तर में—ॐ उल्काय क्रोधभैरवाय वैष्णव्यै नमः।

अग्निकोण में—ॐ अघोराय उन्नत्तभैरवाय वाराह्यै नमः।

नैर्ऋत्कोण में—ॐ साराय कपालिभैरवाय माहेन्द्र्यै नमः।

वायुकोण में—ॐ जालन्धराय भीषणभैरवाय चामुण्डायै नमः।

ईशान कोण में—ॐ बटुकाय संहारभैरवाय चण्डिकायै नमः से पूजा की जाय। तदनन्तर रति, प्रीति, काम एवं पञ्चबाण पूजन करना चाहिये।

इस ध्यान, अर्चना, जप, होम से भगवती प्रसन्न होती हैं। वे सिद्धि देती हैं।।२-६।।

नित्या च त्रिपुरा व्याधिं हन्याज्ज्वालामुखी क्रमात्।
ज्वालामुखीक्रमं वक्ष्ये सा पूज्या मध्यतः शुभा।।७।।

नित्या, त्रिपुरा, ज्वालामुखी व्याधिनाशिनी हैं। अब मैं ज्वालामुखी क्रम कहता हूं। वे मध्य में पूज्या तथा शुभा हैं।।७।।

नित्यारुणा मदनातुरा मदामोहा प्रकृत्यपि। कलना श्रीभारती च आकर्षणी महेन्द्राणी।।८।।

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चापराजिता।।९।।
विजया चाजिता चैव मोहिनी त्वरिता तथा।
स्तम्भिनी जृम्भिणी पूज्या कालिका पद्मबाह्यतः।
ज्वालामुखीक्रमं पूज्य विषादिहरणं भवेत्।।१०।।

।।इति गारुडे महापुराणे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९८।।

नित्या, अरुणा, मदनातुरा, मदा, मोहा, प्रकृति, कलना, श्री भारती, आकर्षिणी, माहेन्द्राणी, ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, अपराजिता, विजया, अजिता, मोहिनी, त्वरिता, स्तम्भिनी, जृम्भिणी, कालिका देवता की पूजा पद्म के बाहर करे। इस प्रकार ज्वालामुखी की आराधना से विषादि हरण होता है।।८-१०।।

।।एक सौ अट्ठानबेवां अध्याय समाप्त।।

नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजादि निर्णय वर्णन

भैरव उवाच

अपि चूडामणिं वक्ष्ये शुभाशुभविशुद्धये।
सूर्य्यं देवीं गणं सोमं स्मृत्वा तु विलिखेन्नरः।।१।।

त्रिरेखातो मूर्त्तिकाभा अथवा प्रश्नवाक्यतः।
दिशास्थानप्रसूतो वा ध्वजादीन्गणयेत्क्रमात्॥२॥
ध्वजो धूमोऽथ सिंहश्च श्वा वृषः खरदन्तिनः।
ध्वांक्षश्च अष्टमो ज्ञेयो नाममन्त्रैश्च तान्न्यसेत्॥३॥

भैरव ने कहा—अब चूड़ामणि मत से ध्वजादि निर्णय कहूंगा। इस गणना से मनुष्य का भावी शुभ-अशुभ ज्ञात होता है। सूर्य, देवी भगवती, गणेश, सोम का स्मरण करके ध्वजादि अंकन करे। इनको अंकित करके प्रश्न के प्रथम अक्षरानुरूप ध्वजादि गणना करनी चाहिये। जैसे वर्णध्वज है अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ।

क ख ग घ ङ, धूम्र हैं। च छ ज झ ञ सिंह हैं। ट ठ ड ढ ण, श्वान हैं। त थ द ध न, वृष हैं। प फ ब भ म, खर हैं। य र ल व, गज हैं। श ष स ह ध्वाङ्क्ष हैं। अकारादि प्रश्न के प्रथम अक्षर से यथाक्रमेण ध्वजादि ग्रहण करे। प्रश्नकर्त्ता जिस दिशा में रहकर प्रश्न करेगा, उसी के अनुसार ध्वजादि को लेना चाहिये। जैसे—पूर्व में ध्वज, अग्निकोण में धूम्र, दक्षिण में सिंह, नैर्ऋत् में श्वान, पश्चिम में वृष, वायुकोण में खर, उत्तर में गज, ईशान में ध्वाङ्क्ष। इस प्रकार ध्वजादि गणना करके प्रश्नफल निरूपित करे। ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज तथा ध्वाङ्क्ष यही ध्वजादि हैं॥१-३॥

ध्वजस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा राज्यचिन्ताधनादिकम्।
ध्वजस्थाने स्थितो धूम्रो धातुचिन्ता च लाभकम्॥४॥
ध्वजस्थाने स्थिते सिंहे धनलाभादिकं भवेत्।
ध्वजस्थाने स्थिते श्वाने दासीचिन्तासुखादिकम्॥५॥
ध्वजस्थाने वृषं दृष्ट्वा स्थानचिन्ता च लाभकम्।
ध्वजस्थाने खरं दृष्ट्वा दुःखक्लेशादिकं भवेत्॥६॥
ध्वजस्थाने गजं दृष्ट्वा स्थानचिन्ताजयादिकम्।
ध्वजस्थाने तथा ध्वांक्षे क्लेशचिन्ता धनक्षयः॥७॥
धूम्रस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा पूर्वं दुःखं ततो धनम्।
धूम्रे धूम्रं तथा दृष्ट्वा कलिदुःखादिकं भवेत्॥८॥
धूम्रस्थाने स्थिते सिंहे मनश्चिन्ताधनादिकम्।
धूम्रस्थाने स्थिते श्वाने जयलाभादिकं भवेत्॥९॥
धूम्रस्थाने वृषं दृष्ट्वा नारीगोऽश्वधनादिकम्।
धूम्रस्थाने खरं दृष्ट्वा व्याधिश्चापि धनक्षयः॥१०॥
धूम्रस्थाने गजे दृष्टे राज्यलाभजयादिकम्।
धूम्रस्थाने स्थिते ध्वांक्षे धनराज्यविनाशनम्॥११॥

सिंहस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा राज्यलाभादि निर्दिशेत्।
सिंहस्थाने स्थिते धूम्रे कन्याप्राप्तिधनादिकम्॥१२॥
सिंहस्थाने स्थिते सिंहे जयो मित्रसमागमः।
सिंहस्थाने स्थिते श्वाने स्त्रीचिन्ता ग्रामलाभकम्॥१३॥
सिंहस्थाने वृषं दृष्ट्वा गृहक्षेत्रार्थलाभकम्।
सिंहस्थाने गजं दृष्ट्वा ग्रामस्वामित्वमेव च॥१४॥
सिंहस्थाने गजं दृष्ट्वा आरोग्यायुःसुखादिकम्।
सिंहस्थाने स्थिते ध्वांक्षे कन्याधान्यगुणादिकम्॥१५॥
श्वानस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा स्थानचिन्तासुखादिकम्।
श्वानस्थाने स्थिते धूम्रे कलहं कार्य्यनाशनम्॥१६॥
श्वानस्थाने स्थिते सिंहे कार्य्यसिद्धिर्भविष्यति।
श्वानस्थाने स्थिते श्वाने धननाशो भविष्यति॥१७॥
श्वानस्थाने वृषं दृष्ट्वा रोगी रोगाद्विमुच्यते।
श्वानस्थाने खरं दृष्ट्वा कलहस्य भवं भवेत्॥१८॥
स्वानस्थाने गजं दृष्ट्वा पुत्रभार्य्यासमागमः।
श्वानस्थाने स्थिते ध्वांक्षे पीडा स्यात्कुलनाशनम्॥१९॥
वृषस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा राजपूजासुखादिकम्।
वृषस्थाने स्थिते धूम्रे राजपूजासुखादिकम्॥२०॥
वृषस्थाने स्थिते सिंहे सौभाग्यञ्च धनादिकम्।
वृषस्थाने स्थिते श्वाने बलश्रीकाम ईरितः॥२१॥
वृषस्थाने वृषं दृष्ट्वा कीर्त्तितुष्टिसुखादिकम्।
वृषस्थाने खरं दृष्ट्वा महालाभादिकं भवेत्॥२२॥
वृषस्थाने गजं दृष्ट्वा स्त्रीगजादिसमागमः।
वृषस्थाने स्थिते ध्वांक्षे स्थानमानसमागमः॥२३॥
खरस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा रोगशोकादिकं भवेत्।
खरस्थाने स्थिते धूम्रे तस्करादिभयं भवेत्॥२४॥
खरस्थाने स्थिते सिंहे पूजाश्रीविजयादिकम्।
खरस्थाने स्थिते श्वाने सन्तापधननाशनम्॥२५॥
खरस्थाने वृषं दृष्ट्वा सुखं प्रियसमागमः।
खरस्थाने खरं दृष्ट्वा दुःखपीडादि निर्दिशेत्॥२६॥

खरस्थाने गजं दृष्ट्वा सुखपुत्रादिकं भवेत्।
खरस्थाने स्थिते ध्वांक्षे कलहं व्याधिरेव च॥२७॥
गजस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा स्त्रीजयश्रीसुखादिकम्।
गजस्थाने स्थिते धूम्रे धनधान्यसमागमः॥२८॥
गजस्थाने स्थिते सिंहे जयसिद्धिसमागमः।
गजस्थाने स्थिते श्वाने आरोग्यसुखसम्पदः॥२९॥
गजस्थाने वृषं दृष्ट्वा राजमानधनादिकम्।
गजस्थाने खरं दृष्ट्वा पूर्वं दुःखं ततः सुखम्॥३०॥
गजस्थाने गजं दृष्ट्वा क्षेत्रधान्यसुखादिकम्।
गजस्थाने स्थिते ध्वांक्षे धनधान्यसमागमः॥३१॥
ध्वांक्षस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा कार्य्यनाशो भविष्यति।
ध्वांक्षस्थाने स्थिते धूम्रे कलिदुःखं गमिष्यति॥३२॥
ध्वांक्षस्थानै स्थिते सिंहे विग्रहो दुःखमेव च।
ध्वांक्षस्थाने स्थिते श्वाने गृहभङ्गभयादिकम्॥३३॥
ध्वांक्षस्थाने वृषं दृष्ट्वा स्थानभ्रंशभयादिकम्।
ध्वांक्षस्थाने खरं दृष्ट्वा धननाशपराजयः॥३४॥
ध्वांक्षस्थाने गजं दृष्ट्वा धनकीर्त्त्यादिकं भवेत्।
ध्वांक्षस्थाने स्थिते ध्वांक्षे विदेशगमनादिकम्॥३५॥

॥इति गारुडे महापुराणे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९९॥
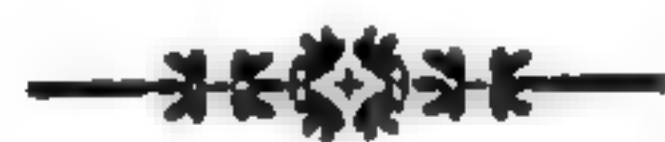
दिक् गणना के समय यदि प्रश्नकर्त्ता ध्वजस्थान में रहकर प्रश्न करे तथा प्रश्नाक्षर भी गणना में ध्वज आये, तब प्रश्नकर्त्ता को राज्य तथा धनादि की चिन्ता है। यदि दिक्गणना में प्रश्नकर्त्ता ध्वजस्थान में हो तथा प्रश्नाक्षर धूम्र हो, तब उसे धातु चिन्ता तथा लाभ होगा। ध्वजस्थान में सिंह हो, तब (प्रश्नकर्त्ता यदि ध्वजस्थान में रहे तथा उसका प्रथम प्रश्नाक्षर सिंह हो, तब इस प्रकार तालिका से देखें)–

प्रश्नकर्त्ता की दिशा	प्रथमाक्षर	फल
१. ध्वज स्थान	ध्वज	राज्य, धन चिन्ता
,,	धूम्र	धातु चिन्ता, लाभ
,,	सिंह	धन लाभ
,,	श्वान	दासी तथा सुख चिन्ता
,,	वृष	स्थान चिन्ता, लाभ

,,	खर	दु:ख-क्लेश
,,	गज	स्थान चिन्ता, जय
,,	ध्वाङ्क्ष	क्लेश, चिन्ता, धन नाश
२. धूम्र स्थान	ध्वज	पहले क्लेश, फिर धनलाभ
,,	धूम्र	कलह, दु:खादि
,,	सिंह	मानसिक चिन्ता, धननाश
,,	श्वान	जय-लाभ
,,	वृष	नारी, गौ, अश्वादि लाभ
,,	खर	व्याधि, धन नाश
,,	गज	राज्यलाभ, जय
,,	ध्वाङ्क्ष	धन-राज्य नाश
३. सिंह स्थान	ध्वज	राज्यलाभादि
,,	धूम्र	कन्या लाभ, धनागम
,,	सिंह	जय, मित्रलाभ
,,	खर	ग्राम स्वामित्व
,,	श्वान	स्त्री चिन्ता, ग्रामलाभ
,,	वृष	गृह, खेत, अर्थलाभ
,,	गज	आयु, आरोग्य, सुखलाभ
,,	ध्वाङ्क्ष	कन्या, धान्य, गुणलाभ
४. श्वान स्थान	ध्वज	स्थान चिन्ता, सुख
,,	धूम्र	कलह, कार्य हानि
,,	सिंह	कार्य सिद्धि
,,	श्वान	धन नाश
,,	वृष	रोग मुक्ति
,,	खर	कलह तथा भय
,,	गज	पुत्र, भार्या समागम
,,	ध्वाङ्क्ष	पीड़ा, कुल नाश
५. वृष स्थान	धूम्र	राजपूजा, सुख
,,	ध्वज	राज सम्मान, सुख
,,	सिंह	सौभाग्य, धन लाभ
,,	श्वान	बल, श्री, कामलाभ

,,	वृष	कीर्त्ति, सन्तोष, सुख
,,	खर	महालाभ
,,	गज	स्त्री तथा गजलाभ
,,	ध्वाङ्क्ष	स्थानलाभ, सम्मान
६. खरस्थान	ध्वज	रोग-शोक
,,	धूम्र	तस्करादि भय
,,	सिंह	सम्मान, विजय, स्त्रीलाभ
,,	श्वान	सन्ताप, धननाश
,,	वृष	सुख, प्रिय समागम
,,	खर	दुःख, पीड़ा
,,	गज	सुख, पुत्रादिलाभ
,,	ध्वाङ्क्ष	कलह, व्याधि
७. गजस्थान	ध्वज	स्त्री, जय, श्री, सुख
,,	धूम्र	धन-धान्यलाभ
,,	सिंह	जय, कार्य सफलता
,,	श्वान	आरोग्य, सुख-सम्पत्तिलाभ
,,	वृष	राज सम्मान, धनाभिलाषा
,,	खर	पहले दुःख, बाद में सुख
,,	गज	क्षेत्र, धान्य, सुख की अभिलाषा
,,	ध्वाङ्क्ष	धनध्यान्ध्यागम
८. ध्वाङ्क्ष	ध्वज	कार्य हानि
,,	धूम्र	कलह, दुःख
,,	सिंह	विग्रह, दुःख
,,	श्वान	गृहभंग, कलह
,,	वृष	स्थान छूटना, दुःख
,,	खर	धननाश, पराजय
,,	गज	धनलाभ, कीर्त्तिलाभ
,,	ध्वाङ्क्ष	विदेश गमनादि

एवंविध फल वर्णित हैं॥४-३५॥

॥एक सौ निन्यानबेवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्विशततमोऽध्यायः

वायुजयादि प्रसंग वर्णन

भैरव उवाच

वक्ष्ये वायुजयं देवि जयाजयविदेशकम्। वाय्वग्निजलशक्राख्यं मङ्गलानाञ्चतुष्टयम्॥१॥
वामदक्षिणसंस्थश्च वायुश्च बहुलो भवेत्। ऊर्ध्ववाही भवेदग्निरधस्तु वरुणो भवेत्॥२॥
माहेन्द्रो मध्यसंस्थस्तु शुक्लपक्षे तु वामगः। कृष्णपक्षे दक्षिणग उदयस्य त्र्यहं त्र्यहम्॥३॥
वहेत् प्रतिपादाद्ये च विपरीते भवेन्नतिः। उदयं सूर्य्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयो यदि॥४॥
वर्द्धन्ते गुणसंघाता अन्यथा विघ्नमौचितम्।
संक्रान्त्यः षोडश प्रोक्ता दिनरात्रौ वरानने॥५॥

भैरव ने कहा—अब वायु जय द्वारा जय-पराजय-विदेशगमनादि निर्णय करूंगा। वायु-अग्नि-जल-इन्द्र—ये मंगल चतुष्टय वर्णित हैं। प्राणी के देह के वाम तथा दाहिने नासिका से वायु बहता है। ऊर्ध्व जो वायु नासिका द्वारा प्रवाहित होता है, वह प्रवाहित होने पर अग्नितत्व का उदय जाने। अधोगामी वायु जलतत्व, नासिका से मध्यगत जाने वाली वायु को महेन्द्रतत्व कहा गया है। वायु शुक्लपक्ष में वाम नासा से तथा कृष्णपक्ष में दक्षिण नासा से उदित होता है। तीन दिन वायु उदित होकर बदल जाता है। शुक्ल प्रतिपदा से वह वायु तीन दिन बायें नाक से तथा तत्पश्चात् तीन दिन दक्षिण नासा से बहता है। इस क्रम से पूर्णिमा पर्यन्त तक की गति जाने। अब कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से तीन दिन दाहिने नाक से, तब तीन दिन वाम नासा से वायु गतिमान होता है। इसी क्रम से अमावस्या तक जाने। इसकी विपरीत स्थिति में मृत्यु जाने। यदि वायु सूर्यमार्ग में उदित होकर चन्द्रमार्ग में अस्त हो, तब व्यक्ति की अनेक वृद्धि होगी। इस नियम का उलटा होने पर विघ्न घटित होंगे॥१-५॥

यदा च संक्रमेद्वायुरर्द्धार्द्धप्रहरे स्थितः। स्वास्थ्यहानिर्स्तदा ज्ञेया वायुर्भ्रमति देहिषु॥६॥
दक्षिणे च पुटे वायुर्हितो भोजनमैथुने। खड्गहस्ते जये युद्धे रिपून्कामसमन्वितः॥७॥
वामेन गमनं श्रेष्ठं सर्वकार्य्येषु भूषितम्। वायुर्वहति तत्रस्थः प्रश्नो भूतस्य शोभनः॥८॥
माहेन्द्रे वारुणे वाते कोऽपि दोषो न जायते। अनावृष्टिर्दक्षवाहे वृष्टिः स्याद्वामवाहके॥९॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्विशततमोऽध्यायः॥२००॥

दिन-रात में वायु एक-एक प्रहर नासिका बदलता रहता है, जब आधे प्रहर बाद वायु का परिवर्त्तन होने लगे, तब स्वास्थ्य हानि जाने। इस प्रकार देहधारी के देह में वायु घूमता है। जब वायु दाहिने नाक से बहे, तब भोजन, मैथुनादि कृत्य करे। तभी खड्ग लेकर शत्रु संहारार्थ निकलने पर जयलाभ होगा। वाम नासा से वायु बहे, तब गमनादि काम शुभ होते हैं। बायीं नाक से वायु बहते समय

किसी व्यक्ति के प्रश्न का उत्तर शुभ देना चाहिये। जब महेन्द्र किंवा वरुण तत्वोदय हो, तब कोई दोष घटित नहीं होगा। दाहिनी नाक से वायु जब बहता है, तब अनावृष्टि का उत्तर दे। वाम नाक से वायु बहने पर अतिवृष्टि कहे॥६-९॥

॥दो सौवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
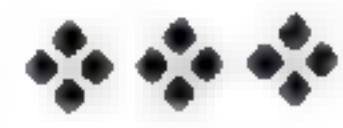
एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वायुर्वेद तथा गजायुर्वेद कथन

धन्वन्तरिरुवाच

हयायुर्वेदमाख्यास्ये हयसर्वार्थलक्षणम्।
काकतुण्डी कृष्णाजिह्वा वृक्षास्यश्चोष्णतालुकः॥१॥
कराली हीनदन्तश्च शृङ्गी विरलदन्तकः।
एकाण्डश्चैव जाताण्डः कञ्चुकी द्विखुरी स्तनी॥२॥
मार्जारपादो व्याघ्राभः कुष्ठविद्रधिसन्निभः। यमजो वामनश्चैव मार्जारः कपिलोचनः॥३॥
एतद्दोषी हयस्त्याज्य उत्तमोऽश्वस्तुरुष्कजः। मध्यमः पञ्चहस्तश्च कनीयांश्च त्रिहस्तकः॥४॥
असंहता ये च वाहा ह्रस्वकर्णास्तथैव च। शबलाभाः प्रभावेषु न दीनाश्चिरजीविनः॥५॥

धन्वन्तरि कहते हैं—अब अश्वायुर्वेद कहता हूं। इस शास्त्र में सभी प्रकार के अश्वों के लक्षण तथा आयुर्विज्ञान है। काकतुण्डी, कृष्णजिह्वा, वृक्षास्य, उष्णतालुक, कराली, हीनदन्त, शृंगी, अधिकदन्त, एकाण्ड, जाताण्ड, क्लीव, द्विखुर, स्तनवान, मार्जारपाद, व्याघ्राभ, कुष्ठविद्रधि सन्निभ, यमज, वामन, मार्जार आकृति, कपिलोचन दोष के दोषी अश्वों को त्याग दे। साढ़े चार हाथ ऊंचा अश्व अति उत्तम होता है। चार हाथ माप वाला मध्यम होता है। इससे मुष्टिहस्त परिमाण कम ऊंचाई वाला अश्व अधम है। अब दीर्घता कहते हैं। (मुख से पूंछ तक) साढ़े सात हाथ उत्तम, छः हाथ वाला मध्यम, छः हाथ से एक मुट्ठी कम होने पर कनिष्ठ तथा पौने पांच हाथ वाला अश्व अधम कहा गया है॥१-५॥

रेवन्तपूजनाद्धोमाद्रक्षाश्च द्विजभोजनात्। सरलं निम्बपत्राणि गुग्गुलुः सर्षपा घृतम्॥६॥
तिलश्चैव वचा हिङ्गु बध्नीयाद्वाजिनो गले। आगन्तुजं दोषजं तु व्रणं द्विविधमीरितम्॥७॥
चिरपाकं वातजं तु श्लेष्मजं क्षिप्रपाकिकम्।
कण्ठदाहात्मकं पित्ताच्छोणितान्मन्दवेदनम्॥८॥

जो संयत अश्व नहीं है, छोटे कान वाले, चितकबरे हैं, वे अमित प्रभावशाली तथा दीर्घजीवी कहे

गये हैं। अश्वों की मंगल कामना से पूजा तथा होम करे। ब्राह्मण भोजन कराये। अश्वों की सर्वांगीण रक्षा होगी। सरल काष्ठ, नीम के पत्ते, गुग्गुलु, सरसों, घृत, तिल, वच, हींग को मिलाकर घोड़े के कण्ठ में बांधे। अश्व का मंगल होगा। अश्वदेह में जो व्रण होते हैं, वे आगन्तुक तथा दोष भेद से दो प्रकार के होते हैं। वातज व्रण दीर्घकाल में पकते हैं। श्लेष्मा वाले जल्दी पक जाते हैं। पित्तजव्रण में कण्ठ में जलन होगी।

रक्तदोष जनित व्रण में मन्द वेदना होती है। कफदोष में व्रण दृढ़ होता है। (दो धातु के दोष वाला व्रण उन-उन धातु के गुणों को व्यक्त करता है (जैसे वात-पित्त दो दोष)। यदि त्रिदोषज व्रण है, तब समस्त त्रिदोषात्मक लक्षण व्यक्त होंगे)॥६-८॥

आगन्तुजं तु शस्त्राद्यैर्दुष्टव्रणविशोधनम्। एरण्डमूलं हरिद्रे द्वे चित्रकं विश्वभेषजम्॥९॥
रसोनं सैन्धवं वापि तक्रकाञ्जिकपेषितम्। तिलसक्तुकपिण्डिका दधियुक्ता ससैन्धवा।
निम्बपत्रयुतं पिण्डं व्रणशोधनरोपणम्॥१०॥

आगन्तुक जो दुष्ट व्रण हैं, उनको शस्त्र से काट कर (आपरेशन करके) उसमें रेंड़ की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, शुण्ठी, लहसुन, सैन्धव को कांजी तथा मट्ठा में पीस के लेप लगाये। तिल, सत्तू, दही, सैन्धव, नीम का पत्ता पीसकर पिण्ड बनाये। इसे व्रण पर लगाये॥९-१०॥

पटोलं निम्बपत्रञ्च वचा चित्रकमेव च। पिप्पली शृङ्गवेरञ्च चूर्णमेकत्र कारयेत्॥११॥
एतत्पानं क्रिमिश्लेष्ममदानिलविनाशनम्। निम्बपत्रं पटोलञ्च त्रिफला खदिरं तथा॥१२॥
क्वाथयित्वा ततो वाहं सृतरक्तं विचक्षणः। त्र्यहमेव प्रदातव्यं हयकुष्ठोपशान्तये॥१३॥

पटोल, नीम की पत्ती, वचा, चित्रक, पिप्पली, अदरख का चूर्ण करके अश्व को पिलाये। कृमि, श्लेष्मा, मद तथा वायुरोग नष्ट होगा। नीम का पत्ता, पटोल, त्रिफला, खदिर की लकड़ी का काढ़ा बनाकर अश्व को पिलाये। रक्तस्राव बन्द होगा। इसी काढ़ा को तीन दिन पान कराये। अश्वकुष्ठ नष्ट होगा॥११-१३॥

सव्रणेषु च कुष्ठेषु तैलं सर्षपजं हितम्। लशुनादिकषायश्च पानभुक्त्योपशान्तये॥१४॥
मातुलुङ्गरसोपेतं मांसीनां रसकेन वा। सद्य दद्यात्तत्र नस्यमन्यैर्वा तैः सुसंयुतैः॥१५॥

अश्व को जब कुष्ठ हो, तब सरसों के तैल के प्रयोग से बहुत फायदा होगा। लशुनादि काढ़ा पिलाने से पान-भोजनजनित दोष शान्त होगा। मातुलुंग नींबू का रस लेकर उसे जटामासी तथा तिल में पीसे तथा अश्व को यह सुंघनी सुंघाये। इससे अश्वरोग तत्काल नष्ट होगा। अन्य रस के प्रयोग द्वारा सुंघनी सुंघाने से भी अश्वरोग नष्ट होता है॥१४-१५॥

पलद्वयं प्रथमेऽह्नि एकैकपलवृद्धितः। यावद्दिनानि पूर्णानि पलान्यष्टादशोत्तमे॥१६॥
अधमेऽष्टपलानि स्युर्मध्यमे स्युश्चतुर्दश। शरन्निदाघयोर्नैव देयं नैव तु दापयेत्॥१७॥

अश्वरोग के निवारण के लिये औषधि देते समय पहले दिन एक पल दे। अगले दिन एक पल बढ़ाते हुये यह मात्रा १८ दिन में १८ पल तक करे। १८ दिनों में १८ पल उत्तम मात्रा है। आठ पल अधम मात्रा तथा १४ पल मध्यम मात्रा १८ दिनों में कही गयी है। शरद तथा ग्रीष्म में अश्वरोग निवारणार्थ कोई दवा प्रयोग न करे॥१६-१७॥

तैलेन वातिके रोगे शर्कराज्यपयोन्वितैः।
कटुतैलैः कफे व्योषैः पित्ते त्रिफलावारिभिः॥१८॥
शालिषष्टिकदुग्धाशी हयो हि न जुगुप्सितः।
पक्वजम्बूनिभो हेमवर्णोऽश्वो न जुगुप्सितः॥१९॥

अर्द्धप्रहरणे धुर्य्ये गुग्गुलुं प्राशयेद्धयम्। भोजयेत्पायसं दुग्धं सत्वरं सुस्थिरो हयः॥२०॥
विकारे भोजने दुग्धं शाल्यन्नं वातले ददेत्। कर्षमांसरसैः पित्ते मधुमुद्गरसाज्यकैः॥२१॥

अश्व के वायुरोग में चीनी, घी तथा दुग्धयुक्त तैल से, श्लैष्मिक रोग में तैल मिश्रित त्रिकटु से, पैत्तिक रोग में त्रिफला जल से सुंघनी सुंघाये। अश्व को शालिधान, यष्टिधान, दुग्धपान कराने से अश्व को उत्कर्ष लाभ होगा। पके जामुन के वर्ण वाला अश्व निर्दोष होता है (दोषरहित होता है)। भारवाही अश्व को गुग्गुलु खिलाये। पायस तथा दूध देने से अश्व सुस्थिर हो जाते हैं। अश्वदेह में वातिक विकार होने पर दूध एवं शालि अन्न भोजन हितकारी है। पैत्तिक विकार में दो तोला मांसरस, यूष तथा घृत पिलाये॥१८-२१॥

कफे मुद्गान्कुलत्थान्वा कटुतिक्तान्कफे हये।
बाधिर्य्ये व्याधिते ग्रासे त्रिदोषादौ तु गुग्गुलुः॥२२॥

अश्व के कफजरोग में मूंग, कुलथी, कटु-तिक्त द्रव्यों का भोजन देना चाहिये। वधिरता व्याधि से पीड़ित अथवा त्रिदोष पीड़ित अश्व को गुग्गुलु देना लाभकारी होता है॥२२॥

घासैर्दूर्वा सर्वरोगे प्रथमेऽह्नि पलं ददेत्। विवर्द्धयेत्ततो कर्षमेकाह्नि पलपञ्चकम्॥२३॥
पाने च भोजने चैव अशीतिपलकं वरम्। मध्ये षष्टिश्चाधमेषु चत्वारिंशच्च भोगिषु॥२४॥

व्रणे कुष्ठेषु खञ्जेषु त्रिफला· क्वाथसंयुतम्।
मन्दाग्नौ शोथरोगे च गवां मूत्रेण योजितम्॥२५॥
वातपित्ते व्रणे व्याधौ गोक्षीरं घृतसंयुतम्।
देयं कृशानां पुष्ट्यर्थं मांसैर्युक्तञ्च भोजनम्॥२६॥
सुपिष्टायाः प्रदातव्यं गुडूच्याः पलपञ्चकम्।
प्रभाते घृतसंयुक्तं शरद्ग्रीष्मे च वाजिनाम्॥२७॥

सभी रोगों में प्रथम दिन एक पल दूर्वा खिलाये। तब प्रतिदिन दो तोला बढ़ते हुये ५ पल तक भोजन दूर्वा का कराये। अश्व के भोजन पान में ८० पल अच्छी मात्रा है। ६० पल मध्यम तथा ४० पल अधम मात्रा है। व्रण, कूठ, खंजरोग में त्रिफला का काढ़ा पिलाये। वात पित्तज व्रणरोग में अश्व को घृत मिला कर गोदुग्ध पिलाये। दुर्बल घोड़े की शरीरपुष्टि हेतु भोजन द्रव्य के साथ उसे मांसरस भी पिलाये। उसकी पुष्टि हेतु शरीर पुष्ट करने हेतु शरत् एवं ग्रीष्म में प्रातः पांच पल गुरुच पीस कर अश्व को खिलाये॥२३-२७॥

रोगघ्नं पुष्टिदञ्चापि बलतेजोविवर्द्धनम्। तदेवाश्वाय दातव्यं क्षीरयुक्तमथापि वा॥२८॥

गुडूचीकल्पयोगेन शतावर्य्यश्वगन्धयोः।
चत्वारि त्रीणि मध्यस्य जघन्यस्य पलानि हि॥२९॥
अकस्माद्यत्र वाहानामेकरूपं यदा भवेत्। म्रियते च यदा क्षिप्रमुपसर्गं तमादिशेत्॥३०॥
होमाद्यै रक्षया विप्रभोजनैर्बलिकर्मणा।
शान्त्योपसर्गशान्तिः स्याद्धरी तक्यादिकल्पतः॥३१॥
हरीतकी गवां मूत्रैस्तैलेन लवणान्विता। आदौ पञ्च ततः पञ्च वृद्ध्या पूर्णशतावधिः।
उत्तमा च शतं मात्रा त्वशीतिः षष्ठिरेव वा॥३२॥

अश्व को पुष्टि प्रदानार्थ रोगघ्न, पुष्टिप्रद, बलप्रद तथा तेजवर्द्धक औषधियों के साथ दूधयुक्त भोजन कराये। अश्वरोग शान्ति हेतु गुरुच कल्क, शतावरी कल्क तथा अश्वगन्धा कल्क पिलाये। इन औषधि सेवन हेतु चार पल कल्क उत्तम मात्रा, ३ पल मध्यम तथा एक पल अधम मात्रा है। जब सभी घोड़ों को एक ही रोग हो जाये तथा उससे घोड़े मरने लगें, तब यही रोग उपसर्ग रोग है। अश्वों के उपसर्ग रोग की शान्ति हेतु रक्षा विधान करे। ब्राह्मण भोजन तथा बलिकर्म से उपसर्ग की शान्ति होगी। तब हरीतक्यादि कल्प सेवन कराये। अश्वरोग शान्ति हेतु गोमूत्र, तैल, लवण मिश्रित हरीतकी भोजन कराये। दवा सेवनकाल में पहले दिन ५ हरीतकी खिलाये। तदनन्तर रोज ५-५ बढ़ाते हुये १०० तक खिलाये। इस हरीतकी में १०० उत्तम मात्रा, ८० मध्यम मात्रा तथा ६० अधम मात्रा है॥२८-३२॥

मजायुर्वेदमाख्यास्ये उक्ताः कल्पा गजे हिताः।
गजे चतुर्गुणा मात्रा ताभिर्गजरुगर्दनः॥३३॥
गजोपसर्गव्याधीनां शमनं शान्तिकर्म च।
पूजयित्वा सुरान्विप्रान् रत्नैर्गां कपिलां ददेत्॥३४॥
दन्तिदन्तद्वये मालां निबध्नी यादुपोषितः।
मन्त्रेण मन्त्रिता वैद्यैर्वचा सिद्धार्थकास्तथा॥३५॥
सूर्य्यादिशिवदुर्गाश्रीविष्ण्वर्चा रक्षयेद् गजम्।
बलिं दद्याच्च भूतेभ्यः स्नापयेच्च चतुर्घटैः॥३६॥
भोजनं मन्त्रितं दद्याद्भस्मनोद्धूलयेद् गजम्।
भूतरक्षा शुभा मेध्या वारणं रक्षयेत्सदा॥३७॥
त्रिफलापञ्चकोले च दशमूलं विडङ्गकम्।
शतावरी गुडूची च निम्बवासककिंशकुाः॥३८॥
गजरोगविनाशाय हितो रूक्षः कषायकः। आयुर्वेदद्वयोक्तानामुक्तं संक्षेपसारतः॥३९॥

॥इति गारुडे महापुराणे एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०१॥

अब गजायुर्वेद कहते हैं। पहले जितने कल्प कहे गये, वो सभी गज हेतु हितकर हैं। विशेषत: अश्व की चौगुनी मात्रा का गज पर औषधि प्रयोग करे। ऐसी औषधि का सेवन कराने से गज का रोग निवृत्त होता है। गज की औपसर्गिक व्याधिनाशार्थ देवार्चनादि शान्तिकर्म करके ब्राह्मण भोजन कराये तथा रत्न, गौ तथा कपिला दान करे। तदनन्तर उपवासी ब्राह्मण गज के दोनों दांत में माला बांध कर मन्त्रपूत वच तथा सरसों से रक्षा विधान करे। "सूर्यादि नवग्रह, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, विष्णु की अर्चना करे, जिससे वे हाथी की रक्षा करें।" यह मन्त्र है। तब भूतगण को बलि देकर ४ घट द्वारा गज को नहलाये। तदनन्तर मन्त्रपूत भोजन प्रदान करके भस्म से गज का अंग मले। इस प्रकार भूतरक्षा विधानोपरान्त देवगण गजों की रक्षा करते हैं। त्रिफला, पंचकोल, दशमूल, बिड़ङ्ग, शतमूली, गुरुची, नीम के पत्ते, वासक, पलाश इनका कषाय पिलाने से गजरोग नष्ट होता है। अश्व तथा गज दोनों का आयुर्वेद कहा गया॥३३-३९॥

॥दो सौ एकवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वयधिकद्विशततमोऽध्यायः

औषधियों का नाम वर्णन

सूत उवाच

एवं धन्वन्तरिः प्राह सुश्रुताय च वैद्यकम्। अथ नामानि वक्ष्यामि ओषधीनां समासतः॥१॥

स्थिरा विदारिगन्धा च शालपर्ण्यंशुमत्यपि।
लाङ्गली कलसी चैव क्रोष्टुपुच्छा गुहा मता॥२॥

पुनर्नवाथ वर्षाभूः कठिल्या कारुणा तथा। एरण्डश्चोरुवूकः स्यादामण्डो वर्द्धमानकः॥३॥

झषा नागबला ज्ञेया श्वदंष्ट्रा गोक्षुरो मतः। शतावरी वरा भीरु पीवरीन्दीवरी वरी॥४॥

ब्राह्मी तु बृहती कृष्णा हंसपादी मधुश्रवा।
धामनी कण्टकारी स्यात्क्षुद्रा सिंही निदिग्धिका॥५॥

सूतजी ने कहा—धन्वन्तरि ने सुश्रुत से पूर्वोक्त प्रकार से वैद्यक शास्त्र कहा था। स्थिरा, विदारीगन्धा, शालपर्णी तथा अंशुमती—ये चार शब्द शालपाणी के ही नाम हैं। लांगली, कलसी, क्रोष्ट्रपुच्छा तथा गुहा—ये पिठानी के नाम है। पुनर्नवा, वर्षाभु, कठिल्लक, कारविल्ल—ये चारों पुनर्नवा के नाम हैं। ऐरण्ड, उरुवुक्, आमण्ड तथा वर्द्धमानक से ऐरण्ड ही जाने। झषा ही नागबला है। श्वदंष्ट्र ही गोखरु है। शतावरी, वरा, भीरु, पीवरी, इन्दीवरी तथा वरी—ये सभी शतमूली के नाम हैं। ब्राह्मी, बृहती, कृष्णा, हंसपादी, मधुस्रुवा तथा करेकची बृहती का ही नाम है। धामनी, कण्टकारी, क्षूद्रा, सिंही, निदिन्धका—कण्टकारी का ही नाम है॥१-५॥

वृश्चिकाल्यमृता काली विषघ्नी सर्पदंष्ट्रिका।
मर्कटी चात्मगुप्ता स्यादार्षेयी कपिकच्छुका॥६॥
मुद्गपर्णी क्षुद्रसहा माषपर्णी महासहा। न्यग्रोधस्तु वटो ज्ञेयः अश्वत्थः कपिलो मतः॥७॥
प्लक्षोऽथ गर्दभाण्डः स्यात्पर्कटी च कपीतनः।
पार्थस्तु ककुभो धन्वी विज्ञेयोऽर्जुननामभिः॥८॥
नन्दीवृक्षः प्ररोही स्यात्पुष्टिकारीति चोच्यते।
वञ्जुलो वेतसो ज्ञेयो भल्लातश्चाप्यरुष्करः॥९॥

वृश्चिकाली, अमृता, काली, विषघ्नी, सर्पदंष्ट्री—ये पांचों विछातिवाचक हैं। मर्कटी, आत्मगुप्ता, आर्षेयी, कपिकच्छुका शब्द शुकशिम्बी वाचक है। मुद्गपणी, क्षुद्रसहा युगानी वाचक हैं। माषपर्णी, महासहा ये माषाणी सूचक हैं। न्यग्रोध, वट ये वटवृक्षवाचक हैं। अश्वत्थ, कपिल—ये दोनों पीपल के नाम हैं। प्लक्ष, गर्भभाण्ड, पर्कटी, कपीतन—पाकड़ वृक्ष के नाम हैं। पार्थ, ककुभ, धन्वी, अर्जुनवृक्ष वाचक हैं। नन्दीवृक्ष, प्ररोही, पुष्टिकारी—मेढ़ासिंगी के नाम हैं। वञ्जुल तथा वेतस—ये दोनों बेंतवृक्ष के नाम हैं। भल्लातक, अरुङ्कार—भिलावा के नाम हैं॥६-९॥

लोध्रः सारवको धृष्टस्तिरीटश्चापि कीर्त्तितः।
बृहत्फला महाजम्बूर्ज्ञेया बालफला परा॥१०॥
तृतीया जलजम्बूः स्यान्नादेयी सा च कीर्त्तिता।
कणा कृष्णोपकुञ्ची च शौण्डी मागधिकेति च॥११॥
कथिता पिप्पली तज्ज्ञैस्तन्मूलं ग्रन्थिकं स्मृतम्।
ऊषणं मरिचं ज्ञेयं शुण्ठी विश्वं महौषधम्॥१२॥
व्योषं कटुत्रयं विद्यात्त्र्यूषणं तच्च कीर्त्यते।
लाङ्गली हलिनी च स्याच्छ्रेयसी गजपिप्पली॥१३॥
त्रायन्ती त्रायमाणा स्यादुत्सा या सुवहा स्मृता।
चित्रकः स्याच्छिखी वह्निरग्निसंज्ञामिरुच्यते॥१४॥
षड्ग्रन्थोग्रा वचा ज्ञेया श्वेता हैमवतीति च।
कुटजो वृक्षकः शक्रो वत्सको गिरिमल्लिका॥१५॥

लोध्र, सारवक, धृष्ट, तिरीह—लोध्र का नाम है। बृहत्कला, महाजम्बु बड़ी जामुन के नाम हैं। बालकला, नादेयी, जलजम्बु क्षुद्र—जामुन (देसी जामुन) के नाम हैं। कणा, कृष्णा, उपकुल्या, शौण्डी, मागधी—इसको भेषज ज्ञानी लोग पिप्पली का वाचक कहते हैं। ग्रन्थिक का अर्थ है पिप्पली की जड़। ऊषण शब्द मरीच को कहते हैं। विश्व तथा महौषध—शुण्ठी का नाम है। व्योष, कटुत्रय, त्र्यूषण का अर्थ है त्रिकटु (मरीच, पीपल, शुंठी)। लांगली, हलिनी, प्रेयसी, गजपिप्पली, त्रायन्ती, त्रायमाणा, उत्सा,

बहुवहा गजपिप्पली वाचक हैं। चित्रक, शिखी, वह्नि तथा अग्निवाचक शब्द—चिता जड़ी का नाम है। षड्ग्रन्था, उग्रा, वचा, श्वेता, हैमवती—वच का नाम है। कुटज, वृक्षक, शक्र, वत्सक, गिरिमाल्लिका कुटजवृक्ष को कहते हैं॥१०-१५॥

कलिङ्गेन्द्रयवारिष्टं तस्य बीजानि लक्षयेत्।
मुस्तको मेघनामा स्यात्कौन्ती ज्ञेया हरेणुका॥१६॥
एला च बहुला प्रोक्ता सूक्ष्मैला च तथा त्रुटिः।
पद्मा भार्गी तथा काञ्जी ज्ञेया ब्राह्मणयष्टिकां॥१७॥
मूर्वा मधुरसा ज्ञेया तेजनी तिक्तवल्लिका।
महानिम्बो बृहन्निम्बो दीप्यकः स्याद् यमानिका॥१८॥

कलिंग, इन्द्रयव, अरिष्ट—ये कुटज बीज का नाम है। मुस्तक तथा मेघ—मोथा का नाम है। कौन्ती, हरेणुका—रेणुका का नाम है। एला, बहुला, इलायची (बड़ी) को कहा गया है। सूक्ष्मैला तथा त्रुटि—छोटी इलायची को कहते हैं। पद्मा, भार्गी, कांजी—ब्रह्मयष्टि का नाम है। इसे वामनहाटी कहते हैं। मूर्वा, मधुरसा, तेजनी, तिक्तवल्ली—मुरगावृक्ष का नाम है। महानिम्ब, बृहद्निम्ब—नीम का नाम है। दीप्यक तथा यमानी—अजवायन को कहा गया है॥१६-१८॥

विडङ्गं क्रिमिशत्रुः स्याद्रामठं हिङ्गुरुच्यते।
अजाजी जीरकं ज्ञेयं कारवी चोपकुञ्चिका॥१९॥
विज्ञेया कटुका तिक्ता तथा कटुकरोहिणी।
तगरं स्यान्नतं वक्रं चोचं त्वचवराङ्गकम्॥२०॥

बिडंग, कृमिशत्रु—बायविडङ्ग का नाम है। हींग को हिंगु तथा रामठ कहा है। जीरक, कारवी उपकुंजिका, अजाजी—ये सभी जीरा के नाम हैं। कटुका, तिक्ता, कटुरोहिणी कटुकी को कहते हैं। तगर, नत, वक्र—यह तगरपादिका का नाम है। त्वच, चोच, वराङ्ग—दारुचीनी का नाम है॥१९-२०॥

उदीच्यं बालकं प्रोक्तं ह्रीवेरं चाम्बुनामभिः। पत्रकं दलसंज्ञाभिश्चोरकं तस्कराह्वयम्॥२१॥
हेमाभं नागसंज्ञाभिर्नागकेशर उच्यते। असृक्कुङ्कुममाख्यातं तथा काश्मीरवाह्लिकम्॥२२॥
अयो लोहं समुद्दिष्टं योगिकैर्लौहनामभिः। पुरं कुटन्नटं विद्यान्महिषाक्षः पलङ्कषा॥२३॥
काश्मरीं कटुफला ज्ञेया श्रीपर्णी चेति कीर्त्तिता।
शल्लकी गजभक्ष्या च पत्री च सुरभी श्रवाः॥२४॥

उदीच्य, वाचक, ह्रीवेर, जलवाचक—शब्द बाला का नाम है। पत्र तथा पत्र वाचकशब्द—ये तेजपत्र का नाम है। असृक्, कुंकुम, काश्मीर, वाल्हीक—ये कुंकुम के वाचक हैं। अयः, गुरु, यौगिक तथा लौहावचक शब्द से लौह कहे। यविष्ठा, प्रचीना, कोलिका, सुषवी, तोयनाश—ये शब्द झिकटी के नाम हैं। रमा, कदली—केला के नाम हैं। पुर, कुटन्नट, महिषाक्ष, पलंकषा—गुग्गुलु के नाम हैं। काश्मीरी, कटुकला, श्रीपर्णी—गाम्भारी के नाम हैं। शल्लकी, गजभक्ष्या, पत्री, सुरभी, श्रवा—ये समी गजारिवृक्ष का नाम है॥२१-२४॥

धात्रीमामलकीं विद्यादक्षश्चैव विभीतकः। पथ्याभया च विज्ञेया पूतना च हरीतकीं॥२५॥

त्रिफला फलमेवोक्ता तच्च ज्ञेयं फलत्रिकम्।
उदकीर्य्यो दीर्घवृन्तः करञ्जश्चेति कीर्त्तितः॥२६॥
यष्टी यष्ट्याह्वयं प्रोक्तं मधुकं मधुयष्टिका।
धातकी ताम्रपर्णी स्यात्समङ्गा कुञ्जरा मता॥२७॥

सितं मलयजं शीतं गोशीर्षं सितचन्दनम्। विद्याद्रक्तं चन्दनञ्च द्वितीयं रक्तचन्दनम्॥२८॥

काकोलीं च स्मृता वीरा वयस्या चार्कपुष्पिका।
शृङ्गी कर्कटशृङ्गी च महाघोषा च कीर्त्तिता॥२९॥

धात्री, आमलकी—ये आंवला के नाम हैं। अक्ष तथा विभीतक—ये बहेड़ा के नाम हैं। पथ्या, अभया, पूतना—हरीतकी को कहते हैं। हरीतकी, आंवला तथा बहेड़ा ही त्रिफल अथवा फलत्रिक हैं। उदवीर्य, दीर्घवृत्त, करञ्ज—ये सभी करंज के नाम हैं। यष्टी, यष्ट्याह्वय, मधूक, मधुयष्टिका—ये सभी मुलेठी के नाम हैं। घातकी, ताम्रपर्णी, समंगा, कुञ्जरा—ये सब धौफूल का नाम है। सित, मलयज, शीत, गोशीर्ष, सितचन्दन—श्वेतचन्दन का नाम है। काकोली, वीरा, वयस्या, अर्क पुष्पिका—काकोली का नाम है। शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी, महाघोषा—ये काकड़ा सिंही का नाम है॥२५-२९॥

तगाक्षीरी शुभा वांशी विज्ञेया वशलोचना।
मृद्वीका च स्मृता द्राक्षा तथा गोस्तनिका मता॥३०॥
स्यादुशीरं मृणालञ्च सेव्यं लामज्जकं तथा।
सारञ्च गोपवल्ली च गोपी भद्रा च कथ्यते॥३१॥

दन्ती कटङ्कटेरी च ज्ञेया दारुनिशेति च। हरिद्रा रजनी प्रोक्ता पीतिका रात्रिनामिका॥३२॥

वृक्षादनी छिन्नरुहा नीलवल्ली रसामृता।
वसुकोटश्च विज्ञेयो वाशिरः काम्पिल्लो मतः॥३३॥
पाषाणभेदकोऽरिष्टो ह्यश्मभित्कुट्टभेदकः।
घण्टाको शुष्कको ज्ञेयो वचोऽथ सूचको मतः॥३४॥
सुरसो बीचकश्चैव पीतशालोऽभिधीयते।
वज्रवृक्षो महावृक्षः स्नुही स्नुक् च सुधा गुडा॥३५॥
तुलसीं सुरसां विद्यादुपस्थेति च कथ्यते।
कुठेरकोऽप्यर्जुनकः पर्णी सौगन्धिपर्णिकः॥३६॥

तूगाक्षीरी, शुभा, धांशी, वंशलोचना वंशलोचन के नाम हैं। मृद्विका, द्राक्षा, गोस्तनी किशमिश का नाम है। उशीर, मृणाल, सेवा, लामंजक—ये वेणा की जड़ के नाम हैं। सार, गोपवल्ली, गोपी तथा भद्रा, यह श्यामलता का नाम है। दण्डी तथा कटङ्कटेरी ये दो शब्द दन्तिवाचक हैं। दारुहल्दी, रजनी,

पीतिका तथा रात्रिवाचक शब्द हल्दी के नाम हैं। वीरवृक्ष, वरतरु, वीरतरु—सेहुण के नाम हैं। वृक्षादनी, छिन्नरुहा, नीलवल्ली, रसा, अमृता—गुरुच के नाम हैं। वसुकोट, वाशिर, काम्पिल्ल—ये शुण्डारोचनी लता के नाम हैं। पाषाणभेदक, अरिष्ट, अश्मभित्, कुट्टभेदक—यह पथरचूर के नाम हैं। घण्टाक, शुष्कक, वच, सूचक—ये घण्टापारुली के नाम हैं।

सुरस, वीचक, पीतशाल—ये पीले शाल के नाम हैं। वज्रवृक्ष, महावृक्ष, स्नूही, स्रुव, सुधा, गुडा ये सिजवृक्ष के नाम हैं। तुलसी, सुरसा, उपस्था तुलसी के नाम हैं। ये सभी श्वेत तुलसी के हैं। कुठेरक, अर्जुनक, पर्णी, सौगन्धिपर्णी—ये अन्य प्रकार की तुलसी के नाम हैं॥३०-३६॥

नीलश्च सिन्धुवारश्च निर्गुण्डीति सुगन्धिका।
ज्ञेया सुगन्धिपर्णीति वासन्ती कुलजेति च॥३७॥
कालीयकं पीतकाष्ठं कतकाख्यः पुनः स्मृतः।
गायत्री खदिरो ज्ञेयस्तद्भेदः कन्दरो मतः॥३८॥
इन्दीवरं कुवलयं पद्मं नीलोत्पलं स्मृतम्। सौगन्धिकं शतदलप्तब्जं कमलमुच्यते॥३९॥

नील, सिन्धुवार, निर्गुण्डी, सुगन्धिका—ये सभी निसिन्दावृक्ष के नाम हैं। सुगन्धिपर्णी, वासन्ती, कुलजा माधवीलता के नाम हैं। कालीयक, पीतकाष्ठ, कतकाख्य—ये तीनों कालीयकाष्ठ के नाम हैं। गायत्री तथा खदिर—ये दोनों कत्था वृक्ष के नाम हैं। कन्दर भी खदिरवृक्ष का नाम है। इन्दीवर, कुवलय, पद्मत्रो नीलकमल वाचक शब्द है। सौगन्धिक, शतदल, अब्ज, कमल—पद्म के ही नाम हैं॥३७-३९॥

अजवर्णो भवेदूर्जो वाजिकर्णोऽश्वकर्णकः।
श्लेष्मातकस्तथा शेलुर्बहुवारश्च कथ्यते॥४०॥
सुनन्दकः ककुद्भद्रं छत्राकी छत्रसंज्ञकः। कबरी कुम्भको धृष्टः क्षुद्विधो धनकृत्तथा॥४१॥

अजवर्ण, उर्ज, वाजिकर्ण, अश्वकर्ण ये—सभी अश्वकर्ण वृक्ष का नाम है। श्लेष्मातक, शेलु, बहुवार—ये चालीता पेड़ के नाम हैं। सुनन्दक, ककुद्भद्र, छत्राकी—ये तीनों छत्र का नाम है। अर्थात् रासना का ही नाम है। कबरी, कुंभक, धृष्ट, क्षुद्विध, धनकृत—काकोली का नाम है॥४०-४१॥

कृष्णार्जकः करालश्च काममानः प्रकीर्त्तितः।
प्राची बला नदीक्रान्ता काकजङ्घाऽथ वायसी॥४२॥
ज्ञेया मूषिकपर्णी तु भ्रमन्ती चाखुपर्णिका। विषमुष्टर्द्रावणश्च केशमुष्टिरुदाहृता॥४३॥
किलिहीं कटुकीं विद्यादन्तकश्चाम्लवेतसः।
अश्वत्था बहुपुत्रा च विज्ञेया चामलक्यपि॥४४॥
अरूंषकं पत्रशूकं क्षीरी राजादनं मतम्। महापात्रश्च दाडिम्बं तमेव कारकं वदेत्॥४५॥
मसूरी विदली शष्पा कालिन्दीति निरुच्यते।
कण्टकाख्या महाश्यामा वृक्षपादीति वक्ष्यते॥४६॥

विद्या कुन्ती निकुम्भा च त्रिभङ्गी त्रिपुटी त्रिवृत्।
सप्तला यवतिक्ता च चर्मा चर्मकसेति च॥४७॥
शङ्खिनी सुकुमारी च तिक्ताक्षी चाक्षिपीलुकम्।
गवाक्षी चामृता श्वेता गिरिकर्णी गवादनी॥४८॥
काम्पिल्लकोऽथ रक्ताङ्गो गुण्डा रोचनिकेति च।
हेमक्षीरी स्मृता पीता गौरी च कालदुग्धिका॥४९॥

कृष्णार्जक, कराल, काममान—अनन्तमूल का नाम है। प्राची, बला, नदीक्रान्ता—ये तीनों बेड़ेला का नाम है। काकजंघा, वायसी—काकजंघा का नाम है। मूषिकर्ण, भ्रमन्ती, आखुपर्णिका—ये इन्द्रवारुणी का नाम है। विषमुर्ष्टि, द्रावण, केशमुष्टि—ये नीमवृक्ष का नाम है। किलिही, कटुकी—ये दोनों कटुकी का नाम है। अन्तक, अम्लवेतस—ये अम्लरसयुक्त लता है। अश्वत्थ, बहुपुत्रा को वन आमलकी कहा है। अरुपक, पत्रशूक, क्षीरी तथा राजादान—ये पियाल के नाम हैं। महापात्र, अनार, करक, दाड़िम—अनार के नाम हैं। मसूरी, विदली, शष्पा, कालिन्दी—मसूर दाल का नाम है। कण्टकाख्या, महाश्यामा, वृक्षपादी—ये कण्टकवृक्ष का नाम है। विद्या, कुन्ती, निकुम्भा, त्रिभंगी, त्रिपुटी, त्रिवृत्—ये तेउड़ी का नाम है। सप्तला, यवतिक्ता, चर्मा, चर्मकसा—चामरकसा का नाम है। शंखिनी, सुकुमारी, तिक्ताक्षी, अक्षिपिलूक—ये सब चोरपुष्पी का नाम है। गवाक्षी, अमृता, श्वेता, गिरिकर्णी, गवादनी—ये अपराजिता का नाम है। काम्पिल्ल, रक्तांग, गुण्डा, रोची—ये रोचनीवृक्ष वाचक हैं। हेमक्षीरी, पीता, गौरी, कालदुग्धिका—ये प्रियंगु के नाम हैं॥४२-४९॥

गाङ्गेरुकी नागबला विशाला चेन्द्रवारुणी।
तार्क्ष्यं शैलं नीलवर्णमञ्जनञ्च रसाञ्जनम्॥५०॥
निर्यासोऽयञ्च शाल्मल्याः स मोचरससंज्ञकः।
प्रत्यक्पुष्पी खरी ज्ञेया अपामार्गो मयूरकः॥५१॥
सिंहास्यवृषवासाकमटरूषकमादिशेत्। जीवको जीवशाकश्च कर्बुरश्च शटीं विदुः॥५२॥
कट्फलं सोमवृक्षः स्यादग्निगन्धा सुगन्धिका।
शताङ्गं शतपुष्पा च मिसिर्मधुरिका मता॥५३॥
ज्ञेयं पुष्करमूलञ्च पुष्करं पुष्कराह्वयम्। यासोऽथ धन्वयासश्च दुःस्पर्शोऽथ दुरालभा॥५४॥
वाकुची सोमराजी च सोमवल्लीति कीर्त्तिता।
मर्करः केशराजश्च भृङ्गराजो निगद्यते॥५५॥

गांगेरुकी, नागबला, विशाला, इन्द्रवारुणी—ये सभी इन्द्रवारुणी के नाम हैं। तार्क्ष्य, शैल, नीलाञ्जन, रसांजन—सभी रसांजन के नाम हैं। शाल्मली के निर्यास (स्राव) को मोचरस कहा है। प्रत्यक्पुष्पी, खरी, अपामार्ग तथा मयूरक—चिड़चिड़ा का नाम है। सिंहास्य, वृष, वासक, अटरूषक—यह अडूसा का नाम है। जीवक, जीवशाक, कर्बूर—यह शठी का नाम है। कट्फल, सोमवृक्ष, अग्निगंधा,

सुगन्धिका—कट्फल के नाम हैं। शताङ्ग, शतपुष्पा—शतपुष्पा का नाम है। मिसि तथा मधुरिका ही मौरी है। पुष्करमूल, पुष्कर, पुष्कराह्वय—पुष्कर का नाम है। यास, धन्ययास, दुस्पर्श, दुरालका—ये दुराल के नाम हैं। वागुची, सोमराजी, सोमवल्ली, सोमराजी (वगुची) वाचक हैं। मर्कर, केशराज, भृंगराज यह मंगरैल को कहा गया है॥५०-५५॥

प्रोक्तस्त्वेडगजस्तज्ज्ञैश्चक्रमर्दश्च संज्ञकः। सुरङ्गी तगरः स्नायुः कलनाशा तु वायसी॥५६॥

महाकालः स्मृतो वेलस्तण्डुलीयो घनस्तनः।
इक्ष्वाकुस्तिक्ततुम्बी स्यात्तिक्तालावुर्निगद्यते॥५७॥
धामार्गवोऽथ विज्ञेयः कोषातक्यथ यामिनी।
विद्युत्कोषातकीभेदः कृतभेदनसंज्ञका॥५८॥
तथा जीमूतकाख्या च खुड्डाको देवताडकः।
गृध्रादना गृध्रनखी हिङ्गुकाकादनी मता॥५९॥

ऐरगज, चक्रमर्दक—चाकुन्दवृक्ष को कहते हैं। सुरंगी, तगर, स्नायु, कलनाशा—वायसी ये सभी काकतुण्डी के वाचक हैं। महाकाल, बेल, तण्डुलीय तथा धनस्तन—ये सभी चौराई के साग के वाचक हैं। इक्ष्वाकु, तिक्ततुम्बी, तिक्ता तथा अलाबु का तात्पर्य तितलौकी से है। धामार्गव, कोषातवी, जामिनी—ये शब्द कोषातकी वाचक हैं। विद्युत् तथा कृतभेदन का तात्पर्य कोषातकी ही है। जीमूताख्य, खुड्डाक, देवताड़क—ये सभी ताड़वृक्ष के नाम हैं। गृध्रादना, गृध्रनखी, हींग तथा काकदनी—ये सभी सफेद घुमची का नाम है॥५६-५९॥

अश्वारिश्चैव बोद्धव्यः करवीरोऽश्वमारकः। सिन्धुसैन्धवसिन्धूत्थमणिमन्थमुदाहृतम्॥६०॥

क्षारो यवाग्रजश्चैव यवक्षारोऽभिधीयते।
सर्जिका सजिकाक्षारो द्वितीयः परिकीर्त्तितः॥६१॥
काशीशं पुष्पकाशीशं विज्ञेयं नेत्रभेषजम्।
धातुकाशीशकाशी च संज्ञेयं तच्च कीर्त्तितम्॥६२॥
सौराष्ट्रीमृत्तिकाक्षारं काक्षी च पङ्कपर्पटी।
विद्यात्समाक्षिकाधातु ताप्यं ताप्युत्थसम्भवम्॥६३॥
शिला मनःशिला ज्ञेया नैपाली कुलटीति च।
आलं मनस्तालकं वा हरितालं विनिर्दिशेत्॥६४॥
गन्धको गन्धपाषाणो रसः पारद उच्यते।
ताम्रमौदुम्बरं शुल्वं विद्यान्म्लेच्छमुखं तथा॥६५॥

अश्वारि, करवीर, अश्वमार—ये सभी करवीर वृक्ष का (कनेर का) नाम है। सिन्धु, सैन्धव, सिन्धूत्थ, मणिभद्र—ये सब नाम सेंधा नमक के हैं। क्षार, यवाग्रज, यवक्षार—ये सभी जवाखार के नाम

हैं। सर्जिक तथा सर्जिकाक्षार—ये दोनों सज्जी के नाम हैं। काशीश, पुष्पकाशीश तथा नेत्रभेषज—ये सभी पुष्पकाशीश नामक उपधातु के नाम हैं। सौराष्ट्री, मृत्तिकाक्षार, काक्षी, पङ्कर्कटी—ये सभी सौराष्ट्री मृत्तिकावाचक हैं। समाक्षिका, तापा, तापुत्थसंभव—ये सभी नाम सोनामाखी के हैं। शिला, मैनसिल, नेपाली, कुनटी—ये सब मैनशिला (मैनसिल) के नाम हैं। आल, मनस्ताल—ये हरिताल के ही नाम हैं। गन्धक, गन्धपाषाण—गन्धक का नाम है। रस तथा पारद—पारा का नाम है। ताम्र, उडुम्बर, शुल्व, म्लेच्छमुख—तांबा का नाम है॥६०-६५॥

आद्रिसारस्त्वयस्तीक्ष्णं लोहकञ्चापि कथ्यते।
माक्षिकं मधु च क्षौद्रं तच्च पुष्परसं स्मृतम्॥६६॥
ज्येष्ठन्तु सोदकं तत्स्यात्काञ्जिकं तु सौवीरकम्।
सिता सितोपला चैव मत्स्यण्डी शर्करा स्मृता॥६७॥
त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्। नागकेशरसंयुक्तं तच्चतुर्जातमिष्यते॥६८॥

अद्रिसार, अय, तीक्ष्ण, लौह—लोहा के नाम हैं। माक्षिक, मधु, क्षौद्र, पुष्परस—ये शहद के नाम हैं। ज्येष्ठ, सोदक, काञ्जिक, सौवीर—ये कांजी के नाम हैं। सिता, सितोपला, शर्करा—चीनी का नाम है। दारुचीनी, एलायची तथा तेजपत्ता समान मात्रा में मिलाने से इसे त्रिसुगन्ध अथवा त्रिजात कहा है। इसके साथ नागकेशर मिलाये। तब यह चतुर्जात कहलाता है॥६६-६८॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः।
कथितं पञ्चकोलञ्च कोलकं कोलसंज्ञया॥६९॥
प्रियङ्गु कङ्गुका ज्ञेया कोरदूषश्च कोद्रवः। त्रिपुटः पुटसंज्ञश्च कलापो लङ्गको मतः॥७०॥
शतीनो वर्त्तुलश्चैव वेणुश्चापि प्रकीर्त्तितः। पिचुकं पित्तलं चाक्षं विडालपदकं तथा॥७१॥

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, नागर ये पंचकोल अथवा कोल कहे जाते हैं। प्रियंगु, कङ्गुका—यह प्रियंगु का नाम है। कोरदूष तथा कोद्रव—कोदो चावल को कहा जाता है। त्रिपुट, पुटसंज्ञ, कलाप लंगक—रेड़ को कहते हैं। सतीन, वर्त्तुल, वेणु—ये कलाय के नाम हैं। पिचु, पित्तल, अक्ष, बिडालपादक—यह दो तोला का नाम है॥६९-७१॥

विद्यात्कर्षं तथा चापि सुवर्णं कवलग्रहम्।
पलार्द्धं शुक्तिमिच्छन्ति तथाष्टमाषकस्त्विति॥७२॥
पलं बिल्वञ्च मुष्टिः स्याद् द्वे पले प्रसृतिं वदेत्।
अञ्जलिं कुडवञ्चैव विद्यात्पलचतुष्टयम्॥७३॥
अष्टमानं पलान्यष्टौ तच्च मानमिति स्मृतम्।
चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थं प्रस्थाश्चत्वार आढकः॥७४॥
कांसपात्रश्च संप्रोक्तो द्रोणश्च चतुराढके।
तुला पलशतं प्रोक्तं भागो विंशत्पलः स्मृतः॥७५॥

कर्ष, सुवर्ण तथा कवलग्रह ये दो तोला होते थे, यह जाने। पलार्द्ध, शुक्ति तथा अष्टमाषक से आठ माषा वजन जाने। पल, बिल्व, मुष्टि एक पल वाचक है। प्रसूति का तात्पर्य है दो पल। अंजलि तथा कुड़व का तात्पर्य है चार पल। आठ पल को अष्टमान अथवा मान कहते हैं। चार कुड़व का एक प्रस्थ होता है। चार प्रस्थ का एक आढ़क जाने। चार आढ़क का एक द्रोण होता है। इसे कांसपात्र भी कहा गया है। सौ पल एक तुला होगा। बीस पल को भाग कहते हैं॥७२-७५॥

मानमेवंविधं प्रोक्तं प्रस्थद्रव्येषु पण्डितैः। द्रवद्रव्येषु चोद्दिष्टं द्विगुणं परिकीर्त्तितम्॥७६॥
भद्रदारु देवकाष्ठं दारु स्याद्देवदारुकम्। कुष्ठमामयमाख्यातं मांसीञ्च नलदंशनम्॥७७॥

शङ्खः शुक्तिनखः शङ्खो व्याघ्री व्याघ्रनखः स्मृतः।
पुरं पलङ्कषं विद्यान्महिषाक्षञ्च गुग्गुलुः॥७८॥

प्रस्थ द्रव्य के बारे में विद्वानों का यही मत रहा है। द्रव (Liquid) का परिमाण इससे दूना होगा। दारु, देवदारु का अर्थ है देवदारु वृक्ष। कुष्ठ तथा आमय का तात्पर्य कूड़ से है। मासी तथा नलदंशन का तात्पर्य है जटामांसी। शंख, शुक्तिनख, शुक्ति—यह सब शंख का नाम है। व्याघ्र तथा व्याघ्रनख ही नखी है। पुर, पलङ्कष, महिषाक्ष तथा गुग्गुलु—यह सब गुग्गुल का ही नाम है॥७६-७८॥

रसं गन्धरसो वोले सर्जः सर्जरसो मतः।
प्रियङ्गुः फलिनी श्यामा गौरी कान्तेति चोच्यते॥७९॥
करञ्जो नक्तमालः स्यात्पूतिकश्चिरबिल्वकः।
शिग्रुः शोभाञ्जनो नाम ज्ञानमानश्च कीर्त्तितः॥८०॥
जया जयन्ती शरणी निर्गुण्डी सिन्धुवारकः।
मोरटा पीलुपर्णी च तुण्डी स्यात्तुण्डिकेरिका॥८१॥

क्लीवलिंग, रसशब्द—पारद का ही नाम है। सर्ज एवं सर्जरस का तात्पर्य है धूना। प्रियंगु, फलिनी, श्यामा, गौरीकान्ता—यह प्रियंगुपेड़ का नाम है। करंज, नक्तमाल, पूतिक, चिरबिल्व—ये सभी कटकरंज पेड़ के नाम हैं। शिग्रु, शोभांजन, ज्ञान, मान—ये सैजन के नाम हैं। जया, जयन्ती, शरणी—ये तीनों जयन्ती के नाम हैं। निर्गुण्डी तथा सिन्धुवार, निसिन्दा वृक्ष का नाम है। मोरटा, पीलुपणी—यह इक्षुमूल का नाम है। तुण्डी तथा तुण्डिकेरी—कपास वृक्ष का नाम है॥७९-८१॥

मदनो गालवो बोधो घोटा घोटी च कथ्यते।
चतुरङ्गुलसम्पाको व्याधिघाताभिसंज्ञकः॥८२॥
विद्यादारग्वधं राजवृक्षं रैवतसंज्ञकम्।
दष्टका चातितिक्ता स्यात्कण्टकी च विकङ्कतः॥८३॥
निम्बोऽरिष्टः समाख्यातः पटोलं कोलकं विदुः।
वयस्था चैव विश्वा च छिन्ना छिन्नरुहा मता॥८४॥

वत्सादन्यमृता चेति गुडूचीनामसंग्रहः।
किराततिक्तकश्चैव भूनिम्बः काण्डतिक्तकः॥८५॥

मदन, गालव, बोध, घोटा, घोटी मयनावृक्ष का नाम है। चतुरंगुल, सम्पाक, व्याधिघात—यह शोणालवृक्ष का नाम है। आरग्वध, राजवृक्ष तथा रैवत भी इसी वृक्ष के अन्य नाम हैं। दष्टका, अतितिक्ता, कंटकी, विकंकत—कंटकी का ही नाम है। नीम, अरिष्ट—ये नीमवृक्ष के नाम हैं। पटोल तथा कोलक एक ही हैं। वयस्था, विश्वा, छिन्ना, छिन्नरुहा, वत्ससादनी, अमृता—ये सभी गुरुच के नाम हैं। किरात, तिक्तक, भूनिम्ब, काण्डतिक्तक—ये भूमिकूष्माण्ड के ही नाम हैं॥८२-८५॥

सूत उवाच

नामान्येतानि च हरे वन्यानां भेषजां तथा।
अतो व्याकरणं वक्ष्ये कुमारोक्तञ्च शौनक॥८६॥

॥इति गारुडे महापुराणे द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०२॥

सूतजी कहते हैं—मैंने औषधियों का नाम कह दिया। अब कुमारोक्त व्याकरण कहूंगा॥८६॥

॥दो सौ दोवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्याकरण वर्णन

कुमार उवाच

अथ व्याकरणं वक्ष्ये कात्यायन समासतः। सिद्धशब्दविवेकाय बालव्युत्पत्तिहेतवे॥१॥

सुप्तिङन्तं पदं ख्यातं सुपः सप्त विभक्तयः।
स्वौजसः प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मके॥२॥

सम्बोधने च लिङ्गदावुक्ते कर्मणि कर्त्तरि। अर्थवत्प्रातिपदिकं धातुप्रत्ययवर्जितम्॥३॥

अमौशसा द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते च यत्।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्ताऽन्तरान्तरेण संयुते॥४॥
टाभ्यांभिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्त्तरीरिता।
येन क्रियते तत्करणं कर्त्ता यश्च करोति सः॥५॥

भगवान् कुमार (स्कन्द) कहते हैं—हे कात्यायन! संक्षेप में व्याकरण कहता हूं। इस व्याकरण के द्वारा सभी पदों का विचार करके बालकों हेतु व्युत्पत्ति होगी। सुवन्त तथा तिगन्त शब्दों को पद कहते हैं। सूपादि विभक्ति सात हैं। यथा—सु, औ, अस—यह प्रथमा विभक्ति है। यह प्रतिपदिक विभक्ति है। यह सम्बोधन में लिंगार्थ तथा उक्तकर्म में प्रयुक्त होती है। धातु एवं प्रत्ययरहित अर्थवान् शब्द ही प्रतिपादिक है। अम्, औ, शस्, द्वितीया विभक्ति हैं। इसमें द्वितीया विभक्ति कर्मकारक में तथा अन्तरा, अन्तरेण इन दो शब्दों के योग में प्रयुक्त होती है। जो कुछ किया जाता है, वही कर्मकारक कहलाता है। यह दो शब्द के योग में प्रयुक्त होता है। टा, भ्यां, भिस् तृतीया विभक्ति कही जाती है। यही करण तथा कर्तृकारक तृतीया विभक्ति है। जिसके द्वारा कार्य सम्पन्न होता है, वही करणकारक कहा जाता है। जो क्रिया करते हैं, वे कर्तृकारक कहे जाते हैं॥१-५॥

ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके।
यस्मै दित्सा धारयते रोचते सम्प्रदानकम्॥६॥
पञ्चमी स्यान्ङसिभ्यांभ्यो ह्यपादाने च कारके।
यतोऽपैति समादत्तं अपादत्ते भयं यतः॥७॥

ङे, भ्यां, भ्यस् चतुर्थी विभक्ति है। सम्प्रदानकारक में इसका प्रयोग करते हैं। जिसे दान करने की इच्छा होती है, जिसे धारण कराया जाता है तथा जिसमें रुचि उत्पन्न की जाती है, वही सम्प्रदान है। ङसि, भ्यां, भ्यस् पंचमी विभक्ति है। अपादान कारक में पंचमी विभक्ति का प्रयोग करते हैं। जिससे भय उत्पन्न हो, जिससे ग्रहण किया जाये, जिससे जहां से अन्तर्हित् हो जाये, उसे अपादान कारक कहा गया है॥६-७॥

ङसोमामश्च षष्ठीं स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके।
ङ्योःसुपश्च सप्तमी स्यात् सा चाधिकरणे भवेत्॥८॥
आधारश्चाधिकरणो रक्षार्थानां प्रयोगतः। ईप्सितश्चानीप्सितं यत्तदपादानकं स्मृतम्॥९॥
पञ्चमी पर्य्यपाङ्योगे इतरर्त्तेऽन्यदिङ्मुखे। एनयोगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकैः॥१०॥

ङस्, ओस्, आम् षष्ठी विभक्ति है। निर्धारण तथा सम्बन्ध प्रभृति के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। ङि, ओस्, सुप् यह सप्तमी विभक्ति है। अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। क्रिया का आधार अधिकरण है। रक्षार्थ धातु का प्रयोग जो ईप्सित है, किंवा अनीप्सित है, वह अपादान कारक है। परि, अप, आं, इतर, ऋते, अन्य, दिक्, मुख, इन, समस्त शब्द के योग में भी पंचमी विभक्ति का नियम है। 'एन' के योग से द्वितीया विभक्ति होती है। कर्म के प्रवचनीय योग में भी द्वितीया विभक्ति का विधान है॥८-१०॥

वीप्सेत्थम्भाव चिह्नेऽभिर्भागे चैव परिप्रती। अनुरेषु सहार्थे च हीनेऽनूपश्च कथ्यते॥११॥
द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टायां गतिकर्मणि।
अप्राणे हि विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे॥१२॥

नमः स्वस्ति स्वधा स्वाहालंवषड्योग ईरिता।
चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः॥१३॥
तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगेऽपि षष्ठ्यपि॥१४॥
स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षाद्दायादसूतकैः। निर्द्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके॥१५॥

वीप्सा, इत्थम्भाव, चिह्न—इन सबके अर्थ में अभिः, भागार्थ में परि, प्रति, पूर्वोक्त सभी अर्थ में तथा सहार्थ में अनु तथा हीन अर्थ में अनु कहा गया है अर्थात् अनु एवं उपशब्द कर्मप्रवचनीय कहा गया है। चेष्टा तथा गमनार्थ धातु के कर्म में द्वितीया एवं चतुर्थी विभक्ति होती है। अनादर अर्थ में मन धातु के अप्राणि कर्म में द्वितीया तथा चतुर्थी विभक्ति होती है। नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् शब्द के योग में तथा निमित्तार्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। तुमर्थ भाववाची शब्द के उत्तर में भी चतुर्थी विभक्ति होगी। सह शब्द के योग में कुत्सित अंग समझाने में तथा विशेषण में तृतीया विभक्ति होगी। कालार्थ तथा भावार्थ में सप्तमी विभक्ति का नियम है, तथापि इन शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होगी। निर्धारण में षष्ठी तथा सप्तमी दोनों विभक्ति रहेगी। हेतु शब्द प्रयोग में केवल षष्ठी विभक्ति रहेगी। स्मरणार्थ धातु के कर्मकारक में तथा 'कृ' धातु के प्रतियत्न अर्थ में षष्ठी विभक्ति रहेगी॥११-१५॥

स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके। हिंसार्थानां प्रयोगे च प्रतिकर्मणि कर्त्तरि॥१६॥
न कर्त्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठयोः प्रतिपादिके। द्विविधं प्रातिपादिकं नाम धातुस्तथैव च॥१७॥
भुवादिभ्यस्तिङो लः स्याल्लकारा दश वै स्मृताः।
तिप्तसन्ति प्रथमो मध्यः सिप्थस्थोत्तमपुरुषः॥१८॥
मिब्वस्मस्परस्मै तु पदाताञ्चात्मनेपदम्। त आत अन्ते प्रथमस्थासाथे ध्वे च मध्यमः॥१९॥
ए वहे मह उत्तमः पुरुषो हि निरूप्यते। नाम्नि प्रयुज्यमानेऽपि प्रथमः पुरुषो भवेत्॥२०॥
मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि।
भूराद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः॥२१॥

हिंसार्थ धातुप्रयोग में षष्ठी विभक्ति होगी। कृदन्त धातु के कर्त्ता तथा कर्म में भी इसी विभक्ति का विधान है। निष्ठादि प्रत्ययान्त धातु के योग के कर्त्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति नहीं होती। प्रातिपदिक है नाम एवं धातु। मुखादि धातु के उत्तर में तिङ् विभक्ति होती है। इस तिङ् विभक्ति को लकार कहा गया है। लकार दश प्रकार का है। प्रत्येक लकार में परस्मैपद तथा आत्मनेपद हैं। इन दोनों में तीन-तीन पुरुष होते हैं। तिप्, तस्, अन्ति को प्रथम पुरुष, सिप्, थस्, थ को मध्यम पुरुष, मिप्, वस्, मस् को उत्तम पुरुष कहा गया है। ये तीनों पुरुष परस्मैपद के अन्तर्गत् हैं। ते, आते, अन्ते, प्रथम पुरुष हैं। से, आथे, ध्वे मध्यम पुरुष हैं। ए, वहे, महे—ये उत्तमपुरुष हैं। इनको आत्मनेपद कहा गया है। नाम (युष्मदस्मदपद) के अतिरिक्त शब्द प्रयुज्यमान होने पर वह प्रथमपुरुष होता है। युष्मद् प्रयुज्यमान होने पर मध्यमपुरुष तथा अस्मद् प्रयुज्यमान होने पर वह उत्तमपुरुष होता है। 'भू' प्रभृति कतिपय शब्द को धातु कहा गया है॥१६-२१॥

लडीरिते वर्त्तमाने स्मेनातीते च धातुतः।
भूतेऽनद्यतने लङ् वा लुङाशिषि च धातुतः॥२२॥
विध्यादावेवानुमतौ लोड् वाच्यो मन्त्रणे भवेत्।
निमन्त्रणाधीष्टसंप्रश्ने प्रार्थनेषु तथाशिषि॥२३॥
लिडतीते परोक्षे स्यादुद्भूते लुड् भविष्यति।
धातोर्लृट्क्रिप्रातिपत्तौ लिङ्र्थे लोट् प्रकीर्त्तितः॥२४॥
कृतस्त्रिष्वपि वर्त्तन्ते भावे कर्मणि कर्त्तरि।
तृणतव्यवङनीयः स्यात् शतृङाद्याश्च धातुतः॥२५॥

॥इति गारुडे महापुराणे त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०३॥

सनादिप्रत्ययान्त शब्द को भी धातुसंज्ञक जाने। वर्त्तमान काल में धातु के उत्तर में लट् विभक्ति होगी। 'स्म' शब्द के योग में अतीत काल में भी लट् विभक्ति रहेगी। अनद्यतन अतीत में लङ् का विधान है। आशीर्वाद के अर्थ में धातु के उत्तर में लिङ् विभक्ति रहती है। विधि, अनुमति प्रभृति अर्थ में लोट् विभक्ति होती है। निमन्त्रण, अध्येषण, संप्रश्न, प्रार्थना तथा आशीर्वाद अर्थ में लोट् विभक्ति रहती है। परोक्ष अतीत में लिट् विभक्ति रहेगी। अद्यतन अतीत में लुङ् विभक्ति का नियम कहा गया है। सामान्यत: भविष्यत् काल में लृट् विभक्ति होती है। अल्प भविष्यत् काल हेतु लुट् विभक्ति रहेगी। क्रिया की अनिष्पत्ति की दशा में धातु के उत्तर में लृङ् विभक्ति होगी। कहीं-कहीं लिट् विभक्ति के विषय में लोट् विभक्ति होती है। कृत् प्रत्यय तीनों काल में होता है। धातु के उत्तर भाव में, कर्म में, कर्त्ता में तृण, तव्य, धङ्, अनीय, शतृङ् प्रभृति कृत् प्रत्यय होते हैं॥२२-२५॥

॥दो सौ तीनवां अध्याय समाप्त॥

चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्याकरण में सिद्धोदाहरण वर्णन

सूत उवाच[१]

सिद्धोदाहरणं वक्ष्ये संहितादिपुरःसरम्। विप्राग्रं सागता वीदं सूत्तमं स्यात् पितॄर्षभः॥१॥
कल्कारो विश्रुताश्लेषं लाङ्गलीषा मनीषया। गङ्गोदकं तवल्कार ऋणार्णं प्रार्णमित्यपि॥२॥
शीतार्त्तश्च तवल्कारः सैन्द्री सोकार इत्यपि। वध्वासनञ्च पित्रर्थो लनुबन्धो नये जयेत्॥३॥
नायको लवणं गावस्त एते न त ईश्वराः।

सूतजी बोले— हे श्रेष्ठ विप्रो! आगे मैं संहिता से पुरस्सर सिद्ध शब्दों के उदाहरणों को कहता हूँ। प्रथमतः सन्धि के नियम-रूप में यह ज्ञेय है कि सागता, वीदं, सूत्तमम् पितॄर्षभ व लृकार इन पदों में दीर्घ सन्धि विश्रुत है। लाङ्गलीषा व मनीषा में पररूप (बाद की) सन्धि ज्ञेय है। इसी क्रम में गङ्गोदकम् में (गुण सन्धि) है। पुनः तवल्कारः (गुण रूप), ऋणार्णम् और प्रार्णम् (में वृद्धि सन्धि), शीतार्तः (में दीर्घ), सैन्द्री-सौकर (में वृद्धि सन्धि है), बध्वासन, पित्रर्थ, लनुबन्ध (में यण् सन्धि), नायकः, लवणम्, गावः (में अयादि), एते (गुण्) त ईश्वराः में (अय् एवं अलोप है)। (इस प्रकार यहाँ आए शब्द स्वर सन्धिगत विश्रुत है)।।१-३।।

---

१. गरुडपुराणकार ने यहाँ 'कुमारव्याकरण' का संक्षिप्त विवरण दिया है। पुराणकार संकेतित करता है कि वह कुमारोक्त व्याकरण का विवरण दे रहा है : 'अतः व्याकरणं वक्ष्ये कुमारोक्तञ्च शौनक।' (२०२, ८६) पूर्वार्द्ध के २०२वें अध्याय के इस अंतिम श्लोकार्द्ध के बाद अगले अध्याय में वह पुनः स्वीकारता है कि वह कात्यायन व्याकरण को संक्षिप्त रूप से कहता है : अथ व्याकरणं वक्ष्ये कात्यायन समासतः। (२०३, १) इसके बाद, वह २०४वें अध्याय में पुनः कहता है कि उसने नाममात्र विवरण ही दिया है, विशेष विवरण कुमार से सुनकर कात्यायन ने लिखा था : कात्यायनः कुमारात्तु श्रुत्वा विस्तरमब्रवीत्॥ (२०४,२७) यहाँ सिद्धोदाहरण दिए गए हैं और उनको संहितादि से युक्तता दी गई है। व्याकरण को लेकर कथासरित्सागरकार का मत है कि कात्यायन का ही 'ऐन्द्रव्याकरण' था। इसको पाणिनि ने अनुपयोगी किया। यही मत बृहत्कथामञ्जरी में भी मिलता है। रोचक कथा है कि आचार्य वर्ष की शिष्य मण्डली में दो प्रमुख थे कात्यायन और पाणिनि। पाणिनि जडमति था और गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा के प्रति भी सचेष्ट नहीं था। गुरुपत्नी से निकाले जाने पर वह खिन्न होकर हिमालय की ओर चला गया जहाँ उसकी घोर तपस्या से शिव प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे 'नव व्याकरण' दिया। इसे लेकर पाणिनि ने कात्यायन को चुनौती दी। कात्यायन ने जब पाणिनि को परास्त कर दिया तो आकाशस्थ शम्भु ने हुंकार किया। फलस्वरूप कात्यायन का सारा ऐन्द्रव्याकरण पृथ्वीतल से नष्टभूत हो गया। इस कथा की ओर सातवीं सदी में भारत भ्रमण पर आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी संकेत किया है। (द ऐन्द्रस्कूल आव संस्कृत ग्रामर : ए. सी. बर्नेल, पृष्ठ ४) प्रमाण स्वरूप श्लोक है— अथ कालेन वर्षस्य शिष्यवर्गो महानभूत्। तत्रैक पाणिनिर्नामा जडबुद्धितरोऽभवत्। स सुश्रूषा परिक्लिष्टः प्रेषितो वर्षभार्यया। अगच्छत् तपसे खिन्नो विद्याकामो हिमालयम्। तत्र तीव्रेण तपसा तोषितात् इन्दुशेखरात्। सर्वविद्यामुखं तेन प्राप्तं व्याकरणं नवम्॥ ततश्चाऽगत्य मामेव वादायाह्वयते स्म सः। प्रवृत्ते चावयोर्वादे प्रयाताः सप्तवासराः॥ अष्टमेऽहनि मया तस्मिन् तत्समनन्तरम्। नभस्थेन महाघोरो हुंकारः शम्भुना कृतः। तेन प्रनष्टमैन्द्रं तदस्मद्व्याकरणं भुवि। जिताः पाणिनिना सर्वे मूर्खीभूता वयं पुनः॥ (त. ४, २०-२५)

यह भी ज्ञातव्य है कि कात्यायनसूत्रम् अथवा पूर्वपाणिनीयम् के नाम से २४ सूत्रों वाली एक संक्षिप्त कृति का प्रकाशन बड़ौदा से पं. जीवाराम कालिदास ने करवाया था। इसमें और कातन्त्र में यह समानता है कि दोनों का प्रारम्भ 'ओम् नमः सिद्धम्' से होता है। ये सूत्र हैं— १. अथ शब्दानुशासनम्, २. शब्दो धर्मः, ३. धर्मादर्थकामापवर्गाः, ४. शब्दार्थयोः, ५. सिद्धः, ६. सम्बन्धः, ७. ज्ञानं छन्दसि, ८. ततोऽन्यत्र, ९. सर्वमार्षम्, १०. छन्दोविरुद्धमन्यत्, ११. अदृष्टं वा, १२. ज्ञानाधारः, १३. सर्वः शब्दः, १४. मर्वार्थः, १५. नित्यः, १६. तन्त्रः, १७. भाषास्वेकादशी, १८. अनित्यः, १९. लौकिकोऽत्र विशेषण, २०. व्याकरणात्, २१. तज्ज्ञाने धर्मः, २२. अक्षराणि वर्णाः, २३. पदानि वर्णेभ्यः, २४. ते प्राक्। (चान्द्रव्याकरणम् : पं. बेचरदास जीवराज दोशी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६७ ई., पृष्ठ ३)

वर्णों के साथ सिद्ध शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है। बौद्धों ने भी अपने ग्रन्थों में इस मत को दिया है। जापान में भारत से पहुँची एक सिद्धमातृका सुलभ है। चान्द्रव्याकरण में सिद्ध के निमित्त प्रणम्य निवेदित किया गया है— सिद्धं प्रणम्य सर्वज्ञं सर्वीयं जगतो गुरुम्। लघु विस्पष्टसम्पूर्णमुच्यते शब्दलक्षणम्॥ चान्द्रव्याकरण को अष्टाध्यायी का पहला बृहत् परिमार्जित संस्करण माना जाता है जिसमें कात्यायन और पतंजलि के प्रतिपादित सभी परामर्शों को प्रतिष्ठित किया गया है। (चान्द्रव्याकरण आव चन्द्रगोमिन : क्षितीशचन्द्र चटर्जी, डेकन कॉलेज, पूना, १९५३ ई., भूमिका) लोबिश ने इसे पहली बार मुद्रित करवाया और स्वीकार किया कि चन्द्रगोमि ने अपने व्याकरण सूत्रों पर स्वयं ही वृत्ति का भी प्रणयन किया था। लेखक ने अपने व्याकरण को शब्दलक्षण की संज्ञा दी है और उसकी विशेषता तीन शब्दों में बताई है— लघु, विस्पष्ट और सम्पूर्ण। इसकी विशेषताएँ गरुडपुराणकार ने सहेजी हैं, लगता है कि पुराणकार को उक्त कथाएँ ज्ञात रही हों और वह कात्यायन को महत्व देने वाला रहा हो। बंगाल में यह कुछ सदियों पहले लोकप्रिय रहा किन्तु वहाँ इसकी हस्तप्रति नहीं मिली। इसको बचाने का श्रेय तिब्बत को है। वहाँ कलापसूत्र, कलापसूत्रवृत्ति और कलापसूत्रलघुवृत्ति के तिब्बती अनुवादों के रूप में कातन्त्रव्याकरण का ही प्रचार अधिक हुआ स्वीकारा जाता है। (उक्त समस्त टिप्पणियों और इस अध्याय के सोदाहरण अनुवाद का श्रेय चौखम्बा परिवार के सुहृद डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' को है। - प्रकाशक)

देवीगृहमथो अत्र अ अवेहि पटू इमौ[1]॥४॥
अमी अश्वाः षडस्येति तन्न वाक् षड्ढलानि च।
तच्चरेत्तल्लुनातीति तज्जलं तच्छ्मशानकम्॥५॥
सुगण्णत्र[2] पचन्नत्र भवांश्छादयतीति च। भवाञ्झनत्करश्चैव भवांस्तरति संस्मृतम्॥६॥
भवाँल्लिखति ताँश्चक्रे भवाञ्शेतेऽप्यमीदृशम्।
भवाञ्डीनं[3] त्वन्तरसि त्वङ्करोषि सदार्चनम्॥७॥
कश्चरेत् कष्टकारेण कः कुर्य्यात कः फले स्थितः।
कश्शेते चैव कष्षण्डः कोऽर्थः को याति गौरवम्॥८॥
क इहात्र क एवाहुर्देवा आहुश्च भो व्रज। स्वपूर्विष्णुर्व्रजति च गोष्पतिश्चैव धूष्पतिः[4]॥९॥
अस्मानेष व्रजेत् स स्यादृक्साम स च गच्छति।
कुटीच्छाया तथाच्छाया सन्धयोऽन्ये तथेदृशाः॥१०॥

देवीगृहमथो अत्र अ अवेहि पटू इमौ— अब यहाँ देवीगृह. के प्रकृतिगम्य पाठरूप में व्यञ्जन सन्धि के उदाहरण जानने चाहिए। अश्वाः षडस्य (जश्त्वा), तन्न (अनुनासिक), वाक् (चर्त्व), षड्दलानि (जश्त्वा), तच्चरेत् (श्चुत्व-चर्त्व), तल्लुनाति (परसवर्ण), तज्जलम् (श्चतुत्व), तच्छमशानकम् (छत्व-श्चुत्व), सुगन्नण्णत्र, पचन्नत्र (नुट् आगम), भवाश्छादयति (अनुस्वार सुट्-श्चुत्व), भवाञ्झनकरः (परसवर्ण), भवांस्तरति, (अनुस्वार-सुट्), भवाँल्लिखति (परसवर्ण), ताश्चक्रे (श्चुत्व), भवाञ्शेते (श्चुत्व), भवाण्डीनं त्वन्तरसि त्वङ्करोषि (परसवर्ण)। यहाँ तक व्यञ्जन सन्धि के उदाहरण कहे गए हैं। सदार्चनम् (दीर्घ), कश्चरेत् (श्चुत्व), कृष्टकारेण (ष्टुत्व), कᳶकुर्यात् कᳶफले (जिह्वामूलीण विसर्ग), कश्शेते (श्चुत्व), कष्षण्डः (ष्टुत्व), कोऽर्थ (? कस्कः, सत्त्व), क इहात्र क एवाहु— देवा आहुः, भो व्रज (रुत्व, यत्व, यलोप्), स्वयम्भूर्विष्णुर्व्रजति (रुत्व), गीष्पतिः (षत्व), धूर्पतिः (रुत्व), कुटीच्छाया (तुक्-श्चुत्व), तथाच्छाया (तुक्-विकल्प)— यहाँ तक के उदाहरण विसर्गसन्धिगत हैं। इसी प्रकार सन्धि के अन्य उदाहरण भी ज्ञेय हैं।।४-१०।।

समासाः षट् समाख्याताः सद्विजः कर्मधारयः।
द्विगुस्त्रिवेदीग्रामश्च अयं तत्पुरुषः स्मृतः॥११॥
तत्कृतश्च तदर्थश्च वृकभीतिश्चयं धनम्। ज्ञानदक्षेण तत्त्वज्ञो बहुब्रीहिरथा व्ययी॥१२॥
भावोऽधिस्त्रि यथोक्ति द्वन्द्वो देवर्षिमानवाः।

समास छह ख्यात हैं— १. द्वन्द्व, २. द्विगु, ३. तत्पुरुष, ४. कर्मधारय, ५. बहुव्रीहि और ६. अव्ययीभाव। इनको उदाहरण के रूप में इस प्रकार जाना जा सकता है— स द्विजः कर्मधारय समासोदाहरण है। त्रिवेदीग्राम

१. 'देवी गृह अथो अत्र अ अवेहि पटू इमौ' क्वचित् पाठः।
२. 'सुगन्नत्र' इति क्वचित् पाठः।
३. 'भवाञ्डीनं' इति क्वचित् पाठः।
४. 'स्वपूर्विष्णुर्व्रजति च गोष्पतिश्चैव धूष्पति' क्वचित् पाठः।

में द्विगु समास होता है। अब तत्पुरुष समास समझना चाहिए— तत्कृतः तदर्थः वृकभीतिः यद्धनम्, ज्ञानदक्ष में क्रमशः तेन, कृतः, तस्मै अर्थः, वृकाद् भीतिः यस्य धनम्, ज्ञानेदक्षः इस प्रकार की व्युत्पत्ति से क्रमशः तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी एवं सप्तमी रूप में तत्पुरुष समास की सिद्धि होती है। इसके बाद तत्त्वज्ञ शब्द में बहुव्रीहि समास है। इसके बाद अव्ययी भाव समास है, जिसका उदाहरण अधिमान (अधिभाव) है। देवर्षिगानवाः शब्द में देवश्च-ऋषिश्च-मानवश्च इस व्युत्पत्ति के रूप में द्वन्द्व समास की सिद्धि होती है।।११-१२।।

तद्धिताः पाण्डवः शैवो ब्राह्मयञ्च ब्रह्मतादयः॥१३॥

इसी प्रकार तद्धित प्रतयान्त शब्दों को जानना चाहिए जिनके उदाहरण पाण्डव, शैव, ब्रह्यम् तथा ब्रह्मता आदि है।[1]

देवाग्निसखिपत्यंशु क्रोष्टुस्वायम्भुवः पिता।
ना प्रशस्ता च वागग्नौ वटजन्ताश्च पुंस्यपि॥१४॥
हलन्तश्चावसृक्क्ष्माभु तथा क्रव्यान्मृगाविधः।
आद्या राजा युवा पन्था पूषन् ब्रह्महनोहनी॥१५॥
विद्वेधा उशनानड्वान्मधुलिट्काष्ठतट् तथा।

लिङ्गानुसार सिद्ध शब्दों में देव, अग्नि, सखि, पति, अंश, क्रोष्टा (लोमड़ी, सियार), स्वायम्भुव, पितृ, नृ, प्रशस्ता (प्रशंसाकर्ता), रै (सम्पदा), गौ एवं ग्लौ (चाँद)— इतने शब्द अति पुँल्लिङ्ग के सिद्ध कहे गए हैं। अश्वयुक् (घोड़े सहित), क्ष्माभुक् (धरती का उपभोग करने वाला नरपति), मरुत् (समीर), क्रव्याद् (मांसाहारी), मृगव्यध (हरिण का आखेटक), आत्मन् (पुत्र), राजन् (नरेश), यव (जौ), पन्था (रास्ता), पूषन् (सूर्य का पर्याय), ब्रह्महन् (ब्रह्मघातक), हलिन् (हलवाहा), विट् (जार व्यक्ति), वेधस् (पितामह), उशनस् (उशना, दैत्यगुरु आचार्य शुक्र), अनड्वान् (छकड़ा खींचने वाला बलशाली वृषभ), मधुलिट् (मधु को चाट जाने वाला, भ्रमर) और काष्ठतट् (काठ को चीरने वाला कठफोड़वा या वर्धकी) इतने सिद्ध शब्द हलन्त् पुँल्लिङ्ग के तहत ज्ञेय है।।१४-१५।।

वनवार्य्यस्थिवस्तूनि जगत् समाहनी तथा॥१६॥
कर्मसपिर्वपुस्तेज यज्वा सन्तानसंशयः।

इसी प्रकार वन (अरण्य), वारि (पानी), अस्थि (हड्डी), वस्तुनि (द्रव्य, सामग्री), जगत् (चराचर संसार), साम्, अहः, कर्म, सर्पिष् (घृत), वपुष् (काया), तेजस् (बल, क्षमता) इनमें आदि के चार शब्द अजन्त एवं बाकी के शब्द हल् प्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्ग के सिद्ध शब्द कहे गए हैं। इसी प्रकार यज्व, सन्तान शब्द हैं।।१६।।

---

१. इनमें पाण्डव शब्द 'पाण्डोः अपत्यमिति पाण्डवः इत्यर्थे अण्', शैव शब्द 'शिवो देवताऽस्य इत्यर्थे अण्', ब्राह्यम् शब्द 'ब्रह्मणः भावः कर्म इत्यर्थे ष्यञ्' और ब्रह्मता शब्द 'ब्रह्मणः भावः इत्यर्थे तल्' के रूप में ज्ञेय है। पाणिनि आदि व्याकरणों के सूत्र के नियमानुसार शैव के लिए सूत्र है— शिवादिभ्योऽण्। (पाणिनि. ४, १, ११२; चान्द्रव्याकरण २,४ ,४१) ब्राह्यम् के लिए सूत्र है— गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। (पाणिनि. ५, १, १२४; चान्द्र. ४, १, १४१) ब्रह्मता के लिए सूत्र है— तस्य भावस्त्वतलौ। (पाणिनि. ५, १, ११९; तस्य भवः त्व-तलौ। चान्द्र. ४, १, १३६)

जयो जया नदी लक्ष्मी श्रीस्त्रीभूर्वधूरपि॥१७॥
भ्रूपुनर्भूस्तथा धेनुः स्वसा माता चमौ स्त्रियः।
वाक्स्त्रग्दिक्क्रुधः प्रायो युवतिः ककुभस्तथा॥१८॥
द्यौ वागुपावृषश्चैव[1] सुमना उष्णिहौ स्त्रियाम्।

आगे के जाया (जयो ? पत्नी), जरा (जया ? वृद्धावस्था), नदी, लक्ष्मी, श्री, स्त्री, भूमि, वधू, भ्रू (भौंह), पुनर्भू (पुनः जन्मा हुआ), धेनु (गाय), स्वसा (भगिनी, बहन), मातृ (माता) और नौ (मौ ? नाव) ये अजन्त स्त्रीलिङ्ग के अन्तर्गत सिद्ध रूप कहे गए हैं। वाक् (वचन, वाणी), स्रक् (हार), दिक् (दिशा), मुद् (मुदिता, प्रसन्नता), क्रुध (गुस्सा), युवति (विवाहयोग्य या विवाहिता), ककुभ (भूमि की परिधि का चौथा हिस्सा, कान्ता) और द्यौ (नभ), दिव् (स्वर्गलोक), प्रावृट् (वर्षा, पावसकाल), सुमना (अच्छे मन वाली) और उष्णिक्— ये शब्द हलन्त स्त्रीलिङ्ग के अन्तर्गत सिद्ध स्वरूप है।।१७-१८।।

गुणद्रव्यक्रियायोगाः स्त्रीलिङ्गाश्च वदामि ते॥१९॥
शुक्लः कीलालकश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः।
बाहुः[2] कमलभूः कर्त्ता स्वमाता[3] वपुषः स्वनौः॥२०॥
सत्या नाग्न्यस्तथा पुंसो मभक्षयत दीर्घपात्।
सर्वविश्वोभये चोभौ तथान्यान्यतराणि च॥२१॥

सूतजी ने आगे कहा कि अब मैं गुण, द्रव्य तथा क्रियायोग के अनुसार बनने वाले स्त्रीलिङ्ग के सिद्ध शब्दों को कहता हूँ। इनमें मुख्य उदाहरण हैं— शुक्ल (सफेद, उज्ज्वल), कीलालक (अमृत तुल्य पेय द्रव), शुचि (साफ, पवित्र), ग्रामणी (गाँव का प्रशासक), सुधी (बुद्धिमान्), बाहु (कोहनी से कलाई तक का हाथ), कमलभू (ब्रह्मा या पराग), कर्तृ (करने वाला), सुमत (अच्छा विचारक), वपुषः (सुन्दर स्वरूप), सूनु (पुत्र), सत्या, नाग्न्य, अभक्ष (अखाद्य), दीर्घपा, सर्वविश्वा, उभय (द्वय), उभौ, एक, अन्या (द्वितीया) और अन्यतरा (अन्यों में प्रधान) ये सब गुण प्रधान सिद्ध शब्द कहे गए हैं जो स्त्रीलिङ्ग के अन्तर्गत निर्मित होते हैं।।१९-२१।।

डतरो डतमो नेमस्त्वसमोऽथ सिमस्तथा। पूर्वापराधरश्चैव दक्षिणश्चोत्तराधरौ॥२२॥
अपराश्चान्तरोपेत यावता किमसो द्वयम्।
युष्मदस्मत्प्रथमश्च वस्नसोऽल्पे तथाऽर्द्धके॥२३॥
नेमकतिपयौ द्वे च त्रयः स्वर्द्धादयस्तथा।

इसी प्रकार डतर (ऊँचाई वाला), डतम (सर्वोच्च), नेम (भाग, समय), तु (तो), सम (बराबर), अथ (इसके बाद), सिम (हर एक), इतर (अलावा), पूर्व (प्राची), पर (दूसरी, पश्चिम), अधः (नीचे) च

१. 'दिव्प्रावृषश्चैव' इति स्यात्।
२. पटुः इति क्वचित् पाठः। पटुः सुजान इत्यर्थः।
३. सुमताः इति क्वचित् पाठः।

(एवं), दक्षिण (याम्य दिशा), उत्तर (ध्रुव दिशा), अवर (अधम या अन्य), अन्तर, एतद् (यह), इदम् (यह), युष्मत् (तुम), अस्मत् (हम, स्वयं), तत् (वह), प्रथम, चरम (समापन, अन्तिम), अल्पतया (सामासिक, लघु), अर्द्ध (आधा) तथा (एवं), नेमकतिपय (कोई समयान्तराल, कुछ), द्वे (दो), चेति (और ऐसे ही) त्रय इत्यादि सभी शब्द सर्वनाम के परिचायक हैं। इनको सर्वादिगण के अन्तर्गत जानना चाहिए।।२२-२३।।

श्रृणोत्याद्या जुहोतिश्च जहातिश्च दधात्यपि॥२४॥
दीप्यतिः स्तूयतिश्चैव पुत्रीयति धनायति। त्रुट्यति म्रियते चैव चिचीषति निनीषति॥२५॥

इसके साथ-साथ श्रृणोति (श्रवण करता है), जुहोति (होम करता है), जहाति (छोड़ता है), दधाति (अंगीकार करता है), दीप्यति (तेजोमय हो रहा है), स्तूयति (प्रार्थना करता है), पुत्रीयति (बेटे जैसा व्यवहार करता है), धनीयति (धनाढ्य हो रहा है), त्र्युट्यति (गलती कर रहा है), म्रियते (मर रहा है), चिचीषति (संकलन का अभिलाषी है) और निनीषति (उठा ले जाने का इच्छुक है) ये कुछ शब्द तिङन्त के सिद्ध रूप जानने चाहिए।।२४-२५।।

सर्वे तिष्ठन्ति सर्वस्मै सर्वस्मात् सर्वतोगतः। सर्वेषाञ्चैव सर्वस्मिन्नेवं विश्वादयस्तथा।
पूर्वे पूर्वा च पूर्वस्मात्पूर्वस्मिन्पूर्व ईरितः॥२६॥

विभक्तियों के अनुसार व्यवहृत होने वाले सर्व शब्द में प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में सर्वे का प्रयोग होगा। चतुर्थ विभक्ति के एक वचन में सर्वस्मै होगा। पञ्चमी विभक्ति के एक वचन में सर्वस्मात् का प्रयोग होगा। इसी प्रकार आगे सर्वतोगतः और षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में सर्वेषाम् रूप का प्रयोग होगा। इस प्रकार सर्व के रूपों में सर्वेषाम् तक का रूप होता है। ऐसे ही विश्व इत्यादि शब्दों के रूपों को भी विभक्ति के अनुसार व्यवहार में लाया जाना चाहिए। यह भी ज्ञातव्य है कि पूर्व शब्द के लिए प्रथमा विभक्त के बहुवचन में पूर्वे, पूर्वाः और पञ्चमी विभक्ति के एक वचन में पूर्वस्मात् तथा सप्तमी विभक्ति के एकवचन में पूर्वस्मिन् रूप का प्रयोग जानना चाहिए।।२६।।

सूत उवाच

सुप्तिङन्तं सिद्धरूपं नाममात्रेण दर्शितम्।
कात्यायनः कुमारात्तु श्रुत्वा विस्तरमब्रवीत्॥२७॥

।।इति गारुडे महापुराणे चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०४।।

सूतजी बोले कि यहाँ मात्र सुबन्त एवं तिङन्त पदों के सिद्धरूप का विवरण नाममात्र ही कहा गया है। (पूर्वकाल में विस्तारपूर्वक) कुमार कार्तिकेय से इसे सुनकर मुनि कात्यायन ने सविस्तृत कहा था।।२७।।

।।दो सौ चारवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचार वर्णन

सूत उवाच

हरेः श्रुत्वाऽब्रवीद् ब्रह्मा यथा व्यासाय शौनक। ब्राह्मणादिसमाचारं सर्वदं ते तथा वदे॥१॥
श्रुतिस्मृती तु विज्ञाय श्रौतं कर्म समाचरेत्। श्रौतं कर्म न चेदुक्तं तदा स्मार्त्तं समाचरेत्॥२॥
तत्राप्यशक्तः करणे सदाचारं चरेद् बुधः। श्रुतिस्मृतीह विप्राणां लोचने कर्मदर्शने॥३॥

श्रुत्युक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचारेण शिष्टानां त्रयो धर्माः सनातनाः॥४॥
सत्यं दानं दया लोभो विद्येज्या पूजनं दमः।
अष्टौ तानि पवित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम्॥५॥

सूतजी ने कहा—हे शौनक! ब्रह्मा ने श्रीहरि का कथन सुनकर व्यास से ब्राह्मण आदि वर्णों का आचार जिस विधि से कहा था, मैं वह सब आपसे कह रहा हूं। श्रुति तथा स्मृति का सम्यक् ज्ञानलाभ करके श्रुत्युक्त क्रिया करे। जिस समय के लिये श्रुति में कार्य नहीं कहा गया है, उस समय स्मार्त्त कर्म करना विहित है। यदि व्यक्ति अशक्त हो तथा उचित कारण से स्मार्त कर्म न कर सके, उस हालत में वह सदाचरण ही करे। श्रुति तथा स्मृति ब्राह्मणों के दो नेत्र हैं। ब्राह्मण उक्त नेत्र द्वारा कर्म का (निर्णयरूप) दर्शन करते हैं। श्रुत्युक्त धर्म ही प्रधान धर्मरूप है। स्मृति में कहा कर्म परम धर्म है। यदि दोनों में से एक का भी अभाव हो, तब वह व्यक्ति काना है। जब किसी में ये दोनों धर्म न हों, तब तो वह अन्धा ही है। शिष्टाचार भी उत्तम धर्म है। ये स्मृति, श्रुति तथा शिष्टाचार (सदाचार) तीनों ही सनातन धर्म हैं। सत्य, दान, दया, अलोभ, विद्या, यज्ञ, पूजा तथा दम, ये आठ पवित्र शिष्टाचार हैं। सभी शिष्ट आचरण का सविधि पालन करे॥१-५॥

तेजोमयानि पूर्वेषां शरीराणीन्द्रियाणि च। न च लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥६॥

निवासमुख्या वर्णानां धर्माचाराः प्रकीर्त्तिताः।
सत्यं यज्ञस्तपो दानमेतद्धर्मस्य लक्षणम्॥७॥

अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययनं तपः। विद्या वित्तं तपः शौर्य्यं कुले जन्म त्वरोगिता॥८॥
संसारोच्छित्तिहेतुश्च धर्मादेव प्रवर्त्तते। धर्मात् सुखञ्च ज्ञानञ्च ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते॥९॥

इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्रं सनातनः।
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां सामान्यो धर्म उच्यते॥१०॥

पुराने योगीगण का शरीर तथा इन्द्रिय तेजोमय होता था। जैसे कमल के पत्ते पर जल नहीं ठहरता, तदनुरूप उनका शरीर पापलिप्त नहीं होता। निवास मुख्य (आश्रम व्यवस्था) कतिपय धर्माचरण

विख्यात है। सत्य, यज्ञ, तप, दान धर्म के लक्षण हैं। अदत्त द्रव्य का अनुपादान, दान, अध्ययन, तप, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, यज्ञ यह सब धर्मलक्षण है। विद्या, वित्त, तपःप्रभाव, सत्कुल जन्म, आरोग्य, संसारबंधन से उच्छेद के लिये, अर्थात् इन सबको पाने के लिये धर्म में लगना उचित है। धर्म से ही सुख तथा ज्ञानोदय होता है। ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। यज्ञ, अध्ययन, दान, यथाशास्त्र अनुष्ठित यह सब सनातनधर्म है। ये यज्ञादि ही द्विजों का अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का सामान्य धर्म है॥६-१०॥

याजनाध्ययने शुद्धे विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः। वृत्तित्रयमिदं प्राहुर्मुनयः श्रेष्ठवर्णिनः॥११॥

शस्त्रेणा जीवनं राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम्।
पाशुपाल्यं कृषिः पण्यं वैश्यस्य जीवनं स्मृतम्॥१२॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वशः।
गुरौ वासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो ब्रह्मचारिणः॥१३॥
त्रिस्नाता स्नापिता भैक्ष्यं गुरौ प्राणान्तिकी स्थितिः।
समेखले जटा दण्डी मुण्डो वा गुरुसंश्रयः॥१४॥

अग्निहोत्रोपचरणं जीवनञ्च स्वकर्मभिः। धर्मदारेषु कल्पेत पर्ववर्जं रतिक्रियाः॥१५॥
देवपित्रतिथिभ्यश्च पूजादिष्वनुकल्पनम्। श्रुतिस्मृत्यर्थसंस्थानं धर्मोऽयं गृहमेधिनः॥१६॥

याजन, अध्ययन, सत्परिग्रह इन तीन को ऋषियों ने उत्तम वर्ण का धर्म कहा है। (ब्राह्मणों का धर्म कहा है) शस्त्र लेकर प्राणीगण का रक्षण कार्य क्षत्रियों की वृत्ति है। पशुपालन, कृषिकर्म, वाणिज्य वैश्यों का कर्त्तव्य है। ब्राह्मणादि सभी इस प्रकार अपना-अपना कर्त्तव्य करें। इससे जीविका निर्वाह करें। द्विजों की सेवा शूद्र का धर्म है। ब्राह्मणगण क्रमशः गुरुकुल में निवास, अग्निसेवा तथा स्वाध्याय करें। ब्रह्मचर्य का अवलम्बन ब्राह्मण का धर्म है। त्रिसन्ध्या स्नान, भिक्षाचरण, आजीवन गुरुकुल में निवास, मेखला-जटा-त्रिदण्डधारण, मुण्डन, गुरु सेवा, अग्निहोत्र का आचरण, अपनी वृत्ति से जीवन निर्वाह, पर्वों को छोड़ कर बाकी समय स्त्री रति, देवता, पितृगण तथा अतिथि की अर्चना करना, श्रुति-स्मृति में कहे काम करना यही सब गृहस्थों का धर्म है॥११-१६॥

जयित्वमग्निहोतृत्वं भूशय्याजिनधारणम्। वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता॥१७॥
प्रतिषिद्धे निवृत्तिश्च त्रिःस्नानं व्रतधारिता। देवतातिथिपूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः॥१८॥
सर्वारम्भपरित्यागो भैक्ष्यान्नं वृक्षमूलता। निष्परिग्रहता द्रोहः समता सर्वजन्तुषु॥१९॥

प्रियाप्रियपरिष्वङ्गे सुखदुःखाधिकारिता।
सबाह्याभ्यन्तरं शौचं वाग्यमो ध्यानचारिता॥२०॥

सर्वेन्द्रियसमाहारो धारणध्याननित्यता। भावसंशुद्धिरित्येष परिव्राड्धर्म उच्यते॥२१॥

इन्द्रिय जयित्व, अग्निहोत्र का आचरण, भूमिशयन, वनवास, दुग्ध-फल-मूल नीवारादि भोजन करना, निषिद्ध आचरण न करना, त्रिसन्ध्या स्नान, व्रत पालन, देव-अतिथि पूजन-वनवासियों का धर्म है। सर्वकर्म त्याग, भिक्षान्न भोजन, वृक्ष के नीचे निवास, परिग्रह न लेना, अद्रोह, सभी जन्तुओं में समत्व

ज्ञान, प्रिय-अप्रिय में, सुख-दुःख में समभाव, बाह्य तथा अन्तः में पवित्रता, वाणी संयम, ध्यानाचरण, सर्वेन्द्रिय निग्रह, धारणा-ध्यान में तत्परता तथा भावशुद्धि, यह सब परिव्राजकों (यति-संन्यासी) का नियम है। उनका यही धर्म है॥१७-२१॥

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया।
वर्णिनां लिङ्गिनाञ्चैव सामान्यो धर्म उच्यते॥२२॥
यथोक्तकारिणः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्।
आबोधात् स्वपनं यावद् गृहस्थधर्मं वच्मि ते॥२३॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
शर्वर्य्यन्ते समुत्थाय कृतशौचः समाहितः॥२४॥
स्नात्वा सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम्।
प्रातःसन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम्॥२५॥
उभे मूत्रपुरीषे च दिवा कुर्य्या द्वुदङ्मुखः।
रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा॥२६॥
छायायामन्धकारे वा रात्रौ वाहनि वा द्विजः।
यथा तु सुमुखः कुर्य्यात् प्राणाबाधभयेषु च॥२७॥

अहिंसा, उत्तम वाणी, सत्य, शौच, क्षमा, दया—यह ब्रह्मचारी तथा संन्यासी का धर्म है। जिस वर्ण के लिये जो धर्म कहा गया, वे उसी रूप में धर्माचरण द्वारा परमागति पाते हैं। अब जागने से निद्राकाल तक का गृहस्थों का धर्म कहता हूं। गृहस्थ ब्राह्म मुहूर्त्त में निद्रा त्याग कर धर्म तथा अर्थ चिन्ता करें। रात्रि रहते उठ कर शौचादि से निवृत्त होकर पवित्र हो जाये। दांत साफ करके स्नानोपरान्त सन्ध्या-उपासना करे। ब्राह्मण दिन में उत्तरमुख तथा रात्रि में दक्षिणमुख होकर मल-मूत्रादि त्याग करें। दोनों सन्ध्या में भी दिन वाला नियम इस बारे में रहेगा। दिन किंवा रात में, छाया में, अन्धकार में, प्राणसंकट में तथा भय के समय यथेच्छ दिशा में मुख करके मल-मूत्रादि त्याग कर सकते हैं॥२२-२७॥

गोमयाङ्गारवल्मीककफालाकृष्टे जले शुभे।
मार्गोपजीव्यच्छायासु न मूत्रञ्च पुरीषकम्॥२८॥
अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात्।
परेषां शौच शिष्टाञ्च श्मशानाच्च मृदं त्यजेत्॥२९॥
एकां लिङ्गे मृदं दद्याद्वामहस्ते मृदं द्वयम्। उभयोर्द्वे च दातव्ये मूत्रशौचं प्रचक्षते॥३०॥

गोबर, अंगार, दीमक की बांबी, हल से जोती भूमि, जल, पवित्र स्थानों पर, मार्ग पर, उपजीवी वृक्ष की छाया में (जहां लोग बैठते, आराम करते हों), मल-मूत्र त्याग न करे। सभा आदि भद्र समाज में मलमूत्र त्याग न करे। मृत्तिका से पवित्रता करते समय जल में, देवगृह, दीमक की बांबी, चूहे के बिल तथा

श्मशान की मिट्टी नहीं लेनी चाहिये। अन्य के शौच से बची मृत्तिका का भी त्याग करे। मूत्र त्यागोपरान्त लिंग पर एक बार, बायें हाथ में दो बार तथा दोनों हाथों में पुनः दो बार मिट्टी लगाकर धोये। तब आचमन करे। यह मूत्रशौच मुनिगण ने बताया है॥२८-३०॥

एकां लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश।
पञ्च पादे दशैकस्मिन् करयोः सप्त मृत्तिकाः॥३१॥
अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता।
द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्त्तिता॥३२॥
उपविष्टस्तु विण्मूत्रं कर्तुं यस्तु न विन्दति।
स कुर्य्यादर्द्धशौचं तु अस्य शौचस्य सर्वदा॥३३॥
दिवा शौचस्य रात्र्यर्द्धं यद्वा पादो विधीयते।
स्वस्थस्य तु यथोद्दिष्टमार्तः कुर्य्याद्यथाबलम्॥३४॥
वसा शुक्रमसृङ्मज्जालालाविण्मूत्रकर्णगुत्।
श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥३५॥

मल त्यागोपरान्त शौचकार्य हेतु एक बार लिंग पर, तीन बार गुह्य पर, दस बार बायें हाथ पर, पांच-पांच बार एक-एक पैर पर तब दोनों हाथों पर सात बार मिट्टी लगाये। प्रथम बार आधा प्रसूति, दूसरे तथा तीसरे बार चौथाई प्रसूति मिट्टी से शौच कार्य करे। यदि कोई बैठा है, तभी अनजाने में उसका मलमूत्र त्याग हो जाये, तब पूर्वोक्त शौच की जगह आधा शौच करके ही शुद्धि हो जायेगी। जिस प्रकार से शौच क्रिया को कहा गया, वह दिन का नियम है। रात में इसका आधा किंवा चौथाई शौच पर्याप्त है। स्वस्थ व्यक्ति हेतु यही शौच प्रक्रिया है। रोगी व्यक्ति जहां तक कर सके, उतने से ही शुद्धि होगी। वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, लार, मल, मूत्र, कान का मैल, श्लेष्मा, आंसू, दूषिका तथा पसीना, मनुष्य मल ये १२ प्रकार के होते हैं॥३१-३५॥

यावता शुद्धिर्मन्येत तावच्छौचं समाचरेत्। प्रमाणं शौचसंख्याया नादिष्टैरवशिष्यते॥३६॥
शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथान्तरम्॥३७॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्। संमृज्याङ्गुष्ठमूलेन त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत्॥३८॥
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुःक्षोत्रे पुनः पुनः॥३९॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै।
सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद् बाहू चाग्रेण संस्पृशेत्॥४०॥

जब तक अपवित्रता लगे, तब तक शौचाचरण करे। शौचसंख्या की गिनती तथा प्रमाण पूर्णतः

कह दिया। अब कुछ बाकी नहीं है। शौच कार्य द्विविध है। यथा—बाहरी तथा भीतरी। मृत्तिका जल से बाहरी शौच होता है। भावशुद्धि से आन्तरिक शौच सम्पन्न होता है। यह शौच सम्पन्न करके आचमन करे। पहले तीन बार जलाचमन के उपरान्त मुखमार्जन करे। तदनन्तर अंगूठे के मूल से मुखमार्जन करके तीन बार मुखस्पर्श करना होगा। तदनन्तर अंगूठा एवं तर्जनी से नासिका छू कर अंगूठे तथा अनामिका से नेत्र तथा कान को दो-दो बार छूये। तत्पश्चात् कनिष्ठा एवं अंगूठे से नाभि छूये। तब करतल से हृदय का स्पर्श करे। सर्वान्त में सभी उंगलियों से मस्तक छूने के पश्चात् उंगलियों के अग्रभाग से बाहुद्वय स्पर्श करे॥३६-४०॥

ऋचो यजूंषि सामानि त्रिः पठन् प्रीण्येत्क्रमात्।
अथर्वाङ्गिरसौ पूर्वं द्विःप्रमाष्ट्यथ षण्मुखम्॥४१॥
इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि यथाक्रमम्।
खं मुखे नासिके वायुं नेत्रे सूर्य्यः श्रुतिर्निशः॥४२॥
प्राणग्रन्थिमथो नाभिं ब्रह्माणं हृदये स्पृशेत्।
रुद्रं मूर्ध्ना समालभ्य प्रीणात्यर्थशिखामृषीन्॥४३॥
बाहू यमेन्द्रवरुणे कुबेरवसुधानलान्। अभ्युक्ष्य चरणौ विष्णुमिन्द्रं विष्णुं करद्वयम्॥४४॥

तीन बार जलपान (आचमन) से ऋक्-यजुः-साम वेदत्रय प्रसन्न होते हैं। मुखमार्जन से अथर्वाङ्गिरस पाठफल मिलता है तथा यथाक्रमेण इतिहास, पुराण, वेद, वेदांग पाठफल लाभ होता है। मुख से आकाश, नासिका से वायु, नेत्र से सूर्य, कान से दिक्, नाभि से प्राणग्रन्थि, हृदय से ब्रह्मा, मस्तक से रुद्र तथा शिखा स्पर्श से ऋषिगण सन्तुष्ट होते हैं। बाहु स्पर्श से यम, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथिवी, अनल प्रसन्न होते हैं। चरणद्वय अभ्युक्षण से विष्णु तथा इन्द्र प्रसन्न होते हैं। भूतल पर जो जल उस समय छिड़कते हैं, उसके द्वारा वासुकी आदि प्रमुख नाग तृप्त होते हैं। उस समय जो जलबिन्दु इतस्ततः विक्षिप्त हो जाता है, उससे सभी प्राणीगण की तृप्ति हो जाती है[१]॥४१-४४॥

अग्निर्वायुश्च सूर्य्येन्दुगिरयोऽङ्गुलिपर्वसु।
गङ्गाद्याः सरितस्तासु या रेखाः करमध्यगाः॥४५॥
उषःकाले तु संप्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत्।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम्॥४६॥
मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्य्याद्वै दन्तधावनम्॥४७॥
कदम्बबिल्वखदिरकरवीरवटार्जुनाः। यूथी च बृहती जाती करञ्जार्कातिमुक्तकाः॥४८॥

---

१. यहां बंगभाषा संस्करण में एक श्लोक अधिक है। उसका अनुवाद ऊपर दे दिया गया है।
वासुकि प्रमुखान् नागान्, जलं क्षिपति यत् क्षितौ।
येऽन्तरा विन्दवो यान्ति, भूतग्रामश्च तैर्द्विज॥

जम्बूमधूकापामार्गशिरीषोदुम्बराशनाः। क्षीरिकण्टकिवृक्षाद्याः प्रशस्ता दन्तधावने॥४९॥

अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, पर्वत अंगुलिपर्वों में रहते हैं। करतल में जो रेखायें हैं, उनमें गंगा आदि सरिताओं का निवास है। वहां सर्वतीर्थयुक्त होकर सोम भी रहते हैं। तभी करद्वय पावन कहा गया है। आचार के ज्ञाता ब्राह्मण प्रातः पूर्वोक्त रूप से शौचकार्य करके दांत धोकर नहायें। प्रातः मुख न धोने वाला कदापि संयमी नहीं होता। तब सर्वप्रयत्नतः दन्तधावन करें। कदम्ब, नीम, खदिर, करवीर, वट, अर्जुन, यूथी, बृहती, जाती, करंज, आकन्द, अतिमुक्त, जम्बू, महुआ, चिड़चिड़ा, शिरीष, गूलर, अशन तथा सभी दुग्धयुक्त काष्ठ से (जिसको तोड़ने पर दूध निकले) दन्तधावन प्रशस्त है॥४५-४९॥

कटुतिक्तकषायाश्च धनारोग्यसुखप्रदाः।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा च शुचौ देशे त्यक्त्वा तदाचमेत्॥५०॥

अमावस्यां तथा षष्ठ्यां नवम्यां प्रतिपद्यपि। वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु तथैवार्कस्य वासरे॥५१॥

अभावे दन्तकाष्ठस्य निषिद्धायां तथा तिथौ।
अपां द्वादशगण्डूषैः कुर्वीरत मुखशोधनम्॥५२॥
प्रातः स्नात्वा प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हितम्।
सर्वमर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम्॥५३॥
अत्यन्त मलिनः कायो नरश्छिद्रसमन्वितः।
स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम्॥५४॥

कटु, तिक्त, कषाय द्रव्य से दन्तधावन द्वारा धन, आरोग्य एवं सुखलाभ होगा। दन्त धावनोपरान्त पवित्र जगह दतुअन फेंके तथा मुंह धोकर आचमन करे। अमावस्या, षष्ठी, नवमी, प्रतिपदा, रविवार को दन्तधावन न करे। इन निषिद्ध तिथियों पर तथा दन्तकाष्ठ के अभाव में बारह बार कुल्ला करे। प्रातः स्नान दृष्ट-अदृष्ट दोनों के लिये हितकारी है। इसलिये प्रातः स्नान करने वाले सभी लोग इस प्रातःस्नान की तारीफ करते हैं। ऐसा पुरुष शुद्ध आत्मा वाला होकर जप वगैरह करे। वह सर्व मंगल भाजन होता है। शरीर अत्यन्त मलिन होता है। आदमी भी बहुत से दोषों की वजह से दोषयुक्त रहता है। वह दिन-रात में न जाने कितने अहित के कामों को करता है। प्रातःस्नान से इन सबकी शुद्धि होती है॥५०-५४॥

मनःप्रसादजननं रूपसौभाग्यवर्द्धनम्। शोकदुःखप्रशमनं गङ्गास्नानवदाचरेत्॥५५॥
अद्य हस्ते तु नक्षत्रे दशम्यां ज्यैष्ठके सिते। दशपापहरायाञ्च अदत्त्वा दानकल्मषम्॥५६॥
विरुद्धाचरणं हिंसा परदारोपसेवनम्। पारुष्यानृतपैशुन्यमसम्बद्धाभिभाषणम्॥५७॥
परद्रव्याभिधानञ्च मनसानिष्टचिन्तनम्। एतद्दशाघघातार्थं गङ्गास्नानं करोम्यहम्॥५८॥

प्रातः संक्षेपतः स्नानं वाणप्रस्थगृहस्थयोः॥५९॥

प्रातः स्नान से मन की प्रसन्नता, रूप सौभाग्य वृद्धि तथा शोक-दुःख की शान्ति हो जाती है। अतः गंगास्नान समझ कर प्रातः स्नान करे। अब मैं ज्येष्ठ मासीय हस्तानक्षत्र वाली दशमी शुक्लपक्षीय तिथि पर करने वाले उस गंगास्नान का वर्णन करता हूं, जो दशविध पाप क्षयजनक है। "चौर्य,

विरुद्धाचरण, हिंसा, परस्त्री सेवा, कठोरता, झूठ, चुगली, अटपट बोलना, अन्य के धन तथा वस्तु की अभिलाषा, मन में अन्य का अनिष्ट चाहना, ये पाप नाश करने हेतु मैं गंगास्नान करता हूं।" इस संकल्प के साथ गंगास्नान करे। वानप्रस्थी तथा गृहस्थ लोग प्रातः तथा मध्याह्न में स्नान जरूर करें॥५५-५९॥

यतेस्त्रिषवणं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः।
आचम्य तीर्थमावाह्य स्नायात्समृत्याव्ययं हरिम्॥६०॥
तिस्त्रः कोट्यर्द्धविज्ञेया मन्देहा नाम राक्षसाः।
उदयन्तं दुरात्मानः सूर्य्यमिच्छन्ति खादितुम्॥६१॥
स हन्ति सूर्य्यं सन्धायां नोपास्तिं कुरुते तु यः।
दह्यन्ति मन्त्रपूतेन तोयेनानलरूपिणा॥६२॥
अहोरात्रस्य यः सन्धिः सा सन्ध्या भवतीति ह।
द्विनाडिका भवेत्सन्ध्या यावद्भवति दर्शनम्॥६३॥
सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते। स्वयं होमफलं यत्तु तदन्येन न जायते॥६४॥

अब संक्षेप में प्रातः स्नानविधि कहता हूं। लेकिन मध्याह्न स्नान विस्तार से करने का विधान है। यतिगण तीनों सन्ध्या में नहायें। ब्रह्मचारी एक ही बार स्नान करें तो भी ठीक है। आचमन तथा तीर्थ का आवाहन करके स्नान करे। उस समय सदा अव्यय श्रीहरि को याद करे। जो व्यक्ति इस आचार नियम के साथ उपासना नहीं करता, वह उसी प्रकार सूर्यघातक होता है, जैसे मन्देह नामक साढ़े तीन कोटि दुरात्मा राक्षसों को सूर्य हिंसाकारी होने के कारण लगता है। प्रातः स्नान कार्य से विमुख आदमी तो समस्त जल को अनल रूप से दग्ध करने वाला लगता है। दिन तथा रात का जो संधिकाल है, वही सन्ध्या है। यह दो दण्ड पर्यन्त रहती है। जब तक सूर्य न डूबे, तब तक सन्ध्या है। सन्ध्या के अवसान पर स्वयं होम करे। स्वयं होम करने का जो फल है, अन्य द्वारा कराने से वह फल नहीं होगा॥६०-६४॥

ऋत्विक्पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः।
एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि॥६५॥
ब्रह्मा वै गार्हपत्याग्निर्दक्षिणाग्निस्त्रिलोचनः।
विष्णुराहवनीयोऽग्निः कुमारः सत्य उच्यते॥६६॥
कृत्वा होमं यथाकालं सौररान्मन्त्राञ्जपेत्ततः।
समाहितात्मा सावित्रीं प्रणवञ्च यथोदितम्॥६७॥
प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु।
त्रिपदायाञ्च सावित्र्यां न भयं विद्यते क्वचित्॥६८॥
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥६९॥

पुरोहित, पुत्र, गुरु, भ्राता, भागिनेय, जामाता यदि होम करें, तब स्वयं किये होम का ही फल

मिलेगा। गार्हपत्य अग्नि ब्रह्मा है, दक्षिणाग्नि महेश्वर है। आहवनीय अग्नि, विष्णु तथा कुमार सत्यरूप हैं। यथाकाल होम करके सूर्यदेव का मन्त्र जपे। तब समाहित स्थिति में सावित्री एवं प्रणव का जप करे। सप्तव्याहृति तथा त्रिपदा गायत्री में प्रणव का योग करके जप करे। ऐसे जपकर्त्ता को कभी भय नहीं होता। जो व्यक्ति प्रातः उठ कर जप करता है, उसकी देह का स्पर्श पाप उसी प्रकार नहीं करता, जैसे पद्मपत्र पर जल का प्रभाव नहीं होता।।६५-६९।।

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा। अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा।।७०।।
आवाह्य यजुषाऽनेन तेजोऽसीति विधानतः। एतद्यजुः पुरा देवैर्दृष्टिदर्शनकांक्षिभिः।।७१।।

ये भगवती सावित्री श्वेतवर्ण वाली, कौषेय वस्त्र से ढंकी हैं। इन्होंने जपमाला धारण किया है। ये पद्मासनासीन हैं। ऐसा सावित्री ध्यान करे। तब "तेजोऽसि" इत्यादि यजुःमन्त्र से सविधि आवाहनोपरान्त सविधि तेजः रूप की चिन्तना करे। पूर्वकाल में प्रत्यक्ष दर्शनार्थ देवगण ने ऐसा किया तथा वांछित लाभ भी किया।।७०-७१।।

आदित्यमण्डलान्तःस्थां ब्रह्मलोकस्थितामपि।
तत्रावाह्य जपित्वातो नमस्काराद्विसर्जयेत्।।७२।।
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम्। न विष्णोः परमो देवस्तस्मात्तं पूजयेत्सदा।।७३।।
ब्रह्मविष्णुशिवान्देवान्न पृथग्भावयेत्सुधीः।
लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः।।७४।।
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः। एतानि सततं पश्येदर्चयेच्च प्रदक्षिणम्।।७५।।
वेदस्याध्ययनं पूर्वं सर्वदाभ्यसनं चरेत्। तद्दानञ्चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा।।७६।।
वेदार्थं यज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि।
मूल्येन लेखयित्वा यो दद्याद्याति स वैदिकम्।।७७।।
इतिहासपुराणानि लिखित्वा यः प्रयच्छति। ब्रह्मदानसमं पुण्यं प्राप्नोति द्विगुणीकृतम्।।७८।।

आदित्य मण्डल के मध्य में ब्रह्मलोकस्था देवी का आवाहन, जप, नमस्कार करने के उपरान्त विसर्जन करे। देवताओं की पूजा पूर्वाह्न में करे। विष्णु से बढ़ कर परमदेव अन्य है ही नहीं। यह कहते हुये सदा विष्णुपूजा करनी चाहिये। ब्रह्मा-विष्णु-शिव को आपस में अलग न समझे। इस लोक में ब्राह्मण, गाय, अग्नि, स्वर्ण, घृत, सूर्य, जल तथा राजा, ये आठ मंगल हैं। सर्वदा इनको देखने पर प्रदक्षिणा एवं अर्चना करे। अब पहले वेदाध्ययन करके उस वेद का सदा अभ्यास करे। इसके अनन्तर शिष्यों को वेद पढ़ाये। यह पांच प्रकार का अभ्यास होता है। जो वेदार्थ, यज्ञशास्त्र तथा धर्मशास्त्र की प्रतिलिपि मूल शास्त्र से करके दान करते हैं, वे वैदिक कर्म भोगते हैं। जो इतिहास पुराणादि ग्रन्थ लिख कर ब्राह्मण को देते हैं, उनको दूना फल मिलता है।।७२-७८।।

तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थसाधनम्।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीनाः समाश्रिताः।।७९।।

अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गा उदाहृताः।
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्॥८०॥
भरणं पोष्यवर्गस्य तस्माद्यत्नेन कारयेत्। स जीवति वरश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति॥८१॥
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः।
स्वकीयोदरपूर्णञ्च कुक्कुरस्यापि विद्यते॥८२॥
अर्थेभ्योऽपि विवृद्धेभ्यः सम्भूतेभ्यस्ततस्ततः।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः॥८३॥

दिन के तीसरे भाग में अपने आश्रितों के पोषण का काम करे। माता-पिता-भाई-प्रजा-दीन-आश्रित-अभ्यागत-अतिथि एवं अग्नि, ये पोष्यवर्ग हैं। पोष्यवर्ग का भरण-पोषण ही स्वर्ग की सोपान है। इसलिये यत्नतः इनका भरण-पोषण करे। जो अनेक का भरण-पोषण करते हैं, उनका ही जीवन सार्थक है। जो केवल अपने को ही पालते हैं तथा इसी में सन्तुष्ट हैं, वे जीते-जी मृतक हैं। कुत्ता भी अपना पेट पाल लेता है। अमावस्या तथा पूर्णिमा को जैसे नदियां बढ़ती हैं, तदनुरूप अर्थ बढ़ने पर सभी क्रिया सम्पन्न होती है। जैसे नदियां पर्वत से निकलती हैं, तदनुरूप—॥७९-८३॥

सर्वरत्नाकरा भूमिर्धान्यानि पशवः स्त्रियः।
अर्थस्य कार्य्ययोगत्वादर्थ इत्यभिधीयते॥८४॥
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः। या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि॥८५॥
धनं तु त्रिविधं ज्ञेयं शुक्लं शबलमेव च।
कृष्णञ्च तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पृथक्॥८६॥
क्लमायत्तं प्रीतिदत्तं प्राप्तञ्च सह भार्य्यया।
अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं धनम्॥८७॥
वैशेषिकं धनं दृष्टं ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम्। याजनाध्यापने नित्यं विशुद्धञ्च प्रतिग्रहः॥८८॥

यह धरती सभी रत्नों की खान है। धान्य, पशु, स्त्री ये सभी अर्थ के कार्यकारी हैं। तभी धान्य, पशु आदि को अर्थ कहा गया। ब्राह्मण आपत्तिरहित काल में जो वृत्ति करते हैं, उसमें द्रोह की कोई बात ही नहीं है अथवा जिसमें किंचित् द्रोह हो, वे उसी का आश्रय लेकर जीवन चलायें। धन तीन तरह का कहा गया है। यथा—शुक्ल, धवल, कृष्ण। इन तीनों में हर एक के सात भाग हैं। पिता-पितामह से प्राप्त धन, पारितोषिक तथा धौत्रिक—यह तीनों वर्णों को मिलता है। ब्राह्मण का विशेष धन भी त्रिविध है, याजन, अध्यापन तथा सत् दान लेकर प्राप्त॥८४-८८॥

त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिकं धनम्। शुद्धार्थं लब्धकरजं दण्डाप्तं जयजं तथा॥८९॥
वैशेषिकं धनं दृष्टं वैस्यस्यापि त्रिलक्षणम्।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात्॥९०॥

कुषीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीत स्वयं कृतम्।
आपत्काले स्वयं कुर्वन्नैनसा युज्यते द्विजः॥९१॥
बहवो वर्त्तनोपाया ऋषिभिः परिकीर्त्तिताः। सर्वेषामपि चैवैषां कुसीदमधिकं विदुः॥९२॥
अनावृष्ट्या राजभयान्मूषिकाद्यैरुपद्रवैः।
कृष्यादिके भवेद् बाधा सा कुसीदे न विद्यते॥९३॥

क्षत्रियों का विशेष धन त्रिविध कहा गया है। यथा—कर से मिला, दण्ड देकर मिला तथा विजय से मिला। वैश्य का भी विशेष धन तीन है—कृषि, गोपालन तथा व्यापार से मिला धन। शूद्र का एक ही तरह का विशेष धन है। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की कृपा से जो धन पाते हैं, वही उनका धन है। यदि ब्राह्मण आपत्तिकाल में सूद, कृषि अथवा व्यापार करता है, उसे पाप नहीं लगेगा। मुनियों ने मनुष्य के जीवन निर्वाह के लिये कई उपाय कहे हैं। उनमें सूद लेना उत्तम है। अनावृष्टि, राजभय, मूषिकादि के उपद्रव से कृषिकार्य तक में बाधा हो जाती है, लेकिन ब्याज पर धन देने में कोई उपद्रव नहीं है॥८९-९३॥

देशं गतानां या वृद्धिर्नानापण्योपजीविनाम्।
कुसीदं कुर्वतः सम्यक्संस्थितस्यैव जायते॥९४॥
लब्धलाभः पितृन्देवान्ब्राह्मणांश्चैव पूजयेत्।
ते तृप्तास्तस्य तद्दोषं शमयन्ति न संशयः॥९५॥
कृषीबलोऽन्नपानादियानशय्यासनानि च।
राजभ्यो विंशतिर्दत्त्वा पशुस्वर्णादिकं शतम्॥९६॥

व्यवसाय करने वालों को अनेक देशों में जाकर जीविका कमानी पड़ती है, लेकिन ब्याज-सूद लेने वाला घर में ही रहकर धन कमाता है। ब्राह्मण आदि वर्ण वाले अपनी-अपनी वृत्ति से धनलाभ करके पितर तथा ब्राह्मणों की अर्चना करें। इससे पितर-देवता प्रसन्न होकर उनकी वृत्ति आदि के दोषों का नाश कर देते हैं। वणिक् राजा को आवश्यक धन, वस्त्र, गौ, स्वर्ण, शय्या आदि राजा को इस प्रकार दे, जो अनायास (बिना कष्ट सहे) दे सके। यह स्वेच्छा से दे। राजा को मूललाभ का चतुर्थांश देकर उनकी सहायता करे। कृषक अन्न-पान, यान-शय्या, पशु-स्वर्णादि राजा को दे॥९४-९६॥

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपणिः कृषिः।
वृत्तिर्भैक्ष्यं कुसीदञ्च दश जीवनहेतवः॥९७॥
प्रतिग्रहार्जिता विप्रे क्षत्रिये शस्त्रनिर्जिताः।
वैश्ये न्यायार्जिताः स्वार्थाः शूद्रे शुश्रूषयार्जिताः॥९८॥
नदी बहूदका शाकपर्णानि च समित्कुशाः।
आग्नेयो ब्रह्मघोषश्च विप्राणां धनमुत्तमम्॥९९॥

अयाचित्तोपपन्ने तु नास्ति दोषः प्रतिग्रहे। अमृतं तद्विदुर्देवास्तस्मात्तन्नैव वर्जयेत्॥१००॥
गुरुद्रव्यांश्चोज्जिहीर्षुर्नार्चिष्यन्देवतातिथीन्। सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्यत्तु तृप्येत्स्वयं ततः॥१०१॥

विद्या, शिल्प, वेतन, सेवा, गोरक्षा, वाणिज्य, कृषिकार्य, वृत्ति, भिक्षा तथा ब्याज, ये दस जीवनोपाय हैं। विप्रगण प्रतिग्रह से प्राप्त, क्षत्रिय शस्त्र से जीता तथा वैश्यगण न्यायार्जित धन ग्रहण करें। शूद्र लोग तीनों वर्ण की सेवा से धन कमायें। जल भरी नदी, शाक, पत्र, आमिष, कुशा, अग्नि, ब्रह्मघोष ब्राह्मणों का उत्तम धन है। वे बिना मांगे मिला धन ले सकते हैं। उनको असत् प्रतिग्रह का भी दोष नहीं है। देवगण बिना मांगे मिले धन को अमृत कहते हैं। अतः उसे कभी न त्यागे। गुरु तथा पोष्य परिजनों हेतु पोषणार्थ तथा देवता एवं अतिथि के लिये (उनकी सेवार्थ) प्रयोजनानुरूप प्रतिग्रह ले सकते हैं। लेकिन केवल अपनी तृप्ति तथा भोगार्थ प्रतिग्रह न ले॥९७-१०१॥

साधुतः प्रतिगृह्णीयादथवाऽसाधुतो द्विजः।
गुणवानल्पदोषश्च निर्गुणो हि निमज्जति॥१०२॥
एवं त्वक्षरवृत्तया वा कृत्वा भरणमात्मनः।
कुर्य्याद्विशुद्धिं परतः प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः॥१०३॥
चतुर्थे च तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत्।
तिलपुष्पकुशादीनि स्नानञ्चाकृत्रिमे जले॥१०४॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम्।
मार्जनाचमावगाहाश्चाष्टस्नानं प्रकीर्त्तितम्॥१०५॥
अस्नातस्तु पुमान्नार्हो जपाग्निहवनादिषु।
प्रातःस्नानं तदर्थन्तु नित्यस्नानं प्रकीर्त्तितम्॥१०६॥

ब्राह्मण सज्जनों से दान ले, लेकिन असत् परिग्रह से भी ब्राह्मण को दोष नहीं होगा। गुणी व्यक्ति का अल्प दोष रहने पर वह निमज्जित (व्यर्थ) हो जाता है। इस प्रकार की वृत्ति से ब्राह्मण निर्वाह करे। शुद्धि की इच्छा होने पर प्रायश्चित्त से दोष नष्ट हो जाते हैं। दिन के चौथे भाग में स्नानार्थ मिट्टी लाये। तदनन्तर तिल, पुष्प, कुश द्वारा नदी आदि के अकृत्रिम (प्राकृतिक) जल से नहाये। नित्य-नैमित्तिक, काम्य-क्रियांग, मलापकर्षण-मार्जन-आचमन-अवगाहन—ये आठ स्नान कहे गये हैं। बिना स्नात व्यक्ति जप-पूजा नहीं कर सकता। अतः प्रातः अवश्यमेव नहाये। यही **नित्य स्नान** कहा गया है॥१०२-१०६॥

चाण्डालशवविष्ठाद्यान स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम्।
स्नानार्हस्तु यदा स्नाति स्नानं नैमित्तिकं हि तत्॥१०७॥
पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम्।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत्॥१०८॥
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतातिथीन्।
स्नानं समाचरेद्यत्तु क्रियाङ्गं तच्च कीर्त्तितम्॥१०९॥

मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तत्र नान्यथा। सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च॥११०॥

स्नानमेव क्रिया यस्मात्क्रियास्नानमतःपरम्।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं लभेत्॥१११॥
मार्जनान्मज्जनैर्मन्त्रैः पापमाशु प्रणश्यति।
नित्यं नैमित्तिकञ्चापि क्रियान्नं मलकर्षणम्।
तीर्थाभावे तु कर्त्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः॥११२॥

चाण्डाल, शव, विष्ठा आदि अपवित्र को तथा रजस्वला को छूने पर स्नान करे। यही **नैमित्तिक स्नान** है। दैवज्ञ लोग जिस नक्षत्रयोग में कलाधिक्य के कारण स्नान करने को कहते हैं, वह सब स्नान **काम्य स्नान** है। निष्काम लोग यह काम्य स्नान न करें। जप, होम हेतु अथवा देवता-अतिथि की सेवा हेतु अपने को पवित्र करने वाला जो स्नान है, वही है **क्रियाङ्ग स्नान**। शारीरिक मल हटाने के लिये नदी, तालाब, देवखात, तीर्थादि में जो स्नान होता है, वह है **मलापकर्षक स्नान**। जहां केवल स्नान को ही करना है, वह है **क्रिया स्नान**। केवल जल में डुबकी लगाने का बोध होने से तीर्थ स्नान का फल मिलता है। स्नानकाल में मार्जन स्नान तथा मन्त्रपाठ से तत्क्षण पापनाश होता है। नित्य, नैमित्तिक, क्रियाङ्ग, मलापकर्षक स्नानकाल में ज़ब तीर्थादि न मिले, तब गर्म जल किंवा अन्य जल से स्नान करे॥१०७-११२॥

भूमिष्ठादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणादिकम्।
ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते॥११३॥
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यन्तु सर्वतः।
गाङ्गं पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम्॥११४॥

गयायाञ्च कुरुक्षेत्रे यत्तोयं समुपस्थितम्। तस्मात्तु गाङ्गमपरं जानीयात्तोयमुत्तमम्॥११५॥

भूमिगत जल से निकाला जल पवित्र होता है (कूयें का जल)। लेकिन इस भूमिगत जल से प्रस्रवण का अधिक उत्तम है। उससे अधिक सरोवर जल, उससे अधिक नदी जल, उससे अधिक तीर्थ जल तथा सभी तीर्थ जल से गंगाजल अधिक पावन है। वह मरणपर्यन्त के पापों का नाशक है। गंगा एवं कुरुक्षेत्र का जो जल है, उनमें भी गंगा जल सर्वोत्तम है॥११३-११५॥

पुत्रजन्मनि योगेषु तथा संक्रमणे रवेः। राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं निशि नान्यथा॥११६॥

उषस्युषसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम्॥११७॥
यत्फलं द्वादशाब्दानि प्राजापत्ये कृते भवेत्।
प्रातःस्नायी तदाप्नोति वर्षेण श्रद्धयान्वितः॥११८॥
य इच्छेद्विपुलान्भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान्।
प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं मासौ द्वौ माघफाल्गुनौ।११९॥

पुत्रजन्म, योग, रवि संक्रमण, चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय स्नान प्रशस्त है। इनमें रात में भी नहा सकते हैं। प्रतिदिन उषाकाल, सन्ध्याकाल तथा सूर्योदय के समय स्नान करने वाला प्राजापत्य यज्ञ फल लाभ करता है। उसके महापातकों का नाश होता है। बारह वर्ष तक प्राजापत्य यज्ञ करने का जो फल है, नित्य एक वर्ष सश्रद्ध भाव से प्रातः स्नान करने का वही फल मिलेगा। जो चन्द्र-सूर्यवत् विपुल भोग की कामना करते हैं, वे माघ-फाल्गुन में प्रतिदिन प्रातः नहायें॥११६-११९॥

यस्तु माघं समासाद्य प्रातःस्नायी हविष्यभुक्।
अतिपापं महाघोरं मासादेव व्यपोहति॥१२०॥
मातरं पितरञ्चापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम्। यदुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशं लभेत्तु सः॥१२१॥
तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः।
श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः॥१२२॥
सन्तापः कीर्त्तिरल्पायुर्धनं निधनमेव च।
आरोग्यं सर्वकामाप्तिरभ्यङ्गाद्भास्करादिषु॥१२३॥
उपोषितस्य व्रतिनः कृत्तकेशस्य नापितैः।
तावच्छ्रीस्तिष्ठति प्रीता यावत्तैलं न संस्पृशेत्॥१२४॥

जो माघ में हविष्याशी रहते हुये नित्य प्रातः स्नान करते हैं, वे एक माह में महाघोर शाप का भी नाश कर लेते हैं। माता-पिता-भाई, बन्धु-गुरु के लिये किया गया स्नान करने से उनको १/१२ भाग फल मिलता है। एकादशी के दिन विष्णु को आंवला चढ़ाने से वे प्रसन्न होते हैं। लक्ष्मी चाहने वाला मनुष्य आमला द्वारा प्रातः नहाये। रविवार को आंवला अभ्यंग तथा तैल लगाने से सन्ताप, सोमवार को कीर्त्ति, मंगलवार को आयुनाश, बुधवार को धनलाभ, बृहस्पति को निधन, शुक्र को आरोग्य तथा शनिवार को सभी कामना लाभ होगा। उपवास व्रतोपरान्त, क्षौर कर्मोपरान्त जब तक तैल स्पर्श नहीं होता, तब तक उसके शरीर में लक्ष्मी रहती है। अतः तब तैल व्यवहार न करे॥१२०-१२४॥

एवं स्नात्वा पितॄन्देवान्मनुष्यांस्तर्पयेन्नरः।
नाभिमात्रे जले स्थित्वा चिन्तयेदूर्ध्वमानसः॥१२५॥
आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्यवोऽञ्जलिम्।
त्रींस्त्रीनञ्जलीन्दद्यादाकाशे दक्षिणे तथा॥१२६॥
वसित्वा वसनं शुष्कं स्थलस्थास्तीर्णबर्हिषि।
विधिज्ञास्तर्पणं कुर्य्युर्न पात्रे तु कदाचन॥१२७॥
यदपां क्रूरमांसात्तु यदमेध्यं तु किञ्चन। अशान्तं मलिनं यच्च तत्सर्वमपगच्छतु॥१२८॥
गृहीत्वानेन मन्त्रेण तोयं सव्येन पाणिना।
प्रक्षिपेद्दिशि नैर्ऋत्यां रक्षोऽपहतये तु तत्॥१२९॥

इस प्रकार के स्नान करके देवता-पितृगण तथा मनुष्यों का तर्पण सम्पन्न करना होगा। तब नाभिमात्र जल में खड़े होकर ऊर्ध्व मन से ध्यान करे कि "हे पितरों! आप आकर जलांजलि लीजिये। यह कहकर ऊर्ध्वमुख रहते दक्षिण भाग में तीन-तीन अंजलि जल प्रदान करे। तदनन्तर बाहर आकर सूखा कपड़ा पहने। तब कुशासन पर बैठ कर तर्पण करे। मन्त्र है—"जल में जो क्रूर मांसादि दोष अवस्थित हैं, जो कुछ अपवित्र है और जो कुछ मालिन्य प्रभृति दोष है तथा यदि यह जल किसी कारण से दूषित है, वह सब दूर हो जाये।" यह मन्त्र पढ़ कर दाहिने हाथ से नैर्ऋत् दिशा में तनिक जल छोड़े। इससे राक्षसादि मर जाते हैं॥१२५-१२९॥

निषिद्धभक्षणाद्यत्तु पापाद्यच्च प्रतिग्रहम्।
दुष्कृतं यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मनःकायकर्मभिः॥१३०॥
पुनातु मे तदिन्द्रस्तु वरुणः सबृहस्पतिः। सविता च भगश्चैव मुनयः सनकादयः॥१३१॥
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं जपंस्तृप्यन्निति ब्रुवन्।
क्षिपेदपोऽञ्जलींस्त्रींस्तु कुर्वन्संक्षेपतर्पणम्॥१३२॥
सुराणामर्चनं कुर्य्याद् ब्रह्मादीनाममत्सरी। ब्राह्मवैष्णवरौद्रैश्च सावित्रैर्मैत्रवारुणैः॥१३३॥
तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान्नमस्य च।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेत्तु पृथक्पृथक्॥१३४॥

अब यह मन्त्र पढ़ कर तीन जलांजलि (३ बार मन्त्र पढ़कर तीन जलांजलि। प्रत्येक जलांजलि हेतु एक बार मन्त्र पढ़े) जलार्पण करे। मन्त्र है—"निषिद्ध वस्तुओं के आहार से, असत् दान लेने से, मन-वाणी-कर्म के दोष द्वारा उत्पन्न जो दुष्कृत्य मेरे शरीर में विद्यमान है, उस पाप से मुझे इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, सूर्य, भग, सविता, सनकादि मुनि पवित्र करें। तृण से लेकर ब्रह्मपर्यन्त का जगत् तृप्त हो जाये।" यही संक्षिप्त तर्पण का विधान है। तदनन्तर ब्राह्मणादि भक्ति के साथ ब्रह्मादि देवगण की पूजा करें। ब्राह्मण, वैष्णव, रौद्र, सावित्र, मैत्र तथा वारुण मन्त्रों से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सविता, मित्र तथा वरुण की अर्चना करके इन देवताओं को प्रणाम करे। प्रणाम करते समय प्रत्येक को पृथक्तः पुष्पांजलि देनी चाहिये॥१३०-१३४॥

सर्वदेवमयं विष्णुं भास्करञ्चाथ चार्चयेत्।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा॥१३५॥
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्।
अन्यैश्च तान्त्रिकैर्मन्त्रैः पूजयेच्च जनार्दनम्॥१३६॥

जो मानव सर्वदेवमय विष्णु तथा भास्करार्चन करके पुरुषसूक्त का मन्त्रपाठ करते-करते उन देवताओं को पुष्प एवं जल चढ़ाता है, उसे समस्त जगत् की अर्चना का फल मिलता है। अन्य समस्त तान्त्रिक मन्त्रों द्वारा जनार्दन की आराधना की जा सकती है॥१३५-१३६॥

आदावर्घ्यं प्रदातव्यं ततः पश्चाद्विलेपनम्। ततः पुष्पाञ्जलिं धूपमुपहारफलानि च॥१३७॥

स्नानमन्तर्जले चैव मार्जनाचमनं तथा।
जलाभिमन्त्रणं यच्च तीर्थस्य परिकल्पनम्।
अघमर्षणसूक्तेन त्रिवारं त्वेव नित्यशः॥१३८॥
स्नाने चरितमित्येतत्समुद्दिष्टं महात्मभिः।
ब्रह्मक्षत्रविशाश्चैव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते।
तूष्णीमेव तु शूद्रस्य सनमस्कारकं स्मृतम्॥१३९॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥१४०॥

पहले अर्घ्य प्रदानोपरान्त विलेपन, पुष्पों की अंजलि, धूप-फल प्रभृति उपहार अर्पित करे। अन्तर्जल में स्नान, मार्जन, आचमन, जल का अभिमन्त्रण, तीर्थ का आवाहन, अघमर्षण नित्य दिन में तीन बार करना चाहिये। महात्मा मुनिगण ने इसी भांति स्नानविधि का निरूपण किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मन्त्रों से स्नान करें। शूद्रगण स्नानमन्त्र न पढ़ें। वे केवल प्रणाम करें। यही विधि है। अध्यापन, ब्रह्मयज्ञ है। तर्पण, पितृयज्ञ है। होम, दैवयज्ञ है। भूत बलि, भूतयज्ञ, अतिथि पूजा को मानुषयज्ञ कहा गया है॥१३७-१४०॥

गवां गोष्ठे दशगुणमग्न्यागारे शताधिकम्। सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च।
सहस्रशतकोटीनामनन्तं विष्णुसन्निधौ॥१४१॥
पञ्चमे च तथा भागे संविभागो यथार्थतः।
पितृदेवमनुष्याणां कीटीनाञ्चोपदिश्यते॥१४२॥

घर में रहकर जप करने से उस जप का एक प्रकार का ही फल होता है। उसमें कोई विशेषता नहीं रहती। लेकिन नदी में जप करने से उससे दूना फल होता है। गौशाला में जप करने से दस गुना, अग्निगृह में सौ गुना, सिद्ध क्षेत्र में जप से सहस्र गुना, तीर्थ में जप द्वारा लाख गुना तथा देवमन्दिर में जप का कोटिगुणित फल होगा। विष्णु के निकट जप का अनन्तगुणित फल है। दिन का पांच भाग में विभाग करके पितृगण, देवगण, मनुष्यगण, पक्षियों तथा कीटों को भोजन प्रदान करे॥१४१-१४२॥

ब्राह्मणेभ्यः प्रदायाग्रं यः सुहृद्भिः सहाश्नुते।
स प्रेत्य लभते स्वर्गमन्नदानं समाचरन्॥१४३॥
पूर्वं मधुरमश्नीयाल्लवणान्नौ च मध्यतः।
कटुतिक्तकषायांश्च पश्यश्चैव तथान्ततः॥१४४॥
शाकञ्च रात्रौ भूमिष्ठमत्यन्तञ्च विवर्जयेत्। न चैकरससेवायां प्रसह्येत कदाचन॥१४५॥
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नंक्षत्रियान्नं पयः स्मृतम्।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम्॥१४६॥

अमावासी वसेद्यत्र एकहायनमेव वा। तत्र श्रीश्चैव लक्ष्मीश्च वसते नात्र संशयः॥१४७॥

पहले ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करे। जो सुहृदों के साथ भोजन करते हैं, वे परलोक में स्वर्गलाभ करते हैं। भोजन के पहले मधुर द्रव्य खाये। मध्य में लवणान्न खाये, तब कटु, तिक्त, कषाय खाये। अन्त में जल पीये। रात्रि में भूमितल पर रखा बासी शाक तथा अति शीतल वस्तु खाना निषिद्ध है। ब्राह्मण का अन्न अमृततुल्य है। क्षत्रिय का अन्न दुग्धस्वरूप है। वैश्य का अन्न अन्न ही है। शूद्रों का अन्न रुधिर के समान है। जो व्यक्ति एक वर्ष तक अमावस्या के दिन कोई आहार नहीं करता, उसके यहां श्री एवं लक्ष्मी अचल हो जाती है॥१४३-१४७॥

उदरे गार्हपत्याग्निः पृष्ठदेशे तु दक्षिणः।
आस्ये आहवनीयोऽग्निः सत्ये सर्वञ्च मूर्द्धनि॥१४८॥
यः पञ्चाग्नी निमान्वेद आहिताग्निः स उच्यते।
शरीरमापः सोमञ्च विविधञ्चान्नमुच्यते॥१४९॥
प्राणो ह्यग्निस्तथादित्यस्त्रिभोक्ता एक एव तु।
अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च॥१५०॥
भवत्येतत्परिणतौ समाप्तव्याहतं सुखम्।
हस्तेन परिमार्ज्याथ कुर्य्यात्ताम्बूलभक्षणम्॥१५१॥
श्रवणञ्चेतिहासस्य तत्कुर्य्यात्सुसमाहितः। इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमके नयेत्॥१५२॥

उदर में गार्हपत्य अग्नि, पृष्ठ में दक्षिणाग्नि, मुख में आहवनीयाग्नि, मस्तक पर सत्याग्नि, शिखा पर सर्वाग्नि है। जो इस प्रकार से पंचाग्नि को जानते हैं, वे ही अहिताग्नि पुरुष हैं। शरीर, जल तथा सोम ये त्रिविध अन्न हैं। प्राण-अग्नि, आदित्य—ये उक्त तीनों अन्न के भोक्ता हैं। भूमि-जल-अग्नि-वायु ये चारों अन्न ही हैं। अन्न भोजन करने के बाद पचने से अत्यन्त सुख मिलता है। भोजनान्त में (जल लेकर) हाथ से मुखमार्जन करके ताम्बूल खाये। दिन के छठें तथा सातवें भाग में समाहित होकर इतिहास-पुराणादि श्रवण करके समय व्यतीत करे॥१४८-१५२॥

ततःसन्ध्यामुपासीत स्नात्वा वै पश्चिमां नरः। एतद्वा दिवसे प्रोक्तमनुष्ठानं मया द्विज॥१५३॥
आचारं यः पठेद्विद्वान्शृणुयात्स दिवं व्रजेत्। आचारादिधर्मकर्त्ता केशवो हि स्मृतो द्विज॥१५४॥

॥इति गारुडे महापुराणे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०५॥

दिन के आठवें भाग में स्नान करे तथा सन्ध्या-उपासना सम्पन्न करे। हे द्विज! मैंने दिन का अनुष्ठान इस तरह से कह दिया। जो व्यक्ति यह आचार पढ़ता अथवा सुनता है, वह स्वर्ग जाता है। हरि ही आचारादि धर्म के कर्त्ता हैं। हे द्विज! केशव का स्मरण करना चाहिये॥१५३-१५४॥

॥दो सौ पांचवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
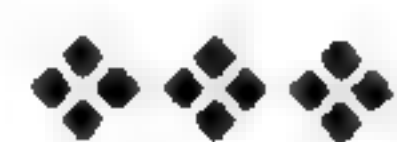
षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्नानविधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

अथ स्नानविधिं वक्ष्ये स्नानमूला क्रिया यतः।
मृद्गोमयतिलान्दर्भान्पुष्पाणि सुरभीणि च॥१॥
आहरेत् स्नानकाले च स्नानार्थी प्रयतः शुचिः।
गन्धोदकान्तं विविक्ते स्थापयेत्तान्यथ क्षितौ॥२॥
त्रिधा कृत्वा मृदन्तान्तु गोमयञ्च विचक्षणः।
अद्भिर्मृद्भिश्च चरणौ प्रक्षाल्याथ करौ तथा॥३॥
उपवीती बद्धशिखः सम्यगाचम्य वाग्यतः। उरुं राजेत्यृचा तोयमुपस्थाय प्रदक्षिणम्।
आवर्त्तयेत्तदुदकं ये ते शतमिति त्यृचा॥४॥

ओं उरुं राजा वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्थानमन्नेत प्रपराट् प्रतिधाता च वक्तारस्ता हृदयाविपश्चित्। नमोऽग्न्यरुणायाभिष्ठतोवरुणस्य पाशः वरुणाय नमः॥५॥

ओं ये ते शतं वरुणाय सहस्त्रं यज्ञीयाः पाशा वितता महान्तस्तेभिर्नोवद्यसवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। सुमित्रियान इत्यपोऽञ्जलिमाकृत्योत्तरेण तोयं पश्चाद्विराज्य चैव विनिक्षिपेत्। ओं सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः। पादौ जङ्घे कटिश्चैव पूर्वमृद्भिस्त्रिभिस्त्रिभिः॥६॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य नमस्कृत्य जलं ततः।
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांशुले॥७॥
महाव्याहृतिभिः पश्चादाचामेत्प्रयतोऽपि सन्। मार्जयेद्वै मृदाङ्गानि इदं विष्णुरितित्यृचा।
भास्कराभिमुखो मज्जेदापो अस्मानितित्यृचा॥८॥
ओं आपो अस्मान्मातरः शुद्धयन्तु घृतेन नो घृतपः पुनन्तु।
विश्वं हि विप्रं प्रवहन्ति देवी रुदिताभ्यः शुचित्रा पूतत्रामि॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अब मैं स्नानविधि कहता हूं। समस्त क्रिया स्नान पर आधारित है। स्नान करने वाला मनुष्य मिट्टी, गोबर, तिल, कुश, सुरभित पुष्प स्नान करके संयत मन तथा पवित्रता के साथ लाये। किसी गन्ध जल से धुली जगह पर इन चीजों को रखे। तब वह बुद्धिमान आदमी लाई गई मिट्टी तथा गोबर को तीन भाग में बांटे। मिट्टी तथा जल से पैरों तथा हाथों को धोये। इसके बाद बायें कन्धे पर जनेऊ रख कर शिखा बांधे और आचार पूर्वक वाक्य संयम के साथ "ऊरुं राज्य" इत्यादि मन्त्र से दाहिनी ओर जल रखे।

यह मन्त्र मूल में श्लोक ५ में लिखा है। तदनन्तर "ॐ ये ते शतं" से लगाकर "वयं द्विष्म:" पर्यन्त पढ़कर (जो मूल में लिखा है) उस जल को आवर्त्तित करे। इसके पश्चात् "उरुं राजा" इत्यादि पूर्व उल्लिखित मन्त्र को पढ़ कर वरुण को प्रणाम करे। इसके पश्चात् स्नानार्थी पुनः "ॐ ये ते शतं" से लगाकर "वयं द्विष्म" मन्त्र को पढ़ते हुये दोनों पैर, जंघा तथा कटि में तीन-तीन बार मिट्टी लगाये। तब हाथों को धोकर आचमन करके जल को प्रणाम करे।

तत्पश्चात् "इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" इत्यादि मन्त्र को पढ़े तथा संयत मन से "ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा" इत्यादि महाव्याहृति मन्त्र से आवाहन करके "इदं विष्णु विचक्रमे" इत्यादि मन्त्र से मृत्तिका द्वारा अंग शुद्ध करें। इसके बाद सूर्य की ओर मुख करके "आपो अस्मान्" से लेकर "शुचित्रा पूतत्रामि" तक ऋचा पाठ करते हुये जल में डुबकी लगाये। (यह ऋचा मूल के श्लोक ९ में अंकित है)॥१-९॥

ततोऽवघृष्य पात्राणि निमज्ज्योन्मज्ज्य वै शनैः।
गोमयेन विलिप्याथ मानस्तोक इतित्यृचा॥१०॥
ओं मानस्तोके तनये मान आयुषिमानो गोषुमानो अश्वेषुरीरिषः।
मानोवीरान्मानो रुद्रभामिनोऽवधीर्हविष्मन्तः सदसि त्वाहवामहे॥११॥
ततोऽभिषिञ्चेन्मन्त्रैस्तु वारुणैस्तु यथाक्रमम्।
इमम्मे वरुणे द्वाभ्यां त्वन्नः सत्वन्न इत्यपि॥१२॥
आपो त्वन्तुमसीति च मुञ्चत्ववभृतेति च। ओं इमम्मे वरुणस्त्र्यधीहरसत्यामृतयः॥१३॥

ओं तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेनमानो वरुणो हवोऽध्युरुषं समान आयुः प्रमोषीः। ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेलो अवयासि सीष्ठा यजिष्ठो वह्नितमः। शोशुचानो विश्वाद्वेषांषि प्रमुमुग्धः सत्स्वाहा। ओं सत्वन्नो अग्नेवमो भवती नेदिष्ठो अस्या उषसोव्युष्टौ। अवयक्ष्माणो वरुणं वराणो व्रीहिमूलीकं सुहवोन एधि। ओं आपो नौषधि हिंसार्द्धम्नो राजंस्ततो वरुणो नोमुञ्चा यदाहरस्या इति। ओं वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। ओं उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं वेमध्यमं श्रथाय अथावयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम। मुञ्चन्तु मामप्यथारुणस्य त्वम्। अहो यमस्य पत्नीसानः सर्वस्मादेव किल्बिषात्। अवभृथनिचं पुनर्विचेरुसि नित्यं प्रन्नः। अवदेवैर्देवकृता मनोयासि समवमत्यै कृतं पुष्पाच्छा देवधीमल्पाही॥१४॥

अभिषिच्य तथात्मानं निमज्ज्याचम्य वै पुनः।
दर्भेण पाययेन्मन्त्रैरलिङ्गैः पारणैरिमैः॥१५॥
आपोहिष्ठेति तिसृभिरिदमापो हविष्मतीः। देवाराप इति द्वाभ्यामापो देवा इतित्यृचाः॥१६॥
द्रुपदादिव इति च शन्नो देवीरपां रसः। आपो देवीः पावमान्यः पुनन्त्वाद्या त्यृचो नव॥१७॥

चित्पतिर्मेति च शनैः प्लाव्यात्मानं समाहितः।
हिरण्यवर्णा इति च पावमान्यस्तथा पराः॥१८॥
तरत्सामा शुद्धवत्यः पवित्राणि च शक्तितः।
वारुण्या बहवः पुण्याः शक्तितः संप्रयोजयेत्॥१९॥

इसके अनन्तर इस मन्त्र से गोमय से अंगों पर लेप करते हुये "ॐ मानस्ताके" से लगाकर "त्वाद् वामहे" पर्यन्त का (मूल के श्लोक १० का) पाठ करता रहे। इसके बाद वारुण मन्त्र "इमम्मे वरुणे" से लेकर "पुष्पाच्छा देवधीमल्पाही" तक पढ़ कर स्नान करे। तब पुनः आचमन करके कुश लेकर "आपोहिष्ठा" इत्यादि तीन मन्त्र से तथा "इदमापो हविष्मती" इत्यादि मन्त्रद्वय से, "आपो देवा" इत्यादि से, "द्रुपदादिव" इत्यादि से, "शन्नो देवि" इत्यादि से, इन ९ ऋचाओं से जल छिड़के तब "हिरण्यवर्णा" इत्यादि श्री सूक्त से, पावमानी से, शुद्धवती सूक्त से और अन्य वारुण मन्त्र से जल छिड़के॥१०-१९॥

ओंकारेण व्याहृतिभिर्गायत्र्या च समन्वितः।
आदावन्ते च कुर्वीत अभिषेकं यथाश्रमम्॥२०॥
जलमध्यस्थितस्येव मार्ज्जनन्तु विधीयते।
अन्तर्जले जपेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा अघमर्षणम्॥२१॥
द्रुपदाद्यात्रिरावर्त्तेदयं गौरिति च त्यृचम्।
अन्यांश्चैव तु मन्त्रान्वा स्मृतिदृष्टान्समाहितः॥२२॥
सव्याहृतिं सप्रणवां . गायत्रीं वा जपेद् बुधः।
आवर्त्तयेद्वा प्रणवं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम्॥२३॥

इस मन्त्र स्नान के प्रारम्भ तथा अन्त में ॐकार तथा भूः, भुवः, स्वः इन तीनों महाव्याहृति समन्वित गायत्री को पढ़ते हुये पूर्ववत् कुश से जल छिड़के। जल में रहकर ही मार्जन विधि के अन्तर्गत् होता है। जल में ही रहकर तीन बार अघमर्षण करना उचित एवं नियमानुकूल है। तदनन्तर "द्रुपदादिव" इत्यादि मन्त्र का तीन बार पाठ करे तथा "अयं गौः" इत्यादि मन्त्र पाठ करे। तदनन्तर समाहित चित्त से स्मृति में कही अन्य ऋचाओं का पाठ करने के उपरान्त महाव्याहति तथा प्रणवयुक्त गायत्री जपे। प्रणव की आवृत्ति करते हुये अव्यय विष्णु का भी सदा स्मरण करे॥२०-२३॥

विष्णोरायतनं चापः स एवाप्पतिरुच्यते।
तस्यैवं तमवस्त्वेतस्तस्मात्तं ह्यप्च संस्मरेत्॥२४॥
तद्विष्णोरितिमन्त्रेण निमज्ज्याप्सु पुनः पुनः।
गायत्री वैष्णावी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै॥२५॥
ओं इदमाप प्रवहता स्वं मलं क्षारलोहितम्।
यथा त्वहोत्रामृतं यच्च शोफे अभीषणम्॥२६॥

आपोमातस्मादेनसः पावमानश्च मुञ्चतु हविष्मती विना आपोहविष्मान्आविरासति। हविष्मान्देव असुरो हविष्मान् अस्तु सूर्य्यः। देवीरापो अपा पत्न्या यश्च ऊर्मिर्हविष्यः इन्द्रियवान्मादित्यन्तनः तं देवेभ्यो देवता दाभुशुक्रलेभ्यः तेषां भागकर्षिवसिसमुद्रस्य दक्षिण्याग्रयासिमेनापोग्रभिरशमतमोधीः। आपो देवी मधुमतीर गृह्णन्तु ह्यन्नती राजस्वतिलाः। याभिर्मित्रावरुणस्य सिञ्चयाभिरिन्द्रमनयत्यन्नवातीवद्रुपदां शन्नो देवी अपामसृग्द्वयसंसूर्य्ये सन्तं समाहितम् अपां रसस्य यो रस्य यो गृह्णास्युत्तमम्। आपो देवीरूप सूर्य्य मधुमती वयस्याय प्रजाभ्यः तासामास्थानात्वर्जिहतामोषधयः सपिप्पलाः। पुनन्तु मा पितरः सौम्यासः पुनन्त्वनापि पिता सहसा पवित्रेण गतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण गतायुषा विश्वमायुर्वा वैष्णवैः। अग्नआयुषि परमात्माश्चरौर्जमिषञ्च त्वचे वावस्वत्वच्छूनाम्। पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मां मासा धियः पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि माम्। पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देवदी अग्ने कृत्वा क्रतुधन्वः। यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ब्रह्मा तेन पुनातु मा। पवमानः सोद्य नः पवित्रेण विचाषणीय पोता मा पुनातु मा। उभाभ्यां देवसवितः पवित्रेण च मां खनीविश्वतः। वैश्वदेवी पूनता देव्या गृभ्नास्यामिसावक्ष्यस्तान्नोवीत पूज्याः। तमयादन्तस्वधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम्। चित्पत्तिर्मा पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्र पूतस्य यत्कामः। पणित्छकेयं देवो वाक्पतिर्मा सविता त्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते फवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः। पुनस्तच्छकेयं द्यपतिं अयं गौः पृश्निवक्रमीसदशशतं मातरं पुनः पितरञ्च प्रयस्मः। देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्र पूतस्य यत्कामः पुनात्वच्छकेयं। ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥२७॥

जल ही विष्णु का गृह है, निवास है। जलाधिपति विष्णु ही हैं। जल साक्षात् विष्णु रूप है। इसीलिये जलरूप विष्णु का स्मरण किया जाता है। "तद्विष्णोः परमं पदम्" इत्यादि मन्त्रों से बारम्बार स्नान करे। "इदमापः प्रवहत" इत्यादि मन्त्र से मलक्षालन करे। तब "ॐ तद्विष्णोः परमं पदं" आदि मन्त्र का पाठ करे। "इदमापः प्रवहतः" से लेकर "पवित्र पूतस्य यत्कामः पुनात्वच्छकेयं" तक पढ़ कर मलक्षालन होगा। (यह सब २६वें श्लोक से "पुनात्वच्छकेयं" तक मन्त्र है। इसका अनुवाद संभव नहीं है)।

तदनन्तर "ॐ तद्विष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्" मन्त्र पाठ करे॥२४-२७॥

स्नात्वैवं वाससी धौते अच्छिन्ने परिधाय च।
प्रक्षाल्य च मृदाद्भिश्च हस्तौ प्रक्षाल्य वै तदा॥२८॥

आचान्ते पुनराचामेन्मन्त्रेण स्नानभोजने। द्रुपदञ्च त्रिरावर्त्त्य तथा चैवाघमर्षणम्॥२९॥
आचम्याप्लाव्य चात्मानं त्रिराचस्य शनैरसून्।
ततोऽपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्नि पुष्पान्विताञ्जलिः॥३०॥
प्रक्षिप्योदकमुद्धूय उदुत्यं चित्रमित्यपि। तच्चक्षुर्देव इति च हंसः शुचि सदित्यपि॥३१॥
एताञ्जयेदूर्ध्वबाहुः सूर्य्यमीक्ष्य समाहितः।
गायत्रीञ्च तथा शक्त्या उपस्थाय दिवाकरम्॥३२॥

यहां जो पहले कहा गया है, तदनुरूप स्नान क्रिया सम्पन्न करके धुले बिना सिले दो वस्त्र पहन कर मिट्टी तथा जल से हाथ-पैर धोये। स्नान तथा भोजन के समय एक बार आचमन करके पुनः मन्त्राचमन करे। तब तीन बार ''द्रुपदादिव'' आदि मन्त्र पाठ करके अघमर्षण करे। पुनः आचमन करके शरीर को जलाप्लुत करे। इस प्रकार तीन बार आचमन करना चाहिये। तदनन्तर घृत की पुष्पांजलि लेकर अंजलि को ऊपर करके सूर्य का उपस्थान करे। ऊर्ध्व बाहु स्थिति में सूर्यदर्शन करके ''उदुत्यं'' इत्यादि पाठ करते हुये, ''चित्रं देवानामित्यादि'' 'तत्चक्षुर्देव'' इत्यादि एवं ''हंसः'' इत्यादि मन्त्रपाठ करे। इस प्रकार से सूर्योपस्थान करके गायत्री जप करे॥२८-३२॥

विभ्राडित्यनुवाकेन सूक्तेन पुरुषस्य च। शिवसङ्कल्पेन तथा मण्डलब्राह्मणेन च॥३३॥
दिवा कियत्तथा चान्यैः सौरैर्मन्त्रैश्च शक्तितः।
जपयज्ञस्तु कर्त्तव्यः सर्वदेवप्रणीतकैः॥३४॥
अध्यात्मविद्या विधिवज्जपेद्वा जपसिद्धये।
सव्यं कृत्वा त्रिराचम्य श्रियं मेधां धृतिं क्षितिम्॥३५॥
वाचं वागीश्वरं पुष्टिं तुष्टिञ्च परितर्पयेत्। उमामरुन्धतीञ्चैव शचीं मातरमेव च॥३६॥
जयाञ्च विजयाञ्चैव सावित्रीं शान्तिमेव च।
स्वाहां स्वधां धृतिञ्चैव तथैवादितिमुत्तमाम्॥३७॥
ऋषिपत्नीश्च कन्याश्च तर्पयेत्काम्यदेवताः। सर्वमङ्गलकामस्तु तर्पयेत्सर्वमङ्गलाम्॥३८॥
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं जगत्तृप्यत्विदं ब्रुवन्।
क्षिपेदपोऽञ्जलींस्त्रींश्च कुर्वन्काङ्क्षेत तर्पणम्॥३९॥

॥इति गारुडे महापुराणे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०६॥

तदनन्तर 'विभ्रादित्य' अनुवाक्, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्प मन्त्र, मण्डल ब्राह्मणादि सभी देवों को प्रसन्न करने वाले अन्य सौरमन्त्रों का पाठ करके यथाशक्ति जपरूपी यज्ञ करे। तदनन्तर सिद्धि की कामना से सविधि अध्यात्मविद्या जप, तीन आचमन करके श्री, मेधा, धृति, क्षिति, वाक्, वागीश्वर, पुष्टि, तुष्टि, उमा, अरुन्धती, शची, मातृगण, जया, विजया, सावित्री, शान्ति, स्वाहा, स्वधा, धृति, अदिति,

ऋषिपत्नी, ऋषिकन्या तथा अन्य काम्य देवता का तर्पण करे। इसके अनन्तर एकाग्रतापूर्वक सर्वमंगल की कामना करते-करते देवता, चौदह यम, आठ वसु तथा सर्व मंगला का तर्पण करे। तदनन्तर "तृण से लेकर ब्रह्म पर्यन्त जगत् तृप्त हो जाये" इस मन्त्र से तीन अंजलि जल छिड़के तथा वांछित तर्पण क्रिया सम्पन्न करे॥३३-३९॥

॥दो सौ छठवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

तर्पण विधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

तर्पणं सम्प्रवक्ष्यामि देवादिपितृतुष्टिदम्।

ओं मोदास्तृप्यन्तां ओं प्रमोदास्तृप्यन्तां ओं सुमुखास्तृप्यन्तां ओं दुर्मुखास्तृप्यन्तां ओं विघ्नास्तृप्यन्तां ओं विघ्नकर्त्तास्तृप्यन्तां ओं छन्दांसि तृप्यन्तां ओं वेदास्तृप्यन्तां ओं ओषधयस्तृप्यन्तां ओं सनातनस्तृप्यन्तां ओं इतराचार्य्यास्तृप्यन्तां ओं संवत्सर-स्यावयवास्तृप्यन्तां ओं देवास्तृप्यन्तां ओं अप्सरसस्तृप्यन्तां ओं देवान्धकास्तृप्यन्तां ओं सागरास्तृप्यन्तां ओं नागास्तृप्यन्तां ओं पर्वतास्तृप्यन्तां ओं सरिन्मनुष्या यक्षास्तृप्यन्तां ओं रक्षांसि तृप्यन्तां ओं पिशाचास्तृप्यन्तां ओं सुपर्णास्तृप्यन्तां ओं भूतानि स्तृप्यन्तां ओं भूतग्रामाश्चतुर्विधास्तृप्यन्तां ओं दक्षस्तृप्यन्तां ओं प्रचेतास्तृप्यन्तां ओं मरीचिस्तृप्यतां ओं अत्रिस्तृप्यन्तां ओं अङ्गिरास्तृप्यतां ओं पुलस्त्यस्तृप्यतां ओं पुलहस्तृप्यतां ओं क्रतुस्तृप्यतां ओं नारदस्तृप्यतां ओं भृगुस्तृप्यतां ओं विश्वामित्रस्तृप्यतां ओं कश्यपस्तृप्यतां ओं जमदग्निस्तृप्यतां ओं वसिष्ठस्तृप्यतां ओं स्वायम्भुवस्तृप्यतां ओं स्वारोचिषस्तृप्यतां ओं तामसस्तृप्यतां ओं रैवतस्तृप्यतां ओं चक्षुस्तृप्यतां ओं महातेजास्तृप्यतां ओं वैवस्वतस्तृप्यतां ओं ध्रुवस्तृप्यतां ओं धवस्तृप्यतां ओं अनिलस्तृप्यतां ओं प्रभाषस्तृप्यताम्॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों तथा पितरों को सन्तुष्ट करने वाला तर्पण कहता हूं। "ॐ मोदास्तृप्यन्ता" से लेकर "ॐ अनिलस्तृप्यतां, ॐ प्रभाष स्तृप्यताम् इत्यादि प्रकार से मूलोक्त विधान से सब को एक-एक अंजलि जल प्रदान करे। इस प्रकार मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, विघ्न, विघ्नकर्त्ता, छन्द, वेद, औषधि, सनातन, अन्य आचार्य, संवत्सर तथा उसके अवयव, देवता, अप्सरा, देवान्धक, सागर, नाग, पर्वत, सरित, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सुपर्ण, भूतगण, चतुर्विध भूतग्राम, दक्ष, प्रचेता, मरीचि,

अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, नारद, वसिष्ठ, स्वायम्भुव, स्वारोचिष, तामस, रैवत, चक्षु, महातेजा, वैवस्वत, ध्रुव, धव, अनिल तथा प्रभास का तर्पण मूल में कहे प्रकार से करे॥१॥

नीवीतिः ओं सनकस्तृप्यतां ओं सनन्दनस्तृप्यतां ओं सनातनस्तृप्यतां ओं कपिलस्तृप्यतां ओं आसुरिस्तृप्यतां ओं वोढुस्तृप्यतां ओं मनुष्याणां कव्यवाडस्तृप्यता ओं सोमस्तृप्यतां ओं यमस्तृप्यतां ओं अर्य्यमास्तृप्यताम्॥२॥

अब यज्ञोपवीत को माला की तरह करके "ॐ सनक स्तृप्यतां से लेकर के "अर्य्यमास्तृप्यताम्" मन्त्रों द्वारा क्रमशः सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरी, वोढु, मनुष्यों का कव्य ले जाने वाले कव्यवाड्, सोम, यम तथा अर्यमा का तर्पण करे (मन्त्र मूल के श्लोक २ के अनुसार तर्पण करे)॥२॥

प्राचीनावीती ओं अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्तां ओं सोमस्याः पितरस्तृप्यन्तां ओं बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्तां। यमाय नमः धर्मराजाय नमः मृत्यवे नमः अन्तकाय नमः वैवस्वताय नमः कालाय नमः सर्वभूतक्षयाय नमः ओदुम्बराय नमः दध्नाय नमः नीलाय नमः परमेष्ठिने नमः वृकोदराय नमः चित्राय नमः चित्रगुप्ताय नमः॥३॥

अब दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत करके "ॐ अग्निष्वात्ता" से लेकर "बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्तां" पर्यन्त से क्रमशः अग्निष्वात्ता, सोमपा, बर्हिषद् पितरों का तर्पण करके "ॐ यमाय नमः" से लेकर "चित्रगुप्ताय नमः" तक से क्रमशः यम, धर्मराज, मृत्यु अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, ओदुम्वर, दध्न, नील, परमेष्ठि, वृकोदर, चित्र, चित्रगुप्त का तर्पण करे॥३॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं जगत्तृप्यतु पितृभ्यः स्वधा नमः। पितामहेभ्यः स्वधा नमः। आयान्तु नः पितरः सोम्यासा अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैरस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान्॥४॥

तब "ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्तं" से लेकर "अवन्त्वस्मान्" (मूलोक्त श्लोक ४) एक-एक अंजलि जल प्रदान करे अर्थात् ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जगत् को, पितृ, पितामह, सोमपा, अग्निष्वात्ता इत्यादि को जल प्रदान करे॥४॥

ओं ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्पितृभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधा नमः मातामहेभ्यः स्वधा नमः प्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। पितामहस्य अक्षयाः पितरो अमीमदन्तः पितरो अमी तृप्यन्तः पितरः स्वधध्वं पिबेह पितरोऽपि वानत्रयांश्च विश्रयांश्च भवनपवित्रत्वा रथपति ते जातवेदाः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व॥५॥

ओं मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीर्मधुनक्तमुतोपसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमान् अस्तु सूर्य्यो माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥६॥

प्रपितामहस्याञ्जलिदानम्। नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे। नमो वः पितरो गृहान्नः पितरो दत्तः। नमो वः पितरो दध्मे तद्वः पितरो वासः। मातामहानां त्रिरञ्जलिः। ततो मात्रादीनाम्॥७॥

अब "ॐ ऊर्ज वहन्तीरमृतं" से लेकर "वृद्ध प्रमातामहेभ्य नमः" पर्यन्त मन्त्र से सबका तर्पण करे। "ॐ पितृभ्यः स्वधा नमः" इत्यादि से जलांजलि देकर पितृतर्पण "ॐ अक्षयः पितरो" इत्यादि एवं "मधुवाता ऋतायते" आदि पढ़ कर पितामह का तर्पण करे। "नमो वः पितरो रसाय" इत्यादि से प्रपितामह को जलांजलि दे। मातामहादि का भी तर्पण करे। माता-पितामही प्रभृति का भी तर्पण करे॥५-७॥

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते तृप्यन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥८॥

॥इति गारुडे महापुराणे सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०७॥

तदनन्तर वस्त्र निचोड़ कर श्लोक आठ पढ़ते हुये अपने कुलोत्पन्न अपुत्र मृतकों का तर्पण करे॥८॥

(यह कर्मकाण्ड है। पुरोहित ब्राह्मण से समझ कर कराये)।

॥दो सौ सातवां अध्याय समाप्त॥

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

वैश्वदेव प्रक्रिया वर्णन

ब्रह्मोवाच

वैश्वदेवं प्रवक्ष्यामि होमलक्षणमुत्तमम्। प्रज्वाल्य चाग्निं पर्य्युक्ष्य क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाह। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन। ओं पावक वैश्वानर इदमासनं अवमीगर्भसंस्कृतः। ओजोरूप महाब्रह्मन्न मुहूर्त्तास्त्रिषु वैश्वानरं प्रतिबोधयामि। ओं वैश्वानरे न उभयं आप्रयातु परावतः अग्निर्न स्वद्युतीरूपपृष्ठो दिवि पृष्ठोऽश्चि पृथिव्यां पृष्ठा विवेवा ओषधी चाविवेश वैश्वानरः सहसा पृष्ठोऽग्निः नमो दिव्य स षष्ठां नक्तम्॥१॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ओं सोमाय स्वाहा ओं बृहस्पतये स्वाहा। ओं अग्निसोमाभ्यां स्वाहा। ओं इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ओं इन्द्राय स्वाहा। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा। ओं अद्भ्यः। ओं ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा। ओं ग्रहाय स्वाहा। ओं देवदेवताभ्यः स्वाहा। ओं इन्द्राय स्वाहा। ओं इन्द्रपुरुषेभ्यः स्वाहा। ओं यमाय स्वाहा। ओं यमपुरुषाय स्वाहा। ओं सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्यः स्वाहा। ओं वसुधापितृभ्यः स्वाहा। ओं ये भूताः प्रचरन्ति दीना च निमिहन्तो भुवनस्य मध्ये तेभ्यो बलिपुष्टिकामो ददामि। मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददातु। ओं आचाण्डालपतिर्ददातु आचाण्डालपतितवायसेभ्यः॥२॥

॥इति गारुडे महापुराणे अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०८॥

ब्रह्मा ने कहा—अब वैश्वदेव विधान कहता हूं। सबसे पहले अग्नि प्रक्षालन, अग्नि पर्युक्षण करे। तदनन्तर मूलोक्त श्लोकों को पढ़ते हुये अग्नि का कुछ अंश त्यागे। तदनन्तर मूलोक्त मन्त्रों से एक-एक आहुति देकर यह कहे— "ॐ ये भूता: प्रचरन्तिदीनां च निमिहन्तो भुवनस्य तेभ्यो बलिपुष्टिकामो ददामि। मयि पुष्टिपतिर्ददातु। ओं आचाण्डालपतिर्ददातु आचाण्डालपतिवायसेभ्य नमः।"

इस प्रकार समस्त प्राणीगण को दीनरूप से विचरते भूतगण को बलि प्रदान करे। उनकी पुष्टि से होमकर्त्ता की पुष्टि होगी। अन्त में चाण्डालपति कौओं को नमस्कार पूर्वक बलि प्रदान करे॥१-२॥

॥दो सौ आठवां अध्याय समाप्त॥

नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सन्ध्या विधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

अथ सन्ध्याविधिं वक्ष्ये द्विजातीनां समासतः।
पवित्रतः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥१॥

ओं गायत्रीच्छन्दो विश्वामित्रऋषिस्त्रिपात्समुद्राः कुक्षिश्चन्द्रादित्यौ लोचनौ। अग्निमुखं विष्णुहृदयं ब्रह्मरुद्रशिरो रुद्रशिखा उपनयने विनियोगः। ओं भूः पादे भुवः

जानुनि स्वः हृदये महः शिरसि जनः शिखायां तपः कण्ठे सत्यं ललाटे। ओं हृदयाय नमः। ओं भूः शिरसे स्वाहा। ओं भुवः शिखायै वौषट् स्वः कवचाय हुं ओं भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्॥२॥

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यं ततस्त्रिपदा। आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों ओं सूर्य्यश्चेत्यादि। आपः पुनन्त्वित्यादि। अग्निश्चेत्यादि। ओं आयातु वरदे देवि पूर्वाह्णे श्वेतरूपिणी। माहेश्वरी च गायत्री शुक्लवस्त्रादिमण्डिता॥३॥

वृषस्कन्धसमारूढा त्रिशूलवरधारिणी॥४॥

आयातु वरदा देवी मध्याह्ने कृष्णरूपिणी। अतसी कुसुमप्रख्या वैष्णवी गरुडासना। पीतवस्त्रा शङ्खचक्रगदापद्मसमन्विता॥५॥

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा रविमण्डलसंस्थिता। श्वेतपद्मसमासीना श्वेतपुष्पोपशोभिता। आयातु वरदा देवी अपराह्ने सरस्वती॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—मैं अब द्विजों की सन्ध्या विधि कहता हूं। अपवित्र अथवा पवित्र अवस्थापन्न ही क्यों न हो, पुण्डरीकाक्ष का एक बार भी स्मरण करने से बाह्य तथा अन्तर की शुद्धि हो जाती है। गायत्री छन्द: के विश्वामित्र ऋषि आदि का स्मरण करके पैर में ॐ भू:, जानु में ॐ भुव:, हृदय में ॐ स्व:, शिर में ॐ मह:, शिखा में ॐ जन:, कण्ठ में ॐ तप:, ललाट में ॐ सत्यं, ॐ हृदयाय नम:, ॐ भू: शिरसे स्वाहा, ॐ भुव: शिखायै वषट्, ॐ स्व: कवचाय हुं, ॐ भूर्भुव: स्व: अस्त्राय फट्।

ॐ भू:, ॐ भुव:, ॐ स्व:, ॐ मह:, ॐ जन:, ॐ तप:, ॐ सत्यं, यह त्रिपदा है। "ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो न: प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुव: स्वरोम्" इन मन्त्रों से प्राणायाम करके प्रात: काल "ॐ सूर्यश्च" इत्यादि से, मध्याह्न में "ॐ आप: पुनश्च" इत्यादि से तथा सायाह्न में "अग्निश्च मां मन्युश्च" इत्यादि से आचमन करे। तत्पश्चात् "ॐ आयातु वरदे" इत्यादि मूलोक्त श्लोक ४ से प्रात: गायत्री की, मध्याह्न में वैष्णवी की तथा सायंकाल में मूलोक्त मन्त्र से सरस्वती का ध्यान करना चाहिये। (ध्यान मन्त्र मूल में अंकित है)।

प्रात:काल पूर्वाह्न में देवी श्वेतरूपा गायत्रीमाहेश्वरी श्वेत वस्त्रधारिणी हैं। वे वृषस्कन्ध पर आसीन, उत्तम त्रिशूल धारण करने वाली हैं।

मध्याह्न में देवी कृष्णरूपा हैं। वे अतसीपुष्प के समान वैष्णवी हैं, जो गरुड़ पर बैठी हैं। वे पीले वस्त्र पहनने वाली शंख, चक्र, गदा, पद्म समन्विता हैं।

रविमण्डलस्था सरस्वती देवी श्वेतपद्म पर बैठी हैं। वे श्वेत पुष्पों से शोभिता हैं। इनका अपराह्न में ध्यान करे॥१-६॥

ओं आपोहिष्ठामयो भुवस्तान उर्ज्जे दधातनः। महेरणाय चक्षुषे। ओं यो वः शिवतमो रसः तस्य भाजयते हनः उशतीरिव मातरः। ओं तस्मा अरङ्गमामवो यस्य क्षयाय

जिन्वथ आपोजन यथाचनः। ओं सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु ओं दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः। ओं द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः। ओं ऋतञ्च सत्यञ्चभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोऽजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥७॥

तत्पश्चात् ॐ आपोहिष्ठा मन्त्र से भुव इत्यादि का (अर्थात् "ॐ आपोहिष्ठामयो भुव, स्तान उर्जे दधातन, महेरणाय चक्षसे" से) तथा "ॐ यो वः शिवतमो रसः तस्य भाजयते हनः उशतीरिव मातरः तथा ॐ तस्मा अरङ्गमामयो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपोजन यथाचन" इत्यादि से "ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु" तथा "ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः" तथा "ॐ द्रुपदादिव मुमुचान स्विन्नः स्नातो मलादिव पूत पवित्रेणे वाज्यमापः शुन्धन्तु नैनसः" तथा "ॐ ऋतञ्च" से लेकर "पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः" से आपोमार्जन करे॥७॥

ओं गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीच्छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः। ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्य्यम्। ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेर्वा आपो द्यावा पृथिवीञ्चान्तरिक्षं सूर्य्यात्मा जगतस्तस्थुषश्च। ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्। शृणुयाम शरदः शतम्। ओं विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखं विश्वतः संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावा भूमिं जनयन् देवएकः। देवानां भुविदोनाङ्गविद्वानाद्धमितमनसस्पत इव देवयज्ञं स्वाहा वा त्रेधा जपेत्॥८॥

उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनि।
ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥९॥

॥इति गारुडे महापुराणे नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०९॥

तदनन्तर गायत्री के विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्दः, सविता, देवता तथा विनियोग का स्मरण करके, "ॐ चित्रं देवाना इत्यादि", "ॐ तच्चक्षुर्देवहितः" इत्यादि तथा "ॐ विश्वतश्चक्षुरुतं" इत्यादि पाठ करके सूर्य उपस्थान करे। तदनन्तर गायत्री जपोपरान्त "ॐ उत्तर शिखरे" इत्यादि मन्त्र से जप समर्पण तथा नमस्कार करे॥८-९॥

॥दो सौ नौवां अध्याय समाप्त॥

दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्धविधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

व्यास श्राद्धमहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्।
पूर्वं निमन्त्रयेद्विप्रान्विशेषाद् ब्रह्मचारिणः॥१॥
प्रदक्षिणोपवीतेन देवान्वामोपवीतिना। पितॄन्निमन्त्रयेत्पादौ ततो संयोगमन्त्रतः॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! अब श्राद्धविधि श्रवण करो। इस विधि से पितरों का श्राद्ध करने से भुक्ति-मुक्ति प्राप्त होती है। श्राद्ध करने वाले श्राद्ध के एक दिन पूर्व ब्राह्मण को निमन्त्रित करे। ब्रह्मचारी को बुलाने का अधिक फल होता है। बायें कंधे पर जनेऊ करके देवपक्ष का तथा दाहिने कंधे पर उपवीत (जनेऊ) करके पितरों के हेतु (पितृपक्ष वाले) ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे॥१-२॥

ओं आगतं भवद्भिरिति प्रश्नः। ओं सुस्वागतमिति तैरुक्त ओं विश्वेभ्यो देवेभ्य एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वाहा। इति देवब्राह्मणपादयोर्देवतीर्थेनाभुग्नकुशसहितजलदानम्॥३॥

ततो दक्षिणाभिमुखेन वामोपवीतेन अमुकगोत्रेभ्यः अस्मत्पितृपितामहेभ्यो यथानामशर्मभ्य एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वधेति पित्रादिब्राह्मणपादयोः पितृतीर्थेन आभुग्नकुशकुसुमसहितजलदानम्॥४॥

तब यजमान ब्राह्मण से कहे—"ॐ स्वागतं भवन्ति" ब्राह्मण तब प्रत्युत्तर दें—"ॐ सुस्वागतं"। तब यजमान श्राद्धकर्त्ता कहे—"ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतत् पादोदकं इदमर्घ्यं स्वाहा" यह कहने के पश्चात् देवपक्ष के ब्राह्मण के चरणद्वय पर अभग्न कुश से जल प्रदान करे। इसके पश्चात् विपरीत उपवीत करके पिता-पितामह के नाम गोत्र को कहते हुये "एतत् पादोदकं इदमर्घ्यं स्वधा" कहकर पितृपक्ष वाले ब्राह्मणों के चरणों पर पितृतीर्थ से भग्न कुशाओं तथा पुष्पों से जल प्रदान करे॥३-४॥

एवं मातामहादिभ्यः एतत् आचमनीयं स्वाहा स्वधेति ब्राह्मणहस्ते एष वोऽर्घ्य इति ब्राह्मणहस्ते पुष्पदानम्॥५॥

ओं सिद्धमिदमासनं इह सिद्धमित्यभिज्ञातः ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यं सप्तव्याहृतिभिः पूर्वमुखदेवब्राह्मणोपवेशनम्। उत्तरदिङ्मुखपितृब्राह्मणोपवेशनम्। ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च-महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते। इति त्रिर्जपेत्॥६॥

इसके पश्चात् "मातामहादिभ्य एतत् आचमनीयं स्वाहा स्वधेति" इस मन्त्र से ब्राह्मण के हाथों पर जल तथा "वोऽर्घ्य" कहकर ब्राह्मण के हाथों पर पुष्प देना चाहिये। तब श्राद्ध करने वाला कहे "सिद्धमिदमासनं"। इसका उत्तर ब्राह्मण को देना चाहिये "सिद्धं"। तदनन्तर ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः

ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं इन सात व्याहृतियों द्वारा देवब्राह्मण को पूर्वमुख तथा पितृपक्षीय ब्राह्मणों को उत्तरमुख बैठाये। तब इस मन्त्र का तीन बार जप करे—ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च, नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते॥५-६॥

ओं अद्यास्मिन्देशे अमुकमासे अमुकगते सवितरि अमुकतिथौ अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां यथानामशर्मणां विश्वेदेवपूर्वकं श्राद्धं करिष्ये। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं विश्वेदेवानावाहयिष्ये आवाहयेत्युक्ते ओं विश्वेदेवाः स आगत शृणुताम् इमं हवम् इदं बर्हिर्निषीदत। ओं विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं येमे अन्तरिक्षे य उपपद्य विष्ट्या अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा। आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम्। ओं ओषधयः सममदन्तः सोमे सह राज्ञा यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजानं पारयामसि। ओं आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते। ओं अपहतासुरारक्षांसि वेदिषद। इति त्रिभिर्यवविकिरणम्॥७॥

तब "ॐ अस्मिन्देशे" से लगाकर "श्राद्धं करिष्ये" कहकर जल छोड़े। (मूलोक्त पाठ में अमुक की जगह मास, पक्ष, तिथि, देश कहे। षष्ठ्यन्त में पितरों का नाम कहे) इसके पश्चात् "ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा" कहे। इसके अनन्तर "ॐ विश्वान् देवान् आवाहयिष्ये" कहे। तब ब्राह्मण कहें "ॐ आवाहय" ब्राह्मण से आज्ञा पाकर अब "ॐ विश्वेदेवा स आगत" से लेकर "ये यत्र विहिता: श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते" पर्यन्त पढ़ कर "ॐ अपहतासुरारक्षांसि वेदिषद" पढ़ कर तीन बार यव (जौ) बिखेरे॥७॥

ओं पात्रमहं करिष्ये ओं कुरुष्वेति अनुज्ञातः साग्रकुशपत्रद्वयं प्रादेशप्रमाणं कृत्वा ओं पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ अनेन कुशान्तरेण छित्त्वा ओं विष्णुर्मनसा पूतेस्थ इत्यभ्युक्ष्य कुशान्तरेण त्रिवृतं कृत्वा पात्रे पवित्रनिषेवणम्॥८॥

ओं शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये संयोरभिस्रवन्तु नः। पात्रे जलदानम्। ओं यवोऽसि यवयास्मद्वेषो यवयाराति इति यवदानम्। गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां त्वामिहोपाह्वये श्रियमिति गन्धदानम्। ओं या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्षा उतपार्थवीर्य्या यज्ञियास्तान आपः शिवाः संश्योना सुहवा भवन्तु। ओं एषोऽर्घ्यो नमः। इति ब्राह्मणहस्ते जलं दत्त्वा अनेनैव पात्रेण पवित्रग्रहणं कृत्वा संस्रवं पवित्रञ्च ब्राह्मणपार्श्वे दद्यात्। ततः प्रथमपात्रे संस्रवजलं संस्थाप्य कुशोपरि ऊर्ध्वमुखं स्थापनं कुर्य्यात्तदुपरि कुशदानम्॥९॥

विश्वेभ्यो देवेभ्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपवासोयुगयज्ञोपवीतानि नमः। गन्धादिदानमच्छिद्रमस्तु। अस्त्विति ब्राह्मणप्रतिवचनम्॥१०॥

ततः पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां श्राद्धमहं

करिष्ये इति अनुज्ञावचनं कुरुष्वेति ब्राह्मणैरुक्ते ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च इति त्रिर्जपेत्॥११॥

इसके पश्चात् ''ॐ पात्रमहं करिष्ये'' कहकर ब्राह्मण से आज्ञा ले। ब्राह्मण ''ॐ कुरुष्व'' इस प्रकार आज्ञा दे। तब श्राद्धकर्त्ता अग्रभाग युक्त कुश लाकर दो कुश को एक बित्ते का करने हेतु जो भाग अधिक हो उसे एक अन्य कुश से ''ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ'' मन्त्र से काटे। तदनन्तर ''ॐ विष्णोर्मनसा पूतेस्थ'' से दोनों कुशों का अभ्युक्षण करना चाहिये। अब उन कुशों को तीन बार आवेष्ठन करके पात्र में रखे। अब ''ॐ शन्नो देवीरभीष्टये'' से लेकर ''संयोरमिस्रवन्तु नः'' कहकर पात्र में जल रखे। इसके बाद ''ॐ यवोऽसि यवयास्मद्वेषो यवयारातिं'' से वहां यवदान (यव प्रदान) करे। इसके पश्चात् ''गन्धद्वारां'' इत्यादि मन्त्र से गन्ध दान करके ''ॐ या दिव्या'' से लेकर ''सुहवा भवन्तु'' तक पढ़े तथा ''ॐ एषाघ्र्यो नमः'' से अर्घ्य प्रदान करे। ब्राह्मण के हाथ में इस मन्त्र से जल देकर अर्घ्यपात्रस्थ संस्रव जल तथा पवित्र लेकर उसे ब्राह्मण के दाहिने पार्श्व में रखे। तब प्रथम पात्र में सर्वसंस्रव जल रख कर उसे कुश पर ऊर्ध्व में रख कर उस पात्र पर कुश रखे। अब ''ॐ विश्वेभ्यो एतानि गन्ध पुष्प धूप दीप वस्त्र युगल यज्ञोपवीतानि नमः'' कहते गन्धादि देकर प्रत्येक द्रव्य को देखे और ''ॐ गन्धादिदानमच्छिद्रमस्तु'' कहकर अच्छिद्रावधारण करे। तब ब्राह्मण ''ॐ अस्तु'' कहे। श्राद्धकर्त्ता कहे ''मैं पितरों तथा मातामह आदि का श्राद्ध करूंगा।'' तब ब्राह्मण आज्ञा दे ''कुरुष्व''। यह आज्ञा पाकर श्राद्धकर्त्ता ''ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च'' कहे। यह तीन बार कहना होगा॥८-११॥

ओं अमुकगोत्रेभ्योऽस्मत्पितृपितामहेभ्यो यतानामशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्य इदमासनं स्वधा। इति ब्राह्मणवामे आसनदानम्। ओं पितॄनावाहयिष्ये ओं आवाहयेत्युक्ते ओं उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तःसमिधीमहि उशन्नु शत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे। ओं आयान्तु नः पितरः सोम्यासो अग्निष्वात्ता पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मानित्यावाहनम्। ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः इति तिलविकिरणम्। ओं तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोषवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन्लोकान्प्रीणाहि नः स्वाहा। इति तिलदानम्॥१२॥

अब श्राद्ध करने वाला पिता, पितामहादि, मातामहादि का नाम-गोत्र उच्चारण करके ब्राह्मण के वाम पार्श्व में ब्राह्मण को आसन प्रदान करे। तब ब्राह्मण से कहे ''ॐ पितृन् आवाहयिष्ये'' तब ब्राह्मण आज्ञा दे ''ॐ आवाहय''। यह आज्ञा पाकर श्राद्धकर्त्ता ''ॐ उशन्तस्त्वा'' से लेकर ''असुरा रक्षांसि वेदिषदः'' पर्यन्त मन्त्र से तिल बिखेरे तथा यह मन्त्र पढ़े जो मूल में ''ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो'' से लेकर ''नः स्वाहा'' तक अंकित है। यही तिलदान है॥१२॥

गन्धपुष्पे हस्ताभ्यां दत्त्वा पितृपात्रमुत्थाप्य या दिव्येति पठित्वा अमुकगोत्रास्मत्पितः अमुकदेवशर्मन् सपत्नीक एष तेऽर्घ्यः स्वधा। सपवित्रं पात्रं गृहीत्वा वामपार्श्वे दक्षिणे कुशोपरि। ओं पितृभ्यः स्थानमसीत्यधोमुखपात्रस्थापनम्॥१३॥

ओं शुद्धयन्तां लोकाः पितृसदनाः पितृसदनमसि। अधोमुखपात्रस्पर्शनम्। ततो घृताक्तमन्नं गृहीत्वा दक्षिणोपवीती पितृब्राह्मणम्। ओं अग्नौ करणमहं करिष्ये ओं कुरुष्वेति तेनोक्ते ओं अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। आहुतिद्वयं देवब्राह्मणहस्ते दत्त्वा अवशिष्टान्नं पिण्डार्थं स्थापयित्वा अपरमर्द्धं पित्रादिपात्रे मातामहादिपात्रे च निक्षिपेत्॥१४॥

पात्रमुद्रादि निधाय कुशं दत्त्वा अधोमुखाभ्यां पाणिभ्यां पात्रं गृहीत्वा। ओं पृथिवी ते पात्रं द्यौः पिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा पात्रभिमन्त्रणम्। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पां क्षुले। विष्णो हव्यं रक्षस्व इत्यन्नमध्ये अधोमुखद्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम्॥१५॥

अपहतेति त्रिर्यवविकिरणम्। ओं निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेद्धताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया। रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसङ्घा हता मया यातुधानाश्च सर्वे इति सिद्धार्थविकिरणम्॥१६॥

अब दोनों हाथ से गन्धपुष्प अर्पित करके पितृपात्र उठाये तथा "या दिव्येति" इत्यादि पढ़ कर पितरों के नामगोत्र का उल्लेख करके "एषोऽर्घ्यः स्वधा" कहकर पवित्र पात्र लेकर वामपार्श्व में कुश के ऊपर "ॐ पितृभ्यः स्थानमासे" कहकर अधोमुख पात्र रखे। अब "अशुद्धयन्तं" इत्यादि कहकर अधोमुख पात्र का स्पर्श करे। इसके पश्चात् घृतयुक्त अन्न लेकर दाहिने कंधे पर यज्ञोपवीत रख कर "ॐ अग्नौ करणमहं करिष्ये" कहकर पितृपक्षीय ब्राह्मणों से आज्ञा लेनी चाहिये। जब ब्राह्मण "ॐ कुरुष्व" यह आज्ञा प्रदान करें तब "ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा" द्वारा देवता वाले ब्राह्मण को दो आहुति देनी चाहिये। बाकी बचा अन्न पिण्ड हेतु रखे और अन्न का आधा भाग पित्रादि वाले बर्त्तन में तथा मातामहादि वाले पात्र में रखे। तब पात्रमुद्रादि स्थापित करके उस पर कुश रखे। अधोमुखी दोनों हथेली से पात्र उठा कर "ॐ पृथिवी" से लेकर "अमृतं जुहोमि स्वाहा" से पात्र का अभिमन्त्रण करके उस पर अन्न बिछा कर "ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे" से लेकर "मा क्षुले" कहे।तब "विष्णो हव्यं रक्षस्व" कहकर अन्न में अधोमुखाय अंगुष्ठ रख कर "ॐ अपहता सुरा रक्षांसि वेदिषद" मन्त्र से तीन बार यव (जौ) छोड़े तथा "ॐ निहन्मि" से लेकर "यातुधानश्च सर्वे" कहकर सरसों छोड़े॥१३-१६॥

ततो मधुविलोचनसंज्ञकेभ्यो देवेभ्य एतदन्नं सघृतं सपानीयं सव्यञ्जनं स्वाहेति वारिकुशाद्यैरनुसङ्कल्पनम्। ओं अन्नमिदमच्छिद्रमस्तु ओं सङ्कल्पसिद्धिरस्तु॥१७॥

इसके अनन्तर "मधुविलोचन" से लेकर "सव्यञ्जनं स्वाहा" कहकर अन्न पर जलयुक्त कुश रखे तथा "ॐ अन्नमिदमच्छिद्रमस्तु" तथा "ॐ संकल्पसिद्धिरस्तु" कहे॥१७॥

ततो विपरीतोपवीतेन सव्यञ्जनं सघृतमन्नं पित्रादिब्राह्मणपात्रे निधाय तदुपरि भूमिसंलग्नकुशं दत्त्वा। ओं पृथिवी ते पात्रं इति मन्त्रेण उत्तानाभ्यां पात्रं गृहीत्वा ओं इदं

विष्णोरित्यन्नोपरि उत्तानं द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्। ओं अपहतेति तिलविकिरणम्। भूमिपातितवामजानुः अमुकगोत्रेभ्यः अस्मत्पितृपितामहेभ्यः सपत्नीकेभ्य एतदन्नं सघृतं सपानीयं सव्यञ्जनं प्रतिषिद्धवर्जितं स्वधा। अन्नं सङ्कल्प्य ओं ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितरम्। दक्षिणाभिमुखवारिधारात्यागः॥१८॥

ओं श्राद्धमिदमच्छिद्रमस्तु ओं सङ्कल्पसिद्धिरस्तु। ओं भूर्भुवः स्वः इति विसर्जयित्वा ओं मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्तु सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीर्मधुनक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः मधुद्यौरस्तु न पिता। मधुमान्नो वनस्पतिः मधुमानस्तु सूर्य्यो माध्वीर्गावो भवन्तु नः। मधु मधु मधु इति जपः॥१९॥

अब यज्ञोपवीत विपरीत करके पित्रादि पात्र में व्यञ्जन एवं घृताप्लुत अन्न बिछा कर अन्न पर भूमिसंलग्न कुशपत्र रखने के पश्चात् उत्तान हथेली से पात्र ग्रहण करके "ॐ पृथिवी ते पात्रं" इत्यादि मन्त्र पढ़ कर "ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे इत्यादि" तथा "ॐ विष्णो हव्यं रक्षस्व" मन्त्र पढ़ते अन्न पर अंगुष्ठ रखे। तदनन्तर "ॐ अपहतासुरारक्षांसि वेदिषद्" से अन्न पर तिल बिखेर कर भूमि पर बायां जंघा टेके तथा "अमुकगोत्रेभ्यः" से लेकर "प्रतिषिद्ध वर्जितं स्वधा" (अमुक की जगह नाम-गोत्र कहे) से अन्न अर्पित करके पूर्ववत् अन्न परिकल्पना करते हुये "ॐ उर्जं" इत्यादि से लेकर "तर्पयत मे पितरम्" कहकर दक्षिण मुख जलधारा देनी चाहिये। इसके पश्चात् "ॐ श्राद्धमिदमच्छिद्रमस्तु", "ॐ संकल्पसिद्धिरस्तु" को पढ़ कर "ॐ भूर्भुवः स्वः" व्याहृति द्वारा तथा "ॐ मधुवाता" से लगाकर "माध्वीर्गावो भवन्तु नः" कहकर तीन बार मधु शब्द जपे॥१८-१९॥

यथासुखं वाग्यता जुषध्वं इति ब्रूयात्। भक्तवत्सप्तव्याधादिकं पितृस्तोत्रं जपेत्—
सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥२०॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्यानं यूयं तेभ्योऽवसीदत॥२१॥

अब "यथासुखं वाग्यता जुषध्वं" कहे। अब "भक्तवत्सप्तव्याधादि" पितृस्तोत्र जपे। यह श्लोक २०-२१ में "सप्तव्याधा" से "तेभ्योऽवसीदत" है॥२०-२१॥

ततस्तृप्यस्व दक्षिणाभिमुखो वामोपवीती तदुत्सृष्टाग्रतः।
ओं अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिम्।
इति भूमौ कुशोपरि सघृतमन्नं जलप्लुतं विकिरेत्॥२२॥

ततो ब्राह्मणक्रमेण जलगण्डूषं दत्त्वा पूर्ववत्सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेत्यृचं जप्त्वा ओं रुचितं भवद्भिरिति देवब्राह्मणप्रश्नः सुरुचितमिति तेनोक्ते ओं शेषमन्नमिति प्रश्नः इष्टैः सह भोजनं पित्रादिब्राह्मणं वामोपवीतेन ओं तृप्तास्थ इति प्रश्नः ओं तृप्ताः स्म इति तेनोक्ते भूम्यभ्युक्षणं मण्डलचतुष्कोणं तिलविकिरणम्॥२३॥

ओं अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकदेवशर्मन् सपत्नीक एतत्ते पिण्डासं स्वधा। इत्थं रेखामध्ये पितामहाय सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति त्रिर्जपन् अन्नं साज्यं पिण्डं कृत्वा कुशोपरि अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकदेवशर्मन् सपत्नीक एष ते पिण्डः स्वधा। इत्थं रेखामध्ये पितामहाय ततः सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति त्रिर्जपन् पिण्डविकिरणं पिण्डान्तिके। ओं लेपभुजः प्रीयन्तामिति स्तरणकुशेषु हस्तमार्जनं प्रक्षालितपिण्डोदकेन ओं अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकशर्मन् सपत्नीक! एतत्ते जलमवनेनिक्ष्य ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधेति पितृपिण्डसेचनम्। पिण्डपात्रमधोमुखं कृत्वा बद्धाञ्जलिः ओं पितर्मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति जपेत् आपः स्पृष्ट्वा वामेन परावृत्त्य उदङ्मुखः प्राणांस्त्रिः संयम्य षड्भ्य ऋतुभ्यो नमः इति जपः॥२४॥

तब "ॐ तृप्ताय" कहकर दक्षिणमुख होकर उपवीत वाम कंधे पर रखे। तब "ॐ अग्निदग्धाश्च" से लेकर "पराङ्गतिम्" तक पढ़ कर भूमि पर कुश रखे तथा उस पर घृतयुक्त जलप्लावित अन्न बिखेरे। अब ब्राह्मण जल प्रदान करके पहले जैसे प्रणवान्वित गायत्री, मधुवाता इत्यादि मन्त्र पढ़ कर तीन बार मधु शब्द करे। इसके बाद "ॐ रुचितं भवन्ति" कहकर देवपक्षीय ब्राह्मण से आज्ञा लेनी चाहिये। तब ब्राह्मण "सुरुचितम्" कहे। तब श्राद्धकर्त्ता "ॐ शेषमन्नं" कहे। तब ब्राह्मण कहें "ॐ इष्टेः सह भोजनम्" अब श्राद्धकर्त्ता "ॐ तृप्ता स्थ" पूछे। तब ब्राह्मण कहे "ॐ तृप्ताः स्म" (मैं तृप्त हो गया)। तब श्राद्धकर्त्ता पूछे "शेषमन्नं क्व देयं"। तब ब्राह्मण कहे "ॐ इष्टैः सह भोजनम्" इसी प्रकार से मातामह पक्षीय ब्राह्मण से भी पूछ कर पूर्ववत् पितृपक्षीय ब्राह्मण से पूछे "ॐ पिण्डानहं पातयिष्ये" तब ब्राह्मण कहे "सर्वत्र पातय"। इसके अनन्तर उच्छिष्ट के आगे की भूमि धोकर वहां चतुष्कोण मण्डल बनाये तथा तिल बिखेरने के पश्चात् "ॐ अमुकगोत्र" से लेकर "पिण्डासनं स्वधा" कहे। अमुक गोत्र की जगह गोत्र तथा नाम उच्चारण करे। तब मूल में कहे मन्त्र से पिण्डासनं उत्सर्ग करे। इसके बाद रेखा का अभ्युक्षण करके प्रणवयुक्त व्याहृतिमय गायत्री, मधुवाता इत्यादि पढ़ कर तीन बार मधु शब्द उच्चरित करके घृतमिश्रित अन्न से पिण्ड बना कर "ॐ अमुकगोत्रं अस्मत्पितः अमुकदेव शर्मणं सपत्नीक एष ते पिण्ड स्वधा" कहकर कुश पर पिण्ड देना चाहिये। अब रेखा मध्य में पूर्व की ही तरह पितामह को पिण्ड देकर "ॐ लेपभूतः प्रियतामिति" कहकर आस्तरण कुश पर हाथ धोये। अब पिण्डपात्र प्रक्षालित जल से "अमुकगोत्र अस्मत् पितः अमुक देवशर्मन् सपत्नीक, एतत्ते जलभवने निक्ष्य ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा" यह पितृपिण्ड सेचन है। अब पिण्डपात्र को अधोमुख करे। इसके अनन्तर हाथ जोड़कर "ॐ पितर्मादयध्वं यथाभाग मावृषायध्वं" जपे। जलस्पर्श करके अब वामावर्त्त तथा उत्तरामुख होकर प्राणों का संयम करके "ॐ षड्भ्यो ऋतुभ्यो नमः" पढ़े॥२२-२४॥

वामेनैव परावृत्य पुष्पदानम्। अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु मे पुण्यं शान्तिपुष्टिदक्षिणामुखः अमीमदन्तः पितरो यथाभागमावृषायिषत इति जपः। वासः शिथिलीकृत्याञ्जलिं कृत्वा ओं नमो वः पितरो नमो व इति जपः। गृहान्नः पितरो दत्त इति गृहवीक्षणं ततः सदो वः

पितरो द्वेष्म इति वीक्ष्य एतद्वः पितरो वास इत्युच्चार्य्य अमुकगोत्र! एतत्ते वासः स्वधा। ततः सूत्रदानम्। वामेन पाणिना उदकपात्रं गृहीत्वा ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः इत्यादि पिण्डोपरि धारात्यागः॥२५॥

अब वामावर्त्त एवं दक्षिणमुख होकर "अमीमदन्त: पितरो यथाभागमावृषायिषत्" जपे। अब वस्त्र ढीला करके हाथ जोड़ कर "नमो व: पितरो पितरो नमो व: पितरो पितरो नमो व:" पढ़े। तदनन्तर "गृहान्न पितरो दत्त:" कहकर गृह का निरीक्षण नेत्र से करे। इसके पश्चात् "सदा व पितरो द्वेष्म" इस मन्त्र से गृह का निरीक्षण करे। यह कहकर घर का निरीक्षण करके "एतद्व: पितरो वास:" का उच्चारण करके "अमुक गोत्र वाले पितर! यहां निवास करिये।" यह कहकर मूलोक्त वाक्य से सूत्रदान करे। तब बायें हाथ से जलपात्र लेकर "उर्ज वहन्ति" आदि मन्त्र से पिण्ड पर जलधारा प्रदान करे। वहां घृत, दुग्ध आदि की धारा पिण्ड पर बहाये॥२५॥

पूर्वस्थापितपात्रशेषोदकैः प्रत्येकं पिण्डसेचनं पिण्डमावाह्य गन्धादिदानं पिण्डोपरि कुशपत्रञ्च दक्त्वा ओं अक्षन्नमीमदन्तह्यवप्रिया अधूषत अस्तोषत सुभानवो विप्रा नविष्ठ्यामतीयो यान्नन्दृते हरीति त्रिर्जपः॥२६॥

पूर्व में स्थापित पात्र में बचे जल द्वारा प्रत्येक पिण्ड पर जल सिंचित करे। तदनन्तर पिण्ड में आवाहन करके पिण्ड पर गन्ध आदि तथा कुशदान करके "ॐ अक्षन्नमी" से लेकर "यान्नन्दृते हरी" का तीन बार जप करे॥२६॥

इत्थं मातामहादिब्राह्मणानामाचमनं ओं सुप्रोक्षितमस्त्विवति भूम्यभ्युक्षणं कृत्वा। ओं अपां मध्ये स्थिता देवाः सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्। ब्राह्मणस्य करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु नः। शिवा आपः सन्त्विवति ब्राह्मणहस्ते जलदानम्। लक्ष्मीर्वसति पुष्करे लक्ष्मीर्वसति सदा गोष्ठे सौमनस्यं सदास्तु ते। सोमस्येति धृतिश्च यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम। ओं अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु इति यवतण्डुलदानम्॥२७॥

इस प्रकार मातामहादि वाले ब्राह्मण आचमन करें। इसके पश्चात् "सुसुप्रोक्षितमस्तु" से अभ्युक्षण करके "ॐ अपां" से लेकर "ॐ अपां मध्ये स्थिता देवा सर्वमप्सु" से लेकर "आपो भवन्तु न:" पर्यन्त पढ़ कर "ॐ शिवा आप: सन्तु" कहकर ब्राह्मण के हाथ में जल देना चाहिये। तब "लक्ष्मीर्वसति" से लेकर "सदा मम" कहे और "ॐ सौमनस्यमस्तु" कहे। ब्राह्मण अन्त में जब प्रति वाक्य में "अस्तु" कहे, तब "ॐ अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु" कहकर जौ तथा तण्डुल देना चाहिये॥२७॥

अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां सपत्नीकानामिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्त्विवति पित्रादिब्राह्मणहस्ते तिलजलदानम्। अस्त्विवति ब्राह्मणो वदेत्। एतन्मातामहादीनामक्षय्यमाशिषः। ओं अघोराः पितरः सन्तु गोत्रं नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो माव्यगमत् बहु देयञ्च नोऽस्त्विवति अन्नञ्च

नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि। याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन। एता एवाशिषः सन्तु॥॥२८॥

इसके पश्चात् "अमुक गोत्राणा" से लेकर "तिलजलदानम्" कहे तथा ब्राह्मण के हाथ में तिलजल देना चाहिये। (अमुक की जगह गोत्र नाम कहे) तब ब्राह्मण कहे "अस्तु" इस प्रकार मातामहादि को अक्षय्यजल देना चाहिये। तब आशीर्वाद मांगे। तत्पश्चात् "ॐ अघोरा" से लेकर "एवाशिषः सन्तु" तक पढ़े॥२८॥

सौमनस्यमस्तु अस्त्वित्युक्ते प्रदत्तपिण्डस्थाने अर्घ्यार्थपवित्रमोचनम्। कुशपवित्रं गृहीत्वा तेन कुशेन पित्रादिब्राह्मणं स्पृष्ट्वा स्वधां वाचयिष्ये ओं वाच्यतां ओं पितृपितामहेभ्यो यथानामशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्यः स्वधोच्यताम्। अस्तु स्वधा इत्युक्ते ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतमिति पिण्डोपरि वारिधारां दद्यात्॥२९॥

तदनन्तर "सौमनस्यमस्तु" कहे। ब्राह्मण "अस्तु" कहकर आज्ञा प्रदान करें तथा पवित्र मोचन करें। अर्घ्य हेतु प्रदत्त पवित्र लेकर कुशपत्र से ब्राह्मण का (पित्रपक्षीय का) स्पर्श करके "ॐ स्वधा वाचयिष्ये" द्वारा आज्ञा मांगे। तब ब्राह्मण द्वारा "ॐ वाच्यतां" से आज्ञा देने पर "ॐ पितृपितामहेभ्यो" से लेकर "स्वधोच्यताम्" कहकर पवित्र मोचन करे तथा पिण्ड स्थान पर निक्षेप कर दे। तदनन्तर "ॐ अस्तु स्वधा" से ब्राहमण द्वारा आज्ञा दिये जाने पर "ॐ उर्जं वहन्तिरमृतं घृतम्" द्वारा पिण्ड पर जलधारा देनी चाहिये॥२९॥

ततः ओं विश्वेदेवा अस्मिन्यज्ञे प्रीयन्तां देवब्राह्मणहस्ते यवोदकदानम्। ओं प्रीयन्तामिति तेनोक्ते ओं देवताभ्य इति त्रिर्जपेत्॥३०॥

इसके पश्चात् "ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्तां" वाक्य से देवपक्षीय ब्राह्मण के हाथ में यवजल देना चाहिये। जब ब्राह्मण "ॐ प्रीयन्तां" द्वारा आज्ञा प्रदान करें, तब "ॐ देवताभ्य" इत्यादि तीन बार जप करे॥३०॥

अधोमुखः पिण्डपात्राणि चालयित्वा आचम्य दक्षिणोपवीती पूर्वाभिमुखः ओं अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय सपत्नीकाय श्राद्धप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामेतद्रजतं तुभ्यमहं सम्प्रददे। इति दक्षिणां दद्यात्। ततो देवब्राह्मणाय दक्षिणादानम्॥३१॥

इसके पश्चात् अधोमुख पिण्डपात्र का चालन तथा आचमन करके दक्षिणोपवीती (दाहिने स्कन्ध पर जनेऊ रखकर) होकर पूर्वमुख हो जाये तथा "अमुकगोत्राय" से लेकर "सम्प्रददे" तक कहे तथा दक्षिणा प्रदान करे। तदनन्तर देव ब्राह्मण को दक्षिणा देना चाहिये॥३१॥

ततः पितृब्राह्मणे पिण्डाः सम्पन्ना इति प्रश्नः। सुसम्पन्ना ति पिण्डे क्षीरधारां दत्त्वा पिण्डचालनं अतिथिब्राह्मणे पिण्डपात्रमुत्तानं कृत्वा। ओं वाजे वाजे वत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञा अस्म मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैरिति

पिण्डादिविसर्जनं आमावाजस्य प्रसवो जगम्यादिमे द्यावा पृथिवी विश्वरूपे आमागन्तुं पितरो मातरो युवमामा सोमोऽमृतत्वाय गम्यात् इति देवविसर्जनम्। ओं अभिरम्यतामिति पितृब्राह्मणविसर्जनम्। ब्राह्मणैरनुद्गतस्य निवर्त्तनम्। गवादिषु पिण्डप्रतिपादनमिति शेषः॥३२॥

अयं श्राद्धविधिः प्रोक्तः पठितः पापनाशनः।
अनेन विधिना श्राद्धं कृतं वै यत्र कुत्रचित्॥३३॥
अक्षया स्यात्पितृणाञ्चस्वर्गप्राप्तिर्ध्रुवा तथा।
इत्युक्तं पार्वणश्राद्धं पितृणां ब्रह्मलोकदम्॥३४॥

॥इति गारुडे महापुराणे पार्वणश्राद्धकथनं नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१०॥

तदनन्तर पितृपक्षीय ब्राह्मण से पूछे—"ॐ पिण्डाः सम्पन्नाः?" जब ब्राह्मण कहें "ॐ सुसम्पन्ना" तब पिण्ड के ऊपर दुग्धधारा देनी चाहिये। इसके अनन्तर पिण्ड चालन करके अतिथि ब्राह्मण पिण्डपात्र उत्तान करें। तब "ॐ बाजे-बाजे" से लेकर "गम्यात्" तक मन्त्र पढ़कर पिण्ड विसर्जन कर देना चाहिये। तत्पश्चात् "ॐ अभिरम्यतामिति क्षमस्व" कहकर पितृपक्षीय ब्राह्मण को विसर्जित करके ब्राह्मण की आज्ञा लेकर गौओं आदि को पिण्ड खिलाये। यह पापनाशक श्राद्धविधान मैंने कह दिया। इसके पाठ द्वारा पातकों का नाश होता है। चाहे जहां कहीं भी इस विधि से श्राद्ध करने पर पितर अक्षय स्वर्गलाभ करते हैं। मैंने पार्वणश्राद्ध कह दिया। इस श्राद्ध द्वारा पितृगण ब्रह्मलोकलाभ करते हैं॥३२-३४॥

॥दो सौ दसवां अध्याय समाप्त॥

एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नित्यश्राद्ध वर्णन

ब्रह्मोवाच

नित्यश्राद्धं प्रवक्ष्यामि पूर्ववत्तद्विशेषवत्।

ओं अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहानां अमुकशर्मणां सपत्नीकानां श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मास्वहं करिष्ये।

आसनादिकमत्र स्याद्विश्वेदेवविवर्जितम्॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—अब नित्यश्राद्ध कहा जा रहा है। पूर्व में जिस प्रकार की शास्त्रविधि कही गयां, उसी के मुताबिक श्राद्ध करना चाहिये। लेकिन नित्यश्राद्ध में विशेष यह होगा कि उसमें ''ओं अमुकगोत्राणां'' से लेकर ''युष्मास्वहं करिष्ये'' कहकर संकल्प लेना होगा। यह श्राद्ध करने में आसनादि समस्त कार्य अध्याय २११ के ही अनुरूप करे। यह कार्य (श्राद्ध) विश्वेदेव रहित होगा॥१॥

वृद्धिश्राद्धं प्रवक्ष्यामि पूर्ववत्तद्विशेषकम्। जातपुत्रमुखदर्शनादौ वृद्धिश्राद्धं पूर्वाभिमुखेषु दक्षिणोपवीतिषु सयववदरकुशैर्देवतीर्थेन नमस्कारान्तेन दक्षिणोपचारेण कर्त्तव्यम्॥२॥

अब वृद्धिश्राद्ध कहता हूं। इसमें सभी कार्य तो पहले की ही तरह होगा, लेकिन पुत्र के जातकर्मादि संस्कार में इसे किया जाता है। इसमें पूर्वाभिमुखीन होकर तथा यज्ञोपवीत दाहिने कन्धे पर रखे और सयववदर (?), कुश तथा देवतीर्थ से नमस्कारोपरान्त दक्षिणोपचार करे॥२॥

दक्षिणजानु गृहीत्वा ओं अद्यास्मदीयामुकवृद्धौ अमुकगोत्राणामस्मत्-पितामही-मातृणाममुकदेवीनाममुकगोत्राणां श्राद्धे कर्त्तव्ये वसुसत्यसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मासु मया कर्त्तव्यमिति देवब्राह्मणामन्त्रणम्। ओं करिष्यसीति तेनोक्त इत्थमेवापरदेवब्राह्मणामन्त्रणम्॥३॥

दक्षिण जानु ग्रहण करके ''ॐ अद्य अमदीय अमुक वृद्धौ'' आदि मूलोक्त मन्त्र से देवब्राह्मण को निमन्त्रित करे। तब ब्राह्मण कहे—''ॐ करिष्यसि'' यह आज्ञा मिलने पर देवपक्षीय ब्राह्मण को आमंत्रित करे॥३॥

ततः अमुकवृद्धौ अमुकगोत्राया मत्प्रपितामह्या अमुकदेव्या नान्दीमख्याः श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मासु कर्त्तव्यमिति। प्रपितामही-ब्राह्मणामन्त्रणं करिष्यसीति। तेनोक्ते इत्थमेव प्रमातामह्यादिब्राह्मणामन्त्रणम्॥४॥

तब ''अमुकवृद्धौ'' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र द्वारा पितृपितामहादि, मातामहादि, पितामही आदि, मातामही आदि के लिये ब्राह्मण आमन्त्रित करे॥४॥

देवपितृसर्वदेवब्राह्मणं श्राद्धकरणानुज्ञापनं आसने ओं विश्वेदेवा स आगत शृणुताम इमं हवम् इदं बर्हिर्निषीदत। ओं विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं येमे अन्तरिक्षे य उपपद्यविष्टये अग्निजिह्वा उतवा ययत्रा आसाद्यास्मिन्वबर्हिषि मादयध्वम्। ओं आगच्छन्तु इति विश्वेदेवावाहनं गन्धादिदानम्। अच्छिद्रावधारणवाचनम्॥५॥

अब देवपितृ ब्राह्मणों के निमन्त्रणार्थ प्रधान ब्राह्मण से आज्ञा लेकर ''ॐ विश्वेदेवा स आगत'' इत्यादि मूलोक्त मन्त्रों से विश्वेदेवताओं का आमन्त्रण करने के पश्चात् (''ॐ विश्वेदेवा स आगत'' से लेकर ''ॐ आगच्छन्तु'' तक कहने के अनन्तर) गन्धादिदान, अच्छिद्रावधारण करके प्रपितामही आदि का अनुज्ञापन, आज्ञा लेना, आसनदान, गन्धादिदान, अच्छिद्राव धारण करे॥५॥

ततः प्रपितामहीप्रभृतीनामनुज्ञापनं आसनदानं गन्धादिदानञ्च अच्छिद्रावधारण-वाचनम्। इत्थं पितामह्या मातुः ततः प्रपितामहादीनां अनुज्ञापनं आसनं आवाहनं गन्धादिदानं वृद्धप्रमातामहादीनां अनुज्ञापनादिकरणम्। ओं वसुसत्यसंज्ञकेभ्यो देवेभ्य एतदन्नं सव्यञ्जनं सवदरं सदधि प्रतिषिद्धवर्जितं नम इति अन्नसङ्कलनम्। ओं अमुकगोत्रे मत्पितामहि अमुकीदेवि नान्दीमुखि! एतदन्नं सवदरं सदधि नमः एवं मातामह-प्रमातामहेभ्यः॥६॥

एवंविध पितामही, माता, प्रपितामही की अनुज्ञा लेकर आसनदान, आवाहन, गन्धादि अर्पण एवं वृद्धप्रमातामही की आज्ञा लेने का कार्य करे। इसके पश्चात् "ॐ वसुसत्यसंज्ञकेभ्यो" आदि मूल में कहे मन्त्र से अन्नानुकल्पन करना चाहिये। (अर्थात् ॐ वसु सत्यसंज्ञकेभ्यो से लगाकर प्रतिषिद्धवर्जितं नमः तक कहे) तब "ॐ अमुकगोत्रे मत्पितामहि" ले लेकर "मातामहेभ्यः" पर्यन्त से पढ़कर अन्नानुकल्पन करे॥६॥

एकोद्दिष्टं पुरावत्ते तद्विशेषं वदे शृणु।

प्रथमं निमन्त्रणं पादप्रक्षालनम् आसनम् अद्य अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मणः प्रतिसांवत्सरिकमेकोद्दिष्टश्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मास्वहं करिष्ये। श्राद्धकरणानुज्ञापनम् आसनं गन्धादिदानम् अन्नानुकल्पनम्। जप्यं निवीति उत्तराभिमुखीभूयतिथिश्राद्धं कुर्य्यात्॥७॥

एकोद्दिष्ट श्राद्ध यथापूर्व करे। इसमें विशेषता यह होगी कि पहले निमन्त्रण, पादप्रक्षालन, आसनदान के पश्चात् "अद्य अमुकगोत्रस्य" से लेकर "युष्मास्वहं करिष्ये" कहे। अब ब्राह्मण की आज्ञा लेकर आसनदान, गन्धादिदान एवं अन्नदान देना चाहिये। तत्पश्चात् रुचिकृत पितृस्तवादि पढ़ कर गले में माला की तरह जनेऊ लटकाकर उत्तर की ओर मुख करके अतिथि श्राद्ध करे॥७॥

ततस्तृप्तिं ज्ञात्वा दक्षिणाभिमुखो वामोपवीती उच्छिष्टसमीपे अग्निदग्धा इति अन्नविकिरणम्। अमुकगोत्र! मत्पितरमुकदेवशर्मन्नेतत्ते जलमवनेनिक्ष्व ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा इति रेखोपरि वारिधारादानम्। शेषं पूर्ववत्॥८॥

॥इति गारुडे महापुराणे एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२११॥

अब पितरों की तृप्ति का निश्चय करके दक्षिण की ओर मुंह करे। जनेऊ वाम कन्धे पर रखे तथा उच्छिष्ट के पास "अग्निदग्धा" इत्यादि कहकर अन्न रखे। तदनन्तर "अमुकगोत्र" से लगाकर "तस्मै ते स्वधा" कहकर रेखा पर जलधारा प्रदान करे। बाकी कार्य पूर्ववत् करना चाहिये॥८॥

॥दो सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सपिण्डीकरण श्राद्ध वर्णन

ब्रह्मोवाच

सपिण्डीकरणं वक्ष्ये पूर्णेब्दे तत्क्षयेऽहनि। कृतं सम्यग्यथाकाले प्रेतादेः पितृलोकदम्॥१॥
सपिण्डीकरणं कुर्य्यादपराह्ने तु पूर्ववत्।

पितामहादिब्राह्मणनिमन्त्रणम्। ओं पुररवो माद्रवसंज्ञकेभ्यो देवेभ्य एतदासनं नमः वामपार्श्वे चासनदानम्। आवाहनम्। ततः पितामहप्रपितामहानां सपत्नीकानां श्राद्धमहं करिष्ये इत्यनुज्ञाग्रहणं पात्रत्रयकरणं पात्रोपरि कुशं दत्त्वा पात्रान्तरेण पिधाय अच्छिद्रावधारणान्तं परिसमाप्य तथैव पितुरपि सपत्नीकस्य प्रेतपदान्तनाम्ना श्राद्धकरणानुज्ञापनं देवपात्राच्छिद्रावधारणम्॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—अब सपिण्डीकरण श्राद्ध कहा जाता है। मृत्यु के पश्चात् एक वर्ष व्यतीत होने पर इसे करते हैं। यह यथाकाल किये जाने पर प्रेत को पितृलोक लाभ होता है। यह अपराह्न में करे। सभी अनुष्ठान पूर्ववत् किया जायेगा। इसमें जो कुछ विशेष है, वह कहता हूं। "ॐ पुररवो" इत्यादि से आसन देकर आवाहन करे। बायीं ओर आसन देकर आवाहन करे। तब "पितामह प्रपितामहानां सपत्नीकानां श्राद्धमहं करिष्ये" इस वाक्य से श्राद्ध की आज्ञा ब्राह्मण से लेकर तीन पात्र की स्थापना करके उस पर कुश रखे तथा अन्य पात्र से आवाहन करना चाहिये। इस कार्य के बाद "अच्छिद्रावधारण" करने के पश्चात् सपत्नीक पिता का नाम (नामान्त में प्रेत शब्द लगाकर) श्राद्ध की आज्ञा ब्राह्मण से लेकर देवपात्र में अच्छिद्रावधारण करे॥१-२॥

तत्परिसमाप्य पितामहप्रपितामहवृद्धप्रपितामहक्रेण पात्राणां मनाक्चालनम् उद्घाटनं कृत्वा। ओं ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्।

ओं ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः। तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन्लोके शतं समाः।

एतन्मन्त्रद्वयेन पितृपात्रोदकं पितामहप्रपितामहपात्रे वृद्धप्रपितामहपात्रं परित्यज्य पितामहप्रपितामहयोरुदकं पवित्रञ्च पितृपात्रे क्षिपेत्॥३॥

ततः पितृब्राह्मणहस्ते पात्रस्थपवित्रदानम्। पात्रस्थपुष्पेण शिरसः करपादार्चनं ब्राह्मणहस्तेऽन्यजलदानं हस्ताभ्यां पात्रमुत्थाप्य या दिव्येति पठित्वा अमुकगोत्र! मत्पितामह! अमुकदेवशर्मन् सपत्नीक! एष ते अर्घ्यः स्वधा पितृपात्रेणैव पितामहब्राह्मणहस्ते

स्तोकमर्घ्योदकं कृत्वा स्तोकमुदकं पिण्डसेचनार्थं पात्रान्तरेण पिधाय पितृब्राह्मणवामपार्श्वे दक्षिणाग्रकुशोपरि पितृभ्यः स्थानमसीति अधोमुखपात्रस्थापनम्॥४॥

यह कार्य करने के उपरान्त पितामह, प्रपितामह तथा वृद्धप्रपितामह क्रमेण पात्र का चालन एवं उद्घाटन करे। तब "ॐ ये समाना समनसं पितरो यमराज्ये तेषां लोकः स्वधा" से लेकर "शतं समा" तक कहकर पितृपात्र में जल देकर पितामह-प्रपितामह पात्र में जल प्रदान करे। वृद्धप्रपितामह पात्र को छोड़कर पितामह एवं प्रपितामह पात्रस्थ जल तथा पवित्र पितृपात्र में छोड़े। तदनन्तर पितृपक्षीय ब्राह्मण के हाथ में पात्रस्थ पवित्र देकर पात्रस्थ पुष्प से शिर, हाथ तथा पैर का मार्जन करके ब्राह्मण के हाथों में जल देना चाहिये। तब दोनों हाथों से अर्घ्यपात्र उठाकर "या दिव्येति" इत्यादि पढ़कर "अमुकगोत्र" से लेकर "अर्घ्यः स्वधा" तक पढ़े और पितृपात्र से किंचित् अर्घ्य जल लेकर पितामह पक्षीय ब्राह्मण के हाथों में देकर कुछ जल पिण्ड सिंचनार्थ अन्य पात्र द्वारा ढांक कर पितृपक्षीय ब्राह्मण के बायीं ओर दक्षिणाग्र कुश पर "पितृभ्यः स्थानमसि" कहकर विपरीत तरीके से रखे। (अर्थात् अधोमुखीन रखे)॥३-४॥

पितामहप्रपितामहवृद्धप्रपितामहानां गन्धादिदानमग्नौकरणम् अवशिष्टान्नं प्रपितामहादिपात्रे क्षिपेत्। पितामहपात्राभिमन्त्रणपर्यन्तक्रमेण समाप्यापि ब्राह्मणपात्राभिमर्षणं अङ्गुष्ठनिवेशनं तिलविकिरणं कृत्वा अमुकगोत्र एतत्ते अन्नं घृतं पानीयं सव्यञ्जनं प्रतिषिद्धवर्जितं ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा इति॥५॥

ततो देवप्रभृतिभ्य आपोषणं दद्यात्। अतिथिप्राप्तौ अतिथिश्राद्धं कुर्यात्। अस्मिन्नवसरे विकिरणम्। पितामहादौ प्रश्नं कृत्वा पितृब्राह्मणं ओं स्वदितं भवद्भिरिति प्रश्नः। ओं अमुकगोत्र! मत्पितः! अमुकशर्मन्! सपत्नीक! एष ते पिण्डो ये चात्रत्वा मनुजांश्च त्वमनु तस्मै स्वधेति पिण्डपात्रमच्छिद्रमस्तु। ततः सङ्कल्पसिद्धिवाचनं समाप्य पिण्डं द्विधा कृत्वा ये समानाः सुमनस इति मन्त्रद्वयं पठित्वा पितामहवृद्धप्रपितामहपात्रेषु क्षिपेत्। पिण्डेषु गन्धादिकं दत्त्वा पिण्डचालनं अतिथिब्राह्मणे स्वदितादिप्रश्नः। ब्राह्मणानामाचमनं भुक्तिक्रमेण ताम्बूलदानम्। सुप्रोक्षितमस्तु शिवा आपः सन्तु वृद्धप्रपितामहक्रमेण ब्राह्मणहस्ते जलदानम्। गोत्रस्याक्षय्यमस्तु पितृब्राह्मणहस्ते उपतिष्ठतामिति सतिलजलदानम्॥६॥

तत्पश्चात् पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह क्रम से गन्धादि अर्पित करे तथा अग्नौकरण करके शेष अन्न प्रपितामहादि पात्र में छोड़े। अब क्रम से पितामहादि का क्रम से पात्राभिमर्षण पर्यन्त कर्म पूरी तरह कर देना चाहिये। तब ब्राह्मण पात्र का अभिमर्षण, अंगुष्ठ निवेशन एवं तिल बिखेरना, यह कार्य "अमुकगोत्र" इत्यादि मूलोक्त वाक्य से करते हुये अन्न अर्पित करे। इसके अनन्तर दैवादिक्रमेण ब्राह्मण के हाथ में आपोशनार्थ जल प्रदान करे। अतिथि का अतिथि श्राद्ध करे। इस समय विकिरण हेतु अन्न का उपयोग करे। अब पितामहादि पक्ष के ब्राह्मण से "स्वदितं भवद्भिः" प्रश्न पितृ-ब्राह्मण से करके "ॐ अमुकगोत्र" आदि से पिण्डदान तथा पिण्ड का छिद्रावधारण करके संकल्पसिद्धि पाठ करे तथा सभी काम खत्म करके "ये समानाः समनसः" इत्यादि का पाठ करने के उपरान्त पितामहादि पिण्डों को मिलाये।

इसके बाद पिण्ड पर गन्धादि अर्पित करके पिण्डचालन के उपरान्त अतिथि ब्राह्मण से "स्वदितादि" प्रश्न, ब्राह्मण का आचमन तथा भोजन क्रम में ताम्बूल पर्यन्त प्रदान करके "सुप्रोक्षितस्तु शिवा आप: सन्तु" पढ़ते हुये वृद्धप्रमाता क्रम से ब्राह्मण के हाथ में जल देना होगा। इस काम के बाद पितृपक्षीय ब्राह्मण के हाथों में अक्षय्यदानोपरान्त "उपतिष्ठतां" कहकर जल दे।।५-६।।

अघोराः पितरः सन्तु अस्त्वित्युक्ते स्वधां वाचयिष्ये इति पितामहादि ब्राह्मणानुज्ञापनम्। ओं वाच्यतां इत्युक्ते ओं पितामहादिभ्यः स्वधोच्यतां अस्तु स्वधेत्युक्ते पितृब्राह्मणपितृभ्यः स्वधोच्यतामिति अस्तु स्वधेत्युक्ते।।७।।

ओं ऊर्जं वहन्तीरिति दक्षिणाभिमुखवारिधारात्यागः। ओं विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्तामिति देवब्राह्मणहस्ते यवोदकदानम्। ओं देवताभ्य इति त्रिर्जपः।।८।।

तदनन्तर "अघोरा: पितर: सन्तु" कहे। तब ब्राह्मण कहे "सन्तु"। अब श्राद्धकर्त्ता कहे "स्वधा वाचयिष्ये" कहने पर ब्राह्मण "वाच्यतां" द्वारा आज्ञा दे। तब "पितामहादिभ्य: स्वधोच्यतां" से पवित्र मोचन करने पर ब्राह्मण "अस्तु स्वधा" से आज्ञा दे। तदनन्तर "उर्जं वहन्ति" आदि वाक्य से देवपक्षीय ब्राह्मण के हाथों में यवजल देकर "ॐ देवताभ्य"का तीन बार जप करे।।७-८।।

पिण्डपात्राणि चालयित्वा आचम्य पितामहादिभ्यो दक्षिणां दत्त्वा ततः पितृब्राह्मणाय आशिषो मे प्रदीयन्तामित्याशीःप्रार्थनं प्रतिगृह्यतामित्युक्ते दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामिति पात्रमुत्तानं कृत्वा वाजे वाजे विसर्जनं अभिरम्यतामिति पितृब्राह्मणम्।।९।।

सपिण्डीकरणश्राद्धं व्यास प्रोक्तं मया तव।
श्राद्धं विष्णुः श्राद्धकर्त्ता फलं श्राद्धादिकं हरिः।।१०।।

।।इति गारुडे महापुराणे श्राद्धानुष्ठान नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः।।२१२।।

अब सभी पिण्डपात्रों का चालन, आचमन करके पितामहादि क्रमेण दक्षिणा देनी चाहिये। अब पितृब्राह्मण से "आशिष्यों मे प्रदीयता" से आशीर्वाद मांगे। "प्रतिगृह्यतां" द्वारा ब्राह्मण उत्तर दे। अब "दातारो नोऽभिबर्द्धन्तां" कहकर पात्र को उत्तान करके "वाजे वाजे" इत्यादि मन्त्र से पितृब्राह्मण का विसर्जन करे। हे व्यास! मैंने सपिण्डीकरण श्राद्ध कहा। श्राद्ध, श्राद्धकर्त्ता तथा श्राद्धफल विष्णुरूप होता है।।९-१०।।

।।दो सौ बारहवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

धर्मसार वर्णन

ब्रह्मोवाच

धर्मसारमहं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर। भुक्तिमुक्तिप्रदं सूक्ष्मं सर्वपापविनाशनम्॥१॥
श्रुतं धर्मं बलं धैर्य्यं सुखमुत्साहमेव च। शोको हरति वै नृणां तस्माच्छोकं परित्यजेत्॥२॥
कर्मदाराः कर्मलोकाः कर्मसम्बन्धिबान्धवाः। कर्माणि प्रेरयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयोः॥३॥
दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते। दानं स्वर्गञ्च राज्यञ्च दद्याद्दानं ततो नरः॥४॥
एकतो दानमेवाहुः समग्रवरदक्षिणम्। एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम्॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—हे शंकर! अब मैं सभी पापों का नाशक भुक्ति-मुक्तिदाता धर्मसार संक्षिप्ततया कहता हूं। यह लोगों का शोक सब कुछ का, धर्म-बल-धीरज-सुख-उत्साह को हर लेता है। सभी सात्त्विकी वृत्ति नष्टीभूत हो जाती है। अत: सभी प्रकार से शोक को छोड़े। कर्म ही देव है, वही लोक है, वही सम्बन्धी-बन्धु है। कर्म ही व्यक्ति को सुख किंवा दु:ख की ओर प्रेरित करता है। दान ही परम धर्म है। दान से ही व्यक्ति सभी वांछित को हासिल करता है। यही मनुष्य को राज्य तथा स्वर्ग देता है, इसलिये व्यक्ति अवश्य दान करे। विद्वान् लोग दान-दक्षिणा को एक ओर तथा भयभीत की प्राणरक्षा को दूसरी ओर तौल कर दोनों को बराबर कहते हैं॥१-५॥

तपसा ब्रह्मचर्य्येण यज्ञैः स्नानेन वा पुनः। धर्मस्य नाशका ये च ते वै निरयगामिनः॥६॥
ये च होमजपस्नानदेवतार्चनतत्पराः। सत्यक्षमादयायुक्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥७॥

न दाता सुखदुःखानां न च हर्त्तास्ति कश्चन।
स्वकृतान्येव भुञ्जन्ते दुःखानि च सुखानि च॥८॥

धर्मार्थं जीवितं येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते। सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्त्तितुम्॥९॥
सर्व एव हि सौख्येन सङ्कटान्यवगाहते। इदमेव हि लोभस्य कार्य्यं स्यादतिदुष्करम्॥१०॥

तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, स्नान करके भी जो वास्तविक धर्म को नष्ट करते हैं, वे दीर्घकाल तक नरकवास करते हैं। जो सदा होम, जप, स्नान, देवार्चन आदि सत्कार्यों में लगे रहते हैं तथा सत्य, दया, क्षमा आदि सद्गुणों पर आश्रित हैं, वे ही स्वर्ग जाते हैं। कोई भी अन्य किसी को सुख-दु:ख नहीं दे सकता, सभी अपने ही किये कर्म के मुताबिक सुख-दु:ख भोगते रहते हैं। जिन्होंने धर्मरक्षार्थ जीवन दिया है, वे सभी दुर्गति से छूट जाते हैं। जो सदा सन्तुष्ट हैं, वे फल-मूल-शाक द्वारा भी जिन्दे रहकर सुख की अनुभूति करते हैं। सुख की लालसा होने के कारण सभी दुष्कृत्य करते हैं॥६-१०॥

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभाद् द्रोहः प्रवर्त्तते।
लोभान्मोहश्च माया च मानो मत्सर एव च॥११॥

रागद्वेषानृतक्रोधलोभमोहमदोज्झितः। यः स शान्तः परं लोकं याति पापविवर्जितः॥१२॥
देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर। धार्मिकं पूजन्तीह न धनाढ्यं न कामिनम्॥१३॥
अनन्तबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण वा। अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिवेदना॥१४॥

लोभ के वशीभूत मानव दुष्कर कार्य करता है। उसके मन में जब लोभ आता है, तब क्रोध का भी आगमन होता है। मनुष्य लालच के ही कारण हिंसाकार्य करता है। मोह, माया, अभिमान, मात्सर्य, राग, द्वेष, मिथ्या आचरण लोभ से ही जन्म लेते हैं। इसलिये लोभ का त्याग करे। जो शान्त मनुष्य लोभ त्याग करता है, वह सभी तरह से पापरहित होकर परमलोक जाता है। हे शिव! देवता, मुनि, नाग, गन्धर्व, गुह्यक सभी धार्मिक की अर्चना करते हैं। धनाढ्य किंवा कामी की वे अर्चना कदापि नहीं करते। यदि मन्त्र, बल, वीर्य, प्रज्ञा, पौरुष द्वारा कोई व्यक्ति अलभ्य द्रव्य नहीं पाता, तब इस बारे में शोक करना व्यर्थ है॥११-१४॥

सर्वसत्त्वदयात्यर्था सर्वेन्द्रियविनिग्रहः। सर्वत्रानित्यबुद्धित्वं श्रेयः परमिदं स्मृतम्॥१५॥
पश्यन्निवाग्रतो मृत्युं यो धर्मं नाचरेन्नरः। अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥१६॥
भ्रूणहा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा गुरुतल्पगः। भूमिं सर्वगुणोपेतां दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते॥१७॥
न गोदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीह मे मतिः।
या गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम्॥१८॥

सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव, इन्द्रियनिग्रह, सभी वस्तु के प्रति अनित्य बुद्धि (अर्थात् सब नाशवान् है), व्यक्ति के लिये अत्यन्त श्रेय प्रदायक है। सामने खड़ी मृत्यु को जानकर भी जो धर्माचरण नहीं करता, उसका जन्म उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे बकरे के गले पर स्थित स्तन। भ्रूणहत्या, ब्रह्महत्या, पितृहत्या, गुरुपत्नी की हत्या तथा गुरुपत्नीगमन करने वाले महापापी भी सभी लक्षणपूर्ण भूमिदान से भी मुक्ति पा जाते हैं। हे वृषभध्वज! मुझे यह जानकारी अच्छी तरह है कि इस लोक में गोदान जैसा कोई प्रधान कर्म नहीं है। जो न्यायतः कमाये धन से गोदान करते हैं, वे सभी पापों से अपने खानदान की रक्षा कर देते हैं। उसे तार देते हैं॥१५-१८॥

नान्नदानात्परं दानं किञ्चिदस्ति वृषध्वज। अन्नेन धार्य्यते सर्वं चराचरमिदं जगत्॥१९॥
कन्यादानं वृषोत्सर्गस्तीर्थसेवा श्रुतं तथा। हस्त्यश्वरथदानानि मणिरत्नवसुन्धराः॥२०॥
अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
अन्नात्प्राणा बलं तेजश्चान्नाद्वीर्य्यं धृतिः स्मृतिः॥२१॥
कूपवापीतडागादि आरामाणि च कारयेत्। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते॥२२॥
साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि विशिष्यते। कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥२३॥
सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषश्च क्षमार्जवम्। ज्ञानं शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः॥२४॥

॥इति गारुडे महापुराणे धर्मसारकथनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१३॥

हे वृषध्वज! अन्न के बराबर कोई दान ही नहीं है। अन्न ही सचराचर जगत् को धारण करता है। कन्यादान, वृषोत्सर्ग, तीर्थ सेवा, जप, वेद पढ़ना, गज-अश्व-रथदान, मणिरत्न, भूदान, ये सभी कर्म अन्नदान की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं हैं। अन्न से ही प्राणीगण का प्राण, बल, तेज, वीर्य, धृति, स्मृति स्थित रहती है। कूप, पुष्करिणी, दीर्घिका, उपवन बनाकर जो कोई लोगों की सन्तुष्टि के लिये देता है, वह अपनी २१ पीढ़ियों का उद्धारक होकर विष्णुलोक जाता है। साधु संगति महत् पुण्य है। यह तो सभी तीर्थों रो अधिक फलप्रद है। तीर्थ सेवा से तो कालान्तर में फल मिलता है, लेकिन साधु संग का फल उसी समय से मिलने लगता है। सत्य, दान, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, शम, दया तथा दान ही सनातन धर्म कहा गया है।।१९-२४।।

।।दो सौ तेरहवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्त वर्णन

ब्रह्मोवाच

प्रायश्चित्तादि वक्ष्येऽहं नरकाद्यघमर्दनम्। मक्षिका विप्रुषो नारी भुवि तोयं हुताशनः।
मार्जारो नकुलश्चैव शुचीन्येतानि नित्यशः।।१।।
यः शूद्रोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्रमादाद्भुञ्जते द्विजः। अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति।।२।।
विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन।
स्नानं जप्यञ्च कर्त्तव्यं दिनस्यान्ते च भोजनम्।।३।।
अन्नं समक्षिकाकेशं शुध्येद्वान्तेन तत्क्षणात्। यश्च पाणितले भुङ्क्ते अङ्गुल्या बाहुना च यः।।४।।
अहोरात्रेण शुध्येत पिबेत्पतितवार्य्युत। पीतशेषन्तु यत्तोयं वामहस्तेन मद्यवत्।।५।।

ब्रह्मा ने कहा—अब प्रायश्चित्त कहता हूं। इन प्रायश्चित्तों को करने से नरकभोग का कारण नष्ट होता है। मक्खी, जलविन्दु, अग्नि, स्त्री, जल, बिलाड़ तथा नेवला सदा पवित्र हैं। जो व्यक्ति प्रमाद के कारण शूद्र का उच्छिष्ट अथवा स्पर्श किया भोज़न करता है, तब उसकी एक दिन-रात का उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्धि होगी। यदि किसी व्यक्ति का जूठा विप्र से छू जाये, तब स्नान-जप करके दिन के अन्त में भोजन से वह शुद्ध होगा। मक्षिका तथा केशयुक्त भोजन करने पर तत्क्षण वमन से शुद्धि होती है। किसी व्यक्ति के पीने से बचा जल पीने से मद्यपान जैसा पाप होता है। बायें हाथ से पानी पीना भी वैसा पाप है। चमड़े में रखा गया जल सदा अशुद्ध तथा पान के योग्य नहीं होता।।१-५।।

चर्ममध्यगतं तोयमशुचि स्यान्न तत्पिबेत्। अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि॥६॥
चान्द्रायणं पराकं वा द्विजातीनां विशोधनम्। प्राजापत्यन्तु शूद्रस्य पश्चाज्ज्ञाते तथापरे॥७॥
यस्तत्र भुङ्क्ते पक्वान्नं कृच्छ्रार्द्धं तस्य दापयेत्।
तेषामपि च यो भुङ्क्ते कृच्छ्रपादो विधीयते॥८॥
रजकानाञ्च शैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम्। एतदन्नञ्च यो भुङ्क्ते द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥९॥
चाण्डालकूपभाण्डेषु अज्ञानात्पिबते जलम्।
कुर्य्यात्सान्तपनं विप्रस्तदर्द्धञ्च विशः स्मृतम्॥१०॥

कोई अन्त्यज यदि अनजाने में ब्राह्मण के घर में चला आये, तब वह ब्राह्मण चान्द्रायण किंवा पराक्व्रत से शुद्ध होगा। यदि शूद्र गृह में अन्त्यज प्रवेश करे, तब शूद्र प्राजापत्य से शुद्ध होगा। अन्त्यज यदि घर में प्रवेश करे तथा वहां यदि किसी ने पक्वान्न खाया हो, तब वह मनुष्य कृच्छ्रार्द्धव्रत करे। जहां अन्त्यज ने प्रवेश किया हो, वहां अन्न भोजन करने वाले के यहां जो कोई भोजन करता है, वह चान्द्रायणव्रत से शुद्ध होगा। यदि अनजाने में किसी ब्राह्मण ने चाण्डाल के कूप का अथवा पात्र में जल पीया हो, तब वह सान्तपनव्रत करे। ब्राह्मण यदि धोबी, नट, वेणु अथवा चमड़े के व्यवसायी का अन्न खाता है, तब वह चान्द्रायणव्रत से शुद्ध होगा। वैश्य यदि चाण्डाल के कूप का किंवा पात्र में जल पीता है, तब वह ब्राह्मण की तुलना में आधा प्रायश्चित्त ही करे॥६-१०॥

पादं शूद्रस्य दातव्यमज्ञानादन्त्यवेश्मनि।
प्रायश्चित्तं त्रिकृच्छ्रं स्यात्पराकमन्त्यजागतौ॥११॥
अन्त्यजोच्छिष्टभुक्शुध्येद् द्विजश्चान्द्रायणेन च।
चाण्डालान्नं यदा भुङ्क्ते प्रमादादैन्धनञ्चरेत्॥१२॥
क्षत्रजातिः सान्तपनं यड्रीरात्रं परे तथा। एकवृक्षे तु चण्डालः प्रमादाद् ब्राह्मणो यदि।
फलं भक्षयते तत्र अहोरात्रेण शुध्यति॥१३॥
भुक्त्वोच्छिष्टमपि वान्ताच्चाण्डालं स्पृशते यदि।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु द्रुपदां वा शतं जपेत्॥१४॥

किसी शूद्र ने यदि अज्ञानता के कारण अन्त्यज के यहां भोजनादि किया हो, तब उसे ब्राह्मण के मुकाबले मात्र १/४ ही प्रायश्चित्त करना होगा। यदि ब्राह्मण चाण्डाल का उच्छिष्ट खा लेता है, तब वह चान्द्रायण से शुद्ध होगा। यदि विप्र आदि वर्ण अन्त्यज के यहां जल पीते हैं, तब ब्राह्मण छः रात्रि, क्षत्रिय चार रात्रि तथा वैश्य दो रात्रि उपवास से शुद्ध होगा। यदि क्षत्रिय प्रमाद से चाण्डाल का अन्न खाता है, तब वह सान्तपन व्रताचरण करे। क्षत्रिय-वैश्य यथाक्रमेण छः रात्रि तथा तीन रात उपवास करने से शुद्ध होंगे। यदि चाण्डाल एवं ब्राह्मण एक वृक्ष पर का फल खाते हैं, तब वह ब्राह्मण अहोरात्र व्रत से शुद्ध होगा। यदि ब्राह्मण भोजन करके जूठे मुंह चाण्डाल को छूता है, तब वह ब्राह्मण १००८ गायत्री अथवा १०० संख्यक द्रुपदादि मन्त्र जप से शुद्ध होगा॥११-१४॥

चाण्डालश्वपचान्ने वा विण्मूत्रे तु कृतेन वा।
प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्यात्पराकश्चान्त्यजागतौ॥१५॥
अकामतः स्त्रियो गत्वा पराकस्तत्र साधकः।
अन्त्यजातिप्रसूतस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥१६॥
मद्यादिदुष्टभाण्डेषु यदापः पिबते द्विजः। कृच्छ्रपादेन शुध्येत पुनः संस्कारकर्मणा॥१७॥
ये प्रत्यवसिता विप्रा वज्राग्निपवनादिषु।
अन्नपानादि संगृह्य चिकीर्षन्ति गृहान्तरम्॥१८॥
चारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि वै।
जातकर्मादिसंस्कारं वसिष्ठो मुनिरब्रवीत्॥१९॥

चाण्डाल, व्याध का अन्न, विष्ठा, मूत्र स्पर्श हो जाने पर तीन रात्र उपवास प्रायश्चित्त से शुद्धि होगी। अन्त्यज स्त्री से मैथुन करने पर पराक्व्रत ही इसका प्रायश्चित्त है। परस्त्री गमन करने वाला पराक्व्रत के आचरणरूप प्रायश्चित्त से शुद्ध होगा। अन्त्यज जाति में जन्मे के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। यदि ब्राह्मण मद्यादि से दूषित पात्र में जल पीता है, तब कृच्छ्रपाद व्रतोपरान्त पुनः संस्कार से शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण भोजन के समय वज्रपात, अग्नि का उत्पात, वात्यादि हो, तब यदि उस अन्न-पान को लेकर वे अन्य घर में जाकर भोजन करते हैं, तब वह ब्राह्मण तीन कृच्छ्र तथा तीन चान्द्रायण व्रत करके पुनः जातकर्मादि संस्कार करे। वसिष्ठ ऋषि का कहा यही नियम है॥१५-१९॥

प्राजापत्यादिभिर्द्रष्टा स्त्री शुध्येत द्विभोजनात्।
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टशुना शूद्रेण वा द्विजः॥२०॥
उपोष्य रजनीकेमां पञ्चगव्येन शुध्यति। वर्णबाह्येन संस्पृष्टः पञ्चरात्रेण वै तदा॥२१॥
अदुष्टाः सन्तताधारा वातोद्धताश्च रेणवः।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च न दुष्यन्ति कदाचन॥२२॥
नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुन्तैः पातितं फलम्।
प्रसवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगो ग्रहणे शुचिः॥२३॥
उदके चोदकस्थं तु स्थलेषु स्थलजः शुचि।
पादौ स्थाप्यौ च तत्रैव आचान्तः शुचितामियात्॥२४॥
भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते।
मूत्रेण सुरया मिश्रं तापनैः खलु शुध्यति॥२५॥

उच्छिष्ट ब्राह्मण को यदि अन्य उच्छिष्ट व्यक्ति, कुत्ता या शूद्र छूता है अथवा ब्राह्मण इनको छूता है, तब वह एक रात उपवासी रहकर पंचगव्य पान से शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मणी उक्त दोष से दूषित होने से प्राजापत्यादि से शुद्ध होती है। वर्णसंकर जाति के उच्छिष्टमुख ब्राह्मण का स्पर्श करने पर वह ब्राह्मण

पांच रात उपवास से शुद्ध होगा। अविच्छिन्न धारा वाला जल आंधी से उठी धूल दुष्ट न होकर अदुष्ट कही जाती है। स्त्री, बालक, वृद्ध कभी दूषित नहीं होते। स्त्री का मुख सदा पवित्र रहता है। पक्षी चोंच के प्रहार से जो फल गिराते हैं, वह सब पवित्र हैं। बछड़े मुख से जो मातृस्तन का दुग्ध पीते हैं, वह थन का दूध अपवित्र नहीं होता। मृग जो कुछ खाते हैं, वह भी पवित्र है। जल में उत्पन्न किसी अपवित्र वस्तु से जल अशुद्ध नहीं होता। स्थल पर यदि अपवित्र वस्तु रहती है, तब उस स्थल पर पड़ी अन्य वस्तु अपवित्र नहीं होती, तथापि उन सब वस्तु पर पैर पड़ जाने पर आचमन करे॥२०-२५॥

गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि च।
काकश्वानहतान्येव शुध्यन्ति दश भस्मना॥२६॥
शूद्रभाजनभोक्ता यः पञ्चगव्यं तूपोषितः। उच्छिष्टं स्पृशते विप्रः श्वशूद्रश्चापराधिकः॥२७॥
उपोषितः पञ्चगव्याच्छुध्यत्स्पृष्ट्वा रजस्वलाम्।
अनुदकेषु देशेषु चौरव्याघ्राकुले पथि॥२८॥
कृत्वा मूत्रपुरीषन्तु द्रव्यहस्तो न दुष्यति।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यं शौचं कृत्वा समाहितः॥२९॥

जिस कांस्यपात्र पर सुरा नहीं लगी है, तथापि अन्य किसी तरह से अपवित्र है, उसे भस्म से मार्जन करने से शुद्धि हो जाती है। मूत्र किंवा सुरा लिप्त कांस्यपात्र अग्निप्रताप से (अग्नि में तपाने से) शुद्ध होगा। गौ द्वारा सूंघा, शूद्र का जूठन लगा, कौआ तथा कुत्ते का जूठा जो कांस्यपात्र है, उसे दस बार भस्म से मांजने से वह शुद्ध होगा। यदि ब्राह्मण शूद्र के पात्र में भोजन करता है, तब वह एक रात्र मात्र उपवास द्वारा पंचगव्य पीकर शुद्ध हो जाता है। यदि ब्राह्मण उच्छिष्टमुख अन्य का उच्छिष्ट, कुत्ते अथवा शूद्र का स्पर्श हो जाये, तब पूर्वोक्त प्रायश्चित्त से वह निष्पाप हो जाता है। रजस्वला नारी का स्पर्श करने पर पंचगव्य पान से मुक्ति मिलती है। जलहीन स्थान में अथवा चोर-व्याघ्र से भरे पथ पर किसी द्रव्य को हाथ में लिये ही यदि मूत्र-मल त्याग किया जाये, तथापि वह दूषित नहीं होता। बाद में उस द्रव्य को भूमि पर रख कर स्वयं शौचादि (पवित्रता का कार्य) करने के अनन्तर वह वस्तु उठाये॥२६-२९॥

आरनालं दधि क्षीरं तक्रन्तु कृशरञ्च यत्। शूद्रादपि च तद् ग्राह्यं माषं मधु तथान्त्यजात्॥३०॥
गौडीं पैष्टीञ्च माध्वीकं विप्रादिर्यः सुरां पिबेत्।
सुरां पिबन्द्विजः शुध्येदग्निवर्णां सुरां पिबेत्॥३१॥

कांजी, दधि, दूध, मट्ठा, खिचड़ी शूद्र से लेने पर भी दोष नहीं है। उर्द तथा मधु तो अन्त्यज से भी लिया जा सकता है। ब्राह्मण लोग गौड़ी, पैष्टी अथवा माध्वी सुरापान करने पर लाल तप्त सुरा पीकर उस पाप से रहित हो सकते हैं॥३०-३१॥

वैश्ये पञ्चशतं जप्यं गायत्र्याः क्षत्रियस्य च।
शतं विप्रश्च भुक्त्वान्नं पानपात्रेण सूतके।
सूतके मृतके भुङ्क्ते शूद्रस्याष्ट शतं जपेत्॥३२॥

शुचिर्विप्रो दशाहेन क्षत्रियो द्वादशाहतः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति॥३३॥
राज्ञां युद्धेषु यज्ञादौ देशान्तरगतेषु च। बाले प्रेते च यन्मासे सद्यः शौचं विधीयते॥३४॥

अविवाहा तथा कन्या द्विजो यो मौञ्जीवर्जितः।
जातदन्तश्च बालश्च कुमारी च त्रिवर्षिका॥३५॥
तेषां शुद्धिस्त्रिरात्रेण गर्भस्त्रावे च रात्रिभिः।
सूतायां मासतुल्याश्च चतुर्थेऽह्नि रजस्वला॥३६॥

शूद्र के जनना किंवा मृतकाशौच में भोजन करने पर वैश्य ८०० बार, क्षत्रिय ५०० बार, ब्राह्मण १०० बार गायत्री जपे। जननाशौच में ब्राह्मण १० दिन में, क्षत्रिय १२ दिन में, वैश्य १५ दिन में तथा शूद्र ३० दिन में शुद्ध होगा। यदि क्षत्रिय युद्ध में, यज्ञ में अथवा देशान्तर में मृत होता है, तब सद्य:शौच (शुद्धि) का विधान है। छः माह के बालक की मृत्यु होने पर ज्ञातिगण सद्यः शुद्ध हो जाते हैं। बिना विवाह की कन्या, बिना यज्ञोपवीत का ब्राह्मण, जातदन्त बालक तथा तीन वर्ष की कन्या के मरने पर तीन रात्रि का अशौच होता है। गर्भस्त्राव होने पर तीन रात्रिकालीन अशौच होगा। कन्या जनन पर सभी वर्ण की माताओं को एक मास का अशौच होगा। रजस्वला स्त्री की शुद्धि चौथे दिन होगी॥३२-३६॥

दुर्भिक्षे राष्ट्रसंपाते सूतके मृतकेपि वा। नियमाश्च न दुष्यन्ति दानधर्मपरास्तथा॥३७॥
दीक्षाकाले विवाहादौ देवद्विजनिमन्त्रिते। पूर्वसङ्कल्पिते वापि नाशौचं मृतसूतके॥३८॥
प्रसूतपत्नीसंस्पर्शादशुचिः स्यात्तथा द्विजः। अग्नयो यत्र हूयन्ते वेदो वा यत्र पठ्यते॥३९॥
सततं वैश्वदेवादि न तेषां सूतकं भवेत्। अशुद्धे च गृहे भुक्ते त्रिरात्राच्छुध्यति द्विजः॥४०॥

दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, जननाशौच, मरणाशौच होने पर यदि धार्मिक (दान-धर्म में लगे), दीक्षित, अभिषिक्त व्रती का कोई नियम नहीं है। दीक्षाकाल में, विवाहादि में, देवद्विज को निमन्त्रण करने पर, पूर्व तय किये कार्य में मृतकाशौच किंवा जननाशौच का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। प्रसूता पत्नी के वहां स्पर्श से भी द्विज शुद्ध हो जाते हैं। जहां अग्नि में होम तथा जहां वेदाध्ययन होता है, सतत् जहां वैश्वदेव होता है, वहां सूतक नहीं होता। ब्राह्मण यदि अशुद्ध गृह में भोजन करता है, तब वह तीन रात उपवास करके शुद्ध हो जायेगा॥३७-४०॥

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा चैव रजस्वला।
अन्योन्यस्पर्शनात्तत्र ब्राह्मणी तु त्रिरात्रतः॥४१॥
द्विरात्रतः क्षत्रिया च शुद्धा वैश्या ह्युपोषिता।
शूद्रा स्नानेन शुध्येत द्रोणार्थं न विसर्जयेत्॥४२॥
काकश्वानोपनीतन्तु अन्नं बाह्यन्तु तत्त्यजेत्।
सुवर्णाद्भिः समभ्युक्ष्य हुताशे च प्रतापयेत्॥४३॥

ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्यस्त्री तथा शूद्रा रजस्वला स्त्रियों में से यदि ये ब्राह्मणी को छूयें, तब तीन

रात्रि, क्षत्रिया को छूयें, तब दो रात्रि, वैश्य स्त्री का स्पर्श करें, तब एक रात्रि उपवास से शुद्ध होंगी, लेकिन ऐसी शूद्रा तो मात्र स्नान से ही शुद्ध होगी। यदि कौये तथा कुत्ते का अन्न खा लें, तब बाकी उच्छिष्ट को घर के बाहर फेंके। काक, कुक्कुर से स्पर्शित अन्न को स्वर्ण जल छिड़क कर अग्नितप्त करे॥४१-४३॥

कूपे च पतितौ दृष्ट्वा श्वश्रृगालौ च मर्कटम्।
तत्कूपस्योदकं पीत्वा शुध्येद्विप्रस्त्रिभिर्दिनैः।
क्षत्रियोऽहर्द्वयेनैव वैश्यो वैकाहतः परम्॥४४॥
अस्थि चर्म मलं वापि मूषिकं यदि कूपतः।
उद्धृत्य चोदकं पञ्चगव्याच्छुध्येत शोधितम्॥४५॥
तडागे पुष्करिण्यादौ भस्मादि पातयेत्तथा।
षट्कुम्भानप उद्धृत्य पञ्चगव्येन शुध्यति॥४६॥
स्त्रीरजः पतितं मध्ये त्रिंशत्कुम्भान्समुद्धरेत्।
अगम्यागमनं कृत्वा मद्यगोमांसभक्षणम्॥४७॥
शुध्येच्चान्द्रायणाद्विप्रः प्राजापत्येन भूमिपः।
वैश्यः सान्तपनाच्छूद्रः पञ्चाहोभिर्विशुध्यति॥४८॥

यदि कुत्ता, सियार तथा वानर को कूप में गिरा पाया जाये, तब इस कूप का जल पीकर ब्राह्मण तीन रात, क्षत्रिय दो रात तथा वैश्य एक रात में शुद्ध होगा। यदि कूप में अग्नि, चर्म, विष्ठा अथवा चूहा दिखाई देता है, तब उस कूप का जल उलीच कर उसमें पंचगव्य छोड़े, तब वह कूप शुद्ध होगा। इस प्रकार से दूषित दीर्घिका तथा पुष्करिणी आदि में बालू छोड़े। तब उससे छः कलसी जल निकाल कर उसमें पंचगव्य छोड़े। इससे उनका जल शुद्ध होगा। यदि इनमें रजस्वला नारी ने अपने ऋतुकाल का रक्त फेंका हो, तब उसमें से तीस घड़ा पानी निकालने से वह दीर्घिका शुद्ध होगी। अगम्यागमन, मद्यपान तथा गोमांस भक्षण करने पर ब्राह्मण चान्द्रायणव्रत, क्षत्रिय प्राजापत्यव्रत, वैश्य सान्तपनव्रत तथा शूद्र पांच दिन उपवासी रहकर पाप नष्ट करे॥४४-४८॥

प्रायश्चित्ते कृते दद्याद् गवां ब्राह्मणभोजनम्।
क्रीडायां शयनीयादौ नीलीवस्त्रं न दुष्यति।
नीलीवस्त्रं न स्पृशेच्च नीली च निरयं व्रजेत्॥४९॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
ऋक्षं दृष्ट्वा विशुध्यन्ते तत्संयोगी च पञ्चमः॥५०॥

ब्राह्मणादि सर्ववर्ण पाप का उपरोक्त प्रायश्चित्त करके गौ को गोग्रास तथा ब्राह्मण को भोजन कराये। नीलवस्त्र क्रीड़ा काल में तथा सोने वाली चादर के रूप में दूषित नहीं है। अन्यत्र तो नीला वस्त्र स्पर्श भी न करे। नीलवस्त्र उपयोग में लाने वाला नरकगामी होता है। ब्रह्महत्यारा, मद्यपायी, चोर, गुरुपत्नीगामी

महापातकी है। इनके संसर्ग में जो रहता है, वह भी वैसा ही पापी हो जाता है। इस प्रकार के पापी प्रायश्चित्त के उपरान्त नक्षत्रों का दर्शन करने से शुद्ध होते हैं। इनका संसर्गी भी इसी तरह शुद्ध होगा॥४९-५०॥

ततो धेनुशतं दद्याद् ब्राह्मणानान्तु भोजनम्।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटी कृत्वा वने वसेत्॥५१॥
न्यस्येदात्मानमग्नौ वा सुसमिद्धे सुरापी तु। स्तेयी सर्वं वेदविदे ब्राह्मणायोपदापयेत्।
वृषभैकं सहस्रं गां दद्याच्च गुरुतल्पगः॥५२॥

ब्राह्मण का हत्यारा १०० धेनु दान से पवित्र होगा। तब वह ब्राह्मण भोजन कराये। ब्रह्मघाती कुटी बनाकर वन में रहे अथवा अग्नि में प्राण त्याग करे। मद्यप व्यक्ति जलती आग में प्रवेश करे। चोर व्यक्ति वेदविद् ब्राह्मण को सर्वस्व दान करे। गुरुपत्नी गामी एक वृष तथा सहस्र गौ ब्राह्मण को दान करे॥५१-५२॥

कृतपापं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने पशोः। सर्वकृच्छ्रं निपाते स्यात्कान्तारे गृहदाहतः॥५३॥
घण्टाभरणदोषेण कृतपादं मृते गवि। अस्थिभङ्गं गवां कृत्वा शृङ्गभङ्गमथापि वा॥५४॥
त्वग्भेदं पुच्छनासां वा मासार्द्धं यावकं पिबेत्।
सर्वं हस्त्यश्वशस्त्राद्यैर्निश्चयं कृच्छ्रमेव तु॥५५॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमायान्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥५६॥
वपनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्य्यव्रतानि च।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारमर्हति॥५७॥

बंधी स्थिति में कोई पशु मृत हो जाये, तब पशुस्वामी (अर्द्धकृच्छ्र) पशुहत्या का आधा प्रायश्चित्त करे। यदि पशु दुर्गम जगह पर अथवा आग से जल कर मरे, तब पशु का मालिक सर्वकृच्छ्रव्रत प्रायश्चित्त करे। भरण-पोषण ठीक न होने के कारण यदि गौ आदि मरें, तब चौथाई कृच्छ्रव्रत करना होगा। गौ की हड्डी टूटने, सींग टूटने, चर्म में छेद होने पर, पूंछ कटने पर, नाक छिदने पर आधा महीना यावक भोजन करता रहे। यदि शस्त्रादि के आघात से पशु मृत हो जाये, तब पूर्ण प्रायश्चित्त करना होगा। यदि अनजाने में विष्ठा, मूत्र अथवा सुरायुक्त द्रव्य भक्षण हो जाये, तब द्विजाति वाले पुनः अपना विहित संस्कार करें॥५३-५७॥

आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहश्च कालसम्भवः।
अन्त्यभाण्डस्थिताः सर्वे निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः॥५८॥
एकभक्तं क्रमान्नक्तं एकैकाहमयाचितम्।
उपवासः पादकृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धद्विगुणं हि यत्॥५९॥
प्राजापत्यन्तु तत्स्याच्च सर्वपातकनाशनम्।
कृच्छ्रं सप्तोपवासैश्च महासान्तपनं स्मृतम्॥६०॥

त्र्यहमुष्णं पिबेदपः त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं पिबेत् सर्पिस्तप्तकृच्छ्रमघापहम्॥६१॥

अपक्व मांस, घृत, मधु तथा स्नेह पदार्थ जब तक अन्त्यज के पात्र में हैं, तब तक अशुद्ध हैं। लेकिन जब वे उस बर्तन से निकाल लिये जाते हैं, तब वे शुद्ध हैं। एक दिन एकाहार, दूसरे दिन रात्रि भोजन, उसके पश्चात् अयाचित भोजन, उसके बाद उपवास, इस प्रकार चार दिनों में आहार संयम ही पादकृच्छ्रव्रत है। इसका दूना एक प्राजापत्य होगा। यह सर्वपापहारी है। सात दिन उपवास से एक महासन्तापनव्रत होता है। तीन दिन गर्म जलपान, तत्पश्चात् तीन दिन उष्ण दुग्धपान, तदनन्तर तीन दिन गर्म घृतपान—यह तप्तकृच्छ्रव्रत है। यह सर्वपापनाशक है॥५८-६१॥

द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा।
एकैकं वर्द्धयेत् पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्॥६२॥
पयः काञ्चनवर्णायाः श्वेतवर्णे च गोमयम्। गोमूत्रं ताम्रवर्णाया नीलवर्णाभवं घृतम्॥६३॥
दधि स्यात् कृष्णवर्णाया दर्भोदकसमायुतम्।
गोमूत्रमाषकाण्यष्टौ गोमयस्य चतुष्टयम्॥६४॥
क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश उच्यते।
घृतस्य माषकाः पञ्च पञ्चगव्यं मलापहम्॥६५॥

॥इति गारुडे महापुराणे प्रायश्चित्तकथनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१४॥
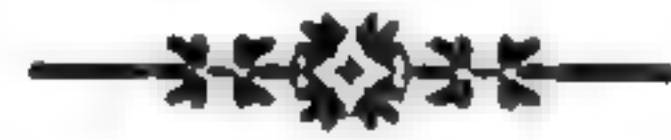
बारह दिन उपवास करना एक पराक्व्रत है। यह सर्वपाप नाशक है। शुक्लपक्षीय प्रतिपदा के दिन केवल एक ग्रास खाये। पूर्णिमा तक नित्य एक-एक ग्रास बढ़ाता जाये। तब प्रतिपदा (कृष्णपक्ष से अमावस्या तक नित्य एक-एक ग्रास कम करे। यही है चान्द्रायण व्रत। कांचनवर्णा गौ का दूध, श्वेतवर्णा गौ का गोबर, श्यामवर्णा (नीलवर्णा) गौ का घृत तथा ताम्रवर्णा गौ का गोमूत्र, कृष्णवर्णा गौ की दधि तथा कुशजल यही मिलाकर पंचगव्य है। इसमें गोमूत्र आठ मासा, गोबर चार मासा, क्षीर बारह मासा, दधि दस मासा तथा घृत पांच मासा मिला कर बनाये। यह पंचगव्य सर्वमल नाशक है॥६२-६५॥

॥दो सौ चौदहवां अध्याय समाप्त॥
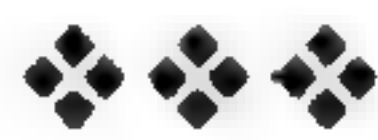
पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

युगधर्म वर्णन

ब्रह्मोवाच

मुनिभिश्चरिता धर्मा भक्त्या व्यास मयोदिताः।
यैर्विष्णुस्तुष्यते चैव सुखादिपरिचारकाः॥१॥

तर्पणेन च होमेन सन्ध्याया वन्दनेन च। प्राप्यते भगवान् विष्णुर्धर्मकामार्थमोक्षदः॥२॥

धर्मो हि भगवान् विष्णुः पूजाविष्णुस्तु तर्पणम्।
होमः सन्ध्या तथा ध्यानं धारणा सकलं हरिः॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—हे व्यास! मुनियों ने भक्तिभाव से जिन धर्मों का आचरण किया है, वह कहता हूं। इनका पालन करने से भगवान् हरि प्रसन्न होते हैं। उससे ही लोकों में सुखलाभ होता है। तर्पण, होम तथा सन्ध्यावन्दन से भगवान् हरि की आराधना करे। इसी से श्रीहरि प्रसन्न होकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष देते हैं। विष्णु ही पूजा, होम, सन्ध्या, धारणा हैं। सब विष्णुमय है॥१-३॥

सूत उवाच

प्रलयं जगतो वक्ष्ये तत्सर्वं शृणु शौनक। चतुर्युगसहस्रन्तु कल्पैकाब्जदिनं स्मृतम्॥४॥
कृतत्रेताद्वापरादियुगावस्थां निबोध मे। कृते धर्मश्चतुष्पाच्च सत्यं दानं तपो दया॥५॥

सूतजी ने कहा—हे शौनक! अब जगत्प्रलय सुनिये। चार हजार युग का एक कल्प होता है। यह ब्रह्मा का एक दिन है। अब सत्य, त्रेता, द्वापरादि युगों का वर्णन सुनिये। सत्ययुग में धर्म चार पाद होता है। वह सत्य, ध्यान, तप तथा दया ही यथार्थ चतुष्पाद धर्म है॥४-५॥

धर्मपाता हरिश्चेति सन्तुष्टा ज्ञानिनो नराः। चतुर्वर्षसहस्राणि नरा जीवन्ति वै तदा॥६॥

कृतान्ते क्षत्रियैर्विप्रा विट् शूद्राश्च जिता द्विजैः।
शूरश्चातिबलो विष्णू रक्षांसि च जघान ह॥७॥

त्रेतायुगे त्रिपाद्धर्मः सत्यदानदयात्मकः। नरा यज्ञपरास्तस्मिंस्तथा क्षत्रोद्भवं जगत्॥८॥
रक्तो हरिर्नरैः पूज्यो नरा दशशतायुषः। तत्र विष्णुर्भीमरथः क्षत्रिया राक्षसानहन्॥९॥

द्विपादविग्रहो धर्मः पीतताञ्चाच्युते गते।
चतुःशतायुषो लोका द्विजक्षत्रोद्भवाः प्रजाः॥१०॥

सत्ययुग में हरि ही धर्मपालन करते हैं। वे एवंविध हरि को समझते हैं। वे ४००० वर्ष जीवित रहते हैं। सत्ययुग के अवसान के समय क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों को हरा देंगे। वैश्य तथा शूद्र ब्राह्मण से पराजित होंगे। अमित बलवान् विष्णु राक्षसों का वध करेंगे। त्रेता में सत्य, दान, दयारूपी त्रिपाद धर्म रहता है। सभी मनुष्य यज्ञ करेंगे। पृथ्वी पर क्षत्रिय बढ़ेंगे। इस युग में सभी मानव विष्णुभक्त रहेंगे। मनुष्य की आयु

एक हजार वर्ष रहेगी। क्षत्रिय राक्षसों का वध करेंगे। द्वापरयुग में धर्म के दो ही पाद बचेंगे। इस समय अच्युत भगवान् का वर्ण पीला होगा। लोगों की आयु होगी ४०० वर्ष। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों से धरती भर जायेगी॥६-१०॥

तत्र दृष्ट्वाल्पबुद्धींश्च विष्णुर्व्यासस्वरूपधृक्। तदेकं तु चतुर्वेदं चतुर्द्धा व्यभजत् पुनः॥११॥
शिष्यानध्यापयामास समस्तान् तान् निबोध मे।
ऋग्वेदमथ पैलन्तु सामवेदञ्च जैमिनिम्॥१२॥
अथर्वाणं सुमन्तुं तु यजुर्वेदं महामुनिम्। वैशम्पायनसञ्ज्ञन्तु पुराणं सूतमेव च।
अष्टादश पुराणानि यो वेत्ति हरिरेव हि॥१३॥

तब भगवान् विष्णु ने सभी लोगों को अल्पमेधा देखकर व्यास का रूप ग्रहण किया। उन्होंने एक वेद को चतुर्धा बांट दिया। व्यासदेव ने शिष्यों को वेद पढ़ाया। अब उसका विशेष स्वरूप श्रवण कीजिये। व्यास ने पैल ऋषि को ऋग्वेद, जैमिनी को सामवेद, सुमन्तु को अथर्ववेद, महामुनि वैशम्पायन को यजुर्वेद तथा सूत को अट्ठारह महापुराण पढ़ाया। अट्ठारह महापुराणों से एकमात्र श्रीहरि ही विदित होते हैं॥११-१३॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंसानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥१४॥
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा। भविष्यन्नारदीयञ्च स्कान्दं लिङ्गं वराहकम्॥१५॥
मार्कण्डेयं तथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च। कौर्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादशसमुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम्॥१६॥

पुराणों में आदिसृष्टि, प्रजासृष्टि, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित कहा गया है। यही लक्षण वाला शास्त्र-पुराण कहा जाता है। सभी महापुराण को मिलाकर पुराण संख्या १८ ही है। यथा—ब्राह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारदीय, स्कन्द, लिंग, वराह, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त्त, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, वायु, ब्रह्माण्ड। ये ही अट्ठारह महापुराण हैं॥१४-१६॥

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु। आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम्॥१७॥
तृतीयं स्कन्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं स्यान्नन्दीश्वरभाषितम्॥१८॥
दुर्वाससोक्तमाश्चर्य्यं नारदोक्तमतः परम्। कपिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम्॥१९॥
ब्रह्माण्डं वारुणञ्चाथ कालिकाह्वयमेव च। माहेश्वरं तथा साम्बमेवं सर्वार्थसञ्चयम्।
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम्॥२०॥

इन १८ महापुराण के अतिरिक्त अन्य अनेक उपपुराणों का वर्णन मुनिगण ने किया है। यथा—सनत्कुमार द्वारा कही सनत्कुमार संहिता, नृसिंहपुराण, कुमारोक्त स्कन्दपुराण, शिवधर्माख्य पुराण नन्दीश्वर कथित नन्दीश्वरपुराण ये चार उपपुराण हैं। इनके अतिरिक्त दुर्वासा कथित तथा नारदोक्त उपपुराण भी हैं। कपिलपुराण, वामनपुराण, उशना कथित औशनस पुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वारुणपुराण, कालिकापुराण,

महेश्वरपुराण, साम्बपुराण भी उपपुराण हैं। इन सब ग्रन्थों में विभिन्न विषय कहे गये हैं तथा वर्णित एवं मीमांसित हैं। एतद्व्यतिरिक्त पराशरोक्त, मरीचिकथित, भृगु प्रणीत अनेक धर्मशास्त्र हैं॥१७-२०॥

पुराणं धर्मशास्त्रञ्च वेदस्त्वङ्गानि यन्मुने।
न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम्।
गन्धर्वश्च धनुर्वेदो विद्या ह्यष्टादश स्मृताः॥२१॥

द्वापरान्तेन च हरिर्गुरुभारमपाहरत्। एकपादस्थिते धर्मे कृष्णत्वञ्चाच्युते गते॥२२॥
जनास्तदा दुराचारा भविष्यन्ति च निर्दयाः। सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः।
कालसञ्चोदितास्तेऽपि परिवर्त्तन्त आत्मनि॥२३॥
प्रभूतञ्च यदा सत्त्वं मनोबुद्धीन्द्रियाणि च। तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रतः॥२४॥
यदा कर्मसु काम्येषु शक्तिर्यशसि देहिनाम्।
तदा त्रेता रजोभूतिरिति जानीहि शौनक॥२५॥

पुराण, धर्मशास्त्र, चारों वेद, षडङ्ग, न्याय, मीमांसा, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, गन्धर्वशास्त्र, धनुर्वेद ये हैं अट्ठारह विद्या। द्वापर युग के अन्त होने पर हरि पृथिवी का भार हरण करते हैं। तदनन्तर धर्म का मात्र एक ही पैर बाकी बचा रहता है। तब अच्युत हरि स्वयं कृष्णरूप से अवतार लेते हैं। तब सभी लोग दुराचारी एवं दयाहीन रहते हैं। सत्व, रजः, तमः गुणत्रय पुरुष में रहते हैं। काल के द्वारा ये सभी गुण परिवर्तित होते हैं। जब सभी लोग अत्यन्त शक्तियुक्त होते हैं, लोगों की बुद्धि-मन-इन्द्रिय-मन बली रहते हैं, वही सत्ययुग है। तब सभी तपःश्चरण में लगे रहते हैं। जब प्राणीगण में काम्यकर्म, शक्ति तथा यश रहता है, तब त्रेतायुग आविर्भूत होता है। हे शौनक! तब रजोगुण प्रबल रहता है॥२१-२५॥

यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भश्च मत्सरः।
कर्मणाञ्चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः॥२६॥
यदा सदानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसादिसाधनम्।
शोकमोहौ भयं दैन्यं स कलिस्तमसि स्मृतः॥२७॥
यस्मिन् जनाः कामिनः स्युः शश्वत् कटुकभाषिणः।
दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः॥२८॥
राजानश्च प्रजाभिक्षाः शिश्नोदरपराजिताः।
अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः॥२९॥
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः।
ह्रस्वकाया महाहाराश्चौर्य्यास्तु साधवः स्मृताः॥३०॥

जब लोभ, असन्तोष, मान, दम्भ, मात्सर्य एवं काम्यकर्म प्रबल रहते हैं, तब निश्चित रूप से उसे द्वापरयुग जाने। इसमें रजः-तमः प्रबल रहता है। जिस काल में मिथ्या आचरण, तन्द्रा, निद्रा, हिंसा द्वारा

सुख-मोह-भय-दैन्य प्रबल होते हैं, वही कलिकाल है। सभी अत्यन्त कटुभाषी एवं कामी होते हैं। दस्युओं से जनता तथा पाखण्ड से सभी वेद दूषित हो जाते हैं। कलिकाल में राजा प्रजा का सर्वस्व हर लेते हैं। सभी लोग शिश्नेन्द्रिय तथा उदर से परास्त हो जाते हैं। ब्राह्मण व्रतरहित तथा अपवित्र बने रहते हैं। भिक्षुक लोग सदा अनेक कुटुम्ब से घिरे रहते हैं। तपस्वी गावों में रहते हैं। संन्यासी अर्थलोभी हो जाते हैं। मनुष्य नाटे होकर भी खूब खाते हैं। लोग चोरी, कपट, हिंसा, झूठ, परदाराति आदि साहसिक कामों में लगे रहते हैं। चोर ही साधु कहे जाते हैं॥२६-३०॥

त्यक्ष्यन्ति भृत्याश्च पतिं तापसस्त्यक्ष्यति व्रतम्।
शूद्राः प्रतिग्रहिष्यन्ति वैश्यस्तपःपरायणः॥३१॥
उद्विग्नाः सन्ति च जनाः पिशाचसदृशाःप्रजाः।
अन्यायभोजनेनाग्निदेवतातिथिपूजनम् ॥३२॥
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पित्र्युदकक्रियाम्।
स्त्रीपराश्च जनाः सर्वे शूद्रप्रायाश्च शौनक॥३३॥
बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः।
शिरकण्डूयनपरा आज्ञां भेत्स्यन्ति भर्त्सिताः॥३४॥
विष्णुं न पूजयिष्यन्ति पाषण्डोपहता जनाः।
कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुणः॥३५॥

कलिकाल में सेवक स्वामी का तथा तपस्वी व्रतकार्य का त्याग करते हैं। शूद्र दान लेंगे। वैश्य तपःरत रहेंगे। कलि में लोग सदा उद्विग्न रहेंगे। प्रजाजन पिशाचवत् व्यवहार करेंगे। सभी अन्याय से उपार्जित द्रव्यों से अग्नि, देवता तथा अतिथि पूजा करेंगे। कलि में कोई भी पितरों का तर्पणादि नहीं करेगा। सभी स्त्री के वशीभूत तथा शूद्रवत् रहेंगे। कलि में लोगों को बहुत सन्तान होगी, तथापि सभी अल्पभाग्य होंगे। स्त्रियां भाग्यहीन तथा अपने भाग्य को कोसती रहेंगी। वे पति के तिरस्कार करने पर पति की आज्ञा का लंघन करेंगी। इस काल में कोई विष्णु की अर्चना नहीं करेगा। सभी पाखण्डरत रहेंगे। उनका नाश होता रहेगा। विप्र भी अपने कर्मदोष से दूषित रहेंगे। हे विप्र! भले ही कलि दोषों की खान हो, तथापि उसमें एक महागुण भी है॥३१-३५॥

कीर्त्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत्।
कृते यज्ञादिना विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम्॥३६॥
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्।
तस्माद् ध्येयो हरिर्नित्यं ध्येयः पूज्यश्च शौनक॥३७॥

॥इति गारुडे महापुराणे युगधर्मकथनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१५॥

इस कलि में सभी लोग कृष्णनाम का कीर्त्तन करके संसार बन्धन से मुक्त होकर परमपद लाभ करेंगे। सत्य में यज्ञों से, त्रेता में जप से, द्वापर में हरि की सेवा से जो फल मिलता है, वह केवल कलिकाल में हरि नाम कीर्त्तन से सब मिल जाता है। हे शौनक! सदा हरि ध्यान तथा अर्चना करे।।३६-३७।।

।।दो सौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नैमित्तिक प्रलय कथन

सूत उवाच

चतुर्युगसहस्रान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः। अनावृष्टिश्च कल्पान्ते जायते शतवार्षिकी।।१।।

उत्तिष्ठन्ति तदा रौद्रा दिवि सप्त दिवाकराः।
ते तु पीत्वा जलं सर्वं शोषयन्ति जगत्त्रयम्।।२।।

भूर्भुवःस्वर्महर्लोकं चराचरं जनं तथा। रुद्रो भूत्वासौ विष्णुश्च पातालानि दहत्यथ।।३।।

विष्णुर्दहेत्त्रिलोकञ्च मुखान्मेघान् सृजत्यलम्। वर्षन्ते च वर्षशतं नानामोहमहाघनाः।।४।।

विष्णुरेकार्णवे भूते वर्षे ब्रह्मस्वरूपधृक्। शेतेऽनन्तासने विष्णुर्नष्टे स्थावरजङ्गमे।।५।।

सुप्त्वा वर्षसहस्रं स जगद्भूयोऽसृजद्धरिः। अथ प्राकृतिकं वक्ष्ये प्रलयं शृणु शौनक।।६।।

सूतजी ने कहा—चार हजार युग के पश्चात् ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय होता है। कल्प अन्त होने पर सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं होती है। तब प्रखर किरण वाले सातों सूर्य उग जाते हैं। इससे ये सभी जगत् का जल पीकर तीनों लोकों को सूखा कर देते हैं। एक विष्णु ही रुद्ररूपी होकर भुवर्लोक, भूलोक, स्वर्गलोक, जनलोक, तपोलोक, महर्लोक तथा पाताल को जला देते हैं। तब विष्णु के मुख से महा वायु निकलने लगता है। त्रैलोक्य को दग्ध करके विष्णु के मुख से नानारूपी मोहमय महामेघ की सृष्टि हो जाती है। ये मेघ १०० वर्ष तक वर्षा करते हैं। पूर्वोक्त मेघ निरन्तर बरसते जगत् को जल से भर देते हैं। तब स्थावर-जंगम नष्ट होने से एकार्णव ही रहता है। उसमें ब्रह्मरूपी विष्णु अनन्त की शय्या पर सोते हैं। हे शौनक! भगवान् सहस्र वर्ष तक सोकर पुनः सृष्टि करते हैं। यही है नैमित्तिक प्रलय। हे शौनक! अब प्राकृतिक प्रलय सुनिये।।१-६।।

पूर्णे संवत्सरशते संहृत्य सकलं जगत्। ब्राह्मणं न्यस्य देहे हि मुक्तो योगबलैर्हरिः।।७।।

अनावृष्ट्यर्कसम्पन्ना आसन् मेघास्तथा द्विज। शतं वर्षाणि वर्षद्भिर्मेघैरण्डं प्रपूर्य्यते।।८।।

अन्तर्गतेन तोयेन भिन्नमण्डं जगत्पतेः। पूर्णे ब्रह्मायुषि गते भिद्यतेऽम्भसि लीयते।।९।।

एवं सा जगदाधारा तोये चोर्बी प्रलीयते।
आपस्तेजसि लीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते॥१०॥
वायुः खे खञ्च भूतादौ विशते च तदा महान्।
महान् प्रपद्यते व्यक्ता प्रकृतिः पुरुषे नरे॥११॥
शतवर्षं हरिः शेते सृजतेऽथ दिनागमे। अव्यक्तादिक्रमेणैव व्यक्तीभूतं चराचरम्॥१२॥

॥इति गारुडे महापुराणे नैमित्तिकप्रलयकथनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१६॥

जब ब्रह्मा का सौ वर्ष समाप्त होता है, तब श्रीहरि योगबल से जगत् का संहार करके अपने देह में ब्रह्मसंन्यास करके अवस्थान करते हैं। इस समय ज़ो ब्रह्मलोक में रहते थे, वे भी विष्णु के परमपद में लयीभूत हो जाते हैं। तब अनावृष्टि के कारण नभमण्डल में वर्षा करने वाला अनेक मेघ संचार करते हैं। सौ वर्ष की लगातार वर्षा होने के कारण ब्रह्माण्ड जल से व्याप्त हो जाता है। तब अन्दर पहुंचे जल से जगत्पत्ति का वह अण्ड फूट जाता है। ब्रह्मा की आयु पूर्ण होते ही वह भिन्न अंड जल में, वह जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में तथा आकाश तामस अहंकार में प्रवेश कर लेता है। वह तामस अहंकार महत्तत्व प्रकृति में लयीभूत हो जाता है। अब प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है। तब हरि सौ वर्ष की निद्रा के बाद पुनः दिन के समय सृष्टि प्रारम्भ करते हैं। सबसे पहले अव्यक्त (समस्त भूतसूक्ष्मों की) सृष्टि के पश्चात् क्रमशः वे व्यक्तरूप स्थूल भूत समूह की सृष्टि करते हैं। तब पुनः चराचर जगत् व्यक्त होता है॥७-१२॥

॥दो सौ सोलहवां अध्याय समाप्त॥
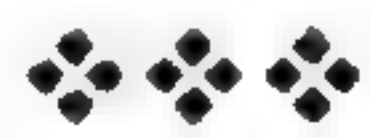
सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पापों के परिणाम का वर्णन

कुमार उवाच

आध्यात्मिकादितापांस्त्रीन् ज्ञात्वा संसारचक्रवित्।
उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम्॥१॥
संसारचक्रं वक्ष्येऽहमादावुत्क्रान्तिकालतः। यद्विना पुरुषार्थो न लीनः स्यात्परमात्मनि॥२॥
ऊर्ध्ववासो नरस्त्यक्त्वा देहमन्यत् प्रपद्यते। नीयते द्वादशाहेन यमस्य यमपुरुषैः॥३॥

तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह।
यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति यमलोके तदश्नुते॥४॥
गतश्च नरकं पापात् स्वर्गं याति स्वपुण्यतः।
पापकृद् याति नरकं पुण्यकृद् याति वै दिवम्॥५॥

सूतजी ने कहा—मनुष्य संसार यात्रा में आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तापत्रय भोगता है। इनकी जब मनुष्य को जानकारी होती है, तब उसमें संसार के प्रति वैराग्य उपजता है और वह परमपद में लीन हो जाता है। अब वही संसारचक्र कहता हूं। इसी संसारचक्र की गति को समझे बिना पुरुष की पुरुषार्थ सिद्धि नहीं होती तथा उसका परमात्मा में लय नहीं हो पाता। व्यक्ति देह त्यागोपरान्त परलोक जाकर अन्य देहलाभ करता है। प्राणीगण की मृत्यु होने पर यमगण द्वादशाह के उपरान्त उसे लेकर यम को अर्पित कर देते हैं, जिस मनुष्य के बन्धु उसे तिलजल तथा पिण्ड देते हैं, वह व्यक्ति यमलोक में खाता है। मानव यमलोक जाकर पाप के कारण नरक तथा पुण्य के कारण स्वर्ग जाता है। पापी नरक में तथा पुण्यकर्मा स्वर्गगामी होते हैं॥१-५॥

स्वर्गाच्च नरकात् त्यक्तः स्त्रीणां गर्भे भवत्यपि।
नाभिभूतश्च तस्यैव याति बीजद्वयं हि तत्॥६॥
कलनं बुद्बुदमयं ततः शोणितमेव च। पेश्या पलसमोऽण्डः स्यादङ्कुरं तत उच्यते॥७॥
उपाङ्गान्यङ्गुलीनेत्रनासान्यग्रबलानि च। आवहं याति चाङ्गेभ्यस्तत्परं तु नखादिकम्॥८॥
त्वचो रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम्।
नरश्चाधोमुखः स्थित्वा दशमे च स जायते॥९॥
ततस्तु वैष्णवी मायाऽऽवृणोत्यत्यन्तमोहिनी।
बालत्वं तु कुमारत्वं यौवनं वृद्धतामपि॥१०॥
ततश्च मरणं तत्तद्धर्ममाप्नोति मानवः।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्राम्यते घटियन्त्रवत्॥११॥

जब पाप-पुण्य का भोग समाप्त होता है अर्थात् तब स्वर्ग-नरक त्याग कर प्राणी स्त्री के गर्भ में जाता है। तब वह नाभिभूत बीजद्वय रूपेण उत्पन्न होता है। वे दोनों बीज बुद्बुदाकार होकर रक्तरूपेण परिणत होते हैं। उससे पेशी-मांस उत्पन्न होकर गर्भ पिण्डाकृति होता है। क्रमशः उसी पिण्ड से अंकुर जन्म लेता है। क्रमशः अंग बनते हैं। उंगली, मुख, नेत्र, नासा, कर्ण आदि पैदा होते हैं। क्रमशः उसमें बल संचार होता है। तब नखादि एवं चर्म, लोग जन्म लेते हैं। तब केश उगने लगता है। अब वह प्राणी मनुष्य की आकृति लेकर गर्भ में अधोमुखी रहता है। दसवें मास वह मातृगर्भ से बाहर आकर जन्म लेता है। जन्म लेते ही उसे मोहिनी वैष्णवी माया ढक लेती है। वह क्रमशः बाल्य, कौमार, यौवन तथा वृद्धत्वलाभ करता है। पुनः वह मृत्युमुख में गिरा था। मानव घटीयन्त्र (घड़ी) की तरह एवंविध वह घटीयन्त्र की तरह संसार चक्र में घूमता है॥६-११॥

नरकात्प्रतिमुक्तस्तु पापयोनिषु जायते। पतितात्प्रतिगृह्याथ अधोयोनिं व्रजेद् बुध॥१२॥
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमिर्भवति याचकः।
उपाध्यायव्यलीकन्तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः॥१३॥
तज्जायां मनसा वाञ्छंस्तद्द्रव्यं वाप्यसंशयः।
गर्दभो जायते जन्तुर्मित्रस्यैवापमानकृत्॥१४॥
पितरौ पीडयित्वा तु कच्छपत्वञ्च जायते।
भर्त्तुः पिण्डमुपाश्वस्तो वञ्चयित्वा तमेव यः॥१५॥
सोऽपि मोहसमापन्ने जायते वानरो मृतः। न्यासोपहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः॥१६॥
असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः। विश्वासहर्त्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते॥१७॥
यवधान्यानि संहृत्य जायते मूषको मृतः। परदाराभिमर्षात्तु वृको घोरोऽभिजायते॥१८॥
भ्रातृभार्य्याप्रसङ्गत्वे कोकिलो जायते नरः। गुर्वादिभार्य्यागमनाच्छूकरो जायते नरः॥१९॥
यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः। देवतापितृविप्राणामदत्त्वा यो समश्नुते॥२०॥
प्रमुक्तो नरकाद्वापि वायसः सम्प्रजायते। ज्येष्ठभ्रात्रपमानाच्च क्रौञ्चयोनौ प्रजायते॥२१॥
शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते।
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तःकीटको भवेत्॥२२॥
कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा।
अशस्त्रं पुरुषं हर्त्ता नरः सञ्जायते खरः॥२३॥
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते।
भोजनञ्चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः॥२४॥
हत्वान्नञ्चैव मार्जारस्तिलहृच्चैव मूषिकः।
घृतं हृत्वा च नकुलः काको मद्गुरमामिषम्॥२५॥

पापी लोग नरक भोग के पश्चात् पाप योनि में उत्पन्न होते हैं। पतित से दान लेने पर वह मनुष्य निकृष्ट जाति में जन्म लेता है। ऐसा याचक नरक यातना भोग कर कृमि होता है। जो उपाध्याय के साथ दुष्ट आचरण करता है, उसे कुत्ते की योनि मिलती है। मन ही मन गुरु की पत्नी अथवा गुरु के द्रव्य की अभिलाषा करने वाला गर्दभ योनि में जन्म लेता है। मित्र का अपमान करने वाला हीन योनि में जन्मता है। पिता-माता पर प्रहार करने वाला कच्छप होता है। पति से धोखा देकर उसका अन्न लेने वाली नारी मरने के उपरान्त मूढ़-मोहयुक्त वानरयोनि पाती है। किसी व्यक्ति की अमानत में खयानत करने वाला पापी नरक भोग के उपरान्त कृमि होता है। सदा लोगों से ईर्ष्या करने वाला नरक भोग के उपरान्त राक्षस होता है। विश्वासघाती मछली योनि पाता है। परायी नारी का अपहर्त्ता नरक भोग कर भयंकर व्याघ्र होता है। यव-धान्यादि हरने वाला मृत्यु के बाद मूषक होता है। भाई की पत्नी का हरण करने वाला कोयल होकर उत्पन्न

होता है। गुरुपत्नी हारी शूकर होता है। जो मानव पितृ, देवता तथा ब्राह्मण को प्रदान किये बिना अन्न ग्रहण करता है, वह नरक भोग कर कौआ होता है। यज्ञ-दान-विवाह में विघ्न करने वाला कृमि होता है। बड़े भाई का अपमान करने वाला क्रौञ्च होता है। यदि शूद्र ब्राह्मणी से संभोग करेगा, तब वह मृत्यु के उपरान्त कृमि होगा। यदि शूद्र ब्राह्मणी से सन्तानोत्पत्ति करता है, तब वह घुन होकर जन्म लेगा। कृतघ्न मनुष्य कृमि-कीट-पतंग तथा बिच्छू होगा। शस्त्रहीन का वध करने वाला नरकभोग करके क्रिमि होगा। स्त्रीवध तथा बालकवध करने वाला नरकभोग के उपरान्त कीट होगा। भोजन चोरी करने वाला मक्खी होगा। अन्न हरणकर्त्ता पापी मनुष्य विड़ाल होगा। तिल हरण करने वाला मूषिक, घृतहारी नेवला, मत्स्य-मांसहरण करने वाला कौआ होगा॥१२-२५॥

मधु हृत्वा नरो दंशः पूपं हृत्वा पिपीलिकः।
अपो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते॥२६॥
हृते काष्ठे च हारीतः कपोतो वा प्रजायते।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते॥२७॥
कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वह्निहर्त्ता वकस्तथा। मयूरो वर्णकं हृत्वा शाकपत्रञ्च जायते॥२८॥
जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्वपहन्नरः।
छुछुन्दरिः शुभान्गन्धान् शशं हृत्वा शशो भवेत्॥२९॥
षण्डः कलापहरणे काष्ठवृत्तृणकीटकः। पुष्पं हृत्वा दरिद्रस्तु पङ्गुर्यावकहन्नरः॥३०॥
शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः। गृहहन्नरकान्गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान्॥३१॥
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्हा च तरुतां व्रजेत्।
एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णादिहारिणाम्॥३२॥

मधुहरण करने वाला दंशक प्राणी, पिष्टक हर्त्ता चींटी, जलहारी पापी कौआ होकर जन्म लेगा। लकड़ी हरणकारी हारीत पक्षी किंवा कौआ होकर उत्पन्न होगा। कांचन पात्र चोर कृमि होगा। कपास वस्त्र हरणकर्त्ता क्रौञ्च तथा वह्निहर्त्ता बकयोनि में उत्पन्न होगा। शाक-पत्रहारी नरक भोग कर मयूर होगा। लाल वस्त्र हरण करने वाला चकोर योनि में जन्म लेगा। शुभ गन्ध हरण करने वाला छछुन्दर होगा। शशक हारी भी शशक होकर उत्पन्न होगा। मयूर की पूंछ हरण करने वाला नरक भोग के उपरान्त नपुंसक होगा। काष्ठहारी तृण कीट होगा। पुष्पहारी दरिद्र होगा। यावकहारी पंगु होगा। शाकहर्त्ता हारीत पक्षी, जलहर्त्ता चातक होगा। घर हरण करने वाला घोर रौरव आदि नरकगमन करेगा। तृण, गुल्म, लता, वल्ली अपहरणकारी नरक भोग कर वृक्षयोनि में जन्म लेगा। यही क्रम गौ, स्वर्ण आदि हरने वाले की यही गति होगी॥२६-३२॥

विद्यापहारी मूकश्च गत्वा च नरकान्बहून्।
असमिद्धे हुते चाग्नौ मन्दाग्निः समजायत॥३३॥
परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्य्यादघातनम्। नैष्ठुर्य्यं नैर्घृणत्वञ्च परदारोपसेविनाम्॥३४॥

परस्वहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सनम्। निकृत्य वञ्चनं नृणां कार्पण्यञ्च नृणां नरः।
उपलक्षणादि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु॥३५॥
दया भूतेषु संवादः परलोकं प्रतिक्रिया। सत्यं हितार्थमुक्तिश्च वेदप्रामाण्यदर्शनम्॥३६॥
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिसेवनं साधुसंयमः। सत्क्रियाद्यसनं मैत्री स्वर्गस्य लक्षणं विदुः।
अष्टाङ्गयोगविज्ञानात्प्राप्नोत्यात्यन्तिकं फलम्॥३७॥

।इति गारुडे महापुराणे पारपरिणामकथनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१७॥

विद्याहारी दीर्घकाल नरक भोग कर गूंगा होकर उत्पन्न होगा। जो शिखारहित अग्नि में आहुति देता है, उसकी जठराग्नि चिरकाल तक मन्द रहेगी। जो परनिन्दा करे तथा अन्य की मर्यादा नष्ट करे, उपकार न माने, जो निर्दयी, निष्ठुर, पराई स्त्री में रत, पराया धन हरण करने वाला, देवनिन्दक, सदा ठगने वाला, कंजूस होता है, वह नरक भोग कर उन पापसूचक चिह्नयुक्त होकर जन्म लेता है। मानव पूर्वोक्त पापों से पतित होकर आगे सभी प्राणीगण के प्रति दया करे तथा परलोक हेतु प्रयत्न करे। सदा सत्य बोले। अन्य से हितकर बात कहे। वेद को सत्य माने, गुरुओं, ऋषियों तथा सिद्धों की सेवा करे। सदा साधु समागम करे। सत्कार्य करे। सर्वसाधारण के साथ मैत्री हेतु तत्पर रहे। यही साधुलक्षण हैं। ऐसे साधु लोग अष्टांग योग द्वारा सद्गति पाते हैं॥३३-३७॥

॥दो सौ सत्रहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अंगसहित महायोग वर्णन

सूत उवाच

वक्ष्ये साङ्गं महायोगं भुक्तिमुक्तिकरं परम्। सर्वपापप्रशमनं भक्त्यानुपठितं शृणु॥१॥
ममेति मूल दुःखस्य न ममेति निवर्त्तते। दत्तात्रेयो ह्यलर्काय इममाह महामतिः॥२॥
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नो ममेति स्कनधवान्महान्। गृहक्षेत्राश्च शाखाश्च यत्र दाराभिपल्लवः॥३॥
धनधान्ये महापत्रे पापमूलोऽतिदुर्गमः। विधिवत्सुखशान्त्यथ जातो ज्ञानमहातरुः॥४॥

सूतजी ने कहा—अब मैं परम भुक्ति-मुक्तिप्रद महायोग अंगों के साथ कहता हूं। जो इसे भक्ति के साथ पढ़ता है, वह सर्वपापरहित होगा। मैं तथा मेरा—यह ज्ञान ही दुःख का कारण है। यह सांसारिक

लोगों में सदा बना रहता है। महामति दत्तात्रेय मुनि ने राजा अलर्क से यही योग कहा था। प्रथमतः अहंकार रूप अंकुर अंकुरित होकर "यह मेरा है" यह ज्ञानस्वरूप महास्कन्ध उत्पन्न होता है। यही जानने के कारण अज्ञानवृक्ष का अंकुर पैदा होता है। यही उस वृक्ष का तना भी है। इस वृक्ष की शाखा है गृह तथा क्षेत्र। पत्ते हैं पत्नी-पुत्र। धन-धान्यादि इसके पत्र हैं। पाप ही इस पेड़ की जड़ है। यह दीर्घकाल में बढ़ता है। पाप-पुण्य इस वृक्ष के पुष्प हैं। सुख-दुःख इसके महाफल हैं। जो संसारमार्ग पर थक कर सुख-शान्ति पाने के लिये इस वृक्ष की शाखा का आश्रय लेने के भ्रान्तिज्ञान से व्याकुल तथा चेष्टाहीन हो जाते हैं, वास्तविक सुख-शान्ति की खोज नहीं कर पाते, उन सभी मुग्ध मनुष्यों को उस भ्रान्ति से उत्पन्न क्षणिक सुख-शान्ति के अतिरिक्त आत्यन्तिक सुख-शान्ति पाने की संभावना कहां?॥१-४॥

छिन्नो विद्याकुठारेण ते गता लयमीश्वरे। प्राप्य ब्रह्मरसं पीतं नीरजस्कमकण्टकम्॥५॥

प्राप्नुवन्ति पराः प्राज्ञाः सुखनिर्वृतिमेव च।
मूर्त्तेन्द्रियलयं नूनं न त्वं राजन् न चाप्यहम्॥६॥

जो विद्यारूपी कुठार से इस वृक्ष को काट पाते हैं, वे ही परमब्रह्म में लय पाकर निर्मल ब्रह्मरस पान करते हैं। प्राज्ञ लोग ही उस ब्रह्मरस का पान करके परम निवृत्ति लाभ करते हैं। अन्य किसी विषय की उनको कामना नहीं रहती। हे राजन्! तब उनकी ये मूर्त इन्द्रियां लय पा जाती हैं। हे राजन्! मैं अथवा तुम कोई उसे नहीं जानता॥५-६॥

न तन्मात्रादिकं वाचा नैवान्तःकरणं तथा। कं वा पश्यसि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः॥७॥

मृतः परेऽह्नि क्षेत्रज्ञः संजातोऽयं गुणात्मकः।
एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनो नृप॥८॥
ज्ञानपूर्ववियोगोऽसौ ज्ञाने नष्टे च योगिनः।
सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं पुत्र ते गुणैः॥९॥

तद्गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति। यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानाज्ञानेन चान्यथा॥१०॥

अर्थात् कोई भी तन्मात्र एवं अन्तःकरण को वाणी से नहीं बतला सकता। हे राजन्! तुम हममें से किसे प्रधान कहते हो? जीव-मरण के पश्चात् गुणात्मक (त्रिगुणयुक्त) जन्म लेता है। हे नृप! जीव तथा आत्मा का ऐक्य रहते हुये भी अज्ञान के कारण ये अलग-अलग अनुभूत होते हैं। जब तक अज्ञान, है, तब तक आत्मा एवं जीव की पृथक्ता है। अज्ञान नष्ट होते ही यह पार्थक्य दूर हो जाता है। हे वत्स! तब ब्रह्म के साथ ऐक्य होने पर व्यक्ति मुक्त हो जाते हैं। जिसमें निवास होता है, वही गृह है। जिससे जीवन बचे, वह है भोज्य। जिससे मुक्ति मिले, वही है ज्ञान। इसके सिवाय सब कुछ अज्ञान ही है॥७-१०॥

भवभोगेन पुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव।
कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानां क्षयं त्वकरणात्तथा॥११॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचं द्विविधमीरितम्॥१२॥

सन्तोषस्तपसा शान्तिर्वासुदेवार्चनं दमः। आसनं पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः॥१३॥

प्रत्येकं त्रिविधः सोऽपि पूरकुम्भकरेचकैः।
लघुर्यो दशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः॥१४॥
त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः स उदाहृतः। जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतस्त्वगर्भकः॥१५॥

भवभोग द्वारा ही पुण्य अथवा अपुण्य होता है। अनुष्ठान से तथा नित्यकर्म से ही कर्मक्षय होता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पांच संयम का नाम नियम है। शौच दो तरह का होता है। (आन्तर एवं बाह्य)। तप से प्राप्त सन्तोष ही शान्ति है। वासुदेव की अर्चना ही दम है। आसन भी पद्मासन आदि भेद से कई हैं। वायु को जीतना ही प्राणायाम है। प्रत्येक प्राणायाम तीन तरह का होता है— पूरक, कुंभक, रेचक। मात्रायुक्त प्राणायाम ही लघु होता है। उससे दूनी मात्रा वाला मध्यम एवं तिगुनी मात्रा वाला उत्तम कहा गया है। जो प्राणायाम जप-ध्यान संयुक्त है, वह सगर्भ प्राणायाम कहा गया है। जो ध्यान-जपरहित है, वह है अगर्भ प्राणायाम।११-१५॥

प्रथमे जनयेत्स्वप्नं मध्यमेन च वेपथुः। विपाकं हि तृतीयेन जाता दोषास्त्वनुक्रमात्॥१६॥
आसनस्थं तु युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि।
पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणौ स्पर्शन्नेकाग्रमानसः॥१७॥
रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा।
निरुध्य निश्चलो वृत्तिं स्थितो युञ्जीत योगवित्॥१८॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च। निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमात्॥१९॥

प्राणायाम की प्रथमावस्था में स्वप्नदर्शन, मध्यावस्था में अंगों का कम्पन तथा तृतीयावस्था में विपाक होता है। प्राणायाम में ये तीन दोष उत्पन्न होते हैं। साधक आसनासीन हालत में हृदय में प्रणव का योग करे। पार्ष्णिद्वय से लिंग तथा वृषण तनिक दबा कर एकाग्रता से बैठे। योगज्ञ साधक रजोगुण द्वारा तमोगुण की तथा सत्वगुण द्वारा रजोगुण की वृत्ति को रोककर निष्कलतापूर्वक स्थित रहे। विषयों से इन्द्रिय को तथा मन से प्राण आदि को निगृहीत करके तब सम्यक्तः प्रत्याहार करे॥१६-१९॥

प्राणायामा दशाष्टौ च धारणा सा विधीयते।
द्वे धारणे स्मृतो योगी योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥२०॥
प्राङ्नाड्यां हृदये चात्र तृतीया च तथोरसि।
कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रे भ्रूमध्यमूर्धसु॥२१॥
किञ्चित्तस्मात्परस्मिंश्च धारणा दशधा स्मृता।
दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षररूपताम्॥२२॥
यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तस्तथात्मा परमात्मनि। ब्रह्मरूपं महापुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत्॥२३॥
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्। इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्॥२४॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थूलदेहविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम्॥२५॥

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्या मलवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम्॥२६॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सूक्ष्मदेहविवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थानास्थानविवर्जितम्॥२७॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्गन्धमात्रविवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्परिवर्जितम्॥२८॥

१८ प्राणायाम द्वारा धारणा होती है। तत्वज्ञ योगी धारणाद्वय को योग कहते हैं। नाड़ी, हृदय, वक्ष, उदर, मुख, नासाग्र, नेत्र, मूर्द्धा तथा सहस्रार पर धारणा करे। इन दस स्थान में दस प्रकार की धारणा द्वारा साधक परमाक्षरलाभ करता है। जैसे अग्नि में ही अग्नि छोड़ने पर दोनों अग्नि एक ही हैं, उसी प्रकार आत्मा एवं जीव का योग होने पर ऐक्यज्ञान होता है। साधक महापुण्यप्रद ब्रह्मरूपी "ॐ" मन्त्र को जपे। अकार, उकार तथा मकार मिलकर ओंकार होता है। वह परब्रह्मरूपी है। "मैं इस स्थूल देह से रहित परब्रह्म हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। मुझे जरा-मरण नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। मुझसे किसी प्रकार के पृथिवी आदि मल का संपर्क नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। मेरा सूक्ष्म देह स्थानास्थान नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। मैं सर्वत्र विद्यमान हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। मेरा कोई सम्बन्ध गन्ध से नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। मैं श्रोत्र-त्वक्रहित हूं॥२०-२८॥

अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम्॥२९॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरज्ञानपरिवर्जितम्॥३०॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्त्रीष्वयं परमं पदम्। देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम्॥३१॥
नित्यशुद्धबुद्धयुक्तमहमानन्दमद्वयम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ज्ञानरूपो विमुक्तये॥३२॥

मेरा कोई रूपसम्पर्क नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। मेरा शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म ही हूं।

मुझे वाक् शक्ति आदि नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।
मैं त्वक् आदि इन्द्रियविहीन हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।
मैं जिह्वा-घ्राणादिरहित हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।
मैं प्राण-अपानादि वायुरहित हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।
मैं व्यान-उदान वायु से युक्त नहीं हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।
मैं सभी अज्ञान से रहित हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।
प्रकृति मेरा परमपद है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।
मेरा देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि-प्राण सम्बन्ध नहीं है। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं।

मैं नित्य, शुद्ध-बुद्ध आनन्द, अद्वितीय ज्ञानरूप हूं। मैं ज्योतिर्मय परब्रह्म हूं। जो एवंविध जानते हैं, वे मुक्ति पा जाते हैं॥२९-३२॥

सूत उवाच

इत्यष्टाङ्गो मया योग उक्तः शौनक मुक्तिदः।
नित्यनैमित्तिकं प्राप्त्वा लयं प्राकृतबन्धनाः॥३३॥
उत्पद्यन्ते हि संसारे नैकं प्राप्त्वा परात्मनाम्।
विमुच्यते विमुक्तश्च ज्ञानादज्ञानमोहितः॥३४॥
ततो न म्रियते दुःखी न रोगी न च बन्धवान्।
न पापैर्युज्यते योगी नरके न विपच्यते॥३५॥
गर्भवासे स नो दुःखी स स्यान्नारायणोऽव्ययः।
भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो भगवान्भुक्तिमुक्तिदः॥३६॥

सूतजी ने कहा—हे शौनक! मैंने आपसे अष्टांगयोग कहा। यह साधक हेतु मुक्तिप्रद है। जो मायापाशबद्ध हैं, वे नित्य नैमित्तिक कार्य के पश्चात् इस योगसाधना द्वारा परब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जिनको ऐक्यज्ञान नहीं है, वे ही संसार में जन्मते हैं। जो अज्ञानांध हैं, वे ज्ञानयोग द्वारा संसार से मुक्त हो जाते हैं। जो इस अष्टांगयोग का अभ्यास करते हैं, उनकी मृत्यु कभी नहीं होती। जो पूर्वोक्त अष्टांगयोग का अभ्यास करते हैं, उनको मृत्यु, दुःखभोग, रोग नहीं झेलना पड़ता। उनको संसार का कोई बंधन नहीं बांध सकता। वह योगी कदापि पापलिप्त नहीं होता। नरक नहीं जाता। यह साधन करने वाला कभी गर्भवास का दुःख नहीं भोगता। वह स्वयं अव्यय नारायणवत्-है। इस योग का अभ्यास करे। एकान्त भक्ति के साथ ध्यान करे। इससे भुक्ति तथा मुक्ति देने वाले नारायण की प्राप्ति हो जाती है॥३३-३६॥

ध्यानेन पूजया जप्यैः सम्यक्स्तोत्रैर्यतव्रतैः। यज्ञैर्दानैश्चित्तशुद्धिस्तया ज्ञानञ्च लभ्यते॥३७॥
प्रणवादिकमन्त्रैश्च जप्यैर्मुक्तिं गता द्विजाः। इन्द्रोऽपि परमं स्थानं गन्धर्वाप्सरसो वरम्॥३८॥
प्राप्ता देवाश्च देवत्वं मुनित्वं मुनयो गताः। गन्धर्वत्वञ्च गन्धर्वा राजत्वञ्च नृपादयः॥३९॥

॥इति गारुडे महापुराणे अष्टाङ्गयोगकथनं नाम अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१८॥

ध्यान, पूजा, जप, सम्यक् स्तोत्र पाठ, व्रत, यज्ञ, दान, चित्तशुद्धि से ज्ञान मिलता है। द्विजों ने प्रणव आदि मन्त्र जप से मुक्तिलाभ किया था। इस योग से ही इन्द्र ने परमस्थान पाया। गन्धर्व, अप्सरा सबने परमपदलाभ किया। इसके द्वारा देवगण ने देवत्व, मुनियों ने मुनित्व, गन्धर्वों ने गन्धर्वत्व तथा राजाओं ने राज्यत्वलाभ किया था॥३७-३९॥

॥दो सौ अट्ठारहवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

विष्णुभक्ति वर्णन

सूत उवाच

विष्णुभक्तिं प्रवक्ष्यामि यया सर्वमवाप्यते।
यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत्तथा नान्येन केनचित्॥१॥

महतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसन्ततेः। जीवितस्य फलं स्वादु नियतिस्मरणं हरेः॥२॥

तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिसाधनभूयसी।
ते भक्ता लोकनाथस्य नामकर्मादिकीर्त्तने॥३॥

मुञ्चन्त्यश्रूणि संहर्षाद्ये प्रहृष्टतनूरुहाः। जगद्धातुर्महेशस्य ज्ञानदं चरणद्वयम्॥४॥

सूतजी ने कहा—अब मैं विष्णुभक्ति कहता हूं। इससे सभी वांछित की प्राप्ति होती है। विष्णु भक्ति के द्वारा जितने प्रसन्न होते हैं, अन्य किसी प्रकार से उनको ऐसा सन्तोष नहीं मिलता। यह विष्णुभक्ति महान् मंगल का मूल है। इससे महान् पुण्यलाभ होता है। नित्य श्रीहरि का स्मरण करते रहने से जीवन सफल होगा। भज् धातु का अर्थ है सेवा। सुधी साधक समस्त प्रयत्न से विष्णु की सेवा करे। विष्णुसेवा करने से विष्णु के प्रति दृढ़ भक्ति होती है। जो त्रैलोक्यपति विष्णु के नाम तथा कर्म का कीर्त्तन करते हर्षित होकर हर्षक अश्रु नेत्रों से गिराते हैं तथा रोमांचित होकर जो जगत् के विधाता महेश्वर के ज्ञानप्रद चरणों में प्रणत हैं, वे ही वास्तविक विष्णुभक्त हैं। जो विष्णु की नित्य सेवा तथा नित्यार्चन करते हैं, वे ही वैष्णव हैं॥१-४॥

इह नित्यक्रियाः कुर्य्युः स्निग्धा ये वैष्णवास्तु ते।
ब्रह्माक्षरं न शृण्वन्वै तथा भगवतेरितम्॥५॥

प्रणामपूर्वकं भक्त्या यो वदेद्वैष्णवो हि सः। तद्भक्तजनवात्सल्यं पूजयंश्चानुमोदनम्॥६॥

तत्कथाश्रवणे प्रीतिः श्रवणं सफलं भवेत्।
येन सर्वात्मना विष्णौ भक्त्या भावो निवेशितः॥७॥

विश्वेश्वरकृताद्विप्रान्महाभागवतो हि सः। स्वयमभ्यर्चनञ्चैव यो विष्णुञ्चोपजीवति॥८॥

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्त्तते।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स याति परमां गतिम्॥९॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः।
पुनाति भगवद्भक्तश्चण्डालोऽपि यदृच्छया॥१०॥

दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत्। अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः॥११॥

इस प्रकार वैष्णवों को ब्रह्माक्षर श्रवण अथवा भागवत पाठ नहीं करना होगा। जो प्रणाम करके भक्तिपूर्वक हरिकीर्त्तन करते हैं, वे ही वैष्णवोत्तम हैं। भक्तों के प्रति श्रीहरि का वात्सल्य भाव रहता है। यह जानकर विष्णु की अर्चना तथा भक्तों का अनुमोदन करे। जिनको विष्णुकथा सुनने से प्रसन्नता होती है तथा नेत्रों में प्रेम भक्ति का विकार उत्पन्न होता है, उसका ही श्रवण सफल है। जो भक्ति के साथ विष्णु में अपने भावों को सन्निवेशित करते हैं तथा ब्राह्मणों के प्रति विष्णुभक्ति रखते हैं तथा तदनुरूप व्यवहार उनसे करते हैं, वे महाभागवत हैं। जो स्वयं विष्णु की अर्चना करते हैं, वे विष्णु के अनुजीवी हो जाते हैं। यदि म्लेच्छ भी उक्त आठ भक्ति का अधिकारी हो जाये, तब वह विप्रप्रवर मुनि होकर परमगति लाभ करता है। जो व्यक्ति प्रकृत विष्णुभक्ति का पात्र है, भले ही वह म्लेच्छ क्यों न हो, उसे हरिमन्त्र दिया जा सकता है। उस व्यक्ति को प्रकृत विष्णुभक्ति का पात्र कहा गया है। वह म्लेच्छ भले ही हो, उसे हरिमन्त्र देना चाहिये। उससे लोग हरिभक्ति का उपदेश ले सकते हैं। वह हरिभक्त विष्णुवत् पूज्य है। उस व्यक्ति से वार्त्ता करने अथवा उसकी स्मृति से ही हरि के प्रति प्रीति जन्म लेती है। यदि चाण्डाल भी भगवान् का भक्त हो, तब वह यथेच्छरूप से जगत् को पवित्र कर देता है। जो व्यक्ति यह कहे कि "मैं आपकी शरण में हूं" उस पर दया करनी चाहिये। सभी प्राणीगण के प्रति सदय भाव रखना यही हरि का व्रत है॥५-११॥

मन्त्रयाजिसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः।
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते॥१२॥
एकान्तिनः स्ववपुषा गच्छन्ति परमं पदम्।
एकान्तेन समो विष्णुस्तस्मादेषां परायणः॥१३॥
यस्मादेकान्तिनः प्रोक्तास्तद्भागवतचेतसः। प्रियाणामपि सर्वेषां देवदेवस्य सुप्रियः॥१४॥
आपत्स्वपि सदा यस्य भक्तिरव्यभिचारिणी।
या प्रीतिरधिका विष्णौ विषयेष्वनपायिनी॥१५॥

सहस्रों मन्त्र जप करने वाले से सर्व वेदान्त पारंगत श्रेष्ठ है। लेकिन ऐसे करोड़ों वेदान्त पारंगत की तुलना में एक विष्णुभक्त श्रेष्ठ है। जो विष्णु के प्रति पूर्णतः अनुरक्त हैं, वे परमपद लाभ करते हैं। वे ही भगवत् परायण कहे गये हैं। जो भगवान् को चित्त अर्पित करते हैं, जो आपत्ति के समय भी हरिभक्ति की किंचित् कमी नहीं होने देते, वे हरि को अपने प्रिय लोगों से भी अधिकतम प्रिय हैं॥१२-१५॥

विष्णुं संस्मरतः सा मे हृदयान्नोपसर्पति। दृढभक्तोऽपि वेदादिसर्वशास्त्रार्थपारगः॥१६॥
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्तं विद्यात् पुरुषाधमम्। नाधीतवेदशास्त्रोऽपि न कृतोऽध्वरसम्भवः।
यो भक्तिं वहते विष्णौ तेन सर्वं कृतं भवेत्॥१७॥
यज्वनः क्रतुमुख्यानां वेदानां पारगा अपि।
न तां यान्ति गतिं भक्ता यां यान्ति मुनिसत्तमाः॥१८॥
यः कश्चिद् वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी।
पुनाति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः॥१९॥

ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररतास्तथा। येऽपि यान्ति परं स्थानं नारायणपरायणाः॥२०॥

जिस प्रकार से अविवेकी व्यक्ति की विषय भोग में आसक्ति रहती है, उसी प्रकार मैं सदा श्रीहरि का स्मरण करता रहता हूं। हरि कदापि विस्मृत न हों। जिनमें ऐसी दृढ़ भक्ति का आधार है, वे सभी शास्त्रों तथा वेदों के पारंगत हो जाते हैं। जो सर्वेश्वर हरि का भजन नहीं करता, वह पुरुषाधम है। वेदादि शास्त्र का अध्ययन किंवा किसी यज्ञों के आचरण की जिनमें रुचि नहीं है, वे यदि हरि का भजन करते हैं, तब वेदादि धर्मशास्त्र अध्ययन और सभी योगों का फल उनको प्राप्त होता है। हरिभक्ति करने वाले मुनियों को जो सद्गति मिलती है, सभी यज्ञकर्ता सर्ववेदान्त पारंगत ऋषि भी वैसी गति नहीं पाते। मिथ्याचार में लगे, अनाश्रमी लोग भी यदि हरिभक्त हैं, तब वे सभी लोकों को पावन कर सकते हैं। जो नृशंस, दुरात्मा, पापाचारी हैं, वे भी नारायण परायण होकर परम स्थान लाभ करते हैं॥१६-२०॥

दृढा जनार्दने भक्तिर्यदैवाव्यभिचारिणी। तदा कियत् स्वर्गसुखं सैव निर्वाणहेतुकी॥२१॥
भ्राम्यतां तत्र संसारे नराणां कर्मदुर्गमे। हस्तावलम्बने ह्येको भुङ्क्ते तुष्टो जनार्दनः॥२२॥
न शृणोति गुणान् दिव्यान् देवदेवस्य चक्रिणः।
स नरो बधिरो ज्ञेयो सर्वधर्मबहिष्कृतः॥२३॥

जब जनार्दन के प्रति अव्यभिचारिणी अचला भक्ति उदित होती है, तब स्वर्गसुख व्यर्थ लगता है। यह हरिभक्ति निर्वाण का हेतु है। जो कर्मदुर्गम संसार में भटकते हैं, उस हरिभक्त के द्वारा हाथ फैलाये जाते ही श्रीहरि प्रसन्न होकर उसके हाथ द्वारा अर्पित द्रव्यादि स्वीकार कर लेते हैं। जो इन देवदेव चक्रधारी के दिव्य गुणों को नहीं सुनता, वह व्यक्ति सर्वधर्म बहिष्कृत बधिर है॥२१-२३॥

नाम्नि संकीर्त्तिते विष्णोर्यस्य पुंसो न जायते।
शरीरं पुलकोद्भासि तद्भवेत्कुणपोपमम्॥२४॥
यस्मिन् भक्तिर्द्विजश्रेष्ठ मुक्तिरप्यचिराद्भवेत्।
निविष्टमनसां पुंसां सर्वथा वृजिनक्षयम्॥२५॥

हरिनाम संकीर्तन से जिसका शरीर पुलकित नहीं होता, उसका देह शव के ही समान जानना चाहिये। जो व्यक्ति हरिभक्तियुक्त है, वह शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करेगा। जिन्होंने अपना मन श्रीहरि में लगा दिया, उसके सभी पातक क्षय हो जाते हैं॥२४-२५॥

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्॥२६॥
अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥२७॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं स गच्छति।
विप्रेन्द्र प्रतिजानीहि विष्णुभक्तो न नश्यति॥२८॥

धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा हरौ॥२९॥

हाथों में पाश धारण किये यम अपने दूतों के कान में यह कहते हैं "तुम शीघ्र इस मधुसूदन के भक्त को छोड़ो। मैं सभी पुरुषों का अधीश्वर हूं, यह बात तो सच है, लेकिन हरिभक्तों पर मेरा कोई भी अधिकार ही नहीं है।" स्वयं श्रीहरि ने कहा है कि "यदि दुरात्मा भी अन्य किसी का भजन नहीं करे तथा केवल मेरी ही अर्चना करे, तब वह साधु ही है। उसी ने सम्यक्त: सर्वकर्माचरण सम्पन्न किया है, यह जानो।" जो हरि के भक्त हैं, वे नित्य शान्ति तथा सुखलाभ करते हैं। वे शीघ्र धर्मात्मा हो जाते हैं। हे द्विजेन्द्र! हरिभक्त कभी नष्ट नहीं होता। समस्त जगत् के मूल श्रीहरि में जिनकी स्थिर भक्ति है, उसे धर्म-अर्थ-काम की कोई जरूरत नहीं है। अत: हरिभक्त के हाथों में सदा मुक्ति विराजित रहती है॥२६-२९॥

दैवी ह्येषा गुणमयी हरेमार्या दुरत्यया। तमेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥३०॥
किं यज्ञाराधने पुंसां सिध्यते हरिमेधसः।
भक्त्यैवाराध्यते विष्णुर्नान्यत्तत्रापि कारणम्॥३१॥

त्रिगुणात्मिका माया अत्यन्त दुर्गम है। उसे पार नहीं किया जा सकता। जो हरि की शरण में चले जाते हैं, केवल वे ही उस माया को पार कर पाते हैं। जो हरिभक्त हैं, उनको यज्ञाराधनादि से क्या लाभ? केवल भक्ति द्वारा वे हरि की आराधना करते हैं। उनको अन्य मार्ग तथा कर्म की क्या आवश्यकता?॥३०-३१॥

न दानैर्विविधैर्दत्तैः पुष्पैर्नैवानुलेपनैः। तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः॥३२॥
संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे। कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागमः॥३३॥
पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वकष्टलभ्येषु सदैव सत्सु।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यैकलाभे क्रियते प्रयत्नः॥३४॥

विविध दान देना, पुष्प-चन्दनादि अनुलेपन तथा अन्य किसी उपाय से हरि की सन्तुष्टि नहीं होती। उनको केवल भक्ति से ही सन्तोष होता है। संसार रूपी विषवृक्ष में दो ही अमृततुल्य फल होते हैं। यथा—केशव की भक्ति तथा भक्तों का समागम। पत्र-पुष्प-फल-जल सभी अनायास मिलते हैं। केवल पत्रादि प्रदान करने से मुक्तिलाभ की आशा नहीं है, तथापि पुराणपुरुष हरि की भक्ति करने से ही मुक्ति मिलती है। तभी पुराणपुरुष प्रभु की भक्ति का प्रयत्न करे॥३२-३४॥

आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः।
वैष्णवो मत्कुले जातः स नः सन्तारयिष्यति॥३५॥
अज्ञानिनः सुरवरं समधिक्षिपन्तो यत्पापिनोऽपि शिशुपालसुयोधनाद्याः।
मुक्तिं गताः स्मरणमात्र विधूतपापाः कः संशयः परमभक्तिमतां जनानाम्॥३६॥
शरणं तं प्रपन्ना ये ध्यानयोगविवर्जिताः। तेऽपि मृत्युमतिक्रम्य यान्ति तद्वैष्णवं पदम्॥३७॥

भवोद्भवक्लेशशतैर्हतस्तथा परिभ्रमन्निन्द्रियरन्ध्रकैर्हयैः।
नियम्य मां माधव मे मनोहयस्त्वदङ्घ्रिशङ्कौ दृढभक्तिबन्धने॥३८॥
विष्णुरेव परं ब्रह्म त्रिभेदमिह पठ्यते। वेदसिद्धान्तभानेषु तत्र जानन्ति मोहिताः॥३९॥

॥इति गारुडे महापुराणे भगवद्भक्तिकथनं नाम ऊनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१९॥

यदि वंश में कोई व्यक्ति हरिभक्त हो जाता है, तब उसके पितर ताली बजाते, नृत्य करते हैं कि यह व्यक्ति अवश्य हमारा उद्धार करेगा। अज्ञानी लोग इन सुरेश्वर से द्वेष रखते हैं, तथापि दयालु भगवान् उनको भी मुक्त कर देते हैं। पापी शिशुपाल तथा दुर्योधन ने भी विष्णु की कृपा से मुक्ति पायी थी। जो ज्ञानी तथा भक्त हैं, वे इन प्रभु मुक्तिदाता को याद करने से ही मुक्त होंगे, इसमें सन्देह ही नहीं है। जो विष्णु की शरण में हैं, वे ध्यानहीन भले ही हों, वे मृत्यु का अतिक्रम करके वैष्णव स्थानलाभ करेंगे। हे माधव! मेरा मन संसार में सैकड़ों क्लेश भोग कर आहत होकर भी बारम्बार इन्द्रियों में ही घूमता रहता है। मेरे मनरूपी घोड़े को दृढ़ भक्ति की डोर से बांध कर अपने चरणरूपी खूंटे में बांधें। इस प्रकार ऐसा करिये, जिससे मेरा मन आपके चरणकमल को त्याग कर कहीं न जाये। विष्णु ही परम ब्रह्म हैं। ये ही त्रिधाभेद वाले कहे जाते हैं। यह वेद सिद्धान्त है। भेदज्ञानी इस त्रिधाभेद से मोहित रहते हैं॥३५-३९॥

॥दो सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त॥

विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नारायण नमस्कार वर्णन

सूत उवाच

मुक्तिहेतुमनाद्यन्तमजमव्ययमक्षयम्। यो नमेत् सर्वलोकस्य नमस्यो जायते नरः॥१॥
विष्णुमानन्दमद्वैतं विज्ञानं सर्वगं प्रभुम्। प्रणमामि सदा भक्त्या चेतसा हृदयालयम्॥२॥
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम्। तं सर्वसाक्षिणं विष्णुं नमस्ये परमेश्वरम्॥३॥
शक्तौ नापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये। संसारतृणवर्गाणामुद्वेजनकरो हि सः॥४॥
कृष्णो स्फुरज्जलधरोदरचारुकृष्णो लोकाधिकारपुरुषे परमप्रमेये।
एको हि भावगुणमात्रदृढप्रणामः सद्यः श्वपाकमपि साधयितुं प्रशक्तः॥५॥

सूतजी ने कहा—जो मुक्ति के हेतु हैं, जो अन्त तथा आदिरहित हैं, जो अजन्मा हैं, उन अव्यय,

अक्षय हरि को जो प्रणाम करता है, वह सभी लोकसमूह द्वारा नमस्कृत हो जाता है। अद्वितीय, आनन्दरूप, विज्ञानमय, सर्वगामी, जगत्कर्त्ता नारायण को मन से नमस्कार करे, जो हृदय में निवास करते हैं। जो ईश्वर अशेष जीवों के हृदय में रहकर शुभाशुभ का दर्शन करते हैं, उन परमेश्वर सर्वसाक्षी हरि को प्रणाम! शक्ति रहते भी जो प्रभु चक्रपाणि को प्रणाम नहीं करता, वह संसार में तो तृण तक को उद्विग्न करने वाला है। नवजल धरोदर के समान सुस्निग्ध नील देह सर्वलोकाधीश्वर परमपुरुष अप्रमेय कृष्ण को जो व्यक्ति दृढ़भक्ति के साथ एक बार भी प्रणाम करता है, वह तो चाण्डाल आदि पापी वर्ग का भी उद्धार कर देता है॥१-५॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत्। स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि॥६॥

दुर्गसंसारकान्तारकूपारामेऽपि धावताम्।
एकः कृष्णे नमस्कारो मुक्त्या तांस्तारयिष्यति॥७॥
आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र तत्र वा।
नमो नारायणायेति मन्त्रैकशरणो भवेत्॥८॥
नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्त्तिनी।
तथापि नरके मूढाः पतन्तीति किमद्भुतम्॥९॥

चतुर्मुखो वा यदि कोटिवक्त्रो भवेन्नरः कोऽपि विशुद्धचेताः।
स वै गुणानामयुतैकदेशं वदेन्न वा देववरस्य विष्णोः॥१०॥

जो भूमि पर दण्डवत् लेट कर प्रणाम के साथ नारायणदेव की अर्चना करते हैं, उनको जो उत्तम गति मिलती है, वह सैकड़ों यज्ञानुष्ठान करने पर भी नहीं मिल पाती। जो कूप-उद्यानयुक्त संसाररूपी दुर्गम वन में दौड़ रहे हैं, वे यदि एकमात्र कृष्ण को प्रणाम करें, तब वे संसार से छुटकारा पा जाते हैं। सोये हों, बैठे हों अथवा जिस किसी भी अवस्था में हों, सभी काल में "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्र की शरण लेनी चाहिये। नारायण शब्द ज्ञात है, इसे उच्चारण की शक्ति भी है, तथापि मूढ़ लोग नरकगामी हो रहे हैं, यह विचित्र बात है। मात्र एक बार 'नारायण' का उच्चारण करने वाला नरक नहीं देखता। कोई शुद्धचित्त व्यक्ति भले ही चार मुख अथवा कोटि मुख क्यों न हो जाये, उन अनन्त गुणाधार देववर नारायण का गुण नहीं कह सकेगा!॥६-१०॥

व्यासाद्या मुनयः सर्वे स्तुवन्तो मधुसूदनम्।
मतिक्षयान्निवर्त्तन्ते न गोविन्दगुणक्षयात्॥११॥
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहहस्तैर्मृगो यथा।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥१२॥

स्वप्नेऽपि नाम स्पृशतोऽपि पुंसः क्षयं करोत्यक्षयपापराशिम्।
प्रत्यक्षतः किं पुनरत्र पुंसा प्रकीर्त्तिते नाम्नि जनार्दनस्य॥१३॥

नमः कृष्णच्युतानन्तवासुदेवेत्युदीरितम्। यैर्भावभावितैर्विप्र न ते यमपुरं ययुः॥१४॥
क्षयो भवेद्यथा वह्नेस्तमसो भास्करोदये। तथैव कलुषौघस्य नामसंकीर्त्तनाद्धरेः॥१५॥

व्यास प्रभृति मुनिगण ने मधुसूदन की स्तुति तो कही है, लेकिन उन सब स्तव को करते-करते व्यक्ति की मति का तो क्षय भले हो जाये, लेकिन उनके गुण वर्णन का अन्त ही नहीं होता। यदि कोई अशक्त व्यक्ति नारायण का नाम लेता है, वह भी तत्क्षण सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जायेगा। जैसे सिंह के हाथों से कोई मृग बच जाये, उसी प्रकार से हरिनाम कीर्त्तन द्वारा पापी पाप के हाथों से छुटकारा पा लेता है। यदि कोई व्यक्ति मोक्षधाम में जाने हेतु सन्नद्ध हो जाता है। यदि कोई स्वप्न में भी नारायण के नाम को लेता है, तब उसके पापों का नाश हो जाता है। वह व्यक्ति यदि जागते हुये जनार्दन का नाम लेता है, तब उसे सिद्धि न मिले ऐसा है ही नहीं। जो भक्तिभाव से "हे कृष्ण, हे अच्युत, हे अनन्त, हे वासुदेव! आपको प्रणाम करता हूं!" ऐसा कहते रहते हैं, वे कभी यमदूत का अवलोकन नहीं करते। जैसे सूर्योदय अथवा अग्नि के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हरिनाम कीर्त्तन से पापराशि नष्ट हो जाती है॥११-१५॥

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरायाति न क्षयम्। गच्छतां दूरमध्वानं कृष्णमर्च्छितचेतसाम्॥१६॥
पाथेयं पुण्डररीकाक्षनामसंकीर्त्तनं हरेः। संसारसर्पसंदष्टविषचेष्टैकभेषजम्।
कृष्णेति वैष्णवं नाम जप्त्वा मुक्तो भवेन्नरः॥१७॥
ध्यायन्कृते जपेन्मन्त्रैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संस्मृत्य केशवम्॥१८॥
जिह्वाग्रे वत्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। संसारसागरं तीर्त्त्वा स गच्छेद्वैष्णवं पदम्॥१९॥
विज्ञातदुष्कृतिसहस्रसमावृतोऽपि श्रेयः परं तु परिशुद्धिमभीप्समानः।
स्वप्नान्तरे न हि पुनश्च भवं स पश्येन्नारायणस्तुतिकथापरमो मनुष्यः॥२०॥

॥इति गारुडे महापुराणे नारायणभक्तिकथनं नाम विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२०॥
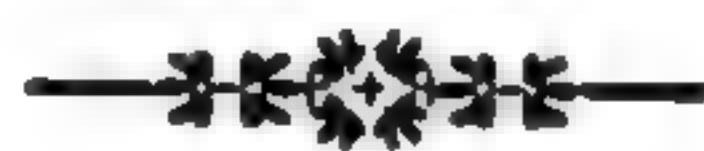
स्वर्ग जाने का भी कोई फल नहीं है, क्योंकि वहां से पतन होता है। जो नारायण को चित्त अर्पित कर चुके हैं, वे पुन: नहीं लौटते। वे संसार पार करके अत्यन्त दूर रहते हैं। जो हरि का "पुण्डरीकाक्ष" नाम है, वही संसार पार करने का पाथेयरूप है। जिसको संसाररूपी सर्प ने डस लिया, उसके इस विष को नष्ट करने की औषधि एकमात्र हरिनाम है। "कृष्ण" यह समस्त शान्ति देने वाला नाम जपने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। हरि का सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में नाम जप से, द्वापर में अर्चना से तथा कलियुग में केवल नामस्मरण से आराधना करे। इससे मनुष्यों की मुक्ति हो जाती है। जो 'हरि' यह दो शब्द जिह्वा द्वारा कहते हैं, वे संसार सागर से पार होकर विष्णुपुर जाते हैं। यदि कोई मनुष्य स्वयं को हजारों दुष्कृतियुक्त जानकर भी अन्दर-बाहर जाग्रत् स्वप्न सर्वकाल में हरिकथा परायण रहे, तब वह पुन: संसार को देखने नहीं आयेगा (उसका जन्म नहीं होगा)॥१६-२०॥

॥दो सौ बीसवां अध्याय समाप्त॥

एकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पूजा-स्तुति वर्णन

सूत उवाच

अशेषलोकनाथस्य सारमाराधनं हरेः। दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च॥१॥

अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्।
यो न पूजयते विष्णुं तं विद्याद् ब्रह्मघातकम्॥२॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
तं यो न ध्यायते विष्णुं स विष्ठायां क्रिमिर्भवेत्॥३॥

नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः। किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः॥४॥

उदकेनाप्यभावेन द्रव्याणामर्चितः प्रभुः।
यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न चार्चितः॥५॥

सूतजी ने कहा—असार संसार में एकमात्र सार है—सर्वलोकेश्वर हरि की आराधना। पुरुषसूक्त के मन्त्र से नारायण को जो पुष्प तथा जल प्रदान करते हैं, वे स्वयं नारायण हो जाते हैं। जो नारायणार्चन करते हैं, उन्होंने सचराचर जगत् की अर्चना का फललाभ कर लिया। जो विष्णु की अर्चना नहीं करता, वह ब्रह्मघातकी ही है। जिन नारायण से अनन्त जीव का ज्ञान उत्पन्न होता है, जो अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं, जो पापात्मा उन हरि का ध्यान नहीं करता, वह विष्ठा का कृमि होकर जन्म लेता है। जब पापी लोग नरक में पकाये जाते हैं, तब यम उनसे पूछते हैं "क्या तुमने सर्वक्लेश नाशन केशवार्चन नहीं किया? अर्चनोपयोगी द्रव्य का अभाव होने पर केशव की अर्चना केवल जल से करने पर भी वे पूजक को अपना लोक देते हैं। अत: क्या तुमने सर्वक्लेशनाशक देवार्चन नहीं किया?"॥१-५॥

न तत्करोति सा माता न पिता नापि बान्धवः।
यत्करोति हृषीकेशः सन्तुष्टः श्रद्धयार्चितः॥६॥

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्। विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः॥७॥
न दानैर्विविधैर्दत्तैर्न पुष्पैर्नानुलेपनैः। तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः॥८॥

हृषीकेश सन्तुष्ट होकर श्रद्धालु भक्त का जो उपकार करते हैं, माता-पिता-बन्धु-बान्धव वैसा उपकार नहीं कर पाते। मानव वर्णाश्रमाचार परायण होकर पुरुषोत्तम जनार्दन की अर्चना करे। इससे उसको जो सन्तोष मिलता है, अन्य उपाय से कदापि नहीं मिलता। केवल भक्ति से जनार्दन को जैसा सन्तोष मिलता है, पुष्प, सुगन्धि लेप तथा अन्य अनेक द्रव्य प्रदान करने से वैसा सन्तोष नहीं होता॥६-८॥

सम्पदैश्वर्य्यमाहात्म्यैः सन्तत्या न च कर्मणा। विभुक्तैश्चैकता लभ्या मूलमाराधनं हरेः॥९॥

॥इति गारुडे महापुराणे पूजास्तुतिकथनं नाम एकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२१॥

ऐश्वर्य, सम्पत्ति, माहात्म्य, सन्तति कर्म से विष्णु नहीं मिलते। केवल विमुक्त भक्त ही उनकी आराधना करके उनसे ऐक्यलाभ करते हैं॥९॥

॥दो सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
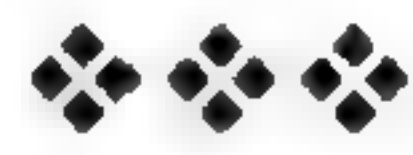
द्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ध्यानस्तुति निर्णय

सूत उवाच

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य्यं च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥१॥
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः॥२॥
षष्टिस्तीर्थसहस्त्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च। नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥३॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्माणि यानि वै। यानि येषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥४॥
कृतपापेऽनुरक्तिश्च यस्य पुंसः प्रजायते। प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरेः संस्मरणं परम्॥५॥

सूतजी ने कहा—मैं सर्वशास्त्र अवलोकन करके तथा पुनः-पुनः विचार करके देखता हूं कि उनके अध्ययन से मुझे जिस दृढ़ ज्ञान की प्राप्ति हो सकी है, वह यह है कि केवल नारायण का सर्वदा ध्यान करना चाहिये। जो मानव नित्य अनन्य मन से उनका ध्यान करता है, उसे दान, तीर्थयात्रा, तप तथा यज्ञ की कोई जरूरत नहीं है। हरिध्यान में लगे मनुष्य दानादि जनित फलों को अतीव तुच्छ मानते हैं। भूमण्डल में ६६६०० तीर्थ विद्यमान हैं। सभी तीर्थों का जो फल है, वह हरि को प्रणाम करने की तुलना में १/१६ भी नहीं है। भक्तिभाव के साथ मात्र एक बार नारायण को प्रणाम करने से जो पुण्यसंचय होता है, तीर्थयात्रा से उसका १/१६ भाग भी पुण्य नहीं होता। अनेक प्रायश्चित्त तथा तपों का उल्लेख मिलता है, लेकिन उन सबसे अधिक परमतप है कृष्णनाम स्मरण। जो सदा पापकार्य में लगे रहते हैं तथा जो पापकार्य से अधिक प्रेम रखते हैं, उनका एकमात्र प्रायश्चित्त है हरिनाम स्मरण॥१-५॥

मुहूर्त्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः। सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः॥६॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु योगस्थस्य च योगिनः।
या काचिन्मनसो वृत्तिः सा भवत्यच्युताश्रया॥७॥
उत्तिष्ठन्निपतन्विष्णुं प्रलपन्विविशंस्तथा। भुञ्जन् जाग्रच्च गोविंदं माधवं यश्च संस्मरेत्॥८॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः कुर्य्याच्चित्तं जनार्दने।
एषा शास्त्रानुसारोक्तिः किमन्यैर्बहुभाषितैः॥९॥

ध्यानमेव परो धर्मो ध्यानमेव परं तपः। ध्यानमेव परं शौचं तस्माद् ध्यानपरो भवेत्॥१०॥

एकाग्र होकर मुहूर्त्तमात्र भी नारायण का ध्यान करने वाला स्वर्गलोक प्राप्त करता है। लेकिन जो सदा नारायण-परायण है, उनके सौभाग्य का वर्णन नहीं हो सकता। जो सदा योगरत रहते हैं, वे जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में सर्वकाल में नारायण का आश्रय लेकर अपनी समस्त मनोवृत्ति उनमें ही लगाये रखते हैं। उठने, लेटने, प्रलेपन, प्रवेश, भोजन, जागरण आदि सभी स्थिति में यदुकुलपति, श्रीपति, गोविन्द का स्मरण करे। मनुष्य अपने-अपने कर्म में भले ही लगे रहें, लेकिन वे जनार्दन को चित्त अर्पित करें, यही शास्त्र की उक्ति है। केवल गोविन्द नाम कीर्त्तन से ही सद्‌गतिलाभ होता है। अन्य अनेक वक्तव्य से कोई भी इष्टलाभ होना संभव नहीं है। नारायण ध्यान को परमधर्म कहा है। यही परम तप है। यही मनुष्य को पावन करता है। सदा नारायण के ध्यान में तल्लीन रहे॥६-१०॥

नास्ति विष्णोः परं धेयं तपो नानशनात्परम्।
तस्मात्प्रधानमत्रोक्तं वासुदेवस्य चिन्तनम्॥११॥

यद् दुर्लभं परं प्राप्यं मनसो यन्न गोचरम्। तदप्यप्रार्थितं ध्यातो ददाति मधुसूदनः॥१२॥

प्रमादात्कुर्वतां पुंसां प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥१३॥

ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्। आगामिदेहहेतूनां दाहको योगपावकः॥१४॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिमत्रैव जन्मनि।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मा च योऽचिरात्॥१५॥
यथाग्निरुद्यतशिखः कक्षं दहति वानिलः।
तथा चित्तस्थिते विष्णौ योगिनां सर्वकिल्बिषम्॥१६॥

विष्णु को छोड़ कर अन्य परम ध्येय वस्तु है ही नहीं। अनशन से बढ़कर कोई तप नहीं है। अतः वासुदेव चिन्तन ही प्रधान कार्य है। जो अतीव दुर्लभ, अप्राप्य तथा मन से परे हैं, उन मधुसूदन का ध्यान करना चाहिये। जो भक्त को अप्रार्थित भी देते हैं। यज्ञादि कर्म करते-करते प्रमाद के कारण उसमें त्रुटि होती है, तब यज्ञ परिभ्रष्ट हो जाने पर भी विष्णु का नाम स्मरण करने मात्र से, वही त्रुटिपूर्ण यज्ञ भी पूर्ण फल देता है। यह श्रुति वचन है। नारायण के ध्यान से जिस प्रकार से पापों की शान्ति होती है, ऐसा पापशोधन कर्म कोई दूसरा नहीं है। नारायण ध्यान रूप योगाग्नि से मनुष्य का पुनर्जन्म दग्ध होता है अर्थात् अगला जन्म नहीं होता। जो नारायण का ध्यान करते समाधिस्थ हो जाते हैं, वे इसी जन्म में उस योगाग्नि से अपने सभी कर्मों को जलाकर मुक्तिलाभ करते हैं। ज्वालायुक्त अग्नि वायु के झोकों से जिस प्रकार से तृण-लकड़ी आदि को जला देता है, उसी प्रकार योगीगण के ह्रदय में बसे विष्णु सभी पापों को दग्ध कर देते हैं॥११-१६॥

यथाग्नियोगात्कनकममलं संप्रजायते। संप्लुष्टो वासुदेवेन मनुष्याणां सदा मलः॥१७॥
गङ्गास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु। यत्पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ॥१८॥
प्राणायामसहस्रैस्तु यत्पापं नश्यति ध्रुवम्। क्षणमात्रेण तत्पापं हरेर्ध्यानात्प्रणश्यति॥१९॥

स्वर्ण अग्निताप से निर्मल होता है। उसी तरह वासुदेव मनुष्य का सर्वपाप जला देते हैं। एक हजार गंगास्नान, करोड़ों बार पुष्करस्नान से जो पापनाश होता है, मात्र एक बार नारायण का स्मरण करने से मनुष्य का सभी पाप लयीभूत होता है। मनुष्य एक हजार प्राणायाम से जो पापनाश करता है, क्षणमात्र हरि के ध्यान से वे पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे प्रभाव वाले श्रीहरि के ध्यान के बिना जिसका एक भी मुहूर्त्त व्यर्थ होता है, वह उसी तरह रोयेगा, जैसे लोग डाकू द्वारा सर्वस्व हरण होने पर रोते हैं। जो समय व्यर्थ बीत गया, वह वापस नहीं आना है॥१७-१९॥

कलिप्रभावो दुष्टोक्तिः पाषण्डानां तथोक्तयः।
न क्रामेन्मानसं तस्य यस्य चेतसि केशवः॥२०॥
सा तिथिस्तदहोरात्रं स योगः स च चन्द्रमाः।
लग्नं तदेव विख्यातं यत्र प्रस्मर्य्यते हरिः॥२१॥
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चार्थजडमूकता। यन्मुहूर्त्तं क्षणो वापि वासुदेवं न चिन्तते॥२२॥
कलौ कृतयुगस्तस्य कलिस्तस्य कृते युगे।
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः॥२३॥

जिसके हृदय में केशव विराजमान हैं, उस पर कलि का प्रभाव तथा दुष्टों की उक्ति प्रभाव नहीं डाल सकती। जिस समय हरिस्मरण होता है, वह तिथि अहोरात्र, योग, चन्द्र तथा लग्न सर्वोत्तम समय है। जिस क्षण अथवा मुहूर्त्त को मनुष्य हरिध्यान चिन्तन बिना बिता देता है, वह निष्फल समय है। वह निष्फल समय महाहानिप्रद है, जिसके मन में सदा गोविन्द स्थित हैं, उसके लिये कलिकाल भी सतयुग ही है॥२०-२३॥

यस्याग्रतस्तथा पृष्ठे गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा।
गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः॥२४॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु। तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम्॥२५॥
असंत्यज्य च गार्हस्थ्यं स तप्त्वा च महत्तपः।
छिनत्ति पौरुषीं मायां केशवार्पितमानसः॥२६॥
क्षमां कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः। मुदञ्च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते॥२७॥
ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानदानादिकर्मसु। प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु दुष्कृतेषु विशेषतः॥२८॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥२९॥

जिसका चित्त हरिस्मरण नहीं करता, उसके लिये तो सतयुग भी कलिकाल ही है। जो आगे-पीछे,

सर्वत्र हरिध्यान करता रहता है, चलते-बैठते भी जिसका मन गोविन्द में लगा रहता है, वह कृतार्थ मनुष्य है। जो जप-होम-अर्चना आदि के द्वारा वासुदेव को मन में बसाये रहते हैं, वे इन्द्र पद से भी इस कारण सन्तुष्ट नहीं होते, क्योंकि वे इन सबको हरिचिन्तन का विघ्न मानते हैं। जिन्होंने केशव को चित्त अर्पित कर दिया, वे गृहस्थी त्याग किये बिना ही महातपःश्चरण रूप हरिचिन्तन से ही पौरुषी माया का भेदन कर लेते हैं। जिनके हृदय में गोविन्द का वास है, वे क्रोधित के लिये क्षमा, मूर्ख, दुर्बल पर दया तथा धर्मशील के प्रति प्रेमभाव रखते हैं। स्नान, दान, प्रायश्चित्त जैसे सत्कर्म और चौर्यादि दुष्कृत्य में भी वे सदा नारायण चिन्तन तत्पर बने रहते हैं। जिनके हृदय में नीलकमल जैसे कलेवर वाले जनार्दन स्थित रहते हैं, उसे तो सदा लाभ एवं जय प्राप्त है। वह कभी पराजित नहीं होता॥२४-२९॥

कीटपक्षिगणानाञ्च हरौ संन्यस्तचेतसाम्।
ऊर्ध्वा एव गतिश्चास्ति किं पुनर्ज्ञानिनां नृणाम्॥३०॥
वासुदेवतरुच्छाया नातिशीतातितापदा। नरकद्वारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते॥३१॥

यदि कीट-पक्षी आदि प्राणी भी हरि को चित्त प्रदान करें, तब उनकी भी सद्गति होगी। जो मनुष्य जानते हुये, ज्ञानतः विष्णु को चित्त प्रदान करते हैं, उनको जो सद्गति मिलेगी, वह वर्णन नहीं हो सकती। वासुदेवरूपी वृक्ष की छाया न तो अति ठंडी है और न अत्यन्त गर्म है। इस छाया में रहने वाले कदापि नरक नहीं जाते। अतः लोग इसका सेवन क्यों नहीं करते?॥३०-३१॥

न च दुर्वाससः शापो राज्यञ्चापि शचीपतेः। हन्तुं समर्थं हि सखे हृत्कृते मधूसूदने॥३२॥
वदतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
नापयाति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम्॥३३॥
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् कनककुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥३४॥
न हि ध्यानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। श्वपचान्नानि भुञ्जानो पापी नैवात्र लिप्यते॥३५॥
सदा चित्तं समासक्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बन्धनात्॥३६॥

जिसके हृदय में मधुसूदन स्थित हैं, उसका दुर्वासा का शाप अथवा इन्द्र का वज्र कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। बातचीत में, अवस्थित रहते अथवा जानबूझ कर अन्याय करते समय जिसके हृदय से विष्णु चिन्तन नहीं जाता, वही वास्तविक धारणा वाला साधक है। सर्वदा पद्मासनासीन, सविता के मण्डलमध्य में विराजमान, केयूर, कनक-कुण्डलधारी, किरीट तथा हार से शोभायमान, स्वर्णमयदेह, शंख-चक्र-गदाधारी नारायण का ध्यान करे। इस ध्यान जैसा पवित्र अन्य कुछ नहीं है। यह ध्यान करने वाला यदि चाण्डाल का अन्न भी खा ले, वह पापलिप्त नहीं होगा। जीवगण का मन सदा विषय भोग में ही लीन रहता है। यदि ऐसी ही अनुरक्ति नारायण के प्रति हो, तब कौन ऐसा है, जो संसार बन्धन से मुक्त नहीं होगा॥३२-३६॥

सूत उवाच

विष्णुभक्तिर्यस्य चित्ते कं वा जीवो नमेत्सदा।
स तारयति चात्मानं तथैव दुरितार्णवात्॥३७॥
तज्ज्ञानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः। तत्कर्म यत्तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितैः॥३८॥

सूतजी कहते हैं—हे मुनियों! जिसके चित्त में विष्णुभक्ति विराजमान है अथवा जो सदा विष्णु को प्रणाम करता है, वह दुष्कृति होकर भी अपने आत्मा का उद्धारक हो जाता है। जिस ज्ञान के विषय विष्णु हों, वही वास्तव में ज्ञान है। जिस बात में हरिकथा का प्रसंग हो, वही सत्कथा है। केवल हरि कथा से ही सर्व कार्य साधन होगा। अत: अन्य वार्त्ता कथा की क्या जरूरत?॥३७-३८॥

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥३९॥
प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदुस्तदर्चनं पाणिफलं दिवौकसः।
मनःफलं तद्गुणकर्मचिन्तनं वचस्तु गोविन्दगुणस्तुतिः फलम्॥४०॥
मेरुमन्दारमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः। केशवस्मरणादेव तस्य सर्वं विनश्यति॥४१॥

वही जिह्वा सार्थक है, जो हरि का स्तव करती है। वही चित्त जहां हरि विराजित हैं, यथार्थ चित्तरूप है। जो हाथ विष्णुपूजा में लगे हैं, वे ही वास्तविक हाथ हैं। जो मस्तक ईश्वर के सामने प्रणत होता है, वही मस्तक है। देवार्चन ही दोनों हाथों का काम है। मन का प्रयोजन है ईश्वर का गुणकर्म चिन्तन। वाणी का फल है स्तव से गोविन्द की अर्चना। वैद्यरूपी प्रभु केशव का आश्रय लेने पर जिस प्रकार के असाध्य रोगों का नाश होता है, वैसे ही मेरु-मन्दराचल पर्वत ऐसी विशाल पापराशि का भी नाश उनके स्मरण से नष्ट होगा॥३९-४१॥

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म पुरुषः साध्वसाधु वा।
सर्वं नारायणे न्यस्य कुर्वन्नपि न लिप्यते॥४२॥
तृणादि चतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम्। चराचरं जगत्सर्वं प्रसुप्तं मायया तव॥४३॥
यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र न वेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिश्चेतसि संस्थितो जडधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किञ्चित्तं यदयं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते॥४४॥

मनुष्य साधु हो किंवा असाधु हो, कर्म करता हो अथवा नहीं करता हो, वह सब कुछ नारायण को अर्पित कर देने पर किसी कर्म से लिप्त नहीं होगा। तृण से लेकर ब्रह्मा तक चतुर्विध प्राणी तथा सचराचर जगत् विष्णु की माया से प्रसुप्त ही है। जिनको मन समर्पित कर देने पर मनुष्य नरक नहीं जाता, जिनका चिन्तन करने से स्वर्ग मिलता है, जिनमें मन निवेश करने पर कोई विघ्न भी विघ्न जैसा नहीं

लगता तथा ब्रह्मलोक भी तुच्छ लगता है, उन नारायण के चित्त में विराजित होने पर जड़ व्यक्ति को भी मुक्ति मिल जाती है। अतएव हरिनाम कीर्तन से सभी पापकर्म विलीन होते हैं, इसमें क्या सन्देह। इसमें क्या आश्चर्य। यह अच्युत अव्यय केशव का प्रभाव है॥४२-४४॥

अग्निकार्यं जपः स्नानं विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम्।
गन्तुं दुःखोदधेः कुर्य्युर्ये च तत्र तरन्ति ते॥४५॥
राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य च। धर्मश्च सर्वमर्त्यानां सर्वस्य शरणं हरिः॥४६॥
ये नमन्ति जगद्योनिं वासुदेवं सनातनम्। न तेभ्यो विद्यते तीर्थमधिकं मुनिसत्तम॥४७॥
अनर्घ्यरत्नपूजाञ्च कर्य्यात्स्वाध्यायमेव च।
तमेवोद्दिश्य गोविन्दं ध्यानं नित्यमतन्द्रितः॥४८॥
शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा। द्विजजातिं समं मन्ये न याति नरकं नरः॥४९॥
आदरेण सदा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया।
तथा विश्वस्य कर्त्तारं को न मुच्येत बन्धनात्॥५०॥

जो लोग दुःख निवारणार्थ प्रभु का जप, होम, स्नान, ध्यान, अर्चन करते हैं, वे इस दुःख समुद्र से पार हो जाते हैं। राष्ट्र का शरणरूप हैं राजा, बालक का शरण्य है पिता, सर्वलोकाश्रय है धर्म। लेकिन अकेले विष्णु सबके आश्रय हैं। जो जगत् के कारण सनातन वासुदेव को प्रणाम करते हैं, वे तीर्थ हैं। वे मूढ़ मनुष्यों के उद्धारक हैं। विष्णुभक्त मानव प्रमादरहित मन से नित्य गोविन्द पूजन अमूल्य रत्न से, स्वाध्याय से तथा ध्यान से करें। शूद्र, निषाद, चाण्डाल यदि भगवान् की भक्ति करते हैं, तब वे ब्राह्मण के तुल्य हो जाते हैं। वे कदापि नरक नहीं जाते। धन लोभी व्यक्ति जिस प्रकार धनकामना के लिये धन की सेवा करते हैं, उसी तरह विश्वकर्त्ता नारायण की आराधना द्वारा कौन ऐसा है, जो संसार-बंधन से मुक्त न हो॥४५-५०॥

यथा जातवनो वह्निर्दहत्यार्द्रमपीन्धनम्।
तथाविधः स्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्विषम्॥५१॥
आदीप्तं पर्वतं यद्वन्नाश्रयन्ति मृगादयः। तद्वत्पापानि सर्वाणि योगाभ्यासरतो नरः॥५२॥
यस्य यावांश्च विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती।
एतावानेव कृष्णस्य प्रभावः परिमीयते॥५३॥
विद्वेषादपि गोविंदं दमघोषात्मजः स्मरन्।
शिशुपालो गतस्तत्त्वं किं पुनस्तत्परायणः॥५४॥

॥इति गारुडे महापुराणे विष्णुमाहात्म्यकथनं नाम द्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२२॥

जैसे अग्नि वन में प्रविष्ट होकर गीले-हरे वृक्षों को भी जला देता है, उसी तरह से विष्णु योगीगण के हृदय में स्थित होकर उनके सभी पापों को जला देते हैं। जैसे मृगपशु आदि ज्वलन्त पर्वतों का आश्रय नहीं लेते, तदनुरूप भक्ति योगाभ्यासी पर पाप अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाते, न तो उसका आश्रय ले पाते हैं। जो मानव विष्णु पर जैसा विश्वास रखता है, उसे तदनुरूप सिद्धि मिलती है। यही नारायण का प्रभाव है। दमघोष का पुत्र शिशुपाल भगवान् से द्वेष करके भी उनके धाम को पा गया। अतः जो प्रभु नारायण परायण है, उसकी तो बात ही क्या?॥५१-५४॥

॥दो सौ बाईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

त्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नृसिंहस्तुति वर्णन

सूत उवाच

नारसिंहस्तुतिं वक्ष्ये शिवोक्तं शौनकाधुना। पूर्वं मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन्॥१॥
भगवन् भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषम्। त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि॥२॥

शङ्कर उवाच

भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः।
तस्मात् घोरतरप्रायं मनः शीघ्रं निवर्त्त्यताम्॥३॥

सूतजी ने कहा—हे शौनक! अब मैं शिव द्वारा कथित भगवान् नरसिंह की स्तुति कहता हूं। पूर्वकाल में मातृगण ने शंकर से कहा—"हे प्रभो! हम आपकी कृपा से देवता-असुर-मनुष्यों के साथ जगत् का भक्षण करेंगी। आप आज्ञा दीजिये।" यह सुनकर शंकर ने कहा—"हे मातृगण! तुम ही तो प्रजावर्ग की रक्षा करती हो। अतः यह घोर इच्छा त्यागो"॥१-३॥

इत्येवं शङ्करेणोक्तमनादृत्य तु तद्वचः। भक्षयामासुरव्यग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम्॥४॥
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै। नृसिंहरूपिणं देवं प्रदध्यौ भगवान् शिवः॥५॥

(सूतजी ने कहा) तब मातृगण ने शंकर की उपेक्षा किया तथा त्रैलोक्य को खाने हेतु तत्पर हो गईं। जब उन्होंने यह कार्य प्रारम्भ किया तब भगवान् शिव नृसिंहरूपी विष्णुपंजर स्तव कहने लगे॥४-५॥

अनादिनिधनं देवं सर्वभूतभवोद्भवम्। विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केशरमालिनम्॥६॥
रत्नाङ्गदं सुमुकुटं हेमकेशरभूषितम्। श्रोणिसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम्॥७॥
नीलोत्पलदलश्यामं रत्ननूपुरभूषितम्। तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डोदरमण्डपम्॥८॥

आवर्त्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहरोमभिः। सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयंश्च महास्त्रजम्॥९॥

भगवान् शिव ने तब कहा—आप आदि अन्तहीन हैं। आपसे ही सभी प्राणीगण का जन्म होता है। आपकी जिह्वा विद्युत् जैसी लपलपाने वाली अतीव भयावह है। आपके केश लहरा रहे हैं। आपका गर्जन कल्पान्त कालीन वायुप्रवाह, विक्षुब्ध सातों सागर जैसा गर्जन कर रहा है। आपका शरीर उदीयमान सूर्य की किरणों से उद्भासित सुमेरुपर्वत जैसा दीप्तमान है। हिमाद्री शृंग जैसे दांतों से आपका मुखमण्डल उज्वल लग रहा है। क्रोध के कारण आपके केशों तक से ज्वालामाला निर्गत हो रही है। आप नृसिंह देवता ने अंगद, शोभायमान मुकुट धारण किया है। आप स्वर्णमय केशसमूह भूषित, कांचनमय कटिसूत्र सज्जित हैं। आप नीलकमलवत् श्यामवर्ण, रत्नमय नूपुर भूषित, अपने तेज से जगत् को व्याप्त करते स्थित हैं। ब्रह्माण्ड तो आपके उदर में स्थित है। आपके शरीर में आवर्त्तमयी रोमराशि विद्यमान है। आपने समस्त पुष्पों से रचित विचित्र माला धारण किया है॥६-९॥

स ध्यातमात्रो भगवान्प्रददौ तस्य दर्शनम्। यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रैस्तु भक्तितः॥१०॥
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्षेण दैवतैः। प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः॥११॥

इस प्रकार से भगवान् शंकर के ध्यान मात्र से भगवान् नृसिंह ने प्रभु शंकर को दर्शन प्रदान किया। उनका रूप वैसा ही था, जैसा भक्तिपूर्वक रुद्रदेव शंकर ने ध्यान किया था। वह रूप देवताओं के लिये भी अत्यन्त दुर्निरीक्ष था। तब प्रभु शिव उन देवदेवेश के समक्ष प्रणत होकर स्तव करने लगे॥१०-११॥

शङ्कर उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर। दैत्येश्वरेन्द्र संहारनखशुक्तिविराजित॥१२॥
नखकमलसंलग्न हेमपिङ्गलविग्रह। नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो।
कल्पान्तेऽम्भोदनिर्घोष सूर्य्यकोटिसमप्रभ॥१३॥
सहस्त्रयमसंत्रास सहस्त्रेन्द्रपराक्रम। सहस्त्रधनदस्फीत सहस्त्रचरणात्मक॥१४॥
सहस्त्रचन्द्रप्रतिम सहस्त्रांशुहरिक्रम। सहस्त्ररुद्रतेजस्क सहस्त्रब्रह्मसंस्तुत॥१५॥
सहस्त्ररुद्रसंजप्त सहस्त्राक्षनिरीक्षण। सहस्त्रजन्ममथन सहस्त्रबन्धमोचन॥१६॥
सहस्त्रवायुवेगाग्र सहस्त्राक्ष कृपाकर। स्तुत्वैवं देवदेवेशं नृसिंहवपुषं हरिम्।
विज्ञापयामास पुनर्विनयावनतः शिवः॥१७॥

भगवान् शंकर कहते हैं—हे नृसिंहरूपी जगन्नाथ! आपको नमस्कार! आपने दैत्येश्वर हिरण्यकशिपु को अपने नखों से फाड़ दिया तथा शोभित हो गये। हे देव! आपके नखों में हेमपिंगलदेह दैत्य विद्यमान है। हे जगद्गुरु! आप पद्मनाभ, अतीव सुशोभन हैं। आपको प्रणाम! आप कल्पान्त सागरवत् निर्घोष हैं। आपका कटिदेश सूर्य के समान प्रभावान् है। आप हजारों यम जैसा त्रास उत्पन्न कर देते हैं। आप हजारों इन्द्र ऐसे पराक्रमी, सहस्त्रों कुबेर जैसे वर्द्धिष्ट, सहस्त्रों चरणों वाले हैं। आप सहस्त्रों चन्द्रवत् तेजवान्, यशस्वी, सहस्त्रों सूर्यवत् पराक्रमी, सहस्त्रों रुद्र जैसे तेजस्वी हैं। हे देव! आप हजारों ब्रह्मा जैसे संस्तुत हैं। हजारों रुद्र आपका मन्त्रजप करते रहते हैं। इन्द्र सदा आपही का दर्शन करते हैं। हे देव! आप सहस्त्रों वायु

के समान बली हैं। आपने इन्द्र पर कृपा किया था। देवदेवेश्वर ने नृसिंहरूपी हरि का यह स्तव सुनकर और विनयावनत होकर उन्होंने नृसिंहदेव से मातृगण की समस्त चेष्टा को कह दिया॥१२-१७॥

अन्धकस्य विनाशाय या सृष्टा मातरो मया। अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्वद्भुताः प्रजाः॥१८॥
सृष्ट्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्त्तुमपराजितः। पूर्वं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिरोचये॥१९॥
एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्हरिः। सहस्रदेवीर्जिह्वाग्रात्तदा वागीश्वरो हरिः॥२०॥
तथा सुरगणान्सर्वान्रौद्रान्मातृगणान्विभुः। संहृत्य जगतः शर्मः कृत्वा चान्तरधीयत॥२१॥
नारसिंहमिदं स्तोत्रं यः पठेन्नियतेन्द्रियः। मनोरथप्रदस्तस्य रुद्रस्येव न संशयः॥२२॥

शिव कहते हैं—हे देव! मैंने पूर्वकाल में अन्धकासुर के विनाशार्थ जिन मातृगण को सृष्ट किया था, वे मेरे वाक्य का अनादर करके समस्त प्रजा का भक्षण कर रही हैं। मैंने ही उनको रचा है। अतः उनका विनाश नहीं कर सकता। पूर्व में उनकी सृष्टि करके अब स्वयं उनके नाशार्थ इच्छा नहीं हो रही है। रुद्र का यह वचन सुनकर हरि (नृसिंह देव ने) अपने जिह्वा के अगले भाग से एक हजार देवीगण को उत्पन्न किया। ये देवियां असुरों तथा रौद्ररूपी मातृकागण का संहार करके जगत् को स्वस्थ करके अन्तर्ध्यान हो गयीं। जो व्यक्ति नित्य नृसिंहस्तव का पाठ करता है, निःसन्देह वे नरहरिदेव उस पर प्रसन्न होकर उस प्रकार वर देते हैं, जैसे उन्होंने रुद्र के स्तवपाठ से दिया था॥१८-२२॥

ध्यायेन्नृसिंहं तरुणार्कनेत्रं सिताम्बुजातं ज्वलिताग्निवक्त्रम्।
अनादिमध्यान्तमजं पुराणं परावरेशं जगतां निधानम्॥२३॥
जपेदिदं सन्ततदुःखजालं जहाति नीहारमिवांशुमाली।
समातृवर्गस्य करोति मूर्त्तिं यदा यदा तिष्ठति तत्समीपे॥२४॥
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्त्तेः पूजां विधातुं त्रिपुरान्तकारी।
प्रसाद्य तं देववरं स लब्धा अव्याज्जगन्मातृगणेभ्य एव॥२५॥

॥इति गारुडे महापुराणे नृसिंहस्तवकथनं नाम त्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२३॥

अरुण सूर्य के समान नेत्रवाले, प्रज्वलित अग्निवत् मुख वाले, आदि-मध्य-अन्तहीन अजन्मा, पुराणपुरुष पर-अपर के ईश्वर, जगदाधार हरि का ध्यान करें। जो इनका मन्त्र जपता है, ये देव उसका दुःखनाश कर देते हैं। अंशुमाली सूर्य जिस प्रकार कुहरे को सोख लेते हैं, तदनुरूप ये देवता पापों का नाश करते हैं। साधक जब-जब इन देव के सान्निध्य में रहता है, तब तक उसे मातृगण जनित भय नहीं रहता। महेश्वर शिव ने एवंविध स्मृति की पूजा तथा स्तव किया और उनको प्रसन्न करके वर पाया, जिससे मातृगण से जगत् की रक्षा हो गयी॥२३-२५॥

॥दो सौ तेईसवां अध्याय समाप्त॥

चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

कुलामृत वर्णन

सूत उवाच

कुलामृतं प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं यत्तु हरोऽब्रवीत्।
पृष्टः स्त्रीनारदेनैव नारदाय तथा शृणु॥१॥

सूतजी ने कहा—मैं कुलामृत (यहां पाठभेद से बंग भाषा संस्करण में ज्ञानामृत लिखा है) स्तोत्र कहता हूं। महेश्वर ने नारद को यह स्तव बतलाया था। हे शौनक! इसे श्रवण करिये॥१॥

नारद उवाच

यः संसारे सदा द्वन्द्वैः कामक्रोधैः शुभाशुभैः।
शब्दादिविषयैर्बद्धः पीड्यमानः स दुर्मतिः॥२॥
क्षणं विमुच्यते जन्तुर्मृत्युसंसारसागरात्। भगवन् श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो हि त्रिपुरान्तक॥३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः। उवाच तमृषिं शम्भुः प्रसन्नवदनो हरः॥४॥

महेश्वर उवाच

ज्ञानामृतं परं गुह्यं रहस्यमृषिसत्तम। वक्ष्यामि शृणु दुःखघ्नं भवबन्धभयापहम्॥५॥
तृणादिचतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम्। चराचरं जगत् सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया॥६॥
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यति। स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम्॥७॥
भोगैश्वर्य्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुखः। पुत्रदारकुटुम्बेषु मत्ताः सीदन्ति जन्तवः॥८॥
सर्व एकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव। यस्त्वाननं निबध्नाति दुर्मतिः कोषकारवत्।
तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि॥९॥

देवर्षि नारद ने कहा—"हे प्रभो! जो दुर्मति इस संसार में काम-क्रोध, शुभ-अशुभ-शब्द-विषय द्वन्द्वों से त्रस्त होकर पीड़ित हैं, वे क्या करके क्षणमात्र में मरणभय पूर्ण संसार-सागर से मुक्त हो सकेंगे? मैं आपसे यही जानना चाहता हूं।" नारद का वाक्य सुनकर महेश्वर ने प्रसन्नता के साथ देवर्षि नारद से कहा—"हे ऋषिवर! ज्ञानरूपी अमृत है परम ब्रह्म। यह सर्वदुःखनाशक है तथा लोगों को संसारबन्धन से छुटकारा दिलाने वाला है। मैं वही परम गोपनीय रहस्य तुमसे कहता हूं। हे ऋषिप्रवर नारद! जिन विष्णु की माया से ब्रह्मादि देवता से लगाकर तृण पर्यन्त सचराचर चतुर्धा जगत् प्रसुप्त पड़ा रहता है, यदि उन नारायण की कृपा से कोई ज्ञान पा जाता है, तभी वह मनुष्य देवदुस्तर संसार-सागर से त्राण पा सकता है। प्राणीगण ऐश्वर्य भोग में मदमत्त हो जाते हैं। वे संसार के मायामोह, पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब प्रभृति के प्रति अनुरक्त होकर एकार्णव में डूब रहे वन हाथी की तरह नाना प्रकार का क्लेश भोगते हैं। वे दुर्मति कोष में

बन्द कीट की तरह अपना मुख बन्द किये रहते हैं। वे संसार-सागर में डूब जाते हैं। वे तो कोटि-कोटि जन्मों में भी मुक्तिसंभावना से दूर रहते हैं॥२-९॥

तस्मान्नारद सर्वेषां देवानां देवमव्ययम्।
आराधयेत् सदा सम्यग्ध्यायेद्विष्णुं मुदान्वितः॥१०॥
यस्तु विश्वमनाद्यन्तमजमात्मनि संस्थितम्।
सर्वज्ञमचलं विष्णुं सदा ध्यायेत् स मुच्यते॥११॥

(जो पुत्र-स्त्री-कुटुम्ब आदि मायारूपी पाश से बद्ध हैं, वे कदापि देवाधिदेव नारायण की आराधना नहीं कर पाते)। हे नारद! सभी देवों के देव, अव्यय विष्णु की आराधनारूप से मुदित होकर ध्यान द्वारा करे। जो आदि-अन्त रहित अज, सर्वज्ञ, अचल, विष्णु का ध्यान सदा आत्मसंस्थित होकर करता है, वह मुक्त हो जाता है॥१०-११॥

देवं गर्भोचितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते। अशरीरं विधातारं सर्वज्ञानमनोरतिम्।
अचलं सर्वगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥१२॥

महिमामय विष्णु का सदा ध्यान करने वाला मुक्त हो जाता है। अशीरीरि, जगत् विधाता, सर्वज्ञान के समुदय मन का विपरीत स्थान, अचल, सर्वगामी विष्णु का ध्यान करने वाला मुक्त हो जाता है॥१२॥

निर्विकल्पं निराभासं निष्प्रपञ्चं निरामयम्।
वासुदेवं गुरुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥१३॥
सर्वात्मकस्य यावन्तमात्मचैतन्यरूपकम्।
शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥१४॥

शुभ्र, एकाक्षार, निर्विकल्प, निष्प्रपञ्च, निरामय, वासुदेव, गुरु विष्णु का सदा ध्यान करने वाला मुक्त हो जाता है। निर्विकल्प, निर्मम, निरहंकार, निर्द्वन्द्व, इन्द्रियों के अधिष्ठाता, निरुपाधि विष्णु का सदा ध्यान करने वाला विमुक्त हो जाता है॥१३-१४॥

वाक्यातीतं त्रिकालज्ञं विश्वेशं लोकसाक्षिणम्।
सर्वस्मादुत्तमं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥१५॥
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः।
योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥१६॥
संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन् लोको ह्यशेषतः।
स्तुत्वैवं वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥१७॥

वाणी से अतीत, त्रिकालज्ञ, विश्वेश, लोकसाक्षी, सबसे उत्तम विष्णु का सदा ध्यान करने वाला विमुक्त हो जाता है। ब्रह्मादि देव, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण, योगीगण से सेवित विष्णु का सदा ध्यान करने वाला विमुक्त हो जाता है। संसार बन्धन से मुक्त होने की इच्छा वाले लोग वरप्रद विष्णु का सदा ध्यान तथा स्तुति करके मुक्त हो जाते हैं॥१५-१७॥

संसारबन्धनात्कोऽपि मुक्तिमिच्छन्समाहितः।
अनन्तमव्ययं देवं विष्णुं विश्वे प्रतिष्ठितम्।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं सदा ध्यायन्विमुच्यते॥१८॥

संसार बन्धन से मुक्ति चाहने वाला समाहित चित्त से अनन्त अव्यय विष्णु का ध्यान करे। विष्णु में ही विप्लव स्थित है। इन विश्वेश्वर अजन्मा विष्णु का सदा ध्यान करने वाला मुक्त हो जाता है॥१८॥

सूत उवाच

नारदेन पुरा पृष्ट एवं स वृषभध्वजः। यत्तेन तस्मै व्याख्यातं तन्मया कथितं तव॥१९॥
तमेव सततं ध्यायन्निर्व्ययं ब्रह्म निष्कलम्।
अवाप्स्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमव्ययम्॥२०॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। क्षणमेकाग्रचित्तस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥२१॥

सूतजी ने कहा—पूर्वकाल में जब नारद ने पूछा था, तब वृषध्वज ने नारद को यही उपदेश दिया। उनका सतत् ध्यान करने वाला अव्यय निष्कल ब्रह्मपद लाभ करता है। ये निष्कल निर्द्वन्द्व ब्रह्मरूपी सनातन हरि का सदा ध्यान करने वाला अव्यय ब्रह्मपद लाभ करता है। सहस्रों अश्वमेध तथा सैकड़ों वाजपेय का जो फल मिलता है, वह विष्णु के प्रति एकाग्रचित्त व्यक्ति को मिलने वाले फल का सोलहवां भाग भी नहीं है॥१९-२१॥

श्रुत्वा सुरऋषिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात्।
स विष्णुं सम्यगाराध्य सिद्धेः पदमवाप्तवान्॥२२॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि नित्यमेव स्तवोत्तमम्।
कोटिजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति॥२३॥
विष्णोः स्तवमिदं दिव्यं महादेवेन कीर्त्तितम्।
प्रयत्नाद्यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति॥२४॥

।।इति गारुडे महापुराणे कुलामृतकथनं नाम चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२४।।

देवर्षि नारद ने महादेव से हरि का यह स्तव सुनकर इससे नारायण की आराधना की और उनको इसी से सिद्धियां मिल गयीं। जो व्यक्ति नित्य-प्रति इस स्तव को पढ़ता अथवा सुनता है, उसके कोटि जन्मार्जित पाप तत्क्षण नष्ट होते हैं। महादेव द्वारा कीर्त्तित यह दिव्य हरिस्तव जो कोई यत्नतः पढ़ता है, वह मुक्त होता है॥२२-२४॥

॥दो सौ चौबीसवां अध्याय समाप्त॥

पञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृत्युष्टकस्तोत्र वर्णन

सूत उवाच

स्तोत्रं सर्वं प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयेन भाषितम्।
दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥१॥

शङ्खचक्रधरं देवं व्यक्तरूपिणमव्ययम्। अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥२॥

वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम्। माधवञ्च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥३॥

पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीजं पुण्यं जगत्पतिम्।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥४॥

सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥५॥

भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम्।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥६॥

सूतजी ने कहा—अब मैं मार्कण्डेय कथित स्तोत्र कहता हूं। मैंने दामोदर की शरण लिया है, मृत्यु मेरा क्या करेगी? शंख-चक्र-गदाधारी देव व्यक्त रूप अव्यय अधोक्षज की मैंने शरण लिया है। मृत्यु मेरा क्या करेगी? वराह, वामन, विष्णु, नृसिंह, जनार्दन, माधव की मैंने शरण लिया है। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी? पुरुष, पुष्कर, क्षेत्रबीज, पुण्यमय, जगत्पति, लोकनाथ की मैंने शरण लिया है, मृत्यु मेरा क्या करेगी? सहस्र शिर वाले, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, महायोगरूप प्रभु की शरण लिया है। मृत्यु मेरा क्या बिगाड़ सकेगी? जो सर्वभूतात्मा, यज्ञयोनि, अयोनिज हैं तथा विश्वरूप हैं, मैंने उनकी शरण लिया है। मृत्यु मेरा क्या करेगी?॥१-६॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः। अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैः प्रपीडितः॥७॥

इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता। प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम्॥८॥

मृत्व्यष्टकमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम्। मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह॥९॥

इदं यः पठते भक्त्या त्रिकालं नितयं शुचिः।
नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः॥१०॥

हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं नारायणं शाश्वतमप्रमेयम्।
विचिन्त्य सूर्य्यादतिराजमानं मृत्युं स योगी जितवांस्तथैव॥११॥

॥इति गारुडे महापुराणे मृत्व्यष्टकस्तोत्रकथनं नाम पञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२५॥

महात्मा मार्कण्डेय ने यह स्तव पढ़ कर मृत्यु को जीत लिया। इसे पढ़ने से पुण्डरीकाक्ष हरि प्रसन्न होते हैं। तब जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। यह मृत्युष्टक पुण्यमय मृत्युनाशक तथा शुभ है। मार्कण्डेय के हितार्थ इसे विष्णु ने स्वयं कहा था, जो पवित्र भाव से इसे नित्य तीनों काल में पढ़ता है, अच्युत में मन लगाने वाले उस मनुष्य की अकाल मृत्यु नहीं होती। जो हृदयकमल में पुराणपुरुष अप्रमेय नारायण का चिन्तन करते हैं, वे योगीवर सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होकर मृत्युजय करते हैं॥७-११॥

॥दो सौ पच्चीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
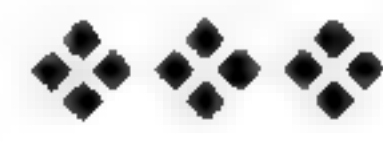
षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अच्युतस्तोत्र वर्णन

सूत उवाच

वक्ष्येऽहमच्युतस्तोत्रं शृणु शौनक सर्वदम्। ब्रह्मा पृष्टो नारदाय यथोवाच तथापरम्॥१॥

सूतजी ने कहा—हे शौनक! अब मैं अच्युतस्तोत्र कहता हूं, जो सर्वप्रद हैं। नारद के पूछने पर इसे ब्रह्मा ने कहा था॥१॥

नारद उवाच

यथाऽक्षयोऽव्ययो विष्णुः स्तोतव्यो वरदो मया।
प्रत्यहं चार्चनाकाले तथा त्वं वक्तुमर्हसि॥२॥
ते धन्यास्ते सुजन्मानस्ते हि सर्वसुखप्रदाः।
सफलं जीवितं तेषां ये स्तुवन्ति सदाच्युतम्॥३॥

नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! नित्यप्रति वरप्रद अक्षय नारायणार्चन करने हेतु जो स्तव करना चाहिये, वह कहें। जो अच्युत का सेवन करते हैं, वे धन्य हैं। उनका जन्म सार्थक है। वे सभी सुख पाते हैं॥२-३॥

ब्रह्मोवाच

मुने स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि वासुदेवस्य मुक्तिदम्।
शृणु येन स्तुतः सम्यक्पूजाकाले प्रसीदति॥४॥
ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमः सर्वपापहारिणे॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—वासुदेव का स्तव कहता हूं। इससे साधक मुक्त होता है। इसे पूजाकाल में पढ़ने

से नारायण प्रसन्न होते हैं। भगवान् वासुदेव को सर्वपापहारी हरि को नमस्कार! जो विशुद्ध देहधारी हैं, ज्ञानदाता हैं, उन हरि को नमस्कार!॥४-५॥

नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः। नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर॥६॥
नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक। नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम॥७॥
नमस्ते विश्वकृद्देव नमस्ते विश्वभावन। नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण॥८॥
नमस्ते मधुदैत्याघ्न नमस्ते रावणान्तक। नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन॥९॥
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुडध्वज। नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुडासन॥१०॥
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन। नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्ते दितिनन्दन।
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय॥११॥

यज्ञवराह, गोविन्द, परमानन्द, परमाक्षर, ज्ञानसद्भाव, ज्ञानदायक, परमाद्वैत, पुरुषोत्तम, विश्वकृद्देव, विश्वभावन, विश्वनाथ, विश्वकारण, मधुदैत्यविनाशक, रावणान्तक, कंस-केशी वधकर्त्ता, कैटभ संहारक, शतपत्राक्ष, गरुड़ध्वज, कालनेमिहन्ता, गरुड़ासन, देवकीपुत्र, वृष्णिनन्दन, रुक्मिणीपति, दितिनन्दन, गोकुलवासी, गोकुलप्रिय हरि को नमस्कार! पुनः पुनः नमस्कार!॥६-११॥

जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय। जय गोवर्द्धनाधार जय गोकुलवर्द्धन॥१२॥
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन। जय वृष्णिकुलोद्योत जय कालीयमर्दन॥१३॥
जय सत्यजगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक। जय वेदान्तविद्वैद्य जय सर्वद माधव॥१४॥
जय सर्वाश्रयाव्यक्त जय सर्वद माधव। जय सूक्ष्मचिदानन्द जय चित्तनिरन्जन॥१५॥

हे गोपदेहधारी कृष्ण! गोपीजनप्रिय, गोवर्द्धनधारी, गोकुलवर्द्धक, रावणवीरनाशक, चारुणनाशक, वृष्णिकुलसूर्य, कालीय मर्दक, सत्यजगत् साक्षी, सवार्थ साधक, वेदान्तविद्, वैद्य, सर्वप्रद माधव, सर्वाश्रय, अव्यक्त, सर्वद माधव, सूक्ष्म, चिदानन्द, चित्त निरंजन आपकी जय हो॥१२-१५॥

जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन।
जय नाथ जगत्पुष्ट जय विष्णो नमोऽस्तु ते॥१६॥
त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामन्त्रमण्डलम्।
त्वं न्यासमुद्रासमयस्त्वञ्च पुष्पादि साधनम्॥१७॥
त्वमाधारस्त्वमनन्तस्त्वं कूर्मस्त्वं धराम्बुजः।
धर्मज्ञानादयस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः॥१८॥
त्वं प्रभोद्दलभृद्रामस्त्वं पुनःशंवरान्तकः। त्वं ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णुः सत्यपराक्रमः॥१९॥
त्वं नृसिंहः परानन्दो वराहस्त्वं धराधरः। त्वं सुपर्णस्तथा चक्रस्त्वं गदा शङ्ख एव च॥२०॥
त्वं श्रीः प्रभो पुष्टिस्त्वं माला देव त्वं शाश्वती।
श्रीवत्सः कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गी त्वञ्च तथेषुधिः॥२१॥

त्वं खड्गचर्मणा सार्द्धं त्वं दिक्पालस्तथा प्रभो।
त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः॥२२॥

हे निरालम्ब! शान्त, सनातन, नाथ, जगत्पुष्ट करने वाले, विष्णु आपको नमस्कार! आपकी जय हो। हे हरि! आप ही गुरु हैं। आप शिष्य हैं। आप दीक्षा, मन्त्र तथा मण्डल हैं। आप न्यास, मुद्रा, समय, पुष्पादि साधन हैं। आप आधार, अनन्त, कूर्म तथा धराम्बुज, धर्म, ज्ञान आदि हैं। आप ही वेदी-मण्डल, शक्ति हैं। आप ही हलधर, श्रीराम, शंबरान्तक, ब्रह्मर्षि, देवता, विष्णु, सत्यपराक्रम, नृसिंह, परानन्द, वराह, धराधर, सुपर्ण, चक्र, गदा, शंख, श्री, प्रभु, पुष्टि, शाश्वती, वनमाला, श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, शार्ङ्गधनुषधारी तथा ईषुधि हैं। आप तलवार-ढालधारी, दिक्पाल, विधाता, ब्रह्मा साध्य, वायु तथा चन्द्रमा हैं॥१६-२२॥

आदित्या वसवो रुद्रास्त्वमश्विन्यौ मरुद्गणाः।
त्वं दैत्या दानवा नागास्त्वं यक्षराक्षसाःखगाः॥२३॥
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरस्त्वं महामराः।
भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमव्यक्तेन्द्रियाणि च॥२४॥
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं हृदीश्वरः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समित्कुशः॥२५॥

आप ही आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, दैत्य, दानव, नाग, यक्ष, राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, पितर, महान्, अमर, भूत, विषय, अव्यक्त तथा इन्द्रियां, मन-बुद्धि-अहंकार, क्षेत्रज्ञ, हृदीश्वर, यज्ञ, वषट्कार, ओंकार, समिध् तथा कुश हैं॥२३-२५॥

त्वं वेदी त्वं हरे दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः।
त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धान्यः पशुयाजकः॥२६॥
त्वमध्वर्य्युस्त्वमुद्गाता त्वं यज्ञः पुरुषोत्तमः।
दिक्पातालमही व्योम द्यौस्वं नक्षत्रकारकः॥२७॥
देवतिर्य्यङ्मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम्।
यत्किञ्चिद् दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत्॥२८॥

हे हरि! आप वेदी, दीक्षा, यूप, अग्नि, होता, यजमान, धान्य, पशु, याजक, अध्वर्यु, उद्गाता, यज्ञ तथा पुरुषोत्तम हैं। आप दिक्, पाताल, पृथिवी, व्योम, अन्तरिक्ष तथा नक्षत्र कारक, देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सचराचर जगत् हैं। ब्रह्माण्ड तथा अखिल जगत् जो दिखलाई दे रहा है, वह आप ही हैं॥२६-२८॥

तव रूपमिदं सर्वं दृष्ट्यर्थं संप्रकाशितम्। नाथ यत्ते परं ब्रह्म देवैरपि दुरासदम्॥२९॥

कस्तज्जानाति विमलं योगिगम्यमतीन्द्रियम्।
अव्ययं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम्॥३०॥

प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम्। सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम्॥३१॥
बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमक्षयम्। अवतारेषु या मूर्त्तिर्विहरेद्दव दृश्यते॥३२॥
परं भावमजानन्तस्त्वां भजन्ति दिवौकसः।
कथं त्वामीदृशं सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम॥३३॥
पुष्पधूपादिभिर्यत्तत्तव सर्वविभूतयः। सङ्कर्षणादि हे देव तव यत्पूजितो मया॥३४॥
क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यत्कृतं न कृतं मया।
न शक्नोमि विभो सम्यक्तव पूजां यथोदिताम्॥३५॥

हे नाथ! आपका सर्वव्यापक ब्रह्मरूप देवताओं के लिये भी अगम्य है। योगीगण, अतीन्द्रिय, विमलभाव, अव्यय, सनातन, अव्यक्त, अज, पुरुष प्रलयोत्पत्तिरहित, सर्वव्यापी, ईश्वर, सर्वज्ञ, निर्गुण, शुद्ध, आनन्द, अजर, अमर, परम, बोधरूप, ध्रुव, शान्त, पूर्ण, अद्वैत, अक्षय हैं। आपका जो मूर्त्त अवतार दिखलाई देता है, देवगण उस सबकी आराधना करते हैं, क्योंकि वे आपके परम ब्रह्मरूप भाव को नहीं जानते। हे पुरुषोत्तम! मैं आपके इस मन से अगम्य, लेकिन (तत्त्वतः) अगोचर ब्रह्ममूर्त्ति की आराधना कैसे कर सकूँगा? हे देव! मैं जिस मण्डल में सविधि वृक्षों से पैदा पुष्प-धूपादि लौकिक उपहार से आपकी संकर्षण आदि सब विभूति की पूजा करता हूं तथा असाध्य होने पर भी जन जप-होमादि को करता हूं, हे प्रभो! उसमें जो दोष हो गया हो, वह क्षमा करिये। हे देव! मैं आपकी सम्यक् पूजा कर सकने में सर्वथा अशक्त हूं॥२९-३५॥

यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम।
विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम्॥३६॥
दिवारात्रौ च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः।
अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्घ्रियुगले मम॥३७॥
शरीरेण तथा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च। यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम॥३८॥
किं तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम्।
यस्य विष्णौ दृढा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे॥३९॥
पूजां कर्त्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्नोति तवाच्युन।
स्तुतं तु पूजितं मेऽद्य तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते॥४०॥

तभी मैं विनय-भक्ति के साथ आपसे क्षमा मांगता हूं। हे हरि! मेरी यह प्रार्थना है कि दिन-रात-सन्ध्या के समय मेरा मन आपके चरणों में लगा रहे। आपके चरणों में मेरी अचला भक्ति हो! मैं आपकी जैसी प्रीति की कामना तथा प्रार्थना करता हूं, वैसी प्रीति मैं शरीर तथा धर्मों के प्रति अनुभव नहीं करता। सर्वकामफलप्रद विष्णु के प्रति जिसकी दृढ़ भक्ति हो जाती है, वह स्वर्ग-मोक्षादि साधनार्थ कर्म क्यों करेगा। हे अच्युत! आपकी पूजा तथा स्तव की शक्ति किसी में नहीं है, तथापि इतने पर भी जो मैं आपकी पूजा तथा स्तवार्थ उद्यत हो गया हूं, मेरे इस अपराध को आप क्षमा करिये। आपको प्रणाम!॥३६-४०॥

इति चक्रधरस्तोत्रं मया सम्यगुदाहृतम्।
स्तौहि विष्णुं मुने भक्त्या यदीच्छसि परं पदम्॥४१॥
स्तोत्रेणानेन यः स्तौति पूजाकाले जगद्गुरुम्।
अचिराल्लभते मोक्षं छित्त्वा संसारबन्धनम्॥४२॥
कल्येऽपि यो जपेद्भक्त्या त्रिसन्ध्यं नियतःशुचिः।
इदं स्तोत्रं मुने सोऽपि सर्वकाममवाप्नुयात्॥४३॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
रोगाद्विमुच्यते रोगी निर्धनो लभते धनम्॥४४॥
विद्यार्थी लभते विद्यां यशः कीर्त्तिञ्च विन्दति।
जातिस्मरत्वं मेधावी यद्यदिच्छति चेतसा॥४५॥

(सूतजी ने कहा) हे शौनक—मैंने आपसे चक्रधर स्तोत्र कह दिया। हे मुनिवर! यदि आप परमपद पाना चाहें, तब भक्तिभाव से नारायण का स्तव करिये। जो मनुष्य पूजा के समय जगद्गुरु कृष्ण की स्तुति इस स्तोत्र से करता है, वह शीघ्र संसार-बन्धन काट कर मोक्ष पाता है। हे मुनिवर! जो व्यक्ति त्रिकाल सन्ध्या के समय इसे पढ़ता है, उसकी सभी कामनायें फलीभूत हो जाती हैं। इसे पढ़ने से पुत्रार्थी को पुत्र प्राप्ति, बद्ध को बन्धनमुक्ति, रोगी को रोगमुक्ति, निर्धन को धनलाभ, विद्यार्थी को विद्यालाभ होगा। अन्य लोग भी अपनी कामना के अनुरूप आयु, यश, कीर्त्तिलाभ करेंगे। मेधा चाहने वाला प्रभूत मेधा एवं पूर्वजन्म स्मृति पायेगा॥४१-४५॥

अधन्यः सर्ववित्प्राज्ञस्त्वसाधुः सर्वकर्मकृत्।
सत्यवाक्यः शुचिर्दाता यः स्तौति पुरुषोत्तमम्॥४६॥
साधुशीला हि ते सर्वे सर्वधर्मबहिष्कृताः।
येषां प्रवर्त्तनं नास्ति हरिमुद्दिश्य सत्क्रियाः॥४७॥

जो यह स्तव करेगा, वह भले ही अधन्य हो, वह सर्वविद् प्राज्ञ हो जायेगा। असाधु भी सर्वकर्मकारी, सत्यवक्ता तथा पवित्र एवं दाता हो जायेगा। जिसकी प्रवृत्ति नारायण के उद्देश्य से सत्क्रिया करने की नहीं है, भले ही वह साधुशील क्यों न हो, उसे सर्वधर्म बहिष्कृत जाने॥४६-४७॥

नाशौचं विद्यते तस्य मनो वाक् च दुरात्मनः।
यस्य सर्वार्थदे विष्णौ भक्तिर्नाव्यभिचारिणी॥४८॥
आराध्य विधिवद्देवं हरिं सर्वसुखप्रदम्। प्राप्नोति पुरुषः सम्यग्यद्यत्प्रार्थयते फलम्॥४९॥
सकलमुनिभिराद्यश्चिन्त्यते यो हि सिद्धो निखिलहृदि निविष्टं वेत्ति यः सर्वसाक्षी।
तमजममृतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि त्वभयमरणहीनं नित्यमानन्दरूपम्॥५०॥
निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं अतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः।

सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा॥५१॥

जिसमें विष्णु के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति नहीं है, उसमें पवित्रता नहीं है। उसका मन तथा उसकी वाणी अपवित्र है, वह दुरात्मा है। सर्वसुखदाता देव हरि की सविधि आराधना द्वारा पुरुष सम्यक् प्रार्थित फललाभ करते हैं। असुर, देवता, सिद्ध इनका अन्त नहीं (सीमा नहीं जानते) जान पाते। जिन स्वत:सिद्ध आदिदेव का चिन्तन समस्त मुनि करते हैं, वे सर्वसाक्षी समस्त प्राणियों के हृदय का सभी तत्व जान लेते हैं। मैं ऐसे अज, अमृत, परमेश्वर, वासुदेव को प्रणाम करता हूं! सर्वजगदाधीश्वर, सुप्रसन्न सनातन, अति विमल, शुद्ध, निर्गुण, आत्मरूप, सर्वसुख विधाता नारायण की पूजा भक्तिरूपी पुष्प से मैं करूं। वे चिदात्मा, सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी देवदेव हृषीकेश मेरे हृदय में प्रवेश करें॥४८-५१॥

एवं मयोक्तं परमप्रभावमाद्यन्तहीनस्य परस्य विष्णोः।
तस्माद्विचिन्त्यः परमेश्वरोऽसौ विमुक्तिमार्गेण नरेण सम्यक्॥५२॥
बोधस्वरूपं पुरुषं पुराणादित्यवर्णं विमलं विशुद्धम्।
सञ्चिन्त्य विष्णुं परमद्वितीयं कस्तत्र योगी न लयं प्रयाति॥५३॥
इमं स्तवं यः सततं मनुष्यः पठेच्च तद्वत्प्रयतः प्रशान्तः।
स धौतपाप्मा विततप्रभावः प्रयाति लोकं विततं मुरारेः॥५४॥
यः प्रार्थयत्यर्थमशेषसौख्यं धर्मञ्च कामञ्च तथैव मोक्षम्।
स सर्वमुत्सृज्य परं पुराणं प्रयाति विष्णुं शरणं वरेण्यम्॥५५॥
विभुं प्रभुं विश्ववरं विशुद्धमशेषसंसारविनाशहेतुम्।
यो वासुदेवं विमलं प्रपन्नं स मोक्षमाप्नोति विमुक्तसङ्गः॥५६॥

॥इति गारुडे महापुराणे स्तोत्रकथनं नाम षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२६॥

मैंने आदि अन्तरहित परमात्मारूपी विष्णु का यह स्तव आपसे कहा। मोक्ष चाहने वाला व्यक्ति हरि का चिन्तन सम्यक् रूप से करें। ज्ञानी व्यक्ति विमल, विशुद्ध, आदित्यवर्ण, अद्वितीय, परमात्मा विष्णु का चिन्तन तन्मयता से यदि करता है, तब ऐसा कौन ज्ञानी योगी है, जो हरि में लीन न हो जाये। जो मनुष्य प्रशान्त मन से यत्नत: सतत् यह स्तोत्र पढ़ेंगे, वे सर्वपाप रहित होकर महाप्रभावशाली रूप में विष्णुलोक गमन करेंगे। जो व्यक्ति अर्थ, सुख, धर्म, काम, मोक्ष चाहते हैं, वह सब कुछ करना छोड़ कर पुराणपुरुष विष्णु की शरण लेकर रहे। जो प्रभु, विश्वधर, अशेष, संसार बन्धननाशक हैं, उन विशुद्ध, विमल वासुदेव की शरण लेने वाला संसार बन्धनरहित होकर मोक्षलाभ करता है॥५२-५६॥

॥दो सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖
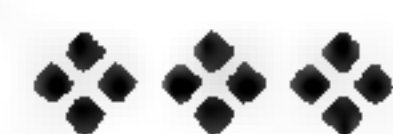
सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मविज्ञान वर्णन

सूत उवाच

वेदान्तसाङ्ख्यसिद्धान्तब्रह्मज्ञानं वदाम्यहम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विष्णुरित्येव चिन्तयन्॥१॥

सूर्य्येन्दुव्योम्नि वह्नौ च ज्योतिरेकं त्रिधा स्थितम्।
यथा सर्पिःशरीरस्थं गवां न कुरुते बलम्।
निर्गतं कर्मसंयुक्तं दत्तं तासां महाबलम्॥२॥

तथा विष्णुः शरीरस्थो न करोति हितं नृणाम्। विनाराधनया देवः सर्वगः परमेश्वरः॥३॥
आरुरुक्षुमतीनां तु कर्मज्ञानमुदाहृतम्। आरूढयोगवृक्षाणां ज्ञानं त्यागं परं मतम्॥४॥

ज्ञातुमिच्छति शब्दादीन् रागद्वेषोऽथ जायते।
लोभमोहः क्रोध एतैर्युक्तः पापं नरश्चरेत्॥५॥

सूतजी ने कहा—मैं वेदान्त, सांख्य, सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मज्ञान कहता हूं। "मैं ही ज्योतिर्मय परब्रह्मस्वरूप विष्णु हूं।" यह चिन्तन करे। एक ज्योति त्रिधा विभक्त होकर सूर्य-चन्द्र-अग्नि में स्थित है। जैसे गौ के देह में घृत रहने पर भी उसे उसका बल नहीं मिलता। लेकिन वही घृत दूध से निकाल कर सविधि प्रयोग करने से वह घृत महाबल प्रदान करता है। इसी प्रकार विष्णु सभी प्राणीगण के देह में अवश्य हैं, तथापि आराधना के बिना उन सर्वत्रगामी परमेश्वर को कोई नहीं जान पाता। जो आरुरुक्षु मति वाले हैं, उनके लिये कर्मज्ञान जरूरी है। कर्मज्ञान द्वारा योगवृक्ष पर आरोहण करने से जो ज्ञान उत्पन्न होगा, उसी से कर्म का त्याग होगा। जो शब्दादि विषयों को जानना चाहते हैं, उनमें राग-द्वेषादि का जन्म होता है। अतः मनुष्य, लोभ, मोह, क्रोध से न्यस्त होकर पाप करने लगता है॥१-५॥

हस्तावुपस्थमुदरं वाक्चतुर्थी चतुष्टयम्। एतत्सुसंयतं यस्य स विप्रः कथ्यते बुधैः॥६॥
परवित्तं न गृह्णाति न हिंसां कुरुते तथा। नाक्षक्रीडारतो यस्तु हस्तौ तस्य सुसंयतौ॥७॥
परस्त्रीवर्जनरतस्तस्योपस्थं सुसंयतम्। अलोलुपमिदं भुङ्क्ते जठरं तस्य संयतम्॥८॥
सत्यं हितं मितं ब्रूते यस्माद्वाक्तस्य संयता। यस्य संयतान्येतानि तस्य किं तपसाध्वरैः॥९॥

भ्रुवोर्मध्ये स्थितां बुद्धिं विषयेषु युनक्ति यः।
जीवो जाग्रदवस्थायामेवमाहुर्विपश्चितः॥१०॥
हृदि स्थितः स तमसा मोहितो न सरत्यपि।
यदा तस्य कुतो वेति सुषुप्तिरिति कथ्यते॥११॥

जाग्रतस्तस्य न स्त्री न मोहो न भ्रमस्तथा। उत्पद्यते न जानाति शब्दार्थविषयान्वशी॥१२॥

इन्द्रियाणि समाहृत्य विषयेभ्यो मनस्तथा।
बुद्ध्याऽहङ्कारमपि च प्रकृत्या बुद्धिमेव च॥१३॥
संयम्य प्रकृतिञ्चापि चिच्छक्त्या केवले स्थितः।
पश्यत्यात्मनि चात्मानमात्मानमुपकारकम्॥१४॥

जिसके हाथ, उपस्थ, उदर तथा वाक्य संयत हैं, वही बुद्धिमान् है। जो परद्रव्य नहीं लेते, जूआ नहीं खेलते, किसी प्रकार की हिंसा क्रिया में प्रवृत्त नहीं रहते, उनके दोनों हाथ को संयत कहा जाता है। जो पराई नारी की कामना नहीं करते, उनकी जननेन्द्रिय संयत है। जो लोलुपतारहित नियमित भोजन करता है, उसी का पेट (उदर) संयत है। जो हितकर परिमित तथा सत्य बोलते हैं, उनको ही वाक् संयमी कहा है। जिसका हाथ-पैर आदि अंग संयत है, उसे तप-यज्ञादि का कोई प्रयोजन नहीं है। बुद्धि-मन तथा अन्य इन्द्रियों का संयम करके उन सबको परमपुरुष वासुदेव में लगाना ही ध्यान कहा गया है। जाग्रत किंवा निद्रा स्थिति में जो हर समय भ्रूमध्यस्था बुद्धि को विषयों से युक्त किये रहता है, उसे बाह्य एवं आभ्यान्तर में अनेक स्वप्न दिखलाई देते हैं। ऐसा विद्वानों का कथन है। हृदयस्थ आत्मा जब तमसाच्छन्न होकर भ्रमित रहता है, वह संचारित नहीं होता। ऐसी अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। जब आत्मा ज्ञानयुक्त हो जाता है, तब उसका स्त्री-पुत्रादि माया भ्रम नहीं रहता। तब वह शब्द-अर्थात्मक विषय भी नहीं जानता; क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति विषयों से इन्द्रिय तथा मन को खींच लेता है। वह बुद्धि से अहंकार को तथा प्रकृति द्वारा बुद्धि को संयमित करता है। वह अब चित्शक्ति से प्रकृति को भी संयमित करके केवल आत्मस्थ रहता है। तब वह आत्मा से आत्मा को ही देखता है॥६-१४॥

चिद्रूपममृतं शुद्धं निष्क्रियं व्यापकं शिवम्।
तुरीयायामवस्थायामास्थितोऽसौ न संशयः॥१५॥
पुर्य्यष्टकस्य पद्मस्य पत्राण्यष्टौ च तानि हि।
साम्यावस्था गुणकृता प्रकृतिस्तत्र कर्णिका॥१६॥
कर्णिकायां स्थितो देवो देहे चिद्रूप एव हि।
पुर्य्यष्टकं परित्यज्य प्रकृतिञ्च गुणात्मिकाम्।
यदा याति तदा जीवो याति मुक्तिं न संशयः॥१७॥

चिद्रूप, अम्ल, शुद्ध, निष्क्रिय, व्यापक, शिवरूप आत्मा को जानकर तुरीय स्थिति में रहे। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध—ये पंचगुण तथा सत्त्व-रज:-तम: से मिलित होकर अष्ट पुरात्मक (५ महाभूत + तीन गुण = ८) चित्पद्म के ही अष्टपत्र हैं। गुणत्रय का साम्य ही प्रकृति है। यही प्रकृति चित्पद्म की कर्णिका है। देह में ही इस कर्णिका पर चिद्रूपी देवता विराजित हैं। जब जीव इस पुर्यष्टक (पुर) तथा गुणमयी प्रकृति को त्याग कर निर्गुण भावापन्न होता है, तभी वह जीव मुक्त है। यह बात नि:सन्दिग्ध है॥१५-१७॥

प्राणायामो जपश्चैव प्रत्याहारोऽथ धारणा।
ध्यानं समाधिरित्येते षड्योगस्य प्रसाधका:॥१८॥

पापक्षये देवतानां प्रीतिरिन्द्रियसंयमः। जपध्यानयुतो गर्भे विपरीतस्त्वगर्भकः॥१९॥
षट्त्रिंशन्मातृकः श्रेष्ठश्चतुर्विंशतिमातृकः। मध्यो द्वादशमात्रं तु ओङ्कारं सततं जपेत्॥२०॥
वाचके प्रणवे ज्ञाते वाच्यं ब्रह्म प्रसीदति।
ओं नमो विष्णवे। षडक्षरस्थ्श जप्तव्यो गायत्री द्वादशाक्षरा॥२१॥

प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, योग के साधक हैं। पाप क्षय होने पर देवता प्रसन्न होते हैं। इससे इन्द्रिय संयम होता है। प्राणायाम दो तरह का होता है सगर्भ एवं अगर्भ। जप-ध्यानात्मक प्राणायाम ही सगर्भ है। जपध्यान विहीन अगर्भ प्राणायाम होता है। ३६ मात्रात्मक प्राणायाम श्रेष्ठ बताया गया है। जो २० मात्रात्मक है, वह मध्यम तथा १२ मात्रायुक्त अधम होता है। सतत् ओंकार जप के साथ प्राणायाम करे। ओंकार परब्रह्म वाचक है। इसमें जब हरि ज्ञान होगा, तब वाच्य ब्रह्म प्रसन्न होते हैं। षड्क्षर "ॐ नमो विष्णवे" तथा द्वादशाक्षर गायत्री जप करना चाहिये॥१८-२१॥

सर्वेषामिन्द्रियाणां तु प्रवृत्तिर्विषयेषु च। निवृत्तिर्मनसां तस्यां प्रत्याहारः प्रकीर्त्तितः॥२२॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः समाहृत्य हितो हि सः।
सहसा सह बुद्ध्या च प्रत्याहारेषु संस्थितः॥२३॥
प्राणायामैर्द्वादशभिर्यावत्कालकृतो भवेत्।
यस्तावत्कालपर्य्यन्तं मनो ब्रह्मणि धारयेत्॥२४॥
तस्यैव ब्रह्मणा प्रोक्तं ध्यानं द्वादश धारणाः।
तुष्येत नियतो युक्तः समाधिः सोऽभिधीयते॥२५॥
ध्यायन्न चलते यस्य मनोभिर्ध्यायते भृशम्।
प्राप्त्यावधिकृतं कालं यावत्सा धारणा स्मृता॥२६॥
ध्येये सक्तं मनो यस्य ध्येयमेवानुपश्यति।
नान्यं पदार्थं जानाति ध्यानमेतत्प्रकीर्त्तितम्॥२७॥

सभी इन्द्रियां विषयों में लगी रहती हैं। मन से वृत्तियों की निवृत्ति को प्रत्याहार कहा गया है। प्रत्याहार काल में मन-बुद्धिसहित सभी इन्द्रियों का समाहरण करके अवस्थिति प्राप्त करता है। बारह प्राणायाम में जो समय लगता है, उतने समय तक जो मानव ब्रह्म में मन एकाग्र किये रहता है, उसे द्वादश धारणात्मक ध्यान सिद्ध होगा। नित्य ब्रह्म से युक्त रहने का जो सन्तोष है, वही समाधि है। ध्यान में जिसका मन अचंचल रहता है तथा वांछित प्राप्त होने तक जो ध्यान से नहीं हटता, वही धारणा है। ध्येय पदार्थ में जिसका मन लगा है, जो सदा ध्येय को ही देखता है, उसके सिवाय अन्य का बोध जिसे नहीं होता, वही ध्यान है॥२२-२७॥

ध्येये मनो निश्चलतां याति ध्येयं विचिन्तयन्।
यत्तद्ध्यानं परं प्रोक्तं मुनिभिर्ध्यानचिन्तकैः॥२८॥

ध्येयमेव हि सर्वत्र ध्येयस्तन्मयतां गतः। पश्यति द्वैतरहितं समाधिः सोऽभिधीयते॥२९॥

मनःसङ्कल्परहितमिन्द्रियार्थान्न चिन्तयन्।
यस्य ब्रह्मणि संलीनं समाधिस्थस्त्वमुच्यसे॥३०॥
ध्यायतः परमात्मानमात्मस्थं यस्य योगिनः।
मनस्तन्मयतां याति समाधिस्थः स कीर्त्तितः॥३१॥
चित्तस्य स्थिरता भ्रान्तिर्दौर्मनस्यं प्रमादता।
योगिनां कथिता दोषा योगविघ्नप्रवर्त्तकाः॥३२॥

ध्येय वस्तु का चिन्तन करते हुये मन उस ध्येय में ही अचल होता है। इसे ही ध्यानपरायण मुनियों ने परमध्यान कहा है। जब ध्यान करते हुये सर्वत्र एकमात्र वस्तु ही इष्ट होती है, जगत् तन्मय लगे तथा कोई द्वैत बोधन हो, तब वही है समाधि। जब इन्द्रियां विषयों से विरत हों, मन संकल्प-विकल्प से हट गया हो और ब्रह्म में लीन हों, वही है समाधि। जिस योगी का मन परमात्मध्यानवशात् तन्मय हो गया, वही समाधिस्थ है। चित्त की अस्थिरता, भ्रान्ति, दौर्मनस्य, प्रमाद-योग में विघ्न करता है॥२८-३२॥

स्थित्यर्थं मनसः सर्वं स्थूलरूपं विचिन्तयेत्।
तद्व्रतं निश्चलीभूतं सूर्य्यस्थं स्थिरतां व्रजेत्॥३३॥

न विना परमात्मानं किञ्चिज्जगति विद्यते। विश्वरूपं तमेवेह इति ज्ञात्वा विमुञ्चति॥३४॥

मन के स्थैर्य हेतु सबसे पहले स्थूल रूप चिन्तन करे। तब मन निश्चल होकर अपने तैजसरूप में लीन हो जाता है तथा स्थित होता है। जगत् में परमात्मा के अलावा कुछ भी सत् है ही नहीं। वह विश्वरूप है। यह दृढ़ विश्वास करके परमात्मा विश्वरूप ब्रह्म के अलावा सब कुछ को असत् मान कर त्यागे॥३३-३४॥

ओङ्कारं परमं ब्रह्म ध्यायेदब्जस्थितं विभुम्। क्षेत्राक्षेत्रज्ञरहितं जपेन्मन्त्रद्वयान्वितम्॥३५॥
हृदि सञ्चिन्तयेत्पूर्वं प्रधानं तस्य चोपरि। तमो रजस्तथा सत्त्वं मण्डलं तृतीयं क्रमात्॥३६॥
कृष्णरक्तसितं तस्मिन्पुरुषं जीवसंज्ञितम्। तस्योपरि गुणैश्वर्य्यमष्टपत्रं सरोरुहम्॥३७॥

हृदय कमलवासी ओंकाररूप विष्णु परब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। ये क्षेत्र-क्षेत्रज्ञरहित हैं। अतः इन अद्वितीय ब्रह्मरूपी ओंकार को जपे। पहले अपने हृदय में उन ओंकाररूप प्रधानपुरुष का चिन्तन करे। ये ही परमात्मा हैं। तब उनके ऊपर क्रमशः कृष्णवर्ण तमः मण्डल, रक्तवर्ण रजः मण्डल तथा शुभ्रवर्ण सत्वमण्डल का ध्यान करके उसमें जीव नामक पुरुष का ध्यान करना चाहिये। उसके ऊपर गुण एवं ऐश्वर्य संवलित अष्टपत्रात्मक पद्म का ध्यान करे॥३५-३७॥

ज्ञानं तु कर्णिका तत्र विज्ञानं केशरं स्मृतम्।
वैराग्यं नालं तत्कन्दो वैष्णवो धर्म उत्तमः॥३८॥

कर्णिकायां स्थितं तत्र जीववन्निश्चलं ततः। ध्यायेदुरसि संयुक्तमोङ्कारं मुक्तिसाधकम्॥३९॥

ध्यायन् यदि त्यजेत्प्राणान्याति ब्रह्मस्य सन्निधिम्।
हरिं संस्थाप्य देहाब्जे ध्यायन् योगी च भक्तिभाक्॥४०॥
आत्मानमात्मना केचित्पश्यन्ति ध्यानचक्षुषा।
सांख्यबुद्ध्या तथैवान्ये योगेनानेन योगिनः॥४१॥
ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं भवबन्धविभेदनम्। तत्रैकचित्तता योगो मुक्तिदो नात्र संशयः॥४२॥

इस पद्म की कर्णिका है ज्ञान। विज्ञान है केशर, कमलनाल है वैराग्य तथा मूल है वैष्णव धर्म। इस पद्मकर्णिका में जीव के समान निश्चल मुक्तिप्रद ओंकार का ध्यान करे। ओंकाररूपी ब्रह्मध्यान करते-करते यदि कोई मृत हो जाये, तब भी उसे ब्रह्मसायुज्य लाभ होगा। योगी लोग देहस्थ पद्म में हरि को स्थापित करके ध्यान करते हैं तथा मुक्तिलाभ करते हैं। कोई व्यक्ति ध्यान से स्वयं को स्वयं देखता है। सांख्य योगीगण बुद्धि से आत्मदर्शन करते हैं। अन्य योग द्वारा आत्मदर्शन करते हैं। ज्ञान ही ब्रह्म का प्रकाशक है। ज्ञान से ही भव का बंधन टूटता है। ज्ञानसाधन में एकाग्र होना प्रधान योग है। इस योग से योगी मुक्ति पाता है। इसमें सन्देह नहीं है॥३८-४२॥

जितेन्द्रियात्मकरणो ज्ञानदृप्तो हि यो भवेत्।
स मुक्तः कथ्यते योगी परमात्मन्यवस्थितः॥४३॥
आसनस्थानविषया न योगस्य प्रसाधकाः।
विलम्बजनकाः सर्वे विस्तराः परिकीर्त्तिताः॥४४॥
शिशुपालः सिद्धिंमाप स्मरणाभ्यासगौरवात्।
योगाभ्यासं प्रकुर्वन्तः पश्यन्त्यात्मानमात्मना॥४५॥
सर्वभूतेषु कारुण्यं विद्वेषं विषमेषु च। लुप्तशिश्नोदरादिश्च कुर्वन् योगी विमुच्यते॥४६॥
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांस्तु न जानाति नरो यदा।
काष्ठवद् ब्रह्मसंलीनो योगी मुक्तस्तदा भवेत्॥४७॥

जो इन्द्रियों आदि पर विजय पाकर ज्ञान की प्रभा से दीप्त है, वह परमात्मा में स्थित योगी मुक्त है। आसन, स्थान, विषय आदि योग के साधक नहीं हैं। ये तो योगसिद्धि के विघ्न हैं। अनेक योगविघ्नों का वर्णन मिलता है। शिशुपाल ने स्मरण तथा अभ्यास प्रभाव से सिद्धि पायी थी। योगाभ्यास में साधक स्वयं ही स्वयं को देखता है। जिससे हृदय में सभी भूत समूह के प्रति करुणा तथा विषय से विद्वेष उत्पन्न हो गया तथा जो शिश्न-उदर के विषयों के प्रति तत्पर नहीं है, वही योगी मुक्त होगा। जब योगी इन्द्रियों से इन्द्रियों के विषय का अनुभव नहीं करता, तब जैसे अग्नि काष्ठ में ही लीन रहता है, वैसे ही वह ब्रह्म में लयलाभ करता है॥४३-४७।

सर्ववर्णान् स्त्रियः सर्वाः कृत्वा पापानि भस्मसात्।
ध्यानाग्निना च मेधावी लभन्ते परमां गतिम्॥४८॥

मन्थनाद् दृश्यते ह्यग्निस्तद्वद् ध्यानेन वै हरिः। ब्रह्मात्मनोर्यदैकत्वं स योगश्चोत्तमोत्तमः॥४९॥
बाह्यरूपैर्न मुक्तिस्तु चान्तस्थैः स्याद्यमादिभिः। साङ्ख्यज्ञानेन योगेन वेदान्तश्रवणेन च॥५०॥
प्रत्यक्षतात्मनो या हि सा मुक्तिरभिधीयते। अनात्मन्यात्मरूपत्वमसतः सत्स्वरूपता॥५१॥

॥इति गारुडे महापुराणे ब्रह्मविज्ञानकथनं नाम सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२७॥
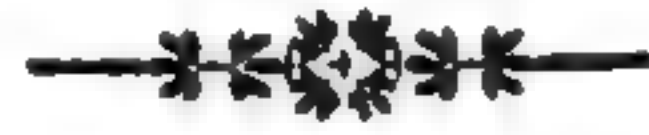
सभी वर्णाश्रमाचार, स्त्रीसम्पर्क तथा पाप को ज्ञानाग्नि से भस्म करके ब्रह्मोपासना करने से साधक परमगति पाता है। जैसे लकड़ी से लकड़ी को घिसने से अग्नि प्रकट होती है, वैसे ही ध्यान से परमात्मा हरि का जो दर्शन करता है तथा जब उसे ब्रह्म एवं आत्मा में ऐक्य का ज्ञान होता है, तब उसमें योग का उत्कर्ष जाने। बाह्य उपायों से मुक्ति नहीं होती। आन्तरिक यम-नियमादि से ही मुक्तिलाभ होता है। सांख्यज्ञान, योगाभ्यास, वेदान्त श्रवण से आत्मा का जो प्रत्यक्ष होता है, वही मुक्ति है। मुक्त होने पर अनात्मा में आत्मज्ञान तथा असत् से सत्ज्ञान होता है॥४८-५१॥

॥दो सौ सत्ताईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

आत्मज्ञान वर्णन

श्रीभगवानुवाच

आत्मज्ञानं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः। अद्वैतं साङ्ख्यमित्याहुर्योगस्तत्रैकचित्तता॥१॥
अद्वैतयोगसम्पन्नास्ते मुच्यन्तेऽतिबन्धनात्। अतीतारब्धमागामि कर्म नश्यति बोधतः॥२॥
सद्विचारकुठारेण छिन्नसंसारपादपः। ज्ञानवैराग्यतीर्थेन लभते वैष्णवं पदम्॥३॥
जाग्रत्स्वप्नप्रसुप्तञ्च माया त्रिपुरमुच्यते। अत्रैवान्तर्गतं सर्वं शाश्वतेनाद्वये पदे॥४॥
नामरूपक्रियाहीनं सर्वं तत्परमं पदम्। जागत्कृत्वेश्वरोऽनन्तं स्वयमत्र प्रविष्टवान्॥५॥

श्रीभगवान् ने कहा—हे नारद! तुम तत्त्वत: आत्मज्ञान सुनो। अद्वैतज्ञान ही सांख्ययोग है। वास्तविक परमात्मा में जो एकचित्तता है, वही योग है। जो अद्वैतज्ञान युक्त हैं, वे भवबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। परमात्मतत्त्व ज्ञात होने पर अतीत-वर्त्तमान-भविष्यत् कर्म नष्ट हो जाते हैं। ज्ञानी व्यक्ति सद्विचार रूप कुठार से संसारपादप को काट कर ज्ञान-वैराग्य-तीर्थद्वारा वैष्णवपद पाते हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थापन्न माया ही संसारमूल है। यही माया जब तक स्थित है, संसार तब तक सत् प्रतीत होता है। परन्तु अद्वय परमपद की प्राप्ति होने पर कोई संशय नहीं होता। परब्रह्म नाम-रूप क्रियारहित है। ईश्वर इस जगत् की सृष्टि करके स्वयं उसमें प्रविष्ट रहते हैं॥१-५॥

वेदाहमेतं पुरुषं चिद्रूपं तमसः परम्। सोऽहमस्मीति मोक्षाय नान्यः पन्था विमुक्तये॥६॥
श्रवणं मननं ध्यानं ज्ञानानाञ्चैव साधनम्। यज्ञदानतपस्तीर्थवेदैर्मुक्तिर्न लभ्यते॥७॥
त्यागेन केनचिद्ध्यानं पूजाकर्मादिभिर्यथा। द्विविधं वेदवचनं कुरु कर्म त्वजे विभौ॥८॥
यज्ञादयो विमुक्तानां निष्कामानां विमुक्तये। अन्तःकरणशुद्ध्यर्थमूचुरेवात्र केचन॥९॥
एकेन जन्मना ज्ञानान्मुक्तिर्न द्वैतभाविनाम्।
योगभ्रष्टाः कुयोगाश्च विप्रा योगिकुलोद्भवाः॥१०॥

"मैं मायातीत, चिद्रूप पुरुष को जानता हूं। मैं वही आत्मरूप हूं।" यह ज्ञान ही मुक्ति का पथ है। मोक्ष पाने का इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। श्रवण-मनन-ध्यान, ये सभी ज्ञान के ही साधन हैं। ज्ञान से ही जीवमुक्ति होती है। यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, तीर्थसेवा से मुक्ति नहीं मिलती। दान-ध्यान-पूजा आदि कर्मों से भी मुक्तिलाभ नहीं होता। मुक्ति हेतु दो ही कर्म वेद ने कहा है। जैसे—सकाम एवं निष्काम कर्म। सकाम यज्ञादि कर्मों से चित्तशुद्ध हो जाने पर क्रमशः निष्काम स्थिति मिलती है। तभी मनुष्य मुक्तिलाभ कर सकेगा। निष्काम कर्म के द्वारा ज्ञानोत्पादन हो जाता है। यही मोक्षदाता है। अद्वैतज्ञान से एक जन्म में मुक्ति होती है। द्वैतभाव वालों को मुक्ति नहीं मिलती। जो कुयोगी अथवा योगभ्रष्ट हैं, वे योगी के परिवार में ब्राह्मणरूपेण जन्म लेते हैं॥६-१०॥

कर्मणा बध्यते जन्तुर्ज्ञानान्मुक्तो भवाद्भवेत्।
आत्मज्ञानमाश्रयेद्वै अज्ञानं यदतोऽन्यथा॥११॥
यदा सर्वे विमुच्यन्ते कामा यस्य हृदि स्थिताः।
तदामृतत्वमाप्नोति जीवन्नेव न संशयः॥१२॥
व्यापकत्वात्कथं याति को याति क्व स याति च।
अनन्तत्वान्न देशोऽस्ति अमूर्त्तित्वाद् गतिः कुतः॥१३॥
अद्वयत्वान्न कोऽप्यस्ति बोधत्वाज्जडतां गतः।
एकोद्दिष्टं यदन्यस्य गतिरागतिसंस्थितः॥१४॥
अथवाकाशकल्पस्य गतिराकाशसंस्थितिः।
जाग्रत्स्वप्नप्रसुप्तञ्च मायया परिकल्पितम्॥१५॥

॥इति गारुडे महापुराणे आत्मज्ञानकथनं नाम अष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२८॥

सभी जीव कर्म से बंधे हैं। ज्ञान होने पर संसार से मुक्ति मिलती है। अतः आत्मज्ञान की शरण लेनी चाहिये। जो आत्मज्ञान के अधिकारी नहीं हैं, वो अज्ञानी कहे गये हैं। जब हृदयस्थ कामना का लोप हो जाता है, तभी वह व्यक्ति जीवन्मुक्त कहा जाता है। उसे जीवन्मुक्त कहते हैं। परब्रह्म सर्वव्यापी हैं। अतः उनका कहीं-आना जाना सम्भव नहीं है। वे तो सर्वत्र जो हैं। वे अनन्त हैं, अतः उनका घर कहीं नहीं कह

सकते। वे अमूर्त्त होने के कारण उनकी गति कैसे होगी? वे अद्वय हैं, अतः उनके सिवाय कुछ भी नहीं है। वे बोधरूप हैं, अतः उनमें जड़ता कैसे संभव है? एक पदार्थ की मति-गति-स्थिति के द्वारा अन्य की मति-गति-स्थिति कैसे होगी। वास्तव में वे आकाशरूप हैं। उनकी गति-स्थिति, मति आकाशवत् है। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्था माया कल्पित मिथ्या है॥११-१५।

॥दो सौ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गीतासार वर्णन

श्रीभगवानुवाच

गीतासारं प्रवक्ष्यामि अर्जुनायोदितं पुरा। अष्टाङ्गयोगयुक्तात्मा सर्ववेदान्तपारगः॥१॥
आत्मलाभः परो नान्य आत्मदेहादिवर्जितः। रूपादिहीनदेहान्तःकरणत्वादिलोचनम्॥२॥
विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्तोऽहं प्रतीयते। नाहमात्मा च दुःखादि संसारादिसमन्वयात्॥३॥
विधूम इव दीप्तार्चिरादीप्त इव दीप्तिमान्। वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे हृत्सङ्गे आत्मनात्मनि॥४॥
श्रोत्रादीनि न पश्यन्ति स्वं स्वमात्मानमात्मना।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च क्षेत्रज्ञस्तानि पश्यति॥५॥
यदा प्रकाशते ह्यात्मा पटे दीपो ज्वलन्निव। ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः॥६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—जो गीतासार पहले अर्जुन से मैंने कहा था, वह कहता हूं। यह मैंने पूर्वकाल में अर्जुन से कहा था। अष्टांग योगमय तथा सर्व वेदान्त पारंगत मानव के लिये आत्मलाभ संभव है। यही परमलाभ है, इससे बड़ा लाभ कोई नहीं हैं। आत्मा देहरहित, रूपरहित है। देह में स्थित कर्ण आदि से तथा इन्द्रिय से अतीत है। प्राण के विज्ञानरहित होने से "मैं सुषुप्त था" यह अनुभव होता है। मैं आत्मा हूं। संसार के संसर्ग के कारण भी मुझे दुःख नहीं होता। जैसे धूमरहित अग्नि दीप्त होती है, आत्मा भी तदनुरूप प्रदीप्त होता रहता है। जैसे आकाश में बिजली चमकती है, उसी प्रकार हृदय में आत्मा प्रकाशित हो जाता है। कान आदि इन्द्रियों को कोई ज्ञान नहीं है। वे स्वयं को नहीं जान सकते। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी आत्मा ही उन इन्द्रियों को देख[illegible] है। आत्मा के उज्ज्वल प्रदीप के समान चित्रपट पर प्रकाशित होते ही पुरुष का पाप कर्म क्षयीभूत हो जाता है। उसमें ज्ञानोत्पत्ति हो जाती है॥१-६॥

यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च महाभूतानि पञ्चकम्॥७॥
मनोबुद्धिरहङ्कारमव्यक्तं पुरुषं तथा। प्रसंख्याय पराव्याप्तौ विमुक्तौ बन्धनैर्भवेत्॥८॥
इन्द्रियग्राममखिलं मनसाभिनिवेश्य च। मनश्चैवाप्यहङ्कारे प्रतिष्ठाप्य च पाण्डव॥९॥

अहङ्कारं तथा बुद्धौ बुद्धिञ्च प्रकृतावपि। प्रकृतिं पुरुषे स्थाप्य पुरुषं ब्रह्मणि न्यसेत्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रसंख्याय विमुच्यते॥१०॥
नवद्वारमिदं गेहं तिसृणां पञ्चसाक्षिकम्। क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स वरः कविः॥११॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। ज्ञानयज्ञस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१२॥

जैसे शीशे में देखने पर स्वयं को देखा जा सकता है, वैसे ही आत्मा में दृष्टि फेरते ही पञ्चमहाभूत दिखलाई देता है। मन, बुद्धि, अहंकार एवं अव्यक्त पुरुष के प्रसंगाख्यान द्वारा संसार-बन्धन से तब मुक्ति होती है। मन में सभी इन्द्रियों का अभिनिवेश करके मन को अहंकार में, अहंकार को बुद्धि में, बुद्धि को प्रकृति में, प्रकृति को पुरुष में तथा पुरुष को परब्रह्म में लीन करे। ऐसा करने से "अहं ब्रह्म" रूप ज्ञानज्योति प्रकट होती है। इससे तब वह पुरुष युक्त रहता है। नवद्वार युक्त गुणत्रय के आश्रय पञ्चभूतमय आत्माधिष्ठित देह को जो जानता है, वही महाकवि है। सौ अश्वमेध अथवा एक हजार वाजपेय यज्ञ का फल ज्ञान यज्ञ की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं है॥७-१२॥

श्रीभगवानुवाच

यमश्च नियमः पार्थ आसनं प्राणसंयमः। प्रत्याहारस्तथा ध्यानं धारणार्जुन सप्तमी।
समाधिरिति चाष्टाङ्गो योग उक्तो विमुक्तये॥१३॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा। हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम्॥१४॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधिरूप अष्टांग योग मुक्ति हेतु कथित है। शरीर-मन-वाणी से सर्वदा सभी प्राणियों की हिंसा से दूर रहे; क्योंकि अहिंसा ही परमधर्म है। यही परमसुख है॥१३-१४॥

विधिना या भवेद्धिंसा सा त्वहिंसा प्रकीर्त्तिता।
सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥१५॥
यच्च द्रव्यापहरणं चौर्य्याद्वाथ बलेन वा। स्तेयं तस्यानाचरणमस्तेयं धर्मसाधनम्॥१६॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्य्यं प्रचक्ष्यते॥१७॥
द्रव्याणामप्यनादानमापत्स्वपि तथेच्छया। अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन वर्जयेत्॥१८॥
द्विधा शौचं मृज्जलाभ्यां बाह्यं भावादथान्तरम्।
यदृच्छालाभतस्तुष्टिः सन्तोषः सुखलक्षणम्॥१९॥
मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च ऐकाग्र्यं परमं तपः। शरीरशोषणं वापि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः॥२०॥
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः। सत्त्वशुद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते॥२१॥

जो विधि विहित हिंसा की जाती है, वह हिंसा नहीं है। सदा सत्य एवं प्रिय वाक्य कहे, कभी असत्य तथापि अप्रिय वाक्य न कहे। प्रिय झूठ भी न बोले। यही धर्म है। चोरी अथवा बलात् जो परद्रव्य हरता है, वही

चोरी है। ऐसा न करे। अस्तेय ही धर्म है। सर्वदा सभी स्थिति में काय-मन-वाणी से मैथुन त्यागे। यही ब्रह्मचर्य है। आपत्ति के समय भी इच्छापूर्वक द्रव्य ग्रहण न करना अपरिग्रह है। साधु व्यक्ति यत्नतः परिग्रह न करें। शौच भी बाह्य एवं आन्तर भेद से दो प्रकार का है। मृत्तिकादि तथा जल से बाह्य शौच होता है। भावशुद्धि ही आन्तर शौच है। यदृच्छालाभ से जो तुष्टि है, वही सन्तोष है। यह सब प्रकार से सुख का साधन है। मन-इन्द्रियों की एकाग्रता ही परमतप है। कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रतों से जो देहशुद्धि होती है, वही तप है। पुरुष की सत्वशुद्धि हेतु तो वेदान्त पाठ, ओंकारादि जप है, वही स्वाध्याय है, यह विद्वान् कहते हैं।।१५-२१।।

स्तुतिस्मरणपूजादिवाङ्मनःकायकर्मभिः। अनिश्चला हरौ भक्तिरेतदीश्वरचिन्तनम्।।२२।।
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा। प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्।।२३।।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु त्वसत्स्विव। नियमं प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु पाण्डव।।२४।।
मूर्त्तामूर्त्तब्रह्मरूपचिन्तनं ध्यानमुच्यते। योगारम्भे मूर्त्तहरिममूर्त्तमपि चिन्तयेत्।।२५।।
अग्निमण्डलमध्यस्थो वासुदेवश्चतुर्भुजः। शङ्खचक्रगदापद्मयुक्तः कौस्तुभसंयुतः।।२६।।
वनमाली कौस्तुभेन यतोऽहं ब्रह्मसंज्ञकः। धारणेत्युच्यते चेयं धार्य्यते यन्मनोलये।।२७।।
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरभिधीयते। अहं ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षो भवेन्नृणाम्।।२८।।
श्रद्धयानन्द चैतन्यं लक्षयित्वास्थितस्य च। ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म अहं ब्रह्मपदार्थयोः।।२९।।

स्तव, नामस्मरण, पूजा कार्य, काय-मन-वाणी से जो हरि की अचला भक्ति है, वही ईश्वर चिन्तन है। स्वस्तिकासन, पद्मासन, अर्द्धासन आसन होते हैं। अपने देहगत वायु को प्राण कहते हैं। इसका निरोध ही प्राणायाम है। हे पाण्डव! इन्द्रियां असत् विषय में विचरण करती हैं। उनको वहां से हटायें। इस इन्द्रिय निरोध को प्रत्याहार कहा गया है। मूर्त्त-अमूर्त्तरूप ब्रह्मचिन्तन का नाम ध्यान है। योग के आरंभकाल में मूर्त्तिमान हरि का चिन्तन करे। तेजमण्डल में स्थित शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज, कौस्तुभ चिह्नांकित वनमाली कौस्तुभ संयुत जो देव स्थित हैं, मन का लय करके उक्त देव को वहां धारण करने से जो दशा होती है, वही धारणा है। "अहं ब्रह्म" इस भावना से "ब्रह्म मैं ही हूं" इस भावना से ब्रह्मपदार्थ ज्ञात होता है।।२२-२९।।

हरिरुवाच

पुराणं गारुडं प्रोक्तं विधिनापि मया तव। यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि मोक्षमवाप्नुयात्।।३०।।

।इति गारुडे महापुराणे ऊनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२२९।।

श्रीहरि ने कहा—मैंने तुमसे गारुड़ पुराण सविधि कहा। इसे जो पढ़ता-सुनता है, उसे मोक्ष मिलता है।।३०।।

।।दो सौ उन्तीसवां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖
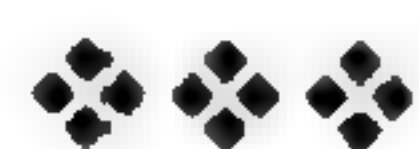
।।पूर्वखण्ड समाप्त।।

गरुड़महापुराणम्

उत्तर खण्डम्

प्राक्कथन

गरुडपुराण सारोद्धार के इस संस्करण को यथासम्भव अनेक स्थलों पर पाठ-संशोधनपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। पाठ निर्धारण के समय समस्त उपलब्ध प्रमाणों को दृष्टि में रखा गया है और शास्त्रीय आधार पर तथा अर्थगत औचित्य को ध्यान में रखकर ही पाठ निर्धारित किया गया है तथा कहीं-कहीं सर्वथा नवीन पाठ की संयोजना भी करनी पड़ी है, जिसके उदाहरण २/८; १२/३६; १३/१०४; १३/११७; १४/३६; १४/६२; १५/२६ आदि में हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष में असंगत पाठ के स्थान पर यथोचित् पाठ की संरचना २/४० आदि में है। अध्याय १० में सती प्रथा के २२ श्लोक सम्मिलित नहीं हैं। पूर्ववर्ती संस्करणों के अध्याय १३ के अशौच निवृत्ति विषयक श्लोक ८ एवं ६ भी इस संस्करण में नहीं हैं, उनको माधवाचार्य और विज्ञानेश्वर जैसे विद्वान भी अस्वीकार्य कह चुके हैं। कतिपय अध्यायों में प्रसंगानुकूल नये श्लोक भी पुराणों तथा धर्मशास्त्रों से संयोजित हैं। (द्र0-१०/३४-३७; ११/१८; १२/३४-३५; १३/८-१६, १३/१०३ आदि)। प्रकरणगत औचित्यानुसार श्लोक-क्रम में परिवर्तन भी किया गया है। पाठ-संशोधन के अतिरिक्त इस ग्रन्थ के मूल-पाठ का सटीक और मौलिक अनुवाद प्रस्तुत करने का गम्भीर प्रयास किया गया है और इसकी व्यख्या में अपेक्षित विशिष्ट सूचनाएँ सन्दर्भ सहित पाद-टिप्पणियों में उद्धृत की गयी हैं। अतः प्रस्तुत संस्करण अपने मूल-पाठ तथा मौलिक व्याख्या की दोनों विशेषताओं के कारण परम उपादेय तथा विद्वज्जनग्राह्य होगा। गरुडपुराण सारोद्धार के इस द्वितीय संस्करण को मूर्तरूप देने में हल्द्वानी के टैक्नोमाइण्ड प्रिन्टर्स के स्वामी श्री चन्दन पलड़िया जी तथा इसको प्रकाशित करने वाले चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस एवं चौखम्बा कृष्णदास अकादमी के अध्यक्ष तथा प्रबन्धकों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हुए प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियों के लिए क्षमा-याचना के साथ ही मैं सुधी पाठकों से इस संस्करण को लोकप्रिय बनाने की अपेक्षा करता हूँ।

डॉ० महेशचन्द्र जोशी

(का.हि.वि. वाराणसी)

।।श्रीगणेशाय नम।।

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

गारुड़महापुराणम्

उत्तर खण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

पापियों के इहलोक और परलोक के दुःखों के वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः।
क्रतुकुसुमो मोक्षफलो [१]मधुसूदनपादपो जयति।।१।।

धर्मरूपी सुदृढ और सुबद्ध मूल वाले, वेदरूपी स्कन्ध (तना) वाले, पुराण रूपी शाखाओं से समृद्ध, यज्ञरूपी पुष्पों वाले और मोक्षरूपी फल वाले भगवान् विष्णुरूपी वृक्ष की जय हो अर्थात् ऐसे भगवान् विष्णु सर्वोत्कर्षशाली हैं। तात्पर्य यह है कि हम भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हैं, जो एक महावृक्ष के समान हैं। भगवान् विष्णुरूपी महावृक्ष का दृढ़ मूल है धर्म। इस वृक्ष की धर्मरूपी जड़ गहरी हैं। इस वृक्ष के तने हैं वेद और शाखाएँ हैं पुराण। इस वृक्ष के फूल हैं यज्ञ और इससे मोक्षरूपी फल प्राप्त होता है।।१।।

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः। सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत।।२।।

अनिमिष क्षेत्र (अर्थात् पलकें न झपकाने वाले-भगवान् विष्णु के क्षेत्र), नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषि स्वर्गलोक की प्राप्ति की कामना से एक हजार वर्षों तक चलने वाला यज्ञ कर रहे थे।।२।।

एकदा मुनयः सर्वे प्रातर्हुतहुताग्नयः। सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात्।।३।।

एक बार सभी मुनियों ने प्रातःकाल अग्नि में हवन करने के पश्चात् सत्कारपूर्वक आसन में बैठे हुए सूतजी से आदर के साथ यह पूछा।।३।।

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सम्यग्देवमार्गः सुखप्रदः। इदानीं श्रोतुमिच्छामो यममार्गं भयप्रदम्।।४।।

१. पाठान्तर – स जयति कल्पद्रुमो विष्णुः।

ऋषियों ने कहा—आपने सुखप्रद देवमार्ग का सम्यक् रूप से वर्णन किया है। इस समय हम भयप्रद यममार्ग के विषय में सुनना चाहते हैं।।४।।

तथा संसारदुःखानि तत्क्लेशक्षयसाधनम्।
ऐहिकामुष्मिकान् क्लेशान् यथावद्वक्तुमर्हसि॥५॥

और आप यममार्ग के वर्णन के साथ ही सांसारिक दुःखों तथा उन दुःखों के नाश के उपाय को भी बतलाइए। आप इस लोक में तथा परलोक में प्राप्त होने वाले क्लेशों का यथावत् वर्णन कीजिए।।५।।

सूत उवाच

शृणुध्वं भो विवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम्।
सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां दुःखदायकम्॥६॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप लोग सुनिए। मैं अत्यन्त दुर्गम यममार्ग के विषय में बतलाता हूँ, जो पुण्यकर्म करने वालों के लिए सुखप्रद है, किन्तु पापियों के लिए दुःखदायक है।।६।।

यथा श्रीविष्णुना प्रोक्तं वैनतेयाय पृच्छते। तथैव कथयिष्यामि सन्देहच्छेदनाय वः॥७॥

मैं आप लोगों के सन्देह को दूर करने के लिए वही बातें कहूँगा, जो गरुड़जी के पूछने पर भगवान् विष्णु ने उनको बतलाई थी।।७।।

कदाचित्सुखमासीनं वैकुण्ठं श्री हरिं गुरुम। विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ विनतासुतः॥८॥

किसी समय वैकुण्ठलोक में सुखपूर्वक बैठे हुए लोकगुरु भगवान् विष्णु से विनता के पुत्र गरुड़जी ने विनय पूर्वक पूछा।।८।।

गरुड उवाच

भक्तिमार्गो बहुविधः कथितो भवता मम। तथा च कथिता देव! भक्तानां गतिरुत्तमा॥९॥

हे भगवन्! आपने मुझे अनेकविध भक्तिमार्ग तथा भक्तों की उत्तम गति के विषय में बतलाया।।९।।

अधुना श्रोतुमिच्छामि यममार्गं भयङ्करम्।
त्वद्भक्तिविमुखानां च तत्रैव गमनं श्रुतम्॥१०॥

अब मैं आपसे भयंकर यममार्ग का वर्णन सुनना चाहता हूँ। सुना है कि आपकी भक्ति से रहित मनुष्य वहीं जाते हैं।।१०।।

सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी। तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराधमान्॥११॥

भगवान् का नाम लेना बहुत सरल है। मनुष्य की जिह्वा भी उसके वश में ही रहती है। तथापि भगवान् का नाम न लेने के कारण जो नराधम नरक में गिरते हैं, उनको धिक्कार है।।११।।

अतो मे भगवन् ब्रूहि पापिनां या गतिर्भवेत्।
यममार्गस्य दुःखानि यथा ते प्राप्नुवन्ति वै॥१२॥

अतः हे भगवन्! आप पापियों की दुर्गति और यममार्ग के उन दुःखों का वर्णन करें, जिन्हें वे पापी भोगते हैं।।१२।।

श्री भगवानुवाच

वक्ष्येऽहं शृणु पक्षीन्द्र! यममार्गं च येन ये।
नरके पापिनो यान्ति शृण्वतामति भीतिदम्॥१३॥

श्रीभगवान् बोले—हे पक्षिराज! सुनो, मैं यममार्ग का वर्णन करता हूँ, जिससे होकर पापी नरक में जाते हैं और जिसका वर्णन सुनने मात्र से भी लोग भयभीत हो जाते हैं।।१३।।

ये हि पापरतास्तार्क्ष्य! दयाधर्मविवर्जिताः।
दुष्टसङ्गाश्च सच्छास्त्रसत्सङ्गतिपराङ्मुखाः॥१४॥

हे गरुड़! जो मनुष्य पापकर्मरत, दया और धर्म से रहित तथा दुष्टों की संगति में पड़े हुए हैं और वेद-पुराण आदि सत्शास्त्रों से पराङ्मुख तथा सत्संगति से वञ्चित हैं।।१४।।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
आसुरं भावमापन्ना दैवीसम्पद्विवर्जिताः॥१५॥

जो अपने मन से अपने को प्रतिष्ठित समझते हैं, जो अभिमानी, धन और मित्था मान-सम्मान से मदोन्मत्त तथा (दम्भ, दर्प, अभिमान आदि अवगुणों के कारण) आसुर भाव को प्राप्त हैं और दैवीगुण सम्पदा[1] से रहित हैं।।१५।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥१६॥

जिनका चित्त अनेक विषयों में आसक्त होने से भ्रमित रहता है, जो मोह-माया के जाल में फँसे हुए हैं और कामोपभोग में संलग्न रहते हैं, वे अपवित्र नरक में गिरते हैं।।१६।।

ये नरा ज्ञानशीलाश्च ते यान्ति परमां गतिम्।
पापशीला नरा यान्ति दुःखेन यमयातनाम्॥१७॥

विवेकशील मनुष्य परमगति प्राप्त करते हैं। पापी मनुष्य दुःख भोगते हुए यमलोक में जाते हैं।।१७।।

पापिनामैहिकं दुःखं यथा भवति तच्छृणु।
ततस्ते मरणं प्राप्य यथा गच्छन्ति यातनाम्॥१८॥

पापियों को इस लोक में जैसे दुःख प्राप्त होता है तथा तदनन्तर मृत्यु को प्राप्त होने पर जैसे उन्हें यम-यातना प्राप्त होती है, उसे सुनो।।१८।।

सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा पूर्वं यथार्जितम्।
कर्मयोगात्तदा तस्य कश्चिद्व्याधिः प्रजायते॥१९॥

पूर्वजन्म में किए हुए पुण्यकर्म तथा पापकर्म का फल भोगने के पश्चात् पापी मनुष्य को उसके इस जन्म के दुष्कर्म के फलस्वरूप कोई रोग उत्पन्न हो जाता है।।१९।।

---

१. दैवी-सम्पद् का वर्णन श्रीमद् भगवद्गीता १६/१-३ तथा गणेशपुराण २/१४७/३ में किया गया है।

आधिव्याधिसमायुक्तं जीविताशासमुत्सुकम्।
कालो बलीयानहिवदज्ञातः प्रतिपद्यते॥२०॥

मनोव्यथा और शारीरिक रोगों से ग्रस्त होने पर भी जीवित रहने की आशा और उत्कण्ठा से युक्त मनुष्य को ले जाने के लिए बलवान् काल (मृत्यु) चुपके से सर्प की तरह आ धमकता है।।२०।।

तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयम्भृतैः। जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे॥२१॥

उस अवस्था में भी उसे निर्वेद (वैराग्य) नहीं होता। उसने पहले जिन स्त्री-पुत्र आदि का भरण-पोषण किया था, अब उन्हीं के द्वारा उसका पेट भरा जाता है। वृद्धावस्था उसे कुरूप बना देती है और घर में रहते हुए ही वह मरणोन्मुख हो जाता है।।२१।।

आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन्। आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः॥२२॥

घर वालों के द्वारा अवज्ञापूर्वक दिये गये भोजन को वह कुत्ते के समान खाता है। रोगग्रस्त तथा मन्दाग्नि से युक्त हो जाने के कारण उसका आहार कम हो जाता है तथा उसकी चलने-फिरने आदि की चेष्टाएँ भी कम हो जाती हैं।।२२।।

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः। कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते॥२३॥

बाहर निकलते हुए प्राणवायु के जोर से उसकी आँखों की पुतलियाँ ऊपर को उठ जाती हैं। कफ से उसकी श्वास-नलिकाएँ अवरुद्ध हो जाती हैं। खाँसी तथा साँस लेने में कठिनाई होने से उसके कण्ठ में घुर-घुर शब्द होने लगता है।।२३।।

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः।
वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशङ्गतः॥२४॥

शोक-मग्न (स्त्री-पुत्र आदि) बन्धुओं के बीच सोया हुआ वह कालपाश के वशीभूत होने के कारण उनके द्वारा पुकारे जाने पर भी कुछ नहीं बोल पाता।।२४।।

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः। म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः॥२५॥

आजीवन कुटुम्ब के भरण-पोषण में आसक्त रहने वाला अजितेन्द्रिय मनुष्य अन्त में तीव्र वेदना से संज्ञाशून्य होकर अपने रोते-बिलखते बान्धवों के बीच में ही मर जाता है।।२५।।

तस्मिन्नन्तक्षणे तार्क्ष्य! दैवी दृष्टिः प्रजायते।
एकीभूतं जगत्पश्येद् न किञ्चिद्वक्तुमीहते॥२६॥

हे गरुड़! अन्तिम मृत्युकालिक क्षण में उसको दैवी-दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे वह समस्त जगत् और लोक-परलोक को एकत्र देखने लगता है, अतः चकित हो जाने के कारण वह मुख से कुछ भी बोलना नहीं चाहता।।२६।।

विकलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जडतां गते। प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर्निकटवर्तिभिः॥२७॥

यमदूतों के निकट आ जाने के कारण सभी इन्द्रियों के निष्क्रिय हो जाने तथा चेतना के जडीभूत हो जाने पर उसके प्राण-पखेरू भी चलायमान हो जाते हैं।।२७।।

स्वस्थानाच्चलिते श्वासे कल्पाख्योह्यातुरक्षणः।
शतवृश्चकदंष्ट्रस्य या पीडा साऽनुभूयते॥२८॥

प्राणवायु के अपने स्थान से चलायमान होने पर मरणासन्न प्राणी को एक क्षण भी एक कल्प के समान प्रतीत होता है तथा एक साथ सौ बिच्छुओं के द्वारा डसे जाने पर जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा का अनुभव उसे होता है।।२८।।

फेनमुद्गिरते सोऽथ मुखं लालाकुलं भवेत्।
अधोद्वारेण गच्छन्ति पापिनां प्राणवायवः॥२९॥

वह फेन (झाग) उगल देता है तथा उसका मुख लार (थूक) से भर जाता है। पापियों के प्राण प्रायः गुदा द्वार से निकलते हैं।।२९।।

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरंभसेक्षणौ। पाशदण्डधरौ नग्नौ दन्तैः कटकटायितौ॥३०॥
ऊर्ध्वकेशौ काककृष्णौ वक्रतुण्डौ नखायुधौ।
स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः सकृन्मूत्रं विमुञ्चति॥३१॥

प्राण छूटते समय दो भयानक यमदूत उस पापी के पास आते हैं। वे यमदूत क्रोधपूर्ण नेत्रों वाले, हाथों में पाश और दण्ड धारण किये हुए, नग्न (निर्वस्त्र शरीर वाले), दाँत कटकटाते हुए और ऊपर को उठे हुए केशों वाले तथा कौवे के समान काले टेढ़े मुख वाले होते हैं। उनके नख तीक्ष्ण (तीखे) आयुध के समान होते हैं। उन्हें देखकर भयाक्रान्त हृदय वाला वह मरणासन्न पापी मनुष्य मल-मूत्र त्याग देता है।।३०-३१।।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन् कलेवरात्।
तदैव गृह्यते दूतैर्याम्यैः पश्यन् स्वकं गृहम्॥३२॥

तब हाय-हाय करते हुए (प्राणों के साथ) अपने पञ्च भौतिक शरीर से बाहर निकल कर अङ्गुष्ठ मात्र आकृति वाला वह पुरुष अपने घर को देखने लगता है, तभी यमदूत उसे पकड़ लेते हैं।।३२।।

यातनादेहमावृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात्।
नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा॥३३॥

उस मृतक की आत्मा को यातना-देह से आवृत करके अर्थात् उस मृत पुरुष को यातना भोगने हेतु अन्य शरीर प्राप्त होने पर वे यमदूत बल-पूर्वक उसके कण्ठ में पाशों से बाँध कर उसे लम्बे यममार्ग में उसी प्रकार ले जाते हैं, जिस प्रकार राजपुरुष दण्डनीय अपराधी को बाँध कर ले जाते हैं।।३३।।

तस्यैवं नीयमानस्य दूता। सन्तर्जयन्ति च। प्रवदन्ति भयं तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः॥३४॥

इस प्रकार उसे ले जाते हुए वे यमदूत उसे धमकाते हैं तथा नरकों के तीव्र भय का पुनःपुनः वर्णन करते हैं।।३४।।

शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन्! यास्यसि त्वं यमालयम्।
कुम्भीपाकादिनरकांस्त्वां न यावोऽद्य माचिरम्॥३५॥

वे कहते हैं—रे दुष्ट शीघ्र चल। तू यमलोक में जायेगा। आज हम तुझे शीघ्रमेव कुम्भीपाक आदि नरकों में ले जावेंगे।।३५।।

एवं वाचस्तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा।
उच्चैर्हाहेति विलपंस्ताड्यते यमकिङ्करैः॥३६॥

उन यमदूतों के ऐसे वचनों को तथा अपने पारिवारिक बन्धु-बान्धवों के रुदन को भी सुनकर वह हाय-हाय कहते हुए उच्च स्वर से विलाप करने लगता है और तभी यमदूत उसे ताड़ित करने लगते हैं।।३६।।

तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवे पथुः। पथि श्वभिर्भक्ष्यमाणः आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन्॥३७॥

उन दोनों यमदूतों की तर्जनाओं से अर्थात् बार-बार धमकाने से वह कम्पायमान होता है और उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। मार्ग में उसे कुत्ते नोचते-खाते रहते हैं। इस प्रकार दु:खार्त होकर वह अपने पापों का स्मरण करता हुआ मार्ग में चलता है।।३७।।

क्षुत्तृड्परीतोऽर्कदवानलानिलैः सन्तप्यमानः पथि तप्तबालुके।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके॥३८॥

भूख-प्यास से पीड़ित और तपते हुए सूर्य तथा दावाग्नि से तप्त वायु के झोंको से संतप्त होता हुआ और यमदूतों के द्वारा पीठ पर चाबुक से पीटा जाता हुआ वह असमर्थ होने पर भी बड़ी कठिनाई से तपी हुई बालू वाले और छायादार विश्राम-स्थल से रहित और निर्जल (जलरहित)मार्ग से चलता है।।३८।।

यत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः। यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम॥३९॥

वह श्रान्त होकर यत्र-तत्र गिरता और मूर्च्छित होता हुआ फिर उठ कर चलता है। इस प्रकार उसे पापी के समान अन्धकार पूर्ण मार्ग से यमलोक में ले जाया जाता है।।३९।।

त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीयते तत्र मानवः। प्रदर्शयन्ति दूतास्ताः घोरा नरकयातनाः॥४०॥

उसे वहाँ दो या तीन मुहूर्तों में पहुँचाया जाता है। उसे यमदूत घोर नरक-यातनाएँ दिखलाते हैं।।४०।।

मुहूर्तमात्रात्त्वरितं यमं वीक्ष्य भयं पुमान्। यमाज्ञया समं दूतैः पुनरायाति खेचरः॥४१॥

मुहूर्त मात्र में यम को तथा उसके द्वारा दी जाने वाली यातनाओं को देख कर यम की आज्ञानुसार वह यमदूतों के साथ आकाश मार्ग से चलकर पुनः मनुष्य-लोक में लौट आता है।।४१।।

आगम्य वासनाबद्धो देहमिच्छन् यमानुगैः।
धृतः पाशेन रुदति क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितः॥४२॥

वह अपने घर आकर सांसारिक वासना अर्थात् गृह-कुटुम्ब आदि के मोह से बँधा होने के कारण पुनः अपने उसी शरीर में प्रविष्ट होने की इच्छा करता है, किन्तु यमदूतों के द्वारा पाशों से बँधे रहने के कारण वह विवश रहता है और भूख-प्यास से पीड़ित रहने के कारण वह रोता रहता है।।४२।।

भुङ्क्ते पिण्डं सुतैर्दत्तं दानं चातुरकालिकम्।
तथापि नास्तिकस्तार्क्ष्य! तृप्तिं याति न पातकी॥४३॥

हे गरुड़! उस समय वह पुत्र या अन्य अन्त्येष्टि-कर्ता द्वारा प्रदत्त पिण्ड तथा मृत्युकाल में प्रदत्त दान का भोग करता है, तथापि उस नास्तिक पापी को उससे तृप्ति नहीं होती।।४३।।

पापिनां नोपतिष्ठन्ति दानं श्राद्धं जलाञ्जलिः।
अतः क्षुद्व्याकुला यान्ति पिण्डदानभुजोऽपि ते॥४४॥

श्राद्धकर्ता द्वारा प्रदत्त दान, श्राद्ध तथा जलाञ्जलि से पापियों को तृप्ति नहीं प्राप्त होती, अतः पिण्ड-दान का भोग करने पर भी वे क्षुधाकुल रहते हैं।।४४।।

भवन्ति प्रेतरूपास्ते पिण्डदानविवर्जिताः।
आकल्पं निर्जनारण्ये भ्रमन्ति बहुदुःखिताः॥४५॥

जिन मृतात्माओं को पिण्डदान नहीं किया जाता, वे प्रेत होते हैं और कल्प पर्यन्त निर्जन वन में अत्यन्त दुःखी होकर विचरण करते हैं।।४५।।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अभुक्त्वा यातनां जन्तुर्मानुष्यं लभते न हि॥४६॥

कर्म का दुष्टफल जब तक भोगा नहीं जाता, तब तक वह करोड़ों वर्षों तक भी समाप्त नहीं होता। विना नरक-यातना भोगे पापी प्राणी मनुष्य योनि को नहीं पाता।।४६।।

अतो दद्यात्सुतः पिण्डान् दिनेषु दशसुद्विज।
प्रत्यहन्ते विभज्यग्ते चतुर्भागैः खगोत्तम॥४७॥

अतः पुत्र अपने मृत पिता-माता आदि को दश दिनों तक प्रतिदिन पिण्डदान करे। हे गरुड़! वे पिण्ड चार भागों में विभक्त होते हैं।।४७।।

भागद्वयं तु देहस्य पुष्टिदं भूतपञ्चके। तृतीयं यमदूतानां चतुर्थं सोपजीवति॥४८॥

उनमें से दो भाग उस प्रेत की देह के पञ्चभूतों को पुष्ट करते हैं, तीसरा भाग यमदूतों को प्राप्त होता है और चौथे भाग को वह स्वयं आहार रूप में ग्रहण करता है।।४८।।

अहोरात्रैश्च नवभिः प्रेतः पिण्डमवाप्नुयात्।
जन्तुर्निष्पन्नदेहश्च दशमे बलमाप्नुयात्॥४९॥

नौ दिनों तक प्रेत पिण्ड का भोग करता है और दशवें दिन उसका पिण्डज शरीर पूर्ण बन जाता है और उसे चलने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।।४९।।

दग्धे देहे पुनर्देहः पिण्डैरुत्पद्यते खग! हस्तमात्रः।
पुमान् येन पथि भुङ्क्ते शुभाशुभम्॥५०॥

हे पक्षिराज! मृत पुरुष के शरीर के दग्ध हो जाने पर पुत्र या अन्य श्राद्धकर्ता के द्वारा प्रदत्त पिण्डों से पुनः उसका एक हाथ लम्बा शरीर उत्पन्न होता है और प्रेत इसी शरीर से यमलोक के मार्ग में शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है।।५०।।

प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते।
ग्रीवास्कन्धौ द्वितीयेन तृतीयाद् हृदयं भवेत्॥५१॥

प्रथम दिन दिये गये पिण्ड से उसका शिर बनता है। दूसरे दिन के पिण्ड से गरदन और कन्धे बनते हैं। तीसरे दिन के पिण्ड से उसका हृदय बनता है।।५१।।

चतुर्थेन भवेत्पृष्ठं पञ्चमान्नाभिरेव च। षष्ठे च सप्तमे चैव कटीगुह्यं प्रजायते॥५२॥

चौथे दिन के पिण्ड से पीठ और पाँचवे दिन के पिण्ड से नाभि, छठे दिन के पिण्ड से कटि प्रदेश (कमर) और गुह्याङ्ग (जननेन्द्रिय और गुदा) तथा सातवें दिन के पिण्ड से दोनों जाँघें बनती हैं।।५२।।

उरुः स्याच्चाष्टमे चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा।
नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि क्षुधा तृषा॥५३॥

आठवें दिन के पिण्ड से घुटने तथा नौवें दिन के पिण्ड से पैर बनते हैं। इस प्रकार पूर्णतः निष्पन्न शरीर में दशवें दिन के पिण्ड से क्षुधा-तृषा (भूख-प्यास) जाग्रत् होती है[1]।।५३।।

''जीवस्य दशभिः पिण्डैर्देहो निष्पाद्यते ध्रुवम्।
वृद्धिश्च दशभिर्मासैर्गर्भस्थस्य यथा भवेत्''[2]॥५४॥

जिस प्रकार गर्भ में शिशु का शरीर दशवें मास में पूर्ण हो जाता है तद्वत दश दिन तक पिण्डदान से मृतक का सूक्ष्म शरीर पूर्ण हो जाता है।।५४।।

पिण्डजं देहमाश्रित्य क्षुधाविष्टस्तृषार्दितः।
एकादशं द्वादशं च प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम्॥५५॥

पिण्ड से जनित देह का आश्रय लेकर भूख-प्यास से पीड़ित प्रेत ग्यारहवें और बारहवें दिन भोजन करता है।।५५।।

त्रयोदशेऽहनि प्रेतो यन्त्रितो यमकिङ्करैः। तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः॥५६॥

तेरहवें दिन यमदूतों द्वारा बन्दर के समान बाँधा हुआ प्रेत अकेला यमलोक के मार्ग में प्रस्थान करता है।।५६।।

षडशीति सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। यममार्गस्य विस्तारो विना वैतरणीं खग॥५७॥

हे गरुड़! बीच में पड़ने वाली वैतरणी की चौड़ाई को छोड़ कर भी यमलोक के मार्ग की दूरी का प्रमाण छियासी हजार योजन है।।५७।।

अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम्।
चत्वारिंशत् तथा सप्त दिवारात्रेण गच्छति॥५८॥

प्रेत को रात और दिन मिलाकर प्रतिदिन दो सौ सैंतालीस योजन चलना पड़ता है।।५८।।

---

१. द्र०- देहं प्राप्तः क्षुधाविष्टो गृहे द्वारे च तिष्ठति। गरुड़ ध० का० प्रे० ख० १५/७२।
२. गरुड़महापुराण ध० का० प्रे० ख० ३४/४४ से उद्धृत।

अतीत्य क्रमशो मार्गे पुराणीमानी षोडश।
प्रयाति धर्मराजस्य भवनं पातकी जनः॥५९॥

पापी मनुष्य मार्ग में क्रमशः जिन सोलह पुरों को पार करके धर्मराज के भवन में पहुँचता है, वे इस प्रकार हैं।।५९।।

सौम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमौ
क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्।
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं
शीताढ्यं बहुभीतिधर्मभवनं याम्यं पुरं चाग्रतः॥६०॥

सौम्यपुर, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वपुर, शैलागम, क्रौञ्चपुर, क्रूरपुर, विचित्रपुर, बह्वापदपुर, दुःखदपुर, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्रपुर, पयोवर्षणपुर, शीताढ्यपुर तथा बहुभीतिपुर और इन सोलह पुरों के आगे यमपुर है, जिसमें धर्मराज का भवन है।।६०।।

याम्यपाशैर्धृतः पापी हा हेति प्ररुदन् पथि।
स्वगृहं तु परित्यज्य पुरं याम्यमनुव्रजेत्॥६१॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापिनामैहिकामुष्मिकदुःखनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।।१।।

यमदूतों के द्वारा पाशों से बाँधा हुआ पापी हाहाकार करके रोता हुआ अपने घर को छोड़कर उसी यमपुर को जाता है।।६१।।

।।इस प्रकार गरुड़पुराण सारोद्धार में पापियों के इहलोक और परलोक के दुःखों के वर्णन वाला प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ।

अनादि-निधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्।

(प्रत्येक अध्याय के अन्त में पठनीय श्लोक)

❖❖❖

अथ द्वितीयोऽध्यायः

यममार्ग-निरूपण

गरुड उवाच

कीदृशो यमलोकस्य पन्था भवति दुःखदः।
तत्र यान्ति यथा पापास्तन्मे कथय केशव!॥१॥

गरुड़ बोले-हे केशव! यमलोक का मार्ग कितना दुःखदायी है? और वहाँ पापी कैसे जाते हैं? यह मुझे बतलाइए।।१।।

भगवानुवाच

यममार्गं महद्दुःखप्रदं ते कथयाम्यहम्।
मम भक्तोऽपि तच्छ्रुत्वा त्वं भविष्यसि कम्पितः॥२॥

श्रीभगवान् बोले—मैं तुम्हें यमलोक के अत्यन्त दुःखप्रद मार्ग के विषय में बतलाता हूँ, जिसे सुनकर तुम मेरे भक्त होने पर भी काँप उठोगे।।२।।

वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः।
तस्मिन् मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् समुद्धरेत्॥३॥

उसमें पापी मनुष्य के विश्राम हेतु वृक्षों की छाया नहीं होती है। उस मार्ग में प्राण-धारण हेतु अन्न आदि खाद्य-पदार्थ भी नहीं होते।।३।।

न जलं दृश्यते क्वापि तृषितोऽतीव यः पिबेत्।
तप्यन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा खग!॥४॥

हे गरुड़! अत्यन्त प्यास लगने पर भी वहाँ पीने के लिए कहीं भी जल नहीं दिखलाई पड़ता। वहाँ प्रलयान्त काल की भाँति बारह सूर्य सदैव तपते रहते हैं।।४।।

तस्मिन् गच्छति पापात्मा शीतवातेन पीडितः।
कण्टकैर्विध्यते क्वापि क्वचित्सर्पैर्महाविषैः॥५॥

उस मार्ग में जाते समय पापी व्यक्ति कहीं अत्यन्त ठण्डी हवा से ठिठुरता है, कहीं काँटों से बींधा जाता है और कहीं अत्यन्त विषैले सर्पों के द्वारा काटा जाता है।।५।।

सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिर्घोरैर्भक्ष्यते क्वापि पापकृत्।
वृश्चिकैर्दंश्यते क्वापि क्वचिद्दह्यति वह्निना॥६॥

कहीं वह पापी भयानक सिंहों, बाघों और कुत्तों के द्वारा काट खाया जाता है, कहीं बिच्छुओं के द्वारा डसा जाता है, तो कहीं आग से जलाया जाता है।।६।।

ततः क्वचिन्महाघोरमसिपत्रवनं महत्। योजनानां सहस्रे द्वे विस्तारायामतः स्मृतम्॥७॥

तब कहीं वह घोर असिपत्रवन नामक नरक में जाता है, जोकि दो हजार योजन लम्बाई और चौड़ाई वाला कहा गया है।।७।।

काकोलूकबक[१] गृध्रसरघादंशसंकुलम्। सदावाग्नि च तत्पत्रैश्छिन्नभिन्नः प्रजायते॥८॥

वह असिपत्रवन कौओं, उल्लुओं, बगुलों, गिद्धों, सरधों (मधुमक्खियों) तथा डाँसों से व्याप्त है तथा वहाँ सदैव दावाग्नि प्रज्वलित रहती है। उस असिपत्रवन के असि (तलवार) के समान तेज धार वाले पत्तों से पापी व्यक्ति छिन्न-भिन्न होता रहता है।।८।।

क्वचित्पतत्यन्धकूपे विकटात् पर्वतात् क्वचित्।
गच्छते क्षुरधारासु शंकूनामुपरि क्वचित्॥९॥

वह कहीं अन्धकूप (अँधेरे कुएँ) में गिरता है, कहीं विकराल पर्वत के शिखर से नीचे गिरता है। कहीं उसे छुरों की धार पर चलना पड़ता है, तो कहीं कीलों की नोकों के ऊपर से चलना पड़ता है।।९।।

स्खलत्यन्धे तमस्युग्रे जले निपतति क्वचित्।
क्वचित्पङ्के जलौकाढ्ये क्वचित्सन्तप्तकर्दमे॥१०॥

वह कहीं घने अँधेरे में गिर पड़ता है, कहीं तेज धार वाले जल में, कहीं जोंकों से भरे कीचड़ में और कहीं पर वह तपे हुए कीचड़ में गिरता है।।।१०।।

सन्तप्तवालुकाकीर्णे ध्माततताम्रमये क्वचित्।
क्वचिदङ्गारराशौ च महाधूमाकुले क्वचित्॥११॥

कहीं तपी हुई बालू से भरे हुए मार्ग में और कहीं तपाये हुए ताँबे से भरे हुए मार्ग पर से चलता है, कहीं अङ्गारों की राशि के ऊपर से चलता है, तो कहीं अत्यन्त धुएँ से भरे हुए मार्ग पर से चलता है।।११।।

क्वचिदङ्गारवृष्टिश्च शिलावृष्टिः सवज्रका।
रक्तवृष्टिः शस्त्रवृष्टिः क्वचिदुष्णाम्बुवर्षणम्॥१२॥

उसके ऊपर कहीं अङ्गार बरसते हैं, कहीं पत्थर बरसते हैं, तो कहीं वज्र गिरते हैं। कहीं उसके ऊपर खून बरसता है, कहीं शस्त्र, तो कहीं उस पर गरम जल की वर्षा होती है।।१२।।

क्षारकर्दमवृष्टिश्च महानिम्नानि च क्वचित्। वप्रप्ररोहणं क्वापि कन्दरेषु प्रवेशनम्॥१३॥

कहीं उसके ऊपर खारे कीचड़ की वर्षा होती है, उसके मार्ग में कहीं अत्यन्त गहरी खाइयाँ हैं, तो कहीं पर्वत शिखरों की खड़ी चढाई है और कहीं गुफाओं में प्रवेश करना पड़ता है।।१३।।

गाढान्धकारस्तत्रास्ति दुःखारोहशिला: क्वचित्।
पूयशोणितपूर्णाश्च विष्ठापूर्णाह्रदः क्वचित्॥१४॥

---

१. वट (अपपाठ)। पाठ-संशोधन के आधार हेतु द्र०- काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्मशकैर्वृश्चिकैस्तथा। गरुड धर्मकाण्ड प्रेत खण्ड ३/१४।

वहाँ कहीं घना अन्धकार रहता है, कहीं ऐसी शिलाएँ हैं, जिन में कठिनाई से चढ़ना पड़ता है। कहीं पीब (मवाद) से भरे हुए और कहीं खून से भरे हुए तथा विष्ठा से भरे हुए तालाबों पर से उसे जाना पड़ता है।।१४।।

मार्गमध्ये वहत्युग्रा घोरा वैतरणी नदी।
सा दृष्टा दुःखदा किं वा यस्या वार्ता भयावहा॥१५॥

उसे मार्ग के बीच में बहने वाली घोर कष्टप्रद वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है। वह नदी देखने में तो दुःखदायी है ही, किंवा और उसकी चर्चा भी भयावह है।।१५।।

शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितवाहिनी। अस्थिवृन्दतटा दुर्गा मांसशोणितकर्दमा॥१६॥

वह सौ योजन चौड़ी है और उसमें पीब (मवाद) और खून बहता है। उसके तटों पर हड्डियों के ढेर लगे रहते हैं, उसमें चलना कठिन है, क्योंकि उसमें रक्त और माँस का कीचड़ भरा रहता है।।१६।।

अगाधा दुस्तरा पापैः केशशैवालदुर्गमा। महाग्राहसमाकीर्णा घोरपक्षिशतैर्वृता॥१७॥

वह अथाह गहरी और पापियों के द्वारा दुःख से पार करने योग्य है, वह केश रूपी सिवार से भरी होने से दुर्गम है। उसमें विशालकाय ग्राह (घड़ियाल) भरे रहते हैं और सैकड़ों खूँखार पक्षी उसके ऊपर मँडराते रहते हैं।।१७।।

आगतं पापिनं दृष्ट्वा ज्वालाधूमसमाकुला।
क्वथते सा नदी तार्क्ष्य! कटाहान्तर्घृतं यथा॥१८॥

पापी को आया हुआ देखकर वह नदी अग्नि की ज्वाला और धुएँ से भयङ्कर कढ़ाई में खौलते घी की तरह उबलने लगती है।।१८।।

कृमिभिः संकुला घोरैः सूचीवक्त्रैः समन्ततः। वज्रतुण्डैर्महागृध्रैर्वायसैः परिवारिता॥१९॥

उसमें चारों ओर सुई के समान नोक वाले कीड़े भरे पड़े रहते हैं, वज्र के समान चौंच वाले बड़े-बड़े गीध और कौवे उसे चारों ओर से घेरे (ढके) रहते हैं।।१९।।

शिशुमारैश्च मकरैर्जलोकामत्स्यकच्छपैः।
अन्यैर्जलस्थैर्जीवैश्च पूरिता मांसभेदकैः॥२०॥

वह नदी शिशुमार (सुईस), मगर, जौंक, मछली, कछुए तथा अन्य मांस-भेदक जल-जन्तुओं से भरी पड़ी है।।२०।।

पतितास्तत्प्रवाहे च क्रन्दन्ति बहुपापिनः। हा भ्रातः पुत्र! तातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः॥२१॥

उस नदी की धारा में गिरे हुए पापी जोर से चीत्कार करते हैं और हे भय्या! ओ बेटा! ए पिताजी! ऐसे पुकारते हुए बार-बार विलाप करते हैं।।२१।।

क्षुधितास्तृषिताः पापा पिबन्ति किलशोणितम्।
सा सरिद्रुधिरापूरं वहन्ती फेनिलं बहु॥२२॥

भूखे-प्यासे पापी उस नदी में बहते हुए खून को पीते हैं। वह नदी अत्यन्त झागयुक्त खून के प्रवाह से भरी पड़ी है।।२२।।

महाघोराति गर्जन्ती दुर्निरीक्ष्या भयावहा। तस्या दर्शनमात्रेण पापाः स्युर्गतचेतनाः॥२३॥

वह अत्यन्त घनघोर, अत्यन्त गर्जन करने वाली, देखने में बीभत्स लगने वाली और भयंकर है। उसको देखते ही पापी मूर्च्छित हो जाते हैं।।२३।।

बहुवृश्चिकसङ्कीर्णा सेविता कृष्णपन्नगैः।
तन्मध्ये पतितानां च त्राता कोऽपि न विद्यते॥२४॥

उसमें बहुत सारे बिच्छू तथा काले साँप भरे रहते हैं। उसमें गिरे हुए पापियों को बचाने वाला कोई नहीं है।।२४।।

आवर्तशतसाहस्रैः पाताले यान्ति पापिनः। क्षणं तिष्ठन्ति पाताले क्षणादुपरिवर्तिनः॥२५॥

उसमें सैकड़ों-हजारों भँवरों में फँसकर पापी पाताल में पहुँच जाते हैं। वे एक क्षण तक पाताल में रहते हैं और क्षण भर बाद ऊपर आ जाते हैं।।२५।।

पापिनां पतनायैव निर्मिता सा नदी खग!। न पारं दृश्यते तस्या दुस्तरा बहुदुःखदा॥२६॥

हे गरुड़! वह नदी पापियों के गिरने के लिए ही बनी है। उसके पार का ओर-छोर नहीं दिखाई देता। उसको पार करना अत्यन्त कठिन है और वह बहुत क्लेशप्रद है।।२६।।

एवं बहुविधक्लेशे यममार्गेऽतिदुःखदे।
क्रोशन्तश्च रुदन्तश्च दुःखिता यान्ति पापिनः॥२७॥

इस प्रकार अनेक क्लेश और अत्यन्त दुःख देने वाले यममार्ग में पापी रोते और चिल्लाते हुए यमलोक को जाते हैं।।२७।।

पाशेन यान्त्रिताः केचित् कृष्यमाणास्तथाङ्कुशैः।
शस्त्राग्रैः पृष्ठतः प्रोतैर्नीयमानाश्च पापिनः॥२८॥

कोई पापी पाश से बँधे हुए, अंकुशों से खींचे जाते हुए, भाले-बरछी आदि शस्त्रों की नोक से पीठ पर बींधे जाते हुए यमलोक को ले जाये जाते हैं।।२८।।

नासाग्रपाशकृष्टाश्च कर्णपाशैस्तथाऽपरे।
कालपाशैः कृष्यमाणाः काकैः कृष्यास्तथाऽपरे॥२९॥

कोई पापी नाक के अग्रभाग में छेद करके उसमें बाँधे गये पाश से और कोई कानों में छेद करके उनमें बाँधे गये पाशों से खींचे जाते हैं। कोई कालपाशों से और कोई पापी कौओं के द्वारा झोंटी पकड़ कर खींचे जाते हैं।।२९।।

ग्रीवाबाहुषु पादेषु बद्धाः पृष्ठे च शृङ्खलैः।
अयोभारचयं केचिद्वहन्तः पथि यान्ति ते॥३०॥

कोई पापी गरदन, बाँहों, पैरों तथा पीठ में साँकड़ों से बँधे हुए और लोहे के भारी टुकड़ों को ढोते हुए यममार्ग में चलते हैं।।३०।।

यमदूतैर्महाघोरैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः। वमन्तो रुधिरं वक्त्रात्तदेवाश्नन्ति ते पुनः॥३१॥

कोई पापी भयानक यमदूतों के द्वारा मुद्गरों से पीटे जाते हैं और फलतः मुख से खून उगलते हुए तथा पुनः उसी को पीते हुए चलते हैं।।३१।।

शोचन्तः स्वानि कर्माणि गलानिं गच्छन्ति जन्तवः।
अतीव दुःखसम्पन्नाः प्रयान्ति यममन्दिरम्॥३२॥

अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मों के विषय में सोचते हुए वे ग्लानि (पश्चात्ताप) से भर उठते हैं और अत्यन्त दुःखी होकर यमलोक को जाते हैं।।३२।।

तथापि स व्रजन् मार्गे पुत्र! पौत्र! इति ब्रुवन्।
हा हेति प्ररुदन् नित्यमनुतप्यति मन्दधी॥३३॥

तथापि इस प्रकार यमलोक के मार्ग में चलता हुआ मन्दबुद्धि पापी अपने पुत्र, पौत्र आदि को पुकारते हुए और हाय-हाय करके रोते हुए दुःख-सन्तप्त होकर पश्चात्ताप करता है।।३३।।

महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते। तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम्॥३४॥

तब वह यह स्वीकार करता है कि बड़े पुण्य से मनुष्य का जन्म प्राप्त होता है। उसे पाकर भी मैंने धर्म नहीं किया। यह मैंने कैसी मूर्खता की।।३४।।

मया न दत्तं न हुतं हुताशने, तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः।
न तीर्थसेवा विहिता विधानतो, देहिन्! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥३५॥

वह स्वयं से कहता है कि तुमने न दान दिया, न अग्नि में हवन किया, न तप किया, न देवों की पूजा की। न विधान के अनुसार तीर्थों का सेवन किया। अतः हे जीव! अब तुम अपने किये हुए कर्मों का फल भोगो।।३५।।

न पूजिता विप्रगणाः सुरापगा न चाश्रिता सत्पुरुषा न सेविताः।
परोपकारो न कृतः कदाचन, देहिन्! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥३६॥

तुमने कभी ब्राह्मणों की पूजा नहीं की, न गङ्गा-स्नान किया, न कभी सत्पुरुषों की सेवा की, न कभी परोपकार के कार्य किये। हे जीव! अब तुम अपने किये हुए कर्मों का फल भोगो।।३६।।

जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले, मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे।
गोविप्रवृत्त्यर्थमकारि नाण्वपि, देहिन्! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥३७॥

तुमने निर्जल स्थान में मनुष्य और पशु-पक्षियों के पानी पीने के लिए जलाशय नहीं बनवाया। गायों और ब्राह्मणों की आजीविका हेतु अणुमात्र भी कुछ नहीं किया। अब हे जीव! तुम अपने किये हुए कर्मों का फल भोगो।।३७।।

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं, न वेदशास्त्रार्थवचः प्रमाणितम्।
श्रुतं पुराणं न च पूजितो ज्ञो, देहिन्! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥३८॥

तूने न तो नित्य धर्म के रूप में विहित अन्न आदि का दान दिया, न कभी गौ को दिन भर के खाने योग्य पर्याप्त घास-पानी आदि दिया, न वेद और शास्त्रों के अर्थपूर्ण वचनों को प्रमाण माना, न कभी पुराणों को सुना, न उनके ज्ञाता और वक्ता विद्वान् को सम्मानित किया। हे जीव! अब तुम अपने दुष्कर्मों का फल भोगो।।३८।।

भर्तुर्मया नैव कृतं हितं वचः पतिव्रतं नैव कदापि पालितम्।
न गौरवं क्वापि कृतं गुरूचितं, देहिन्! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥३९॥

वहाँ गयी हुई नारी भी अपने को धिक्कारती हुई कहती है कि तुमने पति के द्वारा कहे गये हितकर वचनों का पालन नहीं किया और न कभी पतिव्रता धर्म का पालन किया। पति तथा सास-ससुर आदि गुरूजनों का उचित समादर और सेवा-शुश्रुषा नहीं की। अत: हे जीव! अब तुम अपने दुष्कर्मों का फल भोगो।।३९।।

न धर्मबुद्ध्या पतिरेव सेवितो, [१]कुटम्ब सेवा न कृता मृते पतौ।
वैधव्यमासाद्य तपो न सेवितं, देहिन्! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥४०॥

तूने अपना धर्म समझ कर पति की सेवा नहीं की और पति की मृत्यु हो जाने पर अपने कुटुम्ब की सेवा भी नहीं की। विधवा हो जाने पर तपश्चर्यामय जीवन भी नहीं बिताया। अत: हे जीव! अब तुम अपने दुष्कर्मों का फल भोगो।।४०।।

मासोपवासैर्न विशोषितं मया, चान्द्रायणैर्वा नियमैः सविस्तरैः।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं, लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः॥४१॥

मैंने एक मास तक चलने वाले व्रतोपवास से अथवा चान्द्रायण[२] से अथवा विधवा के लिए विहित अन्य विस्तृत धार्मिक नियमों से शरीर को नहीं सुखाया। मैंने पूर्वजन्म में किये हुए दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही बहुत से दु:खों को भोगने के लिए नारी का शरीर प्राप्त किया था।।४१।।

एवं विलप्य बहुशो संस्मरन् पूर्वदेहिकम्। मानुषत्वं मम कुत इति क्रोशन् प्रसर्पति॥४२॥

इस प्रकार बहुत विलाप करके और अपने पहले शरीर का स्मरण करके 'मेरा मानुषपन कहाँ गया?' ऐसा कह कर रोते हुए वह यममार्ग में चलता है।।४२।।

दशसप्तदिनान्येको वायुवेगेन गच्छति। अष्टादशे दिने तार्क्ष्य! प्रेतः सौभ्यपुरं व्रजेत्॥४३॥

---

१. वह्निप्रवेशो न कृतो

२. शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को मात्र एक पिण्ड (एक ग्रास) भोजन करके तदनन्तर प्रतिदिन एक-एक पिण्ड बढ़ाकर भोजन करना और पूर्णिमा के पश्चात् कृष्णपक्ष प्रतिपदा से अमावस्या तक एक एक पिण्ड (ग्रास) कम भोजन करना चान्द्रायण व्रत कहलाता है। प्रतिदिन तीन बार स्नान आदि नियमों का पालन भी इसमें किया जाता है। चान्द्रायण के नाना भेदों में यवमध्य चान्द्रायण, पिपीलिका चान्द्रायण, यतिचान्द्रायण, शिशुचान्द्रायण को गिनाया गया है ; द्र० मनु ११/२१६-२२०; याज्ञवल्क्य ३/३२३-३२५; विष्णुस्मृति ४७/१-६ तथा पुराणविषयानुक्रमणी (विधि एवं आचार) पृ० २७४-२७५)

हे गरुड़! वह प्रेत सतरह दिनों तक अकेला वायु के वेग से चलता है और अट्ठारहवें दिन सौम्यपुर में पहुँचता है।।४३।।

तस्मिन् पुरवरे रम्ये प्रेतानां च गणो महान्। पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः।।४४।।

उस पुर में प्रेत-गण रहते हैं। उसमें पुष्पभद्रा नाम की नदी तथा एक वट का वृक्ष है, जो देखने में बहुत प्रिय लगता है।।४४।।

पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः। दारपुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्रः दुःखितः।।४५।।

उस पुर में यमदूत उस प्रेत को विश्राम कराते हैं। वहाँ दुःखी होकर वह स्त्री, पुत्र आदि विषयक सुख का स्मरण करता है।।४५।।

धनानि भृत्यपौत्राणि सर्वं शोचति वै यदा।
स्थिताः प्रेतास्तु तत्रत्याः किङ्कराश्चेदमब्रुवन्।।४६।।
क्व धनं? क्व सुता जाया? क्व सुहृद्? क्व च बान्धवाः?
स्वकर्मोपार्जितं भोक्ता मूढ! याहि चिरं पथि।।४७।।

जब वह स्त्री, पुत्र और अपने धन तथा भृत्यों आदि का स्मरण करता है, तो वहाँ के निवासी प्रेत तथा यमकिङ्कर उससे यह कहते हैं कि कहाँ धन, कहाँ पुत्र, कहाँ मित्र और कहाँ बान्धव? जीव अपने कर्मों का फल भोगता है। हे मूढ़! अब तो तुमको चिरकाल अर्थात् एक वर्ष तक यमलोक के मार्ग में चलते रहना है।।४६-४७।।

जानासि संबलबलं बलमध्वगानां, नो संबलाय यतसे परलोकपान्थ!
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन, मार्गेण यत्र न भवति क्रयविक्रयो हि।।४८।।

हे परलोक के पथिक! तुमको ज्ञात होना चाहिए कि सम्बल अर्थात् खाने-पीने आदि का सामान ही पथिकों का बल है। किन्तु तुमने सम्बल को जुटाने का यत्न नहीं किया जब कि तुमको निश्चयमेव ऐसे मार्ग से प्रस्थान करना है, जिसमें तनिक भी क्रय-विक्रय नहीं होता।।४८।।

आबालख्यातमार्गोऽयं नैव मर्त्य! श्रुतस्त्वया।
पुराणसम्भवं वाक्यं किं द्विजेभ्योऽपि न श्रुतम्।।४९।।

इस मार्ग के विषय में तो बच्चे भी जानते हैं। अरे मनुष्य! क्या तुमने इसके विषय में कुछ सुना ही नहीं था? क्या तुमने ब्राह्मणों के मुख से पुराणों के वचन भी नहीं सुने थे?।।४९।।

एवमुक्तस्ततो दूतैस्ताड्यमानश्च मुद्गरैः।
निपतन्नुत्पतन् धावन् पाशैराकृष्यते बलात्।।५०।।

यमदूतों के द्वारा ऐसा कहकर मुद्गरों से ताड़ित किया जाता हुआ वह गिरता-पड़ता और पुनः उठ कर दौड़ता है और तभी उसे यमदूतों के द्वारा बलपूर्वक पाशों से बाँध कर खींचा जाता है।।५०।।

अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाऽथवा।
मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत्।।५१।।

वह प्रेत सौम्यपुर में पुत्रों अथवा पौत्रों के द्वारा स्नेहवश अथवा दयावश मासिक (एकोदिष्ट) श्राद्ध में प्रदत्त पिण्ड को खाता है और तब सौरिपुर को प्रस्थान करता है।।५१।।

तत्र नाम्नास्ति राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक्।
तद्दृष्ट्वा भयभीतोऽसौ विश्रामे कुरुते मतिम्॥५२॥

उस सौरिपुर में कालरूप अर्थात् यम के स्वरूप को धारण करने वाला जंगम नामक राजा है। उसे देखकर वह प्रेत भयभीत होकर विश्राम करना चाहता है।।५२।।

उदकं चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तत्र पुरे गतः। त्रैपाक्षिके वै यद्दत्तं स तत्पुरमतिक्रमेत्॥५३॥

उस पुर में प्रेत अपने बान्धवों के द्वारा त्रैपाक्षिक श्राद्ध में प्रदत्त अन्न-जल को खाकर उस पुर को पार करता है।।५३।।

ततो नगेन्द्रभवनं प्रेतो याति त्वराऽन्वितः।
वनानि तत्र रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति दुःखितः॥५४॥

तब वह प्रेत शीघ्रता से नगेन्द्रभवन को चलता है, वहाँ मार्ग में भयंकर वनों को देखकर वह दुःखी होकर रोता है।।५४।।

निर्घृणैः कृष्यमाणस्तु रुदते च पुनः पुनः। मासद्वयावसाने तु तत्पुरं व्यथितो व्रजेत्॥५५॥

निर्दय यमदूतों के द्वारा खींचे जाने पर वह बार-बार रोता है। दो मास के अन्त में वह व्यथाकुल होकर उस नगेन्द्रभवन में पहुँचता है।।५५।।

भुक्त्वा पिण्डं जलं वस्त्रं दत्तं यद्बान्धवैरिह।
कृष्यमाणः पुनः पाशैर्नीयतेऽग्रे च किङ्करैः॥५६॥

वहाँ वह अपने बान्धवों द्वारा प्रदत्त पिण्ड, जल, वस्त्र आदि को ग्रहण करता है। तब पुनः यमदूत उसे खींचकर आगे की यात्रा के लिए ले जाते हैं।।५६।।

मासे तृतीये सम्प्राप्ते प्राप्य गन्धर्वपत्तनम्। तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति॥५७॥

वह तीसरे मास गन्धर्वपुर में पहुँचता है। वहाँ तीसरे मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर पुनः आगे बढ़ जाता है।।५७।।

शैलागमं चतुर्थे च मासि प्राप्नोति वै पुरम्।
पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि भूरिशः॥५८॥

चौथे मास में वह प्रेत शैलागमपुर में पहुँचता है, जहाँ उसके ऊपर ढेर-सारे पत्थर बरसते हैं।।५८।।

चतुर्थमासिकं पिण्डं भुक्त्वा किञ्चित्सुखी भवेत्।
ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्चं मासेऽथ पञ्चमे॥५९॥

वह चौथे मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर कुछ सुख का अनुभव करता है। तब पाँचवें मास में वह प्रेत क्रौञ्चपुर में पहुँचता है।।५९।।

हस्तदत्तं तदा भुङ्क्ते प्रेतः क्रौञ्चपुरे स्थितः।
तत्पञ्चमासिकं पिण्डं भुक्त्वा क्रूरपुरं व्रजेत्॥६०॥

क्रौञ्चपुर में स्थित वह प्रेत अपने बान्धवों के द्वारा प्रदत्त पाँचवें मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर क्रूरपुर को जाता है।।६०।।

सार्धकैः पञ्चभिर्मासैर्न्यूनषाणमासिकं व्रजेत्।
तत्र दत्तेन पिण्डेन घटेनाप्यायितः स्थितः॥६१॥
मुहूर्तार्धं तु विश्रम्य कम्पमानः सदुःखितः। तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः॥६२॥

साढे पाँच मास से लेकर पौने छः मास के भीतर वह क्रूरपुर में पहुँचता है, वहाँ बान्धवों द्वारा प्रदत्त ऊनषाण्मासिक श्राद्ध में प्रदत्त पिण्ड और घटोदक से आप्यायित (तृप्त) होकर आधे मुहूर्त तक विश्राम करके वह यमदूतों के द्वारा धमकाये जाने पर काँपते हुए और दुःखी होकर उस पुर को छोड़कर आगे बढ़ता है।।६१-६२।।

प्रयाति चित्रभवनं विचित्रो नाम पार्थिवः।
यमस्यैवानुजो भ्राता यत्र राज्यं प्रशास्ति हि॥६३॥

तब वह चित्रभवन (अर्थात् विचित्रपुर) में पहुँचता है जहाँ यमराज का छोटा भाई विचित्र नामक राजा राज्य करता है।।६३।।

तं विलोक्य महाकायं यदा भीतः पलायते। तदा संमुखमागत्य कैवर्ता इदमब्रुवन्॥६४॥

उस महाकाय राजा को देखने पर भयभीत होकर जब वह भागने लगता है तभी वैतरणी नदी के धीवर उसके समक्ष आकर यह कहते हैं।।६४।।

वयं ते तर्तुकामाय महावैतरणीं नदीम्। नावमादाय सम्प्राप्ता यदि ते पुण्यमीदृशम्॥६५॥

कि तुम्हें इस विशाल वैतरणी नदी को पार करना है, हम तुम्हारे लिए नाव लेकर आये हैं, यदि तुमने अपने जीवन में कुछ पुण्य किया हो, तो उसे देकर इसमें बैठ सकते हो।।६५।।

दानं वितरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
इयं सा तीर्यते यस्मात्तस्माद् वैतरणी स्मृता॥६६॥

तत्त्वदर्शी मुनियों ने दान को ही वितरण (देना या बाँटना) कहा है। उस वितरण के प्रभाव से ही इस नदी को सुख से तरा जा सकता है, इसीलिए इसको वैतरणी कहते हैं।।६६।।

यदि त्वया प्रदत्ता गौस्तदा नौरुपसर्पति। नाऽन्यथेति वचस्तेषां श्रुत्वा हा दैव! भाषते॥६७॥

यदि तुमने गोदान किया होगा, तब तो नाव तुम्हारे पास आयेगी, अन्यथा नहीं, उनके ऐसे वचन सुनकर वह पापी 'हा दैव!' ऐसा कहता है।।६७।।

तं दृष्ट्वा क्वथते सा तु तां दृष्टवा सोऽतिक्रन्दते।
अदत्तदानः पापात्मा तस्यामेव निमज्जति॥६८॥

उस पापी को देखकर वह नदी उफान मारने लगती है और उसे देखकर वह अत्यन्त क्रन्दन करने लगता है। वह पापी अपने जीवन में कभी कोई दान नहीं दिया होने के कारण उस नदी में डूब जाता है।।६८।।

तन्मुखे कण्टकं दत्त्वा दूतैराकाशसंस्थितैः।
बडिशेन यथा मत्स्यस्तथा पारं प्रणीयते॥६९॥

तब आकाशचारी यमदूतों के द्वारा उस प्रेत के मुख में काँटा फँसा कर बडिश (काँटे) से मछली की भाँति खींचकर उसे उस नदी के पार ले जाया जाता है।।६९।।

षाण्मासिकं च यत्पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति।
मार्गे स विलपन् याति बुभुक्षापीडितो ह्यलम्॥७०॥

वहाँ वह अपने बान्धवों द्वारा प्रदत्त छठे महीने के श्राद्ध के पिण्ड को खाकर फिर आगे बढ़ता है। वह आगे के मार्ग में भूख से पीड़ित होने पर विलाप करता हुआ चलता है।।७०।।

सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बह्वापदं व्रजेत्।
तत्र भुङ्क्ते प्रदत्तं तत्सप्तमे मासि पुत्रकैः॥७१॥

सातवें मास वह बह्वापद नामक पुर में पहुँचता है और वहाँ अपने पुत्रों द्वारा प्रदत्त सातवें मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाता है।।७१।।

तत्पुरं तु व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमृच्छति।
महद्दुःखमवाप्नोति खे गच्छन् खेचरेश्वर!॥७२॥

तब उस पुर को पार कर वह दुःखदपुर में पहुँचता है। हे गरुड़! उस पुर में आकाशमार्ग से जाते समय वह बहुत दुःख पाता है।।७२।।

मास्यष्टमे प्रदत्तं यत्पिण्डं भुक्त्वा प्रसर्पति।
नवमे मासि सम्पूर्णे नानाक्रन्दपुरं व्रजेत्॥७३॥

वहाँ वह आठवें मास में दिये गये श्राद्ध के पिण्ड को खाकर फिर आगे बढ़ता है और नवाँ मास पूरा व्यतीत हो जाने पर वह नानाक्रन्दपुर में पहुँचता है।।७३।।

नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान्।
स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः॥७४॥

वहाँ वह क्रन्दन करते हुए भयावह (दारुण) नानाक्रन्द गणों को देखकर स्वयं भी शून्य-हृदय वाला और दुःखी होकर क्रन्दन करने लगता है।।७४।।

विहाय तत्पुरं प्रेतस्तर्जितो यमकिङ्करैः। सुतप्तभवनं गच्छेद्दशमे मासि कृच्छ्रतः॥७५॥

यमदूतों के द्वारा धमकाया हुआ वह प्रेत उस पुर से विदा होकर दशवें महीने के अन्त में बड़ी कठिनाई से सुतप्तभवन में पहुँचता है।।७५।।

पिण्डदानं जलं तत्र भुक्त्वाऽपि न सुखी भवेत्।
मासि चैकादशे पूर्णे पुरं रौद्रं स गच्छति॥७६॥

वहाँ दशवें मासिक श्राद्ध के पिण्डदान और जलाञ्जलि को पाकर भी वह सुखी नहीं हो पाता। तब आगे बढ़ता हुआ ग्यारहवें मास के पूर्णतः बीतने पर वह रौद्रपुर में पहुँचता है।।७६।।

दशैकमासिकं तत्र भुंक्ते दत्तं सुतादिभिः।
सार्द्ध-चैकादशे मासि पयोवर्षणमृच्छति॥७७॥

वहाँ वह पुत्रादि के द्वारा प्रदत्त ग्यारहवें मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाता है। तब पुनः आगे चलता हुआ वह साढ़े ग्यारहवें मास में पयोवर्षणपुर में पहुँचता है।।७७।।

मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः।
न्यूनाब्दिकं च यच्छ्राद्धं तत्र भुंक्ते स दुःखितः॥७८॥

वहाँ प्रेतों को दुःख देने के लिए मेघ मूसलाधार वर्षा करते हैं। वह दुःखी प्रेत वहाँ न्यूनाब्दिक (न्यूनवार्षिक) श्राद्ध [के पिण्ड] को खाता है।।७८।।

सम्पूर्णे तु ततो वर्षे शीताढ्यं नगरं व्रजेत्।
हिमाच्छतगुणं तत्र महाशीतं पतत्यपि॥७९॥

तदनन्तर आगे बढ़ता हुआ वह सम्पूर्ण वर्ष बीतने पर शीताढ्य नगर में पहुँचता है। वहाँ हिम से भी सौगुनी अधिक ठण्ड पड़ती है।।७९।।

शीतार्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश।
तिष्ठते बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति॥८०॥

वहाँ अतिशय शीत और भूख से पीड़ित प्रेत दशों दिशाओं में इस आशा से देखता है कि यदि यहाँ कहीं मेरा कोई बान्धव होगा, जो वह मेरे दुःख को दूर करेगा।।८०।।

किङ्करास्ते वदन्त्यत्र क्व ते पुण्यं हि तादृशम्।
भुक्त्वा च वार्षिकं पिण्डं धैर्यमालम्बते पुनः॥८१॥

ऐसी स्थिति में यमदूत उससे कहते हैं कि तूने वैसा पुण्य ही कहाँ किया है? तब वह वार्षिक श्राद्ध के पिण्ड को खाकर धैर्य धारण करता है।।८१।।

ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये। बहुभीतिपुरे गत्वा हस्तमात्रं समुत्सृजेत्॥८२॥

तब एक वर्ष के अन्त में यमपुर के निकटवर्ती बहुभीति नामक पुर में पहुँचने पर वह अपने हाथ भर के शरीर को त्याग देता है।।८२।।

अङ्गुष्ठमात्रो [1]वायुश्च कर्मभोगाय खेचर।
यातनादेहमासाद्य सह याम्यैः प्रयाति च॥८३॥

---

१. द्र० अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो वायुभूतः क्षुधान्वितः। गरुडमहापुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड २५/१७।

तब वह प्रेत अपने दुष्कर्मों का फल भोगने के लिए अङ्गुष्ठ-परिमित (अर्थात् अँगूठे भर लम्बा) वायु-स्वरूप, आकाशचारी यातना-शरीर को धारण करके यमदूतों के साथ चलता है।।८३।।

और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप। कष्टेन ते पुरं यान्ति गृहीत्वा दृढबन्धनैः॥८४॥

हे कश्यपपुत्र गरुड़! जिन मनुष्यों ने मृत्यु के समय और्द्धदेहिक दान नहीं दिये हैं, वे इस प्रकार यमदूतों द्वारा दृढ-बन्धनों (पाशों) से बँधे हुए कष्ट के साथ यमपुर को जाते हैं।।८४।।

धर्मराजपुरे सन्ति चतुर्द्वाराणि खेचर!। यत्राऽयं दक्षिण-द्वारमार्गस्ते परिकीर्तितः॥८५॥

हे आकाशचारी गरुड़! धर्मराज के पुर में प्रवेश के चार द्वार हैं, जिनमें से मैंने दक्षिण द्वार के मार्ग का यह वर्णन तुमको सुना दिया है।।८५।।

अस्मिन् पथि महाघोरे क्षुत्तृषाश्रमपीडिताः।
यथा यान्ति तथा प्रोक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥८६॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे यममार्गनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

इस महाभयङ्कर मार्ग में भूख-प्यास और थकान से पीड़ित पापी जैसे जाते हैं, वह सब मैंने तुमको बतला दिया है। अब बतलाओ कि तुम और क्या सुनना चाहते हो।।८६।।

।।गरुड़पुराण सारोद्धार में यममार्ग-निरूपण विषयक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।।

❖❖❖
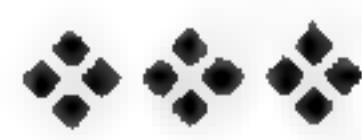
अथ तृतीयोऽध्यायः

यमयातना निरूपण

गरुड उवाच

यममार्गमतिक्रम्य गत्वा पापी यमालये।
कीदृशीं यातनां भुंक्ते तन्मे कथय केशव!॥१॥

गरुड़ बोले—हे केशव! यमलोक के मार्ग की यात्रा पूरी करके पापी यम के भवन में पहुँच कर कैसी यातना पाता है?यह आप मुझे बतलाइए।।१।।

श्री भगवानुवाच

आद्यन्तं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व विनतात्मज।
कथ्यमानेऽपि नरके त्वं भविष्यसि कम्पितः॥२॥

श्री भगवान् बोले-हे विनता के पुत्र गरुड़! सुनो, मैं आरम्भ से अन्त तक नरक-यातनाओं का वर्णन करूँगा। मेरे द्वारा नरक के विषय में कहे जाते हुए वचनों को सुनने मात्र से तुम काँप उठोगे।।२।।

चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि काश्यप!। बहुभीतिपुरादग्रे धर्मराजपुरं महत्।।३।।

हे कश्यप के पुत्र! बहुभीतिपुर के आगे चौवालीस योजन की लम्बाई-चौड़ाई में फैला हुआ धर्मराज का विशाल नगर है।।३।।

हाहाकारसमायुक्तं दृष्ट्वा क्रन्दति पातकी। तत्क्रन्दनं समाकर्ण्य यमस्य पुरचारिणः।।४।।
गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि। धर्मध्वजः प्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा।।५।।

हाहाकार की ध्वनियों से पूर्ण उस पुर को देख कर पापी क्रन्दन करने लगता है। उसके क्रन्दन को सुनकर उस पुर में विचरण करने वाले यम के गण उस पापी के आगमन की सूचना द्वारपाल को देते हैं। यमराज का धर्मध्वज नामक द्वारपाल सदा वहाँ (द्वार पर) रहता है।।४-५।।

स गत्वा चित्रगुप्ताय ब्रूते तस्य शुभाऽशुभम्।
ततस्तं चित्रगुप्तोऽपि धर्मराजं निवेदयेत्।।६।।

वह चित्रगुप्त के पास जाकर उस पापी के शुभा-शुभ को बतलाता है। चित्रगुप्त भी उसके विषय में धर्मराज को बतलाते हैं।।६।।

नास्तिका ये नरास्तार्क्ष्य महापापरताः सदा।
तांश्च सर्वान् यथायोग्यं सम्यग्जानाति धर्मराट्।।७।।

हे गरुड़! जो लोग नास्तिक और सदा महापाप में रत रहे हैं, उन सबको धर्मराज यथायोग्य और भली भाँति जानते हैं।।७।।

तथापि चित्रगुप्ताय तेषां पापं स पृच्छति। चित्रगुप्तोऽपि सर्वज्ञः श्रवणान् परिपृच्छति।।८।।

तथापि वह उन पापी मनुष्यों के पाप के विषय में चित्रगुप्त से पूछते हैं। चित्रगुप्त सर्वज्ञ होने पर भी श्रवणों से ही पापियों के पाप के विषय में पूछते हैं।।८।।

श्रवणा ब्रह्मणः पुत्रा स्वर्भूपातालचारिणः। दूरश्रवणविज्ञाना दूरदर्शनचक्षुषः।।९।।

वे श्रवण ब्रह्मा के पुत्र हैं और स्वर्ग, भूमि और पाताल में भी सर्वत्र विचरण करते हैं। वे दूर की बातें सुन लेते हैं, दूरवर्ती तत्त्वों को भी जान लेते हैं तथा उनके नेत्र दूर के दृश्यों को भी देख लेते हैं।।९।।

तेषां पत्न्यस्तथाभूताः श्रवण्यः पृथगाह्वयाः।
स्त्रीणां विचेष्टितं सर्वं ता विजानन्ति तत्त्वतः।।१०।।

उनकी पत्नियाँ भी उन्हीं के समान हैं। वे श्रवणी कहलाती हैं, किन्तु वे पृथक्-पृथक् नामों वाली हैं। वे स्त्रियों की सारी चेष्टाएँ तत्त्वतः जानती हैं।।१०।।

नरैः प्रच्छन्नं प्रत्यक्षं यत्प्रोक्तं च कृतं च यत्।
सर्वमावेदयन्त्येव चित्रगुप्ताय ते च ताः।।११।।

मनुष्यों के द्वारा प्रच्छन्न (गुप्त) रूप से अथवा प्रत्यक्षतः सबके सामने जो कुछ भी कहा गया अथवा किया गया है, उस सबको उन श्रवण तथा श्रवणियों के द्वारा चित्रगुप्त को यथावत् बतलाया जाता है।।११।।

चारास्ते धर्मराजस्य मनुष्याणां शुभाऽशुभम्।
मनोवाक्कायजं कर्म सर्वं जानन्ति तत्त्वतः॥१२॥

धर्मराज के वे गुप्तचर (श्रवण और उनकी पत्नियाँ) मनुष्यों के द्वारा मन, वचन और शरीर के द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों को तत्त्वतः जानते हैं।।१२।।

एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्यामर्त्याधिकारिणाम्।
कथयन्ति नृणां कर्म श्रवणाः सत्यवादिनः॥१३॥

मनुष्यों और देवताओं के अधिकारी उन सत्यवादी श्रवणों में ऐसी विशेष शक्ति है कि उसके बल पर वे मनुष्यों के सब कर्मों को बतला देते हैं।।१३।।

व्रतैर्दानैश्च सत्योक्त्या यस्तोषयति तान्नरः।
भवन्ति तस्य ते सौम्याः स्वर्गमोक्षप्रदायिनः॥१४॥

जो मनुष्य व्रत, दान और सत्यवचन से उन्हें सन्तुष्ट किये रहता है, उसके लिए वे सौम्य तथा स्वर्ग और मोक्षप्रद होते हैं।।१४।।

पापिनां पापकर्माणि ज्ञात्वा ते सत्यवादिनः।
धर्मराजपुरः प्रोक्ता जायन्ते दुखदायिनः॥१५॥

वे सत्यवादी श्रवण पापियों के पापकर्मों को ज्ञात करके धर्मराज के समक्ष यथावत् कह देने के कारण पापियों के लिए दुःखदायी हो जाते हैं।।१५।।

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥१६॥

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, मनुष्य का अपना हृदय, यमराज, दिन, रात्रि, प्रातःकालिक सन्ध्या तथा सायंकालीन सन्ध्या और धर्म-ये सब मनुष्यों के समस्त वृत्तान्त को जानते हैं।।१६।।

धर्मराजश्चित्रगुप्तः श्रवणा भास्करादयः।
कायस्थं तत्र पश्यन्ति पापं पुण्यं च सर्वशः॥१७॥

धर्मराज, चित्रगुप्त, श्रवण तथा सूर्य आदि मनुष्य के शरीर में स्थित समस्त पाप-पुण्य को पूर्णतः जानते हैं।।१७।।

एवं सुनिश्चयं कृत्वा पापिनां पातकं यमः। आहूय तन्निजं रूपं दर्शयत्यतिभीषणम्॥१८॥

इस प्रकार यमराज पापियों के पाप का निश्चित ज्ञान करके उन्हें बुलाकर उनको अपना अत्यन्त भीषण रूप दिखलाते हैं।।१८।।

पापिष्ठास्ते प्रपश्यन्ति यमरूपं भयङ्करम्। दण्डहस्तं महाकायं महिषोपरि संस्थितम्॥१९॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषकज्जलाचलाचलसन्निभम् ।
विद्युत्प्रभायुधैर्भीमं द्वात्रिंशद्भुजसंयुतम् ॥२०॥
योजनत्रयविस्तारं वापीतुल्यविलोचनम्। दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताक्षं दीर्घनासिकम्॥२१॥

वे पापी यम के रूप को ऐसा भयंकर देखते हैं, जो कि हाथ में दण्डधारी, बड़े भारी शरीर वाले, भैंस के ऊपर बैठा हुआ प्रलयकालीन मेघ के समान गर्जन करने वाला, काजल के पर्वत के समान रंग वाला, विद्युत् के समान दीप्त प्रभा वाले तीखे अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होने से भयंकर, बत्तीस भुजाओं वाले, तीन योजन लम्बे-चौड़े शरीर वाला, वावड़ी के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाला, विकराल दाढ़ों के कारण भयंकर मुख वाला, लाल-लाल आँखों वाला तथा बड़ी-लम्बी नाक वाला है।।१९-२१।।

मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः।
सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यास्तदन्तिके॥२२॥

चित्रगुप्त भी अति भयानक आकृति वाला है। उसके साथ मूर्तिमान् मृत्यु तथा ज्वर आदि भी रहते हैं और उसके समीप यम के समान भयानक सभी दूत (पापियों को भयभीत करने के लिए) गर्जन करते रहते हैं।।२२।।

तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हा हेति वदते खलः। अदत्तदानः पापात्मा कम्पते क्रन्दते पुनः॥२३॥

कभी दान न दिया होने के कारण पापात्मा दुष्ट प्रेत वहाँ चित्रगुप्त को देखकर हाय-हाय करता है, काँपता है और फिर चीत्कार करता है।।२३।।

ततो वदति तान्सर्वान् क्रन्दमानांश्च पापिनः।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया॥२४॥

तब उन क्रन्दन करते हुए तथा अपने दुष्कर्मों के विषय में सोचते (मन में पश्चात्ताप करते) हुए उन सब पापियों से चित्रगुप्त यम की आज्ञा से कहते हैं।।२४।।

भोः भोः पापा दुराचारा अहङ्कारप्रदूषिताः।
किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरविवेकिभिः॥२५॥

कि "अरे पापियों! दुराचारियों! अहंकारी-दुष्टों! तुम अज्ञानियों ने किसलिए पाप किया था"।।२५।।

कामक्रोधाद्यदुत्पन्नं सङ्गमेन च पापिनाम्।
तत्पापं दुःखदं मूढाः किमर्थं चरितं जनाः॥२६॥

काम, क्रोध तथा पापियों की संगति के प्रभाव से तुमने जो पाप किया है, वह दुःख-प्रद है, तब तुमने उसे क्यों किया?।।२६।।

कृतवन्तः पुरा यूयं पापान्यत्यन्तहर्षिताः।
तथैव यातना भोग्याः किमिदानीं पराङ्मुखाः॥२७॥

जिस प्रकार पहले तुमने अत्यन्त प्रसन्नता से पाप किये थे वैसे ही अब तुमको नरक की यातना भी भोगनी चाहिए, इस समय उससे पराङ्मुख क्यों हो रहे हो?।।२७।।

कृतानि यानि पापानि युष्माभिः सुबहून्यपि।
तानि पापानि दुःखस्य कारणं न च वञ्चनाः॥२८॥

तुम पापियों ने जो बहुत से पाप किये हैं, वे ही तुम्हारे दुःख के कारण हैं, ये दुःख अकारण वञ्चना मात्र नहीं हैं।।२८।।

मूर्खेऽपि पण्डिते वाऽपि दरिद्रे वा श्रियान्विते।
सबले निर्बले वापि समवर्ती यमः स्मृतः॥२९॥

चाहे कोई मूर्ख हो या पण्डित, दरिद्र हो या धनी, बलवान् हो या निर्बल, यमराज का व्यवहार सभी के प्रति एक समान रहता है।।२९।।

चित्रगुप्तस्येति वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं निष्ठन्ति निश्चलाः॥३०॥

तब वे पापी चित्रगुप्त के ऐसे वचनों को सुनकर अपने दुष्कर्मों के विषय में सोचते हुए निश्चेष्ट और मौन होकर बैठ जाते हैं।।३०।।

धर्मराजोऽपि तान् दृष्ट्वा चोरवन्निश्चलांस्थितान्।
आज्ञापयति पापानां ·शान्तिं चैव यथोचितम्॥३१॥

धर्मराज भी उन पापियों को चोर की तरह निश्चल बैठे हुए देखकर उन्हें यथोचित् दण्ड देने की आज्ञा देते हैं।।३१।।

ततस्ते निर्दया दूतास्ताडयित्वा वदन्ति च।
गच्छ पापिन्! महाघोरान् नरकानतिभीषणान्॥३२॥

तब निर्दय यमदूत प्रत्येक पापी को पीटते हुए कहते हैं कि अरे पापी! अब और अति भयानक नरकों में जाओ।।३२।।

यमाज्ञाकारिणो दूता प्रचण्डचण्डकादयः।
एकपाशेन तान् बद्ध्वा नयन्ति नरकान् प्रति॥३३॥

यम की आज्ञा का पालन करते हुए प्रचण्ड, चण्ड आदि दूत उन पापियों को एक ही पाश से बाँधकर नरकों में ले जाते हैं।।३३।।

तत्र वृक्षो महानेको ज्वलदग्निसमप्रभः। पञ्चयोजनविस्तीर्णः एकयोजनमुच्छ्रितः॥३४॥

वहाँ जलती हुई अग्नि के समान दीप्तिमान् एक विशाल वृक्ष है, जो पाँच योजन चौड़ा तथा एक योजन ऊँचा है।।३४।।

तद्वृक्षे शृङ्खलैर्बद्ध्वाऽधोमुखं ताडयन्ति ते।
रुदन्ति ज्वलितास्तत्र तेषां त्राता न विद्यते॥३५॥

वे यमदूत उस वृक्ष में पापियों को शिर नीचे [और पैर ऊपर] करके साँकलों (जञ्जीरों) से बाँधकर उन्हें पीटते हैं। वे पापी वहाँ [उस वृक्ष की उष्मा से] जलने पर रोते हैं। वहाँ उन्हें बचाने वाला कोई नहीं होता।।३५।।

तस्मिन् वै शाल्मलीवृक्षे लम्बन्तेऽनेकपापिनः।
क्षुत्पिपासा परिश्रान्ता यमदूतैश्च ताडिताः॥३६॥

उस शाल्मली (सेमल) के वृक्ष में यमदूतों के द्वारा ताड़ित (मारे-पीटे गये) और भूख-प्यास से पीड़ित अनेक पापी लटके रहते हैं।।३६।।

क्षमध्वं भोऽपराधं मे कृताञ्जलिपुटा इति।
विज्ञापयन्ति तान् दूतान् पापिष्ठास्ते निराश्रयाः॥३७॥

वे निराश्रय पापी उन दूतों से निवेदन करते हुए कहते हैं कि हे महाशय! हम हाथ जोड़ते हैं, हमारे अपराध क्षमा कर दो।।३७।।

पुनः पुनश्च ते दूतैर्हन्यन्ते लौहयष्टिभिः। मुद्गरैस्तोमरैः कुन्तैर्गदाभिर्मुसलैर्भृशम्॥३८॥

किन्तु यमदूतों के द्वारा उन पापियों को लोहे की लाठियों, मुद्‌गरों, तोमरों (भालों), कुन्तों (बर्छियों), गदाओं और मुसलों से बार-बार बहुत पीटा जाता है।।३८।।

ताडनाच्चैव निश्चेष्टा मूर्च्छिताश्च भवन्ति ते।
तथा निश्चेष्टितान् दृष्ट्वा किङ्करास्ते वदन्ति हि॥३९॥

अत्यन्त ताड़ित किये जाने से वे निश्चेष्ट और मूर्च्छित हो जाते हैं। उन्हें निश्चेष्ट हुआ देखकर यमदूत कहते हैं।।३९।।

भो! भो! पापा दुराचाराः किमर्थं दुष्टचेतसः।
सुलभानि च दत्तानि जलान्यन्नान्यपि क्वचित्॥४०॥

अरे रे! दुराचारी पापियों! तुमने दुष्कर्म क्यों किया था? सुलभ होने पर भी तुमने जल और अन्न आदि का दान नहीं दिया था।।४०।।

ग्रासार्द्धमपि नो दत्तं न श्ववायसयोर्बलिम्।
नमस्कृता नाऽतिथयो न कृतं पितृतर्पणम्॥४१॥

तुमने कभी किसी को आधा ग्रास भी भोजन नहीं दिया। न कभी कुत्ते और कौवे को बलि दी। अतिथियों को नमस्कार और भोजन आदि से सम्मानित नहीं किया और न कभी पितरों का तर्पण किया था।।४१।।

यमस्य चित्रगुप्तस्य न कृतं ध्यानमुत्तमम्। न जप्तश्च तयोर्मन्त्रो न भवेद्येन यातना॥४२॥

तुमने कभी यम और चित्रगुप्त का भी उत्तम विधि से ध्यान (स्मरण) नहीं किया और न कभी उनके मन्त्र का जप किया। यदि तुमने यह सब किया होता, तो तुम्हें ऐसी यातना नहीं भोगनी पड़ती।।४२।।

नाापि किञ्चित्कृतं तीर्थं पूजिता नैव देवताः।
गृहाश्रमस्थितेनापि हन्तकारोऽपि नोद्धृतः॥४३॥

न तो तुमने कोई तीर्थ-यात्रा की, न देवताओं की पूजा की। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी तुमने हन्तकार[1] (अतिथि को दिया जाने वाला सोलह ग्रास अन्न) निकाल कर किसी को नहीं दिया।।४३।।

शुश्रूषिताश्च नो सन्तो भुक्ष्व पापफलं स्वयम्।
यतस्त्वं धर्महीनोऽसि ततः सन्ताड्यसे भृशम्॥४४॥

तुमने कभी साधु-सन्तों की भी सेवा नहीं की। अब तुम अपने पाप का फल भोगो। चूँकि तुम धर्महीन हो इसीलिए तुमको खूब पीटा जा रहा है।।४४।।

क्षमापराधं कुरुते भगवान् हरिरीश्वरः। वयं तु सापराधानां दण्डदा हि तदाज्ञया॥४५॥

भगवान् हरि ही ईश्वर हैं—वे ही अपराध को क्षमा करने में समर्थ हैं। हम तो उन्हीं की आज्ञा से अपराधियों को दण्ड देते हैं।।४५।।

एवमुक्त्वा च ते दूता निर्दयं ताडयन्ति तान्। ज्वलदङ्गारसदृशाः पतितास्ताडनादधः॥४६॥

ऐसा कहकर वे यमदूत उन्हें निर्दयतापूर्वक पीटते हैं। उनकी पिटाई से वे पापी [उल्मुक या मशाल में से] जलते हुए अङ्गारे के समान नीचे गिर जाते हैं।।४६।।

पतनात्तस्य पत्रैश्च गात्रच्छेदो भवेत्ततः।
तानधः पतितान् श्वानो भक्षयन्ति रुदन्ति ते॥४७॥

गिरते समय शाल्मली (सेमर) वृक्ष के पत्तों से उनका शरीर कट जाता है। नीचे गिरे हुए उन पापियों को कुत्ते काट खाते हैं और वे पापी [असहाय होकर] रोते रहते हैं।।४७।।

रुदन्तेस्ते ततो दूतैर्मुखमापूर्य रेणुभिः।
निबद्ध्य विविधैः पाशैर्हन्यन्ति केऽपि मुद्गरैः॥४८॥

यमदूत उन रोते हुए पापियों के मुख में धूल भर देते हैं। वे कुछ पापियों को अनेक प्रकार के पाशों से बाँधकर मुद्गरों से मारते हैं।।४८।।

पापिनः केऽपि भिद्यन्ते क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा।
क्षिप्त्वा चाऽन्ये धरापृष्ठे कुठारैः खण्डशः कृताः॥४९॥

कुछ पापियों को आरे से काठ के समान दो टुकड़ों में चीरा जाता है। अन्य कुछ पापियों को धरती में फेंक कर कुल्हाड़ी से उन्हें काटकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं।।४९।।

---

१. अपने घर आये हुए अभ्यागत को हन्तकार, अग्र अथवा भिक्षा प्रदान् करना चाहिए । भिक्षा एक गास अन्न की होती है, चार गास अन्न को अग्र या पुष्कल कहा जाता है तथा सोलह गास का हन्तकार होता है (हन्तः षोडशभिर्ग्रासैः। स्कन्द ४/३५/२०४) ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम्। अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः मार्क०२६/३७; प्रायः यही परिभाषा आगे अध्याय १३ के श्लोक ५६ में भी है। हन्ताकारमथाग्रं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः।।१११।। दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम्।। कूर्म उ० १८/१११-११२

अर्धं खात्वाऽवटे केचिद्भिद्यन्ते मूर्ध्नि सायकैः।
अपरे यन्त्रमध्यस्थाः पीड्यन्ते चेक्ष्वुदण्डवत्॥५०॥

कुछ पापियों को गढ्ढे में आधा (अर्थात् कमर तक) गाड़ कर उनके शिर को बाणों से बींधा जाता है। अन्य कुछ पापियों को [रस निकालने या तेल पेरने के] यन्त्र (कोल्हू) में डालकर ईख की तरह पीड़ित किया (पेरा) जाता है।।५०।।

केचित्प्रज्वलमानैस्तु साङ्गारैः परितो भृशम्।
उल्मुकैर्वेष्टयित्वा च ध्मायन्ते ते लोहपिण्डवत्॥५१॥

कुछ पापियों को चारों ओर से जलते हुए और अङ्गारयुक्त उल्मुकों (जलती लकड़ी की मशालों) से लपेट कर आग में डाले हुए लोहे के पिण्ड की भाँति जलती हुई भट्टी में धौंका जाता है।।५१।।

केचिद्घृतमये पाके तैलपाके तथाऽपरे। कटाहे क्षिप्तवटवत्प्रक्षिप्यन्ते यतस्ततः॥५२॥

किसी को [कढ़ाई में] खौलते घी में तथा किसी को खौलते हुए तेल वाली कढ़ाई में बड़े के समान डालकर इधर-उधर चलाया जाता है।।५२।।

केचिन्मत्तगजेन्द्राणां क्षिप्यन्ते पुरतः पथि।
बद्ध्वा हस्तौ च पादौ च क्रियन्ते केऽप्यधोमुखाः॥५३॥

कुछ पापियों को मार्ग में मतवाले हाथियों के सामने फेंका जाता है और किसी को हाथ-पैर बाँधकर नीचे को मुख करके लटकाया जाता है।।५३।।

क्षिप्यन्ते केऽपि कूपेषु पाप्यन्ते केऽपि पर्वतात्।
निमग्नाः कृमिकुण्डेषु तुद्यन्ते कृमिभिः परे॥५४॥

कुछ को कुएँ में फेंका जाता है, तो कुछ को पहाड़ पर से गिराया जाता है और कुछ को कीड़ों से भरे कुण्ड में डुबाया जाता है, जहाँ उन्हें कीड़े काट कर पीड़ित कर देते हैं।।५४।।

वज्रतुण्डैर्महाकाकैर्गृध्रैरामिषगृध्नुभिः। निष्कृष्यते शिरोदेशे नेत्रे वास्ये च चञ्चुभिः॥५५॥

वज्र के समान चोंच वाले बड़े कौओं और मांस के लोभी गीधों के द्वारा अपनी चोंचों से उनके शिर, नेत्र तथा मुख को खोदकर उनमें से मांस निकाला जाता है।।५५।।

ऋणं वै प्रार्थयत्यन्यो देहि देहि धनं मम।
यमलोके मया दृष्टो धनं मे भक्षितं त्वया॥५६॥

कोई सूदखोर पापी वहाँ ऋणी पापी को देखकर उससे अपने ऋण को वसूलता है, वह कहता है कि मेरा धन देदे। तू मुझे यमलोक में दिखलाई पड़ गया है, तूने मेरा धन खाया है।।५६।।

एवं विवदमानानां पापिनां नरकालये। छित्त्वा संदंसकैर्दूता मांसखण्डान् ददन्ति च॥५७॥

नरक में इस प्रकार विवाद करते हुए पापियों के मांस-खण्डों को यमदूत संड़सियों से काट कर उन्हें देते हैं।।५७।।

एवं संताड्य तान् दूताः संकृष्य यमशासनात्।
तामिस्रादिषु घोरेषु क्षिपन्ति नरकेषु च॥५८॥

इस प्रकार यमदूत उन पापियों को प्रताड़ित करके उन्हें खींचकर यम की आज्ञानुसार उन्हें तामिस्र आदि नरकों में फेंक देते हैं।।५८।।

नरका दुःखबहुलास्तत्र वृक्षसमीपतः। तेष्वस्ति यन्महद्दुःखं तद्वाचामप्यगोचरम्॥५९॥

वहाँ शाल्मली वृक्ष के समीप ही दुःखपूर्ण नरक हैं। उनमें पापियों को जो अत्यन्त दुःख मिलता है, उसका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता।।५९।।

चतुरशीतिलक्षाणि नरकाः सन्ति खेचर!।
तेषां मध्ये घोरतमा धौरेयास्त्वेकविंशतिः॥६०॥

हे आकाशचारी गरुड़! नरकों की कुल संख्या चौरासी लाख है, उनमें से अत्यन्त भयंकर और प्रमुख नरक ये हैं।।६०।।

तामिस्रो लोहशंकुश्च महारौरवशाल्मली।
रौरवः कुड्मलः कालसूत्रकः पूतिमृत्तिकः॥६१॥
संघातो लोहितोदश्च सविषः संप्रपातनः। महानिरयकाकोलौ सञ्जीवनमहापथौ॥६२॥
अवीचिरन्धतामिस्रः कुम्भीपाकस्तथैव च। [१]असिपत्रवनञ्चैव तापनश्चैकविंशतिः॥६३॥

(१) तामिस्र, (२) लोहशङ्कु, (३) महारौरव, (४) शाल्मली, (५) रौरव, (६) कुड्मल, (७) कालसूत्र, (८) पूतिमृत्तिक, (९) संघात, (१०) लोहितोद, (११) सविष, (१२) संप्रपातन, (१३) महानिरय, (१४) काकोल, (१५) संजीवन, (१६) महापथ, (१७) अवीचि, (१८) अन्धतामिस्र, (१९) कुम्भीपाक, (२०) असिपत्रवन और (२१) तापन-ये इक्कीस नरक हैं[२]।।६१-६३।।

नानापीडामयाः सर्वे नानाभेदैः प्रकल्पिताः।
नानापापविपाकाश्च किङ्करौघैरधिष्ठिताः॥६४॥

ये नरक नाना प्रकार की यातना देने वाले हैं, अनेक भेद-प्रभेद या अनेक प्रकार के हैं तथा नाना प्रकार के पापों का फल देने वाले हैं और इनमें यम के दूतों के समूह भरे पड़े हैं।।६४।।

एतेषु पतिता मूढाः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः।
यत्र भुञ्जन्ति कल्पान्तं तास्ता नरकयातनाः॥६५॥

इन नरकों में गिरे हुए मूर्ख और अधर्मी पापी एक कल्प पर्यन्त नाना नारकीय यातनाएँ भोगते हैं।।६५।।

---

१. 'असिपत्रवन' और 'तापन' पाठ गरुडमहापुराण ध०का० प्रे०ख०१९/३३, गरुडमहापुराण उ०८/३३, काशी सं० तथा याज्ञवल्क्य स्मृति ३/२२४ से लिया गया है।

२. गरुडपुराण में नरकों की सूची याज्ञवल्क्य स्मृति३/२२२-२२४ से उद्धृत है जिसमें तीसरे नरक 'महानिरय' के स्थान पर गरुडपुराण में महारौरव पाठ अधिक समीचीन है।

यास्तामिस्रान्धतामिस्रारौरवाद्याश्च यातना।
भुंक्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः॥६६॥

तामिस्र, अन्धतामिस्र और रौरव आदि नरकों की जो यातनाएँ कही गयी हैं, उन्हें नर-नारी पारस्परिक आसक्ति के कारण ही भोगते हैं।।६६।।

एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा। विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम्॥६७॥

इस प्रकार कुटुम्ब का भरण-पोषण करने वाला अथवा केवल अपना ही पेट भरने वाला पापी भी मृत्यु के बाद उस कुटुम्ब तथा अपनी देह को यहीं त्यागकर परलोक में इस प्रकार के फल अर्थात् नारकीय कष्ट को भोगता है।।६७।।

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम्। कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम्॥६८॥

प्राणियों से द्रोह करके पाले-पोषे गये स्थूल शरीर को यहीं त्यागकर मनुष्य अपने पापकर्म को परलोक के पाथेय (सम्बल) के रूप में लेकर अकेला ही अन्धकार पूर्ण नरक में जाता है।।६८।।

दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान्। भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृतद्रव्य इवातुरः॥६९॥

अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण अधर्म से करने वाले पुरुष के पाप के वृत्तान्त को दैव पहले ही नरक में पहुँचा देता है, अतः वहाँ पहुँचने पर वह अपने उस पाप का भोग आतुर होकर उस पुरुष की भाँति करता है, जिसका धन चोरी हो गया हो।।६९।।

केवलेन ह्यधर्मेण कुटम्बभरणोत्सुकः।
याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम्॥७०॥

केवल अधर्म से कुटुम्ब का भरण पोषण करने में उत्सुक रहने वाला मनुष्य अन्धकार के अन्तिम छोर में स्थित (अत्यन्त अन्धकारपूर्ण) अन्धतामिस्र नरक में गिरता है।।७०।।

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः। क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः॥७१॥

इति श्रीरुडपुराणे सारोद्धारे यमयातनानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः॥३॥

मनुष्य-लोक के नीचे जितने नरक हैं तथा उनमें जितनी यातनाएँ हैं, पापी व्यक्ति क्रमशः उन सभी यातनाओं को भोगने (तथा विभिन्न योनियों में क्रमशः जन्म लेने) के पश्चात् शुद्ध होने पर पुनः मर्त्यलोक में मनुष्य योनि में जन्म पाता है।।७१।।

गरुड़पुराण सारोद्धार में यमयातना निरूपण विषयक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।।३।।

❖❖❖

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नरकप्रदपाप निरूपण

गरुड उवाच

कैर्गच्छन्ति महामार्गे वैतरण्यां पतन्ति कैः?।
कैः पापैर्नरके यान्ति तन्मे कथय केशव!॥१॥

गरुड़ बोले—हे केशव! कृपया मुझे यह बतलाइए कि पापी मनुष्य किन पापकर्मों के कारण महाक्लेशप्रद और लम्बे यममार्ग में जाते हैं, किन पापों के कारण वैतरणी में गिरते हैं तथा किन पापों के कारण नरक में गिरते हैं?।।१।।

श्रीभगवानुवाच

सदैवाकर्मनिरताः शुभकर्मपराङ्मुखाः। नरकान्नरकं यान्ति दुखाद्दुःखं भयाद्भयम्॥२॥

श्रीभगवान् बोले-सदैव दुष्कर्मों में संलग्न रहने वाले, शुभकर्म से पराङ्मुख रहने वाले मनुष्य एक नरक के अनन्तर दूसरे नरक तथा एक दुःख के पश्चात् अन्य दुःख और एक भय के बाद पुनः अन्य भय को प्राप्त करते रहते हैं।।२।।

धर्मराजपुरे यान्ति त्रिभिर्द्वारैस्तु धार्मिकाः। पापास्तु दक्षिणद्वारमार्गेणैव व्रजन्ति तत्॥३॥

धर्मराज के पुर में पूर्व, पश्चिम और उत्तर इन तीन दिशाओं में स्थित द्वारों से धार्मिक जन प्रवेश करते हैं, किन्तु पापी उसमें दक्षिण द्वार के मार्ग से जाते हैं।।३।।

अस्मिन्नेव महादुःखे मार्गे वैतरणी नदी। तत्र ये पापिनो यान्ति तानहं कथयामि ते॥४॥

इसी दक्षिण द्वार के महा दुःखद मार्ग में वैतरणी नदी है, उस पुर में जो पापी दक्षिण द्वार से जाते हैं, उनको मैं तुम्हें बतलाता हूँ।।४।।

ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च गोघ्नाश्च बालघातकाः।
स्त्रीघाती गर्भपाती च ये च प्रच्छन्नपापिनः॥५॥

ब्राह्मण की हत्या करने वाले, मद्यपान करने वाले, गोहत्या करने वाले, बाल-हत्या करने वाले, स्त्री-हत्या करने वाले, गुप्त रूप से पाप करने वाले।।५।।

ये हरन्ति गुरोर्द्रव्यं देवद्रव्यं द्विजस्य वा। स्त्रीद्रव्यहारिणो ये च बालद्रव्यहराश्च ये॥६॥

गुरु के धन का हरण करने वाले, देवता के धन का हरण करने वाले, ब्राह्मण के धन का अपहरण करने वाले, स्त्री के धन का हरण करने वाले, बालक के धन का हरण करने वाले।।६।।

ये ऋणं न प्रयच्छन्ति ये वै न्यासापहारकाः।
विश्वासघातका ये च सविषान्नेन मारकाः॥७॥

ऋण लेकर उसे न चुकाने वाले, न्यास (धरोहर) में रखे हुए धन को हड़प लेने वाले, विश्वासघाती, अन्न में विष मिलाकर किसी को मारने वाले।।७।।

दोषग्राही गुणाश्लाघी गुणवत्सु समत्सराः।
नीचानुरागिणो मूढाः सत्सङ्गतिपराङ्मुखाः॥८॥

दूसरों के दोषों को ग्रहण करने वाले, दूसरों के गुणों की प्रशंसा नहीं करने वाले, गुणी व्यक्ति के प्रति डाह रखने वाले, नीच पुरुषों से अनुराग रखने वाले, मूर्ख, सत्सङ्गति से दूर रहने वाले।।८।।

तीर्थ-सज्जन-सत्कर्मगुरुदेवविनिन्दकाः। पुराण-वेद-मीमांसा-न्यायवेदान्तदूषकाः॥९॥

तीर्थों, सज्जनों, सत्कर्मों, गुरुजनों तथा देवों की निन्दा करने वाले, वेद, पुराण, मीमांसा, न्याय और वेदान्त में दोष बताने वाले।।९।।

हर्षिता दुःखितं दृष्ट्वा हर्षिते दुःखदायकाः।
दुष्टवाक्यस्य वक्तारो दुष्टचित्ताश्च ये सदा॥१०॥

दुःखी मनुष्य को देखकर प्रसन्न होने वाले, प्रसन्न (सुखी) मनुष्य को भी दुःखी बनाने वाले, दुर्वचन बोलने वाले, सदा दूषित चित्त वाले।।१०।।

न शृण्वन्ति हितं वाक्यं शास्त्रवार्तां कदापि न।
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा मूढाः पण्डितमानिनः॥११॥

हितकर वचन और शास्त्र की बातों को कभी भी न सुनने वाले, अपने मन से स्वयं अपने को बड़ा समझने वाले, घमण्डी, मूर्ख, कुछ न जानते हुए भी स्वयं को पण्डित मानने वाले।।११।।

एते चान्ये च बहवः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः।
गच्छन्ति यममार्गे हि रोदमाना दिवानिशम्॥१२॥

ये पापी तथा अन्य बहुत-से धर्म-हीन पापी यममार्ग में रात-दिन रोते हुए चलते हैं।।१२।।

यमदूतैस्ताड्यमाना यान्ति वैतरणीं प्रति। तस्यां पतन्ति ये पापास्तानहं कथयामि ते॥१३॥

जो पापी यमदूतों के द्वारा ताड़ित किये जाने पर वैतरणी को प्राप्त करते हैं और उसमें गिरते हैं, उनका वर्णन भी मैं तुमसे करता हूँ।।१३।।

मातरं येऽवमन्यन्ते पितरं गुरुमेव च। आचार्यं चापि पूज्यं च तस्यां मज्जन्ति ते नराः॥१४॥

माता-पिता, गुरु, आचार्य तथा अन्य पूज्यजनों का अपमान करने वाले उस वैतरणी नदी में डूबते हैं।।१४।।

पतिव्रतां साधुशीलां कुलीनां विनयान्विताम्।
स्त्रियं त्यजन्ति ये द्वेषात्वैतरण्यां पतन्ति ते॥१५॥

पतिव्रता, सच्चरित्रवाली, कुलीन और नम्र स्वभाव की स्त्री को द्वेषवश त्यागने वाले वैतरणी में गिरते हैं।।१५।।

सतां गुणसहस्रेषु दोषानारोपयन्ति ये। तेष्ववज्ञां च कुर्वन्ति वैतरण्यां पतन्ति ते॥१६॥

हजारों गुणों वाले सत्पुरुषों में भी दोषारोपण करने वाले तथा उनकी अवहेलना करने वाले भी वैतरणी में गिरते हैं।।१६।।

ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः।
आहूय नास्ति यो ब्रूयात्तयोर्वासश्च सन्ततम्॥१७॥

ब्राह्मण को दान देने का वचन देकर बाद में उसको यथार्थतः (उसी रूप में) न देने वाला तथा ब्राह्मण को दान देने के लिए आमन्त्रित करके भी उसे दान नहीं देने वाला वे दोनों ही वैतरणी में गिर कर सदैव वहीं डूबे रहते हैं।।१७।।

स्वयं दत्ताऽपहर्ता च दानं दत्वाऽनुतापकः।
परवृत्तिहरश्चैव दाने दत्ते निवारकः॥१८॥

स्वयं दिये हुए दान को बाद में वापस लेने वाला, दान देकर पश्चात्ताप करने वाला, दूसरे की आजीविका को छीनने वाला, दिये हुए या दिये जा रहे दान को देने से रुकवाने वाला।।१८।।

यज्ञविध्वंसकश्चैव कथाभङ्गकरश्च यः। क्षेत्रसीमाहरश्चैव यश्च गोचरकर्षकः॥१९॥

[विघ्न उपस्थित करके] यज्ञ को नष्ट करने वाला, कथा में विघ्न डालने वाला, खेत की सीमा को हटा-बढ़ा देने वाला और गोचर भूमि को खेती के लिए जोतने वाला मनुष्य।।१९।।

ब्राह्मणो रसविक्रेता यदि स्याद्वृषलीपतिः।
वेदोक्तयज्ञादन्यत्र स्वात्मार्थं पशुमारकः॥२०॥

[दूध, दही, घी, तेल, गुड़ आदि] रसयुक्त वस्तुओं को बेचने वाला ब्राह्मण, वृषली (अर्थात् शूद्री अथवा अपने पति को त्यागकर परपुरुष-गमन करने वाली नारी[1] या पितृगृह में रजोदर्शन करने वाली कन्या[2]) का पति बनने वाला ब्राह्मण, वेद में बतलाये गये यज्ञ से भिन्न समय में केवल अपने खाने के लिए पशु को मारने वाला ब्राह्मण।।२०।।

ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टो मांसभोक्ता च मद्यपः।
उच्छृङ्खलस्वभावो यः शास्त्राध्ययनवर्जितः॥२१॥

ब्राह्मण के योग्य कर्मों को न करने के कारण भ्रष्ट, मांसभोजी, मद्यपान करने वाला, उच्छृङ्खल स्वभाव का और शास्त्रों का अध्ययन न करने वाला ब्राह्मण।।२१।।

वेदाक्षरं पठेच्छूद्रः कापिलं यः पयः पिबेत्।
धारयेद् ब्रह्मसूत्रं च भवेद् वा ब्राह्मणीपतिः॥२२॥

---

१. स्ववृषं (स्वपतिं) या परित्यज्य परवृषे वृषायते। वृषली सा हि विज्ञेया, न शूद्री वृषली भवेत्। स्कन्द ४/४०/९३; ७/१/२०५/८०

२. पितुर्गेहे च या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता। भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता। भविष्य १/१८२/२४; ४/१०२/१८; स्कन्द ४/४०/३४

वेद पढ़ने वाला शूद्र, कपिला गौ[१] (आम के नव-पल्लव के समान आभा वाली, सुनहरे वर्ण की गौ) का दूध पीने वाला शूद्र, यज्ञोपवीत धारण करने वाला शूद्र तथा ब्राह्मणी स्त्री का पति बनने वाला शूद्र।।२२।।

राजभार्याभिलाषी च परदारापहारकः।
कन्यायां कामुकश्चैव सतीनां दूषकश्च यः॥२३॥

राजा की स्त्री के साथ व्यभिचार की इच्छा करने वाला किसी भी वर्ण का पुरुष, पराई स्त्री का हरण करने वाला, कन्या के साथ कामोपभोग की इच्छा करने वाला और पतिव्रता स्त्रियों के शील को दूषित करने वाला।।२३।।

एते चाऽन्ये च बहवो निषिद्धाचरणोत्सुकाः।
विहितत्यागिनो मूढा वैतरण्यां पतन्ति ते॥२४॥

ये सभी पापी तथा निषिद्ध आचरण करने वाले तथा निषिद्ध आचरण करने के लिए उत्सुक रहने वाले और शास्त्र द्वारा अपने लिए विहित कर्मों को नहीं करने वाले पापी वैतरणी में गिरते हैं।।२४।।

सर्वं मार्गमतिक्रम्य यान्ति पापा यमालये।
पुनर्यमाज्ञयाऽऽगत्य दूतास्तस्यां क्षिपन्ति तान्॥२५॥

यमलोक के समग्र मार्ग को पार करके पापी यम के भवन में पहुँचते हैं और यम की आज्ञा से यमदूत उन्हें पुनः उसी वैतरणी में फेंक देते हैं।।२५।।

या वै धुरन्धरा सर्वधौरेयाणां खगाधिप!।
अतस्तस्यां प्रक्षिपन्ति वैतरण्यां च पापिनः॥२६॥

हे गरुड़! वह वैतरणी सभी प्रमुख (इक्कीस) नरकों की अपेक्षा सर्वाधिक कष्टप्रद है। अतः पापियों को यमदूत उसमें फेंकते हैं।।२६।।

कृष्णा गौर्यदि नो दत्ता नोर्ध्वदेहक्रियाकृताः।
तस्यां भुक्त्वा महद्दुखं यान्ति वृक्षं तटोद्भवम्॥२७॥

जिन मनुष्यों की मृत्यु के पूर्व काली गौ का दान नहीं दिया गया हो तथा मृत्यु के पश्चात् बान्धवों के द्वारा जिनका औद्‌र्ध्वदैहिक कृत्य (अन्त्येष्टि और पिण्डदान आदि) न किये गये हों, वे उस वैतरणी में अत्यन्त कष्ट भोगने के पश्चात् उसके तटवर्ती शाल्मली वृक्ष में जाते हैं।।२७।।

कूटसाक्ष्यप्रदातारः कूटधर्मपरायणाः। छलेनार्जनसंसक्ताश्चौर्यवृत्त्या च जीविनः॥२८॥

झूठी गवाही देने वाले, धर्म-पालन का ढोंग मात्र करने वाले (अथवा वेदबाह्य धर्म का पालन करने वाले), छल-छद्म से धनार्जन करने वाले और चोरी करके अपनी आजीविका चलाने वाले।।२८।।

---

१. नवाम्रपल्लवाभा या पीतनेत्रा सुलक्षणा। सा धेनुः कपिला ज्ञेया साक्षाद् विष्णुस्वरूपिणी। विधानमाला पृ० २८२, साऽसृजत् सौरभेयीस्तु सुरभिर्लोकमातृकाः। सुवर्णवर्णाः कपिलाःप्रजानां वृत्तिधेनवः अनु० पर्व ७७/१८

छेदयन्त्यति वृक्षांश्च वनारामविभञ्जकाः।
व्रतं तीर्थं परित्यज्य विधवाशीलनाशकाः॥२९॥

अत्यधिक वृक्षों को काटने वाले और वन-उपवन तथा बाग-बगीचों को नष्ट करने वाले, व्रत और तीर्थ करना छोड़ कर विधवा स्त्री के शील को नष्ट करने वाले पुरुष।।२९।।

भर्तारं दूषयेन्नारी परं मनसि धारयेत्। इत्याद्याः शाल्मलीवृक्षे भुञ्जते बहुताडनम्॥३०॥

तथा पति के ऊपर दोषारोपण करके मन से पर-पुरुष की कामना करने वाली नारी तथा ऐसे अन्य पापी भी शाल्मली के वृक्ष में जाकर अत्यधिक ताड़ित होते हैं।।३०।।

ताडनात्पतितान् दूताः क्षिपन्ति नरकेषु तान्।
पतन्ति तेषु ये पापास्तानहं कथयामि ते॥३१॥

यमदूतों के द्वारा मारे-पीटे जाने पर वे पापी उस वृक्ष से नीचे गिर पड़ते हैं। तब यमदूत उन्हें नरकों में फेंकते हैं। अब मैं तुम्हें उन पापियों के विषय में बतलाता हूँ, जो उन नरकों में गिरते हैं।।३१।।

नास्तिका भिन्नमर्यादाः कदर्या विषयात्मकाः।
दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै नरकगामिनः॥३२॥

नास्तिक (जो कि वेद को प्रमाण नहीं मानते अथवा ईश्वर पर विश्वास नहीं करते), मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, कदर्य (अर्थात् कञ्जूसी के कारण स्वयं अपने को, धार्मिक कृत्यों को, पुत्र, स्त्री, देवता, अतिथि और भृत्यों को पीड़ित करने वाले कञ्जूस), विषय-भोग में लिप्त रहने वाले, दम्भी और कृतघ्न (अर्थात् दूसरे के द्वारा किये गये उपकार का आभार नहीं मानने वाले) मनुष्य नरक में गिरते हैं।।३२।।

कूपानां च तडागानां वापीनां देवसद्मनाम्। प्रजागृहाणां भेत्तारस्ते वै नरकगामिनः॥३३॥

कुआँ, तालाब, बावड़ी, देवालय तथा प्रजा जनों के घरों को तोड़ने वाले मनुष्य नरक में गिरते हैं।।३३।।

विसृज्याश्नन्ति ये दाराञ्छिशून् भृत्यांस्तथा गुरून्।
उत्सृज्य पितृदेवेज्यां ते वै नरकगामिनः॥३४॥

जो मनुष्य स्त्री, छोटे बच्चों, पालन करने योग्य पारिवारिक जनों तथा नौकरों-चाकरों और गुरुजनों को खिलाये बिना तथा पितृयज्ञ (तर्पण) और देवयज्ञ (देवों के लिए हवन) किये बिना भोजन करते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।३४।।

शंकुभिः सेतुभिः काष्ठैः पाषाणैः कण्टकैस्तथा।
ये मार्गमुपरुन्धन्ति ते वै नरकगामिनः॥३५॥

जो मनुष्य कीलें गाढ़ कर, बाँध बना कर अथवा लकड़ी, पत्थर या काँटे डाल कर मार्ग को रोकते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।३५।।

शिवं शिवां हरिं सूर्यं गणेशं सद्गुरुं बुधम्। न पूजयन्ति ये मन्दास्ते वै नरकगामिनः॥३६॥

जो मूर्ख शिव, पार्वती, विष्णु, सूर्य, गणेश, सदाचारी-सज्जन, गुरु तथा विद्वान् की पूजा नहीं करते वे नरक में गिरते हैं।।३६।।

आरोप्य दासीं शयने विप्रो गच्छेदधोगतिम्।
प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते॥३७॥

दासी को अपने साथ शय्या में सुलाने वाले ब्राह्मण का अधःपतन हो जाता है। शूद्रा में सन्तान उत्पन्न करने वाला ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से हीन (च्युत) हो जाता है।।३७।।

न नमस्कारयोग्यो हि स कदापि द्विजोऽधमः। तं पूजयन्ति ये मूढास्ते वै नरकगामिनः॥३८॥

वह अधम ब्राह्मण नमस्कार के योग्य नहीं है। उसकी पूजा जो मूर्ख करते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।३८।।

ब्राह्मणानां च कलहं गोयुद्धं कलहप्रियाः। न वर्जन्त्यनुमोदन्ते ते वै नरकगामिनः॥३९॥

दूसरों के कलह से प्रसन्न होने वाले जो मनुष्य ब्राह्मणों के कलह तथा गायों अथवा बैलों की लड़ाई को नहीं रुकवाते, अपितु उसका अनुमोदन करते हैं अर्थात् उसको बढ़ावा देते हैं, वे नरक में जाते हैं।।३९।।

अनन्यशरणस्त्रीणामृतुकालव्यतिक्रमम्। ये प्रकुर्वन्ति विद्वेषात्ते वै नरकगामिनः॥४०॥

अन्य किसी भी पुरुष की शरण में न जाने वाली पतिव्रता स्त्रियों के साथ द्वेषवश समागम न करके उनके ऋतुकाल को निष्फल कर देने वाले पति भी नरक में गिरते हैं।।४०।।

येऽपि गच्छन्ति कामान्धा नरा नारीं रजस्वलाम्।
पर्वस्वप्सु दिवा श्राद्धे ते वै नरकगामिनः॥४१॥

जो पुरुष कामान्ध होकर रजस्वलागमन करते हैं, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति जैसे पर्वों की रात्रि में, जल में, दिन में, और स्वयं अपने घर में पितरों का श्राद्ध करने पर या किसी अन्य के श्राद्ध में भोजन के दिन (रात में) स्त्री-समागम करते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।४१।।

ये शारीरं मलं वह्नौ प्रक्षिपन्ति जलेऽपि च। आरामे पथि गोष्ठे वा ते वै नरकगामिनः॥४२॥

जो मनुष्य शरीर के मल (मूत्र, विष्ठा, थूक, मवाद आदि) को अग्नि अथवा जल में फेंकते हैं या बगीचे या मार्ग या गोष्ठ में फेंकते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।४२।।

शस्त्राणां ये च कर्तारः शराणां धनुषां तथा।
विक्रेतारश्च ये तेषां ते वै नरकगामिनः॥४३॥

जो मनुष्य शस्त्रों, बाणों तथा धनुषों का निर्माण तथा विक्रय करते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।४३।।

चर्मविक्रयिणो वैश्याः केशविक्रयकाः स्त्रियः।
विषविक्रयिणः सर्वे ते वै नरकगामिनः॥४४॥

चमड़ा बेचने वाले वैश्य, केश (अर्थात् भग) बेचने वाली (व्यभिचारणी) स्त्रियाँ तथा विष को बेचने वाले व्यापारी आदि सभी लोग नरक में गिरते हैं।।४४।।

अनाथं नाऽनुकम्पन्ति ये सतां द्वेषकारकाः।
विनाऽपराधं दण्डन्ति ते वै नरकगामिनः॥४५॥

जो मनुष्य अनाथ पर दया नहीं करते, सत्पुरुषों से द्वेष करते हैं तथा जो शासक अपराध के विना भी दण्ड देते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।४५।।

आशया समनुप्राप्तान्ब्राह्मणानर्थिनो गृहे।
न भोजयन्ति पाकेऽपि ते वै नरकगामिनः॥४६॥

आशा लगाकर घर में आये हुए ब्राह्मणों, अतिथियों तथा याचकों को रसोई तैयार होने पर भी भोजन नहीं कराने वाले नरक में गिरते हैं।।४६।।

सर्वभूतेष्वविश्वस्तास्तथा तेषु विनिर्दयाः। सर्वभूतेषु जिह्मा ये ते वै नरकगामिनः॥४७॥

जो मनुष्य किसी भी प्राणी में विश्वास नहीं करते तथा जो सभी प्राणियों के प्रति निर्दय और कुटिल हैं, वे नरक में जाते हैं।।४७।।

नियमान्समुपादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः।
विग्लापयन्ति तान् भूयस्ते वै नरकगामिनः॥४८॥

जो मनुष्य स्वयं ही जप (सन्ध्या वन्दन आदि), तप (कृच्छचान्द्रायण आदि व्रत) सम्बन्धी नियमों को संकल्प पूर्वक ग्रहण करके तत्पश्चात् में इन्द्रियों में संयम नहीं रख पाने के कारण उन्हें त्याग देते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।४८।।

अध्यात्मविद्यादातारं नैव मन्यन्ति ये गुरुम्। तथा पुराणवक्तारं ते वै नरकगामिनः॥४९॥

जो मनुष्य अध्यात्म विद्या का ज्ञान देने वाले तथा पुराण को सुनाने वाले गुरु का सम्मान नहीं करते, वे नरक में गिरते हैं।।४९।।

मित्रद्रोहकरा ये च प्रीतिच्छेदकराश्च ये। आशाच्छेदकरा ये च ते वै नरकगामिनः॥५०॥

जो मनुष्य मित्र से द्रोह करते हैं, दो प्रेमियों की पारस्परिक प्रीति को समाप्त करते हैं अथवा किसी की आशा को तोड़ते हैं, वे भी नरक में जाते हैं।।५०।।

विवाहं देवयात्रां च तीर्थसार्थान्विलुम्पति। स वसेन्नरके घोरे तस्मान्नावर्तनं पुनः॥५१॥

जो मनुष्य विवाह और देवयात्रा में विघ्न डालता है तथा जो तीर्थयात्रियों के समूह को लूटता है, वह घोर नरक में रहता है और उसमें से फिर कभी भी नहीं लौट पाता।।५१।।

अग्निं दद्यान्महापापी गृहे ग्रामे तथा वने। स नीतो यमदूतैश्च वह्निकुण्डेषु पच्यते॥५२॥

जो महापापी किसी के घर में, ग्राम में तथा वन में आग लगाता है, उसे यमदूत नरक में ले जाकर अग्नि-कुण्डों में पकाते हैं।।५२।।

अग्निना दग्धगात्रोऽसौ यदा छायां प्रयाचते। नीयते च तदा दूतैरसिपत्रवनान्तरे॥५३॥

अग्नि से शरीर जल जाने पर जब वह छाया की माँग करता है, तो यमदूत उसे असिपत्र-वन के अन्दर पहुँचा देते हैं।।५३।।

खड्ग-तीक्ष्णैश्च तत्पत्रैर्गात्रच्छेदो यदा भवेत्।
तदोचुः शीतलच्छाये सुखनिद्रां कुरुष्व भो!॥५४॥

वहाँ तलवार के समान तीखे पत्तों से जब उसका शरीर कट जाता है, तब यमदूत उससे कहते हैं— अरे पापी! इस शीतल छाया में तुम सुख की नींद लेने के लिए शयन करो।।५४।।

पानीयं पातुमिच्छन्वै तृषार्तो यदि याचते। पानार्थं तैलमत्युष्णं तदा दूतैः प्रदीयते॥५५॥

प्यास से पीड़ित होने पर जब वह पीने की इच्छा से पानी माँगता है, तो उसे यमदूतों के द्वारा अत्यन्त गरम तेल पीने के लिए दिया जाता है।।५५।।

पीयतां भुज्यतां पानमन्नमूचुस्तदेति ते। पीतमात्रेण तेनैव दग्धान्त्रा निपतन्ति ते॥५६॥

तब वे यमदूत कहते हैं—पानी पियो और अन्न खाओ। उस (गरम तेल) के पीते ही उनकी आँतें जल जाती हैं और वे गिर पड़ते हैं।।५६।।

कथञ्चित्पुनरुत्थाय प्रलपन्ति सुदीनवत्।
विवशा उच्छ्वसन्तश्च ते वक्तुमपि नाशकन्॥५७॥

किसी प्रकार फिर से उठकर वे अत्यन्त दीन होकर विलाप करते हैं। वे विवश होकर केवल उच्छ्वास (लम्बी सांस) लेते रहते हैं और कुछ कहने की सामर्थ्य भी उनमें नहीं रहती है।।५७।।

इत्येवं बहुशस्तार्क्ष्य यातनाः पापिनां स्मृताः।
किमेतैर्विस्तरात्प्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः॥५८॥

हे गरुड़! इस प्रकार पापियों की बहुत-सी यातनाएँ बतलाई गई हैं। उनको विस्तार से कहने से क्या लाभ? उनका वर्णन तो इतिहास, पुराण और स्मृति आदि सभी शास्त्रों में किया ही गया है।।५८।।

एवं वै क्लिश्यमानास्ते नरा नार्यः सहस्रशः। पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम्॥५९॥

इस प्रकार क्लेश भोगते हुए हजारों नर-नारियों को घोर नरक में प्रलय पर्यन्त सन्तप्त किया जाता है।।५९।।

तत्राऽक्षयं फलं भुक्त्वा तत्रैवोत्पद्यते पुनः।
यमाज्ञया महीं प्राप्य भवन्ति स्थावरादयः॥६०॥

पापी जन नरक में अपने पाप का अक्षय फल भोग कर पुनः वहीं पर जन्मग्रहण करते हैं। यम की आज्ञा से पृथिवी में आकर पापी स्थावर आदि की योनियों को प्राप्त करते हैं।।६०।।

वृक्ष-गुल्म-लता-वल्ली-गिरयश्च तृणानि च।
स्थावरा इति विख्याता महामोहसमावृताः॥६१॥

वृक्ष, गुल्म (झाड़ी), लता, वल्ली (बेल), तृण (घास) और पर्वतों को स्थावर कहा जाता है और ये सब महामोह से आवृत (ढ़के) रहते हैं।।६१।।

कीटाश्च पशवश्चैव पक्षिणश्च जलेचराः। चतुरशीतिलक्षेषु कथिता देवयोनयः॥६२॥

[वृक्ष, गुल्म, लता आदि स्थावर तथा] कीड़े, पशु, पक्षी, जलचर तथा देवयोनियों के प्राणियोंसहित कुल मिलाकर चौरासी लाख योनियाँ कही गयी हैं।।६२।।

एताः सर्वाः परिभ्रम्य ततो यान्ति मनुष्यताम्।
मानुष्येऽपि श्वपाकेषु जायन्ते नरकागताः।
तत्रापि पापचिह्नैस्ते भवन्ति बहुदुःखिताः॥६३॥

[नरक से आये हुए पापी] इन सभी चौरासी लाख योनियों में क्रमशः उत्पन्न होने के पश्चात् मनुष्य योनि में आते हैं। मनुष्य योनि में भी वे सर्वप्रथम चाण्डाल योनि में पैदा होते हैं। उसमें भी वे पापचिह्नों (कोढ़ आदि) से युक्त तथा अत्यन्त दुःखी होते हैं।।६३।।

गलत्कुष्ठाश्च जन्मान्धा महारोगसमाकुलाः।
भवन्त्येवं नरा नार्यः पापचिह्नोपलक्षिताः॥६४॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे नरकप्रदपापनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥
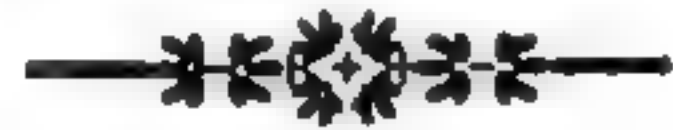
पापचिह्नों से युक्त नर-नारी महा गलित कुष्ठी [कोढ़ से गलते हुए अङ्गों वाले] जन्मान्ध या किसी महारोग से युक्त होते हैं।।६४।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में नरकप्रदपापनिरुपण नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ।।४।।

❖❖❖

अथ पञ्चमोऽध्यायः

पापचिह्न निरूपण

गरुड उवाच

येन येन च पापेन यद्यच्चिह्नं प्रजायते। यां यां योनि च गच्छन्ति तन्मे कथय केशव!॥१॥

गरुड़ बोले-हे केशव! जिस-जिस पाप को करने से शरीर में जो-जो चिह्न होता है और जिस-जिस पाप से पापी जिस-जिस योनि में जाता है, वह सब मुझे बतलाइए।।१।।

श्रीभगवानुवाच

यैः पापैर्यान्ति यां योनिं पापिनो नरकागताः।
येन पापेन यच्चिह्नं जायते मम तच्छृणु॥२॥

श्रीभगवान् बोले—नरक भोगकर आये हुए पापी अपने जिस पाप से जिस योनि में जाते हैं और जिस पाप से उनके शरीर में जो चिह्न होता है, वह मुझ से सुनो।।२।।

ब्रह्महा क्षयरोगी स्याद् गोघ्नः स्यात्कुब्जको जडः।
कन्याघाती भवेत्कुष्ठी त्रयश्चाण्डालयोनिषु॥३॥

ब्रह्महत्या करने वाला महापापी नरक भोगने के पश्चात् पुनर्जन्म में क्षयरोगी होता है, गोहत्या करने वाला कुबड़ा तथा जड (मूर्ख) होता है, कन्या की हत्या करने वाला कोढ़ी होता है और ये तीनों ही चाण्डाल योनि में उत्पन्न होते हैं।।३।।

स्त्रीघाती गर्भपाती च पुलिन्दो रोगवान् भवेत्।
अगम्यागमनात्षण्ढो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः॥४॥

स्त्री की हत्या करने वाला और गर्भपात करने वाला पापी व्यक्ति पुलिन्द जाति (एक जंगली जाति) में उत्पन्न होकर) रोगी होता है। अगम्यागमन (अर्थात् जिस स्त्री के साथ संभोग निषिद्ध है, उसके साथ समागम) करने वाला पापी नपुंसक होता है और गुरु (जन्मदाता, विद्यादाता आदि) की स्त्री के साथ संभोग करने वाला चर्मरोग से पीड़ित होता है।।४।।

मांसभोक्ताऽतिरक्ताङ्गः श्यावदन्तस्तु मद्यपः।
अभक्ष्यभक्षको लौल्याद्ब्राह्मणः स्यान्महोदरः॥५॥

मांस खाने वाले ब्राह्मण का रंग अत्यन्त लाल होता है, मद्यपान करने वाला ब्राह्मण काले दाँतों वाला होता है, चपलता या स्वादिष्ट खाने के लोभवश अभक्ष्यभक्षण करने वाला ब्राह्मण बड़े पेट (तौंद) वाला होता है।।५।।

अदत्त्वा मिष्टमश्नाति स भवेद्गलगण्डवान्।
श्राद्धाऽन्नमशुचिं दत्त्वा श्वित्रकुष्ठी प्रजायते॥६॥

दूसरों को दिये विना मिष्टान्न आदि खाने वाला गलगण्ड (गण्डमाला) नामक रोग से युक्त होता है। श्राद्ध में अशुद्ध अन्न देने वाला चित्रकुष्ठी (सफेद कोढ़ से युक्त) होता है।।६।।

गुरोर्गर्वेणावमानादपस्मारी भवेन्नरः। निन्दको वेदशास्त्राणां पाण्डुरोगी भवेद्ध्रुवम्॥७॥

अभिमानवश गुरु का अपमान करने वाला मनुष्य अपस्मार (मृगी) रोग से पीड़ित होता है। वेद और शास्त्रों की निन्दा करने वाला पाण्डुरोग (पीलिया) से पीड़ित होता है।।७।।

कूटसाक्षी भवेन्मूकः काणः स्यात्पंक्तिभेदकः।
अनोष्ठः स्याद्विवाहघ्नो जन्मान्धः पुस्तकं हरेत्॥८॥

मिथ्या साक्ष्य (झूठी गवाही) देने वाला गूँगा होता है, एक पंक्ति में भोजन के लिए बैठे हुए लोगों को भेद-भाव पूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन देने वाला काना होता है। किसी के विवाह में बाधा डालकर उसे न होने देने वाला ओष्ठरहित अर्थात् विना होंठ का होता है और पुस्तक चुराने वाला जन्मान्ध होता है।।८।।

गोब्राह्मणपदाघातात्खञ्जः पङ्गुश्च जायते।
गद्गदोऽनृतवादी स्यात्तच्छ्रोता बधिरो भवेत्॥९॥

गौ तथा ब्राह्मण को एक पैर से लात मारने वाला खञ्ज अर्थात् एक पैर से लँगड़ा और दोनों पैरों से लात मारने पर पङ्गु अर्थात् दोनों पैरों से लँगड़ा होता है। झूठ बोलने वाला गूँगा होता है और झूठी बात सुनने वाला बहिरा होता है।।९।।

गरदः स्याज्जडोन्मत्तः खल्वाटोऽग्निप्रदायकः।
दुर्भगःपलविक्रेता रोगवान् परमांसभुक्॥१०॥

विष देने वाला पापी जड (मूर्ख) और उन्मत्त (पागल) होता है, आग लगाने वाला गञ्जा होता है। मांस विक्रेता अभागा होता है और दूसरे का मांस खाने वाला रोगी होता है।।१०।।

हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः। कुनखी स्वर्णहर्ता स्याद्धातुमात्रहरोऽधनः॥११॥

रत्नों की चोरी करने वाला हीनजाति में उत्पन्न होता है, सोने की चोरी करने वाला कुनखी अर्थात् खराब और बिगड़े हुए नाखूनों वाला होता है और किसी भी धातु को चुराने वाला निर्धन होता है।।११।।

अन्नहर्ता भवेदाखुः शलभो धान्यहारकः।
चातको जलहर्ता स्याद्विषहर्ता च वृश्चिकः॥१२॥

अन्न की चोरी करने वाल चूहा होता है, [१]धान्य (अर्थात् छिलके युक्त अनाज, जैसे धान आदि) की चोरी करने वाला शलभ (पतङ्गा या टिड्डी) होता है, जल की चोरी करने वाला चातक होता है और विष की चोरी करने वाला बिच्छू होता है।।१२।।

शाकं पत्रं शिखी हृत्वा गन्धांश्छुच्छुन्दरी शुभान्।
मधु दंशः पलं गृध्रो लवणं च पिपीलिका॥१३॥

साग-पात चुराने वाला मोर होता है, शुभ गन्ध वाली वस्तुओं की चोरी करने वाला छछून्दर होता है, मधु चुराने वाला डाँस होता है, मांस चुराने वाला गीध होता है और नमक की चोरी करने वाला चींटी की योनि में पैदा होता है।।१३।।

ताम्बूलफलपुष्पादिहर्ता स्याद्वानरो वने। उपानत्तृणकार्पासहर्ता स्यान्मेषयोनिषु॥१४॥

पान, फल और फूल आदि की चोरी करने वाला वन में बन्दर होता है। जूता, घास और कपास में से किसी भी वस्तु की चोरी करने वाला मेष (भेड़) की योनि में जन्म लेता है।।१४।।

यश्च रौद्रोपजीवी च मार्गे सार्थान्विलुम्पति।
मृगयाव्यसनी यस्तु छागः स्याद्वधिकगृहे॥१५॥

हिंसा और लूटपाट से जीविका चलाने वाला जो पापी मार्ग में व्यापारियों अथवा यात्रियों के समूह को लूटता है तथा जो मनुष्य मृगया का व्यसनी (अर्थात् आखेट का शौकीन) है, वह वधिक (कसाई) के घर में बकरा होता है।।१५।।

यो मृतो विषपानेन कृष्णसर्पो भवेद्गिरौ।
निरंकुशस्वभावः स्यात्कुञ्जरो निर्जने वने॥१६॥

१. सस्यं क्षेत्रगतं प्रोक्तं सतुषं धान्यमुच्यते। निस्तुषः तण्डुलः प्रोक्तः स्विन्नमन्नमुदाहृतम्।।

विषपान करके मरने वाला पहाड़ में काला सर्प होता है। निरंकुश स्वभाव का मनुष्य निर्जन वन में हाथी होता है।।१६।।

वैश्वदेवमकर्तारः सर्वभक्षाश्च ये द्विजाः।
अपरीक्षितभोक्तारो व्याघ्राः स्युर्निर्जने वने॥१७॥

जो ब्राह्मण बलि-वैश्वदेव आदि नहीं करते और [भक्ष्याभक्ष्य का विचार छोड़ कर] सब कुछ खा लेते हैं और जो द्विजाति किसी भोज्य पदार्थ को जाँचे-परखे विना खा लेते हैं, वे निर्जन वन में बाघ होते हैं।।१७।।

गायत्रीं न स्मेरद्यस्तु यो न सन्ध्यामुपासते।
अन्तर्दुष्टो बहिः साधुः स भवेद्ब्राह्मणो बकः॥१८॥

जो ब्राह्मण गायत्री मन्त्र को विस्मृत कर देता है, जो सन्ध्या-वन्दन नहीं करता तथा हृदय से दूषित मनोवृत्ति वाला होने पर भी बाहर से सज्जन होने का प्रदर्शन करता है, वह बगुला होता है।।१८।।

अयाज्ययाजको विप्रः स भवेद्ग्रामसूकरः।
खरो वै बहुयाजित्वात्काकोऽनिर्मन्त्रभोजनात्॥१९॥

जिनका यज्ञ नहीं करना चाहिए, उनका यज्ञ करने वाला ब्राह्मण गाँव में सूअर होता है। [दक्षिणा के लोभ से] अनेक यजमानों का यज्ञ करने वाला गधा होता है। अमृतोपस्तरणं० आदि मन्त्रों को पढ़े विना (अथवा विना निमन्त्रण पाये किसी भोज में) भोजन करने वाला कौआ होता है।।१९।।

पात्रे विद्यामदाता च बलीवर्दो भवेद्द्विजः।
गुरुसेवामकर्ता च शिष्यः स्याद्गोखरः[1] पशुः॥२०॥

योग्य शिष्य को विद्या न देने वाला ब्राह्मण बैल होता है और जो शिष्य गुरु की सेवा नहीं करता वह गो-खर (बैल और गधा) जैसे पशुओं की योनि को प्राप्त करता है।।२०।।

गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः॥२१॥

गुरु के प्रति हुँकार (हुं) और तुंकार (अर्थात् तू-तू जैसे अपशब्दों का प्रयोग) करने वाला तथा ब्राह्मण को वाद-विवाद में पराजित करने वाला पापी निर्जन वन-प्रदेश में ब्रह्मराक्षस होता है।।२१।।

प्रतिश्रुतं द्विजे दानमदत्त्वा जम्बुको भवेत्।
सतामसत्कारकरः फेत्कारोऽग्निमुखो भवेत्॥२२॥

[जो मनुष्य] ब्राह्मण को दान देने का वचन देकर भी नहीं देता वह सियार होता है। सत्पुरुषों का अनादर करने वाला पापी मुख से आग उगलने वाला फेत्कार (सियार) होता है।।२२।।

मित्रध्रुग्गिरिगृध्रः स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात्।
वर्णाश्रमपरीवादात्कपोतो जायते वने॥२३॥

---

१. प्रणमेद् दण्डवद् भूमौवाश्वचाण्डालगोखरम्। भाग ११/२९/१६ में भी 'गोखरम' का तात्पर्य भी बैल एवं गधा ही है।

मित्र से द्रोह करने वाला पर्वत में गीध होता है, क्रय-विक्रय में धोखाधड़ी करने वाला उल्लू होता है और वर्णाश्रम व्यवस्था की निन्दा करने वाला वन में कबूतर होता है।।२३।।

आशाच्छेदकरो यस्तु स्नेहच्छेदकरस्तु यः।
यो द्वेषात् स्त्री-परित्यागी चक्रवाकश्चिरं भवेत्॥२४॥

जो किसी की आशा को तोड़ता है, जो किसी के प्रेम को तोड़ता है और जो द्वेष के कारण अपनी स्त्री का त्याग कर देता है, वह चिरकाल तक चकोर (चकवा) होता है।।२४।।

मातृपितृगुरुद्वेषी भगिनीभ्रातृवैरकृत्।
गर्भे योनौ विनष्टः स्याद् यावद्योनिसहस्रशः॥२५॥

माता-पिता अथवा गुरु से द्वेष करने वाला तथा भाई-बहनों से वैर करने वाला पापी हजारों जन्मों तक गर्भ में ही नष्ट होता रहता है अथवा योनि के अन्दर ही मरता रहता है।।२५।।

श्वश्रोर्गालिप्रदा[१] नारी नित्यं कलहकारिणी।
सा जलौका च यूका स्याद्भर्तारं भर्त्सते च या॥२६॥

अपने सास-ससुर को गाली देने वाली तथा नित्य कलह करने वाली नारी जोंक होती है और अपने पति की भर्त्सना करने वाली अर्थात् पति को धिक्कारने या झिड़कने वाली नारी जूँ होती है।।२६।।

स्वपतिं च परित्यज्य परपुंसानुवर्तिनी।
वल्गुली गृहगोधा स्याद् द्विमुखी वाऽथ सर्पिणी॥२७॥

अपने पति को त्याग कर परपुरुष का सेवन करने वाली नारी वल्गुली (गीदड़ी या चमगीदड़ी), छिपकली अथवा दो मुखों वाली नागिन (सर्पिणी) होती है।।२७।।

यः स्वगोत्रोपघाती व स्वगोत्रस्त्रीनिषेवणात्।
तरक्षः शल्लको भूत्वा ऋक्षयोनिषु जायते॥२८॥

अपने गोत्र की स्त्री के साथ मैथुन करके अपने गोत्र को भ्रष्ट करने वाला पापी क्रमशः लकड़बग्घा, शल्लक (साही) और रीछ की योनियों में जन्म लेता है।।२८।।

तापसीगमनात्कामी भवेन्मरुपिशाचकः। अप्राप्तयौवनासङ्गाद् भवेदजगरो वने॥२९॥

तपस्विनी (भिक्षुणी) के साथ संभोग करने वाला कामुक पुरुष मरुस्थल (रेगिस्तान) में पिशाच होता है और जो स्त्री युवती या ऋतुमती नहीं हुई हो, उसके साथ संभोग करने वाला पुरुष वन में अजगर होता है।।२९।।

गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेन्नरः। राज्ञीं गत्वा भवेदुष्ट्रो मित्रपत्नीं च गर्दभः॥३०॥

गुरु (जन्मदाता अथवा विद्यादाता) की स्त्री के साथ कामोपभोग की इच्छा करने वाला कृकलास (गिरगिट या विषखोपड़ा) होता है। रानी तथा मित्र की पत्नी के साथ सम्भोग करने वाला दुष्ट मनुष्य गधा होता है।।३०।।

---

१. सम्पादित पाठ निर्णसागर की प्रति का है। पाठन्तर श्वश्रोऽपशब्ददा।

गुदगो विड्वराहः स्याद् वृषः स्याद् वृषलीपतिः।
महाकामी भवेद्यस्तु स्यादश्वः कामलम्पटः॥३१॥

गुदामैथुन करने वाला विष्ठाभोजी वराह होता है। वृषली (शूद्री) का पति वृषभ अर्थात् बैल होता है। अत्यन्त कामी मनुष्य कामलम्पट (कामुक) घोड़ा होता है।।३१।।

मृतस्यैकादशाहं तु भुञ्जानः श्वा विजायते।
लभेद्देवलको विप्रो योनिं कुक्कुटसंज्ञकाम्॥३२॥

मृतकाशौच वाले के घर में एकादशाह तक भोजन करने वाला कुत्ता होता है और देवलक (देव सम्बन्धी धन को खाने वाला) ब्राह्मण मुर्गे की योनि को प्राप्त करता है।।३२।।

द्रव्यार्थं देवतापूजां यः करोति द्विजाधमः। स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः॥३३॥

जो अधम ब्राह्मण धनप्राप्ति के लिए देव-पूजा करता है, वह देवलक कहलाता है। ऐसा ब्राह्मण हव्य अर्थात् देवकार्य और कव्य अर्थात् पितृकार्य में गर्हणीय (त्याज्य) है।।३३।।

महापातकजान् घोरान्नरकान् प्राप्य दारुणान्।
कर्मक्षये प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह॥३४॥

महापापी अपने द्वारा किये हुए महापापों के फलस्वरूप घोर और दारुण नरकों को प्राप्त करके [वहाँ प्राप्त नाना यातनाओं से] पापकर्मों का क्षय हो जाने पर पुनः इस लोक में जन्म ग्रहण करते हैं।।३४।।

खरोष्ट्रमहिषीणां हि ब्रह्महा योनिमृच्छाति।
वृकश्वानशृगालानां सुरापा यान्ति योनिषु॥३५॥

ब्रह्महत्या करने वाला गधा, ऊँट और भैंस की योनि पाता है। सुरा (मद्य) पीने वाले भेड़िया, कुत्ता और सियार की योनि पाते हैं।।३५।।

कृमिकीपतंगत्वं स्वर्णस्तेयी समाप्नुयात्। तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः॥३६॥

सोने की चोरी करने वाला कीड़ा-मकोड़ा, पतङ्गा आदि की योनि पाता है, गुरुतल्पग (गुरु की पत्नी के साथ दुष्कर्म करने वाला) क्रमशः तृण (घास), गुल्फ (झाड़ी-झुरमुट) और लता की योनि पाता है।।३६।।

परस्य योषितं हृत्वा न्यासापहरणेन च। ब्रह्मस्वहरणाच्चैव जायते ब्रह्मराक्षसः॥३७॥

परस्त्रीहरण, न्यास (धरोहर) का हरण तथा ब्राह्मण के धन का हरण करने वाला ब्रह्मराक्षस होता है।।३७।।

ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम्।
बलात्कारेण चौर्येण दहत्याचन्द्रतारकम्॥३८॥

ब्राह्मण का धन प्रेमवश खाने पर भी कुल की सात पीढ़ियों तक के पुरुषों को जला देता है और वही धन यदि बलात् छीन कर अथवा चोरी से खाया जाता है, तो वह धन खाने वाले के कुल को चन्द्रमा और तारों की स्थिति रहने तक अर्थात् सदा के लिए जला देता है।।३८।।

लोहचूर्णाश्मचूर्णं च विषं च जरयेन्नरः।
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति?॥३९॥

मनुष्य लोहे के चूर्ण को तथा पत्थर के चूर्ण को और यहाँ तक कि विष को भी पचा सकता है, किन्तु तीनों लोकों में ब्राह्मण के धन को कौन पुरुष पचा सकता है?।।३९।।

ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च। युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा॥४०॥

ब्राह्मण के धन से पाले-पोसे गये वाहन और सैन्य-बल युद्धकाल में, बालू से बाँधे गये बाँध के समान नष्ट हो जाते हैं।।४०।।

देवद्रव्योपभोगेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥४१॥

देवता के धन के उपभोग, ब्राह्मण के धन के अपहरण तथा ब्राह्मण के अतिक्रमण से कुलों का पतन (अथवा नाश) हो जाता है।।४१।।

स्वमाश्रितं परित्यज्य वेदशास्त्रपरायणम्।
अन्येभ्यो दीयते दानं कथ्यतेऽयमतिक्रमः॥४२॥

अपने आश्रित या अपने द्वारा अपनाये गये ब्राह्मण के वेदशास्त्र-परायण होने पर भी उसे त्याग कर अन्य ब्राह्मणों को दान देना ही ब्राह्मण का अतिक्रमण कहलाता है।।४२।।

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥४३॥

वेदाध्ययन-रहित ब्राह्मण को त्यागकर अन्य वेदशास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को दान देने में ब्राह्मण का अतिक्रमण नहीं होता, क्योंकि जलती हुई अग्नि को त्यागकर भस्म में हवन नहीं किया जाता।।४३।।

अतिक्रमे कृते तार्क्ष्य भुक्त्वा च नरकान् क्रमात्।
जन्मान्धः सन्दरिद्रः स्यान्नदाता किन्तु याचकः॥४४॥

हे गरुड़! ब्राह्मण का अतिक्रमण करने वाला क्रमशः अनेक नरकों को भोग कर मनुष्य योनि पाने पर जन्मान्ध और दरिद्र होता है, जो कि कभी दाता (दान देने वाला) नहीं हो पाता, अपितु सदा याचक ही बना रहता है।।४४।।

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम्।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥४५॥

जो अपने द्वारा दान दी गई अथवा दूसरे द्वारा दी गई भूमि को छीन लेता है, वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा में कीड़ा होता है।।४५।।

स्वयमेव च यो दत्त्वा स्वयमेवापकर्षति। स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥४६॥

जो पापी स्वयं अपने द्वारा दी गई भूमि या अन्य वस्तु को स्वयं छीन लेता है, वह प्रलय पर्यन्त नरक में रहता है।।४६।।

दत्त्वा वृत्तिं भूमिदानं यत्नतः परिपालयेत्।
न रक्षति हरेद्यस्तु स पङ्गुः श्वाऽभिजायते॥४७॥

ब्राह्मण को वृत्ति (आजीविका) के साधन रूप में भूमि का दान देकर उस भूमि की रक्षा करे। यदि दानदाता उसकी रक्षा नहीं करता और उसे छीन लेता है, वह लँगड़ा कुत्ता होता है।।४७।।

विप्रस्य वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलं भवेत्।
विप्रस्य वृत्तिहरणान्मर्कटः श्वा कपिर्भवेत्॥४८॥

ब्राह्मण को वृत्ति अर्थात् आजीविका प्रदान करने से एक लाख गायों के दान के तुल्य फल प्राप्त होता है और ब्राह्मण की वृत्ति का हरण करने वाला बन्दर, कुत्ता तथा लंगूर की योनि पाता है।।४८।।

एवमादीनि चिह्नानि योनयश्च खगेश्वर!।
स्वकर्मविहिता लोके दृश्यन्तेऽत्र शरीरिणाम्॥४९॥

हे पक्षिराज! यह चिह्न तथा योनियाँ इस लोक में देहधारियों को अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं।।४९।।

एवं दुष्कर्मकर्तारो भुक्त्वा निरययातनाम्। जायन्ते पापशेषेण प्रोक्तास्वेतासु योनिषु॥५०॥

इस प्रकार दुष्कर्म (पाप) करने वाले मनुष्य नरक में यातना भोगने के पश्चात् शेष रह गये पाप के कारण इन ऊपर कही हुई योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं।।५०।।

ततो जन्मसहस्रेषु प्राप्ततिर्यक्शरीरताम्। दुःखानि भारवहनोद्भवादीनि लभन्ति ते॥५१॥

नरकयातना भोगने के पश्चात् पापी हजारों जन्मों तक पशुओं का शरीर धारण करते हैं। वे [घोड़ा, गधा, ऊँट, बैल आदि पशु बन कर] भार ढोने आदि से होने वाले दुःखों को प्राप्त करते हैं।।५१।।

पक्षिदुःखं ततो भुक्त्वा वृष्टिशीतातपोद्भवम्।
मानुषं लभते पश्चात्समीभूते शुभाऽशुभे॥५२॥

उसके बाद पक्षी बनकर वर्षा, शीत और धूप से होने वाले दुःखों का अनुभव करते हैं। इस प्रकार शुभ और अशुभ (पुण्य और पाप) के समान हो जाने पर जीव अन्ततः मनुष्य योनि प्राप्त करता है।।५२।।

स्त्रीपुंसोस्तु प्रसंगेन भुक्त्वा गर्भे क्रमादसौ।
गर्भादिमरणान्तं च प्राप्य दुःखं म्रियेत्पुनः॥५३॥

स्त्री-पुरुष के समागम के फलस्वरूप जीव गर्भ में आता है और गर्भ में आने से लेकर मृत्यु पर्यन्त आजीवन दुःख पाते हुए वह पुनः मर जाता है।।५३।।

समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते सर्वदेहिनाम्। एवं प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे॥५४॥

कालाक्रमानुसार सभी शरीर धारियों का जन्म और मृत्यु होती रहती है। यह जन्म-मृत्यु का चक्र [अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज] चारों प्रकार के प्राणि-समूह में चलता रहता है।।५४।।

घटीयन्त्रं यथा मर्त्या भ्रमन्ति मम मायया। भूमौ कदाचिन्नरके कर्मपाशसमावृताः॥५५॥

कर्मों के पाश (जाल) से बँधे हुए सभी मनुष्य मेरी (अर्थात् भगवान् विष्णु की) माया के प्रभाव से कभी भूलोक में तो कभी नरक में घटीयन्त्र (रहट) के समान घूमते रहते हैं।।५५।।

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरके प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥५६॥

दान न देने से मनुष्य दरिद्र होता है, दरिद्र हो जाने पर पाप करता है, पाप के फलस्वरूप नरक में गिरता है और तब पुनर्जन्म में भी दरिद्र और पुनः पापी होता रहता है।।५६।।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प-कोटिशतैरपि॥५७॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापचिह्ननिरूपणो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

मनुष्य को अपने द्वारा किया हुआ शुभाशुभ कर्म अवश्यमेव भोगना पड़ता है। बिना भोगे सैकड़ों-करोड़ कल्पों तक भी कर्म [का प्रभाव] समाप्त नहीं होता।।५७।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में पापचिह्ननिरूपण नामक पञ्चम अध्याय पूर्ण हुआ।।५।।
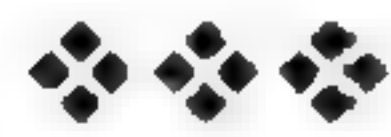
अथ षष्ठोऽध्यायः

पापियों के जन्म आदि दुःखों का वर्णन

गरुड उवाच

कथमुत्पद्यते मातुर्जठरे नरकागतः।
गर्भादिदुःखं यद्भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव!॥१॥

गरुड़ बोले-हे केशव! नरक से आया हुआ जीव माता के गर्भ में कैसे जन्म ग्रहण करता है? और गर्भवासादि जो-जो दुःख जीव भोगता है, वह सब भी मुझे बतलाइए।।१।।

विष्णुरुवाच

स्त्री-पुंसोस्तु प्रसंगेन निरुद्धे शुक्रशोणिते। यथाऽयं जायते मर्त्यस्तथा वक्ष्याम्यहं तव॥२॥

विष्णु बोले—स्त्री-पुरुष के समागम से वीर्य और रज के गर्भ में स्थित हो जाने पर जैसे मनुष्य उत्पन्न होता है, वह मैं तुमको बतलाता हूँ।।२।।

ऋतुमध्ये हि पापानां देहोत्पत्तिः प्रजायते।
इन्द्रस्य [1]ब्रह्महत्यास्ति यस्मिन् तस्मिन्दिनत्रये॥३॥

स्त्रियों के ऋतुकाल के जिन प्रथम तीन दिनों में इन्द्रकृत विश्वरूप-वध से जनित ब्रह्महत्या चतुर्थांश से उनके शरीर में रहती है, उन्हीं दिनों कामुकाधम पुरुषों के द्वारा किये गये गर्भाधान के फलस्वरूप पापात्माओं की देह की उत्पत्ति होती है।।३।।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी ह्येता नरकागतमातरः॥४॥

रजस्वला स्त्री प्रथम दिन में चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी तथा तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के समान बतलायी गयी है। नरक से आये हुए जीवों की माताएँ ये ही तीन प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं।।४।।

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये। स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः॥५॥

दैव के द्वारा प्रेरित कर्म के प्रभाव से जीवात्मा मानव शरीर की प्राप्ति हेतु पुरुष के शुक्राणु का आश्रय लेकर [उसके साथ] स्त्री के गर्भ में प्रविष्ट होता है[2]।।५।।

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥६॥

गर्भाशय में प्रविष्ट शुक्राणु स्त्री-रज के साथ मिलकर एक रात में कलल[3] (सिङ्घाण या श्लेष्मा के समान) बनता है, पाँच रातों में बुद्बुद (बुलबुले के समान गोल), दस दिनों में कर्कन्धू (बेर के फल के समान कठोर) तथा इसके बाद वह मांसपेशी अथवा अण्डे के आकार का हो जाता है।।६।।

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्गाद्यङ्गविग्रहः।
नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥७॥

---

१. ऋतुकाले च नारीणां वर्ज्यं दिनचतुष्टयम्। यतस्तस्मिन् ब्रह्महत्यां पुरा वृत्रसमुद्भवाम्।।७ ब्रह्मा शक्रात् समुत्सार्य चतुर्थांशेन दत्तवान्। गरुड उ. (काशी सं) २२/७-८; गरुड ध.का.प्रे.ख. ३२/७-८; इन्द्र को विश्वरूप वध करने पर ब्रह्महत्या लगी थी। इन्द्र को उस पाप से मुक्त करने हेतु ब्रह्मा ने उस ब्रह्महत्या के चार भाग कर एक एक चतुर्थांश क्रमशः अग्नि, वृक्ष-वनस्पतियों, स्त्रियों तथा जल को प्रदान किया था। (यद्यपि वेद के अनुसार ब्रह्महत्या के तीन भाग क्रमशः पृथिवी, वृक्षों और स्त्रियों को दिया गया था - द्र० तैत्ति० सं० २/५/१-५) और उन सभी के लिए उस ब्रह्महत्या से मुक्ति के विधान भी कहे थे। (द्र० महा० शान्तिपर्व २८२/२८-५७; पद्मपुराण ६/१६८/४४-६८; श्रीमद् भागवत ६/९/६-१०; स्कन्द १/१/१६/१७-४२ तथा ५/३/११८/२६-३२; पराशर स्मृति ८/३१८-३२२; तु० रामा० ७/८६/१३-१६। स्त्रियों की वह ब्रह्महत्या रजोदर्शन काल में परिलक्षित होती है शश्वत् कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः। रजो रूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते-भाग ६/९/९) मनु स्मृति (४/४०-४२) एवं अन्य स्मृतियों, पुराणों तथा आयुर्वेद ग्रन्थों में रजस्वलागमन के अनेक दुष्परिणाम बतलाये गये हैं।

२. गर्भस्थ बीज के भ्रूण रूप में विकास का वर्णन गर्भोपनिषत् ६ में भी है। यह उल्लेखनीय है कि गरुड पुराण सारोद्धार के छठे अध्याय के श्लोक ५ से १५ तक २४ से २६ तक तथा ३० से ३३ तक के श्लोक श्रीमद्भागवत ३/३१/१-११ तथा २४-२८ तक से लिए गये हैं।

३. सुश्रुतसंहिता (शारीरस्थानं ३।१५) के अनुसार कलल एक मास में बनता है-तत्र प्रथमे मासि कललं जायते।

एक मास में शिर तथा दो मास में बाहु आदि शरीर में सभी प्रमुख अङ्ग बन जाते हैं। तीसरे मास में नख, लोम, अस्थियाँ, त्वचा, स्त्री-पुरुष या नपुंसकत्व बोधक लिङ्ग[1] और अन्य उपाङ्ग बनते हैं।।७।।

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥८॥

चार मास में [रस, रक्त, मांस भेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये] सातों धातु बनते हैं। पाँचवें मास से भूख और प्यास जागृत हो उठती है। छवें मास में गर्भस्थ भ्रूण जरायु (झिल्ली) से लिपट कर (आवृत होकर) दाहिनी कोख में घूमने लगता है।।८।।

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते। शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे॥९॥

माता के द्वारा खाये हुए अन्न-पान से बढ़ते हुए धातुओं वाला वह जीव मलमूत्र के कुत्सित गर्त में सोता है, जिसमें कि बहुत से कृमि आदि जन्तु उत्पन्न होते हैं।।९।।

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्।
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥१०॥

वहाँ उस गर्भ में स्थित क्षुधाकुल कृमियों के द्वारा बार-बार सम्पूर्ण शरीर को काटे जाने से अत्यन्त क्लेश होने पर सुकुमार शरीर वाला वह जीव प्रतिक्षण मूर्च्छित होता रहता है।।१०।।

कटुतीक्ष्णोष्ण-लवण-रूक्षाम्लादिभिरुल्वणैः ।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः॥११॥

गर्भ में वह जीव जरायु से लिपटा और उसके ऊपर आँतों से ढका रहता है तथा माता के द्वारा खाये हुए कड़ुवे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे और खट्टे पदार्थों के कठोर स्पर्श से पीड़ित होने से उसके सभी अङ्गों में वेदना होती है।।११।।

आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः।
अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पिञ्जरे॥१२॥

वह अपने शिर को कोख में दबाये रहता है, उसकी पीठ और गरदन झुकी रहती है और अपने अङ्गों (हाथ-पैर आदि) को हिलाने-डुलाने में भी वह असमर्थ रहता है। उसकी स्थिति पिंजड़े में स्थित पक्षी के समान रहती है।।१२।।

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः।
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥१३॥

सातवें महीने के आरम्भ से ही अपने पूर्व जन्मों का बोध प्राप्त हो जाने पर भी प्रसूति-वायु (अर्थात्

---

१. पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः। मनु ३/४९। बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ यमावित्यभिधीयेते-धर्मेतरपुरस्सरौ।। सुश्रुत० शारीरस्थान २/४०। द्र०-शुक्रशोणितसंयोगात् पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते। रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत् पुमान्।। समाने द्रव्यसंयोगे तृतीया प्रकृतिर्भवेत्। विभक्ते रेतसि प्रायो भवेद्युग्ममपि क्वचित्।।

प्रसव कराने वाले पवन) के द्वारा कँपाये जाने के कारण वह जीव उसी (पेट) में उत्पन्न टट्टी के कीड़े के समान एक स्थान में नहीं रह पाता है।।१३।।

तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्।
स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते?॥१४॥

वहाँ दैववश उसको स्मरणशक्ति प्राप्त हो जाती है और वह सौ जन्मों के कर्म का स्मरण करता हुआ लम्बी साँस लेता है। ऐसी स्थिति में भला वह प्रसन्नता अथवा सुख का अनुभव कैसे कर सकता है ।।१४।।

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः।
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥१५॥

रस, रक्त, मांस, मज्जा आदि सप्त धातुओं के चर्म -पट्टिका के सदृश बन्धनों से बँधा हुआ भयातुर जीव ऋषि के समान आत्मदर्शी होकर हाथ जोड़कर याचना करते हुए दीन वचनों से उस परमात्मा की स्तुति करता है, जिसने उसे गर्भ में प्रविष्ट कराया है।।१५।।

जीव उवाच

श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम्। व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्॥१६॥

तब वह गर्भस्थ जीव कहता है-मैं लक्ष्मी के पति, जगत् के आधार स्वरूप, अशुभ को नष्ट करने वाले और शरणागतवत्सल (शरण में आये हुए जीव के प्रति दयालु) भगवान् विष्णु की शरण में जाता हूँ।।१६।।

त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके। अहं ममाभिमानेन गतोऽहं नाथ! संसृतिम्॥१७॥

हे नाथ! आपकी माया से मोहित होकर मैं अपने शरीर तथा पुत्र, पत्नी आदि में अहंता और ममत्व के अभिमान (अर्थात् मैं और मेरा की भावना) के कारण सांसारिक बन्धन और आवागमन के चक्र में पड़ा हूँ।।१७।।

कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्।
एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभानिनः॥१८॥

मैंने शुभाशुभ कर्म अपने परिजनों अर्थात् स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बी जनों के लिए किये थे, किन्तु उन कर्मों के दुष्प्रभाव से अकेला मैं ही दग्ध हो रहा हूँ, और मेरे उन कर्मों के फल को भोगने वाले वे सब पृथक् हो गये हैं।।१८।।

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत् स्मरिष्ये पदं तव।
तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥१९॥

यदि मैं इस योनि से बाहर आ जाता हूँ, तो तब आपके चरणों का ध्यान करूँगा और ऐसा उपाय करूँगा कि मैं मुक्ति को प्राप्त कर सकूँ। (गर्भस्थ जीव के इस प्रकार के विचारों को सर्वप्रथम वर्णन गर्भोपनिषत् ४ में देखा जा सकता है।)।।१९।।

विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना।
इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः॥२०॥

मल-मूत्र के कुएँ में पड़ा हुआ और जठराग्नि से जलता हुआ तथा यहाँ से बाहर निकलने की इच्छा करता हुआ मैं कब बाहर निकल पाऊँगा?।।२०।।

येनेदृशं मे विज्ञानं दत्तं दीनदयालुना। तमेव शरणं यामि पुनर्मे माऽस्तु संसृतिः॥२१॥

जिस दीनदयालु ईश्वर ने मुझे ऐसा आत्मज्ञान दिया है, मैं उसी की शरण में जाता हूँ, ताकि मुझे पुनः संसार में जन्म न लेना पड़े।।२१।।

न च निर्गन्तुमिच्छामि बहिर्गर्भात्कदाचन। यत्र यातस्य मे पापकर्मणा दुर्गतिर्भवेत्॥२२॥

[पुनः अपने मन में विकल्प करते हुए जीव कहता है] मैं गर्भ से बाहर कभी भी नहीं जाना चाहता, [क्योंकि] वहाँ जाने पर पापकर्म करने से पुनः मेरी दुर्गति हो जायेगी।।२२।।

तस्मादत्र महद्दुःखे स्थितोऽपि विगतक्लमः।
उद्धरिष्यामि संसारादात्मानं ते पदाश्रयः॥२३॥

अतः यहाँ [गर्भ के अन्दर] अत्यन्त दुःख में पड़ा हुआ भी मैं खेदरहित हूँ। आपके चरणों का आश्रय लेकर मैं संसार से अपना उद्धार कर लूँगा।।२३।।

श्री भगवानुवाच

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन् ऋषिः।
सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः॥२४॥

श्री भगवान् बोले—ऐसा विचार करके स्तुति में संलग्न और अधोमुख पड़े हुए उस ऋषिकल्प जीव को दसवें मास में प्रसूति-मारुत (प्रसव करने वाला पवन) प्रसव हेतु शीघ्र नीचे की ओर ले आता है।।२४।।

तेनाऽवसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्शिर आतुरः।
विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हत-स्मृतिः॥२५॥

उस प्रसूति वायु के द्वारा सहसा शिर नीचे करके गिराये जाने पर वह आतुर जीव अत्यन्त कठिनाई से बाहर निकलता है। उस समय वह साँस भी नहीं ले पाता है और उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है।।२५।।

पतितो भुवि विण्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते। रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः॥२६॥

पृथिवी पर मल-मूत्र में पड़ा हुआ वह टट्टी के कीड़े की जैसी चेष्टा करता है। [जैसा उसने पहले सोचा था उससे] विपरीत गति को प्राप्त हो जाने और [गर्भ में प्राप्त हुए] ज्ञान के नष्ट होने पर वह अत्यन्त रुदन करता है।।२६।।

गर्भे व्याधौ श्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत्।
सा यदि स्थिरतां याति को न मुच्येत बन्धनात्॥२७॥

गर्भ में रहने पर, व्याधिग्रस्त होने पर, मृतक को लेकर श्मशान में जाने पर तथा पुराण सुनने पर मनुष्य की जैसी मति होती है, वह यदि स्थिर रह जाय, तो कौन सांसारिक बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता।।२७।।

यदा गर्भाद्बहिर्याति कर्मभोगादनन्तरम्। तदैव वैष्णवी माया मोहयत्येव पूरुषम्॥२८॥

कर्म [का फल] भोगने के बाद जीव जब गर्भ से बाहर आता है, तभी भगवान् विष्णु की माया उसे मोहित कर देती है।।२८।।

स तदा माययास्पृष्टो न किञ्चिद्वदतेऽवश। शैशवादिभवं दुःखं पराधीनतयाऽश्नुते॥२९॥

तब माया के द्वारा मोहित होने के कारण विवशतावश वह शिशु कुछ भी नहीं बोल पाता और शैशवावस्था के दुःखों को पराधीन होकर झेलता है।।२९।।

परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः। अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः॥३०॥

दूसरे के अभिप्राय (अर्थात् उस शिशु के मनोभावों) को न जानने वाले माता-पिता आदि जनों के द्वारा उसका पालन किया जाता है। जो वस्तु उसे अभीष्ट नहीं है, वही उसको खिलाये-पिलाये जाने पर वह मना करने में भी असमर्थ रहता है।।३०।।

शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते।
नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने॥३१॥

स्वेदज (पसीने से उत्पन्न) जूँ [तथा खटमल] जैसे जन्तुओं से दूषित तथा मल-मूत्र से अशुद्ध पलंग पर सुलाया हुआ वह शिशु अपने अङ्गों को खुजलाने, आसन से उठने तथा अन्य चेष्टा करने में भी असमर्थ [होने से रोता] रहता है।।३१।।

तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः। रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा॥३२॥

रोते हुए और ज्ञानशून्य उस शिशु की कोमल त्वचा को डाँस, मच्छर तथा खटमल आदि उसी प्रकार काटते हैं, जैसे कि कीड़े किसी अन्य कीड़े को काटते हैं।।३२।।

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च। ततो यौवनमासाद्य याति सम्पदमासुरीम्॥३३॥

इस प्रकार शैशवावस्था में कष्ट भोगकर वह पौगण्ड[1] अवस्था (पाँच से दश वर्ष तक की अवस्था) पर्यन्त भी दुःख भोगता रहता है। तदनन्तर युवावस्था आने पर आसुरी सम्पत्ति[2] अर्थात् दर्प, दम्भ, आभिमान आदि अवगुणों [का भाजन होने से कष्टमय स्थिति] को प्राप्त करता है।।३३।।

तदा दुर्व्यसनासक्तो नीचसङ्गपरायणः।
शास्त्रसत्पुरुषाणां च द्वेष्टा स्यात्कामलम्पटः॥३४॥

तब वह दुर्व्यसनों में आसक्त हो जाता है और नीच स्वभाव के मनुष्यों की संगति करता है, शास्त्रों और सत्पुरुषों से द्वेष करता है और कामलम्पट हो जाता है।।३४।।

---

१. द्र०- शिशुरादन्तजननात् बालः स्याद् यावदाशिखम्। आपञ्चवर्षात्कौमारः पौगण्डो दशाहायनः।। किशोरः षोडशसमास्ततो यौवनमादिशेत्।

२. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्।। श्रीमद्भगवद्गीता १६।४।

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः।
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत्॥३५॥

ईश्वर की मायारूपी स्त्री को देखकर इन्द्रिय-संयम न कर पाने वाला पुरुष उसके हाव-भावों के प्रलोभन में आकर महामोह रूप अन्धतम में उसी प्रकार गिर जाता है, जैसे कि अग्नि में पतंगा गिरता है।।३५।।

कुरङ्ग-मातङ्ग-पतङ्ग-भृङ्ग-मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥३६॥

हिरन, हाथी, पतंगा, भौंरा तथा मछली ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच विषयों (के व्यसन)के कारण मारे जाते हैं (उदाहरणार्थ-हिरन संगीत के शब्द को सुनने के प्रलोभन में मारा जाता है, हाथी हथिनी के कोमल स्पर्श के प्रलोभन में, पतंगा अग्नि की दीप्ति के रूप के प्रलोभन में एवं भौंरा पुष्प के रस के प्रलोभन में मारा जाता है और मछली काँटे में लगे भोज्य पदार्थ [की गन्ध से आकृष्ट होकर उसको खाने के] प्रलोभन में पड़ कर मारी जाती है)। तब भला एक प्रमादी मनुष्य, जो कि अपनी पाँचों इन्द्रियों से पाँचों विषयों का सेवन करता है, क्यों नहीं मारा जायेगा।।३६।।

अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः।
सह देहेन मानेन वर्द्धमानेन मन्युना॥३७॥
करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः।
बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा॥३८॥

अभीष्ट वस्तु (कामिनी नारी आदि) के न प्राप्त हो पाने पर अज्ञानवश क्रोध के उमड़ने तथा शोकमग्न होने और शरीर के साथ ही अभिमान और क्रोध की वृद्धि हो जाने पर वह कामी पुरुष स्वयं अपने नाश हेतु अन्य कामियों के साथ संघर्ष कर बैठता है और बलिष्ठ हाथियों से लड़ने वाले हाथी के समान वह अन्य बलशाली मनुष्यों के हाथों मारा जाता है।।३७-३८।।

एवं यो विषयासक्त्या नरत्वमतिदुर्लभम्।
वृथा नाशयते मूढस्तस्मात्पापतरो हि कः?॥३९॥

इस प्रकार जो मूर्ख पुरुष विषयों की आसक्ति में पड़ कर अति दुर्लभ मनुष्य जीवन को व्यर्थ नष्ट कर देता है, उससे बड़ा पापी कौन होगा?।।३९।।

जातीशतेषु लभते भुवि मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम्।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात्॥४०॥

अन्य सैकड़ों (हजारों किं वा लाखों) योनियों में भटकने के बाद मनुष्य योनि मिलती है। मनुष्यों में भी द्विजत्व की प्राप्ति अति दुर्लभ है और उसे पाकर भी जो उसके योग्य धर्म-कर्म का पालन नहीं करता, केवल इन्द्रियों से प्राप्य सुख में लीन रहता है, उसके हाथ में आया हुआ स्वर्णिम अवसर रूपी अमृत उसके प्रमाद के कारण मानो उसके हाथ से चूकर समाप्त हो जाता है।।४०।।

ततस्तां वृद्धतां प्राप्य महाव्याधिसमाकुलः।
मृत्युं प्राप्य महद्दुःखं नरकं याति पूर्ववत्॥४१॥

तब यौवन बीतने पर पुनः उसी वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर महाव्याधियों से व्याकुल होकर मृत्यु को प्राप्त करके वह पूर्ववत् महा दुःखप्रद नरकों में गिरता है।।४१।।

एवं गताऽगतैः कर्म-पाशैर्बद्धाश्च पापिनः।
कदापि न विरज्यन्ते मम मायाविमोहिताः॥४२॥

इस प्रकार कर्म-पाशों से बँधे हुए पापी आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं और मेरी माया से मोहित होने के कारण कभी भी वैराग्य को नहीं प्राप्त करते ।।४२।।

इति ते कथिता तार्क्ष्य पापिनां नारकी गतिः।
अन्त्येष्टिकर्महीनानां कि भूयः श्रोतुमिच्छसि?॥४३॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापिजन्मादिदुःखनिरूपणो नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

हे गरुड़! इस प्रकार मैंने तुमको अन्त्येष्टिकर्मरहित पापियों की नारकीय गति का वर्णन सुनाया। अब तुम आगे और क्या सुनना चाहते हो?।।४३।।

।।गरुड़पुराण सारोद्धार में पापियों के जन्म आदि दुःखों का वर्णन करने वाला छठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।६।।

❖❖❖

अथ सप्तमोऽध्यायः

बभ्रुवाहन प्रेतसंस्कारादि वर्णन

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु गरुडः कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत्।
जनानामुपकारार्थं पुनः पप्रच्छ केशवम्॥१॥

सूत जी ने कहा—[भगवान् विष्णु के मुख से पापियों के जन्मादि दुःख का] ऐसा वर्णन सुनकर गरुड़ पीपल के पत्ते के समान काँप उठे थे। उन्होंने मनुष्यों के उपकार हेतु पुनः भगवान् विष्णु से पूछा।।१।।

गरुड उवाच

कृत्वा पापानि मनुजाः प्रमादाद्बुद्धितोऽपि वा।
न यान्ति यातना याम्याः केनोपायेन कथ्यताम्॥२॥

गरुड़ बोले—असावधानी से या अज्ञान में अथवा बुद्धिपूर्वक अर्थात् जानबूझ कर पाप कर बैठने पर भी मनुष्य कौन-सा उपाय करने से यमयातना को नहीं प्राप्त करते? यह बतलाइए।।२।।

संसारार्णवमग्नानां नराणां दीनचेतसाम्। पापोपहतबुद्धीनां विषयोपहतात्मनाम्॥३॥

उद्धारार्थं वद स्वामिन्! पुराणार्थविनिश्चयम्।
उपायं येन मनुजाः सद्गतिं यान्ति माधव!॥४॥

हे प्रभो! हे माधव! संसार रूपी समुद्र में डूबे हुए, दीन-चित्त वाले, पाप से नष्ट-बुद्धि और विषय-वासना से पीड़ित आत्मा वाले मनुष्यों के उद्धार के लिए पुराण के अर्थ के सारभूत निश्चित उपाय को बतलाइए, जिससे कि मनुष्य सद्गति को प्राप्त कर सकें।।३-४।।

श्री भगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य! मानुषाणां हिताय वै।
शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वं ते कथयाम्यहम्॥५॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड़! तुमने मनुष्यों के हित के लिए अच्छी बात पूछी है। ध्यान देकर सुनो। मैं तुम्हें सब बतलाता हूँ।।५।।

दुर्गतिः कथिता पूर्वमपुत्राणां च पापिनाम्।
पुत्रिणां धार्मिकाणां तु न कदाचित्खगेश्वर॥६॥

मैंने तुम्हें पहले पुत्रहीन और पांपी मनुष्यों की दुर्गति के विषय में बतलाया। हे गरुड़! पुत्रवान् तथा धार्मिक मनुष्यों की कभी भी दुर्गति नहीं होती।।६।।

पुत्रजन्मनिरोधः स्याद्यदि केनापि कर्मणा।
तदा कश्चिदुपायेन पुत्रोत्पत्तिं प्रसाधयेत्॥७॥

अतः यदि पूर्वजन्म के किसी पाप-कर्म [या शारीरिक अक्षमता आदि] के कारण पुत्र उत्पन्न न हो पाया हो, तो [बुद्धिमान् पुरुष] कोई न कोई उपाय करके पुत्र उत्पन्न करे।।७।।

हरिवंशकथां श्रुत्वा शतचण्डीविधानतः। भक्त्या श्रीशिवमाराध्य पुत्रमुत्पादयेत्सुधीः॥८॥

बुद्धिमान् मनुष्य हरिवंश पुराण की कथा सुनकर, विधान पुर्वक शतचण्डी याग करा कर तथा भक्तिपूर्वक शिवजी की अराधना करके पुत्र उत्पन्न करे।।८।।

[१]पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा[१]॥९॥

पुत्र पिता को पुत् नामक नरक में गिरने से बचाता है, अतएव स्वयं विधाता ने ही उसको पुत्र कहा है।।९।।

१. यह श्लोक मनुस्मृति ९/१३८ का है।

एकोऽपि पुत्रो धर्मात्मा सर्वं तारयते कुलम्। [1]पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी॥१०॥

एक ही धर्मात्मा पुत्र भी सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है, सम्पूर्ण कुल को तार देता है। पुरुष अपने पुत्र के द्वारा लोकों को जीतता है। यह सनातन वेदवचन है।।१०।।

इति वेदैरपि प्रोक्तं पुत्रमाहात्म्यमुत्तमम्।
तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा मुच्यते पैतृकादृणात्॥११॥

इस प्रकार पुत्र का उत्तम माहात्म्य वेदों में भी बतलाया गया है। पुरुष अपने पुत्र के मुख को देखकर पितृऋण से मुक्त होता है।।११।।

पौत्रस्य स्पर्शनान्मर्त्यो मुच्यते च ऋणत्रयात्।
लोकानन्त्येद्दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥१२॥

पौत्र के स्पर्श से मनुष्य (देवों, पितरों और ऋषियों के) तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है। पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों के द्वारा पुरुष यमलोक आदि को पार कर लेता है और स्वर्ग को प्राप्त करता है।।१२।।

ब्राह्मोढा पुत्रोन्नयति संगृहीतस्त्वधो नयेत्।
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ! हीनजातिसुतांस्त्यजेत्॥१३॥

ब्राह्म विवाह की विधि से विवाहिता पत्नी से उत्पन्न औरस पुत्र ऊपर (स्वर्ग में) पहुँचाता है और संगृहीत (अर्थात् दूसरों से प्राप्त या विना विवाह किये रखी गयी स्त्री से उत्पन्न) पुत्र अधोगति अर्थात् नरक को प्राप्त कराता है। अतः हे गरुड़! ऐसा जानकर मनुष्य हीन जाति की स्त्री से उत्पन्न पुत्रों को त्याग दे अर्थात् ऐसे पुत्रों को ग्रहण न करे।।१३।।

सवर्णेभ्यः सवर्णासु ये पुत्रा औरसाः खग! त एव श्राद्धदानेन पितृणां स्वर्गहेतवः॥१४॥

हे पक्षी! सवर्ण पुरुषों से सवर्ण स्त्रियों में जो औरस पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे ही श्राद्ध-दान करने से पितरों को स्वर्ग की प्राप्ति कराने में हेतु बनते हैं।।१४।।

श्राद्धेन पुत्रदत्तेन स्वर्यातीति किमुच्यते। प्रेतोऽपि परदत्तेन गतः स्वर्गमथो शृणु॥१५॥

पुत्र के द्वारा प्रदत्त श्राद्ध के फलस्वरूप पिता स्वर्ग को प्राप्त करता है। इस विषय में तो कहना ही क्या? दूसरे के द्वारा प्रदत्त श्राद्ध से भी एक प्रेत स्वर्ग को प्राप्त हुआ था। अब तुम उसके विषय में सुनो।।१५।।

अत्रैवोदाहरिष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। और्ध्वदेहिकदानस्य परं माहात्म्यसूचकम्॥१६॥

यहाँ पर मैं प्राचीन इतिहास का उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ जो कि और्ध्वदेहिक दान के परम महत्त्व को सूचित करता है।।१६।।

पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य! राजाऽऽसीद् बभ्रुवाहनः। महोदये पुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः॥१७॥

हे गरुड़! बहुत पहले त्रेतायुग में महोदय नामक पुर में बभ्रुवाहन नामक महाबलशाली और धर्मनिष्ठ राजा [राज्य करता] था।।१७।।

---

१. पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। मनु ९/१३७।

यज्वा दानपतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः।
शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः॥१८॥

वह यज्ञानुष्ठान-परायण, अतिशय दानी, श्री-सम्पत्ति-सम्पन्न, ब्राह्मण-भक्त, सत्पुरुषों के प्रति अनुराग रखने वाला तथा शीलवान् (सच्चरित्र) और सदाचार एवं दया और दाक्षिण्य (नम्रता या शिष्टता) जैसे सद्गुणों से युक्त था।।१८।।

पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
क्षत्रधर्मरतो नित्यं स दण्ड्यान् दण्डयन्नृपः॥१९॥

क्षत्रियोचित धर्म का पालन करने वाला वह राजा अपनी प्रजाओं को औरस पुत्रों के समान मानकर उनका पालन करता था और दण्डनीय अपराधियों को दण्डित करता था।।१९।।

स कदाचिन्महाबाहुः ससैन्यो मृगयाङ्गतः। वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम्॥२०॥

वह महाबाहु राजा बभ्रुवाहन एक बार अपनी सेनासहित आखेट के लिए नाना प्रकार के वृक्षों वाले घने वन में प्रविष्ट हुआ था।।२०।।

नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम्। वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत॥२१॥

वह वन नाना प्रकार के मृगों के समूहों से परिपूर्ण था। वहाँ नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे। उस वन के मध्य में राजा ने दूर से एक मृग को देखा।।२१।।

तेन विद्धो मृगोऽतीव बाणेन सुदृढेन च। बाणमादाय स तस्य वनेऽदर्शनमेयिवान्॥२२॥

उस राजा ने उस मृग को एक अति तीक्ष्ण और सुदृढ़ बाण से बींधा। वह मृग उसके बाणसहित वन में अदृश्य हो गया।।२२।।

कक्षेण रुधिराद्रेण स राजानुजगाम तम्। ततो मृगप्रसंगेन वनमन्यद्विवेश सः॥२३॥

उस राजा ने खून से सनी आर्द (गीली) घास के सहारे उस मृग का पीछा किया और तब उस मृग की खोज के प्रसंग में वह दूसरे वन में पहुँच गया।।२३।।

क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः। जलाशयं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत॥२४॥

भूख-प्यास से सूखे हुए कण्ठ वाले तथा श्रम (थकान) और धूप के कारण अर्द्धमूर्च्छित हुए उस राजा ने एक जलाशय में पहुँचने पर घोड़ेसहित स्नान किया।।२४।।

पपौ तदुदकं शीतं पद्मगन्धादि-वासितम्।
ततोऽवतीर्य सलिलाद्विश्रमो बभ्रुवाहनः॥२५॥

उसने उस जलाशय के कमलों की गन्ध से सुवासित जल का पान किया। उसके बाद जल से बाहर आने पर वह राजा बभ्रुवाहन श्रमरहित हो गया था।।२५।।

ददर्श न्यग्रोधतरुं शीतच्छायं मनोहरम्। महाविटपविस्तीर्णं पक्षिसंघनिनादितम्॥२६॥

उसने शीतल छाया वाले, बड़ी-बड़ी और विस्तृत शाखाओं वाले तथा पक्षियों के समूह के कलरव से युक्त एक मनोहर वटवृक्ष को देखा।।२६।।

वनस्य तस्य सर्वस्य महाकेतुमिव स्थितम्। मूलं तस्य समासाद्य निषसाद महीपतिः॥२७॥

जो कि उस समूचे वन की महान् पताका के समान लगता था। वह राजा उस वृक्ष की जड़ में जाकर बैठ गया।।२७।।

अथ प्रेतं ददर्शाऽसौ क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलेन्द्रियम्।
उत्कचं मलिनं कुब्जं निर्मांसं भीमदर्शनम्॥२८॥

तब उस राजा ने भूख-प्यास से व्याकुल इन्द्रियों वाले, ऊपर को उठे बालों वाले, अत्यन्त मलिन देह वाले, कुबड़े, मांसरहित शरीर वाले तथा भयानक दिखलाई पड़ने वाले एक प्रेत को देखा।।२८।।

तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः।
प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तं घोरामटवीमागतं नृपम्॥२९॥

उस विकृत और घोर आकृति वाले प्रेत को देख कर राजा बभ्रुवाहन विस्मित हो उठा और घोर वन में आये हुए उस राजा को देख कर वह प्रेत भी विस्मित हो उठा था।।२९।।

समुत्सुकमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागतः।
अब्रवीत्स तदा तार्क्ष्य! प्रेतराजो नृपं वचः॥३०॥

हे गरुड़! तब वह प्रेत उत्सुक मन वाला होकर उस राजा के पास आया और यह वचन बोला।।३०।।

प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।
त्वत्संयोगान्महाबाहो! जातो धन्यतरोऽस्म्यहम्॥३१॥

हे महाबाहु! मैंने प्रेतभाव को त्याग दिया है (अर्थात् मेरा प्रेतभाव छूट गया) और मैं परम गति को प्राप्त हुआ हूँ। आपके संयोग से मैं अति धन्य हुआ हूँ।।३१।।

राजोवाच

कृष्णवर्ण! करालास्य! प्रेतत्वं घोरदर्शनम्। केन कर्मविपाकेन प्राप्तं ते बह्वमंगलम्॥३२॥

राजा ने कहा-हे कृष्णवर्ण वाले और भयानक मुख वाले प्रेत! यह भयानक दिखलाई पड़ने वाला और अत्यन्त अमङ्गल प्रेतत्व तुमको किस कर्म के परिणाम से प्राप्त हुआ था।।३२।।

प्रेतत्वकारणं तात! ब्रूहि सर्वमशेषतः। कोऽसि त्वं केन दानेन प्रेतत्वं ते विनश्यति?॥३३॥

हे तात! तुम अपने प्रेतत्व की प्राप्ति का सम्पूर्ण कारण पूर्णतः बतलाओ। तुम कौन हो? और किस वस्तु के दान से तुम्हारा प्रेतत्व दूर होगा।।३३।।

प्रेत उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ! सर्वमेवादितस्तव। प्रेतत्वकारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं त्वमर्हसि॥३४॥

प्रेत ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं आदि से अन्त तक तुम्हें सब कुछ बतलाता हूँ। मेरे प्रेतत्व की प्राप्ति का कारण सुनकर तुम मुझ पर दया करना।।३४।।

वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम्। नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम्॥३५॥

हर्म्यप्रासादशोभाढ्यं नानाधर्मसमन्वितम्। तत्राऽहं न्यवसं तात् देवार्चनरतः सदा॥३६॥

वैदिश (विदिशा) नामक एक नगर है, जो सभी प्रकार की सम्पत्तियों से समृद्ध, नाना जनपदों से आये हुए मनुष्यों से भरा हुआ, नाना-रत्नों से परिपूर्ण, हर्म्यों और प्रासादों[१] अर्थात् धनीजनों की हवेलियों और देवप्रासादों (मन्दिरों) और राजभवनों से सुशोभित तथा नाना प्रकार के धर्मानुष्ठानों से गौरवान्वित है, हे तात! मैं वहाँ निवास करता था और सदा देवार्चन में निरत रहता था।।३५-३६।।

वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते।
हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस्तथा॥३७॥

आप यह भी जान लीजिए कि मैं जाति का वैश्य हूँ और सुदेव मेरा नाम है। मैंने हव्य से देवों तथा कव्य[२] से पितरों को तर्पित किया था।।३७।।

विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पिता मया। दीनान्धकृपणेभ्यश्च दत्तमन्नमनेकधा॥३८॥

मैंने नाना प्रकार के दानों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया था और दीन, अन्धे और निर्धन मनुष्यों को अनेक बार अनेक प्रकार के अन्नों का दान दिया था।।३८।।

तत्सर्वं निष्फलं राजन्! मम दैवादुपागतम्।
यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद्वदामि ते॥३९॥

हे राजन्! दुर्भाग्यवश मेरा वह सब धर्म-कर्म निष्फल हो गया है, मेरा सत्कर्म (पुण्य) जिस कारण निष्फल हुआ, वह मैं तुमको बतलाता हूँ।।३९।।

ममैव सन्ततिर्नास्ति न सुहृन्न च बान्धवः।
न च मित्रं हि मे तादृग्यः कुर्यादौर्ध्वदेहिकम्॥४०॥

मेरा कोई पुत्र नहीं है और मेरा कोई बन्धु-बान्धव तथा मित्र भी नहीं है, जो कि मेरी और्ध्वदेहिक क्रिया करता।।४०।।

यस्य न स्यान्महाराज! श्राद्धं मासिकषोडशम्।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥४१॥

हे महाराज! जिसके [मृत्यु के बाद] षोडश मासिक श्राद्ध नहीं होते उसका प्रेतत्व सैकड़ों श्राद्धों को करने पर भी सुस्थिर (अटल) रहता है।।४१।।

त्वमौर्ध्वदेहिकं कृत्वा मामुद्धर महीपते!। वर्णानां चैव सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते॥४२॥

हे राजन्! तुम मेरा और्ध्वदेहिक कृत्य करके मेरा उद्धार करो। इस लोक में राजा को सभी वर्णों [के मनुष्यों] का बन्धु कहा जाता है।।४२।।

तन्मां तारय राजेन्द्र! मणिरत्नं ददामि ते। यथा मे सद्गतिर्भूयात्प्रेतयोनिश्च गच्छति॥४३॥

---

१. हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम्। अमर २।२।९।

२. हव्यकव्ये दैवपैत्रे अन्ने। अमरकोश २/७/२४ तु० - देवार्थमन्नं हव्यं स्यात् पित्रर्थं कव्यमेव च अर्थात् देवों को अर्पित हवि, नैवेद्य, अन्न आदि को हव्य तथा पितरों को अर्पित किये जाने वाले अन्न (श्राद्ध-पिण्ड आदि) को कव्य कहा जाता है।

तथा कार्यं त्वया वीर मम चेदिच्छसि प्रियम्।
क्षुधातृषादिभिर्दुःखैः प्रेतत्वं दुःसहं मम॥४४॥

अतः हे राजेन्द्र! मेरा उद्धार कर दो। मैं तुमको मणिरत्न दूँगा। हे वीर! यदि तुम मेरा प्रिय (हित) करना चाहते हो, तो जैसे मेरी सद्गति हो और प्रेतयोनि छूट जाय वैसा उपाय करो। भूख-प्यास आदि दुःखों से यह प्रेतयोनि मेरे लिए असह्य हो गयी है।।४३-४४।।

स्वादूदकं फलं चास्ति वनेऽस्मिन् शीतलं शिवम्।
न प्राप्नोमि क्षुधार्तोऽहं तृषार्तो न जलं क्वचित्॥४५॥

इस वन में स्वादिष्ट फल तथा शीतल और निर्मल जल है, किन्तु मैं भूख और प्यास से पीड़ित होने पर भी उन फलों को तथा जल को नहीं प्राप्त कर पाता हूँ।।४५।।

यदि मे हि भवेद्राजन्! विधिर्नारायणे महान्।
तदग्रे वेदमन्त्रैश्च क्रिया सवौर्ध्वदेहिकी॥४६॥
तदा नश्यति मे नूनं प्रेतत्वं नाऽत्र संशयः। वेदमन्त्रास्तपोदानं दया सर्वत्र जन्तुषु॥४७॥
सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसङ्गतिः।
प्रेतयोनि-विनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम्॥४८॥

हे राजन्! यदि मेरे लिए यथाविधि नारायणबलि को सम्पादित करके उसके आगे की और्ध्वदेहिक क्रिया वेद मन्त्रों से की जाय तो तब निश्चय ही मेरा प्रेतत्व छूट जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वेदमन्त्रों के पाठ, तप, दान तथा सभी प्राणियों में दया, उत्तम शस्त्रों के श्रवण-मनन, विष्णु की पूजा और सत्सङ्गति के प्रभाव से प्रेतयोनि छूट जाती है, ऐसा मैंने सुना है।।४६-४८।।

अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्वनाशिनीम्। सुवर्णद्वयमानीय सुवर्णं न्यायसंचितम्।
तस्य नारायणस्यैकां प्रतिमां भूप! कल्पयेत्॥४९॥

अतः मैं तुमको प्रेतत्व की नाशक विष्णु-पूजा की विधि बतलाता हूँ। हे राजन्! न्यायतः अर्जित दो सुवर्ण (बत्तीस मासे) के बराबर सोने को लेकर उसकी एक नारायण प्रतिमा बनवाये।।४९।।

पीतवस्त्रयुगच्छन्नां सर्वाभरणभूषिताम्। स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य यजेत्ततः॥५०॥

उस प्रतिमा का स्नान और अधिवासन करा कर उसको एक जोड़े पीले कपड़ों से आच्छादित करके तथा सभी आभूषणों से अलंकृत करके उसका पूजन करे।।५०।।

पूर्वे तु श्रीधरं तस्य दक्षिणे मधुसूदनम्। पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम्॥५१॥
मध्ये पितामहं चैव तथा देवं महेश्वरम्। पूजयेच्च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक्॥५२॥

उस प्रतिमा के पूर्व में श्रीधर, दक्षिण में मधुसूदन, पश्चिम में वामन, उत्तर में गदाधर और मध्य में ब्रह्मा तथा शिव की स्थापना करके उन सभी देवों का पृथक्-पृथक् पूजन, गन्ध, पुष्प आदि से विधान पूर्वक करे।।५१-५२।।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य वह्नौ सन्तर्प्य देवताः। घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवांश्च तर्पयेत्॥५३॥

तब प्रदक्षिणा करके अग्नि में [हवन से] उन देवताओं को तृप्त करके घृत, दही और दूध से विश्वेदेवों को तृप्त करे।।५३।।

ततः स्नातो विनीतात्मा यजमानः समाहितः।
नारायणाग्रे विधिवत्स्वां क्रियामौर्ध्वदेहिकीम्॥५४॥

उसके बाद यजमान एकाग्रचित्त होकर विनीतभाव से नारायण [प्रतिमा] के समक्ष विधिपूर्वक और्ध्वदेहिक क्रिया करे।।५४।।

आरभेत यथा शास्त्रं क्रोधलोभविवर्जितः।
कुर्याच्छ्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा॥५५॥

वह क्रोध और लोभ को त्याग कर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार और्ध्वदेहिक क्रिया आरम्भ करे। वह क्रमशः सभी श्राद्धों को करे और वृषोत्सर्ग करे।।५५।।

ततः पदानि विप्रेभ्यो दद्याच्चैव त्रयोदश। शय्यादानं प्रदत्त्वा च घटं प्रेतस्य निर्वपेत्॥५६॥

तब ब्राह्मणों को तेरह पदों[1] का दान करे और फिर शय्यादान देकर प्रेत के निमित्त जलपूर्ण घट प्रदान करे।।५६।।

राजोवाच

कथं प्रेतघटं कुर्याद् दद्यात् केन विधानतः?।
ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम्॥५७॥

राजा ने कहा—प्रेतघट कैसे तैयार करना चाहिए और किस विधान से इसका दान देना चाहिए। तुम सब जीवों की अनुकम्पा हेतु प्रेत को मुक्ति दिलाने वाले घटदान की विधि को बतलाओ।।५७।।

प्रेत उवाच

साधु पृष्टं महाराज! कथयामि निबोध ते। प्रेतत्वं न भवेद्येन दानेन सुदृढेन च॥५८॥

प्रेत ने कहा—हे महाराज! तुमने ठीक ही पूछा है। तुम ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें उस सुदृढ़ दान के विषय में बतलाता हूँ, जिसको देने से प्रेतत्व से मुक्ति मिल जाती है।।५८।।

दानं प्रेतघटं नाम सर्वाऽशुभविनाशकम्। दुर्लभं सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम्॥५९॥

प्रेतघट का दान सभी प्रकार के अशुभ और अमङ्गल का विनाशक है। यह दान सभी लोकों में दुर्लभ है और दुर्गति को समाप्त करने वाला है।।५९।।

---

१. त्रयोदश पदों का नाम-निर्देश आगे अध्याय १३ श्लोक ८८-८९ में है। त्रयोदश-विध पददान में छत्र (छाता), उपानह (जूता), वस्त्र, मुद्रिका, कमण्डलु, आसन और पञ्चपात्र (ये सप्त पद) तथा छः अन्य पदों में आगे कहे गये हैं- दण्ड (लाठी), ताम्रपात्र, आमान्न (कच्चा अन्न), पक्वान्न आदि भोजन, घृत और यज्ञोपवीत सहित इन तेरह वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है।

सन्तप्तहाटकमयं तु घटं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः॥६०॥

तपाये हुए सोने का घट बनाकर उसमें ब्रह्मा, शिव, विष्णु तथा इन्द्रादि लोकपालों का आवाहन करके तथा उसमें दूध और घी भरकर भक्ति पूर्वक प्रणिपात (प्रणाम) करके ब्राह्मण को दान दो। तुम्हें अन्य सैकड़ों दान देने की कोई आवश्यकता नहीं है।।६०।।

[1]मध्ये ब्रह्मा मुखे विष्णुः कण्ठे च शंकरोऽव्ययः।
प्राच्यादिषु च संस्थाप्य लोकपालान् क्रमेण तु॥६१॥
सम्पूज्य विधिवद्राजन् धूपैः कुसुमचन्दनैः।
ततो दुग्धाऽऽज्यसहितं घटं देयं हिरण्मयम्॥६२॥

उस घट के मध्य में ब्रह्मा, मुख में (अर्थात् सबसे ऊपर) विष्णु तथा कण्ठ में अविनाशी शङ्कर और पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः लोकपालों का आवाहन, स्थापन करके उनकी चन्दन, पुष्प, धूप आदि से विधिवत् पूजा करके दूध और घी सहित उस सोने के घट का [ब्राह्मण को] दान करे।।६१-६२।।

सर्वदानाधिकं चैतन्महापातकनाशनम्। कर्तव्यं श्रद्धया राजन्! प्रेतत्वविनिवृत्तये॥६३॥

हे राजन्! महापातकों का नाश करने वाला यह दान सभी दानों से बड़ा है। अतः प्रेतत्व को दूर करने के लिए श्रद्धा पूर्वक यह दान देना चाहिए।।६३।।

श्रीभगवानुवाच

एवं संजल्पतस्तस्य प्रेतेन सह काश्यप। सेनाऽऽजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुला॥६४॥

श्री भगवान् बोले—हे गरुड़! प्रेत के साथ उस राजा के ऐसे वार्तालाप के समय ही उसकी हाथी, घोड़े और रथों पर सवार सेना पीछे से वहाँ आ गयी थी।।६४।।

ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे महामणिम्।
नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमेयिवान्॥६५॥

तब सेना के आ पहुँचने पर राजा को महामणि प्रदान करके, नमस्कार करके और पुनः [अपने उद्धार हेतु] प्रार्थना करके वह प्रेत अदृश्य हो गया था।।६५।।

तस्माद वनाद् विनिष्क्रम्य राजापि स्वपुरं ययौ।
स्वपुरं च समासाद्य तत्सर्वं प्रेतभाषितम्॥६६॥

राजा भी उस वन से निकल कर अपने पुर को चल पड़ा और वहाँ पहुँच कर उसने प्रेत के कहे हुए वचनों के अनुसार कार्य किया था।।६६।।

चकार विधिवत्पक्षिन्नौर्ध्वदेहिकजं विधिम्। तस्य पुण्यप्रदानेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ॥६७॥

१. पाठ-संशोधन के प्रमाण रूप में द्रष्टव्य-कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा..... इत्यादि। द्र०-संस्कारदीपक प्रथम भाग पृ० १३२

हे गरुड़! उसने विधवत् उसकी और्ध्वदेहिक क्रिया की और उसके द्वारा प्रदत्त पुण्य के प्रभाव से वह प्रेत [प्रेतत्व से] मुक्त होकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ था।।६७।।

श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम्।
किं पुनः पुत्रदत्तेन पिता यातीति चाद्भुतम्॥६८॥

दूसरे के द्वारा दिये हुए श्राद्ध से प्रेत ने भी सद्गति प्राप्त की थी, तब पुत्र के द्वारा प्रदत्त श्राद्ध से पुरुष की सद्गति होती है, इसमें कौन-सा आश्चर्य हो सकता है।।६८।।

इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः। न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि॥६९॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे बभ्रुवाहनप्रेतसंस्कारो नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥
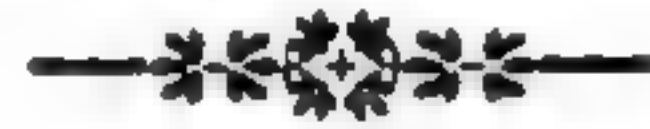
इस पवित्र इतिहास को जो सुनता है और जो सुनाता है, वे दोनों यदि पापी भी हों, तो भी वे प्रेतत्व (प्रेतयोनि) को नहीं प्राप्त होते।।६९।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में बभ्रुवाहन प्रेतसंस्कारादि वर्णनात्मक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।७।।

❖❖❖

अथ अष्टमोऽध्यायः

आतुरदान निरूपण

गरुड उवाच

आमुष्मिकीं क्रियां सर्वां वद सुकृतिनां मम।
कर्तव्या सा यथा पुत्रैस्तथा च कथय प्रभो॥१॥

गरुड़ बोले—हे प्रभो! आप मुझे पुण्यात्माओं की परलोक सम्बन्धी क्रिया के विषय में बतलाइए और यह भी बतलाइए कि पुत्रों को यह क्रिया कैसे करनी चाहिए।।१।।

श्री भगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै।
धार्मिकार्हं च यत्कृत्यं तत्सर्वं कथयामि ते॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड़! तुमने मनुष्यों के हित के लिए उत्तम प्रश्न पूछा है। धार्मिक मनुष्य के लिए जो कुछ करने योग्य है, वह मैं तुमको बतलाता हूँ।।२।।

सुकृती वार्धके दृष्ट्वा शरीरं व्याधिसंयुतम्।
प्रतिकूलान्ग्रहांश्चैव प्राणघोषस्य चाश्रुतिम्॥३॥

तदा स्वमरणं ज्ञात्वा निर्भयः स्यादतन्द्रियः। अज्ञातज्ञातपापानां प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥४॥

पुण्यकर्म करने वाला पुरुष वृद्धावस्था में अपने शरीर को व्याधि-ग्रस्त तथा ग्रह-दशा को प्रतिकूल देखकर और अपने हाथों से अपने कानों को बन्द करने पर शरीर के अन्दर नाड़ियों में रक्त-संचार से होने वाले शब्द के न सुनायी पड़ने जैसे अरिष्टों[1] से अपनी मृत्यु को निकट समझे और निर्भय एवं सावधान होकर अपने द्वारा अज्ञान में हुए पापों तथा ज्ञानपूर्वक किये गये पापों का प्रायश्चित्त कर ले।।३-४।।

यदा स्यादातुरः कालस्तदा स्नानं समारभेत्।
पूजनं कारयेद्विष्णोः शालग्रामस्वरूपिणः॥५॥

प्राणान्त के पूर्व आतुरावस्था में वह स्नान करना प्रारम्भ करे तथा शालग्राम स्वरूपी भगवान् विष्णु का पूजन करावे।।५।।

अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च कुङ्कुमैस्तुलसीदलैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्बहुभिर्मोदकादिभिः॥६॥

भगवान् विष्णु की पूजा गन्ध (चन्दन), पुष्प, कुङ्कुम, तुलसीदल, धूप, दीप तथा बहुत से लड्डू आदि नैवेद्यों से करे।।६।।

दत्त्वा च दक्षिणां विप्रान्नैवेद्यादेव भोजयेत्। अष्टाक्षरं जपेन्मन्त्रं द्वादशाक्षरमेव च॥७॥

विप्रों को दक्षिणा देकर उन्हें नैवेद्य का भोजन करावे। तब "ॐ नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षर मन्त्र[2] तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करे।।७।।

संस्मरेच्छृणुयाच्चैव विष्णोर्नाम शिवस्य च। हरेर्नाम हरेत्पापं नृणां श्रवणगोचरम्॥८॥

वह विष्णु और शिव के नाम का स्मरण करे और उनके नाम का कीर्तन अपने पुत्रादि के मुख से भी सुने। हरि का नाम कानों में सुनायी पड़ने पर भी मनुष्यों के पापों को नष्ट करता है।।८।।

रोगिणोऽन्तिकमासाद्य शोचनीयं न बान्धवैः। स्मरणीयं पवित्रं मे नामधेयं मुहुर्मुहुः॥९॥

रोगी की मृत्यु निकट होने पर उसके बन्धु-बान्धवादि को शोक नहीं करना चाहिए, अपितु बारम्बार मेरे (अर्थात् भगवान् विष्णु के) पवित्र नाम का स्मरण (कीर्तन) करते रहना चाहिए।।९।।

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च॥१०॥
एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः।
समीपे रोगिणो ब्रूयुर्बान्धवास्ते प्रकीर्तिताः॥११॥

---

१. द्र० त्रिविधमरिष्टम्। तत्राध्यात्मिकम्-घोषं स्वदेहे पिहितकर्णो न शृणोति, ज्योतिर्वा नेत्रेऽवष्टब्धे न पश्यति। आधिभौतिकम्-यमपुरुषान् पश्यति, पितृनतीनकस्मात् पश्यति। आधिदैविकम्- स्वर्गमकस्मात् सिद्धान् वा पश्यति, विपरीतं वा सर्वमिति-पातञ्जल योगसूत्र ३/२२ पर व्यासभाष्य; तु० ३/२२ पर भोजवृत्ति। विशेष विवरण चरक, शुश्रुत संहिताओं तथा मार्कण्डेय पुराण ४०/१-३८; शिवपुराण ५/२५/९-७५; सुश्रुत सूत्रस्थान २८/३-८; तत्रैव ३२/२-८, त्रिशिखब्राह्मणोपनिशत् १२०-१२७ आदि में देखा जा सकता है।

२. ॐ नमो नारायणाय-यह अष्टाक्षर मन्त्र ब्रह्मपुराण ६०।२३-२४ (प्रयाग संस्करण) में है।

भगवान् विष्णु के दश अवतारों के क्रमशः मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि-इन दश नामों का स्मरण-कीर्तन बुद्धिमान् पुरुषों को सदैव करना चाहिए। वस्तुतः मरणासन्न रोगी के अच्छे बान्धव वे ही हैं, जो उसके समीप इन दश नामों का उच्चारण करते रहते हैं।।१०-११।।

कृष्णोति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। तस्य भस्मीभवन्त्याशु महापातककोटयः॥१२॥

जिसकी वाणी कृष्ण के मङ्गलमय नाम का उच्चारण करती रहती है, उसके करोड़ों महापाप भी शीघ्र भस्मीभूत हो जाते हैं।।१२।।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥१३॥

मरणासन्न पापी अजामिल अपने पुत्र के नाम 'नारायण' के उच्चारण मात्र से भगवान् विष्णु के 'नारायण' नाम के उच्चारण का फल प्राप्त करके उनके परम धाम-वैकुण्ठ को गया था। तब श्रद्धापूर्वक नारायण के नाम का उच्चारण करने वाले के वैकुण्ठ लोक प्राप्ति पर भला क्या शंका हो? वह तो निश्चयमेव वैकुण्ठ को जायेगा।।१३।।

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयाऽपि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥१४॥

दूषित अन्तःकरण वाले व्यक्ति के द्वारा स्मरण किये जाने पर भी भगवान् विष्णु उनके पापों को नष्ट कर देते हैं, जैसे कि अनिच्छया अग्नि का स्पर्श हो जाने पर भी वह अग्नि जला ही देती है।।१४।।

हरेर्नाम्नश्च या शक्तिः पापनिर्हरणे द्विज[१]। तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः॥१५॥

हे गरुड़! हरि के नाम में पापों को दूर करने की जितनी शक्ति है, उतने पापों को करने की सामर्थ्य पापीजनों में होती ही नहीं है।।१५।।

किङ्करेभ्यो यमः प्राह नयध्वं नास्तिकं जनम्। नैवानयत भो दूता हरिनामस्मरं नरम्॥१६॥

यम ने अपने दूतों से यह कहा है कि तुम नास्तिक मनुष्य को ही मेरे पास लाओ। हरि नाम का स्मरण करने वाले मनुष्य को मेरे पास मत लाया करो[२]।।१६।।

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥१७॥

"मैं अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिका-वल्लभ और जानकी-नायक रामचन्द्र का भजन करता हूँ"।।१७।।

कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान्॥१८॥

---

१. दन्त-विप्राण्डजा द्विजाः। अमरकोश ३/३/३०।

२. स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले। परिहरमधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्।। विष्णुपुराण ३/७/१४

"हे पुण्डरीकाक्ष! हे वासुदेव! हे विष्णु! हे धरणीधर! हे अच्युत! हे शङ्खचक्रपाणि! आप ही मेरे शरणदाता होंवें।" हे दूत! जो मनुष्य ऐसा कहते हैं, उनसे तुम दूर रहना।।१८।।

तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्द-पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम्।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान्॥१९॥

भगवान् विष्णु के चरणारविन्द के जिस मकरन्द रस का आस्वादन अकिञ्चन परमहंस साधुओं के द्वारा किया गया है, उससे विमुख रहने वाले और गृहस्थी के प्रपञ्चपूर्ण नरकावह मार्ग में तृष्णा रखने वाले असत्पुरुषों को ही मेरे पास लाया करो।।१९।।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥२०॥

जिनकी जिह्वा भगवान् के गुणों और नामों का कीर्तन नहीं करती, जिनका चित्त भगवान् के चरण-कमलों का चिन्तन नहीं करता, जिनका मस्तक एक बार भी कृष्ण को प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता और जो विष्णु के आराधनादि कृत्यों को नहीं करते, उन्हीं असज्जनों को तुम मेरे पास लाओ।।२०।।

तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।
महतामपि पक्षीन्द्र विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम्॥२१॥

इसलिए हे पक्षिराज! तुम यह समझ लो कि जगत् के लिए मङ्गलस्वरूप भगवान् विष्णु के नाम का संकीर्तन महापापों का भी एकमात्र प्रायश्चित्त है।।२१।।

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति दुर्बुद्धिं सुराकुम्भमिवापगा॥२२॥

जिस प्रकार मदिरा से पूर्ण कलश को गङ्गा आदि नदियाँ भी पवित्र नहीं करती, उसी प्रकार भगवान् विष्णु से विमुख रहने वाले (अर्थात् उनका स्मरण, कीर्तन आदि न करने वाले) दुर्बुद्धि मनुष्य के द्वारा किये गये प्रायश्चित्त भी उसको शुद्ध (पाप से मुक्त) नहीं कर पाते।।२२।।

कृष्णनाम्ना न नरकं पश्यन्ति गतकिल्विषाः।
यमं च तद्भटांश्चैव स्वप्नेऽपि न कदाचन॥२३॥

भगवान् कृष्ण या विष्णु के नाम-कीर्तन से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, वे नरक को, यम को और उसके दूतों को स्वप्न में भी नहीं देखते।।२३।।

मांसास्थिरक्तवत्काये वैतरण्यां पतेन्न सः।
योऽन्ते दद्याद् द्विजेभ्यश्च[१] नन्दनन्दनगामिति॥२४॥

प्राणान्त काल में ब्राह्मण को गोदान करने वाला मनुष्य मांस, अस्थि (हड्डी) और रक्त से पूरित

१. दन्तविप्राण्डजा द्विजाः । अमरकोश ३/३/३०; 'लृतुलसानां दन्ताः' इस नियम से स्पष्ट है कि 'नन्दनन्दन' में सभी वर्ण तवर्ग के हैं, जिनका उच्चारण दाँतों की सहायता से हो पाता है। अतः यहाँ पर "नन्दनन्दन"-इस वाणी का द्विजों अर्थात् दाँतों से उच्चारण करने का आलंकारिक वर्णन किया गया है।

वैतरणी में नहीं गिरता और प्राणान्त काल में अपने मुख से नन्दनन्दन-कृष्ण की वाणी अर्थात् कृष्ण नाम का उच्चारण करने वाला मांस, अस्थि और रक्त से पूरित कायारूप वैतरणी में नहीं गिरता अर्थात् उसे पुनः शरीर-धारण नहीं करना पड़ता, तात्पर्य यह है कि वह मुक्त हो जाता है।।२४।।

अतः स्मरेन्महाविष्णोर्नाम पापौघनाशनम्। गीतासहस्रनामानि पठेद्वा शृणुयादपि॥२५॥

अतः प्राणान्त काल में पाप-समूह के नाशक भगवान् विष्णु के नाम का स्मरण करना चाहिए और गीता तथा विष्णुसहस्रनाम का पाठ पढ़ना या दूसरों के मुख से सुनना चाहिए।।२५।।

एकादशीव्रतं गीता गङ्गाम्बु तुलसीदलम्।
विष्णोः पादाम्बु नामानि मरणे मुक्तिदानि च॥२६॥

मृत्युकाल में एकादशी का व्रत, गीता का पाठ, गङ्गा-जल का पान, तुलसीदल-भक्षण, विष्णुचरणामृत का पान एवं विष्णु का नाम-स्मरण मुक्तिप्रदायक होता है।।२६।।

ततः संकल्पयेदन्नं सघृतं च सकाञ्चनम्। सवत्सा धेनवो देयाः श्रोत्रियाय द्विजातये॥२७॥

मरणासन्न मनुष्य स्नानादि करने के पश्चात् घृत और सुवर्णसहित अन्न के दान का सङ्कल्प करे तथा वेदपाठी ब्राह्मण को बछड़ोंसहित दुधारु गायों का दान करे।।२७।।

अन्ते जनो यद्ददाति स्वल्पं वा यदि वा बहु।
तदक्षयं भवेत्ताक्ष्‍र्य यत्पुत्रश्चानुमोदते॥२८॥

हे गरुड़! मनुष्य प्राणान्त काल में जो भी स्वल्प या अधिक दान देता है और जिस दान का अनुमोदन उसका पुत्र करता है, वह अक्षय होता है।।२८।।

अन्तकाले तु सत्पुत्रः सर्वदानानि दापयेत्। एतदर्थं सुतो लोके प्रार्थ्यते धर्मकोविदैः॥२९॥

अच्छा पुत्र पिता के अन्त-काल में उसके हाथों सभी प्रकार के दान दिलवावे। इसी आतुरदान आदि के लिए ही लोक में धर्मज्ञ पुरुष पुत्र की कामना करते हैं।।२९।।

भूमिष्ठं पितरं दृष्ट्वा अर्धोन्मीलितलोचनम्।
पुत्रैस्तृष्णा न कर्तव्या तद्धने पूर्वसञ्चिते॥३०॥

आतुरावस्था में अधमुँदी आँखों वाले और भूमि पर पड़े हुए पिता को देख कर पुत्रों को उसके द्वारा पूर्वसञ्चित धन में तृष्णा नहीं करनी चाहिए।।३०।।

स तद्ददाति सत्पुत्रो यावज्जीवत्यसौ चिरम्।
अतिवाहस्तु तन्मार्गे दुःखं न लभते यतः॥३१॥

सत्पुत्र के द्वारा प्रदत्त उस दान से पिता जीवितावस्था पर्यन्त और मृत्यु के बाद परलोक मार्ग में भी दुःख नहीं प्राप्त करता।।३१।।

आतुरे चोपरागे च द्वयं दानं विशिष्यते। अतोऽवश्यं प्रदातव्यमष्टदानं तिलादिकम्॥३२॥

आतुरावस्था (मृत्युकाल) और ग्रहण—इन दो कालों में प्रदत्त दान विशेष महत्त्व का होता है। अतः मृत्युकाल में तिल आदि आठ वस्तुओं का दान अवश्य देना चाहिए।।३२।।

तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासो लवणं तथा।
सप्तधान्यं क्षितिर्गावो ह्येकैकं पावनं स्मृतम्॥३३॥

(१) तिल, (२) लोहा, (३) सोना, (४) कपास (रुई), (५) नमक, (६) सप्तधान्य[1], (७) भूमि और (८) गौ-इनमें से प्रत्येक का दान पवित्र करने वाला होता है।।३३।।

एतदष्टमहादानं महापातकनाशनम्। अन्तकाले प्रदातव्यं शृणु तस्य च यत्फलम्॥३४॥

महापातकों का नाश करने वाले इन आठों महादानों को प्रणान्त काल में अवश्य देना चाहिए। अब तुम इन दानों का फल सुनो।।३४।।

मम स्वेदसमुद्भूताः पवित्रास्त्रिविधास्तिलाः।
असुरा दानवा दैत्यास्तृप्यन्ति तिलदानतः॥३५॥

तिल मेरे (अर्थात् भगवान् विष्णु के) शरीर से उत्पन्न हुए हैं। वे पवित्र होते हैं और तीन प्रकार के होते हैं असुर, दानव और दैत्य तिलों के दान से तृप्त होते हैं।।३५।।

तिलाःश्वेतास्तथा कृष्णा दानेन कपिलास्तिलाः।
संहरन्ति त्रिधा पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम्॥३६॥

तिल सफेद, काले और [2]कपिल (भूरे) वर्ण के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इनके दान से वाणी, मन और शरीर से किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं।।३६।।

लोहदानं च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना।
यमसीमां न चाप्नोति न गच्छेत् तस्य वर्त्मनि॥३७॥

लोहे का दान भूमि में हाथ रखकर (या हाथ में मिट्टी लेकर) करना चाहिए। इस दान को देने वाला यमराज की सीमा को नहीं प्राप्त करता और यम के मार्ग में नहीं जाता है।।३७।।

कुठारो मुसलो दण्डः खड्गश्च छुरिका तथा।
शस्त्राणि यमहस्ते च निग्रहे पापकर्मणाम्॥३८॥

यम के हाथ में पापी मनुष्यों के निग्रह हेतु कुठार (कुल्हाड़ी-फरसा), मुसल, दण्ड, खड्ग और छुरी जैसे शस्त्र रहते हैं।।३८।।

यमायुधानां सन्तुष्ट्यै दानमेतदुदाहृतम्। तस्माद्दद्याल्लोहदानं यमलोके सुखावहम्॥३९॥

लोहे का दान यम के इन आयुधों (शस्त्रों) को सन्तुष्ट करने वाला बतलाया गया है। अतः यमलोक में सुख देने वाले लोहे का दान देना चाहिए।।३९।।

---

१. सप्तधान्यों का उल्लेख आगे श्लोक ४८ में है। एक मत के अनुसार सप्तधान्य में जौ, धान, तिल, कंगु (काकुन या कंगुनी), मूँग, चना और साँवा (श्यामाक) को गिना जाता है। यवधान्यतिलाःकंगु मुद्गचणकश्यामकाः। एतानि सप्तधान्यानि सर्वकार्येषु योजयेज्।। नित्यकर्मपूजाप्रकाश पृ०१४६। अन्य मतानुसार सप्तधान्य में गेहूँ सम्मिलित है और मूँग को सम्मिलित नहीं किया गया है- यवगोधूमधान्यानि तिलाः कंगुस्तथैव च। श्यामाकं चीणकं चैव सप्तधान्यमुदाहृतम् (कर्मकाण्डप्रदीप, पृ १०)

२. कपिल तिलों को गोमूत्र के समान वर्ण का वतलाया गया है - तिलाः श्वेतास्तिलाः कृष्णास्तिला गोमूत्रसन्निभा। गरुड ध.का. प्रे.ख. २/१७; २९/१६

उरणः[१] श्यामशबलौ षण्डामर्कोऽप्युदुम्बरः।
शेषम्बलो महादूता लोहदानात्सुखप्रदाः[२]॥४०॥

ऊरण, श्याम, शबल, षण्डा-मर्क, उदुम्बर तथा शेषम्बल नामक महादूत लोहे के दान से सुखप्रद होते हैं।।४०।।

शृणु तार्क्ष्य परं गुह्यं दानानां दानमुत्तमम्। दत्तेन तेन तुष्यन्ति भूर्भुवः स्वर्गवासिनः॥४१॥

हे गरुड़! अब तुम दानों में सर्वोत्तम दान (स्वर्णदान) के विषय में गोपनीय बात सुनो, उसको देने से भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक के निवासी सन्तुष्ट होते हैं।।४१।।

ब्रह्माद्या ऋषयो देवा धर्मराजसभासदाः।
स्वर्णदानेन सन्तुष्टा भवन्ति वरदायकाः॥४२॥

ब्रह्मा आदि देवता, ऋषिगण तथा धर्मराज के सभासद स्वर्णदान से सन्तुष्ट होकर अभीष्ट वरदान देते हैं।।४२।।

तस्माद्देयं स्वर्णदानं प्रेतोद्धरणहेतवे। न याति यमलोकं स स्वर्गतिं तात गच्छति॥४३॥

अतः प्रेत के उद्धार हेतु स्वर्ण का दान देना चाहिए, हे गरुड़! स्वर्ण का दान देने से मृतात्मा यमलोक में नहीं जाता, अपितु वह स्वर्ग में जाता है।।४३।।

चिरं वसेत् सत्यलोके ततो राजा भवेदिह।
रूपवान् धार्मिको वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः॥४४॥

वह चिरकाल तक सत्यलोक में रहता है। तत्पश्चात् इस लोक में रूपवान्, धार्मिक, वाक्पटु, श्री-सम्पन्न और अमित पराक्रमी राजा होता है।।४४।।

कार्पासस्य तु दानेन दूतेभ्यो न भयं भवेत्।
लवणं दीयते यच्च तेन नैव भयं यमात्॥४५॥

कपास (रूई) का दान देने से यमदूतों से कोई भय नहीं होता। नमक का दान देने से यमराज से कोई भय नहीं होता।।४५।।

अयोलवणकार्पासतिलकाञ्चनदानतः। चित्रगुप्तादयस्तुष्टा यमस्य पुरवासिनः॥४६॥

लोहा, नमक, कपास (रूई), तिल और सोने का दान देने से यमपुरवासी चित्रगुप्त आदि सन्तुष्ट होते हैं।।४६।।

सप्तधान्यप्रदानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत्।
तुष्टा भवन्ति येऽन्येऽपि त्रिषु द्वारेष्वधिष्ठिताः॥४७॥

---

१. पाठान्तर-ऊरणः, ऊर्ण ।

२. द्र०- छुरिणः श्यामशबलौ षण्डामर्का उदुम्बराः। शबलाः श्यामदूता ये लोहदानेन प्रीणिताः।। गरुडमहापुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ३०/२८। कुरिणाः सार्वसूत्रापाः शण्डामर्कास्त्वनुर्वराः। शबलाः श्यामदूताश्च लोहदानेन प्रीणिताः।। गरुडपुराण (काशी संस्करण) उ० २०/२३।

सप्तधान्य के दान से धर्मध्वज और यमपुरी के तीनों द्वारों पर स्थित द्वारपाल प्रसन्न होते हैं।।४७।।

व्रीहयो यवगोधूमा मुद्‌गा माषाः प्रियङ्गवः।
चणकाः सप्तमा ज्ञेया सप्तधान्यमुदाहृतम्॥४८॥

(१) धान, (२) जौ, (३) गेहूँ, (४) मूँग, (५) माष (उड़द), (६) प्रियङ्गु (काकुन या कंगुनी) और सातवाँ (७) चना—ये सप्तधान्य कहे गये हैं।।४८।।

गोचर्ममात्रं वसुधा दत्ता पात्रे विधानतः। पुनीति ब्रह्महत्याया दृष्टमेतन्मुनीश्वरैः॥४९॥

सत्पात्र को विधिपूर्वक गोचर्म[1] परिमित भूमि का दान देने से मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होकर पवित्र हो जाता है। ऐसा दिव्यदृष्टि वाले मुनियों का कथन है।।४९।।

न व्रतेभ्यो न तीर्थेभ्यो नान्यदानाद्‌विनश्यति।
राज्ये कृतं महापापं भूमिदानाद्‌विलीयते॥५०॥

राज्य-संचालन में राजा से होने वाला पाप न तो व्रतों को करने से दूर होता है, न तीर्थों में स्नान से और न किसी अन्य वस्तु के दान से दूर होता है, अपितु वह केवल भूमिदान से ही नष्ट होता हैं।।५०।।

पृथिवीं सस्यसम्पूर्णां यो ददाति द्विजायते। स प्रयातीन्द्रभुवने पूज्यमानः सुराऽसुरैः॥५१॥

धान्यपूर्ण भूमि का दान ब्राह्मण को देने वाला मनुष्य देवों और असुरों द्वारा पूजित होता हुआ इन्द्रलोक में जाता है।।५१।।

अत्यल्पफलदानि स्युरन्यदानानि काश्यप। पृथिवीदानजं पुण्यमहन्यहनि वर्द्धते॥५२॥

हे कश्यप के पुत्र गरुड़! अन्य दान अति अल्प फल देने वाले होते हैं, किन्तु भूमि-दान से जनित पुण्य प्रतिदिन बढ़ता रहता है।।५२।।

यो भूत्वा भूमिपो भूमिं नो ददाति द्विजातये।
स नाप्नोति कुटीं ग्रामे दरिद्री स्याद्‌भवे भवे॥५३॥

राजा होकर भी जो व्यक्ति ब्राह्मण को भूमिदान नहीं देता, वह अगले प्रत्येक जन्म में दरिद्र होता है और अपने निवास हेतु ग्राम में एक कुटिया तक उसे नहीं प्राप्त होती।।५३।।

अदानाद्‌भूमिदानस्य भूपतित्वाभिमानतः। निवसेन्नरके यावच्छेषो धारयते धराम्॥५४॥

राजा होने के अभिमान वश भूमि-दान न करने वाला तब तक नरक में रहता है जब तक शेषनाग धरती को धारण करता है।।५४।।

तस्माद्‌भूमीश्वरो भूमिदानमेव प्रदापयेत्। अन्येषां भूमिदानार्थं गोदानं कथितं मया॥५५॥

---

[1] द्र० दशहस्तेन दण्डोऽत्र त्रिंशद् दण्डा निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म ब्रह्मगोचर्म लक्षणम्।। पद्म ६।३२।८। दशहस्तेन कुण्डेन त्रिंशत् कुण्डा निवर्तनम्। तान्येव दश विस्ताराद् गोचर्मैतत्प्रदोऽघभित्।। अग्नि २११।१३-१४। गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितः। तद् गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाघनाशनम्।। भविष्य २।३।२।२५। सवृषं गोसहस्रन्तु यत्र तिष्ठत्यन्त्रितम्। बालवत्सप्रसूतानां तद् गोचर्म इति स्मृतम्।। पद्म ६।३२।९

अत: राजा भूमिदान अवश्य करे। अन्य लोगों के लिए भूमिदान के स्थान पर मैंने गोदान का विधान किया है।।५५।।

ततोऽन्तधेनुर्दातव्या रुद्रधेनुं प्रदायतेत्। ऋणधेनुं ततो दत्त्वा मोक्षधेनुं प्रदापयेत्॥५६॥

दद्याद् वैतरणीं धेनुं विशेषविधिना खग!।
तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात्॥५७॥

अत: मृत्युकाल में (पीछे श्लोक ३३-३४ में अष्ट दानों में) अन्तदान रूप में कथित (१)अन्त-धेनु का दान देकर क्रमशः (२) मृत्युञ्जय रुद्र की सन्तुष्टि से मृत्यु-जन्म पीड़ा निवारण हेतु रुद्रधेनु (३) ज्ञाताज्ञात ऋण से मुक्ति पाने के लिए ऋणधेनु, (४) मोक्ष प्राप्ति हेतु मोक्षधेनु और (५) वैतरणी को सुखपूर्वक पार करने के लिए वैतरणीधेनु का दान विशेष विधि से करे। इन गोदानों में दी गयी गायें मनुष्य को मनसा, वाचा और कर्मणा किये गये पाप से मुक्त करके उसका उद्धार करती हैं।।५६-५७।।

बालत्वे यच्च कौमारे यत्पापं यौवने कृतम्।
वय: परिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि॥५८॥

यन्निशायां तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः। सन्ध्ययोर्यत्कृतं पापं कायेन मनसा गिरा॥५९॥

दत्त्वा धेनुं सकृद् वापि कपिलां क्षीरसंयुताम्।
सोपस्करां सवत्सां च तपोवृत्तसमन्विते॥६०॥

ब्राह्मणे वेदविदुषे सर्वपापैः प्रमुच्यते। उद्धरेदन्तकाले सा दातारं पापसञ्चयात्॥६१॥

मनुष्य ने अपनी बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था या वृद्धावस्था में अथवा पूर्वजन्म में भी प्रात:काल, मध्याह्नकाल, अपराह्णकाल तथा दोनों सन्ध्याओं के समय शरीर से, मन से या वाणी से जो भी पाप किये हों वह तपस्वी और सदाचारी वेदज्ञ ब्राह्मण को एक बार भी दुधारू गौ बछड़े और दोहनी आदि समस्त सामग्रियों सहित दान देने से उन सब पापों से मुक्त हो जाता है। दान में दी गयी वह गौ अन्तकाल में गोदान करने वाले को पाप-राशि से मुक्त करके उसका उद्धार करती है।।५८-६१।।

एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यातुरस्य च गोः शतम्।
सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम्॥६२॥

मृतस्यैतत् पुनर्लक्षं विधिपूतं च तत्समम्। तीर्थपात्रसमोपेतं दानमेकं च लक्षधा॥६३॥

स्वस्थचित्त वाले व्यक्ति के द्वारा एक गौ का दान किये जाने पर उसे जो फल मिलता है, वही फल आसन्न मृत्यु वाले व्यक्ति को एक सौ गायों के दान से मिलता है तथा उतना ही फल मृत्युकाल में प्राण निकलते समय चित्त-विभ्रंश के कारण संज्ञाशून्य व्यक्ति को एक हजार गायों के दान से प्राप्त होता है और वही फल मृत्यु के पश्चात् [मृतक के लिए उसके पुत्रादि बान्धवों के द्वारा] विधिपूर्वक एक लाख गायों का दान देने से प्राप्त होता है। तीर्थ में सत्पात्र को एक गौ का दान भी एक लाख गायों के दान के तुल्य होता है।।६२-६३।।

पात्रे दत्तं च यद्दानं तल्लक्षगुणितं भवेत्। दातुः फलमनन्तं स्यान्न पात्रस्य प्रतिग्रहः॥६४॥

सत्पात्र को प्रदत्त एक गौ के दान का फल लाखगुना अधिक होता है। उस दान का दाता अनन्तफल का भागी होता है और उसके प्रतिगृहीता सुपात्र ब्राह्मण को भी प्रतिग्रह (अर्थात् दान लेने) का दोष नहीं लाता।।६४।।

स्वाध्यायहोमसंयुक्तः परपाकविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्य न लिप्यते॥६५॥

नित्य स्वाध्याय और होम करने वाला तथा परिवार के बाहर किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा पकाया हुआ अन्न न खाने वाला स्वपाकी ब्राह्मण रत्नों से परिपूर्ण पृथिवी का दान लेने पर भी प्रतिग्रह दोष से लिप्त नहीं होता।।६५।।

विषशीतापहौ मन्त्रवह्नी किं दोषभागिनौ। अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत्॥६६॥

भला विष को दूर करने वाले मन्त्र तथा शीत को दूर करने वाली अग्नि भी क्या दोष के भागी होते हैं? कदापि नहीं। किन्तु कुपात्र को दान में दी गयी गाय दाता को नरक में गिराती है।।६६।।

कुलैकशतसंयुक्तं गृहीतारं तु पातयेत। नाऽपात्रे विदुषा देया ह्यात्मनः श्रेय इच्छता॥६७॥

दान लेने वाले कुपात्र ब्राह्मण को भी वह गौ उसके कुल के एक सौ एक पीढ़ी के पुरुषोंसहित नरक में गिराती है। अतः अपना श्रेय चाहने वाला विद्वान् व्यक्ति कुपात्र को गोदान न करे।।६७।।

एका ह्येकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन।
सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम्॥६८॥

एक गौ का दान केवल एक ही ब्राह्मण को देना चाहिए। अनेक ब्राह्मणों को एक गौ का दान कदापि नहीं देना चाहिए। उस दान में दी हुई गौ का यदि विक्रय या विभाजन किया गया, तो वह दाता के कुल की सात पीढ़ियों तक के पुरुषों को दग्ध कर देती है।।६८।।

कथिता या मया पूर्वं तव वैतरणी नदी। तस्या ह्युद्धरणोपायं गोदानं कथयामि ते॥६९॥

मैंने पहले तुमसे जिस वैतरणी नदी के विषय में कहा था, उसको पार करने के उपाय रूप में गोदान की विधि को मैं अब तुम्हें बतलाता हूँ।।६९।।

कृष्णां वा पाटलां वापि धेनुं कुर्यादलंकृताम्।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरीं कांस्यपात्रोपदोहिनीम्॥७०॥

इसके लिए कृष्ण अथवा रक्त वर्ण की गौ को अलंकृत करे। उस गौ के सींग सोने और खुर चाँदी की परत से मंढे गये हों और उसे दुहने का पात्र काँसे का हो।।७०।।

कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां कण्ठघण्टासमन्विताम्।
कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रं सचलैकम्॥७१॥
यमं हेमं न्यसेत् तत्र लोहदण्डसमन्विताम्।
कांस्यपात्रे घृतं कृत्वा सर्वं तस्योपरि न्यसेत्॥७२॥

उसको एक जोड़ा कृष्ण वर्ण के वस्त्रों से आच्छादित किया गया हो और उसके गले में घण्टी बँधी

हो। तब भूमि पर रुई फैलाकर उसके ऊपर वस्त्रसहित ताम्रपात्र को स्थापित करके उसके ऊपर लोहे के दण्डसहित स्वर्णनिर्मित यम की प्रतिमा को तथा घृत-पूरित काँसे के पात्र को रखे।।७१-७२।।

नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्।
गर्तं विधाय सजलं कृत्वा तस्मिन्क्षिपेत्तरीम्॥७३॥

तब ईख की नाव बनाकर उसे रेशम के धागे से आवेष्टित करे और भूमि पर एक गड्ढा खोदकर उसे जल से पूरित करके उसके ऊपर उस ईख की नाव को रख दे।।७३।।

तस्योपरि स्थितां कृत्वा सूर्यदेहमुद्भवाम्। धेनुं संकल्पयेत् तत्र यथाशास्त्रविधानतः॥७४॥

तब उसके ऊपर सूर्य की देह से उत्पन्न गौ को खड़ी करके शास्त्रीय विधान के अनुसार उसके दान का संकल्प करे।।७४।।

सालंकाराणि वस्त्राणि ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत्।
पूजां कुर्याद्विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥७५॥

तब प्रतिग्रहीता ब्राह्मण को आभूषणसहित वस्त्रों का दान देकर गन्ध, अक्षत और पुष्प आदि से उसकी पूजा करे।।७५।।

पुच्छं संगृह्य धेनोस्तु नावमाश्रित्य पादतः। पुरस्कृत्य ततो विप्रमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥७६॥

तब उस गौ की पूँछ को पकड़ कर ईख की नाव में पैर रख कर और ब्राह्मण को अपने आगे करके यह मन्त्र पढ़े।।७६।।

भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम्। त्राता त्वं हि जगन्नाथ! शरणागतवत्सल!॥७७॥

हे जगत् के स्वामी! हे शरणागतवत्सल! आप भवसागर में डूबे हुए और इस [भवसागर] की शोक और सन्ताप रूपी लहरों से दुःखी जनों के रक्षक हैं।।७७।।

विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर। सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः॥७८॥

हे ब्राह्मण - श्रेष्ठ! आप विष्णुस्वरूप हैं। हे भूमिदेव! आप मेरा उद्धार करें। मैंने आपको दक्षिणासहित इस वैतरणी गौ का दान दिया है। आपको नमस्कार है।।७८।।

यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम्। तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥७९॥

महाघोर यममार्ग में पड़ने वाली सौ योजन चौड़ी उस वैतरणी नदी को पार करने की इच्छा से मैं आपको इस वैतरणी गौ का दान दे रहा हूँ। आपको नमस्कार है।।७९।।

धेनुके मां प्रतीक्षस्व यमद्वारमहापथे। उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते॥८०॥

हे वैतरणी गौ! तुम यमद्वार के महामार्ग में पड़ने वाली वैतरणी नदी को पार कराने के लिए मेरी प्रतीक्षा करना। हे वैतरणी गौ! तुमको नमस्कार है।।८०।।

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥८१॥

मेरे आगे गायें हों, मेरे पीछे भी गायें हों, मेरे हृदय में गायें वास करें और मैं गायों के मध्य में निवास करूँ।।८१।।

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे प्रतिष्ठिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥८२॥

जो लक्ष्मी सभी प्राणियों में अवस्थित है और जो लक्ष्मी देव-देव विष्णु में प्रतिष्ठित है, वही देवी गौ रूप में अवस्थित होकर मेरे पापों का नाश करे।।८२।।

इति मन्त्रैश्च सम्प्रार्थ्य साञ्जलिर्धेनुकां यमम्। सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥८३॥

इन मन्त्रों से प्रार्थना करके हाथ जोड़कर उस वैतरणी गौ तथा यम की प्रतिमा की प्रदक्षिणा करके उन दोनों को ही ब्राह्मण को प्रदान करे।।८३।।

एवं दद्याद् विधानेन यो गां वैतरणीं खग!। स याति धर्ममार्गेण धर्मराजसभान्तरे॥८४॥

इस प्रकार जो मनुष्य विधान पूर्वक वैतरणी गौ का दान करता है, वह धर्ममार्ग से धर्मराज की सभा में जाता है।।८४।।

[1]स्वस्थाऽवस्थे शरीरेऽत्र वैतरण्या व्रतं चरेत्। देया च विदुषे धेनुस्तां नदीं तर्तुमिच्छता॥८५॥

स्वस्थ शरीर रहने पर (अथवा अस्वस्थ हो जाने पर भी) वैतरणी गौ का दान करे। वैतरणी नदी को पार करने की इच्छा वाले को चाहिए कि वह विद्वान् प्रतिग्रहीता ब्राह्मण को ही उस गौ का दान करे।।८५।।

सा नायाति महामार्गे गोदानेन नदी खग!। तस्मादवश्यं दातव्यं पुण्यकालेषु सर्वदा॥८६॥

हे गरुड़! वैतरणी गौ का दान कर देने पर वह नदी यमलोक के महामार्ग में नहीं आती। अतः सर्वदा पुण्यकाल में अवश्य गोदान करना चाहिए।।८६।।

गङ्गादिसर्वतीर्थेषु ब्राह्मणावसथेसु च। चन्द्रसूर्योपरागेषु संक्रान्तौ दर्शवासरे॥८७॥
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते युगादिषु। अन्येषु पुण्यकालेषु दद्याद्गोदानमुत्तमम्॥८८॥

गङ्गा आदि तीर्थों में, ब्राह्मणों के निवास-स्थलों में, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समय, संक्रान्ति के दिन, अमावास्या के दिन, उत्तरायण की मकर संक्रान्ति और दक्षिणायन की कर्क संक्रान्ति के दिन, विषुवत् अर्थात् मेष और तुला संक्रान्तियों के दिन, व्यतीपात[2] योग में, अक्षयतृतीया प्रभृति युगादि[3] तिथियों में तथा अन्य पुण्य कालों में भी उत्तम गौ को देना चाहिए।।८७-८८।।

---

१. गरुडमहापुराण ध.का.प्रे.ख. १६/३० से उद्धृत पाठ।

२. रविवार को श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्दा, श्लेषा या मृगशिरा नक्षत्र हो और अमावस्या तिथि पड़े तब व्यतीपात योग होता है - श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवत्य-मस्तके यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः च उच्यते।। द्र०-पराशर माधव आ० का० पृ० ६५६;चतुर्वर्गचिन्तामणि कालनिर्णयखण्ड पृ० ६७३।

३. युगादि तिथियों का विवरण धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों यथा- हेमाद्रि त चतुर्वर्ग चिन्तामणि के कालनिर्णय खण्ड पृ० ६४९-६५१ तथा श्राद्धकल्प पृ० २५१; देवण भट्ट कृत स्मृतियोंचन्द्रिका के श्राद्धकाण्ड पृ० २७-२९; पराशर माधव आचारकाण्ड पृ० ६५७; निर्णय सिन्धु पृ० ७१-७२ आदि ग्रन्थों में विष्णुपुराण ३/१४/१२; वराहपुराण (काशिराज न्यास सं०) १३/४२-४३; नारदपुराण पू० ५६/१४७-१४८; मत्स्यपुराण१७/४-५; ब्रह्मपुराण१११/५५-५६ (नाग सं०); भविष्यपुराण ४/१०१/४-६; स्कन्द ६/२१७/६१-६२ आदि से दिया गया है। तदनुसार कृतयुगारम्भ की तिथि वैशाख शुक्लतृतीया, त्रेतायुग के आरम्भ की तिथि कार्तिक शुक्ल नवमी, द्वापर युग के आरम्भ की तिथि भाद्रकृष्ण त्रयोदशी तथा कलियुगारम्भ की तिथि की माघ अमावास्या है।

यदैव जायते श्रद्धा पात्रं सम्प्राप्यते यदा।
स एव पुण्यकालः स्यादयतः सम्पत्तिरस्थिरा॥८९॥

जब भी मन में दान देने के लिए श्रद्धा उत्पन्न हो जाय और जब भी दान का पात्र प्राप्त हो जाय वही दान का पुण्य काल है [अतः उस समय दान देना चाहिए], क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर होती है।।८९।।

अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसञ्चयः॥९०॥

मनुष्य का शरीर नश्वर है, धन-सम्पति भी सदा नहीं रहती और मृत्यु नित्य निकट आती रहती है। अतः दान देकर धर्म का सञ्चय करते रहना चाहिए।।९०।।

आत्मवित्तानुसारेण तत्र दानमनन्तकम्। देयं विप्राय विदुषे स्वात्मनः श्रेय इच्छता॥९१॥

अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार प्रदत्त दान अनन्त फल-प्रद होता है। अतः अपना श्रेय चाहने वाला मनुष्य सत्पात्र ब्राह्मण[१] को अवश्य दान दे।।९१।।

अल्पेनापि हि वित्तेन स्वहस्तेनात्मने कृतम्।
तदक्षय्यं भवेद्दानं तत्कालं चोपतिष्ठति॥९२॥

अपने कल्याण हेतु अपने हाथ से दिया हुआ अंल्प धन का दान भी अक्षय होता है और उसका शुभ फल मृत्यु के तत्काल बाद ही प्राप्त होने लगता है।।९२।।

गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि। अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि॥९३॥

मृत्यु के पश्चात् जीव अपने द्वारा प्रदत्त दान रूपी पाथेय को लेकर यमलोक के महामार्ग में सुख से जाता है, अन्यथा दानरूपी पाथेय से रहित होने पर वह उस मार्ग में क्लेश पाता है।।९३।।

यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः।
यमलोकपथे तानि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः॥९४॥

भूलोक में मनुष्य जो भी दान देते हैं, वे सब उन्हें आगे यमलोक के मार्ग में प्राप्त होते हैं।।९४।।

महापुण्यप्रभावेण मानुषं जन्म लभ्यते। यस्तत्प्राप्य चरेद्धर्मं स याति परमां गतिम्॥९५॥

मनुष्ययोनि में जन्म बड़े पुण्य के प्रभाव से मिलता है। जो प्राणी उस मानवयोनि में जन्म पाकर धर्म का पालन करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।।९५।।

अविज्ञाय नरो धर्मं दुःखमायाति याति च। मनुष्यजन्मसाफल्यं केवलं धर्मसेवनम्॥९६॥

धर्म को न जानने (और उसका पालन न करने) वाला मनुष्य दुःखपूर्ण भवसागर में जन्म लेता और मरता रहता है। मनुष्य रूप में जन्म की सार्थकता केवल धर्म के पालन में ही है।।९६।।

---

१. वेदशास्त्रादि का ज्ञाता, सत्कर्मनिष्ठ सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण ही दान का पात्र होता है। मूर्ख ब्राह्मण दान का पात्र नहीं है- ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते। अनाथ और अपंग और कुष्ठी आदि दान के पात्र नहीं, अपितु दया के पात्र होते हैं - पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम्। स्कन्द २/१/१६/३४।

धनपुत्रकलत्रादि शरीरमपि बान्धवाः। अनित्यं सर्वमेवेदं तस्माद्धर्मं समाचरेत्॥९७॥

मनुष्य का धन, पुत्र, पत्नी, बान्धव और उसका शरीर आदि सब कुछ अनित्य है। अतः उसे धर्म करना चाहिए।।९७।।

तावद्बन्धुः पिता तावद्यावज्जीवति मानवः।
मृतानामन्तरं ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्तते॥९८॥

जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तभी तक भाई-बन्धु या पिता आदि का स्नेहमय सम्बन्ध रहता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह स्नेह-सम्बन्ध क्षणभर में ही निवृत्त होने लगता है।।९८।।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति विद्यान्मुहुर्मुहुः।
जीवन्नपीति सञ्चिन्त्य मृतानां कः प्रदास्यति॥९९॥

अतः उसे बार-बार यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उसकी जीवितावस्था में भी उसका अपना आत्मा ही उसका बन्धु है। उसकी मृत्यु के पश्चात् अन्य कौन उसके निमित्त दान देगा।।९९।।

एवं जानन्निदं सर्वं स्वहस्तेनैव दीयताम्।
अनित्यं जीवितं यस्मात् पश्चात्कोऽपि न दास्यति॥१००॥

ऐसा जान कर अपने हाथ से ही दान देना चाहिए, क्योंकि जीवन अनित्य है और उसकी मृत्यु के पश्चात् कोई भी उसके निमित्त दान नहीं देगा।।१००।।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥१०१॥

मनुष्य के मृत शरीर को भूमि में काठ या मिट्टी के ढेले के समान उपेक्षित छोड़कर उससे मुँह मोड़कर बान्धव लौट जाते हैं। केवल धर्म ही उसके साथ जाता है।।१०१।।

गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात्सर्वबान्धवाः।
शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति॥१०२॥

मृत पुरुष का साथ छोड़ कर उसकी धन-सम्पत्ति उसके घर में ही पड़ी रह जाती है और श्मशान से उसके सभी बन्धु-बान्धव उसका साथ छोड़ कर लौट जाते हैं, किन्तु उसके द्वारा किया गया शुभ या अशुभ कर्म ही उसका अनुगमन करता है।।१०२।।

शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम्।
पुण्यं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः॥१०३॥

मृतक के शरीर को अग्नि भस्मसात् कर देता है। केवल उसके द्वारा किया गया कर्म ही उसके साथ रह जाता है। उसने जो भी पुण्य या पाप-कर्म किया हो, उसका भोग ही वह आगे सर्वत्र करता है।।१०३।।

न कोऽपि कस्यचिद्बन्धुः संसारे दुःखसागरे।
आयाति कर्मसम्बन्धाद् याति कर्मक्षये पुनः॥१०४॥

इस दु:खमय संसार-सागर में कोई किसी का बन्धु नहीं है। प्राणी अपने कर्म के सम्बन्ध से संसार में जन्म लेता है और कर्म के फल का भोग पूरा हो जाने पर देहत्याग कर चला जाता है।।१०४।।

मातृपितृसुतभ्रातृबन्धुदारादिसङ्गमः। प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः॥१०५॥

माता-पिता, पुत्र, भ्राता, बन्धु, पत्नी आदि के साथ सङ्गम मानो प्याऊ या जलाशय में मिलने वाले जीवों के समान तथा नदी के प्रवाह में सङ्गत काष्ठों के समान है, जो कि कुछ क्षण बाद चलायमान होकर पुन: पृथक्-पृथक् हो जाते हैं।।१०५।।

कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च कस्य भार्या धनं च वा।
संसारे नास्ति कः कस्य स्वयं तस्मात्प्रदीयताम्॥१०६॥

किसके पुत्र और पौत्र? किसकी स्त्री अथवा किसका धन? संसार में कोई किसी का नहीं है। अत: स्वयं अपने हाथ से ही दान दीजिए।।१०६।।

आत्मायत्तं धनं यावत् तावद्विप्रे समर्पयेत्।
पराधीने धने जाते न किञ्चिद्वक्तुमुत्सहेत्॥१०७॥

जब तक धन अपने आधीन है, तभी तक उसे ब्राह्मण को दान कर दे। जब अपना धन दूसरों के हाथ में चला जाता है, तो वह मरणासन्न व्यक्ति उनसे उस धन का दान देने के लिए कहने का साहस भी नहीं कर पाता है।।१०७।।

पूर्वजन्मकृताद्दानादत्र लब्धं धनं बहु।
तस्मादेवं परिज्ञाय धर्मार्थं दीयतां धनम्॥१०८॥

पूर्वजन्म के किये गये दान के फलस्वरूप इस जन्म में प्रभूत धन प्राप्त हुआ है। अत: ऐसा विचार करके धर्म के निमित्त धन का दान देना चाहिए।।१०८।।

धर्मात्सञ्जायतेऽर्थश्च धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत्॥१०९॥

धर्म का पालन करने से अर्थ की प्राप्ति होती है। धर्माचारण से ही कामोपभोगों का सुख मिलता है और धर्माचारण ही मोक्ष-साधक बनता है। अत: मनुष्य को धर्माचरण करना चाहिए।।१०९।।

श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः।
निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः॥११०॥

धर्म को श्रद्धा के द्वारा धारण किया जाता है अर्थात् धर्म का आचरण श्रद्धा से होता है, न कि बहुत-सी धनराशि से। प्राचीन काल के अकिञ्चन मुनिजन श्रद्धापूर्वक धर्माचरण करने के फलस्वरूप ही स्वर्ग में गये थे।।११०।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि नरस्य प्रयतात्मनः॥१११॥

भगवद् गीता में भगवान् ने कहा है कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल और जल आदि मुझे प्रदान करता है, मैं उस शुद्धबुद्धि वाले संयमी भक्त के द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त उन वस्तुओं को सहर्ष ग्रहण करता हूँ।।१११।।

तस्मादवश्यं दातव्यं तदा दानं विधानतः।
अल्पं वा बहु वेतीमां गणानां नैव कारयेत्॥११२॥

अतः मृत्यु के समय (आतुरकाल) में विधिविधान पूर्वक अवश्य दान देना चाहिए। वह दान अल्प या अधिक जितना भी हो, उस विषय में कोई गणना या चिन्ता नहीं करनी चाहिए।।११२।।

धर्मात्मा च स पुत्रो वै दैवतैरपि पूज्यते।
दापयेद्यस्तु दानानि पितरं ह्यातुरं भुवि॥११३॥

जो धर्मात्मा पुत्र भूमि में आतुर अवस्था में पड़े हुए पिता के हाथ से दान दिलवाता है, वह देवताओं के द्वारा भी पूजनीय होता है।।११३।।

पित्रोर्निमित्तं यद्वित्तं पुत्रैः पात्रे समर्पितम्।
आत्माऽपि पावितस्तेन पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥११४॥

पुत्रों के द्वारा अपने माता-पिता के निमित्त सत्पात्र ब्राह्मण को जो भी दान दिया जाता है, उससे स्वयं उन दान-दाता पुत्रों की आत्मा तो पवित्र होती ही है, उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र भी पवित्र हो जाते हैं।।११४।।

पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरेव च। भगिन्यां दशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम्॥११५॥

स्वयं अपने हित के लिए प्रदत्त दान की अपेक्षा पिता के निमित्त प्रदत्त दान का सौगुना अधिक पुण्य होता है, माता के निमित्त प्रदत्त दान का सहस्र (हजार) गुना पुण्य होता है एवं बहन के निमित्त प्रदत्त दान का दश हजार गुना पुण्य होता है और सोदर भ्राता के निमित्त प्रदत्त दान का अनन्त पुण्य होता है अथवा (इसका यह तात्पर्य भी समझा गया है कि) अपने द्वारा प्रदत्त दान की अपेक्षा पिता के हाथों दिलवाये गये दान का सौ गुना अधिक पुण्य होता है, माता के हाथों दान दिलवाने का सहस्रगुना और भगिनी के हाथों दिलवाये गये दान का दश हजार गुना अधिक पुण्य होता है तथा सहोदर भ्राता के हाथों से दिलवाया गया दान अक्षय पुण्यदायक होता है।।११५।।

न चैवोपद्रवा दातुर्न वा नरकयातनाः। मृत्युकाले न च भयं यमदूतसमुद्भवम्॥११६॥

दान देने वाला न तो उपद्रवों से पीड़ित होता है, न उसे नरकयातना भोगनी पड़ती है और न मृत्युकाल में उसे यमदूतों का कोई भय होता है।।११६।।

यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके।
मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पापिनः खग॥११७॥

हे गरुड़! जो कदर्य मनुष्य आतुरकाल में लोभवश दान नहीं देते हैं, वे पापी मृत्यु के पश्चात् शोकमग्न होते हैं।।११७।।

पुत्राः पौत्राः सहभ्रात्रा सगोत्राः सुहृदस्तु ये।
यच्छन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्नास्ते न संशयः॥११८॥

॥इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे आतुरदाननिरूपणो नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥

जो पुत्र, पौत्र, भ्राता, सगोत्रजन और सुहृद्जन अपने पिता आदि के निमित्त उनके आतुरकाल (मरणासन्न काल) में दान नहीं देते, वे निःसंदेह ब्रह्महत्यारे हैं।।११८।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में आतुरदान निरूपण नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।८।।

❖❖❖

अथ नवमोऽध्यायः

म्रियमाण-कृत्य निरूपण

श्री गरुड उवाच

कथितं भवता सम्यग्दानमातुरकालिकम्। म्रियमाणस्य यत्कृत्यं तदिदानीं वद प्रभो॥१॥

गरुड़ बोले—हे भगवन्! आपने आतुरकालिक दान के विषय में भली-भाँति बतलाया। अब मनुष्य के प्राण त्यागते समय जो कृत्य करने चाहिए, उनके विषय में बतलाइए।।१।।

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि देहत्यागस्य तद्विधिम्।
मृता येन विधानेन सद्गतिं यान्ति मानवाः॥२॥

श्री भगवान् बोले—हे गरुड़! देहत्याग के समय करने योग्य कृत्यों की विधि सुनो। इन कृत्यों को यथाविधान करके प्राणत्याग करने वाले मनुष्य सद्गति को प्राप्त करते हैं।।२।।

कर्मयोगाद्यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः। तुलसीसन्निधौ कुर्यान्मण्डलं गोमयेन तु॥३॥

जब मानव देहधारी पुरुष कर्मवश देह-त्याग करने लगता है, तो उस समय वह तुलसी के पौधे के निकट गोबर से एक मण्डल बनाये या बनवाये।।३।।

तिलांश्चैव विकीर्याथ दर्भांश्चैव विनिक्षिपेत्।
स्थापयेदासने शुभ्रे शालग्रामशिलां तदा॥४॥

उस मण्डल के ऊपर तिलों को बिखेर कर दर्भों (कुशों) को बिछाये और तब उनके ऊपर श्वेत वस्त्र के आसन पर शालग्राम शिला को स्थापित करे।।४।।

शालग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा। तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता॥५॥

शालग्राम शिला पाप, दोष और भय को दूर करती है, उसके सानिध्य में प्राणत्याग करने से मनुष्य निश्चयमेव मुक्ति प्राप्त करता है।।५।।

तुलसीविटपच्छाया यत्रास्ति भवतापहा। तत्रैव मरणान्मुक्तिः सर्वदा दानदुर्लभा॥६॥

जहाँ पर सांसारिक संताप को दूर करने वाली तुलसीवृक्ष की छाया विद्यमान हो, वहाँ प्राणत्याग करने से सदैव मुक्ति प्राप्त होती है, जो कि सभी दानों को देने पर भी दुर्लभ होती है।।६।।

तुलतसीविटपस्थानं गृहे यस्यावतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिङ्कराः॥७॥

जिसके घर में तुलसीवृक्ष के लिए स्थान विद्यमान रहता है, उसका घर तीर्थस्वरूप है। उसमें यमदूत नहीं आते हैं।।७।।

तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति। यमस्तं नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि॥८॥

जो मनुष्य तुलसी की मञ्जरी को धारण कर या अपने साथ में रख कर प्राणत्याग करता है, वह भले ही सैकड़ों पाप किया हो, तब भी यमराज उसे नहीं देख सकते।।८।।

तस्या दलं मुखे कृत्वा तिलदर्भासने मृतः। नरो विष्णुपुरं याति पुत्रहीनोऽप्यसंशयः॥९॥

तुलसीदल को मुख में धारण करके तिलों के ऊपर फैलाये हुए कुशों के ऊपर प्राणत्याग करने वाला मनुष्य पुत्रहीन होने पर भी निःसन्देह विष्णुलोक को प्राप्त होता है।।९।।

तिलाः पवित्रास्त्रिविधा दर्भाश्च तुलसी तथा।
नरं निवारयन्त्येते दुर्गतिं यान्तमातुरम्॥१०॥

तिल श्वेत वर्ण के हों या कृष्ण वर्ण के या कपिल वर्ण के हों, वे तीनों प्रकार के तिल, दर्भ और तुलसी ये तीनों पवित्र होते हैं और दुर्गति को प्राप्त करते हुए आतुर मनुष्य का उद्धार करते हैं।।१०।।

मम स्वेदसमुद्भूता यतस्ते पावनास्तिलाः।
असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्ततः॥११॥

भगवान् विष्णु ने कहा है कि तिल मेरे पसीने से उत्पन्न हुए हैं, अतः पवित्र हैं और इसीलिए उन तिलों को देखकर असुर, दानव और दैत्य पलायित हो जाते हैं।।११।।

दर्भा विभूतिर्मे तार्क्ष्य! मम रोमसमुद्भवाः।
अतस्तत् स्पर्शनादेव स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः॥१२॥

हे गरुड़! मेरे रोमों से उत्पन्न कुश मेरी विभूति हैं। अतः मृत्युकाल में उनका स्पर्श होने मात्र से भी मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं।।१२।।

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः।
कुशाग्रे शङ्करो देवस्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः॥१३॥

कुश के मूल में ब्रह्मा स्थित हैं, कुश के मध्य में विष्णु स्थित हैं और कुश के अग्रभाग में शङ्कर स्थित हैं। इस प्रकार तीनों देवता कुश में स्थित हैं।।१३।।

अतः कुशा वह्नि-मन्त्र-तुलसी-विप्र-धेनवः।
नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः॥१४॥

अतः कुश, अग्नि, मन्त्र, तुलसी, विप्र और गौ—ये सब पुनः-पुनः उपयोग में लाये जाने पर भी निर्माल्य अर्थात् अशुद्ध नहीं होते।।१४।।

दर्भाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने।
मन्त्रा गौस्तुलसी नीचे चितायां च हुताशनः॥१५॥

किन्तु पिण्डदान में प्रयुक्त दर्भ, प्रेत के निमित्त भोजन कर लेने पर ब्राह्मण, नीच कर्म करने वाले अथवा निम्न जाति के मनुष्य के मुख से उच्चारित मन्त्र तथा उसके घर की गौ एवं तुलसी और चिता की अग्नि—ये सब निर्माल्य अर्थात् अपवित्र (अतएव अग्राह्य) होते हैं।।१५।।

गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भास्तरणसंस्कृते। भूतले ह्यातुरं कुर्यादन्तरिक्षं विवर्जयेत्॥१६॥

गोबर से लीपे हुए तथा कुशों को बिछा कर पवित्र किये गये भूतल पर आतुर को लिटावे। उसे अन्तरिक्ष (अर्थात् चौकी, पलंग या खटिया आदि) में न रहने दे।।१६।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे देवा हुताशनः।
मण्डलोपरि तिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम्॥१७॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य सभी देवता और अग्नि-ये सब मण्डल के ऊपर अधिष्ठित होते हैं, अतः (इनके आवाहन और पूजन के लिए) मण्डल बनावे।।१७।।

सर्वत्र वसुधा पूता लेपो यत्र न विद्यते। यत्र लेपः कृतस्तत्र पुनर्लेपेन शुद्ध्यति॥१८॥

जो भूमि लेपरहित (अर्थात् मल-मूत्र या जूठन के दाग-धब्बों से रहित) हो, वह सर्वत्र पवित्र होती है, किन्तु जो भूमि लेपयुक्त हो (अर्थात् जो पहले कभी लीपी जा चुकी हो या मल-मूत्र या जूठन आदि के लेप से दूषित हो) वह पुनः लीपने से शुद्ध हो जाती है।।१८।।

राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताः प्रेताः यमानुगाः।
अलिप्तदेशे खट्वायामन्तरिक्षे विशन्ति च॥१९॥

राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत और यमदूत आदि बिना लीपी हुई अशुद्ध भूमि में, खाट में तथा अन्तरिक्ष में (अर्थात् भूतल से ऊपर आकाशतक के रिक्त स्थान में) प्रविष्ट हो जाते हैं।।१९।।

अतोऽग्निहोत्रं श्राद्धं च ब्रह्मभोज्यं सुरार्चनम्।
मण्डलेन विना भूम्यामातुरं नैव कारयेत्॥२०॥

अतः (गोबर से लीपी हुई) भूमि के ऊपर मण्डल की रचना किये विना अग्निहोत्र, श्राद्ध, ब्राह्मण- भोजन और देवों का पूजन एवं आतुर (मरणासन्न) व्यक्ति का स्थापन न करावे।।२०।।

लिप्तभूम्यामतः कृत्वा स्वर्ण रत्नं मुखे क्षिपेत्।
विष्णो पादोदकं दद्याच्छालग्रामस्वरूपिणः॥२१॥

अतः आतुर व्यक्ति को लीपी हुई भूमि पर लिटाकर ही उसके मुख में स्वर्ण और रत्न डाले और उसे शालग्राम शिला के रूप में स्थित भगवान् विष्णु का चरणामृत पिलावे।।२१।।

शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुमात्रकम्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो वैकुण्ठभुवनं व्रजेत्॥२२॥

शालग्राम शिला के स्पर्श से पवित्र जल की एक बूंद मात्र भी जो मनुष्य पी लेता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर बैकुण्ठलोक को प्राप्त होता है।।२२।।

ततो गंगाजलं दद्यान्महापातकनाशनम्। सर्वतीर्थकृतस्नानदानपुण्यफलप्रदम्॥२३॥

तब उस आतुर को गङ्गाजल पिलावें, जो कि महापातकों का नाश करता है और सभी तीर्थों में किये जाने वाले स्नान और दान के पुण्यफल को प्रदान करता है।।२३।।

चान्द्रायणं चरेद्यस्तु सहस्रं कायशोधनम्।
पिबेद्यश्चैव गङ्गाम्भः समौ स्यातामुभावपि॥२४॥

जो मनुष्य शरीर शुद्धिकारक सहस्र चान्द्रायण करता है और जो गङ्गाजल का पान करता है, वे दोनों समान रूप से पवित्र होते हैं।।२४।।

अग्निं प्राप्य यथा तार्क्ष्य! तूलराशिर्विनश्यति।
तथा गङ्गाम्बुपानेन पातकं भस्मसाद्भवेत्॥२५॥

हे गरुड़! जैसे अग्नि के सम्पर्क से रुई की विशाल राशि जल कर समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार गङ्गाजल का पान करने से पातक-राशि भस्मसात् हो जाती है।।२५।।

यस्तु सूर्यांशुसन्तप्तं गंगायाः सलिलं पिबेत्। स सर्वयोनिनिर्मुक्तः प्रयाति सदनं हरेः॥२६॥

जो मनुष्य सूर्य की किरणों से संतप्त गङ्गाजल का पान करता है, वह सभी योनियों में जन्म पाने से मुक्ति पाकर विष्णु के धाम को प्राप्त करता है।।२६।।

नद्यो जलावगाहेन पावयन्तीतरा जनान्।
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात्॥२७॥
पुनात्यपुण्यान्पुरुषान् शतशोऽथ सहस्रशः।
गंगा तस्मात्पिबेत्तस्या जलं संसारतारकम्॥२८॥

अन्य नदियाँ मनुष्यों को अपने जल में स्नान करने पर ही पवित्र करती हैं, जब कि गङ्गा अपने दर्शन, अथवा अपने जल के स्पर्श, पान (पीने) अथवा उस 'गङ्गा' नाम के कीर्तन से भी सैकड़ों और हजारों पुण्यहीन या अपवित्र मनुष्यों को भी पवित्र कर देती है। अतः संसार-सागर से पार लगाने वाले उस गङ्गा के जल का पान करे।।२७-२८।।

गंगा गंगेति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि। मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि॥२९॥

जब प्राण निकल कर गले तक आ चुके हों, उस समय भी जो मनुष्य 'गङ्गा' 'गङ्गा' ऐसा कहता है, वह मृत्यु के पश्चात् विष्णुपुरी में जाता है और पुनः भूलोक में जन्म नहीं पाता।।२९।।

उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः पुरुषः श्रद्धयाऽन्वितः।
चिन्तयेन्मनसा गङ्गां सोऽपि याति परां गतिम्॥३०॥

जो मनुष्य प्राण निकलते समय भी श्रद्धाभाव से युक्त होकर मन से गङ्गा का चिन्तन करता है, वह भी परमगति को प्राप्त करता है।।३०।।

अतो ध्यायेन्नमेद्गङ्गां संस्मरेत्तज्जलं पिबेत्।
ततो भागवतं किञ्चिच्छृणुयान्मोक्षदायकम्॥३१॥

अतः गङ्गा का ध्यान करते हुए उसे प्रणाम करे तथा उसका स्मरण करे और उसके जल का पान करे। तत्पश्चात् जितना और जो कुछ भी संभव हो सके, श्रीमद्भागवतपुराण की मोक्षदायिनी कथा का श्रवण करे।।३१।।

श्लोकं श्लोकार्धपादं वा योऽन्ते भागवतं पठेत्।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन॥३२॥

जो मनुष्य अन्त समय में श्रीमद्भागवत का एक श्लोक या आधा श्लोक अथवा चौथाई श्लोक भी पढ़ता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और उसका इस भवसागर में पुनरागमन कदापि नहीं होता।।३२।।

वेदोपनिषदां पाठाच्छिवविष्णु-स्तवादपि।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां मरणं मुक्तिदायकम्॥३३॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों के मरण काल में वेदों और उपनिषदों का पाठ तथा शिव और विष्णु की स्तुति मुक्तिदायक होती है।।३३।।

प्राणप्रयाणसमये कुर्यादनशनं खग!। दद्यादातुरसंन्यासं विरक्तस्य द्विजन्मनः॥३४॥

हे गरुड़! प्राण-त्याग का समय आ जाने पर मनुष्य अन्न और जल को ग्रहण न करते हुए अनशन व्रत करे। प्राणत्याग के पूर्व विरक्त प्रकृति के द्विजन्मा (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को आतुर संन्यास[१] ग्रहण करावे।।३४।।

संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि। मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि॥३५॥

प्राणों के कण्ठगत हो जाने पर भी जो मनुष्य अपने मुख से 'मैंने संन्यास ले लिया है'[२] ऐसा कहता है, वह मृत्यु के पश्चात् विष्णुलोक में जाता है। उसका भूलोक में पुनर्जन्म नहीं होता।।३५।।

---

१. आतुरसंन्यास का विधान ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णो के लिए है (विशेष विवरण हेतु द्र०-पराशरमाधव आचरण काण्ड पृ. ५०५)

२.आतुरसंन्यास में 'ॐ भुर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया' इत्यादि प्रैषमन्त्रों का उच्चारण ही पर्याप्त माना गया है इसके प्रमाण रूप में निर्णयसिन्धु (निर्णयसागर प्रेस संस्करण) पृ० ४४१ में ये उद्धरण दिये गये हैं- भारते- आतुराणां तु संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत्।। जाबालिश्रुतावपि-यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्। इति। आतुर-संन्यास के लिए आत्मश्राद्धादि दण्डधारणपर्यन्त विविधकृत्य विहित नहीं हैं, क्योंकि उनको कर लेने पर मनुष्य चतुर्थाश्रमी (संन्यासाश्रम वाला) हो जाता है, तब वह दाहकर्म, तिलोकदान और पिण्डदान का अधिकारी नहीं रह जाता। आतुर-संन्यास की विधि हेतु देखिए अन्त्यकर्मदीपक पृ० १०३-१०४

एवं जातविधानस्य धार्मिकस्य तदा खग!।
ऊर्ध्वच्छिद्रेण गच्छन्ति प्राणास्तस्य सुखेन हि॥३६॥

हे गरुड़! इस प्रकार जिस धार्मिक मनुष्य के आतुर-कालिक सभी कृत्य विधि-विधान-पूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं, उसके प्राण शरीर के ऊपर के सात छिद्रों में से किसी एक छिद्र में से होकर सुखपूर्वक निकलते हैं।।३६।।

मुखं च चक्षुषी नासे कर्णौ द्वाराणि सप्त च।
एभ्यः सुकृतिनो यान्ति योगिनस्तालुरन्ध्रतः॥३७॥

पुण्यात्माओं के प्राण मुख, आँखों, नासिकारन्ध्रों या कानों-इन सात द्वारों में से किसी एक द्वार से होकर बाहर निकलते हैं और योगियों के प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलते हैं।।३७।।

अपानान् मिलितप्राणौ यदा हि भवतः पृथक्।
सूक्ष्मीभूत्वा तदा वायुर्विनिष्क्रामति पुत्तलात्॥३८॥

जब अपान से मिले हुए प्राण पृथक् हो जाते हैं, तब प्राणवायु अत्यन्त सूक्ष्म होकर शरीर रूपी पुतले से बाहर निकल जाता है।।३८।।

शरीरञ्च पतेत्[1] पश्चान्निर्गते मरुतीश्वरे। कालाहतं पत्येव निराधारो यथा द्रुमः॥३९॥

इस प्रकार प्राणवायु स्वरूप ईश्वर के निकल जाने पर काल के द्वारा आहत शरीर कटे हुए निराधार वृक्ष के समान गिर पड़ता है।।३९।।

निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तं जुगुप्सितम्।
अस्पृश्यं जायते सद्यो दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम्॥४०॥

प्राणों से रहित होते ही शरीर सद्यः निश्चेष्ट, घृणास्पद, अस्पृश्य, दुर्गन्धियुक्त और सभी जनों के द्वारा निन्दित या निन्दा का पात्र बन जाता है।।४०।।

त्रिधावस्था शरीरस्य कृमिविड्भस्मरूपतः।
किं गर्वः क्रियते देहे क्षणविध्वंसिनि नरैः[2]॥४१॥

प्राण-रहित शरीर की तीन अवस्थायें होती हैं—इसमें कीड़े पड़ते हैं, यह विष्ठा के समान (दुर्गन्धयुक्त) हो जाता है तथा अन्ततः चिता में भस्मसात् हो जाता है। क्षण में नष्ट हो जाने वाले शरीर पर मनुष्यों के द्वारा क्यों गर्व किया जाता है।।४१।।

पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथा जले। तेजस्तेजसि लीयेत समीरस्तु समीरणे॥४२॥

---

१. गरुडमहापुराण ध.का.प्रे.ख. ३१/२८ से स्वीकृतपाठ। 'पतति' के अर्थ में प्रयुक्त। अनेक प्रतियों में मुद्रित 'शरीरं पतते पश्चात्' को आर्ष पाठ माना जा सकता है। यदि 'श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं' के नियमानुरोधेन उन मुद्रित प्रतियों में 'पतते' पाठ बनाया गया है, तो यह उचित नहीं, क्योंकि इस नियम के अपवाद अनेक श्लोकों में प्राप्त होते हैं। यथा-न बुद्धिभेदं जनयेद्...। यज्ञशिष्टामृतभुजो.......निर्विण्णानां ज्ञानयोगो। त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः....। अट्टशूला जनपदा। इत्यादि।

२. अर्थसंगति की दृष्टि से 'क्षणविध्वंसिभिर्नरैः की अपेक्षा क्षणविध्वंसिनि नरैः पाठ अधिक समीचीन है।

आकाशश्च तथाऽऽकाशे सर्वव्यापी च शङ्करः।
नित्यमुक्तो जगत्साक्षी आत्मा देहेष्वजोऽमरः॥४३॥

पञ्चतत्त्वों से बने शरीर का पृथिवीतत्त्व पृथिवी में, जलतत्त्व जल में, अग्नितत्त्व अग्नि में, वायुतत्त्व वायु में और आकाशतत्त्व आकाश में लीन हो जाता है। सभी प्राणियों की देह में अवस्थित रहने वाला आत्मा तो सर्वव्यापी, शिव-स्वरूप, नित्य-मुक्त, जगत्साक्षी, अजन्मा और अमर है।।४२-४३।।

सर्वेन्द्रिययुतो जीवः शब्दादिविषयैर्वृतः। कामरागादिभिर्युक्तः कर्मकोशसमन्वितः॥४४॥
पुण्यवासनया युक्तो निर्मिते स्वेन कर्मणा। प्रविशेत्स नवे देहे गृहे दग्धे यथा गृही॥४५॥

मृतक की देह से निकला हुआ जीव अपनी आँख-कान आदि समस्त इन्द्रियों एवं उनके शब्द-स्पर्श आदि विषयों, काम-राग आदि की भावनाओं तथा कर्म रूपी कोश और पुण्य की वासनासहित अपने कर्म के प्रभाव से निर्मित नये सूक्ष्म शरीर में उसी प्रकार प्रवेश करता है, जैसे कि कोई गृहस्थ अपने पुराने घर के जल जाने पर नवनिर्मित गृह में प्रवेश करता है।।४४-४५।।

तदा विमानमादय किंकिणीजालमालि यत्।
आयान्ति देवदूताश्च लसच्चामरशोभिताः॥४६॥

तब किङ्किणियों (अर्थात् छोटी-छोटी घण्टियों) की मालाओं से सजाये हुए विमान को लेकर सुन्दर चामरों से सुशोभित देवदूत आते हैं।।४६।।

धर्म तत्त्वविदः प्राज्ञाः सदा धार्मिकवल्लभाः।
तदैन कृतकृत्यं स्वर्विमानेन नयन्ति ते॥४७॥

वे धर्म के तत्त्व को जानने वाले, बुद्धिमान् और धार्मिक जनों के प्रति सदा स्नेह रखने वाले देवदूत विधि-विधान पूर्वक आतुर कृत्य करके देह त्यागने वाले मनुष्य के सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्मा को उस विमान में बैठा कर स्वर्ग में ले जाते हैं।।४७।।

सुदिव्यदेहो विरजाम्बरस्रक् सुवर्णरत्नाभरणैरुपेतः।
दानप्रभावात् स महानुभावः प्राप्नोति नाकं सुरपूज्यमानः॥४८॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे म्रियमाणकृत्यनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

सुन्दर दिव्यदेहधारी वह महानुभाव पुरुष निर्मल वस्त्र और माला को धारण कर तथा सुवर्ण और रत्नों से निर्मित्त आभूषणों से सुशोभित होकर अपने दान के प्रभाव से देवों के द्वारा भी सम्मानित होता हुआ स्वर्ग को प्राप्त करता है।।४८।।

श्रीगरुड़पुराण सारोद्धार में म्रियमाण-कृत्यनिरूपण नामक में नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

❖❖❖

अथ दशमोऽध्यायः

दाहास्थिसंचयकर्म निरूपण

गरुड उवाच

देहदाहविधानं च [१]तथास्थिचयने विधिः। बालादिमरणे चापि विधानं कृपया वद॥१॥

गरुड़ बोले—हे प्रभो! आप पुण्यात्माओं के शरीर के दाह-संस्कार का विधान तथा अस्थिचयन की विधि और बालकों आदि की मृत्यु होने पर उनकी अन्त्येष्टि आदि का विधान भी बतलाइए।।१।।

श्रीभगवानुवाच

शृणु ताक्ष्यं! प्रवक्ष्यामि सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम्।
यत्कृत्वा पुत्रपौत्राश्च मुच्यन्ते पैतृकाद् ऋणात्॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड़! सुनो, मैं तुम्हें सभी और्ध्वदेहिक कृत्यों की विधि बतलाता हूँ, जिन्हें करके पुत्र और पौत्र पैतृक ऋण से मुक्त हो जाते हैं।।२।।

किं दत्तैर्बहुभिर्दानैः पित्रोरन्त्येष्टिमाचरेत्। तेनाग्निष्टोमसदृशं पुत्रः फलमवाप्नुयात्॥३॥

बहुत से दान देने से क्या लाभ? पुत्र अपने माता-पिता की अन्त्येष्टि श्रद्धापूर्वक सम्यक् रूप से करे। उसी से वह अग्निष्टोम याग के समान फल प्राप्त कर सकता है।।३।।

तदा शोकं परित्यज्य कारयेन्मुण्डनं सुतः। समस्तबान्धवैर्युक्तः सर्वपापविमुक्तये॥४॥

माता-पिता की मृत्यु होने पर पुत्र अधिक शोक करना छोड़कर समस्त पापों से मुक्ति हेतु स्वयं अपने शिर का तथा समस्त बान्धवों के शिर का मुण्डन[२] करावे।।४।।

मातापित्रोर्मृतौ येन कारितं मुण्डनं न हि। आत्मजः स कथं ज्ञेयः संसारार्णवतारकः॥५॥

जिसने माता-पिता की मृत्यु होने पर मुण्डन नहीं कराया, उसे संसारसागर से तारने वाला पुत्र कैसे माना जा सकता है?।।५।।

अतो मुण्डनमावश्यं नखकक्षविवर्जितम्।
ततः सबान्धवः स्नात्वा धौतवस्त्राणि धारयेत्॥६॥

अतः नखों और काँख के बालों को छोड़ कर दाढ़ी-मूछसहित शिर का मुण्डन अवश्य कराना चाहिए। तब समस्त बान्धवों सहित स्नान करके धुले हुए वस्त्र धारण करे।।६।।

---

१. संशोधितोऽयं पाठः। पूर्व संकलनकर्ता द्वारा रचित 'सती यदि भवेत् पत्नी'-इत्यादि पाठ वर्तमान समय में प्रासंगिक और अग्राह्य है।

२. द्र०-गङ्गायां भास्करक्षेत्रे माता-पित्रेर्गुरौ मृते। आधाने सोमपाने च वपनं सप्तसु स्मृतम्।। अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत्। नासौ तत्फलमाप्नोति वपनाद् यच्च लभ्यते।। स्कन्द ७/१/२९/११-१२; सप्तधातुमयी भूत-तनौ पापानि यानि वै। केशेषु तानि तिष्ठन्ति वपनाद् यान्ति तान्यपि। स्कन्द ४/२२/६८

सद्यो जलं समानीय ततस्तं स्नापयेच्छवम्।
मण्डयेच्चन्दनैः स्रग्भिर्गङ्गामृत्तिकयाऽथवा॥७॥

तब तत्काल ताजा जल लाकर उस शव का स्नान करावे तथा उसे चन्दन या गङ्गा की मिट्टी के आलेप तथा मालाओं से विभूषित करे।।७।।

नवीनवस्त्रैः सञ्छाद्य तदा पिण्डं सदक्षिणम्।
नामगोत्रं समुच्चार्य सङ्कल्पेनापसव्यतः॥८॥
मृत्युस्थाने शवो नाम तस्य नाम्ना प्रदापयेत्।
तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता॥९॥

तब उसको देने के लिए बनाये गये पिण्ड को दक्षिणा के साथ रख कर नवीन वस्त्र से आच्छादित करके अपसव्य होकर उस मृतक के नाम और गोत्र के उच्चारण पूर्वक संकल्प करके मृत्यु स्थान में उस मृतक को शव नाम से सम्बोधित करके पिण्डदान करे। इससे वहाँ की भूमि और उस भूमि की अधिष्ठातृ देवता सन्तुष्ट होती है।।८-९।।

द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तस्य नाम्ना प्रदापयेत्। तेन नैवोपघाताय भूतकोटिषु दुर्गताः॥१०॥

जब शव को मृत्यु-स्थान से उठाकर द्वार पर लाते हैं, तब उसको पान्थ कहते हैं। अतः उसे पान्थ नाम से पिण्डदान करे। इसे करने से सद्गतिरहित भूतादि की कोटि के प्रेत उस मृतक की अन्तेष्टि और सद्गति में कोई आघात या विघ्न-बाधा नहीं पहुँचाते।।१०।।

ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजनीयः स्नुषादिभिः।
स्कन्धः पुत्रेण दातव्यस्तदाऽन्यैर्बान्धवैः सह॥११॥

तब पुत्रवधू आदि स्त्रियाँ उस मृतक की प्रदक्षिणा करके उसकी पूजा करें अर्थात् हाथ जोड़कर उस पर श्रद्धा-सुमन अर्पित करें। तब पुत्र अपने अन्य बान्धवों के साथ उस मृतक पिता को कन्धे पर उठावे[1]।।११।।

धृत्वा स्कन्धे स्वपितरं यः श्मशानाय गच्छति।
सोऽश्वमेधफलं पुत्रो लभते च पदे पदे॥१२॥

जो पुत्र अपने मृत पिता को कन्धे में उठा कर श्मशान तक ले जाता है, वह पदे-पदे (पग-पग पर) अश्वमेध का फल प्राप्त करता है।।१२।।

नीत्वा स्कन्धे स्वपृष्ठे वा सदा तातेन लालितः।
तदैव तदृणान्मुच्येन्मृतं स्वपितरं वहेत्॥१३॥

पिता के द्वारा पुत्र को अपने कन्धे पर या पीठ पर (या गोद में) बैठाकर, उस पुत्र का लालन-पालन किया जाता है। पुत्र इस ऋण से तभी मुक्त होता है, जब वह पिता की मृत्यु होने पर उसके शव को कन्धे पर ढोता है।।१३।।

---

१. द्र०- न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्। अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्र-संस्पर्शदूषिता।। मनु ५/१०४।

ततोऽर्धमार्गे विश्रामं सम्माज्यर्भ्युक्ष्य कारयेत्।
संस्नाप्य भूतसंज्ञाय तस्मै तेन प्रदापयेत्॥१४॥

तब शव को लेकर आधे मार्ग में पहुँचने पर भूमि को संमार्जित और जल से प्रोक्षित करके उस पर उस शव को विश्राम देकर स्नान करावे। श्मशान के अर्धमार्ग में पहुँचने पर मृतक की भूत संज्ञा होती है। अतः वहाँ पर उसे भूत नाम से सम्बोधित करते हुए ही पिण्डदान करे।।१४।।

पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिक्षु संस्थिताः।
तस्य होतव्य-देहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः॥१५॥

इस पिण्डदान के प्रभाव से सभी दिशाओं में स्थित पिशाच, राक्षस, यक्ष आदि उस मृतक की हवनीय देह को (अशुचि करके चिताग्नि में हवन के) अयोग्य नहीं बना पाते।।१५।।

ततो नीत्वा श्मशानेषु स्थापयेदुत्तरामुखम्। तत्र देहस्य दाहार्थं स्थलं संशोधयेद्यथा॥१६॥

तब उसे श्मशान में ले जाकर उत्तराभिमुख रखे। वहाँ उस शव के दाह-संस्कार हेतु भूमि-शोधन इस प्रकार करे।।१६।

सम्मार्ज्य भूमिं संलिप्योल्लिख्योद्धृत्य च वेदिकाम्।
अभ्युक्ष्योपसमाधाय वह्निं तत्र विधानतः॥१७॥

भूमि का संमार्जन और लेपन करके उल्लेखन करे (अर्थात् दर्भमूल से तीन रेखाएँ खींचे और उल्लेखन क्रमानुसार ही उन रेखाओं से उभरी हुई मिट्टी को उठाकर ईशान दिशा में फेंककर उस वेदिका को जल से प्रोक्षित करके उसमें विधि-विधान पूर्वक अग्नि-स्थापन करे।।१७।।

पुष्पाक्षतैरथाभ्यर्च्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम्।
लोमभ्यस्त्वनुवाकेन होमं कुर्याद् यथाविधि॥१८॥

उस क्रव्याद संज्ञक अग्नि की पुष्पों और अक्षतों आदि से पूजा करके 'लोमभ्यः स्वाहा' (यजुर्वेद ३९/१० के अनुवाक के) इन मन्त्रों से यथाविधि (घृत से) होम करे।।१८।।

त्वं भूतभृज्जगद्योनिस्त्वं भूतपरिपालकः।
मृतः सांसारिकस्तस्मादेनं त्वं स्वर्गतिं नय॥१९॥

तब उस क्रव्याद अग्नि से यह प्रार्थना करें-'हे अग्नि! तुम सभी प्राणियों का भरण-पोषण करने वाले, जगत् की योनि (उत्पत्ति के हेतु) तथा सभी प्राणियों के परिपालक हो। इस सांसारिक मनुष्य की मृत्यु हो चुकी है, अतः इसे स्वर्ग में ले जाओ'।।१९।।

इति सम्प्रार्थयित्वाऽग्निं चितां तत्रैव कारयेत्।
श्रीखण्डतुलसीकाष्ठैः पलाशाश्वत्थदारुभिः॥२०॥

इस प्रकार क्रव्याद अग्नि की प्रार्थना करके वहाँ पर चन्दन, तुलसी और पलाश तथा पीपल के काष्ठों से चिता बनावे।।२०।।

चितामारोप्य तं प्रेतं पिण्डौ द्वौ तत्र दापयेत्।
चितायां शवहस्ते च प्रेतनाम्ना खगेश्वर। चितामोक्षप्रभृतिकं प्रेतत्वमुपजायते॥२१॥

तब उस प्रेत को चिता में रख कर वहाँ दो पिण्ड प्रदान करे, जिनमें से एक पिण्ड चिता में दे तथा दूसरा उस शव को प्रेत संज्ञा से सम्बोधित करते हुए उसके हाथ में दे। मृतक के शव को चिता में रखने से लेकर सपिण्डीकरण होने तक उसमें प्रेतत्व रहता है अर्थात् इस अवधि में मृतक की प्रेत संज्ञा होती है।।२१।।

केऽपि तं साधकं प्राहुः प्रेतकल्पविदो जनाः।
चितायां तेन नाम्ना वा प्रेतनाम्नाऽथवा करे[1]॥२२॥

किन्तु प्रेतकल्प अर्थात् अन्त्येष्टि-विधान आदि के ज्ञाता कुछ विद्वानों के अनुसार मृतक को चिता में रखने पर उसकी साधक संज्ञा होती है। अतः चिता में रखने पर उसे साधक संज्ञा से सम्बोधित करके पिण्डदान करे और तदनन्तर उस मृतक को प्रेत संज्ञा से सम्बोधित करके दूसरा पिण्ड उसके हाथ में प्रदान करे।।२२।।

इत्येवं पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याहुतियोग्यता।
अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि॥२३॥

इस प्रकार पाँच पिण्ड प्रदान किये जाने पर ही वह शव चिता पर क्रव्याद अग्नि में आहुति के योग्य हो जाता है। अन्यथा पूर्वोक्त (अर्थात् पीछे श्लोक १५ में कथित) भूत, पिशाच, राक्षस, यक्ष आदि उस शव के उपघातकारक होते हैं अर्थात् वे उस शव को उच्छिष्ट करके क्रव्याद अग्नि में आहुति के योग्य नहीं रहने देते हैं।।२३।।

प्रेते दत्त्वा पञ्च पिण्डान् हुतमादाय तं तृणैः।
अग्निं पुत्रस्तदा दद्यान्न भवेत्पञ्चकं यदि॥२४॥

प्रेत को पाँच पिण्ड देने के पश्चात् 'लोमभ्यः स्वाहा०' इत्यादि अनुवाक से जिस क्रव्याद अग्नि में होम किया जा चुका हो, उसे सरपत आदि के तिनकों से लेकर चिता में लगावे, किन्तु ऐसा तभी करे जब कि उस दिन पञ्चक न हो।।२४।।

पञ्चकेषु मृतो यस्तु न गतिं लभते नरः। दाहस्तत्र न कर्तव्यः कृतेऽन्यमरणं भवेत्॥२५॥

पञ्चकों में जिस मनुष्य की मृत्यु होती है, उसे सद्‌गति नहीं मिलती। पञ्चकों में मृत मनुष्य का दाह संस्कार नहीं करना चाहिए, यदि उसका दाह संस्कार कर दिया गया, तो उसके अन्य चार बान्धवों की भी मृत्यु हो जाती है।।२५।।

आदौ कृत्वा धनिष्ठाऽर्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम्।
रेवत्यन्तं न दाहेऽर्हं दाहे च न शुभं भवेत्॥२६॥

धनिष्ठा के उत्तरार्द्ध से लेकर रेवती पर्यन्त पाँच नक्षत्र पञ्चक संज्ञक हैं। इनमें मृतक का दाह-संस्कार

---

१. द्र० चितायां साधकं नाम वदन्त्येके खगेश्वर।।३६।। केऽपि तं प्रेतमेवाहुर्यथा कल्पविदस्तथा। तदा हि तत्र तत्रापि प्रेतनाम्ना प्रदीयते।।३७।। गरुडपुराण उ० ५।३६-३७। तु०-चितायां साधक इति सञ्चितौ प्रेत उच्यते।। गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ४।५१।

करने योग्य नहीं होता अर्थात् इन नक्षत्रों में मृतक का दाह-संस्कार नहीं करना चाहिए और यदि किया गया, तो उसका शुभ परिणाम नहीं होता।।२६।।

गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतो हि यः।
पुत्राणां गोत्रिणां चापि कश्चिद्विघ्नः प्रजायते॥२७॥

जो इन नक्षत्रों में मरता है, उसके घर में कोई न कोई हानि अवश्य होती है। उसके पुत्रों और गोत्र वाले (सकुल्यों)को भी कोई न कोई विघ्न-बाधा झेलनी पड़ती है।।२७।।

[1]तथापि ऋक्षमध्ये तु दाहः स्याद्विधिपूर्वकः। मानुषाणां हितार्थाय सद्य आहुतिकारणात्।
तद्विधिं ते प्रवक्ष्यामि सर्वदोषप्रशान्तये॥२८॥

अथवा मनुष्यों की सुविधा हेतु इन पञ्चकों में भी मृतक का सद्यः (शीघ्र) दाह-संस्कार एक विशेष विधि से किया जा सकता है। पञ्चकजन्य सभी दोषों की शान्ति हेतु मैं तुम्हें दाह-संस्कार की उस विशेष विधि को बतलाता हूँ।।२८।।

शवस्य निकटे तार्क्ष्य! निक्षिपेत् पुत्तलांस्तदा।
दर्भमयांश्च चतुर ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रितान्॥२९॥

हे गरुड़! दर्भ के चार पुतले बना कर उन्हें नक्षत्र-मन्त्रों[2] से अभिन्त्रित करके शव के निकट रखे।।२९।।

तप्तहेमं प्रकर्तव्यं वहन्ति ऋक्षनामभिः। ''प्रेताजयत'' मन्त्रेण पुनर्होमस्तु सम्पुटैः॥३०॥

तब उन पुतलों में प्रतप्त सुवर्ण रखना चाहिए[3] और तब नक्षत्रों के नाम मन्त्रों से होम करना चाहिए। पुनः 'प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।' (ऋ १०/१०३/१३, यजु० १७/४६) इत्यादि मन्त्र से उन नक्षत्र मन्त्रों को सम्पुटित करके होम करना चाहिए।।३०।।

---

१. गरुड उ० २५/२१ से स्वीकृत पाठ।

२. पञ्चक-नक्षत्रों के वैदिक मन्त्र तत्तत् नक्षत्रों के स्वामियों के मन्त्र से अभिन्न हैं, १. धनिष्ठा (२) शतभिषा (३) पूर्वाभाद्रपदा (४) उत्तराभाद्रपदा और (५) रेवती इन पांच नक्षत्रों के स्वामी क्रमशः (१) वसु (२) वरुण (३) अजचरण (अजैकपात्) (४) अहिर्बुध्न्य और (५) पूषा हैं और इनके वैदिक मन्त्र क्रमशः निम्नलिखित हैं- (१) ज्मया अत्र वसवो रन्त देव........ (ऋ ७/३९/३); (२) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्......... (ऋ० १/२४/११); (३) उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्- (ऋ० ६/५०/१४); (४) कद् रुद्राय प्रचेतसे.......... (ऋ० १/४३/१); (५) पूषा गा अन्वेतु नः (ऋ० ४/८/५)।

३. अर्थसङ्गति की दृष्टि से ३० वें श्लोक का पाठ ठीक नहीं है। कुछ लेखकों के अनुसार तप्तहेमप्रकर्तव्यं' का तात्पर्य है कि सोना तपाना चाहिए और उसी सोने में शेष चार नक्षत्रों क नाम अंकित करने चाहिए। किन्तु इस सुवर्ण का क्या किया जायेगा- यह स्पष्ट नहीं होता। शुद्धिमयूख तथा निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थों में उद्धृत ब्रह्मपुराण के एक वचन के अनुसार पञ्चकों में मृत मनुष्य के साथ दाह हेतु दर्भ की ही पांच प्रतिमाएं (पुतले) बना कर उन्हें ऊन के धागे से लपेट कर और जौ के आटे से उनका लेपन करके उनमें क्रमशः (१) प्रेतवाह, (२) प्रेतसख, (३) प्रेतप (४) प्रेतभूमिप और (५) प्रेतहर्ता-इन पाँच नाम-मन्त्रों से आवाहन-पूजन करके उनमें से प्रथम को प्रेत के शिर में, दूसरे को नेत्रों में, तीसरे को वामकुक्षि में, चौथे को नाभि में और पाँचवे को पैरों में रख कर घृतहोम के पश्चात् शवदाह करना चाहिए। पद्धतियों में भी इसी विधि का अनुसरण किया गया है।

ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सहः।
सपिण्डनदिने कुर्यात्तस्य शान्तिविधिं सुतः॥३१॥

तब उन पुतलों के साथ शवदाह करना चाहिए। तब सपिण्डिकरण-श्राद्ध के दिन पुत्र उस (पञ्चक-मृत्यु) की शान्ति विधिपूर्वक करे।।३१।।

तिलपात्रं हिरण्यं च रूप्यं रत्नं यथाक्रमम्।
घृतपूर्णं कांस्यपात्रं दद्याद्दोषप्रशान्तये॥३२॥

पञ्चक दोष की शान्ति हेतु वह तिलपूर्णपात्र, सोना, चांदी, रत्न और घृत से पूर्ण काँसे के पात्र का दान करे।।३२।।

एवं शान्तिविधानं तु कृत्वा दाहं करोति यः।
न तस्य विघ्नो जायेत प्रेता यान्ति परां गतिम्।
एवं पञ्चकदाहः स्यात् तद्विना केवलं दहेत्[१]॥३३॥

जो मनुष्य इस प्रकार पञ्चक शान्ति के विधान का पालन करके शवदाह करता है, वह पञ्चकजन्य किसी विघ्न-बाधा से पीड़ित नहीं होता और (पञ्चकों में मृत) प्रेत की भी सद्गति हो जाती है। पञ्चकों में मृत पुरुष का दाह-संस्कार इसी प्रकार करे। पञ्चकों से भिन्न नक्षत्रों में मृत्यु होने पर केवल मृतक के ही शव का दाह करे।।३३।।

"[२]मृते भर्तरि तत्पत्न्याश्चितायामनुरोहणम्।
पुराणे कथितं यत्तु तन्नितान्तमसाम्प्रतम्।
आत्महत्याऽपराधं तद् गर्हितं खलु वर्जितम्।
न वेदे नापि लोके तत् स्वात्मघातं प्रशस्यते"॥३४॥

पुराण में जो यह कहा गया है कि पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी को उसकी चिता में आरूढ़ होकर अनुमरण करना चाहिए ऐसा कथन नितान्त अनुचित है। ऐसा करना आत्महत्या का अपराध है, जो कि अत्यन्त गर्हित और वर्जित है। न तो वेद में और न लोक में ही आत्महत्या को प्रशस्त कहा गया है।।।३४।।

"[३]मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्।
इतरेषु च वर्णेषु तपः परममुच्यते"॥३५॥

ब्राह्मण-स्त्री पति की मृत्यु होने पर अनुमरण नहीं कर सकती। अन्य वर्णों की स्त्रियों के लिए भी यही नियम है। उनको आजीवन तपस्वी के जैसे नियम का पालन करना चाहिए।।३५।।

---

१. सम्पूर्ण भारत में नाना नगरों से प्रकाशित गरुडपुराण सारोद्धार के संस्करणों में सती प्रथा विषयक जो २२ श्लोक जोड़े गये हैं, उनको इस संस्करण में स्थान नहीं दिया गया है।

२. संपादक द्वारा संयोजित पाठ।

३. बृहत्पराशर स्मृति ७/३७६ तथा याज्ञ० स्मृ० १/८६ की मिताक्षरा टीका से उद्धृत।

अपि च–

"जीवन्ती तदधितं कुर्यात् मरणादात्मघातिनी।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्[1]"॥३६॥

पत्नी स्वयं जीवित रहकर पति के लिए विहित कर्तव्यों का निर्वाह करके उसका हित ही करती है, किन्तु देहत्याग करने पर तो उसको आत्महत्या का पाप लगता है। ऐसी स्त्री आत्महत्या के पाप के कारण न तो स्वयं स्वर्ग में जाती है और न ही पति को स्वर्ग में पहुँचा सकती है ।।३६।।

"मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः[2]"॥३७॥

पति की मृत्यु हो जाने पर निःसन्तान पतिव्रता स्त्री भी ब्रह्मचर्य पालन करने पर प्राचीन काल के अनेक ब्रह्मचारी कुमारों के समान ही स्वर्ग में जाती है।।३७।।

अर्धे दग्धेऽथ्वा पूर्णे स्फोटयेत्तस्य (=प्रेतस्य)मस्तकम्।
गृहस्थानां तु काष्ठेन यतीनां श्रीफलेन च॥३८॥

शव के आधा जलने पर या पूरा जल जाने पर उसके मस्तक को फोड़े। गृहस्थों के मस्तक को काठ से और संन्यासियों के मस्तक को श्रीफल से फोड़ना चाहिए।।३८।।

प्राप्तये पितृलोकानां भित्त्वा तद्ब्रह्मरन्ध्रकम्।
आज्याहुतिं ततो दद्यान्मन्त्रेणानेन तत्सुतः॥३९॥

इस प्रकार उस मृतक का पुत्र उसकी पितृलोक की प्राप्ति हेतु उसके ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके इस (निम्नलिखित आशय वाले) मन्त्र से आज्य की आहुति दे।।३९।।

अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलतु पावकः[3]॥४०॥

हे अग्नि! तुम (अक्षर पुरुष वासुदेव-विष्णु से उत्पन्न हो और) इस पुरुष के द्वारा अग्न्याधानकाल में उत्पन्न किये गये हो और अब पुनः यह जीव तुम्हारे तेजोंऽश से दिव्य शरीर धारण करे। यह जीव सूक्ष्म शरीर से स्वर्ग में जावे और उसका प्राणहीन स्थूल शरीर जल कर स्वाहा हो जाय।।४०।।

१.पराशरमाधव प्रायश्चित्त काण्ड पृ०४६-४७ से उद्धृत पैठीनसि, अङ्गिरा तथा व्याघ्रपाद के वचन।

२. मनुस्मृति ५/१६० तथा विष्णुस्मृति २५/१७ से उद्धृत।

३. सारोद्धार कर्ता आचार्य ने गरुडपुराण उत्तरार्द्ध (प्रेतकल्प) ४/४८ (काशी संस्करण) में प्राप्त पाठ 'अस्मात्.... स्वाहा ज्वलति पावकः' के स्थान पर 'ज्वलतु पावकः' जोड़कर यह श्लोक संगृहीत किया है। शुक्लयजुर्वेद (३५/२२) में अस्मात् त्वमधिजातोऽसि असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।।' यह मन्त्र अग्नि को सम्बोधित है (द्र० शुक्लयजुर्वेद ३५/२२ पर उवट और महीधर का भाष्य)। अतः भावार्थ की दृष्टि से उक्त श्लोक में 'पावक' शब्द के प्रथमान्त रूप की अपेक्षा सम्बुद्ध्यन्त रूप ही समुचित लगता है। कात्यायन स्मृति २१/१३ (स्मृतिसन्दर्भ ३, पृ० १३७५) में यह श्लोक इस रूप में दिया गया है - अस्मात् त्वमधिजातोऽसि........असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन्।।

एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम्।
रोदितव्यं ततो गाढं येन तस्य सुखं भवेत्॥४१॥

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्र से अग्नि में तिल-मिश्रित आज्य की आहुति देकर जोर से रोना चाहिए। इससे उस मृतक को सुख मिलता है।।४१।।

दाहादनन्तरं कार्यं स्त्रीभिः स्नानं ततः सुतैः।
तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रोपकल्पितम्॥४२॥

शवदाह के पश्चात् पहले स्त्रियों को और तत्पश्चात् पुत्रों आदि को स्नान करना चाहिए। तब उस प्रेत के नाम और गोत्र के उच्चारणपूर्वक उसे तिलाञ्जलि देनी चाहिए।।४२।।

प्राशयेन्निम्बपत्राणि मृतकस्य गुणान् वदेत्।
स्त्रीजनोऽग्रे गृहं गच्छेत्पृष्ठतो नरसञ्चयः॥४३॥

तब घर लौटते समय नीम की पत्तियों को चबाना चाहिए और मृतक के गुणों का वर्णन करना चाहिए। घर के लिए आगे स्त्रियाँ चलें और उनके पीछे पुरुष वर्ग जावे।।४३।।

गृहे स्नानं पुनः कृत्वा गोग्रासं च प्रदापयेत्।
पत्रावल्यां च भुञ्जीयाद् गृहान्नं नैव भक्षयेत्॥४४॥

घर में जाकर पुनः स्नान करके गोग्रास प्रदान करे। पत्तल में भोजन करे, किन्तु घर में पकाया हुआ अन्न न खावे।।४४।।

मृतकस्थानमालिप्य दक्षिणाभिमुखं ततः।
द्वादशाहकपर्यन्तं दीपं कुर्यादहर्निशम्॥४५॥

तब मृतक के स्थान को लीप कर वहाँ पर दक्षिणाभिमुख दीपक जलावे। यह दीपक द्वादशाह पर्यन्त रात-दिन जलते रहना चाहिए।।४५।।

सूर्येऽस्तमागते तार्क्ष्य! श्मशाने वा चतुष्पथे।
दुग्धं च मृण्मये पात्रे तोयं दद्याद्दिनत्रयम्॥४६॥

हे गरुड़! शवदाह के दिन से लेकर तीन दिनों तक सूर्यास्त के पश्चात् मिट्टी से बने हुए पात्र में दूध और जल भर कर श्मशान में या चौराहे पर रखे।।४६।।

अपक्वमृण्मयं पात्रं क्षीरनीरप्रपूरितम्।
काष्ठत्रयं गुणैर्बद्धं धृत्वा मन्त्रं पठेदिमम्॥४७॥

दूध और जल से भरे हुए कच्ची मिट्टी के पात्र को रस्सियों से परस्पर बँधे हुये तीन काठों (लकड़ियों) के ऊपर रख कर इस आशय के मन्त्र को पढ़े।।४७।।

श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवैः।
इदं नीरमिदं क्षीरमत्र स्नाहि, इदं[1] पिब॥४८॥

तुम श्मशान की अग्नि से दग्ध हुए हो और बान्धवों द्वारा परित्यक्त हो चुके हो। तुम्हारे लिए यह जल और यह दूध रख दिया गया है। तुम इसमें स्नान करो और इसका पान करो।।४८।।

चतुर्थे सञ्चयः कार्यः साग्निकैश्च निरग्निकैः।
तृतीयेऽह्नि द्वितीये वा कर्तव्यश्चाविरोधतः॥४९॥

जिन्होंने अग्न्याधान किया हो और जिन्होंने अग्न्याधान न किया हो वे आहिताग्नि के तथा अनाहिताग्नि के भी शवदाह के चौथे दिन अस्थिसञ्चयन करें। यदि निषिद्ध वार या तिथि न पड़े तो तीसरे या दूसरे दिन भी अस्थिसञ्चयन किया जा सकता है[2]।।४९।।

गत्वा श्मशानभूमिं च स्नानं कृत्वा शुचिर्भवेत्।
ऊर्णासूत्रं वेष्टयित्वा पवित्रीं परिधाय च॥५०॥
दद्यात् श्मशानवासिभ्यस्ततो माषबलिं सुतः।
यमाय त्वेति मन्त्रेण तिस्रः कुर्यात्परिक्रमाः॥५१॥

अस्थिसञ्चयन हेतु पुत्र श्मशान में जाकर स्नान करके शुद्ध होकर हाथ में ऊन का सूत्र (ऊनी धागे का डोरा) लपेटकर (बाँधकर) और कुशा की पवित्री धारण करके श्मशान में रहने वाले भूतादि को माष (उड़द) की बलि दे और 'यमाय त्वा०' इत्यादि मन्त्र[3] को पढ़ते हुए तीन बार चिता के स्थान की (वामावर्त) परिक्रमा करे।।५०-५१।।

ततो दुग्धेन चाभ्युक्ष्य चितास्थानं खगेश्वर।
जलेन सेचयेत्पश्चादुद्धरेदस्थिवृन्दकम्॥५२॥

---

१. पाठान्तर -'मितं पिब'। निर्णयसागरसंस्करण में स्वीकृत 'मितं पिब' पाठ अर्थ की दृष्टि से सुसंगत नहीं है। द्र०-जलं त्रिदिवमाकाशे स्थाप्यं क्षीरञ्च मृन्मये। अत्र स्नाहि पिबात्रेति मन्त्रेणानेन काश्यप।।-गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ५/१५। याज्ञवल्क्य स्मृ० ३/१७ की मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने कहा है कि प्रेत के लिए जल और दूध पृथक्-पृथक् पात्रों में रखना चाहिए और 'प्रेत अत्र स्नाहि' कहकर जल तथा 'पिब चेदम्' कहकर दूध रखना चाहिए।

२. आहिताग्नेरनाहिताग्नेर्वा दाहात् चतुर्थेऽहनि अस्थिसञ्चयनं कुर्युः। विष्णुस्मृति १९/१० पर नन्दपण्डितकृत वैजयन्ती। अस्थि-सञ्चयन के लिए निषिद्ध तिथि, वार और नक्षत्र के विवरण हेतु द्रष्टव्य- 'भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मेषु वर्जयेत्। वर्जयेदेकपादृक्षे द्विपादृक्षेऽस्थिसञ्चयम्।। प्रदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादृक्षे विशेषतः।।इति।। पराशरमाधव, आचारकाण्ड पृ० ६४६ में उद्धृत यम के वचन। अस्थिचयन के लिए वर्जित नक्षत्रों, तिथियों और वारों का विस्तृत विवरण पराशरमाधव, आचारकाण्ड पृ० ६४६ में उद्धृत वृद्धमनु के वचनों में प्राप्त होता है। विष्णुपुराण ३/१३/१४ तथा विष्णुस्मृति १९/१० में चतुर्थ दिवस में अस्थिसञ्चयन विहित है। गरुड़पुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ५/१५ तथा संवर्त (पराशर माधव, आचारकाण्ड, पृ० ६४५ में उद्धृत) के अनुसार प्रथम, तृतीय, सप्तम या नवें दिन अस्थि-सञ्चयन करना चाहिए- प्रथमेऽह्नि तृतीये या सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद् गोत्रजैः नरैः।। अन्त्येष्टिपद्धतियों में 'अपरे द्युस्तृतीये वा दाहानन्तरमेव वा' के वचन-प्रामाण्य से एवं लोकाचार में भी शवदाह के तत्काल पश्चात् भी अस्थिसञ्चयन किया जाता है।

३. यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे। शुक्ल यजु० ३८/९।

हे गरुड़! तब चिता के स्थान पर दूध छिड़कने के उपरान्त जल छिड़के और तत्पश्चात् अस्थियों को उठावे।।५२।।

कृत्वा पलाशपत्रेषु क्षालयेद्दुग्धवारिभिः।
संस्थाप्य मृन्मये पात्रे श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि॥५३॥

उन अस्थियों को पलाश के पत्तों में रख कर पहले दूध से और तब जल से धोवे और तब उनको एक मिट्टी के पात्र में रख कर यथाविधि श्राद्ध अर्थात् पिण्डदान करे।।५३।।

त्रिकोणं स्थण्डिलं कृत्वा गोमयेनोपलेपितम्।
दक्षिणाभिमुखो दिक्षु दद्यात्पिण्डत्रयं त्रिषु॥५४॥

इसके लिए तिकोना स्थण्डिल बना कर उसे गोबर से लीपे और तब दक्षिण को मुख करके (उस त्रिकोण स्थण्डिल की) तीन दिशाओं में तीन पिण्ड[1] प्रदान करे।।५४।।

पुञ्जीकृत्य चिताभस्म तत्र धृत्वा त्रिपादुकाम्।
स्थापयेत्तत्र सजलमनाच्छाद्य मुखं घटम्॥५५॥

तब चिता की भस्म को एकत्रित करके उसके ऊपर तिपाई को रख कर उसके ऊपर जल से भरा हुआ और अनाच्छादित (बिना ढके हुए) मुख वाला घट रखे।।५५।।

ततस्तण्डुलपाकेन दधिघृतसमन्वितम्। बलिं प्रेताय सजलं दद्यान्मिष्टं यथाविधि॥५६॥

तब चावल पका कर उसमें दही, घृत और गुड़ आदि मीठा मिलाकर उसकी बलि को जलसहित यथाविधि प्रेत को प्रदान करे।।५६।।

पदानि दश पञ्चैव चोत्तरस्यां दिशि व्रजेत्।
गर्तं विधाय तत्रास्थिपात्रं संस्थापयेत्खग॥५७॥

हे गरुड़! तब उत्तर की ओर पन्द्रह पग चलकर वहाँ एक गढ्ढा खोदकर उसमें अस्थिपात्र रखे।।५७।।

तस्योपरि ततो दद्यात्पिण्डं दाहार्तिनाशकम्।
गर्तादुद्धृत्य तत्पात्रं नीत्वा गच्छेज्जलाशयम्॥५८॥

तब उसके ऊपर अग्निदाह की पीड़ा को दूर करने वाला पिण्ड दे और तदनन्तर उस अस्थिपात्र को गढ्ढे में से निकाल कर उसे लेकर जलाशय में जावे।।५८।।

तत्र प्रक्षालयेद्दुग्धजलादस्थि पुनः पुनः। चर्चयेच्चन्दनेनाथ कुङ्कुमेन विशेषतः॥५९॥

वहाँ पर दूध और जल से उन अस्थियों को अनेक बार प्रक्षालित करे और तब उनको चन्दन और विशेषतः कुङ्कुम से चर्चित (विलेपित) करे।।५९।।

---

१. ब्रह्मपुराण के एकवचन में श्मशानस्थ क्रव्याद देवताओं को बलि-प्रदान करने के पश्चात् तीन पिण्ड प्रदान करने का विधान है- एवं दत्त्वा बलिं चैव दद्यात् पिण्डत्रयं बुधः।। एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम्। तृतीयं तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात्।। निर्णयसिन्धु पृ० ४१३ में उद्धृत।

धृत्वा सम्पुटके तानि कृत्वा च हृदि मस्तके।
परिक्रम्य नमस्कृत्य गङ्गामध्ये विनिक्षिपत्॥६०॥

तब उन्हें एक दोने में रखकर हृदय और मस्तक से लगा कर उनकी परिक्रमा करके उन्हें ले जाकर नमस्कार करके गङ्गा के मध्य में विसर्जित करे।।६०।।

अन्तर्दशाहं यस्यास्थि गङ्गातोये निमज्जति। न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन॥६१॥

जिसकी अस्थियाँ दश दिन के अन्दर गङ्गाजल में विसर्जित हो जाती हैं, उसका ब्रह्मलोक से भूलोक में पुनरागमन कदापि नहीं होता।।६१।।

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥६२॥

जितने दिनों तक मनुष्य की अस्थि गङ्गा जल में रहती है, उतने सहस्र वर्षों तक वह स्वर्गलोक में सम्मान पूर्वक विराजमान रहता है।।६२।।

गङ्गाजलोर्मि संस्पृश्य मृतकं पवनो यदा। स्पृशते पातकं तस्य सद्य एव विनश्यति॥६३॥

गंगाजल की तरङ्गों का स्पर्श करके आया हुआ पवन जब मृतक का स्पर्श कर देता है, तो उसका समस्त पातक सद्यः नष्ट हो जाता है।।६३।।

आराध्य तपसोग्रेण गङ्गादेवीं भगीरथः। उद्धारार्थं पूर्वजानां आनयद् ब्रह्मलोकतः॥६४॥

महाराज भगीरथ अति कठोर तपश्चर्या से गङ्गादेवी की आराधना करके उन्हें अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु ब्रह्मलोक से भूलोक में लाये थे।।६४।।

त्रिषु लोकेषु विख्यातं गङ्गायाः पावनं यशः।
या पुत्रान्सगरस्यैतान्भस्माख्याननयद्दिवम्॥६५॥

राजा सगर के भस्मीभूत पुत्रों को स्वर्ग में पहुँचाने वाली गङ्गा का पवित्र यश तीनों लोकों में विश्रुत है।।६५।।

पूर्वे वयसि पापानि कृत्वा ये मानवाः मृताः।
गङ्गायामस्थिपतनात्स्वर्गलोकं प्रयान्ति ते॥६६॥

जो मनुष्य अपनी आरम्भिक अवस्था में पाप करते हैं, उनके मरने पर यदि उनकी अस्थियाँ गङ्गा में विसर्जित हो जाती हैं, तो वे भी स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं।।६६।।

कश्चिद्व्याधो महारण्ये सर्वप्राणिविहिंसकः।
सिंहेन निहतो यावत्प्रयाति नरकालयम्॥६७॥
तावत्कालेन तस्यास्थि गङ्गायां पतितं तदा।
दिव्यं विमानमारुह्य स गतो देवमन्दिरम्॥६८॥

नाना प्राणियों (पशु पक्षियों) की हिंसा करने वाले किसी व्याध को घनघोर वन में सिंह ने मार दिया था। अपने पापकर्म के फलस्वरूप जब वह नरक में गिरने लगा था, तभी उसके शव की अस्थि (गीध के

मुख से) गङ्गा में गिर पड़ी थी और उसके फलस्वरूप वह दिव्य विमान में आरूढ़ होकर देवलोक को गया था[1]।।६७-६८।।

अतः स्वयं हि सत्पुत्रो गङ्गायामस्थि पातयेत्।
अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दशगात्रं समाचरेत्॥६९॥

अतः अच्छा पुत्र स्वयं ही पिता की अस्थियों को गङ्गा में विसर्जित करे। अस्थिसञ्चयन के पश्चात् वह दशगात्र करे।।६९।।

अथ कश्चिद्विदेशे वा वने चौरभये मृतः।
न लब्धस्तस्य देहश्चेच्छृणुयाद्यद्दिने तदा॥७०॥
दर्भपुत्तलकं कृत्वा पूर्ववत्केवलं दहेत्। तस्य भस्म समादाय गङ्गातोये विनिक्षिपेत्॥७१॥
दशगात्रादिकं कर्म तद्दिनादेव कारयेत्।
स एव दिवसो ग्राह्यः श्राद्धे सांवत्सरादिके॥७२॥

यदि किसी की मृत्यु विदेश में, वन में या चोरों के आतङ्क से हुई हो और उसका शव नहीं प्राप्त हो सका हो, तो उसके निधन का समाचार जिस दिन सुने उसी दिन दर्भ का पुतला बना कर पूर्वोक्त विधानानुसार केवल उसी पुतले का दाह करे[2] और उसकी भस्म को ले जाकर गङ्गाजल में प्रवाहित करे और उसी दिन से उसका दशगात्रादि कर्म करे और उसके वार्षिक श्राद्ध आदि के लिए भी उसी दिन पड़ने वाली तिथि को अपनावे।।७०-७२।।

पूर्णे गर्भे मृता नारी विदार्य जठरं तदा।
बालं निष्कास्य निक्षिप्य भूमौ तामेव दाहयेत्॥७३॥

यदि गर्भिणी नारी गर्भ के पूर्णतः विकसित हो जाने पर मर जाय तो उसके पेट को चीर कर गर्भस्थ शिशु को बाहर निकाल ले। वह शिशु यदि मर गया हो, तो उसे भूमि में गाड़ दे और केवल मृत स्त्री का ही दाह-संस्कार करे।।७३।।

गङ्गातीरे मृतं बालं गङ्गायामेव पातयेत्। अन्यदेशे क्षिपेद्भूमौ सप्तविंशतिमासजम्॥७४॥

गङ्गातट या उसके समीपवर्ती स्थान में मृत शिशु को गङ्गा में ही विसर्जित करे, किन्तु अन्य स्थानों में मृत सत्ताईस महीने तक के बालक को भूमि में गाड़ दे।।७४।।

अतः परं दहेत्तस्य गङ्गायामस्थि निक्षिपेत्।
जलकुम्भश्च दातव्यो बालानामेव भोजनम्॥७५॥

किन्तु उससे अधिक वय के बालक का दाह-संस्कार करे और उसकी अस्थियाँ गङ्गा में विसर्जित करे तथा जल से भरा हुआ घट (घड़ा) प्रदान करे और केवल बालकों को ही भोजन करावे।।७५।।

---

१. इस प्रकार की कथाएँ पुराणों में अन्यत्र भी प्राप्त होती हैं। द्र० स्कन्द ४/२८/३५-८३।

२. पुत्तल-दाह-विध हेतु द्र० - गरुड धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ४/१३४-१५४।

गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं मृते शिशौ।
घटं च पायसं भोज्यं दद्याद्बालविपत्तिषु॥७६॥

गर्भ के नष्ट हो जाने पर अर्थात् गर्भ में ही भ्रूण के नष्ट हो जाने (गर्भपात होने) पर उसकी कोई क्रिया नहीं की जाती। शिशु[1] (दाँत निकलने के पूर्व की अवस्था के बच्चे) की मृत्यु होने पर उसे गङ्गा में विसर्जित करने या भूमि में गाड़ने के पश्चात् उसके निमित्त दूध प्रदान करे। बाल-अवस्था (अर्थात् चूड़ाकरण के पूर्व या तीन वर्ष तक) के बच्चे के मरने पर (उसके दाह संस्कार के पश्चात्) जलपूर्ण घट प्रदान करे और बालकों को खीर का भोजन भी करावे।।७६।।

कुमारे च मृते बालान् कुमारानेव भोजयेत्।
सबालान्भोजयेद्विप्रान्पौगण्डे सव्रते मृते॥७७॥

कुमारावस्था (अर्थात् तीन वर्ष से लेकर पाँच वर्ष तक) के बच्चे के निधन पर कुमारावस्था के बालकों को ही भोजन करावे। पौगण्ड[2] अवस्था (अर्थात् पाँच वर्ष से लेकर दश वर्ष तक) के बच्चे की मृत्यु होने पर उसी की अवस्था के बालकों को भोजन करावे और व्रतबन्ध (उपनयन) हो जाने के पश्चात् यदि किसी पौगण्ड अवस्था वाले बालक की मृत्यु होती है, तो उसकी अवस्था के बालकों के साथ ही विप्रों को भी भोजन करावे।।७७।।

मृतश्च पञ्चमादूर्ध्वमव्रतः सव्रतोऽपि वा।
पायसेन गुडेनापि पिण्डान्दद्याद्दश क्रमात्॥७८॥

पाँच वर्ष से ऊपर की अवस्था के बालक का चाहे व्रतबन्ध (उपनयन) हो चुका हो अथवा नहीं, उसकी मृत्यु होने पर उसके निमित्त पायस (खीर) और गुड़ से बने दश पिण्ड प्रदान करे।।७८।।

एकादशं द्वादशं च वृषोत्सर्गविधिं विना। महादानविहीनं च पौगण्डे कृत्यमाचरेत्॥७९॥

पौगण्ड अवस्था के बालक की मृत्यु होने पर वृषोत्सर्ग तथा महादानों को देने के अतिरिक्त एकादशाह और द्वादशाह के सभी कृत्य करे।।७९।।

जीवमाने च पितरि न पौगण्डे सपिण्डनम्।
अतस्तस्य द्वादशाहन्येकोद्दिष्टं समाचरेत्॥८०॥

पिता के जीवित रहते हुए पौगण्ड अवस्था के बालक की मृत्यु होने पर उसका सपिण्डीकरण नहीं होता। अतः बारहवें दिन उसका केवल एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करे।।८०।।

---

१. शिशुरादन्तजननाद् बालः स्याद् यावदाशिखम्। कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात्।। गरुडपुराण, ध० का० प्रे० ख० २५/८

२. आपञ्चवर्षात् कौमारः पौगण्डो दशहायनः। गरुडपुराण सारोद्धार के निर्णयसागर संस्करण की टीका में उद्धृत। तु०-आपञ्चवर्षात्य कौमारः पोगण्डो नवहायनः।। किशोरः षोडशाब्दः स्यात् ततो यौवनमादिशेत्।। गरुडपुराण, ध० का०, प्रे० ख० २५/१०-११।। द्र०-बाल आषोडशाद् वर्षात् पौगण्डश्चेति शब्द्यते। नारदस्मृति (ऋणादानसंज्ञक विवादपद श्लोक ३१), कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि। कैशोरमापञ्चदशात् यौवनञ्च ततः परम्। शब्दकल्पद्रुम के 'किशोर' शब्द में उद्धृत।

स्त्रीशूद्राणां विवाहस्तु व्रतस्थाने प्रकीर्तितः।
व्रतात्प्राक्सर्ववर्णानां वयस्तुल्या क्रिया भवेत्॥८१॥

स्त्रियों और शूद्रों के लिए केवल विवाह ही व्रतबन्ध (उपनयन) स्थानीय संस्कार है। व्रतबन्ध (उपनयन) के पूर्व मरने वाले सभी वर्णों के लिए समान रूप से उनकी आयु-विशेष के अनुसार विहित क्रिया की जाती है।।८१।।

स्वल्पात्कर्मप्रसंगाच्च स्वल्पाद्विषयबन्धनात्।
स्वल्पे वयसि देहे च क्रियां स्वल्पामपीच्छति॥८२॥

जिसकी भले-बुरे कर्मों में संलग्नता स्वल्प (कम) रही हो और इन्द्रिय-विषयों में आसक्ति भी कम रही हो और जो स्वल्प अवस्था तथा स्वल्प (छोटी) देह वाला हो, उसकी मृत्यु होने पर उसकी क्रिया भी स्वल्प ही अभीष्ट होती है।।८२।।

किशोरे तरुणे कुर्याच्छय्या-वृषमखादिकम्। पददानं महादानं गोदानमपि दापयेत्॥८३॥

किशोर अवस्था अर्थात् पौगण्ड अवस्था के ऊपर सोलह वर्ष तक की अवस्था और तरुण (युवा) अवस्था के मनुष्य की मृत्यु होने पर शय्यादान तथा वृषोत्सर्ग आदि सभी कृत्य करे और पददान, महादान एवं गोदान भी करे।।८३।।

यतीनां चैव सर्वेषां न दाहो नोदकक्रिया। दशगात्रादिकं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः॥८४॥

सभी प्रकार के संन्यासियों के निधन पर उनके पुत्रों आदि को न तो उनका दाह-संस्कार करना चाहिए, न उन्हें जलाञ्जलि देनी चाहिए और न उनकी दशगात्रादि क्रियाएँ ही करनी चाहिए।।८४।।

दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्। त्रिदण्डग्रहणात्तेषां प्रेतत्वं नैव जायते॥८५॥

दण्डग्रहण (अर्थात् संन्यास ग्रहण) करने मात्र से नर ही नारायण स्वरूप हो जाता है तथा त्रिदण्ड[१] ग्रहण (अर्थात् मन, वाणी और इन्द्रियों का संयम) करने पर संन्यासी मृत्यु पश्चात् प्रेत नहीं होते।।८५।।

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ताः स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते तु प्रदत्तानां पिण्डानां नैव कांक्षिणः॥८६॥

ज्ञानी-संन्यासी अपने आत्मस्वरूप का अनुभव (अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि प्रकारक ज्ञान से ब्रह्मात्मैक्य का अनुभव) कर लेने पर सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। अतः वे मृत्यु के पश्चात् अपने को पिण्ड दिये जाने की आकांक्षा नहीं रखते।।८६।।

तस्मात्पिण्डादिकं तेषां न तु नोदकमाचरेत्।
तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं पितृभक्त्या समाचरेत्॥८७॥

---

१. निर्णयसिन्धु पृ० ४४१ में संकेत किया गया है कि त्रिदण्डी का तात्पर्य तीन यष्टियों को धारण करने वाला नहीं, अपितु वाग्दण्ड, मनोदण्ड और कायदण्ड वाला अर्थात् मन, वाणी और शरीर पर नियन्त्रण रखने वाला है। इसके प्रमाण रूप में मनुस्मृति के वचन को उद्धृत किया गया है-

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च। यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते।। मनु १२/१०

अतः उनके लिए पिण्डदान और उदकक्रिया आदि न करे। किन्तु पितृभक्ति से प्रेरित पुत्र उनके लिए तीर्थ में श्राद्ध और गयाश्राद्ध कर सकता है।।८७।।

हंसं परमहंसं च कुटीचकबहूदकौ। एतान् संन्यासिनस्तार्क्ष्य पृथिव्यां स्थापयेन्मृतान्॥८८॥

हे गरुड़! हंस, परमहंस, कुटीचक और बहूदक इन चारों प्रकार के संन्यासियों[1] की मृत्यु होने पर उन्हें भूमि में गाड़ देना चाहिए।।८८।।

गङ्गादीनामभावे हि पृथिव्यां स्थापनं स्मृतम्।
यत्र सन्ति महानद्यस्तदा तास्वेव निक्षिपेत्॥८९॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे दाहास्थिसंचयकर्मनिरूपणो नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

किन्तु उन्हें भूमि में गाड़ने का विधान उन्हीं स्थानों पर लागू होगा, जहाँ गङ्गा आदि महानदियाँ नहीं हैं। जहाँ ऐसी महानदियाँ हों, वहाँ उन्हीं नदियों में मृत संन्यासियों की देह को जल-समाधि देनी चाहिए।।८९।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में दाहास्थिसंचयकर्मनिरूपण नामक दशम अध्याय पूर्ण हुआ।।१०।।

❖❖❖
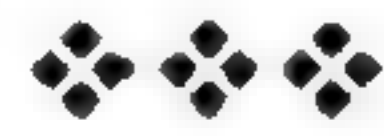
अथ एकादशोऽध्यायः

दशगात्रविधि निरूपण

श्री गरुड उवाच

दशगात्रविधिं ब्रूहि कृते किं सुकृतं भवेत्। पुत्राभावे तु कः कुर्यादिति मे वद केशव॥१॥

गरुड़ बोले—हे केशव! आप दशगात्र की विधि बतलाइए और यह भी बतलाइए कि इसे करने से क्या सुकृत (पुण्य) होता है और पुत्र के अभाव में इसे कौन कर सकता है।।१।।

श्री भगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य! प्रवक्ष्यामि दशगात्रविधिं तव। यद्विधाय च सत्पुत्रः मुच्यते पैतृकादृणात्॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड़! सुनो, मैं तुम्हें दशगात्र की विधि बतलाता हूँ, जिसे करने से सुपुत्र पैतृक ऋण से मुक्त हो जाता है।।२।।

पुत्रः शोकं परित्यज्य धृतिमास्थाय सात्त्विकीम्। पितुः पिण्डादिकं कुर्यादश्रुपातं न कारयेत्॥३॥

१. कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस संन्यासियों के लक्षण आश्रमोपनिषत्, संन्यासोपनिषत्, नारदपरिव्राजकोपनिषत् ५/११-१५ बृहत्पराशरस्मृति (१२/१६४-१७३), पराशरमाधव भाग १ पृ० ५६८ आदि में देख सकते हैं। निर्णयसिन्धु पृ० ४४१ में (हारीत और स्कन्दपुराण से) उद्धृत लक्षण भी द्रष्टव्य हैं।

पुत्र शोक करना छोड़कर सात्त्विक भाव से युक्त होकर और धृति (धैर्य) को धारण करके पिता को पिण्डदान आदि करे और ऐसा करते समय आँसू न बहावे।।३।।

श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः।
अतो न रोदितव्यं हि तदा शोकान्निरर्थकात्॥४॥

क्योंकि उस समय प्रेत विवश होकर बान्धवों के मुख से निकले श्लेष्म (कफ) और उनके आँसुओं को खाता-पीता है। अतः उस समय निरर्थक शोक करके रोना नहीं चाहिए।।४।।

यदि वर्षसहस्राणि शोचतेऽहर्निशं नरः। तथापि नैव निधनं गतो दृश्येत कर्हिचित्॥५॥

यदि मनुष्य सहस्र वर्षों तक भी दिन-रात शोक करता रहे, तब भी मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति पुनः कभी भी (उसी रूप में जीवित) नहीं दिखलाई पड़ सकता।।५।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोकं कारयेद् बुधः॥६॥

जो जीव जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु भी निश्चयमेव होगी और जो मर चुका है, उसका पुनर्जन्म भी सुनिश्चित है। अतः इस अवश्यम्भावी (जन्म-मरण) के विषय में बुद्धिमान् मनुष्य को शोक नहीं करना चाहिए।।६।।

न हि कश्चिदुपायोऽस्ति दैवो वा मानुषोऽपि वा।
येन मृत्युवशं प्राप्तो जन्तुः पुनरिहाव्रजेत्॥७॥

ऐसा कोई भी दिव्य या मनुष्यकृत उपाय नहीं है, जिससे कि मृत्यु को प्राप्त जीव पुनः उसी रूप में जीवित होकर लौट सके।।७।।

अवश्यं भाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि।
तदा दुःखैर्न युज्येरन् नल-राम-युधिष्ठिराः॥८॥

अवश्यम्भावी घटनाओं का यदि पूर्वतः प्रतिकार संभव होता तो राजा नल, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और महाराज युधिष्ठिर जैसे लोगों को दुःख ही नहीं भोगने पड़े होते।।८।।

नायमत्यन्तसंवासः कस्यचित्केनचित् सह।
अपि स्वस्य शरीरेण किमुतान्यैः पृथग्जनैः॥९॥

इस संसार में किसी का भी किसी अन्य मनुष्य के साथ आत्यन्तिक (सदा के लिए) सहवास संभव नहीं है। जीवात्मा अपने शरीर के साथ भी सदा नहीं रह पाता, तब अन्य किसी के साथ आत्यन्तिक सहवास की क्या आशा की जा सकती है?।।९।।

यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य विश्रमेत्।
विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः॥१०॥

जैसे कोई पथिक छाया में (विश्राम कर रहे अन्य पथिकों के साथ) विश्राम करता है और विश्राम कर चुकने पर (उनको त्याग कर) पुनः अन्यत्र चल देता है, उसी प्रकार (इस संसार में आवागमन करने वाले) प्राणियों का भी सहवास अल्पकाल का होता है अर्थात् वे कुछ समय ही साथ रहते हैं, सदा नहीं।।१०।।

यत्प्रातः संस्कृतं भोज्यं सायं तच्च विनश्यति।
तदन्नरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता॥११॥

प्रातः काल जो भोजन सुन्दर विधि से बनाया जाता है, वह सायंकाल तक विनष्ट हो जाता है। तब उस अन्न के रस से पोषित शरीर कैसे नित्य स्थायी हो सकता है?।।११।।

भैषज्यमेतद् दुःखस्य विचारं परिचिन्त्य च।
अज्ञानप्रभवं शोकं त्यक्त्वा कुर्यात्क्रियां सुतः॥१२॥

पिता आदि की मृत्यु से जनित दुःख की औषध इसी प्रकार के विचार हैं। अतः ऐसे सद्विचारों का चिन्तन करके पुत्र शोक को त्याग कर अपने पिता की क्रिया करे।।१२।।

पुत्राभावे वधूः कुर्याद्भार्याभावे च सोदरः।
शिष्यो वा ब्राह्मणस्यैव सपिण्डो वा समाचरेत्॥१३॥

मृतक के पुत्र के अभाव में पत्नी, पत्नी के अभाव में सोदर भ्राता और उसके भी अभाव में ब्राह्मण मृतक का ब्राह्मण शिष्य और उसके भी अभाव में सपिण्ड सम्बन्ध का कोई पुरुष उसकी क्रिया करे।।१३।।

ज्येष्ठस्य वा कनिष्ठस्य भ्रातुः पुत्रैश्च पौत्रकैः।
दशगात्रादिकं कार्यं पुत्रहीने नरे खग!॥१४॥

हे गरुड़! मृतक के पुत्र के अभाव में उसके ज्येष्ठ या कनिष्ठ भ्राता के पुत्रों या पौत्रों को उसकी दशगात्रादि क्रिया करनी चाहिए।।१४।।

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥१५॥

एक पिता से उत्पन्न अनेक भाइयों में से यदि एक भी पुत्रवान् हो, तो उसी पुत्र से वे सभी भाई भी पुत्रवाले होते हैं, ऐसा मनु ने कहा है।।१५।।

[1]पत्नी बहुत्वे चैकापि यदि पुत्रवती भवेत्। सर्वास्ताः पुत्रवत्यः स्युस्तेनैकेन सुतेन हि॥१६॥

यदि एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ हों और उनमें से एक ही पुत्रवती हो, तो वे सब भी उसी एक पुत्र से पुत्रवती होती हैं।।१६।।

सर्वेषां पुत्रहीनानां मित्रः पिण्डं प्रदापयेत्।
क्रियालोपो न कर्तव्यः सर्वाभावे पुरोहितः॥१७॥

यदि सभी भाई पुत्रहीन रहे हों (तो उनमें से मृतक भाई की क्रिया जीवित भाई करे और जब कोई भाई जीवित न रहे) तो उनका कोई मित्र पिण्डदान करे। पिण्डदान क्रिया का लोप नहीं करना चाहिए। यदि क्रिया करने के लिए कोई भी न हो, तो पुरोहित क्रिया करे।।१७।।

[2]"असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्।
प्रथमेऽहनि यः कुर्यात् स दशाहं समापयेत्"॥१८॥

---

१. पाठान्तर – पत्न्यश्च बह्व्य एकस्य।

२. गरुड महापुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ३४/४३ से उद्धृत।

पुत्र के अभाव में असगोत्री या सगोत्री पुरुष या स्त्री जो भी प्रेत की प्रथम दिन की क्रिया करेगा वही दशाह (दश दिन) तक के कृत्यों को सम्पन्न करे।।१८।।

स्त्री वाथ पुरुषः कश्चिदिष्टस्य कुरुते क्रियाम्।
अनाथप्रेतसंस्कारात्कोटियज्ञफलं लभेत्॥१९॥

जो कोई स्त्री या पुरुष अपने इष्ट-मित्र की क्रिया करता है, वह अनाथ प्रेत के अन्त्येष्टि-संकार को करने के कारण करोड़ों यज्ञों के फल को प्राप्त करता है।।१९।।

पितुः पुत्रेण कर्तव्यं दशगात्रादिकं खग!। मृते ज्येष्ठेऽप्यतिस्नेहान्न कुर्वीत पिता सुते॥२०॥

हे गरुड़! पुत्र को पिता का दशगात्रादि करना चाहिए। किन्तु यदि ज्येष्ठ पुत्र भी मर जाय तो पिता उसके प्रति अत्यन्त स्नेह रखने पर भी उसकी दशगात्रादि क्रिया न करे।।२०।।

बहवोऽपि यदा पुत्रा विधिमेकः समाचरेत्।
दशगात्रं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यन्यानि षोडश॥२१॥
एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि।
विभक्तैस्तु पृथक् कार्यं श्राद्धं सांवत्सरादिकम्॥२२॥

यदि पुत्र अनेक हों, तो भी दशगात्रादि विधि एक ही पुत्र करे। दशगात्र, सपिण्डीकरण और अन्य सोलह (एकोद्दिष्ट) श्राद्धों को पैतृक-सम्पत्ति का भाइयों में विभाजन हो जाने पर भी एक ही भाई करे। किन्तु पैतृक सम्पत्ति का विभाजन हो जाने पर सभी भाई वार्षिक श्राद्ध तथा महालय श्राद्ध आदि को पृथक्-पृथक् कर सकते हैं।।२१-२२।।

[1]ज्येष्ठेन हि कृतं सर्वं सफलं पैतृकं भवेत्।
तस्माज्ज्येष्ठः सुतो भक्त्या दशगात्रं समाचरेत्।
एक भोजी भूमिशायी भूत्वा ब्रह्मपरः शुचिः॥२३॥

ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा किये गये पिण्डदान, श्राद्ध आदि धार्मिक कृत्य विशेषतः सफल होते हैं। अतः ज्येष्ठ पुत्र श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पिता का दशगात्रादि करे। वह एक समय भोजन करे, भूमि में शयन करे तथा ब्रह्मचर्य-परायण और शुचि रहे।।२३।।

सप्तवारं परिक्रम्य धरणीं यत्फलं लभेत्।
क्रियां कृत्वा पितुर्मातुस्तत्फलं लभते सुतः॥२४॥

पृथिवी की सात बार परिक्रमा करने से जो फल प्राप्त हो सकता है, वह फल पुत्र को माता-पिता की क्रिया करने से मिलता है।।२४।।

आरभ्य दशगात्रं च यावद्वै वार्षिकं भवेत्।
तावत्पुत्रः क्रियां कुर्वन् गयाश्राद्धफलं लभेत्॥२५॥

---

१. बृहदयमस्मृति ५/१४ (स्मृतिसन्दर्भ चतुर्थ भाग) से उद्धृत।

दशगात्र से लेकर जब तक वार्षिक (सपिण्डीकरण) श्राद्ध नहीं हो जाता, तब तक नियम-पालन पूर्वक विहित क्रिया को करने में संलग्न पुत्र गया-श्राद्ध का फल प्राप्त करता है।।२५।।

कूपे तडागे वाऽऽरामे तीर्थे देवालयेऽपिवा।
गत्वा मध्यमयामे तु स्नानं कुर्यादमन्त्रकम्॥२६॥

वह दिन के मध्यम याम (दूसरे पहर) में कुएँ, तालाब, बगीचे, तीर्थस्थल या देवालय में जाकर मन्त्र पढ़े बिना स्नान करे।।२६।।

शुचिर्भूत्वा वृक्षमूले दक्षिणाभिमुखः स्थितः।
कुर्याच्च वेदिकां तत्र गोमयेनोपलिप्य ताम्॥२७॥

तब शुचि होकर किसी वृक्ष के मूल में दक्षिणाभिमुख होकर वेदी बना कर उसे गोबर से लीपे।।२७।।

तस्यां पर्णे दर्भमयं स्थापयेत्कौशिकं द्विजम्।
तं पाद्यादिभिरभ्यर्च्य प्रणमेदतसीति च॥२८॥

तब उस वेदी पर पलाश आदि के पत्ते रखकर उनके ऊपर कुश-ब्राह्मण को स्थापित कर पाद्यादि से उसकी पूजा करके आगे श्लोक ४१ में कथित 'अतसीपुष्पसङ्काशं०[१]' इत्यादि मन्त्र से उसको प्रणाम करे।।२८।।

तदग्रे च ततो दत्त्वा पिण्डार्थं कौशमासनम्।
तस्योपरि ततः पिण्डं नामगोत्रोपकल्पितम्॥२९॥
दद्यात् तण्डुलपाकेन यवपिष्टेन वा सुतः।
उशीरं चन्दनं भृङ्गराजपुष्पं निवेदयेत्। धूपं दीपं च नैवेद्यं मुखवासं च दक्षिणाम्॥३०॥

तब उसके आगे पिण्ड रखने के लिए कुश का आसन रख कर उसके ऊपर प्रेत के नाम और गोत्र के उच्चारण पूर्वक चावल के भात से अथवा जौ के आटे से बने हुए पिण्ड, खस, चन्दन, भृङ्गराज के पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मुखवासार्थ ताम्बूल और दक्षिणा समर्पित करे।।२९-३०।।

काकान्नं पयसोः[२] पात्रे वर्धमानजलाञ्जलीन्[३]।
प्रेतायामुकनाम्ने च मद्दत्तमुपतिष्ठतु॥३१॥

तब काकान्न अर्थात् कौवे के निमित्त अन्न, दूध और जल से भरे हुए दो पात्र और वर्धमान (वृद्धिक्रम से) जलाञ्जलि प्रदान करते हुए यह कहे कि 'अमुक नाम वाले प्रेत को मेरे द्वारा प्रदत्त ये श्राद्ध वस्तुएँ प्राप्त हों'।।३१।।

---

१. अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्।। गरुड सारोद्धार ११/४०; शान्तिपर्व ४७/६५।

२. पाठान्तर - पयसः पात्रे। किन्तु 'पयसोः पात्रे' ही शुद्ध पाठ है - पयश्च पयश्च पयसी, तयोः पयसो नीरक्षीरयोः इत्यर्थः।

३. 'वर्धमानजलाञ्जलि' का तात्पर्य पहले किसी ने स्पष्ट नहीं किया है। इसका तात्पर्य है प्रतिदिन वृद्धिक्रम से दी जाने वाली जलाञ्जलि। अधिक स्पष्टीकरण हेतु द्रष्टव्य -जलाञ्जल्यः प्रदातव्याः प्रेतमुद्दिश्य प्रत्यहम्।। तावद् वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डं दशाह्निकम्।। गरुड उ० ५/६०/६१; गरुड ध०का०प्रे०ख० १५/६१-६२।

अन्नं वस्त्रं जलं द्रव्यमन्यद्वा दीयते च यत्।
प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्त्यदायकम्॥३२॥

अन्न, वस्त्र, जल या अन्य जो भी वस्तु मृतक के नाम के साथ प्रेत शब्द जोड़ कर दी जाती है, उससे उस प्रेत को अनन्त अर्थात् अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है।।३२।।

तस्मादादिदिनादूर्ध्वं प्राक्सपिण्डीविधानतः। योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्दं समुच्चरेत्॥३३॥

अतः अन्त्येष्टि के प्रथम दिन से लेकर सपिण्डीकरण तक का विधान पूर्ण होने तक मृतक स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ही उनके नाम के साथ विशेषण रूप में 'प्रेत' शब्द का उच्चारण करे।।३३।।

प्रथमेऽहनि यत्पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम्।
तेनैव विधिनान्नेन नव पिण्डान् प्रदापयेत्॥३४॥

प्रथम दिन विधिपूर्वक जिस अन्न का पिण्ड दिया जाता है, उसी अन्न से विधिपूर्वक नौ दिन तक पिण्ड प्रदान करे।।३४।।

नवमे दिवसे चैव सपिण्डैः सकलैर्जनैः। तैलाभ्यङ्गः प्रकर्तव्यो मृतकस्वर्गकाम्यया॥३५॥

बहिः स्नात्वा गृहीत्वा च दूर्वा लाजासमन्विताः।
अग्रतः प्रमदां कृत्वा समागच्छेन्मृतालयम्॥३६॥
दूर्वावत्कुलवृद्धिस्ते लाजा इव विकासिता।
एवमुक्त्वा त्येजद् गेहे लाजान्दूर्वासमन्वितान्॥३७॥

नवें दिन सपिण्ड सम्बन्ध के सभी जन मृतक की स्वर्ग-प्राप्ति की कामना से अपने शरीर में तेल मालिश करें और तब घर के बाहर नदी, तालाब आदि में स्नान करके अपने साथ दूर्वा और लाजा ले जाकर महिलाओं को अपने आगे करके मृतक के घर जावें और उस घर में जाकर यह कहें कि ''तुम्हारे कुल की वृद्धि दूर्वा के समान और तुम्हारे कुल का विकास लाजा (लावा) के समान होवे'' ऐसा कह कर वे दूर्वासहित लाजाओं को उसके घर में विखेर दें।।३५-३७।

दशमेऽहनि मांसेन पिण्ड दद्यात्खगेश्वर!। माषेण तन्निषेधाद्वा कलौ न पलपैतृकम्॥३८॥

हे गरुड़! दशवें दिन मांस का पिण्ड दे अथवा उसके निषिद्ध होने के कारण माष (उड़द) के पिण्ड दें, (क्योंकि धर्मशास्त्रानुसार) कलियुग में मांस से पितृकृत्य (श्राद्ध) नहीं किया जा सकता[१]।।३८।।

दशमे दिवसे क्षौरं बान्धवानां च मुण्डनम्।
क्रियाकर्तुः सुतस्यापि पुनर्मुण्डनमाचरेत्॥३९॥

दशवें दिन क्षौर कर्म किया जाता है। इस दिन सभी बान्धव मुण्डन करावें और क्रिया करने वाला पुत्र भी पुनः मुण्डन करावे[२]।।३९।।

---

१. अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।। ११२।। देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्।। ब्रह्मवै० ४/११५/११२-३

२. यह वचन-प्रदेश, क्षेत्र-विशेष या जाति विशेष के लोकाचार के अनुसार ही पालनीय है।

मिष्टान्नैर्भोजयेदेकं दिनेषु दशसु द्विजम्। प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च हरिं ध्यात्वा कृताञ्जलिः॥४०॥

दश दिनों तक एक ब्राह्मण को मिष्टान्न भोजन करावे और हाथ जोड़कर भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए प्रेत की मुक्ति हेतु प्रार्थना करे।।४०।।

[१]अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्॥४१॥

अतसी (तीसी) के पुष्प के समान कान्ति वाले, पीत वस्त्र धारी अच्युत भगवान् विष्णु को जो मनुष्य नमस्कार करते हैं, उन्हें किसी से कोई भय नहीं होता।।४१।।

अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अव्ययः[२] पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्॥४२॥

आदि-अन्तरहित, शंखचक्रगदाधारी, अविनाशी और कमल के समान नेत्रों वाले भगवान् विष्णु प्रेत को मोक्ष-प्रदान करें।।४२।।

इति सम्प्रार्थनामन्त्रं श्राद्धान्ते प्रत्यहं पठेत्।
स्नात्वा गत्वा गृहे दत्त्वा गोग्रासं भोजनं चरेत्॥४३॥

।।इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे दशगात्रविधिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

इस आशय के प्रार्थना-मन्त्र को श्राद्ध के अन्त में प्रतिदिन पढ़े। इस तरह श्राद्ध करने के उपरान्त स्नान करके घर जाकर गोग्रास देकर भोजन करे।।४३।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में दशगात्रविधिनिरूपण विषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।११।।
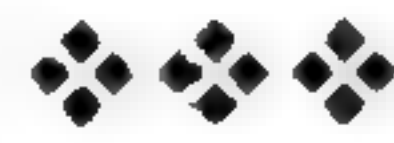
अथ द्वादशोऽध्यायः

एकादशाह विधि निरूपण

गरुड उवाच

एकादशदिनस्यापि विधिं ब्रूहि सुरेश्वर। वृषोत्सर्गविधानं च वद मे जगदीश्वर॥१॥

गरुड़ बोले—हे सुरेश्वर! आप एकदशाह के कृत्यों की विधि बतलाइए और हे जगदीश्वर! वृषोत्सर्ग का विधान भी बतलाइए।।१।।

श्री भगवानुवाच

एकादशेऽह्नि गन्तव्यं प्रातरेव जलाशये। औध्र्वदेहिक्रिया सर्वा करणीया प्रयत्नतः॥२॥

१. यह श्लोक महाभारत शान्तिपर्व ४७/९१ से उद्धृत है।

२. पाठान्तर-अक्षय्यः

श्री भगवान् बोले—ग्यारहवें दिन प्रभात काल में ही जलाशय (नदी, तालाब या कुएँ आदि) पर जाकर प्रयत्नपूर्वक सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक क्रिया करनी चाहिए।।२।।

निमन्त्रयेद्ब्राह्मणांश्च वेदशास्त्रपरायणान्।
प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च नमस्कृत्य कृताञ्जलिः॥३॥

इसके लिए वेद और शास्त्रों के अध्ययन-मनन में तत्पर ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे और हाथ जोड़ कर नमस्कार करके उनसे प्रेत की मुक्ति दिलाने हेतु प्रार्थना करे।।३।।

स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा ह्याचार्योऽपि शुचिर्भवेत्।
विधानं विधिवत्कुर्यादेकादशदिनोचितम्॥४॥

आचार्य भी स्नान और सन्ध्यावन्दन आदि करके शुचि होकर ग्यारहवें दिन के लिए विहित कृत्यों को विधिवत् सम्पादित करे।।४।।

अमन्त्रं कारयेच्छ्राद्धं दशाहं नामगोत्रतः।
एकादशेऽह्नि प्रेतस्य दद्यात्पिण्डं समन्त्रकम्॥५॥

दश दिन तक मृतक का श्राद्ध मन्त्रोच्चारण के विना केवल उसके नाम तथा गोत्र और उसके साथ प्रेत शब्द का उच्चारण करके करे, किन्तु ग्यारहवें दिन प्रेत को मन्त्र पढ़ते हुए पिण्डदान करे।।५।।

सौवर्णं कारयेद्विष्णुं ब्रह्माणं रौप्यकं तथा।
रुद्रस्ताम्रमयः कार्यो यमो लोहमयः खग!॥६॥

हे गरुड़! (एकादशाह के दिन) सोने की विष्णु प्रतिमा, चांदी की ब्रह्मा की प्रतिमा, ताँबे की रुद्र की प्रतिमा और यम की प्रतिमा लोहे की बनवावे।।६।।

पश्चिमे विष्णुकलशं गङ्गोदकसमन्वितम्।
तस्योपरि न्यसेद्विष्णुं पीतवस्त्रेण वेष्टितम्॥७॥

श्राद्ध स्थल के पश्चिम में गङ्गाजल से पूर्ण विष्णु-कलश स्थापित करके उसके ऊपर पीतवस्त्र से वेष्टित (लपेटी हुई) विष्णु की प्रतिमा को स्थापित करे।।७।।

पूर्वे तु ब्रह्मकलशं क्षीरोदकसमन्वितम्। ब्रह्माणं स्थापयेत्तत्र श्वेतवस्त्रेण वेष्टितम्॥८॥

उसकी पूर्व दिशा में दूध और जल से भरा हुआ ब्रह्मा का कलश स्थापित करके उसके ऊपर श्वेतवस्त्र से वेष्टित ब्रह्मा की प्रतिमा को स्थापित करे।।८।।

उत्तरस्यां रुद्रकुम्भं पूरितं मधुसर्पिषा। श्रीरुद्रं स्थापयेत्तत्र रक्तवस्त्रेण वेष्टितम्॥९॥

तब उत्तर दिशा में मधु और घृत से पूरित रुद्र-कलश स्थापित करके उसके ऊपर रक्तवस्त्र से वेष्टित रुद्र की प्रतिमा को स्थापित करे।।९।।

दक्षिणस्यां यमघटमिन्द्रोदकसमन्वितम्।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य तस्योपरि यमं न्यसेत्॥१०॥

दक्षिण दिशा में इन्द्र (कृत वर्षा) के जल से पूरित यम का घट स्थापित करके उसके ऊपर कृष्ण वर्ण के वस्त्र से वेष्टित यम की प्रतिमा को स्थापित करे।।१०।।

मध्ये तु मण्डलं कृत्वा स्थापयेत्कौशिकं सुतः।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वाऽपसव्येन च तर्पयेत्॥११॥

उन तीनों कलशों के मध्य में एक मण्डल बना कर उस पर कुशों से निर्मित प्रेत (के पुतले) को स्थापित करके पुत्र दक्षिणाभिमुख और अपसव्य होकर उसका तर्पण करे।।११।।

विष्णुं विधिं शिवं धर्मं वेदमन्त्रैश्च तर्पयेत्।
होमं कृत्वा चरेत्पश्चाच्छ्राद्धं दशघटादिकम्॥१२॥

और तब विष्णु, ब्रह्मा, शिव और धर्मराज (यम) के वेदमन्त्रों से तर्पण करे। तब होम करने के पश्चात् दशघटादिक श्राद्ध करे।।१२।।

गोदानं च ततो दद्यात्पितॄणां तारणाय वै। गौरेषा हि मया दत्ता प्रीतये तेऽस्तु माधव॥१३॥

तदनन्तर पितरों को तारने के लिए गोदान दे और गोदान के समय यह कहे कि—हे माधव! मेरे द्वारा प्रदत्त इस गौ के दान से आप प्रसन्न होवें।।१३।।

उपभुक्तं तु तस्यासीद्वस्त्रभूषणवाहनम्।
घृतपूर्णं कांस्यपात्रं सप्तधान्यं तदीप्सितम्॥१४॥
तिलाद्यष्टमहादानमन्तकाले न चेत्कृतम्।
शय्यासमीपे धृत्वैतद्दानं तस्याः प्रदापयेत्॥१५॥

तदनन्तर उस प्रेत के द्वारा अपने जीवन काल में प्रयुक्त वस्त्र, आभूषण और वाहन, घृतपूर्ण कांस्य-पात्र, [1]सप्तधान्य और उस (प्रेत) की अन्य अभीष्ट वस्तुएँ तथा तिलदान आदि आठ महादानों[2] में से जो भी दान अन्तकाल (मृत्युकाल) में न दिये गये हों, उन सब को भी शय्या के समीप रखकर उन सब के साथ उस शय्या का दान करे।।१४-१५।।

प्रक्षाल्य विप्रचरणौ पूजयेदम्बरादिभिः।
सिद्धान्नं तस्य दातव्यं मोदकाऽपूपकाः पयः॥१६॥

शय्यादान के पूर्व प्रतिग्रहीता ब्राह्मण के चरण प्रक्षालित करके वस्त्रादि से उसकी पूजा करे और तब मोदक (लड्डू), पूड़ी-पुआ आदि पक्वान्न और दूध देकर भोजन करावे।।१६।।

स्थापयेत्पुरुषं हैमं शय्योपरि तदा सुतः। पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता॥१७॥

तब पुत्र उस शय्या पर सोने की पुरुष-प्रतिमा को रख कर उसकी पूजा करके यथाविधि उस मृतक की शय्या का दान (निम्नलिखित आशय वाले मन्त्र को पढ़ते हुए) करे।।१७।।

---

१. सप्तधान्य का उल्लेख पीछे ८/३३ की टिप्पणी में है।

२. अष्टमहादानों की सूची पीछे ८/३३ में है।

प्रेतस्य प्रतिमायुक्ता सर्वोपकरणैर्वृता। प्रेतशय्या मया ह्येषा तुभ्यं विप्र निवेदिता॥१८॥

हे विप्र! मैंने प्रेत की प्रतिमा और समस्त दान-सामग्रीसहित यह प्रेत-शय्या आपको समर्पित की है।।१८।।

इत्याचार्याय दातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥१९॥

ऐसा कह कर कुटुम्ब-परिवार वाले ब्राह्मण को शय्यादान करे और तब उसकी प्रदक्षिणा करके और प्रणाम करके उसे विदा करे।।१९।।

एवं शय्याप्रदानेन श्राद्धेन नवकादिना। वृषोत्सर्गविधानेन प्रेतो याति परां गतिम्॥२०॥

इस प्रकार शय्यादान करने से तथा नवश्राद्ध[१] आदि करने से और विधानपूर्वक वृषोत्सर्ग करने से प्रेत परमगति को प्राप्त करता है।।२०।।

एकादशेऽह्निविधिना वृषोत्सर्गं समाचरेत्।
हीनाङ्गं रोगिणं बालं त्यक्त्वा कुर्यात्सलक्षणम्॥२१॥

तत्पश्चात् ग्यारहवें दिन ही विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करे। हीनाङ्ग, रोगी तथा छोटे बछड़े को छोड़, सभी (शुभ) लक्षणों से युक्त तथा चक्र और त्रिशूल से चिह्नित वृष का उत्सर्ग करे।।२१।।

रक्ताक्षः पिङ्गलो यस्तु रक्तः शृङ्गे गले खुरे।
श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठो ब्राह्मणस्य विधीयते॥२२॥

ब्राह्मण के लिए रक्तवर्ण की आँखों वाले, पिङ्गलवर्ण के, रक्तिम (लालिमायुक्त) सींग, रक्तिम गला तथा रक्तिम खुरों वाले, सफेद पेट और काली पीठ वाले वृषभ का उत्सर्ग विहित है।।२२।।

सुस्निग्धवर्णो यो रक्तः क्षत्रियस्य विधीयते।
पीतवर्णश्च वैश्यस्य कृष्णः शूद्रस्य शस्यते॥२३॥

क्षत्रिय के लिए सुन्दर चिकने और रक्तवर्ण के वृषभ का उत्सर्ग विहित है, वैश्य के लिए पीलेवर्ण के वृष का उत्सर्ग और शूद्र के लिए कृष्णवर्ण के वृषभ का उत्सर्ग विहित किया गया है।।२३।।

यस्तु सर्वाङ्गपिङ्गः स्याच्छ्वेतः पुच्छे पदेषु च।
स पिङ्गो वृष इत्याहुः पितृणां प्रीतिवर्धनः॥२४॥

जिस वृषभ के सभी अङ्ग पिङ्गलवर्ण के हों और पूँछ तथा पैर सफेद हों, उसे पिङ्गलवर्ण का वृषभ कहते हैं। वह पितरों की प्रसन्नता को बढ़ाता है।।२४।।

---

१. नवश्राद्ध के विषय में प्राचीन आचार्यों के अनेक मत प्राप्त होते हैं जिनमें अङ्गिरा का वचन उद्धरणीय है- प्रथमेह्नि न तृतीये च पञ्चमे सप्तमेऽपिवा। नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते।। इस विषय में अधिक विवरण और सूक्ष्म-विवेचन के लिए द्र० पराशरमाधव, आचारकाण्ड, पृ० ७६८/-६६, याज्ञ० स्मृति १/२५२ पर मिताक्षरा; निर्णयसिन्धु, पृ० ४१५। एकादशाह के दिन किया जाने वाला श्राद्ध भी नवक श्राद्ध कहलाता है। उस श्राद्ध के अन्न को चतुष्पथ (चौराहे) में त्याग करके पुनः स्नान करना चाहिए - एकादशाहे यच्छ्राद्धं नवकं तत् प्रकीर्तितम्। चतुष्पथे त्यजेदन्नं पुनः स्नानं समाचरेत्।। गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ३४/५६।

चरणास्तु मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः।
लाक्षारससवर्णो यः स नील इति कीर्तितः॥२५॥

जिस वृषभ के पैर, मुख और पूँछ सफेद हों और शेष पूरा शरीर लाख के समान (रक्त) वर्ण का हो, उसे नीलवृष कहा जाता है।।२५।।

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः।
पिङ्गः खुरविषाणाभ्यां रक्तनीलो निगद्यते॥२६॥

जो वृषभ रक्त वर्ण का हो और उसका मुख एवं पूँछ पाण्डु (पीले) वर्ण की हो तथा खुर और सींग पिङ्गलवर्ण के हों उसको रक्तनील वृषभ कहा जाता है।।२६।।

सर्वाङ्गेष्वेकवर्णो यः पिङ्गः पुच्छे खुरेषु यः।
तं नीलपिङ्गमित्याहुः पूर्वजोद्धारकारकम्॥२७॥

जिस वृषभ के समस्त अङ्ग एक समान वर्ण के हों तथा पूँछ और खुर पिङ्गवर्ण के हों उसे नील-पिङ्ग वृषभ कहते हैं और वह पितरों का उद्धार करने वाला होता है।।२७।।

पारावतसवर्णस्तु ललाटे तिलकान्वितः।
तं बभ्रुनीलमित्याहुः पूर्णं सर्वाङ्गशोभनम्॥२८॥

जो वृषभ कबूतर के समान वर्ण का हो और उसके ललाट में तिलक की सी आकृति बनी हो, उस सर्वाङ्गसुन्दर वृषभ को बभ्रु-नील वृषभ कहते हैं।।२८।।

नीलः सर्वशरीरेषु रक्तश्च नयनद्वये। तमप्याहुर्महानीलं नीलः पञ्चविधः स्मृतः॥२९॥

जिस वृषभ का समस्त शरीर नीलवर्ण का हो और दो आँखें रक्तवर्ण की हों, उसको महानील वृषभ कहते हैं। इस प्रकार नील वृषभ पाँच प्रकार का होता है[1]।।२९।।

अवश्यमेव मोक्तव्यो न स धार्यो गृहे भवेत्।
तदर्थमेषा चरतिं लोके गाथा पुरातनी॥३०॥

उत्सर्ग किये गये वृषभ को अवश्य मुक्त कर देना (छोड़ देना) चाहिए। वह घर में रखने योग्य नहीं होता। उसी के विषय में लोक में पुरातन काल से ही यह (निम्नलिखित) गाथा प्रचलित रही है।।३०।।

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
गौरीं विवाहयेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥३१॥

---

१. यदि उक्त वर्ण का वृषभ सुलभ न हो, तो ब्राह्मण के लिए श्वेतवर्ण के, क्षत्रिय के लिए लोहित (रक्त) वर्ण के, वैश्य के लिए पीत वर्ण के तथा शूद्र के लिए कृष्ण वर्ण के वृषभ का उत्सर्ग करे, अथवा सभी वर्णों के लिए रक्त वर्ण के वृषभ का उत्सर्ग किया जा सकता है- लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः।।१९।। पीतः खुर विषाणेषु च नीलो वृष उच्यते।। पीतवर्णो भवेद् वैश्यः शूद्रः कृष्णः स्मृतो बुधैः। यथावर्णं समुद्दिष्टो वर्णेषु ब्राह्मणादिषु।।२१।। अथवा रक्तवर्णस्तु सर्वेषामेव शस्यते। गरुड धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ६।१९-२२ वृष के विभिन्न भेद हेतु द्रष्टव्य- शब्दकल्पद्रम भाग ४ पृ. ४८५-४८६ में वृषभ शब्द।

मनुष्य को बहुत-से पुत्रों के जन्म की कामना करनी चाहिए, ताकि उनमें से कोई तो गया जा सके या गौरी कन्या[1] (आठ वर्ष की कन्या) का विवाह (कन्यादान) करे या नील वृष का उत्सर्ग कर सके।।३१।।

स एव पुत्रो मन्तव्यो वृषोत्सर्गं तु यश्चरेत्।
गयायां श्राद्धदाता च योऽन्यो विष्ठासमः किल॥३२॥

उसी को पुत्र मानना चाहिए जो वृषोत्सर्ग करे और जो गया में जाकर श्राद्ध करे। इससे भिन्न अर्थात् ऐसा न करने वाला पुत्र तो विष्ठा के समान है।।३२।।

रौरवादिषु ये केचित्पच्यन्ते यस्य पूर्वजाः।
वृषोत्सर्गेण तान् सर्वांस्तारयेदेकविंशतिम्॥३३॥

जिस किसी के जो कोई भी पूर्वज रौरव आदि नरकों में यातना पा रहे हों, वह अपने इक्कीस पीढ़ी तक के उन पूर्वजों को वृषोत्सर्ग करके तार देता है।।३३।।

[2]"एकोदशेऽह्नि सम्प्राप्ते वृषालाभो भवेद्यदि।
दर्भैः पिष्टैस्तु सम्पाद्य तं वृषं मोचयेद् बुधः॥३४॥
वृषोत्सर्जनवेलायां वृषालाभः कथञ्चन।
मृतिकाभिस्तु दर्भैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत्[2]"॥३५॥

गरुड़महापुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड में बतलाया गया है कि यदि एकादशाह के दिन वृष उपलब्ध न हो सके, तो कुशों का या पिष्ट (जौ आदि) के आटे का या मिट्टी का वृषभ बनाकर उसका उत्सर्ग (विमोचन) करे।।३४-३५।।

वृषोत्सर्गं किलेच्छन्ति पितरः स्वर्गता अपि[3]।
अस्मद्वंशे सुतः कोऽपि वृषोत्सर्गं करिष्यति॥३६॥
सर्वयज्ञेषु चास्माकं वृषयज्ञो हि मुक्तिदः॥३७॥

स्वर्ग में गये हुए पितर भी वृषोत्सर्ग की कामना करते हैं। वे यह आशा करते हैं कि हमारे वंश में उत्पन्न कोई पुत्र तो वृषोत्सर्ग करेगा। उसके द्वारा किये गये वृषोत्सर्ग से हम सब परम गति को प्राप्त करेंगे। सभी प्रकार के यज्ञों में श्रेष्ठ वृषोत्सर्ग रूपी यज्ञ ही हमको मुक्ति-प्रदान करता है।।३६-३७।।

तस्मात् पितृविमुक्त्यर्थं वृषयज्ञं समाचरेत्। यथोक्तेन विधानने कुर्यात्सर्वं प्रयत्नतः॥३८॥

---

१. अष्टवर्षा भवेद गौरी नववर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेत् कन्या उत ऊर्ध्वं रजस्वला। संवर्तस्मृति श्लोक ६६ (स्मृति सन्दर्भ प्रथम भाग पृ० ५५३) तथा पराशरमाधव आचार काण्ड पृ० ४८२ में यम स्मृति का वचन। द्र० - सर्वेषामेव दानानामेकजन्मनुगं फलम्। हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम्।संवर्तस्मृति श्लोक ७६ (स्मृति सन्दर्भ प्रथम भाग पृ० ५५४) तथा बृहस्पतिस्मृति श्लोक ३४ स्मृतिसन्दर्भ भाग ३ पृ० १६१३ में उद्धृत।

२. गरुडपुराण धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ५/४४-४६ से उद्धृत।

३. पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। आशासते सुतं जातं वृषोत्सर्गं करिष्यति। गरुड धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ६/२२-२३।

अतः पितरों की मुक्ति हेतु वृषोत्सर्ग रूपी यज्ञ करे। इसके सम्पूर्ण कृत्य शास्त्रोक्त विधान के अनुसार करे।।३८।।

ग्रहाणां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैश्च पूजनम्।
होमं कृत्वा यथाशास्त्रं वृषं वत्सां च पूजयेत्॥३९॥

वृषोत्सर्ग करने वाला पुरुष शास्त्रीय विधान के अनुसार ग्रहों का स्थापन और प्रत्येक ग्रह का पूजन व तत्तत् ग्रह के मन्त्र से होम करके वृष तथा बछिया का पूजन करे।।३९।।

वत्सं वत्सीं समानाय्य बध्नीयात्कंकणं तयोः।
वैवाह्येन विधानेन स्तम्भमारोपयेत्तदा॥४०॥

बछड़ा (वृष) और बछड़ी को लाकर उनको कंकण बाँधे और विवाह-संस्कार के विधि-विधान से स्तम्भारोपण करे।।४०।।

स्नापयेच्च वृषं वत्सीं रुद्रकुम्भोदकेन च।
गन्धमाल्यैश्च सम्पूज्य कारयेच्च प्रदक्षिणाम्॥४१॥

वृष (बछड़ा) और बछड़ी को रुद्र-कलश के जल से स्नान करावे और चन्दन-रोली तथा पुष्प-माला आदि से उनका पूजन करके उनकी प्रदक्षिणा करे।।४१।।

त्रिशूलं दक्षिणे पार्श्वे वामे चक्रं प्रदापयेत्।
तं विमुच्याञ्जलिं बद्ध्वा पठेन्मन्त्रमिमं सुतः॥४२॥

वृष की पीठ पर दाँयी ओर त्रिशूल और बाँयी ओर चक्र का चिह्न अङ्कित करावे और तब उसे छोड़ते हुए पुत्र हाथ जोड़कर इस मन्त्र को पढ़े।।४२।।

[१]धर्मस्त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा। तवोत्सर्गप्रदानेन तारयस्व भवार्णवात्॥४३॥

तुम पुरा काल में ब्रह्मा के द्वारा वृष रूप में निर्मित धर्म हो। तुम्हें मैंने उत्सर्ग (अर्थात् उन्मुक्त विचरण की छूट) रूपी जो दान दिया है, उससे प्रसन्न होकर तुम मुझे भवसागर से पार लगाओ।।४३।।

इति मन्त्रान्नमस्कृत्य वत्सं वत्सीं समुत्सृजेत्। वरदोऽहं सदा तस्य प्रेतमोक्षं ददामि च॥४४॥

इस मन्त्र को पढ़ते हुए नमस्कार करके बछड़ा (वृष) और बछड़ी दोनों को छोड़ दे। ऐसा करने वाले उस पुत्र पर मेरा वरद हस्त रहता है और जिस प्रेत के निमित्त यह वृषोत्सर्ग किया जाता है, उसको भी मैं मोक्ष प्रदान करता हूँ।।४४।।

तस्मादेष प्रकर्तव्यस्तत्फलं जीवतो भवेत्।
अपुत्रस्तु स्वयं कृत्वा सुखं याति परां गतिम्॥४५॥

अतः वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिए। मनुष्य अपने जीवन-काल में इसे करने पर भी वही फल

---

१. वृषोत्सर्ग का एक अन्य मन्त्र यह भी है-धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्ददायकः।।२३ अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।। (इत्यादि) द्र०-गरुड ध०का० प्रे०ख० ६/२३-२५।

प्राप्त होता है (जो कि मृतक को पुत्र के द्वारा करने पर प्राप्त होता है)। पुत्रहीन मनुष्य (अपने जीवन काल में) स्वयं अपने हाथ से वृषोत्सर्ग कर देने पर मृत्यु के बाद सुखपूर्वक परम गति को प्राप्त करता है।।४५।।

कार्तिकादौ शुभे मासे चोत्तरायणगे रवौ।
शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे द्वादश्यादितिथौ तथा॥४६॥
ग्रहणद्वितये चैव पुण्यतीर्थेऽयनद्वये। विषुवद्वितये चापि वृषोत्सर्गं समाचरेत्॥४७॥

कार्तिक आदि शुभ मासों में, सूर्य के उत्तरायण होने पर, शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष में भी द्वादशी आदि तिथियों में, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण काल में, पवित्र तीर्थ में, उत्तरायण (सूर्य के मकर राशि में प्रवेश) के दिन तथा दक्षिणायन (सूर्य के कर्क राशि में प्रवेश) के दिन तथा दोनों विषुवों अर्थात् मेष-संक्रान्ति और तुलासंक्रान्ति के दिन वृषोत्सर्ग किया जा सकता है।।४६-४७।।

शुभे लग्ने मुहूर्ते च शुचौ देशे समाहितः। ब्राह्मणं तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम्॥४८॥
जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्याद्देहशोधनम्।
पूर्ववत्सकलं कृत्यं कुर्याद्होमादिलक्षणम्॥४९॥

शुभलग्न और शुभ मुहूर्त में, शुचि स्थान में, समाहित (सावधान) चित्त होकर विधि-विधान के वेत्ता और शुभ लक्षणों से युक्त ब्राह्मण को बुला कर जप, होम तथा दान से अपनी देह को पवित्र करके पहले कही गयी विधि के अनुसार ही ग्रह-स्थापन, पूजन और ग्रह-होम आदि सकल कृत्यों को करे।।४८-४९।।

शालग्रामं च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत्।
आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद्दद्याद्दानं द्विजन्मने॥५०॥

तब शालग्राम को स्थापित करके वैष्णु-श्राद्ध करे। तदनन्तर अपना श्राद्ध करे और तब ब्राह्मणों को दान दे।।५०।।

एवं यः कुरुते पक्षिन्नपुत्रश्चापि पुत्रवान्।
सर्वकामफलं तस्य वृषोत्सर्गात् प्रजायते॥५१॥

हे गरुड़! पुत्रवाला अथवा पुत्रहीन जो भी व्यक्ति इस प्रकार वृषोत्सर्ग विषयक सभी कृत्य करता है, उसको वृषोत्सर्ग करने से सभी काम्य फल प्राप्त होते हैं।।५१।।

अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि।
न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण यां लभेत्॥५२॥

अग्निहोत्रादि विविध यज्ञों से और विविध दानों से भी मनुष्य वैसी सद्गति नहीं प्राप्त कर सकता, जैसी कि वृषोत्सर्ग से प्राप्त कर सकता है।।५२।।

बाल्ये कौमारे पौगण्डे यौवने वार्धके कृतम्।
यत्पापं तद्विनश्येत वृषोत्सर्गान्न संशयः॥५३॥

बाल्यावस्था (तीन वर्ष तक), कुमारावस्था (तीन से पाँच वर्ष तक) पौगण्डावस्था[१] (पाँच से दश वर्ष तक) तथा किशोरावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में जो पाप किया गया हो, वह सब वृषोत्सर्ग करने से नष्ट हो जाता है।।५३।।

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च सुरापी गुरुतल्पगः। ब्रह्महा हेमहारी च वृषोत्सर्गात् प्रमुच्यते॥५४॥

मित्रद्रोही, कृतघ्न, सुरापान करने वाला, गुरुपत्नीगामी, ब्रह्महत्या करने वाला और सोना चुराने वाला भी वृषोत्सर्ग करने से पापमुक्त हो जाता है।।५४।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत्। वृषोत्सर्गसमं पुण्यं नास्ति ताक्ष्र्य! जगत्त्रये॥५५॥

अतः समग्र प्रयत्न करके वृषोत्सर्ग रूपी यज्ञ करना चाहिए। हे गरुड़! वृषोत्सर्ग के समान पुण्यकर्म तीनों लोकों में अन्य कुछ भी नहीं है।।५५।।

पतिपुत्रवती नारी द्वयोरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं नैव कुर्याद्दद्याद् गां च पयस्विनीम्॥५६॥

पति और पुत्र वाली नारी यदि उन दोनों से पहले मर जाय तो उसके लिए वृषोत्सर्ग न करे, किन्तु उसके निमित्त दूध देने वाली गौ का दान करे।।५६।।

वृषभं वाहयेद्यस्तु स्कन्धे पृष्ठे च खेचर!। स पतेन्नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम्॥५७॥

हे गरुड़! जो कोई भी वृषोत्सर्ग के वृष (साँड़) को उसके कन्धे में जुआ रख कर खेत जोतने या उसकी पीठ पर सवारी या भार को लादकर उसे ढोने के काम में लाता है, वह प्रलय पर्यन्त घोर नरक में पड़ा रहता है।।५७।।

वृषभं ताडयेद्यस्तु निर्दयो मुष्टियष्टिभिः।
स नरः कल्पपर्यन्तं भुनक्ति यमयातनाम्॥५८॥

जो निर्दयी मनुष्य उस वृषभ (साँड़) को मुट्ठी (घूँसे) से या लाठी से मारता है, वह एक कल्प पर्यन्त यमयातना भोगता है।।५८।।

एवं कृत्वा वृषोत्सर्गं कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश।
सपिण्डीकरणादर्वाक् तदहं कथयामि ते॥५९॥

इस प्रकार वृषोत्सर्ग करके मृतक के लिए सपिण्डीकरण के पूर्व षोडशत्रय (मलिन षोडशी, मध्य षोडशी तथा उत्तम षोडशी) श्राद्धों को सम्पन्न करे। अब मैं तुम्हें उन श्राद्धों के विषय में बतलाता हूँ।।५९।।

स्थाने द्वारेऽधमार्गे च चितायां शवहस्तके।
अस्थिसञ्चयने षष्ठो दश पिण्डा दशाह्निकाः॥६०॥

मृतक का प्रथम पिण्डदान मृत्यु के स्थान में, दूसरा उसे द्वार पर रखे जाने पर, तीसरा श्मशान के अर्द्धमार्ग में पहुँचने पर, चौथा चिता में और पाँचवा शव के हाथ में तथा छठाँ अस्थिसञ्चय करने पर दिया

१. बाल, कुमार, पौगण्ड आदि की परिभाषा पीछे अध्याय १० के श्लोक ७६-७७ की पाद टिप्पणी में देखिए।

जाता है और मृत्यु के प्रथम दिन से लेकर दशवें दिन तक प्रतिदिन एक-एक के क्रम से दश पिण्ड दिये जाते हैं।।६०।।

मलिनं षोडशं चैतत्प्रथमं परिकीर्तितम्। अन्यच्च षोडशं मध्ये द्वितीयं कथयामि ते॥६१॥

इन सोलह श्राद्धों को प्रथम षोडश या मलिन षोडशी कहा जाता है। अब तुम्हें दूसरे षोडश श्राद्धों के विषय में बतलाता हूँ, जिन्हें मध्य षोडशी कहा जाता है।।६१।।

प्रथमं विष्णवे दद्याद् द्वितीयं श्रीशिवाय च।
याम्याय परिवाराय तृतीयं पिण्डमुत्सृजेत्॥६२॥

मध्य षोडशी के सोलह श्राद्धों में प्रथम पिण्ड भगवान् विष्णु को, दूसरा शिव को और तीसरा सपरिवार यम (अर्थात् यम और उनके दूतों) को प्रदान करे।।६२।।

चतुर्थं सोमराजाय हव्यवाहाय पञ्चमम्।
कव्यवाहाय षष्ठं च दद्यात्कालाय सप्तमम्॥६३॥

चौथा पिण्ड सोम को, पाँचवाँ हव्यवाट् (हव्यवहन करने वाले) अग्नि को, छठवाँ पिण्ड कव्यवाट् (कव्य को वहन करने वाले अर्थात् कव्य को पितरों तक पहुँचाने वाले) अग्नि को तथा सातवाँ पिण्ड काल को प्रदान करे।।६३।।

रुद्राय चाष्टमं दद्यान्नवमं पुरुषाय च। प्रेताय दशमं चैवेकादशं विष्णवे नमः॥६४॥

आठवाँ पिण्ड रुद्र को, नवाँ पुरुष (तत्पुरुष) को, दशवाँ प्रेत को और ग्यारहवाँ पिण्ड विष्णु को प्रदान करे।।६४।।

द्वादशं ब्रह्मणे दद्याद्विष्णवे च त्रयोदशम्। चतुर्दशं शिवायैव यमाय दशपञ्चकम्॥६५॥

बारहवाँ पिण्ड ब्रह्मा को, तेरहवाँ पिण्ड विष्णु को, चौदहवाँ शिव को और पन्द्रहवाँ पिण्ड यम को प्रदान करे।।६५।।

दद्यात्तत्पुरुषायैव पिण्डं षोडशकं खग!। मध्यषोडशकं प्राहुरेतत्तत्त्वविदो जनाः॥६६॥

सोलहवाँ पिण्ड तत्पुरुष को प्रदान करे। तत्त्वज्ञानी विद्वानों ने इन सोलह श्राद्धों को मध्य षोडशी कहा है।।६६।।

द्वादश प्रतिमासेषु पाक्षिकं च त्रिपाक्षिकम्।
न्यूनषाण्मासिकं पिण्डं दद्यान्न्यूनाब्दिकं तथा[१]॥६७॥

तब एक वर्ष तक प्रतिमास क्षयाह तिथि को किये जाने वाले बारह श्राद्ध, एक पाक्षिक श्राद्ध[२], एक त्रैपाक्षिक श्राद्ध, एक न्यूनषाण्मासिक श्राद्ध[३] तथा एक न्यूनाब्दिक श्राद्ध करे।।६७।।

---

१. तु०- द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा। त्रिपक्षसंभवञ्चैव द्वे रिक्ते खग षोडश।। गरुडपुराण उ० २५/३७।

२. पाक्षिक श्राद्ध को ही कहीं-कहीं 'ऊनमासिक श्राद्ध' भी कहा गया है।

३. छठवें महीने किये जाने वाले ऊनषाण्मासिक या न्यूनषाण्मासिक श्राद्ध तथा बारहवें महीने किये जाने वाले ऊनाब्दिक या न्यूनाब्दिक श्राद्ध को क्षयाह की तिथि से एक, दो या तीन दिन पूर्व भी किया जा सकता है। इस विषय में विशेष विचार हेतु द्र०-पराशर माधव, आ०का० पृ० ७७०-७७१ तथा निर्णयसिन्धु पृ० ४२२-४२३।

उत्तमं षोडशं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्।
श्रपयित्वा चरुं तार्क्ष्य! कुर्यादेकादशेऽहनि॥६८॥

यह मैंने तुम्हें उत्तम षोडशी संज्ञक सोलह श्राद्धों के विषय में बतलाया। हे गरुड़! चरु को पका कर उससे इन सभी श्राद्धों को ग्यारहवें दिन (एकादशाह के दिन) भी कर सकता है।।६८।।

चत्वारिंशत्तथैवाऽष्टौ श्राद्धं प्रेतत्वनाशनम्।
यस्य जातं विधानेन स भवेत्पितृपंक्तिभाक्॥६९॥

जिस मृतक के लिए प्रेतत्व से मुक्ति दिलाने वाले ये (षोडशत्रयी के) अठचालीस श्राद्ध[1] विधि-विधानपूर्वक कर दिये जाते हैं, वह पितरों की पंक्ति में आने का अधिकारी हो जाता है।।६९।।

पितृपंक्तिप्रवेशार्थं कारयेत्षोडशत्रयम्। एतच्छ्राद्धविहीनश्चेत्प्रेतो भवति सुस्थिरम्॥७०॥

अत: प्रेत को पितरों की पंक्ति में प्रवेश दिलाने के लिए षोडशत्रयी (अर्थात् मलिन षोडशी, मध्य षोडशी और उत्तम षोडशी संज्ञक श्राद्धों) को अवश्य करे। जिसके ये श्राद्ध नहीं हो पाते हैं, वह सदा के लिए प्रेत ही रह जाता है।।७०।।

यावन्न दीयते श्राद्धं षोडशत्रयसंज्ञकम्। स्वदत्तं परदत्तं च तावन्नैवोपतिष्ठते॥७१॥

जब तक षोडशत्रयी में गिनाये गये श्राद्ध नहीं कर दिये जाते, तब तक प्रेत को अपने या पराये किसी के द्वारा प्रदत्त कोई भी द्रव्य प्राप्त नहीं हो पाता।।७१।।

तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं विधिना षोडशत्रयम्।
भर्तुर्वा कुरुते पत्नी तस्याः श्रेयो ह्यनन्तकम्॥७२॥

अत: पुत्र विधिपूर्वक षोडशत्रय संज्ञक श्राद्धों को अवश्य करे। पत्नी भी यदि अपने मृत पति के उक्त षोडशत्रय श्राद्धों को करती है, तो वह अनन्त श्रेय को प्राप्त करती है।।७२।।

संपरेतस्य या पत्युः कुरुते चौर्ध्वदेहिकम्।
क्षयाहं पाक्षिकश्राद्धं सा सतीत्युच्यते मया॥७३॥

जो नारी अपने मृत पति की और्ध्वदेहिक क्रिया, क्षयाह[2] श्राद्ध (वार्षिक श्राद्ध) तथा पाक्षिक[3] श्राद्ध (महालय श्राद्ध) करती है, उसी को मैं सती (पतिव्रता-साध्वी नारी) कहता हूँ।।७३।।

उपकाराय सा भर्तुर्जीवत्येषा पतिव्रता। जीवितं सफलं तस्या या मृतं स्वामिनं भजेत्॥७४॥

वही नारी पतिव्रता है, जो पति की और्ध्वदेहिक क्रिया और अन्य श्राद्धरूपी उपकार के लिए जीवित रहती है। उसी का जीवन सफल है, जो अपने मृत पति की भी सेवा श्राद्धदान करके करती है।।७४।।

---

१. मलिन षोडशी के सोलह श्राद्ध मध्यम षोडशी के सोलह तथा उत्तम षोडशी के सोलह श्राद्ध मिलाकर अठचालीस श्राद्ध होते हैं।

२. मास-पक्ष-तिथिस्पष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि। प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः।। व्यास (हेमाद्रि, श्राद्धकल्प, पृ० २८२ में उद्धृत)

३. आश्विने मासि कन्यायां गते वा न गते रवौ। कृष्णपक्षे कृतं श्राद्धं पाक्षिकं तद्विधीयते।।

अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियते वह्निवारिभिः।
संस्कारप्रमुखं कर्म सर्वं कुर्याद्यथाविधि॥७५॥

यदि कोई मनुष्य प्रमादवश अग्नि से जल करके या जल में डूब करके मर जाय, तो उसके दाहादि सभी संस्कारों और सभी श्राद्धों को यथाविधि करे।।७५।।

प्रमादादिच्छया वापि नागाद्वा म्रियते यदि। पक्षयोरुभयोर्नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत्॥७६॥

यदि कोई मनुष्य प्रमादवश या इच्छापूर्वक सर्प के काटने से मर जाय, तो (उसकी अन्त्येष्टि के पश्चात् सभी श्राद्धों को करने के साथ ही) एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास की दोनों पक्षों की नाग-पञ्चमियों को नाग की पूजा करे।।७६।।

कुर्यात्पिष्टमयीं लेख्यां नागभोगाकृतिं भुवि।
अर्चयेत्तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश्चन्दनेन च॥७७॥

भूमि पर चावल के या गेहूँ के आटे से फणयुक्त सर्प की आकृति बनावे और श्वेत पुष्पों, सुगन्धित द्रव्यों और चन्दन से उसकी पूजा करे।।७७।।

प्रदद्याद्धूपदीपौ च तण्डुलांश्च तिलान् क्षिपेत्।
आमपिष्टं च नैवेद्यं क्षीरं च विनिवेदयेत्॥७८॥

उसे धूप और दीप दिखा कर उसके ऊपर चावल और तिलों को चढ़ावे तथा (धान या गेहूँ के) कच्चे आटे का नैवेद्य एवं दूध अर्पित करे।।७८।।

सौवर्णं शक्तितो नागं गां च दद्याद्द्विजन्मने।
कृताञ्जलिस्ततो ब्रूयात्प्रीयतां नागराडिति॥७९॥

अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार सोने के नाग तथा गौ का दान ब्राह्मण को दे और तब हाथ जोड़कर 'नागराज प्रसन्न होवें' ऐसा कहे।।७९।।

पुनस्तेषां प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम्। तया लभन्ते स्ववासं मुच्यन्ते सर्वपातकैः॥८०॥

तदनन्तर ऐसे मृतकों के लिए नारायणबलि की क्रिया करे। ऐसा करने से वे सर्पदंश से मृत मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।।८०।।

एवं सर्वक्रियां कृत्वा घटं सान्नं जलान्वितम्।
दद्यादब्दं यथासंख्यान् पिण्डान् वा सजलान् क्रमात्॥८१॥

इस प्रकार सारी क्रिया करके एक वर्ष तक अन्न और जल से युक्त घट प्रदान करे अथवा पूरे वर्ष पर्यन्त क्रमशः जलयुक्त पिण्ड प्रदान करे[१]।।८१।।

---

१. इस प्रसंग में याज्ञवलक्य और लौगाक्षि आदि के विचार इस प्रकार हैं-अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत्। अस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे।। याज्ञवल्क्यस्मृ० १/२२५ तु०-लौगाक्षिस्मृति, पृ० ३६९ (स्मृतिसन्दर्भ भाग ६); द्र०-गरुडपुराण उ० २७/१२-१५ और निर्णयसिन्धु पृ० ४२१। प्रेतत्व एक वर्ष तक बना रहता है- अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य वर्षाच्च वा कृतम्। प्रेतत्वमपि तस्यापि प्रोक्तं संवत्सरं ध्रुवम्।। स्कनद १/२/५०/९४। उसके निमित्त प्रदत्त अन्न और जलयुक्त घट प्रदान करने से एक वर्ष तक उसका शरीर बनता है। द्र०-स्कन्द १/२/५०/८१-८२।

एवमेकादशे कृत्वा कुर्यात्सपिण्डनं ततः।
शय्यापदानां दानं च कारयेत्सूतके गते॥८२॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे एकादशाहविधिनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

इस प्रकार एकादशाह के कृत्यों को करके (बारहवें दिन) सपिण्डीकरण करे तथा सूतक-निवृत्त हो जाने पर शय्यादान और पद दान करे।।८२।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में एकादशाह विधिनिरूपण नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।१२।।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सपिण्डीकरण आदि सर्वकर्म-निरूपण

श्री गरुड उवाच

सपिण्डनविधिं ब्रूहि सूतकस्य च निर्णयम्। शय्यापदानां सामग्रीं तेषां च महिमां प्रभो॥१॥

गरुड़ बोले—हे प्रभो! सपिण्डीकरण की विधि, सूतक निर्णय तथा शय्यादान और पददान की सामग्री एवं इनकी महिमा का वर्णन कीजिए।।१।।

श्री भगवानुवाच

श्रृणु तार्क्ष्य! प्रवक्ष्यामि सापिण्ड्याद्यखिलां क्रियाम्।
प्रेतनाम परित्यज्य यया पितृगणे विशेत्॥२॥

श्री भगवान् बोले—हे गरुड़! सुनो,मैं तुमको सपिण्डन आदि की सम्पूर्ण क्रियाओं के विषय में बतलाता हूँ , जिनको करने से मृत व्यक्ति प्रेत संज्ञा से मुक्त होकर पितरों की श्रेणी में प्रवेश पा जाता है।।२।।

न पिण्डो मिलितो येषां पितामहशिवादिषु[1]। नोपतिष्ठन्ति दानानि पुत्रैर्दत्तान्यनेकधा॥३॥
अशुद्धः स्यात्सदा पुत्रो न शुद्ध्यति कदाचन। सूतकं न निवर्तेत सपिण्डीकरणं विना॥४॥

जिनका पिण्ड क्रमशः वसु, रुद्र (शिव) और आदित्य स्वरूप पिता, पितामह और प्रपितामह के पिण्ड के साथ नहीं मिला दिया जाता अर्थात् जिनका सपिण्डीकरण नहीं किया जाता उनको पुत्रों के द्वारा प्रदत्त अनेकविध दान प्राप्त नहीं होते और उनका पुत्र भी सदा अशुद्ध बना रहता है, वह कभी शुद्ध नहीं हो पाता, क्योंकि सपिण्डीकरण किये विना सूतक समाप्त नहीं होता।।३-४।।

१. "पितामहशिवादिषु" से जो संकेत किया गया है उसका स्पष्टीकरण आगे ४५वें श्लोक से हो जाता है।

तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं सूतकान्ते सपिण्डनम्।
सूतकान्तं प्रवक्ष्यामि सर्वेषां च यथोचितम्॥५॥

अतः पुत्र को सूतक के अन्त में सपिण्डन अर्थात् सपिण्डीकरण करना चाहिए। अब मैं सभी वर्णों के लिए सूतक-समाप्ति का यथोचित काल बतलाता हूँ।।५।।

ब्राह्मणस्तु दशाहेन क्षत्रियो द्वादशेऽहनि। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥६॥

ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारहवें दिन, वैश्य पन्द्रहवें दिन और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है।।६।।

दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके।
त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः[1]॥७॥

प्रेत सम्बन्धी सूतक में सपिण्ड सम्बन्ध के जातिजन दश दिन में शुद्ध होते है [द्र०-लेपभाजश्चतुर्थाद्यास्त्रयः स्युः पिण्डभागिनः।। पिण्डदः सप्तमस्तेषां सपिण्डाः सप्तपूरुषाः। पद्म १/१०/३४-३५] और कुल के जो लोग सपिण्ड-सम्बन्ध में नहीं आते, वे तीन रातों के पश्चात् शुद्ध होते हैं तथा अन्य सगोत्री अन्त्येष्टि के पश्चात् स्नान कर लेने पर शुद्ध हो जाते हैं।।७।।

ब्राह्मणार्थे विपन्ना ये नारीणां गोग्रहेषु च।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम्॥८॥

जो मनुष्य ब्राह्मण अथवा स्त्री की रक्षा करते हुए या दस्युओं के द्वारा अपहत की जा रही गायों की रक्षा हेतु युद्ध करते हुए अथवा रण-क्षेत्र में शत्रु-सेना के साथ युद्ध करते हुए मारे जाते हैं, उनका अशौच मात्र एक रात्रि तक ही रहेगा। (उनके सभी प्रेत कृत्य किये जा सकते हैं)।।८।।

भृग्वग्निपाशकाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम्। शृङ्गिदंष्ट्र्यग्निसर्पाद्यैर्मृतानां बुद्धिपूर्वकम्॥९॥

पतितानां च नाशौचं विद्युच्छस्त्रहताश्च ये।
तेषां नैव च दाहःस्यान्नान्तेष्टिर्नास्थिसञ्चयः[2]॥१०॥

भृगुपतन (पर्वत की ऊँची चट्टान से गिरकर मरने)या अग्नि में कूद कर या फाँसी लगाकर या जल में डूबकर जो लोग आत्महत्या करते हैं अथवा जो बुद्धिपूर्वक (जान-बूझकर) सींग वाले पशुओं, दाढ़ वाले पशुओं अथवा अग्नि या सर्पों के साथ खेलते हुए मारे जाते हैं तथा जो पतित हो जाते हैं और जो विद्युत् अथवा

१. गरुडपुराण सारोद्धार १३/८-९ (गरुडमहापुराण ध.का.प्रे.ख.१०७/१३-१४) के अद्यावधि प्रकाशित सभी संस्करणों में "चतुर्थे दशरात्रं" तथा "अष्टमे दिनमेक" इत्यादि दो श्लोकों का पाठ उचित नहीं है। पराशर स्मृति ३/९की व्याख्या में माधावाचार्य ने "चतुर्थे दशरात्रं०" इत्यादि में कथित अशौच-संकोच की स्वीकार्यता पर प्रश्न उठाया था-"दशाहाशौचविधानादाशौचस्य संकोच-विधानमनुपपन्नम्"(पराशरमाधव पृ० ५८९)। विज्ञानेश्वर ने तो मिताक्षरा टीका में उक्त व्यवस्था को नितान्त असंगत, अनादरणीय, लोकविरुद्ध और अस्वीकार्य बतलाया है-'चतुर्थे दशरात्रं स्यात्' इति तद्विगीतत्वान्नादरणीयम्...मधुपर्काङ्ग-पश्वालम्भनवल्लोकविद्विष्टत्वान्नानुष्ठेयम् (याज्ञ०स्मृति ३/१८ पर)। अतः उक्त दोनों श्लोकों को इस संस्करण में सम्मिलित नहीं किया गया है।

२. व्यापादयेद् य आत्मानं स्वयमग्न्युदकादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम्।

शस्त्र से मारे जाते हैं, उनके शव का दाह-संस्कार, अन्तेष्टि और अस्थिसञ्चय आदि नहीं करना चाहिए।।९-१०।।

उदकं पिण्डदानं च तेभ्यो यत्तु प्रदीयते। नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति॥११॥

उनके निमित्त प्रदत्त तिलाञ्जलि तथा पिण्डदान उनको प्राप्त नहीं होता, अपितु अन्तरिक्ष में विनष्ट हो जाता है।।११।।

तेषां शरीरं गङ्गायां महानद्यां विनिक्षिपेत्। ततस्संवत्सरादूर्ध्वं कृत्वा नारायणबलिम्।
पुत्रादयः प्रकुर्वन्तु सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम्॥१२॥

एक अन्य मतानुसार उन आत्महत्या करने वालों में से किसी के भी शव को ढोने वाला अथवा शवदाह आदि क्रिया करने वाला कृच्छ्र-सान्तपन करे-एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा। कटोदक क्रियां कृत्वा कृच्छ्रसान्तपनं चरेत्।। आत्महत्या करने वालों के शव को गङ्गा अथवा किसी भी महानदी में विसर्जित करना चाहिए और तदनन्तर एक वर्ष पश्चात् नारायणबलि सम्पन्न करके पुत्र अथवा अन्य कोई व्यक्ति उस आत्महत्या करने वाले के सभी और्ध्वदेहिक कृत्य करे।।१२।।

य आत्मत्यागिनां कुर्यात् स्नेहात् प्रेतक्रियां द्विजः।
स तप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥१३॥

जो व्यक्ति आत्महत्या करने वालों के प्रति स्नेहवश उनकी प्रेत-क्रिया करता है, वह प्रायश्चित्त रूप में तप्तकृच्छ्र करके चान्द्रायण करे।।१३।।

अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः।
तस्याशौचं विधातव्यं कार्यं चैवोदकादिकम्॥१४॥

यदि कोई व्यक्ति प्रमादवश अग्नि अथवा विष आदि से मरता है, तो उसका अशौच मानना चाहिए तथा उसके शवदाह, तिलाञ्जलि प्रदान आदि सभी क्रिया-कर्म करने चाहिए।।१४।।

वृद्धःशौचक्रियालुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः।
आत्मानं घातयेद् यस्तु भृग्वग्न्यनशनादिभिः॥१५॥
तत्र त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः।
तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत्[१]॥१६॥

यदि कोई व्यक्ति वृद्धावस्था में मल-मूत्रादि की शौच-क्रिया में असमर्थ हो जाय अथवा कोई वृद्ध या अन्य व्यक्ति अचिकित्स्य रोग से ग्रस्त हो जाय, तो वह यदि भृगुपतन (उच्च पर्वत-शिखर से कूदने) अथवा अनशन आदि करके आत्महत्या करता है, तो उसका अशौच तीन रातों तक मानना चाहिए तथा उसके शवदाह के दूसरे दिन अस्थिचयन करना चाहिए और तीसरे दिन तिलाञ्जलि देकर चौथे दिन उसका श्राद्ध करना चाहिए।।१५-१६।।

---

१. प्रस्तुत संस्करण में १३/८ से १३/१६ तक नौ श्लोकों को धर्मशास्त्रों के नाना ग्रन्थों से संकलित किया गया है।

देशान्तरगतः कश्चिच्छ्रुणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्॥१७॥

परदेश में गये हुए किसी व्यक्ति को अपने कुल में किसी के जन्म या मरण का समाचार दश रात्रि के अन्तर्गत सुनाई पड़ने पर (अथवा परदेश में किसी के जन्म या मरण का समाचार उसके जाति-बान्धवों को दश रात्रि के अन्दर सुनाई पड़ने पर) उतने ही समय तक अशौच (सूतक) रहता है, जितना समय दश रात्रियों के बीतने में शेष रहा हो।।१७।।

अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्।
संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्राद्विशुद्ध्यति॥१८॥

दश दिन बीतने के पश्चात् (और एक वर्ष के पहले तक) ऐसा समाचार मिलने पर तीन रात तक अशौच रहता है और एक वर्ष व्यतीत होने पर ऐसा समाचार मिलने पर स्नान कर लेने मात्र से शुद्धि हो जाती है।।१८।।

आद्यभागद्वयं यावन्मृतकस्य च सूतके। द्वितीये पतिते चाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते॥१९॥

मृतक सम्बन्धी सूतक के आरम्भिक दो भागों के बीतने के पहले (अर्थात् छः दिन तक) यदि दूसरा सूतक लग जाय तो प्रथम सूतक के साथ ही दूसरे सूतक की भी शुद्धि हो जाती है।।१९।।

आदन्तजननात्सद्य आचौलान्नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद् दशरात्रमतः परम्[१]॥२०॥

किसी बालक की मृत्यु दाँत निकलने के पूर्व हो जाय, तो सद्यः (अर्थात् उसके दफनाने के पश्चात् स्नान कर लेने पर) शुद्धि हो जाती है, इसके अनन्तर चूड़ाकरण (मुण्डन) होने तक किसी बालक की मृत्यु होने पर एक रात्रि पर्यन्त अशौच रहता है। चूड़ाकरण के अनन्तर व्रतबन्ध (उपनयन) होने तक किसी बालक की मृत्यु होने पर तीन रातों तक अशौच रहता है और व्रतबन्ध के पश्चात् जिसकी मृत्यु हो, उसका अशौच दश रात्रि तक रहता है।।२०।।

[२]आजन्मतस्तु चौलान्तं यत्र कन्या विपद्यते।
सद्यः शौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः॥२१॥

जब किसी भी वर्ण की कन्या की मृत्यु जन्म से लेकर मुण्डन पर्यन्त कभी भी होती है, तो सभी वर्णों में समान रूप से सद्यः (अर्थात् उसको दफनाने के अनन्तर स्नान कर लेने मात्र से) शुद्धि हो जाती है।।२१।।

ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि। अतः परं प्रवृद्धायां त्रिरात्रमिति निश्चयः॥२२॥

यदि कन्या की मृत्यु मुण्डन के पश्चात् वाग्दान (सगाई) के पूर्व कभी भी होती है, तो एक दिन का

---

१. याज्ञ० स्मृ० ३/२३, पराशरस्मृति (परा० मा०) ३/१७-८।

२. श्लोक २१ से २३ तक के ये तीन श्लोक स्मृतिचन्द्रिका के आशौचकाण्ड पृ० ३१-३२ में, पद्मपुराण के तथा स्मृति चन्द्रिका आचारकाण्ड पृ० ६०८ में और विष्णुस्मृति की वैजयन्ती टीका २२/३३ में ब्रह्मपुराण के बतलाये गये हैं।

सूतक लगता है, किन्तु बड़ी (सयानी) कन्या की मृत्यु होने पर निश्चयमेव तीन रात्रियों तक सूतक लगता है।।२२।।

वाक्प्रदाने कृते त्वत्र ज्ञेयं चोभयतस्त्र्यहम्। पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि॥२३॥

वाग्दान के पश्चात् कन्या की मृत्यु होने पर पिता और वर दोनों के ही कुल में तीन दिन का सूतक लगता है, किन्तु कन्यादान अर्थात् कन्या का विवाह हो जाने के पश्चात् उसकी मृत्यु होने पर केवल पति के ही कुल में सूतक लगता है।।२३।।

षण्मासाभ्यन्तरे यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि।
तदामास-समैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥२४॥

यदि गर्भिणी स्त्रियों का गर्भस्राव छः मास के अन्दर होता है, तो जितने मास का गर्भ रहता है, उतने ही दिन में वे शुद्ध होती है।।२४।।

द्र०-यदि गर्भो विपद्येत स्रवते चापि योषितः। यावन्मासं स्थितो गर्भस्तावद्दिनमशौचकम्।। गरुड़ ध० का० प्रे० ख० २४/३६।

अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमाशौचं तासु विद्यते।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति॥२५॥

छः मास के पश्चात् जिनका गर्भस्राव होता है, उन स्त्रियों को अपनी जाति के लिए विहित अशौच लगता है। गर्भपात होने पर सपिण्ड सम्बन्ध के लोगों की सद्यः (स्नान मात्र से) शुद्धि हो जाती है।।२५।।

सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेऽपि वा।
दशाहाच्छुद्धिरित्येष कलौ शास्त्रस्य निश्चयः॥२६॥

कलियुग में सभी वर्णों की जन्म और मृत्यु के सूतक की शुद्धि दशवें दिन हो जाती है, ऐसा भी शास्त्र का निर्णय है।।२६।।

आशीर्वादं देवपूजां प्रत्युत्थानाभिवन्दनम्। पर्यङ्के शयनं स्पर्शं न कुर्यान्मृतसूतके॥२७॥

मृत्यु के सूतक में (मृतकाशौच में) आशीर्वाद देना, देवपूजा, प्रत्युत्थान (आगन्तुक के स्वागतार्थ उठना), अभिवादन, पलंग या खाट पर शयन तथा किसी अन्य (सूतकरहित) व्यक्ति का स्पर्श न करे।।२७।।

सन्ध्यां दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्। ब्रह्मभोज्यं व्रतं नैव कर्तव्यं मृतसूतके॥२८॥

मृत-सूतक में सन्ध्या, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, ब्राह्मण-भोजन और व्रत आदि कभी नहीं करना चाहिए।।२८।।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सूतके यः समाचरेत्।
तस्य नित्यादिकं पूर्व-कृतं कर्म विनश्यति॥२९॥

जो मनुष्य सूतक में नित्य-नैमित्तिक और काम्य कर्म करता है, उसके पहले किये हुए नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म नष्ट हो जाते हैं।।२९।।

व्रतिनो मन्त्रपूतस्य साग्निकस्य द्विजस्य च।
ब्रह्मनिष्ठस्य यतिनो न हि राज्ञां च सूतकम्॥३०॥

ब्रह्मचर्य व्रतवाले तथा कृच्छ्रचान्द्राणादि व्रत करने वाले, निरन्तर मन्त्र जप से पवित्र रहने वाले, अग्निहोत्री ब्राह्मण, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण और योगी तथा राजा को सूतक नहीं लगता।।३०।।

शिल्पिनः कारवो वैद्या दासी दासाश्च भृत्यकाः।
अग्निमाञ्छ्रोत्रियो राजा सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः॥३१॥

शिल्पकार (अर्थात्) स्वर्णकार, कुम्भकार, चित्रकार, लोहकार, मालाकार आदि), कारु (बढ़ई आदि), वैद्य, दासी, दास, भृत्य, आहिताग्नि श्रोत्रिय ब्राह्मण तथा राजा का अशौच (सूतक) सद्यः निवृत्त हो जाता है।।३१।।

विवाहोत्सवयज्ञेषु जाते च मृतसूतके। तस्य पूर्वकृतं चान्नं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत्॥३२॥

विवाह, उत्सव और यज्ञों में जननाशौच या मृतकाशौच हो जाने पर उसके पहले से पकाये हुए अन्न को खाया जा सकता है, ऐसा मनु ने कहा है।।३२।।

सूतके यस्तु गृह्णाति तदज्ञानान्न दोषभाक्। दाता दोषमवाप्नोति याचकाय ददन्नपि॥३३॥

सूतक का ज्ञान न होने पर यदि कोई सूतक वाले घर का अन्न खाता है, तो वह दोषी नहीं होता, किन्तु याचक को सूतक का अन्न देने वाले दाता को दोष लगता है।।३३।।

प्रच्छाद्य सूतकं यस्तु ददात्यन्नं द्विजाय च।
ज्ञात्वा गृह्णन्ति ये विप्रा दोषभाजस्त एव हि॥३४॥

जो सूतक को छिपा कर ब्राह्मण को अन्न देता है अथवा भोजन कराता है, वह दाता तथा जो ब्राह्मण जानते हुए भी सूतक में भोजन करते हैं, वे सब भी दोषी होते हैं।।३४।।

तस्मात्सूतकशुद्ध्यर्थं पितुः कुर्यात्सपिण्डनम्।
ततः पितृगणैः सार्धं पितृलोकं स गच्छति॥३५॥

अतः सूतक से शुद्धि के लिए पिता का सपिण्डीकरण करे, तभी वह प्रेतत्व से मुक्त होकर पितृगणों के साथ मिलकर पितृलोक को जाता है।।३५।।

द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा।
सपिण्डीकरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥३६॥

तत्त्वदर्शी मुनियों ने बारहवें दिन, तीन पक्ष में अर्थात् तीसरे पक्ष के अन्तिम दिन में छः मास व्यतीत होने पर अथवा एक वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण का विधान बतलाया है।।३६।।

मया तु प्रोच्यते तार्क्ष्य! शास्त्रधर्मानुसारतः।
चतुर्णामेव वर्णानां द्वादशाहे सपिण्डनम्॥३७॥

हे गरुड़! मैंने तो धर्मशास्त्रानुसार चारों वर्णों के लिए बारहवें दिन सपिण्डीकरण विहित किया है।।३७।।

अनित्यत्वात्कलिधर्माणां पुसां चैवायुषः क्षयात्।
अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहे प्रशस्यते॥३८॥

कलियुग में धर्मिक-भावना की अनित्यता, पुरुषों की आयु के क्षीण होने और शरीर के अस्थिर होने के कारण बारहवें दिन ही सपिण्डीकरण करना उचित है।।३८।।

व्रतबन्धोत्सवादीनि व्रतस्योद्यापनानि च।
विवाहादि भवेन्नैव मृते च गृहमेधिनि॥३९॥

गृहस्थ की मृत्यु हो जाने पर (एक वर्ष बीतने पर सपिण्डीकरण होने तक) व्रतबन्ध (उपनयन), यज्ञ-याग और होली, दीपावली आदि उत्सव, व्रतों के उद्यापन और विवाह आदि कृत्य नहीं हो सकते।।३९।।

भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णाति हन्तकारो[१] न गृह्यते।
नित्यं नैमित्तिकं लुप्येद्यावत्पिण्डो न मेलितः॥४०॥

जब तक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता तब तक भिक्षु उस घर से भिक्षा नहीं ले पाता और अतिथि हन्तकार [गृहस्थ के द्वारा अतिथिसत्कार रूप में दिया जाने वाला अन्न आदि का उपहार] नहीं ग्रहण कर पाता है और नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म भी नहीं हो पाते हैं।।४०।।

कर्मलोपात्प्रत्यवायी भवेत्तस्मात्सपिण्डनम्।
निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे समाचरेत्॥४१॥

नित्य-नैमित्तिकादि कर्मों का लोप होने से दोष लगता है, अतः चाहे कोई अग्निहोत्री हो या अग्निहोत्र-रहित हो, उसे बारहवें दिन सपिण्डीकरण कर देना चाहिए।।४१।।

यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति द्वादशाहे सपिण्डनात्॥४२॥

सभी तीर्थों में स्नान तथा सभी यज्ञों के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होता है, वही फल बारहवें दिन सपिण्डीकरण करने से प्राप्त होता है।।४२।।

अतः स्नात्वा मृतस्थाने गोमयेनोपलेपिते।
शास्त्रोक्तेन विधानेन सपिण्डीं कारयेत्सुतः॥४३॥

अतः पुत्र स्नान करके मृतक के स्थान को गोबर से लीप कर शास्त्रोक्त विधान के अनुसार सपिण्डीकरण करे।।४३।।

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैर्विश्वेदेवांश्च पूजयेत्।
कुपित्रे[२] विकिरं दत्त्वा पुनश्चाप उपस्पृशेत्॥४४॥

इसमें पहले विश्वेदेवों की पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि से पूजा करे, तब जिन पितरों की सद्गति

१. भिक्षा तथा हन्तकार की परिभाषा आगे श्लोक ५६ में तथा पीछे ३/४३ की टिप्पणी में भी दी गई है।

२. पाठान्तर-कौ पित्रे।

नहीं हुई हो, उनके लिए भूमि में विकिर देकर (अन्न-कणों को विखेर कर)[१] हस्त प्रक्षालन आदि करके पुनः आचमन करे।।४४।।

दद्यात्पितामहादीनां त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम्।
वसुरुद्रार्करूपाणां चतुर्थं मृतकस्य च॥४५॥

तब वसु, रुद्र और आदित्य स्वरूप पितामह, प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामह संज्ञक पितरों को क्रमशः तीन पिण्ड देकर चौथा पिण्ड मृतक पिता को प्रदान करे।।४५।।

चन्दनैस्तुलसीपत्रैर्धूपैर्दीपैः सुभोजनैः। मुखवासैः सुवस्त्रैश्च दक्षिणाभिश्च पूजयेत्॥४६॥

तब चन्दन, तुलसीदल, धूप, दीप, सुस्वादु भोजन, मुखवास (ताम्बूल, लवंग, इलायची आदि), वस्त्र और दक्षिणा अर्पित करके उन पितरों का पूजन करे।।४६।।

प्रेतपिण्डं त्रिधा कृत्वा सुवर्णस्य शलाकया।
पितामहादिपिण्डेषु मेलयेत्तं पृथक्पृथक्॥४७॥

तब सोने की शलाका से प्रेत के पिण्ड के तीन भाग करके एक भाग को पितामह के पिण्ड में, दूसरा प्रपितामह के पिण्ड में और तीसरा वृद्धप्रपितामह के पिण्ड में मिलावे।।४७।।

पितामह्या समं मातुः पितामहसमं पितुः। सपिण्डीकरणं कुर्यादिति तार्क्ष्य! मतं मम॥४८॥

हे गरुड़! मेरा यह मत है कि माता के पिण्ड को पितामही के पिण्ड के साथ और पिता के पिण्ड को पितामह के पिण्ड के साथ मिला कर सपिण्डीकरण करना चाहिए।।४८।।

मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः। तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः॥४९॥

जिसके पिता की मृत्यु हो गयी हो, किन्तु पितामह जीवित हो, वह प्रपितामह आदि को तीन पिण्ड प्रदान करे [और चौथा पिण्ड पिता को दे]।।४९।।

तेभ्यश्च पैतृकं पिण्डं मेलयेत्तं त्रिधा कृतम्।
मातर्यग्रे प्रशान्तायां विद्यते च पितामही॥५०॥
तदा मातृकश्राद्धेऽपि कुर्यात्पैतृकवद्विधिम्।
यद्वा मयि महालक्ष्म्या तयोः पिण्डं च मेलयेत्॥५१॥

और पिता के पिण्ड के तीन भाग करके उसका एक-एक भाग क्रमशः प्रपितामह आदि के पिण्ड के साथ मिलावे। यदि माता की मृत्यु हो जाय और पितामही जीवित हो, तो माता के सपिण्डीकरण श्राद्ध में भी उपर्युक्त पितृश्राद्ध के समान विधि अपनावे अर्थात् माता के पिण्ड के तीन भाग करके उसके एक-एक भाग को क्रमशः प्रपितामही आदि के पिण्ड के साथ मिलावे अथवा पितामह के जीवित रहते पिता की मृत्यु होने

१. जिन पितरों की सद्गति न हुई हो, उन्हें विकिरान्न-भागी बतलाया गया है। द्र०-अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि। तेन तृप्तिमुपायन्ति ये पिशाचत्वमागताः।। मार्क०२८/८, स्कन्द ७/१/२०५/२३; ये चादग्धाः कुले बालाः स्त्रियो याश्चाप्यसंस्कृताः। विपन्नास्ते तु विकिरसंमार्जनसुलालसाः।। स्कन्द ७/१/२०५/२७, तु मार्क० २८/१२। विशेष विवरण हेतु द्र०-हेमाद्रिः श्राद्धकल्प पृ० १३९८-१४०३, श्राद्धमयूख पृ० ९१-९२ निर्णयसिन्धु पृ० ३२०।

पर पिता के पिण्ड को मेरे अर्थात् विष्णु के साथ मिलावे और पितामही के जीवित रहते हुए माता की मृत्यु होने पर माता के पिण्ड को महालक्ष्मी के साथ मिलावे। [अथवा इसका यह तात्पर्य भी हो सकता है कि पिता के पिण्ड के तीन भाग में से एक भाग पितामह के स्थान पर विष्णु में तथा शेष दो भाग क्रमशः प्रपितामह और वृद्धप्रपितामह के पिण्ड में मिलावे तथा माता के पिण्ड के तीन भागों में से एक भाग पितामही के स्थान पर महालक्ष्मी में तथा दूसरे और तीसरे भाग को क्रमशः प्रपितामही और वृद्धप्रपितामही के पिण्ड में मिलावे]।।५०-५१।।

अपुत्रायाः स्त्रियाः कुर्यात्पतिः सापिण्डनादिकम्।
श्वश्र्वादिभिः सहैवाऽस्याः सपिण्डीकरणं भवेत्॥५२॥

पुत्रहीन स्त्री की मृत्यु होने पर पति उसका सपिण्डीकरण आदि कर्म करे। उसका सपिण्डीकरण उसकी सास आदि के साथ ही करना चाहिए।।५२।।

भर्त्रादिभिस्त्रिभिः कार्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः।
नैतन्मम मतं तार्क्ष्य! पत्या सापिण्ड्यमर्हति॥५३॥

[एक मतानुसार] स्त्री का सपिण्डीकरण पति, श्वसुर और वृद्ध श्वसुर तीनों के साथ करना चाहिए। हे गरुड़! यह मत मुझे अभीष्ट नहीं है, किन्तु स्त्री का सपिण्डीकरण पति के साथ हो सकता है।।५३।।

कृत्वा सपिण्डनं तार्क्ष्य! प्रकुर्यात्पितृतर्पणम्।
उदाहरेत्स्वधाकारं वेदमन्त्रैः समन्वितम्॥५४॥

हे गरुड़! सपिण्डीकरण करके पितृर्पण करे और इसमें वेदमन्त्रों के साथ स्वधाकार का उच्चारण करे।।५४।।

अतिथिं भोजयेत्पश्चाद्धन्तकारं च सर्वदा। तेन तृप्यन्ति पितरो मुनयो देवदानवाः॥५५॥

तत्पश्चात् सर्वदा अतिथि को भोजन करावे तथा हन्तकार [रूप में अन्न प्रदान] करे। ऐसा करने से पितर, मुनिगण, देवगण और दानव भी तृप्त होते हैं।।५५।।

ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा चतुर्ग्रासं तु पुष्कलम्।
पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते॥५६॥

भिक्षा एक ग्रास अन्न के बराबर होती है और चार ग्रास का पुष्कल होता है और चार पुष्कलों (सोलह ग्रास) का एक हन्तकार[१] होता है।।५६।।

सपिण्ड्यां विप्रचरणौ पूजयेच्चन्दनाक्षतैः। दानं तस्मै प्रदातव्यमक्षय्यतृप्तिहेतवे॥५७॥

सपिण्डीकरण श्राद्ध को कराने वाले ब्राह्मण के चरणों की चन्दन और अक्षतों से पूजा करे तथा पितरों की अक्षय-तृप्ति के निमित्त उस ब्राह्मण को दान भी देना चाहिए।।५७।।

वर्षवृत्तिं घृतं चान्नं सुवर्णं रजतं सुगाम्। अश्वं गजं रथं भूमिमाचार्याय प्रदापयेत्॥५८॥

---

१. यहाँ श्लोक ५६ में भिक्षा, पुष्कल तथा हन्तकार की जो परिभाषा दी गई है प्रायः वही परिभाषा पीछे ३/४३ की टिप्पणी में भी है।

तब श्राद्ध कराने वाले उस आचार्य को वर्ष-भर की जीविका निर्वाह हेतु (वर्षाशन रूप में) अन्न, घृत, सोना, चाँदी, अच्छी गौ, अश्व, हाथी, रथ और भूमि का दान करे।।५८।।

ततश्च पूजयेन्मन्त्रैः स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। कुङ्माक्षतनैवेद्यैर्ग्रहान्देवीं विनायकम्॥५९॥

तब स्वस्तिवाचनपूर्वक नवग्रहों, देवी तथा विनायक का कुङ्कुम, अक्षत और नैवेद्य से समन्त्रक पूजन करे।।५९।।

आचार्यस्तु ततः कुर्यादभिषेकं समन्त्रकम्।
बद्ध्वा सूत्रं करे दद्यान्मन्त्रपूतांस्तथाक्षतान्॥६०॥

तब आचार्य उस क्रियाकर्ता का समन्त्रक अभिषेक करे और उसके हाथ में रक्षासूत्र बाँधकर आशीर्वादात्मक मन्त्रपाठ करते हुए उसे पवित्र अक्षत प्रदान करे।।६०।।

ततश्च भोजयेद्विप्रान्मिष्टान्नैर्विविधैः शुभैः।
दद्यात्सदक्षिणांस्तेभ्यः सजलान्नान् द्विषड्घटान्॥६१॥

तब क्रिया करने वाला पुत्र ब्राह्मणों को विविध मिष्टान्न युक्त सुस्वादु भोजन करावे और तदनन्तर बारह ब्राह्मणों को दक्षिणा सहित अन्न और जल से युक्त बारह घट प्रदान करे।।६१।।

वार्यायुधप्रतोदस्तु दण्डस्तु द्विजभोजनात्।
स्पृष्टव्याश्च ततो वर्णैः शुध्येरन् ते ततः क्रमात्॥६२॥

तदनन्तर चारों वर्णों में से अपनी शुद्धि हेतु ब्राह्मण को जल का, क्षत्रिय को शस्त्र का, वैश्य को प्रतोद (कोड़े) का तथा शूद्र को दण्ड (डण्डे) का स्पर्श करना चाहिए। ऐसा करके वे शुद्ध हो जाते हैं।।६२।।

एवं सपिण्डनं कृत्वा क्रियावस्त्राणि सन्त्यजेत्।
शुक्लाम्बरधरो भूत्वा शय्यादानं प्रदापयेत्॥६३॥
शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वे देवाः सवासवाः।
तस्माच्छय्या प्रदातव्या मरणे जीवितेऽपि वा॥६४॥

इस प्रकार सपिण्डीकरण करने के पश्चात् क्रिया करने के लिए पहने हुए वस्त्रों को उतार कर उन्हें त्याग दे और तब श्वेत (सफेद) वर्ण के वस्त्र धारण करके शय्यादान करे। इन्द्र आदि सभी देवता शय्यादान की प्रशंसा करते हैं। अतः किसी पारिवारिक जन की मृत्यु होने पर सपिण्डीकरण श्राद्ध के पश्चात् अथवा उसके जीवन काल में ही शय्यादान करना चाहिए।।६३-६४।।

सारदारुमयीं रम्यां सुचित्रैश्चित्रितां दृढाम्। पट्टसूत्रैर्विंतनितां हेमपत्रैरलंकृताम्॥६५॥

वह शय्या सुदृढ़ काष्ठ की बनी हुई, रमणीय, सुन्दर (सुशोभन) चित्रों से अङ्कित, दृढ़, रेशमी सूत से बनी हुई और सुवर्ण-पत्रों (सोने की या सुनहली धातु की परतों) से अलङ्कृत हो।।६५।।

हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षोपधानिकाम्। प्रच्छादनपटीयुक्तां पुष्पगन्धैः सुवासिताम्॥६६॥

उसमें हंस के समान धवल (श्वेत) रुई का गद्दा (तूली) बिछा हो, सुन्दर शीर्षोपधान (तकिया) लगा हो तथा उसके ऊपर प्रच्छादन पटी (आवरण रूप में बिछायी जाने वाली चादर) बिछी हुई हो और वह सुगन्धित पुष्पों से सुवासित हो।।६६।।

दिव्यबन्धैः सुबद्धां च सुविशालां सुखप्रदाम्।
शय्यामेवं विधां कृत्वा ह्यास्तृतायां न्यसेद्भुवि॥६७॥

वह शय्या दिव्य (सुन्दर) बन्धों (खाट को खींचने के लिए कसी हुई रस्सियों के बन्धनों)से बँधी (कसी हुई) विशाल और सुखप्रद होनी चाहिए। इस प्रकार अलंकृत शय्या को सुसज्जित करके [कुशा या दरी-चादर आदि] बिछायी हुई भूमि में रखे।।६७।।

छत्रं दीपालयं रौप्यं चामरासनभाजनम्। भृङ्गारं करकादर्शं पञ्चवर्णवितानकम्॥६८॥
शयनस्य भवेत्किञ्चिद्यच्चान्यदुपकारकम्।
सत्सर्वं परितस्तस्याः स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत्॥६९॥

उस शय्या के चारों ओर छत्र (छाता), चाँदी[१] का दीपालय (दीवट या दिया), चामर (चँवर), आसन, पात्र, भृङ्गारक (झारी या कलशा), करक (गडुवा), दर्पण, पाँच रंगों से चित्रित चँदोवा और अन्य जो कोई भी वस्तु शयनोपयोगी (या शय्या में विश्राम दिलाने में सहायक हों) उन सब को यथास्थान सज्जित करके रखे।।६८-६९।।

तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम्। सर्वाभरणसंयुक्तमायुधाम्बरसंयुतम्॥७०॥

तब शय्या के ऊपर सुवर्ण से निर्मित लक्ष्मी सहित नारायण (विष्णु) की प्रतिमा को समस्त आभूषणों, आयुधों तथा वस्त्रों से सुसज्जित करके रखे।।७०।।

स्त्रीणां च शयने धृत्वा कज्जलालक्त-कुङ्कुमम्।
वस्त्रं भूषादिकं यच्च सर्वमेव प्रदापयेत्॥७१॥

सौभाग्यवती स्त्रियों के निमित्त किये जाने वाले शय्यादान में उपर्युक्त वस्तुओं के साथ ही काजल, आलता (महावर), कुङ्कुम, वस्त्र, आभूषण आदि सभी सौभाग्य द्रव्यों अर्थात् सुहाग की वस्तुओं का दान करावे।।७१।।

ततो विप्रं सपत्नीकं गन्धपुष्पैरलङ्कृम्।
कर्णाङ्गुलीयाभरणैः कण्ठसूत्रैश्च काञ्चनैः॥७२॥
उष्णीषमुत्तरीयं च चोलकं परिधाय च। स्थापयेत्सुखशय्यायां लक्ष्मीनारायणाग्रतः॥७३॥

तदनन्तर सपत्नीक ब्राह्मण को गन्ध-पुष्प आदि से अलंकृत करके सोने के कर्णभूषण (कान के आभूषण), सोने की अँगूठी और सोने के कण्ठसूत्र से विभूषित करे तथा उस ब्राह्मण को उष्णीष (पगड़ी), उत्तरीय (दुपट्टा) तथा चोला (अंगरखा या कुर्ता) पहना करके सुख-शय्या में लक्ष्मी-नारायण के आगे बैठावे।।७२-७३।।

---

१. पितरों को रजत (चाँदी) का दान और इसके पात्रों का प्रयोग विशेष प्रिय है। द्र० हेमादि, श्राद्धकल्प, पृ०-६५७-६६० तथा ६७०-६७२, निर्णयसिन्धु पृ० ३०४

कुङ्कुमैः पुष्पमालाभिर्हरिं लक्ष्मीं समर्चयेत्।
पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहान् देवीं विनायकम्॥७४॥

तब कुङ्कुम (रोली) और पुष्पों की माला से लक्ष्मी-नारायण की पूजा करे तथा लोकपालों, ग्रहों, देवी और विनायक की भी पूजा करे।।७४।।

उत्तराभिमुखो भूत्वा गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम्।
उच्चारयेदिमं मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः॥७५॥

तब उत्तराभिमुख होकर हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर ब्राह्मण के आगे खड़ा होकर यह मन्त्र पढ़े।।७५।।

यथा कृष्ण त्वदीयास्ति शय्या क्षीरोदसागरे।
तथा भूयादशून्येयं मम जन्मनि जन्मनि॥७६॥

हे विष्णो! जैसी क्षीरसागर में तुम्हारी शय्या है, उसी प्रकार मेरी [तथा जिसके निमित्त यह शय्या दी जा रही है, उसकी] शय्या अगले जन्म-जन्मान्तर तक कभी शून्य (सूनी) न होवे।।७६।।

एवं पुष्पाञ्जलिं विप्रे प्रतिमायां हरेः क्षिपेत्।
ततः सोपस्करं शय्या-दानं संकल्पपूर्वकम्॥७७॥
दद्याद्व्रतोपदेष्ट्रे च गुरवे ब्रह्मवादिने।
गृहाण ब्राह्मणैनां त्वं कोऽदादिति च[1] कीर्तयन्॥७८॥

ऐसी प्रार्थना करके विष्णु की प्रतिमा तथा उस ब्राह्मण के ऊपर पुष्पाञ्जलि अर्पित करने के अनन्तर सङ्कल्प करके समस्त सामग्री सहित शय्या का दान व्रतोपदेशक ब्रह्मवादी गुरु को देते हुए कहे कि—हे ब्राह्मण! आप "कोऽदात् कस्मा अदात्" इत्यादि (यजुर्वेद ७/४८ के) मन्त्र को पढ़ते हुए इस शय्या को ग्रहण करें।।७७-७८।।

आन्दोलयेद्द्विजं लक्ष्मीं हरिं च शयने स्थितम्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥७९॥

तब शय्या पर स्थित द्विज एवं लक्ष्मी सहित विष्णु को आन्दोलित करे (हिलावे) और तदनन्तर उनकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विसर्जित (विदा) करे।।७९।।

सर्वोपस्करणैर्युक्तं प्रदद्यादतिसुन्दरम्। शय्यायां सुख-सुप्त्यर्थं गृहं च विभवे सति॥८०॥

यदि धन-वैभव पर्याप्त हो, तो सभी उपकरणों (गृहस्थी के साधनों) सहित अति सुन्दर घर भी ब्राह्मण को दान करे, ताकि उसमें रह कर वह उस शय्या में सुखपूर्वक शयन कर सके।।८०।।

जीवमानः स्वहस्तेन यदि शय्यां ददाति यः।
स जीवंश्च वृषोत्सर्गं पर्वणीषु समाचरेत्॥८१॥

१. पाठान्तर-को ददातीति। संभवतः 'कोऽदात्' पाठ रखने पर छन्द पूरा न हो पाने के कारण ही मुद्रित प्रतियों में 'को ददातीति' पाठ बनाया गया है। किन्तु 'कोऽदादिति च कीर्तयन्' पाठ बना देने पर मन्त्र, छन्द और अर्थ तीनों की संगति बैठ जाती है। यजु० ७/४८ का पाठ इस प्रकार है-कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्। कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते।।

जो मनुष्य अपनी जीवितावस्था में शय्यादान करता है, वह अपने जीवन-काल में ही पर्वणी (पर्व + ल्युट + ङीप्) अर्थात् पूर्णिमा, संक्रान्ति आदि किसी पर्व के दिन वृषोत्सर्ग भी करे।।८१।।

इयमेकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन्। सा विभक्ता च विक्रीता दातारं पातयत्यधः॥८२॥

यह शय्या एक ही ब्राह्मण को दी जानी चाहिए। इस (एक शय्या) का दान बहुत-से ब्राह्मणों को कभी नहीं देना चाहिए। इसका अनेक ब्राह्मणों में यदि विभाजन किया गया या प्रतिग्रहीता के द्वारा इसका विक्रय किया गया, तो यह दाता का अधःपतन करा देती है।।८२।।

पात्रे प्रदाय शयनं वाञ्छितं फलमाप्नुयात्। पिता च दाता तनयः परत्रेह च मोदते॥८३॥

सत्पात्र को शय्यादान करके दाता मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। इसके दान से पिता और दान-दाता पुत्र दोनों ही इहलोक में तथा परलोक में भी प्रसन्न (सुखी) होते हैं।।८३।।

पुरन्दरगृहे दिव्ये सूर्यपुत्रालयेऽपि च। उपतिष्ठेन्न सन्देहः शय्यादानप्रभावतः॥८४॥

शय्यादान के पुण्य प्रभाव से इसका दाता दिव्य इन्द्र-लोक तथा सूर्य के पुत्र यम के लोक में भी सुखपूर्वक पहुँचता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।८४।।

विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।
आभूतसम्प्लवं यावत् तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः॥८५॥

सुन्दर विमान में आरूढ़ और अप्सराओं के द्वारा सेवित होता हुआ वह शय्यादान करने वाला मनुष्य महाप्रलयपर्यन्त स्वर्ग में निरातङ्क होकर रहता है।।८५।।

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वपर्वदिनेषु च।
तेभ्यश्चाप्यधिकं पुण्यं शय्यादानोद्भवं भवेत्॥८६॥

सभी तीर्थों में और सभी पर्वों के दिनों में स्नान-दान करने से जो पुण्य होता है, उससे अधिक पुण्य शय्यादान करने से प्राप्त होता है।।८६।।

एवं दत्त्वा सुतः शय्यां पददानं प्रदापयेत्।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते॥८७॥

इस प्रकार शय्यादान करके पुत्र पददान करे। उस पददान की मेरे द्वारा कथित विधि को सुनो, मैं तुम्हें यथावत् बतलाता हूँ।।८७।।

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः।
आसनं पञ्चपात्राणि पदं सप्तविधं[1] स्मृतम्॥८८॥

छत्र (छाता), उपानह (जूता), वस्त्र, मुद्रिका (अँगूठी), कमण्डलु, आसन और पञ्चपात्र को सप्तविध पदों में गिना गया है।।८८।।

दण्डेन ताम्रपात्रेण ह्यामान्नैर्भोजनैरपि। आज्य-यज्ञोपवीतैश्च पदं सम्पूर्णतां व्रजेत्॥८९॥

---

१. पाठान्तर-पञ्चविधं। यहाँ स्वीकृत पाठ के समर्थन के प्रामाण्य हेतु द्र० गरुडपुराण उ० ८/१६ तथा गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० १८/१६। २. पाठान्तर-ददन्ते यद्युपानहौ।

दण्ड, ताम्रपात्र, आमान्न (कच्चा अन्न), पक्वान्न-भोजन, आज्य और यज्ञोपवीत को मिलाकर त्रयोदश पदों की संख्या पूर्ण होती है।।८९।।

त्रयोदशपदानीत्थं यथाशक्त्या विधाय च।
त्रयोदशेभ्यो विप्रेभ्यः प्रदद्याद् द्वादशेऽहनि॥९०॥

इस प्रकार यथाशक्ति (अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार) इन तेरह पदों की व्यवस्था करके बारहवें दिन तेरह ब्राह्मणों को उन पदों का दान करे।।९०।।

अनेन पददानेन धार्मिका यान्ति सद्गतिम्। यममार्गगतानां च पददानं सुखप्रदम्॥९१॥

इन त्रयोदश पदों का दान करने से धार्मिक जन सद्गति को प्राप्त करते हैं और यममार्ग को प्राप्त जीवात्माओं को भी पद-दान से सुख प्राप्त होता है।।९१।।

आतपस्तत्र वै रौद्रो दह्यते येन मानवः। छत्रदानेन सुच्छाया जायते तस्य मूर्द्धनि॥९२॥

उस यममार्ग में अति प्रचण्ड घाम रहता है, जिससे मृत मनुष्य का जीवात्मा जलने लगता है। पद-दान रूप में छत्र (छाता) का दान दिये जाने के फलस्वरूप उस यममार्ग में उसके शिर पर सुखद छाया हो जाती है।।९२।।

अतिकण्टकसङ्कीर्णे यमलोकस्य वर्त्मनि।
अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददते ये ह्युपानहौ[१]॥९३॥

जो मनुष्य उपानह (जूते) का दान करते हैं, वे यमलोक के कण्टकाकीर्ण (काँटों से भरे हुए) मार्ग में अश्व पर आरूढ़ होकर जाते हैं।।९३।।

शीतोष्णवातदुःखानि तत्र घोराणि खेचर। वस्त्रदानप्रभावेण सुखं निस्तरते पथि॥९४॥

हे गरुड़! उस यमलोक के मार्ग में तीव्र शीत, तेज गरमी और तेज हवा से घोर दुःख मिलता है। वस्त्रदान के प्रभाव से मनुष्य उस मार्ग को सुख-पूर्वक पार कर लेता है।।९४।।

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः।
न पीडयन्ति तं मार्गे मुद्रिकायाः प्रदानतः॥९५॥

मुद्रिका (अँगूठी) के दान के प्रभाव से उस जीव को यमलोक के मार्ग में अत्यन्त रौद्र (भयंकर) विकराल और कृष्ण-पिङ्गल (काले और पीले वर्ण के) यमदूत पीड़ित नहीं करते हैं।।९५।।

बहुघर्मसमाकीर्णे निर्वाते तोयवर्जिते। कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम्॥९६॥

अत्यन्त घाम (धूप) से पूर्ण, हवा से रहित और जल-विहीन यममार्ग में जाने वाला तृषित (प्यासा) जीव कमण्डलु के दान के प्रभाव से जल को पीता है।।९६।।

मृतोद्देशेन यः दद्याद्जलपात्रं च ताम्रजम्।
प्रपादानसहस्रस्य यत्फलं सोऽश्नुते ध्रुवम्॥९७॥

जो मनुष्य मृतक के निमित्त ताँबे के जल-पात्र का दान करता है, वह निश्चय ही एक प्रपा (प्याऊ) के दान के फल को प्राप्त करता है।।९७।।

आसने भोजने चैव दत्ते सम्यग्द्विजातये।
सुखेन भुङ्क्ते पाथेयं पथि गच्छञ्छनैः शनैः॥९८॥

ब्राह्मण को सम्यक् रूप से आसन और भोजन दिये जाने पर मृतक यममार्ग में शनैः-शनैः चलता हुआ सुखपूर्वक पाथेय (भोज्य पदार्थ) को खाता है।।९८।।

एवं सपिण्डनदिने दत्त्वा दानं विधानतः।
बहून् सम्भोजयेद्विप्रान् यः श्वपाकादिकानपि॥९९॥

इस प्रकार सपिण्डीकरण के दिन विधिविधान-पूर्वक दान देकर बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा चण्डाल आदि को भी भोजन दे।।९९।।

ततः सपिण्डनादूर्ध्वमर्वाक्संवत्सरादपि।
प्रतिमासं प्रदातव्यो जलकुम्भः सपिण्डकः॥१००॥

तब सपिण्डीकरण के दिन से लेकर एक वर्ष पूर्ण होने तक मृताह की तिथि के दिन [प्रेत के निमित्त] प्रतिमास पिण्डदान और [अन्नसहित] जलपूर्ण घट का भी दान करना चाहिए।।१००।।

कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग!। प्रेतार्थं तु पुनः कुर्यादक्षय्यतृप्तिहेतवे॥१०१॥

हे गरुड़! [यज्ञ, देवपूजा, व्रतोद्यापन आदि धार्मिक अनुष्ठानों के विषय में यह एक सामान्य नियम है कि यदि किसी अनुष्ठान का कोई] कृत्य सम्पन्न हो चुका है, तो उसे पुनः नहीं किया जाता, किन्तु प्रेत-कार्य के विषय में यह नियम नहीं लागू होता। प्रेत की अक्षय-तृप्ति के उद्देश्य से उसके निमित्त पिण्डदान आदि को पुत्र पुनः कर सकता है।।१०१।।

अतो विशेषं वक्ष्यामि मासिकस्याब्दिकस्य च।
पाक्षिकस्य विशेषं च विशेषतिथिषु मृते॥१०२॥

अब मैं तिथि-विशेष में मरने वाले के वार्षिक, मासिक तथा पाक्षिक श्राद्ध के विषय में कुछ विशेष नियम बतलाता हूँ।।१०२।।

सा तिथिर्मासिके श्राद्धे मृतो यस्मिन् दिने नरः।
रिक्तासु च त्रिपक्षे च तां तिथिं नाचरेद् बुधः[1]॥१०३॥

मनुष्य की मृत्यु जिस तिथि को हुई हो, उसी तिथि के दिन उसका मासिक श्राद्ध करना चाहिए। किन्तु जिसकी मृत्यु रिक्ता तिथियों में हुई हो, उसका [?मासिक] श्राद्ध, पाक्षिक श्राद्ध तथा त्रिपक्ष में किया जाने वाला श्राद्ध रिक्ता तिथियों में नहीं करना चाहिए।।१०३।।

[2]चतुर्दश्यां मृतो यस्तु चतुर्थी तस्य ऊनिका।
चतुर्थ्यां तु मृतो यस्तु नवमी तस्य ऊनिका॥१०४॥

---

१. सा तिथिर्मासिके श्राद्धे.........इत्यादि श्लोक गरुडपुराण उत्तरखण्ड (काशी संस्करण) २४/४३ से उद्धृत है। द्र० रिक्तयोश्च त्रिपक्षे च सा तिथिर्नाद्रियेत वै। गरुड धर्मकाण्ड प्रेतखण्ड ३४/५६।

२.पौर्णमास्यां (प्राचीन पाठ) अशुद्ध है। पूर्णमासी रिक्ता तिथि नहीं है।

जिसकी मृत्यु चतुर्दशी को हुई हो, उसकी [?मासिक] पाक्षिक तथा त्रिपाक्षिक श्राद्ध के लिए विहित रिक्ता तिथि चतुर्थी होती है और जिसकी मृत्यु चतुर्थी तिथि को हुई हो, उसकी रिक्ता तिथि नवमी होती है अतः उसका पाक्षिक, [?मासिक] और त्रिपाक्षिक श्राद्ध नवमी को करना चाहिए।।१०४।।

नवम्यां तु मृतो यस्तु रिक्ता तस्य चतुर्दशी।
इत्येवं पाक्षिकं श्राद्धं कुर्याद्विंशतिमे दिने॥१०५॥

जिसकी मृत्यु नवमी को हुई हो, उसकी उक्त श्राद्धों की रिक्ता तिथि चतुर्दशी होती है। इस प्रकार उक्त (चतुर्दशी, चतुर्थी और नवमी) तिथियों को मृत मनुष्य का पाक्षिक श्राद्ध भी बीसवें दिन करे।।१०५।।

एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः। मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासे[1] हि शस्यते॥१०६॥

जब एक ही मास में दो संक्रान्तियाँ हों, तो दोनों ही मासों के मासिक श्राद्ध को मलमास में ही करना चाहिए।।१०६।।

एकस्मिन्मासि मासौ द्वौ यदि स्यातां तयोर्द्वयोः।
तावेव पक्षौ ता एव तिथयस्त्रिंशदेव हि॥१०७॥

यदि एक ही मास में दो मास हों (अर्थात् जब एक ही मास में दो मासों के मासिक श्राद्ध करने हों) तो उस मास के वे दोनों पक्ष और वे ही तीस तिथियाँ उन दोनों मासों की मानी जायेंगी।।१०७।।

तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयाऽर्धे तदुत्तरः।
मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ मलमासस्य मध्यगौ॥१०८॥

मलमास में पड़ने वाले उन दोनों मासों के (मासिक श्राद्ध के) विषय में विद्वानों ने यह व्यवस्था देनी चाहिए कि श्राद्ध-तिथि के दिन के पूर्वार्द्ध में प्रथम मास का श्राद्ध करे और द्वितीयार्द्ध भाग में (दोपहर के बाद) दूसरे मास का श्राद्ध करे।।१०८।।

असंक्रान्ते च कर्तव्यं सपिण्डीकरणं खग!।
तथैव मासिकं श्राद्धं वार्षिकं प्रथमं तथा[2]॥१०९॥

हे गरुड़! संक्रान्ति-रहित मलमास में भी सपिण्डीकरण तथा मासिक श्राद्ध और प्रथम वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।।१०९।।

संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासकः।
तदा त्रयोदशे मासि क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी॥११०॥

---

१. यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः।। (समयमूख पृ १६५ में उद्धृत); चान्द्रो मासोऽप्यसंक्रान्तो मलमासः प्रकीर्तितः। (हेमाद्रि-कालनिर्णयखण्ड, पृ० २६में उद्धृत)। अमावास्याद्वयं यत्र रविसंक्रान्तिवर्जितम्। मलिम्लुचः स विज्ञेय उत्तरस्तूत्तमाभिधः।। (हेमाद्रि-कालनिर्णयखण्ड, पृ० २६-२७ में उद्धृत) असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद् द्विसंक्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचित्। सिद्धान्तशिरोमणि। तु० एक एव.... मलमासेऽपि शस्यते। (हेमाद्रि- कालनिर्णयखण्ड, पृ० ५७ में उद्धृत)। मलमास में पड़ने वाले मासिक श्राद्ध, वार्षिक श्राद्ध और सपिण्डीकरण श्राद्ध के विषय में द्रष्टव्य - हेमादि कालनिर्णयखण्ड, पृ० ५७-५८; श्राद्धकल्प पृ० २२७ तथा समयमूख पृ० १६५-१७१ आदि।

२. तु०- हेमाद्रि के द्वारा श्राद्धकल्प पृ० २२७ तथा कालनिर्णयखण्ड पृ० ५७ में उद्धृत वृद्धवसिष्ठ का वचन।

यदि वर्ष के मध्य में अधिमास पड़े, तो प्रेत की वार्षिक क्रिया (प्रथम वार्षिक श्राद्ध) तेरहवें मास में करना चाहिए[१] ।।११०।।

पिण्डवर्ज्यमसंक्रान्ते संक्रान्ते पिण्डसंयुतम्।
प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च॥१११॥

संक्रान्ति-रहित मास में पिण्ड-रहित श्राद्ध (आम श्राद्ध) और संक्रान्तियुक्त मास में पिण्डयुक्त श्राद्ध करना चाहिए। इस प्रकार (प्रथम) वार्षिक[२] श्राद्ध को (मल-मास तथा उसके बाद आने वाले शुद्ध मास-तेरहवें मास) दोनों ही मासों में करना चाहिए[३] ।।१११।।

एवं संवत्सरे पूर्णे वार्षिकं श्राद्धमाचरेत्।
तस्मिन्नपि विशेषेण भोजनीया द्विजातयः॥११२॥

इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण होने पर वार्षिक श्राद्ध करें। उसमें भी विशेष रूप से ब्राह्मणों को भोजन करावें।।११२।।

कुर्यात्संवत्सरादूर्ध्वं श्राद्धे पिण्डत्रयं सदा।
एकोद्दिष्टं न कर्तव्यं तेन स्यात्पितृघातकः॥११३॥

एक वर्ष के पश्चात् (प्रेत के प्रेतत्व से निवृत्त हो जाने पर) श्राद्ध में तीन पिण्ड प्रदान करे और तदा-प्रभृति एकोद्दिष्ट न करे, क्योंकि तदनन्तर उसको (एकोद्दिष्ट को) करने वाला पितृघातक होता है।।११३।।

तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं गजच्छायां च पैतृकम्[४]।
अब्दमध्ये न कुर्वीत ग्रहणे न युगादिषु॥११४॥

प्रथम वार्षिक श्राद्ध होने तक की एक वर्ष की अवधि पर्यन्त तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध तथा गजच्छाया[५]

१-द्र०-आब्दिकं प्रथमं यत् स्यान्न तत्कुर्वीत मलिम्लुचे। त्रयोदशे तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम्।। हेमाद्रि-कालनिर्णयखण्ड, पृ० ५८ आदि में उद्‌धृत। इस विषय में कमलाकर भट्ट के ये विचार भी द्रष्टव्य हैं- ''प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः। क्वचित् त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्।। इति लघुहारीतोक्तेः। इदमन्त्याधिमासपरम्, द्वादशे त्रयोदशे वाऽतीत इत्यर्थः। तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिके एवाद्याब्दिकं कार्यम्। यत्राधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे एव प्रथमाब्दिकमिति निष्कर्षः। निर्णयसिन्धु पृ० ३३७।)

२. मूलपाठ (श्लोक १११) में 'प्रतिसंवत्सरं' का प्रयोग सुसंगत नहीं है। यहाँ पर प्रकरण प्रथम वार्षिक श्राद्ध का ही है। अगले वार्षिक श्राद्धों के विषय में निबन्ध ग्रन्थों में प्रायः इस आशय के वचन उद्‌धृत हैं- वर्षे-वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि मलमासे न कर्तव्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा।। हेमाद्रि-कालनिर्णयखण्ड पृ० ५७; समयमयूख पृ० १७१।

३. कुछ आचार्यों का कथन है कि यदि वार्षिक श्राद्ध अधिमास में पड़े, तो दो श्राद्ध (एक अधिमास में और एक तेरहवें मास में करे-आब्दिकेऽहनि संप्राप्ते अधिमासो भवेद् यदि। श्राद्धद्वयं प्रकुर्वीत एवं कुर्वन्न दुष्यति।। हेमाद्रि के द्वारा श्राद्धकल्प पृ०२२७-८ काल-निर्णयखण्ड पृ० ५०) में उद्‌धृत। संभवतः ऐसे ही वचनों की व्यवस्था का स्पष्टीकरण गरुडपुराण सारोद्धार के उपर्युक्त श्लोक में किया गया है।

४. यहाँ 'पैतृकम्' का तात्पर्य पार्वणादि पितृश्राद्ध से है।

५. जब चन्द्रमा मघा नक्षत्र में हो, सूर्य हस्त नक्षत्र में हो और त्रयोदशी तिथि हो तब गजच्छाया योग बनता है-(द्र० हेमाद्रि के श्राद्धकल्प पृ० २४४ और कालनिर्णयखण्ड पृ० ५०४ में तथा पराशर-माधव के आचार-खण्ड पृ० ६५६ में उद्‌धृत वचन) - यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः। तिथिर्वैश्रवणी या च गजच्छायेति सा स्मृता।।

योग में किया जाने वाला श्राद्ध, पार्वण आदि श्राद्ध तथा ग्रहण काल में और युगादि[१] तिथियों में पितृश्राद्ध न करे[२]।।११४।।

(द्र०-नार्वाक् संवत्सराद्वृद्धिर्वृषोत्सर्गे विधीयते। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं वृद्धिश्राद्धं विधीयते।।- शब्दकल्पद्रुम के वृषोत्सर्ग शब्द में उद्धृत)।।

यदा पुत्रेण वै कार्यं गयाश्राद्धं खगेश्वर!। तदा संवत्सरादूर्ध्वं कर्तव्यं पितृभक्तितः॥११५॥

हे गरुड़! जब पितृ-भक्ति के कारण पुत्र गया श्राद्ध करना चाहता हो, तो उसे एक वर्ष के पश्चात् (अर्थात् वार्षिक श्राद्ध हो जाने के पश्चात्) ही करे।।११५।।

गयाश्राद्धात् प्रमुच्यन्ते पितरो भवसागरात्। गदाधरानुग्रहेण ते यान्ति परमां गतिम्॥११६॥

गयाश्राद्ध कर देने से पितर भवसागर से मुक्त हो जाते हैं और वे गदाधर (भगवान् विष्णु) के अनुग्रह से परमगति को प्राप्त करते हैं।।११६।।

तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजयेद्विष्णुपादुकाम्।
तथा फल्वादितीर्थेषु[३] पिण्डान् दद्याद्यथाक्रमम्॥११७॥

[गया में] तुलसी की मञ्जरियों से विष्णुपादुका का पूजन करे और यथानिर्दिष्ट क्रमानुसार फल्गु आदि तीर्थों में पिण्डदान करे। यह स्मरणीय है कि फल्गुतीर्थ को सर्वोत्तम तीर्थ कहा गया है[४]।।११७।।

उद्धरेत् सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्। शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे॥११८॥

गयाशिर में शमी के पत्ते के तुल्य आकार के पिण्ड प्रदान करे। ऐसा करके वह [अपने (१) पिता, (२) माता, (३) पत्नी, (४) भगिनी, (५) पुत्री, (६) बुआ और (७) मौसी के] सात गोत्रों[५] तथा [पिता

---

१. वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया कृतयुग के आरम्भ की तिथि है, कार्तिक शुक्लपक्ष की नवमी त्रेतायुग की आदि-तिथि है, भाद्रपद कृष्ण-पक्ष की त्रयोदशी द्वापर युग की आदि तिथि है और माघ की अमावास्या कलियुग की आदि तिथि है द्र०- विष्णुपुराण ३/१४/१२; वराहपुराण। (सर्वभारतीय काशिराजन्यास, रामनगर, वाराणसी) १३/४२-४३, निर्णयसिन्धु पृ० ७१-७२; हेमाद्रिकृत श्राद्धकल्प पृ० २५१ और कालनिर्णय खण्ड पृ० ६४९, स्मृतिचन्द्रिका पृ०२८, पराशर-माधव आचारकाण्ड पृ० ६५७।

२. प्रथम वार्षिक श्राद्ध के पूर्व एक वर्ष के अन्दर किसी भी प्रकार का पितृश्राद्ध वर्जित है-मृते पितर्यब्दमध्ये ह्यु परागो यदा भवेत्। पार्वणं न सुतैः कार्यं श्राद्धं नान्दीमुखं न च। तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु।। यमके [?] च गजच्छायां मन्वादिषु युगादिषु। पितृपिण्डो न दातव्यः सपिण्डीकरणं विना।। गरुडपुराण ध०का० प्रे० ख० ३४/१३४-१३६। मृते पितुर्यब्दमध्ये यः श्राद्धं कारयेत् सुतः। सप्तजन्मकृताद् धर्मात् हीयते नात्र संशयः। प्रेतीभूतास्तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः। भ्रमन्ति वायुना सर्वे क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडिताः। गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ३४।१४१-१४२

३. 'तथा फल्वादितीर्थेषु' पाठ को गयातीर्थ-विषयक समस्त साहित्यिक विवरणों के अवलोकन और मनन के पश्चात् निर्धारित किया गया है। पाठन्तर-लवालतीर्थेषु (निर्णयसागर संस्करण), तस्या लवादितीर्थेषु (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण), तस्याऽलवादितीर्थेषु (काशी संस्करण), तस्मै वलातस्यादितीर्थेषु (प्रयाग संस्करण) पाठान्तर में निर्दिष्ट इन पाठों की अर्थसंगति कथञ्चिदपि नहीं बैठती। गया में फल्गु आदि तीर्थों में पिण्डदान के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

४. द्र०-वायुपुराण उ० ४६/१४ (नाग सं०); १११/१३ (प्रयाग सं०)

५. पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा। पितृमातृष्वसा चैषां सप्तगोत्राणि वै विदुः।। नारायण भट्ट के द्वारा त्रिस्थलीसेतु पृ० ३२७ में उद्धृत। द्र०-वायु उ० ४३/२६।

के कुल की १२ पिछली और १२ भावी पीढ़ियों को मिला कर २४ पीढ़ियों, माता के कुल की १० पिछली और १० भावी को मिला कर २० पीढ़ियों, पत्नी के कुल की ८ पिछली और ८ अगली सहित १६ पीढ़ियों, भगिनी के कुल की छः अगली और छः पिछली सहित १२ पीढ़ियों, पुत्री के कुल की ५ पिछली, १ वर्तमान और ५ अगली पीढ़ियों सहित ११ पीढ़ियों, बुआ के कुल की ५ पिछली और ५ अगली सहित १० पीढ़ियों और मौसी के कुल की ४ पिछली तथा ४ अगली सहित ८ पीढियों को मिला कर] १०१ पीढ़ियों के कुल-पुरुषों[1] का उद्धार करता हैं।।११८।।

गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति कुलनन्दनः।
सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम्॥११९॥

अपने कुल को आनन्दित करने वाला जो पुत्र गया में जाकर श्राद्ध करता है, उसका जीवन अपने पितरों को सन्तुष्ट करने से सफल हो जाता है।।११९।।

श्रूयते चापि पितृभिर्गीता गाथा खगेश्वर!। इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने सुरैः॥१२०॥

यह सुना जाता है कि [पुराकाल में अग्निष्वात्तादि] दिव्य पितरों ने कलाप नामक उपवन में मनु के पुत्र इक्ष्वाकु को यह गाथा सुनायी थी।।१२०।।

अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः।
गयामुपेत्य ये पिण्डान् दास्यन्त्यस्माकमादरात्[2]॥१२१॥

क्या कभी हमारे कुल में ऐसे सन्मार्गवर्ती पुत्र होवेंगे, जो गया में जाकर हमारे लिए श्रद्धापूर्वक पिण्डदान करेंगे?।।१२१।।

[3]एवमामुष्मिकीं तार्क्ष्य! यः करोति क्रियां सुतः।
स स्यात्सुखी भवेन्मुक्तः कौशिकस्यात्मजा यथा॥१२२॥

हे गरुड़! जो पुत्र इस प्रकार पितरों की परलोक सम्बन्धी (और्ध्वदेहिक) क्रिया करता है, वह सुखी होता है और कौशिक द्विज के सात पुत्रों के समान मुक्ति को प्राप्त करता है।।१२२।।

[4]कौशिकस्यात्मजाः सप्त भुक्त्वा जन्मपरम्पराम्।
कृत्वापि गोवधं तार्क्ष्य! मुक्ताः पितृप्रसादतः॥१२३॥

हे गरुड़! कौशिक के सात पुत्र [पितृश्राद्ध हेतु] गोवध करके भी अनेक जन्म-परम्पराओं को भोग कर (अर्थात् क्रमशः व्याध, मृग, चक्रवाक, हंस और अन्त में ब्राह्मण वटुकों के रूप में जन्म-ग्रहण करके) पितरों की कृपा से मुक्त हुए थे।।१२३।।

---

१. तत्त्वानि विंशति नृपा द्वादशैकादशा दश। अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम्।। त्रिस्थलीसेतु पृ० ३२७ में उद्धृत। द्र०-वायु उ० ४३/२७।

२. यह गाथा पुराणों में अनेकत्र प्राप्त होती है। द्र०-विष्णुपुराण ३।१६।१८

३. एवमामुष्मिकीं.......इत्यादि श्लोक पुराण का नहीं है अपितु पूर्व संकलन कर्ता द्वारा रचित है।

४. भरद्वाजात्मजाः पाठ असंगत है। कौशिक के सात पुत्रों की कथा मत्स्यपुराण (अध्याय २०) हरिवंशपुराण (हरिवंशपर्व अध्याय २१-२४) तथा पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड अध्याय १०) आदि में दी गयी है।कौशिक के पुत्र ही भारद्वाज के पुत्र कहे गये हैं।

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥१२४॥

कौशिक के वे सातों पुत्र [पितृश्राद्ध के निमित्त गोवध करने के फलस्वरूप] पुनर्जन्म में दशार्ण[1] देश (मालवा) में सात व्याधों के रूप में उत्पन्न हुए थे। तत्पश्चात् वे अगले-जन्म में कालञ्जर पर्वत में सात मृगों के रूप में उत्पन्न हुए थे। तदनन्तर वे शरद्वीप में सात चक्रवाकों (चकवों) के रूप में उत्पन्न हुए थे और अगले जन्म में मानस सर (मानसरोवर) में सात हंसों के रूप में उत्पन्न हुए थे।।१२४।।

तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
पितृभक्त्या च ते सर्वे गता मुक्तिं द्विजात्मजाः॥१२५॥

तदनन्तर वे ही कुरुक्षेत्र में वेदपारङ्गत ब्राह्मणों के रूप में उत्पन्न हुए थे और पितरों के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखने से वे सभी ब्राह्मणपुत्र मुक्ति को प्राप्त हुए थे।।१२५।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तो भवेन्नरः।
इह लोके परे वापि पितृभक्त्या सुखी भवेत्॥१२६॥

अतः मनुष्य को पूरे प्रयत्न से पितृ-भक्त होना चाहिए। पितृभक्ति से मनुष्य इहलोक में तथा परलोक में भी सुखी होता है।।१२६।।

एतत् तार्क्ष्य! मयाऽऽख्यातं सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम्।
पुत्रवाञ्छाप्रदं पुण्यं पितुर्मुक्तिप्रदायकम्॥१२७॥

हे गरुड़! यह मैंने तुम्हें समस्त-और्ध्वदेहिक कृत्यों के विषय में बतलाया है, जिनका अनुष्ठान पुत्रकामना को पूर्ण करने वाला, पुण्यप्रद तथा पिता को मुक्ति-प्रदान कराने वाला है।।१२७।।

निर्धनोऽपि नरः कश्चिद् यः शृणोति कथामिमाम्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो दानस्य फलमाप्नुयात्॥१२८॥

जो कोई निर्धन मनुष्य भी इस कथा को सुनता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है और पितरों के निमित्त दिये जाने वाले दान के पुण्य-फल को प्राप्त करता है।।१२८।।

विधिना कुरुते यस्तु श्राद्धं दानं मयोदितम्।
शृणुयाद् गारुडं चापि शृणु तस्यापि यत्फलम्॥१२९॥

जो मनुष्य मेरे द्वारा कथित श्राद्धों और विविध दानों को विधिपूर्वक करता है और इस गरुड़पुराण को सुनता है, उसको जो फल मिलता है, उसे सुनो।।१२९।।

पिता ददाति सत्पुत्रान् गोधनानि पितामहः।
धनदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः॥१३०॥

पिता उसको सच्चरित्र पुत्र देता है, पितामह गोधन (गाय आदि पशु) प्रदान करता है और प्रपितामह उसको विविध धन-सम्पत्ति प्रदान करता है।।१३०।।

१. मालवा का पूर्ववर्ती भाग दशार्ण कहलाता था, जिसकी राजधानी विदिशा (वर्तमान भिलसा) में थी।

दद्याद्विपुलमन्नाद्यं वृद्धस्तु प्रपितामहः।
तृप्ताः श्राद्धेन ते सर्वे दत्त्वा पुत्रस्य वाञ्छितम्॥१३१॥
गच्छन्ति धर्ममार्गैश्च धर्मराजस्य मन्दिरम्। तत्र धर्मसभायां ते तिष्ठन्ति परमादरात्॥१३२॥

वृद्ध प्रपितामह उसे प्रचुर अन्न आदि प्रदान करता है। श्राद्ध से तृप्त होकर वे सभी पितर पुत्र को मनोवाञ्छित फल देकर धर्ममार्ग से धर्मराज के भवन में जाते हैं। वहाँ वे धर्मसभा में परम आदरणीय होकर विराजमान होते हैं।।१३१-१३२।।

सूत उवाच

एवं श्रीविष्णुना प्रोक्तमौर्ध्वदानसमुद्भवम्।
श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुडो हर्षमागतः॥१३३॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे सपिण्डनादि सर्वकर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

सूत बोले—इस प्रकार विष्णु के द्वारा कथित औध्वंदेहिक श्राद्ध-दान-विषयक माहात्म्य सुनकर गरुड़ को अपार हर्ष हुआ था।।१३३।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में सपिण्डीकरण आदि सर्वकर्म-निरूपण नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।१३।।

❖❖❖

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

धर्मराजनगर निरूपण

गरुड उवाच

यमलोकः कियन्मात्रः कीदृशः केन निर्मितः।
सभा च कीदृशी तस्यां धर्म आस्ते च कैः सह॥१॥

गरुड़ बोले—यमलोक कितना बड़ा है? कैसा है? किसने बनाया है? यमपुरी की सभा कैसी है? उस (सभा) में धर्मराज किन के साथ बैठते हैं?।।१।।

[1]यैर्धर्ममार्गैर्गच्छन्ति धार्मिका धर्ममन्दिरम्।
तान् धर्मानपि मार्गांश्च ममाख्याहि दयानिधे!॥२॥

हे दयानिधे! जिन धर्मों का आचरण करने से और जिन मार्गों से होकर धार्मिक जन धर्मराज के भवन में जाते हैं, उन धर्मों और मार्गों के विषय में आप मुझे बतलाइए।।२।।

१. पाठान्तर-ये।

श्री भगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य! प्रवक्ष्यामि यदगम्यं[1] नारदादिभिः। तद्धर्मनगरं दिव्यं महापुण्यैरवाप्यते॥३॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड़! सुनो, धर्मराज का जो नगर नारद आदि मुनियों के लिए भी दुर्गम है, उसमें बड़े पुण्य से ही जाया जा सकता है।।३।।

याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य यत्। सर्वं[2] वज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत्सुरासुरैः॥४॥

दक्षिण और नैर्ऋत् दिशा के मध्य में वैवस्वत यम का नगर है। वह दिव्यनगर सम्पूर्णतः वज्र (हीरों) का बना हुआ है और देवता तथा असुर कोई भी उसका भेदन नहीं कर सकते।।४।।

चतुरस्रं चतुर्द्वारमुच्चप्राकारवेष्टितम्। योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तदुच्यते॥५॥

वह नगर चतुरस्र (चौकोर) है और उसमें चार दिशाओं में चार द्वार हैं और वह ऊँची चहारदिवारी से घिरा हुआ है और उसका परिमाण एक सहस्र (हजार) योजन है अर्थात् वह नगर एक सहस्र योजन लम्बा और उतना ही चौड़ा है।।५।।

तस्मिन् पुरेऽस्ति सुभगं चित्रगुप्तस्य मन्दिरम्। पञ्चविंशतिसंख्याकैर्योजनैर्विस्तृतायतम्॥६॥

दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम्।
प्रतोलीशतसञ्चारं पताका-ध्वज-भूषितम्॥७॥

उस नगर में चित्रगुप्त का सुन्दर भवन है, जो पच्चीस योजन लम्बा और उतना ही चौड़ा तथा दश योजन ऊँचा है। वह अत्यन्त सुन्दर है और लोहे की चहारदीवारी से घिरा हुआ है। उसमें आवागमन के लिए सैकड़ों गलियाँ हैं और वह पताकाओं तथा ध्वजों से विभूषित है।।६-७।।

विमानगणसंकीर्णं गीतवादित्रनादितम्। चित्रितं चित्रकुशलैर्निर्मितं देवशिल्पिभिः॥८॥

वह विमानों के समूह से भरा हुआ है, गायन-वादन के निनाद से निनादित है, कुशल चित्रकारों के चित्रों से चित्रित है और उस भवन का निर्माण देवताओं के शिल्पकारों के द्वारा किया गया है।।८।।

उद्यानोपवनैः रम्यं नानाविहगकूजितम्। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च समन्तात्परिवारितम्॥९॥

वह उद्यानों और उपवनों से रमणीय है और नाना पक्षियों के कलरव से मुखरित रहता है तथा सभी ओर से गन्धर्वों और अप्सराओं से घिरा रहता है।।९।।

तत्सभायां चित्रगुप्तः स्वासने परमाद्भुते। संस्थितो गणयेदायुर्मानुषाणां यथातथम्॥१०॥

उस भवन में बनी हुई सभा में अपने परम अद्भुत आसन में बैठे हुए चित्रगुप्त मनुष्यों की आयु की यथावत् सटीक गणना करते हैं।।१०।।

न मुह्यति कथञ्चित् स सुकृते दुष्कृतेऽपि वा।
यद्येनोपार्जितं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्॥११॥

---

१. पाठान्तर-यद्गम्यं।

२. पाठान्तर-सर्ववज्रमयं।

तत्सर्वं भुञ्जते तत्र चित्रगुप्तस्य शासनात्।
चित्रगुप्तालयात्प्राच्यां ज्वरस्याति महागृहम्॥१२॥
दक्षिणस्यां च शूलस्य लूताविस्फोटयोस्तथा।
पश्चिमे [1]कालपाशस्य चाजीर्णस्यारुचेस्तथा॥१३॥
उदीच्यां राजरोगोऽस्ति पाण्डुरोगस्तथैव च।
ऐशान्यां तु शिरोऽर्तिः स्यादाग्नेय्यामस्ति मूर्च्छना॥१४॥
अतिसारश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां शीतदाहकौ।
एवमादिभिरन्यैश्च व्याधिभिः परिवारितः॥१५॥

वह मनुष्य के पुण्य अथवा पाप का लेखा-जोखा रखने में कोई त्रुटि नहीं करते। जिसने जो भी शुभ या अशुभ कर्म किया हो, वह वहाँ चित्रगुप्त के आदेश से उन सबका भोग करता है। चित्रगुप्त के भवन से पूर्व की ओर ज्वर का अत्यन्त विशाल घर है, दक्षिण की ओर शूल, लूता रोग तथा विस्फोट (अर्थात् फोड़ा-फुन्सी और चेचक) का आवास है तथा पश्चिम की ओर काल-पाश, अजीर्ण और अरुचि [रोग] का घर है, उत्तर की ओर राजरोग (क्षयरोग) और पाण्डुरोग (पीलिया) रोग का आवास है, ईशान कोण की ओर शिरोवेदना (शिर की पीड़ा) का और आग्नेय कोण की ओर मूर्च्छा का घर है तथा नैर्ऋत् दिशा की ओर अतिसार[2] रोग का वास है और वायव्य दिशा में शीत और दाह का स्थान है। इन उपर्युक्त व्याधियों के अतिरिक्त अन्य विविध व्याधियों से भी चित्रगुप्त का भवन घिरा हुआ है।।११-१५।।

लिखते चित्रगुप्तस्तु मानुषाणां शुभाशुभम्।
चित्रगुप्तालयादग्रे योजनानां च विंशतिः॥१६॥
पुरमध्ये महादिव्यं धर्मराजस्य मन्दिरम्।
अस्ति रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम्॥१७॥

चित्रगुप्त मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को लिखा करते हैं। चित्रगुप्त के भवन से बीस योजन आगे नगर के मध्य में धर्मराज का अत्यन्त दिव्य भवन है, जो कि रत्नों से जटित होने से विद्युत्-ज्वालाओं के समान दीप्तिमान् तथा सूर्य के समान तेजोमय है।।१६-१७।।

द्विशतं योजनानां च विस्तारायामतः स्फुटम्।
पञ्चाशच्च प्रमाणेन योजनानां समुच्छ्रितम्॥१८॥

वह भवन सौ योजन चौड़ा और उतना ही लम्बा और पचास योजन ऊँचा है।।१८।।

धृतं स्तम्भसहस्रैश्च वैदूर्यमणिमण्डितम्।
काञ्चनालङ्कृतं नानाहर्म्यप्रासादसंकुलम्॥१९॥

१. गरुड ध०का० प्रे० ख० ३३/३० से स्वीकृत पाठ ।

२. चरकसंहिता चिकित्सास्थान १९/४ में कहा गया है कि अतिसार रोग की उत्पत्ति राजा पृषध्र के दीर्घ सत्र में गोमांस खाने से हुई थी।

धर्मराज का वह भवन हजारों स्तम्भों पर आधारित है, वैदूर्यमणि से जटित है, सुवर्ण से अलंकृत है और अनेकों [1]हर्म्यों और प्रासादों (धनिकों की हवेलियों और राजमहलों एवं देवालयों) से पूर्ण है।।१९।।

शारदाभ्रनिभं रुक्मकलशैः सुमनोहरम्। चित्रस्फटिकसोपानं वज्रकुट्टिमशोभितम्॥२०॥

यह भवन शरद-कालीन मेघ के समान निर्मल है और शिखरों में स्थापित सुवर्ण-कलशों से अति मनोरम लगता है। उसमें स्फटिक के बने हुए और चित्राङ्कित सोपान (सीढ़ियाँ) हैं तथा वह वज्र (हीरे) की कुट्टिम (पच्चकारी से युक्त फर्श) से शोभायमान है।।२०।।

मुक्ताजालगवाक्षं च पताकाध्वजभूषितम्।
घण्टानकनिनादाढ्यं हेमतोरणमण्डितम्॥२१॥

उसके गवाक्षों (झरोखों या खिड़कियों) में मोतियों के झालर लगे हैं तथा वह भवन पताकाओं और ध्वजों से विभूषित है एवं यह घण्टा और नगाड़ों के नाद से निनादित रहता है और स्वर्ण से निर्मित तोरणों से सुशोभित है।।२१।।

नानाश्चर्यमयं स्वर्णकपाटशतसंकुलम्। नानाद्रुमलतागुल्मैर्निष्कण्टैः सुविराजितम्॥२२॥

वह भवन अनेक आश्चर्यों से पूर्ण और स्वर्ण-निर्मित सैकड़ों कपाटों (द्वार-किवाड़ों) से युक्त है तथा नाना प्रकार के निष्कण्टक (काँटों से रहित)वृक्षों, लताओं, गुल्मों (झाड़ियों) से सुशोभित है।।२२।।

एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा। आत्मयोगप्रभावैश्च निर्मितं विश्वकर्मणा॥२३॥

इसी प्रकार की अन्यान्य शोभावर्द्धक वस्तुओं से भी वह भवन सदा विभूषित रहता है और उसे विश्कर्मा ने अपने मनोयोग (कर्मकौशल) के प्रभाव से निर्मित किया है।।२३।।

तस्मिन्नस्ति सभा दिव्या शतयोजनमायता।
अर्कप्रकाशा भ्राजिष्णुः सर्वतः कामरूपिणी॥२४॥

धर्मराज के उस भवन में सौ योजन लम्बाई और उतनी चौड़ाई वाली, सूर्य के समान प्रकाश वाली, सभी ओर से देदीप्यमान और कामरूपिणी (अर्थात् धर्मराज की इच्छा के अनुरूप स्वरूप धारण करने वाली) दिव्य सभा है।।२४।।

नातिशीता न चात्युष्णा मनसोऽत्यन्तहर्षिणी।
न शोको न जरा तस्यां क्षुत्पिपासे न चाप्रियम्॥२५॥

वहाँ न अधिक शीत है और न अधिक उष्णता (गरमी) है। वह सभा मन को अत्यन्त हर्ष प्रदान करने वाली है। उसमें न तो किसी को कोई शोक होता है, न वृद्धावस्था सताती है, न भूख-प्यास लगती है और किसी के साथ कोई अप्रिय-संयोग भी उसमें नहीं घटित होता।।२५।।

सर्वे कामाः स्थिता यस्यां ये दिव्या ये च मानुषाः।
रसवच्च प्रभूतं च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः॥२६॥

---

१. हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभू भुजाम १/अमर० २/२/९।

देवलोक और मनुष्य-लोक में जो भी काम्य विषय हैं (अर्थात् भोग-विलास के जितने भी विषयों की कामना की जा सकती है) वे सभी वहाँ उपलब्ध हैं। वहाँ सभी प्रकार के रसों और स्वादों से युक्त भक्ष्य और भोज्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।।२६।।

रसवन्ति च तोयानि शीतान्युष्णानि चैव हि।
पुण्याः शब्दादयस्तस्यां नित्यकामफलद्रुमाः॥२७॥

वहाँ सरस और शीतल-जल तथा उष्ण-जल भी उपलब्ध है। उसमें मनोहर शब्दादि विषय हैं और मनोवाञ्छित फल-प्रदान करने वाले कल्पवृक्ष भी वहाँ हैं।।२७।।

असंबाधा च सा तार्क्ष्य! रम्या कामगमा सभा।
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा निर्मिता विश्वकर्मणा॥२८॥

हे गरुड़! वह सभा बाधा-रहित (पर्याप्त विस्तीर्ण), रमणीय और मनोकामना को पूर्ण करने वाली है। विश्वकर्मा ने दीर्घकाल तक तपश्चर्या (परिश्रम) करके उसका निर्माण किया है।।२८।।

तामुग्रतपसो यान्ति सुव्रताः सत्यवादिनः।
शान्ताः संन्यासिनः सिद्धाः पूताः पूतेन कर्मणा॥२९॥

उसमें उग्र (कठोर) तप करने वाले, व्रत-परायण, सत्यवादी, शान्त-स्वभाव वाले, संन्यासी, सिद्धजन और पवित्र कर्मों को करने से शुद्ध हो चुके मनुष्य ही जा पाते हैं।।२९।।

सर्वे भास्वरदेहास्तेऽलङ्कृता विरजाऽम्बराः।
स्वकृतैः कर्मभिः पुण्यैस्तत्र तिष्ठन्ति भूषिताः॥३०॥

वे सभी जन ज्योतिर्मय (तेजोमय) शरीर वाले, आभूषणों से अलङ्कृत, निर्मल वस्त्र धारण किये हुए और [पुष्प-माल्यादि से] विभूषित पुरुष अपने द्वारा किये गये पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ही वहाँ विराजमान होते हैं।।३०।।

तस्यां स धर्मो भगवानासनेऽनुपमे शुभे। दशयोजनविस्तीर्णे सर्वरत्नैः सुमण्डिते॥३१॥
उपविष्टः सतां श्रेष्ठश्छत्रशोभितमस्तकः।
कुण्डलालङ्कृतः श्रीमान्महामुकुटमण्डितः॥३२॥

उस सभा में दश योजन विस्तीर्ण और सभी रत्नों से मण्डित अनुपम शुभ आसन में धर्मराज बैठते हैं। वह श्रीमान् धर्मराज सभी सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ हैं। उनका मस्तक छत्र से सुशोभित है। वे कुण्डलों से अलङ्कृत हैं। वे महामुकुट से विभूषित और श्रीविभूषित हैं।।३१-३२।।

सर्वालङ्कारसंयुक्तो नीलमेघसमप्रभः। बालव्यजन-हस्ताभिरप्सरोभिश्च वीजितः॥३३॥

वह धर्मराज सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत हैं और नीलवर्ण के मेघ के समान आभा वाले हैं। अप्सराएँ अपने हाथों में बाल-व्यजन (चँवर, चामर) लेकर उन्हें पंखा झलती रहती हैं।।३३।।

गन्धर्वाणां समूहाश्च सङ्घशश्चाप्सरोगणाः।
गीतवादित्रनृत्याद्यैः परितः सेवयन्ति तम्॥३४॥

गन्धर्वों के समूह और अप्सराओं के गण सङ्गठित होकर सभी ओर से गायन-वादन और नृत्य करते हुए उनकी सेवा करते हैं।।३४।।

मृत्युना पाशहस्तेन कालेन च बलीयसा। चित्रगुप्तेन चित्रेण कृतान्तेन निषेवितः॥३५॥

हाथ में पाश लिये हुए मृत्यु, बलवान् काल, विचित्र आकृति वाले चित्रगुप्त तथा कृतान्त (मृत्युकारक देवता?) के द्वारा वे सेवित हैं।।३५।।

पाशदण्डधरैरुग्रैर्निदेशवशवर्तिभिः। आत्मतुल्यबलैर्नाना सुभटैः परिवारितः॥३६॥

हाथों में पाश और दण्ड धारण करने वाले, रौद्र स्वभाव वाले, निदेश (अर्थात् आज्ञा) के अधीन रह कर कार्य करने वाले तथा अपने सदृश बल वाले अनेक पराक्रमी भटों से वे (धर्मराज) घिरे रहते हैं।।३६।।

अग्निष्वात्ताश्च पितरः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये।
स्वधावन्तो बर्हिषदो मूर्तामूर्ताश्च ये खग!॥३७॥

अर्यमाद्याः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तथापरे। सर्वे ते मुनिभिः सार्धं धर्मराजमुपासते॥३८॥

हे गरुड़! जो अग्निष्वात्ता, सोमपा, उष्मपा[1], स्वधावन्त[2] वर्हिषद, मूर्तिमान् तथा अमूर्तिमान् पितर हैं, अर्यमा आदि जो पितृगण हैं तथा अन्य जो भी मूर्तिमान पितर हैं, वे सब वहाँ मुनियों के साथ धर्मराज की उपासना (सेवा) करते हैं।।३७-३८।।

अत्रिर्वसिष्ठः पुलहो दक्षः क्रतुरथाङ्गिरा।[3]जमदग्निर्भृगुश्चैव पुलस्त्यागस्त्यनारदाः॥३९॥

एते चान्ये च बहवः पितृराजसभासदः।
न शक्याः परिसंख्यातुं नामभिः कर्मभिस्तथा॥४०॥
व्याख्याभिर्धर्मशास्त्राणां निर्णेतारो यथातथम्।
सेवन्ते धर्मराजं ते शासनात्परमेष्ठिनः॥४१॥

अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, दक्ष, क्रतु, अङ्गिरा, जमदग्नि, भृगु, पुलस्त्य, अगस्त्य तथा नारद जैसे ऋषि तथा पितरों के राजा (धर्मराज) के अन्य बहुत से सभासद, जिनके नामों और कर्मों की गणना ही नहीं की जा सकती और जो अपनी व्याख्याओं के द्वारा धर्मशास्त्रों का यथार्थ निर्णय देते हैं, वे परमेष्ठी-ब्रह्मा के आदेशानुसार धर्मराज की सेवा करते हैं।।३९-४१।।

राजानः सूर्यवंशीयाः सोमवंश्यास्तथापरे। सभायां धर्मराजं ते धर्मज्ञाः पर्युपासते॥४२॥

१. हविष्मन्त पितरों का ही अपर नाम उष्मपा हो सकता है?

२. स्वधावन्त पितरों को ही अनेक पुराणों में आज्यप कहा गया है।

३. पाठान्तर-'जामदग्न्यो'। अद्यावधि सभी स्थानों से मुद्रित संस्करणों में प्राप्त 'जामदग्न्यो' पाठ नितान्त असंगत है। अत्रि, वसिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों की श्रेणी में जमदग्नि को ही रखा जा सकता है, उनके पुत्र परशुराम (जामदग्न्य) को नहीं। पुनश्च परशुराम को इस भारतभूमि के प्रातःस्मरणीय सात चिरञ्जीवी महापुरुषों में गिना गया है, अतः उन्हें धर्मराज की सभा में दिवङ्गत ऋषि-मुनियों की पंक्ति में बैठाना उचित नहीं है। अतः यहाँ पर 'जमदग्नि' पाठ ही समीचीन है। मेरे द्वारा सम्पादित पाठ का समर्थन विष्णुपुराण ३/१/३२; श्रीमद्भागवत ८/१३/५; पद्मपुराण १/७/१०५-१०७; मार्कण्डेयपुराण ७६/९-१० और गणेशपुराण १/९१/३-४ की सप्तर्षियों की सूची से भी होता है।

उस सभा में सूर्यवंश के, चन्द्रवंश के तथा अन्य धर्मज्ञ राजा धर्मराज की सेवा करते हैं।।४२।।

मनुर्दिलीपो मान्धाता सगरश्च भगीरथः।
अम्बरीषोऽनरण्यश्च मुचुकुन्दो निमिः पृथुः॥४३॥

ययातिर्नहुषः पूरुर्दुष्यन्तश्च शिविर्नलः। भरतः शन्तनुः पाण्डुः सहस्रार्जुन एव च॥४४॥

एते राजर्षयः पुण्याः कीर्तिमन्तो बहुश्रुताः।
इष्ट्वाऽश्वमेधैर्बहुभिर्जाता धर्मसभासदः॥४५॥

मनु, दिलीप, मान्धाता, सगर, भगीरथ, अम्बरीष, अनरण्य, मुचुकुन्द, निमि, पृथु, ययाति, नहुष, पुरु, दुष्यन्त, शिवि, नल, भरत, शन्तनु, पाण्डु और सहस्रार्जुन ये सभी पुण्यात्मा, यशस्वी और बहुश्रुत राजा बहुत से अश्वमेध यज्ञ करके धर्मराज के सभासद बने हैं।।४३-४५।।

सभायां धर्मराजस्य धर्म एव प्रवर्तते। न तत्र पक्षपातोऽस्ति नानृतं न च मत्सरः॥४६॥

धर्मराज की सभा में केवल धर्म की ही प्रवृति होती है। उसमें न तो पक्षपात होता है, न अनृतवचन बोला जाता है और न कोई किसी से ईर्ष्या करता है।।४६।।

सभ्याः सर्वे शास्त्रविदः सर्वे धर्मपरायणाः। तस्यां सभायां सततं वैवस्वतमुपासते॥४७॥

उस सभा में सभी सभ्य (अर्थात् सभासद) शास्त्रज्ञ और धर्मपरायण हैं। वे सदा धर्मराज-वैवस्वत यम के निकट रह कर [उन्हें परामर्श देकर] सेवा करते हैं।।४७।।

ईदृशी सा सभा तार्क्ष्य! धर्मराजमहात्मनः।
न तां पश्यन्ति ये पापा दक्षिणेन पथा गताः॥४८॥

हे गरुड़! महात्मा धर्मराज की वह सभा इस प्रकार की है। जो पापी दक्षिण द्वार से यम-पुर में प्रविष्ट होते हैं, वे उस सभा को नहीं देख पाते।।४८।।

धर्मराजपुरे गन्तुं चतुर्मार्गा भवन्ति च। पापिनां गमने पूर्वं स तु ते परिकीर्तितः॥४९॥

धर्मराज के नगर में जाने के लिए चार मार्ग हैं। पापियों के लिए उस नगर में जाने का जो [दक्षिण का] मार्ग है, उसके विषय में मैं तुम्हें पहले ही बतला चुका हूँ।।४९।।

पूर्वादिभिस्त्रिभिर्मार्गैर्ये गता धर्ममन्दिरे।
ते हि सुकृतिनः पुण्यैस्तस्यां गच्छन्ति तान् शृणु॥५०॥

पूर्वादि तीन मार्गों से जो जीव धर्मराज के भवन में जाते हैं, वे पुण्यकर्मा हैं और अपने पुण्यों से ही वहाँ जाते हैं। अब तुम उनके विषय में सुनो।।५०।।

पूर्वमार्गस्तु तत्रैकः सर्वभोगसमन्वितः। पारिजाततरुच्छायाच्छादितो रत्नमण्डितः॥५१॥

उन मार्गों में से एक है पूर्वी मार्ग, जो कि सभी प्रकार के भोग-साधनों से पूर्ण है, पारिजात वृक्ष की छाया से आच्छादित है और रत्नों से मण्डित है।।५१।।

विमानगणसङ्कीर्णो हंसावलिविराजितः। विद्रुमारामसंकीर्णः पीयूषद्रवसंयुतः॥५२॥

वह मार्ग विमानों के समूह से व्याप्त रहता है, हंसों की पंक्तियों से सुशोभित है, विद्रमों (?मूँगे या विशिष्ट वृक्षों) के उद्यानों से घिरा हुआ है और अमृत-तुल्य जल से युक्त है।।५२।।

तेन ब्रह्मर्षयो यान्ति पुण्या राजर्षयोऽमलाः। अप्सरोगणगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः॥५३॥

उस मार्ग से पुण्यात्मा ब्रह्मर्षि, निष्कलंक राजर्षि, अप्सरागण, गन्धर्व, विद्याधर और वासुकि आदि नागराज जाते हैं।।५३।।

देवताराधकाश्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः। ग्रीष्मे प्रपादानरता माघे काष्ठप्रदायिनः॥५४॥

अन्य बहुत से मनुष्य जो कि देवताओं की आराधना करते हैं, शिवभक्ति-परायण हैं, गीष्म ऋतु में प्रपा (प्याऊ या पौशाला) लगाते हैं और माघमास में आग सेकने के लिए काष्ठ (लकड़ी) प्रदान करते हैं।।५४।।

विश्रामयन्ति वर्षासु विरक्तान् दानमानतः। दुःखितस्यामृतं ब्रूते ददते ह्याश्रयं तु ये[१]॥५५॥

जो वर्षा ऋतु में [चातुर्मास्य व्रती] विरक्त साधु-सन्तों को भोजन आदि का दान और सम्मान देकर विश्राम अर्थात् आश्रय-प्रदान करते हैं, दुःखी मनुष्य को अमृत के समान वचनों से आश्वासन देते हैं और आश्रय देते हैं।।५५।।

सत्यधर्मरता ये च क्रोधलोभविवर्जिताः। पितृमातृषु ये भक्ता गुरुशुश्रूषणे रताः॥५६॥

जो सत्यवादी, धर्मपरायण तथा क्रोध और लोभ से रहित हैं, जो माता-पिता के भक्त हैं और जो गुरु की सेवा-शुश्रूषा में संलग्न रहते हैं।।५६।।

भूमिदा गृहदा गोदा विद्यादानप्रदायकाः। पुराणवक्तृ-श्रोतारः पारायणपरायणाः॥५७॥

एते सुकृतिनश्चान्ये पूर्वद्वारे विशन्ति च।
यान्ति धर्मसभायां ते सुशीलाः शुद्धबुद्धयः॥५८॥

भूमि का दान देने वाले, गृह का दान देने वाले, गोदान करने वाले, विद्या का दान देने वाले, पुराण के वक्ता, उसके श्रोता तथा उसका पारायण करने वाले, ये सभी तथा पुण्यकर्म करने वाले अन्य मनुष्य भी [धर्मराज के नगर में] पूर्वद्वार से प्रवेश करते हैं। वे सभी सदाचारी और शुद्ध बुद्धि के मनुष्य धर्मराज की सभा में जाते हैं।।५७-५८।।

द्वितीयस्तूत्तरो मार्गोमहारथशतैर्वृतः। नरयानसमायुक्तो हरिचन्दनमण्डितः॥५९॥

धर्मराज के नगर में जाने के लिए दूसरा मार्ग है, उत्तर मार्ग, जो कि सैकड़ों बड़े-बड़े रथों से भरा हुआ तथा पालकियों से युक्त है और हरिचन्दन[२] के वृक्षों से सुशोभित है।।५९।।

हंससारससंकीर्णश्चक्रवाकोपशोभितः। अमृतद्रव-सम्पूर्णस्तत्र भाति सरोवरः॥६०॥

वह मार्ग हंसों और सारसों से व्याप्त तथा चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित है और वहाँ अमृत-तुल्य जल से पूर्ण एक मनोरम सरोवर है।।६०।।

---

१. पाठान्तर-ह्याश्रमं तु ददन्ति ये।

२. देवलोक में चन्दन की जाति का एक वृक्ष

अनेन वैदिका यान्ति तथाऽभ्यागतपूजकाः।
दुर्गाभान्वोश्च ये भक्तास्तीर्थस्नाताश्च पर्वसु॥६१॥

उस मार्ग से वैदिक विद्वान्, अतिथि-सत्कार करने वाले, भगवती दुर्गा के भक्त, भगवान् सूर्य के भक्त और पर्वों में तीर्थ-स्नान करने वाले जाते हैं।।६१।।

ये मृता धर्मसंग्रामेऽनशनेन मृताश्च ये। वाराणस्यां गोग्रहे[1] च तीर्थतोये च ये मृताः॥६२॥

जिन वीरों ने धर्मयुद्ध में प्राण त्यागे हों, जो अनशन करके प्राण त्याग किये हों, जो वाराणसी में या दस्युओं के द्वारा अपहृत गायों की रक्षा हेतु युद्ध में प्राण त्याग किये हों अथवा तीर्थ जल में विधिवत् प्राण त्याग किये हों।।६२।।

ब्राह्मणार्थे स्वामिकार्ये तीर्थक्षेत्रेषु ये मृताः।
ये मृता देवविध्वंसे[2] योगाभ्यासेन ये मृताः॥६३॥

जो ब्राह्मण की रक्षा के लिए या अपने स्वामी के कार्य को सिद्ध करने के लिए मर मिटे हों या जो तीर्थ-क्षेत्र में देह त्याग किये हों, जो देव-प्रतिमा या देवालय को विध्वस्त होने से बचाने के प्रयास में प्राणों से हाथ धो बैठे हों या जो योगाभ्यास से शरीर त्याग किये हों।।६३।।

सत्पात्रपूजका नित्यं महादानरताश्च ये। प्रविशन्त्युत्तरे द्वारे यान्ति धर्मसभां च ते॥६४॥

जो सत्पात्र ब्राह्मण की पूजा करते हैं और जो धर्मात्मा तुलापुरुष आदि महादानों को देते हैं, वे उत्तर द्वार से [धर्मराज की] धर्म-सभा में प्रवेश करते हैं।।६४।।

तृतीयः पश्चिमो मार्गो रत्नमन्दिरमण्डितः। सुधारस-सदापूर्ण-दीर्घिकाभिर्विराजितः॥६५॥

धर्मराज के नगर में जाने के लिए तीसरा मार्ग पश्चिमी मार्ग है, जो कि रत्न-जटित भवनों से शोभायमान है और अमृत-रस के तुल्य स्वाद वाले जल से सदा भरी रहने वाली दीर्घिकाओं अर्थात् बावड़ियों से सुशोभित है।।६५।।

ऐरावतकुलोद्भूत-मत्तमातङ्ग-संकुलः। उच्चैःश्रवा-समुत्पन्न-हयरत्न-समन्वितः॥६६॥

यह मार्ग ऐरावत के कुल में उत्पन्न मदोन्मत्त हाथियों तथा उच्चैःश्रवा नामक अश्व से उत्पन्न श्रेष्ठ अश्वों से व्याप्त रहता है।।६६।।

एतेनात्मपरा यान्ति सच्छास्त्रपरिचिन्तकाः।
अनन्यविष्णुभक्ताश्च गायत्रीमन्त्रजापकाः॥६७॥

इस मार्ग से आत्मतत्त्ववेत्ता योगी, सत्-शास्त्रों का चिन्तन करने वाले, भगवान् विष्णु के अनन्य भक्त और गायत्री मंत्र का जप करने वाले व्यक्ति जाते हैं।।६७।।

---

१. 'गोगृहे' पाठ असंगत है। यहाँ संशोधित 'गोग्रहे' पाठ का अनुमोदन अनेक पुराणों से हो जाता है। गोशाला या गोष्ठ में प्राणत्याग की प्रशंसा कहीं नहीं है। अपितु गोहर्ता दस्युओं से गायों की रक्षा करते हुए प्राणत्याग करने वाले मनुष्य की सद्गति का वर्णन अनेकत्र है। द्र०- नारद उ० ३३/६२-६४; ब्रह्म १०७/५६/नाग सं०; शिव ५/२१/२९; स्कन्द १/१/१७/१५६; तु० कूर्म उ० ३०/१९-२०

२. पाठान्तर-दैवविध्वंसे।

परहिंसा-परद्रव्य-परवादपराङ्मुखाः। स्वदारनिरताः सन्तः साग्निका वेदपाठकाः॥६८॥
ब्रह्मचर्यव्रतधरा वानप्रस्थास्तपस्विनः। श्रीपादसंन्यासपराः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः॥६९॥
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नाः सर्वभूतहिते रताः। शिवविष्णुव्रतकराः कर्मब्रह्मसमर्पकाः॥७०॥
ऋणैस्त्रिभिर्विनिर्मुक्ताः पञ्चयज्ञरताः सदा।
पितॄणां श्राद्धदातारः काले सन्ध्यामुपासकाः॥७१॥
नीचसङ्गविनिर्मुक्ताः सत्सङ्गतिपरायणाः। एतेऽप्सरोगणैर्युक्ता विमानवरसंस्थिताः॥७२॥
सुधापानं प्रकुर्वन्तो यान्ति ते धर्ममन्दिरम्। विशन्ति पश्चिमद्वारे यान्ति धर्मसभान्तरे॥७३॥

परहिंसा, पराये धन और परनिन्दा से विरत रहने वाले, स्वदार-निरत (अपनी पत्नी के साथ सन्तुष्ट रहने वाले), अग्निहोत्री और वेदपाठी ब्राह्मण, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले (नैष्ठिक ब्रह्मचारी), वानप्रस्थाश्रमी, तपश्चर्या करने वाले, संन्यास व्रत का पालन करने वाले पूज्यवाद [?] संन्यासी, ढेला, पत्थर और सोना सभी को एक समान मानने वाले, ज्ञान और वैराग्य की भावना से सम्पन्न, सभी प्राणियों के हित-साधन में संलग्न रहने वाले, शिव और विष्णु सम्बन्धी व्रतों को करने वाले, अपने समस्त कर्मों को ब्रह्म को सर्मपित करने वाले, वेदाध्ययन से ऋषिऋण, यज्ञ-सम्पादन करके देव-ऋण और सन्तानोत्पादन करके पितृऋण को चुकाने वाले, नित्य पञ्चयज्ञ[1] करने वाले, पितरों का श्राद्ध करने वाले, यथाकाल संध्यावन्दन करने वाले, नीचों के संसर्ग से दूर रहने वाले और सत्संगति में रहने वाले-ये सभी मनुष्य अप्सराओं के साथ सुन्दर विमान में बैठकर अमृतपान करते हुए धर्मराज के भवन में जाते हैं और उस भवन के पश्चिमी द्वार से प्रवेश करके धर्मराज की धर्मसभा में पहुँचते हैं।।६८-७३।।

यमस्तानागतान् दृष्ट्वा स्वागतं वदते मुहुः।
समुत्थानं च कुरुते तेषां गच्छति सन्मुखम्॥७४॥

उन्हें आया हुआ देखकर यमराज पुनः पुनः स्वागत वचन बोलते हैं, उठ खड़े होते हैं और उनके पास जाते हैं।।७४।।

तदा चतुर्भुजो भूत्वा शंखचक्रगदासिभृत्। पुण्यकर्मरतानां च स्नेहान्मित्रवदाचरेत्॥७५॥

उस समय [भगवान् विष्णु के समान] चतुर्भुज स्वरूप ग्रहण करके यमराज अपने चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और असि (खड्ग) धारण किये रहते हैं और जो मनुष्य अपने जीवनकाल में पुण्यकर्म में संलग्न रहे होते हैं, उनके साथ वह स्नेह के साथ मित्रवत् आचरण करते हैं।।७५।।

सिंहासनं च ददते नमस्कारं करोति च। पादार्घं कुरुते पश्चात्पूजते चन्दनादिभिः॥७६॥

वह ऐसे मनुष्यों को बैठने के लिए सिंहासन देते हैं, उनको नमस्कार करते हैं। तत्पश्चात् पाद्य जल से पैर धुलाते है और अर्घ्य देते हैं और तब चन्दन आदि से उनकी पूजा करते हैं।।७६।।

---

१. पञ्चयज्ञों में (१) ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), (२) देवयज्ञ (होम), (३) भूतयज्ञ (इन्द्रादि देवों सहित विभिन्न प्राणियों के निमित्त घर के बाहर अन्न की बलि देना, (४) पितृयज्ञ (पितरों का तर्पण और श्राद्ध आदि) और (५) मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार आदि)।

यम उवाच

नमस्कुर्वन्तु भोः सभ्या ज्ञानिनं परमादरात्।
एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥७७॥

यम कहते हैं—'हे सभासदो! इस ज्ञानी को परम आदर के साथ नमस्कार करो। यह मेरे (यमलोक के) मण्डल का भेदन करके ब्रह्मलोक में चला जायेगा।।७७।।

भो भो बुद्धिमतां श्रेष्ठा नरकक्लेशभीरवः।
भवद्भिः साधितं पुण्यैर्देवत्वं सुखदायकम्॥७८॥

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मनुष्यो! हे नरक-यातना से भयभीत रहने वाले मनुष्यो! आप लोगों ने अपने पुण्य कर्म से सुखदायी देवत्व को प्राप्त कर लिया है।।७८।।

मानुषं दुर्लभं प्राप्य नित्यं[1] यस्तु न साधयेत्।
स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः॥७९॥

मनुष्य योनि में दुर्लभ जन्म प्राप्त करके जो मनुष्य नित्य स्थायी धर्म को सिद्ध नहीं करता, वह घोर नरक में गिरता है, उससे अधिक विवेकहीन अन्य कौन हो सकता है?।।७९।।

अस्थिरेण शरीरेण योऽस्थिरैश्च धनादिभिः।
सञ्चिनोति स्थिरं धर्मं स एको बुद्धिमान्नरः॥८०॥

जो मनुष्य अपने अस्थिर शरीर और अस्थिर धन-वैभव आदि से चिरस्थायी धर्म का संचय करता है, वही एकमात्र बुद्धिमान् है।।८०।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यो धर्मसञ्चयः।
गच्छध्वं पुण्यवत्स्थानं सर्वभोगसमन्वितम्॥८१॥

अतः पूरे प्रयत्न से धर्म का सञ्चय करना चाहिए। अब आप लोग समस्त भोग-विलास के साधनों से सम्पन्न पुण्य आत्माओं के स्थान-स्वर्ग में जाइए।।८१।।

इति धर्मवचः श्रुत्वा तं प्रणम्य सभां च ताम्।
अमरैः पूज्यमानास्ते स्तूयमाना मुनीश्वरैः॥८२॥
विमानगणसंकीर्णाः प्रयान्ति परमं पदम्।
केचिद्धर्मसभायां हि तिष्ठन्ति परमादरात्॥८३॥

धर्मराज के ऐसे वचनों को सुनकर वे पुण्यात्माजन उनको तथा उनकी सभा को प्रणाम करके देवताओं के द्वारा सम्मानित (पूजित) और मुनीश्वरों के द्वारा प्रशंसित होते हुए विमानों में बैठ कर परमपद-वैकुण्ठलोक को जाते हैं और उनमें से कुछ परम आदर के पात्र बन कर [स्वेच्छया] धर्मराज की सभा में ही रह जाते हैं।।८२-८३।।

१. नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।। महाभारत उद्योगपर्व ४०। १३ स्वर्गारोहण पर्व ५। ६३।

उषित्वा तत्र कल्पान्तं भुक्त्वा भोगानमानुषान्।
प्राप्नोति पुण्यशेषेन मानुष्यं पुण्यदर्शनम्॥८४॥

वहाँ एक कल्प पर्यन्त रह कर तथा मनुष्यलोक में अप्राप्य भोग-विलास के साधनों का उपभोग करके यत्किञ्चित् पुण्य शेष रह जाने पर पुण्यात्मा मनुष्य पुण्यदर्शन वाले इस मनुष्यलोक में जन्म पाता है।।८४।।

महाधनी च सर्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः। पुनः स्वात्मविचारेण ततो याति परां गतिम्॥८५॥

वह इस लोक में महाधनी, सर्वज्ञ और सर्वशास्त्रपारङ्गत होता है और पुनः अध्यात्म-चिन्तन में संलग्न रहता है तथा उसके फलस्वरूप परमगति को प्राप्त करता है।।८५।।

एतत्ते कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यमालयम्।
इदं शृण्वन्नरो भक्त्या धर्मराजसभां व्रजेत्॥८६॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे धर्मराजनगरनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

[हे गरुड़!] तुमने यमलोक के विषय में जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बतला दिया है। इसे भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य धर्मराज की सभा में जाता है।।८६।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में धर्मराजनगरनिरूपण नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

❖❖❖

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सुकृतिजनजन्माचरणादि निरूपण

श्री गरुड उवाच

धर्मात्मा स्वर्गतिं भुक्त्वा जायते विमले कुले।
अतस्तस्य समुत्पत्तिं जननीजठरे वद॥१॥

गरुड़ ने कहा—धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग का भोग करके पुनः निर्मल कुल में जन्म ग्रहण करता है। अतः यह बतलाइए कि वह जननी के गर्भ में कैसे जन्म-ग्रहण करता है।।१।।

यथा विचारं कुरुते देहेऽस्मिन् सुकृती जनः।
तथाऽहं श्रोतुमिच्छामि वद मे करुणानिधे॥२॥

पुण्यात्मा मनुष्य इस मानव-देह के विषय में जिस प्रकार का विचार करता है, वह भी सुनना चाहता हूँ। हे दयानिधे! यह सब मुझे बतलाइए।।२।।

श्री भगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य! परं गोप्यं वदामि ते। यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥३॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड़! तुमने ठीक ही पूछा है। मैं तुम्हें परम गोपनीय ज्ञान बताता हूँ, जिसको सम्यक् रूप से जानने मात्र से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।।३।।

इदानीं नरदेहस्य शृणु रूपद्वयं खग!। व्यावहारिकमेकं च द्वितीयं पारमार्थिकम्॥४॥

हे गरुड़! अब तुम यह सुनो [और समझो] कि मनुष्य के शरीर के दो स्वरूप होते हैं। उनमें से एक है व्यावहारिक शरीर और दूसरा है योगीजनों के ध्यान में गोचर होने वाला पारमार्थिक शरीर। उस [1]पारमार्थिक शरीर की चर्चा के पूर्व व्यावहारिक शरीर विषयक वर्णन यहाँ किया जा रहा है।।४।।

शुचीनां श्रीमतां गेहे जायते सुकृती यथा। तथा विधानं नियमं तत्पित्रोः कथयामि ते॥५॥

पुण्यात्मा जीव शुचि आचरण वाले श्रीसम्पन्न गृहस्थों के घर में जिस प्रकार उत्पन्न होता है तथा उसके माता-पिता जिस प्रकार के विधानों और नियमों का पालन करते हैं, वह मैं तुमको बतलाता हूँ।।५।।

ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम्।
तावन्नालोकयेद्वक्त्रं पापं वपुषि सम्भवेत्॥६॥

स्त्रियाँ अपने ऋतुकाल में जब रजस्वला होती हैं, तब पुरुषों को चार दिनों तक उनका संसर्ग त्याग देना चाहिए। तब तक उनका मुख भी नहीं देखना चाहिए, क्योंकि उन दिनों उनके शरीर में इन्द्र की ब्रह्महत्या का पाप[2] रहता है (जिसकी चर्चा पीछे छठे अध्याय के तीसरे श्लोक में भी की गयी है)।।६।।

स्नात्वा सचैलं सा नारी चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति।
सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने॥७॥

ऋतुमती नारी चौथे दिन सवस्त्र स्नान करने पर शुद्ध होती है तथा एक सप्ताह व्यतीत होने पर ही वह पितरों और देवों के पूजन और व्रत आदि धार्मिक कृत्य करने के योग्य होती है।।७।।

सप्ताहमध्ये यो गर्भः स भवेन्मलिनाशयः।
प्रायशः सम्भवन्त्यत्र पुत्रास्त्वष्टाहमध्यतः॥८॥

---

१. पारमार्थिक शरीर का वर्णन श्लोक ५१ से आगे किया गया है। यह स्मणीय है कि शिवपुराण १/१८/६ में शरीर के तीन भेद बतलाये गये हैं - शरीरं त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम्।

२. विश्वरूप के वध से इन्द्र को लगी हुई ब्रह्महत्या का एक अंश स्त्रियों को दिये जाने की कथा तैत्तिरीयसंहिता २।५।१।१-६, रामायण ७। ८६। १५, शान्तिपर्व २८२। ३१-५, बृहत्पराशरस्मृति ८। ३१८-३२२ तथा अनेक पुराणों में है। तैत्तिरीयसंहिता में रजस्वला के साथ वार्तालाप, शयन तथा उसके हाथ का अन्न-भक्षण वर्जित किया गया है। ब्रह्मपुराण (नाग सं०) ११३।२३ में रजस्वला का दर्शन और स्पर्श तथा उसके साथ वार्तालाप वर्जित बतलाया गया है। सुश्रुत (संहिता, चिकित्सास्थान २४। १२१-२) के अनुसार रजस्वलागमन से नेत्र-ज्योति, आयु और तेज नष्ट होता है। मनु ४।४१ के अनुसार रजस्वलागमन से प्रज्ञा, तेज, बल, चक्षु और आयु क्षीण होती है। गरुडपुराण (पू० ११४।२९) के अनुसार रजस्वला का मुख देखने से भी आयु क्षीण होती है। शान्तिपर्व २८२।४६ तथा पद्मपुराण ६।१६८।६९ के अनुसार रजस्वला स्त्रियों में जो इन्द्रकृत ब्रह्महत्या चतुर्थांश रूप में रहती है, वह रजस्वलागामी पुरुष को लग जाती है। द्र० पीछे अध्याय ६ के श्लोक ३ की टिप्पणी।

एक सप्ताह के बीच गर्भधारण होने पर मलिन मनोवृत्ति वाली सन्तान का जन्म होता है।[१] नारी के ऋतुमती होने के आठवें दिन [की रात्रि में] गर्भाधान होने पर [स्वस्थ] पुत्र उत्पन्न होता है[२]।।८।।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
पूर्वसप्तकमुत्सृज्य तस्मादयुग्मासु संविशेत्॥९॥

नारी के रज:स्राव की रात्रि सहित गिनने पर युग्म (अर्थात् सम) संख्या वाली रात्रियों (यथा-छठवीं, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात्रि में)गर्भाधान होने पर पुत्र उत्पन्न होते हैं और अयुग्म (अर्थात् विषम) संख्या वाली रात्रियों (पाँचवीं, सातवीं, नवीं, ग्यारहवीं, तेरहवीं और पन्द्रहवीं रात्रि) में समागम करने से कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। अत: [पुत्र की कामना वाले पुरुष को] प्रथम सात रात्रियाँ छोड़कर अगली युग्म रात्रियों अर्थात् आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं, या सोलहवीं रात्रि) में स्त्री-समागम करना चाहिए[३]।।९।।

---

१. सुश्रुत सहिता (शरीरस्थानम् २।३३) के अनुसार रजस्वला स्त्री में प्रथम और द्वितीय दिन की रात्रि में गर्भाधान होने पर उत्पन्न सन्तान प्रसव काल में और प्रसूतिगृह में ही मर जाता है और तीसरे दिन गर्भाधान के फलस्वरूप उत्पन्न पुत्र अङ्गहीन और अल्पायु होता है। लिङ्गपुराण (पू० ८६।१०९-११०) के अनुसार ऋतुमती स्त्री में चौथे दिन गर्भाधान से उत्पन्न पुत्र अल्पायु, विद्याहीन, व्रतभ्रष्ट, परस्त्रीगामी और दरिद्र होता है।

२. 'ऋतुसंगमन' विषयक निर्णय हेतु द्र०- निर्णयसिन्धु (मूल) पृ० १७३-१७५। गुणी पुत्र की कामना से आठवीं रात्रि में स्त्री-संसर्ग की संस्तुति आयुर्वेद में भी प्राप्त होती है। द्र०- वाग्भट कृत अष्टाङ्गसंग्रह, शरीरस्थानम् १/४७-४८

३. युगमासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ।। पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः। इत्यादि। मनु ३/४८-४९; तत्र युग्मासु रात्रिष्वल्पीभवत्यार्तवमयुग्मास्वाप्यायते। तस्मात् तासु क्रमात् पुत्रस्य दुहितुश्च जन्म।अत एव चानुपरतार्तवदर्शनां पुत्रार्थी विषमेष्वप्यहस्सु नोपेयात्।। यदि त्वाहारानुरोधादयुग्मासु शुक्रस्याधिकता युग्मासु च न्यूनता स्यात् ततः पुमान् स्त्र्याकृतिर्दुर्बलो हीनाङ्गो वा जायते। स्त्री च पुरुषाकृतिर्दुर्बला हीनाङ्गी वा।। एकादश त्रयोदश्योस्तु नपुंसकं स्यात्।अष्टांगसंग्रह शारीरस्थानम् १/५०-५२; द्र०-पुमान् शुक्रेऽधिके स्त्री वै रक्ताधिक्ये प्रजायते।। उभे समे निषेके तु कुब्जवामनकादयः। शिवतत्त्वरत्नाकर ६/१/४८-४९। इस प्रसंग के ये वचन भी उद्धरणीय है- स्त्रीणां वै मैथुने काले वामापार्श्वे प्रभञ्जनः।।१८।। चरेद् यदि भवेन्नारी पुमांसं दक्षिणे लभेत्। लिङ्गपुराण १/६०/१८-१९; मुहूर्तचिन्तामणि संस्कारप्रकरण ५-७ में गर्भाधान के लिए त्याज्य तिथि, लग्न, नक्षत्र, योग, दिन, वार आदि के उल्लेख के अनन्तर तीनों उत्तरा, मृगशिरा, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा नक्षत्रों में गर्भाधान शुभ बतलाया गया है और पुत्रोत्पत्ति हेतु गर्भाधानोचित शुभ लग्न आदि के विधान भी वहाँ दिये गये हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति (१/८०) में मघा और मूल नक्षत्र के दिन गर्भाधान वर्जित बतलाया गया है। शिवतत्त्वरत्नाकर ६/१/४९-५१ में पुत्रोत्पत्तियोग विषयक ये श्लोक भी उद्धरणीय हैं- अर्केन्दुजीवशुक्रैर्वा स्वर्गे [?] वा स्वान्तकोदये।।४९।। भौमदृष्टियुते वापि पुंयोगाः स्युरिमे मताः। लग्नस्थः सुतसंस्थो वा नवमे वा बली गुरुः।। ५०।। ऋतुविरमे स्नातायां यद्युपचयसंस्थः शशी भवति।।५१।। गर्भ में पुत्र, कन्या, नपुंसक अथवा यमल (जुड़वाँ) सन्तान विषयक श्लोक भी द्रष्टव्य है। इसके अनुसार गर्भ में दाँहिनी ओर पुत्र, बाँयी ओर कन्या, मध्य में नपुंसक तथा दाँये बाँये दोनों ओर जुड़वाँ सन्तान होती है-

सुवृत्तगर्भस्त्वपसव्यकुक्षिगः, पुमांस्तु कन्या खलु वामकुक्षिगा। मध्योदरस्थश्च नपुंसकः स्यात् कुक्षिद्वयस्थो यमलः प्रजायते।।

शिवतत्त्वरत्नाकर६/१/६४; बृहत्संहिता ७७/२४

द्र०- रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत् पुमान्।। शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भाः षण्डत्वमाप्नुयुः। गरुड ध०का० प्रे०ख० ३२/२२-२३। रजोऽधिके भवेन्नारी भवेद् रेतोऽधिके पुमान्।। उभयोः समतायां तु नपुंसकमिति स्थितिः। शारदातिलक १/३०-३१

षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां सामान्याः समुदाहृताः।
या वै चतुर्दशी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र वै॥१०॥
गुणभाग्यनिधिः पुत्रस्तदा जायेत धार्मिकः।
सा निशा प्राकृतैर्जीवैर्न लभ्येत कदाचन॥११॥

सामान्यतः स्त्रियों के रजोदर्शन-दिवस की रात्रि से लेकर सोलह रात्रियों तक का काल ऋतुकाल बतलाया गया है। इसमें जो चौदहवीं रात्रि है, उस रात्रि में पत्नी के साथ समागम के फल-स्वरूप गर्भ ठहरने पर सद्गुणों और सौभाग्य से सम्पन्न, सम्पत्तिशाली और धार्मिक प्रकृति का पुत्र उत्पन्न होता है[1]। किन्तु उस रात्रि को गर्भाधान का अवसर सामान्य मनुष्यों को कदापि नहीं मिल पाता।।१०-११।।

पञ्चमेऽहनि नारीभि कार्यं मधुरभोजनम्।
कटु क्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः॥१२॥

सत्पुत्र की कामना वाली स्त्रियों को ऋतुकाल के पाँचवे दिन [से लेकर ऋतुकाल पर्यन्त] मधुर भोजन करना चाहिए। कड़ुवा, खारा, तीखा और उष्ण भोजन दूर से ही त्याग देना चाहिए।।१२।।

तत्क्षेत्रमोषधीपात्रं बीजं चाप्यमृतायनम्।
तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक्फलमवाप्नुयात्॥१३॥

तब वह स्त्री का क्षेत्र (गर्भाशय) औषधि अर्थात् बीज को स्थापित करने के लिए (गर्भाधान के लिए) सुयोग्य पात्र हो जाता है और उसमें बोया गया बीज अमृतवत् होता है अर्थात् उसमें स्थापित बीज अमृतवत् सुरक्षित रहता है और उस बीज को बोने वाला (गर्भाधान करने वाला पति) उसके अच्छे फल के रूप में अच्छे पुत्र को प्राप्त करता है।।१३।।

ताम्बूलपुष्पश्रीखण्डैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्।
धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत् पुमान्॥१४॥

पुरुष को मुँह में पान रखकर, पुष्पमाला धारण कर, चन्दन लगाकर, शुद्ध वस्त्र धारण करके और मन में धर्मभाव रखते हुए अर्थात् धार्मिक विचारों का चिन्तन करते हुए पत्नी के साथ सुन्दर शय्या में शयन करना चाहिए।।१४।।

निषेकसमये यादृङ्नरचित्त-विकल्पना।
तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्विशति कुक्षिगः॥१५॥

(किन्तु इस विषय में विष्णु के अधोलिखित वचनों के अनुसार नींद निकालने से पहले ताम्बूल और पुष्पमाला आदि को पृथक् कर देना चाहिए—निद्रासमयवेलायां ताम्बूलं वदनात् त्यजेत्। पर्यङ्कात् प्रमदां भालात् पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात्।। प्रज्ञां हरति ताम्बूलं प्रमदा बलहारिणी। सर्पाद् भयं तु पुष्पेभ्य आयुर्हरति

---

१. ब्रह्मोयाज्ञवल्क्यसंहिता ८/२९५ (तु० निर्णयसिन्धु पृ० १७४ में उद्धृत व्यास-वचन) के अनुसार ऋतुकाल की चौदहवीं रात्रि में गर्भाधान होने पर धर्मज्ञ, कृतज्ञ, शास्त्रज्ञ, राजा और सर्व-विध भोग-विलास के साधनों का भोग करने वाला पुत्र उत्पन्न होता है।

पुण्ड्रकः।। आचारेन्दु पृ० ३६५-३६६ में उद्धृत)गर्भाधान के समय पुरुष की जैसी मनोवृत्ति और जैसी भावना रहती है, उसी प्रकार के स्वभाव वाला जीव गर्भ में प्रविष्ट होता है।।१५।।

चैतन्यं बीजभूतं हि नित्यं शुक्रेऽप्यवस्थितम्[१]।
कामश्चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयात्॥१६॥
तदा द्रावमवाप्नोति योषिद्गर्भाशये नरः।
शुक्रशोणितसंयोगात्पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते॥१७॥

चैतन्यात्मा बीज का स्वरूप ग्रहण करके शुक्र में भी नित्य स्थित रहता है। जब स्त्री के साथ समागम के समय पुरुष की कामेच्छा, चित्तवृत्ति और शुक्र (बीज) का एकत्र मिलन अर्थात् एककालिक उद्रेक होता है, तब पुरुष (का बीज) स्त्री के गर्भाशय में द्रवित (स्खलित) होता है। उस गर्भाशय में शुक्र और शोणित (अर्थात् वीर्य और रज) के संयोग से पिण्ड अर्थात् गर्भस्थ शरीर की उत्पत्ति होती है।।१६-१७।।

परमानन्ददः पुत्रो भवेद्गर्भगतः कृती।
भवन्ति तस्य निखिलाः क्रियाः पुंसवनादिकाः॥१८॥

गर्भ में आने पर पुण्यशाली पुत्र पिता को परम आनन्द प्रदान करता है। उसके पुंसवन आदि समस्त संस्कार किये जाते हैं।।१८।।

जन्म प्राप्नोति पुण्यात्मा ग्रहेषूच्चगतेषु च। तज्जन्मसमये विप्राः प्राप्नुवन्ति धनं बहु॥१९॥

पुण्यात्मा मनुष्य का जन्म सूर्य आदि ग्रहों के उच्च राशि[२] में स्थित होने पर होता है। उसके जन्म के समय ब्राह्मण बहुत सा धन दान में प्राप्त करते हैं।।१९।।

विद्याविनयसम्पन्नो वर्धते पितृवेश्मनि। सतां सङ्गेन स भवेत्सर्वागमविशारदः॥२०॥

वह पिता के घर में विद्या और विनय से युक्त होकर बढ़ता है और सत्पुरुषों के संसर्ग से सभी शास्त्रों का पण्डित हो जाता है।।२०।।

दिव्याङ्गनादिभोक्ता स्यात् तारुण्ये दानवान् धनी।
पूर्वकृत-तपस्तीर्थ-महापुण्यफलोदयात् ॥२१॥

पूर्वजन्म में किये गये तप, तीर्थस्नान आदि धर्मों के महापुण्य के फल के उदय के फलस्वरूप वह तरुण होकर दिव्य [सौन्दर्य और सद्गुणों से सम्पन्न] स्त्रियों के साथ सुखोपभोग करने वाला, दानी और धनी होता है।।२१।।

ततश्च यतते नित्यमात्मानात्मविचारणे। अध्यारोपापवादाभ्यां कुरुते ब्रह्मचिन्तनम्॥२२॥

तब पूर्वकालिक तप और तीर्थसेवन के महापुण्य के फलित होने पर वह नित्यमेव आत्मा और

---

१. द्र०-चैतन्यं बीजरूपे हि शुक्रे नित्यं व्यवस्थितम्। गरुड ध०का० प्रे०ख० ३२/२१; गरुड उ० २२/१९

२.मेष राशि (के १० अंश) में सूर्य, वृष राशि (के ३ अंश) में चन्द्र, मकर राशि (के २८ अंश) में मङ्गल, कन्या राशि (के १५ अंश) में बुध, कर्क राशि (के ५ अंश) में गुरु, मीन राशि (के २७ अंश) में शुक्र और तुला राशि (के २० अंश) में शनि उच्च का होता है (द्र० ताजिक नीलकण्ठी पृ० ४९, बृहत्पाराशरहोराशास्त्र पृ० १५)।

अनात्मा (अर्थात् परमात्मा और उससे भिन्न पदार्थों) के विषय में विचार करने लगता है। जिससे उसे यह बोध होता है कि सांसारिक मनुष्य भ्रमवश रस्सी में सर्प के आरोप की भांति वस्तु अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म में अवस्तु अर्थात् अज्ञानादि जगत्-प्रपञ्च का अध्यारोप[१] करता है। तब अपवाद[२] (अर्थात् मिथ्याज्ञान या भ्रमज्ञान के निराकरण) से रस्सी में सर्प की भ्रान्ति के निराकरण पूर्वक रस्सी की वास्तविकता के ज्ञान के समान ब्रह्मरूपी सत्य वस्तु में अज्ञानादि जगत्-प्रपञ्च की मिथ्या प्रतीति के दूर हो जाने पर और ब्रह्मरूप सत्य वस्तु का सम्यक् ज्ञान हो जाने पर वह उसी सच्चिदानन्द ब्रह्म का चिन्तन करने लगता है।।२२।।

[३]अस्यासङ्गावबोधाय ब्रह्मणोऽन्वयकारिणः।
क्षित्याद्यनात्मवर्गस्य गुणांस्ते कथयाम्यहम्॥२३॥

सांसारिक पदार्थ रूप असत् (अवस्तु) या अनात्म पदार्थों से अन्वित (या सम्बद्ध) होने वाले इस ब्रह्म के सङ्गरहित शुद्ध स्वरूप के सम्यक् बोध के लिए मैं तुम्हें इसके साथ अन्वित या सम्बद्ध प्रतीत होने वाले पृथिवी आदि अनात्मवर्ग के अर्थात् पञ्चभूतों आदि के गुणों को बतलाता हूँ।।२३।।

क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता वायुराकाश एव च।
स्थूलभूता इमे प्रोक्ताः पिण्डोऽयं पाञ्चभौतिकः॥२४॥

(यह उल्लेखनीय है कि मनुष्य शरीर में पञ्च महाभूतों के अंश किस रूप में विद्यमान रहते हैं, इसका उल्लेख पैङ्गलोपनिषद् आदि अनेक उपनिषदों में भी है[४]।) पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत (स्थूलभूत) कहलाते हैं। यह शरीर इन्हीं पञ्च महाभूतों से बना हुआ है, अतएव पाञ्चभौतिक कहलाता है।।२४।।

त्वगस्थिनाड्यो रोमाणि मांसं चैव खगेश्वर!।
एते पञ्च-गुणा भूमेर्मया ते परिकीर्तिताः॥२५॥

हे गरुड़! मैंने तुम्हें बतलाया है कि इस शरीर में त्वचा, अस्थियाँ, नाडियाँ, रोम और मांस ये पाँच गुण भूमि के हैं[५]।।२५।।

लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम्।
अपां पञ्चगुणाः प्रोक्तास्तेजसोऽपि निशामय॥२६॥

---

१. असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोपः। वेदान्तसार

२.(क)-अपवादो नाम रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववद् वस्तुविवर्तस्यावस्तुनोऽज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्। वेदान्तसार। (ख)-कार्यस्य कारणमात्रविशेषणमपवादः अवस्तुनि सञ्जातायावस्तुबुद्धेरपसारणपूर्वकं सत्यवस्तुमात्रस्थापनमिति भावः। वेदान्तसार की टीका। (ग)- रज्जुविवर्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत् वस्तुभूतब्रह्मणो विवर्तस्य प्रपञ्चादेः वस्तुभूतरूपतोऽपदेशः अपवादः। वाचस्पत्यम्।

३. द्रष्टव्य -''अस्यासङ्गादि०'' श्लोक गरुडपुराण का नहीं है, अपितु सारोद्धारकर्ता के द्वारा संयोजित है।

४. कपालचर्मान्त्रास्थिमांसनखानि पृथिव्यंशाः। रक्तमूत्रलालास्वेदादिका अबंशाः। क्षुत्तृष्णोष्णमोहमैथुनाद्या अग्न्यंशाः। प्रचारणोत्तारणश्वासादिका वाय्वंशाः। कामक्रोधादयो व्योमांशाः। - पैङ्गलोप० २/२।

५. द्रष्टव्य - त्वक् च मांसं तथाऽस्थीनि मज्जा स्नायुश्च पञ्चमम्। इत्येतदिह संघातं शरीरे पृथिवीमयम्।। शान्तिपर्व १८४।२०।।

लार, मूत्र, शुक्र (वीर्य), मज्जा (मांस और अस्थियों के बीच में रहने वाली वसा) और रक्त-ये पाँच गुण जल के कहे गये है[1]। अब तेज (अर्थात् अग्नि) के गुणों को सुनो।।२६।।

क्षुधा तृषा तथाऽऽलस्यं निद्रा कान्तिस्तथैव च।
तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः॥२७॥

हे गरुड़! योगियों ने सर्वत्र ही क्षुधा, पिपासा, आलस्य, निद्रा और कान्ति (कमनीयता या कामाभिलाषा) ये पाँच गुण अग्नितत्त्व के बतलाये हैं[2]।।२७।।

आकुञ्चनं धावनं च लंघनं च प्रसारणम्।
चेष्टितं[3] चेति पञ्चैव गुणा वायोः प्रकीर्तिताः॥२८॥

आकुञ्चन (अर्थात् सिकोड़ना), धावन (अर्थात् दौड़ना), लङ्घन, (अर्थात् लाँघना), प्रसारण (अर्थात् फैलाना) और चेष्टित (अर्थात् अङ्गसञ्चालन आदि शारीरिक चेष्टाएँ)—ये पाँच गुण वायु के बतलाये गये हैं[4]।।२८।।

घोषश्छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः[5]।
आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः॥२९॥

घोष (शब्द), छिद्र, गाम्भीर्य, श्रवणेन्द्रिय (कान) और सर्वसंश्रयता (अर्थात् समस्त तत्त्वों को आश्रय प्रदान करना)-ये पाँच गुण आकाश के हैं। ये तुम्हारे द्वारा प्रयत्न-पूर्वक जाने जा सकते हैं[6]।।२९।।

---

१. द्रष्टव्य -श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च। इत्यापः पञ्चधा देहे भवन्ति प्राणिनां सदा।। शान्तिपर्व १८४।२३।।

२. द्र०-तेजो ह्यग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च। अग्निर्जरयते यश्च पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः।। शान्तिपर्व १८४।२१

३. 'चेष्टितं' यह पाठ गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में प्राप्त और चरकसंहिता शारीरस्थान ४।१२ तथा सुश्रुत संहिता १।२६ द्वारा समर्थित। किन्तु गरुडपुराण उ० २२।३४ और गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ३२।४० में 'निरोध' पाठ है।

४. द्र०-प्राणात् प्राणीयते प्राणी व्यानाद् व्यायच्छते तथा। गच्छत्यपानोधऽश्चैव समानो हृद्यवस्थितः।। उदानादुच्छ्वसिति च प्रतिभेदाच्च भाषते। इत्येते वायवः पञ्च चेष्टयन्तीह देहिनाम्।। शान्तिपर्व १८४।२४-२५।

५. गरुडपुराण (काशी संस्करण) उ० २२। ३६ से स्वीकृत पाठ। तु०-घोषश्चिन्ता च गाम्भीर्यं श्रवणं सत्यसंक्रमः। गरुडपुराण ध.का.प्रे.ख.३२।४१। पाठान्तर-घोषश्चिन्ता च शून्यत्वं मोहश्चिन्ता च संशयः।-गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित यह पाठ पूर्णतः संगत नहीं हो पाता। आकाश के कार्यों में कहीं पर ज्ञान, संकल्प, निश्चय, अनुसन्धान और अभिमान (त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् ६) तथा कहीं पर काम, क्रोध, मोह और भय (शारीरकोपनिषत् ५ तु० ज्ञानसंकीलिनातन्त्र श्लोक २४) को गिनाया गया है। 'यत् सुषिरं तदाकाशम्' (शारीरकोपनिषत् तथा गर्भोपनिषत्) के वचन-प्रामाण्य को देखते हुए निर्धारित पाठ में 'चिन्ता' के स्थान पर 'छिद्राणि' का औचित्य सिद्ध होता है। इस प्रकार की अवधारणा अन्य शब्दों के विषय में भी करनी चाहिए। उदाहरणार्थ-आकाश का कार्य अवकाश प्रदान करना है (द्र०गर्भोपनिषत्)। अतः 'सत्यसंक्रमः' (गरुडपुराण ध० का० के पाठ) की अपेक्षा 'सर्वसंश्रयः' पाठ उचित है।

६. द्र०-श्रोत्रं घ्राणं तथाऽऽस्यं च हृदयं कोष्ठमेव च। आकाशात् प्राणिनामेते शरीरे पञ्च धातवः।। शान्तिपर्व १८४।२२।।

गरुडपुराण (सारोद्धार 15/25-30; नाग/वैंकटेश्वर प्रेस संस्करण 32/35-41; काशी सं० 22/30-36) के अनुसार

पाञ्चभौतिक देह में पञ्चतत्त्वों के गुण

भूमि के गुण	जल के गुण	अग्नि के गुण	वायु के गुण	अकाश के गुण
त्वचा, अस्थियाँ,	लाला (लार),	क्षुधा, तृषा (पिपासा),	आकुञ्चन, धांवन,	शब्द, छिद्र (पोलापन),
नाडियाँ, रोम,	मूत्र, शुक्र,	आलस्य, निद्रा,	लङ्घन, निद्रा,	गाम्भीर्य, श्रवणेन्द्रिय,
मांस	मज्जा, रक्त	कान्ति	प्रसारण, चेष्टा	सर्व-आश्रय

शरीर में पञ्चतत्त्वों के गुणों और कार्यों का वर्णन पीछे श्लोक २५-२६ के अर्थ के साथ उद्धृत टिप्पणियों के अतिरिक्त महाभारत शान्तिपर्व २५२/५-६ ; तदेव २५५/३-८; ज्ञानसंकीलनीतन्त्र २०-२४(तन्त्रसंग्रह द्वितीय भाग पृ०३०६ में) अग्निपुराण ३६६/२८-४५; श्रीमद्भागवत ३/२६-३४-४६; ब्रह्मपुराण १२८/८-६; पैङ्गलोपनिषत् २/२; गर्भोपनिषत्: त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत्; ५-६; १०८ उपनिषदें साधनाखण्ड पृ०१८६-१८७; (याज्ञ० स्मृ०३/७६-७८; शारदातिलक १।२७ पर पदार्थादर्श टीका आदि में तथा नीचे उद्धृत आयुर्वेद ग्रन्थों में भी है।

चरकसंहिता शारीरस्थान 4/12; (सुश्रुतसंहिता शारीरस्थान 1/26; अष्टांगसंग्रह शारीरस्थान 5/9-13 तथा काश्यपसंहिता के अनुसार

पाञ्चभौतिक देह में पञ्चतत्त्वों के गुण

पृथिव्यात्मक भाव	जलात्मक भाव	अग्न्यात्मक भाव	वायवीय भाव	आकाशात्मक भाव
गन्ध, घ्राणेन्द्रिय,	रस, रसनेन्द्रिय (जिह्वा),	रूप, नेत्रेन्द्रिय,	स्पर्श, स्पर्शेन्द्रिय,	शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय,
गुरुत्व (भारीपन),	शीतलता, मृदुता आदि	प्रकाश, पक्ति (पाचन),	(त्वचा),	लाघव, सूक्ष्मता,
स्थिरता, मूर्तिमत्ता		उष्णता, स्नेह (चिकनापन),	रूक्षता, प्रेरणा (गति),	विच्छेद (विविक्ता)
		क्लेद (आर्द्रता)	धातुव्यूहन, चेष्टा	

मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्।
अन्तःकरणमुद्दिष्टं पूर्वकर्माधिवासितम्॥३०॥

मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त-इन चारों को अन्तःकरण कहा जाता है, जो कि पूर्वजन्म के कर्मों की वासना से अधिवासित रहता है।।३०।।

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं ज्ञानेन्द्रियाणि च।
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि च॥३१॥

श्रोत्र (कान), त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण (नाक)-ये पाँच ज्ञानेद्रियाँ है और वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ (लिङ्ग) ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।।३१।।

दिग्वातार्कप्रचेतोश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः[1]। ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च देवताः परिकीर्तिताः॥३२॥

दिशाएँ, वायु, सूर्य, प्रचेता (वरुण) और अश्विनीकुमार [ये पाँच देवता क्रमशः श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, जिह्वा और घ्राण-इन पाँच] ज्ञानेन्द्रियों के देवता और अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति [ये पाँच क्रमशः वाणी, पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग)-इन पाँच] कर्मेन्द्रियों के देवता बतलाये गये हैं।।३२।।

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्नाख्या तृतीयका।
गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी॥३३॥
अलम्बुषा कुहूश्चापि शंखिनी दशमी तथा।
पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडयः[2]॥३४॥

इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना, गान्धारी, गजजिह्वा (हस्तिजिह्वा), पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शङ्खिनी-ये दश प्रधान नाड़ियाँ शरीर में स्थित हैं[3]।।३३-३४।।

प्राणोऽपानः समानाख्य उदानो व्यान एव च।
नागः कूर्मश्च कृकरो[4] देवदत्तो धनञ्जयः॥३५॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय-ये दश वायु शरीर (के विभिन्न अङ्गों) में रहते हैं।।३५।।

---

१. दिग्वातार्क प्रचेतोश्वि 'इत्यादि श्लोक गरुडपुराण के वेंकटेश्वर प्रेस सं (नाग सं०) एवं काशी से प्रकाशित संस्करण में नहीं है। सारोद्धारकर्ता ने -श्रीमद्भागवत २/५/३०; नारदपुराण उ० ५८/५५; पैङ्गलोपनिषद् २/३; वेदान्तसार आदि के आधार पर ही उक्त श्लोक को संयोजित किया है। यह उल्लेखनीय है कि उक्त श्लोक में प्रयुक्त मित्र शब्द के स्थान पर पैङ्गलोपनिषत् में 'मृत्यु' तथा वेदान्तसार में 'यम' संज्ञा का प्रयोग है।

२. ''नाडयः'' पाठ गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ३२/४४ तथा गरुडपुराण उ० ख० २२/३९ से स्वीकृत है। पाठान्तर - नाडिकाः

३. इन नाड़ियों की शरीर में स्थिति इस प्रकार बतलायी गयी है-इडा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिङ्गला स्थिता। सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि।। दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे तु दक्षिणे। यशस्विनी वामकर्णे चानने चाप्यलम्बुषा। कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शङ्खिनी। द्र० योगचूडामणि उपनिषद् १५। २१, ध्यानविन्दूप० ५२-५६; जाबालदर्शनोपनिषत् ४/५-१०।

४. कृकरः पाठ उपनिषदों तथा गरुडपुराण ध.का.प्रे.ख. ३२/४५; गरुड उ० २२/४० में है।

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः॥३६॥

प्राणवायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान वायु नाभिमण्डल में, उदान वायु कण्ठ में और व्यान वायु समस्त शरीर में व्याप्त रहता है। (ऐसा वर्णन अमृतनादोपनिषत् ३४-३५ में भी है)।।३६।।

उद्‌गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः।
कृकरः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे॥३७॥

नाग नामक वायु उद्‌गार अर्थात् डकार लेने या वमन करने का कार्य करता है, कूर्म नामक वायु नेत्रों के उन्मीलन-निमीलन अर्थात् खोलने और मूँदने (पलक झपकाने) का कार्य करता है, कृकर नामक वायु क्षुधा को उदीप्त करता है और देवदत्त नामक वायु विजृम्भण (जँभाई लेने तथा निद्रा लाने) का कार्य करता है[१]।।३७।।

न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः। कवलैर्भुक्तमन्नं हि पुष्टिदं सर्वदेहिनाम्॥३८॥
नयते रस-सारांशं व्यानको सर्वनाडिषु। आहारो भुक्तमात्रो हि वायुना क्रियते द्विधा॥३९॥

शरीर में सर्वत्र व्याप्त धनञ्जय[२] नामक वायु पुरुष को मृत्यु के पश्चात् भी शवदाह पर्यन्त नहीं छोड़ता। मनुष्यों के द्वारा कवलों (अर्थात् ग्रासों) के रूप में खाये हुए पुष्टिकारक अन्न के सारांशरूप रस को व्यान नामक वायु शरीर की समस्त नाड़ियों में पहुँचाता है। भोजन के तत्काल पश्चात् उदरस्थ अन्न को व्यान वायु द्विधा विभक्त करने लगता है।।३८-३९।।

संप्रविश्य गुदे सम्यक्पृथगन्नं पृथग्जलम्।
ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा कृत्वान्नं च जलोपरि॥४०॥
अग्नेश्चाधः स्वयं प्राणः स्थित्वाऽग्निं धमते शनैः।
वायुना ध्मायमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम्॥४१॥
कुरुते व्यानको वायुर्विष्वक् सम्प्रापयेद्रसम्।
द्वारैर्द्वादशभिर्भिन्नं किट्टं देहाद् बहिः स्रवेत्॥४२॥

वह वायु गुदा में प्रविष्ट होकर सम्यक् रूप से अन्न के स्थूल अंश और जल को पृथक्-पृथक् कर देता है। वह अग्नि के ऊपर जल तथा जल के ऊपर अन्न को करके और अग्नि के नीचे वह वायु (प्राण) स्वयं स्थित होकर उस अग्नि को शनैः शनैः धौंकता है। वायु के द्वारा धौंके जाने पर अग्नि उस अन्न के किट्ट (अर्थात् मल) तथा रस को पृथक्-पृथक् कर देता है। तब वह व्यान वायु उस रस को समस्त शरीर में

१. दशपवनों के स्थानों और कार्यों का निर्देश वेदान्तसार, त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् ७६-८६, योगचूडामणि उपनिषत् २३-२५; जाबालदर्शनोपनिषत् ४/२३-३५, योगचूडामणि उप० २३-२५; (द्र०शाण्डिल्योपनिषत् चतुर्थखण्ड) तथा महाभारत शान्तिपर्व १८४/२४-२५ आदि में प्राप्त होता है।

२. द्रष्टव्य - मृत शरीर की शोभा बनाये रखना आदि कार्य धनञ्जय नामक वायु के हैं-मृतगात्रस्य शोभादिं धनञ्जय उदाहृतः। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् ८६।

पहुँचाता है। रस से पृथक् हुआ वह मल शरीर के कान, नाक आदि बारह छिद्रों (द्वारों) से बाहर निकलता है।।४०-४२।।

कर्णाऽक्षिनासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्नखा गुदम्।
गुह्यं शिरा वपुर्लोम मलस्थानानि चक्षते॥४३॥

कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, नख, गुदा, गुप्ताङ्ग, शिराएँ (अर्थात् सूक्ष्म नाड़ियाँ) समस्त शरीर [में स्थित सूक्ष्म छिद्र] और रोम-ये बारह मल के निकास-स्थान कहे जाते हैं।।४३।।

एवं सर्वे प्रवर्तन्ते स्वस्वकर्मणि वायवः।
उपलभ्यात्मनः सत्तां सूर्यालोकं[1] तथा जनाः॥४४॥

जैसे सूर्य से प्रकाश को प्राप्त करके सभी जन (किं वा सभी प्राणी) अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त होते हैं, उसी प्रकार शरीरस्थ आत्मा से अपनी सत्ता को प्राप्त करके सभी वायु अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त होते रहते हैं।।४४।।

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च रोमाणि व्यावहारिके।
सप्तलक्षाणि केशाः स्युर्नखाः प्रोक्तास्तु विंशतिः॥४५॥

व्यावहारिक शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम, सात लाख केश और बीस नख बताये गये हैं।।४५।।

द्वात्रिंशद् दशनाः प्रोक्ताः सामान्याद् विनतासुत!।
मांसं पलसहस्रं तु रक्तं पलशतं स्मृतम्॥४६॥

हे वैनतेय! सामान्यतः मनुष्य के बत्तीस दाँत बतलाये गये हैं। उसके शरीर में एक सहस्र पल[2] मांस और एक सौ पल रक्त बतलाया गया है।।४६।।

पलानि दश मेदस्तु त्वक्पलानि च सप्ततिः[3]।
पलद्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम्॥४७॥

उसमें दश पल मेद, सत्तर पल त्वचा, बारह पल मज्जा और तीन पल महारक्त[4] (प्राण का आधारभूत रक्त) होता है।।४७।।

शुक्रं द्विकुडवं[5] ज्ञेयं कुडवं शोणितं स्मृतम्।
षष्ट्युत्तरं च त्रिशतमस्थ्नां देहे प्रकीर्तितम्॥४८॥

---

१. सूर्यात् आलोकं प्रकाशमित्यर्थः

२. चौषठ माशे का एक पल होता है। एक अन्य मत से चार कर्ष का एक पल होता है-चतुर्भिः कर्षैःपलं। अमरकोश २/९/८९ पर कृष्णमित्र की टीका।

३. द्र०-पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समा। गरुडपुराण ध०का० प्रे० ख० ३२।५४।

४. शिवपुराण ५।२२।४८ में भी मनुष्य-शरीर में तीन पल महारक्त बतलाया गया है। गरुडपुराण (सारोद्धार १५।४५-४९; तु० गरुड उत्तरार्द्ध २२।४८-५१ गरुडपुराण ध०का० प्रे० ख० ३२।५३-५६) की इस विषय-वस्तु का संवाद जितना शिवपुराण ५।२२।४७-५० से मिलता है उतना आयुर्वेद के किसी ग्रन्थ और याज्ञवल्क्य स्मृति (३।१०५-१०७) आदि से नहीं मिलता।

५. शिवपुराण ५।२२।४९ के अनुसार शरीर में आधा कुडव शुक्र रहता है-शुक्रोऽर्द्धं कुडवं ज्ञेयं।

यह बतलाया गया है कि सामान्यतः पुरुष के शरीर में दो कुडव शुक्र होता है और स्त्री के शरीर में एक कुडव रज होता है।(यह स्मरणीय है कि चार पल का एक कुडव (=दश मासा) होता है[1])। पूरे शरीर में तीन सौ साठ अस्थियाँ (हड्डियाँ) होती हैं।।४८।।

नाड्यः स्थूलाश्च सूक्ष्माश्च कोटिशः परिकीर्तिताः।
पित्तं पलानि पञ्चाशत् तदर्धं श्लेष्मणस्तथा॥४९॥

इस शरीर में स्थूल और सूक्ष्म (मोटी और पतली) नाड़ियाँ करोड़ों बतलायी गयी हैं। इसमें पचास पल पित्त और उसका आधा (पच्चीस पल) श्लेष्म (कफ) बतलाया गया है।।४९।।

सततं जायमानं तु विण्मूत्रं चाप्रमाणतः। एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं व्यावहारिकम्॥५०॥

सदा होते रहने वाले मल-मूत्र का कोई निश्चित परिमाण नहीं रहता अर्थात् आहार के अनुसार ही मल-मूत्र का परिमाण होता है।[2] यह व्यावहारिक शरीर इन्हीं उपर्युक्त गुणों से युक्त है। (यहाँ पीछे श्लोक ४५ से ५० तक जो वर्णन है, उसका मूल वैदिक स्रोत गर्भोपनिषत् ६ में देखा जा सकता है)।।५०।।

वक्ष्यामि च शरीरस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्।
ब्रह्माण्डगुणसम्पन्नं योगिनां धारणास्पदम्॥५१॥

शरीर के दो भेद होते हैं-व्यावहारिक शरीर और पारमार्थिक शरीर। अब मैं तुम्हें पारमार्थिक शरीर के विषय में बतलाता हूँ, जो कि ब्रह्माण्ड के गुणों से सम्पन्न है और जिसमें योगी जन [षट्चक्रों और कुण्डलिनी आदि विषयक] ध्यान-धारणा आदि करते हैं।।५१।।

षट्चक्रचिन्तनं यस्मिन् यथा कुर्वन्ति योगिनः।
ब्रह्मरन्ध्रे चिदानन्दरूपध्यानं तथा शृणु॥५२॥

इस पारमार्थिक शरीर में योगी जन जिस प्रकार षट्चक्रों का चिन्तन करते हैं और ब्रह्मरन्ध्र में सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का ध्यान जैसे करते हैं, वह सब मुझसे सुनो।।५२।।

भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः। आदित्याद्या ग्रहाः सन्ति शरीरे पारमार्थिके॥५३॥

पारमार्थिक शरीर में सभी चौदहों भुवन (लोक), सभी पर्वत, सभी द्वीप और सभी सागर तथा सूर्य आदि सभी ग्रह [सूक्ष्म रूप से] विद्यमान हैं -(आदित्यादिग्रहास्सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः। शिवतत्त्वरत्नाकर ९/१/१५२) ।।५३।।

पारमार्थिक-देहे हि षट्चक्राणि भवन्ति च।
ब्रह्माण्डे ये गुणाः प्रोक्तास्तेऽप्यस्मिन्नेव संस्थिताः॥५४॥

पारमार्थिक शरीर में मूलाधार आदि छः चक्र होते हैं। ब्रह्माण्ड में जो गुण बतलाये गये हैं, वे सब भी इसी शरीर में स्थित हैं।।५४।।

---

१. पलचतुष्टयं कुडवः। अमरकोश २/९/८९ पर कृष्णमित्र की टीका, संस्कृत शब्दकोश (आप्टे) के अनुसार कुडव का परिणाम एक चौथाई प्रस्थ होता है।

२. द्र०- अनियतं मूत्रपुरीषमाहारपरिमाणात्। गर्भोपनिषत् ६।

तानहं ते प्रवक्ष्यामि योगिनां धारणास्पदान्।
येषां भावनया जन्तुर्भवेद् वैराजरूपभाक्॥५५॥

(इसीलिए आयुर्वेद आदि ग्रन्थों में यह स्वीकार किया गया है कि मनुष्य शरीर में जो कुछ है, वह ब्रह्माण्ड में भी विद्यमान है और जो ब्रह्माण्ड में है, वह मनुष्य शरीर में भी है ''यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'' और यह भी कहा है कि लोक में जो भाव विद्यमान हैं, वह मनुष्य में भी हैं और जो भाव मनुष्य में हैं, वह लोक में भी विद्यमान हैं।[१]) योगियों की धारणा के विषयीभूत उन [ब्रह्माण्ड विषयक] गुणों को मैं तुम्हें बतलाता हूँ, जिनकी [पारमार्थिक शरीर में] भावना करने से जीव वैराज[२] (या भगवान् के विराट) स्वरूप से तादात्म्य का भागी हो जाता है।।५५।।

पादाधस्तात्तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा।
जानुनोः सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम्॥५६॥

(योगकुण्डल्युपनिषत् २/४९ में कहा गया है कि योगी अपने शरीर के अन्दर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने से अभिन्न रूप में देखता है—शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्यात्माविभेदतः)। इस शरीर में चरणों के नीचे (पैरों के तलवे में) अतल (तल), पैरों के ऊपर वितल, घुटनों में सुतल और सक्थि भाग (जाँघों में) महातल को अवस्थित समझना चाहिए।।५६।।

तलातलं सक्थिमूले गुह्यदेशे रसातलम्।
पातालं कटिसंस्थं च सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः॥५७॥

सक्थियों के मूल (नितम्ब) में तलातल, गुप्ताङ्ग में रसातल और कटि प्रदेश में पाताल स्थित है। इस प्रकार पैरों के तलवों से लेकर कटि-पर्यन्त सात अधोवर्ती लोक बतलाये गये हैं[३]।।५७।।

भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वके।
स्वर्लोकं हृदये विद्यात् कण्ठदेशे महस्तथा॥५८॥

नाभि के मध्य में भूलोक, नाभि के ऊपर भुवर्लोक, हृदय में स्वर्लोक और कण्ठ में महर्लोक को स्थित समझना चाहिए।।५८।।

---

१. द्र०- यावन्तो हि लोके (मूर्तिमन्तो) भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके-चरकसंहिता, शारीरस्थानम् ५।३। एक शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की विद्यमानता और लोकपुरुष साम्य विषयक कल्पना का सर्वप्रथम स्रोत श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण के द्वारा प्रदर्शित विराट रूप के वर्णन में है। श्रीमद्भागवत पुराण (२/१/२५-३७) तथा देवीभागवत (७/३३/२३-२८) में भी ऐसे वर्णन हैं। ''पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं (योगकुण्डल्युपनिषत् १/८१ जैसे उपनिषत् वाक्यों से मनुष्य शरीर में ब्रह्माण्ड के समान गुण ख्यापित होते हैं। द्र० -ब्रह्माण्डे ये पदार्थाः स्युस्ते शरीरे व्यवस्थिताः।-शिवतत्त्वरत्नाकर ९/१/१५१ ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि तानि सन्ति कलेवरे। तोडलतन्त्र, तन्त्रसंग्रह द्वितीय भाग, पृ० ५६।

२. द्रष्टव्य -वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः। भाग० २।१।२५। वैराजः पुरुषो योऽत्र प्रोक्तोऽसावीश्वराभिधः। ज्ञेयः स्वतन्त्रः सर्वज्ञो वश्यमायश्च नारद।।७० एतस्यैव स्वरूपाणि ब्रह्मविष्णुशिवादयः। स्कन्द २/९/२४/७०-७१

३. अधोवर्ती लोकों का अन्य क्रम है- अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल। आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय जी ने भी पुराण विमर्श में यही क्रम स्वीकार किया है।

जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके। सत्यलोकं ब्रह्मरन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश॥५९॥

जनलोक मुख में, तपो लोक ललाट में और सत्यलोक ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। इस प्रकार ये चौदहों लोक पारमार्थिक शरीर में स्थित हैं।।५९।।

(ऊपर कथित चौदह लोकों की शरीर में सूक्ष्म स्थिति का वर्णन अनेकत्र प्राप्त होता है। द्र०-शिवतत्त्वरत्नाकर ९/१/१५३-१५६। नादबिन्दूपनिषत् श्लोक ३+४ में ओङ्कार रूप परमात्मा के नाना अङ्गों में विभिन्न लोकों की स्थिति इस प्रकार बतलायी गयी है। भूर्लोकः पादयोस्तस्य भुवर्लोकस्तु जानुनि। स्वर्लोकः कटिदेशे नाभिदेशे महर्जगत्।३। जनोलोकस्तु हृद्देशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः। भ्रुवोर्ललाट-मध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थितः।४।)

त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधः कोणे च मन्दरः।
दक्षकोणे च कैलासो वामकोणे हिमाचलः॥६०॥

त्रिकोण[1] के मध्य में मेरु पर्वत स्थित है। उस त्रिकोण के तीनों कोणों में से नीचे वाले कोण में मन्दराचल, दाहिनी ओर के कोण में कैलास पर्वत और बाँयी ओर के कोण में हिमालय पर्वत स्थित है।।६०।।

निषधश्चोर्ध्वरेखायां दक्षायां गन्धमादनः। मलयो[2] वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः॥६१॥

उस त्रिकोण (या त्रिभुज) की ऊपर रेखा (या भुजा) में निषध पर्वत स्थित है, दाहिनी ओर की रेखा (या भुजा) में गन्धमादन पर्वत तथा बाँयी ओर की रेखा (या भुजा) में मलय नामक पर्वत स्थित है, इस प्रकार ये सातों कुलपर्वत इस पारमार्थिक शरीर में स्थित हैं।।६१।।

शरीर के मध्य में (मूलाधार के नीचे) स्थित सप्त कुलपर्वतों की स्थिति

कैलास
निषध
हिमाचल
गन्धमादन
मलय
मेरु
मन्दराचल
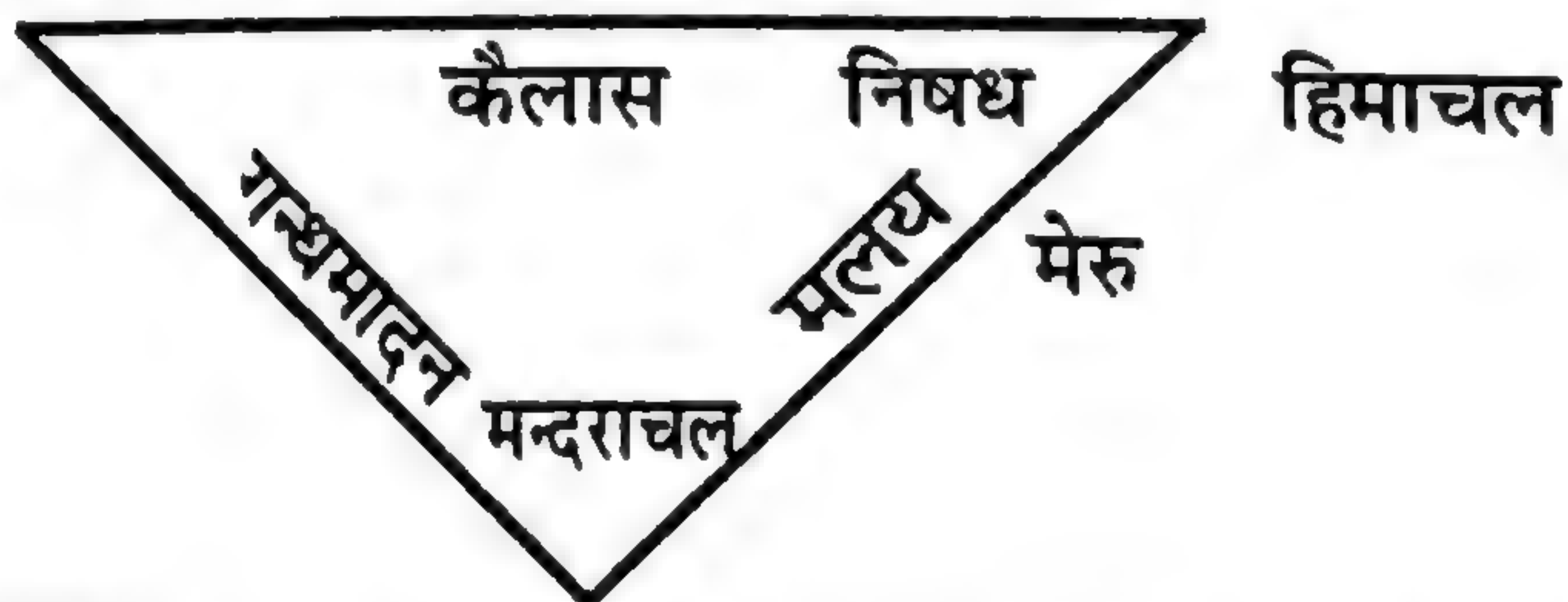
१. उपनिषदों और आयुर्वेद ग्रन्थों में बतलाया गया है कि मनुष्य का शरीर सामान्यतः ९६ अंगुल लम्बा होता है और उसके मध्य में तप्त सुवर्ण के समान रंग वाले अग्नि का स्थान है, जो कि त्रिकोण की आकृति का है (द्र० त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् श्लोक ५६, शाण्डिल्योपनिषत् ४, जाबालदर्शनोपनिषत् ४।१-२)। योगराजोपनिषत् श्लोक ५ में प्रथम चक्र (ब्रह्मचक्र या मूलाधार चक्र)को त्रिकोण के आकार का बतलाया गया है। अतः त्रिकोण की स्थिति मूलाधार में (या उसके तनिक नीचे) मानी जा सकती है। गोरक्ष कृत सिद्धसिद्धान्तपद्धति ३।१० में आठ कुल पर्वतों की स्थिति शरीर के विभिन्न अङ्गों में कल्पित की गयी है। द्रष्टव्य-मेरुपर्वतो मेरुखण्डे वसति, कैलासो ब्रह्मकपाटे वसति, हिमालयः पृष्ठे, मलयो वामकन्धरे, मन्दरो दक्षिणकन्धरे, विन्ध्यो दक्षिणकर्णे, मैनाकः वामकर्णे, श्रीपर्वतो ललाटे, एवमष्टकुलपर्वताः अन्ये उपपर्वताः सर्वाङ्गेषु वसन्ति।

२. 'मलयो' गरुडपुराण ध०का० प्रे० ख० ३२।११२। से स्वीकृत पाठ।

अस्थिस्थाने भवेज्जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः।
कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च॥६२॥

(यह स्मरणीय है कि पुराणों में सप्त कुलपर्वतों में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र को गिनाया गया है। द्रष्टव्य-विष्णुपुराण २/३/३, मार्कण्डेयपुराण ५४/१०-११, ब्रह्माण्ड १/२/१६/१८-१९)। अस्थियों में जम्बूद्वीप स्थित है, मज्जा में शाकद्वीप, मांस में कुशद्वीप और शिराओं (अर्थात् सूक्ष्म नाड़ियों) में क्रौञ्चद्वीप स्थित है।।६२।।

त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये।
नखस्थं पुष्करं विद्यात्सागरास्तदनन्तरम्॥६३॥

त्वचा में शाल्मली द्वीप, रोमसमूह में गोमेद नामक द्वीप और नखों में पुष्कर द्वीप को स्थित समझना चाहिए[1]। तत्पश्चात् सागरों की स्थिति बतलायी जाती है।।६३।।

क्षारोदो हि भवेन्मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः।
सुरोदधिः श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः॥६४॥

क्षार-समुद्र अर्थात् लवणोदधि (या खारा समुद्र) मूत्र में, क्षीरसागर दूध में, सुरा का सागर श्लेष्म अर्थात् कफ में, घृत का सागर मज्जा में स्थित है।।६४।।

रसोदधिं रसे विद्याच्छोणिते दधिसागरः।
स्वादूदो लम्बिकास्थाने जानीयाद्विनतासुत!॥६५॥

रस के सागर को शरीरस्थ रस में और दधि-सागर को रक्त में स्थित समझे। हे वैनतेय! स्वादूदक (स्वादिष्ट जल) के सागर को लम्बिका के स्थान (अर्थात् कण्ठ के अन्दर के लटकते हुए भाग या उपजिह्वा) में स्थित समझे[2]।।६५।।

नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः।
लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये[3] ज्ञः प्रकीर्तितः॥६६॥

नादचक्र में सूर्य और बिन्दुचक्र में चन्द्रमा स्थित है। (मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त छत्तीस चक्र भी होते हैं। जिनमें बत्तीसवाँ बिन्दुचक्र और तेत्तीसवाँ नादचक्र है। (द्र० श्रीविद्यार्णवतनत्र श्वास ४ पृ० ६१ में उत्तरतन्त्र से उद्धृत श्लोक १०-१६)। इन चक्रों को नारदपुराण पू०ख० ६५/९१ तथा गौतमीतन्त्र ३/७९ आदि में सहस्रार चक्र के निकट बतलाया गया है—द्र० सहस्रारे महाचक्रे नादबिन्दुसमन्विते। इन्हीं सन्निकटवर्ती नाद-बिन्दु चक्रों में सूर्य, चन्द्र स्थित हैं। नाद की स्थिति भ्रूमध्य में बतलायी गयी है—योगशिखोपनिषत् १/७८ द्र० तदेव ६/४८।) मङ्गल को नेत्रों में स्थित समझे। हृदय में बुध की स्थिति बतलायी गयी है।।६६।।

---

१. पुराणों में सप्तद्वीपा पृथिवी के सात द्वीप क्रमशः इस प्रकार हैं - जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप-विष्णुपुराण २/२/५; मार्कण्डेय पुराण ५०/१७-१९; ब्रह्माण्ड १/२/१४/११-१४

२. सात समुद्रों का उल्लेख विष्णुपुराण २/२/६; मार्कण्डेय पुराण ५१/७ आदि में है।

३. हृदये च बुध स्मृतः। गरुड उ० २२/६३, गरुड ध०का० प्रे०ख० ३२/११७।

विष्णुस्थाने गुरूं विद्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः।
नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः॥६७॥

विष्णु के स्थान[1] अर्थात् नाभि में गुरु (बृहस्पति ग्रह) का स्थान समझे। शुक्र अर्थात् वीर्य में शुक्र ग्रह स्थित है। नाभि मण्डल में (नाभि के चारों ओर) शनि रहता है और मुख में राहु का स्थान बतलाया गया है।।६७।।

[2]वायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलंम्। एवं सर्वस्वरूपेण चिन्तयेदात्मनस्तनुम्।६८॥

वायु के स्थान में (फेफड़ों से लेकर नासिका-रन्ध्र पर्यन्त) केतु स्थित रहता है। इस प्रकार समस्त ग्रह-मण्डल इस पारमार्थिक शरीर में विद्यमान हैं। अतः मनुष्य अपने इस पारमार्थिक शरीर में समस्त ब्रह्माण्ड के स्वरूप का चिन्तन करे[3]।।६८।।

(भारतीय मनीषियों ने मानव देह को ही देवालय बतलाया है -देहो देवालयः प्रोक्तो जीव एव महेश्वरः। ब्रह्माण्डपुराण ४/४३/५३, देहो देवालयो देवि।-कुलार्णवतन्त्र ९/४१। ''देहस्थाः सर्वदेवताः''- ज्ञानसंकीलिनीतन्त्रम् ८; आत्मैवदेवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्। मनु १२/११९; शरीरे सकला देवा योगिनो निवसन्ति हि। कर्णे तु दक्षिणे नद्यो निवसन्ति तथा पराः।। ५४ हृदये चेश्वरः शम्भुर्नाभौ ब्रह्मा सनातनः। पृथिवी पादतलाग्रे तु जलं सर्वगतं तथा।।५५ तेजो वायुस्तथाऽऽकाशं विद्यते भालमध्यतः। हस्ते च पञ्चतीर्थानि देक्षिणे नात्र संशयः। ५६ सूर्यो यद् दक्षिणं नेत्रं चन्द्रो वाममुदाहृतम्। भौमश्चैव बुधश्चैव नासिके द्वे उदाहृते। ५७ गुरुश्च दक्षिणे कर्णे वामकर्णे तथा भृगुः। मुखे शनैश्चरः प्रोक्तो गुदे राहुः प्रकीर्तितः। ५८ केतुरिन्द्रियगः प्रोक्तो ग्रहाः सर्वे शरीरगाः। योगिनो देहमासाद्य भुवनानि चतुर्दश। ५९ प्रवर्तन्ते सदा देवि तस्माद् योगं सदाऽभ्यसेत्। स्कन्दपुराण (कलकत्ता संस्करण ३/३/३०/५४-६०; नाग सं० ६/२६२/५४-६०)।

सदा प्रभातसमये बद्धपद्मासनः स्थितः।
षट्चक्र-चिन्तनं कुर्यादयथोक्तमजपाक्रमम्॥६९॥

सदैव प्रभातकाल में योग-साधना करने वाला 'बद्धपद्मासन'[4] लगा कर बैठ जाय और तब षट्चक्रों का चिन्तन करे तथा यथोक्त क्रम से अजपा जप करे।।६९।।

---

१. आगे श्लोक ७६ से स्पष्ट होता है कि विष्णु का स्थान मणिपूर चक्र में है और यह चक्र नाभिमण्डल में स्थित है। नाभि स्थान में विष्णु की स्थिति उपनिषत् से भी सिद्ध होती है। यथा-अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थाने प्रतिष्ठितम्। चतुर्भुजं महाविष्णुं पूरकेण विचिन्तयेत्।। ध्यानबिन्दूपनिषत्, श्लोक ३०।

२. पादस्थाने स्मृतः केतुः। गरुड उ० २२/६५, पायु (द) स्थाने स्थितः। गरुड ध० का० प्रे० ख० ३२/११९।

३. योगी अपने शरीर में ही सकल ब्रह्माण्ड को देखता है और उसे आत्मतत्त्व से अभिन्न मानता है- शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्यात्माविभेदतः। योगकुण्डल्युपनिषत् २/४९। मनुस्मृति ११/११८ में कहा गया है कि विद्वान् व्यक्ति सम्पूर्ण जगत् को अपने आत्मा में देखे। चरकसंहिता शारीरस्थान ५/७ में कहा गया है कि सम्पूर्ण लोकों को अपने आत्मा के अन्दर देखने वाले को सत्य-बुद्धि (सद्बुद्धि) प्राप्त होती है।

४. पद्मासन लगाकर बैठ जाने के पश्चात् दाहिने हाथ से बांये पैर के अंगूठे को तथा बांये हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ कर बैठना ही बद्धपद्मासन कहलाता है- पद्मासनं तु संस्थाप्य तदङ्गुष्ठद्वयं पुनः। व्युत्क्रमेणैव हस्ताभ्यां बद्धपद्मासनं भवेत्।। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषत् ४० वाँ श्लोक।

अजपा नाम गायत्री मुनीनां मोक्षदायिनी। अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥७०॥

अजपा नामक गायत्री अपने जप से मुनियों को भी मोक्ष देने वाली होती है। इसके जप का संकल्प मात्र करने पर भी मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।७०।।

शृणु ताक्ष्र्य! प्रवक्ष्येऽहमजपाक्रममुत्तमम्।
यं कृत्वा सर्वदा जीवो जीवभावं विमुञ्चति॥७१॥

हे गरुड़! सुनो, मैं तुम्हें अजपा जप का उत्तम क्रम बतलाता हूँ, जिस जप को करने से सदैव ही जीव अपने जीव-भाव से मुक्त हो जाता है।।७१।।

मूलाधारः स्वाधिष्ठानं मणिपूरकमेव च। अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते॥७२॥

मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरकचक्र, अनाहतचक्र, विशुद्धिचक्र और आज्ञाचक्र—इन छहों को संयुक्त रूप से षट्चक्र कहा जाता है[१]।।७२।।

मूलाधारे लिङ्गदेशे नाभ्यां हृदि च कण्ठगे।
भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत्॥७३॥

षट्चक्र द्योतक चित्र

ब्रह्मरन्ध्र
परमब्रह्म परमात्मा
सहस्रार-चक्र
द्विदल में गुरू
भ्रूमध्य
आज्ञा-चक्र
षोडशदल में जीव
कण्ठ
विशुद्धि चक्र
द्वादशदल में शिव
हृदय
अनाहत-चक्र
दशदल में विष्णु
नाभि
मणिपूरक चक्र
षड्दल में ब्रह्म
लिङ्गमूल
स्वाधिष्ठान चक्र
चतुर्दल में गणेश
मूलाधार
मूलाधार-चक्र
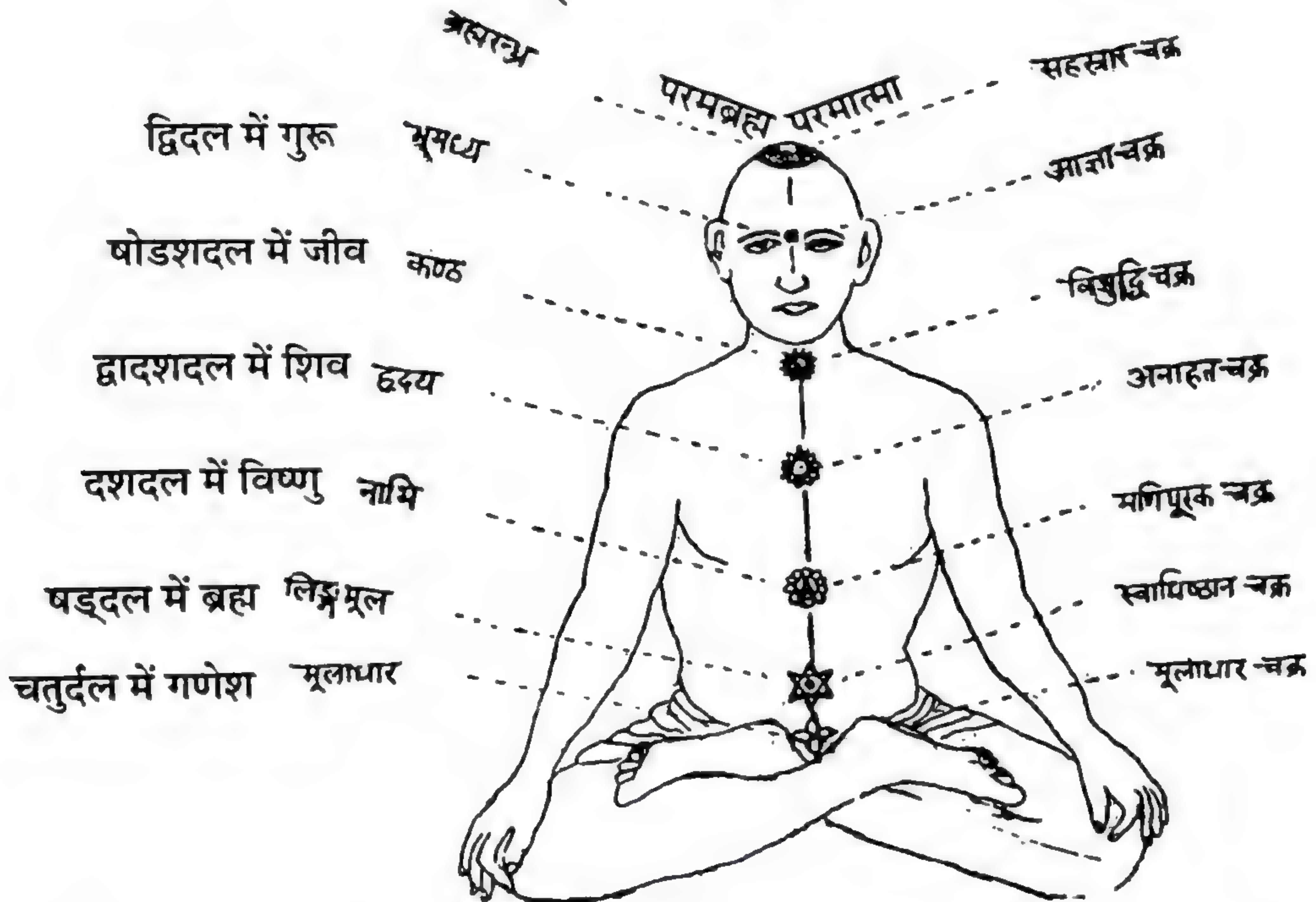
१. इन षट्चक्रों का उल्लेख योगकुण्डल्युपनिषत् ३/९-११(ध्यानबिन्दूपनिषत् ४३-४९ आदिअनेक उपनिषदों में देखा जा सकता है। यथा - आधारं गुदमित्युक्तं स्वाधिष्ठानं तु लैङ्गिकम् मणिपूरं नाभि देशं हृदयस्थमनाहतम्। विशुद्धं कण्ठमूले च आज्ञाचक्रं च मस्तके।- योगकुण्डल्युप० ३/१०-११।

इन चक्रों का चिन्तन क्रमशः मूलाधार में (गुदास्थल के ऊपर), लिङ्ग प्रदेश में, नाभि प्रदेश में, हृदय में, कण्ठ में तथा भौंहों के मध्य में करे और ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रारचक्र का चिन्तन करे अर्थात् मूलाधार चक्र का चिन्तन मूलाधार में (गुदा प्रदेश के ऊपर), स्वाधिष्ठानचक्र का चिन्तन लिङ्ग-मूल में, मणिपूरक चक्र का चिन्तन नाभि प्रदेश में, अनाहत चक्र का चिन्तन हृदय में, विशुद्धिचक्र का चिन्तन कण्ठ में, आज्ञाचक्र का चिन्तन भौंहों के मध्य में करे और तब सहस्रारचक्र का चिन्तन ब्रह्मरन्ध्र में करे।।७३।।

आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं
स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालान्तषट्पत्रकम्।
रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यं फकारान्तकं
पत्रैर्द्वादशभिस्त्वनाहतपुरं हैमं कठान्तावृतम्।।७४।।

मूलाधार चक्र चतुर्दलाकार, अग्नि के समान वर्ण वाला और व से स पर्यन्त वर्णों (अर्थात् व, श, ष और स) का आश्रय है। स्वाधिष्ठानचक्र सूर्य के समान दीप्तिमान् तथा ब से लेकर ल पर्यन्त वर्णों (अर्थात् ब, भ, म, य, र, ल) का आश्रय-स्थान और षट्दलाकार है। मणिपूरक चक्र रक्तिम आभा वाला, दश दलाकार और ड से लेकर फ पर्यन्त वर्णों (अर्थात् ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ) का आधार है। अनाहत चक्र द्वादश दलाकार, स्वर्णिम आभा वाला तथा क से ठ पर्यन्त वर्णों (अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ) वर्णों से युक्त है।।७४।।

पत्रैः सस्वरषोडशैः शशधरज्योतिर्विशुद्धाम्बुजं।
[1]हंसेत्यक्षरयुग्मकं द्वयदलं रक्ताभमात्राम्बुजम्।
तस्मादूर्ध्वगतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं
सत्यानन्दमयं सदा शिवमयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम्।।७५।।

विशुद्धिचक्र षोडशदलाकार, तथा सोलह स्वरों (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः) से युक्त और चन्द्रमा के समान कान्तिवाला होता है। आज्ञाचक्र 'हंसः' इन दो अक्षरों से युक्त, द्विदलाकार और रक्तिम वर्ण का है। उसके ऊपर [ब्रह्मरन्ध्र में] देदीप्यमान सहस्रदलाकार चक्र है, जो कि सदा सत्यमय, आनन्दमय, शिवमय, ज्योतिर्मय और शाश्वत है।।७५।।

गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः।
व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमाच्चक्रेषु चिन्तयेत्।।७६।।

इन चक्रों में क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीवात्मा, गुरु और व्यापक परमब्रह्म का चिन्तन करे अर्थात् मूलाधार चक्र में गणेश जी का, स्वाधिष्ठान चक्र में ब्रह्मा का, मणिपूरक चक्र में विष्णु का, अनाहत

---

१. प्राणिनां देहमध्ये तु स्थितो हंसः सदाऽच्युतः। हंस एव परं सत्यं हंस एव तु सत्यकम् ।। ६०
हंस एव परं वाक्यं हंस एव तु वैदिकम्। हंस एव परो रुद्रो हंस एव परात्परम्।।६१
सर्वदेवस्य मध्यस्थो हंस एव महेश्वरः। पृथिव्यादिशिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णकाः।।६२
कूटान्ता हंस एव स्यान्मातृकेति व्यवस्थिताः। इत्यादि। ब्रह्मविद्योपनिषत् ६०-६३

चक्र में शिव का, विशुद्धि चक्र में जीवात्मा का, आज्ञाचक्र में गुरु का और सहस्रारचक्र में सर्वव्यापी परम ब्रह्म का चिन्तन करे।।७६।।

एकविंशत्सहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च।
अहोरात्रेण श्वासस्य गतिः सूक्ष्मा स्मृता बुधैः॥७७॥

विद्वानों ने यह बतलाया है कि अहोरात्र (अर्थात् एक दिन और एक रात्रि) में मनुष्य की श्वास-प्रश्वास की सूक्ष्म गति सामान्यतः इक्कीस हजार छः सौ (२१६००) बार होती है।।७७।।

हंकारेण बहिर्याति सःकारेण विशेत्पुनः। हंसो हंसेति मन्त्रेण जीवो जपति तत्त्वतः॥७८॥

यह श्वास 'हं' की ध्वनि करते हुए बाहर निकलता है और 'सः' की ध्वनि करते हुए पुनः अन्दर प्रविष्ट होता है। इस प्रकार वस्तुतः जीव 'हंसः-हंसः' इस मन्त्र से परम तत्त्व परम ब्रह्म परमात्मा का जप करता है (द्र०ध्यानबिन्दूपनिषत् ६१-६३)।।७८।।

षट्शतं गणनाथाय षट्सहस्रं तु वेधसे। षट्सहस्रं च हरये षट्सहस्रं हराय च॥७९॥
जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा। चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत्॥८०॥

एक अहोरात्र के श्वासोच्छ्वास में इक्कीस हजार छः सौ बार होने वाले इस जप की संख्या में से छः सौ गणेश को, छः हजार ब्रह्मा को, छः हजार विष्णु को, छः हजार शिव को, एक हजार स्वयं अपने जीवात्मा को और एक हजार गुरु को तथा शेष एक हजार जप को चिदात्मा परम ब्रह्म-परमात्मा को निवेदित करे।।७९-८०।।

एतांश्चक्रगतान् [१]ब्रह्म-मयूखान् मुनयोऽमरान्। सत्सम्प्रदायवेत्तारश्चिन्तयन्त्यरुणादयः[२]॥८१॥

इन षट्चक्रों में स्थित ब्रह्म के किरण-स्वरूप गणेशादि देवताओं का चिन्तन[३] सत्सम्प्रदाय (गुरुशिष्य-परम्परा) के ज्ञाता अरुणादि[४] मुनि करते हैं।।८१।।

---

१. ब्रह्ममयूखान् सर्वदेवमय ब्रह्मणः किरणरूपान् तदभिन्नानित्यर्थः।

२. पाठान्तर-आरुणादयः।

३. पीछे श्लोक ७६ से स्पष्ट हो जाता है कि इन षट्चक्रों में स्थित गणेशआदि देवों का चिन्तन या गान ही पुराणकार को अभीष्ट है।

४. पुराणकार के द्वारा उल्लिखित अरुणादि मुनि संभवतः वे ही हैं, जिनकी चर्चा तैत्तिरीय आरण्यक के प्रथम प्रपाठक में अनेक बार हुयी है और जिनके विषय में महाभारत शान्तिपर्व २६/७ में कहा गया है कि वे स्वाध्यायनिष्ठ रह कर स्वर्ग को प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त आरुणियों (आरुणयः) के उल्लेख वैदिक साहित्य (विशेषतः काठक संहिता, जैमिनीय उपनिषत्, ब्राह्मण तथा ऐतरेय आरण्यक) में भी प्राप्त होता हैं। जाबालोपनिषत् ५/१ में आरुणि को परमहंस संन्यासियों की श्रेणी में गिनाया गया है। आरुणि (उद्दालक) की चर्चा शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर उपनिषदों और इतिहास पुराण में भी है। महाभारत के आदि पर्व के तीसरे अध्याय की कथा के अनुसार आरुणि (उद्दालक) को गुरु की कृपा से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुयी थी। श्रीमद्भागवत् पुराण १०/८७/१८ (परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्) तथा इसी की श्रीधरी टीका में उद्धृत श्रुतिवचन (ऐतरेय आरण्यक २/१/४ के वचन) (उदरं ब्रह्मेति शार्कराक्षा उपासते हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो) के अनुसार आरुणि संज्ञक मुनि अपने हृदयाकाश में ब्रह्म का चिन्तन करते थे। अतः एक अन्य विकल्प के रूप में आरुणियों (आरुणयः) के साथ भी गरुडपुराणोक्त अरुणादि मुनियों के तादात्म्य की कल्पना की जा सकती है।

शुकादयोऽपि मुनयः शिष्यानुपदिशन्ति च।
अतः प्रवृत्तिं महतां ध्यात्वा ध्यायेत्सदा बुधः॥८२॥

शुक आदि मुनि भी अपने शिष्यों को इनका उपदेश देते हैं। अतः महात्माओं की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इन चक्रों में स्थित गणेशादि देवों का ध्यान करे।।८२।।

कृत्वा च मानसीं पूजां सर्वचक्रेष्वनन्यधीः। ततो गुरूपदेशेन गायत्रीमजपां जपेत्॥८३॥

सभी चक्रों में अनन्य भाव से उन सभी देवों की मानसी पूजा[१] (अर्थात् मन से पूजन-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि, इत्यादि क्रम से पूजन) करने के अनन्तर गुरु के उपदेश से अजपा नामक गायत्री का जप करे।।८३।।

अधोमुखे ततो रन्ध्रे सहस्रदलपङ्कजे। हंसगं श्रीगुरुं ध्यायेद्वराभयकराम्बुजम्॥८४॥

तदनन्तर ब्रह्मरन्ध्रान्तर्गत अधोमुख सहस्रदल कमल में हंस पर आरूढ़ तथा एक हाथ से अभयदान और दूसरे हाथ से वरदान की मुद्रा में स्थित श्रीगुरु का ध्यान करे।।८४।।

क्षालितं चिन्तयेद् देहं तत्पादामृतधारया।
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्ततत्स्तवेन च॥८५॥

तदनन्तर उस श्रीगुरु के चरणों से निकली हुई अमृत की धारा से अपनी देह के प्रक्षालित होने की भावना (कल्पना) करे और तब श्रीगुरु की पञ्चोपचार से मानसी पूजा करके 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः' इत्यादि स्तोत्रों से उसकी स्तुति करते हुए उसे प्रणाम करे।।८५।।

ततः कुण्डलिनीं ध्यायेदारोहादवरोहतः।
षट्चक्रकृतसञ्चारां सार्धत्रिवलयां स्थिताम्॥८६॥

तब कुण्डलिनी का ध्यान करे, जो कि मूलाधार में साढे तीन वलय बना कर स्थित है और षट्चक्रों में आरोहण (ऊपर को चढ़ने) तथा अवरोहण (उतरने) के क्रम से [क्रमशः आरोहण काल में प्रकाश तथा अवरोहण काल में अमृतवर्षण करती हुई] विचरण करती है।।८६।।

ततो ध्यायेत्सुषुम्नाख्यं धाम रन्ध्राद्बहिर्गतम्।
पथा[२] तेन गता यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥८७॥

तब ब्रह्मरन्ध्र से बहिर्गत् (बाहर आने वाले) सुषुम्ना नामक धाम (अर्थात् प्रकाश-मार्ग) का ध्यान करे। उस मार्ग से जाने वाले पुरुष विष्णु के परम पद को प्राप्त करते हैं।।८७।।

ततो मच्चिन्तितं रूपं स्वयंज्योतिः सनातनम्।
सदानन्दं सदा ध्यायेन्मुहूर्ते ब्राह्मसंज्ञके॥८८॥

---

१. मानसोपचार पूजन विधि-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि ॐ सं सर्वात्मकान् सर्वराजोपचारान् समर्पयामि।

२. पाठान्तर - यथा।

तब सदैव ब्रह्म नामक मुहूर्त में उठकर मेरे (अर्थात् विष्णु के) द्वारा ध्यान में लाये गये ब्रह्म के नित्य आनन्दमय स्वयं प्रकाशमान और सनातन स्वरूप का सदैव ध्यान करे।।८८।।

एवं गुरूपदेशेन मनो निश्चलतां नयेत्। न तु स्वेन प्रयत्नेन तद् विना पतनं भवेत्॥८९॥

इस प्रकार गुरु के उपदेश से ही मन को स्थिर करे। स्वयं अपने प्रयत्न से ऐसा न करे, क्योंकि गुरु के उपदेश के विना ऐसा प्रयास करने वाले का पतन हो जाता है [अर्थात् वह योगमार्ग से भ्रष्ट हो जाता है और भवसागर में पुनः जन्म ग्रहण करता है]।।८९।।

अन्तर्यागं विधायैवं बहिर्यागं समाचरेत्।
स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा कुर्याद्धरिहरार्चनम्॥९०॥

इस प्रकार अन्तर्याग[1] अर्थात् शरीर के अन्तर्गत मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि षट्चक्रों में स्थित गणेश आदि देवों का मानसोपचार पूजन सम्पन्न करके बहिर्याग के रूप में श्री गणेश, विष्णु आदि देवों का पूजन आरम्भ करे। वह स्नान और सन्ध्यावन्दन आदि करके विष्णु और शिव आदि देवों का पूजन करे।।९०।।

देहाभिमानिनामन्तर्मुखीवृत्तिर्न जायते। अतस्तेषां तु मद्भक्तिः सुकरा मोक्षदायिनी॥९१॥

देहाभिमानी अर्थात् इस व्यावहारिक शरीर या पाञ्चभौतिक शरीर की सत्ता को ही एकमात्र सत्य समझने वाले मनुष्यों की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी नहीं हो पाती, तात्पर्य यह है कि वे उपर्युक्त अजपा जप से लेकर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर परमब्रह्म के चिन्तन पर्यन्त अन्तर्याग की क्रियाओं में अपना चित्त नहीं लगा पाते। अतः उनके लिए मेरी (अर्थात् भगवान् विष्णु की) भक्ति ही सुगम, सुकर और मोक्षदायिनी हो सकती है।।९१।।

तपोयोगादयो मोक्षमार्गाः सन्ति तथापि च।
समीचीनस्तु मद्भक्ति-मार्गः संसरतामिह॥९२॥

यद्यपि तपस्या और योगसाधना आदि भी मोक्ष के मार्ग या साधन हैं तथापि इस संसार में आवागमन अर्थात् जन्ममरण के चक्र में पड़े हुए मनुष्यों के लिए मेरी भक्ति का मार्ग ही सर्वाधिक उपयुक्त है।।९२।।

ब्रह्मादिभिश्च सर्वज्ञैरयमेव विनिश्चितः।
त्रिवारं वेदशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥९३॥
यज्ञादयोऽपि सद्धर्माश्चित्तशोधनकारकाः।
फलरूपा च मद्भक्तिस्तां लब्ध्वा नावसीदति॥९४॥

ब्रह्मा आदि सर्वज्ञ देवों, ऋषि-मुनियों आदि ने क्रमशः पुनः पुनः वेदों और शास्त्रों का विचार करके तीन-तीन बार यही सुनिश्चित किया है कि यज्ञ आदि सद्धर्म चित्त को शुद्ध करते हैं और उसके फलस्वरूप मेरी भक्ति की प्राप्ति होती है। उस (भक्ति) को प्राप्त करके जीव जन्म-मरण आदि के दुःखों से पीड़ित नहीं होता।।९३-९४।।

---

१. मूलाधार आदि चक्रों में श्री गणेश आदि देवों का मन से पूजन (मानसोपचार पूजन) को अन्तर्याग कहा जाता है तथा श्री गणेश आदि पञ्च देवों की मूर्तियों का गन्ध, पुष्पादि से पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचार पूजन को बहिर्याग कहा जाता है।

एवमाचरणं ताक्ष्र्य! करोति सुकृती नरः।
संयोगेन च मद्भक्त्या मोक्षं याति सनातनम्॥९५॥

॥इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणं नाम पञ्चदशोध्यायः॥१५॥

हे गरुड़! पुण्यकर्मा मनुष्य इस प्रकार का आचरण करता है और मेरी भक्ति के संयोग से सनातन मोक्ष को प्राप्त करता है।।९५।।

श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में सुकृतिजनजन्माचरणादिनिरूपणात्मक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

❖❖❖

अथ षोडशोऽध्यायः

मोक्षधर्मनिरूपणात्मक

श्री गरुड उवाच

श्रुता मया दयासिन्धो ह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः।
अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम्॥१॥

गरुड़ बोले-हे दयासिन्धो! मैं यह सुन चुका हूँ कि अज्ञान के कारण जीव संसार में जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है। अब मैं मोक्ष के सनातन उपाय को सुनना चाहता हूँ।।१।।

भगवन्! देवदेवेश! शरणागतवत्सल!। असारे घोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे॥२॥
नानाविधशरीरस्था ह्यनन्ता जीवराशयः। जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते॥३॥

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे शरणागतवत्सल! सम्पूर्ण दुःखों से पूर्ण होने के कारण इस मलिन तथा सारहीन घोर संसार में अनन्त जीवों के समूह नानाविध शरीरों में उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। उनका कोई अन्त नहीं है।।२-३।।

सदा दुःखातुरा एव न सुखी विद्यते क्वचित्।
केनोपायेन मोक्षेश! मुच्यन्ते वद मे प्रभो॥४॥

वे सभी सदा दुःखातुर रहते हैं। उनमें से कोई भी सुखी नहीं है। हे मोक्ष देने वाले प्रभो! वे किस उपाय से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं? यह मुझे बतलाइए।।४।।

(यहाँ यह उल्लेखनीय है कि—गरुड़ सारोद्धार १६/३-१०१ तथा गरुड़महापुराण ध.का.प्रे.ख. ४९/३-१११ की विषयवस्तु प्रायः शब्दशः कुलार्णवतन्त्र १/४/११८ के समान है।)

श्री भगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य! प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः॥५॥

श्रीभगवान् बोले-हे गरुड़! तुम मुझसे जो पूछ रहे हो वह सुनो, जिसके श्रवणमात्र से भी मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है।।५।।

अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलोऽद्वयः॥६॥

परब्रह्मस्वरूप देव (अर्थात् परमात्मा) निष्कल[१] (कलारहित) शिव-रूप, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश्वर, निर्मल और अद्वय (द्वैतभाव-रहित) है।।६।।

स्वयंज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः। निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशाज्जीवसंज्ञकः॥७॥

वह (परम ब्रह्म-परमात्मा) स्वतः प्रकाशमान, अनादि, अनन्त, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण और सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसी के अंश से जीवों का प्रादुर्भाव होता है।।७।।

अनाद्यविद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः।
देहाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः॥८॥

जैसे अग्निपिण्ड से अनेक चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार अनादि अविद्या[२] से संयुक्त होने पर जीव उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्म से पृथक् होकर अपने अनादि कर्मों के प्रभाव से नाना शरीर धारण करते हैं।।८।।

---

१. परम पुरुष को षोडश कलाओं से युक्त बतलाया गया है। प्रश्नोपनिषत् (६/२) में षोडश कलाओं वाले पुरुष को देह में स्थित बतलाया गया है। (इवैवान्तः शरीरे सौम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति)। इसके आगे इस उपनिषत् में यह स्पष्ट किया गया है कि जैसे समुद्र में मिलने पर नदियों के अपने नाम और रूप समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार परम पुरुष-परमात्मा की कलाएँ उससे सङ्गत होने पर अपने नाम और रूप को उसी में विलीन कर देती है, उनका पृथक् अस्तित्व रह ही नहीं पाता और इसीलिए वह परमात्मा अकल (अर्थात् कला-रहित) कहलाता है (प्रश्नोपनिषत् ६।५)। ब्रह्मविद्योपनिषत् (श्लोक ३७-३९) में अनेक दृष्टान्तों के द्वारा यह बोध कराया गया है कि निष्कल की कोई स्थूल सत्ता नहीं होती, अपितु वह नितान्त सूक्ष्म होता है। ब्रह्मविद्योपनिषत् श्लोक ३३ के अनुसार ब्रह्म या परमात्मा जब देहगत (शरीरावच्छिन्न) होता है, तो उसे सकल समझना चाहिए और शरीर रहित अवस्था में उसे निष्कल समझना चाहिए (देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः)। शाण्डिल्योपनिषत् में ब्रह्म के तीन रूप बतलाये गये हैं-सकल, निष्कल और सकल-निष्कल। उसके सत्य, विज्ञान और आनन्दमय (सत्-चित् और आनन्दमय), निष्क्रिय, निरञ्ज, सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, सर्वतोमुख, अनिर्देश्य और अमर स्वरूप को ही निष्कल कहा जाता है (द्र० शाण्डिलोपनिषत् अध्याय ३)

२. किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप में न समझ कर किसी अन्य रूप में मान लेना ही अविद्या है। (जैसे रस्सी को सर्प या सीपी को रजत समझना) ही अविद्या या अज्ञान है। (जिसे वेदान्त में अध्यास या अध्यारोप भी कहते हैं)। अविद्या के कारण पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता। अविद्या उस अज्ञान को कहते हैं, जिसके कारण आत्मा को देह से अभिन्न मानकर पुरुष स्वर्ग और नरक को भोगता है और वह संसार के आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है (द्र० सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा संस्करण पृ० ७६३)। अविद्या को कहीं पर माया का पर्याय भी माना गया है, किन्तु वेदान्त के परवर्ती आचार्यों ने अविद्या और माया में भेद माना है। उनके अनुसार माया से उपहित (आच्छन्न) ब्रह्म को ईश्वर और अविद्या से उपहित या आच्छन्न ब्रह्म को 'जीव' कहा जाता है। सर्वसारोपनिषत् श्लोक ३, के अनुसार अविद्या से जीव के शरीर में अहंभाव उत्पन्न होता है और विद्या से उसका यह अहंभाव दूर होता है।

सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः। तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम्॥९॥
प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते तेषामपि परं पुनः। सुसूक्ष्मलिङ्गशारीरमामोक्षादक्षरं खग!॥१०॥

वे जीव सुखप्रद पुण्यकर्मों या दुःखप्रद पापकर्मों से नियन्त्रित होकर नाना योनियों में तत्तत् जाति (योनि) के अनुसार शरीर, आयु तथा अपने कर्मानुरूप भोग को प्रत्येक जन्म में प्राप्त करते रहते हैं। उन जन्मों के अनन्तर भी पुनः अति सूक्ष्म लिङ्ग-शरीर की प्राप्ति का अमिट क्रम मोक्ष-प्राप्ति पर्यन्त चलता रहता है।।९-१०।।

स्थावराः कृमयश्चाब्जाः[1] पक्षिणः पशवो नराः।
धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥११॥

सांसारिक जीव सर्वप्रथम वृक्ष-लतादि स्थावर (जड़) योनियों में उत्पन्न होते हैं, तदनन्तर कृमि-कीटादि योनियों में, तत्पश्चात् जलचर प्राणियों के रूप में, तब पक्षियों के रूप में, तब पशुयोनि में और तदनन्तर [अन्त्यज आदि जातियों में असाध्य व्याधियुक्त] क्षुद्र मनुष्य के रूप में जन्म लेने के पश्चात् पुनर्जन्म में धार्मिक मनुष्यों के रूप में उत्पन्न होते हैं और तब देवता होते हैं तथा तत्पश्चात् अगले जन्म में अपने सत्कर्मों तथा ध्यान-योग के फलस्वरूप मोक्ष के अधिकारी होते हैं।।११।।

चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः।
सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात्॥१२॥

सहस्रों बार उद्‌भिज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज, इन चारों प्रकार के शरीरों को धारण करके तथा उन शरीरों से छुटकारा पाकर अपने सत्कर्म के पुण्यफल से जीव मनुष्य योनि पाने पर यदि ज्ञानी हो जाता है, तो वह मोक्ष को प्राप्त करता है।।१२।।

चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम्। न मानुषं विनाऽन्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते॥१३॥

शरीरधारी जीवों की चौरासी लाख योनियों में से मानव योनि के विना अन्य किसी भी योनि में तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता।।१३।।

अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः।
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥१४॥

इन चौरासी लाख योनियों में हजारों-हजार करोड़ बार जन्म लेने के पश्चात् ही जीव कदाचित् अपने पुण्य-सञ्चय से मनुष्य योनि को प्राप्त करता है।।१४।।

---

१. कृमयश्चाजाः गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ४९/११ तथा गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित यह पाठ समीचीन नहीं है। मेरे द्वारा संशोधित पाठ का समर्थन विष्णुपुराण २/६/३२, शिवपुराण ५/१६/२६, कुलार्णवतन्त्र १/१२, स्कन्दपुराण ३/२/५/५ और ४/३५/१८ से भी होता है द्रष्टव्य- ततः क्षितिं समासाद्य जायन्ते देहिनः पुनः। स्थावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदतः।।१८४ तत्रानुभूयदुःखानि जायन्ते कीटयोनिषु। निष्क्रान्ताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः।।१८५ संश्लिष्टाः पक्षिभावेन भवन्ति मृगजातिषु। मार्गं दुःखमतिक्रम्य जायन्ते पशुयोनिषु।।१८६ (मार्गं =मृगयोनिस्थं)। क्रमाद् गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः। इत्यादि। भविष्यपुराण ४/६/१८४-१८७।

सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः?॥१५॥

मोक्ष के साधनभूत एवं अति दुर्लभ योनि में जन्म प्राप्त करके भी जो व्यक्ति आत्मोद्धार नहीं करता उससे अधिक पापी इस संसार में और कौन हो सकता है?।।१५।।

नरः प्राप्योत्तमं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम्।
न वेत्त्यात्महितं यस्तु स भवेद्ब्रह्मघातकः॥१६॥

सबसे उत्तम मानव-योनि में जन्म और सौष्ठव सम्पन्न सक्षम ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करके भी जो व्यक्ति आत्म-हित को नहीं जानता और उसे जान कर भी सिद्ध नहीं करता, वह ब्रह्मघातक होता है।।१६।।

विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते।
तस्माद्देहं धनं रक्षेत्पुण्यकर्माणि साधयेत्॥१७॥

शरीर के सहयोग के विना कोई भी मनुष्य धर्म, अर्थ और काम को तथा परम पुरुषार्थ-मोक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता। अतः वह अपने शरीर रूपी-सम्पदा की रक्षा करे और उससे पुण्यकर्मों को सम्पादित करे।।१७।।

रक्षेच्च सर्वदात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्।
रक्षणे यत्नमातिष्ठेज्जीवन्भद्राणि पश्यति॥१८॥

मनुष्य सर्वदा अपने आत्मा (अर्थात् शरीर) की रक्षा करे। उसका आत्मा ही सर्व-विध कल्याण का भाजन होता है। अतः वह उसकी रक्षा का यत्न करे, क्योंकि जीवित रहने पर ही वह अपने जीवन में अपना कल्याण देख सकता है।।१८।।

पुनर्ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम्। पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनः पुनः॥१९॥

मनुष्य को ग्राम, खेत, धन और गृह की प्राप्ति पुनः पुनरपि हो सकती है, वह शुभाशुभ कर्म को भी पुनः कर सकता है, किन्तु वह इस शरीर को पुनः-पुनः नहीं प्राप्त कर सकता।।१९।।

शरीररक्षणोपायाः क्रियन्ते सर्वदा बुधैः। [१]नेच्छन्ति हि तनुत्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः॥२०॥

बुद्धिमान् मनुष्य सदैव इस शरीर की रक्षा का उपाय किया करते हैं। कुष्ठादि पाप-रोगों से पीड़ित रोगी भी शरीर को त्यागने की इच्छा नहीं करते।।२०।।

तद्गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च।
ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिराद् तेन[२] मुच्यते॥२१॥

शरीर की रक्षा धर्म का आचरण करने के लिए करनी चाहिए अर्थात् शरीर की रक्षा का उद्देश्य यह

---

१. कुलार्णवतन्त्र १/२१ से स्वीकृत पाठ। पाठान्तर - न हीच्छन्ति च पुनस्त्यागमपि।

२. प्रविमुच्यते ।

होना चाहिए कि इसके माध्यम से धर्म का आचरण किया जाय। धर्माचरण का लक्ष्य होना चाहिए ज्ञान की प्राप्ति। ज्ञान का उद्देश्य होना चाहिए ध्यान-योग। उस ध्यान-योग से मनुष्य शीघ्रमेव मुक्ति पा सकता है।।२१।।

आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्।
कोऽन्यो हितकरस्तस्मादात्मानं तारयिष्यति॥२२॥

यदि मनुष्य स्वयं ही अपने आत्मा को अपने अहित से निवारित नहीं करता, तो उसका उससे अधिक हितैषी अन्य कौन हो सकता है, जो कि उसके आत्मा का उद्धार करेगा।।२२।।

इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः।
गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति॥२३॥

जो मनुष्य इस लोक में इसी जन्म में नरकरूपी व्याधि की चिकित्सा नहीं कर लेता वह औषधिरहित देश-परलोक में (अर्थात् नरक में) जाने पर उस नरक-व्याधि से पीड़ित होने पर क्या करेगा?।।२३।।

व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्।
निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत्[1]॥२४॥

मनुष्य के शरीर में वृद्धावस्था व्याघ्री (बाघिन) के समान [दबोच कर खून चूसने के लिए] आती है। उसकी आयु टूटे-फूटे (छिद्र युक्त) घड़े में स्थित जल के समान समाप्त होती जाती है और रोग उस पर शत्रु की भाँति प्रहार करते हैं। अतः उसको अपने लोक-परलोक को सुधारने के लिए श्रेयस्कर कार्य (धर्माचरण, ज्ञान-प्राप्ति और ध्यानयोग) का अभ्यास करना चाहिए।।२४।।

यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः।
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समाचरेत्[2]॥२५॥

जब तक दुःख नहीं आ जाय, जब तक विपत्ति नहीं आती और जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ती, तब तक मनुष्य श्रेयस्कर धर्म-कर्म को निरन्तर करता रहे।।२५।।

यावत्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्त्वं समभ्यसेत्।
सन्दीप्ते को नु भवने कूपं खनति दुर्मतिः[3]॥२६॥

जब तक यह शरीर स्वस्थ रहता है, तब तक मनुष्य को तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते रहना चाहिए। ऐसा दुर्बुद्धि मनुष्य कौन हो सकता है, जो कि अपने घर में आग लग जाने पर (उसको बुझाने के लिए) कुआँ खोदना प्रारम्भ करता है।।२६।।

---

१. तु० - व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुश्च संस्रवति भिन्नघटादिवाम्भा लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ।।- भर्तृहरि।

२. कुलार्णवतन्त्र १/२७ से स्वीकृत पाठ। पाठान्तर - समभ्यसेत्। द्र० -यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा। यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः। आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।।

३. प्रोदीप्ते भवने च कूपखनन-प्रत्युद्यम कीदृशः। वैराग्यशतक ७।

कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः।
सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः[1]॥२७॥

नाना सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने से काल का ज्ञान ही नहीं हो पाता। खेद है कि मनुष्य यह नहीं समझ पाता कि वास्तविक सुख कैसे प्राप्त होता है और दुःख का कारण क्या है तथा अपना हित कैसे हो सकता है।।२७।।

जातानार्तान् मृतानापद्ग्रस्तान् दृष्ट्वा च दुःखितान्।
लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन[2]॥२८॥

इस जगत् में उत्पन्न मनुष्यों को रोगादि से आर्त (दुःखी), मृत्यु को प्राप्त, आपद्ग्रस्त और दुःखी देखकर भी यह लोक-समुदाय मानो मोहरूपी मदिरा के पान से मदोन्मत्त रहने के कारण जरा-मृत्यु और नरक-यातना आदि से भयभीत नहीं होता।।२८।।

सम्पदःस्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम्।
तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः॥२९॥

धन-सम्पत्तियाँ स्वप्न के समान क्षणभंगुर हैं, यौवन भी उस पुष्प के समान है, जो कुछ दिनों के पश्चात् मुरझा जाता है और मनुष्य की आयु आकाश में चमकने वाली बिजली के समान चञ्चल है। इस तथ्य को जानते हुए किस मनुष्य को धैर्य हो सकता है? अर्थात् इस क्षणभंगुरता से अवगत कोई भी ज्ञानी मनुष्य निश्चिन्त नहीं रह सकता।।२९।।

शतं जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम्।
बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्[3]॥३०॥

मनुष्य के लिए एक सौ वर्ष का जीवन भी अत्यल्प है। उस जीवन का आधा भाग निद्रा और आलस्य में बीत जाता है, जो अल्प जीवन (आधा जीवन) शेष रहता है, वह भी बाल्यावस्था में, नाना रोगों में, वृद्धावस्था में तथा नाना दुःखों को झेलने में निष्फल बीत जाता है।।३०।।

प्रारब्धव्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।
विश्वस्तश्च[4] भयस्थाने हा नरः को न हन्यते॥३१॥

जो कार्य प्रारम्भ करने योग्य है (अर्थात् मोक्ष-लाभ के लिए जो धर्माचरण, ज्ञान-लाभ और ध्यानयोग आदि करना चाहिए) उसके विषय में कोई प्रयास न करने वाला, जिस ब्रह्मचिन्तन आदि के विषय में

---

१. आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते।

२. द्र०-दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते। पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।। वैराग्यशतक ७।

३. शतं जीवितमत्यलपं निद्रा स्यादर्धहारिणी। बाल्यरोगजरादुःखैरर्द्धं तदपि निष्फलम्।। कुलार्णवतन्त्र १/३१। आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतस्तस्यार्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्।। वैराग्यशतक ९१

४. विश्वस्तश्च-गरुडपुराण ध०का०प्रे०ख० ४९/३१ से स्वीकृत पाठ। विश्वस्तव्यो-गरुडपुराण सारोद्धार के सभी अन्य संस्करणों में उपलब्ध पाठ।

जागरूक रहना चाहिए उस विषय में प्रयास रहित होने से सोये रहने वाला और भय के स्थान (इस नश्वर तथा क्षणभङ्गुर संसार) में विश्वास रखने वाला कौन अभागा मनुष्य काल के द्वारा नहीं मारा जाता।।३१।।

तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते। अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः[1]।।३२।।

जल में उठने वाले फेन (झाग) या बुद्‌बुद् के समान अल्प काल तक स्थित रहने वाले क्षण-भङ्गुर शरीर को प्राप्त करके जीवात्मा उसमें निवास करने लगता है। इस शरीर में निवास उसको अति प्रिय लगता है। किन्तु यह शरीर अनित्य है (नश्वर है)। तब भला इसमें निवास करने वाला जीवात्मा निर्भय होकर कैसे रह सकता है।।३२।।

अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः। अनर्थे चार्थ-विज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः।।३३।।

जो मनुष्य अहितकर विषय-वासना को ही अपना हितकर कहे, अनित्य देह-गेह आदि को ही सदा स्थायी समझे और अनर्थकर[2] धन-सम्पदादि को ही अपने लिए अर्थकर (अर्थात् प्रयोजन सिद्धि की वस्तु) समझे वह अपने वास्तविक अर्थ (अर्थात् मोक्षप्राप्ति के उपायस्वरूप आत्मज्ञान और ध्यानयोग रूप प्रयोजन) को नहीं जानता।।३३।।

पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुद्ध्यति।
पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः।।३४।।

ईश्वर की माया से मोहित होने के कारण मनुष्य आँखों से देखते हुए भी गिर पड़ता है अर्थात् आत्मज्ञान और ध्यानयोग से मोक्ष होता है—यह तथ्य जानते हुए भी मोक्ष मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है, वह ज्ञान की बातों या आत्मज्ञान विषयक उपदेशों को सुनते हुए भी उनके तात्पर्य का बोध नहीं कर पाता है और धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों को पढ़ते हुए भी उनके अर्थ को नहीं जान पाता है।।३४।।

सन्निमज्जज्जगदिदं[3] गम्भीरे कालसागरे। मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुद्ध्यते।।३५।।

मृत्यु, रोग और वार्द्धक्य (बुढ़ापा) रूपी ग्राहों (मकरों) के द्वारा कालरूपी गम्भीर (गहरे) सागर में डुबाये जाते हुए इस जगत् को कोई नहीं जान पाता है।।३५।।

प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।
आमकुम्भ इवाम्भस्थो विशीर्णो न विभाव्यते।।३६।।

प्रतिक्षण क्षीण होते (बीतते) हुए जीवन-काल का ज्ञान उसी प्रकार नहीं हो पाता। जिस प्रकार जल के अन्दर स्थित कच्चे घड़े के विगलित होने का ज्ञान नहीं हो पाता है।।३६।।

---

१. तु०-तोयफेनसमे देहे जीवे शकुनिवत् स्थिते। अनित्येऽप्रियसंसारे कथं तिष्ठन्ति निर्भयः।। कुलार्णवतन्त्र १/३३।

२. श्रीमद्भागवत ११/२३/१८-१९ में धन को स्तेय (चोरी), हिंसा, अनृत, दम्भ, काम, क्रोध, स्मय (गर्भ), मद (अहंकार), भेदभाव, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा (ईर्ष्या), व्यभिचार की प्रवृत्ति, द्यूतक्रीड़ा में आसक्ति तथा मदिरापान जैसे दुर्व्यसनों को मिलाकर कुल पन्द्रह प्रकार के अनर्थों का का कारण बतलाया गया है।

३. सन्निमज्ज्जगदिदं - कुलार्णवतन्त्र १/३६ से स्वीकृत पाठ। पाठान्तर तन्निमज्जज्जगदिदं-गरुडपुराण सारोद्धार के समस्त मुद्रित संस्करणों तथा गरुडपुरा ध०का० प्रे०ख० ४९/३५ में उपलब्ध पाठ।

युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्।
ग्रन्थनं च तरङ्गाणामास्था नायुषि युज्यते॥३७॥

वायु को बाँधने, आकाश को खण्ड-खण्ड करने और जल की तरंगों को परस्पर बाँधने की कल्पना भले ही सार्थक हो सकती है, किन्तु मनुष्य की आयु के शाश्वत होने के विषय में आस्था करना समुचित नहीं है।।३७।।

पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते। शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा॥३८॥

जो काल समस्त भूमण्डल को दग्ध कर सकता है, मेरु पर्वत को चकना-चूर कर सकता है और सागर के जल को सुखा सकता है, उससे मनुष्य के शरीर के बच सकने की बात ही क्या कही जा सकती है?।।३८।।

अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे।
जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात्॥३९॥

यह मेरा बालक है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरी धन-सम्पदा है और ये मेरे बन्धु-बान्धव हैं, ऐसा कहने वाले मनुष्य रूपी बकरे को काल रूपी भेड़िया बलात् (झपटकर) मार डालता है।।३९।।

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्। एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम्॥४०॥

मैंने यह कार्य कर लिया है, यह करना है और यह अन्य कार्य कुछ किया जा चुका है और कुछ अभी अधूरा पड़ा है—इस प्रकार की इच्छा और चेष्टा वाले मनुष्य को यमराज अपने अधीन करके ले जाता है।।४०।।

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यथवाऽकृतम्॥४१॥

अतः विवेकशील मनुष्य को चाहिए कि जो कार्य आने वाले कल के दिन करना हो, उसे आज के ही दिन कर ले और जो अपराह्ण में (दोपहर के पश्चात्) करना हो, उसे पूर्वाह्ण में (दोपहर से पूर्व) ही कर ले, क्योंकि मृत्यु इसकी प्रतीक्षा नहीं करती कि मनुष्य ने अपना कार्य पूरा कर लिया है कि नहीं।।४१।।

जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्।
मृत्युशत्रुमधिष्ठो[१]ऽसि त्रातारं किं न पश्यसि॥४२॥

वृद्धावस्था जिसको मार्गदर्शन कराती है और प्रचण्ड रोग ही जिसके सैनिक हैं, ऐसे मृत्यु रूपी शत्रु के सम्मुख तुम स्थित हो। ऐसी स्थिति में तुम अपने रक्षक परमेश्वर की ओर क्यों नहीं देखते?।।४२।।

तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा।
रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥४३॥

तृष्णा रूपी सुई से बींधे हुए, विषय-वासना रूपी घृत से सींचे हुए और राग-द्वेष रूपी अग्नि में पके हुए मनुष्य को मृत्यु खा जाता है।।४३।।

---

१. प्रधिष्ठोऽसि - निर्णयसागर संस्करण का पाठ। अभिज्ञोऽसि - कुलार्णवतन्त्र १/४३ का पाठ।

बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि। सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतमिदं जगत्॥४४॥

यह जगत् ऐसा है कि इसमें बालकों, युवकों, वृद्धों और यहाँ तक कि गर्भस्थ भ्रूणों सहित सभी को मृत्यु ग्रस्त कर लेती है।।४४।।

स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्।
स्त्रीमातृपितृपुत्रादि-सम्बन्धः केन हेतुना॥४५॥

जब यह जीव अपने शरीर को भी इस जगत् में त्यागकर यमलोक को चला जाता है, तब स्त्री, माता, पिता, पुत्र आदि के साथ सम्बन्ध किस हेतु से-किस प्रयोजन से रखा जाय?।।४५।।

दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः।
तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्॥४६॥

दुखों का कारण यह संसार ही है, जो इस संसार से सम्बन्ध रखता है, वही दुखी है। जिसने इस संसार का त्याग कर दिया है, वही सुखी है, दूसरा कोई भी कहीं सुखी नहीं हो सकता।।४६।।

प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्। आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥४७॥

सभी दुखों के जनक, सभी विपत्तियों के घर और सभी पापों के आश्रयभूत इस संसार (की आसक्ति अर्थात् इसके साथ किसी भी प्रकार के ममत्व) को तत्क्षण त्याग दे।।४७।।

लौहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन॥४८॥

लोहे और लकड़ी के पाशों के बन्धन से बँधा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है, किन्तु पुत्र और पत्नीरूपी पाशों से बँधा हुआ पुरुष कभी भी मुक्त नहीं हो सकता।।४८।।

यावन्तः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥४९॥

मनुष्य इस जगत् में अपने मन को प्रिय लगने वाले जितने अधिक सम्बन्ध बनाता है, उसके हृदय में उतने ही अधिक शोकरूपी कील-काँटे गड़ते जाते हैं।।४९।।

वञ्चिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः। हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः॥५०॥

हाय, यह खेद की बात है कि मानव देह में स्थित और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जैसे विषयों का आहार करने वाले इन्द्रिय रूपी चोरों ने इस लोक के (मोक्ष-लाभ में उपयोगी धर्माचरण और परमात्मा के चिन्तन रूपी) समस्त धन को अपहृत करके इस लोक को विनष्ट कर दिया है।।५०।।

मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशङ्कुं न पश्यति।
सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति॥५१॥

जैसे मांस -लोलप मछली मांस से लपेटी हुई लोहे की शङ्कु (काँटेदार बडिश, वलछी)को नहीं देख पाती, उसी प्रकार विषय-वासनारूपी सुख का लोभी मनुष्य यम की बाधा को नहीं देख पाता।।५१।।

हिताहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः। कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग!॥५२॥

हे गरुड़! जो मनुष्य अपने हित और अहित को नहीं जानते, नित्य कुमार्ग में चलते हैं (अधर्माचरण करते हैं) और मात्र अपने उदर-पूर्ति (पेट को भरने) में संलग्न रहते हैं, वे नरक में गिरते हैं।।५२।।

निद्रादिमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः।
ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः॥५३॥

आहार, निद्रा, भय, मैथुन की मूल प्रवृत्तियाँ सभी प्राणियों में समान रूप से रहती है। उन सभी प्राणियों में से जो ज्ञानवान् हैं, उसको मानव कहा गया है और ज्ञानरहित प्राणी को पशु कहा गया है।।५३।।

प्रभाते मूलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ।
रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मूढमानवाः॥५४॥

मूर्ख मनुष्य प्रातःकाल मल-मूत्र के वेगों से, मध्याह्न में भूख और प्यास से और रात्रि के समय काम वासना और निद्रा से पीड़ित होते हैं।।५४।।

स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः। जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः॥५५॥

हाय! यह खेद की बात है कि अज्ञान से मोहित सभी जीव अपने शरीर, धन और पत्नी आदि में आसक्त रहने के कारण बार-बार जन्म लेते और मरते रहते हैं।।५५।।

तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम्॥५६॥

अतः सङ्ग अर्थात् स्त्री-पुत्रादि में और धन-सम्पदा आदि में आसक्ति सदैव त्याज्य है। यदि उसका सर्वथा त्याग न कर सके तो सन्त-महात्माओं की संगति में रहे, क्योंकि सन्त जन ही सांसारिक सङ्ग (आसक्ति) रूपी रोग की औषधि हैं।।५६।।

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्।
यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥५७॥

सत्संग और विवेक दोनों ही मनुष्य के निर्मल नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नेत्र नहीं हैं, वह अन्धा (सत्संग और ज्ञान से रहित) मनुष्य कुमार्गगामी क्यों नहीं होगा? अर्थात् ऐसा मनुष्य निश्चयमेव अधर्मी और असदाचारी होगा।।५७।।

स्वस्ववर्णाश्रमाचार-निरताः सर्वमानवाः।
न जानन्ति परं धर्मं वृथा नश्यन्ति दाम्भिकाः॥५८॥

अपने-अपने वर्ण और आश्रम के लिए धर्म रूप में विहित कर्तव्यों और आचारों का पालन करने वाले सभी मनुष्य (ध्यान-योग के अभ्यास द्वारा आत्म-दर्शन या ब्रह्मज्ञान से मोक्ष-लाभ रूपी) परम धर्म को नहीं जानते हैं, तो वे दम्भचारी व्यर्थ में नष्ट हो जाते हैं।।५८।।

क्रियायासपराः केचिद् व्रतचर्यादिसंयुताः। अज्ञानसंवृतात्मानः संचरन्ति प्रतारकाः॥५९॥

कुछ मनुष्य तपश्चर्या आदि नाना क्रिया-कलापों में आयासशील रहते हैं तथा कुछ अन्य मनुष्य

व्रत-उपवास आदि में संलग्न रहते हैं। अज्ञान के आवरण से आच्छादित आत्मा वाले अनेक ढोंगी और ठग भी साधुओं के वेश को धारण करके विचरण करते हैं।।५९।।

नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरता नराः।
मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतु-विस्तरैः॥६०॥

कर्मकाण्ड में संलग्न मनुष्य स्वर्गादि के फलों के नाममात्र से संतुष्ट रहते हुए वैदिक मन्त्रोचार और होम आदि कृत्यों तथा विस्तृत विधि-विधानों और विपुल सामग्रियों वाले विस्तृत यज्ञों के सम्पादन में ही उलझे रहते हैं।।६०।।

एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः।
मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः॥६१॥

मेरी माया से मोहित कुछ मनुष्य एक-भुक्त अर्थात् अहोरात्र में मात्र एक ही बार भोजन करने वाले या पूर्णतः उपवास करने वाले तथा शरीर को कृश बनाने वाले कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतों और नियमों का पालन करके परोक्ष तत्त्व या मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं।।६१।।

देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम्। वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः॥६२॥

अपनी देह को पीड़ित करने से भला अज्ञानी मनुष्यों को कैसे मुक्ति मिल सकती है? क्या वल्मीक (बाँबी या दीमक के टीले) को पीटने से उसके अन्दर रहने वाला महासर्प कभी कहीं मरा है।।६२।।

जटाभाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः।
भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि॥६३॥

बड़ी लम्बी जटाओं वाले और मृगचर्म को धारण करने वाले साधु-संन्यासियों का वेश धारण किये हुए अनेक दम्भी-पाखण्डी लोग भी ज्ञानियों के समान दिखावा करते हुए लोक में भ्रमण करते हैं और अपने अनर्गल प्रवचनों से जनता को भी भ्रम में डालते हैं।।६३।।

संसारज-सुखासक्तं[१] ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम्।
कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥६४॥

जो मनुष्य सांसारिक सुखोपभोग में आसक्त रहे और साथ ही साथ अपने को ब्रह्मज्ञानी भी कहे वह सांसारिक कर्म-मार्ग और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के दोनों मार्गों से ही भ्रष्ट हो जाता है। अतः उसको चाण्डाल के समान त्याग देना चाहिए।।६४।।

गृहारण्यसमालोके गतव्रीडा दिगम्बराः।
चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम्॥६५॥

घर और वन में समान रूप से निर्लज्ज और नंगे रहकर गधे आदि पशु भी विचरण करते हैं, तो क्या इस प्रकार के आचरण से वे संसार से विरक्त हो जाते हैं? कभी नहीं।।६५।।

---

१. द्र०-सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञा - उत्तररामचरित २/२२।

मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः स्युर्यदि मानवाः।
मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा[1] सः किं मुक्तो भविष्यति॥६६॥

यदि मिट्टी और भस्म धारण कर लेने मात्र से ही मनुष्य मुक्त हो जाते, तो जो कुत्ता नित्य ही मिट्टी और भस्म में पड़ा रहता है क्या वह भी मुक्ति को प्राप्त कर लेगा?।।६६।।

तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः।
जम्बूकाऽऽखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम्॥६७॥

घास -पात, पत्तों और जल का आहार करने वाले एवं नित्य वन में रहने वाले शृगाल (सियार), चूहे और मृग आदि पशु भी क्या तपस्वी-योगी हो जाते हैं? अर्थात् अन्न त्याग देने और ग्राम या नगर में निवास छोड़कर वन में निवास करने मात्र से कोई व्यक्ति योगी या संन्यासी नहीं हो जाता।।६७।।

शीतवातातपसहा भक्ष्याभक्ष्यसमाः सदा।
तिष्ठन्ति सूकराद्याश्च योगिनस्ते भवन्ति किम्[2]॥६८॥

सूकर आदि पाप योनियों के पशु वर्ष भर शीत, वात (आँधी) और आतप (धूप) को खुले आकाश के नीचे रहकर सहन करते हैं और भक्ष्य-अभक्ष्य का कोई विचार नहीं करते, तो क्या वे योगी हो सकते हैं?।।६८।।

आजन्मरणान्तं च गङ्गादितटिनीस्थिताः।
मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम्॥६९॥

मेंढक, मछली आदि जलचर जीव जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त गंगा आदि पवित्र नदियों में रहते हैं, तो क्या वे योगी हो ज़ाते हैं? अर्थात् पवित्र नदियों या तीर्थों में निवास करने मात्र से कोई व्यक्ति योगी नहीं हो जाता।।६९।।

पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः।
न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम्॥७०॥

कबूतर, कंकण-पत्थर खा लेते हैं और चातक कभी भी भूमि पर स्थित जल को नहीं पीते हैं। क्या वे इस प्रकार के कठिन आचरण से व्रती (व्रतपरायण) हो जाते हैं? अर्थात् ऐसे कठिन खान-पान और कठिन साधना मात्र से कोई मनुष्य तपो-व्रती नहीं हो जाता।।७०।।

तस्मान्नित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम्।
मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्त्वज्ञानं खगेश्वर!॥७१॥

अतः सभी वर्णों और आश्रमों के मनुष्यों के लिए विहित नित्य कर्म और व्रतानुष्ठान आदि कर्म केवल लोकरञ्जन अर्थात् लोक की मनस्तुष्टि मात्र करते हैं। हे गरुड़! साक्षात् तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का कारण है।।७१।।

---

१. श्वानः किं -पाठान्तर

२. कुलार्णवतन्त्र १/८५ से संगृहीत पाठ।

षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः खग! परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियन्त्रिताः॥७२॥

हे गरुड़! षड्दर्शन[1] रूपी महाकूप (विशाल कुवें) में गिरे हुए नर-पशु परमार्थ अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप को नहीं जानते और जैसे गाय-भैंस आदि पशु रस्सी या लोहे के पाशों (बन्धनों) से बँधे रहते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य रूपी पशु[2] मायाजाल रूपी पाशों (या शैवमतानुसार मल, कर्म, माया और रोधरूपी चार प्रकार के पाशों[3]) से बँधे रहते हैं।।७२।।

[4]वेदशास्त्रार्णवे घोरे उह्यमाना इतस्ततः।
षडूर्मिनिग्रहग्रस्तास्तिष्ठन्ति हि कुतार्किकाः॥७३॥

कुतर्क करने वाले मनुष्य वेदशास्त्र रूपी घोर महासमुद्र में इधर-उधर थपेड़े खाते हुए अर्थात् एक-एक करके नाना ग्रन्थों के अध्ययन में उलझते हुए क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह तथा जरा-मृत्युरूपी छः उर्मियों[5] (उर्मिर्नाम आर्त्युत्पादकोऽवस्था विशेषः[6])के प्रशमन में ही व्यग्र रहते हैं ।।७३।।

वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः। विडम्बकस्य तस्यैव तत्सर्वं काकभाषितम्॥७४॥

वेदों, आगमों और पुराणों का ज्ञाता होने पर भी जो मनुष्य परमार्थ को नहीं जानता अर्थात् जो व्यक्ति मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ विषयक तत्त्व-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान से शून्य है, उस विद्या-विडम्बक अर्थात् ढोंगी का वह समस्त अध्ययन और उपदेश कौवे की काँव-काँव के समान व्यर्थ है।।७४।।

इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः।
पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः॥७५॥

परम तत्त्व अर्थात् परात्पर ब्रह्म से पराङ्मुख मनुष्य अपने अभिमत-अभीष्ट शास्त्र-विशेष को यही परम ज्ञान का विषय है और यही ज्ञेय (जानने योग्य)है ऐसा समझकर उसी की चिन्ता से व्यग्र होकर रात-दिन उसी का अध्ययन करते रहते हैं।।७५।।

---

१. षड्दर्शनों में कपिल के द्वारा रचित सांख्य, पतञ्जलि कृत योग, गौतम रचित न्याय, कणाद कृत वैशेषिक, व्यास रचित वेदान्त और जैमिनि कृत मीमांसा सूत्रों और इन सूत्र ग्रन्थों के आधार पर रचित दर्शन-ग्रन्थों को गिना जाता है।

२. शैवमत में जीवात्मा को पशु कहा गया है जो कि पाशों से बँधा रहता है। पाश-मुक्त होने पर वह शिव स्वरूप हो जाता है।

३. शैव मत में बन्धन को पाश कहते हैं। पाश-बद्ध होने के कारण जीवात्मा शिव-स्वरूप नहीं हो पाता। पाश चार प्रकार के होते हैं - मल, कर्म, माया और रोध। मल रूपी पाश से जीवात्मा की ज्ञान शक्ति एवं क्रियाशक्ति तिरोहित हो जाती है। फल की इच्छा से किया जाने वाला कर्म भी पाश बन जाता है। यह कर्म रूप पाश भी धर्म और अधर्म के भेद से दो प्रकार का माना गया है। माया रूप पाश से प्रलयकाल में समस्त संसार का संहार और सृष्टिकाल में उसका उद्‌भव होता है। उपर्युक्त तीन पाशों से बद्ध पशु के यथार्थ स्वरूप को आच्छादित करने वाले पाश को रोध कहते हैं।

४. वेदशास्त्रार्णवैर्घोरैरुह्यमाना-गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ४९/७२

५. क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मरण को षडूर्मि कहा जाता है- मुद्गलोपनिषत् ४/७। द्र०-बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य, मनसः स्मृतौ। शोकमोहौ, शरीरस्य जरामृत्यू षडूर्मयः। -शारदातिक १/४६-४७; प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने। जरामृत्यूशरीरस्य, षडूर्मिरहितः शिवः।।- देवीभाग० ५/४/४१-४२।

६. शारदातिलक की पदार्थादर्श टीका।

वाक्यच्छन्दोनिबन्धेन काव्यालङ्कारशोभिना[1]।
चिन्तया दुःखिता मूढास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः॥७६॥

काव्योचित अलंकारों से सुशोभित गद्य वाक्य-रचना या छन्दोबद्ध कविता की रचना करने पर भी विषयोपभोग के प्रति लालायित इन्द्रियों वाले तत्त्वज्ञानरहित मूढ़ कवि जन भी नाना चिन्ताओं के कारण दुःखी रहते हैं।।७६।।

अन्यथा परमं तत्त्वं जनाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।
अन्यथा शास्त्रसद्भावो व्याख्यां कुर्वन्ति चान्यथा॥७७॥

परम तत्त्व तो अन्य प्रकार से ज्ञात होता है अर्थात् 'सर्वं ह वा खल्विदं ब्रह्म' और 'तत्त्वमसि' इत्यादि प्रकारक गुरु के उपदेश से ज्ञात होता है, किन्तु मूर्खजन उसे पाने के लिए अन्य प्रकार के क्लेश उठाते हैं अर्थात् वे व्यर्थ ही व्रत, तप, यज्ञ, शास्त्राभ्यास, कुतर्क आदि का आश्रय लेकर क्लेश उठाते हैं। शास्त्र का भावार्थ अन्य प्रकार का होता है, किन्तु वे उसकी व्याख्या उससे भिन्न प्रकार से करते हैं।।७७।।

कथयन्त्युन्मनीभावं[2] स्वयं नानुभवन्ति च। अहङ्काररताः केचिदुपदेशादिवर्जिताः॥७८॥

कुछ अहंकारी मनुष्य गुरु से उपदेश ग्रहण किये विना भी ब्रह्मज्ञानी के समान आडम्बरपूर्ण मुख-मुद्रा में तत्त्वज्ञान विषयक अस्पष्ट बातें कहते हैं, जबकि उस विषय में स्वयं उनको कुछ भी यथार्थ अनुभूति नहीं होती है।।७८।।

पठन्ति वेदशास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम्। न जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा॥७९॥

बहुत से लोग वेदों और शास्त्रों का अध्ययन करते है और परस्पर (एक-दूसरे को) उनका तात्पर्य समझाते हैं। किन्तु वे परम तत्त्व को उसी प्रकार नहीं जानते, जैसे कि दर्वी अर्थात् (कलछी या चम्मच) भोजन के रस को नहीं जानती।।७९।।

शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका।
पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधकः॥८०॥

यद्यपि शिर पुष्पों को धारण करता है, किन्तु उनकी सुगन्ध को नासिका ही जानती है। वेदों और शास्त्रों का अध्ययन बहुत-से लोग करते हैं, किन्तु उनके परम तत्त्व-विषयक भावार्थ का बोध कराने वाला गुरु दुर्लभ है।।८०।।

तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति।
गोपः कुक्षिगते छागे कूपे पश्यति दुर्मतिः॥८१॥

मूर्ख मनुष्य अपने हृदय में स्थित परम-तत्त्व रूप परमात्मा के अंश को नहीं जानता और उसको जानने के लिए शास्त्रों के अध्ययन में भटकता फिरता रह जाता है, जैसे कि कोई मूर्ख ग्वाला अपनी कोख में बकरे को पकड़े रखने पर भी उसको खोजने के लिए कुँए में देखता है।।८१।।

---

१. शोभिना-कुलार्णवतन्त्र १/९१ से स्वीकृत पाठ। शोभिताः- गरुडपुराण सारोद्धार के सभी संस्करणों में मुद्रित।
२. उपशममुद्रया ब्रह्मपरत्वं कथयन्ति। (निर्णयसागर प्रेस से मुद्रित पाठ की टीका से उद्धृत)।

संसारमोहनाशाय शाब्दबोधो न हि क्षमः। न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया॥८२॥

सांसारिक मोह-माया को नष्ट करने में वेद और शास्त्रों का शब्दार्थ-बोध सक्षम नहीं है। दीपक के विषय में वार्तालाप करने मात्र से अन्धकार कदापि दूर नहीं हो पाता।।८२।।

प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम्[1]।
अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य लक्षणम्॥८३॥

बुद्धिहीन मनुष्य के लिए वेद-शास्त्रादि का अध्ययन अन्धे को दर्पण दिखलाने के समान निरर्थक है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को ही वेद-शास्त्रादि के अध्ययन से तत्त्वज्ञान लक्षित हो सकता है।।८३।।

इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वं तु श्रोतुमिच्छति। दिव्यवर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति॥८४॥

जो व्यक्ति वेद शास्त्रादि विद्याओं की प्रत्येक विधा और तद्विषयक ग्रन्थ के बारे में यह मानता है कि इसमें भी ज्ञान की बातें हैं और यह भी जानने योग्य है और इस प्रकार की विचार-धारा बनाकर सभी कुछ सुनना या पढ़ना चाहता है, वह देवताओं की वर्ष गणनानुसार हजार वर्षों[2] की आयु प्राप्त करने पर भी शास्त्रों का पार नहीं पा सकता[3]।।८४।।

अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः।
तस्मात्सारं विजानीयात्क्षीरं हंस इवाम्भसि॥८५॥

शास्त्र अनेकानेक हैं, आयु अत्यल्प है और जीवन पर्यन्त करोड़ों विघ्न आते रहते हैं। अतः जैसे हंस जल में से दूध को निकाल लेता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य को शास्त्रों का सारांश अर्थात् तत्व ज्ञान मात्र जान लेना चाहिए[4]।।८५।।

अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वाऽथ बुद्धिमान्।
पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्राणि संत्यजेत्॥८६॥

बुद्धिमान् मनुष्य वेद-शास्त्रों का अध्ययन करके उसमें से तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके उन सब वेद शास्त्रों को उसी प्रकार त्याग दे, जैसे कि धान को चाहने वाला कृषक पुवाल में से धान को निकालकर पुवाल को त्याग देता है।।८६।।

यथाऽमृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम्।
तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य! न शास्त्रेण प्रयोजनम्॥८७॥

हे गरुड़! जैसे अमृतपान से तृप्त हो जाने पर भोजन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता अर्थात् भोजन की कोई आवश्यकता नहीं रहती, उसी प्रकार जिस मनुष्य को तत्त्वज्ञान हो जाता है, उसके लिए शास्त्र के अध्ययन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।।८७।।

१. प्रज्ञाहीनस्य पठनमन्धस्यादर्शदर्शनम्।। कुलार्णवतन्त्र १/९८।

२. मनुष्यों के एक वर्ष का समय देवताओं के एक अहोरात्र के बराबर होता है। अतः देवताओं के एक हजार वर्ष का समय ३६५००० दिव्य दिनों या ३६५०००० मानव वर्षों के बराबर होता है।

३. तु० -इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्। अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात्।। मार्क० ३८/१९

४. तु०-अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः। सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः।।

न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि। ज्ञानादेव हि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज!॥८८॥

हे वैनतेय गरुड़! न तो वेदों के अध्ययन से और न शास्त्रों के अध्ययन से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। एक मात्र तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष मिल सकता है, अन्यथा नहीं।।८८।।

नाश्रमः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणम्। तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम्॥८९॥

मोक्ष-प्राप्ति का उपाय न तो आश्रम-धर्म (संन्यासादि) का पालन है और न दर्शन शास्त्रों का अध्ययन। इस प्रकार के (व्रतोपवास, तप और यज्ञ आदि) कर्म भी मोक्ष प्राप्ति के उपाय नहीं हैं। केवल तत्त्वज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का कारण है।।८९।।

मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा विडम्बिकाः।
काष्ठभारसहस्रेषु ह्येकं सञ्जीवनं परम्॥९०॥

एकमात्र गुरु की वाणी ही मोक्ष देने वाली है अर्थात् गुरु से उपदेश रूप में प्राप्त तत्त्वज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इस दृष्टि से अन्य सब विद्याऐं विडम्बना मात्र हैं। काष्ठ के हजारों गठ्ठरों की अपेक्षा एक संजीवनी लता ही परमोपयोगी होती है। तात्पर्य यह है कि सभी विद्याओं की अपेक्षा गुरु से प्राप्त तत्त्वज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है।।९०।।

अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं[१] क्रियायासविवर्जितम्।
गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाधीतागमकोटिभिः॥९१॥

व्रतोपवास, तपश्चर्या और यज्ञादि क्रियाओं तथा वेद शास्त्रादि के अध्ययन में होने वाले परिश्रम के विना ही गुरु से प्राप्त होने वाले अद्वैत ज्ञान को ही शिव अर्थात् परम कल्याण कारक कहा गया है। यह अद्वैत ज्ञान करोड़ों शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी प्राप्त नहीं होता। यह तो केवल गुरु के मुख से ही प्राप्त हो सकता है।।९१।।

आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते। शब्दब्रह्मागममयं परब्रह्मविवेकजम्॥९२॥

ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक तो वेदशास्त्रादि में तथा आगमों में कथित ज्ञान और दूसरा आत्म-विवेक से जनित ज्ञान। आगम-निगम का ज्ञान शब्द ब्रह्मस्वरूप होता है और विवेक जनित ज्ञान परम ब्रह्मस्वरूप अर्थात् ब्रह्मविषयक होता है।।९२।।

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे। समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥९३॥

परम ब्रह्मरूप परम तत्त्व के विषय में आदि शंकराचार्य तथा उनके मतानुयायी कई विद्वान् अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा चाहते हैं और मध्वाचार्य तथा उनके मतानुयायी अन्य विद्वान् द्वैतवाद की प्रतिष्ठा चाहते हैं। किन्तु द्वैतवाद और अद्वैतवाद से रहित और सब के द्वारा समान रूप से स्वीकार्य परम तत्त्व को कोई नहीं जानते।।९३।।

द्वे पदे बन्धमोक्षाय ममेति न ममेति च। ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते[२]॥९४॥

---

१. अद्वैतं हि शिवेनोक्तं.......। कुलाणर्वतन्त्र १/१०८।

२. द्वे पदे बन्ध..... विमुच्यते। पैङ्गलोप० ४/१९; महोप० ४/७२; वराहोप० २/४३

देह-गेह, स्त्री-पुत्र, धन-सम्पदा आदि के विषय में कहे जाने वाले 'मम' (मेरा) और 'न मम' मेरा नहीं' यह दो शब्द ही बन्धन और मोक्ष के कारण हैं। देह, गेह आदि के प्रति ममता के कारण 'मम' (मेरा है) कहने से मनुष्य बन्धन में पड़ता है और 'न मम' (मेरा नहीं है) ऐसी भावना होने पर वह मोक्ष का भागी होता है।।९४।।

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा।
आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम्॥९५॥

वही कर्म सत्कर्म है, जो जीवात्मा के लिए बन्धन का कारण नहीं बनता और वही विद्या सुविद्या है, जो मोक्ष प्राप्त करा सकती हो। अन्य सब प्रकार का कर्म मात्र शारीरिक क्लेशप्रद होता है और अन्य प्रकार की विद्या शिल्प-चातुरी मात्र है।।९५।।

यावत्कर्माणि दीप्यन्ते[1] यावत्संसारवासना।
यावदिन्द्रियचापल्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः॥९६॥

जब तक ममत्व भावना से कर्म किये जाते हैं एवं पूर्वकृत कर्म फलीभूत होते रहते हैं, जब तक संसार विषयक आसक्ति बनी रहती है, और जब तक इन्द्रियों की चञ्चलता बनी रहती है, तब तक तत्त्व-ज्ञान की बात ही कहाँ हो सकती है?।।९६।।

यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेव हि।
यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्संकल्प-कल्पना॥९७॥
यावन्नो मनसःस्थैर्यं[2] न यावच्छास्त्रचिन्तनम्।
यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः॥९८॥

जब तक शरीर विषयक अभिमान रहता है, जबतक ममता बनी रहती है, जब तक प्रयत्नशीलता रहती है, जब तक संकल्प-भावना (या संकल्प-विकल्प की भावना) रहती है, जब तक मन स्थिर नहीं होता, जब तक शास्त्र चिन्तन नहीं होता, जब तक गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक तत्त्वज्ञान की चर्चा ही कैसे हो सकती है?।। ९७-९८।।

तावत्तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्।
वेदशास्त्रागमकथा यावत्तत्त्वं न विन्दति॥९९॥

मनुष्य के लिए तपश्चर्या, व्रत, तीर्थ, जप, होम, पूजा-पाठ आदि तथा वेदों, शास्त्रों और आगम-ग्रन्थों की कथा-वार्ता आदि तभी तक उपयोगी है जब तक कि वह तत्त्व-ज्ञान (अर्थात् आत्मा-परमात्मा विषयक ज्ञान) को नहीं प्राप्त कर लेता।।९९।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा।
तत्त्वनिष्ठो भवेत्तार्क्ष्य! यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः॥१००॥

---

१. दीप्यन्ते – गरुडपुराण ध०का० प्रे०ख० ४९ से स्वीकृत पाठ। कुलार्णवतन्त्र १/११३ में 'यावत् कामादि' पाठ है।
२. समनः स्थैर्यं- निर्णयसागर संस्करण का पाठ।

हे गरुड़! यदि मनुष्य अपने मोक्ष की कामना करता है, तो वह सदैव, समस्त प्रयत्न से और सभी अवस्थाओं में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति में संलग्न रहे ।।१००।।

धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च। तापत्रयादिसन्तप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत्॥१०१॥

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक संज्ञक तीनों प्रकार के दुःखों से पीड़ित मनुष्य को धर्म और ज्ञान रूपी पुष्पों वाले तथा स्वर्ग और मोक्ष रूपी फलों को देने वाले मोक्षरूपी वृक्ष की छाया का आश्रय लेना चाहिए।।१०१।।

तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात्।
सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात्॥१०२॥

अतः श्री गुरु के मुख से प्राप्त ज्ञान के द्वारा आत्मतत्त्व को जानना चाहिए। उस (आत्मतत्त्व) का ज्ञान हो जाने पर जीव इस घोर सांसारिक बन्धन से सुख पूर्वक (सरलता से) मुक्त हो जाता है।।१०२।।

तत्त्वज्ञस्यान्तिमं कृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना।
येन मोक्षमवाप्नोति ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञकम्॥१०३॥

अब तुम परम तत्त्व को जानने वाले मनुष्य के द्वारा अन्तिम समय में किये जाने वाले कृत्य के विषय में सुनो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ, जिसको करने से वह ब्रह्म-निर्वाण संज्ञक मोक्ष को प्राप्त करता है।।१०३।।

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः।
छिन्द्यादसंग-शस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्॥१०४॥

अन्तकाल आ जाने पर पुरुष निर्भीक होकर असङ्ग अर्थात् अनासक्तिरूपी शस्त्र से अपने शरीर विषयक ममत्व और उसके साथ सम्बद्ध स्त्री-पुत्र-बान्धवादि तथा गृह सम्पदादि विषयक ममत्व के बन्धन को काट डाले।।१०४।।

गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः।
शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने॥१०५॥

तब वह धीर पुरुष घर से निकल कर पवित्र तीर्थ के जल में स्नान करके निर्जन स्थान में शुद्ध भूमि के ऊपर विधिवत् (कुशासन के ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर ऊनी या सूती) आसन लगाकर बैठे।।१०५।।

अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्।
मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन्॥१०६॥

तब परम ब्रह्म के वाचक शुद्ध 'त्रिवृत्' अक्षर 'अ' 'उ' और 'म्' अर्थात् 'ओऽऽऽम्' का मन ही मन अभ्यास करे और ब्रह्मबीज स्वरूप 'ॐ' का निरन्तर स्मरण (अर्थात् जप) करते हुए साँस को जीत कर मन को नियन्त्रित करे।।१०६।।

नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः।
मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया॥१०७॥

बुद्धिरूपी सारथी की सहायता से मन रूपी लगाम के द्वारा इन्द्रिय रूपी अश्वों को विषय-वासना की ओर से निवृत्त करे और कर्मों के द्वारा आकृष्ट (या विचलित) मन को शुभ प्रयोजन अर्थात् परम ब्रह्म के चिन्तन में लगावे ।।१०७।।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माऽहं परमं पदम्।
एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥१०८॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्[१]॥१०९॥

वह यह भावना करे कि 'परम धाम रूप ब्रह्म मैं ही हूँ'। ऐसी भावना करके अपने आत्मा को निष्कल (उपाधिरहित) परमात्मा में लगा करके 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुए और मेरा (अर्थात् भगवान् विष्णु का ध्यान) करते हुए जो मनुष्य देहत्याग करके परलोक को प्रस्थान करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।।१०८-१०९।।

न यत्र दाम्भिका यान्ति ज्ञानवैराग्यवर्जिताः।
सुधियस्तां गतिं यान्ति तानहं कथयामि ते[२]।
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्[३]॥११०॥

[जहाँ ज्ञान और वैराग्य से रहित दाम्भिक मनुष्य नहीं जा सकते और सद्बुद्धि वाले मनुष्य ही जिस गति को प्राप्त करते हैं, उसे मैं तुमको बतलाता हूँ।] अभिमान और मोह से रहित, पुत्र-स्त्री-धन-सम्पदा आदि की आसक्ति रूपी दोष पर विजय प्राप्त कर लेने वाले, नित्य अध्यात्म-ज्ञान-परायण अर्थात् सदा परमात्मा के स्वरूप के चिन्तन में संलग्न रहने वाले तथा समस्त कामनाओं अर्थात् विषयोपभोग की अभिलाषाओं से रहित और क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण और सुख-दुःख के द्वन्द्वों[४] से मुक्त ज्ञानी जन ही उस शाश्वत और अविनाशी परम पद को प्राप्त करते हैं।।११०।।

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥१११॥

जो मनुष्य राग-द्वेषरूपी मल को छुड़ाने में समर्थ सत्यरूपी जल वाले और ज्ञानरूपी सरोवर वाले मानस तीर्थ में स्नान करता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है।।१११।।

प्रौढं वैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक्।
पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥११२॥

पूर्ण-परम ब्रह्म में दृष्टि को केन्द्रित रखने वाला और निर्मल आत्मा वाला जो मनुष्य दृढ़ वैराग्य को

---

१. श्रीमद्भगवद्गीत ८/१३ से उद्धृत।
२. गरुड ध.का.प्रे.ख. ४९/१०९ से उद्धृत।
३. श्रीमद्भगवद् गीता १५/५से उद्धृत।
४. क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण आदि सुख-दुःखादिप्रद भावों को द्वन्द्व कहा गया है।

धारण करके अन्य विषयों का चिन्तन त्याग करके अनन्य भाव से मेरा (अर्थात् भगवान् विष्णु का) भजन करता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है।।११२।।

त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः[१]।
म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥११३॥

जो मनुष्य सांसारिक जीवन से कृतकृत्य होकर मृत्यु की उत्कण्ठा से गृह-त्याग करके तीर्थ में निवास करता है और मुक्ति देने वाले क्षेत्रों (अर्थात् मोक्ष-प्रद तीर्थ-स्थानों) में देह-त्याग करता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है।।११३।।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥११४॥

अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (अर्थात् हरद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पुरियाँ मोक्षदायिनी हैं।।११४।।

इति ते कथितं तार्क्ष्य! मोक्षधर्मं सनातनम्।
ज्ञानवैराग्यसहितं श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥११५॥

हे गरुड़! मैंने यह सनातन मोक्षधर्म तुमको बतला दिया है। इसे ज्ञान और वैराग्य के साथ सुन करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।।११५।।

मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञाः धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः।
पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥११६॥

तत्त्वज्ञानी मोक्ष को प्राप्त करते हैं, धार्मिक मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, पापी मनुष्य प्रेत योनि में या नरक में दुर्गति को प्राप्त करते हैं और पशु-पक्षी आदि जीव संसार में पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करते रहते हैं।।११६।।

इत्येवं सर्वशास्त्राणां सारोद्धारो निरूपितः।
मया ते षोडशाध्यायैः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११७॥

इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिए सभी शास्त्रों का सार उद्धृत करके इन सोलह अध्यायों में निरूपित कर दिया है। अब तुम पुनः क्या सुनना चाहते हो?।।११७।।

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा वचो राजन् गरुडो भगवन्मुखात्।
कृताञ्जलिरुवाचेदं तं प्रणम्य मुहुर्मुहुः॥११८॥

सूत जी बोले—हे राजन्! गरुड़ ने भगवान् विष्णु के मुख से इस प्रकार के वचनों को सुनकर हाथ जोड़कर उन्हें बार-बार प्रणाम करके यह कहा।।११८।।

१. द्र०-कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम्।

गरुड उवाच

भगवन् देवदेवेश श्रावयित्वा वचोऽमृतम्।
तारितोऽहं त्वया नाथ भवसागरतः प्रभो॥११९॥

गरुड़ बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे नाथ! हे प्रभो! आपने अमृततुल्य वचनों को सुना करके भवसागर से मेरा उद्धार कर दिया है।।११९।।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः कृतार्थोऽस्मि न संशयः।
इत्युक्त्वा गरुडस्तूष्णीं स्थित्वा ध्यानपरोऽभवत्॥१२०॥

अब मेरा सन्देह दूर हो गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं कृतार्थ हो गया हूँ। ऐसा कहकर गरुड़जी मौन होकर भगवद्-ध्यान-परायण हो गये थे।।१२०।।

स्मरणाद्दुर्गतिहर्ता पूजनयज्ञेन सद्गतेर्दाता।
यः परया निजभक्त्या ददाति मुक्तिं स मां हरिः पातु॥१२१॥

।।इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भगवद्गरुडसंवादे मोक्षधर्मनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

जो भगवान् विष्णु भक्तों के द्वारा स्मरण किये जाने पर उनकी दुर्गति का हरण करते हैं अर्थात् दुर्गति से उनका उद्धार करते हैं, पूजन और यजन (यज्ञ) से सन्तुष्ट होकर उनको सद्गति प्रदान करते हैं तथा अपनी परम भक्ति से मुक्ति प्रदान करते हैं, वे मेरी रक्षा करें।।१२१।।

।।श्री गरुड़पुराण सारोद्धार में मोक्षधर्मनिरूपणात्मक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

❖❖❖

।।उत्तर खण्ड समाप्त।।

अथ गरुडपुराणश्रवणफलम्

श्री भगवानुवाच

इत्याख्यातं मया तार्क्ष्य सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम्। दशाहाभ्यन्तरे श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१॥

श्री भगवान् बोले—हे गरुड़! इस प्रकार मैंने और्ध्वदेहिक कृत्यों के विषय में सब कुछ बतला दिया है। इसे दशाह (अर्थात् दश दिन) के अन्दर सुन लेने पर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१।।

इदं चामुष्मिकं कर्म पितृमुक्तिप्रदायकम्। पुत्रवाञ्छितदं चैव परत्रेह सुखप्रदम्॥२॥

यह पारलौकिक कर्म पितरों को मुक्ति प्रदान करने वाला, पुत्र-विषयक मनोकामना को पूर्ण करने वाला और परलोक में तथा इस लोक में भी सुख देने वाला है।।२।।

इदं कर्म न कुर्वन्ति ये नास्तिकनराधमाः। तेषां जलमपेयं स्यात्सुरातुल्यं न संशयः॥३॥

जो अधम प्रकृति के नास्तिक मनुष्य प्रेत का और्ध्वदेहिक कृत्य नहीं करते, उनके हाथ का पानी भी सुरा के समान अपेय होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।।३।।

देवताः पितरश्चैव नैव पश्यन्ति तद्गृहम्। भवन्ति तेषां कोपेन पुत्राः पौत्राश्च दुर्गताः॥४॥

देवता और पितर भी उनके घर में दृष्टि नहीं डालते और उनके पुत्र-पौत्रादि उन देवों और पितरों के कोप से दुर्गति को प्राप्त, दुःखी और दरिद्र होते हैं।।४।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवेतरेऽपि च।
ते चाण्डालसमा ज्ञेयाः सर्वे प्रेतक्रियां विना॥५॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा अन्य वर्णसंकर जातियों के भी जो मनुष्य प्रेत की क्रिया नहीं करते उन्हें चाण्डाल के समान समझना चाहिए।।५।।

प्रेतकल्पमिदं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः। उभौ तौ पापनिर्मुक्तौ दुर्गतिं नैव गच्छतः॥६॥

इस पवित्र प्रेतकल्प को जो मनुष्य सुनता है और जो इसे सुनाता है, वे दोनों ही पाप से मुक्त हो जाते हैं और वे कभी भी दुर्गति को नहीं प्राप्त करते।।६।।

मातापित्रोश्च मरणे सौपर्णं शृणुते तु यः।
पितरौ मुक्तिमापन्नौ सुतः सन्ततिमान् भवेत्॥७॥

माता-पिता की मृत्यु होने पर जो पुत्र इस गरुड़पुराण को सुनता है, उसके माता-पिता आदि पितर मोक्ष को प्राप्त करते हैं और उसे सन्तान की प्राप्ति होती है।।७।।

न श्रुतं गारुडं येन गयाश्राद्धं च नो कृतम्। वृषोत्सर्गः कृतो नैव न च मासिकवार्षिके॥८॥
स कथं कथ्यते पुत्रः कथं मुच्येदृणत्रयात्। मातरं पितरं चैव कथं तारयितुं क्षमः॥९॥

माता-पिता की मृत्यु होने पर जिसने गरुड़पुराण को नहीं सुना, गयाश्राद्ध नहीं किया, न वृषोत्सर्ग किया, न मासिक श्राद्ध किये और न वार्षिक श्राद्ध ही किया, उसको पुत्र कैसे कहा जा सकता है? और कैसे वह पैतृक ऋण से मुक्त हो सकता है? और कैसे वह माता-पिता को तारने में समर्थ हो सकता है?।।८-९।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं गारुडं किल। धर्मार्थकाममोक्षाणां दायकं दुःखनाशनम्॥१०॥

अतः समस्त प्रयत्न करके गरुड़पुराण को सुनना चाहिए जो कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसंज्ञक चारों पुरुषार्थों को देने वाला और दुःख का नाश करने वाला है।।१०।।

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्। शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥११॥

गरुड़पुराण पुण्यदायक, पवित्र तथा पापनाशक और अपने सुनने वालों की मनोभिलाषा को पूर्ण करने वाला है। अतः इसको सदैव सुनना चाहिए।।११।।

ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियः पृथिवीं लभेत्।
वैश्यो धनिकतामेति शूद्रः शुद्ध्यति पातकात्॥१२॥

इस पुराण को सुनने के पुण्य-फल से ब्राह्मण को विद्या की प्राप्ति होती है, क्षत्रिय को भूमि-लाभ होता है, वैश्य को धन का लाभ होता है और शूद्र पातक से शुद्ध हो जाता है।।१२।।

श्रुत्वा दानानि देयानि वाचकायाखिलानि च।
पूर्वोक्तशयनादीनि नान्यथा सफलं भवेत्॥१३॥

इस गरुड़पुराण को सुनकर इसके कथावाचक को पूर्वोक्त शय्यादान आदि अखिल (सभी) दान देने चाहिए, अन्यथा इसको सुनने का कोई फल नहीं मिलता।।१३।।

पुराणं पूजयेत् पूर्वं वाचकं तदनन्तरम्। वस्त्रालंकारगोदानैर्दक्षिणाभिश्च सादरम्॥१४॥

आरम्भ में इस गरुड़पुराण की पूजा करे और तत्पश्चात् पुराणवाचक की गन्धाक्षत-पुष्पादि से पूजा करके उसे आदरपूर्वक वस्त्र-अलंकार, गोदान और दक्षिणा प्रदान करे।।१४।।

अन्नैश्च हेमदानैश्च भूमिदानैश्च भूरिभिः।
पूजयेद्वाचकं भक्त्या बहुपुण्यफलाप्तये॥१५॥

अधिक पुण्यफल की प्राप्ति हेतु पुराणवाचक को प्रचुर अन्नदान, प्रचुर स्वर्णदान और प्रचुर मात्रा में भूमि दान देकर उसकी भक्तिपूर्वक पूजा करे।।१५।।

वाचकस्यार्चनेनैव पूजितोऽहं न संशयः। सन्तुष्टे तुष्टितां यामि वाचके नात्र संशयः॥१६॥

।।इति श्रीगरुडपुराण - श्रवणफलवर्णनं समाप्तम्॥

पुराणवाचक की पूजा करने से मेरी भी पूजा हो जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है और इस बात में भी कोई सन्देह नहीं है कि पुराणवाचक के सन्तुष्ट होने पर मैं भी सन्तुष्ट हो जाता हूँ।।१६।।

।।इति श्रीगरुडपुराणश्रवणफलम्।।

❖❖❖

अथ सारोद्धारकर्तुरात्मनिवेदनम्

आसीद्वक्ता पुराणस्य श्रीशार्दूलमहीपतेः। झुंझुणूनगरस्यापि मिश्रः श्रीसुखलालजी॥१॥
तस्य श्रीहरिनारायणात्मजस्तत्सुतेन तु। मया नौनिधिरामेण कृतोऽयं सारसंग्रहः॥२॥
प्राचीनैर्यत्कृतः पूर्वं गारुडः सारसंग्रहः। स तु नो बुद्धिदौर्बल्याज्ज्ञातस्तस्मादयं कृतः॥३॥
पुनरुक्तिं परित्यज्य क्रमेणायं मया कृतः। बालानां सुखबोधाय न तु पांडित्यगर्वतः॥४॥

अत्राप्रमाणं यत्किंचित्प्रमादाल्लिखितं मया।
विद्वद्भिः सुविचार्यैव शोधनीयोऽनसूयिभिः॥५॥

सारोद्धारो मया मूलैर्बहुग्रंथैर्यथा कृतः। तथैवानेकटीकाभिरुद्धृतः सारसंग्रहः॥६॥

महाखेदान्मया तत्र यथास्थानं नियोजितः।
प्राज्ञं विना प्रयासं मे को ज्ञास्यति विमूढधीः॥७॥

विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। न हि वंध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम्॥८॥
ये पूर्वसंग्रहे मूढा नैव जानंति योग्यताम्। ते कथं हि भविष्यंति हर्षिताः पठनेऽस्य च॥९॥
सारोद्धारमिमं मिश्राः पठंतु न पठंतु वा। मया तु स्वीयबोधाय कृतमेतन्न सर्वशः॥१०॥
मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजः। मंगलं पुंडरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः॥११॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिंदीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥१२॥

राजानः परिपालयन्तु वसुधां धर्मे स्थिताः सर्वदा
पृथ्वी कामदुघा भवत्वविरलं वर्षंतु काले घनाः।
ईर्ष्यामुज्झतु दुर्जनः परगुणेष्वासज्जतां सज्जनः
सत्काव्यामृतवर्षिणी कविमुखे वाणी चिरं नन्दतु॥१३॥

।।इति सारोद्धारकर्तुरात्मनिवेदनम्।।

।।इति श्रीगरुडपुराणं समाप्तम्।।

❖❖❖

गरुड़पुराण सारोद्धार के मूलपाठ, अनुवाद एवं टिप्पणियों में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द

❖❖❖

गरुड़पुराण सारोद्धार की भूमिका, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणियों में उद्धृत ग्रन्थ

अग्निमहापुराण
अन्त्यकर्मदीपक
अमरकोश
अष्टाङ्गसंग्रह
आङ्गिरसस्मृति
आचारेन्दु
आश्रमोपनिषत्
उत्तरतन्त्र
१०८ उपनिषदें तीन खण्ड
ऋग्वेदसंहिता
ऐतरेय आरण्यक
कर्मकाण्डप्रदीप
काठकसंहिता
कात्यायनस्मृति
कालनिर्णयखण्ड(हेमाद्रि कृत)
कुलार्णवतन्त्र
कूर्मपुराण
गणेशपुराण
गरुडमहापुराण (काशी सं०)
गरुडमहापुराण (नाग सं०)
गर्भोपनिषत्
गौतमीतन्त्र
चतुर्वर्गचिन्ताणि
चरकसंहिता
जाबालदर्शनोपनिषत्
जाबालोपनिषत्
जैमिनीय उपनिषत्
ज्ञानसंकीलनीतन्त्र
तन्त्रसंग्रह भाग १-२
ताजिकनीलकण्ठी
तैत्तिरीयसंहिता
तोडलतन्त्र
त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्
त्रिस्थलीसेतु
देवीभागवतपुराण
ध्यानबिन्दूपनिषत्
नारदपरिव्राजकोपनिषत्
नादबिन्दूपनिषत्
नारदमहापुराण
नारदस्मृति
निर्णयसिन्धु (मूल)
पद्ममहापुराण
पराशरमाधव
पराशरस्मृति
पातंजलयोगसूत्र व्यासभाष्य सहित
पुराणविमर्श
पुराणविषयानुक्रमणी (विधि एवं आचार)
पैङ्गलोपनिषत्
प्रश्नोपनिषत्
बृहत्पराशरस्मृति
बृहत्पाराशरहोराशास्त्र
बृहत्संहिता
बृहद्यमस्मृति
ब्रह्ममहापुराण (प्रयाग सं०)
ब्रह्ममहापुराण (नाग सं०)
ब्रह्मविद्योपनिषत्
ब्रह्मवैवर्तमहापुराण
ब्रह्माण्डमहापुराण
ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता
भविष्यमहापुराण
मत्स्यमहापुराण
मनुस्मृति
महाभारत (गीताप्रेस)
महोपनिषत्
मार्कण्डेय महापुराण
मुद्गलोपनिषत्
मुहूर्तचिन्तामणि
याज्ञवल्क्यस्मृति (मिताक्षरा सहित)
योगकुण्डल्युपनिषत्
योगचूडामणि उपनिषत्
योगराजोपनिषत्
योगसूत्र

रसगङ्गाधर
रामायण (वाल्मीकिकृत, गीताप्रेस)
लिङ्गमहापुराण
लौगाक्षिस्मृति
वराहमहापुराण (काशिराजन्यास सं०)
वराहमहापुराण (नाग सं०)
वराहोपनिषत्
वसिष्ठस्मृति
वाक्यपदीयम्
वाचस्पत्यम्
वायुमहापुराण (नाग सं०)
वायुमहापुराण (प्रयाग सं०)
विधानमाला
विष्णुधर्मोत्तरपुराण
विष्णुमहापुराण (गीताप्रेस)
विष्णुस्मृति (वैजयन्ती सहित)
वेदान्तसार
वैराग्यशतक
शंखस्मृति
शब्दकल्पद्रुम
शाण्डिल्योपनिषत्
शारदातिलक (पदार्थादर्श टीका सहित)
शिवमहापुराण (काशी सं०)
शिवमहापुराण (नाग सं०)
शिवतत्त्वरत्नाकर
शुक्लयजुर्वेद माध्यान्दिन संहिता उवट महीधर भाष्य सहित
श्राद्धकल्प (हेमाद्रि कृत)
श्राद्धमयूख
श्रीमद्भगवद्गीता
श्रीमद्भागवत महापुराण
श्वेताश्वतरोपनिषत्
संवर्तस्मृति
संस्कारदीपक
संन्यासोपनिषत्
समयमयूख
सर्वदर्शनसंग्रह
सांख्यकारिका
साहित्यदर्पण
सुश्रुतसंहिता
सिद्धसिद्धान्तपद्धति
स्कन्द महापुराण
स्मृतिचन्द्रिका
स्मृतिसन्दर्भ
हरिवंशपुराण

❖❖❖

परिशिष्ट

गरुडपुराण का तृतीयांश ब्रह्मकाण्ड : एक विमर्श

—डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

गरुडपुराण अपने विश्वकोशात्मक स्वरूप के लिए जाना जाता है। उसमें जो सामग्री प्राप्त है, उसके आधार पर उनको जीवनोपयोगी विद्या का संधारक और संवाहक पुराण कहा जा सकता है; किन्तु उसका स्वरूप तृतीयकाण्ड के फलस्वरूप वैष्णव कोटि का परिलक्षित होता है। यद्यपि पुराण विशेषज्ञों ने प्रथम भाग को ही मूल स्वीकारा है, द्वितीय खण्ड को प्रक्षिप्त कहा है। तीसरा खण्ड कई लोगों को स्वीकार नहीं है; किन्तु, कुछ प्रतियों में तृतीयखण्ड भी मिलता है। यह पुराण का तृतीयांश कहा गया है। सामान्य स्वरूप में यह तीसरा खण्ड है; क्योंकि आचारखण्ड स्वरूप पूर्वार्द्ध के बाद उत्तरखण्ड है, जिसको 'प्रेतकल्प' कहा गया है और तृतीयखण्ड को 'ब्रह्मकाण्ड' कहा गया है। ऐसे में यह पुराण जहाँ खण्ड और काण्ड का रूप लिए दिखाई देता है, वहीं 'कल्पात्मक' रूप भी लिए है; किन्तु तीसरे खण्ड को अंश का नाम दिया गया है। इसमें २९ अध्याय है और प्रत्येक अध्याय के अन्त में पुष्पिकाओं में 'तृतीयांश' संज्ञा स्मरणीय है। पुराणों में अंश के रूप में अध्यायों के ग्रन्थन का क्रम विष्णुपुराण में देखने को मिलता है जो षट्-अंशात्मक है और प्रत्येक अंश में अनेक अध्यायों को सम्पादित किया गया है। इसके बाद गरुडपुराण के उत्तरार्द्ध में पुनः अंशात्मक स्वरूप को महत्व देने का प्रयास हुआ है। गरुडपुराण के तृतीय कांड का प्रत्येक अध्याय शीर्षक लिए हुए है, जबकि पूर्वार्द्ध में कई अध्यायों के शीर्षक या नाम नहीं है।

ब्रह्मकाण्ड मूलतः वैष्णव भक्तिपरक है और पांचरात्र परम्परा का नैकट्य लिए है। महाभारत में इसका प्राचीन सन्दर्भ मिलता है— पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्। *(महा. द्वादश पर्व, ३३७, ६३३७)* यामुनाचार्य इस परम्परा के सम्बन्ध में कहते हैं— न च पञ्चरात्र तन्त्रप्रतिपाद्यमान विलक्षण दीक्षापूर्वक भगवदाराधनाभिलषित स्वर्गापवर्गादि साध्यसाधन सम्बन्धं प्रत्यक्षाक्षीन्यायवेदयितुं क्षमन्ते। न हि प्रत्यक्षेण दीक्षाराधनादीनि निरीक्षमाणाः तेषां निःश्रेयससाधनतां प्रतिपद्यामहे। *(आगमप्रामाण्य, बड़ौदा, १९७६, पृष्ठ ३)* पाञ्चरात्र के उपदेशक विष्णु स्वयं रहे हैं और यह मत भुक्ति और मुक्ति फलदायक कहा गया है— ततः परमिदं ज्ञानं विष्णुना भाषितं हितम्। पञ्चरात्रमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ *(नारदीयसंहिता, तिरुपति, २००१, १, ७६)* इस काण्ड में प्रमुख वक्ता विष्णु अवतार श्रीकृष्ण स्वयं है। इसमें भागवत और अन्य कई ग्रन्थों का उल्लेख है, जो इसके प्रणयन अथवा सम्पादन में सहायक रहे होंगे। इसमें विष्णु के अवतारों की कथाओं और उपासना विधानों की बहुलता है। इसका प्रणयन और विकास पुराण के पूर्वार्द्ध के ही प्रथम अध्याय के उस निर्देश के अनुसरण में लगता है, जिसमें कहा गया है कि यह पुराण सारं (विष्णु का एक पर्याय) और विष्णु लीलाओं के आख्यानों-कथाओं पर आधारित है— पुराणं गारुडं वक्ष्ये सारं विष्णुकथाश्रयम्। *(गरुडपुराण १, १, ११)* तृतीयांश प्रस्तुत पुराण के उस अभाव की पूर्ति करने के प्रयास का परिणाम है, जिसमें विष्णु की लीलाओं पर अत्यल्प विमर्श है। यद्यपि पुराणकार विष्णु के अनेक अवतारों की चर्चा करता है— अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। *(१, १, ३४)* किन्तु उनकी लीलाओं का वर्णन करने की अपेक्षा सर्वजनोपयोगी विवरण पर

ही अधिक केन्द्रित रहता है। मत्स्यपुराण और लिंगपुराण में पाञ्चरात्र के विश्वासों को सात्विक पुराणों के अन्तर्गत किया गया है— सात्त्विकेषु तु कल्पेषु विष्णोर्माहात्म्यमुच्यते। *(मत्स्य. ५३, ६७-६८)* इसी प्रकार लिङ्गपुराण का वचन है— न हि विष्णुमृते काचित् गतिरन्या विधीयते। इत्येवं सततं वेदा गायन्ते नात्र संशयः॥ *(लिङ्ग. पूर्व. २४, १४३)*

इस काण्ड का प्रथम अध्याय 'सात्त्विकादि पुराणविभाग नम्यानम्य देवविभागादि विषय निरूपण' शीर्षक वाला है। इसका आरम्भ जिस श्लोक से होता है, वह वार्ष्णेय श्रीकृष्ण की साग्रज महिमा का बोधक है, जिसमें मल्लों में वज्र, मनुष्यों में राजा, स्त्रियों में काम, मूर्तिमानों में गोपी की तरह जिनका योगीवर्य की तरह महत्व है— ॐ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपीनां स्वजनोऽसतां क्षितिभृतां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः। मृत्युर्भोजपतेर्विधातृविहित स्वत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां च पतिः सदैव शुशुभे रङ्गेऽच्युतः साग्रजः॥ *(ब्रह्मकाण्ड १, १)* पुराणकार नारायण के मूल रूप का स्मरण करता है और नमस्कार करते हुए नारायण की कथा का प्रवर्तन करता है— नमो नारायणायेति तस्मै वै मूलरूपिणे। नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि नारायणकथामिमाम्॥ यह श्लोक 'नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्' के अनुवर्तन में परिवर्तित रूप लिए है; क्योंकि यह पुराण पहचानमूलक परम्परित श्लोक उत्तरार्द्ध के आरम्भ में आ चुका है।

इसके बाद वह ब्रह्मवादी शौनकादि महात्माओं, ऋषियों की नैमिष नामक तीर्थ में उपस्थिति देखता है जो सब के सब जितेन्द्रिय, आहार को जीतने वाले, संत, सत्य परायण, यज्ञकर्ता, परम भक्तिमार्गी और विष्णु को प्रथमतः जगद्गुरु स्वीकार करते हैं। सबके मन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का उपाय जानने की जिज्ञासा थी— एकदा तु महात्मानः समाजं चक्रुरुत्तमाः। धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपायं ज्ञातुमिच्छवः॥ *(तत्रैव १, ७)* सारे मुनि संख्या में छब्बीस हजार थे और सब ऊर्ध्वरेतस् थे। ऊर्ध्वरेतस् शिव के लाकुलिश अवतार और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की विशेषता रही है। सबने अव्यभिचारिणी भक्ति को जानना चाहा था। श्रीमद्भगवद्गीता में इस भक्ति का प्रथमतः प्रतिपादन मिलता है। इसमें एकेश्वर भाव की प्रधानता है। पुराणकार ने शंकर, विनायक, चण्डिका, रेणुका, सूर्य, भैरव, मातृगणों में वाणी, गिरिजा आदि का स्मरण करते हुए सबके लिए विष्णु को प्रणम्य देव कहा है और प्रतिपादित किया है कि वे सभी में प्रधान, सबसे बढ़कर और प्रथमतया नमस्कार के योग्य हैं।

इस काण्ड में यह मत प्रवर्तित है कि विष्णु के समान न कोई देवता है, न वायु के समान कोई गुरु है। विष्णुपदी के समान कोई तीर्थ नहीं है और विष्णुभक्त के समान कोई भक्त नहीं है— न चास्ति विष्णोः सदृशं च दैवतं न चास्ति वायोः सदृशो गुरुश्च। न चास्ति तीर्थं सदृशं विष्णुपद्याः न विष्णुभक्तेन समोस्ति भक्तः॥ *(तत्रैव १, ४१)* इसी क्रम में भागवतपुराण की प्रशंसा की गई है। तीन पुराणों को कलिकाल में सबसे मुख्य बताया गया है, जिनमें प्रथम भागवत, द्वितीय विष्णुपुराण और तृतीय गरुडपुराण है। इनमें भी गरुडपुराण की महिमा अधिक है— त्रीण्येव मुख्यानि कलौ नृणां तु तथा विशेषो गारुडे किञ्चिदस्ति। *(तत्रैव १, ४६)* इसके बाद स्पष्ट किया गया है कि यह पुराण तीन अंशों में है। इसमें आद्यंश 'कर्मकाण्ड' कहा गया है, द्वितीय 'धर्मकाण्ड' और तीसरा 'ब्रह्मकाण्ड' बताया गया है। अन्तिम काण्ड को इनमें वरिष्ठ सिद्ध किया गया है। इसके श्रवण का पुण्य भागवत श्रवण के पुण्य के बराबर कहा है। इसके पाठ को वेदपठन तुल्य सिद्ध किया गया है। इसमें अन्य पुराणों का स्वरूप भी बताया गया है—

तृतीयांश श्रवणात्पुण्यमाहुस्तुल्यं पुण्यं भागवतस्य विप्राः ॥

तृतीयांशे पठिते वेदतुल्यं फलं भवेन्नात्र विचार्यमस्ति।

तृतीयांशश्रवणादेव विप्राः फलं प्रोक्तं पठतोप्यर्थमेवम् ॥

तृतीयांशश्रवणादर्थश्च पुण्यं चाहुः पठतो वै दशांशम्। *(तत्रैव १, ४८-५०)*

प्रथम अध्याय में सत्त्व अधम, मध्यम और उत्तम पुराणों का वर्गीकरण है और उपपुराणों को अल्पकाय बताते हुए उनकी संख्या अठारह बताई गई है। इनका भी सत्त्वादि रूपों में कोटीकरण गया है—

अल्पान्युपपुराणानि वदन्त्यष्टादशानि च। विष्णुधर्मोत्तरं चैव तन्त्रं भागवतं तथा॥

तत्त्वसारं नारसिंहं वायुप्रोक्तं तथैव च। तथा हंसपुराणं च षडेतानि मुनीश्वराः ॥

सात्त्विकान्येव जानीध्वं प्रायशो नात्र संशयः। एतेषां श्रवणादेव गारुडार्धफलं श्रुतम्॥

(तत्रैव १, ५७-५८)

मत्स्यपुराण की तरह ही छह उपपुराणों विष्णुधर्मोत्तर, तन्त्रभागवत, तत्त्वसार, नारसिंह, वायुप्रोक्त पुराण और हंसपुराण मुनीश्वर प्रोक्त बताया गया है। इनके श्रवण का पुण्य अन्य सात्त्विक पुराणों के रूप में गरुडपुराण के श्रवण की अपेक्षा आधा कहा है। इनके अतिरिक्त भविष्योत्तरपुराण, बृहन्नारदपुराण, यम-नारदसंवादयुक्त लघुनारदीयपुराण, विनायकपुराण और बृहद्ब्रह्माण्डपुराण की राजस पुराण से तुलना करते हुए गरुडपुराण के श्रवण की अपेक्षा चतुर्थांश बताया गया है—

भविष्योत्तरनामानं बृहन्नारदमेव च। यमनारदसंवादं लघुनारदमेव च॥

विनायकपुराणं च बृहद्ब्रह्माण्डमेव च। एतानि राजसान्याहुः श्रवणाद्भुक्तरुत्तमा।

गारुडात्पादतुल्यं च फलं चाहुर्मनीषिणः॥ *(तत्रैव १, ५७-६२)*

इसके बाद शैव भागवत, नन्दिप्रोक्त पुराण (नांदीपुराण या शिवधर्म), पाशुपत, रेणुक और भैरव नामक उपपुराणों की गणना की गई है और इनको तामस कोटि के पुराण बताया गया है। इनके श्रवण का पुण्य गरुडपुराण की अपेक्षा दो अंश बताया गया है—

पुराणं भागवतं शैवं नन्दिप्रोक्तं तथैव च। पाशुपत्यं रैणुकं च भैरवं च तथैव च।

एतानि तामसान्याहुर्हरितत्त्वार्थवेदिनः॥ एतेषां श्रवणाद्विप्रागारुडाङ्घ्यर्ध्मेव च। *(तत्रैव १, ६२-६४)*

उक्त वर्णन का लक्ष्य यह है कि गरुडपुराण अन्यान्य शास्त्रों में श्रेष्ठ है, वैष्णवधर्म का जैसा इसमें वर्णन किया गया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जिस प्रकार देवों में विष्णु श्रेष्ठ है, आयुधों में सुदर्शन, यज्ञों में अश्वमेध, नदियों में गंगा और जलीय पुष्पों में कमल श्रेष्ठ है और जैसे छिन्न भक्तों में रुद्र, अछिन्न भक्तों में वायु श्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणों में गरुडपुराण विष्णुतत्त्व के व्याख्यान की दृष्टि से श्रेष्ठ है— यथा सुराणां प्रवरो जनार्दनो यथायुधानां प्रवरः सुदर्शनम्। यथाश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां छिन्नेषु भक्तेषु तथैव रुद्रः। नदीषु गङ्गा जलजेषु पद्ममच्छिन्नभक्तेषु तथैव वायुः तथा पुराणेषु च गारुडं मुख्यं तदाहुर्हरितत्त्वदर्शने॥ *(तत्रैव १, ७२-७३)* पुराणकार यह प्रतिपादित करता है कि भूमि के भार का हरण करने वाले विष्णु के प्रधान अंग मारुति है, वाक्यरूप भारती द्वितीय अंग है, तृतीय अंग शेष है जो अनम्य है।

इस काण्ड का द्वितीय अध्याय 'ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादि देवता तारतम्य निरूपण' शीर्षक है और इसमें शौनक-सूत संवाद और गरुड के प्रश्न के रूप में ७० श्लोक हैं। गरुड ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था कि उन्होंने इस सृष्टि की रचना किस तरह की, ब्रह्मादि का तारतम्य ज्ञान कैसा है और मोक्ष का उपाय क्या है— सृष्टिं ब्रूहि महाभाग सच्चिदानन्दविग्रह॥ सृष्टौ ज्ञाते तवोत्कर्षो ज्ञातप्रायो भविष्यति। ब्रह्मादीनां तारतम्यज्ञानं मम भविष्यति॥ मोक्षोपायम्य: स बोक्तमिततरत्तस्य साधनम्। *(तत्रैव २, ५)* इस पर श्रीकृष्ण का वचन है कि विष्णु अव्यय है और इस संसार के मूल कारण हैं। वे सभी ओर व्याप्त है और पूर्ण होने के फलस्वरूप अवतार ग्रहण करते हैं तथा अनेक रूपों वाले इस दृश्य जगत् को एकरूप बनाकर प्रलयकाल में अपने में विलीन कर शयन को प्राप्त होते हैं— मूलरूपे ह्यतो ज्ञेयो विष्णुत्वाद्विष्णुरव्यय:॥ अवतारमिदं प्रोक्तं पूर्णत्वादेव सुव्रत। अनेको ह्येकतां प्राप्य संशेते प्रलायाय वै। *(तत्रैव २, ६-७)*

इस अध्याय का प्रतिपादन लक्ष्मी के साथ विष्णु का चिरस्थायीत्व बताना भी है; क्योंकि पुराणकार का मत है कि प्रलयकालीन सिन्धु में विष्णु समस्त जीव प्राणियों को अपने उदर में प्रविष्ट कराने के उपरान्त शयन करते हैं और ब्रह्मा, इन्द्र, मरुत आदि देवों को, मुक्तात्माओं व मुक्ति के लिए प्रयत्नशील जनों को भी अपने में व्यवस्थित करके कल्पपर्यन्त स्थित हो जाते हैं। उस काल में सर्ववेदात्मिका लक्ष्मी भक्तिभाव से ईशस्तुति करती हैं और तब विष्णु व लक्ष्मी को छोड़कर कुछ भी नहीं रहता। पर्यंक रूप में वे ही देवी हो जाती हैं और वासरूप से लक्ष्मी के स्वरूप में विराजित रहती हैं, उनके अनेकों रूप होते हैं। लक्ष्मीतन्त्रादि में यह विचार परिलक्षित होता है। इसी अध्याय में विष्णुतत्त्व का प्रतिपादन किया गया है, जो विष्णुरहस्यादि में भी सम्यक्‌रूप में विश्लेषित किया गया है। विष्णु को महान् अपराधियों को भी क्षमादान करने का विचार इस प्रसंग में आया है। जीवमात्र में बिम्बरूप में विष्णु की विद्यमानता का समर्थन किया गया है जो अहिर्बुध्न्यसंहितादि पाञ्चरात्र आगमों की विशेषता रही है। पुराणकार का मत है— प्रतिबिम्ब: कथं जीवो भवेन्नारायणस्य च। तदधीनस्तत्सदृशो हरेर्जीवो न संशय:॥ प्रतिबिम्बस्य शब्दार्थो ह्ययमेवमुदाहृत:। तस्माच्च बिम्बरूपाणामेकीभावं न चिन्तयेत्॥ *(तत्रैव २, १३-१४)* योगनिद्रा से उत्थापन करने का प्रसंग इसमें पुराणोचित रूप में आया है और विष्णु को रुद्रेशादि अनेकानेक नामों से सम्बोधित किया गया है।

तृतीय अध्याय 'भगवद्वीर्य स्वरूपतदाधानद्वारक गुणत्रय सृष्टिजडेशभेदादि निरूपण' नामक है और इसमें योगनिद्रा से जागे नारायण द्वारा सृष्टि की इच्छा करने का विचार विवेचित है। सौन्दर्यलहरी में जिस तरह इच्छा शक्ति का वर्णन वैसे ही यहाँ कहा गया है कि इच्छा शक्ति उनमें सदा ही विद्यमान रहती है, तथापि उन्होंने उसी शक्ति से लौकिक रूप धारण किया और उसी रूप से प्रलयकालीन अन्धकार का विनाश किया। यहां महाविष्णु का स्मरण किया गया है और उनके सभी अवतारों को पूर्ण स्वीकारा गया है। यहां कुटिलता के अर्थ में कौटिल्य का स्मरण भी है— गुरुणापि समं हास्यं कर्तव्यं कुटिलं विना। हर्षामर्षयुत: शिष्यो गुरु: कौटिल्यसंयुत:॥ *(तत्रैव ३, १०)*

हरि और नारायण की अभिन्नता का प्रदर्शन करते हुए कहा गया है कि लक्ष्मीदेवी कभी परमात्मा से विलग नही होती, वे नित्य उनकी सेवा में प्रीति रखती हैं। लक्ष्मीतन्त्र में भी कहा गया है कि जहाँ देवदेवेश

रहते हैं, मैं भी वहीं सनातनी रूप में रहती हूँ— मय्ययं देवदेवेशस्तत्राहं च सनातनी। इत्येते लेशतः शक्र दर्शिताः सप्रकारकाः॥ *(लक्ष्मीतन्त्र ९, ५६)* माया में वे बलवान् परमात्मा अपनी शक्ति का आधान करते हैं। वे पुरुष के नाम से विभु हैं और तीनों गुणों के सृष्टिकर्ता हैं। लक्ष्मी को तीन रूप धारण कर्त्री कहा गया है, जिनके नाम श्री, भू और दुर्गा हैं। इनमें से सत्त्वाभिमानी स्वरूप श्रीदेवी का है, रजोगुणाभिमानी स्वरूप भूदेवी का और तमोभिमानी स्वरूप दुर्गादेवी का बताया गया है। इस अध्याय में गौतम, कणाद इत्यादि का परमाणु विषयक दर्शन को सोदाहरण समझाने का प्रयास भी है और महत्तत्व से उत्पन्न होने वाले देवताओं का सन्दर्भ है। *(गरुड. ब्रह्म. ३, ४४-४७)* पाञ्चरात्र की परम्परा में इस सम्बन्ध में विमर्श किया जाता रहा है— सांख्ययोगकृतान्तेन पञ्चरात्रानुशब्दितम्। *(आगमप्रामाण्य, प्रकारान्तरेण सूत्रविचार, पृष्ठ १२९)* यहाँ गौतम शब्द का प्रयोग इस सम्प्रदाय की नारदीयसंहिता की ओर संकेत करता है, क्योंकि गौतम-नारद सम्मेलन के वृत्तान्त के रूप में ही प्रमुख आगम नारदीयसंहिता का प्रणयन हुआ है— गौतमेन पुरा पृष्टो नारदो मुनिपुङ्गवः। संहिता दुर्लभा या तु भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥ *(नारदीयसंहिता १, ६)*

'गुण वैषम्य भेद ब्रह्मदेह स्वरूप गुणसाम्य निरूपण' नामक चतुर्थ अध्याय में गुणों के विभिन्न भागों के अनुसार उत्पत्ति आदि का विवरण है और गीता के उपदेशों का दार्शनिक आधार पर विवेचन लगता है। इसमें महत्तत्व के विभिन्न अंशों का सारभूत प्रतिपादन है और इस ज्ञान का आचरण मोक्ष का उपाय बताया गया है— तज्ज्ञानान्मोक्षमाप्नोति नान्यथा तु कथञ्चन॥ *(तत्रैव ४, ७७)* पाँचवें अध्याय का शीर्षक 'तत्त्वाभिमानी देवतोत्पत्तितत्तारतम्य निरूपण' है और इसमें ५८ श्लोकों में विभिन्न तत्त्वों के अभिमानी देवताओं में मन के अभिमानी इन्द्र व कामदेव, इन्द्रियों के अभिमानी देवताओं और आठ वसु आदि के उद्भव को बताया गया है। महत्तत्व में विष्णु के साथ लक्ष्मी को भी स्थित कहा गया है— एतादृशे महत्तत्वे लक्ष्म्या सह हरिः स्वयम्। प्रविवेश महाभाग क्षोभयामास वै हरिः॥ *(तत्रैव ५, १)* यह समस्त विवरण कणाद दर्शन की पृष्ठभूमि का पोषक है। इसमें विभिन्न देवताओं, विष्णु के जयादि पार्षदों के नामों सहित उत्पत्ति प्रसंग को बहुत रोचक ढंग से परिभाषित किया गया है और यह प्रश्न, सात्वत, विष्णु आदि संहिताओं में उपदिष्ट पाञ्चरात्र की परम्परा का जीवन्त प्रमाण लिए है। देवताओं की संख्यानुसार उत्पत्ति का विवरण वह्निपुराणोक्त विषयों का विषयों का स्मरण कराते हैं। विभिन्न दिक्पालों, मरुतों की भार्याओं का सन्दर्भ इस अध्याय में मिलता है, यथा— वरुणस्य पत्नी गङ्गा पर्जन्याख्यो विभावसुः॥ यमभार्या श्यामला तु ह्यनिरुद्धप्रिया विराट्। ब्रह्माण्डमानिनी सैव ह्युषानाम्ना सुशब्दिता॥ रोहिणी चन्द्रभार्योक्ता सूर्यभार्या तु संज्ञका। एता गङ्गादिषट्संख्या जज्ञिरे विनतासुत। गङ्गाद्यनन्तरे जज्ञे स्वाहा वै मन्त्रदेवता। स्वाहानामग्निभार्योक्ता गङ्गादिभ्योधमा श्रुता॥ स्वाहानन्तरजो ज्ञेयो ज्ञानात्मा बुधनामकः। बुधस्तु चन्द्रपुत्रो यः स्वाहाया अधमः स्मृतः॥ उषा नाम तथा जज्ञे बुधस्यानन्तरं खग। उषा नामाभिमानी तु ह्यश्विभार्या प्रकीर्तिता। *(तत्रैव ५, ५०-५५)*

छठवाँ अध्याय 'तत्त्वाभिमानि तत्तद्देवताकृत विष्णुस्तुति तत्तद्देवता तारतम्य निरूपण' नामक है। सातवाँ अध्याय 'देवादि स्तुति तत्ततारतम्य निरूपण' नाम से है, आठवाँ अध्याय 'विष्णुस्तुतिर्देवतातारतम्यादि' नाम से है और नवम अध्याय 'देवकृत विष्णु स्तुति देवता तारतम्य निरूपण' नामक है। इन सभी अध्यायों में

महाविष्णु की स्तुति विभिन्न तत्त्वों के अभिमानी देवताओं द्वारा की गई है। अपने-अपने तत्त्व में स्थित होकर उन्होंने पृथक्-पृथक् रूप से स्तुति की थी। यह वर्णन हमें पाण्डवगीता में विभिन्न देवताओं और महाभारत के पात्रों द्वारा विष्णु की एकाधिक नामों से आराधना का प्रसंग स्मरण करवाता है। पुराणकार ने अवनतशिर श्रीदेवी द्वारा, ब्रह्मा, वायु, सरस्वती, भारती, शेषनाग, गरुड, इन्द्र, शची, रति, दक्ष, अनिरुद्ध, स्वायम्भुव मनु, नारद, भृगु, अग्नि, प्रसूति, महर्षि वसिष्ठ, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, विश्वामित्र, मित्र, तारा, निर्ऋति, विष्वक्सेन के मुखों से पृथक्-पृथक् विष्णु की महिमा का गुणगान करवाया है। लिंगपुराण और वास्तुशास्त्र में जिस प्रकार देवी-देवताओं द्वारा पृथक्-पृथक् रूप से देव स्तुति का विवरण मिलता है, उसी प्रकार इस अध्याय में महाविष्णु का स्तवन एकाधिक छन्दों में गेय रूप में आया है। यह विवरण श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से स्मृत्याधारित रूप में विवेचित है। देवताओं को अपने-अपने गुणों के संधारक के रूप में विष्णु ही द्रष्टव्य है, यहाँ यह विचार परिलक्षित होता है— नामाधिकारिणी चाहं गुणानां च महाप्रभो। स्तवने नास्ति मे शक्ती रुद्राद्दशगुणैरहम्॥ अन्त में अजान नामक देवताओं के सम्बन्ध में कहा गया है जो देवकुल में परिगणित है और कर्मदेवता हैं। इनमें विराध, चारुदेष्ण, चित्ररथ, धृतराष्ट, किशोर, हूहू, हाहा, विद्याधर, उग्रसेन, विश्वावसु, परावसु, चित्रसेन, गोपाल, बल आदि पन्द्रह देवता और उनके शताधिक संख्यक देव, घृताची-मेनका आदि अप्सरागण, यक्षरत्न; ऋषियों, धर्माचार्यों, पितरों का विवरण भी है। इनकी स्तुतियों के पठन का फल भी पुराणकार कहता है—

इदं पवित्रमारोग्यं पुण्यं पापप्रणाशनम्। हरिप्रसादजनकं स्वरूपसुखसाधनम्॥ *(तत्रैव ९, २५)*

इसके उपरान्त नारायण से प्राकृत और वैकृत सृष्टि के विस्तार का विवरण दसवें अध्याय से लेकर तेरहवें में अध्याय में आया है। दसवें 'अध्याय का शीर्षक ब्रह्माण्डादि वैकृतैकदेश प्राकृतसृष्टि निरूपण' है। ग्यारहवें अध्याय को 'ज्ञानहेतु निरूपण' नाम से कहा गया है, बारहवें अध्याय को 'ब्रह्मस्तुतिवर्णन' के नाम से वर्णित किया गया है और तेरहवें अध्याय को 'देवोत्पत्ति निरूपण' की संज्ञा दी गई है। इनमें प्रतिमाओं का विवरण भी मिलता है और कालक्रमानुसार देवोत्पत्ति को दर्शाया गया है। इन अध्यायों को कहीं-कहीं द्वितीयांश के धर्मकाण्ड के रूप में भी बताया गया है, यह लिपिकार की त्रुटि है अथवा विचारपूर्वक ऐसा किया गया है, यह स्पष्ट नहीं होता किन्तु इन अध्यायों पर पूरी तरह पाञ्चरात्र का प्रभाव द्रष्ट है। तेरहवें अध्याय में ब्रह्मा को प्रथम सृष्टि का पुरुषात्मा कहा गया है और उनको जीवाभिमानी देवता वायुदेव की सृष्टिकर्ता कहा है। उनको ब्रह्माणी व भारती, अनल, अंहकारात्मक हर की सृष्टि करने वाला भी बताया गया है।

चौदहवाँ अध्याय 'वैश्वदेवार्थक सारासारवस्तु विवेक' नाम से है। इसमें प्रथमतः भगवान् विष्णु की पूर्णता का वर्णन है, उनको मूल रूप कहा गया है। उनको विभिन्न अंगों से परिपूर्ण सिद्ध किया गया है। उपनिषद् के वचन 'ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' की तरह पुराणकार ने प्रत्येक अंग से विष्णु की पूर्णता का प्रतिपादन इस रूप में किया है—

पादश्च पूर्णः पादतलं च पूर्णं नखाश्च पूर्णाः कटिकण्ठौ च पूर्णौ।
ऊरू च पूर्णे उदरं च पूर्णं लब्ध्वापि पूर्णाङ्गगृहे तथाप्युरः॥

स्कन्धः सुपूर्णाः सकलाश्च बाहवः पूर्णाः केशाः श्मश्रुदन्ताश्च पूर्णाः।
लोमानि पूर्णानि तथैव रोमकूपाश्च पूर्णास्तु तथैव शिश्नः॥
अण्डश्च पूर्णो ह्यण्डरोमाणि कक्षाश्चक्षुश्च श्रोत्रे सर्व एते च पूर्णाः।
किं वर्णये मूलरूपं हरेश्च यावद्बलं पूर्णं समग्रदेहे॥
तावद्ब्रलं ह्येकरोमादिकेषु सन्तित्विमे हि यतः स एव पूर्णः॥
स एव तु सर्वस्य कर्ता स एव हर्ता स तु सारांशभोक्ता॥ *(तत्रैव १४, ३-६)*

इस अध्याय में श्रीहरि को पूजा-नैवेद्य में सार-सार को ही ग्रहण करने वाला बताया गया है, यह श्रीमद्भगवद्गीतोक्त 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति' *(९, २६)* सगुण उपासना का साक्ष्य रूप विवरण है और यह प्रतिपादित किया गया है कि वे समय द्वारा दूषित व भावदुष्ट पदार्थों का भोग नहीं लेते हैं। पुराणकार ने जामुन, कटहल, खजूर, नारियल, सुपाड़ी, ताम्बूल, गेहूं आदि अन्न, सूप, शाक, जम्बीरी नीबू, शृंगवेर, आँवला, कर्पूर, आम आदि विभिन्न द्रव्यों के सारासार का विवरण भी दिया है जो ब्रह्मवैवर्तपुराण, कूर्मपुराण, अनुशासनपर्व और मनु आदि स्मृतियों के वचनों में भी मिलता है। तुलसी को सदा ही सारयुक्त कहा गया है। यहाँ एकादशी की महिमा का वर्णन भी है। विभिन्न पुष्पों के सारहीन होने का वर्णन सौरपुराण, शिवधर्मादि शास्त्रों में मिलता है। पाञ्चरात्र परम्परा में निर्माल्य निवेद्योपयोग के प्रमाण सनत्कुमार संहिता, ऐन्द्ररात्रादि में उपलब्ध होते हैं। यामुनाचार्य ने परमसंहिता *(१२, ३६-३७)* का एक वचन दिया है— निवेदितं तु यद्द्रव्यं पुष्पं फलमथापि वा। तन्निर्माल्यमिति प्रोक्तं तत् प्रयत्नेन वर्जयेत्॥ निर्माल्यं भक्षयित्वैवमुच्छिष्टमगुरोरपि। मासं पयोव्रतो भूत्वा जपन्नष्टाक्षरं सदा। ब्रह्मकूर्चं ततः पीत्वा पूतो भवति मानवः॥ *(आगमप्रामाण्य सिद्धान्त, पृष्ठ १६०-१६१)* यह भी कहा गया है कि हरिभक्ति से विहीन व्यक्ति असुर होता है और जिस मुख पर हरि का नाम नहीं होता है, वह निःसार है— हरिभक्तिविहीना ये ह्यसुराः परिकीर्तिताः॥ हरिनामविहीनं तु मुखं निःसारमुच्यते। हरिनैवेद्यहीनस्तु पाको निःसार उच्यते॥ *(गरुड. ब्रह्म. १४, ३६-३७)*

ब्रह्मकाण्ड का पन्द्रहवाँ अध्याय विष्णु के अवतारों का निरूपण करता है जिसमें कहा गया है कि हरि पूर्णानन्द स्वरूप है और उनके बराबर किसी भी देश और किसी भी काल में अन्य कोई नहीं है। वे लोककल्याण के निमित्त निखिल सद्गुणों के सिन्धु के रूप में अवतार ग्रहण करते रहे हैं, वे विष्णु ही सम्पूर्ण अवतारों के बीजभूत हैं, वे वासुदेव कहे जाते हैं और वे वासुदेव ही सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के रूप में अवतीर्ण हुए— प्रादुर्बभूवाखिलसद्गुणार्णवः स एव विष्णुः स च बीजभूतः॥ यो बीजभूतः पुरुषाख्य विष्णुः स एवाभूद्वासुदेवो महात्मा। सृष्टिं कर्तुं पुरुषाख्यस्य वायोर्मायाख्यायां मूलरूपो यथाऽस॥ यो वासुदेवस्तु स एव जातः सङ्कर्षणाख्योऽखिलसद्गुणात्मा। सृष्टिं कर्तुं सूत्रभूतस्य वायोर्जयाख्यायं पूर्णसंवित्परात्मा॥ स एवं सङ्कर्षणनामधेयः प्रद्युम्ननामा च स एव विश्रुतः। *(तत्रैव १५, १-४)*

पाञ्चरात्रोक्त चतुर्व्यूह की अवतारणा और अवधारणा का यह प्रमाण है। चतुर्व्यूह और पंच वृष्णिवीरों की मान्यता के साक्ष्य जहाँ मथुरादि के पुरातात्त्विक प्रमाणों में खोजे गए हैं, वहीं पाञ्चरात्रागमों में भी यह विचार मिलता है। अहिर्बुधन्यसंहिता में चतुर्व्यूहों के संकल्प और व्यूहान्तर तथा विभव आदि भेदों की परिकल्पना भी मिलती है- *माम्नासिषुरमुष्वाश्च रहस्याम्नायवेदिनः। व्यूहान्तरविभावादिन् भेदान् सङ्कल्पकल्पितान्॥ (अहिर्बुध्न्य. ५, ४५)* पुराणकार यहाँ स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि पाञ्चरात्र के उपदेश के लिए भी हरि ने अवतार

लिया— तत्रावतारे पञ्चरात्रं समग्रमुपादेष्टुं नाप दानं स्वतन्त्रतः॥ *(गरुड़ ब्रह्म. १५, १०)* निश्चित ही इस मान्यता पर इस सम्प्रदाय का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस क्रम में सनत्कुमार, वराह, नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, मनु, उरुक्रम, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, व्यास, श्रीकृष्ण, विष्णुयश अवतारों और उनके प्रयोजनों का संक्षिप्त वर्णन हैं। बुद्ध को भी अवतार स्वीकार किया गया है जो भागवतीय मत का प्रभाव है। कहा गया है कि कलियुग की प्रवृत्ति होने पर वे ही आसुरों को मोहित करने के लिए कीकट देश में बुद्ध के नाम से अवतरित हुए और वेद के प्रमाणों को निराकृत किया— ततः कलौ सम्प्रवृत्ते हरिस्तु समोहनार्थं चासुराणां खगेन्द्र। नाम्ना बुद्धो कीटकेषु प्रजातो वेदप्रमाणं निराकर्तुमेव॥ *(तत्रैव १५, २६)*

सोलहवाँ अध्याय 'महालक्ष्म्यवतारादि निरूपण' शीर्षक लिए हैं जिसमें महालक्ष्मी के अवतारों का विवरण हैं। यह १०२ श्लोकों में विस्तृत अध्याय है और इसमें पाञ्चरात्रागमों, विशेषकर लक्ष्मीतन्त्र के अनुसरण में महालक्ष्मी के अवतारों का वर्णन है। महालक्ष्मी के रूप में देवी के अवतार का विवरण हालांकि मार्कण्डेयपुराणोक्त सप्तशती में मिलता है; किन्तु यहाँ महालक्ष्मी को स्वयं अवतार धारण करने वाली भगवती स्वीकारा गया है। लक्ष्मीतन्त्र में कहा गया है कि वह विष्णु के विभिन्न अवतारों में उनके साथ अवतीर्ण होकर श्री के नाम से वामभाग में रहती हैं— अवतारो हि यो विष्णोः श्रीपतिर्नाम नामतः। श्रीरित्येवाख्यया तत्र तस्याहं वामतः स्थिता॥ *(लक्ष्मी. ८, ३१-३२)* वहाँ पर क्षीरशायी विष्णु के सम्मुख लक्ष्मी, निद्रा, प्रीति व विद्या के नाम से विराजित रहने का सन्दर्भ है, तो पारिजातजित अवतार में आनन्दकरा, मीनधर में नौका, त्रिविक्रमावतार में आनन्ददायिनी गंगा और अनन्तशयनावतार में चारों दिशाव्यापिनी लक्ष्मी, चिन्ता, निद्रा व पुष्टि के रूप में स्थित रहने का प्रमाण है। *(तत्रैव ८, ३३-३६)* इसी प्रकार कहा गया है कि अनुव्रता होने के कारण भी वह पृथक्-पृथक् अवतार ग्रहण करती हैं, वराहावतार में वह भूदेवी हुईं, धर्मावतार में भार्गवी ख्यातिजा श्री, दत्तात्रेयावतार में रसरूपा, वामनावतार में पद्मा, परशुरामावतार में धारणी नामक शक्ति और श्रीरामावतार में सीता हुईं। विष्णु के चतुर्व्यूहावतार में भी वह अवतीर्ण हुईं। बलराम सङ्कर्षण, कृष्ण वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध के काल में वह मधुर रूप में चार रूप ग्रहण करने वाली हुईं। वह बलराम की रेवती, कृष्ण की रुक्मिणी, प्रद्युम्न की रति और अनिरुद्ध की उषा के रूप में अवतीर्ण हुईं। कहा गया है कि विष्णु देवताओं के रूप में रहते हैं और महालक्ष्मी देवियों के रूप में रहती हैं— सह सिद्धं पृथक्सिद्धमित्येतज्जन्म मेऽद्भुतम्। कीर्तितं तव देवेश केवलं जन्म मे शृणु॥ *(तत्रैव ८, ३७- ५०)*

इसी प्रकार ब्रह्मकाण्ड में किञ्चित् नामभेद से कहा गया है— वासुदेवस्य भार्या तु माया नाम्नी प्रकीर्तिता। सङ्कर्षणस्य भार्या तु जयेति परिकीर्तिता॥ अनिरुद्धस्य भार्या तु शान्ता नाम्नीति कीर्तिता। कृति प्रद्युम्नभार्यापि सृष्टिं कर्तुं बभूवह॥ विष्णुपत्नी कीर्तिता च श्रीदेवी सत्त्वमानिनी। तमोभिमानिनी दुर्गा कन्यकेति प्रकीर्तिता॥ कृष्णावतारे कन्येव नन्दपुत्रानुजा हि सा। रजोभिमानि भूदेवी भार्या सूकरस्य च॥ वेदाभिमानिनीवीन्द्र अन्नपूर्णा प्रकीर्तिता। नारायणस्य भार्या तु लक्ष्मीरूपा त्वजा स्मृता॥ यज्ञाख्यस्य हरेर्भार्या दक्षिणा सम्प्रकीर्तिता। जयन्ती वृषभस्यैव पत्नी सम्परिकीर्तिता॥ विदेहपुत्री सीता तु रामभार्या प्रकीर्तिता। रुक्मिणीसत्यभामा च भार्ये कृष्णस्य कीर्तिते। इत्यादिका ह्यनन्ताश्चाप्यवताराः पृथग्विधाः। रमायः सन्ति विप्रेन्द्र भेदहीनाः परस्परम्। अनन्तानन्तगुणकाद्विष्णोर्न्यूनाः प्रकीर्तिताः॥ *(गरुड़ ब्रह्म. १६, ६- १४)* इसी में गुणों के अनुसार ब्रह्मादि की उत्पत्ति और ब्रह्माण्ड के बाहर भी अवतारों का सन्दर्भ आया है। हरि के श्वेतद्वीप जाने का सन्दर्भ नारायणीय

पर्व की तरह आया है। वायु के रूप में अवतीर्ण हनुमान् को रामकार्यसाधक बताया गया है और भीमसेन को मरुत् का अंश कहा है। इसमें भारती, श्रद्धा, अन्यगा, दमयन्ती, शची, काली, द्रौपदी इत्यादि को भी अवतारों के रूप में परिगणित किया गया है। द्रौपदी के अवतार के सम्बन्ध में गर्गसंहितोक्त 'युगपुराण' में भी सन्दर्भ उपलब्ध होता है। ब्रह्मकाण्ड में कहा गया है— वाच्यादिभिः संयुतैवद्रौपदी द्रुपदात्मजा। देहं त्यक्त्वा विशिष्टैव कारटीग्रामसंज्ञके॥ संकरस्य गृहे वीन्द्र भविष्यति कलौ युगे। *(तत्रैव १६, १००-१०१)*

यह वर्णन आगे सत्रहवें अध्याय में भी क्रमशः है, जिसका नाम 'भारत्या विशिष्टदेह सम्प्राप्त्यै कारण निरूपण' है। उसमें भारती सहित शची आदि के चौथे जन्म का विवरण भी आया है। इसी प्रकार कृतयुग में रुद्र की भार्या पार्वती, इन्द्र की पत्नी शची, यम पत्नी शामला, अश्वि पत्नी उषादेवी का सन्दर्भ आया है। द्रौपदी को वेदिमध्य से सम्भूत कहा गया है। कृष्णवर्ण के कारण ही वह कृष्णा कही गई। उसके साथ मुद्गल के संयोग की जो कथा है, वह पद्मपुराण में पद्मिनी के प्रसंग में देखी जा सकती है। युधिष्ठिर, अर्जुनादि पाण्डवों के साथ उसके साहचर्य का प्रसंग यहां रोचक रूप में है।

इसके अनन्तर शेष और रुद्र के अनेक अवतारों का वर्णन 'रुद्ररोदन हेत्वानन्तानन्द तारतम्य निरूपण' नामक अठारहवें अध्याय में हुआ है। शेष को अनन्त शक्ति सम्पन्न कहा गया है, जिनका जन्म हरि और रमादेवी के शयन के लिए स्वीकारा गया है। उनमें विष्णु, वायु और अनन्त इन तीन देवों का अंश सदैव विद्यमान रहता है। इसी अध्याय में गरुड के प्रादुर्भाव का प्रसंग आया है। कहा गया है कि मैं सदैव हरि का सेवक रहूँ, उनकी आराधना-सेवा करता रहूँ— इसी अभिलाषा के साथ गरुड ने हरि के शयन स्थान के पास आश्रय ग्रहण किया था। विनता के पुत्र काल नामक गरुड का आविर्भाव हरि के वाहन के रूप में हुआ— सूत्र नाम्रस्तथा वायोः सदायं विनतासुत। कालनामा च गरुडो वाहनार्थं हरेरभूत्॥ *(तत्रैव १८, ४-५)* कहा गया है कि रामावतार में लक्ष्मण के रूप शेषावतार हुआ, वे सीता-राम की सेवा के लिए प्रस्तुत रहे। द्वापर में शेष वसुदेव के पुत्र के रूप में रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए और उनका नाम बलभद्र हुआ। शेष के तीन अवतार हुए; किन्तु विष्णु की आज्ञा से गरुड का कोई अवतार नहीं हुआ— न वीन्द्रास्यावतारोस्ति भूम्यां चाज्ञा तथा हरेः। इसके बाद रुद्र के अनेक अवतारों का प्रसंग हैं, जो वायु, लिङ्ग व कूर्मपुराण सहित सूतसंहिता के विवरण के प्रमाण के रूप में ज्ञेय है। रुद्र को अहंकारात्मक कहा गया है और सदाशिव के रूप को सदैव कपाल मालाधारी कहते हुए उनकी गजाजिन धारण करने वाले, श्मशान निवासी आदि विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है व भागवतों की विमुखता का विवरण भी दिया गया है। *(तत्रैव १८, १३-१९)*

इसी प्रकार शिव के लवणसागर पर दस वर्षीय तप, दुर्वासा, द्रौणी आदि के आख्यानों की ओर संकेत करते हुए कोणानुसार स्थिति के आधार पर शिव के वामदेव, अघोर और सद्योजात के नामकरण को बताया गया है। उरपुत्र और्व, रुद्र आदि के आख्यान भी संक्षेप में इस अध्याय में दिए गए हैं। इसी प्रसंग में मुकुन्द, नारायण, विश्वमूर्ति आदि से जुड़े प्रसंग दिए गए हैं और कहा गया है कि अशेष नैवेद्य व तुलसी मिश्रित विष्णु चरणों जल से जो मुरारी के सम्मुख स्नान करता है वह कोटि यज्ञों का फल प्राप्त करता है—

नैवेद्यशेषं तुलसीविमिश्रितं विशेषतः पादजलेन सिक्तम्।
यो स्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम्॥

(तत्रैव १८, ४६)

उन्नीसवें अध्याय 'नीलाविवाह निर्णय' से पुराणकार श्रीकृष्ण की अनेक पत्नियों के सम्बन्ध में आख्यानों का निरूपण आरम्भ करता है। सर्वप्रथम नीला या नाग्नजिती की कथा है, जो पूर्वजन्म में पितरों में अग्रगण्य कव्यवाह की पुत्री थी। वह श्रीकृष्ण को पति रूप में पाने की इच्छा रखती थी, जबकि उसके पिता इस निर्णय के विरुद्ध थे। उसने कपिल नामक महातीर्थ में भगवान् श्रीनिवास की आराधना की जिस पर उन्होंने कृष्णावतार में उसकी इच्छा पूरी करने का वरदान दिया। वह कुम्भक के यहाँ नीला के नाम से हुई और दैत्यों का विनाशकर श्रीकृष्ण ने उसका वरण किया। इसी प्रसंग में कहा गया है कि कालान्तर में नग्नजित् नामक राजा के यहाँ उस कुमारी ने जन्म लिया और वह भी नीला के नाम से ख्यातिलब्ध हुई; किन्तु बन्दी बना ली गई। तब श्रीकृष्ण ने स्वयंवर में सात बलवान बैलों के साथ अनेक राजाओं को जीतकर नीला को प्राप्त किया। नग्नजित् का उल्लेख मत्स्यपुराण *(२५१, २)* में आया है। वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता *(५८, ४ एवं १५)* में मिलता है। चित्रलक्षणम् नामक चित्रकला शास्त्र को भी नग्नजित् कृत माना जाता है *(द्रष्टव्य मेरे सम्पादन में चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी से प्रकाशित चित्रलक्षण)*, किन्तु इस कथा के साथ उसका क्या सम्बन्ध है, यह विचारणीय है।

तदनन्तर 'भद्राकृत भगवत्पतित्व प्रापकतपश्चर्यादि निरूपण' नामक बीसवें अध्याय में नल की पुत्री भद्रा के रूप में विष्णुपत्नी के जन्म की कथा है, जो बाल्यकाल से ही तपस्विनी थी। इस आख्यान के साथ पुराणकार यज्ञादि अनुष्ठान सहित काशीवास, प्रयाग में मरण, समरांगण में निधन जैसी देहोत्सर्ग की कतिपय पुरानी परम्पराओं की ओर ध्यान दिलाता हुआ हरिनाम स्मरण की महत्ता प्रतिपादित करता है। इसी अध्याय में मित्रविन्दा के विवाह का प्रसंग भी आया है, जिसने पूर्वजन्म में हरि को मित्र के रूप में प्राप्त करने की इच्छा की थी। इस आख्यान से पुराणकार ने सात्त्विक पुराणों में वर्णित भगवद् कथाओं के श्रवण को भी भक्ति के एक अंग के रूप में प्रस्तुत किया है। पाञ्चरात्र की पौष्करसंहिता में कहा गया है कि वेदवादियों के लिए अग्निहोत्रादि स्वर्गमार्ग प्रदायक है, ब्रह्मस्थितजनों के लिए तप, अर्चन, समाधि, जपकर्म व स्तुति मुख्यमार्ग हैं; जबकि उन्नतचित्त वाले वे भगवत् कर्मवेदिन् हैं, जो संतों के भवन में विराजित होकर शास्त्रों का परिशोधन करते हैं— स्वर्गमार्गप्रदं चैव तथोत्कृष्टफलप्रदम्। केवलं चाग्निहोत्रं तु विप्राणां वेदवादिनाम्॥ ये पुनस्तु ततो ब्रह्मन् स्थिता तद्धर्मधर्मिणि। तपोऽर्चने समाधौ तु जपकर्मणि च स्तुतौ॥ तेषामुन्नतचित्तानां भगवत्कर्मवेदिनाम्। सन्तद्भवनं सच्छास्त्रपरिशोधिनाम्॥ *(पौष्करसंहिता, तिरूपति, २००६, द्वितीय भाग, २८, ४-६)*

इसमें भागवत पुराण की महिमा इस रूप में है कि जिस किसी ने भगवान् हरि के गुणानुवाद का कीर्तन करने वाले भागवत को नहीं सुना, उसका जीवन ही व्यर्थ जानना चाहिए। भागवत कथा जहाँ नहीं होती हो और जहाँ विष्णु सहस्रनाम और गीतार्थसार की चर्चा नहीं होती, वहाँ निवास तक नहीं करने की आज्ञा है, इसी में ब्रह्मकाण्ड का श्रवण भी पुण्यप्रदायक कहा गया है। यहाँ अर्थ सहित कथा श्रवण पर जोर दिया गया है, इससे लगता है कि केवल पठन-पाठनकी अपेक्षा अर्थ सहित श्रवण को महत्वपूर्ण माना गया है।*(गरुड. ब्रह्म. २०, २२-३२)*

'भगवतः कालिन्द्या विवाह हेतु निरूपण' नामक इक्कीसवें अध्याय में विवस्वान् सूर्य की पुत्री

कालिन्दी की कथा जिसको यमुना और यमानुजा के नाम से भी जाना गया है। वह भी कृष्णानुरागिनी थी। अर्जुन के साथ यमुना के तट पर जाकर श्रीकृष्ण ने उसका पाणिग्रहण किया था। बाईसवाँ अध्याय 'लक्ष्मणा विवाह हेतु निरूपण' नामक है जिसमें अग्निदेव की पुत्री लक्ष्मणा द्वारा श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की कथा को दिया गया है। इसके बाद श्रीसोम की पुत्री जाम्बवती के साथ विवाह की कथा 'वेङ्कटेशगिरियात्राक्रम निरूपण' नामक तेबीसवें अध्याय में है। इस अध्याय में उन तीर्थों का महत्व प्रतिपादित हुआ है जहाँ पर भगवान् ने अपनी लीलाएँ की थी और जहाँ वे अदृश्य रूप से आज भी विराजित रहते हैं। इसमें शेषाचल की यात्रा और मार्गस्थ कपिल तीर्थ की परम्पराओं का वर्णन है। इसमें नारद, प्रह्लाद, पराशर, पुण्डरीक आदि महाभागवतों की कथाओं का सन्दर्भ आया है। बारह महाभागवतों का वर्णन भागवतपुराण में आया है। इसी आधार पर भक्तमालों में स्वामी रामानन्द के बारह शिष्यों का वर्णन करने की परम्परा मिलती है। इसी प्रकार तीर्थाटन के विधान का भी इसमें वर्णित है।

तीर्थाटन के रूप में यही प्रसंग 'श्रीवेङ्कटेशगिर्यारोहण क्रम तद्गक्त तत्पर्वतनामादि निरूपण' नामक चौबीसवें अध्याय में अविराम आया है। इसमें विभिन्न दिशाओं, कोणों विराजित रूप से विष्णु के स्वरूपों और अन्यान्य देवी-देवताओं को विभिन्न नामों से प्रणाम करने का निर्देश है। यह भाव रखने का निर्देश भी है— अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्व पुरुषोत्तम॥ मानसान्वाचिकान्दोषान् कायिकानपि सर्वशः। वैष्णवद्वेषहेतून्मे भस्मसात्कुरु माधव॥ *(तत्रैव २४, ७५-७६)* इस प्रकार यह वर्णन दक्षिण भारत के वेंकटेश पर्वत की यात्रा की परम्परा का बोधक है। श्रीनिवास के द्वारदेश पर विद्यमान स्वामिपुष्करिणी की महिमा आगे पच्चीसवें अध्याय में आई है, जिसमें स्नान के उपरान्त दर्शनीय मूर्ति का वर्णन और स्तुति की महत्ता भी है। इस अध्याय का नाम 'देवीकृत वेङ्कटेशदर्शन तत्स्तुत्यादि वर्णन' है। साथ प्रातःकाल स्मरणीय पाठादि को दिया गया है। 'व्यङ्कटगिरिमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिण्यादि तीर्थ तत्रत्यदेवतदीय शालग्राम लक्षण तद्दानादि वर्णन' नामक छब्बीसवें अध्याय में शालग्राम दान की महिमा और शालग्राम के स्वरूपों का विस्तृत वर्णन हैं। यह वर्णन इस पुराण में पहले भी आया है। ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त, स्कन्द पुराणादि में भी शालग्राम परीक्षा का विवरण मिलता है, जिसे सूत्रधार मण्डन ने देवतामूर्ति प्रकरणम्, रूपमण्डनम् और गोपालभट्ट ने हरिभक्तिविलास में उद्धृत किया है। स्वामिपुष्करिणी में करणीय दानादि कर्तव्यों के रूप में यह वर्णन उस तीर्थ की परम्पराओं को दर्शाता है।

तदोपरान्त पाप निवारिणी नन्दा का वर्णन है। यह सत्ताइसवें अध्याय में आया है, जिसकी संज्ञा 'कन्याकृत नाना तीर्थयात्रादि निरूपण' है। अठाइसवाँ अध्याय 'तारतम्य निरूपण द्वारा विष्णोरेवोपास्यत्वमित्थ्यं निरूपण' है, जिसमें अनेक देवी-देवताओं की पूजा का विधान है। देवियों का वर्णन इस अध्याय में विशेष रूप से हुआ है। इसी में शाकम्भरी देवी का वर्णन है, जिसकी कृपा से प्रत्येक गृह में शाक-तरकारियाँ विद्यमान हैं। मार्कण्डेयपुराण में इस देवी को दीर्घावधि के अकाल के बाद शाकोत्पादन करने वाली कहा गया है। जब तक वर्षा नहीं हुई, उन शाकों से ही सबके प्राणों की रक्षा हुई— ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः। भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः॥ शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि। *(दुर्गासप्तशती ११, ४८-४९)* इसी की महिमा 'पृथ्वीराजविजय' नामक महाकाव्य में आई है।

ब्रह्मकाण्ड का अन्तिम उन्नतीसवाँ अध्याय 'तत्वरहस्य' नाम से है जिसमें गंगा के माहात्म्य के रूप में कहा गया है— अतो गङ्गेति सा ज्ञेया सर्वदा लोकपावनी। भक्त्या विष्णुपदीयत्येव कीर्तिता नात्र संशयः॥ *(तत्रैव २९, ५)* इसमें गंगा से जुड़ी एक कथा को देते हुए हरिभक्ति की महिमा को भी प्रतिपादित किया गया है— हरि प्रीतिकरान्धर्मान्वक्ष्ये शृणु खगाधिप। प्रातःकाले समुत्थाय स्मरेन्नारायणं हरिम्॥ तुलसीवन्दनं कुर्याच्छ्रीविष्णुं संस्मरेत्खग। *(तत्रैव २९, ३८-३९)* दिनचर्या के करणीय कर्तव्यों के दौरान भी हरि का नाम जपने का निर्देश देते हुए गोसेवा का महत्व भी प्रतिपादित किया गया है कि गोपोषण के बिना जन्म ही निरर्थक है। इस प्रकार गरुडपुराण के उत्तरार्द्ध का ब्रह्मकाण्ड पाञ्चरात्र सहित भागवत धर्म की महिमा का प्रतिपादक है। इसकी रोचकता कथा-आख्यानों के रूप में तो है ही वैष्णव पुराणों के सार्थ पठन और नाम-कीर्तनपूर्वक तीर्थाटन जैसे निर्देशों के लिए भी है। यह अनेक ग्रन्थों के सार रूप को ग्रहण किए है।

❖❖❖